श्रीमद्भागवत-रहस्य

पूज्यपाद

श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

2-3

श्रीमद्भागवत-रहस्य

[श्रीमद्भागवत-कथाका गुजरातीसे हिन्दी भावानुवाद]

प्रवक्ता—

पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज

प्रकाशक—

लोक - भारती

राधाप्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१

येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ।
प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूतसंप्लवम् ॥

जो लोग सदा अपने घरमें भागवतशास्त्रका पठन - पूजन करते हैं, वे मानो एक कल्पतकके लिये सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त करते हैं ।

नित्यं ममकथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चन्ति सदा मम ॥

जहाँ नित्य मेरी कथा होती है वहाँ वैष्णवगण (प्रत्यक्ष एवं परोक्ष भी) विद्यमान रहते हैं । जो मनुष्य सदा मेरी पूजा - अर्चनामें रत रहते हैं, उनपर कलिका वश नहीं चलता ।

मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथा श्रवणेरतम् ।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥

जो मेरी कथा कहता है, जो सदा उसे सुननेमें लगा रहता है तथा जिसका मन मेरी कथासे प्रसन्न होता है, उस मनुष्यका मैं कभी त्याग नहीं करता ।

(ब्रह्माजीके प्रति श्रीभगवान्‌के वचन)

प्रकाशक	लोक - भारती
तिथि	श्रावण शुक्ला ३, वि० सं० २०३८ ३ अगस्त, १९८१
प्रथम संस्करण	दो हजार प्रतियाँ
मुद्रक	राधाप्रेस गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SRIMAD BHAGAWATA RAHASYA

मूल्य — तीस रुपये

नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत भगवान्‌का साक्षात्स्वरूप है। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी रचना करनेकें उपरान्त भगवान् वेदव्यासजी द्वारा शान्तिहेतु रचा गया यह पावन ग्रन्थ भवत्राससे त्रस्त जीवोंके लिये भी परम शान्तिप्रदायक है। परमहंस श्रीशुकदेवजी जैसे त्यागी सन्तोंको भाव-समाधि लगवा देनेवाले इस ग्रंथसे भावके भूखे कलियुगके मनुष्योंकी भावतृप्ति होकर यदि आत्मा-शुद्धि हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? भगवान् श्रीकृष्णके परम पावन चरित्रके प्रेम-रस-पारावारके अतिरिक्त इस ग्रन्थरत्नमें वह सब कुछ है जिसकी कि आकांक्षा आत्माको सदा-सर्वदासे रहती चली आई है। परमानन्दसे परिपूर्ण आत्मतृप्तिका ऐसा अनुपम साधन दूसरा कहीं नहीं है। भवरोगसे मुक्ति दिलानेके लिये श्रीमद्भागवत भव-भेषज (भवरोगकी एकमात्र औषधि) है। अज्ञानान्धकारको तुरन्त दूर भगानेवाली श्रीमद्भागवतकी इस अमृतवर्षिणी कथाको अबतक अगणित कथाकारोंने कहा एवं कहते आ रहे हैं, परन्तु पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराजके मुखसे निकली समस्त भारतीय भक्ति-वाङ्‌मयके सारतत्वको ग्रहण करती हुई सत्कर्म और सद्‌ज्ञानके आदर्श-तटोंके मध्य बहती यह भागवत-कथा-सरिता कितनी कल्याणकारी है—इसकी जानकारी तो विज्ञ पाठकोंको इसमें अवगाहन (स्नान) करके ही हो पावेगी।

श्रीमद्भागवतकी कथा तो सदा-सर्वदासे दिव्य है ही, परन्तु उसका दिव्य सदाचरणशील वक्ता और तद्‌वत् श्रोता भी होना चाहिये। श्रीशुकदेवजी जैसे निर्मल परमहंस वक्ता और राजा परीक्षित जैसा तल्लीन त्यागी श्रोता हो तभी परिपूर्णता आती है, अन्यथा सब वाचारम्भण है। भक्त - समाजका यह परम सौभाग्य है कि पूज्यपाद श्रीडोंगरेजी महाराज जैसा सदाचरणशील परमत्यागी वक्ता आज उसके मध्य वर्तमान है। अतः उनके भक्तिभावपूर्ण भावविगलित नेत्रों एवं गद्‌गद् कण्ठसे निकली अमृतमयी वाणीमें शुष्क हृदयोंमें भी भक्ति- रसका संचार करनेकी अद्‌भुत क्षमता है। ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे समन्वित उनका जीवन और उनके श्रीमुखसे प्रभु और प्रभुके प्रेमी पात्रोंके विमल चरित्रोंकी आनन्दवर्षिणी अद्‌भुत कथायें संस्कारी श्रोताको आनन्द-विभोर कर देती हैं। भूमिपतित श्रोताको मूर्धन्य वक्ता अपने उन्नत धरातलपर उठाकर उसमें अपनी जैसी निर्मलता भरनेका प्रयास करते हैं और उसकी मतिको ज्ञान और भक्तिके उज्ज्वल प्रकाशसे प्रकाशितकर भक्ति-भागीरथीमें स्नान कराते उसे आनन्दके धाम सर्वमंगलमय प्रभुके पावन पाद-पद्‌मोंमें ले जाते हैं।

जीवनको प्रशस्त और उन्नत करके परमात्माकी ओर प्रवृत्त करनेवाला भारतीय वाङ्‌मय बहुत विस्तृत है। उस समस्त वाङ्‌मयका अध्ययन कर पाना आजके व्यस्त मानवके लिए नितान्त दुष्कर है। संस्कृत शिक्षाके अभावमें आजकी शिक्षाका स्तर

वैसा नहीं रहा है जो सम्पूर्ण शास्त्रोंकी जानकारीकी इच्छा रहते हुए भी उसको योग्यता प्रदान कर सके। ऐसी स्थितिमें समस्त शास्त्रोंके सारसे परिपूरित इस भागवत ग्रन्थका आश्रय ही एकमात्र अवलम्ब है। फिर डोंगरेजो महाराजने तो इसके कथा-प्रसंगोंको रोचक दृष्टान्तोंसे और भी शिक्षाप्रद बना दिया है। इतनी व्यापक शिक्षा कहीं अन्यत्र किसी एक ग्रन्थमें मिलनी दुष्कर है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्यपाद श्रीडोंगरेजी महाराजकी गुजरातीमें मुद्रित श्रीमद्भागवत कथाका हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी - भाषी अधिकाधिक जनता इस दिव्य ग्रन्थका लाभ उठाकर अपने जीवन को समुन्नत कर सके—इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसके अनुवादक यद्यपि दिवंगत हो चुके हैं तो भी हम लोग उनके आभारी हैं। इसका पूर्व संस्करण मद्राससे हिन्दी भागवत-रहस्य प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित हुआ था। उस संस्करणकी भाषाकी अशुद्धियाँ प्रस्तुत संस्करणमें यथासम्भव सुधारनेकी चेष्टा की गई है, परन्तु फिर भी अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है, विशेषकर संस्कृत श्लोकोंमें। प्रस्तुत संस्करणमें प्रसंगवार विषय-सूची भी पाठकोंकी सुविधाके लिये दी जा रही है। कृपालु पाठकोंसे निवेदन है कि पाठ, अनुवाद या छपाईमें जहाँ भूल दिखलाई दें, कृपया वे ब्यौरेवार लिख दें, जिससे आगामी संस्करणमें यथायोग्य संशोधन कर दिया जाय। सहृदय पाठकोंसे प्रार्थना है कि असावधानतावश होनेवाली भूलोंके लिये वे क्षमा करें।

यह संस्था पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी अत्यन्त कृतज्ञ और उनकी आशीर्वादात्मक परम मांगलिक कृपाकी अभिलाषिनी है कि उन्होंने इस ग्रन्थके मुद्रण-प्रकाशनका अवसर प्रदानकर इसे इस माध्यमसे सत्संगका सुअवसर प्रदान किया। पूज्य श्रीमहाराजजी की आत्मीयता-परिपूरित कृपाके संबलसे सत्सङ्ग-जगत्की अन्य सेवा भी आगे बन सकों तो यह हमारा परम सौभाग्य होगा।

अन्तमें हम इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशनमें सद्विचार परिवार, अहमदाबादके अत्यन्त आभारी हैं। यह संस्था पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके प्रवचन-ग्रन्थोंके प्रचार प्रसारमें सदैव गहरो रुचि लेती रही है।

आप सबके सहयोगका आकांक्षी,

हितशरण शर्मा
सचिव
लोक - भारती

विषय - सूची

द्वितीय स्कन्ध

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

पञ्चम स्कन्ध

षष्ठ स्कन्ध

सप्तम स्कन्ध

अष्टम स्कन्ध

सप्तम स्कन्ध

अष्टम स्कन्ध

दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध)

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं,
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः,
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

[श्रीमद्भागवत १०-२१-५]

श्रीकृष्ण गोप-बालकोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उन्होंने मस्तकपर मोर-मुकुट धारण किया है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प, शरीरपर पीला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे बनी वैजयन्तीमाला पहनी है। रंगमंचपर अभिनय करनेवाले श्रेष्ठ नट जैसा अति सुन्दर वेष है। बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे गोप-बालक उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ यह वृन्दावनधाम उनके चरण-चिह्नोंसे अधिक रमणीय बना है।

श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरे शास्त्री

श्री गणेशाय नमः

श्री सरस्वत्यै नमः

श्री गुरुभ्यो नमः

ॐ नमः भगवते वासुदेवाय

श्रीकृष्णः शरणं मम

भागवतका उद्देश्य और उसका माहात्म्य

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

(माहात्म्य अ० १ श्लोक १)

जो जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके हेतु हैं, तथा जो तीनों प्रकारके तापके नाशकर्ता हैं ऐसे सच्चिदानंदस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम सब वंदन करते हैं ।

परमात्माके तीन स्वरूप शास्त्रोंमें कहे गए हैं—सत्, चित् तथा आनंद । सत् प्रगट रूपसे सर्वत्र है । चित् मौन तथा आनंद अप्रगट हैं । जड़ वस्तुओंमें सत् तथा चित् हैं परन्तु आनंद नहीं है ; जीवमें सत् और चित् प्रगटता है परन्तु आनंद अप्रगट रहता है अर्थात् अप्रगट-रूपसे रहता है, अव्यक्तरूपसे है । वैसे आनंद इसके अपने अन्दर ही है, फिर भी आनंदको मनुष्य (अपने) बाहर ही खोजता है । मनुष्य नारीदेह, धनसंपत्ति आदिमें आनन्द खोजता है ।

आनंद तो तुम्हारा अपना स्वरूप है । आनंद तो (तुम्हारे) अंदर ही है । इस आनंदको जीवनमें किस प्रकार प्रगट करें यही भागवतशास्त्र सिखाता है ।

दूधमें मक्खन रहता है फिर भी वह दीखता नहीं है । परन्तु दूधसे दही बनाकर, दही मंथन करनेपर मक्खन दीख जाता है । ठीक इसी प्रकारसे मानवको मनोमंथन करके आनंदको प्रगट करना है । दूधमें जैसे मक्खनका अनुभव नहीं होता है, इसी प्रकार ईश्वरका, कि जो सर्वत्र है, फिर भी उनका अनुभव नहीं होता है ।

जीव है तो ईश्वरका ही, तो भी उस ईश्वरको पहचाननेका यत्न करता नहीं है । इसी कारणसे इसे आनंद नहीं मिलता है । कोई भी कैसा भी जीव हो उसे ईश्वरसे मिलना है । नास्तिक भी (थक हारकर) अन्तमें शांति ही खोजता है ।

आनंदके अनेक प्रकार तैत्तरीय उपनिषद्में बताये गये हैं, परन्तु इनमेंसे दो मुख्य आनंद हैं—(१) साधनजन्य आनन्द (२) स्वयंसिद्ध आनंद ।

साधनजन्य आनंद अर्थात् विषयजन्य आनंद, कि जो साधन या विषयके नाश होनेपर उस आनंदका भी नाश होता है और होगा । योगियोंके पास कुछ भी (साधन या विषय) नहीं होता फिर भी उनको, आनंद है अर्थात् सदा आनंदमें रहते हैं, इससे सिद्ध होता है कि आनंद अन्दर है ।

सत्, चित्, आनंद ईश्वरमें परिपूर्ण हैं। परमात्मा परिपूर्ण सत्‌रूप, परिपूर्ण चित्‌रूप, परिपूर्ण आनंदरूप हैं।

परमात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्ण आनंद-स्वरूप हैं। बिना ईश्वरके संसार अपूर्ण है। ईश्वरका अंश जीवात्मा भी अपूर्ण है। जीवमें चिद् अंश है फिर भी परिपूर्ण नहीं है। मनुष्यमें ज्ञान आता है परन्तु वह ज्ञान स्थायी नहीं होता। श्रीकृष्ण परिपूर्ण ज्ञानी हैं। श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियोंके साथ बात करते समय भी वही ज्ञान था और जिस समय सारी द्वारिका आदिका नाश हो रहा था उस समय भी वही ज्ञान था। श्रीकृष्णका आनंद रानियोंमें या द्वारिकामें है ही नहीं। सबका विनाश हो रहा था तो भी श्रीकृष्णके आनन्दका विनाश नहीं होता है। कारण श्रीकृष्ण तो स्वयं आनन्दरूप हैं। सत् नित्य है, चित् ज्ञान है, चित्-शक्ति अर्थात् ज्ञान-शक्ति। मनुष्य अपने स्वरूपमें स्थित नहीं है, अतः इसे आनंद नहीं मिलता। मनुष्य जिस प्रकार बाहर विवेक रखता है वैसा घरमें रखता नहीं है। मनुष्य एकांतमें स्व-स्वरूपमें स्थित रहता नहीं, जब कि उत्पत्ति, स्थिति और संहारलीलामें श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं होता। श्रीठाकुरजी संहारको भी अपनी लीला ही मानते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और संहार श्रीठाकुरजीकी लीला है। परमात्मा तीनोंमें आनन्द मानते हैं और अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं।

जिसका ज्ञान नित्य टिकता है उसे ही आनंद मिलता है। वही आनंदमय होता है। जीवको यदि आनन्दरूप होना हो तो उसे सच्चिदानंदके आश्रय होना है। यह जीव जबतक परिपूर्ण नहीं होता तबतक उसे शांति नहीं मिलती है। आनंद नहीं मिलता है। संसारका प्रत्येक पदार्थ परिणाममें विनाशी होनेके कारण परिपूर्ण नहीं है। परिणाम स्वरूप यह तो भगवान् श्रीनारायण हैं। इस प्रभु नारायणको जो पहचानता है और उस नारायणके साथ मनको जो तदाकार करता है उसीका मन नारायणके साथ एक होता है। केवल वह जीवात्मा ही श्रीनारायण-रूप बनता है और वही परिपूर्ण होता है ; तभी जीवका जीवन सफल होता है। जीव जबतक अपूर्ण है तबतक इसे शांति नहीं मिलती है। जीव जब ईश्वरसे मिलता है और उसका अपरोक्ष साक्षात्कार करता है तभी जीव परिपूर्ण होता है। परमात्मा श्रीकृष्णके दर्शन पानेके लिए ही यह मनुष्यका अवतार है। मानव ही श्रीभगवान्‌का दर्शन कर सकता है। पशुको तो अपने स्वरूपका भी भान नहीं है, तो वह बेचारा परमात्माके दर्शन तो करे ही कैसे ? परमात्माके दर्शनके बिना जीवन सफल नहीं होता है। जो परमात्माका दर्शन करता है, उसीका जीवन सफल है। यह जीव अनेक वर्षोंसे (अनंत जन्मोंसे) भोग भोगता चला आ रहा है, फिर भी इसे शांति तो मिली नहीं। यह शांति तो तब मिले कि जब जीवको परमात्माका दर्शन मिले। श्रीकृष्ण परमात्माके दर्शनके बिना जीवको परिपूर्ण शांति नहीं मिलती है।

दर्शनके तीन प्रकार शास्त्रोंमें बताये गए हैं—

(१) स्वप्नमें प्रभुकी झाँकी होती है। यह हुआ साधारण दर्शन।

(२) मंदिर और मूर्तिमें परमात्माके दर्शन हों तो यह मध्यम दर्शन है।

(३) ईश्वरका अपरोक्ष दर्शन, यह उत्तम दर्शन है।

परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार जब होता है तब जीवन सफल होता है। वेदांतमें साक्षात्कारके दो प्रकार कहे गये हैं—(१) परोक्ष ज्ञान, (२) अपरोक्ष ज्ञान।

ईश्वर किसी एक स्थानपर है ऐसा जो माने वह परोक्ष साक्षात्कार है। ईश्वरके बिना कुछ नहीं है। ईश्वर ही सब कुछ है। मैं भी ईश्वरसे भिन्न नहीं हूँ, यह है ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार।

जिसे "मैं स्वयं ब्रह्म हूँ" (अहम् ब्रह्मास्मि) ऐसा ज्ञान (अनुभव) होता है उसे (अपरोक्ष) साक्षात्कार हुआ है ऐसा कहा जाता है (माना जाता है)। देखनेवाला ईश्वरको देखते ही ईश्वरमय बनता है तभी उसे ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है। ईश्वरका ही सबमें अनुभव करते करते जो (उसीमें) एकरूप हो जाता है (केवल) वही ईश्वरके परिपूर्ण स्वरूपको जान सकता है (पहचान सकता है) और वेदांतमें इसीको अपरोक्ष साक्षात्कार कहते हैं। ईश्वर जगत्में किसी एक स्थानमें है यह ज्ञान भी अपूर्ण है। ईश्वर सर्व व्यापक हैं, यह (केवल) एक मूर्तिमें या मंदिरमें रह नहीं सकते हैं (समा नहीं सकते हैं)। मंदिरमें प्रभुके दर्शन कर लेनेपर ज्ञानी पुरुष, जहाँ दृष्टि जाती है वहीं, भगवान्‌रूपका अनुभव करते हैं। मंदिरमें प्रभुके दर्शन करके बाहर आनेपर, प्रत्येकमें परमात्माका दर्शन करे, मन जहाँ जाये वहाँ ईश्वरका दर्शन करे, यही है ईश्वरका असाधारण दर्शन। जो परमात्मा मुझमें है वही सबमें है इसी प्रकार अखिल जगत् जिसे ब्रह्मस्वरूप दीखता है वही ज्ञानी है। सबमें परमात्माका अनुभव करते करते उसे अपने स्वरूपमें भी परमात्माका अनुभव होता है। परमात्माके परोक्ष दर्शनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता है परन्तु जीव जब परमात्माका अपरोक्ष दर्शन करता है तभी कृतार्थ होता है। ज्ञानी पुरुषोंको तो अपने स्वरूपमें भी श्रीभगवान् दीखते हैं। यही अद्वैत है। श्रीकृष्ण लीलायें इसीलिए हैं कि इन लीलाओंका चिंतन करती गोपियाँ, अपने स्वरूपमें भी परमात्माका अनुभव करती हैं। "लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।" गोपियोंको अपने स्वरूपका बिस्मरण हुआ है और कहती हैं, "मैं ही कृष्ण हूँ।" अपने (प्यारे) कृष्णका सबमें अनुभव करतीं गोपियां श्रीकृष्णमय बनी हैं। जिसे अपने अंदर परमात्माका दर्शन होता है, वही जीव परमात्मामें मिल जाता है। अपने अंदर जिसे परमात्मा दीख जाते हैं उसके बाद वह जीव ईश्वरसे जुदा नहीं रह सकता। वह ईश्वरमें मिल जाता है। यही श्री भागवतका फल है।

ज्ञानी ज्ञानसे परमात्माका (ब्रह्मका) अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं, जब कि वैष्णव (भक्त) प्रेमसे परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं।

ईश्वर जीवको अपनाकर जब अपने स्वरूपका दान करते हैं तभी वह जीव पूर्ण होता है। बिना ईश्वरके सारा संसार अपूर्ण है, जीव अपूर्ण है। अतः इसे शांति नहीं है—नारायण ही पूर्ण हैं। सच्ची शांति नारायणमें है। नर नारायणका अंश है, अतः नर तो नारायणमें ही समा जाना चाहता है। श्रीनारायणकी पहचान करानेवाला और श्रीनारायणमें लीन होनेका साधन यह श्री भागवत् शास्त्र है।

जीव नारायणका अंश है। इसे तो उसीमें मिल जाना है। इसके लिये शास्त्रोंने अनेक उपाय कहे हैं—(१) कर्ममार्ग, (२) ज्ञानमार्ग, (३) भक्तिमार्ग।

उपनिषद्से (उपनिषदोंके ज्ञानसे) ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है। परन्तु श्री व्यासजीने विचार किया कि उपनिषदोंकी भाषा गूढ है, सामान्य मनुष्य इसे समझ नहीं सकेंगे। उपनिषदोंका ज्ञान तो दिव्य है। परंतु अपने जैसे विलासी लोग वैसे दिव्य ज्ञानका अनुभव नहीं कर सकेंगे, कारण मनुष्योंके जीवन अति विलासी हैं। इसलिए ज्ञानमार्गसे जीव ईश्वरके पास जा सके यह असंभव है। अति वैराग्यके बिना ज्ञानमार्गमें सफलता नहीं मिलती। ज्ञानकी बुनियाद है वैराग्य। ऐसा अति वैराग्य प्राप्त करना कठिन है। श्रीशुकदेवजी महाराजको ऐसा (अति) वैराग्य प्राप्त हुआ था। जन्म होते ही उन्होंने वनकी ओर प्रयाण किया था और पितासे कहा था, "आप पिता नहीं हैं और मैं पुत्र नहीं हूँ।" वेद त्यागका उपदेश करते हैं। शास्त्र सब कुछ छोड़नेको कहते हैं। शास्त्र तो कहते हैं, "काम छोड़ो, क्रोध छोड़ो।" परंतु मनुष्य कुछ नहीं छोड़ सकता। जो साधारण पान-सुपारी भी नहीं छोड़ सकते हैं वे काम, क्रोध, लोभ किस प्रकार छोड़ेंगे? वे घरका त्याग किस प्रकार करेंगे? (सर्व साधारण) मनुष्यको तो कुछ करना नहीं है और वह कुछ छोड़ भी नहीं सकता। परंतु वेदांत शास्त्र तो कहता है कि सब कुछ छोड़कर, सर्वस्वका त्याग करके ईश्वरके पीछे पड़ोगे तभी तुम ईश्वरको पहचान सकोगे, उनसे मिल सकोगे। सर्वका त्याग, सर्वस्वका त्याग तो साधारण मनुष्यके लिए सुलभ नहीं है।

वेदके चार भाग हैं—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक, (४) भाष्य। वेदोंकी समाप्ति उपनिषदोंसे होती है अतः उसे वेदांत कहते हैं। आरण्यकमें उपनिषद्वाला भाग आता है। जिन ग्रन्थोंका चिंतन ऋषि करते हैं उन्हें आरण्यक कहते हैं। बंगलोंमें भोग-विलासोंमें रहनेवालोंका उपनिषदोंमें (उपनिषदोंके अध्ययनमें) अधिकार नहीं है। अपने जैसे संसारमें फँसे जीव उपनिषदोंके ज्ञानको पचा नहीं सकते। इन सब बातोंका विचार करके भगवान् व्यासजीने श्रीमद्भागवत-शास्त्रकी रचना की है। उपनिषदोंका बताया मार्ग अपने जैसोंके लिए सुलभ नहीं है। उपनिषदोंका तात्पर्य त्यागमें है।

जो पान-सुपारी, चाय नहीं छोड़ सकते और जो दो चार घंटे कथामें बैठें तो भी नसवार (छींकणी) की डिब्बी छोड़ नहीं सकते हैं, वे कामक्रोधादि विकारोंको कैसे छोड़ सकेंगे?

जो कामसुखका उपभोग करते हैं वे योगाभ्यास कर नहीं सकेंगे। भोगी यदि योगी होने जाएगा तो वह रोगी हो जाएगा। ज्ञान मार्गमें जिसका पतन होता है वह नास्तिक बनता है। योगमार्गमें जिसका पतन होता है वह रोगी बनता है। भक्ति मार्गमें जिसका पतन होता है वह आसक्त बनता है। कलियुगी मनुष्य योगाभ्यास नहीं कर सकता। इस भागवत शास्त्रकी रचना कलियुगके जीवोंके उद्धार करनेके लिए की गई है।

श्रीमद्भागवतमें एक नवीन मार्गदर्शन, कराया गया है। "हम घरवार और धंधा छोड़ नहीं सकते हैं" ऐसा कहनेवालोंको भागवतशास्त्र कहता है, "निराश न होना, सब कुछ छोडकर जंगलमें जानेकी जरूरत नहीं है। केवल जंगलमें जानेसे ही आनंद मिलता है ऐसा नहीं है।" जीव जब सब प्रकारकी प्रवृत्ति छोड़कर निवृत्तिमें बैठता है तब भी मनमें प्रवृत्तिके विचार आते हैं।

श्रीभगवतशास्त्रका आदर्श दिव्य है। गोपियोंने घर नहीं छोड़ा। गोपियाँ घरका काम करती थीं। उन्होंने स्वधर्मका त्याग नहीं किया। वे वनमें नहीं गईं। फिर भी वे श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर सकी हैं। श्रीभागवत-शास्त्र ऐसा मार्गदर्शन कराता है कि योगीको जो आनन्द समाधिमें मिलता है, वही आनंद आप घरमें रहते हुए भी प्राप्त कर सकते हैं। घरमें रहकर भी आप प्रभुको प्रसन्न कर सकते हैं, प्राप्त कर सकते हैं। परंतु आपका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय हो जाना चाहिए। गोपियोंका प्रत्येक व्यवहार ही भक्तिमय बन गया था।

घरमें रहकर भी श्रीभगवान्‌का दर्शन हो सकता है। गोपियोंको घरमें ही परमात्माका दर्शन हुआ है। गोपियाँ यही मानती थीं कि जहाँ हम जाती हैं, हमारा श्रीकृष्ण हमारे साथ है। व्रजमें ऐसी गोपियोंके दर्शन करके उद्धवजीका ज्ञानगर्व उतर गया था। गोपियोंके सत्संगके बाद उद्धवजी कहने लगे—

वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
तासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

नंद बाबाके व्रजमें रहनेवाली इन गोपियोंकी चरणरजको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ और इसे मस्तक पर चढ़ाता हूँ। अरे, इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंके संबंधमें जो गुणगान किए हैं वे तो तीनों लोकोंको पवित्र कर रहे हैं और सदा सर्वदा पवित्र करते रहेंगे।

गोपियाँ सबमें श्रीभगवान्‌को निहारती हैं। वे कहती हैं—इस वृक्षमें, लतामें, फूलमें, फलमें मुझे मेरा प्रभु दीखता है। मेरा कृष्ण तो मुझे छोड़कर जाता ही नहीं है। गोपियोंको घरमें ही श्रीपरमात्माका साक्षात्कार हुआ है। श्रीभागवतमें कहा है कि घरमें रहो, अपने व्यवहार करो, फिर भी परमात्माको प्राप्त कर सकोगे। घरमें रहना पाप नहीं है, परन्तु घरको मनमें रखना पाप है। सबको साधु होनेकी जरूरत नहीं। यदि आप सब संन्यास ले लेंगे तो साधु-संन्यासिओंका स्वागत कौन करेगा? उनका सम्मान कौन करेगा?

गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति ऐसी दिव्य है कि उनको घरमें रहते हुए भी प्रभुकी प्राप्ति हुई है। श्रीकृष्णरूप बनी हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णमें जिसका मन मिलेगा वह श्रीकृष्णरूप हो जायगा। ऐसे अलौकिक भक्तिमार्गका भगवान् व्यास नारायण इस भागवतशास्त्रमें वर्णन करेंगे और इसी भक्तिद्वारा परमात्माका साक्षात्कार होगा।

श्रीमद्भागवत आपके प्रत्येक व्यवहारको भी भक्तिमय बना देगा। भागवत व्यवहार और परमार्थका समन्वय कर देगा। आपको घरमें भी वही आनंद देगा कि जो आनंद योगी वनमें बैठकर भोगते हैं। योगी समाधिमें जैसा आनन्द पाते हैं वैसा आनन्द गृहस्थको भी प्राप्त हो सके, इसलिए भागवतशास्त्रकी रचना की गई है। संसारके विषय-सुखोंके प्रति वैराग्य हो और प्रभुके प्रति प्रेम जागे—यही श्रीभागवतकी कथालीलाओंका उद्देश्य है।

भागवत अर्थात् भगवान्‌को मिलने-मिलानेका साधन। संतोंका आश्रय लेनेवाला संत बनता है, भागवतका आश्रय लेनेवाला भगवान् होता है।

भक्ति केवल मन्दिरमें नहीं अपितु जहाँ भी बैठ जाओ वहीं हो सकती है। इस भक्तिके लिए कोई देश (स्थान) या काल (समय) की जरूरत नहीं है। भक्ति तो चौबीसों घंटे करनी है। भक्तिके काल (समय) और भोगके काल (समय) ऐसा जो भेद रखता है वह भक्ति नहीं कर सकता है। भक्ति सतत करो, निरंतर करो। चोबीसों घंटे ब्रह्मसंबंध बनाए रखो। हमेशा ध्यान रखो, सदा सावधान रहो कि मायाके साथ संबंध न हो जाय।

जब वसुदेवजीने श्रीकृष्णको मस्तकपर पधराया तब उनका ब्रह्मसंबंध हुआ, जिससे उनके हाथ-पैरकी बेड़ियाँ टूट गईं। परन्तु योगमायाको लेकर जब वापस पहुँचे तो फिर बंधनमें पड़ गए। वसुदेवजीका ब्रह्मसंबंध तो हुआ परन्तु वे इसको टिकाए न रख सके। ब्रह्मसंबंधको टिकाये रखना चाहिए। ईश्वरका स्मरण छोड़ना नहीं चाहिए। वैष्णव (भक्त) भगवान्‌के साथ खेलते हैं। जीव जो क्रिया करता है (जब वह सब) ईश्वरके लिए करता है तो उसकी प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाती है। भक्तिका विशेष संबंध मनके साथ है और जिससे भक्ति मनसे नहीं होती है उसे तनसे सेवा करनेकी जरूरत है। मानसिक सेवा श्रेष्ठ है। साधु-संत तो मानसिक सेवामें तन्मय रहते हैं। यदि ऐसी सेवातन्मयता हो जाय तो जीव कृतार्थ होता है। भक्ति-मार्गकी आचार्या गोपियाँ हैं। उनका आदर्श मन और आँखोंके सामने रखो। ज्ञानमार्गसे, योगमार्गसे जिस ईश्वरके आनन्दका अनुभव होता है, उसी आनंदका अनुभव इस भक्तिसे सहज प्राप्त होता है। ज्ञानी योगियोंको जो ब्रह्मानंद प्राप्त होता हैं वही इस साधारण जीवात्मा:को भी प्राप्त हो ऐसे उद्देश्यसे श्रीभागवतकी रचना की गई है। इसमें तो भगवान्‌का स्वरूप बताया है। भगवान् कैसे हैं?

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।

परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है—तापत्रयविनाशाय। दुःख मनका धर्म है, आत्माका नहीं। मनुष्य दुःखमें ईश्वरका स्मरण करता है जिससे उसका परमात्माके साथ अनुसंधान होता है, श्रौर उसे आनन्द मिलता है। जीवका स्वभाव सुन्दर नहीं है। परमात्माका शरीर तो हो सकता है कि कभी सुन्दर न भी हो। कूर्मावतार, वराह अवतारके शरीर सुन्दर नहीं थे। परन्तु श्रीपरमात्माका स्वभाव सुन्दर, अतिशय सुन्दर है। दूसरोंके दुःख दूर करनेका परमात्माका स्वभाव है। इसीलिए तो श्रीभगवान् वंदनीय हैं।

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—तीनों प्रकारके तापोंके नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी हम वंदना करते हैं। बहुत लोग पूछते हैं कि वंदना करनेसे क्या लाभ है? वंदना करनेसे पाप जलते हैं। श्रीराधाकृष्णकी वंदना करेंगे तो आपके सारे ताप नष्ट होंगे। परन्तु वंदना अकेले शरीरसे नहीं, मनसे भी करो। अर्थात् श्रीराधाकृष्णको हृदयमें पधराओ और उनको प्रेमसे नमन करो। नमन प्रभुको बंधनमें डालता है। दुःखमें जो साथ दे वह ईश्वर है और सुखमें जो साथ दे वह जीव है। ईश्वर सर्वदा दुःखमें ही साथ देते हैं। अतः ईश्वर वंदनीय हैं। ईश्वरने जिस जिसको सहायता दी है उसको दुःखमें ही सहायता दी है। पांडव जब तक दुःखमें थे तब तक श्रीकृष्णजीने उनकी मदद की। पर पांडव जब सिंहासनपर बैठे तब श्रीकृष्ण भी वहाँसे चले गए। ईश्वर जिसे भी मिले हैं, दुःखमें ही मिले हैं। सुखका साथी जीव है और दुःखका साथी ईश्वर है इस बातका सतत मनन करो। मनुष्य धन पानेके लिए जितना

प्रयत्न करता है (और दुःख सहन करता है) उससे भी कहीं कम प्रयत्न यदि ईश्वरके लिए भी करे तो उसे ईश्वर अवश्य मिलेंगे। कन्हैया तो बिना बुलाए गोपियोंके घर जाता था, परंतु वह मेरे घर क्यों नहीं आता है ऐसा कभी विचार भी किया है ? आप भी निश्चय कीजिए कि मैं भी ऐसे सत्कर्म करूँगा कि कन्हैया मेरे घर भी आएगा। श्रीभगवान्के आगे हाथ जोड़ना, मस्तक नवाना इसका क्या अर्थ है ? हाथ क्रियाशक्तिका प्रतीक है। हाथ जोड़नेका अर्थ है कि मैं अपने इन हाथोंसे सत्कर्म करूँगा। मस्तक नवानेका अर्थ है—मैं अपनी बुद्धि-शक्तिको, हे नाथ ! आपको अर्पित करता हूँ। बंदना करनेका अर्थ है—अपनी क्रियाशक्ति और बुद्धिशक्ति श्रीभगवान्को अर्पित करनी चाहिए। श्रीभगवान्को वंदन करनेसे पाप-तापका नाश होता है। निर्भय होना हो तो प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णकी वंदना करो। मेरे भगवान् दयाके सागर हैं। केवल वाणी और शरीरसे नहीं, परंतु हृदयसे भी वंदना करो। हृदयसे वंदना करनेसे श्रीभगवान्के साथ ब्रह्मसंबंध होता है।

जब भी घरसे बाहर निकलो, श्रीठाकुरजीकी वंदना करके ही निकलो। ईश्वर प्रेम चाहते हैं और प्रेम ही देते हैं। ईश्वर यही मानते हैं कि यह मेरा है और मुझसे भीख माँगता है। वंदना करनेसे ईश्वरके साथ संबंध होता है। इस जीवका स्वभाव ऐसा है कि वह वंदना नहीं करता है। घरमें प्रवेश करते ही पत्नी घरमें न हो तो अपने बालकसे पूछता है कि तेरी माता कहाँ गई ? परन्तु इसकी क्या आवश्यकता है। वह बाहर गई हो तो तू बैठकर राम राम कर। बाहरसे घरमें आओ तो उस समय भी ईश्वरकी वंदना करो। मार्गमें चलते हुए भी वंदना करो। परमात्मा श्रीकृष्णकी आरंभमें बंदना करे, यह जीव जो प्रेमसे प्रणाम करे परमात्माको, तो उस पर श्रीपरमात्मा प्रसन्न होते हैं। यह जीव चाहे और कुछ न करे, इतना तो करे ही कि श्रीपरमात्माको बारबार वंदन करे। वंदना करो तो सद्भावसे करो। प्रभुके मुझपर अनंत उपकार हैं। श्रीपरमात्माने हम पर कितने उपकार किये हैं। बोलने और खानेको जीभ दी है। देखनेके लिए आँखें दी हैं। सुननेके लिए कान दिये हैं। विचार करनेके लिए मन दिया है। बुद्धि और विचार-शक्ति भी परमात्माने ही दी है। ईश्वरके उपकारोंको याद करो, याद रखो और कहो कि हे भगवन्, मै आपका ऋणी हूँ। ऐसी उत्तम भावनाके साथ वंदना करो। कहो कि मेरे परमात्मा तूने मुझपर कृपा की है। तेरी कृपासे मैं सुखी हूँ। मेरे पाप तो अनन्त हैं, परंतु हे नाथ ! आपकी कृपाएं भी अनंत हैं।

श्रीपरमात्माकी वंदना उत्तम भावपूर्वक करें तो वह अवश्य सफल होती है।

विचार करो कि प्रभुने मुझे जो दिया है, क्या मैं उसके योग्य हूँ। नाथ, मैं तो योग्य नहीं हूँ, मैं तो पापी हूँ फिर भी श्रीठाकुरजीने मुझे संपत्ति और प्रतिष्ठा जगत्में दी है। जीव योग्य नहीं है फिर भी जीवको प्रभुने अधिक दे रखा है। नाथ, आपके उपकार अनंत हैं। नाथ, मैं इसका बदला नहीं चुका सकूँगा। मैं तो प्रभु, आपकी केवल वंदना ही करता हूँ। वंदन करनेसे अभिमानका बोझ (भार) कम होता है। श्री ठाकुरजीका बिलकुल वजन (भार) नहीं है कारण उनमें कोई अभिमान नहीं है। श्रीकृष्ण तो बोडाणाकी पत्नीकी नाककी नथसे ही तुल गए थे। श्रीभागवतका आरंभ भी वंदनासे किया गया है और वंदनासे ही समाप्ति भी की गई है।

नमामि हरिं परम् ।

अकेले श्रीकृष्णकी वंदना नहीं की है अपितु कहा है—"श्रीकृष्णाय राधाकृष्णाय वयं नुमः ।" श्रीजीका अर्थ है राधाजी । श्रीराधाजीके साथ विराजमान श्रीठाकुरजीकी मैं वंदना करता हूं । परमात्माकी वंदना कर लेनेके बाद श्रीमद् भागवतके वक्ता श्रीशुकदेवजीकी वंदना की गई है । वंदन करके तुम्हारी क्रियाशक्ति और बुद्धिशक्ति अर्पण करनेके पश्चात् कुछ अघटित कार्य या विचार न किया जाय ।

पढ़ने और विचारनेकी अपेक्षा जीवनमें आचरण अधिक श्रेष्ठ है ।

वेदोंका अंत नहीं और पुराणोंका पार नहीं है । मनुष्य जीवन लघु है और शास्त्रका कोई पार नहीं है । परन्तु उस एकको अर्थात् ईश्वरको जान लोगे तो सब कुछ जान जाओगे । कलियुगका मनुष्य कम समयमें भी श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर सकता है । यह है जो श्रीभागवतमें बताया है ।

सूतजी कहते हैं—सात ही दिनोंमें राजा परीक्षितने सद्गति प्राप्त की थी जो मैंने अपनी आंखोंसे देखा है । परीक्षितजीका उद्धार हुआ । फिर भी हम सबका उद्धार क्यों नहीं होता है ? हमें परीक्षित जैसे श्रोता होना चाहिये और वक्ता भी श्री शुकदेवजी जैसा बने तो उद्धार हो जाय । हम सब परीक्षित ही हैं । यह जीव गर्भमें आया और जिसने मेरी रक्षा की वह चतुर्भुज स्वरूपवाला पुरुष कहाँ है ? कहाँ है ? ऐसा कहते कहते ईश्वरकी खोजमें निकले वह जीव परीक्षित है । परीक्षित अर्थात् श्रीभगवान्‌के दर्शन करनेके लिए आतुर हुआ है ऐसा जीव । परीक्षितजीकी आतुरताका एक कारण था कि उन्हें मालूम हो गया था कि सात दिनोंमें (सातवें दिन) मेरी मृत्यु होनेवाली है । तक्षक नाग मुझे डसनेवाला है । जीवमात्रको तक्षक नाग डसनेवाला है । तक्षक कालका स्वरूप है ऐसा भागवतके एकादश स्कंधमें कहा है । कालरूपी तक्षक किसीको नहीं छोड़ता । वह सातवें दिन डसता ही है । सप्ताहके कुल सात दिन हैं । इन सात दिनों (वार) मेंसे किसी एक वार (दिन) को यह काल अवश्य डसेगा ही । इन सात वारोंमेंसे कोई एक वार हमारे लिए भी निश्चित तो है ही । तो फिर परीक्षितजीकी तरह कालको मत भूलो । कोई भी जीव क्यों न हो, उसे कालका भय तो लगताही है । मृत्युका भय केवल मनुष्यको है ऐसा नहीं है । ब्रह्माजीको भी कालका भय लगता है ।

श्रीभागवत मनुष्यको निर्भय बनाता है । भागवतमें लिखा है कि ध्रुवजी मृत्युके सिर पर पांव रखकर स्वर्गमें गये थे । परीक्षित राजा समाप्तिमें बोले हैं कि मुझे अब कालका भय नहीं रहा है, मुझे कालका भय नहीं लगता है । भागवत सुनकर परमात्माके साथ प्रेम करनेपर उसे कालका भय नहीं लगता है । जो भागवतका आश्रय लेते हैं वे निर्भय बनते हैं ।

लोग मृत्युको अमंगल मानते हैं, परन्तु यह मृत्यु अमंगल नहीं है । मृत्यु (काल) परमात्माकी सेवक है अतःमंगल भी है । श्रीठाकुरजीको लगता है कि मेरा बालक अब योग्य बना है तो वे मृत्युको आज्ञा देते हैं कि उस जीवको पकड़कर ले आओ । जिसे पाप करनेका विचार भी नहीं आता है उसका मृत्यु मंगलमय होता है । जीवनमें मनुष्य मृत्युका सच्चा भय नहीं रखता है इसीसे उसका जीवन भी बिगडता है और मरण भी । अंतकालमें मनुष्यको जो घबराहट

होती है वह कालके डरसे नहीं, किंतु अपने किए हुए पापोंकी यादसे होती है। पाप करते समय तो मनुष्य डरता नहीं है। डरता है तब जब कि पापोंकी सजा भुगतनेका समय आता है। व्यवहारमें लोग एक दूसरेका भय रखते हैं। मुनीम सेठका भय रखता है, कारकुन अधिकारीका, आदि। जब कि मनुष्य किसी भी दिन ईश्वरका भय नहीं रखता है, इसीलिए वह दुःखी होता है।

भागवत मनुष्यको निर्भय बनाती है। श्रीभागवतका आश्रय लेनेसे निर्भयता प्राप्त होती है। मैं अपने परमात्मा श्रीकृष्णका अंश हूँ, मैं भगवान्का हूँ। कुछ पैसे जेबमें आ जाएँ तो मनुष्यको हिम्मत आ जाती है; तो जब आप परमात्माको हमेशा साथ ही रखकर फिरेंगे तो आप निर्भय बन ही जाएँगे, इसमें क्या आश्चर्य है। भय बिना प्रभुमें प्रीति होती ही नहीं है। कालका भय रखो। कालके, मृत्युके भयसे प्रभुमें प्रीति होती है। अतः कालकी, पापकी, धर्मकी भीति रखो। मनुष्य यदि सदा कालका भय रखे तो इससे पाप नहीं होगा। निर्भय होना हो तो पाप छोड़ दो। श्रीभागवत शास्त्र हमें निर्भय बनाता है। मनुष्यको और किसीका भय चाहे न लगता हो फिर भी कालका भय तो इसे लगा ही रहता है। कामका नाश करके भक्ति और प्रेममय जीवन जो जीता है, वह कालपर भी विजय पाता है। कालको जो मारता है, वह कालकी मार नहीं खाता। कामकी, कालकी मारसे छूटना हो तो परमात्माके साथ अतिशय प्रेम करना होगा। ईश्वरसे प्रेम किये बिना ये काम, क्रोध आदि विकार जाते नहीं हैं। परमात्माके साथ प्रेम करेंगे तो कालका भय लगेगा ही नहीं। ध्रुवजी मृत्युके सिरपर पांव रखकर वैकुंठ धाममें गए थे। काल ही तक्षक नागका स्वरूप है। काल-तक्षक किसीको नहीं छोड़ता। किसी पर भी इस कालको दया नहीं आती। अतः इसी जन्ममें ही इस कालपर विजय प्राप्त करो। जब जन्म होता है, उसी समय ही मृत्युकाल और मृत्युकारण निश्चित किए जाते है।

पाप करनेमें मनुष्य जितना सावधान (होशियार) रहता है उतना पुण्य करनेमें नहीं रहता है। पाप प्रकट हो गया तो जगत्में अप्रतिष्ठित हूँगा ऐसा सोचकर पापको एकाग्रचित होकर वह करता है। और इसी कारणसे अंतकालमें उसे पापोंकी याद आती है। इसीसे अंत-कालमें जी घबड़ाता है। उसे अपने किए हुए पाप प्रत्यक्ष दीखते हैं। वह समझता है कि मैंने मरनेकी तो कोई तैयारी की ही नहीं। मेरा अब क्या होगा? मनुष्य और तो सभी कामोंके लिए तैयारी करता है, परंतु मरनेकी तैयारी करता ही नहीं है। जिस प्रकार शादीकी तैयारी करते हो उसी प्रकार (खुशीसे) धीरे धीरे मरनेकी भी तैयारी करो। मौत के लिए सदा सावधान रहो। मृत्यु अर्थात् परमात्माको बीते हुए जीवनका हिसाब देनेका पवित्र दिन। श्रीभगवान् पूछेंगे—मैंने तुम्हें आँखें दी थीं, तुमने उनसे क्या किया? कान दिए थे, तुमने उनका क्या उपयोग किया? तुम्हें तन और मन दिए थे तो उनका तुमने क्या किया? इस हिसाबमें जो गड़बड़ होगी तो घबराहट होगी ही। साधारण इनकम टैक्स ऑफीसरको हिसाब देना होता है तो भी मनुष्यको घबराहट होती है और वह ठाकुरजीकी प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, मैंने तो अलग अलग बही बना रखी है, परंतु तुम मेरा ध्यान रखना। एक वर्षके हिसाब देनेमें इतनी घबराहट होती है तो फिर सारे जीवनका हिसाब देते समय क्या दशा होगी? प्रभुने हमें जो दिया है उसका हिसाब देना ही पड़ेगा।

मृत्युको उज्ज्वल करना हो तो प्रतिक्षणको उजागर करो। आंखका सदुपयोग करो, धनका सदुपयोग करो, वाणीका सदुपयोग करो तो मृत्यु उज्जवल होगी। प्रतिक्षण जो ईश्वरका स्मरण करता है उसीकी मृत्यु सुधरती है। श्रीभागवत मृत्यु सुधारती है। रोज स्मशानमें जानेकी जरूरत नहीं है, परंतु स्मशानको रोज याद करनेकी जरूरत है। श्रीशंकर स्मशानमें विराजते हैं। वे ज्ञानके देवता होनेसे स्मशानमें विराजते हैं। स्मशान तो ज्ञानभूमि है। स्मशानमें समभाव जागते हैं, अतः ज्ञान प्रगट होता है। इसीलिए स्मशान ज्ञानभूमि है। जहाँ समभाव जागे उसीका नाम स्मशान। समभावका अर्थ है असम भावका अभाव। समभाव ही ईश्वरभाव है। मनुष्य सबमें समभाव रखकर व्यवहार करे तो उसका मरण सुधरता है। सर्वमें (समभाव) ईश्वरभाव जागे तो जीव दीन बने (दैन्यभाव आए)। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन भी दैन्य (भाव) ही है। मनुष्यको अमर होना है। श्रीमद्भागवतकी कथा अमर है। अमरकथाका जो आश्रय लेता है वह अमर हो जाता है। राजा परीक्षित और शुकदेवजी अमर हैं। श्रीभागवतकी कथा आपको अमर बनाती है और भक्तिरसका दान करती है। भक्तिसे ही मीराबाई द्वारिकाधीशमें और गौरांग प्रभु जगदीशमें सदेह समा गए और अमर हो गए। श्रीभागवतकी कथा सुनो तो अनायास ही समाधि लग जाती है। योग और तपके बिना ही श्रीभगवान्से मिलनेका कोई साधन है तो वह है भागवतशास्त्र।

भागवतके भगवान् इतने सरल हैं कि वे सबके साथ बोलनेको तैयार हैं, जब कि वे तो किसी अधिकारीके साथ ही बोलते हैं। भागवत शास्त्र मनुष्यको निःसंदेह बनाता है। इस कथामें सब आ जाता है— बुद्धिका परिपाक, ज्ञानका परिपाक, जीवनका परिपाक आदि हो जाने पर भगवान् व्यासजीने इस ग्रंथकी रचना की है। भगवान्के नामका जाप करते हुए प्रेमसे इस कथाका श्रवण करो। तुम निःसंदेह हो जाओगे। भागवत नारायणस्वरूप है। परिपूर्ण है। इसके श्रवणसे आस्तिकको मार्गदर्शन मिलेगा और नास्तिक होगा वह आस्तिक बनेगा। शुकदेवजी जैसे आत्माराम मुनिने सर्वस्व छोड़ा, परंतु वे भी इस कथाको नहीं छोड़ सके। आत्माराम कोटिके महात्मा भी इस श्रीकृष्ण कथामें मस्त बने हैं, पागल बने हैं। सिद्ध, आस्तिक, नास्तिक, पामर प्रत्येकको यह कथा जीवनका दान करती है। व्यवहारका ज्ञान भी भागवतमें आयेगा। भागवतमें ज्ञानयोग, कर्मयोग, समाजधर्म, स्त्रीधर्म, आपद्धर्म, राजनीति आदिका ज्ञान भरा है। यह एक ऐसा शास्त्र है कि जिसके श्रवण और मनन करने पर कुछ जानने जैसा बाकी रहता ही नहीं है। साधकको साधनमार्गमें कैसे कैसे संशय आते हैं इन सबका विचार करके व्यास भगवान्जीने यह कथा रची है। व्यासजी ऐसा मानते हैं कि जो कुछ मेरे इस भागवतमें नहीं है, वह जगत्के अन्य किसी ग्रंथमें भी नहीं है। जो भागवतमें है केवल वही अन्य ग्रंथोंमें है।—यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्। भागवतशास्त्र यह परिपूर्ण नारायणका स्वरूप है, अतिशय दिव्य है।

व्यासजीके आश्रममें गणपतिजी महाराज प्रगट हुए। व्यासजीने कहा—'मुझे भागवत-शास्त्रकी रचना करनी है, परंतु इसे लिखेगा कौन?' गणपतिजीने कहा—'बहुत खुश! मैं लिखनेको तैयार हूँ। परंतु मैं एक क्षण भी खाली नहीं बैठूंगा।' श्रीगणपतिजीका वाहन तो चूहा है। चूहेका अर्थ है उद्योग। जो उद्योग पर बैठता है उसकी सिद्धि और बुद्धि दासी बनती हैं।

सतत (निरंतर) उद्योग करोगे तो ऋद्धि-सिद्धि आपकी दासी बनेंगी। एक क्षण भी ईश्वरके चिंतन बिना न बैठो। प्रत्येक कार्यके प्रारंभमें गणपतिकी पूजा की जाती है। गणपतिजी विघ्नहर्ता हैं। गणपतिका पूजन करनेका अर्थ है जितेन्द्रिय होना। गणपतिजी कहते हैं कि मैं खाली (बिना कामके) बैठता नहीं हूँ। जो हमेशा कार्यरत रहता है उसका अमंगल नहीं होता। श्रीगणपतिजी बने हैं लेखक और व्यासजी बने हैं वक्ता। श्रीगणपतिजीने कहा है कि मैं तो एक क्षण भी खाली नहीं बैठूंगा। आपको चौबीसों घंटे कथा कहनी होगी। तब व्यासजीने कहा, मैं जो कहूँ वह योग्य है या अयोग्य उसका पहले विचार करें और विचारपूर्वक लिखें। सौ श्लोक हो जाने पर व्यासजी एक ऐसा कूट श्लोक कह देते थे कि जिससे गणपतिको विचार करनेमें समय-लग जाता था और इतने समयमें व्यासजी अपने अन्य काम पूरे कर लेते थे।

देवताओंको अपरोक्षता बहुत प्रिय है। लिखा है कि राजा चित्रकेतुकी एक करोड़ रानियाँ थीं। संसारके विषयोंको जो मनमें रखता है वही चित्रकेतु है। संसारके सर्व चित्र जिसके मनमें बैठ गए हों वही चित्रकेतु है। ऐसा मन जब विषयोंमें तन्मय हो जाता है तभी वह मन एक करोड़ रानियोंके साथ रमण करता है। ऐसा इसका अर्थ है (कि चित्रकेतुकी करोड़ रानियाँ थीं)। श्रीभागवतमें अनेकों बार ऐसे प्रसंग आते हैं जिनका श्रोता और वक्ता विचार करें कि उनका लक्ष्यार्थ क्या है। इस बातका हम भी विचार करें इसके लिए व्यासजीने अतिशयोक्ति भी की है और लिखा है। जैसे कि, हिरण्याक्षके मुकुटका अग्रभाग स्वर्गसे स्पर्श करता था और उसके शरीरसे दिशाएँ आच्छादित हो जाती थीं। लोभ दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है, यह तत्त्व बतानेका उनका (इस कथनसे) उद्देश्य था।

सत्कर्ममें विघ्न आते हैं, इसलिए सात दिनकी कथाका क्रम बताया गया है। अन्यथा सूतजी और शौनकादिकी कथा एक हजार दिवस चली थी। विघ्न न आए इसलिए व्यासजी सर्वप्रथम 'श्रीगणेशाय नमः' कहकर गणपति महाराजकी वंदना करते हैं। इसके पश्चात् सरस्वतीजीकी वंदना करते हैं। सरस्वतीकी कृपासे मनुष्यमें समझ आती है। फिर सद्गुरुकी वंदना करते हैं, और इसके बाद श्रीभागवतके प्रधान देव श्रीकृष्णकी वंदना करते हैं। मैंने श्रीभागवतशास्त्रकी रचना तो कर दी परंतु इस ग्रंथका प्रचार कौन करेगा? व्यासजीने वृद्धावस्थामें इस ग्रंथकी रचना की है। अतः वे स्वयं तो इस ग्रंथका प्रचार कर नहीं पाएंगे। वृद्धावस्थामें इस ग्रंथकी रचना कर लेने पर उनको चिंता हुई। यह शास्त्र अब मैं किसको दूं? श्रीभागवत-शास्त्र मैंने मानव समाजके कल्याणके लिए रचा है। श्रीभागवतकी रचना करके मैंने कलम रख दी है। अबतक मैं बहुत बोला, मैंने बहुत कुछ लिखा, अब मैं ईश्वरके साथ अपना संबंध जोड़ूंगा। मेरा जीव जो प्रभुसे अलग हो गया था वह श्रीकृष्णके संमुख हो इसलिए मैंने भागवत-शास्त्र बनाया है। भागवत यह प्रेमका शास्त्र है। इस प्रेमशास्त्रका प्रचार तो वही कर सकता है जो अतिशय विरक्त हो। श्रीकृष्णको छोड़कर अन्यके साथ प्रेम करनेवाले इस कथाके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा कौन मिलेगा? संसार सुख भोगनेके बाद तो बहुतोंको वैराग्य आता है, परंतु जन्मसे जिसने वैराग्य अपनाया है वैसा कौन मिलेगा? किसी योग्य पुत्रको यह ज्ञान दे दूं कि जिससे वह जगत्का कल्याण करे—ऐसा विचार करके वृद्धावस्थामें भी व्यास-जीको पुत्रेच्छा जगी। भगवान् शंकर वैराग्यके स्वरूप हैं। शिवजी मुझपर कृपा करें और मेरे यहाँ

पुत्ररूपसे आएँ तभी यह कार्य हो सकता है। रुद्रका जन्म है, परंतु महारुद्रका जन्म नहीं है। भगवान् शिव परब्रह्म हैं। उनका जन्म नहीं है। अब शिवजी महाराज जन्म धारण करें तो इस भागवतका प्रचार करें। भागवतशास्त्रका प्रचार तो शिवजी ही कर सकते हैं, कारण उनमें ही सम्पूर्ण वैराग्य है। जन्मसे जिसे वैराग्य हो वही श्रीभागवतका प्रचार कर सकता है। श्रीशुकदेवजीमें सम्पूर्ण वैराग्य है। व्यासजीने श्रीशंकरकी आराधना की। शिवजी महाराज प्रसन्न हुए। व्यासजीने मांगा, "समाधिमें जो आनंद आप भोगते हैं, वही आनंद जगत्‌को देनेके लिए आप मेरे घर पुत्ररूपसे पधारिए।" भगवान् शंकरको तो इस संसारमें आना प्रिय नहीं लगता है। संसारमें आनेपर माया गले लग जाती है। कोयलेकी खदानमें जानेपर हाथ-पैर काले होते ही हैं। बिना काले हुए नहीं रह सकते। व्यासजीने कहा, "महाराज, आपको तो संसारमें आनेकी कोई जरूरत नहीं है, परंतु अनंत जीवोंके कल्याण करनेके लिए आप कृपा कीजिए और आइए। आपको माया कैसे प्रभावित कर सकती है? शिवजीने विचार किया कि समाधिमें मैं जिस आनंदका अनुभव करता हूँ, यदि वैसा आनंद जगत्‌को न दूँ तो मुझे स्वार्थी कहा जाएगा। समाधिके आनंदका दान मुझे जगत्‌को करना चाहिए। ऐसा विचार करके शिवजी महाराज अवतार लेनेको तत्पर हो गए। श्रीशुकदेवजी भगवान् शिवजीके अवतार थे, अत: वे जन्मसे ही पूर्ण निर्विकार थे। जो जन्मसे विरक्त होता है वही सोलह आने वैरागी कहलाता है।

ज्ञानी पुरुष मायाका संग नहीं रखते हैं। ज्ञानी पुरुष मायासे सदा असंग रहनेका प्रयत्न करते हैं। अतः वैष्णव भक्त मायामें भी ईश्वरका अनुभव करते हैं। श्रीशुकदेवजीके जन्मकी कथाएँ दूसरे पुराणोंमें भी हैं।

श्रीशुकदेवजी सोलह वर्ष पर्यन्त माताके पेटमें रहे थे। माँके पेटमें सोलह वर्ष तक परमात्माका ध्यान किया है। श्रीव्यासजीने पूछा कि तुम बाहर क्यों नहीं आते हो? श्रीशुकदेवजीने उत्तर दिया, "मैं संसारके भयसे बाहर नहीं आता हूँ। मुझे मायाका भय लगता है।" इसपर श्रीद्वारिकानाथने आश्वासन दिया कि मेरी माया तुझे नहीं लग सकेगी। तब श्रीशुकदेवजी माताके गर्भसे बाहर आए। श्रीशुकदेवजीकी ब्रह्मनिष्ठा, वैराग्य, अलौकिक प्रेमलक्षणा भक्ति देखकर व्यासजी भी श्रीशुकदेवजीको मान देते हैं। जन्म होते ही श्रीशुकदेवजी वनकी ओर जाने लगे। अरणी देवी माताने प्रार्थना की कि मेरा पुत्र निर्विकार ब्रह्मरूप है। यह मेरे यहाँसे दूर न जाय। इसे रोको। इसे रोको। व्यासजी उसे समझाते हैं, "जो हमें अति प्रिय लगता हो वही परमात्माको अर्पण करना चाहिए। वह तो जगत्‌का कल्याण करने जा रहा है। तत्पश्चात् श्रीव्यासजी भी विह्वल हो उठे हैं, विचार करते हैं। अब यह तो जाता है, फिरकर आनेवाला नहीं है। व्यासजी महाज्ञानी थे, फिर भी पुत्रके पीछे दौड़े हैं। व्यास नारायण श्रीशुकदेवजीको बुलाते हैं, 'हे पुत्र! हे पुत्र! वापस लौटो। मुझे छोड़कर जाना नहीं, मैं तुम्हें लग्न (विवाह) करनेके लिए आग्रह नहीं करूँगा।" तो भी श्रीकृष्णका ध्यान करते करते और सबका भान भूले हैं। (उस उन्मत्त अवस्थामें) भान भूली अवस्थामें कौन किसका पिता? कौन माता? लौकिक संबंधका विस्मरण होता है, तभी ब्रह्मसंबंध होता है। जबतक लौकिक संबंधका स्मरण रहता है, तबतक ईश्वरमें आसक्ति (भक्ति) होती नहीं है।

सर्वव्यापक हो चुके श्रीशुकदेवजी वृक्षों द्वारा उत्तर देते हैं, 'हे मुनिराज, आपको पुत्रके वियोगसे दुःख हो रहा है, परंतु हमको तो जो पत्थर भी मारता है, हम उसे फल देते हैं। वृक्षोंके पुत्र उनके फल हैं। पत्थर मारनेवालेको भी फल दे वही वैष्णव है। तो आप पुत्र-वियोगसे किसलिए रोते हैं? आपका बेटा तो जगत्कल्याण करने चला है। व्यासजी अभी तक व्यग्र हैं, इसपर शुकदेवजीने कहा, "यह जीव तो अनेक बार पुत्र बना और अनेकों बार पिता बना है। वासनाओंसे बँधा जीव अनेक बार पिता-पुत्र-स्त्री बनता है। अनेकों बार पूर्व-जन्मके शत्रु भी घरमें आ जाते हैं। अपनी वासनाओंके कारण दादा ही पौत्र बनकर आता है। वासना ही सदा पुनर्जन्मका कारण बनती है। पिताजी, मेरे और आपके अनेक जन्म हुए हैं। पूर्वजन्म याद नहीं रहते हैं यही अच्छा है। पिताजी, न तो आप मेरे पिताजी हैं और न ही मैं आपका पुत्र। आपके और मेरे सच्चे पिता तो श्रीनारायण हैं। वास्तवमें तो जीवका सच्चा सम्बन्ध ईश्वरके साथ ही है। पिताजी मेरे पीछे न पड़ो, श्रीभगवान्के पीछे पड़ो। आप अपना जीवन परमात्माके लिए बनाइए। मुझे जो आनंद मिला है वह आनंद मैं जगत्को देने जाता हूँ।" तब श्रीशुकदेवजी वहाँसे नर्मदा तटपर आए हैं। श्रीशुकदेवजीने कहा है कि (नर्मदाके) इस किनारे पर मैं बैठता हूँ और सामनेके किनारे आप विराजिए। पिताजी, अब मेरा ध्यान छोड़ दो। मेरा ध्यान न करो। दूरसे चाहे आप मुझे देखते रहें परंतु ध्यान तो परमात्माका ही करें। जो परमात्माके पीछे पड़ते हैं वह ज्ञानी हैं। पैसेके पीछे मत पड़ो, परंतु परमात्माके पीछे पड़ो। भागवतकी कथा सुननेके बाद आप भी परमात्माके पीछे पड़ो। तभी कथाश्रवण सार्थक होगा। यह नर जो नारायणके पीछे पड़े तो कृतार्थ होता है। व्यासजी अपनी पत्नीको समझाते हैं कि यदि शुक (श्रीशुकदेवजी) तुम्हें अति प्रिय है तो इसे अंतर्यामीको अर्पण करो। जो हमें अति प्रिय लगता हो वह प्रभुको दें तो हम भी प्रभुको प्रिय लगेंगे। ऐसे सर्वभूतहृदय स्वरूप मेरे सद्गुरु श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें मैं बारबार वंदन करता हूँ।

सूतजीने श्रीशुकदेवजीको प्रणाम करके इस कथाका आरंभ किया है।

एक बार नैमिषारण्यके क्षेत्रमें शौनकजीने सूतजीसे कहा कि आजतक कथाएँ तो बहुत सुनी हैं। अब कथाका सारतत्त्व सुननेकी इच्छा है। हमें अब कथा नहीं सुननी है, सब कथाओंका सारभूत क्या है वह सुनना है। "कथासारं मम कर्णरसायनम्।" ऐसी कथा सुनाइए कि हमारी भगवान् श्रीकृष्णसें भक्ति दृढ हो। हमें श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो। जैसे मक्खन सबका सार (तत्व) है वैसे सबका सार (तत्व) श्रीकृष्ण भगवान् हैं।

श्रीठाकुरजीको मक्खन बहुत प्रिय है। लाला (लल्ला) को मक्खन प्रिय है। लालाको मक्खन भायेरे, कुछ और न काम आए रे। मक्खन सबका सार है और परमात्मा सारभोगी हैं। आज तक बहुत ग्रंथ पढ़े हैं। जिसे परमात्माको प्राप्त करना है ऐसे साधकको आज्ञा है कि वह बहुत ग्रंथ न पढ़े। अनेक ग्रंथ पढ़नेसे बुद्धिमें विक्षेप खड़ा हो जाता है। हमारे भगवान् श्रीबालकृष्ण सारभोगी हैं। अतः वैष्णव भक्त सारभोगी हैं। अतः सर्व कथाओंका सारतत्व सुननेकी इच्छा हुई है। जीव प्रकृतिके भोग छोड़े और श्रीकृष्णसे मन जोड़े तो जीव भी शिव बन जाय।

भागवत मक्खन है। दूसरे शास्त्र दूध-दही जैसे हैं। सारे शास्त्रोंमें साररूप यह श्रीकृष्णकथा है। शौनकजी कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति बढ़े ऐसी सारभूत कथा

सुनाओ। ज्ञान बढ़े, भक्ति बढ़े ऐसा सारतत्व सुनाएँ कि जिससे हम भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन करें। ज्ञान वैराग्यके साथ भक्ति बढ़ानेके लिए यह कथा है। कथा रोनेके लिए होती है। महान् भक्तोंके, महान् पुरुषोंके चरित्र सुनकर हमें भान होता है कि ओह मैंने अपनी आत्माके उद्धारार्थ तो कुछ किया ही नहीं है।

कथा सुननेके बाद यदि अपने पापोंके लिए पश्चात्ताप हो और प्रभुके प्रति अपने हृदयमें प्रेम जगे तभी कथाश्रवण सार्थक होता है। संसारके विषयोंके प्रति यदि वैराग्य न हो और प्रभुके प्रति प्रेम न जागे तो ऐसी कथा कथा ही नहीं है। ब्रह्माजीने नारदजीसे आज्ञा की है, "बेटा, कथा ऐसी कर कि जिससे लोगोंको मेरे प्रभुके प्रति भक्ति जागे।" कथा मनुष्यके जीवनको सुधारती है। जीवनका परिवर्तन करती है। कथा मनुष्यके जीवनमें क्रांति करती है। कथा सुनकर भी यदि जीवनमें कुछ परिवर्तन न हो तो मानो कि तुमने कथा सुनी ही नहीं है। शौनक मुनिने इसीलिए प्रार्थना की है कि मेरा ज्ञान बढ़े, मेरी भक्ति बढ़े ऐसी कथा कर। अकेली भक्ति बढ़े ऐसा नहीं कहा है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके साथ साथ बढ़े।

हलवेमें लौकिक दृष्टिसे गेहूँकी कीमत कुछ अधिक नहीं है, किंतु आटेके बिना हलवा नहीं बन सकता। तत्वकी दृष्टिसे विचार करें तो आटेकी कीमत भी घी जितनी ही है। हलवा बनानेमें घी, गुड और आटेकी जरूरत एक सी है। इसी प्रकार ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी जरूरत एक समान ही है और जीवनमें इन तीनोंकी जरूरत है। सोलह आने ज्ञान और वैराग्य आए तभी जीवका जीवभाव जाता है। जिसमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य परिपूर्ण हो वही उत्तम वक्ता है।

अनेक ऋषि-मुनि वहाँ गंगाके किनारे बैठे थे परंतु कथा करनेको कोई तैयार नहीं हुआ। तब भगवान्ने श्रीशुकदेवजीको प्रेरणा दी कि वहाँ जाओ। श्रीशुकदेवजीमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य परिपूर्ण है।

भागवतशास्त्र प्रेमका शास्त्र है। प्रेम तो पाँचवां पुरुषार्थ है। श्रीकृष्णके प्रेममें देह-भान भूले तो मानो प्रेम सिद्ध हुआ। परमात्मा प्रेमको ही अपना स्वरूप कहते हैं।

ज्ञानमार्गमें प्राप्तकी प्राप्ति है। ज्ञानमार्गमें जो प्राप्त है उसीका अनुभव करना है। भक्तिमार्गमें भक्ति द्वारा भेदका विनाश करना है। भक्तिमार्गमें भेदका विनाश है। ज्ञानमार्गमें भेदका निषेध है। ज्ञानमार्गमें ज्ञानसे भेदका निषेध करनेमें आया है। ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गका लक्ष्य एक ही है।

सूतजी कहते हैं—आप सब ज्ञानी हैं। परंतु लोगोंपर उपकार करनेके लिए आप प्रश्न पूछते हैं तो कृपया सावधान होकर कथा सुनिए। पूर्व जन्मोंके पुण्यका उदय होता है, तभी इस पवित्र कथाके सुननेका योग मिलता है।

कलियुगके जीवोंको कालरूपी सर्पके मुखसे छुड़ानेके लिए श्रीशुकदेवजीने श्रीभागवतकी कथा कही है। जिस समय श्रीशुकदेवजी परीक्षित राजाको यह कथा सुना रहे थे उस समय अमृत लेकर स्वर्गके देवतागण वहाँ आए। उन्होंने कहा—स्वर्गका यह अमृत हम राजाको देते हैं और बदलेमें यह कथामृत आप हमें दीजिए। शुकदेवजीने परीक्षितजीसे पूछा कि यह कथामृत पीना है या स्वर्गका अमृत? तब परीक्षितजीने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि स्वर्गका अमृत पीनेसे क्या लाभ?

श्रीशुकदेवजीने कहा, "स्वर्गका अमृत पीनेसे स्वर्गके सुख मिलते हैं। परंतु स्वर्गका अमृत दुःखमिश्रित है स्वर्गका अमृत पीनेसे पुण्योंका क्षय होता है परंतु पापोंका क्षय नहीं होता है। कथामृतके पानसे पापोंका नाश होता है। कथामृतसे भोगवासनाका विनाश होता है। अतः स्वर्गके अमृतसे यह कथामृत श्रेष्ठ है।

सनत्कुमार ब्रह्मलोकमें रहते थे। एक बार वे भी इस कथाका आनंद लेने भारतमें आए। इससे लगता है कि ब्रह्मलोकमें भी इस कथाके आनंद जैसा कोई आनंद नहीं है। तब परीक्षित राजाने कहा, "भगवन्! मुझे यह स्वर्गका अमृत नहीं पीना है। मैं तो इस कथामृतका ही पान करूँगा।"

सात ही दिनोंमें ज्ञान और वैराग्यको जाग्रत करनेके लिए यह कथा है। ज्ञान और वैराग्य अपने अंदर ही है परंतु वे सोये हुए हैं। उन्हें जाग्रत करना है। आगे कथा आएगी कि ज्ञान और वैराग्यको मूर्छा आई हुई है। सात दिनमें ही इस ज्ञान और वैराग्यको जाग्रत करके भक्तिरस उत्पन्न करना है। इसके लिए यह कथा है। ऐसा और कोई ग्रंथ नहीं है कि जो सात ही दिनोंमें मुक्ति दिलाए।

सूतजी कहते हैं कि सात ही दिनोंमें परीक्षितजीको जिस कथासे मुक्ति मिली थी वही कथा आपको सुनाता हूँ। सात दिनोंमें ही परीक्षितको मुक्ति मिली, कारण उनके लिए यह निश्चित था कि ठीक सातवें ही दिन उनका काल आनेवाला है। परंतु हम तो कालको भूल जाते हैं।

वक्ता श्रीशुकदेवजी जैसा अवधूत हो और श्रोता परीक्षितजी जैसा अधिकारी हो तो सात दिनमें मुक्ति मिलती है। वक्ता और श्रोता दोनों अधिकारी होने चाहिए। बिजलीका प्रवाह और गोला (बल्ब) दोनों ठीक होने चाहिए। वक्ता और श्रोता दोनों ही अधिकारी हों तभी यह कथा मुक्ति दिलाती है। कथा सुनी तो परीक्षितको लेने विमान आया और उनको सद्-गति मिली। परीक्षित महाराज विमानमें बैठकर श्रीपरमात्माके धाममें गए। आजकल लोग कथा तो बहुत सुनते हैं परंतु उनको लेनेके लिए विमान क्यों नहीं आते हैं? इसका कारण यही है कि वक्ता और श्रोता अधिकारी नहीं मिलते हैं। मनुष्य जब वासनाओंमें फँसा है तब तक विमान कैसे आएँगे? और यदि (इससे पहले) विमान आ भी जाए तो भी इनपर कोई बैठेगा नहीं। कदाच स्वर्गमेंसे विमान लेनेके लिए आ भी जाए तो भी मनुष्यकी जानेकी तैयारी भी तो कहाँ है? हम सब विकार और वासनाओंमें बंधे हुए हैं। मनुष्य पत्नी, पुत्र, धन, घर आदिमें फँसा है। जबतक यह आसक्ति छूटेगी नहीं तब तक मुक्ति नहीं है। जिसका मन परमात्माके रंगमें रंग गया है उसके लिए तो वह जहाँ बैठा है वहीं मुक्ति है। ऐसोंके लिए तो विमान आए भी तो क्या और न आए तो भी क्या? ईश्वरके साथ तन्मयता हो जाय उसीसे ही आनंद मिलता है। उससे बढ़कर आनंद तो वैकुण्ठमें भी नहीं है।

भक्त तुकारामको लेनेको विमान आया तो तुकारामने अपनी पत्नीसे कहा कि इस जीवनमें तो मैं तुम्हें कोई सुख दे न सका, परंतु परमात्माने हमारे लिए विमान भेजा है। तो चलो, तुम्हें विमानमें बिठाकर परमात्माके धाममें ले चलूं। आओ, मेरे साथ चलो। परंतु पत्नीने न माना। उसने कहा कि महाराज, आपको जाना हो तो जाइए। मुझे जगत्को छोड़कर नहीं जाना है स्वर्गमें। और वह नहीं गई।

संसारका मोह छोड़ना बड़ा कठिन है। जबतक वासना अंकुशित न हो जाय तबतक शांति नहीं मिल सकती। कथाका एकाध सिद्धांत भी यदि दिलमें उतर जाए तो जीवन मधुर बन जाये। वासनाएँ बढ़ती हैं, भोग बढ़ते हैं, इसीसे संसार कटु विष बन जाता है। जबतक वासनाएँ क्षीण न हो जायँ तबतक मुक्ति नहीं मिल सकती। पूर्वजन्मका शरीर तो चला गया है परंतु पूर्वजन्मका मन नहीं गया है। लोग अपने तनकी, कपड़ोंकी खूब चिंता रखते हैं, परंतु मरनेके बाद भी जो साथ आता है उस मनकी चिंता नहीं रखते हैं। मरनेके बाद जिसे साथ आना है उसीकी फिक्र करो। धन शरीरादिकी चिंता मत करो। मरनेके बाद तो जो अंगूठी तुम्हारी उंगलीमें होगी वह भी लोग निकाल लेंगे।

आचार-विचारके बिना मनकी शुद्धि नहीं होती है। जबतक मनकी शुद्धि न हो तबतक भक्ति नहीं हो सकती है। ज्ञान और वैराग्यको दृढ करनेके लिए यह भागवतकी कथा है।

विवेकसे जबतक संसारका अंत न लाएँ तबतक संसारका अंत आनेवाला नहीं है। जीवनमें संयम और सदाचार जबतक न आए तबतक पुस्तकोंसे मिला ज्ञान किसी काम आयेगा नहीं। केवल ज्ञान भी किस कामका ?

एक गृहस्थके पुत्रका अवसान हुआ। गृहस्थ रोता है। उसके घर कोई ज्ञानी साधु आता है और उपदेश करता है, "आत्मा अमर है, मरण शरीरका होता है ; अतः तुम्हें पुत्रकी मृत्युका शोक करना अनुचित है।" कुछ समयके बाद उस साधुकी बकरी मर गई जिससे वह रोने लगा। साधुको रोता हुआ देखकर उस गृहस्थने साधुसे पूछा कि महाराज, आप तो मुझे उपदेश देते थे कि किसीकी मृत्यु पर शोक नहीं करते। तो फिर आप किसलिए रुदन कर रहे हैं ? साधुने कहा कि बालक तुम्हारा था और बकरी तो मेरी थी अतः रोता हूँ। ऐसा 'परोपदेशे पांडित्यम्' किस कामका ?

ज्ञानका अनुभव करो, मुक्त होनेके लिए ज्ञानका उपयोग है। कथा जीवनको सुधारती है। जीवनको पलट देती है। कथा सुननेपर जीवन पलट न जाए तो मानो कि कथा बराबर सुनी ही नहीं है। कथा मुक्ति देती है यह बात बिलकुल सच है।

रोज मृत्युकी एक-दो बार याद करते रहो। शायद आज ही मुझे यमदूत पकड़ने आ जाएँ तो मेरी क्या दशा होगी ? यदि ऐसा आप रोज सोचेंगे तो पाप नहीं होगा। मनुष्य मरणका विचार तो रोज करता ही नहीं है, परंतु भोजनका विचार रोज करता है।

इस भागवतशास्त्रकी महिमाका वर्णन दूसरे बहुतसे पुराणोंमें किया गया है। परंतु सामान्यतः पद्मपुराणके अंतर्गत माहात्म्यका वर्णन करते हैं। अब श्रीभागवतकी महिमाका वर्णन करना है। इस श्रीभागवतकी महिमाका अब वर्णन करते हैं। इस कथाका माहात्म्य एक बार सनत्कुमारोंने श्रीनारदजीसे कह सुनाया था। माहात्म्यमें ऐसा लिखा है कि बड़े बड़े ऋषि और देवता ब्रह्मलोक छोड़के विशालाक्षेत्रमें इस कथाको सुननेके लिए आए थे। इस कथामें जो आनंद मिलता है वह ब्रह्मानंदसे भी श्रेष्ठ है। (अर्थात्) योगी तो केवल अपना ही उद्धार करता है जब कि सत्संगी अपने साथ अपने संगमें आए हुए सभीका उद्धार करता है। बद्रिका आश्रममें सनत्कुमार पधारे हैं। जिसे लोग बद्रिकाश्रम कहते हैं वही विशालाक्षेत्र है।

बद्रीविशालकी जय ।

स्कन्दपुराणमें कथा आती है कि बद्रीनारायण विशाल राजाके लिए पधारे थे। पुण्डलीकके लिए विठ्ठलनाथ आये थे। जिस भक्तके लिए भगवान् आये, वह धन्य है। बद्रीनारायणजी तप-ध्यानका आदर्श जगत्को बताते हैं। वे कहते हैं कि मैं ईश्वर हूँ तो भी तप करता हूँ, ध्यान लगाता हूँ। तपश्चर्याके बिना शान्ति नहीं मिलती। जीव कठिन तपश्चर्या नहीं कर सकता है, अतः श्री भगवान् आदर्श बताते हैं। बालक जब दवाई नहीं खाता तो माता स्वयं उसे खाकर दिखाती है, जिससे बालक समझे कि दवाई भी एक खानेकी वस्तु है। वैसे तो माताको दवाई खानेको कोई जरूरत नहीं है, परन्तु बालकको समझानेके लिए वह भी खा लेती है।

श्रीबद्रीनारायणके मन्दिरमें लक्ष्मीजीकी मूर्ति मन्दिरके बाहर है। स्त्री और बालकका सङ्ग तपश्चर्यामें विघ्नरूप है। इसमें स्त्रीकी कुछ निन्दा नहीं है परंतु कामको निन्दा है। किसीको पत्नी और बालकोंका त्याग नहीं करना है, इसलिये कहना पड़ता है कि पत्नी और बच्चोंके साथ रहकर घरमें ही भगवान्का भजन करो। इसी तरह तपस्विनी स्त्रीके लिए भी पुरुषका सङ्ग त्याज्य है।

विशालपुरीमें जहाँ सनत्कुमार विराजते थे वहाँ एक दिन नारदजी घूमते हुए आ गये। वहाँ सनकादि ऋषियोंके साथ नारदजीका मिलन हुआ। नारदजीका मुख उदास देखकर सनकादिने उनसे उदासीनताका कारण पूछा कि आप चितामें क्यों हैं? कुतश्चितातुरो? आप हरिदास हैं। श्रीकृष्णका दास, कभी होवे नहीं उदास। वैष्णव तो सदा प्रसन्न रहता है। जो चिन्ता न करे वही तो वैष्णव है। वैष्णव तो प्रभुका चिन्तन करता है। फिर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं? नारदजीने कहा कि मेरा देश दुःखी है। सत्य, तप, दया, दान रहे नहीं हैं। मनुष्य बोलता है कुछ और, उसके मनमें कुछ और ही होता है और करता भी कुछ और ही है। और कुछ क्या कहूँ? उदरम्भरिणो जीवाः। जीव केवल अपने-अपने पेट भरनेवाले और स्वार्थी हो गये हैं।

समाजमें किसीको भी सुख-शान्ति रही नहीं है। मैंने अनेकों स्थानोंका परिभ्रमण किया है। फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। आज सारा देश दुःखी क्यों हो रहा है? नारदजीने इसके कई कारण बताये हैं। धर्म और ईश्वरमें जबतक आस्थावान् नहीं बने, तबतक देश सुखी नहीं हो सकता। जिसके जीवनमें धर्मका स्थान प्रधान नहीं है उसे जीवनमें कभी शान्ति नहीं मिलती। धर्म और ईश्वरको भूलनेवाला मानव कभी सुखी नहीं होता। जगत्में अब धर्म रहा ही कहाँ है?

नारदजीने यह दुःखसे कहा है कि अब इस जगत्में सत्य नहीं रहा है। सत्यं नास्ति। जगत्में असत्य बहुत बढ़ गया है। असत्यके समान कोई पाप नहीं है। उपनिषदोंमें कहा है कि असत्यभाषीको न केवल पाप ही लगता है अपितु उसके पुण्योंका भी क्षय होता है। यदि सच्चा आनन्द पानेकी इच्छा रखते हो तो सत्यमें निष्ठा रखो। असत्य बोलनेवाला व्यक्ति न तो कभी सुखी हुआ है और न कभी होगा।

मितभाषी बनोगे तो सत्यभाषी बन सकोगे।

जगत्में कहीं भी पवित्रता दिखाई नहीं देती। शरीर और वस्त्र जिस प्रकार साफ सुथरे रखते हैं उसी प्रकार मनको भी पवित्र रखना चाहिए। मनुष्य कपड़ोंको तो स्वच्छ रखता है किन्तु मनको स्वच्छ नहीं रखता है। मनको बिल्कुल पवित्र रखो क्योंकि मन तो साथ-साथ आयेगा।

जगत्में कहीं भी नीतिका दर्शन नहीं होता है। नीति और अनीतिसे बहुत कुछ धन-सम्पत्ति जुटानी है और कुमार्गमें खर्च भी करनी है! कुटुम्ब सुखके उपरान्त भी कोई सुख है या नहीं, इसका विचार भी मनुष्य करता नहीं है। वह तो यही सोचता है कि इस धनसम्पत्तिसे मैं तो अपने कुटुम्बको सुखी करूँगा। अपनी इन्द्रियोंका वह इतना तो दास बन जाता है कि उसे कोई पवित्र विचार आता ही नहीं है। शरीर और इन्द्रियोंके सुखमें वह ऐसा तो फँसा है कि शान्तिसे विचार भी नहीं कर सकता कि सच्चा और श्रेष्ठ आनन्द कौन-सा है और कैसे मिल सकता है। जीवनमें जबतक कोई पवित्र लक्ष्य निश्चित नहीं होगा तबतक पाप रुकेंगे ही नहीं। जो लक्ष्यको लक्षमें रखता है, वही पापसे बच सकता है।

मनुष्यको अपने जीवनका लक्ष्य मालूम नहीं है। वह मन्दबुद्धि करने योग्य कामको करता ही नहीं है। जगत्में अन्नविक्रय होने लगा है। जगत्में पाप बहुत बढ़ गया है। इसीसे धरतीमाताने अन्नको अपनेमें समेट लिया है। अन्नविक्रय पाप है।

ज्ञानका भी विक्रय होने लगा है। ज्ञानका विक्रय मत करो। ब्राह्मणको चाहिए कि वह निष्काम भावसे जगत्को ज्ञानका दान करे। अन्नदानसे भी ज्ञानदान श्रेष्ठ है। कारण, ज्ञानसे सदा शान्ति मिलती है।

जबसे अन्न और ज्ञानका विक्रय होने लगा है तबसे पवित्रता नष्ट हो गई है और पाप बढ़ रहा है।

मनुष्यकी भावना जबसे बिगड़ी है तबसे विश्वमें उसका जीवन भी विकृत हो गया है।

संसारमें मुझे कहीं भी शान्ति नजर नहीं आई। इस प्रकार कलियुगके दोष देखता हुआ घूमता-फिरता मैं वृन्दावनमें आया। वहाँ एक कौतुक देखा। एक युवतीको देखा, उसके पास दो पुरुष मूर्छामें पड़े हुए थे। वह स्त्री चारों ओर देख रही थी। उस स्त्रीने मुझे (नारदजीको) बुलाया, अतः मैं उसके पास गया। साधु पुरुष किसी स्त्रीके पास नहीं जाते हैं, अतः नारदजी बिना बुलाये उस स्त्रीके पास नहीं गए। इस युवतीने मुझसे कहा कि ठहरो! क्षणं तिष्ठ!

दूसरोंके काम सिद्ध करोगे तो तुम साधु बनोगे। सुवर्णसे भी अधिक मूल्यवान् समयको माने वह साधु है। जिसे समयकी कोई कीमत नहीं है, वह अन्तकालमें खूब पछताता है। किसीका एक भी क्षण नहीं बिगाड़ना चाहिए।

अतः जब एक क्षण ठहरनेके लिए कहा गया तो मैंने उस युवतीसे पूछा कि देवीजी, आप कौन हैं। उस युवतीने मुझसे कहा कि मेरा नाम भक्ति है। ये ज्ञान और वैराग्य मेरे पुत्र हैं। ये अब वृद्ध हो गए हैं। मेरा जन्म तो द्रविड़ देशमें हुआ है। महान् आचार्य दक्षिण भारतमें प्रकट हुए थे। श्रीशङ्कराचार्यजी और श्रीरामानुजाचार्यजी दक्षिणमें उत्पन्न हुए थे। दक्षिण देश भक्तिका देश है।

कर्णाटकमें मेरा परिपालन हुआ है, और मेरी वृद्धि भी वहीं हुई। आचार और विचार जहाँ शुद्ध होते हैं वहाँ भक्तिको पुष्टि मिलती है। आचार-विचार शुद्ध हों तो भक्ति हो सकती है। विचारोंके साथ-साथ आचार भी शुद्ध होने ही चाहिए। कर्णाटकमें आज भी आचारकी शुद्धि देखनेमें आती है। भगवान् व्यासजीको कर्णाटकके प्रति कोई पक्षपात नहीं था। परन्तु जो सच था उसीका उन्होंने वर्णन किया है। अब भी कर्णाटकमें लोग निर्जला एकादशी करते हैं। एकादशीका अर्थ दीवाली नहीं है।

मेरी एक-एक करके सभी इन्द्रियाँ भगवान्‌को अर्पण करनी है—ऐसी भावनासे एकादशी-का व्रत रखो।

महाराष्ट्रमें किसी-किसी स्थानपर मेरा सम्मान हुआ। महाराष्ट्रमें कहीं-कहीं भक्तिको सम्मान मिला है। पंढरपुर जैसे स्थल पर भक्तिका दर्शन होता है। गुजरातमें तो मैं जीर्ण हो गई हूँ। 'गुर्जरे जीर्णतां गता।' गुजरातमें मैं अपने दोनों पुत्रोंके साथ वृद्ध हुई। धनका दास प्रभुका दास नहीं हो सकता। गुजरात काञ्चनका लोभी हो गया है, अतः भक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है।

भक्तिके प्रधान अङ्ग नव हैं। इसमें प्रथम है श्रवण। केवल कथा सुन लेनेसे भक्ति पूरी नहीं होती है। जो सुना है उसका मनन करो। मनन करके जितना जीवनमें उतारा हो, उतना ही भागवतश्रवण सार्थक हुआ कहा जायेगा। कथा सुननेसे पाप जलते हैं परन्तु मनन करके जीवनमें उतारनेसे तो मुक्ति मिलती है।

श्रवणभक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है, क्योंकि मनन नहीं रहा है। मनन नहीं करनेसे श्रवण सफल नहीं होता। मननके अभावमें श्रवणभक्ति क्षीण होती जा रही है।

कीर्तनभक्ति भी नहीं रही है, क्योंकि कीर्तनमें भी कीर्तन और कञ्चनका लोभ आ गया है; और तभीसे कीर्तनभक्ति भ्रष्ट हो गई है।

ज्ञानी पुरुषोंको अपमानसे भी सम्मान अधिक बुरा लगता है। धनके लोभकी अपेक्षा कीर्तिका मोह छूटना बड़ा कठिन है। कीर्तिका मोह तो ज्ञानीको भी सताता है। मैं अपने मनको समझाता हूँ। जब तक तुम अपने मनको स्वयं न समझाओगे तब तक वह मानेगा ही नहीं।

कथा-कीर्तनमें जगत् अनायास ही विस्मृत हो जाता है। मनुष्य सब कुछ छोडकर जब माला लेकर बैठता है तभी उसे जगत् याद आता है। कथामें जब बैठ हो तो संसार व्यवहारके विचारोंको मनसे निकाल दो। मैं अपने श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठा हूँ, ऐसी भावना रखो। कीर्तन-भक्ति निष्काम होनी चाहिए। सन्त तुलसीदासजीने कहा है कि स्वांतःसुखाय। मैं अपने सुखके लिए कथा करता हूँ। दूसरोंको क्या सुख मिलता है इसकी मुझे कोई खबर नहीं है। मेरे मनको आनन्द मिले इसलिए मैं कथा करता हूँ।

वन्दनभक्ति अभिमानके कारण चली गई। अभिमान बढ़ते ही वन्दनभक्तिका नाश हुआ। सबमें श्रीकृष्णकी भावना रखकर सबको वन्दन करो। वन्दन करनेसे विरोध नष्ट होता है।

भक्त नरसिंहने भक्तका लक्षण बताते हुए कहा है कि 'सकल लोकमें सबको वन्दे' वही सच्चा वैष्णव है। जो वन्दन करता है वही वैष्णव है और जो वन्दन कराना चाहता है वह वैष्णव नहीं है। मनके भीतर जब तक अहंभाव रहेगा तब तक भक्तिकी वृद्धि नहीं होगी।

आजकल तो लोग देहकी बहुत पूजा करते हैं। श्री ठाकुरजीकी सेवाके लिए, पूजाके लिए अब उनको समय नहीं मिलता है। देहपूजा बढ़ी कि देवपूजा गई। लोगोंने भाँति-भाँतिके साबुन बनाये हैं। चाहे जितना साबुन मलो किंतु देहका जो रङ्ग है वही रहेगा। परमात्माने जो रङ्ग दिया है वही सच्चा रङ्ग है, और वही ठीक भी है। मनुष्य बहुत बिलासी हो गया है इस कारण ही अर्चनभक्तिका ह्रास हुआ है। शरीरको लोग बहुत सजाने-सँवारने लगे हैं तभीसे अर्चनभक्ति चली गई। अतः जीवन सादा रखो।

इसी प्रकार भक्तिके एक अङ्गका विनाश हुआ है। अर्थात् जीव ईश्वरसे विभक्त हुआ (जुदा हुआ है), श्री ठाकुरजीसे विमुख हुआ है। बुद्धिका जब बहुत अतिरेक होता है तो भक्तिका विनाश होता है। भक्ति छिन्न-विभिन्न हुई तो जीवन भी विभक्त हो गया।

भक्तिके दो बालक हैं—ज्ञान और वैराग्य। भक्तिका आदर ज्ञान और वैराग्यके साथ करो। ज्ञान और वैराग्य मूर्छित होते हैं तो भक्ति भी रोती है। कलियुगमें ज्ञान और वैराग्य क्षीण होते हैं, बढ़ते नहीं है।

जबसे पुस्तकोंमें आकर समा गया, तबसे ज्ञान चला गया। नारदजी कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्यको मूर्छा क्यों आई है यह मैं जानता हूँ। इस कलिकालमें जगत्‌में अधर्म बहुत बढ़ गया है। इसीसे इनको मूर्छा आई है। इस वृन्दावनकी प्रेमभूमिमें तुमको पुष्टि मिली है। कलियुगमें ज्ञान और वैराग्यकी उपेक्षा होती है, अतः वे निरुत्साहित होकर वृद्ध और जीर्ण हो गए हैं।

ज्ञान और वैराग्यके साथ मैं भक्तिको जाग्रत करूँगा। ज्ञान-वैराग्यके साथ मैं भक्तिका प्रचार करूँगा। नारदजीने ज्ञान-वैराग्यको जगानेके लिए अनेक प्रयत्न किए। परन्तु कुछ बना नहीं है। वेदोंके अनेक पारायण किए तो भी ज्ञान-वैराग्यकी मूर्छा गई नहीं।

कुछ थोड़ा-सा विचार करेंगे तो यह ध्यानमें आ जायेगा कि ऐसी कथा तो प्रत्येक घरमें होती है। अपना यह हृदय ही वृन्दावन है। इस हृदयके वृन्दावनमें कभी-कभी वैराग्य जाग्रत होता है। परन्तु वह जागृति (स्थिर) स्थायी नहीं रहती है।

उपनिषदों और वेदोंके पठनसे अपने हृदयमें क्वचित् ज्ञान और वैराग्य जागता है। परन्तु फिरसे वे मूर्छित हो जाते हैं।

वेदके पारायणसे वैराग्य तो आता है, परन्तु वह स्थायी नहीं रहता है। स्मशानभूमिमें जब चिता जल रही होती है तो उसे देखकर कई व्यक्तियोंको वैराग्य हो आता है। परन्तु वह वैराग्य टिकाऊ नहीं होता।

काम-सुखको भोग लेनेके बाद भी बहुतोंको वैराग्य आता है। संसारके विषयके उपभोग कर लेनेके बाद बहुतोंको वैराग्य आता है। परन्तु वह भी स्थायी नहीं होता है। विषय-भोगके बाद अरुचि तो होती है, परन्तु वह अरुचि विवेक और वैराग्यसे रहित होनेके कारण टिकती नहीं है।

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि सब कुछ वेदोंसे ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु वेदोंकी भाषा गूढ होनेके कारण सामान्य मनुष्यको समझमें कुछ नहीं आता। कलियुगमें तो श्रीकृष्ण-कथा और श्रीकृष्ण-कीर्तनसे ही ज्ञान और वैराग्य जाग्रत होते हैं।

नारदजी चिन्तामें फँसे हैं कि ज्ञान और वैराग्यकी मूर्छा उतरती नहीं है। उसी समय आकाशवाणी हुई कि तुम्हारा प्रयत्न उत्तम है। ज्ञान-वैराग्यके साथ भक्तिका प्रचार करनेके लिए आप कुछ सत्कर्म कीजिए। नारदजीने पूछा कि मैं क्या सत्कर्म करूँ। तो आकाशवाणीने बताया कि तुम्हें सन्त महात्मा सत्कर्म क्या है, वह बताएँगे।

नारदजी अनेक साधु सन्तोंसे पूछते हैं कि ज्ञानवैराग्य सहित भक्तिको पुष्टि मिले, ऐसा कोई उपाय बताएँ। परन्तु निश्चित उपाय कोई भी नहीं बता सका। तो नारदजी चिन्तामें पड़ गए। वे सोचने लगे कि निश्चित उपाय बतलानेवाले सन्त मुझे कहाँ मिलेंगे और वे क्या साधन बताएँगे ? ऐसा विचार करते-करते नारदजी घूमते-फिरते बद्रिकाश्रममें आये। वहाँ सनकादि मुनियोंके साथ उनका मिलन हुआ। नारदजीने सनत्कुमारोंको यह सारी कथा सुनाई।

नारदजी कहते हैं कि मैंने जिस देशमें जन्म लिया है, उसी देशके लिए यदि उपयोगी न बन सकूँ तो मेरा जीवन वृथा है। आप बताएँ कि मैं क्या सत्कर्म करूँ।

सनकादि मुनि कहते हैं कि देशके दुःखसे तुम दुःखी हो। तुम्हारी भावना दिव्य है। भक्तिका प्रचार करनेकी तुम्हारी इच्छा है। आप भागवतज्ञानमार्गका पारायण कीजिए। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तुम भागवत ज्ञानयज्ञ करो और भागवतका प्रचार करो। इसीसे लोगोंका कल्याण होगा। इस कथासे ज्ञान और वैराग्यकी जागृति होगी। श्रीभागवतकी कथा ज्ञान, भक्ति और वैराग्यको बढानेवाली है।

वेदोंका पारायण करना अच्छा है। उससे आपकी इच्छा पूर्ण होगी। परन्तु वेदोंके अर्थ जल्दी समझमें नहीं आ सकते। इसलिए सर्व वेदोंके साररूप इस श्रीभागवतका ज्ञानयज्ञ करो।

श्रीभागवत-कथाका अमृतपान करनेके लिए वे वहांसे गङ्गाजीके किनारे गए। शुद्ध भूमिमें सात्त्विक भाव जागते हैं। भूमिका प्रभाव सूक्ष्म रीतिसे मन पर अवश्य पड़ता है। भोगभूमि भक्तिमें बाधक है। श्रीगङ्गाजीका तट ज्ञानभूमि है। अतः आज्ञा की कि गङ्गा किनारे चलो।

श्रीनारदजी सनत्कुमारोंके साथ आनन्दवनमें आये हैं। सनत्कुमार श्रीव्यासाश्रममें आये हैं। नारदजी हाथ जोड़े बैठे हैं। वहाँ ऋषि-मुनि भी श्रीभागवत-कथाका पान करने आये हैं। जो नहीं आये थे, उन सभीके घर भृगु ऋषि जाते हैं और विनीत भावसे वन्दन करके उनको कथामें ले आते हैं। सत्कर्ममें दूसरोंको प्रेरणा दे, उसे भी पुण्य मिलता है।

कथाके आरम्भमें भगवान्‌का जयजयकार करते हैं, और "हरये नमः" का शुद्धोच्चार करते हैं। यह "हरये नमः" महामन्त्र है।

सारी प्रवृत्तियोंको छोड़कर मनुष्य ध्यानमें बैठता है। वहाँ भी माया विघ्न करती है। अनादिकालसे मनुष्यका मायाके साथ युद्ध होता आया है। जीव ईश्वरके पास जाता है, तो मायाको यह अप्रिय लगता है। जीव सब प्रकारके मोह छोड़कर प्रभुके पास जाए, वह मायाको प्रिय नहीं लगता है। मायाका कोई एक रूप नहीं है। ईश्वर जिस प्रकार व्यापक हैं, वैसे ही माया भी व्यापक जैसी है।

जीव और ईश्वरके मिलनमें माया विघ्न करती है।

माया मनको चञ्चल बनाती है। माया मनुष्यको समझाती है कि स्त्री-बालक और धन-सम्पत्ति आदिमें ही सुख है। मनुष्यको माया पराजित कर देती है। मनुष्यकी हार होती है

और मायाकी जीत होती है । इसका कारण यह है कि मनुष्य प्रभुका जयजयकार करता नहीं है । कथा, भजनमें प्रेमसे ईश्वरका जयकार करना चाहिए कि जिससे मायाकी हार हो और अपनी जीत हो ।

प्रभुका जयजयकार करोगे तो तुम्हारी भी जीत होगी और तुम्हारा भी जयजयकार होगा ।

भूख और तृष्णाको भूलोगे नहीं, तो पाप होते ही रहेंगे । भूख और प्यासको सहन करनेकी आदत होनी चाहिये । आगे कथा आयेगी, राजा परीक्षितजीकी बुद्धि भूख और प्यासके कारण ही बिगड़ी थी ।

सूतजी सावधान करते हैं । हे राजन्, नारदजी आज श्रोता बनकर बैठे हैं और सनकादि आसन पर विराजमान हैं । अतः जयजयकार शुद्ध होने लगा है ।

यह भागवतकी कथा अति दिव्य है । इस कथाको जो प्रेमसे सुनेगा उसके कानमेंसे परमात्मा हृदयमें उतरेंगे ।

नेत्र और श्रोत्रको जो पवित्र रखते हैं, उनके हृदयमें श्रीपरमात्मा आते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण कानमेंसे, आँखमेंसे मनमें आते हैं । बार-बार जो श्रीकृष्णकी कथा सुनता है, उसके कानमेंसे श्रीकृष्ण हृदयमें पधारते हैं ।

पाप भी कानमेंसे ही मनमें आता है । कानको कथा-श्रवण कराओगे, आप श्रीभगवान्‌की कथाएँ सुनोगे तो मन भगवान्‌में स्थिर होगा । कानमेंसे भगवान् हृदयमें आएँगे । श्री भगवान्‌के हृदय-प्रवेशके लिए हमारी देहमें आँखें और कान द्वार हैं ; साधन हैं । कई लोग आँखोंसे ही प्रभुके स्वरूपको मनमें उतारते हैं, तो और कुछ लोग कानसे श्रवण करके श्री भगवान्‌को हृदयमें उतारते हैं । अतः आँख और कान दोनोंको पवित्र रखो । वहाँ श्रीकृष्णको पधराओ ।

प्रत्येक सत्कर्मके आरम्भमें शान्तिपाठ किया जाता है । उसका मन्त्र है—ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । हे देव, कानोंसे हम कल्याणकारी वचन सुनें । कान और आँख पवित्र हों । फिर सत्कर्मोंका आरम्भ हो । इसीलिए तो पूजामें गुरु महाराज कान और आँखोंको पानी लगानेको कहते हैं ।

विशुद्ध इन्द्रियोंमें ही परमात्माका प्रकाश होता है । इसलिए इन्द्रियोंको शुद्ध करो और शुद्ध रखो । मनको भी शुद्ध करो और शुद्ध रखो । काल नहीं बिगड़ा है, मन ही बिगड़ा है । नेत्र और श्रोत्रको पवित्र करनेके बाद कथाका आरम्भ होता है ।

सनकादि मुनि कहते हैं कि इस भागवतशास्त्रमें अठारह हजार श्लोक हैं । अठारहकी संख्या परिपूर्ण है । श्रीरामकृष्ण परिपूर्ण हैं, अतः नवमीके दिन प्रगट हुए हैं । श्रीकृष्ण नवमीके दिन ही गोकुलमें आये हैं, तभी नन्द-महोत्सव करनेमें आया है । श्रीरामजीकी बारह कला हैं और श्रीकृष्णजीकी सोलह कला—ऐसा भेद नहीं करना चाहिए ।

श्रीभागवतमें मुख्य कथा है नन्दमहोत्सवकी । इस कथाके भी अठारह श्लोक हैं । श्री भागवतपर प्राचीन और उत्तम टीका श्रीधर स्वामीजीकी है । उन्होंने किन्हीं साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंका सहारा न लेकर स्वतन्त्र रीतिसे भागवत-तत्त्वका विचार किया है । इस श्रीधरी-

टीकापर बंसीधर महाराजकी टीका है। उन्होंने कहा है कि हमारे ऋषि-मुनियोंने केवल निःस्वार्थ भावसे इस ग्रन्थकी रचना की है।

श्रीमद् भागवतकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ? भागवत तो श्रीनारायणका ही स्वरूप है। श्रीभगवान् जब गोलोक पधारे तब उन्होंने अपने तेजस्वरूपको इस ग्रन्थमें रखा था, ऐसा एकादश स्कन्धमें लिखा हुआ है। अतः भागवत भगवान्‌की शब्दमयी साक्षात् मूर्ति है, श्रीकृष्णकी वाङ्मय मूर्ति है।

उद्धवजीने जब पूछा कि आपके स्वर्गधाम-गमनके बाद इस पृथ्वीपर अधर्म बढ़ेगा तो धर्म किसकी शरणमें जायेगा ? श्री भगवान्‌ने तब कहा था कि मेरी भागवतका जो आश्रय लेगा, उसके घरमें कलि नहीं जा सकेगा।

श्रीभागवत भगवान्‌का नामस्वरूप है। नामस्वरूपसे ही अन्य रूप सिद्ध होते हैं। मनके मैलको दूर करनेके लिए ही यह भागवतशास्त्र है। मनको शुद्ध करनेका साधन भागवत-कथा है। यह कथा सुननेके बाद भी यदि पाप करना चालू रखेंगे तो यमदूतोंकी ओरसे दो चाँटे और खाने पड़ेंगे।

ईश्वरके साथ प्रेम करनेका साधन यह भागवतशास्त्र है। मनुष्य पत्नी, धनसम्पत्ति, भोजन आदिके साथ तो प्रेम करता है, परन्तु प्रभुके साथ प्रेम नहीं करता है। इसलिए वह दुःखी है।

श्रीरामानुजाचार्यके जीवनमें एक प्रसङ्ग हुआ था। रङ्गदास नामका एक सेठ था जो एक वेश्यापर अतिशय आसक्त था। एक दिन रङ्गदास और वह वेश्या प्रभु श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरके पाससे निकले। श्रीमन्त सेठ रङ्गदास वेश्याके सिरपर छाता पकड़े हुए जा रहे थे। ठीक उसी समय श्रीरामानुजाचार्यजी मन्दिरसे बाहर निकले। उन्होंने यह दृश्य देखा। ये भी ईश्वरके ही जीव हैं और वे भी ईश्वरसे मिल जाएँ तो उनका भी उद्धार हो जाए, ऐसा सोचके वे उनसे मिलने गए। रास्तेपर जाकर वे उस रङ्गदाससे मिले और बोले कि आप इस वेश्यासे जो प्रेम करते हैं, उसे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। अस्थि और विष्ठासे भरी इस स्त्रीसे तुम प्रेम करते हो। इस स्त्रीकी तुलनामें मेरे प्रभु श्रीरङ्गनाथजी अति सुन्दर हैं। इस स्त्रीसे जैसा प्रेम करते हो, ऐसा प्रेम मेरे प्रभुसे करो। प्रेम करने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं। ऐसा कहकर उन्होंने रङ्गदासके एक चाँटा मारा। रङ्गदासको वहाँ समाधि लग गई। उसे श्रीरङ्गनाथजीका दर्शन हुआ। उस दिनके बाद रङ्गदासने किसी भी दिन स्त्रीसे प्रेम नहीं किया।

मनुष्य अपना प्रेमपात्र हर क्षण बदलता है। परन्तु कहीं भी इसे सन्तोष और शान्ति नहीं मिलती है। बाल्यावस्थामें मातासे प्रेम करता है। कुछ बड़े होनेपर मित्रोंसे प्रेम करता है। विवाह हुआ तो पत्नीसे प्रेम करता है। कुछ समय जानेके बाद अपनी उसी प्यारी पत्नीका तिरस्कार करने लगता है और उससे कहता है कि तेरे साथ विवाह करनेमें मैंने बड़ी भारी भूल की है। उसके बाद वह पुत्रोंसे प्रेम करता है। उसके बाद वह धनसे प्रेम करता है। अतः ईश्वरको ही प्रेमका पात्र बनाओ कि जिससे प्रेमका पात्र बदलनेका प्रसङ्ग ही न आये।

श्रीभागवतशास्त्र बार-बार सुनोगे तो परमात्मासे प्रेम बढ़ेगा। आजकल लोग भक्ति तो बहुत करते हैं परन्तु भगवान्‌को साधन और सांसारिक सुखोंको साध्य मानकर ही करते हैं। अतः भक्ति सार्थक नहीं होती है और लोग दुःखी होते हैं। श्रीभगवान्‌को ही साध्य मानो, संसारके सुखोंको नहीं।

कथामें हास्य रस गौण है। कथा किसीको हँसानेके लिए नहीं है। कथा तो ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए है।

श्रोताओंके हृदयमें जो शोक जाग्रत करे वह शुक। कथा शुद्ध हृदयसे रोनेके लिए है।

मेरा आज तकका जीवन निरर्थक ही निकल गया आदि भाव हृदयमें जागें तो ऐसी कथाका श्रवण सार्थक हुआ। कथा सुननेके बाद पाप न छूटे और वैराग्य उत्पन्न न हो तो कथाका श्रवण किस कामका ?

श्रीभागवतके दर्शनसे, श्रवणसे, पूजनसे पापोंका नाश होता है। श्रीमद् भागवतके श्रवणमात्रसे ही सद्गति मिलती है। कथा-श्रवणका लाभ आत्मदेव ब्राह्मणका चरित्र कहकर बतलाया गया है। बिना दृष्टांतका सिद्धांत मनको नहीं छूता। अतः आत्मदेव ब्राह्मणका चरित्र कहा गया है। कथा केवल रूपक नहीं है। कथाकी लीला सच्ची है और उसमें कहा गया अध्यात्म-सिद्धांत भी सत्य है।

तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक ग्राम था। वहाँ आत्मदेव नामक एक ब्राह्मण अपनी पत्नी धुंधलीके साथ रहता था। आत्मदेव पवित्र था। परंतु वह धुंधली स्वभावकी क्रूर, झगड़नेवाली और दूसरोंकी नुक्ताचीनी करनेवाली थी। आत्मदेव निःसन्तान थे। सन्तानके अभावसे आत्मदेव दुःखी थे। सन्तानके लिए आत्मदेवने बहुत प्रयत्न किये, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। अतः उसने आत्महत्या करनेका निश्चय किया। आत्मदेवने वनकी ओर प्रयाण किया। घूमते-फिरते रास्तेमें नदीका किनारा आया। वहाँ उसे एक महात्मा मिले। आत्मदेव उन महात्माके पास गया और रोने लगा। महात्माने उससे उसके दुःखका कारण पूछा।

आत्मदेवने कहा कि मेरे पास खाने-पीनेके लिए तो बहुत कुछ है, परन्तु मेरे बाद खानेवाला कोई नहीं है, अतः मैं दुःखी हूँ। इसलिए मरनेकी इच्छासे आत्महत्या करनेके लिए यहाँ आया हूँ। महात्माने कहा कि तुम्हें कोई सन्तान नहीं है, यह तो परमात्माकी कृपा है। पुत्र, परिवार न हो तो समझ लो कि श्रीठाकुरजीने तुम्हारे हाथोंसे ही सब कुछ करानेको तुम्हारे भाग्यमें लिखा है, और इसीलिए तुम्हें कोई सन्तान नहीं दी है। पुत्र तो दुःखरूप है।

ईश्वर जैसी भी स्थितिमें तुम्हें रखें, वैसी ही स्थितिमें संतोष मानकर ईश्वरका स्मरण करना चाहिये। तुकाराम महाराज कहते हैं—

ठेवीले अनंते तैसेची रहावे।
चिती असो द्यावे समाधान॥

अतः ईश्वर जिस स्थितिमें रखे उसीमें आनन्द मानना चाहिए।

एक बार एकनाथ महाराज विट्ठलनाथजीके मन्दिरमें दर्शन करने गए। एकनाथजीको सुयोग्य पत्नी मिली थी, इसलिए वे श्रीभगवान्‌का उपकार मानते थे। वे कहते थे कि मुझे स्त्रीका सङ्ग नहीं, सत्सङ्ग दिया है। थोड़ी देर बाद उस मन्दिरमें भक्त तुकारामजी दर्शन करने आये। तुकारामकी पत्नी कर्कशा थी। कर्कशा पत्नीके लिए भी तुकारामजी भगवान्‌का उपकार मानते थे। वे कहते थे कि हे भगवन्, यदि तुमने अच्छी और सुन्दर पत्नी दी होती तो मैं सारा दिन उसीके पीछे लगा रहता और तुमको भी भूल जाता। अतः मेरा तो कर्कशा पत्नी मिलने पर भी भला ही हुआ है।

एकनाथजीको अनुकूला पत्नी मिली तो उन्हें इसीमें आनन्द है और तुकारामजीको प्रतिकूला पत्नी मिली तो भी उन्हें आनन्द है। दोनोंको अपनी-अपनी परिस्थितिसे सन्तोष है और भगवान्‌का उपकार मानते हैं।

अपनी पत्नीकी मृत्यु हुई तो नरसिंह मेहताने भी आनन्द ही माना और कहा—

भलुं थयुं भांगी जंजाल।
सुखे भजीशुं श्री गोपाल॥

अर्थात् अच्छा हुआ कि कुटुम्बका झंझट छूट गया। अब तो मैं बड़े सुखसे, निश्चिन्त मनसे श्रीगोपालका भजन कर सकूँगा।

एक संतकी पत्नी अनुकूला थी, दूसरेकी प्रतिकूला थी और तीसरेकी संसारको छोड़कर चली गई, फिर भी ये तीनों महात्मा अपनी-अपनी परिस्थितिसे संतुष्ट हैं।

सच्चा वैष्णव वही है जो कि किसी भी परिस्थितिमें परमात्माकी कृपाका ही अनुभव करता है और मनको शांत और संतुष्ट रखता है। मनको शांत रखना भी बड़ा पुण्य है।

माता और पिताको अपने पुत्रके लिए बहुत चिन्ता रहती है। परन्तु पुत्रैषणाके साथ-साथ अनेक वासनाएँ भी आती हैं। पुत्रैषणाके पीछे वित्तैषणा और वित्तैषणाके पीछे लोकैषणा जागती है।

आत्मदेवने उस महात्मासे कहा कि मुझे पुत्र दो, क्योंकि पुत्र ही पिताको सद्गति देता है। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। वे महात्मा आत्मदेवको समझाते हैं कि श्रुति भगवती एक स्थान पर कहती हैं कि पुत्रसे मुक्ति नहीं मिलती।

वंशके रक्षणके लिए सत्कर्म करो। यदि पुत्र ही सद्गति दे सकता हो तो संसारमें प्रायः सभीके पुत्र होते हैं, अतः उन सभीको सद्गति मिलनी चाहिए। पिताको ऐसी आशा कभी नहीं रखनी चाहिए कि मेरा पुत्र श्राद्ध करेगा तो मेरी सद्गति हो जाएगी। श्राद्ध करनेसे वह जीव अच्छी योनिमें तो जाता है, परन्तु ऐसा मत समझो कि वह जन्म-मृत्युके फेरेसे छूट ही जाएगा।

श्राद्ध और पिंडदान मुक्ति नहीं दिला सकते। श्राद्धकर्म धर्म है। श्राद्ध करनेसे नरकसे तो छुटकारा मिलता है, परन्तु केवल श्राद्ध करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। श्राद्ध करनेकी मनाही नहीं करते हैं। श्राद्ध करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं और आशीर्वाद देते हैं।

पिंडदानका सही अर्थ कोई समझता नहीं है। इस शरीरको पिंड कहते हैं। इसे परमात्माको अर्पण करना ही पिंडदान है। यही निश्चय करना है कि मुझे अपना जीवन ईश्वरको अर्पण करना है और इसी प्रकार जीवन जो ईश्वरको अर्पण करे, उसीका जीवन सार्थक है और उसीका पिंडदान सच्चा है। अन्यथा यदि केवल आटेके पिंडदानसे ही मुक्ति मिल जाती तो ऋषि, मुनि ध्यान, योग, तप आदि साधनोंका निर्देश करते ही क्यों ?

जीवन-मृत्युके त्राससे छुड़ाता है केवल सत्कर्म और वह सत्कर्म भी अपना ही किया हुआ। स्वयं ही अपनी आत्माका उद्धार करना है। जीव स्वयं ही अपना उद्धार कर सकता है।

श्रीगीताजीमें स्पष्ट कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

—गी० अ० ६ श्लोक ५

स्वयं अपने द्वारा ही अपनी आत्माका संसारसमुद्रसे उद्धार करें और अपनी आत्माको अधोगतिकी ओर न ले जाएँ। जीवका उद्धार वह स्वयं न करेगा तो और कौन करेगा ? मनुष्यका अपने सिवा और कौन बड़ा हितकारी हो सकता है ? यदि वह स्वयं अपना श्रेय न करेगा तो पुत्रादि क्या करेंगे ?

ईश्वरके लिए जो जीता है, उसे अवश्य मुक्ति मिलती है ।

श्रुति भगवती तो कहती है— जब तक ईश्वरका अपरोक्ष अनुभव न हो, ज्ञान न हो, तब तक मुक्ति मिलती ही नहीं है ।

मृत्युके पहले जो भगवान्‌का अनुभव करते हैं, उन्हें ही मुक्ति मिलती है। परमात्माके अपरोक्ष साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं मिलती ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ।

उसे जानकर ही मनुष्य मृत्युका उल्लङ्घन कर जाता है। परमपदकी प्राप्तिके लिए इसके सिवा अन्य कोई मार्ग है ही नहीं। श्री भगवान्‌को जाने बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्यथा केवल श्राद्ध करनेसे कोई मुक्ति मिलती नहीं है ।

अपने पिंडका दान करोगे अर्थात् अपने शरीरको ही श्रीपरमात्माको अर्पण करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा ।

अपना पिंडदान तुम स्वयं अपने हाथोंसे ही करो, वही उत्तम है। जो पिंडमें है वही ब्रह्माण्डमें है। निश्चय करो कि इस शरीररूपी पिंडको श्रीपरमात्माको अर्पण करना है। तुम अपना पिंडदान स्वयं ही क्यों नहीं करते हो ? घरमें जो कुछ है, वह सब काममें लगा दो और 'नारायण' 'नारायण' करो ।

आत्मदेवको महात्माकी यह बात न जँची। उसने कहा कि पुत्रसुखसे आप संन्यासी लोग अपरिचित हैं, अतः आप ऐसा कहते हैं ।

माता-पिताकी गोदको बालक चाहे जिस तरह गन्दी करे, फिर भी वे प्रसन्न होते हैं। असुखमें सुखका अनुभव करना ही संसारियोंका नियम है ।

महात्माने सुन्दर उपदेश दिया, फिर भी आत्मदेवने दुराग्रह करते हुए कहा कि मुझे पुत्र दो, वरना मैं प्राणत्याग करूँगा। महात्माको दया आई। उन्होंने एक फल देकर कहा कि इस फलको तुम अपनी पत्नीको खिलाना। तुम्हारे यहाँ योग्य पुत्र होगा ।

आत्मदेव फल लेकर अपने घर लौटा। पत्नीको फल दिया। धुंधली फल खानेके बजाय अनेक तर्क-कुतर्क करने लगी। वह सोचती है कि फल खाने पर मैं गर्भवती होऊँगी और परिणामतः दुःखी होऊँगी और बालकके लालन-पालन करनेमें भी कितना बड़ा दुःख है। उसने अपनी छोटी बहनसे यह बात कही तो उसने युक्ति बताई कि मुझे बालक होने ही वाला है। उसे मैं तुझे दे दूंगी। तू गर्भवती होनेका नाटक कर ।

धुंधलीको पुत्र (फल) की इच्छा तो है किंतु बिना कोई दुःख झेले। यह मनुष्यका स्वभाव है कि उसको सुखकी तो इच्छा है किन्तु बिना किसी प्रयत्नके और बिना किसी कष्टके।

मनुष्य पुण्य करना नहीं चाहता, फिर भी पुण्यके फलकी इच्छा करता है और पाप करता है, फिर भी पापके फलको नहीं चाहता।

छोटी बहनके कहने पर धुंधलीने वह फल गायको खिला दिया और स्वयं गर्भवती होनेका नाटक करने लगी। बहनका पुत्र ले आई और जाहिर किया कि यह मेरा पुत्र है। धुंधलीने अपने पुत्रका धुंधुकारी नाम रखा। दूसरी ओर जिस गायको वह फल खिलाया गया था, उसने गाय जैसे कानोंवाले मनुष्याकार बालकको जन्म दिया। उसका नाम गोकर्ण रखा गया। दोनों बालक बड़े हुए। गोकर्ण पण्डित और ज्ञानी हुआ और धुंधुकारी दुष्ट निकला।

श्रीभागवतकी कथा तीन प्रकारसे है: आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। जरा सोचेंगे तो समझमें आएगी।

मानवकाया ही तुङ्गभद्रा है। भद्राका अर्थ है कल्याण करनेवाली और तुङ्गका अर्थ है अधिक। अत्यधिक कल्याण करनेवाली नदी ही तुङ्गभद्रा नदी और वही मनुष्यका शरीर है।

मानव अपनी कायाके द्वारा ही आत्मदेव हो सकता है।

अपनी आत्माको स्वयं देव बनाये वही आत्मदेव है। आत्मदेव ही जीवात्मा है। हम सब आत्मदेव हैं। नर ही नारायण बनता है। मानवदेहमें रहा हुआ जीव, देव बन सकता है और दूसरोंको भी देव बना सकता है।

पशु अपने शरीरसे अपना कल्याण नहीं कर सकते। मनुष्य बुद्धिवाला प्राणी होनेके कारण अपने शरीरसे अपना तथा दूसरोंका कल्याण कर सकता है।

गुस्सा करनेवाली और कुतर्क करनेवाली धुंधुली बुद्धि ही है। प्रत्येक घरमें यह धुंधुली होती है। धुंधुली कथामें भी ऊधम मचाती है। द्विधा बुद्धि, द्विधा वृत्ति ही यह धुंधुली है। ऐसी द्विधा बुद्धि जब तक होती है, तब तक आत्मशक्ति जाग्रत नहीं होती।

बुद्धि दूसरोंकी बातोंमें नाहक टाँग अड़ाती है। यह बहुत बड़ा पाप है।

मैं कौन हूँ, मेरे स्वामी कौन हैं, इसका विचार बुद्धि नहीं करती है।

बुद्धिके साथ आत्माका विवाह (सम्बन्ध) तो हुआ किन्तु जब तक उसे कोई महात्मा न मिले, सत्संग न हो, तब तक विवेक नहीं आता है और विवेकरूपी पुत्रका जन्म नहीं होता।

विवेक ही आत्माका पुत्र है।
बिनु सत्संग विवेक न होई।

आत्मा और बुद्धिके सम्बन्धसे विवेकरूपी पुत्रका यदि जन्म नहीं होता, तो संसाररूपी नदीमें जीव डूब मरता है। जिसके घरमें विवेकरूपी पुत्र नहीं होता, वह संसाररूपी नदीमें डूब जाता है। इसीसे तो आत्मदेव गंगा किनारे पर डूब मरनेके लिए जाता है।

विवेक सत्संगसे जाग्रत होता है और विवेक आत्माको आनन्दित करता है।

स्वयं देव बननेकी और दूसरोंको देव बनानेकी शक्ति आत्मामें है। किन्तु इस आत्मशक्तिको जाग्रत करना है। हनुमान्‌जी समर्थ थे किन्तु जाम्बुवान्‌ने उनको अपने स्वरूपका ज्ञान कराया, तभी उन्हें अपने स्वरूपका ज्ञान हुआ।

आत्मशक्ति सत्संगसे जाग्रत होती है। सत्संगके बिना जीवनमें दिव्यता आती नहीं है।

सन्तमहात्मा द्वारा दिया गया विवेकरूपी फल बुद्धिको पसन्द नहीं है।

बुद्धि धुंधलीकी छोटी बहन है। मन बुद्धिकी सलाह लेता है तो दुःखी होता है। मन कई बार आत्माको धोखा देता है। मन स्वार्थी है। मन कहे, वह मत करना। सलाह सिर्फ ईश्वरकी ही लेनी चाहिए।

कुछ विचार करो। आत्मदेवकी आत्मा भोली है। उसे मन-बुद्धि बारबार धोखा देते हैं। मनकी सलाह मत लो। आत्मदेव मन-बुद्धिका छल समझ नहीं सका।

फल गायको खिलाया। गो अर्थात् गाय-इन्द्रिय-भक्ति आदि अर्थ होता है। फल गायको अर्थात् इन्द्रियको खिलाया।

सूतजी समझाते हैं कि सत्संगसे तुरंत ही इन्द्रियोंकी शुद्धि नहीं होती। मन और बुद्धि, जब भागवत और भगवान्का आसरा लेंगे, तभी शुद्ध होंगे।

धुंधुकारी कौन ? सारा समय द्रव्यसुख और कामसुखका चिन्तन करे वही धुंधुकारी है। जिसके जीवनमें धर्म नहीं किन्तु कामसुख और द्रव्यसुख प्रधान है, वही धुंधुकारी है।

सूतजी सावधान करते हैं और कहते हैं कि बड़ा होने पर धुंधुकारी पाँच वेश्याओंमें फँस जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच विषय ही वेश्याएँ हैं। ये पाँच विषय ही धुंधुकारी अर्थात् जीवको बाँधते हैं।

वह शवके हाथोंसे खाता था। साफ लिखा है—शवहस्ते भोजनम्। शवके हाथ कौनसे ? जो हाथ परोपकार नहीं करते, वही हाथ शवके हाथ हैं।

जिन हाथोंसे श्रीकृष्णकी सेवा न हो, जो हाथ परोपकार न करें, वे हाथ शवके हाथ ही हैं।

धुंधुकारी स्नान और शौचक्रियासे हीन था। कामी था, अतः स्नान तो करता ही होगा। परन्तु स्नानके बाद सन्ध्या-सेवा न करे तो वह स्नान व्यर्थ ही है। अतः कहा गया है कि वह स्नान करता नहीं था।

स्नान करनेके पश्चात् सत्कर्म न हो तो वह स्नान पशुस्नान है। स्नान करनेके बाद यदि सत्कर्म न किया जाय तो वह स्नान किस कामका ? स्नान केवल शरीरको ही स्वच्छ रखनेके लिए नहीं है।

स्नान करनेके बाद सेवा, संध्या, गायत्री न हो तो वह स्नान भी पाप हो जाता है। शास्त्रोंमें तीन प्रकारके स्नान बताये गये हैं। उसमें ऋषिस्नान श्रेष्ठ है। उषःकालमें ४ से ५ बजेके समयमें जो स्नान किया जाय, वह ऋषिस्नान है। इसके बाद ५ से ६॥ बजे तकके समयमें किया गया स्नान मनुष्यस्नान है और ६॥ बजेके बाद किया जानेवाला स्नान राक्षसी स्नान है।

भगवान् सूर्यनारायणके उदयके पश्चात् दन्तधावन, शौच आदि करना योग्य नहीं है।

सूर्य बुद्धिके स्वामी देव हैं। उनकी संध्या करनेसे बुद्धि सतेज होती है। स्नान और संध्या नियमित करो। सम्यक् ध्यान ही संध्या है।

नित्य सत्कर्म किये बिना किया जानेवाला भोजन, भोजन नहीं है। ऐसा मनुष्य भोजन नहीं करता है किंतु पापका प्राशन करता है।

गीताजीमें कहा गया है—

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

—गीता अ० ३ श्लोक १३

जो पापी लोग अपने शरीरके पोषणके लिए अन्नोत्पादन करते हैं, वे पापका भोजन कर रहे हैं। अतः हमेशा सत्कर्म करो। आयुष्यका सदुपयोग करो।

तन और मनको दंड दोगे तो पापका क्षय होगा और पुण्यकी वृद्धि होगी। अपने मनको आप स्वयं दण्ड नहीं देंगे तो और कौन देगा ?

पुत्रके दुराचरणोंको देखकर आत्मदेवको ग्लानि हुई। उसने सोचा कि वह पुत्रहीन ही रहता तो अच्छा होता। धुंधुकारीने सारी सम्पत्तिका व्यय कर दिया। अब तो वह माता-पिताको भी पीटने लगा।

पिताके दुःखको देखकर गोकर्ण पिताके पास आया। गोकर्ण पिताको वैराग्यका उपदेश देता है। यह संसार असार है और दुःखरूप तथा मोहसे बाँधनेवाला है। किसका पुत्र और धन भी किसका ?

संसारको वंध्यासुतकी उपमा दी गई है। संसार मायाका पुत्र है और जब माया मिथ्या है तो संसार वास्तविक कैसे हो सकता है ?

गोकर्ण आत्मदेवसे कहता है कि तुम अब घरबार छोड़कर वनगमन करो। घरके मोहका अब त्याग करो। सब कुछ समझ-बूझकर स्वयं छोड़ दो, नहीं तो काल बलात् छुड़ायेगा।

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुंच।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥

—भागवत माहात्म्य अ० ४ श्लोक ७९

यह देह हाड़, मांस और रुधिरका पिंड है। इसे अपना मानना छोड़ दो। स्त्री-पुत्रादिकी ममता छोड़ो। यह संसार क्षणभंगुर है। इसमेंसे किसी भी वस्तुको स्थायी समझकर उससे राग, मोह न करो। केवल वैराग्यके रसिक बनो और भगवान्‌की भक्तिमें डूब जाओ।

संसारमोहके त्याग बिना भक्ति नहीं होती

किसी भी प्रकारसे मनको सांसारिक विषयोंमेंसे वीतरागी करके प्रभु-प्रेममें लगाओ। संसारासक्ति नष्ट न होगी, तब तक भगवदासक्ति सिद्ध न होगी। संसारके विषयोंमें मत फँसे रहो। ठाकुरजीके चरणोंमें रहो।

यह देह अपना नहीं है। कारण इसे हम हमेशा रख नहीं सकेंगे। तो और तो अपना होगा ही कौन ?

पिताजी, अब बहुत गुजर गई और थोड़ी ही रही। गङ्गा किनारे जाकर ठाकुरजीकी सेवा करो। मनको विक्षेप होनेपर उसे कृष्ण-लीलाकी कथामें लगा दो। भावना रखोगे तो हृदयका परिवर्तन होगा। सेवा और सत्कर्ममें परदोषदर्शन विघ्नकर्त्ता है। अतः परदोषदर्शनका त्याग करो।

पिताजी, अब तुम श्रीभगवान्‌का आश्रय लेकर भगवान्मय जीवन बिताओ। भगवान्मय जीवन जीनेके लिए ध्यान, जप और पाठ अति आवश्यक है।

उत्तम पाठके छः अङ्ग हैं—मधुरता, स्पष्ट अक्षरोच्चार, पदच्छेदका ज्ञान, धीरज, लय सामर्थ्य और मधुर कण्ठ। पाठ शांत चित्तसे करो। समझे बिना और अतिशय शीघ्रतासे पाठ मत करो।

आत्मदेव गङ्गाकिनारे आया। मानसी सेवा करने लगा। एकांतमें बैठकर मनको एकाग्र करने लगा।

चंचल मनको विवेकरूपी बोधसे सँभालो और ध्यानमग्न रखो। सङ्कल्प-विकल्पसे मनको दूर रखो। मानसिक सेवामें मनकी धारा अटूट रहनी चाहिए। ऐसी सेवा दिव्य होती है। उच्च स्वरसे जपपाठ करनेसे मन एकाग्र होता है, निरोध होता है।

आत्मदेव सतत भागवत—ध्यानमें तन्मय बने हैं।

निवृत्तिमें सतत सत्कर्म होना चाहिए। अन्यथा निवृत्तिमें भी पाप प्रगट होगा।

आत्मदेव दशम स्कंधका पाठ करते हैं। इसका नित्य पाठ करनेसे वह सचमुच देव बना।

आत्मा परमात्मासे मिलती है तो वह देव बनती है। आज जीव और शिव एक हुए। जीव और शिवका मिलन हुआ।

भागवतका जो आसरा ले, वह भगवान् बनता है। जो ईश्वर होता है, उसे परमात्मा अनेक बार अपनेसे भी बड़ा बनाता है।

श्रीपरमात्माके दो स्वरूप हैं—एक अर्चनास्वरूप और दूसरा नामस्वरूप। श्रीमद्भागवत भगवान्‌का नामस्वरूप है। सामग्रीसे जिसकी अर्चना (पूजा) हो, वह अर्चनास्वरूप है।

नामस्वरूपके बिना स्वरूपसेवा फलवती नहीं होती है, स्वरूपसेवा ठीक तरहसे भी होती नहीं है। उसका कारण यह है कि मनकी शुद्धि नहीं हुई है। मनकी शुद्धिके बिना स्वरूप-सेवामें आनन्द नहीं मिलता है। सेवक जब तक संसारके साथ भी सम्बन्ध रखता है, माया रखता है, तब तक उसे स्वरूपसेवाका आनन्द नहीं मिलता है।

यदि सेवा करनी ही है तो संसारका स्नेह, मोह छोड़ना होगा। संसारके विषयोंसे स्नेह करो तो विवेकके साथ करो। अग्नि वैसे तो सब कुछ भस्मीभूत करती है, फिर भी उसका यदि विवेकपूर्वक उपयोग किया जाए तो अग्नि उपयोगी होती है। अग्नि न हो तो मनुष्यका पोषण नहीं हो सकता।

मनुष्य इस संसारमें जब तक अपने शरीरके प्रति समान है तब तक वह इस संसारको छोड़ नहीं सकता। जो मन मायाका स्पर्श करता है वह मन मनमोहनकी सेवामें जा नहीं सकता। मन तो बारबार मायाका विचार करता है। अतः वह मलिन होता है। नामसेवा मनकी शुद्धिके लिए ही है।

जब तक स्वरूपसेवामें मन एकाग्र न हो तब तक नामसेवा करो।

स्वरूपसेवामें आनन्द नहीं आता है क्योंकि मन व्यग्र है, चंचल है। अपना मन ईश्वरको छोड़कर बारबार विषयोंकी ओर ही जाता है। मनुष्यका मन संसार-व्यवहारके साथ इतना तो तद्रूप हो जाता है कि जिसके कारण वह पाप करता है और उसे अपने पापोंका भान भी नहीं रहता है।

स्वरूपसेवा करते-करते हृदय पिघले, आँखें गीली हों, आनन्द हो और हृदयमें सात्त्विक भाव जागे तो मानो कि सेवा सफल हुई। हृदयकी भावना बिना की गई सेवा फलवती नहीं होती। जीव शुद्ध होकर परमात्माकी सेवा करे तो श्रीठाकुरजी प्रेमसे प्रसन्न होते हैं।

मनमें अनेकों जन्मोंका मैल भरा होता है। और स्वरूपसेवामें मनकी शुद्धि अति आवश्यक है। मन शुद्ध नहीं है परिणामतः स्वरूपसेवा फलवती नहीं होती है। मनको शुद्ध करनेके लिए नामसेवाकी आवश्यकता है। मनकी अशुद्धि नष्ट करता है श्रीमद्भागवत।

कलियुगमें नामसेवा प्रधान है। श्रीभागवत भगवान्‌का ही नामस्वरूप है। नाम ही ब्रह्म है। नाम ही परमात्मा है। और अधिक क्या कहें? नाम परमात्मासे भी श्रेष्ठ है। ईश्वर तो अदृष्ट हैं। उनके साथ स्नेह करना कठिन है। नामस्वरूप तो स्पष्ट दीखता है।

जिसका प्रत्यक्ष दर्शन न हुआ हो उसके नामको पकड़ोगे तो वह अवश्य दृष्टिगोचर होगा। ईश्वरका स्वरूप सबके लिए अनुकूल और सुलभ नहीं है परन्तु नामस्वरूप सुलभ है। ज्ञानी पुरुष नाममें निष्ठा रखते हैं। वे नामका आश्रय लेते हैं। नाम ही ईश्वरका स्वरूप है। श्रीरामजीने तो कुछ ही जीवोंका उद्धार किया था, परन्तु उनके बाद उनके नामसे अनेकोंका उद्धार हो गया। श्रीकृष्णजी जब पृथ्वी पर विराजमान थे तब जितने जीवोंका उद्धार हुआ था उसकी तुलनामें उनके नामसे अनगिनत लोग संसार-सागरको पार कर गए।

बड़ेसे बड़ा पाप कौन-सा है? ईश्वरके नामके प्रति निष्ठाका अभाव। नामसाधन सरल है। श्रीभागवत भगवान्‌का नामस्वरूप है। श्रीमद्भागवतका आश्रय ही नामका आश्रय है।

जो भागवतका आश्रय लेता है वह भगवान् बनता है।

आत्मदेव श्रीभागवतका आश्रय लेकर दशम स्कन्धका पाठ करता था। केवल दशम स्कन्धके पाठसे ही उसे मुक्ति मिली थी।

यदि संस्कृतका ज्ञान हो तो प्रतिदिन दशम स्कन्ध, विष्णु सहस्रनाम और शिव महिम्न स्तोत्रका पाठ करो। पाठ अर्थके ज्ञानके साथ करो। अर्थज्ञान बिना किया गया पाठ अधम पाठ है।

भगवान् जल्दी प्राप्त नहीं होते हैं, वे जल्दी कृपा नहीं करते हैं क्योंकि आप इसके लिए कष्ट सहन नहीं करते हैं। जीव कष्ट सहन करनेसे कतराता है। भगवान्‌की कृपाके लिए दुःख सहन करो। जो स्वेच्छासे कष्ट सहन करता है उसे यम दुःखी नहीं कर सकते।

आत्मदेव आसन लगाकर दस-बारह घण्टे बैठता था।

आसन पर शांत चित्तसे बैठो। ज्ञानियोंको जो आनन्द समाधिमें मिलता है वह आनन्द आपको भी कथामें मिलेगा। जिस लीलाकी यह कथा है वह प्रत्यक्ष ही हो रही है ऐसा सोचोगे तो आनन्द मिलेगा। सोचो कि मेरा मन ईश्वरसे तदाकार हो गया है।

दृश्यमेंसे दृष्टि हट जाए और द्रष्टामें स्थिर हो तो मनका निरोध होगा और आनन्द प्रगटेगा।

गोकर्णको लगा कि धुंधुकारीका व्यवहार उसे भी विक्षेपरूप होगा तो वह भी वनमें जा बसा। इधर धुंधुकारी वेश्याओंको प्रसन्न रखनेके लिए चोरी करने लगा।

सूतजी सावधान करते हैं।

जीव प्रत्येक इन्द्रियोंका स्वामी है। परन्तु इन्द्रियाँ जीव पर प्रभुत्व जमा लें और मनुष्य इन्द्रियोंके आधीन हो जाए तो जीवन कलुषित हो जाता है। मन ईश्वरके साथ मैत्री करे तभी सुखी होता है। ईश्वरसे अलग होनेपर वह दुःखी होता है। जीवमात्र मनसुखा है।

धुंधुकारी अनिष्ट मार्गोंसे अर्थोपार्जन कर रहा है। वह राजाके महलमें चोरी करने गया। अलङ्कार आदि चुरा लाया और वेश्याओंको दिया। वेश्याएं सोचती हैं कि यदि यह जीवित रहेगा तो हम किसी भी दिन पकड़ी जाएंगी। ऐसा होने पर राजा हमारा सारा धन छीन लेंगे और शायद और भी दण्ड भुगतना पड़ेगा। सो इसे (धुंधुकारीको) हम मार ही डालें तो अच्छा रहेगा। ऐसा सोचके उन्होंने धुंधुकारीको रस्सीसे बांधा और उसके गलेमें फाँसीका फंदा डाला। फिर भी धुंधुकारी मरता नहीं है।

अति पापीकी मृत्यु भी जल्दी नहीं होती।

वेश्याओंने जलते हुए अङ्गारे धुंधुकारीके मुखमें भर दिए और मार भी डाला।

पाँच इन्द्रियाँ ही अन्तकालमें जीवको मारती हैं, कष्ट देती हैं और उस समय जीव तड़पता है, छटपटाता है।

और उसके बाद वेश्याओंने धुंधुकारीके शरीरको पृथ्वीमें गाड़ दिया। उसके शरीरका अग्निसंस्कार भी वेश्याओंने नहीं किया।

जिसके चरित्रको देखनेमात्र ही से घृणा हो जाय वह ही है धुंधुकारी। धुंधुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयङ्कर प्रेत बना है। पापी ही प्रेत बन जाता है। पापी तो यमपुरीमें भी नहीं जा सकता। वह तो प्रेत ही होता है।

गोकर्णने धुंधुकारीकी मृत्युका समाचार सुना। वह गयाजी गया और उसने वहाँ धुंधुकारीकी श्राद्धक्रिया की।

गयाश्राद्ध श्रेष्ठ है। वहाँ श्रीविष्णुपाद है। इसकी कथा इस प्रकार है। गयासुर नामका एक राक्षस था कि जिसने तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया। ब्रह्माजीने वर माँगनेको कहा। तब उसने ब्रह्माजीको कहा कि आप क्या वरदान मुझे देंगे। आपको कुछ माँगना हो तो मुझसे माँगिए। उसकी तपश्चर्यासे देवता भी भयभीत हो गए कि यह असुर कैसे मरेगा? ब्रह्माजीने सोचा कि इसके शरीर पर दीर्घकाल तक यज्ञ कराने पर ही वह मरेगा। अतः ब्रह्माजीने यज्ञके लिए उससे उसका शरीर ही माँगा। यज्ञकुण्ड गयासुरकी छातीपर बनाया गया। सौ वर्ष तक यज्ञ चलता रहा फिर भी गयासुर नहीं मरा। यज्ञकी पूर्णाहुति होने पर वह उठने लगा। ब्रह्माजी चिन्तातुर हुए। ब्रह्माजी भयभीत भी हुए। उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया। उन्होंने श्रीनारायणका ध्यान किया। नारायण भगवान् प्रगट हुए और गयासुरकी छाती पर

दोनों चरण रखे। गयासुरने मरते समय भगवान्से वर माँगा कि इस गयातीर्थमें जो कोई श्राद्ध करे उसके पितृगण सद्गति प्राप्त करें। भगवान्ने उसे वर दिया कि जो तेरे शरीर पर पिंडदान करेगा उसके पितरोंकी मुक्ति होगी। भगवान्ने गयासुरको भी मुक्ति दी। भगवान्के वरदानके कारण गयाजीमें पितृश्राद्ध करनेवालेके पितरोंको मुक्ति होती है।

गोकर्ण बादमें अपने घरको लौटा। रातमें उसने किसीके रोनेकी आवाज सुनी।

मनुष्य पाप करता हुआ तो हँसता है, पर पापका दण्ड जब भुगतना पड़ता है तब वह रोता है।

एक ही मातापिताके पुत्र होने पर भी गोकर्ण देव बना और धुंधुकारी प्रेत।

देव होना या प्रेत होना तुम्हारे अपने हाथोंमें है।

गोकर्णने पूछा कि तू कौन है? तेरी ऐसी दशा क्यों हुई? तू भूत है, पिशाच है या राक्षस?

प्रेतने कहा कि मैं तुम्हारा भाई धुंधुकारी हूँ। बहुत पाप करनेके कारण मेरी यह हालत हुई है। मुझे प्रेतयोनि मिली है।

गोकर्णने पूछा कि तेरे लिये मैंने गयामें पिण्डदान किया फिर भी तू प्रेतयोनिसे मुक्त क्यों न हुआ?

प्रेतने कहा—"गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति। चाहे कितने भी गयाश्राद्ध करो फिर भी मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी।" केवल श्राद्धमात्र उद्धार नहीं कर सकता।

गोकर्णने पूछा—"तुझे सद्गति कैसे मिलेगी? क्या करूँ?" फिर सोच कर कहता है कि मैं कल सूर्यनारायणसे पूछूँगा।

दूसरे दिन गोकर्णने सूर्यनारायणको अर्घ्य दिया और उनसे कहा—"महाराज! जरा रुकिए।" सूर्य नारायण रुक गए। यह त्रिकाल संध्याका फल है।

ब्राह्मणको चाहिए कि वह त्रिकाल संध्या कभी न चूके। त्रिकाल संध्या करनेवाला न तो कभी मूर्ख रहता है और न तो कभी दरिद्र।

सूर्यनारायणने पूछा—"क्या काम है मेरा?"

गोकर्णने कहा कि मेरे भाईके उद्धारका कोई उपाय बताइए।

सूर्यनारायणने कहा—"अपने भाईको सद्गति दिलानेकी इच्छा हो तो भागवतकी विधिपूर्वक कथा कर।" श्राद्धसे जिस आत्माकी मुक्ति नहीं होती है, उसे भागवत मुक्त करता है। भागवतशास्त्र मुक्तिशास्त्र है। भागवतसे मुक्ति मिलती है।

धुंधुकारीको पापसे मुक्त करानेके लिए गोकर्णने भागवत-सप्ताहका आयोजन किया। धुंधुकारी वहाँ आया किंतु उसे बैठनेके लिए जगह न मिली तो सात गाँठवाले बाँसमें वह प्रविष्ट हुआ। रोज एकके बाद एक गाँठ टूटती गई। सातवें दिन परीक्षित-मोक्षकी कथा हुई। बाँसमेंसे दिव्य पुरुष बाहर निकला। गोकर्णको प्रणाम करके वह बोला—"भाई! प्रेतयोनिसे तूने मुझे मुक्त किया।"

धन्य है भागवत कथा।

जड़ बाँसकी गाँठ टूटती है तो फिर चेतनकी क्यों न टूटे ? विवाहमें दो व्यक्तियोंके दामन बाँधे जाते हैं। पति-पत्नीका स्नेह ही ग्रंथि है। इस ग्रंथिका छूटना कठिन है। परमात्माकी सेवा करनेके लिए एक-दूजेका साथ मिला है, ऐसा सोचें तो पति-पत्नी सुखी हो सकते हैं।

बाँसमें अर्थात् वासनाओंमें धुंधुकारी रहा था। बाँसकी सात गाँठ अर्थात् वासनाओंकी सात गाँठ। वासना ही पुनर्जन्मका कारण है। अतः वासनाको नष्ट करो। वासना पर विजय पाना ही सुखी होनेका उपाय है, मार्ग है। मनुष्य मोहको नहीं छोड़ सकता। वासना अर्थात् आसक्ति सात प्रकारकी होती है—(१) नारीकी आसक्ति (पति-पत्नीकी आसक्ति) (२) पुत्रकी आसक्ति (पिता-पुत्रकी आसक्ति), (३) व्यावसायिक आसक्ति (४) द्रव्यकी आसक्ति (५) कुटुम्बकी आसक्ति (६) घरबारकी आसक्ति (७) गाँवकी आसक्ति। इन सभी आसक्तियोंका त्याग करो।

शास्त्रमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अविद्याको सात गाँठ कहा गया है। इनमें जीव बंधा हुआ है, जिसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना है।

बाँस वासनाका रूप है। जीव वासनाओंमें फँसा हुआ है। वासनासे ही जीवमें जीव-भाव आया है। वह निष्कामसे सकाम बना। वासनाओंकी ग्रन्थियाँ जब तक न छूटें, तब तक जीवभाव निर्मूल नहीं होता।

श्रीभागवतकी कथाके श्रवणसे वासनाकी हरेक ग्रन्थि टूटती है। भागवत कथासे ये ग्रन्थियाँ टूटती हैं। प्रभुसे प्रेम बढ़े तो आसक्तिकी ग्रन्थियाँ टूटने लगें। श्रीभगवान्के नामका जप करेंगे और वही एक सत्य है, ऐसा मानकर उसका नित्य स्मरण करेंगे तो वासनाओंकी ग्रन्थियाँ छूट जाएँगी।

एक गृहस्थका नियम था और वह बारह वर्षोंसे कथा सुनता आया था। एक ब्राह्मण रोज कथा करनेके लिए आता था। एक दिन सेठके बाहर जानेका प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। कथाश्रवणके नियमको भङ्ग कैसे किया जाय ? उसने ब्राह्मणसे कहा कि मैं कल कथा नहीं सुन सकूँगा। मेरे नियमका क्या होगा ? ब्राह्मणने कहा कि तुम्हारा पुत्र कथा सुनेगा तो चल जाएगा। गृहस्थने पूछा कि कथा सुननेसे वह वीतरागी बन गया तो ? ब्राह्मणने कहा—बारह वर्षोंसे तुम कथा सुनते आए हो, फिर भी तुम्हें वीतराग न हुआ तो फिर एक ही दिनकी कथासे तुम्हारा पुत्र कैसे विरागी हो जायेगा ? यजमान कहता है, "हम तो रोज कथा सुनते हैं किंतु मनकी गाँठ नहीं छोड़ते हैं।" ऐसा मत करो। कथा सुनकर मनकी गाँठ छूटनी चाहिए।

जीव जब तक संसारसुखका त्याग मनसे भी न करे, तबतक भक्ति सिद्ध नहीं होती है। भोगका त्याग भी नहीं करना है और भक्ति भी करनी है। यह कैसे हो सकता है। धीरे धीरे मनको, स्वभावको सुधारना चाहिए। स्वभावके सुधरने पर ही भक्ति सिद्ध होती है।

ज्ञान और वैराग्यको पुष्ट करनेके लिए ही यह भागवत कथा है।

परमात्माके चरणोंमें आसरा लेकर ही महापापी धुंधुकारी देवता जैसा बना। धुंधुकारी कहता है कि इस कथासे ही मेरे जैसे पापीको भी परम गति प्राप्त हुई।

धुंधुकारीको लेनेके लिए पार्षद विमान लेकर आए। गोकर्णने पार्षदोंसे पूछा— केवल धुंधुकारीको लेनेके लिए ही विमान क्यों लाए और किसीको लेनेके लिए क्यों नहीं ?

पार्षद कहता है—वह (धुंधुकारी) एक आसन पर बैठता था, अनशन करता था और रोज कथाका मनन करता था।

प्रभुके चरणमें—मनमें निवास करना ही उपवास है। उपवासके समय कुछ भी खाने पर पूर्ण उपवास नहीं होता है।

कथा सुनकर केवल धुंधुकारीको ही मुक्ति क्यों मिली? कथा धुंधुकारीकी ही तरह सुननी चाहिए। उसने कथाका मनन और निदिध्यासन किया, अतः उसे मुक्ति मिली।

श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे ज्ञान दृढ़ होता है।

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्।
संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः॥

बिना दृढ़ताका ज्ञान व्यर्थ है। उसी भाँति लापरवाहीसे किया गया श्रवण भी व्यर्थ ही है। सन्देहयुक्त मन्त्र व्यर्थ है। व्यग्रचित्तसे किए गए जपका भी कोई फल नहीं मिलता। सन्देह करनेसे मन्त्र और चित्तके इधर-उधर भटकनेसे जप फलदायी नहीं होते। कथामें मन बिना बैठकर श्रवण करनेसे क्या लाभ? वह फलदायी नहीं होता। कथा सुनते समय तन, मन और घरकी समानता भूल जानी चाहिए। देह-गेहात्मक विस्मृतिसे और तन्मयतासे कथा सुननी चाहिए। मैं ईश्वरके साथ तन्मय होना चाहता हूँ, ऐसी भावना रखो। कथा सुनकर और मनन करके जीवनमें उतारोगे तो कथाश्रवण सार्थक होगा। कथा सुनकर जीवनमें एक लक्ष्य निश्चित किया जाय। श्रीभागवत भगवान्‌की कथा सुनकर कुछ ग्रहण करो। कथाका कोई एक शब्द भी मनमें कुरेदोगे तो जीवनका उद्धार हो जाएगा।

सबको प्रतीति हुई कि धुंधुकारीकी तरह हमने कथा सुनी नहीं, अतः हमें उस जैसी गति नहीं मिली। कथाका मनन करें तो वह उत्तम तो है ही, परंतु मनन न करें तो भी लाभ तो है ही। इसके पश्चात् गोकर्णने श्रावण मासमें दूसरी बार कथा कराई और सबका उद्धार हुआ।

उस समय महारानी भक्ति वहाँ प्रकट हुई। ज्ञान और वैराग्यके साथ आई। इस कथासे महारानी भक्ति प्रकट होती है। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति बढ़े तो मुक्ति मिले। ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। भक्ति महारानी आनन्दित हुई और ज्ञान-वैराग्यके साथ नृत्य करने लगीं।

मूर्छित और क्षीण ज्ञानको फिरसे पुष्ट करनेके लिए, जाग्रत करनेके लिए यह श्रीभागवतकी कथा है।

गोकर्णके सभामण्डपमें भगवान् प्रगट हुए। उन्होंने गोकर्णसे कहा कि मैं तुम्हारे कथा—कीर्तनसे प्रसन्न हुआ हूँ। तुम कोई वरदान माँगो।

उस समय सनत्कुमार कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीकृष्णकी कथा करे, कीर्तन करे ऐसे वैष्णव भक्तके हृदयमें आप विराजमान हों। सबको सद्‌गति मिली है।

वैकुण्ठमें जो आनन्द मिलता है, वही आनन्द श्रीभागवत कथामें मिलता है। परन्तु शर्त यह है कि प्रेमपूर्वक इस कथाका श्रवण किया जाए। कथा श्रवणके समय इस जगत्‌को विस्मृत

करना चाहिए। श्रीभागवत ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो मृत्युके पश्चात् ही मुक्ति दिलाए। यह तो मृत्युके पहले ही मुक्ति दिलाता है।

भागवत मुक्ति प्राप्त करानेका शास्त्र है।

वेदांतके दिव्य सिद्धांत व्यासजीने इस माहात्म्यमें ही भर दिये हैं। छठा अध्याय। विधि बतानेके लिए है।

सत्कर्म विधिपूर्वक किया जाए तो दिव्य बनता है। सत्कर्म कालके नियमसे अबाधित है। सत्यनारायणकी कथामें भी कहा है—

सत्कार्य करनेमें देर न करो।

धर्मराजके पास आकर एक याचकने दान माँगा। धर्मराजने उसे अगले दिन आनेको कहा। भीमसेनने इस बातचीतको सुनते ही विजयदुन्दुभि बजानी शुरू कर दी। सबने सोचा कि भीमसेन कहीं पागल तो नहीं हो गया है, क्योंकि विजयदुन्दुभि विजयके समय ही बजाई जाती है। भीमसेनने इसका कारण बताते हुए कहा कि आज हमारे बड़े भाईने कालको भी नियन्त्रणमें कर लिया। वे जान गए हैं कि वे अगले दिन भी जीनेवाले हैं। धर्मराजके इस कालविजयके उपलक्ष्यमें मैं यह दुन्दुभि बजा रहा हूँ। धर्मराजको अपनी इस भूलका तुरन्त ज्ञान हो गया।

कहा गया है :—"न जाण्युं जानकीनाथे सवारे शुं थवानुं छे।" अर्थात् जानकीनाथ भगवान् श्रीराम भी नहीं जान सके कि कल प्रातःकाल क्या होगा।

धर्मराजने याचकको तुरन्त वापस बुलाया और यथायोग्य दान दिया।

सत्कर्म तत्काल करो।

भवरोगकी औषधि है भागवतकथा।

जीवमात्र रोगी हैं। सबसे दुःखदायी रोग है जीवका ईश्वरसे वियोग। इस रोगके निवारणके लिए श्रीभागवतका आसरा लो। श्रीकृष्णसे विरहरूपी रोगको दूर करनेकी औषधि यह भागवतशास्त्र है। रोगकी परिचर्याके समय आहार-विहार आदिके कुछ नियम हमें मानने पड़ते हैं, वैसा ही कुछ इस कथाके लिए भी जरूरी ही है। शुभ मुहूर्तमें कथाका आरम्भ होना चाहिए।

कथाके वक्ताके लिए भी कुछ जरूरी लक्षण बताए गए हैं। पहला लक्षण है विरक्तभाव। श्रीशुकदेवजी जगत्से अस्पृष्ट नहीं थे, फिर भी वे निर्विकार थे। हम भी जगत्में रहते हैं, देखते हैं परन्तु हमारी आँखें विकाररहित नहीं हैं। श्रीशुकदेवजी ब्रह्मदृष्टिवाले थे। प्रत्येक स्त्री-पुरुषको वे भगवद्भावसे देखते थे।

प्रत्येक नर-नारीको भगवद्भावसे देखो।

सूतजी सावधान करते हैं।

क्या अर्थ है वैराग्यका? उपभोगके लिए अनेक पदार्थ सुलभ होने पर भी मन उनके प्रति आकर्षित न हो, वही वैराग्य है। जगत्का त्याग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु भोगदृष्टिसे देखनेकी वृत्तिका त्याग करना है। अपनी विकारी दृष्टिको बदलना है। जगत्को

कामदृष्टिसे, भोगदृष्टिसे मत देखो। जबतक दृष्टिका दोष नहीं जाता, तब तक हमारी दृष्टि देवदृष्टि नहीं होगी।

उपदेशकर्ता ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञ होना चाहिए। वह धीर, गंभीर और दृष्टांतकुशल होना चाहिए।

वक्ता अति निःस्पृही भी होना चाहिए। द्रव्यका मोह तो छूट जाता है, परन्तु कीर्तिका मोह छोड़ना बड़ा कठिन कार्य है। जीव कीर्तिका मोह रखता ही है। जो मनुष्य कीर्तिके मोहमें फँसा हुआ है, वह भक्ति नहीं कर सकता।

जब भी कथाश्रवण करें, संसारसे निर्लिप्त होकर करें। कथामें बैठकर भी घरबार और धंधेकी बात ही सोचते रहनेसे मन विकृत होता है। कथामण्डपमें केवल कथाका ही विचार करो। अन्य सभी चिंताएँ छोड़कर कथामें बैठो।

वक्ता और श्रोताको चाहिए कि वे आँख, मन, वाणी, कर्म और प्रत्येक इन्द्रियसे भी ब्रह्मचर्यका पालन करें।

मन स्थिर करनेके लिए ऊर्ध्वरेता होना जरूरी है। ब्रह्मचर्यपालनसे ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं। क्रोधित होनेसे पुण्यका क्षय होता है। वक्ता और श्रोता क्रोध न करें। विधिपूर्वक कथा-श्रवण करनेसे उसका फल प्राप्त होता है। कथाका श्रवण करनेवाले वैष्णव यमपुरीमें नहीं जाते। वे वैकुण्ठमें जाते हैं।

भागवतकी कथाका श्रवण जो प्रेमसे करता है, उसका सम्बन्ध भगवान्‌से जुड़ता है। भागवत भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप है। यह श्रीभगवान्‌का वाङ्मयरूप है।

वेदांतमें अधिकार और अधिकारीकी अच्छी चर्चा की गयी है।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

सबको वेदांतका अधिकार नहीं है। नित्यानित्य-वस्तु-विवेक, शमदमादि षड्संपत्ति, इहामुत्रफलभोगविराग विना वेदांताधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। वेदोंके तीन विभाग किये गये हैं: कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड। उसी प्रकार उनके अधिकारी भी निश्चित किए गये हैं।

भागवत हर किसीके लिए है। भगवतका आश्रय लोगे तो भागवत तुम्हें भगवान्‌की गोदमें बिठलाएगा। वह तुम्हें निर्भय और निःसन्देह करेगा।

भागवतके श्लोक १८००० क्यों हैं? आठ प्रकृतिके आठ और नौवां ईश्वर, अतः पूर्णता हुई। नवम अङ्क पूर्णतादर्शी है। खानपान, व्यवहार, पत्रलेखन आदि सभी कार्योंकी विधियाँ भागवतमें बतायी गई हैं। एक इसी ग्रंथका अवलम्बन करनेसे सभी प्रकारका ज्ञान प्राप्त होगा।

यह ग्रंथ पूर्ण है। भागवत भगवान् नारायणका ही स्वरूप है। जगत् और ईश्वर, जीव और जगत्, जीव और ईश्वर आदिसे सम्बन्धित ज्ञान भागवतसे प्राप्त होगा।

भागवत कितना सुना तो कहेंगे कि जितनी बातोंको जीवनमें उतारा गया। श्रवण की गई बातोंका मनन करो और उसे व्यवहारमें कार्यान्वित करो।

केवल ज्ञान व्यर्थ है। जीवन—व्यवहारके काममें लाया हुआ ज्ञान ही सार्थक होगा।

गांधीजी भी कहते थे : ढाई मन ज्ञानकी अपेक्षा तोला भर आचरण श्रेष्ठ है।

प्रभुके दिव्य सद्गुणोंको जीवनमें उतारो। पूर्वजन्मका विचार न करो।

जनक राजाने याज्ञवल्क्य ऋषिसे पूर्व जन्मोंकी जीवनलीला देखनेकी माँग की। याज्ञवल्क्यने मना करते हुए कहा कि उसे देखनेसे दुःख ही होगा। फिर भी जनक राजाने दुराग्रह किया। ऋषिने राजाको उनके पूर्वजन्मोंका जीवन दिखाया। जनकराजाने देखा कि उनकी अपनी पत्नी ही पिछले जन्ममें उनकी माता थी। उन्हें दुःख हुआ।

अतः यही अच्छा है कि पूर्वजन्मोंका विचार न करें। इसी जन्मको सार्थक करनेका प्रयत्न करें।

भगवान् ही के साथ विवाह करो और औरोंके भी विवाह कराओ। तुलसी राधारानीका स्वरूप है। तुलसी—विवाहका अर्थ है। अपना भगवान्के साथ विवाह (सम्बन्ध)। चातुर्मासमें संयम और तप करनेके पश्चात् ही तुलसी विवाह हो सकता है।

संयमका पालन करोगे, तप करोगे तो ईश्वर मिलेंगे।

आत्माका तो धर्म है प्रभुके सम्मुख जाना।

॥ हरये नमः हरये नमः हरये नमः

प्रथमः स्कन्धः

मंगलाचरण

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

सत्कर्मोंमें अनेक विघ्न आते हैं। उन सभीके निवारणके लिए मङ्गलाचरणकी आवश्यकता है। कथामें बैठनेसे पहले भी मङ्गलाचरण करो।

शास्त्र कहते हैं कि देवगण भी सत्कर्ममें विक्षेप करते हैं। देवोंको ईर्ष्या होती है कि नारायणका ध्यान यह करेगा तो यह भी अपने समान ही हो जाएगा। अतः देवोंसे भी प्रार्थना करनी आवश्यक है—हे देवो ! हमारे सत्कार्यमें विक्षेप न करना। सूर्य हमारा कल्याण करें, वरुणदेव हम पर कृपा करें।

जिसका मङ्गलमय आचरण है, उसका ध्यान करनेसे, उसे वंदन करनेसे, उसका स्मरण करनेसे मङ्गलाचरण होता है। जिसका आचरण मङ्गल है, उसका मनन और चिन्तन करना ही मङ्गलाचरण है। ऐसे एक परमात्मा हैं। श्रीकृष्णका नाम और धाम मङ्गल है।

संसारकी किसी वस्तु या जीवका चिन्तन न करो। ईश्वरका चिंतन-ध्यान मनुष्य करे तो उसकी शक्ति मनुष्यको मिले।

क्रियामें अमङ्गलता कामके कारण आती है। काम जिसको स्पर्श करे, जिसे प्रभावित करे उसका सब कुछ अमङ्गल होता है। श्रीकृष्णको काम स्पर्श नहीं कर सकता। अतः उनका सभी कुछ मंगल है। जिसके मनमें काम हो, उसका स्मरण करनेसे, उसका काम तुम्हारे मनमें भी आएगा। सकामके चिंतनसे अपनेमें सकामता आती है और निष्कामके चिन्तनसे मन निष्काम बनता है। शिवजीका सब कुछ अमङ्गल है, फिर भी उनका स्मरण मङ्गलमय है क्योंकि उन्होंने कामको जला कर भस्मीभूत कर दिया है। मनुष्य जब तक सकाम है, तब तक उसका मङ्गल नहीं होता।

ईश्वर पूर्णतः निष्काम है अतः उनका ध्यान धरो, स्मरण करो। परमात्मा बुद्धिसे परे है। श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाला निष्काम बनता है। श्रीकृष्णका सतत ध्यान न हो सके तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु जगत्के स्त्री-पुरुषोंका ध्यान कभी न करो।

थोड़ा-सा सोचनेसे ख्यालमें यह बात आ जाएगी कि मन क्यों बिगड़ा हुआ है। संसारका चिंतन करनेसे मन विकृत होता है। प्रभुका चिंतन-स्मरण करनेसे मन सुधरता है।

जीव अमङ्गल है, प्रभु मङ्गलमय है। मनुष्यकी कामवृत्ति नष्ट हो जाय तो सब कुछ मङ्गल हो जाता है। जो कामके आधीन नहीं है, उसका सदा मङ्गल ही होता है।

काम जिसे मार सके, पराजित कर सके वह जीव और कामको जो पराजित कर सके वह ईश्वर।

मनुष्यका अपना अमङ्गल कार्य ही विघ्नकर्ता होता है, किसी औरका नहीं।

प्रत्येक कार्यका आरम्भ मङ्गलाचरणसे करो। भागवतमें तीन मङ्गलाचरण हैं—प्रथम स्कन्धमें व्यासदेवका, द्वितीय स्कन्धमें शुकदेवजीका और समाप्तिमें सूतजीका।

शैयामें सोया हुआ मनुष्य पाप अधिक करता है।

प्रभातके समय मङ्गलाचरण करो, मध्याह्नमें मङ्गलाचरण करो और रातको सोनेसे पहले मङ्गलाचरण करो।

धीमहि। व्यासजीने ध्यान करते हुए कहा कि एक ही स्वरूपका बार-बार चिंतन करो। मनको प्रभुके स्वरूपमें स्थिर करो। एक ही स्वरूपका बार-बार चिंतन करनेसे मन शुद्ध होता है। परमात्माके किसी भी स्वरूपको इष्ट मान कर उसका ध्यान करो।

ध्यानका अर्थ है मानसदर्शन। राम, कृष्ण, शिव या किसी भी स्वरूपका ध्यान करो। सर्वश्रेष्ठ सत्यस्वरूप प्रभुका ध्यान करता हूँ, ऐसा श्रीव्यासजीने मङ्गलाचरणमें कहा है। व्यासजी ऐसा आग्रह नहीं करते हैं कि एकमात्र श्रीकृष्णका ही ध्यान करो। वे किसी भी विशिष्ट स्वरूपका आग्रह नहीं करते हैं। जो व्यक्ति जिस किसी स्वरूपके प्रति आस्थावान् हो उसका ही वह ध्यान धरे। ठाकुरजीके जिस रूपमें हमें आनन्द हो, वही रूप उत्तम है। एक ही स्वरूपके अनगिनत नाम हैं। सनातन धर्मके अनुसार देव अनेक होते हुए भी ईश्वर तो एक ही है। मङ्गलाचरणमें किसी एक देवका नामोल्लेख नहीं है।

ईश्वर एक ही हैं, केवल उनके नाम और स्वरूप अनेक हैं।

वृषभानुकी आज्ञा थी कि राधाके पास जानेका किसी भी पुरुषको अधिकार नहीं है। अतः साड़ी पहनके और चन्द्रावलीका शृङ्गार धारण करके कृष्णजी राधासे मिलने जाते हैं। कृष्ण साड़ी पहनते हैं सो माता बनते हैं।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति।

ईश्वरके अनेक स्वरूप हैं किंतु तत्त्व एक ही है। दीपकके आगे जिस किसी रङ्गका शीशा (काँच) रखेंगे, उसी रङ्गका प्रकाश दिखाई देगा।

हर किसी देवका पूजन करो किंतु ध्यान तो एक ईश्वरका ही करो।

रुक्मिणीकी भक्ति अनन्य है। पूजन देवीका करती हैं, फिर भी ध्यान तो कृष्णका ही धरती हैं।

वंदन हर किसी देवको करो, किंतु ध्यान तो किसी एक ही देवका करो। जिस किसी रूपमें आस्था और रुचि हो, उसी रूपका ध्यान करो।

ध्यान, ध्याता और ध्येयमें एकत्व होना आवश्यक है और ऐसे एकत्व होने पर ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

ध्यानके समय किसी औरका चिंतन मत करो। किसी चेतनका ध्यान करो, जड़का नहीं।

ध्यान करना ही है तो श्रीकृष्णका ध्यान करो। अनेक जन्मोंसे इस मनको भटकते रहनेकी आदत हो गई है। ध्यानमें पहले तो संसारके विषय ही उभरते हैं। वे मनमें न आएँ, ऐसा करनेके लिए ध्यान करते समय परमात्माके नामका बारबार चिंतन करो कि जिससे मन स्थिर हो सके। उच्च स्वरसे कीर्तन करो। कृष्णके कीर्तनसे जगत्का विस्मरण होता है।

परमात्माके मंगलमय स्वरूपका दर्शन करते हुए कीर्तन करो। वाणी कीर्तन करे और आँख दर्शन करे तो मन शुद्ध और पवित्र होता है।

परमात्माका ध्यान करनेसे मन शुद्ध होता है। दान या स्नानादिसे मनशुद्धि नहीं होती है। संसारका चिंतन करते रहनेसे विकृत हुआ मन ईश्वरके सतत चिंतन किए बिना शुद्ध नहीं होगा।

इस शरीर-जैसी मलिन वस्तु और कोई नहीं। इस मलिन शरीरसे परमात्मासे मिलन नहीं हो सकता। इस शरीरका बीज अपवित्र है। ठाकुरजीको मनसे मिलना है। बिना ध्यानके मनोमिलन नहीं हो सकता।

आँखसे श्रीभगवान्का दर्शन और मनसे स्मरण करोगे तो परमात्माकी शक्ति तुम्हें मिलेगी। ईश्वरका ध्यान करनेसे ईश्वरकी शक्ति जीवको मिलती है। ध्यान करनेसे ईश्वर और जीवका मिलन होता है। बिना ध्यानके ब्रह्मसंबंध नहीं हो सकता।

ध्यानकी परिपक्व दशा ही समाधि है। वेदांतमें इसे जीवन्मुक्ति माना गया है। समाधि दीर्घसमय तक रहनेसे ज्ञानियोंको जीते-जी मुक्तिका आनंद मिलता है।

भागवतमें बार-बार कहा गया है कि ध्यान करो और जप करो। हरेक चरित्रमें इस सिद्धांतका वर्णन किया गया है। पुनरुक्ति दोष नहीं है। किसी सिद्धांतको बुद्धिमें दृढ करनेके लिए उसे बार-बार कहना पड़ता है। भागवतके प्रत्येक स्कंधमें इस जप-ध्यानकी कथा है।

बिना ध्यानके ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। वसुदेव-देवकीने ग्यारह वर्षों तक ध्यान किया तो उन्हें परमात्मा मिले। भागवतका आरंभ ध्यानयोगसे किया गया है।

जो मनुष्य ईश्वरका ध्यान करेगा, वही ईश्वरको प्रिय होगा।

साधनमार्गका आश्रय लेकर ज्ञानी मुक्त होते हैं। ज्ञानसे ज्ञानी भेदका निषेध करते हैं। ज्ञानमार्गका लक्ष्य है ज्ञानसे भेदको दूर करना। भक्तिसे भेदको दूर करना भक्तिमार्गका लक्ष्य है। ध्येय एक ही है। सो भागवतका अर्थ ज्ञानपरक और भक्तिपरक हो सकता है। मार्ग और साधन भिन्न-भिन्न हैं किंतु ध्येय तो एक ही है।

इसी कारण सगुण और निर्गुण दोनोंकी आवश्यकता है। वैसे तो ईश्वर अरूप हैं किंतु जिस रूपकी भावनासे वैष्णवजन तन्मय होते हैं, वैसा स्वरूप भी ईश्वर धारण करते हैं। सगुण निर्गुण दोनों स्वरूपोंका भागवतमें निरूपण है। निर्गुणरूपमें प्रभु सर्वत्र हैं और सगुण रूपसे श्रीकृष्ण गोलोकमें विराजते है। इष्टदेवमें पूर्णतः विश्वास रख कर ऐसा विश्वास रखो कि जगत्के जड़ और चेतन सभी पदार्थोंमें प्रभुका वास है। मंगलाचरणका सगुण-निर्गुणपरक अर्थ हो सकता है।

क्रिया और लीलामें अन्तर है। प्रभु जो करे वह है 'लीला' और जीव जो करे वह है 'क्रिया'।

क्रिया बन्धनरूप है, कारण उसके साथ कर्ताकी आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारका सम्बन्ध होता है। ईश्वरकी लीला बन्धनसे मुक्त करती है। कारण यह कि ईश्वरको स्वार्थ और अभिमान

छू नहीं सकते। जिस कार्यमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता, वह है लीला। केवल जीवोंको परमानंदका दान करनेके लिए प्रभु लीला करते हैं। यही कारण है कि मक्खनचोरी, रास आदि सभीको व्यासजी लीला कहते हैं। श्रीकृष्णजी मक्खनकी चोरी तो करते हैं किंतु अपने लिए नहीं, मित्रोंके लिए।

व्यासजी ब्रह्मसूत्रमें लिखते हैं; "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।" दैवी जीवोंके कल्याण करनेके लिए ही भगवान् लौकिक जीवों-जैसी लीला करते हैं।

जगत्‌की उत्पत्ति लीला है, स्थिति लीला है और विनाश भी लीला है।

विनाशमें भी आनंद है। सबका द्रष्टा मैं हूँ। 'मैं' का नाश नहीं होता। अहम् (मैं) का विनाश न हो, उसे भी ज्ञानी पुरुष लीला ही कहते हैं। 'मैं' भी ईश्वरका अंश है। किंतु यह 'मैं' अहंकार न बनना चाहिए।

कृष्ण गांधारीसे मिलने गए तो गांधारीने उन्हें शाप दिया कि तुम्हारे वंशमें भी कोई नहीं रहेगा क्योंकि तुमने मेरे वंशमें भी किसी एकको भी रहने नहीं दिया है। परन्तु कृष्ण इसमें भी आनन्दित हैं। वे कहते हैं कि माताजी, मैं भी यही सोचता था कि इन सबका विनाश कैसे करूँ। ठीक ही हुआ कि आपने शाप दिया।

"शांताकारम् भुजगशयनम्।" यदि सर्प पर शयन करना पड़े तो भी परमात्माको शांति ही मिलती है। लोगोंको शैया और पलङ्ग मिलें तो भी शांति नहीं मिलती। श्रीकृष्णकी शांति कैसी है।

लय भी भगवान्‌की लीला है। जीवको उत्पत्ति और स्थिति भाती है, परन्तु लय नहीं।

ब्रह्माजीको वेदतत्त्वका ज्ञान देनेवाले और जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, संहारके कारणभूत श्रीपरमात्माका हम ध्यान करते हैं। आदिकवि ब्रह्माको जिस दिव्यज्ञानका दान किया, उसका वर्णन हम करते हैं।

भगवान्‌के ध्यानमें तन्मयता न होगी तो संसारका ध्यान होता रहेगा। उसे छोड़नेका प्रयत्न करो। ध्यानके प्रारम्भमें संसार दिखाई देगा। प्रत्येक साधकको ऐसा ही अनुभव होता है। ईश्वरका ध्यान न हो सके तो कुछ आपत्ति नहीं है किन्तु संसारका, नर-नारीका, धन-संपत्तिका ध्यान न होना चाहिए।

दर्शन करनेके बाद भी ध्यानकी आवश्यकता है। मन्दिरके चौके पर बैठनेकी प्रथाका कारण भगवानका ध्यान है, सांसारिक बातचीत नहीं। मन्दिरमें जिस स्वरूपका दर्शन किया हो, उसीका ध्यान और चिंतन चौके पर बैठकर करें। आरम्भमें व्यासजी ध्यान करनेकी आज्ञा देते हैं।

सत्कर्म करते समय अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं, जिनका नाश परमात्माके ध्यानसे होता है।

मङ्गलाचरणमें व्यासजी लिखते हैं—"सत्यम् परम् धीमहि।" सत्यस्वरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं। सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करता हूँ, ऐसा श्री व्यासजीने लिखा, क्योंकि यदि वे श्रीकृष्णका ही ध्यान करनेकी बात लिखते तो शिवभक्त, दत्तात्रेयभक्त, देवीभक्त आदि ऐसा मानते कि भागवत तो श्रीकृष्णके भक्तोंका ही ग्रन्थ है।

व्यासजीने किसी विशिष्ट स्वरूपके ध्यानका निर्देश नहीं किया है। केवल सत्यस्वरूप प्रभुका ध्यान धरनेको ही कहा है। जिसे जिस किसी स्वरूपके प्रति आस्था हो उसीका ध्यान वह करे।

संसारमें विभिन्न लोगोंकी रुचि एक-सी नहीं होती। शिवमहिम्न स्तोत्रमें कहा है :—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

साङ्गोपाङ्ग वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतशास्त्र, वैष्णवशास्त्र आदि भिन्न शाखों-की आस्थावाले लोग अपने-अपने शास्त्रोंको सर्वोत्तम मानते हैं और अपनी-अपनी मनोवृत्तिके अनुसार सरल या कठिन मार्ग बताते-मानते हैं, किंतु सच तो यह है कि इन सभी शास्त्रानुसारी मतोंका प्राप्तिस्थान, लक्ष्य तो एक ही है कि जिस तरह सरल और टेढ़ी-मेढ़ी—सभी नदियाँ एक ही समुद्रमें जा मिलती हैं।

हर किसीकी रुचि और आस्था भिन्न-भिन्न होनेके कारण शिव, गणेश, रामचन्द्र आदि विविध स्वरूपोंको परमात्मा धारण करते हैं।

सत्य, अविनाशी, अबाधित, अपरिवर्तनशील है। सुख, दुःख, लाभ, हानि आदिके कारण परमेश्वरके स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

गीताजीमें भगवान् कहते हैं :—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

दुःखकी प्राप्तिके समय जिसका मन उद्वेगरहित रहता है और सुखके समय जिसका मन स्पृहारहित रहता है, वही स्थितप्रज्ञ है। श्रीकृष्णने अपने वचनके अनुसार ही जीवन जिया। श्रीरामचन्द्रजीको भी राज्याभिषेक और वनवासके समय एक-सा आनन्द था। श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियोंसे सेवा पाते समय, सुवर्णकी द्वारिकासे और सर्वनाशके समय एक-सा ही आनन्दानुभव हुआ था।

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—उद्धव, यह सब (जगत्) मिथ्या है, केवल मैं ही एक सत्य हूँ।

जगत् असत्य है, परमात्मा सत्य है। भूत, वर्तमान और भविष्यमें जो एक ही स्वरूप धारण करे, वही सत्य है। इसीसे ही भगवान् व्यासजी कहते हैं कि हम सत्यका ही ध्यान करते हैं, किसी और देवका नहीं। सो सत्यसे ही स्नेहभाव रखो। यदि सुखी होना है तो सत्य-स्वरूप परमात्माके साथ प्रेम करो। जगत् असत्य है। दुनियाके पदार्थ दुःखदायी हैं। व्यवहारमें जगत् सत्य-सा ही लगता है किंतु परमार्थ-दृष्टिसे, तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो जगत् सत्य नहीं है। यही कारण है कि ज्ञानी पुरुष जगत्का चिंतन नहीं करते और जगत् अनित्य है, ऐसा बार-बार सोचते हैं।

जिसे परमात्माका अपरोक्ष ज्ञान होता है, वे जगत्का सम्मान नहीं करते। स्वप्नके टूट जानेके बाद ज्यों स्वप्न मिथ्या लगता है, वैसे ही भगवान्के साक्षात्कारके बाद जगत् मिथ्या

लगता है। मनुष्य सदा एक स्वप्नमें नहीं रहता। ईश्वरका एक ही स्वरूप है। उसपर काम, क्रोध, लोभ आदि असर नहीं डाल सकते। वह स्वयं आनन्दरूप है। ईश्वरके बिना जो भी दिखाई देता है, वह सब माया है, असत्य है और भासमात्र है।

नकली रुपयेसे किसीको कोई मोह नहीं होता। उसी प्रकार इस असत्य, नकली संसारसे मोह न करो। स्त्री-पुरुष मिलन सुखद है, किंतु वियोग अति दुःखद है। वियोग अवश्यम्भावी है, ऐसा समझकर इस जगत्के जीवोंसे प्रेम न करो। परमात्मा अविनाशी हैं, इसलिए उन्हींसे प्रेम करो।

अँधेरेमें रस्सी सर्प-सी लगती है किंतु प्रकाश होने पर, ज्ञान होनेसे ही यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होता है। इस सर्परज्जुन्यायकी दृष्टिसे ही इस असत्य संसारको अज्ञानी मानव सत्य मानता है। जगत्का भास ईश्वरके प्रति अज्ञान होनेके कारण ही होता है। ईश्वरका ज्ञान न होनेसे ही तुम्हें यह जगत् सत्य लगता है। वैसे तो यह दृश्य जगत् भ्रामक है, मिथ्या है, किंतु परमात्मापर आधारित होनेके कारण यह सत्य-सा लगता है।

परमात्मा सत्य है, इसलिए जगत् असत्य होने पर भी सत्य-सा ही लगता है। जगत्का अधिष्ठान, आधार ईश्वर है और ईश्वर सत्य है सो जगत् भी सत्य लगता है। यदि राजा नकली मोतियोंका हार पहने, फिर भी उसकी प्रतिष्ठाके कारण जनता तो उस हारको असली मोतियोंका ही मानेगी। गरीब व्यक्तिका सच्चे मोतियोंका हार उसकी गरीबीके कारण नकली ही समझा जाएगा। इस तरह यह जगत् नकली मोतियोंका हार है, जिसे परमात्माने अपने गलेमें पहन रखा है।

जगत्में रहते हुए भी उसे मिथ्या समझो। दृश्यमान वस्तु नाशवान् ही होती है। यद् दृष्टम् तद् नष्टम्। इसलिए बाह्य दृश्यमान जगत्को आभासमात्र समझो।

भागवतके प्रथम स्कन्धके पहले अध्यायका दूसरा श्लोक भागवतका प्रस्तावनारूप है। भागवतका मुख्य विषय क्या है, भागवतका अधिकारी कौन है, आदिका वर्णन इस दूसरे श्लोकमें किया गया है।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां।
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तुशिवदं तापत्रयोन्मूलनम्॥

श्रीमद्भागवतमें प्राणीमात्रपर दया करनेवाले और मत्सररहित सत्पुरुषोंके एकमात्र आधाररूप, ईश्वर-आराधनरूप, निष्काम परमधर्म वर्णित किया गया है और जो परमार्थरूप, जानने योग्य, परमसुखदायी, आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तापको हरनेवाले उस परमात्मारूप तत्त्वका भागवतमें वर्णन किया गया है। प्रोज्झितकैतवो धर्मः। जिस धर्ममें कोई कपट नहीं है, ऐसा निष्कपट धर्म भागवतका मुख्य विषय है।

मनुष्य जिस सत्कर्मके फलकी अपेक्षा करता है वह सत्कर्म, वह धर्म निष्कपट नहीं है। निष्काम कर्ममें दोष क्षम्य हैं, सकाम कर्ममें दोष अक्षम्य हैं।

नारदजीने वाल्मीकिजीसे 'राम' मन्त्रका जाप करनेको कहा। वाल्मीकिने भूलसे 'राम' के बदले 'मरा' कर दिया और 'मरा-मरा' जपने लगे। फिर भी उनको फल तो 'राम' मन्त्रके जापका ही मिला।

अतिशय पापीके मुखसे आसानीसे 'राम' नाम नहीं निकलता है। भगवान्का हृदयमें प्रवेश होने पर पापको बाहर निकलना पड़ता है। सो पाप भगवान्का नाम नहीं लेने देता। सेवाका फल सेवा है। मुक्तिकी भी आशा मत करो।

भागवतका मुख्य विषय है निष्काम भक्ति। जहाँ भोगेच्छा है, वहाँ भक्ति नहीं होती। भोगके लिए की गयी भक्तिसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। भोगके लिए भक्ति करनेवालेको संसार प्यारा है, भगवान् नहीं।

भगवान्के लिए ही भक्ति करो। भक्तिका फल भगवान् होना चाहिए, संसारसुख नहीं। जो ऐसा सोचते हैं कि भगवान् मेरा काम कर दें या भगवान् मेरे काम आएँ उसे वैष्णव नहीं कहा जा सकता। भगवान्से कोई सन्तान माँगता है तो कोई धन। तब भगवान् सोचते हैं कि मेरे लिए तो मन्दिरमें कोई आता ही नहीं है, सब अपना-अपना मनोरथ मुझसे पूरा करानेके लिए ही आते हैं।

सच्चा वैष्णव तो भगवान्से कहेगा कि मैं तो अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन आदि सब कुछ तुम्हारे चरणोंमें अर्पित करनेके लिए आया हूँ। सच्चा वैष्णव भगवान्से न तो दर्शन माँगता है और न तो मुक्ति। वह यदि कुछ माँगेगा तो केवल इतना ही कि वह भगवान्की सेवामें ही तन्मय होता रहे।

माँगनेसे प्रेमकी धारा टूट जाती है, प्रेमका प्रमाण घटने लगता है। इसलिए प्रभुसे कुछ भी नहीं माँगो। भगवान्को अपना ऋणी बनाओ। श्रीरामचन्द्रजीने राज्याभिषेकके प्रसंग पर सभी वानरोंको भेंट दी किंतु हनुमान्जीको कुछ नहीं दिया। इस घटनासे सीताजीको दुःख हुआ। उन्होंने रामसे कहा कि हनुमान्को भी तो कुछ दीजिए। रामजीने कहा कि उसे मैं क्या दूँ। उसने तो मुझपर कितने ही उपकार किये हैं और मुझे ऋणी बनाया है।

श्रीराम हनुमान्जीसे कहते हैं :—

प्रति उपकार करउँ का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

शुद्ध प्रेममें लेनेकी भावना नहीं होती, देनेकी होती है। मोह, भोगकी इच्छा करता है जब कि प्रेम भोग देता है। प्रेममें माँग नहीं होती। प्रेममें अपेक्षाका भाव जगा कि सच्चा प्रेम भागा ही समझें। भक्तिसे माँगी हुई वस्तु मिलेगी तो जरूर किंतु भगवान् हाथसे निकल भागेंगे। नित्य देनेवाला चला जाएगा।

गीतामें कहा है :—

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।
गी० अ० ७ श्लोक २३

सकामी भक्त जिन जिन देवताओंकी पूजा करते हैं, उन सभी देवताओं द्वारा मैं इच्छित भोगोंकी पूर्ति करता हूँ। किंतु मेरी निष्काम भक्ति करनेवाले भक्त मुझे ही प्राप्त करते हैं।

भगवान्से धन माँगोगे तो धन तो मिलेगा किंतु भगवान् स्वयं नहीं मिलेंगे।

भगवान्से जितना माँगोगे तो उतना ही वे देंगे किंतु प्रेम कम हो जाएगा। व्यवहारमें भी हम यह अनुभव करते हैं कि जब तक कुछ माँगा न जाय तब तक हो दो मित्रोंकी मैत्री प्रेमपूर्ण रहती है।

गोपियाँ नयन (दृष्टि) भी कृष्णको ही देती हैं और मन भी। वे श्रीकृष्णसे कुछ भी माँगनेकी अपेक्षा सर्वस्व अर्पण ही करती हैं। भगवान्‌से कुछ माँगोगे तो प्रेम खण्डित होगा। हमेशा ऐसा ही मानिए कि प्रभुने मुझे बहुत कुछ दिया है।

कई लोग हर वर्ष डाकोरजी तीर्थकी यात्रा करते हैं। वे रणछोड़जीसे कहते हैं कि मैं छः वर्षोंसे आपके दर्शनार्थ आता रहता हूँ, फिर भी मुझे पुत्र नहीं मिला है। भगवान् उसे पुत्र तो देते हैं किंतु साथ-साथ कहते हैं कि अब मेरा और तेरा सम्बन्ध टूट चुका।

डाकोरजी अपेक्षासे कुछ कम दें तो मानिए कि वे तो परिपूर्ण हैं किंतु मेरी पात्रता अधूरी होनेसे ही मुझे कम मिला है।

निष्काम भक्ति उत्तम है। वैष्णव मुक्तिकी भी अपेक्षा नहीं करता। हरिके जन तो मुक्ति भी नहीं माँगते। मुक्तिकी अपेक्षासे भक्तिमें अलौकिक आनन्द है। भक्तिमें जिसे आनन्द मिलता है, उसे मुक्तिका आनन्द तुच्छ-नगण्य लगता है।

वेदांती तो मानते हैं कि इस आत्माको बन्धन है ही नहीं तो फिर मुक्तिका प्रश्न ही कैसे उठता है। वैष्णव मानते हैं कि मुक्ति तो मेरे भगवान्‌की दासी है। दासीकी अपेक्षा मेरे भगवान् गुरुतर हैं।

भगवान् मेरा काम करें, ऐसी अपेक्षा कभी न करो।

रामकृष्ण परमहंसको कैंसरकी बीमारी लग गई। शिष्योंने कहा कि माताजीसे कहिये, वे आपकी बीमारीका इलाज करेंगी। रामकृष्णने कहा कि अपनी माताको मैं अपने लिए तकलीफ न दूँगा।

भक्तिका अर्थ यह तो नहीं है कि अपने सुखके लिए डाकोरजीको हम त्रास दें, परिश्रम दें।

माँगनेसे सच्ची मैत्रीके गौरवकी हानि होती है। सच्चा समझदार मित्र कभी कुछ नहीं माँगता।

सुदामाकी भगवान्‌के प्रति सच्ची भक्ति थी। वे दरिद्र थे। पत्नीने कुछ माँगनेके लिए उन्हें भगवान्‌के पास भेजा। सुदामा भगवान्‌के पास आये किंतु माँगनेके लिए नहीं, मिलनेके लिए। उन्होंने द्वारिकापतिका वैभव देखा, फिर भी जुबान तक न खोली। सुदामाने सोचा कि मैत्री-मिलनसे ही यदि भगवान्‌की आँखें भीग गई हैं तो फिर अपनी दरिद्रताकी बात बताने पर तो उन्हें कितना गहरा दुःख होगा। मेरे दुःखका कारण मेरे कर्म ही हैं। मेरे दुःखकी गाथा सुनकर उन्हें दुःख ही तो होगा, ऐसा सोचकर सुदामाने भगवान्‌से कुछ नहीं माँगा।

सुदामाकी तो यही इच्छा थी कि अपने द्वारा लाये गये मुट्ठीभर तन्दुलका भगवान् प्रेमसे प्राशन करें। भगवान् जानें कि वह कुछ लेने नहीं, देने ही आया है।

ईश्वर पहले हमारा सर्वस्व लेता है और फिर अपना सर्वस्व हमें देता है। जीवके निष्काम होने पर ही भगवान् उसकी पूजा करते हैं। भक्त जब निष्काम होता है तो भगवान् अपने स्वरूपका दान भक्तको देता है।

जीव जब अपना जीवत्व छोड़कर ईश्वरके द्वारपर जाता है, तब भगवान् भी अपना ईश्वरत्व भूलकर भक्तसे मिलते हैं।

सुदामा दस दिनका भूखा था। फिर भी उसने अपना सर्वस्व (मुट्ठीभर तन्दुल) प्रभुको दे दिये। सुदामाके तन्दुल चाहे मुट्ठीभर ही थे फिर भी वही तो उस समय उसका स्वंस्व था। वैसे मुट्ठीभर तन्दुलकी कोई इतनी बड़ी कीमत नहीं है किंतु मूल्य तो सुदामाके प्रभु-प्रेमका है।

यदि मेरे लिए श्रीठाकुरजीको थोड़ा-सा भी श्रम उठाना पड़ेगा तो मेरी भक्ति व्यर्थ है, निष्फल है ऐसा मानो। भगवान्से कुछ भी न माँगो। न माँगनेसे भगवान् तुम्हारे ऋणी होंगे।

गोपियोंने भगवान्से कुछ भी नहीं माँगा था। उनकी भक्ति निष्काम थी। अतः भगवान् गोपियोंके ऋणी थे। गोपीगीतमें भी वे भगवान्से कहती हैं कि हम तो आपकी निःशुल्क, क्षुद्र दासियाँ हैं। अर्थात् निष्काम भावसे सेवा करनेवाली दासियाँ हैं। इसी तरह कुरुक्षेत्रमें भी जब वे भगवान् श्रीकृष्णसे मिलती हैं तो वहाँ भी वे कुछ माँगती नहीं हैं। वे तो केवल इतनी ही इच्छा करती हैं—

संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहंजुषामपि मनस्युदियात् सदा नः।

संसाररूपी कुएँमें गिरे हुओंको, उसमेसे बाहर निकलनेके अवलम्बन-रूप आपके चरणकमल, घरमें रहते हुए भी हमारे मनमें सदा बसे रहें।

एक सखी उद्धवजीसे पूछती है कि तुम किसका संदेश लेकर आए हो। कृष्णका ? वे तो यहाँ पर ही उपस्थित हैं। लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा गए हैं, पर वह बात गलत है। मेरे ठाकुरजी हमेशा मेरे साथ ही हैं। चौबीसों घण्टोंका हमारा उनके साथ संयोग है।

गोपियोंका प्रेम शुद्ध है। वे जब भी भगवान्का स्मरण करती हैं, ठाकुरजीको प्रगट होना ही पड़ता है। गोपियोंकी निष्काम भक्ति इतनी सत्वशील है कि भगवान् खिचे हुए चले आते हैं।

ठाकुरजीको सदा साथ रखोगे तो जहाँ भी जाओगे, भक्ति कर सकोगे। तभी तो तुकाराम भगत कहते हैं, मुझे चाहे भोजन न भी मिले, परन्तु हे विट्ठलनाथ, मुझे एक भी क्षण तुम अपनेसे अलग मत रखना।

भगवान् उद्धवजीसे कहते हैं—"उद्धव मेरी गोपियाँ मुझमें तन्मय चित्तवाली, मदर्थे त्यक्त-देहिकाएँ हैं।" गोपियोंका आदर्श आँखके सामने रखो और भगवान्की भक्ति करो। सुदामाकी निष्काम भक्तिको याद रखकर प्रभुकी भक्ति करो। सुदामा और गोपियों-जैसी भक्ति सीखो। सुदामाकी भक्ति भी निष्काम थी।

तुम अपना सर्वस्व भगवान्को अर्पण करो। ऐसा होने पर भगवान् भी अपना सर्वस्व तुम्हें देंगे।

निष्काम भक्ति ही भागवतका मुख्य विषय है। निष्काम भक्ति ही श्रेष्ठ भक्ति है। निष्काम भक्तिका श्रेष्ठ दृष्टान्त है श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी निष्काम ममता, निष्काम प्रेम। गोपियाँ तो मुक्तिकी भी इच्छा नहीं रखती थीं।

श्रीकृष्णका सुख ही अपना भी सुख है, ऐसा गोपियाँ मानती थीं।

एक सखीने उद्धवजीसे कहा कि श्रीकृष्णके वियोगमें हमारी कैसी दशा है, वह तो आपने देख लिया। मथुरा जाने पर श्रीकृष्णजीसे कहना कि यदि आप मथुरामें सुखसे रहते हैं तो हमारे सुखके लिए व्रजमें आनेका कष्ट न करें। हमारा प्रेम अपने सुखके लिए नहीं है, किंतु श्रीकृष्णको ही सुखी करनेके लिए है। श्रीकृष्णके वियोगसे हम दुःखी हैं और विलाप भी करती हैं परन्तु हमारे विरहमें यदि वे मथुरामें सुखसे रहते हैं तो वे सुखी रहें। हमारे सुखके लिए वे यहाँ न आयें। यदि अपने सुखके लिए ही वे यहाँ आना चाहें तो अवश्य ही पधारें।

दूसरोंके सुखमें सुखका अनुभव करना ही सच्चे प्रेमका लक्षण है।

शाण्डिल्य मुनिने अपने भक्तिसूत्रमें लिखा है—

तत्सुखे सुखित्वम् प्रेमलक्षणम्।

धन्य हैं वे व्रजवासी भक्तजन जो श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए मथुरा नहीं गए। गोपी प्रेमकी पागल अवस्थामें भगवान्‌की निकटताका अनुभव करती है। सखी सोचती है कि मैं वहाँ मिलने गई और मेरे मिलनेसे ठाकुरजीको कुछ कष्ट हुआ तो? उनको कुछ लज्जा हुई कि गाँवकी इस ग्वालिनसे मैं खेलता था तो। नहीं, मुझे मथुरा नहीं जाना है। मेरे प्रेममें कुछ न कुछ न्यूनता ही रह गई है। इसीलिए वे मुझको छोड़कर चले गये हैं।

मेरा प्रेम यदि सच्चा है तो वे अवश्य ही गोकुल लौटेंगे। उस समय तक मैं विरह-दुःख सहन करती रहूँगी।

इसीलिए श्रीकृष्णजी कहते हैं कि मुझे गोकुलमें जो आनन्द गोपियोंसे मिला है, वह द्वारिकामें नहीं है। गोपियोंका प्रेम निष्काम है। भगवान्‌का जो आश्रय लेता है, वह निष्काम बनता है। गोपियोंकी ऐसी निष्काम भक्तिसे परमात्मा गोपियोंके ऋणी हुए। गोपीप्रेमकी महिमा वर्णनीय है।

श्रीकृष्ण एक बार बीमार हो गए, (बीमार होनेका नाटक किया) कोई भी औषधि सफल नहीं हुई। तब प्रभुने वैष्णवभक्तकी चरणरज औषधिके रूपमें माँगी। कोई वैष्णव अपनी चरणरज दे तो भगवान्‌की बीमारी दूर हो सके। भगवान्‌की रानियोंसे चरणरज माँगी गयी। सभी रानियोंको आश्चर्य हुआ। प्राणनाथकी चरणरज दें तो महापाप होगा और नरकमें जाना पड़ेगा। नरकमें कौन जाय? हम तो चरणरज नहीं देंगी। दूसरोंसे भी चरणरज माँगी गयी। कोई तैयार न हुआ।

अन्तमें बात गोपियों तक पहुँची। गोपियोंने सुना कि उनके कृष्ण बीमार हैं। यदि वे भलेचंगे हो सकते हैं तो हम अपनी चरणरज देनेको तैयार हैं। इसके लिए हम कोई भी दुःख सहनेको तैयार हैं। जो अपना कन्हैया सुखी (भलाचंगा) होता हो तो हम नरकयातना भी भुगत लेंगी। उन्होंने अपनी चरणरज दी। श्रीकृष्णकी बीमारी दूर हो गयी। सच्चे निष्काम प्रेमकी परीक्षा भी हो गयी।

भागवतका फल है निष्काम भक्ति। निष्काम भक्ति भगवान्‌को प्रसन्न करती है। गोपियोंकी जैसी निष्काम भक्तिकी आदत डालो।

भक्तिसे मुक्ति मिलती है। भक्तिके बिना ज्ञान और वैराग्य प्राप्त नहीं हो सकते। बिना ज्ञानकी भक्ति अन्धी है और बिना भक्तिके ज्ञान पंगु है। आदत और हाजत (जरूरत) पर नियंत्रण रखा जाय तो मानव प्रभुमें लीन हो सकता है।

भागवतका मुख्य विषय है निष्काम भक्ति। भागवत सबके लिए है। वेदांत सबके लिए नहीं है। वेदांतका अधिकार सबको नहीं दिया गया। जिसे ब्रह्मको जाननेकी जिज्ञासा हो, उसीके लिए वेदांत है। वेदांतका अधिकारी कौन ? जिसने षट्संपत्ति आदिकी प्राप्ति की हो, वही वेदांतका अधिकारी है, किंतु भागवत तो सभीके लिए है।

भागवतका अधिकार वैसे तो सभीके लिए बताया गया है, फिर भी 'निर्मत्सराणां सतां'–शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंके जाननेके योग्य परमात्माका निरूपण इसमें किया गया है।

निर्मत्सराणाम्—निर्मत्सर होके कथा सुनो। मत्सर सबसे बड़ा शत्रु है। मत्सर सबको सताता है। ज्ञानी और योगी दोनोंको मत्सर परेशान करता है।

स्वयं प्राप्त की हुई योगसिद्धिके बलसे चांगदेव १४०० वर्ष जिए थे। उन्होंने मृत्युको चौदह बार वापस लौटाया। वे सिद्धियोंमें फँसे हुए थे। उन्हें प्रतिष्ठाका मोह था। उन्होंने संत ज्ञानेश्वरकी कीर्ति सुनी। चांगदेव ज्ञानेश्वरके प्रति मत्सर करने लगे। क्या यह बालक मुझसे भी बढ़ गया ? ज्ञानेश्वरकी आयु सोलह वर्षकी थी। चांगदेवकी इच्छा हुई कि वह ज्ञानेश्वरको पत्र लिखें। किंतु पत्रमें संबोधन क्या किया जाए ? ज्ञानेश्वर अपनेसे छोटे—केवल सोलह वर्षके—सो 'पूज्य' तो कैसे लिखा जाय ? और ऐसे महाज्ञानीको 'चिरंजीवी' भी कैसे लिखा जाय ? और इस उलझनको वे सुलझा न सके सो बिना लिखे ही पत्र भेज दिया।

संतकी भाषा संत जान सकते हैं। वे कोरा भी पढ़ लेते हैं।

मुक्ताबाईने पत्रका उत्तर दिया। १४०० सालकी तेरी आयु हुई, फिर भी तू कोरा ही रह गया।

चांगदेवने सोचा कि ऐसे ज्ञानी पुरुषसे मिलना ही चाहिए। अपनी सिद्धियोंके प्रदर्शनके लिए उन्होंने बाघ पर सवारी की और सर्पकी लगाम बनाई और इस प्रकार वे ज्ञानेश्वरसे मिलनेके लिए आ रहे थे।

इस ओर ज्ञानेश्वरसे किसीने कहा कि चांगदेव बाघ पर सवारी करके आपसे मिलने आ रहे हैं। ज्ञानेश्वरने सोचा कि इस बूढेको अपनी सिद्धियोंका अभिमान हो गया है।

चांगदेवने अपनी सिद्धियोंके अभिमानके कारण ज्ञानेश्वरको पत्रमें 'पूज्य' शब्दसे सम्बोधित नहीं किया था।

ज्ञानेश्वरने सोचा कि चांगदेवको कुछ पाठ पढ़ाना चाहिए। संत मिलने आए तो उनकी आवभगत करनी ही चाहिए। उस समय ज्ञानदेव चौके पर बैठे हुए थे। उन्होंने चौकेसे चलनेकी आज्ञा दी। पत्थरका चौका चल दिया। चौकेको चलता हुआ देखकर चांगदेवका अभिमान नष्ट हो गया।

चांगदेवने महसूस किया कि मैंने तो हिंस्र पशुओंको ही बसमें किया जब कि ज्ञानेश्वरके पास तो ऐसी शक्ति है, जो जड़ पदार्थको भी चेतन बना देती है। दोनोंका मिलन हुआ। चांगदेव ज्ञानेश्वरके शिष्य बन गए।

यह दृष्टान्त सिखाता है कि हठयोगसे मनको नियंत्रित करनेकी अपेक्षा प्रेमसे मनको बसमें करना उत्तम है। चांगदेव हठयोगी थे। हठात्—बलात्कारसे उन्होंने मनको बसमें किया था।

योग मनको एकाग्र कर सकता है, किंतु हृदयको विशाल नहीं कर सकता। यही कारण है कि चांगदेव ज्ञानेश्वरसे ईर्ष्या करते थे।

हृदयको विशाल करती है भक्ति। भक्तिसे हृदय पिघलता है, विशाल भी होता है।

मत्सर करनेवालोंके तो इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। मनमें मत्सर मत रखो। मनसे मत्सर निकाल दोगे तो मनमोहनका स्वरूप मनमें सुदृढ़ होगा।

कथा सुनकर उसे जीवनमें चरितार्थ करनेवाले लोग बहुत कम होते हैं।

कथा सुनो और कथाके सिद्धांतोंका जीवनमें आचरण करो। केवल 'शुश्रूभिः' नहीं किंतु 'कृतिभिः' भी बनो। इसीलिए कहा गया है कि जब सुकृति पुरुष उन्हें सुननेकी इच्छा करता है उसी समय ईश्वर अविलम्ब उसीके हृदयमें आकर बंदी हो जाता है। भागवतकंथाका श्रोता निष्काम और निर्मत्सर बन जाता है।

किसी भी जीवके प्रति रखा गया कुभाव ईश्वरके प्रति रखा गया कुभाव है। मनुष्य जब तक निर्मत्सर न बने, तब तक उसका उद्धार नहीं होता। जैसी भावना आप दूसरोंके लिए रखोगे, वैसी ही भावना वे आपके लिए भी रखेंगे। दूसरोंके साथ वैरभाव करनेवाला व्यक्ति अपने साथ ही वैरभाव करता है; क्योंकि सबके हृदयमें ईश्वरका वास है।

गीतामें कहा गया है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

नैमिषारण्यमें ८८००० ऋषियोंका ब्रह्मसूत्र हुआ। उस ब्रह्मसूत्रमें एक बार सूतजी पधारे। शौनकजीने सूतजीसे प्रश्न पूछा कि जीवमात्रका कल्याण कैसे हो सकता है? कल्याणका सुलभ और सरल मार्ग बताइए। मनुष्यमात्रके कल्याणका उपाय बताइए। कलियुगके शक्तिहीन मनुष्य भी जिसका उपयोग कर सकें, ऐसा कोई साधन बताइए। इस कलियुगके मानव मंदबुद्धि और मंदशक्ति हैं सो कठिन मार्ग नहीं अपना सकेंगे। कलियुगके मनुष्य भोगी होनेसे मंदबुद्धि कहे गए हैं। कलियुगके मानव ऐसे भोगी हैं कि एक ही आसन (बैठक) पर बैठकर आठ घंटे ध्यान नहीं कर सकते। वे अपनेको चतुर मानते हैं, किंतु व्यासजी ऐसा माननेको तैयार नहीं हैं।

संसारके विषयोंके पीछे ही जो लगा रहे उसे प्रवीण कैसे कहा जाय? शास्त्र कहता है कि सौ काम छोड़कर भोजन करो, हजार काम छोड़कर स्नान करो, लाख काम छोड़कर दान करो और करोड़ काम छोड़कर प्रभुका स्मरण करो, ध्यान करो, सेवा करो।

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानं आचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

घरके कामोंको करनेके बाद माला मत फेरो, किंतु प्रभुनामका जप करनेके बाद सब काम करो। करोड़ कामोंको छोड़कर भगवान्‌का स्मरण करो। कलियुगके मनुष्य, जो काम करना

है, उसे नहीं करते हैं और जिसे नहीं करना है, वही पहले करते हैं। इसीसे व्यासजीने उन्हें मंदबुद्धि कहा है।

विस्तारपूर्वक आप श्रीकृष्णकथा सुनाइए। कृष्णकथासे तृप्ति नहीं होती। वैसे ही दर्शनसे तृप्ति नहीं होती। द्वारिकाके कृष्णका स्वरूप दिव्य है। श्रीनाथजीका स्वरूप मनोहर है। दर्शनसे तृप्ति नहीं होती। भगवान्‌की मंगलमयी अवतार-कथाओंका वर्णन करो। भगवान्‌की लीला-कथा सुनकर हम कभी तृप्त होते ही नहीं हैं।

कलियुगमें जब अधर्म बढ़ता है, तब धर्म किसका आश्रय लेता है ? प्रथम स्कन्धका प्रथम अध्याय 'प्रश्नाध्याय' कहलाता है।

समुद्र पार करनेवालेको जैसे कर्णधारका आसरा है, वैसे आप हमें मिले हैं। आप भगवान् हमारे केवट हैं। कुछ इस रीतिसे आप कथा सुनाएँ कि जिससे हमारे हृदय द्रवित हो जायँ। प्रभुकी कृपाके कारण ही आप हमें मिले हैं।

परमात्मासे मिलनेकी आतुरताके कारण ही संतका मिलन होता है। जीव जब परमात्मासे मिलनेके लिये आतुर होता है तो परमात्माकी कृपासे संत मिलते हैं।

स्वाद भोजनमें नहीं है, भूखके कारण ही है।

मनुष्यको परमात्मा-मिलनकी भूख जब तक न लगे, तब तक संत मिलने पर भी उसके प्रति सद्भाव नहीं जगता। इसका एक ही कारण है कि जीवको भगवत्-दर्शनकी इच्छा ही नहीं हुई है।

वक्ताका अधिकार सिद्ध होना चाहिये और श्रोताके भी अधिकार सिद्ध होने चाहिये। श्रवणके तीन प्रधान अंग हैं :

(१) श्रद्धा—श्रोताओंको चाहिये कि वे मनको एकाग्र करके श्रद्धासे कथा सुनें।

(२) जिज्ञासा—श्रोताको जिज्ञासु होना चाहिये। जिज्ञासाके अभावमें मन एकाग्र नहीं होगा और कथाका कोई असर भी न होगा। बहुत कुछ जाननेकी जिज्ञासा न होगी तो कथाश्रवणसे कोई विशेष लाभ न होगा।

(३) निर्मत्सरता—श्रोताके मनमें जगत्‌के किसी भी जीवके प्रति मत्सर नहीं होना चाहिये। कथामें दीन और विनम्र होकर जाना चाहिये। पापको छोड़कर, भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र आतुरताकी भावनासे कथाश्रवण करोगे तो भगवान्‌के दर्शन होंगे।

प्रथम स्कन्धमें शिष्यका अधिकार वर्णित है।

एक महात्मा रामायणकी कथा सुना रहे थे। कथा समाप्त होनेपर किसी श्रोताने महात्मासे पूछा कि कथा तो सुनी पर मुझे यह नहीं समझमें आया कि राम राक्षस थे या रावण। तो महात्माने उसे उत्तर दिया कि न तो राम राक्षस थे और न रावण। राक्षस तो मैं ही हूँ कि जो तुझे कुछ भी समझा न सका।

परमात्माकी कथा बार-बार सुनोगे तो प्रभुके प्रति प्रेमभाव जगेगा।

शौनक मुनिने सूतजीसे कहा—भागवत-कथामें हमको श्रद्धा है। आपके प्रति हमें आदर है। अनेक जन्मोंके पुण्योंका उदय होने पर ही अधिकारी वक्ताके मुखसे कथा सुननेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

प्रथम श्रवणभक्ति है। रुक्मिणीने अपने पत्रमें लिखा था कि तुम्हारी कथा सुनकर ही तुमसे विवाह करनेकी इच्छा हुई थी। 'श्रुत्वा' शब्द वहाँ है।

भगवान्‌के गुण सुननेसे उनके लिए प्रेमभाव उत्पन्न होता है।

श्रोता और वक्ता दोनों विनयी होने चाहिए। सूतजी श्रोताओंको साधुवाद देते हैं। वे कहते हैं—कथा सुनकर तुम्हें जो करना चाहिए, वह तो तुम करते हो। तुम शांतिसे सुनते हो तो मेरा मन भी भगवान्‌में स्थिर होता है। तुम ज्ञानी हो। प्रभु-प्रेममें पागल हो, परंतु मेरा कल्याण करनेके लिए प्रश्न पूछते हो। कथा सुनाकर मैं तो अपनी वाणीको पवित्र करूँगा।

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता॥

शिवमहिम्न स्तोत्रमें पुष्पदन्तने भी कहा है कि शिवतत्त्वका वर्णन वैसे तो कौन कर सकता है। मैं तो अपनी वाणीको पवित्र करने चला हूँ।

आरंभमें सूतदेवजी शुकदेवजीको वंदन करते हैं। फिर भगवान् नारायणको वंदन करते हैं। नारायणं नमस्कृत्य।

भारतके प्रधान देव नारायण हैं। श्रीकृष्ण गोलोकमें पधारे। सभी अवतारोंकी समाप्ति हुई। किंतु नारायणकी न तो समाप्ति हुई है और न तो होगी। भारतकी प्रजाका कल्याण करनेके लिए वे आज भी तपश्चर्या कर रहे हैं।

श्रीशंकराचार्यजीको नर-नारायणका दर्शन हुआ तो उन्होंने कहा कि मैं तो महान् योगी हूँ, इससे आपका दर्शन कर सका हूँ। किंतु कलियुगके भोगीजन भी आपके दर्शन कर सकें, ऐसी कृपा कीजिए। भगवान्‌ने उन्हें उस समय बद्रीनारायणके नारद कुण्डमें स्नान करनेका आदेश दिया और कहा कि वहाँसे तुम्हें मेरी जो मूर्ति मिलेगी, उसकी स्थापना करना। बद्रीनारायण भगवान्‌की स्थापना शंकर स्वामीने की है। शंकराचार्यका प्रथम ग्रंथ है विष्णु सहस्रनामकी टीका।

मनसे मानसदर्शनका पुण्य बहुत लिखा गया है। नारायणको मनसे प्रणाम करो। जो जाए बद्री, उसकी काया सुधरी।

बद्रीनारायण तीर्थमें लक्ष्मीकी मूर्ति मंदिरके बाहर है। तपश्चर्यामें स्त्री, द्रव्य, बालकका संग बाधादायी है। नारायणने लक्ष्मीजीसे कहा—तुम बाहर बैठकर ध्यान धरो, मैं अन्दर बैठकर ध्यान धरूँगा।

एक भक्तने बद्रीनारायणके पुजारीसे पूछा कि इतनी कड़ाकेकी सर्दीमें चंदनसे ठाकुरजीकी पूजा क्यों करते हो? पुजारीने उत्तर दिया—अपने ठाकुरजी कठोर तपश्चर्या करते हैं, जिससे शक्ति बढ़ती है, और ठाकुरजीको बहुत गर्मी लगती है सो चन्दनसे पूजा की जाती है।

सूतजी सरस्वती और व्यासजीको वंदन करके कथाका आरंभ करते हैं—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽत्मा सम्प्रसीदति॥

(श्रीमद्भागवत १-२-६)

जिस धर्मसे मनुष्यके दिलमें श्रीकृष्णके प्रति भक्ति जगे, वही धर्म श्रेष्ठ है। भक्ति भी ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें किसी भी प्रकारकी कामना न हो। निष्काम तथा निरंतर भक्तिसे हृदय आनंदरूप परमात्माकी प्राप्ति करके कृतकृत्य हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—जीवात्मा अंश है और परमात्मा अंशी। अंशीसे अंश अलग हो गया है और इसीलिए वह दुःखी है। अंशी अर्थात् परमात्मामें मिल जानेपर ही जीव कृतार्थ होता है। परमात्मा कहते हैं—ममैवांशो जीवलोके। तू मेरा अंश है, तू मुझसे मिलकर कृतार्थ होगा। नर, नारायणका अंश है। अंश (नर) अंशी (नारायण) में जब तक न मिल जाय, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी। मैंने यह नियम निश्चित किया है कि अपने परमात्माका आश्रय लेकर उनके साथ मुझे एक होना है, किसी भी प्रकारसे ईश्वरके साथ एक होना है। ज्ञानी ज्ञानसे अभेद सिद्ध करता है तो वैष्णव महात्मा प्रेम द्वारा अद्वैत (अभेद) सिद्ध करते हैं। प्रेमकी परिपूर्णता अद्वैतमें ही है। भक्त और भगवान् अंततः एक ही हो जाते हैं। गोपी और कृष्ण एक हो गए थे।

जीव और ईश्वर कैसे अलग हो गए, इसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। ईश्वरसे जीवका वियोग हुआ है, यह सत्य है। यह वियोग कैसे और कबसे हुआ, इसके विवादमें समयका व्यय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है और इससे कोई लाभ भी नहीं है। धोती पर दाग लगने पर वह कब और कैसे लगा, इस पर ही सोचते रहनेसे वह दाग दूर नहीं होगा। उस दागको दूर करने पर ही धोती स्वच्छ होगी। इस तरह ईश्वरसे मिलनेका प्रयत्न करें, यही इष्ट है।

जब जीव निर्भय बनता है, तभी वह भाग्यशाली होता है। जिसके सिर पर कालका भय है, वह निर्भय कैसे हो सकता है? भाग्यशाली तो वह है, जिसे मृत्युका भय नहीं है। ध्रुव, पांडव, व्रजभक्त धन्य हैं कि जिनके अधीन काल था।

ईश्वरको यह पृच्छा और अपेक्षा होती है कि मनुष्यको दी गई बुद्धि और मनका उसने क्या किया? जीवको मृत्युके दिन अर्थात् हिसाब देनेके दिन भय लगता है। जिसका जीवन साफ है, उसका हिसाब साफ है। जिस दिन इन्कमटैक्सका अधिकारी किसी गृहस्थसे लाख-दो लाख रुपयेका हिसाब माँगता है तो वह गृहस्थ डर जाता है। तो फिर जब ईश्वर सारे जीवनका हिसाब माँगेगा तो क्या दशा होगी? क्या इसका भी कभी विचार किया है? किये हुए पापोंकी याद अन्तकालमें जब आने लगती है तो जीव भयभीत हो जाता है।

जब तक मृत्युका भय है, तब तक जीवको शांति नहीं मिलेगी।

भगवान् जब जीवको अपना लेते हैं, तब भगवान्का सेवक काल जीवका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

उपनिषद्में कहा है—जीव और ईश्वर साथ-साथ बैठे हुए हैं, फिर भी जीव ईश्वरको पहचानता नहीं है। जीव बहिर्मुख बने तो वह अंतर्यामीको पहचान सके।

एक व्यक्तिको मालूम हुआ कि गंगा किनारे रहनेवाले एक संतके पास एक पारसमणि है। पारसमणि पानेकी इच्छासे वह व्यक्ति संतकी सेवा करने लगा। संतने कहा कि मैं गंगास्नान करने जा रहा हूँ। वापस आकर तुझे मैं पारसमणि दूंगा। संत तो ऐसा कह कर

चले गए। अब इस व्यक्तिके मनमें पारसमणिके लिए अकुलाहट बढ़ती गई। उसने संतकी गैरहाजिरीमें सारी झोपड़ी छान डाली, परंतु पारसमणि उसके हाथ न लगी। संत वापस आए। संतने यह जान लिया तो पूछा कि क्या इतना भी धीरज नहीं है। पारसमणि तो मैंने उस डिबियामें रखी है। ऐसा कह कर उन्होंने एक डिबिया नीचे उतारी। वह डिबिया तो लोहेकी थी। तो उस व्यक्तिने सोचा कि यह कैसी पारसमणि है क्योंकि जिस डिबियामें वह पारसमणि रखी गयी थी, वह तो लोहेकी थी। इस पारसमणिने उस डिबियाको सोनेकी क्यों न बनाया ? क्या यह पारसमणि असली है या यह संत मजाक कर रहे हैं ? उसने संतसे पूछा कि यह डिबिया पारसमणिका स्पर्श होने पर भी लोहेकी ही क्यों रह गई और सोनेकी क्यों न बनी ? तो संतने उसे बताया कि वह पारसमणि एक गुदड़ीमें रखी थी, वह आवरणमें थी सो डिबिया सोनेकी बनने न पाई। इसी प्रकार ईश्वर और जीव हृदयमें, एक ही स्थानमें रहते हैं परंतु दोनोंके बीच वासनाका परदा है और फलतः दोनोंका मिलन नहीं हो पाता अर्थात् ईश्वरको जीव पहचान नहीं सकता और जीवका ईश्वरसे मिलन नहीं हो पाता। जीवात्मा डिबिया है और ईश्वर पारसमणि। दोनोंके बीच परदा है, जिसे हटाना आवश्यक है। अहं और ममतारूपी चिथड़ा दूर करना है।

साधना करने पर भी सिद्धि न मिले तो साधनाके प्रति साधकके मनमें उपेक्षाभाव जगता है। जीव साधक है, सेवा-स्मरण साधन हैं। श्रीकृष्ण साध्य हैं। विष्णु भगवान्‌की भक्ति करना पुरुषोंका परम धर्म है।

लोग मानते हैं कि भक्ति-मार्ग बिलकुल आसान है। सुबह भगवान्‌की पूजा की कि बस हो गई छुट्टी। फिर वे सारा दिन भगवान्‌को भुलाए रहते हैं। यह भक्ति नहीं है। चौबीसों घंटे ईश्वरका स्मरण रहे, यही भक्ति है।

भक्तिमें आनंद है। किंतु मनुष्य केवल शरीरसे भक्ति करता है, मनसे नहीं। वाणी भगवान्‌के नामका उच्चार करे परंतु मन भगवान्‌का उच्चार न करे तो वह सब व्यर्थ है।

मन संसारके विषयोंमें रमता रहे और शरीर ठाकुरजीकी सेवा करे तो वैसी सेवामें कोई आनंद नहीं रहेगा। सेवामें क्रिया मुख्य नहीं है, भाव ही प्रधान है। जब विषयोंमेंसे मनको हटाओगे, तब सेवामें आनंद आएगा।

'सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।' सेवा करने बैठो तो पहले भावना करो। सेवा करने पर भी भगवान्‌के दर्शन न हो सकें तो दोष अपना ही है। सेवकको सेवा करनेके बाद मेरा पाप गया, मेरा दुःख गया, मेरा दारिद्रय मिटा, मैं कृतार्थ हुआ, ऐसी भावना होनी चाहिए। सेवा करने पर ऐसा भाव नहीं हो तो सेवा-पूजासे कोई आनंद नहीं होगा।

संसारके विषयोंको मनसे हटाओ। जब तक नहीं हटाओगे, तब तक सेवामें आनंद नहीं होगा। सेवा यह भावना है। परमात्माकी सेवा तभी होगी, जब संसारके विषयोंका प्रेम कम होगा।

परमात्मासे प्रेम करना है तो विषयोंका प्रेम छोड़ना ही होगा।

प्रेमगली अति साँकरी,
तामें दो न समाहिं।

प्रेमकी सँकरी गलीमें दोनोंका निर्वाह नहीं होगा। जगत्‌का बंधन न छोड़ोगे, तब तक ब्रह्मसंबंध नहीं होगा।

संसारके विषयोंका मोह धीरे-धीरे छोड़ो। संसारको छोड़के कहाँ जाओगे ? संसारका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। विषयोंका मोह छोड़नेकी जरूरत है।

व्रतमें त्याग करनेकी आज्ञा है, वह हमेशाके त्यागके लिए। हमेशाका त्याग हो नहीं सकता, इसीलिए व्रतविधि बतायी गई है। धीरे धीरे संयम बढाओगे, वैराग्य बढ़ाओगे, तो ईश्वर-सेवामें, ध्यानमें अनूठा आनंद आयेगा।

एक समय एक चौबेजी मथुरासे गोकुल जानेको निकले। नौकामें बैठ कर यमुनाजीको पार करना था। चौबेजी भंगके नशेमें थे। वे नौकामें बैठे और चप्पू चलाने लगे। अपने बाहुबल पर पूर्ण विश्वास होनेसे कहने लगे कि नाव अभी गोकुल पहुँच जाएगी। चौबेजीने सारी रात नाव चलाई। सुबह हुई। चौबेजी सोचने लगे कि यह मथुरा जैसा कौनसा गाँव आया। किसीसे पूछा कि यह कौनसा गाँव है। उत्तर मिला कि मथुरा है। वही विश्रामघाट और वही मथुरा। नशा उतरने पर चौबेजीको अपनी मूर्खताका भान हुआ। चौबेजीने सारी रात नाव तो चलाई किंतु नाव तो रस्सीके जरिये घाटसे बँधी हुई थी। नशेके असरसे वे नाव खोलनाही भूल गए थे और सारी रात चलाने पर भी वहींके वहीं रह गए।

यह कथा हँसनेके लिए नहीं कही गई। मत हँसो। यह अवस्था चौबेजीकी नहीं, हम सबकी है। सभी इन्द्रियसुखके नशेमें चूर हैं। जीवको एक इन्द्रियसुख भोगनेका नशा चढ़ गया है। स्पर्शसुखका, संसारके विषयसुखका नशा चढ़ा हुआ है। धनके नशेमें मनुष्य मंदिर जाता है। वह नशेमें होनेके कारण ठाकुरजीका सच्चे मनसे चिंतन नहीं करता है, अतः उसे भगवान्‌के दर्शनका आनंद नहीं होता। दुनियाके विषय सुंदर नहीं हैं। केवल परमात्मा ही सुंदर है। वासनारूपी डोरीसे विषयोंमें बँधी हुई इन्द्रियोंको छुड़ाना है।

वासना किसीको आगे बढ़ने नहीं देती। वासनाकी डोरीको नहीं तोड़ोगे तब तक आगे बढ़ नहीं सकोगे। वासनारूपी डोरीसे इस जीवकी गाँठ संसारके साथ बँधी हुई है, उसे छोड़ना है।

हृदयमें कोई वासना नहीं रहेगी, तब भक्तिसे आनंद मिलेगा।

सर्वोत्तम वस्तुका भगवान्‌को अर्पण करना ही भक्ति है।

बिना वैराग्यके भक्ति रोती है। भोग भक्तिमें बाधक है। संयम और सदाचार बढ़ाओगे तो भक्तिसे आनंद मिलेगा। सुखी होना है तो संसारके विषयोंके साथ ज्यादा प्रेम मत करो। घरमें ही वैराग्यकी साधना करो। बिना वैराग्यके ज्ञान और भक्तिकी शोभा नहीं है। ज्ञान और वैराग्य-सहित भक्ति बढ़े तो ईश्वरका साक्षात्कार होता है।

ज्ञानमार्गमें इन्द्रियोंका निरोध करना पड़ता है। भक्तिमार्गमें इन्द्रियोंको प्रभुमार्गमें ले जाना होता है।

सुगंध लेनेकी इच्छा हो तो ठाकुरजीको फूल अर्पण करनेके बाद उसकी सुवास लो।

ब्रह्मसंबंधको सतत बनाए रखनेसे ही जीवात्माका कल्याण होता है। वेद भी उसी वासुदेव भगवान्‌का वर्णन करते हैं। उत्तमोत्तम तत्त्व अद्वैततत्व है, जिसे श्रीकृष्ण कहते हैं।

लौकिक व्यवहारके ज्ञानमें द्वैत है, ईश्वरके स्वरूपसंबंधी ज्ञानमें अद्वैत है। व्यवहारके स्वरूपका ज्ञान द्वैतभावसे भरा हुआ है। व्यावहारिक ज्ञानमें ज्ञाता और ज्ञेय भिन्न भिन्न हैं। परमात्माका ज्ञान होने पर ज्ञाता और ज्ञेय एक बनते हैं। सेवा-स्मरण करनेसे तन्मयता होती है। ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है, जिससे वह जीव ईश्वरमें मिल जाता है। इसके बाद वह यह नहीं कह सकता कि मैं ईश्वरको जानता हूँ। वह ऐसा भी नहीं कह सकता कि मैं ईश्वरको नहीं जानता।

गोपी सबमें श्रीकृष्णको देखकर जीवभाव भूल गई थी।

लाली मेरे लालकी, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

श्रुति वर्णन करती है कि वहाँ न तो मैं रहता हूँ और न तू। वृत्ति ब्रह्माकार हो जाती है।

श्रीकृष्णके स्वरूपका जिसे अच्छी तरहसे ज्ञान होता है, वह ईश्वरसे अलग नहीं रह सकता। सबमें ईश्वरका ही दर्शन करनेवाला स्वयं भी ईश्वर ही बन जाता है।

जीवका जीवभाव न जाय, तब तक अपरोक्षानुभव नहीं होता। इस प्रकार अद्वैतका ज्ञान बताया है। जीव और ब्रह्मका अद्वैत पीछे सिद्ध होगा, उससे पहले जीव और गुरुका अद्वैत होना चाहिए। मनसे एक होना है, शरीरसे नहीं। शुद्ध ब्रह्म मायाके संसर्गके बिना अवतार नहीं ले सका। सौ टंचका सोना नरम होता है कि उससे जेवरकी गढ़ाई (बनावट) नहीं हो सकती। हार गढ़ना हो तो उसमें दूसरी धातु मिलानी पड़ती है। इसलिये परमात्मा भी मायाका आश्रय लेकर प्रगट होते हैं, परन्तु ईश्वरको यह माया बाधक नहीं होती। जीवको माया बाधक होती है। योगी जिसे परमात्मा कहते हैं, उसी परमात्मासे जो मिलता है, वह जीव कृतार्थ होता है। भगवान्के प्रति प्रेम बढ़ाना हो तो भगवान्के अवतारोंकी कथा सुनो। परमात्माके २४ अवतारोंकी कथा है। धर्मको स्थापना करने ओर जीवका उद्धार करनेको परमात्मा अवतार धारण करते हैं। ठाकुरजी का अवतार तुम्हारे घरमें होना चाहिये, मन्दिरमें नहीं। मानव-शरीर यह घर है।

भागवतमें मुख्यतः कृष्ण-कथा करनी है, परन्तु यह कथा आखिरमें आती है। भगवान्के अवतारोंकी कथा सुननेसे जीवन सुधरता है। भगवान्के सारे धर्म जीवमें उतर आयें, यही अवतार हुआ। तीसरे अध्यायमें २४ अवतारोंकी कथा संक्षेपमें कही गई है। पहला अवतार सनत्कुमारोंका। वह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्य पहले आता है। ब्रह्मचर्यके सिवा मन स्थिर नहीं रहेगा। ब्रह्मचर्यसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पवित्र होते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। पहला कदम है ब्रह्मचर्य। दूसरा अवतार वाराहका है। वाराह अर्थात् श्रेष्ठ दिवस कौनसा ? जिस दिन सत्कर्म हो, वह दिन श्रेष्ठ। सत्कर्ममें लोभ विघ्न करने आता है। लोभको संतोषसे मारो। वाराह अवतार संतोषका अवतार है। प्राप्तस्थितिमें संतोष मानो। लोभको मार कर, प्रभु जिस स्थितिमें रखे, उसीमें संतोष मानो। यह वाराह-अवतारका रहस्य है। तीसरा अवतार है नारदजीका। यह भक्तिका अवतार है। ब्रह्मचर्यका पालन करे और प्राप्त स्थितिमें संतोष माने, उसे नारद अर्थात् भक्ति मिले। नारदजी भक्तिके आचार्य हैं।

चौथा अवतार नरनारायणका। भक्ति मिले तो उससे भगवान्‌का साक्षात्कार होता है। भक्ति द्वारा भगवान् मिलते हैं। परन्तु भक्ति ज्ञान और वैराग्य बिना होगी, तो दृढ़ नहीं होगी। भक्ति ज्ञान और वैराग्य सहित होनी चाहिए। भक्तिमें ज्ञान और वैराग्यकी जरूरत है। इसलिये पाँचवा अवतार कपिलदेवका है। ज्ञान वैराग्यका। वैराग्यको जीवनमें उतारो। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति आयेगी तो भक्ति सदाके लिए स्थिर रहेगी। छठा अवतार है दत्तात्रेयजीका। ऊपर बतलाये हुए पाँच गुण ब्रह्मचर्य, संतोष, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य आपमें आयेंगे तो आप गुणातीत होंगे, और आप अत्रि होंगे तो भगवान् आपके यहाँ आयेंगे। ऊपरके छह अवतार ब्राह्मणके लिये हैं। सातवाँ अवतार यज्ञका। आठवाँ अवतार ऋषभदेवका। नवाँ अवतार पृथुराजाका। दसवाँ मत्स्य नारायणका। यह चार अवतार क्षत्रियोंके लिये हैं। धर्मका आदर्श बतानेके लिये हैं। ग्यारहवाँ अवतार कूर्मका है। बारहवाँ अवतार धन्वंतरिका। तेरहवाँ अवतार मोहिनी नारायणका। यह अवतार वैश्योंके लिये है। प्रभुने वैश्योंके जैसी लीला की है। चौदहवाँ अवतार नरसिंह स्वामीका है। नृसिंह अवतार यह पुष्टिका अवतार है। भक्त प्रह्लाद पर कृपा करनेके लिये यह अवतार हुआ है। भगवान्‌ने नृसिंह अवतारमें प्रह्लाद पर कृपा की है। प्रह्लाद जैसी दृष्टिसे देखेंगे तो स्तंभमें भी भगवान्‌का दर्शन होगा। ईश्वर सर्वव्यापक हैं, ऐसा केवल बोलो नहीं उसका अनुभव करो। फिर तुमसे पाप नहीं होगा। संत भी व्यवहार करते हैं। जबतक शरीर है, तबतक व्यवहार करना ही पड़ता है। ईश्वरको मनुष्य मनशक्ति या बुद्धिशक्तिसे जीत नहीं सका, केवल प्रेमसे ही जीत सका है। यशोदाके प्रेमके सामने श्रीकृष्ण दुर्बल बनते हैं और बँध जाते हैं। बालकके प्रेमके सामने माताका बल दुर्बल होता है। प्रेमके सामने शक्ति दुर्बल बनती है। आप भी परमात्मा पर खूब प्रेम बढ़ाओ, वह भगवान् दुर्बल होकर आपके पास आयगा। पंद्रहवाँ अवतार वामन भगवान्‌का है। जो पूर्ण निष्काम है। जिसके उपर भक्तिका, नीतिका छत्र है, जिसने धर्मका कवच पहना है। जिसे भगवान् भी नहीं मार सके हैं।

बलिराजाकी तरह। यह है— वामन चरित्रका रहस्य। परमात्मा बड़े हैं तब भी बलिराजाके आगे वामन अर्थात् छोटे बनते हैं। सोलहवाँ अवतार परशुरामका। यह अवतार आवेशका अवतार है। सत्रहवाँ व्यास नारायणका ज्ञानका अवतार है। अठारहवाँ रामजीका अवतार है। यह मर्यादापुरुषोत्तमका अवतार है। रामकी मर्यादाका पालन करो जिससे तुम्हारा काम मिटेगा अर्थात् कन्हैया मिलेगा। उन्नीसवाँ अवतार श्रीकृष्णका। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं। राम और कृष्ण एक हैं। मनुष्य दिनमें दो बार भान भूलता है। दिनके बारह बजे भूखसे भान भूलता है और रातको निवृत्तिमें कामसुख याद आता है, इसलिए भान भूलता है। इन दोनों समयोंको संभालना है। सबेरे श्रीरामजीको याद करो और रातको श्रीकृष्णको। वे दोनों समय बचायेंगे। रामजीकी मर्यादाका पालन करो तो श्रीकृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम पुष्टि अर्थात् कृपा करेंगे। संत एकनाथजी महाराजने इन दोनों अवतारोंकी सुन्दर तुलना की है। रामजी राजमहलमें पधारे और कन्हैया कारागृहमें। एकके नामके अक्षर सरल और दूसरेके नामके अक्षर जुड़े हुए हैं। पढ़ाते समय सरल अक्षर पहले पढ़ाते हैं और जुड़े हुए बादमें। राम ये सरल अक्षर हैं। श्रीकृष्ण ये जुड़े हुए अक्षर हैं। रामजीकी मर्यादाका पालन करो तब श्रीकृष्णावतार होगा। जिसके घरमें रामजी न पधारे

वहाँ कृष्ण भी नहीं आते। रामजीका अवतार अर्थात् रामजीकी मर्यादाका पालन। ये दोनों साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमके अवतार हैं। बाकीके सब अवतार अंशावतार हैं। पूर्ण अवतार और अंशावतारका रहस्य यह है। अल्पकालके लिये, अल्प जीवोंके उद्धारके लिये जो अवतार होता है वह अंशावतार है और अनन्तकालके लिए तथा अनन्त जीवोंके कल्याणके लिए जो अवतार होता है वह पूर्णावतार है ऐसा संत मानते हैं। भागवत्में कथा तो करनी है कन्हैयाकी। परन्तु क्रम-क्रमसे दूसरे अवतारोंकी कथा सुनाकर। अधिकार प्राप्त हो तो कन्हैया आये। इसके पीछे हरि, कल्कि, बुद्ध आदि अवतार हुए हैं। कुल मिलाकर २४ अवतार हुए हैं।

परमात्माके २४ अवतार, परमात्मा शब्दमेंसे ही निकलते हैं। (प=५; र=२; मा=४।।; त्=८; मा=४।।) ब्रह्मांड भी ईश्वरका अवतार है। कई, तो ब्रह्मांडमें ईश्वरको देखते हैं कई, संसारके सब पदार्थोंमें भगवत् स्वरूपका दर्शन करते हैं। सारा ब्रह्मांड भगवतरूप मानते हैं। सबका द्रष्टा परमात्मा मायाके कारण दृश्य जैसा दीखता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अविद्यासे आत्मामें आरोप करनेमें आया है। जो आत्मामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाय, जो हो सका है उस समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इति 'तद्‌ ब्रह्म दर्शनम्' का सिद्धांत समझमें आयेगा।

भगवान् वेदव्यासजीने भागवत् चरित्रोंसे परिपूर्ण, भागवत् नामका पुराण बनाया है। भगवान् श्रीकृष्ण धर्म, ज्ञान आदि सहित स्वधाम पधारे, तो इस कलियुगमें अज्ञानरूपी अंधकारसे लोग अंधे हुए। उस समय भागवत् पुराण प्रगट हुआ है। यह पुराण सूर्य रूप है। शुकदेवजीने राजा परीक्षितको यह कथा सुनाई है। उस समय मैं वहाँ हाजिर था। यथामति यह पुराण कथा मैं आपको सुनाता हूँ।

शौनकजीने पूछा—व्यासजीने भागवत्की रचना किस अभिप्रायसे की और रचना करनेके बाद इसका प्रचार किस तरहसे किया? आदि कथा हमें सुनायें।

अतिशय लोभी प्रतिपल ईश्वरका ध्यान करता है वैसे ज्ञानी प्रतिपल ईश्वरका ध्यान करता है, स्मरण करता है। ज्ञानी एक पल भी ईश्वरसे अलग नहीं रह सकता। शुकदेवजीकी जन्मसे ही ब्रह्माकारवृत्ति है। वे भागवत् पढ़ने गये, यह हमें आश्चर्य लगता है। शुकदेवजीकी प्रशंसा खूब की गई है। शुकदेवजीकी देव-दृष्टि थी। देह-दृष्टि नहीं थी। जबतक देह-दृष्टि है तबतक दुःख है। शुकदेवजी स्नान करती अप्सराओंके आगेसे निकले तब भी निर्विकार थे। एक समय ऐसा हुआ कि एक सरोवरमें अप्सरायें स्नान करती थीं, वहाँसे नग्न अवस्थामें शुकदेवजी निकले। अप्सराओंने पूर्ववत् स्नान चालू रखा और किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नहीं किया। कपड़े भी नहीं पहने। थोड़ी देर बाद व्यासजी वहाँसे निकले, उन्होंने कपड़े भी पहने थे परन्तु व्यासजीको देखकर अप्सराओंने तुरंत ही अपने वस्त्र पहन लिये। व्यासजीने इस बातको देखा तो वे आश्चर्यमें पड़ गये कि ऐसा क्यों हुआ? अप्सराओंसे उसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि आप वृद्ध हैं, पूज्य हैं, पिता तुल्य हैं, परन्तु आपके मनमें यह पुरुष है यह स्त्री है ऐसा भेद है। जबकि शुकदेवजीके मनमें कोई ऐसा भेद नहीं है। शुकदेवजी केवल ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं, ब्रह्मदृष्टि रखकर घूमते हैं। शुकदेवजीको अभेददृष्टि सिद्ध हो चुकी है। उन्हें यह खबर नहीं कि यह स्त्री है, यह पुरुष है।

संतके दर्शन करनेवाला भी निर्विकारी बनता है। शुकदेवजीका दर्शन करके अप्सरायें भी निर्विकारी बनी हैं। निष्काम हुई हैं। अप्सराओंको लगा कि धिक्कार है हमें। इस महापुरुषको तो देखो। यह महापुरुष प्रभुप्रेममें कैसे पागल बने हैं।

जनक राजाके दरबारमें एक समय शुकदेवजी और नारदजी पधारे। शुकदेवजी ब्रह्मचारी हैं और ज्ञानी हैं। नारदजी भी ब्रह्मचारी हैं और भक्तिमार्गके आचार्य हैं। दोनों महापुरुष हैं। मगर इन दोनोंमें श्रेष्ठ कौन? जनक राजा समाधान नहीं कर सके। परीक्षा किये बिना कैसे फैसला हो? जनकराजाको रानी सुनयनाने निश्चय किया कि मैं दोनोंकी परीक्षा करूँगी। सुनयना रानीने दोनोंको अपने घर बुलाया और झूले पर बिठाया। इसके बाद सुनयना रानी श्रृंगार सजके आई और झूलेपर उन दोनोंके बीच बैठ गई। इससे नारदजीको कुछ संकोच हुआ। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। मुझ जैसे तपस्वीका इस स्त्रीसे स्पर्श हो गया? और कहीं मेरे मनमें विकार आ जाये तो? इस विचारसे वे कुछ दूर हट गये। परन्तु शुकदेवजीको वहाँ आकर कोई बैठा है इसका भान तक नहीं हुआ। उन्हें तो स्त्री पुरुषका भी भान नहीं है। वे दूर भी नहीं हटते हैं। रानी सुनयनाने निर्णय दिया कि इन दोनोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी हैं। इनको तो स्त्रीत्व या पुरुषत्वका भी भान नहीं है। स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान न जाय तब तक ईश्वर नहीं मिलते। स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान भूले तभी भक्ति सिद्ध हुई मानो। शुकदेवजीको स्त्रीमें स्त्रीत्व नहीं दीखता है, उनको सबमें ब्रह्मभाव हो गया है। सबमें ब्रह्म दीखता है। जबतक पुरुषत्व और स्त्रीत्वका स्मरण है तबतक काम है। जब यह स्मरण जाता है, तब काम जाता है, अर्थात् काम करता है। ब्रह्मचर्चा करनेवाले सुलभ हैं। ब्रह्मज्ञानी सुलभ नहीं हैं। शुकदेव जैसी दृष्टि रखनेवाले सुलभ नहीं हैं।

ब्रह्मदृष्टि रखना कठिन है। ऐसे पुरुषको तो भागवत् पढ़नेकी जरूरत नहीं हैं। फिर भागवत पढ़ने क्यों गये? शुकदेवजी भिक्षा-वृत्तिके लिये बाहर निकलते हैं तो भी गोदोहन कालसे अर्थात् ६ मिनिटसे अधिक कहीं भी रुकते नहीं। फिर भी सात दिन तक बैठकर उन्होंने यह कथा राजा परीक्षितको कैसे सुनाई? हमने सुना है कि राजा परीक्षित भगवान्‌का भारी प्रेमी भक्त था। उसे शाप लगा। किस लिये यह हमें कहो।

सूतजी कहते हैं—

श्रवण करो—द्वापरकी समाप्तिका समय था। बद्रीनारायण जाते हुए रास्तेमें केशवप्रयाग आता है। वहाँ व्यासजीका आश्रम है। व्यासनारायण सरस्वतीके किनारे व्यासाश्रममें बिराजते थे। एक समय उनको कलियुगका दर्शन हुआ। उनको पाँच हजार वर्ष बाद संसारमें क्या होगा इसका दर्शन हुआ। बारहवें स्कंधमें इसका वर्णन किया है। व्यासजीने जैसा देखा वैसा लिख दिया है। व्यासजीने सोचा कि कलियुगके लोग विलासी होंगे। मनुष्य बुद्धिहीन होंगे। वेद-शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकेंगे। इसलिये वेदके चार विभाग किये। वेदोंका कभी अध्ययन कर भी लें परन्तु वेदके तत्त्वका ज्ञान, उसका तात्पर्य उनको नहीं होगा। इसलिये सत्रह पुराणोंकी रचना की। वेदोंको समझानेके लिये पुराणोंकी रचना की। पुराण तो वेदोंपर भाष्य हैं।

स्त्री, शूद्र, पतित, द्विजाति, वेद श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इन सबका भी कल्याण हो ऐसा विचार कर महाभारतकी रचना की गई। महाभारत यह समाजशास्त्र है। महाभारत यह पाँचवा वेद है। भा का अर्थ होता है ज्ञान, रत अर्थात् रचना। ज्ञानमें और भक्तिमें रमनेकी कला जिसमें बतायी गई है वह ग्रन्थ भारत। ज्ञानमें जी जब रमण करने जाता है तब कौरव विघ्न करते हैं। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे यह शरीरक्षेत्र है। धर्म और अधर्मका इसमें युद्ध होता है। महाभारत प्रत्येकके मनमें और घरमें चल रहा है। सद् वृत्तियों और असद् वृत्तियोंका युद्ध यही है महाभारत। जीव धृतराष्ट्र है (जिसकी आँख नहीं वह धृतराष्ट्र नहीं) जिसकी आँखमें काम है वह अंधा धृतराष्ट्र है। 'को अंधः यो विषयानुरागी' अर्थात् अंधा कौन? जो विषयानुरागी है वह। दुःख रूप कौरव अनेक बार धर्मको मारने जाते हैं। युधिष्ठिर और दुर्योधन रोज लड़ते हैं। दुर्योधन आज भी आता है। प्रभुभजनके लिये सवेरे ठाकुरजी ४ बजे जगाते हैं। धर्मराजा कहते हैं कि उठो और सत्कर्म करो। परन्तु दुर्योधन आकर कहता है पिछले प्रहरकी मीठी नींद आ रही है। सवेरे उठनेकी क्या जरुरत है? तू अभी आराम कर। तेरा क्या बिगड़ता है? धर्म और अधर्म इसी प्रकार अनादि कालसे लड़ते चले आ रहे हैं। दुष्ट विचार रूपी दुर्योधन मनुष्यको उठने नहीं देता। निद्रा और निंदा पर जो विजय प्राप्त करते हैं वही भक्ति कर सके हैं। दुर्योधन यह अधर्म है। युधिष्ठिर यह धर्मका स्वरूप है। धर्म धर्मराजकी तरह प्रभुके पास ले जाता है और अधर्म दुर्योधन मनुष्यको संसारकी ओर ले जाता है और इसका विनाश करता है। धर्म ईश्वरकी शरणमें जाय तो धर्मकी विजय होती है। अधर्मका विनाश होता है। इतने ग्रन्थोंकी रचना कर लेने पर भी व्यासजीके मनको शांति मिलती नहीं। ज्ञानी पुरुष अपनी अशांतिका कारण अपनेमें ही खोजते हैं। उद्वेगका कारण अपनेमें ही खोजते हैं। अपने दुःखका कारण बाहर नहीं है। आपके दुःखका कारण आपके अंदर ही है। अज्ञान और अभिमान यह दुःखके कारण हैं। व्यासजी अशांतिका कारण अंदर खोजते हैं। मैंने कोई पाप तो नहीं किया है? जबकि अज्ञानी पुरुष अशान्तिका कारण बाहर खोजता है। वह बाहरके कारणोंमें ही अशान्तिका मूल पाता है।

लोग किये गये पुण्योंको फिर-फिर याद करते हैं, परन्तु किये हुए पापको कोई याद नहीं करता। पापका कोई विचार नहीं करता। व्यासजीको चिंता हुई है मेरे हाथसे कोई पाप तो नहीं हुआ है। नहीं, नहीं, मैं निष्पाप हूँ। परन्तु मेरे मनमें कुछ खटकता है कि मेरा कोई न कोई काम अधूरा रह गया है। मनुष्यको अपनी भूल जल्दी नहीं मिलती है। इसलिये तो कहा है:—"कृपा भई तब जानिये, जब दीखे अपना दोष" जगत्के किसी भी जीवका दोष नहीं देखो। अपने मनको सुधारो। जो कोई आपका भूल बताये तो उसका उपकार भूलना नहीं। व्यासजी ज्ञानी हैं फिर भी अपनेको निर्दोष नहीं मानते। मनुष्यका सबसे बड़ा दोष यही है कि वह अपनेको निर्दोष मानता है। निर्दोष एक परमात्मा ही हैं। ब्रह्माजीकी सृष्टि गुण-दोषोंसे रहित नहीं है। दैवी सृष्टि और आसुरी सृष्टि अनादि कालसे चली आ रही हैं। व्यासजी सोचते हैं कि मुझे कोई संत मिले जो मेरी भूल मुझे दिखाये। सत्संग बिना मनुष्यको अपने दोषोंका भान नहीं होता है। सत्संगमें मनुष्यको अपनी भूल सूझती है। व्यासजीके संकल्पसे परमात्माने नारदजीको उनके पास जानेकी प्रेरणा की। कीर्तन करते करते नारदजी वहाँ पहुँचे। गंगाजीको आनंद हुआ। महापुरुषोंसे मिलनेसे कथागंगा प्रगट होगी। अनेक जीवोंका उद्धार होगा। आज गंगाजी शांत हैं ताकि इन दो महापुरुषोंके

सत्संगमें विघ्न न पड़े। यह महावैष्णव मेरे कृष्णकी कथा करेंगे और उस कथासे अनेक जीवोंका कल्याण होगा। नारदजीने व्यासजीसे कुशलताका समाचार पूछा। फिर कहा, मैं तो आपको अभिनंदन देने आया था परन्तु आपको चितामें देखकर आश्चर्य हो रहा है। मुझे लगता है कि आप किसी गहरी चितामें हैं। आप आनन्दमें नहीं हैं। व्यासजीने कहा कि आपकी परीक्षा सच्ची है। मेरी कोई भूल हुई है परन्तु मेरी वह भूल मुझे समझमें नहीं आ रही है। कृपा करके आप मुझे मेरी भूल समझा दें। स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व।

मुझमें जो अपूर्णता है, आप इस पर विचारो अर्थात् मुझे बताओ। मेरी भूल मुझे बताओ आपका बहुत उपकार होगा। व्यासजीकी विवेकबुद्धि देखकर नारदजीको आनंद हुआ। नारदजी ने कहा—महाराज, आप नारायणके अवतार हैं। आपसे क्या भूल हो सकती है? आप ज्ञानी हैं। आपकी कोई भूल नहीं हुई है। फिर भी आप आग्रह करते हैं तो एक बात कहता हूँ। आपने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें वेदान्तकी खूब चर्चा की है। आत्मा अनात्माका बहुत विचार किया है। योगसूत्रके भाष्यमें योगकी बहुत चर्चा की है। समाधिके भेदोंका बहुत वर्णन किया है, परन्तु धर्म ज्ञान और योगके आधार श्रीकृष्ण हैं, इन सबका आत्मा श्रीकृष्ण है। उनकी कथाका आपने प्रेमपूर्वक वर्णन नहीं किया है। आपने भगवान्‌का निर्मल यश पूर्ण रीतिसे प्रेमसे वर्णन नहीं किया है। मानता हूँ कि जिससे भगवान् प्रसन्न न हों, वह शास्त्र और ज्ञान अपूर्ण ही है। कलियुगके जीवोंके उद्धारके लिये आपका जन्म हुआ है। आपके इस अवतारका कार्य अभीतक आपके हाथसे पूरा नहीं हुआ है। इसलिये आपके मनमें खटका है।

ज्ञानी पुरुष भी परमात्माके प्रेममें पागल न हो जाय तबतक उसको आनन्द मिलता नहीं। प्रभुमिलनके लिये जो आतुर नहीं होता उसका ज्ञान किस कामका? कलियुगमें भोगी जीव आपका ब्रह्मसूत्र आदि नहीं समझ सकेंगे। कलियुगके विलासी मनुष्य आपके गहन सिद्धांत किस प्रकार समझ सकेंगे? आपने तो योग ज्ञान आदिकी खूब चर्चा की है परन्तु भगवान्‌की लीलाओं और कथाओंका आपने प्रेमसे विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया है।

प्रेमरहित ज्ञानकी शोभा नहीं है। परमात्मा जिसे अपना मानते हैं उसीको ही अपना असली स्वरूप दिखाते हैं। परमात्माने अपना नाम तो प्रगट रखा है परन्तु अपना स्वरूप छिपा रखा है। जब परमात्माके अपने प्यारे भक्त उसकी बहुत भक्ति करते हैं तब परमात्मा उनको अपने स्वरूपका दर्शन कराते हैं। सामान्य मनुष्य भी जहाँ प्रेम होता है वहाँ अपना स्वरूप प्रगट करता है। बाहरके मनुष्यको देखने पर कोई दिल खोलता नहीं है। जिसके लिये प्रेम होता है उसको तो बिना पूछे सब बता देता है। मनुष्य परमात्माके साथ प्रेम नहीं करता। इसलिये वह प्रभुका अनुभव नहीं कर पाता। बड़ा ज्ञानी होनेपर भी जबतक वह परमात्मासे प्रेम नहीं करता तबतक उसे परमात्माका अनुभव नहीं होता है। जूतोंसे, कपड़ोंसे, पैसेसे प्रेम करता है वह कोई ज्ञानी कहलाता है? आजकल लोग पुस्तकें पढ़कर ज्ञानी बन जाते हैं, उनको गुरुकी सेवा नहीं करनी पड़ती। उनको ब्रह्मचर्य पालनेकी जरूरत नहीं लगती। श्रीकृष्णकी लीलाओं और कथाओंका आपने प्रेमसे गान नहीं किया इसलिये आपको दुःख होता है। यही तुम्हारी अशांतिका कारण है। ज्ञानकी शोभा प्रेमसे है, भक्तिसे नहीं है। जो सर्वमें भगवत् भाव न जागे तो यह ज्ञान किस कामका? श्रीकृष्ण प्रेममें पागल बनोगे तो शांति मिलेगी। आपने प्रेममें पागल होकर कृष्णकथाका परिपूर्ण वर्णन नहीं किया है। जीवसे ईश्वर दूसरा कुछ नहीं माँगता, केवल प्रेम चाहता है। कलियुगके मनुष्यको स्नानके लिये गरम पानी नहीं मिलता तो वह गुस्सेसे पागल हो जाता है। ऐसे मनुष्य योग क्या सिद्ध करेंगे। जिसकी

भोगमें आसक्ति है उसकी तन्दुरस्ती नहीं रहती। द्रव्यमें जिसकी आसक्ति है उसका मन ठीक नहीं रहता। ऐसे मनुष्यसे योग सिद्ध नहीं होता। चित्तवृत्तिके निरोधको योग कहते हैं। इसे सिद्ध करना मुश्किल है। बातें ब्रह्मज्ञानकी करे, प्रेम पैसेसे करे उसे परमात्मा नहीं मिलता। उसे आनन्द नहीं मिलता। तो अब आप ऐसी कथा करो कि जिससे सबको प्रभुके प्रति प्रेम जागे। ऐसी दिव्य कथा करो, ऐसा प्रेमशास्त्र रचो कि जिससे सब कृष्णप्रेममें पागल बनें। कथा सुननेवालोंको कन्हैया प्यारा लगे। संसारकी उपेक्षा करें। ऐसी कथा आप करेंगे तो आपको शान्ति मिलेगी।

महाभारतमें श्रीकृष्णचरित्र है। वहाँ धर्म, सदाचारको महत्त्व दिया गया है, वहाँ प्रेम गौण है। ऐसी कथा करो कि आपको भी शान्ति मिले और सब जीवोंको भी शान्ति मिले। व्यासजीने भी जबतक भागवत् शास्त्रकी रचना नहीं की तबतक उनको शान्ति नहीं मिली। कलियुगमें कृष्णकथा और कृष्णकीर्तनके सिवा दूसरा कोई उद्धारका उपाय नहीं है। कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार दूसरे साधनोंसे नहीं हो सकता। केवल कृष्णकीर्तन कृष्णस्मरणसे ही कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार होगा। परमात्माकी लीला कथाका वर्णन आप अतिप्रेमपूर्वक करो। सब साधनोंका फल प्रभुप्रेम है। आप तो ज्ञानी हैं। महाराज, मैं आपको अपनी कथा सुनाता हूँ। मैं कैसा था और कैसा हो गया।

व्यासजीको विश्वास दिलानेके लिए नारदजी अपना ही दृष्टान्त देते हैं। अपने पूर्व जन्मकी कथा सुनाते हैं। कथा श्रवण और सत्सङ्गका फल बताते हैं। कथा सुननेसे सन्तोंकी सेवा करनेसे जीवन सुधरता है। मैं दासीपुत्र था, परन्तु मैंने चार मास कन्हैयाकी कथा सुनी। मुझे सत्सङ्ग मिला तो मेरा जीवन दिव्य बना। कृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा। मैं दासीपुत्र था। आचार-विचारका कुछ भान न था, परन्तु मैंने कथा सुनी इससे मेरा जीवन पलट गया। यह मेरे सद्गुरुकी कृपा थी। व्यासजी नारदजीसे कहते हैं। अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनाओ। नारदजी कहते हैं कि सुनो—मैं सात-आठ सालका था कि मेरे बचपनमें ही मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। मेरी माता दासीका काम करती थी। मैं भील बालकोंके साथ खेलता था। मेरे पुण्योंका उदय हुआ। हम जिस गाँवमें रहते थे, वहाँ घूमते-फिरते साधु आये। गाँवके लोगोंने उन्हें उस गाँवमें चातुर्मास ठहरनेको कहा, और कहा इस बालकको आपकी सेवामें सौंपते हैं। यह पूजाके फूल लानेमें मदद करेगा। दूसरे काम भी करेगा। विधवाका लड़का है, प्रसाद भी आपके पास ही ले लेगा। मुझे सन्तोंका केवल दर्शन ही नहीं, उनकी सेवाका भी लाभ मिला। जबतक किसी महापुरुषकी प्रत्यक्ष सेवा नहीं करो तबतक मनमें-से वासना नहीं जाती। अन्दरके विकार नहीं जाते। मेरे गुरुदेव सच्चे सन्त थे। प्रभुभक्तिमें रंगे थे। मुझे सच्चे सन्तकी सेवा करनेका लाभ मिला। पहले तो सच्चे सन्तोंके दर्शन मिलते नहीं और दर्शन हो भी जायें तब भी उनके प्रति सद्भाव नहीं जागता। गुरुदेव अमानी थे, इसलिए दूसरोंको मान देते थे। उनके सङ्गसे मुझे भक्तिका रङ्ग लगा। गुरुने मेरा नाम हरिदास रखा।

शुकदेवजीने जन्मते ही व्यासजीसे कहा कि आपसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आप मेरे पिता नहीं हैं। मेरे पिता तो प्रभु परमात्मा हैं। मुझे जाने दो। परन्तु यह मार्ग सरल नहीं है। इस मार्गको सामान्य मनुष्य अनुकरण कर सकें ऐसा नहीं है। आसान मार्ग तो यह है कि सबके साथ प्रेम करो अथवा एक प्रभुके साथ प्रेम करो। आत्मा और परमात्मा एक हैं। गुरुदेव प्रेमकी मूर्ति थे। गुरुजीसे उठनेसे पहले मैं उठता था। गुरुजीकी सेवाके समय मैं

फूलतुलसी ले आता। मेरे गुरुजी दिनमें दो बार कीर्त्तन करते थे। सबेरे ब्रह्मसूत्रकी चर्चा करते थे। परन्तु रातको रोज कृष्ण-कथा, कृष्णकीर्त्तन करते। कन्हैया उनको बहुत प्यारा था। मेरे गुरुदेवके इष्टदेव बालकृष्ण थे। ये ऋषि, बालस्वरूपकी आराधना करते थे। बालक जल्दी प्रसन्न होते हैं। बालकृष्ण जल्दी प्रेम करते हैं और जल्दी प्रसन्न होते हैं। कन्हैयाका कोई भक्त उसे बुलाता है तो कन्हैया दौड़कर जाता है। मैं कीर्त्तनमें जाता और कथा सुनता। मैं बहुत कम बोलता था। बहुत बोलना संतोंको अच्छा नहीं लगता। वाणीसे शक्तिका खर्च मत करो अर्थात् कम बोलो। मौन रखो।

सेवा करनेवाले पर संत कृपा करते हैं। यह तीनों गुण नारदजी कहते हैं कि मुझमें थे। मैं तो कोल और भील बालकोंसे खेलता था। एक दिन मैं कथामें गया। मेरे गुरु कृष्ण कथाका वर्णन करते थे। मैंने कथामें बाल लीला सुनी। छोटे छोटे बालक कन्हैयाको बहुत प्यारे लगते हैं। कथा सुनकर प्रभुके प्रति मेरा सद्भाव जागा। कृष्णकथा यह प्रेम कथा है। कृष्णकथामें योगियोंको, स्त्रियोंको, बालकोंको, सबको आनन्द आता है। श्रीकृष्णकी कथा ही ऐसी दिव्य है कि यह सबको आनन्द देती है। श्रीकृष्ण-कथामें ऐसा आनन्द आने लगा कि मेरा खेलना छूट गया।

श्रीकृष्ण-कथामें गुरुदेव पागल बने हैं। मनुष्य संसारके पीछे पागल बनते हैं और उस दशासे मुक्त नहीं हो सकते। भगवान्के पीछे जीव पागल बने तो जीव शिव एक होते हैं। संतकी आँखें शुद्ध होती हैं। पवित्र होती हैं। संत आँखोंमें पाप नहीं करते। संतकी आँखमें श्रीकृष्ण बिराजते हैं। संत तीन प्रकारसे कृपा करते हैं। संत जिसकी ओर बार-बार दृष्टिपात करते हैं, उसका जीवन सुधरता है। माला फेरते जिस शिष्यकी याद आयेगी उसका जीवन सुधरेगा। मेरे गुरु मुझे बार-बार निहारते थे। गुरुजी कहते थे यह बच्चा बड़ा समझदार है। गुरुजीको आनन्द होता है। वे बहुत प्रसन्न थे।

यह जीव जातिहीन है। परन्तु कर्महीन नहीं है। संत जिसपर प्रेमकी नजर डालते हैं उसका कल्याण होता है। एक दिन प्रसाद ले लेनेके बाद मैं उनकी जूठी पत्तलें उठाता था। मैं दासीपुत्र था। कहे बिना मुझे खानेको कौन देता? गुरुजीने मुझे इस प्रकार सेवा करते देखा। संतका हृदय पिघला। गुरुजीने पूछा कि हरिदास तुमने भोजन किया है। मैंने ना कही। गुरुदेवको मुझ पर दया आई। यह बालक कितना समझदार है। गुरुदेवने मुझे आज्ञा दी कि पतलोंमें मैंने महाप्रसाद रखा है यह तुम खाओ। मैंने वह प्रसाद खाया। शास्त्रकी आज्ञा है कि गुरुजीकी आज्ञाके सिवा उनका उच्छिष्ट नहीं खाना। संत जब कल्याणकी भावनासे प्रसाद देते हैं तो कल्याण होता है। सन्त-हृदय पिघलने पर बुलाकर देते हैं। तब वे प्रसन्न हुए है ऐसा मानना। मैंने प्रसाद ग्रहण किया। मेरे सब पाप नष्ट हुए। मुझे भक्तिका रङ्ग लगा। मुझे कृष्णप्रेमका रङ्ग लगा। उस दिन मैं कीर्त्तनमें गया। मुझे नया अनुभव हुआ। कीर्त्तनमें एक निराला आनन्द आया कि मैं आनन्दमें थेई-थेई नाचने लगा। अति आनन्दमें देहाध्यास छूटता है। कीर्त्तन भक्ति श्रीकृष्णजीको अतिशय प्रिय है। भक्तिका रङ्ग मुझे उसी दिन लगा, मुझे राधाकृष्णका अनुभव हुआ। शुकदेवजी कहते हैं, नारदजी व्यासजीको अपना आत्मचरित्र सुनाते हैं। मैं कम बोलता था, इसलिये मुझपर संतोंकी कृपा हुई। मैं सेवामें सावधान रहता था। सन्त सेवामें सद्भाव रखते हैं। परन्तु गुरुदेवकी मुझ पर खास कृपा हुई। मुझे वासुदेव

गायत्रीका मन्त्र दिया। पहले स्कन्धमें पाँचवें अध्यायका ३७ वाँ श्लोक यह वासुदेव गायत्रीका मन्त्र है। इस वासुदेव गायत्रीका हमेशा जप करो।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

चार मास इसी प्रकार गुरुदेवकी सेवा की। गुरुजीका वह गाँव छोड़कर चले जानेका दिन आया। गुरुजी अब चले जायेंगे यह सोचकर मुझे दुःख हुआ। मैंने गुरुजीसे कहा—गुरुजी आप मुझे साथ ले चलिये। मुझे मत छोड़ो। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मैं आपके चौके पर सोया करूँगा। मैं आपका नीचसे नीच काम भी करूँगा। मुझे सेवामें साथ ले चलो। मेरी उपेक्षा न करो। गुरुदेवने विधाताका लेख पढ़कर मुझे कहा कि तू अपनी माताका ऋणानुबन्धी पुत्र है। इस जन्मसे तुम्हें उसका ऋण चुकाना चाहिये, इसलिये माताका त्याग नहीं करना। तू यदि माताको छोड़कर आयेगा तो तुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। तुम्हारी माताकी आहें हमारे भजनमें विक्षेप करेंगी। तुम घरमें रहो। घरमें रहकर भी प्रभुका भजन हो सकता है। नारदजी कहते हैं, आपने तो कथामें कहा था कि प्रभुभजनमें जो विघ्न करे उसका त्याग कर दो। प्रभुके भजनमें जो साथ दे उसका ही सङ्ग करो। ईश्वरके मार्गमें ले जाय वही सच्चा स्नेही है। मेरी माता जो मेरे भजनमें विक्षेप करनेवाली हो तो क्या मुझे अपनी माताका त्याग नहीं करना चाहिये? संसारी माँ-बापकी यही इच्छा रहती है कि मेरा पुत्र विवाह करके वंशकी वृद्धि करे। उनको तो यह इच्छा तो होती ही नहीं कि हमारा पुत्र परमात्मा-में तन्मय हो। मेरी माता मेरे भजनमें विक्षेप करनेवाली है। आपने कथामें एक दिन कहा था कि अपने स्नेही भी जो कथामें विक्षेप करनेवाले हों तो ऐसे स्नेहियोंका भी त्याग कर दो। मीराबाईको लोगोंने बहुत त्रास दिया तब मीराबाईने घबड़ाकर सन्त तुलसीदासको पत्र लिखा कि मैं तीन साल की थी तबसे मैंने गिरधर गोपालके साथ शादी की है। ये मेरे सम्बन्धी मुझे कष्ट देते हैं। मुझे अब क्या करना चाहिये? तुलसीदासने चित्रकूटसे ही पत्र लिखा कि कसौटी सोनेकी होती है, पीतलकी नहीं। तुम्हारी यह कसौटी होती है। "जाके प्रिय न रामवैदेही, सो छांड़िये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।" जिसे सीताराम प्यारे न लगें, जिसे राधाकृष्ण प्यारे न लगें ऐसा जो सगा भाई हो तब भी उसका सङ्ग छोड़ देना चाहिये। दुःसङ्ग सर्वथा त्यागने योग्य है। "दुःसङ्गः सर्वथा त्याज्यः।"

मीराबाईने यह पत्र पढ़कर मेवाड़का त्याग कर दिया और वृन्दावन आ गयीं। भक्ति बढ़ानी हो तो मीराबाईका चरित्र बार-बार पढ़ो। संसारी माता-पिता भी पुत्रको संसारका ही ज्ञान देते हैं। माताके सङ्गमें रहूँगा तो भजनमें विक्षेप होगा। गुरुजीने कहा तू माँका त्याग करे यह मुझे अच्छा नहीं लगता। ठाकुरजी सब जानते हैं। तुम्हारी माता तुम्हारे भजनमें विघ्न करेगी तो ठाकुरजी कोई लीला करेंगे। सम्भव है ये तुम्हारी माताको उठा लेंगे अथवा तेरी माताकी बुद्धिको भगवान् सुधार देंगे। घरमें रहना और इस महामन्त्रका जप करना। माँका अनादर नहीं करना। जप करनेसे प्रारब्ध बदलता है। जपकी धारा टूटे नहीं इसका ध्यान रखना। मैंने गुरुजीसे कहा—आप जप करनेको कहते हैं, मगर मैं तो अनपढ़ दासी पुत्र हूँ। मैं जप कैसे करूँगा? जपकी गिनती कैसे करूँगा। गुरुदेवजीने कहा, जप करनेका काम तुम करो और जप गिननेका काम श्रीकृष्ण करेंगे। जप तुम करना, गिनेगा कन्हैया। जो प्रेमसे भगवानका

स्मरण करते हैं, उनके पीछे-पीछे भगवान् फिरता है। मेरे प्रभुको और कोई काम नहीं है। जगत्‌की उत्पत्ति और संहारका सारा काम मायाको सौंप दिया है। परमात्माके नामका जो जाप करता है, परमात्मा उसके पीछे-पीछे फिरते हैं। जपकी गिनती तो नहीं करनी है। जप गिनोगे तो किसीको कहनेकी इच्छा होगी। किसीको जपकी संख्या कहोगे तो थोड़ा पुण्य चला जायेगा। पुण्यका क्षय होगा। गुरुजीने मुझे वासुदेव गायत्री मंत्रका बत्तीस लाख जप करनेको कहा। बत्तीस लाख जप होगा तो विधाताका लेख भी मिटेगा। पापका नाश होगा। बेटा, इस मंत्रका सदा जप करना। मंत्रका जाप करनेसे ईश्वरके साथ जीवका संबंध होता है। रुद्रसे संबंध पहले होता है। इसके बिना ब्रह्मके साथ संबंध नहीं होता है। फिर ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। रोज यही भावना रखना कि श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं। श्रीकृष्ण प्रेमका स्वरूप है। तेरा कल्याण करेंगे। बेटा, तू बालकृष्णका ध्यान करना। श्रीकृष्णका बालस्वरूप अति मनोहर है। बालकको थोड़ा दो तो भी वह राजी होता है। इसलिये गुरुदेवने बाल-उपासना की। बाल-स्वरूपका ध्यान करनेकी आज्ञा दी। भावनासे बालस्वरूपका ध्यान करो। मेरे गुरुजी मुझे छोड़कर चले गये। मुझे अति दुःख हुआ। पूर्वजन्मके गुरुका नाम लेते ही नारदजी रोने लगे।

सच्चे सद्गुरुको कोई स्वार्थ नहीं होता है। मैंने निश्चय किया और जप शुरू कर दिया। मैं सतत जप करता। जप किये बिना मुझे चैन नहीं आता। घूमते फिरते और स्वप्नमें भी जप करता था। शय्यापर सोनेसे पहले हमेशा जप करो। जपकी धारा न टूटे। एक वर्ष तक वाणीसे जप करना। तीन वर्ष कंठसे जप करना। तीन वर्षके बाद मनसे जप होता है। इसके बाद अजपा जाप होता है।

माँ को यह रुचता न था। फिर भी मैंने बारह वर्ष तक सोलह अक्षरी महामंत्रका जप किया। मनुष्य जप करते हुये भी छलकपट बहुत करते हैं। इसीसे उनके पुण्योंका नाश होता है। माँकी बुद्धि भगवान् बदल देंगे, यह सोचकर माँको मैंने कभी कुछ न कहा। मैंने अपनी माताका कभी भी अनादर नहीं किया। उसके बाद माता एक दिन गौशालामें गई। वहाँ उसको सर्पने काट लिया। सूतजी सावधान करते हैं। सर्प अपराधीको काटता है। माताने शरीरका त्याग किया। प्रभुने कृपा की। 'अनुग्रहं मन्यमानः।' मैंने माना कि मेरे भगवान्‌का मुझ पर अनुग्रह हुआ है। माताजीके देहका अग्नि-संस्कार किया। मुझे आनन्द हुआ। मैं मातृ-ऋणसे मुक्त हुआ। घरमें जो कुछ रखा था मैंने माताके काममें ले लिया। मुझे प्रभुमें श्रद्धा थी, अतः मैंने कुछ संग्रह नहीं किया। जन्मसे पहले मेरे लिये माताके स्तनमें दूध पैदा करनेवाला दयालु भगवान् मेरे पोषणकी व्यवस्था करेगा। वह क्यों नहीं करेगा ? परमात्मा विश्वंभर हैं। मैं अपने भगवान्‌का हूँ तो क्या भगवान् मेरा पोषण नहीं करेंगे ? मैंने कुछ नहीं लिया। पहने हुये कपड़ोंके साथ मैंने गृहत्याग किया। जिसका जीवन केवल ईश्वरके लिये है, वह कभी भी संग्रह नहीं करेगा। भगवान् नास्तिकका भी पोषण करता है। नास्तिक कहता है मैं ईश्वरको नहीं मानता; परन्तु मेरा परमात्मा कहता है बेटा, तू मुझे नहीं मानता मगर मैं तुझे मानता हूँ। उसका क्या होगा ? जीव भले अज्ञानमें जो चाहे सो बोले मगर ठाकुरजी कहते है तू भगवान्‌का अंश है। जो ईश्वरका नियम पालता नहीं, धर्मको जो मानता नहीं, ऐसे नास्तिकका भी परमात्मा पोषण करते हैं। क्या कन्हैया मेरा पोषण नहीं करेगा ?

मैंने कभी भीख माँगी नहीं, मगर अपने प्रभुकी कृपासे मैं कभी भूखा न रहा। मैंने किसी चीजका संग्रह नहीं किया, परन्तु मेरे भगवान्‌ने किसी दिन मुझे भूखा नहीं रखा। भगवत्-स्मरण करता मैं फिरता था। बारह वर्षोंतक मैंने अनेक तीर्थोंका भ्रमण किया। इसके बाद मैं घूमता-फिरता गङ्गा नदीके तट पर पहुँचा। गंगास्नान किया, इसके बाद एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर मैं जप करता था। जप ध्यानसे करता था। गुरुदेवने आज्ञा की थी कि खूब जप करना। मैंने जाप नहीं छोड़ा। गुरुने कहा था प्रभु दर्शन दें तो भी जप छोड़ना नहीं। गंगा किनारे बारह वर्ष रहा।

चौबीस सालसे भावना करता था कि कन्हैया मेरे साथ हैं। मेरे पूर्वजन्मके पाप बहुत होंगे इसलिये मुझे प्रभुके दर्शन नहीं हो रहे हैं। परन्तु श्रद्धा संपूर्ण थी इस कारण एक दिन प्रभु मुझे दर्शन अवश्य देंगे। भावनामें भावसे मुझे श्रीकृष्ण दीखते थे। मगर मुझे बालकृष्णके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहे थे। अपने श्रीकृष्णका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन करना था। मुझे लगा कि श्रीकृष्ण मुझे कब अपनायेंगे? कब मुझे मिलेंगे? मुझे श्रीकृष्ण-दर्शनकी तीव्र इच्छा जागी। क्या ही अच्छा हो कि मुझे श्रीकृष्णकी झाँकी हो।

मेरे लालाने कृपा की। एक दिन ध्यानमें मुझे सुन्दर नीला प्रकाश दीखा। प्रकाशको देख मैं जप करता था। वहाँ प्रकाशमेंसे बालकृष्णका स्वरूप प्रगट हुआ। मुझे बालकृष्णके मनोहर स्वरूपकी झाँकी हुई। मेरे कृष्णने कस्तूरीका तिलक लगाया था। वक्षस्थलमें कौस्तुभमणिकी माला धारण की थी। नाकमें मोती था। आँखें प्रेमसे भरी थीं। मुझे जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करनेकी शक्ति सरस्वतीमें भी नहीं है। मुझे हुआ कि मैं दौड़ता जाऊँ और श्रीकृष्णके चरणोंमें वन्दन करूँ। मैं जैसे ही वन्दन करने गया तो कृष्ण अंतर्ध्यान हो गये। मुझे लगा मेरा श्रीकृष्ण मुझे क्यों छोड़कर चला गया? वहाँ मुझे आकाशवाणीसे आज्ञा मिली, तेरे मनमें सूक्ष्म वासना रही है। जिसके मनमें सूक्ष्म वासना रह गई हो ऐसे योगीको मैं दर्शन नहीं देता। इस जन्ममें अब मेरा दर्शन तुझे नहीं होगा। यों तो तेरी भक्तिसे प्रसन्न हुआ हूँ, तेरे प्रेमको, भक्तिको पुष्ट करनेके लिये तुम्हें दर्शन दिया है। परन्तु तुझको अभी एक जन्म और लेना पड़ेगा। अभी तेरे बहुतसे जप बाकी हैं। अगले जन्ममें तुझे मेरा दर्शन होगा। दृष्टि और मनको सुधार। सतत विचार कर कि मैं तेरे साथ हूँ। जीवनके अंतिम श्वास तक करना। भजन बिनाका भोजन पाप है। सत्कर्मकी समाप्ति नहीं हुआ करती। जिस दिन जीवनकी समाप्ति, उसी दिन सत्कर्मकी समाप्ति। इसके बाद मैं गंगाकिनारे रहा। मरनेसे पहले मुझे अनुभव होने लगा कि इस शरीरमें मैं जुदा हूँ। जड़—चेतनकी ग्रंथि छूट गयी। जड़ और चेतनकी, शरीर और आत्माकी जो गाँठ लगी है यह गाँठ भक्तिके बिना नहीं छूटती। शरीरसे आत्मा जुदा है यह सब जानते हैं पर उसका अनुभव कौन करता है?

ज्ञानका अनुभव भक्तिसे होता है। संत तुकाराम महाराज कहते हैं कि मैंने अपनी आँखोंसे अपना मरण देखा है। अपने आत्म-स्वरूपको निहारा है। मन ईश्वरमें लगा हो और ईश्वर-स्मरण करते-करते शरीर छूट जाय तो मुक्ति मिलती है। मनको ईश्वरका स्मरण करानेके लिये जप बगैर कोई साधन नहीं है। जब जीभसे जप करो तभी मनसे स्मरण करना ही चाहिये। सारा जीवन जिसके पीछे गया होगा वही अंतकालमें याद आयेगा। अंतकाल तक मेरा जप चलता रहा। जपकी पूर्णाहुति नहीं होती। भजनकी समाप्ति नहीं होती है।

शरीरकी समाप्तिके साथ ही भजनकी समाप्ति। जीवनके अंत तक भजन करना। अंतकालमें राधाकृष्णका चिंतन करते मैंने शरीरका त्याग किया। अपनी मृत्यु मैंने प्रत्यक्ष देखी। मुझे मृत्युका कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद मैं ब्रह्माजीके यहाँ जन्मा। पूर्वजन्मके कर्मोका फल मुझे इस जन्ममें मिला। मेरा नाम नारद रखा गया। पूर्वजन्ममें किये गये भजनसे मेरा मन स्थिर हुआ है। मेरा मन संसारकी ओर जाता ही नहीं। अब मेरा मन चंचल नहीं होता है। अब तो मैं सतत परमात्माका दर्शन करता हूँ।

एक दिन मैं गोलोक धाममें गया, जहाँ सतत रासलीला होती है। वहाँ श्रीराधाकृष्णका मुझे दर्शन हुआ। मैं कीर्तनमें तन्मय हुआ। श्रीकृष्ण-कीर्तनमें मुझे अति आनन्द हुआ। प्रसन्न होकर राधाजीने मेरे लिये प्रभुसे सिफारिश की कि नारदजीको प्रसाद दें। श्रीकृष्णजीने मुझे प्रसाद दिया। व्यासजीने पूछा, प्रसादमें प्रभुने तुम्हें क्या दिया? नारदजीने कहा कि प्रसादीमें प्रभुने मुझे यह तम्बूरा दिया। प्रभुने मुझे कहा-कृष्ण-कीर्तन करते-करते जगत्में भ्रमण करो, और मुझसे जुदा हुये अधिकारी जीवोंको हमारे पास लाओ। संसार-प्रवाहमें बहते हुये जीवोंको हमारी ओर लाओ।

भगवान्को कीर्तन-भक्ति अतिप्रिय है। यह वीणा लिये मैं जगत्में भ्रमण करता हूँ। नादके साथ कीर्तन करता हूँ। अधिकारी जीवोंको या कोई योग्य चेला मिले उसे प्रभुके धाममें ले जाता हूँ। मुझे रास्तेमें ध्रुव मिला उसको प्रभुके पास ले गया। मुझे प्रह्लादजी मिले तो उनको प्रभुके पास ले गया। ऐसे भक्त मिले उन्हें मैं प्रभुके पास ले गया। जो कोई भक्त मिलते हैं उनको प्रभुके पास ले जाता हूँ।

सत्संगमें मैंने भगवत्-कथा सुनी। श्रीकृष्णकथा सुनी फिर मैंने कृष्णकीर्तन किया, और प्रेमलताको पुष्ट किया। अब तो जब मैं इच्छा करूँ तभी कन्हैया मुझे झाँकी देता है। मेरे साथ कन्हैया नाचता है। संत नामदेव महाराज जब कीर्तन करते थे उस समय श्रीविठ्ठलनाथजी नाचते थे। मैं अपने ठाकुरजीका काम करता हूँ इसलिये उनको अतिप्रिय लगता हूँ। कीर्तनमें संसारका भान भूले तो आनन्द आये। कीर्तनमें तन्मय हुआ मनुष्य संसारको भूलता है। कीर्तनसे संसार-सम्बन्ध छूटता है और प्रभुके साथ सम्बन्ध बंधता है। संसारका ध्यान छोड़नेका प्रयत्न करो। कीर्तनमें आनंद कब आता है? जब जीभसे प्रभुका कीर्तन, मनसे उसका चिंतन करेंगे और दृष्टिसे उसके स्वरूपको देखेंगे तभी आनन्द आयेगा। कलियुगमें नाम-कीर्तन करनेसे पाप जलते हैं। हृदय शुद्ध होता है। परमात्मा हृदयमें समाता है। परमात्माकी प्राप्ति होती है। अतः कथामें कीर्तन होना ही चाहिये। कीर्तन बिना कथा परिपूर्ण नहीं होती। कलियुगमें स्वरूप-सेवा जल्दी नहीं फलती। स्मरण-सेवा अर्थात् नाम-सेवा तुरंत फलती है। हे व्यासजी, इस सबका मूल सत्संग है। सत्संगकी यह बड़ी महिमा है। जो सत्संग करता है वही संत बनता है।

श्रीकृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा है। कृष्णकथा सुनकर मुझे सच्चा जीवन मिला है। कथा सुनकर वैराग्य करो और स्वभावको सुधारो। संयम बढ़ाकर ज्यादा भजन करोगे तो सफलता जरूर मिलेगी। नारदजी व्यासजीसे कहते हैं, आप मुझे जो मान देते हैं यह सत्संगका मान है। सत्संगसे ही मैं मानके योग्य हुआ हूँ। भील बालकोंके साथ आवारा घूमनेवाला मैं सत्संगसे ही देवर्षि बना हूँ।

नारदजी दासीपुत्र थे। सच्चे साधुसंतकी सेवासे उनका जीवन सुधरा। संत स्वयं तीर्थ रूप हैं। संत जंगम तीर्थ हैं। पारसमणि लोहेको सोना बनाता है फिर भी लोहेको अपने जैसा नहीं बनाता है। परन्तु संत अपने संसर्गमें आये हुओंको अपने जैसा बनाते हैं—'संत करे आपु समाना'। मनुष्य देव होनेके लिये बनाया गया है। मनुष्यको देव होनेके लिये चार गुणोंकी आवश्यकता है। (१) संयम (२) सदाचार (३) स्नेह और (४) सेवा। ये चार गुण सत्संग बिना नहीं आते हैं। सत्संगका फल भागवत्‌में बताया गया है।

सत्संगसे नारदजी दासीपुत्रसे देवर्षि हुये हैं। मनुष्य मायाका दास बना है। सत्संगसे वह इससे छुटकारा पा सकता है। सच्ची भक्तिका रंग लगता है। फिर इसे प्रभु बिना चैन नहीं मिलता। नारदजीका यह चरित्र भागवत्‌का बीजारोपण है। सत्संग और सेवाका फल बताना इस चरित्रका उद्देश्य है। अतः विस्तार किया है। हमने यह देख लिया कि जप बिना जीवन सुधरता नहीं। दानसे धनकी शुद्धि होती है। ध्यानसे मनकी शुद्धि होती है और शरीरकी शुद्धि स्नानसे होती है। परोपकारसे भी मनकी मलिनता पूर्णतः नहीं धुलती है, इसलिये ध्यान और जपकी आवश्यकता है।

जप करनेवालेकी स्थिति कैसी होनी चाहिये? श्रीब्रह्मचैतन्य स्वामीने कहा है कि 'सहज सुमिरन होत है, रोम रोमसे राम।' जपकी प्रशंसा करते हुए गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' गी. अ. १९ श्लोक २५। रामदास स्वामीने दासबोधमें लिखा है कि जप करनेसे जन्मकुंडलीके ग्रह भी सुधरते हैं। एक करोड़ जप करनेसे तन सुधरता है अर्थात् आरोग्य प्राप्त होता है। दो करोड़ जप करनेसे द्रव्य-सुख मिलता है अर्थात् धनकी प्राप्ति होती है। तीन करोड़ जप करनेसे पराक्रम सिद्ध होता है, यश-कीर्ति मिलती है। चार करोड़ जप करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है। पाँच करोड़ जप करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। छह करोड़ जप करनेसे अन्दरके शत्रुओंका विनाश होता है। सात करोड़ जप करनेसे स्त्रीको सौभाग्य-सुख मिलता है। स्त्रीको पति-सुख और पुरुषको पत्नी-सुख मिलता है। आठ करोड़ जप करनेसे मरण सुधरता है। अपमृत्यु टलती है। मृत्युस्थान सुधरता है। नव करोड़ जप करनेसे इष्टदेवकी झाँकी होती है। अपरोक्षानुभूति होती है। जिस देवका जप करते हैं, उस देवके सगुण स्वरूपका साक्षात्कार होता है। दश, ग्यारह, बारह करोड़ जप करनेसे संचित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म जल जाते हैं। इन कर्मोंका नाश होता है। तेरह करोड़ जप करनेसे भगवान्‌का साक्षात् दर्शन होता है।

नारदजी व्यासजीसे कहते हैं कि अब आप ऐसी कथा करो कि जिससे सुनने वालोंका पाप जले। उनका हृदय पिघले। आपने अब तक ज्ञान-प्रधान कथा बहुत की है, परन्तु अब प्रेम-प्रधान कथा करें। आप ऐसी कथा करें कि जिससे सबके हृदयमें कृष्णप्रेम प्रगट हो। कथाका तात्पर्य नारदजीने बताया है—कथा सुननेसे प्रभुके प्रति प्रेम जागे और संसारके विषयोंके प्रति विराग जागे तो कथा सुनी कहलाये। नारदजीने व्यासजीको ऐसी आज्ञा दी है कि कृष्ण प्रेममें लीन होकर कथा करेंगे तो आपका और सबका कल्याण होगा। व्यासजीने कहा कि आप मुझे ऐसी कथा सुनायें। नारदजी कहते हैं आप ज्ञानी हैं, आप अपना स्वरूप भूले तो नहीं हैं? आप समाधिमें बैठिये और समाधिमें जो दीखे वही लिखिये। बहिर्मुख इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करनेसे समाधि ईश्वरके समीप पहुँचाती है। ईश्वरके साथ एक होना ही समाधि है। ईश्वरमें लीन होना ही समाधि है। नारदजी जब तक न मिलें, नारायणका दर्शन होता नहीं है। संसारमें

आनेके बाद यह जीव अपने स्वरूपको भूलता है। कोई संत कृपा करें तब जीवको अपने स्वरूपका भान कराते हैं। व्यास नारायणको भी नारदकी जरूरत पड़ी थी। इसके बाद नारदजी ब्रह्मलोकमें सिधार गये। व्यासजीने प्राणायामसे दृष्टि अंतर्मुख की। वहाँ हृदयगुफामें बालकृष्णके दर्शन हुये। व्यासजीको सब लीलाओंका दर्शन हुआ है। व्यासजीको नारदजीने स्वरूपका भान कराया। इसके परिणामस्वरूप व्यासजीने श्रीमद्भागवत्की रचना की। भागवत्में तत्त्वज्ञान भी बहुत है, परन्तु इसका प्रधान विषय तो प्रेम है। दूसरे पुराणोंमें ज्ञान, कर्म, आचार, धर्म आदि प्रधान हैं, परन्तु भागवत् पुराणमें प्रेम प्रधान है, भक्ति प्रधान है। बालमीकि रामायण आचारधर्म-प्रधान ग्रंथ है, जबकि तुलसी रामायण भक्तिप्रधान ग्रन्थ है। बालमीकिजीको अपने जन्ममें कथा करनेसे तृप्ति न हुई। भगवान्‌की मंगलमय लीलाकथाका भक्तिसे प्रेमपूर्वक वर्णन करना बाकी रह गया, इसलिये उन्होंने कलियुगमें तुलसीदासके रूपमें जन्म लिया।

'कलि, कुटिल जीव, निस्तार हित, बालमीकि तुलसी भयो।' वेदस्वीकृत भागवत्का यह फल है। यह तो सबको विदित है कि वृक्षकी छाल तथा पत्तोंमें जो रस होता है उससे वृक्षके फलमें विशेष रस होता है। रसपूर्ण इस श्रीमद्भागवत रूप फलका मोक्ष मिलने तक आप बारबार पान कीजिये। पिवत भागवतं रसमालयं। भा १.१.३.। जबतक जीव और ईश्वरका मिलन न हो जाय तब तक इस प्रेमरसका पान करो। ईश्वरमें जबतक तुम्हारा लय न हो जाय, तबतक इस प्रेमरसका पान करो। भागवत्का आस्वादन किया करो। भागवत्-रसका पान करो। वेदान्त अधिकारीके लिये है। सबके लिये सरल नहीं है। वेदान्त त्यागकी आज्ञा करता है। वेदान्त कहता है सर्वका त्याग करके भगवान्‌के पीछे पड़ो। जबकि संसारियोंसे कुछ छूटता नहीं। ऐसोंके उद्धारके लिये कौनसा उपाय ? हाँ, है उपाय। त्याग न कर सको तो कोई हर्जा नहीं, परंतु अपना सर्वस्व ईश्वरको समर्पण करो और अनासक्त रहकर ही उसे भोगो। व्यासजीने ब्रह्मसूत्र बनाया, योगदर्शन पर भाष्य रचा, परन्तु उनको लगा कि कलियुगके मानव भोगपरायण होंगे और इसी कारण उनसे इस योगमें प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी। उनके लिये करुणा करके यह भागवत् शास्त्र रचा। परीक्षितको निमित्त बनाकर संसारमें फँसे लोगोंके लिये व्यासजीने यह भागवत्की कथा की है। भागवत् खासकर संसारियोंके लिये है।

इस भागवत् पुराणका संसारियोंपर करुणाके कारण शुकदेवजीने वर्णन किया है। प्रभुप्रेमके सिवा शुष्क ज्ञानकी शोभा नहीं। यह बतानेका भागवत्का उद्देश्य है। भक्तिके बिना ज्ञानकी शोभा नहीं है। जब ज्ञान वैराग्यसे दृढ़ किया हुआ नहीं होता, तो ऐसा ज्ञान मरण सुधारनेके बदले संभव है कि मरण बिगाड़े। संभव है कि ऐसा ज्ञान अंतकालमें धोखा दे। मरणको भक्ति सुधारती है। भक्ति बिना ज्ञान शुष्क है। वह मरण बिगाड़ता है। विधि-निषेधकी मर्यादा त्यागे हुए, बड़े बड़े ऋषि भी भगवान्‌के अनंत कल्याणमय गुणोंके वर्णनमें सदा रत रहते हैं। ऐसी है भक्तिकी महिमा।

'नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः !' भा २.१.७। ज्ञानीको अभिमान सताता है भक्तको नहीं। भक्ति अनेक सद्‌गुणोंको लाती है, भक्ति सर्वगुणोंकी जननी है। भक्त नम्र होता है, भक्त विनीत बनता है। भागवत् कथा—जो कथा पाप दूर करे और प्रभुके प्रति प्रेम जाग्रत करे वही सच्ची भागवत् कथा। भगवान्‌की कथा और भगवान्‌के स्मरणसे हृदयको आर्द्र बनाओ, उसके मंगलमय नामका जप करो। यही कलियुगमें मुक्ति पानेका मार्ग है। विषयोंका बन्धन

मनुष्य छोड़े, तभी मनको सच्चा आनंद सुख मिलता है। संयम और सदाचारको धीमे-धीमे बढ़ाते जाओ तो भक्तिमें आनन्द आयेगा। वैराग्यके बिना भक्ति सफल नहीं होती। आचार विचार शुद्ध होगा तो भक्तिको पुष्टि मिलेगी। जीवन विलासमय हुआ तो मान लो कि भक्तिका बिनाश हुआ है। भागवत् शास्त्र मनुष्यको कालके मुखसे छुड़ाता है। यह मनुष्यको सावधान करती है। कालके मुखसे छूटना हो तो कालके भी काल श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ। जो सर्वस्व भगवान् पर छोड़ते हैं उनकी चिंता भगवान स्वयं करते हैं। महाभारतके युद्धमें दुर्योधनके ताना देने पर भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा की थी कि—कल मैं अर्जुनको मारूँगा, या मैं मरूँगा। इस प्रतिज्ञासे सब घबराये, कारण कि यह भीष्मपितामहकी प्रतिज्ञा थी। यह सुनकर कृष्ण भगवान्‌को चैन नहीं आया। रातको निद्रा नहीं आयी। भीष्मकी प्रतिज्ञा सुनकर अर्जुनकी क्या दशा हुई होगी, यह सोचकर भगवान् अर्जुनकी स्थिति देखने आये। जाकर क्या देखते हैं कि अर्जुन तो शांतिसे गहरी नींद सो रहा है। भगवान्‌ने सोचा कि भीष्मने ऐसी प्रतिज्ञा की है, भीषण प्रतिज्ञा की है, तो भी यह तो शांतिसे सो रहा है। उन्होंने अर्जुनको जगाया और पूछा—तुमने भी भीष्मकी प्रतिज्ञा सुनी है न? अर्जुनने कहा—हाँ, सुनी है। श्रीकृष्णने कहा—तो तुम्हें मृत्युका भय नहीं है, चिंता नहीं है? अर्जुनने कहा—मेरी चिंता करनेवाला मेरा स्वामी है। वह जागता है इसलिये मैं शयन करता हूँ। वह मेरी चिंता करेगा मैं किसलिये चिंता करूँ। इस तरह सब ईश्वर पर छोड़ो। मनुष्यकी चिंता जब तक ईश्वरको न हो जाय, तब तक वह निश्चिन्त नहीं होता।

प्रथम स्कंध यह अधिकार लीला है। अधिकार बिना संत मिले तो उसकी ओर सद्भाव नहीं जागता। संतोंको खोजनेकी जरूरत नहीं है। खोजनेसे संत नहीं मिलते हैं। केवल प्रभुकृपासे ही संत मिलते हैं। आखिर जबतक मन शुद्ध नहीं होगा तबतक प्रभुकी कृपा नहीं होगी। तबतक मन दुर्जन रहेगा जबतक संत मिलते नहीं। संत बनोगे तो संत मिल जायेंगे। संत देखनेकी दृष्टि देते हैं कि संसारके पदार्थोंको देखनेमें आनन्द है, उनके उपभोगमें आनंद नहीं है। संसार यह ईश्वरका स्वरूप है। इस कारण जगत्‌को ईश्वरमय देखो।

शुकदेवजी और अप्सराओंका प्रसंग पहले कह चुके हैं। महाप्रभुजीने वैष्णवके लक्षण बताये हैं कि जिसके दर्शनसे कन्हैया याद आये वह वैष्णव, जिसके संगमें आने पर प्रभु याद आयें वह वैष्णव। अप्सराओंको शुकदेवजीके दर्शनसे वैराग्यकी उत्पत्ति हुई, कृष्णकथाके पीछे वह पागल बनी हैं। जगत्‌में संतोंका अभाव नहीं है परन्तु सद्‌शिष्योंका अभाव है। जिसका अधिकार सिद्ध हुआ है, उसे संत पुरुष मिल जाते हैं। मनुष्य संत बनता है तभी उसे संत मिलते हैं। संत बननेसे पहले संत मिले तो उसमें सद्भाव नहीं बनता है। जिसकी आंखमें ईश्वर है वह सर्वमें ईश्वरका अनुभव करता है। इस जगत्‌में निर्दोष एक परमात्मा ही हैं। ईश्वरके सिवा कोई निर्दोष नहीं है। संतोंमें कोई एकआध दोष होगा, कारण पूर्ण सत्यगुण प्रगट होनेपर तो यह जीव इस शरीरमें नहीं रह सकता है। ईश्वरसे यह अलग नहीं रह सकता। यह ब्रह्माजीकी सृष्टि गुण दोषसे भरी हुई है। जगत्‌में सब प्रकारसे कोई सुखी हो ही नहीं सका है। यदि सर्व प्रकारसे कोई सुखी हो जाय तो सुखका भान भी भूल बैठेगा। जगे सर्व सुखी असा कोण आहे विचारी मना तुज शोधोनी पाहे।

संसारके प्रत्येक पदार्थमें दोष हैं, और गुण भी हैं। दृष्टिको ऐसी गुणमयी बनाओ कि किसीका दोष देख न सको। जबतक तुम्हारी दृष्टि गुणदोषोंसे भरी हुई है तबतक संतमें भी आपको

दोष दीखेंगे। इसलिये 'दृष्टि ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्।' जिसकी दृष्टि गुणमयी है, वही संत है। अभिमान आये तो पतन होता है। सतत दीनता आये उसकी आवश्यकता है। संभव है, कि ईश्वर भी संतमें एकाध दोष ईरादा पूर्वक रखता हो। संभव है कि ईश्वर भी अपने भक्तोंमें एकाध दोष रहने देता हो कि जिससे मेरे भक्तोंको नजर न लगे। माता बालकका श्रृंगार करके दूसरोंकी नजर न लगे इसलिये गालपर काले काजलका टीका जैसा लगा देती हैं। मनुष्यमें जब कोई दोष नहीं रहता तो उसके मनमें अभिमान आता है (कि मेरे दोष दूर हो गये)। अपनी दृष्टिको गुणमय बनाओ। किसीके दोषोंको मत देखो। किसीके पापका विचार न करो, या वाणीसे उन पापोंका उच्चार करना नहीं। संत होना, क्या घर छोड़ना है ? घर छोड़नेकी जरूरत नहीं है। घर छोड़नेसे ही कोई संत बनता है ऐसा नहीं है। घरमें रहकर संत बन सकते हो। घरमें रहकर भी ईश्वरको प्राप्त किया जा सकता है। संत तुकाराम महाराज, संत एकनाथ, गोपियाँ आदिने घरमें रहकर ही प्रभुको प्राप्त किया है। गेरुए कपड़े पहन लेनेसे कोई संत नहीं हो जाता है। कपड़े बदलनेकी जरूरत नहीं है। कलेजा बदलनेकी जरूरत है। उसके लिये मनको बदलनेकी जरूरत है।

मनके गुलाम मत बनो, मनको गुलाम बनाओ। परीक्षित राजाने मनको सुधार लिया। अतः उसको शुकदेवजी मिल गये। सब छोड़नेकी जरूरत नहीं है। सब छोड़नेसे निवृत्तिके समय इन्द्रियाँ बहुत त्रास देती हैं। संसारमें जो लक्ष्यको याद रखता है वही संत है। मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है परमात्मासे मिलन। जो इस लक्ष्यके लिये प्रतिक्षण सावधान है वह संत है। आत्मा यह मनका साक्षी है, द्रष्टा है। जिसने अपना मन सुधारा है वह संत है। मनको सुधारोगे तो तुम संत बनोगे। मनको सुधारनेकी जरूरत है। जगत् नहीं बिगड़ा है, अपना मन बिगड़ा है। मन पर विश्वास मत करो। मन पर अंकुश रखो जिस दिन मन शुद्ध है चरित्र शुद्ध है ऐसा साक्षी तुम्हारी आत्मा दे तो मानो कि तुम संत हो। मनको सुधारनेके अनेक उपाय हैं जो शास्त्रोंने बताये हैं। मनको मृत्युका भय दिखाओ तो मन सुधरेगा। मृत्युके स्मरणसे मन सुधरता है। मृत्युको भूलने पर मन बिगड़ता है। परीक्षित राजाने जब सुना कि सातवें दिन मरने वाला हूँ, सुनते ही तुरंत उसके विलासी जीवनका अंत आ गया। अब विलासी जीवन विरक्त जीवन हुआ है। परीक्षितको मृत्युका भय लगा, तो उसका जीवन सुधरा। मृत्युका दुःख भयंकर है। जीव शरीर छोड़ता है उस समय हजारों बिच्छु एक साथ डंक मारते हों ऐसी वेदना होती है।

जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः।
अन्तकालं महादुःखं तस्मात् जागृहि जागृहि ॥

जन्म दुःख है, वृद्धावस्था दुःखमय है, और स्त्री (स्त्री पुत्रादि कुटुंबजन) दुःखरूप हैं, और अंतकाल भी बड़ा दुःखद है। इसलिये "जागो"—"जागो"। इस अंतकालको रोज याद करो। नित्य विचार करो कि यदि आज यमदूत मुझे पकड़ने आये तो मैं कहाँ जाऊँगा, 'नरकमें, स्वर्गमें या बैकुंठमें'। मृत्युका निवारण शक्य नहीं है तो फिर पाप किस लिये करते हो ? कई एक तो बहुत समझदार बनते हैं। दो सेर साग सब्जी लेनी हो, तो सारा बाजार घूमते हैं। माथा धुनते हैं, कि करेला लूं या तोरई ? जिसके विचार करनेकी जरूरत थी उसका तो विचार नहीं किया और साग सब्जीका विचार कर रहा है। मृत्युको रोज याद करो,

मृत्युका भय रहेगा तो तुम्हारा पाप दूर होगा और जिस दिन तुम्हारा पाप दूर हो जायगा तब मान लेना कि तुम संत हो गये।

पाप-पुण्यके अनेक साक्षी हैं। सूर्य, चंद्र, धरती, वायुदेव सब साक्षी हैं। मेरे भगवान्के अनेक सेवक हैं। वे जहाँ तुम जाओगे, साथ आते हैं। मनुष्य यह मानता है कि जो मैं पाप करता हूँ उसे कोई देखता नहीं है। अरे भाई, एकान्त कैसा भी हो, वहाँ वायु है और वहाँ भी तेरे अन्दर परमात्मा विराजमान हैं। "यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्।" आखिर तो मनुष्य इस लोकमें मरणकी शरण ही जाता है फिर भी वह पाप आचरण छोड़ता नहीं है। शंकराचार्य स्वामी कहते हैं कि मनुष्य यह जानता है कि एक दिन मरना है, यह सब छोड़कर एक दिन जाना है ऐसा होने पर भी वह पाप क्यों करता है ? मुझे इसका आश्चर्य होता है। इसलिये अपने जीवनको सम्हालो।

परीक्षितका अधिकार सिद्ध होने पर शुकदेवजी वहाँ पधारे हैं। शुकदेवजीको आमंत्रण नहीं देना पड़ा। शुकदेवजी ऐसे नहीं कि किसीके आमंत्रण पर आयें। राजाका जीवन बदल गया है। शुकदेवजीने जब यह जाना कि परीक्षित राजा अब राजा नहीं रहा है, महर्षि हुआ है तो वह आ गये। राजर्षि और ऋषि एक हैं। राजा जबतक महलोंमें विलासी जीवन बिताता था तबतक शुकदेवजी नहीं आये, परन्तु तक्षकके भयसे संसार छूटा कि तुरंत ही शुकदेवजी पधारे। राजा होता और उस समय शुकदेवजी कथा करने गये होते, तो राजा कहता-"आप आये हैं, ठीक किया है। एक घंटा कथा करें और बिदा ले लें। मुझे बहुत काम है।" परीक्षित राजाको बिश्वास था कि अब सात दिनके बाद मरना है। हमें तो अपनी यह खबर भी नहीं है। जीवन पानीका बुलबुला है। पानीके बुलबुलेको फूटते देर नहीं लगती। इसी प्रकार जीवनके अंत आनेमें भी देर नहीं लगती।

प्रथम स्कंध अधिकार लीलाका है। श्रीमद्भागवतके ज्ञानके संपादनका अधिकारी कौन ? यह ज्ञान देनेका अधिकारी कौन ? आदि बताया है। पहले स्कंधमें तीन प्रकरण हैं—उत्तमाधिकार, मध्यमाधिकार और तीसरा कनिष्ठाधिकार। शुकदेवजी और परीक्षित उत्तम वक्ता श्रोता, नारद और व्यास मध्यम श्रोता वक्ता और सूतजी शौनकजी कनिष्ठ वक्ता तथा श्रोता हैं। व्यासजी समाज सुधारनेकी भावनासे कथा करते हैं। इसलिये उनको मध्यम वक्ता कहा है। समाजको सुधारनेकी इच्छा अनेक बार प्रभुभजन, प्रभुमिलनमें बाधक होती है। दूसरेको सुधारनेकी भावना प्रभुभजनमें विघ्न करती है। दूसरोंको सुधारनेके झंझटमें नहीं पड़ना, तुम अपना जीवन सुधारो। कथा करते समय शुकदेवजीको खबर नहीं थी कि मेरी कथा सुननेके लिये सामने कौन-कौन बैठा है। शुकदेवजीकी कथासे बहुतोंका जीवन सुधरता है परन्तु इसका विचार शुकदेवजी नहीं करते। शंकराचार्यजीने कहा है कि ब्रह्मज्ञानी महात्मा एक क्षण भी ब्रह्मचिंतन नहीं छोड़ सके हैं। ऐसी दशा शुकदेवजीकी है। सोलह आने वैराग्य न हो तो दृष्टि ब्रह्माकार नहीं होती। जगत्में ब्रह्मज्ञानी मिल सके हैं, परन्तु ब्रह्मदृष्टि रखकर विचारनेवाले शुकदेवजी जैसे नहीं मिलते।

कथनी और करनी एक न हो और आचरण एक न हो तब तक शब्दमें शक्ति नहीं आती। "आधीं केलें मग सांगितलें" रामदास स्वामीने कहा है कि मैंने किया है मैंने अनुभव किया है, इसके बाद आपको कहा है। शुकदेवजी महाराज जो बोले हैं, वह जीवनमें उतारकर बोले हैं। शुकदेवजी उत्तम वक्ता हैं कारण कि वाणी और आचरण उनका एक है। इसलिये किसी संतने

कहा है—"बोले तैसा चाले, त्याचि वन्दाविता पाउलं"। ऐसा व्यक्ति वन्दनीय है। एक समय एक माता अपने पुत्रको संत एकनाथजीके पास लायी। कहने लगी—"महाराज मेरे पुत्रको गुड़ खानेकी बहुत आदत पड़ गई है। अब वह यह आदत छोड़ता नहीं है। वह गुड़ खाना छोड़ दे, ऐसा आशीर्वाद दीजिये।" महाराजने उस समय आशीर्वाद नहीं दिया, कारण वे स्वयं गुड़ खाते थे। उन्होंने उस मातासे कहा कि कुछ दिनके बाद तुम पुत्रको लेकर आओ। उस समय मैं आशीर्वाद दूंगा, आज नहीं। उन्होंने स्वयं गुड़ खाना छोड़ दिया। 'विट्ठलनाथ! कृपा करो। आजसे मैंने गुड़ छोड़ा है, ताकि मेरी बातमें शक्ति आये।' फिर कुछ दिनोंके बाद वह माता अपने पुत्रको लेकर आई। महाराजने उस समय उस बालकको आशीर्वाद दिया।

प्रसादकी प्रसादी करते, अजीर्ण हो इतना प्रसाद नहीं लेना चाहिये। भगवान् योगी हैं और भोगी भी हैं और यह जीव भोगी है, योगी नहीं है। इसलिये भगवान् छप्पन भोगका भोग लगायें तो भी कोई हर्ज नहीं है। हमसे ऐसा नहीं हो सकता। त्यागसे अलौकिक शक्ति आती है। विषय-भोग हमारे हाथसे निकल जाये, छूट जाये, तो दुःख होता है और विषय प्राप्त हो और हम उसको छोड़ दें तो आनन्द होता है। शुकदेवजीमें सोलह आने वैराग्य है, अतः वह उत्तम वक्ता हैं।

महाप्रभुजीने कहा है कि भागवत्में समाधिभाषा मुख्य है। ईश्वरके ध्यानमें जिसे थोड़ासा भी आनंद है, उसे भागवत्का अर्थ जल्दी समझमें आता है। व्यासजीने एक-एक लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। व्यासजीने अंतर-दृष्टिसे यह सब देखा है। भगवान्का स्वरूप अलौकिक है, अपनी आँखें लौकिक हैं। अतः लौकिक आँखें अलौकिक ईश्वरको नहीं देख सकतीं। बाहरकी आँखें बंद करने पर अन्दरकी आँखें खुलती हैं। तभी परमात्माका दर्शन होता है।

सूतजीने कहा—व्यासजीने अठारह हजार श्लोकोंका यह भागवत् ग्रन्थ बनाया। व्यासजीको लगा कि अब हमारा अवतार-कार्य पूरा हुआ। जो मेरे भागवत्का आश्रय लेगा, उसको कलिका भय नहीं होगा। परन्तु व्यासजीको एक चिंता हुई कि ग्रन्थ तो मैंने बना दिया, परन्तु इसका प्रचार कौन करेगा? इस ग्रन्थमें मैंने सब कुछ भर दिया है। यह भागवत् प्रेमशास्त्र है। मायाके साथ — संसारके साथ प्रेम करनेवाला भागवतशास्त्रका प्रचार नहीं कर सकेगा। जन्मसे जिसे मायासे संसर्ग नहीं हुआ है, वही इस ग्रन्थका प्रचार कर सकेगा। भागवत् परमहंसकी संहिता है। श्रीकृष्ण तो महापरमहंस हैं। प्रह्लाद, भरत, ऋषभदेव, आदि सब परमहंस हैं। अतः निर्विकारी हो इस ग्रंथका प्रचार कर सकता है। बहुत सोचनेपर व्यासजीको लगा कि ऐसा योग्य तो मेरा पुत्र ही है। शुकदेवजीको रंभा भी चलायमान न कर सकी।

नारियोंमें श्रेष्ठ तो रंभा ही है। ऐसी रंभा शुकदेवजीको चलित करने आयी। शुकदेवजीने कहा—वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम्।

शुकदेवजी कहते हैं कि विषयभोगीका जीवन वृथा नहीं है। सुनो देवी कि किसका जीवन वृथा है।

नारायणः पंकजलोचनः प्रभुः
केयूरहारैः परिशोभमानः।
भक्त्या युतो येन सुपूजितो नहि
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ॥

नीलकमलसे सुन्दर जिनके नेत्र हैं, जिनके आकर्षक अंगों पर केयूर हार आदि अलंकार शोभायमान हैं, ऐसे सर्वान्तर्यामी नारायण प्रभुके चरण-कमलोंमें, जिसने भक्तिपूर्वक स्वयंको अर्पण करके इस आवागमनके चक्रको नष्ट नहीं किया, ऐसे लोगोंका मनुष्य-देह धारण करना व्यर्थ है। ऐसे लोगोंका जीवन वृथा ही है।

श्रीवत्सलक्ष्मीकृतहृत्प्रदेशस्ताक्ष्र्यध्वजश्चक्रधरः परात्मा।
न सेवितो येन क्षणं मुकुंदो वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ॥

जिनके वक्षस्थलपर लक्ष्मीजी शोभायमान हैं, जिनकी ध्वजामें गरुड़जी विराजित हैं, जो सुदर्शन चक्रधारी हैं ऐसे परमात्मा मुकुंद भगवान्का जिसने क्षणमात्र भी स्मरण नहीं किया, ऐसे मनुष्योंका जीवन वृथा ही मानो।

रंभाने जब नारीदेहकी अति प्रशंसा की तो शुकदेवजीने रंभासे कहा—'स्त्रीका शरीर इतना सुगंधमय और सुन्दर होता है, यह तो मैंने आज ही जाना। मुझे तो पहले खबर ही न थी कि स्त्रीका शरीर इतना सुन्दर होता है। परमात्माकी प्रेरणासे यदि अब मुझे जन्म लेना होगा तो मैं तेरी जैसी माता ही पसन्द करूँगा।'

शुकदेवजी जन्मसे ही निर्विकारी हैं। जिस पुत्रने जन्मके समय ही पितासे कहा कि आप मेरे पिता नहीं हैं और मैं भी आपका पुत्र नहीं हूँ, ऐसे शुकदेवजी (पुत्र) घर आयें तो कैसे? शुकदेव जन्मसिद्ध योगी हैं। जन्म हुआ कि तुरंत ही तपश्चर्याके लिये वनकी ओर उन्होंने प्रयाण किया। शुकदेवजी सदा ब्रह्मचिन्तनमें लीन रहते थे। उनको वनसे बुलायें कैसे? वह वनमेंसे घर आयें तो मैं उनको भागवतशास्त्र पढ़ाऊँ और फिर वे इसका प्रचार करें, व्यासजीको यह विचार आया। श्रीकृष्णके स्वरूपका वर्णन नहीं हो सकता है। भगवान्के स्वरूपका कौन पार पा सका है? योगी लोगोंका मन उस प्रभुका कुछ अनुभव कर सका है। कारण यह है कि—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनंदं ब्राह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन ॥

अर्थात् उसका पार पानेके लिए जानेवाला मन भी वाणीसहित वापस लौट आता है। श्रीकृष्णका स्वरूप अद्भुत है। योगियोंके चित्तको भी आकर्षित करता है। ऐसा वह स्वरूप है। तो वह कन्हैया, शुकदेवजी जैसे योगीको क्यों नहीं खींचेगा? शुकदेवजी निर्गुण ब्रह्मके चिन्तनमें लीन थे। उसमेंसे उनके चित्तको हटाने, सगुण ब्रह्म की ओर उसे खींच लानेको श्रीकृष्णलीलाके श्लोक सुनाने चाहिये। उन श्लोकोंका कोई और ही जादुई प्रभाव श्रीव्यासजीने स्वीकार किया। व्यासजीके शिष्योंको जंगलमें, जब वे दर्भसमिध लेने जाते, तब हिंसक

पशुओंका भय लगता । उन्होंने यह बात व्यासजीसे कही । व्यासजीने कहा—जब जब तुमको भय लगे, तब-तब इस भागवतके श्लोकोंका पाठ किया करो । श्रीकृष्ण मेरे साथ हैं, ऐसा विचार करो । ईश्वर सतत हमारे साथ हैं, ऐसा विचार करोगे और अनुभव करोगे तो तुम निर्भय बनोगे । राधारमण श्रीकृष्णका स्मरण करो । इसके बाद जब ऋषिकुमार वनमें जाते तो बर्हापीडम् आदि श्लोक बोलते तो वनमें हिंस्र—बाघ आदि सब पशु वैरको भूल जाते थे और शान्त बन जाते थे । पशुओंके मनपर भी इन श्लोंकोका प्रभाव पड़ता है, परन्तु दुःखकी बात यह है कि आज मनुष्यों पर भी इसका प्रभाव नहीं पड़ता है । जिन मन्त्रोंसे पशुओंका आकर्षण हुआ, उन मंत्रोंसे शुकदेवजीका आकर्षण कैसे नहीं होता ? देहका भान भूले नहीं तबतक देवका दर्शन नहीं होता है । शुकदेवजी ज्योतिर्मय ब्रह्मका चिंतन करते हैं । उनको देहाभिमान नहीं है । शुकदेवजी परमहंसोंके आचार्य हैं, इसलिये ब्रह्मचिंतन करते हैं । उनके मनका आकर्षण करनेके लिये व्यासजीने युक्ति सोची । व्यासजोने शिष्योंसे कहा कि शुकदेवजी जिस वनमें समाधिमें बैठे हों वहाँ, आप जाइये और वे सुनें इस प्रकार इन दो श्लोकोंका गान कोजिये । ये दो श्लोक उनको सुनाइये । शुकदेवजीका हृदय गंगाजल जैसा शुद्ध है । जल शुद्ध और स्थिर हो तो उसमें शुद्ध प्रतिबिंब पड़ता है । अपनी हृदयरूपी दीवार पर बहुत गंदगी लग गई है । इसे बिलकुल साफ करनेकी जरूरत है । इसे साफ करो जिससे परमात्माका प्रतिबिंब उसमें पड़ेगा । अपने हृदयमें हजारों जन्मोंका मैल भरा है । इसलिये हृदयकी दीवारको खूब रगड़ो और इस मैलको दूर करो । मैलको दूर करनेसे परमात्माका प्रतिबिंब उसमें पडेगा । अतः शुद्ध बनो । शब्दमेंसे रूपका दर्शन होता है । नामसृष्टि पहले और रूपसृष्टि उसके बाद । शिष्य आज्ञा पा कर उस वनमें गये । शुकदेवजीका चित्त आकर्षित करनेके लिये शिष्य श्लोकोंका गान करने लगे । शुकदेवजी स्नान-संध्या करके समाधिमें बैठनेकी तैयारीमें थे । जो वे समाधिमें बैठ जाते और समाधि लग जाती तो वे यह श्लोक नहीं सुन पाते । अतः शिष्योंने तुरंत ही गान प्रारम्भ किया—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृंदैः
वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ।।

भा. १०–२१–५ (वेणुगीत)

श्रीकृष्ण गोप-बालकोंके साथ वृन्दाबनमें प्रवेश कर रहे हैं । उन्होंने मस्तक पर मोर-मुकुट धारण किया है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प, शरीरपर पीला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे बनी वैजयन्तीमाला पहनी है । रंगमंचपर अभिनय करनेवाले श्रेष्ठ नट जैसा क्या सुन्दर वेष है । बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं । उनके पीछे-पीछे गोप-बालक इनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं । इस प्रकार वैकुंठसे भी श्रेष्ठ यह वृन्दावनधाम इनके चरण-चिह्नोंसे अधिक रमणीय बना है । मोर श्रीकृष्णको प्यारा लगता है । मोर कामसुख इन्द्रियोंसे नहीं भोगता है । संसारके काम-सुखको भूलनेवाला ही ईश्वरका दर्शन कर सका है । प्रभुके साथ मैत्री करनी हो तो "काम" के साथ

मैत्री छोड़नी होगी । ज्ञानी ललाटमें दृष्टि स्थिर करके वहाँ ब्रह्मका दर्शन करते हैं और वैष्णव हृदयमें श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं। शुकदेवजीने श्लोक सुने । श्रीकृष्णका स्वरूप मनोहर लगा । शुकदेवजीको ध्यानमें अति आनन्द आता है । वाह ! मेरे प्रभु ! उन्होंने तुरन्त निश्चय किया कि निराकार ब्रह्मका चिन्तन नहीं करेंगे। अब सगुण साकारका चिंतन करेंगे। परंतु सोचा कि सगुण ब्रह्मकी सेवामें सब वस्तुओंकी अपेक्षा रहती है। कन्हैया तो मिश्रीमाखन माँगेगा। मैं तो यह कहाँसे लाऊँगा ? मेरे पास तो कुछ नहीं है। मैं निर्गुण ब्रह्मका उपासक हूँ । मैंने तो लंगोटीको भी त्याग दिया है । यह कन्हैया तो बहुत माँगा करेगा तो वह सब मैं कहाँसे लाऊँगा ? यशोदाके घरमें माखन क्या कम था ? फिर भी कन्हैया कहता था—माँ, मुझे घरका माखन अच्छा नहीं लगता । मुझे बाहरका माखन अच्छा लगता है। गोपियोंके माखनमें नहीं, गोपियोंके प्रेममें मिठास थी। गोपियोंके प्रेममें स्वाद था। यह कन्हैया तो माँगकर प्रेमसे भोग लगाता है । वह मुझे कहेगा कि तुम माखन लाओ, मिश्री लाओ तो मैं सब कहाँसे लाऊँगा ? इसलिये साकार ब्रह्मका चिंतन नहीं करूँगा। इस निर्गुण ब्रह्मका ही चिन्तन करूँगा । निराकार ब्रह्मको कुछ देना नहीं पड़ता है, इसलिये मेरे लिये तो यही उत्तम है । किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार शुकदेवजी विचार कर रहे थे कि वहाँ व्यासजीके शिष्योंने दूसरे श्लोकका गान शुरू किया।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघान्सयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥

भा. ३-२-२३

अहो ? आश्चर्य है कि दुष्ट पूतनाने स्तनोंमें विष भरकर जिनको मारनेकी इच्छासे हो दुग्धपान कराया था, उस पूतनाको भी उन्होंने ऐसी गति दी, जो उसे किसी धायको देनी चाहिये थी अर्थात् उसे सद्गति दी । भगवान् श्रीकृष्णके सिवा ऐसा कौन दूसरा दयालु है कि जिसकी शरण ग्रहण करें ? अर्थात् उनसा दयालु कोई दूसरा नहीं है कि जिसकी शरण ग्रहण कर सकें। पूतना स्तनोंमें विष लगाकर आयी थी। ईश्वरके धाममें आई है। वासनाका विष मनमें रखकर, हृदयमें रखकर मनुष्य परमात्माके सन्मुख जाता है, उसे परमात्माका दर्शन नहीं होता । पूतना विष लगाकर तो आयी परन्तु वह मातृभावना लेकर आयी थी। माताका काम किया था पूतनाने। इसलिये उसे यशोदा-जैसी गति दी है । विष देनेवाली पूतनाको भी मेरे प्रभुने सद्गति दी थी । मेरे प्रभुको माखन-मिश्रीकी तो क्या किसी भी चीजकी जरूरत नहीं है। वे केवल प्रेम चाहते हैं। "प्रेमके वश अर्जुन रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई", प्रेमसे वश करके अर्जुनने महाभारतके युद्धमें अपना रथ चलवा लिया । वहाँ प्रभु अपनी ठकुराई भूल गये। पदार्थसे प्रसन्न हो वह जीव और प्रेमसे प्रसन्न हो वह ईश्वर। प्रेम करने योग्य एक परमात्मा ही हैं। ऐसे परम कृपालुको छोड़ मैं किसकी शरणमें जाऊँ ?

शुकदेवजीके मनमें शंका थी कि कन्हैया सब माँगेगा, तो मैं क्या दूंगा ? उस शंकाका निवारण हुआ। शुकदेवजी इधर-उधर देखने लगे कि श्लोक कौन बोल रहे हैं । वहाँ उनको

व्यासजीके शिष्योंका दर्शन हुआ । शुकदेवजीने उनसे पूछा कि आप कौन हैं ? आप जो श्लोक बोल रहे थे वे किसके रचे हुये हैं ? शिष्योंने कहा, हम व्यासजीके शिष्य हैं । व्यासजीने हमें ये मंत्र दिये हैं । यह दो श्लोक तो उदाहरणके लिये हैं, दूसरे श्लोक गोदाममें भरे रखे हैं। व्यास भगवान्ने ऐसे श्लोकोंसे भरपूर श्रीभागवत-पुराणकी रचना की है। शुकदेवजीने पूछा कि ऐसे कितने श्लोक उन्होंने बनाये हैं। शिष्योंने कहा कि ऐसे अठारह हजार श्लोक उन्होंने बनाये हैं। आँखें खुली रहते भी इन श्लोकोंसे समाधि लगती है । आँखें बन्द हों और समाधि लगे यह बात आसान है। पर यह तो आँख खुली हो और समाधि लगे ऐसी समाधि लगती थी। साधो सहज समाधि भली। शुकदेवजीने सोचा, व्यासजी मेरे पिता हैं, मैं उनका उत्तराधिकारी हूँ। मैं पिताके पास जाकर यह पुराण सुनूंगा।

आज शुकदेवजीको भागवतशास्त्र पढनेकी इच्छा हुई है । कन्हैयाकी लीला सुनकर उनका चित्त आर्कषित हुआ है । योगियोंका मन भी इस कृष्णकथासे खिंचता है। निर्ग्रंथ शुकदेवजीको भागवतशास्त्र सुननेकी और अध्ययन करनेकी इच्छा हुई । भागवतके श्लोक सुनकर शुकदेवजीका चित्त आर्कषित हुआ। निर्गुण ब्रह्मका उपासक सगुण ब्रह्मके पीछे पागल हो रहा है। बारह सालके बाद आज शुकदेवजी व्यासके आश्रममें दौड़ते हुये आये हैं । शुकदेवजीने व्यासजीको साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया । व्यासजीने शुकदेवजीको छातीसे लगाया और माथा चूमा। शुकदेवजीने कहा, पिताजी ये श्लोक मुझे पढ़ाओ । शुकदेवजी कथा सुनाते हैं और कृतार्थ होते हैं। व्यासजीने शुकदेवजीको भागवतका अध्ययन कराया और इस प्रकार व्यासजीकी चिंताका अंत आया कि भागवत पुराण शास्त्रका प्रचार कैसे होगा । इस ग्रंथका सच्चा अधिकारी आत्माराम है, कारण कि श्रीकृष्ण सबकी आत्मा रूप हैं। विषयारामको इस ग्रन्थको सुननेकी इच्छा ही नहीं होती है ।

सूतजी कहते हैं, शौनकजी आश्चर्य मत करो। भगवान्के गुण ऐसे मधुर हैं कि सबको वह अपनी ओर खींच लेते हैं। फिर इनसे शुकदेवजीका मन आर्कषित हुआ इसमें क्या नई बात है ?

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

जो ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गई है, और जो सदा आत्मामें ही रमण करते हैं, वह भी भगवान्की हेतुरहित (निष्काम) भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान्के गुण ऐसे मधुर हैं कि सबको अपनी ओर खींच लेते हैं । भगवान्के कथामृतका पान करते भूख और प्यास भी भूल जाती है। इसीलिये तो दसवें स्कंधके पहले अध्यायमें राजा परीक्षित भी कहते हैं कि पहले मुझे भूख और प्यास लगती थी, परन्तु भगवान्के कथामृतका पान करते-करते अब मेरी भूख अदृश्य हो गयी है ।

नैवातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥

मेरा पानी भी छूट गया है । फिर भी मैं आपके मुखसे निकलते श्रीहरिकथा-रूपी अमृतका पान कर रहा हूँ। इसलिये यह दुःसह भूख भी मुझे पीड़ा नहीं देती है। भोजन

भजनका साधनमात्र है इसलिए भूख न सताये इतना भोजन करना चाहिये। सूतजी वर्णन करते हैं इसके बाद यह कथा शुकदेवजीने राजा परीक्षितको सुनाई। मेरे गुरुदेव भी वहाँ थे। उन्होंने यह कथा मुझे सुनायी। अब मैं यह कथा तुमको सुनाता हूँ।

श्रवण करो। अब मैं तुम्हें राजा परीक्षितके जन्म, कर्म और मोक्षकी कथा तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ। पाँच प्रकारकी शुद्धि बतानेके लिए पंचाध्यायिनी कथा शुरू करते हैं। पितृशुद्धि, मातृशुद्धि, वंशशुद्धि, अन्नशुद्धि और आत्मशुद्धि। जिनके यह पाँच शुद्ध होते हैं उन्हींमें प्रभुदर्शनकी आतुरता जागती है। आतुरताके बिना ईश्वरदर्शन होता नहीं। राजा परीक्षितमें ये पाँच शुद्धियाँ मौजूद थीं। यह बात दिखलानेके लिये अगली कथा कही जा रही है। ७ से ११ अध्यायोंमें "बीज" शुद्धिकी कथा है। बारहवें अध्यायमें परीक्षितजीके जन्मकी कथा है। परीक्षित कहेंगे कि यह कथा सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। उत्तम श्रोता वही है कि जो भजनमें भूख और प्यास भूल जाते हैं।

प्रभुभजनमें आनन्द आये तो भूख, प्यास भूलती है। आत्माकार-वृत्ति हो जानेपर देहधर्मका भान नहीं रहता है। कौरव और पाण्डवोंका युद्ध समाप्त हुआ है। अश्वत्थामाने विचार किया कि मैं भी पाण्डवोंको कपटसे मारूँगा। पाण्डव जब सो जायेंगे तब उनको मारूँगा। अरे! जिसे भगवान् रखे उसे कौन मार सकता है? प्रभुने सोये हुए पाण्डवोंको जगा दिया और कहा कि मेरे साथ गङ्गाकिनारे चलो। पाण्डवोंको श्रीकृष्ण पर कितना दृढ़ विश्वास! द्वारकानाथ जो कहते थे वे करते थे। वे कोई प्रश्न भी नहीं करते थे। पाण्डवोंको प्रभुमें पूर्ण विश्वास था। पाण्डव स्वतन्त्र नहीं थे मगर प्रभुके अधीन थे। आजकल स्वतन्त्रताका अलग अर्थ करते हैं। जिनके जीवनमें संयम है, जो परमात्माके आधीन हैं वही स्वतन्त्र हैं। ऐसे पाण्डवोंके कुलमें परीक्षितका जन्म हुआ है। पाण्डवोंको लेकर श्रीकृष्ण गङ्गाकिनारे आते हैं। प्रभुके कहने पर भी द्रौपदीके पुत्र नहीं आये। बालक बुद्धि है न? वे बोले कि आपको तो नींद नहीं आती है हमको तो नींद आती है। आपको जाना हो तो जाओ। परिणाम यह हुआ कि अश्वत्थामाने द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको मार दिया। दुःखमें समझदारी आती है।

प्रभुसे एकाध दुःख माँगो कि जिससे अक्ल ठिकाने रह सके। जो सब प्रकारसे सुखी हो जाता है वह दीन बनकर प्रभुके सामने नमन नहीं करता। आज कृष्ण निष्ठुर बने हैं। द्रौपदीके आँसुओंको देखते भी नहीं। आज द्रौपदी रो रही है, परन्तु द्वारकानाथको दया नहीं आती हैं। नहीं तो द्रौपदीका रुदन श्रीकृष्णसे सहन नहीं होता था। पहले तो जब-जब जरूरत पड़ी, तब-तब द्रौपदीके आँसू पोंछने दौड़ते चले आते थे। यह जीव सब प्रकारसे सुखी हो यह योग्य नहीं। एक दुःख मनुष्यके हृदयमें होना ही चाहिये कि जिस दुःखसे विश्वास हो कि भगवान्‌के सिवा मेरा और कोई नहीं है।

हर एक महापुरुष पर दुःख आये हैं। परमात्माने सोचा कि पाण्डवोंको पृथ्वीका राज्य मिला है। संतति है और सम्पत्ति भी भरपूर है। सब प्रकारसे पाण्डव सुखी हों यह ठीक नहीं है। पाण्डवोंको इस अति सुखमें शायद अभिमान हो जायगा तो उनका पतन होगा। ऐसे शुभ हेतुसे ठाकुरजी कभी-कभी निष्ठुर हो जाते हैं। सुखमें पाण्डव भगवान्‌को न भूलें इसलिए उन्होंने उनको यह दुःख दिया। भगवान् दुःखमें जीवकी गुप्तरीतिसे सहायता करते हैं। अश्वत्थामा और अर्जुनका युद्ध हो रहा है। अर्जुनने अश्वत्थामाको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। परन्तु मारनेकी हिम्मत नहीं हो रही थी। गुरुपुत्र गुरुका स्वरूप है। अश्वत्थामाको

बाँधकर उसे खींच कर द्रौपदीके पास लाया। द्रौपदी आँगनमें बैठी है, पुत्रशोकमें डूबी हुई है। अश्वत्थामाकी यह दशा देख द्रौपदी दौड़कर आयी। अश्वत्थामाको वन्दन करती है और कहती है कि मेरे आँगनमें ब्राह्मणका अपमान नहीं करो। अपने पाँच बालकोंकी हत्या करनेवालेको द्रौपदी वन्दन करती है। यह कोई साधारण वैरी नहीं है। पाँच बालकोंको मारनेवाला आँगनमें आया है, फिर भी वह ब्राह्मण है इसलिये प्रणाम करती है। आपका वैरी क्या आपके घर-आँगनमें आया हो तो क्या आप जय श्रीकृष्ण कहेंगे ?

भागवतकी कथा सुन-सुनकर जीवनको सुधारो। वैरकी शान्ति निर्वैरसे होती है। प्रेमसे होती है। वन्दनासे होती है। वही वैष्णव है कि जो वैरका बदला प्रेमसे देता है। श्रीकृष्णका अर्थ यह है कि मुझे जो कुछ दीखता है वह सब कृष्णमय है। अश्वत्थामा सोचते हैं कि सचमुच द्रौपदी ही वन्दनीय है। मैं वन्दनीय नहीं हूँ। अश्वत्थामा कहते हैं—द्रौपदी, लोग जो तुम्हारी प्रशंसा करते हैं वह बहुत कम है। तुम वैरका बदला प्रेमसे देती हो। द्रौपदीके गुणोंसे आज व्यासजी भी तन्मय बने हैं। द्रौपदीको उद्देशकर कहते हैं, 'वामस्वभावा'। कोमल स्वभाववाली, सुन्दर स्वभाववाली। जिसका स्वभाव अति सुन्दर हो वही श्रीभगवान्‌को प्यारा है। शरीर जिसका सुन्दर हो वह ठाकुरजीको सर्वदा प्रिय नहीं लगता है, परन्तु जिसका स्वभाव सुन्दर है वह ठाकुरजीको सर्वदा प्रिय लगता है। स्वभाव सुन्दर कब बनता है ? अपकारका बदला भी उपकारमें देंगे तब। द्रौपदी बोल उठी कि उनको छोड़ दो।' उन्हें मारो नहीं, वे गुरुपुत्र हैं। जो विद्या गुरु द्रोणाचार्यने अपने पुत्रको नहीं दी वह आपको दी है। क्या आप यह सब भूल गये हैं ? ब्राह्मण परमात्माका स्वरूप है। गाय लूली, लँगड़ी, बाँझ हो तो भी गायका शकुन मनाते हैं। भैंसका शकुन कभी नहीं मानते हैं। गाय और ब्राह्मण वन्दनीय हैं। द्रौपदी तो दयाका स्वरूप है। 'दयारूप' द्रौपदीके साथ जबतक हृदय शादी न करे तबतक श्रीकृष्ण उसके सारथि नहीं बनते। अर्जुन जीवात्मा गुडाकेश और श्रीकृष्ण हृषीकेश हैं। यह जोड़ी तो इस शरीररूपी रथमें बैठी है। इन्द्रियरूपी घोड़ोंका रथ प्रभुको सौपेंगे तो कल्याण होगा। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण हैं—'हृषीकेश।' युधिष्ठिर यही धर्म है, भीम यही बल है। सहदेव-नकुल यही बुद्धि और ज्ञान हैं। इन चार गुणोंवाला जीव यह अर्जुन है। ये गुण कब शोभायमान होते हैं कि जब द्रौपदी दया उनकी पत्नी बनती है, जीव दया द्रौपदीके साथ विवाह करता है तभी। द्रौपदी कब कैसे मिले ? जब धर्मको बड़ा माने तभी। परमात्मा सारथि भी तब बनता है और उसीका होता है कि जो धर्मको बड़ा मानता है। आज तो लोग धर्मको बड़ा नहीं मानते हैं। धनको बड़ा मानते हैं, उसी कारण संयम और सदाचार जीवनमेंसे निकल गये हैं। मानव-जीवनमें धन मुख्य नहीं है, धर्म मुख्य है। धन धर्मकी मर्यादामें रहकर ही प्राप्त करना चाहिये। आपको कोई कार्य करना हो तो पहले धर्मसे पूछो कि यह कर्म करनेसे मुझे पाप तो नहीं लगेगा ? आप अर्जुन जैसा जीवन गुजारोगे तो भगवान् आपका सारथि बनेगा। द्रौपदीने अश्वत्थामाको बचाया और अर्जुनको कहा उनको मार भी देंगे तो भी मेरे पाँच पुत्रोंमेंसे एक भी वापस नहीं आयेगा, परन्तु अश्वत्थामाको मारनेसे उनकी माता गौतमीको अति दुःख होगा। मैं अभी सधवा हूँ। अश्वत्थामाकी माता विधवा है। वह पतिकी मृत्युके बाद पुत्रके आश्वासन पर जीती है। वह जब रोयेगी तो मैं नहीं देख सकूंगी। किसीका आशीर्वाद नहीं लें तो कुछ नहीं, मगर किसीकी ठण्डी साँस नहीं लेना। कोई ठण्डी साँस दे ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये।

जगत्‌में दूसरोंको रुलाना नहीं, आप रो लेना, रोनेसे पाप जलता है। रोनेसे एक दिन परमात्मा सुनता है, कृपा करता है। रोनेसे सुखी हुआ जा सकता है। भीम अर्जुनसे कहते हैं, ऐसे बालहत्यारे पर भी दया होती है क्या? तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ गई? द्रौपदी बार-बार कहती है 'मारना नहीं'। अब अर्जुन सोचमें पड़ गये। श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि द्रौपदी जो कह रही है बराबर है। द्रौपदीके दिलमें दया है। भीमसेनजी कहते हैं कि मनुस्मृतिमें कहा है आततायीको मारनेमें पाप नहीं। धर्म प्रमाणसे भी आततायीको—अश्वत्थामाको मारनेमें पाप नहीं। श्रीकृष्ण भी मनुस्मृतिको मान्य रखकर उत्तर देते हैं कि ब्राह्मणका अपमान यह भी उसकी मृत्युके बराबर है। अतः अश्वत्थामाको मारनेकी जरूरत नहीं है। उसका अपमान करके निकाल दो। अश्वत्थामाका मस्तक नहीं काटा परन्तु उसके माथेमें जन्मसिद्ध मणि थी वह निकाल ली। अश्वत्थामा तेजहीन हो गये। अब भीमसेनने भी सोचा कि अब उसको मारनेसे क्या बाकी रहा है? अपमान तो मरणसे भी विशेष है। अपमान प्रतिक्षण मारनेके बराबर है। अश्वत्थामाने सोचा इससे तो मुझे मार दिया होता तो अच्छा था।

शुकदेवजी सावधान करते हैं कि हे राजन्! अश्वत्थामाने सोचा कि पांडवोंने मेरा अपमान किया है। मैं इसका बदला लूँगा। अपना पराक्रम दिखाऊँगा। उत्तराके पेटमें गर्भ है और वह पांडवोंका उत्तराधिकारी है। उसका नाश होने पर पांडवोंके वंशका नाश होगा। यह सोचकर उसने उस गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उत्तरा व्याकुल हुई है। हरिस्मरण, हरि आश्रय लेते हैं तो भगवान् मार्ग दिखाते हैं। ईश्वर स्मरण बार-बार किया जाय तो भाव शुद्ध होते हैं। ब्रह्मास्त्र उत्तराके शरीरको जलाने लगा। उत्तरा दौड़ती हुई श्रीकृष्णके पास आयी है। श्रीकृष्ण उत्तराके गर्भमें जाकर परीक्षितका रक्षण करते हैं। जीवमात्र परीक्षित है। सबकी गर्भमें कौन रक्षा करता है? जीवमात्रका रक्षण गर्भमें ईश्वर करता है। बाहर आनेपर भी जीव मात्रकी रक्षा भगवान् ही करता है। जीवमात्र परीक्षित जैसे हैं। भगवान् उत्तराके गर्भवाले परीक्षितका रक्षण करते हैं। उतना ही नहीं वे तो जीवमात्रका रक्षण करते हैं। गर्भमें तो जीवात्मा हाथ जोड़कर भगवान्‌को सतत नमन करता है और बाहर आनेके बाद दोनों हाथ छूट जानेसे उसका नमन भी छूट जाता है। प्रभुको वह भूल जाता है। गर्भावस्थामें जीवकी रक्षा परमात्मा करता है। बाल्यावस्थामें भी जीवनकी रक्षा परमात्मा ही करता है। यह तो युवावस्थामें मानवी होश भूलता है और अकड़कर चलता है और कहता है कि मैं धर्मको नहीं मानता, ईश्वरको मानता नहीं।

द्रौपदीने उत्तराको सीख दी थी कि जीवनमें दुःखका प्रसङ्ग आनेपर ठाकुरजीके चरणोंका आश्रय लेना। दुःखके प्रसङ्गके समय श्रीकृष्णको शरणमें जाना। कन्हैया दयामय है। वह तेरी अवश्य सहायता करेगा।

अपने दुःखकी कथा द्वारिका नाथके सिवा अन्य किसीसे कभी मत कहो।
उत्तराने देखा था कि अपनी सासजी रोज द्वारिकानाथको रिझाती हैं।
बालक जल्द अनुकरण करता है। उसके सामने कभी पाप मत करो।
उत्तरा रक्षाके लिये पांडवोंके पास नहीं किंतु परमात्माके पास गयी।
माताके पेटमें ही परीक्षितको परमात्माके दर्शन हुये थे, अतः वे उत्तम श्रोता हैं।
भगवान् किसीके गर्भमें नहीं जाते। परमात्माकी लीला अप्राकृत है।

देवकीके पेटमें प्रभु गये नहीं थे । देवकीको भास (भ्रांति) कराया था कि वे पेटमें गये थे । किंतु आज जरूरत आ पड़ी थी । आज भक्तकी रक्षा करनी थी । सो परमात्माने गर्भमें जाकर रक्षा की ।

परम आश्चर्य हुआ है ।

श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रसे ब्रह्मास्त्रका निवारण किया । परीक्षितकी रक्षा करनेके बाद वे द्वारिका पधारनेको तैयार हुये ।

कुंती मर्यादा-भक्ति है, साधन-भक्ति है ।

यशोदा पुष्टि-भक्ति है । यशोदाका सारा व्यवहार भक्तिरूप था । प्रेमलक्षणा भक्तिमें व्यवहार और भक्तिमें भेद नहीं रहता । वैष्णवकी सारी क्रियायें भक्ति ही बन जाती हैं ।

प्रथम मर्यादा-भक्ति आती है । उसके बाद पुष्टि-भक्ति । मर्यादा-भक्ति साधन है सो वह आरंभमें आती है । पुष्टिभक्ति साध्य है, अतः वह अंतमें आती है ।

भागवतमें नवमस्कंध तक साधन-भक्तिका वर्णन है । दशमस्कंधमें साध्य-भक्तिका वर्णन है । साध्यभक्ति प्रभुको बांधती है । पुष्टिभक्ति प्रभुको बांधेगी । उसकी कथा भागवतके अंतमें आती है । हरेक व्यवहारको भक्तिरूप बनाये सो पुष्टिभक्ति है ।

भक्तिमार्गमें भगवद्‌वियोग सहन नहीं होता । भक्तिमें भगवान्‌का विरह सहन नहीं होता । वैष्णव वह है जो प्रभुके विरहमें जलता है ।

द्वारिकानाथ द्वारिका जानेको तैयार हुये । कुंतीका दिल भर आया । उनकी अभिलाषा है कि चौबीस घंटे मैं श्रीकृष्णको निहारा करूँ । मेरे श्रीकृष्ण मुझसे कहीं दूर न जायँ । जिस मार्गसे भगवान्‌का रथ जानेवाला था वहीं कुंती आयीं और हाथ जोडकर रास्तेमें खड़ी हो गयीं ।

प्रभुने दारुक सारथिसे रथ रुकवाया और कुंतीसे कहा कि फूफीजी, आप मार्गमें क्यों खड़ी हैं ? वे रथसे नीचे उतरे । कुंताजीने वंदन किया ।

वंदनसे प्रभु बंधनमें आते हैं । वंदनके समय अपने सारे पापोंको याद करो । हृदय दीन और नम्र होगा ।

सूतजी वर्णन करते हैं ।

नियम तो ऐसा है कि रोज भगवान् कुंतीजीको वंदन करते हैं । किंतु आज कुंती भगवान्‌को वंदन कर रही हैं । भगवान्‌ने कहा कि यह आप क्या कर रहीं हैं ? मैं तो तुम्हारा भतीजा हूँ । तुम मुझे प्रणाम करो यह शोभास्पद नहीं है ।

कुंती कहती हैं कि मैं आज तक आपको अपना भतीजा मानती थी । किंतु आज समझमें आया कि आप ईश्वर हैं । योगीजन आपका ही ध्यान करते हैं । आप सबके पिता हैं ।

कुंतीकी भक्ति दास्यमिश्रित वात्सल्यभक्ति है । हनुमान्‌जीकी भक्ति दास्यभक्ति है । दास्यभक्तिके आचार्य हनुमान्‌जी हैं । दास्यभावसे हृदय दीन बनता है । अपने स्वामीको देखनेकी हिम्मत मुझमें नहीं है । मैं तो उनका दास हूँ । दास्यभक्ति अधिकारी महात्माको प्राप्त होती है । दास्यभक्तिमें दृष्टि चरणोंमें स्थिर करनी होती है । बिना भावके भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती । ईश्वरके साथ कुछ भी संबंध जुड़ना चाहिये । मर्यादा-भक्तिसे दास्यभाव मुख्य है ।

कुन्ती वात्सल्यभावसे कृष्णका मुख निहारती हैं। मेरे भाईका पुत्र, यही वात्सल्य भाव हुआ। मेरे भगवान् हैं—यह भी दास्यभाव ही है। चरणदर्शनसे तृप्ति नहीं हुई सो मुख देख रही हैं। कुन्ती भगवान्की स्तुति करती हैं।

नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये॥ भा. १-८-२२

जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रगट हुआ है, जिन्होंने कमलोंकी माला धारण की है, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं और जिनके चरणोंमें कमलचिह्न है ऐसे, हे कृष्ण, आपको बार बार वंदन।

भगवान्की स्तुति रोज तीन बार करो—सुबहमें, दोपहरमें और रातको सोनेसे पहले। इसके अलावा सुख, दुःख और अंतकालमें भी स्तुति करो। अर्जुन दुःखमें स्तुति करता है, कुन्ती सुखमें स्तुति करती हैं और भीष्म अंतकालमें स्तुति करते हैं।

सुखावसाने, दुःखावसाने, देहावसाने स्तुति करो।

कुन्ती कहती हैं—प्रभुने हमें सुखी किया है। हमें कैसे कैसे संकटोंसे उबारा? भगवान्के उपकारोंका वे स्मरण कर रही हैं। वे भगवान्के उपकारोंको भूली नहीं हैं। मैं विधवा हुई तब मेरी संतान नन्हीं-सी थी। उस समय भी आपने ही मेरी रक्षा की थी।

सामान्य मनुष्य अतिसुखमें भगवान्को भूल जाता है। जीवमात्र पर भगवान् अनेक उपकार करते हैं। किंतु वह सब कुछ भूल जाता है। परमात्माके उपकार भूलने न चाहिये। हम जब बीमारीसे अच्छे होते हैं तो अमुक औषधिसे बीमारी टली ऐसा मानते हैं। अमुक डॉक्टरने हमें बचाया ऐसा मानते हैं। किंतु भगवान्ने ही बचाया है ऐसा नहीं मानते। भगवान्का उपकार नहीं मानते हैं। विचार करो कि डॉक्टरकी दवाई और इंजेक्शनमें बचानेकी शक्ति कुछ है भी क्या? ना, ना, बचानेवाला तो कोई और ही है। डॉक्टरके पास जो बचानेकी शक्ति होती तो उसके घरसे कभी अन्तिम यात्रा निकलती ही नहीं।

बिना जलके नदीकी शोभा नहीं है, प्राणके बिना शरीर नहीं शोभा देता, कुंकुमका टीका न हो तो सौभाग्यवती स्त्री नहीं सुहाती। इसी प्रकार पाण्डव भी आपके बिना नहीं सुहाते। नाथ, आपसे ही हम सुखी हैं।

गोपीगीतमें गोपियाँ भी भगवान्के उपकारका स्मरण करती हैं। गोपियाँ कहती हैं—विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्। यमुनाजीके विषमय जलसे होनेवाली मृत्युसे, अजगरके रूपमें खा जानेवाले अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारी रक्षा की है।

कुन्तीजी याद करती हैं कि जब भीमको दुर्योधनने विष-मिश्रित लड्डू खिलाये थे, उस समय भी आपने ही उसकी रक्षा की थी। लाक्षागृहसे भी हमें बचाया। आपके उपकार अनंत हैं। उसका बदला हम कभी चुका नहीं सकते।

मेरी द्रौपदीको दुःशासन सभामें खींच लाया। उस समय दुर्योधनने कहा कि द्रौपदी अब अपनी दासी है। उसे निर्वस्त्र करो। दुःशासन वस्त्र खींचने लगा। किंतु भगवान् जिसे ढकता है उसे कौन उघाड़ सकता है। दुःशासन थक गया। लोग भी आश्चर्यमें डूब गए। सब सोचने लगे —

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
सारी की ही नारी है कि नारीकी ही सारी है।

जीव ईश्वरको कुछ भी नहीं दे सकता। जगत्का सब कुछ ईश्वरका ही है। भगवान् कहते हैं कि मेरा है वही मुझे देनेमें क्या बड़ी बात हुई ?

रोज तीन बार भगवान्की प्रार्थना करो कि हे नाथ, मैं आपका हूँ। मुझ पर आपके अनन्त उपकार हैं। कुन्ती कहती हैं कि आपके उपकारका बदला मैं किस तरह चुकाऊँगी ? मैं आपको बारबार वंदन करती हूँ।

नाथ, हमारा त्याग न करो। आप द्वारिका जा रहे हैं, किंतु एक वरदान माँगनेकी मेरी इच्छा है। वरदान देकर आप चाहे चले जाइए। कुन्ती सा वर कभी दुनियामें आज तक किसीने माँगा नहीं है और माँगेगा भी नहीं।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥ भा. १-८-२५

हे जगद्गुरु, हमारे जीवनमें प्रतिक्षण विपदा आती रहें, क्योंकि विपदावस्थामें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके होनेपर जन्म-मृत्युके फेरे टल जाते हैं।

दुःखमें ही मनुष्यको सयानापन आता है। दुःखमें ही प्रभुके पास जानेका मन होता है। विपत्तिमें ही उनका स्मरण होता है। सो विपत्ति ही सच्ची संपत्ति है।

मनुष्यमें प्रभुके बिना चैन आता है क्योंकि वह भक्तिरसको समझा नहीं है।

कुन्ती माँगती हैं कि बड़ी भारी विपत्तियाँ आती रहें ऐसा वरदान दीजिए।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह क्या माँगती हो तुम। आपकी बुद्धि चकरा तो नहीं गई है ? आजतक दुःखके कई प्रसंग आए हैं। अब सुखकी बारी आई है। अब दुःखी होनेकी इच्छा है ?

हर प्रकारका अभिमान छोड़कर जो दीन बनता है वह भगवान्को प्यारा लगता है। कुन्ती दीन बनी हैं। नाथ, मैं जो माँग रही हूँ वही ठीक है। दुःख ही मेरा गुरु है। दुःखमें मनुष्य सयाना बनता है। दुःखसे जीवको परमात्माके चरणोंमें जानेकी इच्छा होती है।

जिस दुःखमें नारायणका स्मरण हो वह तो सुख है, उसे दुःख कैसे कहें ?

विपत्तिमें आपका स्मरण होता है सो उसे मैं संपत्ति मानती हूँ।

सुखके माथे सिल परौ । हरी हृदयसे जाय ।

बलिहारी वा दुःखकी जो पल पल नाम जपाय ॥

हनुमानजीने रामचंद्रजीसे कहा था कि आपके ध्यानमें सीताजी तन्मय हैं इसीसे मैं कहता हूँ कि सीताजी आनंदमें हैं ।

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई ।

जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

नाथ, जब आपका स्मरण-भजन न हो सके वही सच्ची विपत्ति है ऐसा समझो ।

मेरे सिरपर विपत्तियाँ आएँ कि जिससे आपके चरणोंका आश्रय लेनेकी भावना जागे । दुनियाके महापुरुषोंके जीवनमें दुःखके प्रसंग ही पहले आते हैं ।

चार प्रकारके मदसे मनुष्य भान भूला-सा हो जाता है — (१) विद्यामद (२) जवानीका मद (३) द्रव्यमद (४) अधिकारमद । इन चार प्रकारके मदोंके कारण जीव भगवान्‌को भूल जाता है ।

अपने रोते हुए बालकको ताली बजाकर शांत रखनेका प्रयत्न करता हुआ प्रोफेसर उस समय यह भूल जाता है कि वह एक बड़ा विद्वान् प्रोफेसर है । किंतु उसी प्रोफेसरको प्रभुकीर्तनके समय ताली बजानेमें लज्जा होती है । पढ़े-लिखे लोगोंको भजन-कीर्तनमें लज्जा आये तो उससे बड़ा पाप कौन-सा होगा ?

भगवान्‌ने कहा है कि इन चार प्रकारके मदसे जीव उन्मत्त बनता है और मेरा अपमान करता है ।

ऐसे मदवालोंकी जीभको कीर्तनके समय पाप पकडे रखता है । पाप उससे कहता है कि तू बोलेगा तो मुझे बाहर निकलना पड़ेगा ।

महाभारतमें कहा है कि हर प्रकारके रोग मदके कारण ही होते हैं । अतः दीन होकर प्रार्थना करो । तुम्हारे जन्मके कई प्रयोजन बताए जाते हैं किंतु मुझे लगता है कि दुष्टोंका विनाश करना ही प्रधान कार्य नहीं है । अपने भक्तोंको प्रेमका दान करनेके लिए आप आए हैं ।

कुंती बनकर स्तुति करो ।

मुझसे वासुदेवजीने कहा था कि कंसके त्रासके कारण मैं गोकुल नहीं जा सकता । तुम गोकुलमें जाकर कन्हैयाका दर्शन करना । जब आप गोकुलमें बाल-लीला कर रहे थे उस समय मैं आपके दर्शनके लिये आयी थी । आपका बालस्वरूप भुलाये नहीं भूलता । उस समय यशोदाने आपको बाँधा था । उसकी झांकी मैं आज तक नहीं भूली ।

काल भी जिससे काँपता है वे कालके काल श्रीकृष्ण आज थर-थर काँप रहे हैं ।

मर्यादाभक्ति पुष्टिभक्तिकी इस प्रकार प्रशंसा करती है । कुंती यशोदाकी प्रशंसा कर रही हैं । प्रेमका बंधन भगवान् भी नहीं भूल सकते ।

सगुण ब्रह्मको साक्षात्कार करनेके बाद संसारमें आसक्ति रह जाती है। सगुणस्वरूप और निर्गुणस्वरूप दोनोंका आराधन करे उसीकी भक्ति सिद्ध होती है। स्नेहपाशमिमं छिन्धि। स्वजनोंके साथ जुड़ी हुयी स्नेहकी दृढ रस्सीको आप तोड़ दें।

आप ऐसी दया करें कि मुझे अनन्य भक्ति प्राप्त हो।

स्तुतिके आरंभ और समाप्ति दोनोंमें नमस्ते है। सांख्यशास्त्रके २६ तत्त्वोंका प्रतिपादन २६ श्लोकोंकी स्तुतिमें किया गया है।

भगवान् सब कुछ करते हैं किंतु वैष्णवको नाराज नहीं करते।

कुन्तीका भाव जानकर भगवान् वापस लौटे। कुन्तीके महलमें पधारे। अतिशय आनन्द हुआ। अर्जुन वहाँ आया। वह अपनी मातासे कहता है कि भगवान् मेरे सखा हैं, अतः मेरे लिये ही वे वापस लौटे हैं।

कुन्ती कहती हैं— रास्ता रोककर मैंने विनती की इसलिये वे वापस आये हैं।

द्रौपदी कहती है कि कृष्णकी अँगुलि कट गयी थी तो मैंने अपनी साड़ी चीरकर पट्टी बाँधी थी इसलिये वे वापस आये हैं।

सुभद्रा कहती हैं कि मैं तुम्हारी भाँति मुँहबोली नहीं किंतु सगी बहन हूँ, अतः वे वापस आये हैं। मुझे मिलने आये थे उस समय मैं कुछ बोल न सकी थी, सो वे वापस आये हैं।

परमात्मासे प्रेम करोगे तो वे तुम्हारे होंगे।

सबका प्यारा किंतु किसीका भी न होनेवाला। वह सबसे न्यारा है। वह तो सबसे ऊँची प्रेम सगाईका सिद्धान्त मानते हैं।

भीष्माचार्यका प्रेम अति दिव्य था। कृष्ण कहते हैं मैं कोई सगाई-संबंधको नहीं मानता। मैं तो प्रेम-सगाईको ही मानता हूँ। मैं तो अपने भीष्मके लिये वापस आया हूँ। मेरा भीष्म मुझे याद कर रहा है, पुकार रहा है।

भीष्मपिता उस समय बाणशैया पर सोये हुये हैं। उनका मरण सुधारनेके लिये भगवान् वापस आये हैं।

महात्माओंकी मृत्यु मंगलमय होती है। संतोंका जन्म अपनी तरह सामान्य ही होता है। अतः संतोंकी जन्मतिथि पर उत्सव नहीं मनाया जाता। किंतु संतोंकी मृत्यु मंगलमय होती है, पुण्यमय होती है अतः उनकी पुण्यतिथि (मृत्यु-तिथि) मनायी जाती है।

भीष्मपिताकी मृत्यु किस प्रकार होगी उसे देखनेके लिये बड़े-बड़े संत और ऋषि-मुनि वहाँ पधारे हैं।

प्रभुने धर्मराजको उपदेश दिया। उन्हें सांत्वना नहीं मिल रही। अतः उन्हें भीष्मपिताके पास जानेके लिये भगवान् कहते हैं।

बाणगंगाके किनारे जहाँ भीष्म सोये हैं उस स्थान पर सब आये।

भीष्म सोचते हैं कि उत्तरावस्थामें उत्तरायणमें मुझे मरना है। भीष्मपितामहने कालसे कहा कि मैं तेरा नौकर नहीं हूँ। मैं तो अपने श्रीकृष्णका सेवक हूँ। भीष्म द्वारकानाथका ध्यान

करते हैं। मुझे भगवान्‌ने वचन दिया है कि अंतिम समयमें मैं अवश्य आऊँगा किंतु वे तो मैं उनके दर्शन करता हुआ प्राणत्याग करूँ ऐसा सोचते हैं, उसी समय धर्मराज वहाँ आते हैं।

धर्मराजसे भीष्म कहते हैं—श्रीकृष्ण तो साक्षात् परमात्मा हैं। वे तेरा निमित्त करके मेरे लिये आये हैं। मेरी मृत्यु सुधारने आये हैं।

भगवान्‌को भीष्मने वचनबद्ध किया था। कौरव-पांडवयुद्धके समय दुर्योधन भीष्मपितामहसे कहते हैं—दादाजी, आठ दिन तो हो गये, फिर भी आप किसी पांडवको मार नहीं सके हैं। आप ठीक तरहसे लड़ते ही नहीं हैं। भीष्म आवेशमें आ गये और आवेशावस्थामें ही उन्होंने दुर्योधनसे कहा कि रातको बारह बजे जब मैं ध्यानमें बैठूँ तब अपनी रानीको आशीर्वाद लेनेके लिये भेजना। मैं अखंड सौभाग्यका वरदान दूँगा।

श्रीकृष्णको यह जानकर चिंता हुई। दुर्योधनकी पत्नी भानुमतीसे वे मिले और उससे कहा कि दादाजी तो घरके ही तो हैं। उनसे मिलनेके लिये आज जानेकी जल्दी क्या है। कल जाना उनके दर्शनके लिये। भानुमती मान गयी और न गयी।

महात्मा कहते हैं उसी समय कृष्णने द्रौपदीको जगाया। एक स्वरूपसे द्रौपदीको लेकर वे भीष्मपितामहके पास गये और दूसरे स्वरूपसे वे द्रौपदी बनकर अर्जुनकी शैयापर सो रहे। श्रीकृष्ण रूपरहित होते हुए भी अनेक रूपोंवाले हैं।

भीष्मपितामह ध्यान कर रहे हैं। आज द्वारकाधीशका स्वरूप दीखता नहीं है। किन्तु काली कमली, हाथमें दीपक आदि स्वरूपवाले भगवान् दीखते हैं। आज द्रौपदीके रक्षक बनकर भगवान् आये हैं। द्वारपालने उनको रोका। कोई भी पुरुष अन्दर जा न सके ऐसी आज्ञा थी। द्रौपदीने अन्दर जाकर प्रणाम किया। दुर्योधनकी पत्नी भानुमती ही आयी है ऐसा मानकर भीष्मपितामहने आशीर्वाद दिया कि अखंड सौभाग्यवती भव।

द्रौपदीने पूछा—दादाजी, आपका आशीर्वाद सच होगा? भीष्मने पूछा कि देवी, तू कौन है। द्रौपदीने उत्तर दिया मैं पांडवपत्नी द्रौपदी हूँ।

भीष्मपितामहने कहा कि मैंने तुझे आशीर्वाद दिये हैं तो सच ही होंगे। पांडवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा मैंने आवेशवश की है, सच्चे हृदयसे नहीं। तुझे सच्चे हृदयसे आशीर्वाद दिये हैं वे सच ही होंगे। किंतु मुझे तू यह तो बता कि तू अकेली यहाँ कैसे आयी। तुझे द्वारकानाथके सिवा और कौन लाया होगा?

भीष्मपितामह दौड़ते हुये बाहर आये। श्रीकृष्णको उन्होंने कहा कि आज तो मैं आपका ध्यान करता हूँ, किंतु अंतकालमें आपका स्मरण न जाने रहेगा या नहीं। प्राणप्रयाणके समय वातपित्त आदिके प्रकोपसे गला रुन्ध जायेगा तो वैसे समयमें आपका स्मरण कैसे होगा? सो अंत समयमें मेरी लाज रखनेको पधारियेगा। अंतकालमें भयंकर स्थिति होगी उस समय मुझे लेनेके लिये आइयेगा। उस समय श्रीकृष्णने भीष्मपितामहको वचन दिया कि मैं अवश्य आऊँगा। उनको दिये गये वचनका पालन करने द्वारकानाथ पधारे थे।

प्रभुसे रोज प्रार्थना करो कि मेरी मृत्युके समय जरूर आना। शरीर ठीक हो तो ध्यान-जप हो सकता है। अंतकालमें दुःखसे देहानुसंधान होता है, जिससे परमात्माका ध्यान करना कठिन है।

भीष्मपिता श्रीकृष्णकी स्तुति करते हैं— नाथ, कृपा करो। जैसे खड़े हैं वैसे ही रहना।

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।

कृष्ण सोचते हैं कि मुझे बैठनेके लिए भी नहीं कहा ? पुण्डलीककी सेवा मुझे याद आती है। तुकारामने प्रेमसे एकबार पुण्डलीकको उलाहना दिया था कि मेरे विट्ठलनाथ तेरे द्वार पर आये तो तूने उनकी कदर न की। मेरे प्रभुको तूने आसन भी नहीं दिया।

रोज-रोज प्रभुसे प्रार्थना करो कि मेरी मृत्युको सुधारनेके लिए आना। शरीरमें जब शक्ति है तो खूब भक्ति करो और प्रभुको मनाओ।

श्रीकृष्ण कहते हैं—दादाजी, इन धर्मराजको लगता है कि मैंने ही सबको मारा है। मेरे कारण ही सबका सर्वनाश हो गया। उन्हें शान्ति मिले ऐसा उपदेश आप करें।

भीष्मपिता कहते हैं— रुकिये। धर्मराजकी शंकाका निवारण मैं बादमें करूँगा। मेरी एक शंकाका समाधान पहले करें। मेरे एक प्रश्नका पहले उत्तर दें। मेरा जीवन निष्पाप है। मेरा मन पवित्र है, मेरा तन भी पवित्र है, मेरी इन्द्रियाँ भी शुद्ध हैं। मैं उनसे यह बात कर रहा हूँ जो मनकी बातें भी जानते हैं। भीष्म कहते हैं कि मैंने पाप किया ही नहीं है तो फिर मुझे यह दण्ड क्यों मिल रहा है। मुझे बाणशैया पर क्यों सोना पड़ा ? मुझे अतिशय वेदना क्यों होती है ? मैं निष्पाप हूँ फिर भी मुझे क्यों सजा देते हैं।

भगवान् कहते हैं—दादाजी, आपने कोई पाप नहीं किया है यह सच है। इसी कारणसे तो मैं आपसे मिलनेके लिए आया हूँ। आपने स्वयं कोई पाप नहीं किया। फिर भी आपने अपनी आँखोंसे पाप होता हुआ देखा है। आपने जो पाप देखा उसीकी यह सजा है।

कोई पाप करे उसे देखना भी पाप है। किसीके पापका विचार करना भी पाप है। किसीका पाप देखना नहीं, सुनना भी नहीं और किसीसे कहना भी नहीं।

भीष्म कहते हैं कि वह पाप मुझे याद नहीं आ रहा है। मैंने कौन-सा पाप देखा है ?

कृष्ण कहते हैं कि दादाजी, आप भूल गए होंगे किंतु मैं तो नहीं भूला। मैं ईश्वर हूँ। मुझे तो सब कुछ याद रखना ही पड़ता है। याद करें दादाजी कि एकबार जब आप सभामें बैठे थे वहाँ दुःशासन द्रौपदीको ले गया था। आप उस समय वहीं थे। द्रौपदीने कहा था कि द्यूतमें सब कुछ हारा हुआ पति अपनी पत्नीको दाँव पर लगा नहीं सकता। दुर्योधनने कहा था कि अब द्रौपदी दासी बनी है, उसे निर्वस्त्र करो।

उस समय द्रौपदीने आपसे कहा था कि हारे हुए पतिको अपनी स्त्री दाँव पर लगानेका अधिकार नहीं है। दादाजी, आप न्याय करें कि मैं जिता हूँ या अजिता ? उस समय आपने कहा था कि दुर्योधनका अन्न ग्रहण करनेसे मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गई है और आप चुप रह गए। ऐसा घोर पाप सभामें हो रहा हो और आप उसे देखते रहें यह आप जैसे ज्ञानीको शोभा नहीं देता। द्रौपदीका अपमान आप सभागृहमें देखते रहे। द्रौपदीको तो आशा थी आप जैसे ज्ञानी सभामें हैं तो वे न्याय करेंगे ही। आपने उस समय द्विधावश होकर अन्यायको रोका नहीं। अतः निराश होकर द्रौपदीने पुकारा—

हे कृष्ण ! द्वारिकावासिन् ! क्वासि यादवनन्दन।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

द्रौपदीकी पुकार सुनकर मैं वहाँ गुप्तरूपसे आया था। मैंने सब कुछ देखा। दुःशासन द्रौपदीकी साड़ी खींच रहा था और आप केवल देखते हुए बैठे थे। सभामें हो रहे अन्यायको आपने चुपचाप होने दिया। इसी पापका आपको यह दण्ड मिल रहा है।

भीष्मपिताने नमन किया। उन्होंने फिर धर्मराजको उपदेश दिया। स्त्रीधर्म, आपद्धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, आदि समस्याओंका महाभारतके शांतिपर्वमें बोध है और फिर परधर्म बताया।

युधिष्ठिरने पूछा कि सभी धर्मोंमेंसे कौनसे धर्मको आप श्रेष्ठ मानते हैं? किससे जप करनेसे जीव जन्ममरणरूपी सांसारिक बंधनसे मुक्त होता है?

भीष्मपिताने कहा—स्थावर-जंगम रूप संसारके स्वामी, ब्रह्मादि देवोंके देव, देश-काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, क्षर-अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमके सहस्रनामोंका निरंतर तत्परतासे गुणसंकीर्तन करनेसे मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त होता है।

विष्णुसहस्रनामका पाठ करना ही परमधर्म है। शिवमहिम्न और विष्णुसहस्रनामका रोज पाठ करो। शिवजीकी स्तुति करनेसे ज्ञान मिलता है। ज्ञानसे भक्ति दृढ़ होती है। विष्णु भगवान्‌की स्तुति करनेसे पाप जल जाता है। विष्णुसहस्रनामके पाठ करनेसे ललाट पर लिखे हुए विधाताके लेख भी बदल जाते हैं। जन्ममरणके बंधनसे जीवको वह मुक्त करता है। भगवान् शंकराचार्यको विष्णुसहस्रनामका पठन बहुत प्रिय था। उन्होंने सबसे पहले विष्णुसहस्रनाम पर ही भाष्य लिखा है। उनका अंतिम ग्रंथ है ब्रह्मसूत्रका भाष्य—शांकरभाष्य। और फिर उन्होंने कलम छोड़ दी।

विष्णुसहस्रनामका पाठ रोज दो बार करो। बारहवर्ष तक ऐसा करनेसे अवश्य फल मिलेगा। एक बार रातको सोनेसे पहले पाठ करो। इसमें दिव्यशक्ति है। ललाट पर लिखे गए लेखोको मिटाने और बदलनेकी शक्ति इसमें है। गरीब आदमी विष्णुयाग कैसे कर सकता है? परन्तु वह विष्णुसहस्रनामका पन्द्रह हजार पाठ करे तो उसे एक विष्णुयागका पुण्य मिलता है।

भोजनकी भाँति भजनका भी नियम होना चाहिए। बारहवर्ष तक नियमपूर्वक सत्कर्म करो। फिर अनुभव होगा। चाहे कोई भी काम हो, भगवान्‌का भजन नियमित करो। जिस परमात्माकी कृपासे सुख मिला, पुत्र मिला, उस ठाकुरजीकी सेवा-स्मरण जीव न करे तो इससे बड़ा पाप और कौनसा होगा?

फिर भीष्मपितामहने भगवान्‌की स्तुति की और बोले कि हे नाथ, आपका दर्शन मैं खाली हाथोंसे कैसे करूँ? मैं आपको क्या अर्पण करूँ?

भगवान् जीवसे धनसंपत्ति नहीं माँगते। वे तो मन-बुद्धि ही माँगते हैं।

भीष्मपितामहने कहा कि मैं अपना मन और बुद्धि आपके चरणोंमें रखता हूँ।

यह जीव बड़ा कपटी है। और क्या कहूँ? कोई संकट आ जाये तो रणछोड़रायजीका दर्शन करने जाता है। वहाँ ग्यारह रुपये भेंट करता है और कहता है कि हे नाथ, मैंने अदालतमें अपने भाई पर दावा दायर किया है, मेरा ध्यान रखना। ध्यान रखनेसे उसका मतलब कि अदालतमें साथ जाना। वह वकीलको तो ३०० रुपये देगा और ठाकुरजीको ११ रुपयेमें ही समझा देना चाहता है।

भगवान् कहते हैं कि मैं तो सब कुछ देखता, जानता और समझता हूँ। मैं तो तुम्हारे दादाका भी दादा हूँ। लक्ष्मीजी जब भगवान्से पूछती हैं कि आप अपने भक्तोंको दर्शन क्यों नहीं देते हैं? तब भगवान् कहते हैं कि वह दाता बदलेमें क्या लेना चाहता है वह भी तो देखो।

भगवान्को तुम अपना मन, अपनी बुद्धि, अपना हृदय अर्पित करो।

भीष्मपितामह स्तुति करते हैं कि हे भगवन्, केवल एक बार मुझसे कहा कि मैं तुम्हारा हूँ.

भक्ति ही मृत्युको सुधारती है, सार्थक करती है। ज्ञान पर भरोसा मत रखो। आत्मा शरीरसे अलग है यह तो सब जानते हैं परन्तु इसका अनुभव सबको नहीं होता। दुःख होता है तब मनमें देहाध्यास होता है। देहावसानके समय बीस करोड़ बिच्छुओंके डङ्क-सी वेदना होती है।

भक्ति मृत्युको सुधारती है। कई बार ज्ञान मृत्युको बिगाड़ता है।

भीष्मपितामह ज्ञानपर भरोसा नहीं रखते थे। वे भगवान्की शरणमें गये। वे भगवान्से कहते हैं कि मैं आपकी शरणमें आया हूँ। वे ऐसा नहीं कहते कि वे ब्रह्मरूप हैं। वे तो कहते हैं कि मैं आपका हूँ। आपकी शरणमें आया हूँ। भगवान् उन्हें कुछ उलाहना देते हैं। वे कहते हैं कि मैं आपको अपना कैसे मानूँ। आपने तो अर्जुनपर भी बाण चलाये हैं। अपने भक्त-पर चलाये गये बाणोंको मैं कैसे भूलूँ?

भीष्मजी कहते हैं कि यह सारा जग जानता है कि पांडवों पर मेरा कितना प्रेम है। और आप भी तो यह जानते ही हैं। युद्धमें मेरा शरीर कौरवोंके पक्षमें था किंतु मेरा मन तो पांडवोंके पक्षमें ही था। पांडवों पर मैं बाण तो चलाता था पर मनसे मैं यही चाह रहा था कि विजय पांडवोंको ही मिले। जयोऽस्तु पांडुपुत्राणाम् ऐसा बोलकर ही मैं बाण छोड़ता था।

कृष्ण कहते हैं कि फिर भी आप शरीरसे तो पांडवोंके पक्षमें नहीं थे। आपने कौरवोंके पक्षमें रहकर मेरे पांडवोंके साथ युद्ध किया है। आप जब मनसे पांडवोंके साथ थे तो फिर तनसे भी पांडवोंके साथ क्यों न रहे?

भीष्मपितामह कहते हैं कि हे प्रभो, मैं उस समय आपके दर्शन करना चाहता था। आप अर्जुनके रथपर थे। मैंने सोचा कि यदि मैं पांडवोंके पक्षमें रहूँगा तो सामनेसे आपके दर्शन कैसे कर सकुंगा? आपका सतत दर्शन करते रहनेके लिये ही मैं पांडवोंके विरुद्ध कौरवोंके पक्षमें जा मिला। पांडवोंके पक्षसे लड़ता तो आपके दर्शन मैं अच्छी तरह नहीं कर पाता।

भीष्मजी स्तुति करते हैं—

त्रिभुवनकमन तमालवर्ण रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्ज विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

जिसका शरीर त्रिभुवनसुन्दर और नीलतमाल जैसा है, नीलवर्ण है, जिसके तनपर सूर्यकिरण सा श्रेष्ठ पीताम्बर शोभित है और मुखपर कमलके समान उलझी हुई लटें बिखरी हुई हैं, ऐसे अर्जुनसखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो।

पार्थसखे रतिर्ममास्तु ऐसा स्वरूपवान् पार्थसारथिको रोज अपने सम्मुख रखो। इन्द्रियोंके घोड़ोंको भगवान्को सौंप दो। शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं।

अपनी निष्काम बुद्धि और मन आपको अर्पित करता हूं। मतिरूपकल्पिता वितृष्णा। मन तो केवल भगवान्को ही देनेकी वस्तु है। फिर भी जगत्में कोई स्त्रीको मन देता है तो कोई पुरुषको। भगवान् तो कहते हैं तुम अपना धन आदि नहीं किंतु मन ही मुझे दो।

भगवान् कृष्ण सोचने लगे कि वयोवृद्ध भीष्मपितामह बहुत समझदार हैं। कितना मीठा बोलते हैं। यह जीव जब ठाकुरजीको कुछ अर्पण करता है तो उन्हें बड़ा संकोच होता है।

भगवान् आगे सोचते हैं कि युद्धके समयकी भीष्मपितामहकी विलक्षण मूर्ति मुझे याद आती है। उनके मुखपर बिखरी लटें घोड़ोंके पाँवसे उड़ती हुई धूलसे मटमैली हो रही थीं और मुखपर पसीनेकी छोटी-छोटी बूंदें झलक रही थीं।

सुन्दर कवचधारी कृष्णके प्रति मेरा शरीर अंतःकरण और आत्मा समर्पित हो जाये। प्रभुसे प्रार्थना करो कि मेरे शरीर रथपर आप विराजें। मेरे शरीर रथपर द्वारकाधीश विराजे हैं ऐसा भाव मनमें करो। मेरे इन्द्रियरूपी घोड़े अंकुशमें न रहें तो प्रभु उनको तुम अंकुशित कर देना। मैंने धुरा आपके हाथमें रख दी है। मेरी इन्द्रियोंको वशमें रखना। मेरा रथ सकुशल पार कर दो।

प्रभुकी शरण ग्रहण करनेवालेका ही मरण सुधरता है।

हे नाथ, जगत्में आपने मेरी प्रतिष्ठा कितनी बढ़ा दी? मुझे कितना सम्मान दिया! मेरी प्रतिज्ञा रखनेके लिये आपने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुम्।

श्रीकृष्णने महाभारतके युद्धमें कोई भी अस्त्र-शस्त्र धारण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। भीष्मने कहा कि मैं तो गंगापुत्र हूँ मैं तो ऐसा युद्ध करूँगा कि कृष्णको अस्त्र-शस्त्र धारण करने ही पड़ेंगे। मैं उनसे हथियार चलवाकर ही रहूँगा। भीष्मके बाणोंसे अर्जुन मूर्च्छित हो गया फिर भी वे बाणवर्षा करते रहे। कृष्णने सोचा कि यदि भीष्म बाण चलाते रहेंगे तो मेरे अर्जुनकी मृत्यु हो जाएगी महा अनर्थ होगा। मेरी प्रतिज्ञा चाहे टूट जाय।

भगवान् रथपरसे कूद पड़े। सिंहकी भाँति दहाड़ते हुये वे रथचक्र लेकर भीष्मकी ओर दौड़ पड़े। भीष्मने उसी समय कृष्णको नमस्कार किया और भगवान्का जयजयकार किया।

भक्तोंकी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये भगवान् अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ देते हैं। ठाकुरजीकी यह भी एक लीला है। भगवान् भक्तोंका पूरा पूरा सम्मान करते हैं। वे मानते हैं कि चाहे मेरी पराजय हो, पर भक्तोंकी विजय होनी ही चाहिए।

भीष्म कहते हैं कि मेरी और कृष्ण दोनोंकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। उस समय भगवान्के दो रूप मैं एकसाथ देख रहा था। एक स्वरूप रथपर विराजित था और दूसरा रथसे कूदकर चक्र लेकर दौड़ रहा था। अर्जुन मूर्च्छित होनेसे घोड़े रथको कहीं गढ़ेमें न गिरा दें ऐसा सोचकर भगवान्का एक स्वरूप रथ संभालता था और उस रूपने तो कोई भी शस्त्र धारण नहीं किया था।

भीष्म अर्थात् भयङ्कर। भयङ्कर कौन है? मन ही भयङ्कर है। अतः भीष्मका अर्थ है मन। अर्जुन जीवात्मा है। मन आवेशयुक्त होनेपर सङ्कल्प-विकल्प बहुत करता है। मन ही सङ्कल्प-विकल्पके बाणोंकी बौछार करता है। अतः जीवरूपी अर्जुन घायल होता है और मूर्छित होता है। ईश्वर जब मनको मारने लगते हैं तभी वह अंकुशित होता है। भगवान् मनको सुदर्शन चक्रसे मारने जाते हैं तब कहीं मन शान्त होता है।

जीवात्मा जब परमात्माकी शरणमें जाता है तो मनको वे शान्त करते हैं। मन सङ्कल्प-विकल्प करना छोड़ दे तो यह मन आत्मरूपमें तदाकार हो जाता है। तभी जीवनको भी शान्ति मिलती है।

जो स्तुति भीष्मजीने की थी वह अनुपम है। वह स्तुति कण्ठस्थ करने योग्य है। इसे भीष्मस्तवराजस्तोत्र भी कहते हैं।

इसके बाद भीष्मने उत्तरायणमें देहको छोड़ दिया। भीष्माचार्य भगवत् स्वरूपमें तदाकार हो गए। वे कृतार्थ हो गए।

उत्तरायणमें मृत्युका अर्थ है ज्ञानकी अथवा भक्तिकी उत्तरावस्थामें परिपक्व दशा में मृत्यु। कई पापी लोग भी वैसे तो उत्तरायण कालमें मरते हैं फिर भी उनको सद्गति नहीं मिलती और कई योगीजन दक्षिणायनमें मरते हैं फिर भी उनकी दुर्गति नहीं होती।

दक्षिण दिशामें यमपुरी है, नरकलोक है। नरकलोकका अर्थ है अन्धकार। जिन्हें परमात्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, जिन्होंने परमात्माका अनुभव नहीं किया है और वैसे ही मर जाते हैं उनकी मृत्यु दक्षिणायन कहलाती है।

संतोंका जन्म तो हमारी ही भाँति साधारण होता है किंतु उनकी मृत्यु मंगलमय होती है।

भीष्म महाज्ञानी थे फिर भी प्रभु-प्रेममें तन्मय होकर मरे थे। यह बात हमें बतलाती है कि भक्ति ही श्रेष्ठ है।

साधन—भक्ति करते करते ही साध्य-भक्ति सिद्ध होती है।

जिसकी मृत्युके समय देवगण बाजे बजाते हैं उसकी मृत्यु ही कृतार्थ जानो। भीष्मके प्रयाणके समय देवोंने ऐसा ही किया था। ऐसे काम जगमें करो कि—

जब तुम आये जगमें जो वह हँसा, तुम रोए।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो, जग रोए॥

मानव-जीवनकी अंतिम परीक्षा उसकी मृत्यु ही है। जिसका जीवन सुन्दर होगा, उसकी मृत्यु भी मंगलमय होगी।

जिसका मरण बिगड़ा उसका जीवन भी व्यर्थ रहा। मरण तब सुधरता है जब मानव प्रत्येक क्षणको सुधारता चलता है जिसको समयके मूल्यका भान होता है। विगत संपत्ति फिर प्राप्त हो सकती है, किंतु विगत समय फिर कभी नहीं मिलता। प्रत्येक क्षणका जो सदुपयोग करेगा उसीकी मृत्यु मांगलिक होगी।

कण कणका सदुपयोग करो और क्षण क्षणका भी। एक भी कणका और एक भी क्षणका दुरुपयोग न करो। कणका जो दुरुपयोग करता है वह दरिद्र बनता है और क्षणको व्यर्थ खर्चनेवाला जीवन बिगाड़ता है। प्रतिदिन संयमको बढ़ाओ। प्रतिपल जो ईश्वरका स्मरण करता है उसकी मृत्यु भी सुधरती है।

भीष्म आजीवन संयमी रहे थे। संयम बढ़ाकर प्रभुके सतत स्मरणकी आदत होनेसे मरण सुधरेगा।

जीवनका अंतकाल बड़ा कठिन है। उस समय प्रभुका स्मरण करना आसान नहीं है।

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं,
अंत राम कहि आवत नाहीं।

समस्त जीवन जिसकी लगनमें बीता होगा वही अंतकालमें उसे याद आएगा।

ईश्वर तबतक कृपा नहीं करते जब तक कि मनुष्य स्वयं कोई प्रयत्न न करे। सारा जीवन भगवत् स्मरणमें बीते और कदाचित् वह व्यक्ति अंतकालमें भगवान्को भूल जाय तो भी भगवान् उसे याद करेंगे।

सत्कर्म कभी व्यर्थ नहीं होता।

भक्त मुझे भूले तो भी मैं उसको नहीं भुलाता ऐसा भगवान्ने कहा है। भीष्मपितामहकी मृत्युको उजागर करनेके लिए द्वारकाधीश पधारे थे। भीष्मपितामहने महाज्ञानका विश्वास न किया और उन्होंने प्रभुकी शरण ली।

भीष्मपितामहकी मृत्युसे युधिष्ठिरको दुःख तो हुआ किंतु उनकी सद्गतिसे उसको आनन्द भी हुआ।

धर्मराज राजसिंहासनपर बैठे। हस्तिनापुरका शासन करने लगे। उनके राज्यमें अकाल नहीं है। न तो अतिवृष्टि होती है और न अनावृष्टि। धर्मराजके राज्यमें न तो कोई भूखा है और न कोई बीमार।

धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाला कभी भी दुःखी या बीमार नहीं होता।

अनेक जन्मोंकी भोगवासना अभी मनमें है। उसका बिलकुल नाश तो नहीं हो सकता किंतु विवेकसे उपभोग करोगे तो अंतकाल तक इन्द्रियाँ स्वस्थ रहेंगी। धर्मकी मर्यादामें रह कर मनुष्य अर्थ और कामका उपभोग करेगा तो वह दुःखी नहीं होगा। संयम और सदाचार नहीं बढ़े तो धनसंपत्ति भी आनन्द नहीं दे सकेगी।

सूतजी सावधान करते हैं।

धर्मराजके राज्यमें धर्मकी भी शिक्षा दी जाती थी।

आरोग्यं भास्करात् इच्छेत्
मोक्षं इच्छेत् जनार्दनात्।

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं और बाकी सभी देव भावनासे सिद्धि देते हैं। सूर्यनारायणका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रत्यक्ष देवकी आराधना करो।

धर्मराज भी सूर्यनारायणकी उपासना करते थे।

सूर्यनारायणकी अराधना किये बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। ज्यादा नहीं तो कमसे कम रोज बारह सूर्यनमस्कार करो।

मेरे सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। कृष्ण ही सूर्यनारायण हैं। श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वयं ही गीतामें कहा है कि ज्योतिषां आदित्यो।

इस सूर्यनारायणकी उपासनाका क्रम कहा गया है। उनकी उपासना करनेवाला कभी दरिद्र नहीं बनता।

महाभारतके वनपर्वमें एक कथा है। युधिष्ठिर सूर्यनारायणकी उपासना करते थे। वनमें सूर्यदेवने उनको एक अक्षय-पात्र दिया।

रामको भी सूर्य ही ने शक्ति दी थी और उसी शक्तिसे उन्होंने रावणको मारा। रामने भी यही आदर्श सामने रखा है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ फिर भी सूयनारायणकी उपासना करता हूँ।

धर्मके साथ नीतिका विवाह अर्थात् सम्बन्ध न हो तब तक नीति विधवा जैसी ही है। और बिना नीतिके धर्म विधुर है।

अर्थोपार्जन वैसे तो धर्म है परन्तु वह धर्मानुकूल होना चाहिये।

धर्मराजके पवित्र राज्यमें किसीके भी घरमें कोई क्लेश न था। पुत्र मातापिताकी आज्ञाका पालन करता था। उस समय राजा धर्मनिष्ठ होनेके कारण प्रजा भी धर्मनिष्ठ थी।

युधिष्ठिरका राजतिलक करके श्रीकृष्ण द्वारिका गये। वहाँकी जनताने रथयात्राका दर्शन किया।

रथमें विराजित द्वारिकाधीशके रोज दर्शन करो। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। रथ सोनेका है। एक झाँकी-सी करें तो हमारा हृदय पिघलेगा। इस शरीर-रथमें श्रीकृष्णकी झांकी करो। हृदय सिंहासनपर बिठाकर भक्तजन प्रभुका दर्शन करते हैं। ज्ञानीजन समाधिकी अवस्थामें ललाटमें ब्रह्म-दर्शन करते हैं।

द्वारिकाधीशने द्वारिकामें प्रवेश किया। नगर-जन कहते हैं कि आपकी कृपासे वैसे तो सब ठीक था। एकमात्र दुःख यही था कि आपका दर्शन नहीं कर सकते थे।

सभीको कृष्ण-दर्शनकी आतुरता है।

भगवान्ने अनेक रूप धारण किये और सोलह हजार रानियोंके साथ राजप्रासादमें प्रवेश किया। भगवान् वाणीचतुर हैं। सभी रानियोंसे कहते हैं कि मैं तेरे ही घरमें पहले आया हूँ।

दूसरे दिन रानियोंके बीच प्रेमकलह हुआ। भगवान्की यह दिव्य लीला है। उस समय कामदेव लड़ने आया। रासलीलामें कामदेव पराजित हुआ था फिर भी उसे मनमें असंतोष रह गया था कि उस समय तो कृष्ण बालक ही थे। उस समय मैं हारा था वह कोई अचरजकी बात नहीं थी।

कामदेवने श्रीकृष्णसे कहा कि जब सुन्दर युवतियाँ आपकी सेवा कर रही हों उसी समय मुझे झगड़ना है। सुन्दर प्रेमल हावभावसे रानियोंने श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया। किंतु श्रीकृष्ण तो अजेय ही रहे।

वनके वृक्षोंके तले बैठ कर कामका दमन करना तो ठीक है किंतु अनेक रानियोंके साथ रहकर कामको जीते वह तो परमात्मा है।

श्रीकृष्णका चिंतन-मनन करनेवालेको काम सता नहीं सकता तो श्रीकृष्णको तो वह कैसे सतायेगा? ईश्वर वह है कि जिसे काम कभी आधीन न कर सके। कामके आधीन हो जाय वह जीव है।

श्रीकृष्णको कामदेव पराजित न कर सका। उसे अपने धनुष-बाणका त्याग करना पड़ा।

श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। शंकर भी योगीश्वर हैं। प्रवृत्तिमें पूर्णतः रहकर भी उसमें आसक्त न बने, वही है योगीश्वर। संपूर्ण निवृत्त रहकर स्वरूपमें स्थिर रहे वह है योगीश्वर।

बारहवें अध्यायमें परीक्षितके जन्मकी कथा है। उत्तराने बालकको जन्म दिया। वह चारों ओर देखने लगा। माताके उदरमें मुझे चतुर्भुज स्वरूप जो पुरुष दीखता था वह कहाँ है? परीक्षित भाग्यशाली था कि उसको माताके गर्भमें ही भगवान्‌के दर्शन हुए। यही कारण है कि वह उत्तम श्रोता है।

युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे पूछा कि बालक कैसा होगा? ब्राह्मणोंने कहा—वैसे तो सभी ग्रह दिव्य हैं किंतु मृत्युस्थानकी कुछ गड़बड़ी है। उसकी मृत्यु सर्पदंशसे होगी। यह सुनकर धर्मराजको दुःख हुआ। मेरे वंशका पुत्र सर्पदंशसे मरे यह ठीक नहीं है। ब्राह्मणोंने उनको आश्वस्त किया। चाहे सर्पदंशसे उसकी मृत्यु हो किंतु उसे सद्गति मिलेगी। उसके अन्य ग्रह शुभ हैं। इन ग्रहोंको देखकर लगता है कि इस जीवात्माका यह अंतिम जन्म है।

नवें स्थानमें स्वगृहे उच्चक्षेत्रका बृहस्पति जिसके हो वह धर्मात्मा बनता है।

परीक्षित दिनोंदिन बड़े हो रहे हैं।

चौदहवें और पंद्रहवें अध्यायमें धृतराष्ट्र—पांडवमोक्षकी कथा है। सोलहवें अध्यायसे परीक्षित चरित्रका आरम्भ होता है।

विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए प्रभास क्षेत्रमें आए। उन्हें खबर हुई कि सभी कौरवोंका विनाश हुआ है और धर्मराज राजसिंहासनपर बैठे हैं। केवल मेरा भाई धृतराष्ट्र ही धर्मराजके यहाँ मुठ्ठी भर खानेके लिए रह गया है।

विदुरजी आए। धर्मराजने उनका स्वागत किया। विदुरजी सम्मान माँगने नहीं आए थे। अपने बन्धुको बन्धनमुक्त करानेके लिए आए थे। उन्होंने छत्तीस बरसों तक तीर्थयात्रा की।

संत तीर्थोंको पावन करते हैं। वैसे तो—

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यानधारणा।
अधमा मूर्तिपूजा च, तीर्थयात्राऽधमाऽधमा।

इसका कारण यह है कि यात्रामें अन्य चिंताओंके कारण परमात्माका नियमित ध्यान नहीं हो पाता। सत्कर्म नियमपूर्वक नहीं होता है इससे तीर्थयात्राकी अपेक्षा भगवान्‌का ध्यान श्रेष्ठ है।

देवी भागवतमें लिखा है कि घरकी अपेक्षा अधिक सत्कर्म तीर्थयात्रामें न हो सके तो वह तीर्थयात्रा व्यर्थ ही है।

विदुरजीने छत्तीस वर्ष तक यात्रा की फिर भी बात तो अति संक्षेपमें ही कही।

आत्मप्रशंसा मृत्यु है। अपने सत्कर्मोंका स्वयं अपने मुखसे वर्णन न करो।

विदुरजीने छत्तीस वर्षकी यात्राका छत्तीस शब्दोंमें ही वर्णन किया है। आजकल तो लोग हमने इतनी यात्रा की ऐसी बात बार बार करते हैं।

अपने हाथसे जो भी पुण्यकार्य हो उसे भूल जाओ और जो पाप हो उसे याद रखो। सुखी होनेका यह मार्ग है। किंतु मनुष्य पुण्यको तो याद रखता है किंतु पापको भूल जाता है।

युवावस्थामें जिसने बहुत पाप किए हों उसे वृद्धावस्थामें नींद नहीं आती।

मध्यरात्रिके समय विदुरजी धृतराष्ट्रके पास गए। वे जाग ही रहे थे। विदुरजीने पूछा कि नींद नहीं आ रही है क्या। जिस भीमको तुमने विषभरे लड्डू खिलाए उसीके घरमें तुम अब मीठे लड्डू खा रहे हो। धिक्कार है तुम्हें। पांडवोंको तुमने दुःख दिया। तुम ऐसे दुष्ट हो कि राजसभामें द्रौपदीको बुलानेकी तुमने सम्मति दी थी। पांडवोंको छोड़कर अब यात्रा करो।

धृतराष्ट्र कहता है कि मेरे भतीजे बड़े अच्छे हैं। मेरी खूब सेवा करते हैं। उन्हें छोड़कर जानेको दिल ही नहीं होता।

विदुरजी कहते हैं। अब तुम्हें भतीजा प्यारा लग रहा है। याद करो कि तुमने पांडवोंको मारनेके लिए कितने प्रयत्न किए थे। भीमसेनको लड्डूमें विष दिया। लाक्षागृहमें आग लगायी आदि। यह धर्मराज तो धर्मकी मूर्ति है सो तुम्हारे अपकारका बदला उपकारसे दे रहे हैं। मुझे लगता है कि कुछ ही दिनोंमें पाण्डव प्रयाण करेंगे और तुम्हें सिंहासनपर बिठलायेंगे। तुम अब मोह छोड़ो। तुम्हारे सिर पर काल मंडरा रहा है। तुम्हारे मुखपर मुझे मृत्युका दर्शन हो रहा है। समझ—बूझकर गृहत्याग करोगे तो कल्याण होगा नहीं तो कालके धक्केके कारण घर छोड़ना पड़ेगा। घर छोड़े बिना कोई चारा नहीं है। खुद समझ-सोचकर घर छोड़े वह बुद्धिमान् है। कुछ ही समयमें तुम्हारी मृत्यु होगी।

यह जीव ऐसा अनाड़ी है कि सोच-समझकर स्वयं कुछ छोड़ना नहीं चाहता। किंतु जब डाक्टर कहता है कि ब्लडप्रेशर है, कामकाज बंद करो। आराम नहीं करोगे तो जोखिम है, तब वह डरके मारे घरमें बैठ जाता है। इस तरह लोग डाक्टरके कहने पर धंधा-कामकाज छोड़ते हैं।

धृतराष्ट्र कहता है—भाई, तेरा कहना ठीक है किंतु मैं तो अंधा हूँ। अकेला कहाँ जाऊँ?

विदुरजी कहते हैं कि दिनको तो धर्मराज तुम्हें जाने नहीं देंगे सो मैं मध्यरात्रिको ही तुम्हें ले चलूं।

धृतराष्ट्र और गांधारीको लेकर विदुरजी सप्तस्रोततीर्थ गए।

सुबह हुई तो युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके महलमें आए। चाचाजी दिखाई नहीं देते। युधिष्ठिरने सोचा कि हमने उनके सौ पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया अतः उन्होंने आत्महत्या की होगी। जब तक चाचा-चाचीका समाचार न मिलेगा तब तक मैं पानी भी नहीं पीऊँगा।

धर्मात्मा व्यथित होता है तो उससे मिलने संत आते हैं। धर्मराजके पास उस समय नारदजी आए। धर्मराजने उनसे कहा कि मेरे पापोंके कारण ही चाचाजी चले गए।

वैष्णव वह है जो अपने ही दोषोंको सोचे, दूसरोंके दोषोंको नहीं।

नारदजी समझाते हैं कि धृतराष्ट्रको तो सद्गति मिलने वाली है। चिंता मत कर। हर एक जीव मृत्युके-आधीन है जहाँ चाचा जाएँगे वहाँ तुम्हें भी जाना है। आजसे पांचवें दिन चाचाकी सद्गति होगी और फिर तुम्हारी बारी आएगी। चाचाके लिए अब रोना नहीं। अब तुम अपना ही सोचो।

मृत्युसे ग्रसित व्यक्ति कभी वापस नहीं आता। जीवित अपने ही लिए रोये वह ठीक है। एककी मृत्युके पीछे दूसरा रोता है। किंतु रोनेवाला यह नहीं समझता कि जो वहां गया है उसके पीछे उसे भी जाना हैं। रोज सोचो कि मुझे अपनी मृत्यु उजागर करनी है तुम्हारे लिए अब छ महिने बाकी हैं। तुम अपनी मृत्युकी सोचो।

सूतजी सावधान करते हैं।

शैयामें सोनेके बाद अर्थात् अंतकालमें आया हुआ सयानापन किस कामका? वह निरर्थक है।

नारदजी कहते हैं—तुम्हें मैं भगवत् प्रेरणासे सावधान करनेके लिये आया हूँ। विदुरजी धृतराष्ट्रको सावधान करने आये थे। मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। छ मासके पश्चात् कलियुगका प्रारम्भ होगा। अब तुम किसीकी भी चिंता न करो। तुम अपनी चिंता करो।

युधिष्ठिरने कई यज्ञ किये। भगवान् द्वारिका गये तो साथमें अर्जुनको भी ले गये। प्रभुकी इच्छा थी कि यदुकुलका नाश हो तो अच्छा हो और यदुकुलका सर्वनाश हो गया।

युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि नारदजीने कहा था वह समय अब आ रहा है ऐसा लगता है। मुझे कलियुगकी परछाई दिखायी दे रही है। मेरे राज्यमें अधर्म बढ़ रहा है। मन्दिरमें ठाकुरजीका स्वरूप आनन्दमय नहीं दीखता है। सियार और कुत्ते मेरे समक्ष रोते हैं। तुझे मैं और क्या कहूँ?

मैं कल घूमने गया था। एक लोहारके पास एक वस्तु देखी। मैंने पूछा कि यह क्या है। तो उसने कहा कि यह तो ताला है। लोगोंके घरोंसे चोरी होने लगी है सो ताले लगाने पड़ते हैं।

आजसे छः महीने पहलेकी बात है। एक वैश्यने एक ब्राह्मणको एक घर बेचा था। उस घरकी बुनियादमें-से कुछ सोना मिला। ब्राह्मण वह सोना लेकर सेठके पास गया। सेठ धर्मनिष्ठ था। उसने कहा कि मैंने तो मकान तुम्हें बेच दिया था सो उसमें-से जो कुछ भी मिला वह सब तुम्हारा ही है। ब्राह्मणने कहा कि उस सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं है।

मेरे राज्यकी जनता कितनी धर्मनिष्ठ थी। उसी समय मैंने कहा था कि छः महीनेमें ही इन दोनोंका मन कलुषित हो जायेगा। वैसा ही हुआ। कल वे दोनों मेरे पास आये थे और धन पर अपना-अपना अधिकार जता रहे थे और अपने साथ एक-एक वकील भी लेते आये थे। लगता है कि मेरे पवित्र राज्यमें कलिका प्रवेश अब तो हो ही गया है।

कलि अर्थात् कलहका रूप। जिस घरमें कृष्ण-कीर्तन, कृष्णकी कथा होती है वहाँ कलि नहीं जा सकता।

अर्जुन अब तक आया नहीं था और भीमसेन तथा धर्मराज वैसी बातें कर रहे थे। इतनेमें अर्जुन भी आ गया। उसके मुख पर तेजका आभासमात्र भी नहीं दीखता था। युधिष्ठिरने उससे पूछा कि तेज कहाँ गया? अर्जुन, तूने द्वार आए हुए अतिथिका सत्कार किए बिना ही तो कहीं भोजन नहीं कर लिया है न?

अतिथि भगवान्‌का स्वरूप है। द्वार पर आए हुए अतिथि भूखे रहें तो यजमानके पुण्यका क्षय होता है। नचिकेता यमराजके घर तीन दिन तक भूखा-प्यासा बैठा रहा था। यमराजने आकर पूछा कि तुमने क्या खाया इन तीन दिनों। तो उसने कहा—आपका पुण्य।

मनुष्य शरीरकी अपेक्षा आँख और मनसे अधिक पाप करता है।

गीताजीमें भगवानने अर्जुनको प्रमाणपत्र दिया है कि वह अपापी है, पवित्र है। इसीलिए तो भगवानने उसको गुह्यतम ज्ञान दिया।

एक बार रातके समय उर्वशी अर्जुनसे मिलने आई। अर्जुनने उसका मुख तक न देखा। उसने उर्वशीसे कहा कि माताजी, मैं तो भरतखंडका वासी हूँ। मेरे लिए परस्त्री माता समान है।

एकांतमें जो कामको पराजित करे वही वीर है।

मुझे पूरा भरोसा है कि परस्त्री-गमनका पाप अर्जुन नहीं कर सकता। फिर भी वह आज निस्तेज क्यों है? मुझे तो यह लक्षण कलियुगके लगते हैं।

धर्मराज अर्जुनसे पूछते हैं—तेरे आत्मस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण कुशल तो हैं न? वे द्वारिकामें ही हैं क्या?

अर्जुनने कहा—क्या बताऊं भाई? मेरे प्रभुने मेरा त्याग किया है। जिन्होंने लाक्षा-गृहसे हमें बचाया था वे अब तो स्वधाम पधारे हैं। प्रभु मुझे अंतःकालमें साथ नहीं ले गए। उन्होंने मुझसे कहा कि तू जब मेरे साथ आया ही नहीं था तो फिर मैं तुझे अपने साथ कैसे ले जा सकता हूँ? मैंने तुझे गीताशास्त्रका जो ज्ञान दिया है वही तेरी रक्षा करेगा। बड़े भैया, आजतक मैं कभी हारा नहीं था। किंतु कृष्णविरहसे व्याकुल हुआ मैं आज द्वारिकासे लौट रहा था तो रास्तेमें काबा लोगोंने मुझे लूट लिया। मुझे लगता है कि मुझमें जो शक्ति थी वह मेरी नहीं थी किंतु द्वारिकाधीशकी ही थी, और उनके चले जानेसे वह शक्ति भी चली गई है। मुझे प्रभुके उन अनन्त उपकारोंकी याद आ रही है। लाक्षागृहदहन आदि कई संकटा-वस्थामें उन्होंने हमारी रक्षा की थी।

कृष्णकृपाको याद करते-करते अर्जुन कृष्णविरहमें रो रहा है।

धर्मराजसे अर्जुन कह रहा है कि द्रुपदराजाकी राजसभामें मैंने जो मत्स्यवेध किया था, वह भगवान्‌की शक्तिके बल पर ही किया था।

कई महाराजा मत्स्यवेध न कर सके थे। कर्णने सोचा कि मैं मत्स्यवेध करूँ। कृष्णने सोचा कि कर्णने मत्स्यवेध कर दिया तो मेरा अर्जुन रह जायेगा और द्रौपदी कर्णकी हो जायेगी। ऐसा सोचकर ही श्रीकृष्णने सभामें कर्णका अपमान करवाया। कृष्णने एक दासीको द्रौपदीके पास भेजा। द्रौपदीने हीनजातिके कर्णसे विवाह करनेसे इन्कार कर दिया।

मुझमें तो हिम्मत ही न थी। किंतु मुझ पर भगवान्‌की कृपादृष्टि थी जिससे मुझमें शक्तिसंचार हुआ और मैं उस दिन मत्स्यवेध कर सका।

लाक्षागृहकी आगमें पांडव जल कर मर गये हैं ऐसा मानकर दुर्योधनने तो उनका श्राद्ध भी कर दिया था।

संसारमें मनरूपी मत्स्य घूमता-फिरता है, उसको विवेकरूपी बाणसे मारो। जिसे द्रौपदी मिलती है उसका सारथी भगवान्‌को होना पड़ता है। द्रौपदी कृष्णभक्तिका ही नाम है। मनको जबतक न मारोगे, कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होगी। मनको जो प्रिय है वह मत करो। मनकी इच्छाके वश नहीं होगे तो धीरे धीरे वह अंकुशमें आता जाएगा।

आजतक मौजशौकमें (आनन्द-प्रमोदमें), भोगमें, पापमें, कितना खर्च कर दिया उसका जीव कोई हिसाब ही नहीं रखता। ब्राह्मणको कुछ दिया हो तो उसे वह याद रखता है। हम और क्या कर सकते हैं? हजार रुपयेका दान दिया है। अंतकालमें जीव चिंता करता है कि मेरी बेटीका क्या होगा? मेरे भानजेका क्या होगा? किंतु तू यह तो सोच कि तेरा क्या होगा?

जिस पर भगवान्‌की कृपादृष्टि होती है वही इस मनमत्स्यको मार सकता है। भगवान्‌की कृपादृष्टि जब तक न हो तब तक मन नहीं मरता।

प्रभुकी कृपादृष्टि होगी तो मनमत्स्य मरेगा। मन मरेगा तो भक्तिरूपी द्रौपदी प्राप्त होगी। परमात्माकी कृपादृष्टि होने पर ही जीव मनको वशमें कर सकता है। प्रभुकी प्रार्थना न करनेसे मन मनुष्यको अधोगतिके गर्तमें फेंक देता है।

अर्जुनको कृष्णके कई उपकार याद आ रहे हैं। उन्होंने मुझे गीताका उपदेश दिया था। बड़े भैया, एक बार भगवान्‌ने मुझसे कहा था कि कुछ माँगो। बड़े बड़े ऋषि और महात्मा जन्ममरणके फेरोंसे मुक्ति पानेकी इच्छासे जिनका ध्यान करते हैं उनसे मैंने माँगा कि युद्धमें मुझे जीत मिले। अफसोस, मुझे माँगना ही नहीं आया।

किरातवधके समय मैं शंकरके साथ युद्ध कर सका वह भी श्रीकृष्णके ही प्रतापसे।

बड़े भैया, द्रौपदीसे भी कृष्णको कितना स्नेह था? द्रौपदीके केश पकड़कर दुष्टजन उसे सभामें खींच लाए। आँसूभरीं आँखोंसे द्रौपदी कृष्णके चरणोंमें जा गिरी। उन्होंने सभामें ही प्रतिज्ञा की कि इस अपमानका मैं बदला लूँगा, और कृष्णने उन दुष्टोंकी ऐसी दशा की कि उनकी पत्नियाँ विधवा बनीं और उन्हें अपने केश स्वयं ही छोड़ने पड़े।

बड़े भैया, याद करो वह प्रसंग कि जब हमारा नाश करनेके लिए कपट करके दुर्योधनने दुर्वासाको भेजा था। भाजीके एक ही पत्तेसे अक्षयपात्र भरके कृष्णने हमें उस संकटसे बचाया था।

दुर्योधनने चार महीनों तक दुर्वासाको अपने यहाँ भोजन कराया। वे प्रसन्न हुए। उन्होंने दुर्योधनसे वर माँगनेको कहा। दुर्योधनने सोचा कि दुर्वासाके शापसे पांडवोंका नाश करनेका यह अच्छा अवसर है। कल इस ऋषिका एकादशीका अनशन था। वैसे तो सूर्यदेवका अक्षयपात्र पांडवोंके पास है, किंतु द्रौपदीके भोजन कर लेनेके बाद उसमें-से कुछ भी नहीं मिलता। दुर्वासा द्रौपदीके भोजन करनेके बाद वहाँ पहुँचेंगे और द्रौपदीसे भोजन न मिलने पर क्रोधित होंगे और पांडवोंको शाप देंगे, जिससे पांडवोंकी दुर्गति होगी।

दुर्योधनने ऐसा कुविचार करके दुर्वासासे विनती की कि आप अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर युधिष्ठिरका आतिथ्य स्वीकार करें क्योंकि अपने कुटुम्बके वे ही गुरुजन हैं। और हाँ, द्रौपदी बेचारी भूखी न रह जाय इसलिए पांडवोंके भोजन करलेनेके बाद ही वहाँ आप जाइएगा।

संतकी सेवा सद्भावसे करेंगे तो फलीभूत होगी किंतु दुर्भावसे करेंगे तो सफल नहीं होगी।

चार मास तक दुर्वासाको अपने यहाँ भोजन कराकर दुर्योधनने पांडवोंके सर्वनाशकी इच्छा की। इसी दुर्भावनाके कारण उनकी अपनी ही हानि हुई। अन्यथा संतको भोजनदान करनेसे पुण्य मिलता है। दुर्योधनने संतकी सेवा तो की किंतु किसीके सर्वनाशके हेतु की थी सो उसे पुण्य नहीं मिला।

दुर्योधनकी विनतीके अनुसार दुर्वासा दस हजार शिष्योंके साथ पांडवोंके आँगनमें पधारे। दुर्वासाने युधिष्ठिरसे कहा—राजन्! कल एकादशीका अनशन था सो आज हमें बड़ी भूख लगी है। आपके घर हम भोजन करनेकी इच्छासे आये हैं।

सूर्यनारायण द्वारा दिये गये अक्षयपात्रसे पांडव मध्याह्नकालमें आये हुये ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। अक्षयपात्र संकल्पानुसार भोजन देता था।

पांडव तो ऐसे भक्त हैं कि विपदावस्थामें भी ईश्वरकी कृपाका ही दर्शन और अनुभव करते हैं।

आज द्रौपदी भोजन कर चुकी है सो अक्षयपात्रसे कुछ भी मिलनेकी संभावना थी नहीं। फिर भी युधिष्ठिरजीने दुर्वासासे कहा कि बड़ी कृपा हुई हम पर कि आपने हमारा आँगन पावन किया। आप सब गंगास्नान कर लें इतनेमें भोजन तैयार कर देंगे।

धर्मराजका धैर्य तो देखो कि घरमें अन्नका एक कण भी नहीं है फिर भी उन्होंने दस हजार ब्राह्मणोंको भोजनके लिये आमंत्रण दिया।

युधिष्ठिरको विश्वास है कि मैंने आज तक कभी अपने धर्मकी उपेक्षा नहीं की है। इससे धर्मस्वरूप प्रभु मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। भीम, अर्जुन, द्रौपदी आदि चिंता कर रहे हैं कि इन सबको भोजन कैसे करायेंगे। द्रौपदी भी सोचती है कि अब अक्षयपात्र भी काम नहीं आ सकता क्योंकि मैंने भोजन कर लिया है। द्रौपदी दुःखसे कातर हो रही थी कि भोजन न मिलनेसे क्रोधित होकर दुर्वासा शाप देंगे और मेरे पांडवोंका सत्यानाश हो जायेगा।

द्रौपदी द्वारिकाधीशकी प्रार्थना करने लगी। नाथ, मेरी लाज रखना ; नहीं तो जगत् तुम्हारी भी खिल्ली उड़ायेगा। द्रौपदीने आर्तनाद किया कि जिस प्रकार आज तक तुमने हमारी सहायता करके लाज रखी है उसी तरह आज भी हमारी लाज रखना। आज जो हम इन दस हजार संतोंको भोजन न दे सकेंगे तो दुर्वासा शाप देंगे और हमारा सर्वनाश होगा।

जीव जब तक प्रभुको प्रेमसे घबड़ाकर पुकारता नहीं है, तब तक कुछ नहीं होता। जीव संकटावस्थामें प्रभुको पुकारता है।

द्रौपदीने दुःखसे कातर होकर घबड़ाकर प्रभुको पुकारा। परमात्माने द्रौपदीकी आर्तवाणी सुनी तो उसकी सहायता करनेके लिये आनेको तैयार हो गये।

भक्त जब हृदयपूर्वक कीर्तन करता है तो भगवान्‌का सिंहासन भी डोलने लगता है।

भगवान् जानेकी तैयारी कर रहे थे तब उत्थानका समय हो रहा था। रुक्मिणीजी थालमें मेवा लेकर आई थीं। एक ओर रुक्मिणी कृष्णसे भोग लगानेका आग्रह कर रही थीं और भोगके बाद जानेको कहती थीं तो दूसरी ओर द्रौपदी आर्तनाद कर रही थी। कृष्णने वहाँ जानेका सोचा तो रुक्मिणी पहले भोगका आग्रह करने लगी। तो भगवान्‌ने कहा कि दस हजार ब्राह्मणोंको द्रौपदी वनमें भोजन कैसे करायेगी ? मैं तो चला, भोजन मैं भी वहीं कर लूँगा।

द्वारिकानाथ दौड़ते हुए द्रौपदीकी उस कुटियामें आये जहाँ वह बड़ी तन्मयतासे प्रार्थना कर रही थी। भगवान् वहीं प्रगट हुए।

इस प्रकार तन्मयतासे कीर्तन करो कि भगवान् बाँहोंमें लेकर तुमसे कहें कि आँखें खोलो, मैं आ गया हूँ।

भगवान्‌ने द्रौपदीसे कहा कि देख मैं आ गया हूँ। मुझे बड़ी भूख लगी है। कुछ खानेको तो दे। द्रौपदीने हाथ जोड़कर कहा कि हम तो लुट गये हैं। हमारे घरमें कुछ भी नहीं है। आप मजाक न करें। दस हजार संतोंको भोजन कराना है, इसीलिये मैंने आपको पुकारा है। आप उसकी व्यवस्था करके हमारी लाज रखें तो बड़ी कृपा होगी।

तो भगवान् कहते हैं कि उन संतोंके भोजनका प्रबंध तो बादमें होता रहेगा किंतु पहले मेरे लिए खानेकी तो कुछ बात कर। तू अपने भोजनसे पहले मेरे लिए हमेशा कुछ न कुछ रख लेती है तो आज जो भी तूने रख छोड़ा हो वह मुझे दे।

द्रौपदी कहती है कि नाथ, आज तो मैं भूल ही गई थी; सो आपके लिए भी कुछ भी नहीं रहा है।

भगवान्‌ने कहा कि वह अपना अक्षयपात्र मुझे दिखाओ। शायद मेरे लिए उसमें कुछ हो। द्रौपदीने प्रभुके हाथमें अक्षयपात्र रख दिया। उन्होंने देखा तो सब्जीका एक पत्ता उसमें रह गया था।

वैसे तो अक्षयपात्रमें वह पत्ता कहाँसे आ सकता था ? किंतु भगवान्‌ने प्रेमप्रयोगसे पत्ता उत्पन्न कर लिया। उन्होंने उस पत्तेका प्राशन किया।

परमात्माको जीव जब प्रेमसे कुछ भी देता है तो उन्हें तृप्ति हो जाती है। अन्तर्यामी रूपसे वे सभी जीवोंमें व्याप्त हैं, अतः उनकी जब तृप्ति होती है तो सभी जीव भी तृप्त होते हैं। परमात्माको हजारों बार मनाओ तब कहीं किसी दिन वे भोग लगाते हैं। कन्हैयाको रोज भोग लगाओ। किसी दिन कुछ भी वे ग्रहण करेंगे तो भी तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। परमात्माको अल्पमात्रामें भी भोजन कराओगे तो सारे जगत्को भोजन करानेका पुण्य मिलेगा।

भगवान् द्रौपदीसे कहते हैं कि आज जगत्के सभी जीव तृप्त हो गए। भगवान्, दुर्वासा और अन्य दस हजार सन्त सभी तृप्त हो गये।

युधिष्ठिरने जाते हुए ब्राह्मणोंको रोकनेकी आज्ञा दी। भीम सन्तोंको बुलाने गया तो वहाँ वे तृप्तिकी डकार ले रहे थे। वे भोजन करनेके लिए आनेका नाम ही नहीं लेते थे।

दुर्वासाने सोचा कि यह काम कृष्णका ही हो सकता है। उन्होंने भीमसे पूछा कि कहीं द्वारिकासे कृष्ण तो नहीं आये हैं न। भीमने कहा कि वे तो कभीके आये हुए हैं और द्रौपदीसे बातचीत कर रहे हैं। वे तो कहते हैं कि दुर्वासा तो मेरे गुरु हैं सो मैं उनको आज प्रेमसे भोजन कराना चाहता हूँ।

दुर्वासाने कहा कि कृष्ण मेरे गुरुके भी गुरु हैं। मैं उनका गुरु नहीं हूँ। अब मुझे भोजन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा संयम, सदाचार, धर्मपालन, कृष्णभक्ति, कृष्णप्रेम देखकर मुझे बिना भोजन किए ही तृप्ति हो गई है। मैं सन्तुष्ट हूँ। दुर्वासाने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी (पाण्डवोंकी) विजय होगी और कौरवोंका विनाश होगा।

बड़े भैया, सेवा दुर्योधनने की और आशीर्वाद आपको मिला।

शङ्कर स्वामी कहते हैं कि यदि जीव और ब्रह्म एक न हों तो श्रीकृष्ण पत्तोंका प्राशन करें और दुर्वासा तृप्त हों ऐसा कैसे हो सकता है? जीव और ईश्वरका भेद आभासमात्र है और तत्त्व तो एक ही है।

भगवान्के स्वधामगमन और यदुवंशके विनाशका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया। परीक्षितको राजसिंहासन दे दिया। पाण्डवोंने द्रौपदीको साथ लेकर स्वर्गारोहणके लिए हिमालयकी दिशामें प्रयाण किया। केदारनाथमें उन्होंने भगवान् शिवजीकी पूजा की। जीव और शिवका मिलन हुआ। उसके आगे निर्वाण पंथ है। पांडवोंने वही रास्ता लिया। चलते-चलते सबसे पहले द्रौपदीका पतन हुआ क्योंकि वैसे तो वह भी पतिव्रता थी, किंतु अर्जुनके प्रति उसे अधिक प्रेम था; सो वह उसकी ओर पक्षपातका भाव रखती थी।

दूसरा पतन हुआ सहदेवका क्योंकि उसे अपने ज्ञानका अभिमान था। तीसरा पतन हुआ नकुलका क्योंकि उसे अपने रूपका अभिमान था। फिर पतन हुआ अर्जुनका। उसे अपने बलका अभिमान था।

फिर पतन हुआ भीमका। उसने धर्मराजसे पूछा कि मेरा पतन क्यों हुआ। मैंने तो कभी कोई पाप किया ही नहीं था।

युधिष्ठिरने कहा कि खाता बहुत था सो तेरा पतन हुआ।

खानेके समय आँखें खुली रखो, किंतु सन्तोंको और देवोंको भोजन कराते समय आँखें बन्द रखो।

धर्मराज अकेले आगे बढ़ने लगे। धर्मराजकी परीक्षा करनेके लिये यमराज कुत्तेका रूप लेकर उनके पास आये। उन्होंने दूसरा भी रूप लिया और युधिष्ठिरसे कहा कि मैं तुम्हें स्वर्गमें ले जाऊँगा किंतु तुम्हारे पीछे-पीछे जो कुत्ता चला आ रहा है उसे स्वर्गमें प्रवेश न मिलेगा। तो युधिष्ठिरने कहा कि जो मेरे साथ-साथ चला आया है उसे मैं अकेला कैसे छोड़ दूँ। उसे छोड़कर मैं स्वर्गमें नहीं आ सकता।

सात कदम साथ चलनेवाला मित्र बन जाता है।

धर्मराज सदेह स्वर्ग गये। तुकाराम भी सभीको राम-राम कहते हुये स्वर्ग गये थे।

आम्हीं जातो आमुच्या गाँवा,
आमचा राम-राम ध्यावा।

ऐसा कहते हुये वे स्वर्ग गये।

मीराबाई भी सदेह स्वर्गमें गयी थीं। वे द्वारकाधीशमें सदेह समा गयी थीं, लीन हो गयी थीं। मेवाड़में उनको बहुत कष्ट मिला था, सो उन्होंने मेवाड़ छोड़ दिया। उनके जानेके बाद मेवाड़ बहुत दुःखी हुआ। वहाँ यवनोंका आक्रमण हुआ। राणाजीने सोचा कि मीरा फिर मेवाड़ आये तो देश सुखी हो। राणाजीने ब्राह्मणोंको और भक्तोंको मीराको बुलानेके लिए भेजा। मीराने उनसे कहा कि कल यदि मेरे द्वारकानाथकी अनुज्ञा मिलेगी तो मैं आपके साथ आऊँगी।

अगले दिन मीराने दिव्य शृङ्गार किया। वे आतुर थीं कि आज उन्हें अपने गिरिधर गोपालसे, अपने प्राणप्रियतम श्रीकृष्णसे मिलना है। मैं इस संसारमें अब रहना नहीं चाहती। कृपा करो मेरे नाथ ! कीर्तनके साथ-साथ वे नर्तन भी करने लगीं। आज उनका अन्तिम कीर्तन था। द्वारकानाथने उनको अपने हृदयसे लगा लिया। मीरा सदेह द्वारकाधीशमें विलीन हो गयीं। कृष्णभक्तिसे उनका शरीर इतना दिव्य हुआ था कि वह सशरीर कृष्णमें विलीन हो गयीं।

आत्मा और परमात्माका मिलन कोई आश्चर्यकी बात तो नहीं है। किंतु कृष्णप्रेमसे जड़ शरीर भी चेतन बनता है और चेतनमें विलीन हो जाता है। दिव्य पुरुष सशरीर परमात्मामें जा मिलते हैं। प्रयाण और मरणमें भेद है। अन्तिम श्वास तक नित्यकर्म करता रहे उसका प्रयाण कहा जायेगा और मलिन अवस्थामें हाय-हाय करता हुआ देह छोड़े उसका मरण कहा जायेगा।

पाण्डव प्रभुके धाममें गये। उनकी मृत्यु उजागर हो गयी। क्योंकि उनका जीवन श्रेष्ठ था और शुद्ध था। उन्होंने अपने जीवनकालमें कभी धर्मको छोड़ा नहीं था।

धनकी अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। धन इस लोकमें कुछ सुख देता है और कभी-कभी दुःख भी देता है। किंतु धर्म तो जीवन और परलोक दोनोंको उजागर करता है। धर्म मृत्युके बाद भी साथ-साथ आता है।

अब परीक्षित राज करने लगे। उन्होंने धर्मसे प्रजापालन किया। तीन अश्वमेध यज्ञ भी किये।

अश्वमेध यज्ञके समय घोड़ेको मुक्ततासे विचरण कराया जाता है। वासना ही घोड़ा है। वासना कभी कहीं बँधती ही नहीं है। आत्मस्वरूपमें विलीन होनेपर ही वह अंकुशित होती है। किसी विषयमें वासना फँस न जाय इसका ध्यान रखना जरूरी है।

इन्द्रिय, शरीर और मनोगत वासनाका नाश ही तीन यज्ञ हैं।

परीक्षितने यही तीन यज्ञ किये। चौथा यज्ञ बाकी था। बुद्धिगत वासनाका नाश तो शुकदेवजी जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी कृपासे ही होता है। अतः चौथा यज्ञ अभी तक हुआ नहीं था।

शुद्ध आचार हों तो विचार शुद्ध होते हैं। जलशुद्धि और अन्नशुद्धिकी मर्यादाओंके पालनसे सिद्धि मिलती है। आचार शुद्ध रखो। स्वेच्छाचारीका पतन होता है।

परीक्षितके आचार अति शुद्ध थे अर्थात् धर्मशास्त्रकथित मर्यादाके अनुसार थे। सो उनमें कलिपुरुषका प्रवेश न हो सका। कलिने सोचा कि परीक्षित कुछ पाप करे तो मैं उसमें प्रवेश पा जाऊँगा। राजाके मनमें पहले प्रवेश करूँ तो प्रजामें भी प्रविष्ट हो सकूँगा।

समाजको सुधारना अब अशक्य सा हो गया है। किंतु व्यक्तिगत जीवन तो सुधर सकता है। आचार और विचारसे जो शुद्ध होता है उसके घरमें कलि नहीं आ सकता। जिसके घरमें कृष्णकीर्तन, कृष्णसेवा नित्य होती हो उसके घरमें कलि प्रवेश नहीं कर सकता। आज भी कुछ वैष्णव घर ऐसे हैं जिसमें कलि प्रवेश नहीं पा सका है।

शास्त्रकी रचना मनुष्यके कल्याणके लिए ही की गई है। जो आचारधर्म छोड़ देता है उसके विचार भी अशुद्ध हो जाते हैं। धर्म माता-पिता है। पत्नीकी पसंदगी हो सकती है माता-पिताकी नहीं। धर्मका परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वर्णाश्रमधर्मके पालनसे आचार शुद्ध हो सकते हैं।

गायकी सेवा करो। गाय खाती तो है घास, किंतु देती है दूध। जो भगवान्‌ने संपत्ति दी हो तो गौपालन करो। आजकल लोग धनसंपत्ति मिलनेपर कुत्ते पालते हैं। कुत्तेका अनादर करनेकी बात नहीं है, किंतु मर्यादाको छोड़कर अधिक प्रेम न करो। आँगनमें आए हुए कुत्तेको रोटी खिलाना धर्म है किंतु कुछ लोग उसे अपनी मोटरमें बिठाकर घूमते-फिरते हैं। और तो हम क्या कह सकते हैं ऐसे लोगोंके लिए? किंतु अगले जन्ममें स्वयं ही कुत्ता होनेकी यह तैयारी है।

जीवमात्रमें परमात्मा है। किंतु प्रत्येकका शरीर भिन्न है और कर्म भी भिन्न-भिन्न है। इसलिए हरेकके साथ पीना और खाना इष्ट नहीं है।

एकादशीके दिन अन्न नहीं खाना चाहिए। एकादशीके दिन अनशन करना धर्म है। किंतु हम अपने ही शास्त्रोंकी बात नहीं मानते। और जब डॉक्टर कहता है कि विषमज्वर (टाइफॉइड) है और इक्कीस दिन भोजन मत करना तो उसकी बात मान लेते हैं और इक्कीस दिनका अनशन कर लेते हैं।

जिस तरह पापीके मनमें कलि प्रवेश कर लेता है उसी तरह शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवालेके घरमें भी घुस जाता है।

यदि आचार-विचार शुद्ध हों तो कलि तुममें प्रवेश नहीं कर सकेगा। व्यवहार भी शुद्ध ही होना चाहिए। सत्यपूर्ण, शुद्ध व्यवहार न करे और केवल हर पूर्णिमाके दिन सत्यनारायणकी पूजा करे तो उससे क्या लाभ होगा? असत्यभाषीकी पूजा सत्यनारायणको अस्वीकार्य है।

एक दिन एक आश्चर्यजनक घटना हुई। परीक्षित दिग्विजय करने निकले हैं। घूमते-फिरते वे सरस्वती नदीके किनारे पर आये। वहाँ गाय-बैलोंको एक काला पुरुष लकड़ीसे पीट रहा था।

बैल धर्मका स्वरूप है और गाय पृथ्वीका स्वरूप है।

गायकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। धर्मरूप बैल उससे दुःखका कारण पूछता है। पृथ्वी कहती है श्रीकृष्णने इस पृथ्वीलोकसे अपनी लीला समेट ली है, सो यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हुआ है।

धर्मकी मर्यादाका पालन ठीक तरहसे करोगे तो ज्ञान अपने आप ही प्रकट होगा। धर्मारूढ़ रहोगे तो ज्ञानगंगाका अवतरण होगा। शिवजी नन्दी पर अर्थात् धर्म पर आरूढ़ हैं सो उनके सिर पर ज्ञानगंगा है।

धर्मके चार अंग मुख्य हैं—(१) सत्य (२) तप (३) पवित्रता और (४) दया। इन चारोंका योगफल ही धर्म है। इन चारों अंगों पर जब धर्म आधारित था तब सत्ययुग था। तीन अंगों पर आधारित था तब त्रेतायुग आया, दो अंगों पर ही आधारित रहा तब द्वापरयुग आया और एक ही अंग पर धर्म आधारित रह गया तो कलियुग आया।

सत्य—सत्य ही परमात्मा है। सत्य और परमात्मा भिन्न नहीं हैं। जहाँ सत्य है वहीं परमात्मा है। जो असत्य बोलता है उसके पुण्योंका क्षय होता है। सत्यके सहारे नर नारायण-के पास जा सकता है। जो हितभाषी है वह सत्यवादी हो सकता है।

तप—तप करो। हर प्रकारके सुखोंका उपभोग न करो। थोड़ीसी तपश्चर्या रोज करो। जो हरेक प्रकारके लौकिक सुखोंका उपभोग करता है उसपर परमात्मा कृपादृष्टि नहीं करते। दुःख सहकर परमात्माकी आराधना करना ही तप है। दुःख सहता हुआ प्रभुभजन करे वही श्रेष्ठ है। जीभ जो माँगे वह सब कुछ उसे देते मत रहो। कुछ सहन करना भी सीखो। इन्द्रियोंका स्वामी आत्मा है। इन्द्रिय जो कुछ माँगे वह उसे देनेसे तो आत्मा उसका गुलाम बन जायेगा। विधिपूर्वक अनशन करनेसे पाप भस्मीभूत होते हैं। भगवान्‌के लिए कष्ट सहना, दुःख सहना ही तप है। वाणी और वर्तनमें संयम और तप होने ही चाहिए।

पवित्रता—कलियुगमें पवित्रता रही ही कहाँ है? बाहरसे सब पवित्र लगते हैं और अन्दरसे सब मलिन हो गए हैं। वस्त्रोंका दाग तो मिट सकता है किंतु कलेजे पर पड़ा दाग कभी नहीं मिटता। जीवात्मा वैसे तो सबकुछ छोड़कर जाता है किंतु मनको तो वह अपने साथ ही लेकर जाता है। पूर्वजन्मका शरीर नहीं रहता किंतु मन तो रहता ही है।

लोग वस्त्र, अन्न, आचार आदिकी देखभाल बहुत करते हैं; किंतु मृत्युके बाद भी जो साथ आनेवाला है उस मनकी कोई देखभाल नहीं करता। मृत्युके बाद जो साथ आनेवाला है उसीकी चिंता करो, उसीकी देखभाल करो। जिस तरह कपड़ोंको स्वच्छ रखते हो उसी तरह मनको भी स्वच्छ रखो।

जिस तरह संसार-व्यवहार निभाती हुई माता अपने बच्चेकी देखभाल करती है उसी तरह व्यावहारिक कर्म करते हुए भी ईश्वरके साथ सम्बन्ध बनाये रखो। हमेशा सोचते-सम्भालते रहो कि अपना मन कभी न बिगड़े।

दया—धर्मका चौथा अंग है दया। श्रुति कहती है जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है, वह अन्न नहीं, पाप खाता है।

धर्मके इन चार चरणोंमें सत्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोपरि है।

महाभारतमें सत्यदेवकी कथा है।

लक्ष्मी चंचल है। वह किसी-न-किसी पीढ़ीके हाथोंसे चली ही जायेगी।

एक दिन प्रातःकाल सत्यदेव जब जगा तो उसने अपने घरसे एक सुन्दरीको बाहर जाते हुये देखा। राजाको आश्चर्य हुआ। उसने स्त्रीसे पूछा कि वह कौन है। उसने उत्तर दिया कि उसका नाम लक्ष्मी है, मैं अब तेरे घरसे जा रही हूँ। राजाने अनुज्ञा दी।

कुछ देर बाद एक सुन्दर पुरुष घरसे बाहर निकला। राजाने जब उससे पूछा कि वह कौन है, तो उसने कहा कि वह दान है। जब लक्ष्मीजी यहाँसे चली गयीं तो तुम दान कैसे कर सकोगे? सो मैं भी लक्ष्मीके साथ ही जा रहा हूँ। राजाने उसे भी जाने दिया। फिर एक तीसरा पुरुष बाहर जाने लगा। उसने बताया कि वह है सदाचार। जब लक्ष्मी और दान ही न रहे तो मैं रहकर क्या करूँगा? राजाने उसे भी जानेकी अनुमति दे दी। फिर एक और सुन्दर पुरुष बाहर जाते हुए दीखा। पूछने पर उसने अपना नाम बताया कि वह यश है। वह बोला—'जहाँ लक्ष्मी, दान और सदाचार न वहाँ हाँ मैं नहीं रह सकता।' राजाने उसे भी जाने दिया।

कुछ देर बाद एक और सुन्दर युवक घरसे निकलकर जाने लगा। पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि वह सत्य है। जब आपके यहाँ लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश नहीं रहे तो मैं अकेला कैसे यहाँ रहूँ? मैं भी उनके साथ जाऊँगा।

तो सत्यदेव राजाने कहा कि मैंने तो आपको कभी छोड़ा ही नहीं फिर आप मुझे क्यों छोड़कर जा रहे हैं। आपको अपने पास रखनेके लिये ही मैंने लक्ष्मी—यश आदिका त्याग किया है। मैं आपको जाने नहीं दूंगा। आप मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो मेरा तो सर्वस्व लुट जायेगा। राजाकी इस प्रकारकी प्रार्थनाके कारण सत्य नहीं गया और जब सत्य ही नहीं गया तो लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश भी राजाके घर वापस लौट आये।

जहाँ सत्य होता है वहाँ लक्ष्मी, दान, सदाचार और यशको आना ही पड़ता है। बिना सत्यके ये सब व्यर्थ हैं। इसलिये यह स्पष्ट ही है कि सत्य ही सर्वस्व है। बाकीकी चार सम्पत्तियाँ चली जायें तो कोई चिन्ता नहीं, किंतु सत्य नहीं जाना चाहिये। सत्य रहेगा तो सब कुछ रहेगा।

सूतजी वर्णन करते हैं कि इस अध्यायमें धर्मकी व्याख्याकी गयी है। सत्य, तप, पवित्रता और दान—ये चार ही धर्मके प्रधान अंग हैं। इन चारोंका समन्वय ही धर्म है। इन चार तत्त्वोंसे जो परिपूर्ण है वही धार्मिक है।

सत्ययुगमें ये चारों तत्त्व थे। फिर त्रेतामें सत्य चला गया। द्वापरमें सत्य और तप न रहे। और कलियुगमें सत्य और तपके साथ-साथ पवित्रता भी चली गयी। कलियुगमें केवल दान ही रह गया। कलियुगमें दान ही प्रधान है। दानं एकं कलियुगे। कलियुगमें केवल दान और दयाके सहारे ही धर्म रह गया है।

परीक्षित राजाने देखा कि एक बैल केवल एक ही पाँव पर खड़ा है और एक व्यक्ति उसे लकड़ीसे मार रहा है। राजाने बैलसे पूछा कि तेरे तीन चरण किसने काट दिये ? धर्मरूपी बैलने कहा कि राजन्, मैं अभी तक यह निर्णय नहीं कर सका हूँ कि मेरे पाँव किसने काटे और कौन मुझे दुःखी कर रहा है ? कोई कहता है कि काल दुःख दे रहा है तो कोई कहता है कि कर्म ही मनुष्यको दुःख देता है। कोई दुःखका कारण स्वभाव बतलाता है।

अपना स्वभाव शान्त रखो। काल, कर्म और स्वभाव ही जीवको दुःख देते हैं।

राजन्, मेरे दुःखका कारण आप ही सोचें। राजा समझ गए कि वह कठोर पुरुष जो कि गाय—बैलोंको सता रहा है कलि ही है। यह कलि ही धर्मनिष्ठोंको सताता है। वे कलिको दण्ड देनेको तैयार हुए तो कलि राजाकी शरणमें आया। कलिने परीक्षितके चरणोंका स्पर्श किया और यही कारण है कि परीक्षित राजाकी मति भ्रष्ट हुई।

जिस मनुष्यके स्वभाव और चरित्रसे हम अनजान हों उसका हमें कभी स्पर्श न करना चाहिए। जिस व्यक्तिका तुम स्पर्श करोगे उस व्यक्तिके कुछ-न-कुछ परमाणु तुम्हारे शरीरमें प्रविष्ट हो जाएँगे। पुण्यशाली व्यक्तिके परमाणु पवित्र होते हैं और पापी व्यक्तिके परमाणु अपवित्र होते हैं। जैसे व्यक्तिका स्पर्श करोगे वैसे व्यक्तिके परमाणु तुम्हारे शरीरमें घुस जाएँगे।

परीक्षित राजाने कलिको स्पर्श करने दिया तो उनकी बुद्धिमें विकार आ गया। राजा जानते थे कि यह कलि है, अपवित्र है सो उसे दण्ड देना चाहिए। दुष्टोंको दण्ड देना राजाका धर्म है। फिर भी उन्होंने कलिके प्रति दया जताई। उन्होंने कलिसे कहा कि तुझे मारूँगा नहीं किंतु तू मेरे राज्यकी सीमासे बाहर चला जा। मेरे राज्यमें तेरे लिए कोई स्थान नहीं है।

कलिने राजासे प्रार्थना की और कहा कि मैं अब कहाँ जा सकता हूँ। तो परीक्षितने उसे चार स्थानोंमें रहनेकी अनुमति दी। वे स्थान हैं, द्यूत, मदिरा, नारी-संग और हिंसा। इन चार स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता ये चार अधर्म रहते हैं।

जुए और सट्टेका धन जिसके घरमें आता है वहाँ साथ-साथ कलि भी आ जाता है। जहाँ सट्टा वहाँ बट्टा (दाग) और यह बट्टा (दाग) जीवनमें पक्की तरह लग जाता है।

कई लोग ऐसे भी हैं जो जुए और सट्टेमें कमाते हैं और फिर उस धनका दान करते हैं। वे मानते हैं कि चलो, दान किया और मेरी शुद्धि हो गई, परन्तु यह सब व्यर्थ ही है यह सब अनीतिका धन है, ऐसे धनके दानसे कभी जीवन शुद्ध नहीं होता।

अधर्मका धन प्रभुको स्वीकार्य है ही नहीं।

शास्त्रनिषिद्ध भोज्य वस्तुएँ जहाँ खाई जाती हैं, जहाँ जान-बूझकर हिंसा की जाती है वहाँ कलि अवश्य रहता है।

इन चार स्थानोंकी प्राप्ति होने पर भी कलिको संतोष न हुआ। उसने राजासे कहा कि ये चार स्थान तो गन्दे हैं। कोई अच्छा-सा स्थान मुझे रहनेको मिले तो ठीक है। तो परीक्षितने उसे सुवर्णमें रहनेकी अनुमति दे दी।

अशुद्ध साधनसे जब सुवर्ण घरमें आता है तो कलि भी उसके साथ आ धमकता है। अनीति और अन्यायसे प्राप्त धनमें कलि है। अनीति द्वारा धन कमानेवालेको तो कलि दुःखी करता ही है पर जो यह धन अपने वारिसके लिए रखता है वह वारिस भी दुःखी होता है।

असत्य, मद, काल, वैर और रजोगुण यह पाँच जहाँ न हों, वहाँ आज भी सत्ययुग ही है।

जिसके घरमें नित्य प्रभुकी सेवा और स्मरण होता है, जिसके घरमें आचार-विचारका पालन होता है उसके घरमें कलिका प्रवेश कभी नहीं होता।

बैलके तीनों पग परीक्षितने फिर लगा दिए अर्थात् धर्मकी फिर स्थापना की।

कलिने सोचा कि राजाने पाँच स्थान रहनेके लिए दिए हैं। अब कोई तकलीफ नहीं है। अब परीक्षित राजाके घरमें भी कभी घुस जाऊँगा।

एक दिन परीक्षितको जिज्ञासा हुई कि देखूँ तो सही कि मेरे दादाने मेरे लिए घरमें क्या-क्या रख छोड़ा है। एक पेटीमें-से सुवर्णमुकुट मिला। बिना कुछ सोचे ही राजाने मुकुट पहन लिया। यह मुकुट तो जरासंधका था। जरासंधके पुत्रने सहदेवसे वह मुकुट माँगा था कि मेरे पिताका मुकुट मुझे दे दो। मुकुट लौटानेकी सहदेवकी इच्छा न थी। फिर भीम जबर्दस्ती यह मुकुट लाया था। सो यह धन अनीतिका। अनीतिका धन उसके कमाने-वालेको और वारिसको-भी दुःखी करता है। इसीलिए उस मुकुटको पेटीमें बन्द करके रखा गया था। आज परीक्षितने देखा तो उसे पहिन लिया। वह मुकुट अधर्मसे लाया गया था इसलिए उसके द्वारा कलिने परीक्षितकी बुद्धिमें प्रवेश किया।

इस मुकुटको पहिनकर परीक्षित राजा वनमें शिकार करने गये। यहाँ 'एकदा' शब्दका प्रयोग किया गया है। राजा वैसे तो कभी शिकार करनेके लिए जाते नहीं थे; किंतु आज गये हैं। अनेक जीवोंकी हत्या की। मध्याह्नकाल होनेपर राजाको भूख और प्यास सताने लगी।

उन्होंने एक ऋषिके आश्रममें प्रवेश किया। शमीक ऋषि समाधिमें लीन थे।

कोई सन्त जप-ध्यानमें बैठे हों वहाँ मत जाना। यदि जाना पड़े तो प्रणाम करके लौट आओ। उस समय लौकिक बात न छेड़ो। प्रभुके साथ एक होनेकी इच्छा सन्तको होती है। लौकिक बातें उनके तप-ध्यान-भजनमें बाधारूप बनेंगी।

परीक्षितने सोचा कि इस देशका मैं राजा हूँ फिर भी ऋषि मेरा स्वागत क्यों करते नहीं हैं? शायद स्वागत न करनेका नाटक ही वे कर रहे हों। राजाकी बुद्धिमें कलिने प्रवेश किया था। अतः शमीक ऋषिकी ही सेवा करनेकी अपेक्षा राजा ऋषिसे सेवाकी अपेक्षा कर रहे हैं। उन्हें दुर्बुद्धिने आ घेरा। उन्होंने एक मरा हुआ साँप शमीक ऋषिके गलेमें पहिना दिया। उन्होंने तपस्वीका अपमान किया।

अन्यको अपमानित करनेवाला स्वयं अपना ही अपमान करता है। अन्यको छलनेवाला खुद अपनेको ही छलता है। क्योंकि सभीमें आत्मा तो एक ही है।

राजाने शमीक ऋषिके गलेमें तो मरा हुआ साँप पहनाया, किंतु ऐसा करके उन्होंने अपने गलेमें तो मानों जीवित साँप ही पहन लिया। सर्प कालका स्वरूप है।

सर्प साक्षात् कालका स्वरूप है। सभी इन्द्रिय-वृत्तियोंको अन्तर्मुख करके प्रभुमें स्थिर हुआ ज्ञानी जीव ही शमीक ऋषि है। ऐसे ज्ञानी जीवके गलेमें सर्प पहनानेका अर्थ है कालको

मारना। जितेन्द्रिय योगीका काल स्वयं मरता है अर्थात् काल उसे प्रभावित नहीं कर सकता। राजाका अर्थ है रजोगुणमें फँसा, भोगप्रधान विलासी जीव। ऐसोंके गलेमें सर्प लटकता है, अर्थात् जीवित सर्प उसके गलेमें हैं।

शमीक ऋषिके पुत्र शृङ्गीने जब यह बात जानी तो वह क्रोधसे भड़क उठा कि ऋषिका अपमान करनेवाला यह राजा क्या समझता है अपने मनमें। उसने सोचा कि ब्रह्मतेज अब भी जगत्में विद्यमान है। मैं राजाको शाप दूँगा। शृङ्गीने शाप दिया राजाको कि तूने तो मेरे पिताके गलेमें मरा हुआ साँप पहना दिया, किंतु आजसे सातवें दिन तुझे तक्षकनाग डसेगा।

परीक्षितने अपने सिरसे मुकुट उतारा तो तुरन्त उसे अपनी भयंकर भूलका भान हुआ। मैंने आज पाप किया। मैंने मतिभ्रष्ट होकर ऋषिका अपमान किया।

जब मति भ्रष्ट हो जाय तो मान लो कि कुछ-न-कुछ अशुभ अवश्य होगा। पाप हो जाय तो उसका विचार करके अपने शरीरको सजा दो। भोजन करनेसे पहले सोच लो कि मेरे हाथोंसे कुछ पाप तो नहीं हो गया है न? जिस दिन पाप हुआ हो उस दिन अनशन करो। तो फिर कभी पाप नहीं होगा।

धन्य है परीक्षित राजा, उसने जीवनमें केवल एकबार ही पाप किया था। किंतु पाप हो जानेके बाद उसने पानी तक नहीं पिया। ऋषिकुमार द्वारा दिये गये शापकी बात सुनकर उसने सोचा कि अच्छा ही हुआ कि मुझे मेरे पापकी सजा मिल गई।

परीक्षित सोचते हैं कि मैं संसारके विषय-सुखोंमें फँस गया था, अतः मुझे सावधान करनेके लिए ही प्रभुने मुझपर यह कृपा की है। मुझे अगर शाप न मिला होता तो मैं भला कब वैराग्य धारण करता? मेरे लिए प्रभुने शापावतार धारण किया है।

मृत्यु सिरपर मँडरा रही है, ऐसा सोचते रहोगे तो पाप नहीं होगा।

परीक्षितने गृहत्याग किया और वे गङ्गातट पर आये। उन्होंने गङ्गास्नान किया और यह निश्चय किया कि अन्न-जलका त्याग करके अब प्रायश्चित्त-व्रत करूँगा। बड़े-बड़े ऋषियोंने यह बात सुनी तो बिना बुलाये ही वे राजासे मिलने आ गये। उन्होंने सोचा कि परीक्षित अब राजा नहीं, राजर्षि बन गए हैं। राजाके विलासी जीवनका अब अन्त हुआ है। राजाका जीवन अब बदल गया है और इसीलिए वे सब परीक्षितसे मिलने आए। परीक्षितने खड़े होकर सबको प्रणाम करके उनकी पूजा की।

राजाने अपने पापकी बात उन ऋषियोंसे बता दी।

वैसे तो सभी लोग पापको छिपाते हैं और अपने पुण्यकी बातें सबके सामने प्रकट करते रहते हैं। पापको छिपाओ मत और पुण्यको तुम प्रकट मत करो। समाजके सामने पाप स्वीकारनेसे पाप करनेकी आदत छूट जाती है।

परीक्षितने कहा कि मैंने पवित्र संतके गलेमें मरा हुआ साँप पहना दिया। मैं अधम हूँ। मेरा उद्धार कीजिए। मैंने सुना है कि पापीको यमदूत मारते-पीटते ले जाते हैं। मेरा मरण सुधरे, ऐसा कोई उपाय बताएँ। मुझे डर लगता है। मैंने मरनेकी अभी तक कोई तैयारी भी नहीं की है।

परीक्षितने मृत्युकी वेदनाका विचार किया। जन्म-मरणके दुःखके विचारसे पाप छूटेगा। उन्होंने ऋषियोंसे कहा कि आप कुछ ऐसा करें कि सात दिनमें मुझे मुक्ति मिल जाए। आसन्नमृत्युके कर्तव्य आदि मुझे बताइए। समय अधिक नहीं है। ज्ञानकी लम्बी-चौड़ी बातें करेंगे तो समय पूरा हो जाएगा। मुझे ऐसी बातें बताइए और मुझे ऐसा मार्ग बताइए, जिससे परमात्माके चरणोंमें मैं लीन हो जाऊँ। मुझे ऐसी कथा सुनाइए कि जिससे मेरी मुक्ति हो।

ऋषिगण सोचने लगे। हम कई वर्षोंसे तपश्चर्या कर रहे हैं फिर भी मुक्ति मिलेगी या नहीं, उसकी चिंता रहती है। हम भी मृत्युसे डरते हैं। अन्त समयमें प्रभुका नाम होठोंपर आना मुश्किल बात है। मात्र सात ही दिनमें राजाको कैसे मुक्ति मिलेगी? यह तो अशक्य ही है। इससे सब ऋषि चुप हो गए हैं।

सात ही दिनमें मुक्तिका पाना असम्भव-सा ही है। मृत्युके पासका समय अति नाज़ुक होता है। महाज्ञानियोंको भी मृत्युका डर लगता है। राम-नाम जल्दी होठोंपर नहीं आता।

रामचरित-मानसमें बालिने कहा है—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं,
अंत राम कहि आवत नाहीं।

कोई भी ऋषि राजाको उपदेश देनेको तैयार न हुआ। किसीमें भी बोलनेकी हिम्मत नहीं थी। परीक्षित सोचते हैं कि समर्थ होनेपर भी ये ऋषि मुझे उपदेश क्यों नहीं दे रहे हैं?

वे सोचते हैं कि जगत्के जीव चाहे मेरा त्याग करें, मैं भगवान्का आसरा लूँगा। भगवान् नारायण कृपा करेंगे। अब समय अधिक नहीं है। मैं किसकी शरण लूं? मैं अपने परमात्माकी ही शरण लूं। वे तो मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे। मैं पापी तो हूं किंतु पांडववंशी हूं। अब बिना ईश्वरके मेरा कोई नहीं है।

परीक्षितने ईश्वरका आसरा लिया। भगवान्की स्तुति की। द्वारकानाथको याद किया। मैंने कोई सत्कर्म नहीं किया। ये ब्राह्मण मुझे उपदेश नहीं दे रहे हैं क्योंकि मैं अधम हूं। जिस परमात्माने, जब माताके गर्भमें मैं था तब ब्रह्मास्त्रसे मेरी रक्षा की थी, वे आज भी मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। मैं पापी तो हूं किंतु भगवान्का हूं। नाथ, मैं आपका हूं।

दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि कृष्ण तवाऽस्मि न चास्मि परस्य।

हे द्वारकानाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूं। आपने जब मेरा जन्म उजागर किया है तो मेरी मृत्यु भी सुधारिए।

परमात्माने शुकदेवजीको प्रेरणा दी कि वहाँ जाओ। शिष्य योग्य है। परीक्षितके जन्मको सुधारनेके लिए द्वारकानाथ स्वयं आए थे। किंतु मुक्ति देनेका अधिकार केवल शिवजीका है इसलिए भगवान् शिवजीसे कहा। सो भगवान् शिवजीके अवतार शुकदेवजी वहाँ पधारे। संहारका काम शिवजीका है, अतः परीक्षितकी मृत्युको सुधारनेके लिए शुकदेवजी पधारे।

शुकदेवजी दिगम्बर हैं। वासनाका वस्त्र छूट गया था। सोलह वर्षकी अवस्था है। कमरपर न तो मेखला है और न लँगोटी। आजानुबाहु हैं। वक्षःस्थल विशाल है। दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर स्थिर है। मुखपर बालोंकी लट बिखरी हुई हैं। वर्ण कृष्णकी भाँति श्याम है और तेजस्वी भी है।

शुकदेवजी पर बालक धूल उड़ा रहे थे। नागा बाबा चला, नागा बाबा चला। किंतु शुकदेवजी मानो यह सब कुछ जानते ही नहीं हैं। वृत्ति ब्रह्माकार है। वे ब्रह्मचिंतन करते हुए देहसे अभान हो गये हैं।

परमात्माके ध्यानमें जो देहभान भुलाता है उसके शरीरकी देखभाल परमात्मा स्वयं करते हैं। सोचते हैं कि इसे देहकी जरूरत नहीं है, किंतु मुझे तो है।

चारों ओर प्रकाश फैल गया। सूर्यनारायण तो कहीं धरती पर उतरे नहीं हैं न ? मुनि जान गये कि ये तो शंकरके अवतार श्रीशुकदेवजी पधारे हैं। सभामें शुकदेवजी पधारे। व्यासजी भी उस सभामें थे। उन्होंने खड़े होकर शुकदेवजीको वंदन किया।

शुकदेवजीका नाम सुनते ही व्यासजी भी भाव-विभोर हो गये।

शुकदेवजीके लिये प्रयुक्त विशेषण तो देखो—"अनपेक्षः, निजलाभतुष्टो, अवधूतवेशः"।

व्यासजी सोचते हैं—भागवतका रहस्य शुकदेवजी जानते हैं, यह मैं नहीं जानता। कैसा निर्विकार है ? मेरा बेटा भागवत कहेगा और मैं सुनूंगा।

राजाके कल्याणके हेतु पधारे हुये शुकदेवजी सुवर्ण-सिंहासनपर विराजे। परीक्षितने आँखें खोलीं। मेरा उद्धार करनेके लिये इन्हें प्रभुने भेजा है। अन्यथा मुझ-जैसे पापी और विलासीके यहाँ वे नहीं आते।

परीक्षितने शुकदेवजीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। परीक्षितने अपना पाप उन्हें कह सुनाया। मैं अधम हूँ। मेरा उद्धार करो। आसन्नमरणको क्या करना चाहिये ? मनुष्य-मात्रका कर्तव्य क्या है ? उसे किसका श्रवण, जप, स्मरण और भजन करना चाहिये ?

गुरुदेव शुकदेवजीका हृदय पिघल गया। शिष्य सुयोग्य है।

अधिकारी शिष्य मिलने पर गुरुका दिल कहता है कि उसे अपना सर्वस्व दे दूं। गुरु ब्रह्मनिष्ठ हो और निष्काम भी हो तथा शिष्य प्रभुदर्शनके लिये आतुर हो तो सात दिवस तो क्या सात मिनटमें प्रभु-दर्शन हो सकते हैं। अन्यथा गुरु लोभी हो और शिष्य लौकिक सुखकी इच्छा करता हो तो दोनों नरकवासी होते हैं।

लोभी गुरु और लालची चेला,
होय नरकमें ठेलमठेला।

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्, तू घबड़ाता क्यों है ? अभी सात दिन बाकी हैं—मैं तेरे पाससे कुछ लेने नहीं, देने आया हूँ। मैं निरपेक्ष हूँ। मुझे जो आनन्द मिला है और परमात्माके जो दर्शन हुये हैं वही दर्शन तुझे कराने आया हूँ। मुझे जो मिला है, वह तुझे देने आया हूँ। मेरे पिताजी भूख लगने पर दिनमें एक बार बेर खाते थे। किंतु इस कृष्ण-कथामें भजनानन्द इतना मिलता है कि मुझे तो बेर भी याद नहीं आते। मेरे पिताजी वस्त्र पहनते थे। प्रभु-चिंतनमें मेरा वस्त्र कब और कहाँ छूट गया, वह भी मुझे खबर नहीं है। सात दिनमें तुझे कृष्ण-दर्शन कराऊँगा। मैं बादरायणि हूँ। कृष्ण-आनन्दमें मस्त होनेके बाद बेरखाना भी कहाँ रहा ?

भगवान् बादरायणिः। शुकदेवजीका सम्पूर्ण वर्णन वैराग्य शब्दसे व्यक्त हो सकता है। बादरायणिके स्थानपर शुक शब्दका प्रयोग चल सकता था क्या? भागवतमें एक भी शब्दका प्रयोग निरर्थक नहीं है। शुकदेवजीके वैराग्यको दिखलानेके लिए ही इसका प्रयोग किया गया। शुकदेवजी बादरायण—व्यासजीके पुत्र हैं। व्यासजीका तप और वैराग्य कैसा था? व्यासजी सारा दिन जप-तप किया करते थे और भूख लगनेपर सारे दिनमें केवल एकबार बेर खाते थे। केवल बेरका ही आहार करते थे, अतः वे बादरायण कहलाये। ऐसे बादरायणके शुकदेवजी पुत्र हैं। जिसमें खूब ज्ञान-वैराग्य हो, वह दूसरेको सुधार सकता है। शुकदेवजीमें वे दोनों पूर्णतः थे।

आजके सुधारकमें त्याग और संयम दिखायी ही नहीं देता। वह दूसरोंको क्या सुधारेगा? मनुष्य पहले अपने आपको ही सुधारनेका प्रयत्न करे।

राजन्, जो समय बीत गया उसका स्मरण मत करो। भविष्यका विचार भी मत करो। सिर्फ वर्तमानको सुधारो। सात दिन बाकी रहे हैं। मेरे नारायणका स्मरण करो, तुम्हारा जीवन अवश्य उजागर होगा।

लौकिक रसके भोगीको प्रेमरस नहीं मिलता, भक्तिरस भी नहीं मिलता। जिसने कामका त्याग किया है वही रसिक है। जगत्का रस कटु है, प्रेमरस ही मधुर है। जो इन्द्रियोंके आधीन होता है, उसे काल पकड़ता है।

भागवतका वक्ता शुकदेवजी जैसा ही होना चाहिये।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

द्वितीय स्कन्ध

सत् यह परमात्माका नाम है। सभीमें जो ईश्वरका दर्शन करे वही सद्गुरु है। अधिकारी शिष्यको सद्गुरु अवश्य मिलता है।

प्रथम स्कन्धमें अधिकार-लीलाका वर्णन किया था। परीक्षित अधिकारी थे, अतः उनको शुकदेव मुनि जैसे सद्गुरु मिले। परीक्षितमें पाँच प्रकारकी शुद्धियाँ है ; मातृशुद्धि, पितृशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, अन्नशुद्धि और आत्मशुद्धि।

सद्शिष्यको ही गुरुकृपा मिलती है और ईश्वर-दर्शन होते हैं।

सद्गुरु-तत्त्व और ईश्वर-तत्त्व एक है। ईश्वर जिस तरह व्यापक हैं, उसी तरह गुरु भी व्यापक हैं। जिसका कहीं भी अभाव न हो, वही व्यापक है। परमात्मा सनातन सद्गुरु भी व्यापक हैं।

व्यापकको खोजनेकी नहीं, किंतु पहिचाननेकी आवश्यकता है।

परमात्माकी भाँति गुरु भी व्यापक हैं, किंतु वह अधिकारीको ही मिलते हैं।

स्वयं सन्त बने बिना सन्तको पहचाना नहीं जा सकता। तुम्हें सन्त दिखाई नहीं देते क्योंकि तुम सन्त नहीं हो। जो सन्त बने, उसे सन्त मिले। सन्त बननेके लिए व्यवहारको अतिशुद्ध करना चाहिए। जबतक मुट्ठी-भर चने तककी भी जरूरत है तबतक व्यवहार छूटता नहीं है।

जो प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाए, वही सच्चा वैष्णव है।

सन्त होनेके लिए मनको सुधारने की जरूरत है। मनको बदलनेकी जरूरत है। जो अपने हृदयका परिवर्तन करता है, वह सन्त बनता है। मन शुद्ध होने पर सन्त मिलता है। सन्तसे मिलनेके लिए सन्त आता है। विलासीको सन्त नहीं मिलते।

गुरुदेव ब्रह्मा है। गुरुदेव नया जन्म देते हैं। नया जन्म देनेका अर्थ है कि वे मनको और स्वभावको सुधारते हैं। गुरुदेव विष्णु हैं क्योंकि गुरुदेव शिष्यकी रक्षा करते हैं। गुरुदेव शिष्यको मोक्ष भी देते हैं। इसीसे वे शिवजीके भी स्वरूप हैं। गुरु किए बिना न रहो। तुम लायक होगे तो भगवान्‌की कृपासे सद्गुरु मिलेंगे ही।

तुकारामजीने अपने अनुभवका वर्णन किया है। कथा-वार्ता सुनते हुए प्रभुके नामसे मेरी प्रीति हो गई। मैं भी 'विठ्ठल विठ्ठल' का सतत जप करने लगा। प्रभुको मुझ पर दया आई। मुझे स्वप्नमें मेरे सद्गुरु मिले, मेरे सद्गुरु मुझे रास्तेमें मिले। मैं गंगास्नान करके आ रहा था कि वे रास्तेमें मिले। उन्होंने मुझसे कहा कि विठ्ठलनाथकी प्रेरणासे मैं तुझे उपदेश देनेके लिए आया हूँ। मैंने गुरुदेवसे कहा कि मैंने तो भगवान्‌की कोई सेवा नहीं की है। फिर भी गुरुदेवने मुझ पर कृपा की और 'रामकृष्ण हरि' का मन्त्र दिया।

गुरुदक्षिणामें उन्होंने पावभर तूप अर्थात् घी माँगा। क्या तुकारामके गुरुको पाव भर घी भी मिलता नहीं था क्या? तुकारामकी वाणी गूढार्थसे भरी हुई है। तूपका अर्थ

है तेरापन और मेरापन (अर्थात् अहम्) तू मुझे दे दे। आजसे तू भूल जा कि तू पुरुष है। तू अपना पुरुषत्व भूल जा। मेरे गुरुदेवने मेरापन और तेरापन मुझसे माँग लिए। मुझे आज्ञा दी कि तू अपना अभिमान मुझे दे दे। आजसे अहम्को मत रखना। तू पुरुष नहीं है और तू स्त्री भी नहीं है। तू किसीका पुत्र भी नहीं है। देहके सारे भाव तू मुझे अर्पण कर दे। तू शुद्ध है, ब्रह्म है, ईश्वरका अंश है।

जीवका ईश्वरके साथ सम्बन्ध सिद्ध कर दिया, जोड़ दिया।

जिसकी प्रत्येक क्रिया ज्ञानमय हो वह उत्तम गुरु है। ज्ञानी भक्तोंकी प्रत्येक क्रिया ज्ञान और बोध रूप होती है। संतोंका सब कुछ अलौकिक होता है।

शुकदेवजी मात्र ब्रह्मज्ञानी ही नहीं थे। परन्तु उनकी दृष्टि भी ब्रह्मदृष्टि थी। शुकदेवजी हरेकको समभावसे, ब्रह्मभावसे देखते हैं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जिसकी दृष्टि ब्रह्ममय हो उसे जगत्का भास नहीं होता। शुकदेवजी गुरु ही नहीं, सद्गुरु भी हैं। शुकदेवजी जैसे ब्रह्मदृष्टिवाले सुलभ नहीं हैं। वैसे ब्रह्मज्ञानी-ब्रह्मज्ञानकी बातें करनेवाले तो सुलभ हैं।

शुकदेवजी जैसे गुरु मिले मिले तो सात दिवसमें तो क्या सात मिनटोंमें भी मुक्ति दिला सकते हैं। किंतु शिष्य परीक्षित् जैसा अधिकारी होना चाहिये। गुरु और शिष्य दोनों अधिकारी होने चाहिए।

मन्त्रदीक्षा अधम है; स्पर्शदीक्षा उत्तम है।

ब्रह्मभावमें तल्लीन होकर शुकदेवजीने परीक्षितके सिर पर वरदहस्त रखा कि तुरन्त उनको ब्रह्मका दर्शन हुआ।

प्रथम स्कन्धमें अधिकारकी कथा बतायी है। भागवतका श्रोता कैसा होना चाहिए वह बताया गया है। वक्ता कैसा होना चाहिए वह भी बताया है।

आगे कथा आयेगी कि ध्रुवजीको मार्गमें नारदजी मिले और प्रचेताओंको शिवजी मिले। अधिकारी शिष्यको सद्गुरु मिलते हैं। परीक्षितके लिये भी शुकदेवजी आये। अन्यथा लाख आमन्त्रण देने पर भी शुकदेवजीको आँखें उठाकर देखने तककी फुरसत नहीं है। क्योंकि सच्चा ज्ञानी एक क्षण भी परमात्माके दर्शन किये बगैर नहीं रह सकता।

तीन प्रकारके श्रोतावक्तामें व्यासजीका क्रम दूसरा है, क्योंकि वे समाजसुधारकी दृष्टिसे कथा करते थे। शुकदेवजी दूसरोंको सुधारनेकी नहीं किंतु अपने अंतःकरणको सुखी करनेकी वृत्तिसे कथा करते थे।

शुकदेवजीने कथाका आरम्भ तो किया। किंतु मंगलाचरण नहीं किया। कारण देहभान बिलकुल नहीं था। तीन अध्यायोंके बाद शुकदेवजीने मंगलाचरण किया।

भागवतमें तीन मंगलाचरण हैं। प्रथम व्यासजीका, दूसरा शुकदेवजीका और अन्तमें तीसरा सूतजीका। यौवनमें मंगलाचरण, मंगल आचरणकी बहुत जरूरत है। इसलिए ही शुकदेवजीका मंगलाचरण बारह श्लोकोंका है और अन्य सभीका एक एक श्लोकका है।

उत्तम वक्ता कौन होता है? जो सम्पूर्णतः वैराग्यमय हो, वह वक्ता उत्तम है।

संसारके किसी भी विषयमें मन न जाय, वह वैराग्य है। संसारके विषयोंको देखते हुए भी जिसका मन उसमें नहीं रमता, उसने ही सच्चा वैराग्य सिद्ध किया है। विना वैराग्यके दृढ़ता नहीं आती। वैराग्यसे ज्ञान शोभित होता है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य परिपूर्ण होने पर मनुष्य ब्रह्ममय बनता है।

शुकदेवजीमें पूर्णतः ज्ञान, भक्ति और वैराग्य थे।

ज्ञानीका हृदय कृष्णप्रेममें न पिघले तो वह ज्ञान किस कामका ?

परीक्षित राजा शुकदेवजीसे पूछते हैं; जिसकी मृत्यु समीप हो उसका कर्तव्य क्या है ? उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है ?

शुकदेवजीने कहा—राजन्, तूने अच्छा प्रश्न किया है। सुन। अन्तकालमें बात, पित्त और कफसे त्रिदोष होता है। मृत्युकी वेदना भयंकर होती है। जन्ममरणके दुःखोंका विचार करेंगे तो पाप नहीं होगा। सो मृत्युसे डरते रहो। उसको स्मरण रखो। सोचो कि मैंने मृत्युके स्वागतकी तैयारी की है या नहीं। ऐसा चिंतन करनेसे वैराग्य आता है।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिके दुःखोंका बार बार विचार करो तो वैराग्य उत्पन्न होगा और पाप छूटेंगे। वर्ना पापके सस्कार जल्दी नहीं छूटते। सोचेसमझे विना विवेक-वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता।

कालको सिर पर रखकर हमेशा ईश्वरका चिंतन करो। कालको याद रखोगे तो पापवृत्तिका उद्‌भव नहीं होगा।

भजनके लिए अनुकूल समयकी प्रतीक्षा न करो। कोई भी क्षण भजनके लिए अनुकूल है। कोई तकलीफ न रहने पर मैं भजन करूँगा ऐसा मानना अज्ञान है।

एक मनुष्य स्नान करनेके लिए समुद्रके किनारे पर गया। किंतु स्नान करनेके बजाय वह वहाँ बैठा ही रहा।

लोगोंने उससे पूछा कि क्यों इस तरह बैठा हुआ है ? स्नान कब करेगा ?

उस मनुष्यने कहा कि समुद्रमें एकके बाद एक तरंगें उठ रही हैं। तरंगोंके बन्द होने पर स्नान करूँगा.

क्या समुद्रकी मौजें कभी रुकती हैं ? मौजें कब रुकेंगी और कब स्नान होगा ?

संसार भी एक समुद्र है। उसमें असुविधारूपी तरंगें आती ही रहेंगी। इसलिए यदि कोई कहे कि अनुकूलता होने पर भगवान्‌का भजन करूँगा तो वैसी सर्वांगी अनुकूलता तो आएगी ही नहीं। जिस तरह वह मनुष्य स्नान नहीं कर सका उसी तरह ऐसे मनुष्य ईश्वर-भजन किए बिना रह जाते हैं।

जीवनमें चाहे मुश्किलें आएँ किंतु इस लक्ष्यको मत भूलना कि मुझे परमात्मासे मिलना है, प्रभुसे मुझे एक होना है। लोभी जिस तरह पैसोंपर लक्ष्य रखता है उसी तरह महापुरुष परमेश्वरपर लक्ष्य रखते हैं।

भगवान्ने भी गीतामें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । गीता अ० ८ श्लोक ५

अंतकालमें जो मेरा स्मरण करता हुआ देहत्याग करता है वह मुझे पाता है। अंतकाल-का अर्थ जीवनका नहीं परन्तु प्रत्येक क्षणका अन्तकाल। सो प्रत्येक क्षण ईश्वरका चिंतन, ध्यान, स्मरण करना चाहिए।

प्रत्येक क्षणको सुधारोगे तो मृत्यु भी सुधरेगी। प्रत्येक क्षणको सुधारनेका अर्थ है हर क्षण ठाकुरजीको अपनी दृष्टिमें रखना।

लोग मानते हैं कि सारा जीवन काम-धन्धा करेंगे, उल्टा-सीधा करके धन कमायेंगे और अन्तकालमें भगवान्का नाम लेकर संसार पार कर लेंगे। यह गलत विचार है इसलिए तो स्पष्टता की गयी है कि 'सदा तद्भावभावितः।' हमेशा जिस भावका चिंतन करोगे उसीका अन्तकालमें भी स्मरण होगा।

भगवान्ने भी आज्ञा की है कि 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर।' इसीलिए सारा समय तू निरन्तर मेरा स्मरण कर।

यह तो सर्वविदित बात है कि जिस बातका सर्वदा चिंतन किया गया है, मृत्युके समय भी उसीका ही स्मरण होता रहेगा।

एक सुनारका दृष्टान्त है। एक सुनार बीमारीके कारण शैयामें पड़ा हुआ था। कई महिनोंसे वह बाजार नहीं जा सका था सो उसे सोना और सोनेके बाजार भावका ही विचार आता रहता था। अन्तकाल आया। बुखार बढ़ता जा रहा था। डॉक्टरने आकर बुखार नापकर कहा कि एक सौ पाँच (१०५ डिग्री) है। सोनी समझा कि किसीने सोनेका भाव बताया है। वह अपने पुत्रसे कहने लगा कि बेच दे, बेच दे। हमने अस्सीके भावमें लिया था। अब एक सौ पाँच हुआ है तो बेच दे। ऐसा बोलते-बोलते ही वह मर गया। सुनारने सारा जीवन सोना खरीदने-बेचने और सोनेके विचारमें ही गुजारा था सो अन्तकालमें उसे सोनेका ही विचार आता रहा।

धन-सम्पत्तिकी ही चिंता करनेवालेको, रुपया-पैसा पैदा करनेवालेको अन्तकालमें भी उसीका विचार आता है। धन कमाना कोई पाप नहीं है किंतु उसे कमाते समय भगवान्को भुला देना पाप है।

शुकदेवजीने कहा कि हे राजन्, मनुष्यकी आयु इसी तरह समाप्त हो जाती है। निद्रा और विलासमें रातें गुजर जाती हैं और धन-प्राप्तिके प्रयत्नमें तथा कुटुम्बके परिपालनमें दिन गुजरते जाते हैं।

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवसायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन्, कुटुम्बभरणेन वा॥ भा० २-१-३

मनुष्यका अधिकतर समय निद्रा और अर्थोपार्जनमें चला जाता है, उसका बहुत-सा समय बातें करनेमें चला जाता है। बहुतोंका समय पढ़नेमें गुजरता है, बहुत पढ़ना भी अच्छा नहीं है। अति वाचनसे शब्द-ज्ञान तो बढ़ता है किंतु साथ साथ अभिमान भी बढ़ता है।

राजन्, जो समय चला गया है उसके लिए अब मत रोओ। उसका विचार भी न करो। भूतकालकी बातें ही सोचते रहनेसे कोई लाभ नहीं है। तुम अपने वर्तमानको, सुधारो। सात दिनोंका जो यह समय मिला है उसीका सदुपयोग कर लो।

मनुष्य इन्द्रियोंके सुखमें ऐसा फँसा हुआ है कि उसे अपने लक्ष्यका ध्यान ही नहीं रहता। शरीर, स्त्री, सन्तान आदि सब कुछ असत्य है, फिर भी उन सबके मोहमें ऐसा पागल बन गया है कि उसे समय और लक्ष्यका भी भान नहीं रह गया है। तुम्हें क्या करना है, कहाँ जाना है, क्या बनना है, उसका विचार आज ही कर लो। इच्छाशुद्धिके बिना कर्मशुद्धि नहीं होती। तुम निश्चय कर लो कि मुझे भगवान्से मिलना है, मुझे प्रभुके धाममें जाना है. मुझे पुनर्जन्म नहीं लेना है।

जगत्में विकार और वासनाके बढ़ जानेके कारण त्याग और संयम कम हो गया है।

काल मनुष्योंको धक्का दे और उन्हें रो-रोके घर छोड़ना पड़े उससे यह अच्छा है कि वे विवेकसे स्वेच्छापूर्वक ही घर छोड़ दें। शङ्करस्वामीने कहा है—निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्।

हे राजन्, मानव—जीवनकी अंतिम परीक्षा मृत्यु है। मनुष्यकी प्रतिक्षण मृत्यु होती रहती है। जो प्रत्येक क्षणको सुधारता है उसकी मृत्यु सुधरती है और जिसकी मृत्यु सुधर गई उसका जीवन भी उजागर हो जाता है।

प्रभुका स्मरण प्रत्येक क्षणके अंतकालमें करना चाहिए–क्षणस्य अंतकाले मात्र जीवनके अन्तकालमें नहीं। क्षण–क्षणको जो सुधारता है उसीका जीवन सुधरता है। यह शरीर प्रतिक्षण बदलता रहता है अर्थात् प्रतिक्षण शरीरका नाश होता रहता है। अन्तकालमें अर्थात् प्रत्येक पलके अंतमें मनुष्यकी मृत्यु होती रहती है सो प्रभुका स्मरण प्रतिक्षण करो। शंकराचार्यजीने शांकरभाष्यमें यही कहा है।

अन्यथा जिसका जीवन निद्रा धनोपार्जन और कुटुम्बके परिपालनमें ही गुजर गया हो उसे अन्तकालमें वही सब कुछ याद आता रहता है। सारा जीवन जिसमें बीता हो वही अन्तकालमें याद आता है।

एक बूढ़ा बीमार हो गया। उसका सारा जीवन द्रव्य आदिके पीछे ही बीता था। अन्तकाल नजदीक आया। उसके पुत्रादि कहते हैं कि पिताजी, अब आप श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवका जप कीजिये। किंतु उस बूढ़ेके मुँहसे ये शब्द निकलते ही नहीं हैं। जीवनमें कभी भगवान्का नाम लिया हो तब वह नाम याद आये न ?

वह बूढ़ा मनसे द्रव्यका ही चिंतन कर रहा है। उसकी दृष्टि आँगनमें गई। उसने देखा कि बछड़ा झाड़ू चबा रहा है इतना छोटा सा नुकसान भी वह बूढ़ा कैसे सह सकता था ? उसका दिल जलता है कि मैंने कैसे धन कमाया है यह ये लोग क्या जानें ? उसे लगा कि रुपये–पैसोंकी तथा अन्य वस्तुओंकी इन लोगोंके लिए कोई कीमत ही नहीं है। मेरे जानेके बाद ये लोग घरको लुटा ही देंगे।

वह बूढ़ा कुछ स्पष्ट बोल तो सकता नहीं था इसलिए कुछ बड़बड़ाने लगा। उसके एक बेटेने सोचा कि पिताजी भगवानका नाम लेना तो चाहते हैं किंतु कुछ बोल नहीं सकते। दूसरे बेटेने सोचा कि पिताजी कभी भगवानका नाम तो लेते नहीं सो वे कुछ मिलकियतके बारेमें कहना चाहते हैं। कुछ धन छुपा रखा होगा उसके बारेमें कुछ कहना होगा उन्हें। पुत्रोंने डॉक्टर बुलाकर उससे बिनती की कि कुछ ऐसा करो कि पिताजी दो-चार शब्द बोल सकें। डॉक्टरने इंजेक्शन देनेके लिए हजार रुपयेकी फीस माँगी। पुत्रोंने सोचा कि कहीं गाड़कर रखा हुआ धन बतायेंगे। अतः हजार रुपये खर्च कर डाले।

पिताकी बात सुननेके सभी आतुर थे। दवाईने अपना काम किया। कुछ शक्ति मिली तो वह बूढ़ा बोला—सब मेरी ओर क्या देख रहे हो? वहाँ देखो। वह बछड़ा कबसे झाड़ू खा रहा है और इस तरह बछड़ा-झाड़ू, झाड़ू-बछड़ा करते हुए बूढ़ेने देह त्याग दिया।

आप देखें, ध्यान रखें कि कहीं आपकी भी ऐसी दशा न हो।

यह बात हंसनेके लिये नहीं, सावधान करनेके लिये कही है।

लक्ष्मीजी अकेली आती हैं तो रुलाती हैं किंतु साथमें ठाकुरजी भी आवें तो सुखी करती हैं।

लोग कहते हैं कि आनेवाले कालकी खबर कैसे हो सकती है? किंतु वह तो पहलेसे ही सावधान करके आता है। काल सभीको सावधान करता है। किंतु लोग मानते ही नहीं हैं। काल आगमनके पहले पत्र लिखता है। किंतु कालका पत्र पढ़ना कोई नहीं जानता। बाल श्वेत होने लग जायें तो मानो कि कालकी नोटिस आ गयी है। दाँत गिरने लगें तो मानो कि कालकी नोटिस आ पहुँची है और सावधान बनो। दाँत गिर जाते हैं तो लोग नकली दाँत लगवाते हैं। दाँत गिरने लग जायें तो समझ लेना चाहिए कि अब तो दूध—भात खाकर प्रभुभजन करनेका समय आ गया है। लेकिन लोग नकली दाँत बनवाकर इसलिए लगवाते हैं कि पापड़ खानेका मजा आयेगा। ऐसे कहाँ तक चलेगा? खानेसे शान्ति तो मिलती ही नहीं, इसके विपरीत वासना और अधिक भड़कती ही है।

मृत्युकी कई निशानियाँ बताई गईं हैं। अरुन्धतिका तारा न दिखायी दे तो मानना चाहिए कि एक वर्षमें मृत्यु होगी। स्वप्नमें कीचड़में शरीर धँसता हुआ दीखे तो मानो कि नौ माहमें मृत्यु होगी। स्वप्नमें कुम्हारके हाथी अर्थात् गधे पर सवारी करनेका दृश्य दिखायी दे तो मानो कि छं मासमें मृत्यु हो जाएगी। कानमें उँगलि डालनेके बाद अन्तर्ध्वनि न सुनायी दे तो समझो कि आठ दिनोंमें मृत्यु हो जाएगी। मृत्युके लक्षण जानकर भयभीत मत होना। सावधान होनेके लिये ही ये लक्षण बताए गये हैं। सावधान होनेके लिये ही यह भागवतकी कथा है।

भागवतकी कथा सुनकर परीक्षित कृतार्थ हुय। मरणको सुधारनेके लिये भागवत शास्त्र है। जीवनको जो सुधारता है उसीका मरण सुधरता है।

राजन्! मरणको सुधारना हो तो प्रत्येक क्षणको सुधारो। रोज सोचो, विचारो, मनको बार बार समझाओ कि ईश्वरके बिना मेरा कोई नहीं है। इस शरीरको भी एक दिन मुझे छोड़ना पड़ेगा अतः यह भी मेरा नहीं है। जब शरीर भी मेरा नहीं है तो मेरा है ही कौन? क्योंकि सभी सम्बन्ध शरीरके कारण ही उत्पन्न हुये हैं।

भावना करो कि न तो मैं किसीका हूँ और न कोई मेरा है। इस तरह ममताको हटाओ। संग्रहसे ममता बढ़ती है इसलिए अपरिग्रही बनो। तृप्ति भोगमें नहीं, त्यागमें है।

समता सिद्ध करनेके लिये सबसे ममता रखो। व्यक्तिगत ममता दूर करो।

प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह प्रतिक्षण सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका ही श्रवण, कीर्तन और मनन करे।

इन्द्रियोंको भोगसे नहीं प्रभु-स्मरणसे—प्रभुसेवासे ही शान्ति मिलती है।

दुःखका कारण देह ही है। दुःख भोगनेके लिये ही तो देह मिली है न? पाप ही न किये होते तो यह देह और यह जन्म ही क्यों मिला होता?

रामदास स्वामीने दासबोधमें लिखा है—देह धारण करना ही पाप है। मनुष्य हर तरहसे सुखी नहीं हो सकता।

हे राजन्, मानव शरीर सुखके उपभोगके लिए नहीं मिला है। मानवशरीर तो भजन करके भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिए ही मिला है।

इन्द्रियसुख सभी प्राणियोंको एक-सा ही मिलता है। शरीरसंगसे जो सुख स्त्री—पुरुषको मिलता है वही सुख कुत्तेको भी कुतियाके संगसे मिलता है। अतः मनुष्यजीवन पाकर प्रभु स्मरणमें लीन रहो। तुम जीवनको कुछ ऐसे साँचेमें ढालो कि मृत्युके क्षणमें भगवान्‌की ही याद आये।

जीव शिव बननेका प्रयत्न ही नहीं करता, अन्यथा वह तो शिव बननेके लिए ही जन्मा है।

जीव जब ईश्वरसे कहता है कि मैं आपका हूँ तो वह सम्बन्ध अपूर्ण है। परन्तु ईश्वर जब जीवसे कहता है कि तू मेरा है तभी वह सम्बन्ध परिपूर्ण होता है।

पापको टालो, पुण्यकार्य तुरन्त करो। ईश्वर हमें पापकी प्रवृत्तिओंसे कभी नहीं जोड़ता। परन्तु जन्मोंके संचित संस्कार ही पाप करनेके लिए प्रेरणा देते हैं।

एकांतमें ईश्वरभजन करो। मनको एकांत जल्दी एकाग्र बनाता है एक ईश्वरमें ही सबका अन्त करना एकान्त है। ईश्वर एक और अद्वितीय है। मनको एकाग्र करनेके लिए एकान्तमें रहनेकी जरूरत है। गृहस्थ घरमें समभाव नहीं रख सकता, वह फिर चाहे गीताका पाठ ही क्यों न करे? "समत्वम् योग उच्यते"। गृहस्थाश्रमके व्यवहार विषमतासे भरे हुए हैं। वहाँ समता नहीं रखी जा सकती। गृहस्थके घरमें भोगके परमाणु भरे हुए होनेके कारण घरमें रहकर परमात्माका सतत ध्यान करना कठिन है। भागवतमें शुकदेवजीने स्पष्ट कहा है कि जिसकी मृत्यु समीप आ गई हो वह घर छोड़ दे—"गृहात् प्रव्रजितो धीरः।" धैर्यसहित घर छोड़ो, पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करो और पवित्र एकान्त स्थलमें आसन जमाकर बैठ जाओ। मनसे प्रणवका जप करो। प्राणायामसे प्राणवायुको वशमें करो। मनको अन्य विचारोंसे रोककर भगवान्‌के मंगलमय रूपसे जोड़ दो। मीराबाईने एकान्तमें गिरिधरके आगे नाचना तय किया था। उसकी टेक थी "मैं गिरिधरके आगे नाचूंगी।" तभी उसकी भक्ति सिद्ध हुई।

एकान्तमें बैठकर पहले प्राणायाम करो। मनका प्राणसे सम्बन्ध है। प्राणसे मन भी स्थिर होता है। प्राणायामके तीन भेद होते हैं। प्रथम पूरक प्राणायाम करना होता है दाहिनी नासिका द्वारा बाहरकी हवा अन्दर खींचो। यह सब योगकी प्रक्रियाएँ हैं।

महाप्रभुजीने सुबोधिनीमें कहा है कि योगको भी भक्तिका सहकार चाहिए। योगको जो भक्तिका साथ न मिले तो वह रोगी बन जाता है। बिना भक्तिका योग रोग उत्पन्न करता है। बिना भक्ति किये योग साधक नहीं होता, इतना ही नहीं, वह कभी कभी बाधक भी हो जाता है। भक्तिसे योग किया जाय तो प्रभुके साथ संयोग होता है। योगसे योगी मनको स्थिर कर सकता है किंतु हृदय विशाल नहीं होता। हृदयकी विशालता तो भक्ति और ज्ञानसे ही होगी। इसलिए पूरक प्राणायामसे ऐसी भावना करो कि प्रभुका तेजोमय स्वरूप तुम्हारे हृदयमें उतर रहा है। भगवान्‌का व्यापक तेज तुम्हारे हृदयमें आ रहा है।

फिर जब कुम्भक करो तब भावना करो कि मैं ईश्वरका आलिंगनकर रहा हूँ। प्राणको शरीरमें रोके रखना ही कुम्भक है। उस समय ब्रह्मसम्बन्धकी भावना करो। उस समय सोचो कि मेरे प्रभुके साथ मेरा मिलन हुआ है। मेरे प्रभुने मेरा आलिंगन किया है। यह ब्रह्मसम्बन्ध सतत टिक जाए तो मुक्ति मिलती है। मनुष्य इस ब्रह्मसम्बन्धको सदा बनाये नहीं रख सकता। संसारके विषयोंमें मनको जाने देनेसे ब्रह्मसम्बन्ध भंग हो जाता है।

फिर रेचक प्राणायाम करना होता है। बांई नाकसे श्वास बाहर छोड़ना रेचक कहलाता है। उस समय ऐसी भावना करो कि मैं प्रभुके साथ एक हो गया हूँ। मैं भगवान्‌से एकरूप हो गया हूँ, भगवान्‌का बन गया हूँ, इसलिये मेरे पाप बाहर निकल रहे हैं, वासना बाहर निकल रही है। मेरे मनके सारे विकार बाहर निकल रहे हैं और अब मैं शुद्ध हो रहा हूँ।

जब तक कुछ न कुछ लौकिक व्यवहार भी करना है तब तक मन स्थिर नहीं हो सकता बाहरका संसार तो भजनमे, कीर्तनमें विक्षेप नहीं करता किंतु मनका संसार अवश्य विक्षेप करता है।

ब्राह्मण संध्यामें अघमर्षण करता है। वह सोचता है कि मेरे पाप बाहर निकल रहे हैं।

मनकी मलिनता दो प्रकारकी होती है—

स्थूलमलिनता— साधारण साधन तप, व्रत, अनशन आदिसे यह मलिनता दूर होती है।

सूक्ष्म मलिनता—तीव्र भक्ति ही उसे दूर कर सकती है।

शुकदेवजीने इसीलिये आरम्भमें विराट् पुरुषका ध्यान धरनेकी बात कही है। विराट् पुरुषकी धारणा किये बिना मन शुद्ध नहीं होता।

शुकदेवजी कहते हैं कि वैसे तो मेरी निष्ठा निर्गुणमें है तथापि नन्दनन्दन यशोदानन्दन मेरे मनको बार बार अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीकृष्ण भगवान्‌की मधुर लीलायें मेरे मनको, मेरे हृदयको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इसी कारणसे मैंने भागवत-पुराणका अध्ययन किया और मैं वह आपको सुनाऊँगा।

भगवान्‌के नामका प्रेमसे संकीर्तन करना ही सभी शास्त्रोंका सार है।

सभी शास्त्र पढ़ो, उनपर विचार करो किंतु याद रखो कि नारायण हरि ही सच्चे हैं।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः॥

मैंने सब शास्त्र देख डाले, कई बार विचार किया, फिर भी सार तो एक ही निकला कि उन सभीके ध्येय केवल नारायण हरि ही है। सभी शास्त्रोंके वाचन-मननके बाद मैंने तय किया है कि केवल भगवान्‌का ही ध्यान करना चाहिए।

निर्गुणके प्रति जबतक निष्ठा न हो सके तब तक मनके रागद्वेष नहीं जायेंगे। जिसकी सगुणमें तो निष्ठा हो किंतु वह निर्गुणको न माने तो उसकी भक्ति अपूर्ण ही रहती है।

ध्यानके आरम्भमें मनको सेवा करो। ध्यानके समय मन शुद्ध न हो तो आनन्द नहीं मिलता। मनकी बाहरी विषयोंमें भटकते रहनेकी आदत पड़ गयी है। वर्तमानकालमें जीवन भोगप्रधान बन गया है। अतः मनको अन्तर्मुख करना बड़ा कठिन है। ज्ञानी पुरुष मनकी मलिनता धोनेके लिये विराट् पुरुषको धारणा करते हैं। विराट् पुरुषकी धारणाका अर्थ है सारे जगत्‌को ब्रह्मरूप मानना। ब्राह्मण उस विराट् पुरुषका मुख है, क्षत्रिय हाथ है वैश्य जंघा है, शूद्र पग है, नदियाँ नाड़ी हैं। इस प्रकार जगत्‌के प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूप देखकर मनको शुद्ध करना है। साधारण साधकके लिए इस विराट् पुरुषकी कल्पना और धारणा कठिन है अतः कुछ लोग अति सुन्दर नारायण भगवान्‌का ध्यान करते हैं।

जगत्‌को जबतक ब्रह्मरूप नहीं मानेंगे तबतक रागद्वेष नहीं मिटेंगे। कुछ लोग जगत्‌को ब्रह्ममय मानते हैं तो कुछ लोग प्रत्येक पदार्थमें ब्रह्मस्वरूपका अनुभव करते हैं। रागद्वेषके नाशके लिये विराट् पुरुषका ध्यान करो। सारा विश्व उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है ऐसी भावना मनमें दृढ़ हो जाय तो जगत्‌की किसी भी वस्तुके प्रति हीनभाव या कुभाव न हो।

हरि ही जगत् है। ब्रह्मदृष्टिसे जगत् सत्य है। ब्राह्मण भगवान्‌के मुखसे निकला है, वैश्य जंघासे निकला है, शूद्र चरणसे निकला है अतः किसीका भी अपमान भगवान्‌का ही अपमान है। इसलिए किसीका भी अपमान और तिरस्कार न करो। जगत्‌में जड और चेतनका जबतक भेद रखोगे तब तक ध्यानमें एकाग्रता नहीं आयेगी।

इसके बाद भागवतमें वैराग्यका उपदेश दिया गया है। बिना वैराग्यके ध्यान नहीं हो सकता, ध्यानमें एकाग्रता नहीं हो सकती।

संसारका स्मरण ही दुःख है और संसारका विस्मरण ही सुख है।

ज्ञानमार्गमें तीव्र वैराग्य होना चाहिये। भक्ति-प्रेममार्गमें समर्पणकी प्रधानता है। भक्ति करनी हो तो वह वैराग्यके बिना तो चल सकती है किंतु सबके साथ प्रेम तो करना ही पड़ेगा। वैराग्यसे यह काम अधिक कठिक है। सबके साथ प्रेम करो अथवा अकेले ईश्वरसे प्रेम करो। जगत्‌के प्रत्येक पदार्थके साथ प्रेम करना भक्ति-मार्ग है।

ज्ञान-मार्ग त्यागप्रधान है। भक्ति-मार्गमें समर्पणका प्राधान्य है। ज्ञानी सबका निषेध करता हुआ परिनिषेवमें जो शेष रहता है उसीमें मनको दृढ़ करता है। साधारण मनुष्यके लिये ज्ञान-मार्ग सुलभ नहीं है। मनुष्य सर्वस्व त्याग तो कर नहीं सकता।

शरीरसे आत्मा भिन्न है ऐसा सब समझते तो हैं किंतु उसका अनुभव आसान नहीं है। भक्त मानता है कि गायमें बसे हुए श्रीकृष्णकी सेवा घासमें बसे हुए श्रीकृष्णसे करूँगा।

भक्ति-मार्गमें सद्‌भाव आवश्यक है। सभीके प्रति सद्‌भाव रखना कठिन कार्य है। श्रीकृष्ण भगवान तो स्वयंको लात मारनेवालेको भी सद्‌भावकी दृष्टिसे ही देखते हैं।

मनकी मलिनता धोनेके लिए विराट् पुरुषका ध्यान धरना है। विराट् पुरुषके ध्यान करनेका अर्थ है, इस जगत्‌में जो कुछ दीख रहा हो उसमें परमात्माका वास है, ऐसा समझकर व्यवहार करना। सारा जगत् उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है। विराट् पुरुषके ध्यानके लिए तीव्र वैराग्य जरूरी है।

सारा विश्व ब्रह्मरूप है ऐसा मानकर ज्ञानी पुरुष ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करता है। वैष्णवजन हृदयमें चतुर्भुज द्वारकानाथके दर्शन करते हैं।

प्रभुके एक अंगका चिंतन करना ध्यान है और प्रभुके सर्वांगका चिंतन करना धारणा है।

दास्यभक्ति द्वारा हृदय जल्दी दीन बनेगा। पहले भगवान्के चरणारविंदका ध्यान करो, फिर मुखारविंदका और अन्तमें सर्वांगका ध्यान करो।

ध्यानयोगकी कथा कपिल गीतामें विस्तारसे दी गयी है जिसका यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया गया है।

साधक सावधान होकर ध्यान करेगा तो उसको समझमें यह बात आ जायगी कि मायाकी शक्ति भ्रांतिमय ही है।

ईश्वरका चिंतन न हो सके तो भी कोई बात नहीं है किंतु संसारका चिंतन तो कभी भी नहीं करना चाहिए। ईश्वरका ध्यान चाहे न हो सके किंतु संसारका ध्यान छोड़नेकी आदत डालनी चाहिए।

ध्यानके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिस तरह रुपये-पैसोंका ध्यान करते हो उसी तरह परमात्माका ध्यान करो।

आरम्भावस्थामें आँखोंके सामने अन्धकार-सा छा जायेगा। किंतु धैर्यसे योगधारणा करके मनको वशमें करो। बुद्धि द्वारा प्रभुके सर्वांगोंकी धारणा करो। ज्यों ज्यों बुद्धि स्थिर होती जायगी, त्यों त्यों मन भी स्थिर होने लगेगा। धारणा स्थिर होने पर ध्यानमें प्रभुका मंगलमय स्वरूप दीखता है और भक्तियोगकी प्राप्ति होती है।

ध्यानमें मन यदि स्थिर न हो सके तो उस मनको मृत्युसे भयभीत करो। तभी वह स्थिर होगा। मनको किसी भी तरह समझाओ और स्थिर करो।

> क्षणभंगुर जीवनकी कलिका, कल प्रातः को जाने खिली न खिली ;
> मलयाचलकी शुचि शीतल मंद, सुगंध समीर चली न चली।
> कलिकाल कुठार लिए फिरता तन नम्र है चोट झिली न झिली ;
> रट ले हरिनाम अरी रसना, फिर अंत समयमें हिली न हिली ॥

ज्ञानदेवने मनको गुरु बनाया है। मनका सच्चा गुरु आत्मा है।

एकनाथ महाराजके पास एक वैष्णव आया। उसने महाराजसे पूछा कि आपका मन ईश्वरमें, सदासर्वदा श्रीकृष्णमें कैसे स्थिर रहता है? मेरा मन तो आधा घंटा भी प्रभुमें स्थिर नहीं रह सकता। मनको स्थिर करनेका कोई उपाय बताये।

एकनाथने सोचा कि उपदेश क्रियात्मक होना चाहिए। उन्होंने कहा कि जाने दे इस बातको अभी। मुझे लगता है कि तेरी मृत्यु समीप आ रही है। मृत्युके पहले वैर और वासनाका त्याग करना चाहिए। वैर और वासना मृत्युको बिगाड़ती है। सात दिनोंके बाद फिर मेरे पास आना।

मृत्युका नाम सुनते ही उस वैष्णवके तो मानो होश ही उड़ गये। वह घर लौटा। धन-संपत्ति आदि सब कुछ पुत्रके हाथोंमें सौंप दिया। उसने सबसे क्षमा-याचना की और वह ईश्वरका ध्यान करने लगा। सात दिनोंके बाद वह एकनाथ महाराजके पास आया।

महाराजने पूछा कि इन सात दिनोंमें तूने क्या क्या किया? तूने कुछ पाप तो नहीं किया? वैष्णवने उत्तर दिया कि मैं मृत्युसे ऐसा डर गया कि सब कुछ छोड़कर प्रभुके ध्यानमें लग गया।

तो एकनाथने कहा कि मेरी एकाग्रताका यही रहस्य है। मैं मृत्युको रोज याद करता हूँ। मैं मृत्युका मनमें डर रखकर सतत ईश्वर-भजन करता हूँ अतः सभी विषयोंसे मेरा मन हट जाता है और वह सदासर्वदा श्रीकृष्णमें एकाग्र रहता है।

परमात्मामें मन तन्मय न हो सके तो कोई बात नहीं है किंतु संसारके साथ कभी तन्मय न बनो।

परमात्माके ध्यानसे जीव ईश्वरमें मिल जाता है। ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक होते हैं। यही मुक्ति है, यही अद्वैत है।

दृष्टि, द्रष्टा और दर्शन एक होने चाहिए। साधन, साधक, साध्य एक बनने चाहिए।

ध्याता, ध्यान और ध्येय तथा दर्शन, द्रष्टा और दृश्य एक बने तो समझो कि ध्यानमें और दर्शनमें एकतानता उत्पन्न हो गई है। एकतानता होनेसे वह अन्य सब कुछ भूल जाता है और उसे ईश्वरके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं दीखता।

लोग परमात्माको धन देते हैं किंतु वे तो मन माँगते हैं। व्यवहार तो करो किंतु ईश्वरमें-कृष्णमें मन रखकर करो। पनिहारिनें पानीसे भरे घड़े सिर पर रखकर बातचीत करती हुई चलती हैं फिर भी उनका ध्यान सिर पर रखे हुए घड़ोंमें रहता है कि कहीं वे गिर न पड़ें। इसी तरह संसारके व्यवहार करते समय भी हमेशा ईश्वरका स्मरण भी करते रहो। जगत्‌के पदार्थोंसे आसक्ति न रखो।

विषयानन्दी व्यक्ति ब्रह्मानन्दको समझ नहीं सकता। ब्रह्मानन्दका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उपनिषद्‌में दृष्टांत दिया गया है कि शक्कर (मिश्री) से बनी हुई गुड़ियाने सागरकी गहराईको जाननेका प्रयत्न किया। किंतु वह सागरमें जो गई सो गई ही। उसीमें वह विलीन हो गई। जो ईश्वरमें लीन हो गया हो, उस जीवको कोई ईश्वरसे भिन्न नहीं कर सकता। ज्यों ज्यों ध्यान किया जाता है त्यों त्यों जीवका परमात्मामें लय होता जाता है और फिर जीवका जीवत्व रहता ही नहीं है।

भागवतमें ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों बताए गए हैं।

ज्ञानमार्गमें जीव ईश्वरके साथ एक होता है, और ईश्वरमें विलीन हो जाता है। दूसरी ओर कतिपय वैष्णवाचार्य कुछ द्वैत रखकर अद्वैतको मानते हैं। भक्तिका आरम्भ भले ही द्वैतसे हो, किंतु उसकी समाप्ति तो अद्वैतसे ही होती है। भक्त और भगवान् अलग नहीं रह सकते। जो जीव ईश्वरमें विलीन हो गया है उसे भगवान् अपने स्वरूपसे अलग नहीं कर सकते। उपनिषद्‌में ईश्वरका वर्णन करते हुए कहा है—रसो वै सः। अर्थात् ईश्वर रसरूप है।

वैष्णव आचार्य अभेदभावमें श्रद्धा रखते हैं। जलमें रहनेवाली मछली पानी नहीं पी सकती। इस तरह जो ब्रह्मरसमें डूब गया है, जो ब्रह्मरूप हो चुका है, वह फिर परमात्माके रसात्मक स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता। ब्रह्मरूप होनेसे जीवको दुःखनिवृत्ति तो होती है, किंतु वह आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता। रसात्मक और आनन्दात्मक ब्रह्मका अनुभव करनेके लिए जीवको कुछ अलग रहना पड़ेगा, थोड़ा-सा द्वैत रखना ही होगा। तब भक्त कहता है कि मैं अपने प्रभुका अंश हूँ, मैं अपने भगवान्‌की गोपी हूँ। मुझे परमात्माके साथ एक नहीं होना है। मुझे तो परमात्माकी सेवा करनी है, मुझे गोलोक धाममें जाना है।

भक्त जब लौकिक देहको छोड़कर अप्राकृत शरीर धारण करके गोलोक-धाममें प्रवेश करता है तो भगवान्‌को आनन्द होता है। वे कहते हैं, मेरा अंश मुझमें मिलने आया है। इसलिए भगवान् उत्सव मानते हैं—

भक्ति करता तुका झाला पांडुरंग।

किंतु तुकाराम कहते हैं कि कीर्तन करनेमें मुझे जो आनन्द मिलता है, वह विट्ठल बननेमें नहीं मिलता।

जीव ईश्वरका अनुभव कब कर सकेगा? जब ईश्वरसे वह भिन्न रहेगा, तभी वह उस रसका अनुभव कर सकेगा। वैष्णवाचार्य चाहते हैं कि जीव ईश्वरसे कुछ अलग रहे।

कीड़ा भँवरीका चिंतन करता हुआ स्वयं भँवरीरूप बन जाता है। उसी तरह ब्रह्मका चिंतन करता हुआ जीव स्वयं ब्रह्मरूप बन जाता है। यह तो है कैवल्यमुक्ति। किंतु वैष्णवजन ऐसी कैवल्यमुक्तिकी इच्छा नहीं रखते। वे ईश्वरकी सेवा-पूजा और उसका रसास्वादन करनेके लिए थोड़ा—द्वैतभाव रखते ही हैं।

जो व्यापक ब्रह्ममें लीन हो चुका है, वह उससे अलग कैसे हो सकता है? पानीके जड़ या ठोस होनेके कारण मछली अलग रह सकती है। किंतु जो पानीमें हर तरहसे डूब गया हो, वह पानीका आस्वाद नहीं ले सकता। उसी तरह ईश्वरमें डूबा हुआ जीव ईश्वरके स्वरूपका रसानुभव नहीं कर सकता। इसीलिए वैष्णव महापुरुष थोड़ा-सा द्वैत रखकर भगवान्‌की सेवा—स्मरणमें कृतार्थताका अनुभव करते हैं।

यह दोनों सिद्धान्त सत्य हैं। खण्डन-मण्डनके पचड़ेमें मत पड़ो। गौरांग प्रभु भी इस भेदाभेद भावको मानते हैं। लीलाभेदको मानते हैं। परन्तु तत्त्व-दृष्टिसे अभेद हैं। अभिन्न होने पर भी उन दोनोंमें सूक्ष्म भेद है।

एकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें उस सिद्धान्तको समझानेके लिए एक दृष्टान्त दिया है।

अशोक वनमें रामके विरहमें सीताजी रामका अखण्ड ध्यान-स्मरण करती हैं। सीताजी रामके ध्यानमें तन्मय हैं। विरहमें तन्मयता विशेष होती है। सर्वत्र राम दीखते हैं। माताजी भूल जाती हैं कि वे सीता हैं।

सभीमें रामका अनुभव करनेवाला रामरूप बनता है। यही कैवल्यमुक्ति है।

सीताजीको कई बार लगता है कि वह रामरूप हैं। वे अपना स्त्रीत्व भी भूल जाती हैं।

एक बार सीताने त्रिजटासे पूछा कि मैंने सुना है कि कीड़ा भँवरीका चिंतन करता हुआ स्वयं भँवरी बन जाता है तो इसी भाँति रामजीका सतत चिंतन करनेसे मैं भी यदि राम बन गई तो क्या होगा ?

सीताजी रामके ध्यानमें ऐसी तन्मय हो जाती हैं कि मानो वे स्वयं राम ही हो जाती हैं ।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

त्रिजटाने कहा कि माताजी, आप रामरूप हो जायें तो अच्छा ही होगा । जीव और शिव एक हो जाय तो जीव कृतार्थ हो जाता है ।

तो सीताजी कहती हैं कि यदि मैं रामका चिंतन करती हुई स्वयं राम बन गई तो फिर श्रीरामजीकी सेवा कौन करेगा ? सीता रहकर रामकी सेवा करनेमें जो आनन्द है, वह स्वयं रामस्वरूप बननेमें नहीं है । मुझे राम होनेमें आनन्द नहीं है । मुझे तो रामजीकी सेवा करनी है ।

सीताजीको दुःख होता है कि उनका युगलभाव खण्डित हो जायेगा । उस हालतमें सीतारामका युगलभाव नहीं रह सकेगा ।

तब त्रिजटाने कहा—अन्योन्य प्रेम होनेके कारण रामजी आपका चिंतन करते हुए सीतारूप बन जाएँगे और इस तरह आपका युगलभाव जगत्में अखण्डित ही रहेगा ।

यही भागवती मुक्तिका रहस्य है ।

वैष्णव आचार्य प्रथम द्वैतका नाश करते हैं और अद्वैत प्राप्त करते हैं । फिर काल्पनिक द्वैत बनाये रखते हैं कि जिसके कारण कन्हैयाकी गोपीभावसे पूजा की जा सके ।

ज्ञानीजन ज्ञानसे अद्वैत सिद्ध करते हैं । यह अद्वैतमुक्ति है, कैवल्यमुक्ति है ।

भक्त भक्तिसे अद्वैत सिद्ध करते हैं । यह भागवती मुक्ति है ।

इस प्रकार दो भक्तियोंका वर्णन हुआ है । सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर है । स्थूल और सूक्ष्म शरीरका नाश होने पर मुक्ति प्राप्त होती है ।

विचारप्रधान मनुष्य ज्ञानमार्ग पसन्द करता है । भावनाप्रधान मनुष्य कोमलहृदयी होनेके कारण भक्तिमार्ग पसन्द करता है ।

ईश्वरसे विमुख न होना ही भक्ति है । सभी साधनोंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है । भक्तिशून्य पुरुषोंके सभी साधन निष्फल ही रहते हैं । जीव और ईश्वरका मिलन करानेका साधन है कथा । भागवतमें जहाँ भी भक्ति शब्दका प्रयोग किया गया है, वहाँ तीव्र शब्द भी प्रयुक्त हुआ है । भक्ति तीव्र होनी चाहिए । बिना तीव्रताके साधारण भक्तिसे कुछ नहीं होता ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।

वैराग्यकी इच्छावाला मुमुक्षु भक्त हो तो उसे तीव्र भक्तियोगसे परम पुरुष, पूर्ण परमात्माका पूजन करना चाहिए ।

शुकदेवजी कहते हैं—

हे राजन ! मुक्ति प्राप्त करनी ही है तो आरम्भमें भोगोंका त्याग करना ही पड़ेगा । भोगी, ज्ञान या भक्तिमार्गमें आगे नहीं बढ़ सकता । भोग भक्तिमें भी बाधक है और ज्ञानमें भी । भोगकी अपेक्षा त्यागमें अनन्त गुना सुख है ।

इन्द्रियजन्य सुख सभी प्राणियोंमें एक-सा ही होता है। पशुका, मनुष्यका और देवगन्धर्वका त्वचेन्द्रियका स्पर्शसुख और जिह्वेन्द्रियका रससुख समान ही होता है। इन्द्रियसुखके उपभोगके समय जो आनन्द मनुष्यको मिलता है, वही आनन्द पशुको भी मिलता है। छप्पन मन रुईकी गद्दीवाले पलङ्गपर सोनेवाले सेठको जो आनन्द मिलता है, वही आनन्द कचरे-कूड़ेके ढेरमें पड़े हुए गधेको भी मिलता है। इसीलिए मनुष्यको चाहिये कि वह बुद्धिपूर्वक भोग छोड़े।

भोगमें क्षणिक सुख मिलता है पर त्यागसे हमेशाके लिए अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है।

भोगसे शान्ति नहीं मिलती, त्यागसे शान्ति मिलती है। पशु, पंछी, मनुष्य सभीके लिए इन्द्रिय, सुख तो एक समान ही हैं। मनुष्यको जो सुख श्रीखण्ड खानेमें मिलता है, वही सुख सुअरको विष्ठा खानेमें मिलता है।

राजन्! तुमने आज तक अनेक भोगोंका उपभोग किया। अब तुम अपनी एक-एक इन्द्रियोंको भक्तिरसका पान कराओ। इन्द्रियरूपी पुष्प तुम भगवान्को अर्पित करो

राजन्! जिसकी मृत्यु समीप है, उसे चाहिए कि वह संसारको भूलनेका और परमात्मामें मन लगानेका प्रयत्न करे।

राजन्! धीरे-धीरे संयम बढ़ाओ। श्रीकृष्णका सतत ध्यान धरना ही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। जो ईश्वरमें तन्मय होता है, उसे मुक्ति मिलती है।

राजन्, जन्म उसीका सफल हुआ जानो कि जिसे दूसरी बार माताके गर्भमें जानेका अवसर ही न मिले। गर्भवास नरकवास है। कर्म और वासनाको साथ लेकर जो जन्म लेता है, उसके लिए गर्भवास नरकवास ही है।

शुकदेवजी जनकराजाके राजगृहमें विद्या सीखनेके लिये गये। विद्याभ्यास समाप्त हुआ। शुकदेवजीने गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की। जनक राजाने कहा, मुझे कोई गुरुदक्षिणाकी इच्छा नहीं है। फिर भी तुम आग्रह करते ही हो तो जगत्में जो वस्तु बिलकुल निरुपयोगी हो वही मुझे दे दो।

जनक राजाने निरुपयोगी वस्तु माँगी तो शुकदेवजी उसकी खोजमें निकल पड़े। उन्होंने प्रथम मिट्टी उठायी तो उसने कहा कि मेरे तो कई उपयोग हैं। पत्थरने भी वैसा ही कहा। जो भी वस्तु उठायी वह सभी उपयोगी निकल पड़ी। अन्तमें हार कर शुकदेवजीने विष्ठा उठायी। तो उसने भी कहा कि मैं भी उपयोगी हूँ। मनुष्यके पेटमें जानेसे ही मेरी यह अवदशा हुई है। फिर भी मैं निरुपयोगी नहीं हूँ।

सोचते-सोचते शुकदेवजीने पाया कि यह देहाभिमान ही निरुपयोगी है।

परमात्माकी सेवा करते हुए पुरुषत्व और स्त्रीत्वका भान चला जाए तो गोपीभाव सिद्ध होता है और परमात्माकी नित्य लीलामें प्रवेश मिल जाता है। 'संगं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।'

शुकदेवजीने जनक राजासे कहा कि मैं अपना देहाभिमान गुरुदक्षिणामें अर्पित करता हूँ। यह सुनकर जनकराजाने शुकदेवजीसे कहा कि अब तुम कृतार्थ हो गये हो।

शुकदेवजीने देहाभिमान छोड़ दिया। देहभान न होनेके कारण ही उन्होंने मंगलाचरण नहीं किया। चौथे अध्यायमें मंगलाचरण किया है बारहवें श्लोकसे।

(स्कन्ध २ अध्याय ४ श्लोक १२)

साधकको कथा मार्गदर्शन कराती है। इतना ही नहीं सिद्ध पुरुषोंको भी कथा सुननेकी जरूरत रहती है। शुकदेवजीकी कथामें भी पराशरजी, व्यासजी आदि बैठे थे।

द्वितीय स्कंधमें अध्याय १-२-३ में भागवतका पूरा सार और सारा बोध आ गया है। राजाको जो उपदेश देना था, वह इन तीन अध्यायोंमें विदित है। फिर उसके बाद तो परीक्षित राजाका मन विषयकी ओर न चला जाय, इसलिए सभी चरित्र कहे गये हैं।

शुकदेवजी स्तुति करते हैं—

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ भा. २-४-१४

जो महान् भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधनावाले मनुष्य जिसकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर सकते, जिसके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है तो फिर अधिक तो कैसे हो सकेगा तथा जो ऐश्वर्य-युक्त होकर निरंतर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार कर रहे हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

प्रेममें पक्षपात हो ही जाता है। शुकदेवजी राधाकृष्णको दो बार नमस्कार करते हैं। क्योंकि राधाजी श्रीशुकदेवजीकी गुरु हैं राधाजीने शुकदेवजीका ब्रह्मसम्बन्ध करवा दिया था। इस श्लोकके 'राधसा' शब्दका अर्थ कुछ महात्मा राधिकाजी भी करते हैं।

शुकदेवजी पूर्वजन्ममें तोता थे। वे रात-दिन हरेभरे निकुंजमें राधाका नाम सतत रटते रहते थे। शुकदेवजी श्रीराधाजीके शिष्य हैं। यही कारण है कि भागवतमें राधाजीके नामका उल्लेख तक नहीं है। गुरुका प्रकट रूपसे नाम लेना शास्त्र निषिद्ध है।

भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामी इन पाँच वस्तुओंको नित्य मानते हैं। भगवान्का स्वरूप, भगवान्की लीला, भगवान्का धाम, भगवान्के काम और परिकर।

परीक्षित राजाने पूछा कि अपनी मायासे भगवान् इस सृष्टिकी रचना कैसे करते हैं। इस सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा कहिए।

शुकदेवजीने कहा—राजन्, तुमने जो प्रश्न मुझसे पूछा है, वही प्रश्न नारदजीने ब्रह्मा-जीसे पूछा था। तुम उसकी कथा सुनो। ब्रह्माजीने नारदजीसे सृष्टिके आरम्भकी कथा कही थी।

भगवान्की इच्छा हुई कि वे एकसे अनेक बनें—एकोऽहम् बहु स्याम्। उन्होंने २४ तत्त्व उत्पन्न किए। वे सभी तत्त्व कुछ न कर सके, तब प्रभुने उन सभी तत्त्वोंमें प्रवेश किया। तभी उन तत्त्वोंमें चेतनशक्ति प्रकट हुई।

सातवें अध्यायमें भगवान्के लीला-अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन है।

ब्रह्माजीको निष्कपट तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया। आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिए उन्हें परम सत्य परमार्थ वस्तुका जो उपदेश किया, उसकी कथा सुनाता हूँ।

आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्मस्थान कमल पर बैठकर सृष्टि रचनेकी इच्छासे सोचमें डूबे हुए थे। फिर भी जिस ज्ञानदृष्टिसे सृष्टिकी रचना की जा सकती थी, वह प्राप्त न हो सकी। ऐसेमें ब्रह्माजीने आकाशवाणी सुनी—तप तप। ब्रह्माजीने समझा कि मुझे तप करनेका आदेश मिला है। ब्रह्माजीने सौ वर्ष तक तप किया और उन्हें चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए।

तप किए बिना किसीका भी काम नहीं बनेगा। जो तप नहीं करता, उसका पतन होता है। (तप शब्दके अक्षरोंको पलट देने पर पत होता है।)

नारायण भगवान्ने ब्रह्माजीको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया। द्वितीय स्कंधके नवें अध्यायके ३२ से ३५ श्लोक ही चतुःश्लोकी भागवत है।

भगवान् आँखमिचौनी खेलते हैं। आरम्भमें सभी जीव भगवान्में निहित थे। भगवान् प्रत्येक जीवको खोज-खोज कर उसके कर्मानुसार शरीर उसे देते हैं। फिर कहते हैं कि अब मैं छिप जाता हूँ, तू मुझे खोज लेना।

जब जगत् अस्तित्वमें नहीं था, तब भी मैं था। जब जगत् नहीं रहेगा, तब भी मैं रहूँगा। जिस तरह स्वप्नमें एक ही अनेक स्वरूपसे देखता है, उसी तरह जागृत अवस्थामें भी अनेकमें एक ही तत्त्व है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका अनुभव है। आभूषणके आकार भिन्न-भिन्न होने पर भी सभी एक ही प्रकारके सुवर्णसे बने हुए होते हैं। मूल्य भी उस सुवर्णका ही है, आकारका नहीं।

ईश्वरके सिवा जो भी कुछ दिखायी देता है, वह असत्य है। ईश्वरके सिवा दूसरा जो कुछ भी दिखायी दे, वह ईश्वरकी माया ही है। अस्तित्व न होने पर भी जो दिखायी देता है और सभीमें व्याप्त होते हुए भी ईश्वर दिखायी नहीं देता, यह ईश्वरकी माया ही है। यह मायाका ही कार्य है। उसे ही महापुरुष आवरण और विक्षेप कहते हैं।

सभीका मूल उपादानकारण प्रभु है। प्रभुमें भासमान संसार सत्य नहीं है, किंतु मायाके कारण आभासित होता है।

मायाकी दो शक्तियाँ हैं—

(१) आवरण शक्ति—मायाकी आवरण शक्ति परमात्माको छिपाए रहती है।

(२) विक्षेप शक्ति—मायाकी विक्षेप शक्ति ईश्वरके अधिष्ठानमें ही जगत्का भास कराती है। ईश्वरमें जगत्का भास कराती है।

अंधकारके दृष्टांत द्वारा यह सिद्धान्त समझाया गया है। जो नहीं है, वह भूलसे दीखता है और जो है वह दीखता नहीं है।

आत्मस्वरूपका विस्मरण ही माया है। अपने स्वरूपकी विस्मृति स्वप्न ही है। जो स्वप्न देखता है, वह देखनेवाला सच्चा है। स्वप्नमें एक ही पुरुष दो दिखाई देता है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो स्वप्नका साक्षी और प्रमाता एक ही है। वह जब जागता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि मैं तो घरमें सेज पर ही सोया हुआ हूँ। स्वप्नका पुरुष भिन्न है। जगत्का ब्रह्म-तत्त्व एक ही है किंतु मायाके कारण अनेकत्वका भास होता है। माया जीवनसे लगी हुई है। यह माया जीवनसे कब लगी? कहा नहीं जा सकता, क्योंकि माया अनादि है। उसका मूल खोजनेकी जरूरत नहीं है।

मायाका अर्थ है अज्ञान। अज्ञान कबसे शुरू हुआ, वह जाननेकी क्या जरूरत है? माया जीवसे कबसे लगी है, उसका विचार न करो। उसका पार ..ई भी नहीं पा सकता। कब विस्मरण हुआ, यह कहा नहीं जा सकता। उसी तरह अज्ञानका कब आरम्भ हुआ, वह भी नहीं कहा जा सकता। पर अज्ञानका तात्कालिक विनाश करना जरूरी है।

कपड़ों पर दाग लग जाय तो वह कैसे लगा, किस जगह लगा, कौन सी स्याही होगी आदिका विचार करनेकी अपेक्षा उस दागको तुरन्त दूर करना ही हितावह है।

मायाके बारेमें सोचते रहनेकी अपेक्षा मायाको दूर करनेके लिए परमात्माकी शरण लेना अच्छा है।

मायाका दर्शन करनेकी सुदामाकी इच्छा होने पर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि आपकी मायाका मैं दर्शन करना चाहता हूँ। वह कैसी होती है? श्रीकृष्णने कहा कि समय आने पर उसका दर्शन कराऊँगा। चलो, पहले हम गोमतीमें स्नान कर लें।

वे दोनों गोमती-तट पर आये। स्नान करने लगे। भगवान् तो स्नान करके पीताम्बर पहनने लगे। सुदामाने गोमतीके जलमें गोता लगाया। उसी समय भगवान्ने अपनी मायाका दर्शन कराया।

सुदामाको लगा कि गोमतीमें बाढ़ आ गई है। वे उसमें बहे चले जा रहे हैं। उन्होंने एक घाटका आसरा लिया। घूमते-फिरते वे एक गाँवके पास आये। वहाँ एक हथिनीने उनके गलेमें फूलमाला पहनाई। लोगोंने सुदामासे कहा कि हमारे देशके राजाकी मृत्यु हो गई है। इस गाँवका नियम है कि पहले राजाकी मृत्युके बाद हथिनी जिसको माला पहनाए, वही राजा हो। इसलिए आप हमारे देशके राजा हो गए हैं।

सुदामा राजा बन गए। एक राजकन्याके साथ उनका विवाह भी हो गया। बारह वर्षके दाम्पत्य जीवनमें दो पुत्र भी उत्पन्न हो गए। फिर एक दिन बीमार होनेसे रानीकी मृत्यु हो गई। सुदामा दुःखसे रोने लगे क्योंकि वह रानी सुन्दर और सुशील थी। लोगोंने सुदामासे कहा कि मत रोओ। हमारी मायापुरीका नियम है कि आपकी पत्नी जहाँ गई है, वहाँ आप भी भेजे जायँ। पत्नीकी चितामें आपको भी प्रवेश करना होगा।

अब सुदामाने पत्नीका रोना बन्द कर दिया और वे अपना रोना रोने लगे। हाय अब मेरा क्या होगा? उन्होंने लोगोंसे कहा कि मैं तो परदेशी हूँ। आपके गाँवका कानून मुझ पर नहीं लग सकता। मुझे एक बार स्नान-सन्ध्या करने दो फिर चाहे मुझे जला देना। वे स्नान करने गए तो चार पुरुष निगरानी करने लगे कि सुदामा कहीं भाग न जाएँ। सुदामा खूब डर गए। घबराहटके मारे वे परमेश्वरको याद करने लगे।

वे रोते हुए नदीसे बाहर आए। उस समय भगवान् तो तट पर खड़े हुए पीताम्बर पहन रहे थे। भगवान्ने पूछा कि तुम क्यों रो रहे हो? सुदामाने कहा कि वह सब कहाँ चला गया? यह सब क्या है? मेरी समझमें तो कुछ नहीं आता। भगवानने कहा कि यही मेरी माया है। मेरे बिना जो आभास होता है, वही मेरी माया है।

मायाका अर्थ है विस्मरण। 'मा' निषेधात्मक है और 'या' हकारात्मक, इसप्रकार जो न हो, उसे दिखाये वह माया है।

मायाके तीन प्रकार हैं—

(१) स्वमोहिका (२) स्वजन-मोहिका (३) विमुखजन-मोहिका।

जो सतत ब्रह्मदृष्टि रखता है, उसे माया पकड़ नहीं सकती। माया जीवसे लगी हुयी है, यह सिद्धान्त तत्त्व-दृष्टिसे सच्चा नहीं है।

माया नर्तकी है। वह सबको नचाती है। नर्तकी—मायाके मोहसे छूटना है तो नर्तकी शब्दको उलट दो और तब होगा कीर्तन। कीर्तन करोगे तो माया छूटेगी। कीर्तन-भक्तिमें हरेक इन्द्रियको काम मिलता है। इसलिए ही महापुरुषोंने कीर्तन-भक्तिको श्रेष्ठ माना है।

मायाका पार पानेके लिए, माया जिसकी दासी है, उस मायापति परमात्माको पानेका प्रयत्न करो। मायाकी पीड़ासे मुक्ति पाना चाहते हो तो माधवरायकी शरणमें जाओ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

मुझे ही जो भजते हैं, वे इस दुस्तर माया अथवा संसारको पार कर जाते हैं।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥

राजन्, इसीलिये मनुष्यको चाहिये कि वह हर किसी स्थानमें और हर किसी समय, अपनी संपूर्ण शक्तिसे भगवान् श्रीहरिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करता रहे।

मायाकी अधिक चर्चा न करो। ब्रह्माजीने नारदजीको ऐसी आज्ञा दी थी कि माया जिनकी दासी है, ऐसे मायापति परमात्माके चरणोंका आसरा लेकर प्रभु-भक्ति बढ़े उस तरहसे इस सिद्धान्तका प्रचार करो। नारदजीने वह उपदेश व्यासजीको दिया। व्यासजीने उन चार श्लोकोंके आधार पर हजार श्लोकोंका भागवतशास्त्र रचा।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

तृतीय स्कन्ध

आत्माको यह शरीर बंधनमें रखता है। शरीर जड़ है. आत्मा चेतन है किंतु जड़-चेतनकी यह ग्रन्थि असत्य है, गलत है क्योंकि चेतनको जड़ वस्तु किस प्रकार बाँध सकती है ? यह ग्रन्थि असत्य होने पर भी, जिस तरह स्वप्न हमें रुलाते हैं वैसे ही यह भी हमें रुलाती है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो हम यह नहीं कह सकते कि जड़ शरीर चेतन आत्माको बाँधकर रख सकता है। चेतन आत्माको जड़ शरीर बन्धनमें नहीं रख सकता। आत्मा शरीरसे भिन्न है, यह बात सभी जानते हैं, किंतु इसका अनुभव बहुत कम लोग कर पाते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन, तुम जो प्रश्न करते हो, वैसे ही प्रश्न विदुरजीने मैत्रेयजीसे पूछे थे। ये विदुरजी ऐसे हैं कि आमन्त्रणके बिना भी भगवान् उनके घर गए थे।

परीक्षितने कहा कि विदुरजी और मैत्रेयजीका मिलन कब हुआ, वह मुझे बताइए।

शुकदेवजी कहते हैं कि आमन्त्रण पाए बिना ही भगवान् विदुरजीके घर गए थे, उस प्रसंगकी बात पहले बता दूं।

धृतराष्ट्रने पांडवोंको लाक्षागृहमें जला देनेका प्रयत्न किया था। विदुरजीने धृतराष्ट्रको उपदेश दिया किंतु उसका धृतराष्ट्र पर कुछ भी असर नहीं हुआ। विदुरजीने सोचा कि यह धृतराष्ट्र दुष्ट है। उसके कुसंगसे मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाएगी। फिर भी उन्होंने उसको कई बार उपदेश दिया, किंतु धृतराष्ट्रने एक भी न सुनी तो विदुरजीने उसके घरको ही छोड़ दिया।

विदुरजी अपनी पत्नी सुलभाके साथ समृद्ध घरका त्याग करके वनमें चले गए। वनवासके बिना जीवनमें सुवास नहीं आ सकता। इसीलिए तो पांडवोंने और भगवान् रामचन्द्रजीने भी वनवास किया था।

विदुरजी तो पहलेसे ही तपस्वी-सा जीवन बिताते थे और भगवान्‌का कीर्तन करते थे। इसलिए दुर्योधनके छप्पन भोगोंको छोड़कर श्रीकृष्णने विदुरजीके घर भाजीका प्राशन किया।

विदुर और सुलभा वनमें नदीके किनारे कुटिया बनाकर रहने लगे और तपश्चर्या करने लगे। वे हररोज तीन घंटे कृष्ण-कथा तीन घंटे कृष्णसेवा, तीन घंटे प्रभुका ध्यान, तीन घंटे प्रभुका कीर्तन और तीन घंटे प्रभुकी सेवा करने लगे। बारह वर्ष तक वे इस प्रकार भगवान्‌की आराधना करते रहे।

मनको सतत सत्कर्ममें लगाए रखो। मन निठल्ला होकर पाप करेगा। भगवान्‌का वे कीर्तन करते थे और भूख लगने पर भाजी खाते थे।

भोजन करना पाप नहीं है। भोजनमें ही खो जाना और भोजन करते समय भगवान्‌को भूल जाना पाप है। कई लोग कढ़ी खाते-खाते उसीमें खो जाते हैं और अगले दिन माला फेरते हुए भी कढ़ीको याद करते हैं। मनमें सोचते हैं कि कलकी कढ़ी कितनी स्वादिष्ट थी।

विदुरजीने सुना कि द्वारिकानाथ सन्धि करानेके लिए हस्तिनापुर आ रहे हैं।

धृतराष्ट्रने सेवकोंको आज्ञा दी कि कृष्णके स्वागतकी तैयारी करो। छप्पन भोग लगाओ।

धृतराष्ट्र यह सेवा कुभावसे करते हैं। सेवा सदा सद्‌भावसे करनी चाहिए। कुभावसे सेवा करनेवालेपर भगवान् प्रसन्न नहीं होते। जो सद्भावसे सेवा करते हैं उनकी सेवासे वे प्रसन्न होते हैं।

विदुरजी गङ्गास्नान करने गये थे। वहाँ उन्होंने सुना कि कल तो रथयात्रा निकलेगी। पूछने पर लोगोंने बताया कि कल द्वारिकासे भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं।

विदुरजी घर लौटे। वे बड़े ही आनन्दमग्न दीख रहे थे। उनकी पत्नीने पूछा—क्या बात है कि आज आप बड़े खुश दिखाई दे रहे हैं।

विदुरजीने कहा—सत्सङ्गमें सारी बात कहूँगा। मैंने कथामें सुना था कि जो बारह वर्षों तक सतत सत्कर्म करे, उस पर भगवान् कृपा करते हैं। बारह वर्ष एक ही स्थानमें रह-कर ध्यान करनेवालेको प्रभु दर्शन देते हैं। मुझे लगता है कि द्वारिकानाथ दुर्योधनके लिए नहीं किंतु मेरे लिए ही आ रहे हैं।

सुलभाने कहा कि मुझे स्वप्नमें रथयात्राके दर्शन हुए थे। वह स्वप्न सच होगा। बारह वर्षोंसे मैंने कभी अन्न नहीं खाया।

विदुरजी कहते हैं कि देवी! तुम्हारी तपश्चर्याका फल कल मिलेगा। कल परमात्माके दर्शन होंगे।

सुलभादेवीने विदुरजीसे पूछा कि आपका प्रभुके साथ कोई परिचय भी है।

विदुरजीने कहा कि जब मैं कृष्णको वंदन करता हूँ तो वे मुझे 'चाचा' कहकर पुकारते हैं। मैं तो उनसे कहता हूँ कि मैं तो अधम हूँ, आपका दासानुदास हूँ। मुझे 'चाचा' मत कहो।

जीव जब नम्र होकर प्रभुकी शरणमें जाता है तो ईश्वर उसका सम्मान करते हैं।

सुलभाके मनमें एक ही भावना है कि ठाकुरजी मेरे घरपर भोजन करें और मैं उन्हें प्रत्यक्ष निहारूँ।

सुलभा कहती है कि वे आपके परिचित हैं तो उनको हमारे घर पधारनेका न्यौता दीजिये। मैं भावनासे तो रोज भगवान्‌को भोग लगाती हूँ। अब मेरी यही इच्छा है कि मेरी दृष्टिके समक्ष वे प्रत्यक्षरूपसे भोजन करें।

विदुरजी कहते हैं कि मेरे आमन्त्रणको अस्वीकार तो वे नहीं करेंगे, किंतु इस छोटी-सी झोंपड़ीमें हम उनका आदर-सत्कार कैसे करेंगे? उनके आगमनसे हमें तो आनन्द होगा किंतु उनको तो कष्ट ही होगा। मेरे भगवान् छप्पन भोगोंका प्राशन करते हैं। धृतराष्ट्रके घर उनका भलीभाँति स्वागत होगा। मेरे पास तो भाजीके सिवा कुछ नहीं है। मैं उन्हें क्या अर्पण करूँगा? हमारे यहाँ आनेसे ठाकुरजीको परिश्रम होगा। अपने सुखके लिए मैं भगवान्‌को जरा भी कष्ट नहीं देना चाहता। यही पुष्टिभक्ति है।

सुलभाने कहा कि मेरे घरमें चाहे दूसरी कुछ भी चीज भले ही न हो किंतु मेरे हृदयमें प्रभुके लिए अपार प्रेम तो है ही। वह प्रेम ही मैं तो भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दूँगी। हम जो भाजी खाते हैं, वही मैं ठाकुरजीको प्रेमसे खिलाऊँगी।

जीभके सुधरनेपर जीवन भी सुधरता है और जीभके बिगड़ने पर जीवन भी बिगड़ जाता है। सीधा-सादा भोजन करनेसे जीवन शुद्ध होता है।

यदि आहार सादगीपूर्ण और शुद्ध होगा तो शरीरमें सात्त्विक गुणकी वृद्धि होगी। सत्त्वगुणके बढ़नेसे सहनशक्ति भी बढ़ती है और अंतमें बुद्धि स्थिर होती है।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः,
सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

अतः विदुरजीकी भाँति अतिशय सादगीभरा जीवन जियो। जिसका जीवन सीधा-सादा है, वह अवश्य साधु बनेगा।

सुलभाने कहा कि मैं गरीब हूँ तो क्या हुआ? गरीब होना कोई अपराध है क्या? आपने कथामें कई बार कहा है कि प्रभु प्यारके भूखे हैं। भगवान् गरीबोंसे अधिक प्यार रखते हैं।

विदुरजीने कहा—भगवान् राजप्रासादमें जाएँगे तो वहाँ सुखसे रहेंगे। मेरे घरमें उनको कष्ट होगा। इसलिये मैं भगवान्‌को यहाँ लाना नहीं चाहता। देवी, हमारे अन्दर कुछ पाप अभी बाकी हैं। मैं तुम्हें कल कृष्णके दर्शन करानेके लिए ले जाऊँगा, किंतु ठाकुरजी अपने घर आयें, ऐसी आशा अभी मत कर। वे बादमें कभी हमारे यहाँ आयेंगे अवश्य, पर कल नहीं।

वैष्णव इस आशाके सहारे ही जीता है कि मेरे प्रभु आज नहीं तो पाँच—दस वर्षोंके बाद कभी तो आयेंगे ही। और नहीं तो कम-से-कम मेरे जीवनके अन्तकालमें तो आयेंगे ही।

सुलभा सोचती है कि पति संकोचवश आमंत्रण नहीं दे रहे हैं, किंतु मैं तो मनसे आमन्त्रित करूँगी।

अगले दिन विदुर और सुलभा बालकृष्णकी सेवा करते है। बालकृष्ण स्मित कर रहे हैं। विदुर और सुलभा भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं—

रथारूढो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः
स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिंधुर्बंधुः सकलजगतां सिंधु—सदयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

रथयात्राके समय मार्गमें इकट्ठे हुए ब्राह्मणवृन्दोंके द्वाराकी गई स्तुतिको सुनकर हर कदमके साथ जो द्रवित हो रहे हैं, वे दयाके सागर, अखिल ब्रह्माण्डके बन्धु और समुद्रपर कृपा करनेके हेतु, उसके तटपर निवास करनेवाले श्रीजगन्नाथ स्वामी सदा मेरे नेत्रोंके सम्मुख रहें।

हमेशा रथारूढ़ द्वारिकानाथके दर्शन करो।

भगवान् रथमें बैठकर जा रहे हैं।

जब तक जीव शुद्ध नहीं होता, तब तक परमात्मा उससे आँख नहीं मिलाते और जब चार आँखें एक न हों तब तक दर्शनमें आनन्द नहीं मिलता।

विदुर और सुलभा भी रथ देख रहे हैं। विदुरजी सोचते हैं कि मेरी ऐसी तो पात्रता नहीं है कि भगवान् मेरे घर आएँ किंतु क्या एक नजर मुझे देखेंगे तक नहीं? मैं पापी हूँ किंतु मेरे भगवान् तो पापीके उद्धारक हैं, पतितपावन हैं। उनके लिए मैंने सभी विषयोंका त्याग कर दिया है। नाथ, आपके लिए मैंने क्या-क्या न सहा? बारह वर्षोंसे मैंने अन्न नहीं खाया। क्या भगवान् मेरी ओर एक दृष्टि भी नहीं करेंगे? कृपा कीजिये। हजारों जन्मोंसे मैं आपसे जुदा रहा हूँ पर आज आपकी शरणमें आया हूँ।

लोगोंकी भीड़में-से रथ आगे बढ़ रहा था। प्रभुकी आँखें तो नीचेकी ओर देख रही थीं। विदुर—सुलभाने दर्शन किये। श्रीकृष्णने भी विदुरचाचाको देखा। विदुर कृतार्थ हो गए कि चलो मेरी ओर भी भगवान्ने दृष्टि की। भगवान्का दिल भी भर आया। दृष्टि प्रेमसे आर्द्र हो गई। भगवान्ने सोचा कि मेरे विदुर न जाने कबसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सुलभाको लगा कि मेरे प्रभु मेरी ओर देखकर ही हँस रहे थे। मेरे प्रभुने मेरी ओर देखा। भगवान् जानते हैं कि मैं विदुरकी पत्नी हूँ और इसीलिये उन्होंने मुझपर दृष्टिपात किया।

प्रभुने दृष्टिसे ही विदुरजीसे कहा कि मैं आपके घर आऊँगा किंतु अति आनन्दमें डूबे हुए सुलभा-विदुरजी भगवान्का संकेत समझ न पाये।

कृष्ण हस्तिनापुर गए। वहाँ धृतराष्ट्र और दुर्योधन प्रभुके स्वागतके लिए एक महीनेसे तैयारी कर रहे थे। प्रभुका आगमन हुआ। प्रभुने धृतराष्ट्र-दुर्योधनको बताया कि मैं द्वारिकाके राजाकी हैसियतसे नहीं, अपितु पांडवोंका दूत बनकर आया हूँ। पांडवोंका नाम सुनते ही दुर्योधनने भगवान्का अपमान कर दिया। दुष्ट दुर्योधनने भगवान्का अपमान करते हुए कहा कि भीख माँगनेसे राज्य नहीं मिलता। सुईकी नोकपर रखी जा सके उतनी भूमि भी मैं पांडवोंको नहीं दूंगा। मैं युद्धके लिए तैयार हूँ। उसने श्रीकृष्णकी एक न मानी। सन्धि करानेके प्रयत्नमें श्रीकृष्ण सफल न हो सके।

धृतराष्ट्रने भगवान्से कहा कि इन भाइयोंके झगड़ेसे आप दूर हो रहें। आपके लिए छप्पन भोग तैयार हैं, आरामसे भोजन कीजिए।

श्रीकृष्णने कहा कि तुम्हारे घरका अन्न खानेसे तो मेरी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी।

पापीके घरका अन्न खानेसे किसी भी व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट हो सकती है।

छप्पन प्रकारकी खाद्य-वस्तुएं भगवान्के लिए तैयार की गई थीं, फिर भी उन्होंने खानेसे इन्कार कर दिया। अन्य राजाओंने आशा की कि कृष्ण उनके घर भोजन करेंगे किंतु कृष्णने तो उनको और सभी ब्राह्मणोंको भी निराश कर दिया।

द्रोणाचार्यने तब पूछा कि आप सभीके आमन्त्रणसे इन्कार कर रहे हैं तो फिर कहाँ जाएँगे? भोजनका समय हो गया है। कहीं-न-कहीं भोजन तो करना ही पड़ेगा। यदि दुर्योधनके यहाँ भोजन करनेमें आपको कोई ऐतराज है तो आप मेरे घर चलिए।

भगवान्‌ने उनसे भी इन्कार कर दिया और कहा कि मेरा एक भक्त गंगा-किनारेपर रहता है, मैं उसीके घर जाऊँगा।

द्रोणाचार्य समझ गए कि हम वेदशास्त्र-सम्पन्न ब्राह्मण आज हार गए।

धन्य हैं विदुरजी !

भगवान्‌ने सोचा कि विदुरजी दीर्घकालसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं तो मैं आज उनके पास ही चला जाऊँ।

इस तरफ विदुरजी सोच रहे हैं कि मैं अभीतक अपात्र ही रह गया हूँ, अतः भगवान् मेरे घर नहीं आते।

आज सुलभाका हृदय भी बड़ी कातरता और आर्द्रतासे सेवा कर रहा है। वह भगवान्‌से प्रार्थना कर रही है कि मैंने आपके लिए सर्वस्वका त्याग कर दिया है, फिर भी आप नहीं आ रहे हैं। गोपियाँ सच कहती हैं कि कन्हैयाके पीछे जो लग जाता है उसीको वह रुलाता है। आपके लिए मैंने संसार-सुखको त्याग दिया, सर्वस्व आपके चरणोंमें रख दिया, फिर भी मेरे घर आपका आगमन क्यों नहीं हो रहा है ?

कीर्तन-भक्ति श्रीकृष्णको अतिप्रिय है। सूरदासजी भजन करते हैं तो श्रीकृष्ण आकर उनके हाथमें तम्बूरा देते हैं। सूरदासजी कीर्तन करते हैं और कन्हैया सुनता है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

भगवान् नारदसे कहते हैं कि न तो मेरा वैकुण्ठमें वास है और न तो योगियोंके हृदयमें। मैं तो वहीं पर रहता हूँ जहाँ मेरा भक्त प्रेमसे आर्द्र होकर मेरा कीर्तन करता है।

झोंपड़ीमें विदुर—सुलभा भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं। किंतु वे नहीं जानते कि जिसका वे कीर्तन कर रहे हैं, वह आज साक्षात् उनके द्वारपर खड़ा है।

मनुष्यका जीवन पवित्र होगा तो भगवान् बिना आमन्त्रण पाए भी उसके घर आएँगे। जो परमात्माके लिए जीता है, उसके घर परमात्मा स्वयं आते हैं।

बिना बुलाए ही भगवान् आज विदुरजीके द्वारपर आ खड़े हुए हैं। बाहर प्रतीक्षा करते हुए दो घंटे निकल गये। कड़ी भूख लग रही थी। भगवान् सोच रहे थे कि इनका कीर्तन कब समाप्त होगा ? विदुर-सुलभाका जीवन तो प्रभुके लिए ही था।

अन्तमें व्याकुल होकर श्रीकृष्णने झोंपड़ीका द्वार खटखटाया और कहा—चाचाजी ! मैं आ गया हूँ।

कीर्तन करो तो ऐसा करो कि भगवान् स्वयं आकर तुम्हारे घरका द्वार खटखटाएँ।

विदुरजीने कहा—देवी ! द्वारकानाथ आए हैं, ऐसा लगता है।

द्वार खोलनेपर चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। अति हर्षके आवेशमें विदुर-सुलभा आसन तक न दे सके, तो प्रभुने स्वयं अपने हाथोंसे दर्भासन बिछा लिया और विदुरजीको भी हाथ पकड़ कर पासमें बिठा लिया।

भगवान्‌ने कहा कि मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ खाना दो।

भक्ति इतनी सशक्त है कि वह निष्काम भगवान्‌को भी सकाम बना देती है। वैसे तो भगवान्‌को भूख नहीं लगती, किंतु भक्तके कारण ही उन्हें खानेकी इच्छा होती है।

विदुरजीने पूछा कि आपने दुर्योधनके घर भोजन नहीं किया क्या?

कृष्णने कहा—चाचाजी! जिसके घर आप नहीं खाते, वहाँ मैं भी नहीं खा सकता।

ईश्वर भूखे नहीं होते, ऐसा उपनिषद्‌का सिद्धान्त है। जीवरूपी पक्षी विषयरूपी फल खाता है, अतः दुःखी होता है। उपनिषद्‌का यह सिद्धान्त गलत नहीं है। ईश्वर नित्य आनन्द-स्वरूप हैं—भागवतका यह सिद्धान्त सच्चा है।

ईश्वर तृप्त हैं, किंतु जब किसी भक्तका हृदय प्रेमसे भर आता है तो वे निष्काम होनेपर भी सकाम बनते हैं। सगुण और निर्गुण एक है। निराकार साकार बनता है। ईश्वर प्रेमके भूखे हैं। अतः ज्ञानसे प्रेम श्रेष्ठ है। प्रेममें ऐसी शक्ति है कि वह जड़को भी चेतन बना देता है, निष्कामको सकाम बना देता है, निराकारको साकार बना देता है। वस्तुका परिवर्तन करनेकी शक्ति ज्ञानमें नहीं, प्रेममें ही है।

पति-पत्नी सोचने लगे कि भगवान्‌का स्वागत कैसे करें। वे दोनों तो तपस्वी थे और केवल भाजी ही खाते थे। उनको संकोच हो रहा था कि कृष्णको भाजी कैसे खिलायें? दोनोंको कुछ सूझ नहीं रहा था।

इतनेमें तो द्वारकानाथने चूल्हेसे भाजीका बर्तन उतार लिया और उसे खाने भी लगे।

स्वादिष्टता और मिष्टता वस्तुमें नहीं, प्रेममें है। शत्रुकी हलवा-पूरी भी विष-जैसी ही लगती है।

भगवान्‌को दुर्योधनके घरके मिष्टान्न अच्छे नहीं लगे, किंतु विदुरजीकी भाजी खाई।

अतः लोग आज भी गाते हैं—

सबसे ऊँची प्रेमसगाई ॥
दुर्योधनको मेवा त्यागो साग विदुर घर पाई ॥
जूठे फल शबरीके खाये बहुविधि प्रेम लगाई।
प्रेमके बस नृप-सेवा कीन्हीं आप बने हरि नाई ॥
राजसुयज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों तामें जूठ उठाई।
प्रेमके बस अर्जुन-रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई ॥
ऐसी प्रीत बढ़ी वृन्दावन गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लगि करौं बड़ाई ॥

शुकदेवजी कहने लगे—राजन्, संगका रंग मनको भी लगता है। मनुष्य जन्मसे ही भ्रष्ट नहीं होता। जन्मके समय तो वह शुद्ध होता है। बड़े होने पर वह जिसके संग रहता है, उसीका रंग उस पर लगता है। जैसा संग होगा, वैसे ही बनोगे। सत्संगसे जीवन उजागर होता है और कुसंगसे भ्रष्ट होता है।

सोचिए कि बालकका जब जन्म होता है तो उस समय तो वह निर्व्यसनी होता है। उसमें न तो कोई बुरी आदत होती है और न कोई अभिमान। बड़े होने पर जैसा संग मिलता है, वैसा ही उसका जीवन बनने-बिगड़ने लगता है।

आम्रवृक्षके चारों ओर बबूल लगाओगे तो आम नहीं मिलेंगे। विलासीका संग होगा तो मनुष्य विलासी हो जाएगा और विरक्तका संग होगा तो विरक्त। चाहे सब कुछ बिगड़ जाए किंतु मन-बुद्धिको मत बिगड़ने दो। दिल पर लगा दाग तीन जन्मोंमें भी शायद नहीं मिटेगा।

संगका रंग मनको लगता ही है। ज्ञान, सदाचरण, भक्ति, वैराग्य आदिमें जो महापुरुष तुमसे बढ़कर हों, उन्हींका आदर्श अपनी दृष्टिके समक्ष रखो। नित्य इच्छा करो कि भगवान् शङ्कराचार्य-सा ज्ञान, महाप्रभुजी जैसी भक्ति और शुकदेवजी जैसा वैराग्य मुझे भी मिले। प्रातःकालमें ऋषियोंको याद करनेसे उनके सद्गुण हमारे जीवनमें उतरते हैं। अपने-अपने गोत्रके ऋषिको भी याद करना चाहिए। आज तो लोगोंको अपने गोत्रका भी नाम मालूम नहीं है।

नित्य गोत्रोच्चारण करो। नित्य पूर्वजोंका वंदन करो। हमेशा सोचते रहो कि मुझे ऋषि-जैसा जीवन जीना है, ऋषि होना है, विलासी नहीं होना है।

राम भी रोज वसिष्ठजीको वन्दन करते हैं, उनका सम्मान करते हैं।

सांसारिक व्यवहार निभाते हुए ब्रह्मज्ञान निभाना और भक्ति करना कठिन है। संगका असर भी खूब होता है। चोरी और व्यभिचार महापाप माने गए हैं। ऐसा पाप करने वाला यदि अपना भाई भी हो तो उसे भी छोड़ दो।

किसी जीवका-तिरस्कार मत करो, पर उसके पापका तिरस्कार अवश्य ही करो।

धृतराष्ट्र जैसे दुष्ट व्यक्तिके संगसे मेरा जीवन भी भ्रष्ट हो जाएगा, यह सोचकर ही विदुरजीने गृहत्याग किया था और गंगातटपर रहकर भक्ति करते थे। भाजी खाकर ही वे संतुष्ट थे। इन्द्रिय-सुखमें फँसा मनुष्य भक्ति नहीं कर सकता। आहार ऐसा करो कि जो इन्द्रियोंको और जीवनको स्वस्थ रखे।

धृतराष्ट्रने विदुरजीके लिए वैसे तो बहुत कुछ भेजा था, किंतु उन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया था।

पापीके घरका कुछ भी खाया नहीं जाता। अन्न-दोष प्रभुके भजन-कीर्तनमें बाधक है।

भगवान् जब कृपा करते हैं तो धन-संपत्ति नहीं देते, किंतु सच्चे साधुका सत्संग करवा देते हैं। सत्संग ईश्वरकृपासे ही प्राप्त होता है, किंतु कुसंगमें न रहना तो अपने हाथकी बात है, अपने बसकी ही बात है। कुसंगका अर्थ है नास्तिकका संग, कामीका संग। पापीका संग मत करो।

आगे कथा आएगी कि विदुरजीने धृतराष्ट्र-दुर्योधनका त्याग किया और तीर्थयात्रा करने चले गये, क्योंकि वे कुसंगमें रहना नहीं चाहते थे।

जीव (मनुष्य) जब तक लौकिक सुखोंका त्याग नहीं करता है, तब तक प्रभुको उसके प्रति दया नहीं आती। सर्वस्वका त्याग करके विदुर-सुलभा परमेश्वरकी आराधना कर रहे थे, तप कर रहे थे।

तपश्चर्या करनेसे पाप जलते हैं। जीव शुद्ध होता है। गृहस्थका यही धर्म है कि वह वर्षके ग्यारह मास घर-गृहस्थीमें बिताये और एक मास किसी पवित्र तीर्थस्थानमें, एकान्तमें रहकर भगवान्‌की आराधना करे, तप करे। उस समय वह भक्ति-तपमें ही लगा रहे, अन्य प्रवृत्तियाँ छोड़ दे। जो भी काम करो, प्रभुके लिए ही करो। तप करनेसे परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

तपका प्रथम चरण है जिह्वापर अंकुश। जिस व्यक्तिकी आवश्यकताएं अधिक हैं वह कभी तप नहीं कर सकता। आजकल लोग अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते चले जा रहे हैं। परिणाम यह होता है कि सम्पत्ति और समयका व्यय इन्द्रियोंको बहलानेमें हो जाता है। मनुष्य, साधना तो करता नहीं है और ऊपरसे फरियाद करता है कि भगवान् दर्शन ही नहीं दे रहे हैं। भगवान् सुलभ नहीं, दुर्लभ हैं।

विदुरजीने परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए बड़ी भारी तपश्चर्या की थी और तभी भगवानको दया आयी कि मेरे इस भक्तने मेरे लिए कितने कठिन कष्ट उठाये हैं और वे बिना बुलाये ही विदुरजीके घर आ पहुँचे। विदुरजीका प्रेम ही ऐसा सच्चा था कि उनसे कुछ मांगनेकी स्वयं प्रभुकी भी इच्छा हुई।

जब भगवान्‌के हृदयमें हमसे कुछ माँगनेकी इच्छा जागे तभी समझो कि तुम्हारी भक्ति सच्ची है। जहाँ प्रेम है वहांसे माँगकर भी खाया जाता है। प्रेम हो तो कन्हैया मक्खन माँगेगा। जहां प्रेम न हो वहाँसे बिना माँगे मिलनेपर भी खानेकी इच्छा नहीं होगी। परमात्मा प्रेमके अधीन हो जाते हैं। जो ईश्वरके साथ प्रेम करनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिए कि वह जगत्‌के साथ अधिक प्रेम न करे। जगत्‌के प्रति न तो तिरस्कार करो और न उससे अधिक प्रेम करो। प्रेम करनेके लिए पात्र है केवल ईश्वर। उसीसे तुम अधिकसे अधिक प्रेम करो।

विदुरजीके घर परमात्माका आगमन हुआ। विदुरजी और सुलभाकी भावना तथा भक्ति सफल हो गयी। ठाकुरजीने उनके घरकी भाजीका भोजन किया।

सत्कार्य ऐसा करो कि बिना बुलाये भी भगवान् आनेकी इच्छा करें। मैत्री समान व्यक्तियोंमें होती है। जीव जो ईश्वरके समान बने तो उससे मिलनेके लिए भगवान् स्वयं आयेंगे।

प्रभुने धृतराष्ट्रके घरका पानी तक न पिया, सो कौरवोंका नाश हो गया।

शुकदेवजी राजाको कथा सुना रहे हैं।

दुर्योधनने पाण्डवोंका राज्य हड़प लिया। पाण्डवोंको वनवास मिला। वहाँसे लौटनेके बाद युधिष्ठिरने राज्यका अपना हिस्सा माँगा किंतु धृतराष्ट्र और कौरवोंने हिस्सा देनेसे इन्कार कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे संधि करानेके लिए आये किंतु कुरुराजने उनकी बात अनसुनी कर दी। फिर विदुरजीने भी धृतराष्ट्रको समझाया। विदुरजीने धृतराष्ट्रको जो न्याय और धर्मकी बातें समझाई थीं, वे विदुरनीति कहलाती हैं।

जो औरोंके धनका हरण करता है, वही धृतराष्ट्र है। जिसकी आंखें केवल रुपया-पैसा ही देखती हैं, वह आंखें होते हुए भी अन्धा ही है। पापी पुत्रपर प्रेम रखने वाला पिता धृतराष्ट्र है। उस युगमें तो शायद एक ही धृतराष्ट्र था, आज तो हजारों-लाखों हैं।

विदुरजी धृतराष्ट्रसे कहने लगे—दुर्योधन पापी है। वह तेरा पुत्र नहीं है, किंतु तेरा पाप ही पुत्रका रूप लेकर आया है।

कई बार अपना पाप ही पुत्रका रूप लेकर आता है और सताता है। शास्त्रने कहा है कि दुराचारी पुत्र माता-पिताकी दुर्गति करता है। सदाचारी पुत्र माता-पिताकी सद्गति करता है। दुराचारी पुत्रका सङ्ग छोड़ दो। मान लो कि यह मेरा पुत्र नहीं है किंतु मेरा पाप ही पुत्ररूपसे आया हुआ है। छोटे बच्चोंको पापका डर बताते रहनेसे वे मान जायेंगे। आजकलका युवक पापका डर नहीं रखता है, अतः वह मार भी खाता है।

विदुरजी कहते हैं—हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधन दुराचारी है। वह तेरे वंशका विनाश करनेके लिए ही आया है।

चोरी और व्यभिचार महापाप हैं। और सभी पाप क्षम्य हो सकते हैं, किंतु ये दोनों पाप क्षम्य नहीं हो सकते। कुछ चोर जेलकी हवा खाते हैं तो कई महल की। चोर कौन हैं ? जो स्वयं परिश्रम नहीं करता और पराया धन हड़प कर जाता है, वही चोर है। जिसका है उसे दिये बिना ही जो खाता है वह चोर है। किसीका कुछ भी मुफ्तमें मत खाओ। मेहनत किये बिना जो खाता है, वह चोर है। स्थितिपात्र होने पर भी जो अतिथियोंका भलीभाँति सत्कार नहीं करता वह भी चोर ही है। जो अपने लिए ही पकाता है और खाता है, वह भी चोर है। अग्निको आहुति दिये बिना जो खाता है वह चोर है। मुनाफाखोर भी चोर है। सोचो कि इनमेंसे तुम भी किसी प्रकारके चोर तो नहीं हो ?

धृतराष्ट्र ! दुर्योधन चोर है। प्रभु तो पाण्डवोंको ही राजसिंहासनपर बिठाएँगे क्योंकि प्रभुने उनको अपनाया है। धर्मराज तुम्हारे अपराधको क्षमा करनेको तैयार हैं।

धर्मराज अजातशत्रु हैं। भागवतने दो अजातशत्रु बताये हैं—एक तो धर्मराज युधिष्ठिर और दूसरे प्रह्लादजी।

धृतराष्ट्र ! तुम दुर्योधनका मोह छोड़ो, अन्यथा सारे कौरवकुलका विनाश होकर ही रहेगा।

दुर्योधन ऐसा दुष्ट था कि द्रौपदीके सौन्दर्यको देखकर जल रहा था।

शङ्कराचार्यजीने महाभारतके गीता, विष्णुसहस्रनाम, उद्योगपर्व और सनत्सुजातपर्व—इन अङ्गोंपर टीका रची है।

धृतराष्ट्र कहता है—भाई तेरी बात तो सच्ची है, किंतु मेरे पास दुर्योधनके आते ही मेरा ज्ञान गायब हो जाता है।

पापका पिता है लोभ और माता है ममता। लोभ और ममता ही पापकी प्रेरणा देते हैं।

सेवकोंने दुर्योधनको समाचार सुनाया कि विदुरचाचा आपके विरुद्ध बोल रहे थे। दुर्योधन आगबबूला हो गया और तुरन्त ही उसने विदुरचाचाको राजसभामें बुलाकर उनका अपमान किया।

यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा था कि हमेशाके लिए नरकमें किसे रहना पड़ता है। युधिष्ठिरने कहा था—आमन्त्रित करके, इच्छापूर्वक, दुर्बुद्धिसे किसीका अपमान करनेवालेको हमेशाके लिए नरकमें रहना पड़ता है।

दुर्योधन विदुरचाचासे कहता है—तुम दासीपुत्र हो। मेरा अन्न खाकर मेरी ही निन्दा करते हो? मेरे ही विरुद्ध काम करते हो।

विदुरजी तो ऐसे धीर-गम्भीर थे कि निन्दाको सहन कर लेते थे।

सभामें निन्दासे विचलित न होकर उसे सह ले वह सन्त है। समर्थ होते हुए भी जो सहे वह सन्त है। वह भगवान्का अवतार ही है।

वैसे तो विदुरजीमें इतनी तो शक्ति थी कि एक ही दृष्टिपातसे दुर्योधनको जलाकर भस्मीभूत कर दें, किंतु विदुरजीने अपनी इस शक्तिका उपयोग नहीं किया।

शक्तिका दुरुपयोग करने वाला दैत्य है। शक्ति, सम्पत्ति और समयका विवेकपूर्वक सदुपयोग करनेवाला देव बन सकता है।

कष्ट सहते रहोगे तो सन्त बनोगे। कुछ सासें ऐसी भी होती हैं जो अपनी बहुओंपर जुल्म ढाती रहती हैं। उनका कहना है कि बहूसे हम बड़ी हैं, अतः उनपर हुक्म चलानेका हमें हक है। हमेशा ऐसा सोचो कि बहू और सास एक समान हैं। सास बहूसे बड़ी नहीं है। किसी भी जीवको छोटा या हल्का मत समझो। जीव ईश्वरका ही स्वरूप है।

विदुरजीकी भाँति बारह वर्ष तप करोगे तो सहनशक्ति आयेगी। सात्त्विक आहार करनेवाला ही सहनशक्ति प्राप्त कर सकता है। विदुरजीने बारह वर्ष भाजीका ही भोजन किया। तुम कमसे कम बारह महीने भाजीपर रहोगे तो सहनशक्ति पाओगे। तेल-मिर्ची अधिक खानेवालेका स्वभाव भी मिर्च जैसा ही हो जाता है। अत्यधिक सहन करोगे तो सुखी होओगे। सहनशक्ति तब आती है जब आहार-विहार बहुत सात्त्विक हो। इस जीवका स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जो कुछ मिला है उतनेसे वह सन्तुष्ट नहीं होता। बुद्धि यदि ईश्वरमें स्थिर रखोगे, तुम सब कुछ सहन कर सकोगे और सन्तुष्ट भी हो सकोगे। विदुरजीने केवल भाजीमें ही सन्तोष माना और ईश्वरकी आराधना करते रहे।

अपमानसे विदुरजीको न तो दुःख हुआ और न ही ग्लानि। दुर्योधनने राजसभामें उनका अपमान किया, फिर भी वे क्रोधित नहीं हुए। विदुरजीने सिर्फ भाजी ही तो खायी थी न?

दुःख और क्रोधको पी जानेकी शक्ति, सात्त्विक आहारसे ही प्राप्त होती है। सुखी होना है तो कम खाओ और गम खाओ। मनुष्य सब कुछ खा जाता है, किंतु गम नहीं खा सकता, क्रोध नहीं पचा सकता।

तुम्हारी कोई निन्दा करे तो उसे शान्तिसे सह लो। उस समय ऐसा मान लो कि वह निन्दक मुझे मेरे दोषोंका भान करा रहा है, मेरे पाप धो रहा है। कुछ लोगोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि निन्दारसमें डूबे विना उनका खाना पचता ही नहीं है। इस दुनियाने किसीको नहीं छोड़ा, सभीकी निन्दा की। निन्दा करनेवालेपर क्रोध मत करो। ऐसा मानो कि इसमें भी प्रभुका ही कुछ संकेत है।

भगवान् बड़े दुःखसे कहते हैं कि मानवकल्याणके लिए मनुष्य-अवतार लेकर मैं इस धरतीपर आया था, फिर भी लोगोंने मेरी निंदा की। विदुरजी भी अपमानमें प्रभुकी कृपाका ही अनुभव करते हैं।

विदुरजीने सोचा कि दुर्योधन मेरी निन्दा नहीं कर रहा है, अपितु उसके अन्दर बसे हुए नारायण मुझे कौरवोंका कुसङ्ग छोड़नेका आदेश दे रहे हैं। कौरवोंका कुसङ्ग छोड़नेकी यह प्रभु-प्रेरणा है।

महापुरुष निन्दामें भी सारतत्त्व खोजते हैं। जो अच्छी वस्तुओंमें अच्छाई देखे, वह साधारण वैष्णव है, किंतु जो बुरी वस्तुओंमें भी अच्छाई देखता है, वह उत्तम वैष्णव है। प्रतिकूल परिस्थितिमें वैष्णव प्रभुके अनुग्रहका ही अनुभव करता है। भगवान्ने सोचा कि यदि कौरवोंके साथ ही विदुरजी रहेंगे तो कौरवोंका विनाश न हो सकेगा। इसलिए ही विदुरजीको वह स्थान छोड़नेकी प्रभुने प्रेरणा दी।

रामायणमें रावणने विभीषणका और भागवतमें दुर्योधनने विदुरजीका अपमान किया था। इस प्रकार सन्तोंका अपमान करनेके कारण ही उनका विनाश हुआ।

कुटुम्बमें कम-से-कम एक ही व्यक्ति पुण्यशाली हो तो उस कुटुम्बका नाश नहीं हो सकता, कोई उसका अहित नहीं कर सकता।

विदुरजीके जानेसे कौरवोंका सर्वनाश हुआ और विभीषणके जानेसे लङ्काके रावण और अन्य सभी राक्षसोंका संहार हुआ '

दुर्योधनने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस विदुरको धक्के मारकर बाहर निकाल दो: किंतु विदुरजी समझ-बूझकर पहले ही घरसे निकल गये। धनुष-बाण भी वहीं छोड़ गये। कौरवोंको इस प्रकार उपदेश दिया गया था कि पांडवोंके साथ धनुष-बाण लेकर मत लड़ो। अगर लड़ना ही हो तो वाणीसे लड़ो।

विदुरजी तीर्थयात्राके लिए चल पड़े। धृतराष्ट्र द्वारा भेजा गया धन उन्होंने लौटा दिया।

आवश्यकताएँ कम करते जाओगे तो पाप भी घटते रहेंगे और जरूरत बढ़ाओगे तो पाप भी बढ़ते ही रहेंगे। प्राप्त स्थितिसे असन्तोषका अनुभव ही मनुष्यको पाप करनेकी प्रेरणा देता है। इसीलिए तो कहा है कि पापका पिता असन्तोष और लोभ है।

जो पाप नहीं करता, वह पुण्य ही करता है।

विदुरजी छत्तीस वर्षकी यात्रा करने निकले किंतु अपने साथ उन्होंने कुछ भी नहीं लिया ; जबकि आजकलके लोग यात्रा करने निकलते हैं तो छत्तीस चीजें साथ लेकर चलते हैं। अपनी जरूरतकी लम्बी-लम्बी सूची बनाते हैं और उसमें-से कोई चीज बाकी न रह जाय, इसके लिए पूरी-पूरी कोशिश करते हैं।

यात्राका अर्थ है—याति त्राति। इन्द्रियोंको प्रतिकूल विषयोंसे हटाकर अनुकूल विषयोंमें लगा देना ही यात्रा है। तीर्थयात्रा उसीकी सफल होती है, जो तीर्थ जैसा ही पवित्र होकर वहाँसे लौटता है।

केवल यात्रा करनेसे ही पुण्य नहीं हो जाता। कई बार तो मनुष्य यात्रा करते-करते पापकी गठरी भी बाँधकर भी आता है। यात्रा विधिपूर्वक करनी चाहिए। विधिपूर्वक यात्रा करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है। यात्रा करनेके लिए निकलनेसे पहले प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा, कभी क्रोध न करूँगा, असत्य नहीं बोलूंगा, व्यर्थ भाषण नहीं करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् ही यात्राका आरम्भ किया जाय।

आजकल तो धन-सम्पत्ति बढ़ जानेपर धनिक लोग यात्राके नामपर घूमने-फिरने निकल पड़ते हैं। इस तरह तो कौआ भी काशी-मथुराका चक्कर लगा लेता होगा।

तीर्थोंके सच्चे साधु-सन्तों-ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवालोंको तीर्थयात्राका पुण्य प्राप्त नहीं हो सकता। साधु-सन्तोंके प्रति सद्भाव न हो तो तीर्थयात्रा विफल रहती है। गुरु शब्दका अपभ्रंश है गोर। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो गोरको पत्र लिखकर सूचना देते हैं कि हम इतने व्यक्ति यात्राके लिए आ रहे हैं, इसलिए भोजन आदिकी व्यवस्था कर देना। तीर्थके गोर आपके नौकर नहीं हैं।

तीर्थस्थानमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए। वहाँ कुल्ले करना और साबुन लगाकर नहीं नहाना चाहिए।

महाप्रभुजी दुःखसे कहते हैं कि अतिशय विलासी और पापी लोग तीर्थस्थानोंकी ओर जाने लगे और वहाँ रहने भी लगे। यही कारण है कि तीर्थस्थानोंकी महिमा लुप्त होने लगी।

जब विदुरजी यात्रा करने गए तो साथमें क्या ले गए थे? कुछ नहीं। केवल कौरवोंका पुण्य ही साथमें ले गए थे।

सः निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो।

कौरवोंका पुण्य साथ ले गए क्योंकि उन्होंने विदुरजीका अपमान किया था, निंदा की थी।

तुम्हारी कोई निन्दा करे, अपमान करे और तुम उसे सह लोगे तो तुम्हारा पाप उस निन्दकके पास जाएगा और उसका पुण्य तुम्हें मिलेगा।

तीर्थमें जाओ तो उस दिन अनशन करो। ब्राह्मणोंका अपमान मत करो। सच्चे साधु-सन्त-ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे तीर्थयात्रा विफल रहती है। अनशन करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है, पाप जल जाते हैं और सात्त्विकभाव जाग्रत होता है।

विदुरजी प्रत्येक तीर्थमें अनशन करते थे और विधिपूर्वक स्नान करते थे। यात्रा किस प्रकार की जाय. इस विषयमें विदुरजी कहते हैं—

गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽध शयनोऽवधूतः।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ (भा० ३-१-१६)

पृथ्वीपर वे अवधूत-वेषमें परिभ्रमण करते थे जिससे स्नेही-सम्बन्धी उन्हें पहचान न सकें। शरीरका शृङ्गार भी करते न थे। वे अल्पमात्रमें बिलकुल पवित्र भोजन करते थे। शुद्ध वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, भूमिपर ही शयन करते और भगवान् जिनसे प्रसन्न हो सकें ऐसे व्रत करते थे।

संत तीर्थको पावन करते हैं। भरद्वाज मुनि स्नान करनेके लिए आते थे तो गङ्गाजी पच्चीस सीढ़ियाँ ऊपर आ जाती थीं। गङ्गाजीको ज्ञात था कि और लोग तो अपने पाप मुझे देनेके लिए आते हैं, जब कि भरद्वाज मुनि तो मुझे पावन करनेके लिए आते हैं।

अति सम्पत्ति अनर्थका मूल है। इसी कारण भगवान्‌ने सुवर्णकी द्वारिका जलमें डुबा दी थी।

द्वारिकामें भगवान्‌की मूर्त्ति मनोहर है, उसका स्वरूप अद्भुत है। देखते रहनेपर भी मन तृप्त नहीं होता। द्वारकाधीशका दर्शन लोगोंको अवश्य करना चाहिए।

काशीका माहात्म्य भी अधिक है। काशीके प्रमुख देव हैं भैरवनाथ।

विश्वेशं माधवं ढुंढिं दंडपाणिं च भैरवम् ॥

इस श्लोकका नित्य पाठ करनेसे काशीवासका फल मिलता है। काशीमें नव मास रहनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। काशीके मणिकर्णिका घाटपर यह श्लोक लिखा हुआ है—

मरणं मंगलं अत्र।
सफलं जीवनं अत्र ॥

शिवजी ज्ञानके मुख्य देव हैं। काशीमें ज्ञान शीघ्र ही सिद्ध होता है। ज्ञान पाना चाहते हो तो तुम्हें श्मशानमें रहना पड़ेगा। श्मशान ज्ञान-भूमि है। श्मशानमें रहनेकी नहीं, उसे सदा याद करते रहनेकी आवश्यकता है। दिनमें तीन-चार बार श्मशानको याद करते रहोगे तो बुद्धिमें परिवर्तन होगा। कल्पना करो कि तुम काशीमें ही रहते हो। यहाँ बैठकर मनसे ही गङ्गास्नान करो। कलियुगमें तो मनसे सत्कर्म करनेवालेको भी पुण्य मिलता है।

तीर्थक्षेत्रोंमें गयाजी (पितृगया) प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ अनेक श्राद्ध करने होते हैं। प्रथम श्राद्ध फल्गुके किनारे किया जाता है और अन्तिम श्राद्ध अक्षयवट तले करना होता है कि जहाँ करारविन्द तथा पादारविन्दवाले बालकृष्ण निवास करते हैं। श्राद्धक्रिया करानेवाला पुरोहित किसी एक वस्तुका त्याग करवाता है और भगवान्‌से कुछ माँगनेको कहता है।

पहले कुछ त्याग किया जाय फिर उसके बाद ही कुछ माँगा जाय। जो भगवान्‌के लिए कुछ त्याग कर सकता है, उसे ही उनसे माँगनेका अधिकार मिलता है। अधिकतर लोग अपनी जिस वस्तुसे रुचि न हो, उसे ही छोड़नेकी प्रतिज्ञा करते हैं। खाने-पीनेकी सामान्य चीज छोड़नेकी प्रतिज्ञा अधिकतर लोग करते हैं किंतु इस तरह साग-सब्जी या फल आदिके त्यागसे कोई लाभ नहीं होगा। यदि पाप और विकारका त्याग करोगे तो लाभ होगा। ऐसा कहो कि काशी विश्वनाथके दर्शन करके मैंने काम छोड़ दिया और गोकुल-मथुराकी यात्रामें क्रोधको त्याग दिया। एक-एक तीर्थमें एक-एक पाप छोड़ दो। एक-एक त्याग करो। प्रभुके लिए अति प्रिय वस्तुका त्याग करोगे तो वे प्रसन्न होंगे।

काशी ज्ञानभूमि है। अयोध्या वैराग्यभूमि है। व्रज प्रेमभूमि है। व्रजरजमें कृष्णप्रेम भरा हुआ है।

नर्मदाका किनारा तपोभूमि है। "रेवातीरे तपः कुर्यात्।" नर्मदाके किनारेपर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति, तीनों सिद्ध हो सकते हैं।

तीर्थमें क्रोध मत करो। तीर्थमें ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका पालन करोगे तभी तीर्थयात्राका फल मिलेगा।

यात्रा करते हुए विदुरजी यमुना-किनारे वृन्दावन आये। ठाकुरजीकी कृपासे तुम्हें समय मिल सके तो चार मास वृन्दावनमें रहकर प्रभु-भजन करो।

कन्हैया व्रजमें नंगे पाँव घूम रहा था। यशोदाने समझाया कि नंगे पाँव वनमें घूमनेसे काँटे-कङ्कड़ चुभ जायँगे, इसलिए पगरखा पहनकर जा। तो कन्हैयाने कहा कि गायोंकी सेवा करनेके लिए ही तो मैं आपके घर आया हूँ। गत जन्ममें मैं राजाके घरमें राम बनकर जन्मा था तो मुझे किसीने गौसेवाका अवसर ही नहीं दिया। इसलिए मैंने सोचा कि अब भविष्यमें मैं किसी गोपालके घर जन्म लूंगा और गौसेवा करूँगा। जब वे पाँच वर्षके बालक थे, तभीसे गायोंको खिलानेके बाद खानेका उनका नियम था, कन्हैयाने कहा कि मेरी गायोंके पैर भी तो खुले ही हैं तो फिर मैं ही कैसे पगरखे पहन सकता हूँ ?

लालाके यों तो कई नाम हैं, किंतु एक वैष्णवने कहा है कि मुझे तो गोपालकृष्ण नाम ही बड़ा पसन्द है। कृष्ण व्रजमें खुले पाँव फिरते हैं, अतः व्रजरज अति पावन है। द्वारिकामें तो राजा थे, अतः खुले पाँव घूम नहीं सकते थे।

विदुरजी व्रजके कृष्ण-रमणसे पवित्र रजमें लोटते हैं। रमण-रेतीमें गोपियोंकी भी चरण-रज है। विदुरजी कृष्णकी मङ्गलमय लीलाओंका चिंतन करते हैं। यमुनाके किनारे लौकिक बातें करना पाप है। यह भूमि अतिशय पवित्र है, श्रीकृष्ण यहाँ गायें चराने आते थे। व्रजकी लीला नित्य है। भागवतके प्रमुख टीकाकार श्रीधर स्वामीने कहा है कि भगवान्‌का नाम, लीला, स्वरूप, धाम परिकर नित्य हैं। आज भी भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें प्रतिदिन लीला करते हैं।

भगवान् कहते हैं कि जगत्‌के किसी भी स्त्री, पुरुष, जड़ या चेतन वस्तुमें आनन्द नहीं है। तुम मेरे पास आओ। मैं ही आनन्दरूप हूँ।

श्रीकृष्ण आनन्दरूप हैं।

विदुरजीने अनुभव किया कि मेरे श्रीकृष्ण गायोंको लेकर यमुनाके किनारे आये हैं। यह कदम्बका वृक्ष है। वैष्णव इसे टेर कदम्ब कहते हैं। कदम्बपर झूलते हुए श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं और अपनी प्यारी गायोंको बुलाते हैं कि हे गङ्गी, हे गोदावरी आओ। विदुरजीकी ऐसी भावना थी कि वे लीलाको प्रत्यक्ष देखें। अतः उन्हें यह सब अनुभव हुआ।

गायोंके बीचमें खड़े हुए गोपालकृष्णका ध्यान करो। ऐसे कृष्णका ध्यान करनेसे तन्मयता शीघ्र प्राप्त होती है।

इन्द्रियोंका विवाह परमात्माके साथ करो, विषयोंके साथ नहीं।

भगवान्‌का एक नाम है हृषीकेश। उसका अर्थ है—हृषीक माने इन्द्रिय और ईशका अर्थ है स्वामी। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। ये पाँच इन्द्रियाँ सच्चे पति नहीं हैं। इन्द्रियाँ पति होना चाहती हैं। संसारका कोई भी रूप जबतक आँख देखती रहेगी, तबतक नींद नहीं आती। इसका अर्थ यह है कि रूप आँखका पति नहीं है।

विदुरजी सोचते हैं कि मेरी अपेक्षा ये पशु श्रेष्ठ हैं, जो परमात्मासे मिलनेके लिए आतुर होकर दौड़ते हैं। गायें भी कृष्ण-मिलनके लिए व्याकुल हैं। धिक्कार है मुझे कि अभी तक मुझमें कृष्णमिलनकी तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं हुई है। गायें दौड़ती हैं और मैं पत्थर-सा बैठा हुआ हूँ। उनकी आँखें प्रेमाश्रुसे गीली हो गयीं। ऐसा प्रसङ्ग कब आयेगा कि मैं भी इन

गायोंकी भाँति कृष्णमिलनके लिए दौड़ लगाऊँगा। वे कृष्णलीलाका चिंतन करते हुए कृष्णप्रेममें पागल हो गये हैं, अति तन्मय हो गये हैं।

किसी भी तरह जगत्को भूल जाओ और प्रभुप्रेममें तन्मय हो जाओ। सभी साधनोंका यही रहस्य है। विरह जब अतिशय तीव्र होता है, तभी परमात्मासे मिलन होता है।

प्रभु उस समय प्रभासमें थे। उद्धवको ज्ञानका उपदेश दिया। भागवत धर्मका उपदेश दिया। फिर उद्धवसे बदरिकाश्रम जानेको कहा। तो उद्धवने कहा कि अकेले जानेमें मुझे डर लगता है, आप भी मेरे साथ चलिए।

जीव ईश्वरको अपने पास ही रखे तो वह कभी भयभीत नहीं होगा।

उद्धवको भागवतधर्मका उपदेश मिला, फिर भी उसका मन शान्त न हो सका। वह भगवान्से कहता है कि मैं अकेला तो कैसे जा सकता हूँ। हम दोनों साथ ही जायेंगे।

मात्र निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान कुछ अधिक उपयोगी नहीं हो सकता है। सगुण ब्रह्मका सहारा लेकर ही निर्गुण ब्रह्मको पहचानना है।

श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि मैं क्षेत्रज्ञ रूपसे तेरे साथ ही हूँ। मैं तुझमें समाया हुआ हूँ। मेरा स्मरण करनेपर उसी क्षण मैं उपस्थित हो जाऊँगा। तो उद्धवजीने प्रार्थना की कि बिना किसी आधारके भावना नहीं कर सकता। मुझे कुछ आधार दीजिये, तब श्रीकृष्णने उसे अपनी चरण-पादुका दी। उद्धवने मान लिया कि अब द्वारकानाथ मेरे साथ ही हैं। अब मैं अनाथ नहीं, सनाथ हूँ। ये पादुकायें नहीं, प्रत्यक्ष प्रभु ही मेरे साथ हैं। उद्धवजीका प्रभुके प्रति प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि भगवान्की पादुकामें भी वे प्रभुका ही दर्शन करते हैं। उन्होंने अपने मस्तकपर पादुकायें रख लीं।

मस्तक बुद्धिप्रधान है। इसपर प्रभुको बिठलानेसे तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं घुसेगा।

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्, उद्धवजी बदरिकाश्रम जा रहे थे। उनको मार्गमें यमुनाजी और व्रजभूमिके दर्शन हुए। मेरे ठाकुरजीकी यही तो लीला है।

तीर्थस्थानमें मात्र स्नान करनेसे मन पूरा शुद्ध नहीं होता। वहाँ बसे हुए किसी भजनानन्दी सन्तका सत्सङ्ग करनेसे मन और अधिक शुद्ध होता है।

उद्धवजीने सोचा कि मैं यहाँ कुछ दिन रहूँगा और किसी सन्तका, किसी वैष्णवका सत्सङ्ग करूँगा। वे निश्चय करते हैं कि कोई प्रभुका लाड़ला वैष्णव मिलेगा, तभी मैं बोलूंगा अन्यथा मौन रहूँगा।

वृन्दावनमें अनेक साधु आज भी राधा-कृष्णकी गुप्त लीलाओंका दर्शन करते फिरते हैं। यमुना-किनारे रमणरेतीमें विदुरजी बैठे थे। दूरसे उद्धवजीने उन्हें देखकर सोचा कि लगता है कि कोई वैष्णव बैठा हुआ है और उसका हृदय कृष्णप्रेमसे भरा हुआ है। समीप जानेपर उद्धवजीने पहचान लिया कि ये महान् भगवद्भक्त विदुरजी हैं और उन्होंने विदुरजीको वन्दन किया। उसी समय विदुरजीने आँखें खोलीं और उद्धवजीसे कहा कि यह ठीक नहीं है कि आप मुझे वन्दन करें। विदुरजीने उद्धवजीको प्रणाम किया।

संतोंका मिलन भी कैसा मधुर होता है –

चार मिले चौंसठ खिले,
बीस रहे कर जोड़।
हरिजनसे हरिजन मिले,
बिहँसे सात करोड़॥

चार—चार आँखें; चौंसठ—चौंसठ दाँत। बीस—हाथ-पैरकी अँगुलियाँ; सात करोड़—सात कोटि रोम—शरीरमें सात करोड़ रोम (रोंगटे) होते हैं। हरिजनका अर्थ है हरिके लाड़ले।

विदुरजी और उद्धवजीका दिव्य सत्संग हुआ।

मनुष्य सत्संगमें जितना समय बिताता है, उतना ही वह सही अर्थमें जिया है। संतोंके मिलनमें केवल परमात्माकी ही चर्चा होती है। संतसे मिलन होने पर तुम अपनी लौकिक बातें मत करो।

यमुनाजीको आनन्द हो रहा है कि ये भक्त आज मेरे प्रभुकी लीलाका वर्णन करेंगे। मेरे श्रीकृष्णकी बातें करेंगे। मेरे श्यामसुन्दरका गुणानुवाद करेंगे, लीलागान करेंगे मैं अपने कृष्णकी लीलाओंका वर्णन सुनूँगी। यमुनाजी शांत, गम्भीर हो गयीं। उन दो भक्तोंने प्रथम बाललीला, फिर पौगंडलीला, प्रौढ़लीला आदि सारी लीलाओंका वर्णन संक्षेपमें किया।

उद्धवजी कहते हैं—मुझे प्रभुने प्रभासमें भागवतधर्म उपदेश देकर बद्रिकाश्रम जानेकी आज्ञा दी थी। आपके दर्शनसे मुझे बहुत आनन्द हुआ है।

विदुरजी कहते हैं—जिस भागवतधर्मका उपदेश आपको भगवान्‌ने दिया था, वह मैं सुनना चाहता हूँ। मैं जातिहीन और कर्महीन हूँ किंतु आप जैसे वैष्णव तो दयाके सागर होते हैं। भगवान्‌ने थोड़ी-सी कृपा मुझ पर की थी। आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। मैं अधम हूँ। फिर भी जो उपदेश आपको प्रभुने दिया था, मैं आपसे श्रवण करनेकी इच्छा रखता हूँ। आप कृपया मुझे सुनाइये।

उद्धवजी कहते हैं कि आप साधारण मानव नहीं हैं।

मनुष्य जब तक दीन और नम्र नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान्‌को नहीं भाता। जहाँ भी दृष्टि पहुँचे, वहाँ श्रीकृष्णके दर्शनकी भावना करोगे, तभी दैन्यभाव आएगा।

विदुरजी आपसे और तो क्या कहूँ? जब मुझे उपदेश दिया था, तब मैत्रेयजी वहाँ बैठे थे। भगवान्‌ने जब स्वधामगमन किया, उस समय उन्होंने वसुदेव, देवकी, रुक्मिणी सत्यभामा आदि किसीको भी याद नहीं किया किंतु आपको तीन बार याद किया था। वे मुझसे कहते थे कि मुझे अपने विदुरकी याद आ रही है। वह मुझे नहीं मिला। एक बार जो भाजी मैंने उसके घर खाई थी, उसका स्वाद मैं अभी तक नहीं भूल पाया। वह भाजी मुझे आज भी याद आती है।

भगवान् जिसको अपना कहें और अपना मानें, उसका बेड़ा पार ही है।

साधारण व्यवहारमें कोई किसीसे नहीं कहता कि तू मेरा है। जीव मन्दिरमें जाकर भगवान्से कहता है कि मैं तेरा हूँ और घर लौटकर अपनी पत्नीसे कहता है कि मैं तेरा हूँ। मन्दिरमें जो भगवान्का था वह घर आनेपर किसी औरका हो गया। इसीलिए भगवान् न तो प्रसन्न होते हैं और न तो कहते हैं कि तू मेरा है। मन्दिरमें जो भगवान्का था, वह घर लौटने पर यह भी भूल गया कि वह किसका है।

भगवान्को वैसे तो कई मनुष्य कहते हैं कि हम आपके हैं किंतु ऐसा कोई नहीं कहता कि मैं केवल आपका ही हूँ और अन्य किसीका नहीं हूँ।

कृष्ण तवाऽस्मि न चास्मि परस्य।

जगत्में जब तक मनुष्य किसी अन्यका है, तबतक वह भगवान्का नहीं हो सकता। भगवान् जिसे अपना समझें, वह मायाके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान्से हररोज प्रार्थना करो कि आप एक बार कह दें कि तू मेरा है। भगवान् जब कहें कि तू मेरा है, तभी सच्चा ब्रह्म सम्बन्ध होता है।

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझ-जैसे कामीको अपना कहनेमें रामजीको लज्जा होती है। आप राजाधिराजके आँगनमें पड़ा हुआ कुत्ता हूँ मैं तो। मुझे अपने आँगनमें पड़ा रहने दीजिए। मुझे अपनाइए।

तुलसी कुत्ता रामका, मोतिया मेरा नाम,

कण्ठे डोरी प्रेमकी, जित खींचो उत जाम।

मैंने आपकी पट्टी गलेमें बाँध ली है। मैं पापी हूँ, फिर भी आपका हूँ। मैं कुत्ता हूँ किंतु रामजीका। परमात्माने मुझे अपनाया है।

परमात्मा जब आपको अपना लें, तब उन्हें जो काम पसन्द आएँ वे ही काम करो।

भोगमें सन्तोष मान लो किंतु भगवान्के भजनमें कभी सन्तुष्ट मत होओ। भक्तिमें जो सन्तोष मान लेता है, वह प्रभुके मार्गमें कभी आगे नहीं बढ़ सकता। भक्ति ऐसी करो कि भगवान् तुम्हें स्मरण करे, भगवान्को तुम्हारी याद सताए।

भगवान्ने विदुरजीको तीन बार याद किया था।

विदुरजी उद्धवजीसे पूछते हैं कि क्या मुझे सचमुच भगवान्ने याद किया था?

उद्धवजी कहते हैं—आप बड़े भाग्यशाली हैं। भगवान्ने आपको एक बार नहीं, तीन-तीन बार याद किया था। उन्होंने यह भी कहा कि सभीको मैंने कुछ-न-कुछ दिया है किंतु विदुरजीको मैं कुछ न दे सका। इसलिए मैत्रेयजीको उन्होंने आज्ञा दी कि—जब विदुरजी तुमसे मिलें तो उन्हें इस भागवतधर्मका ज्ञान देना।

इस बातको सुनकर विदुरजीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली। प्रेमसे विह्वल होकर वे रो पड़े।

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम्।
ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः॥

भा. ३-४-३५

परम भक्त उद्धवजीके मुखसे भगवान्के प्रशंसनीय कार्योंकी बात तथा प्रभुके अन्तर्ध्यान होनेके समाचार सुनकर तथा परमधाम जाते समय भी प्रभुने मुझे याद किया, ऐसा जानकर और उद्धवजीके चले जानेसे विदुरजी प्रेमविह्वल होकर रोने लगे।

उद्धवजी बद्रिकाश्रम गए और विदुरजी मैत्रेय ऋषिके आश्रमको जानेके लिए निकले। यमुनाजीने कृपा करके विदुरजीको भक्तिका दान दिया। यमुनाजीने नवधा भक्ति दी। ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति दृढ़ भी नहीं होती और सफल भी नहीं होती। ज्ञान और वैराग्यका दान गङ्गाजी करती हैं।

विदुरजी गङ्गाके किनारे मैत्रेय ऋषिके आश्रममें आये। गङ्गाजीकी बड़ी महिमा है। विदुरजीने गङ्गाजीमें स्नान किया। गङ्गाजीके किनारेके ये पत्थर भाग्यशाली हैं क्योंकि मैत्रेय ऋषि जैसोंके चरणोंका उन्हें स्पर्श-लाभ होता रहा है। इन पत्थरों पर वैष्णवोंकी चरणरज गिरती रही है।

विदुरजी सोचमें डूबे हुए हैं कि जातिहीन होनेसे मुझे मैत्रेय ऋषि उपदेश देंगे या नहीं। मैं जातिहीन अवश्य हूँ, किंतु कर्महीन नहीं हूँ। मैं पापी हूँ, अधम हूँ किंतु परमात्माने मुझे अपनाया है। अतः मैत्रेय ऋषि मुझे अवश्य उपदेश देंगे।

भक्ति-मार्गकी श्रेष्ठताका यही कारण है कि जबतक परमात्माका प्रत्यक्ष मिलन न होने पाये, तबतक मुक्त ऐसा ही मानता है कि मेरे ही दोषके कारण मिलन नहीं हो रहा है। भक्तिसे दैन्यकी उत्पत्ति होती है। ज्ञान-मार्गमें योगी ब्रह्मरूप होने लगता है, किंतु अभिमान आनेके कारण बहुतोंका पतन भी होता है।

आश्रममें आकर विदुरजीने मैत्रेयजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया है। उनके विनय-विवेकसे सभीको आनन्द हुआ।

मैत्रेय ऋषि कहते हैं—विदुरजी, मैं आपको पहचानता हूँ। आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आप तो यमराजके अवतार हैं। मांडव्य ऋषिके शापके कारण दासीपुत्रके रूपमें शूद्रके घर आपका जन्म हुआ था।

एक बार कुछ चोरोंने राजकोषसे चोरी की। चोरी करके वे भागने लगे। राजाके सेवकोंको इस चोरीका समाचार मिला, तो उन्होंने चोरोंका पीछा किया। राजाने सैनिकोंको पीछे आते हुए देखकर चोर घबड़ा गए। चोरीके मालके साथ भागना मुश्किल था। इतनेमें रास्तेमें मांडव्य ऋषिका आश्रम आया। तो चोरोंने चुराई हुई वह सारी धन-सम्पत्ति उसी आश्रममें फेंक दी और भाग खड़े हुए। राजाके सैनिक पीछा करते हुए आश्रममें आये। वहाँ राजकोषसे चुराई गई सारी धन-सम्पत्तिको देखकर उन्होंने मान लिया कि यह मांडव्य ऋषि ही चोर हैं। उन्होंने ऋषिको पकड़ा और धन-सम्पत्तिके साथ राजाके समक्ष उपस्थित कर दिया। राजाने देहान्त-दण्ड दिया।

अब मांडव्य ऋषिको वधस्तम्भ पर खड़ा कर दिया गया। वे वहीं पर गायत्री मन्त्रका जाप करने लगे। मांडव्य मरते ही नहीं हैं। ऋषिका दिव्य तेज देखकर राजाको लगा कि यह तो कोई तपस्वी महात्मा लगते हैं। राजा भयभीत हो गया। ऋषिको वधस्तम्भसे नीचे उतारा गया। सारी बात जानकर राजाको दुःख हुआ और पश्चात्ताप होने लगा कि मैंने निरपराध ऋषिको शूली पर चढ़ाना चाहा। मांडव्य ऋषिसे क्षमा करनेके लिए प्रार्थना की।

मांडव्य ऋषि कहते हैं—राजन्, तुम्हें तो मैं क्षमा कर दूँगा, पर यमराजसे पूछूँगा कि मुझे ऐसा दंड क्यों दिया? मैंने कोई पाप नहीं किया, फिर भी मुझे ऐसा दंड क्यों दिया? मैं यमराजको क्षमा नहीं कर सकता।

जिसने पाप किए हों, उसे डर लगता है। पापीको यमराज क्रूर लगते हैं।

मांडव्य कहते हैं—मुझ निष्पापको सजा क्यों? मैं उस न्यायाधीश यमराजको दंड दूंगा।

अपने चारित्र्य पर कैसा अटल विश्वास? भरतखंडका एक पवित्र संत आज न्याया-धीशसे ही उत्तर माँगने जा रहा है।

यमराजकी सभामें आकर ऋषिने यमराजसे पूछा कि जब मैंने कोई भी पाप नहीं किया है तो भी मुझे शूलीपर क्यों चढ़ाया गया? शूलीपर लटकानेकी सजा मुझे मेरे कौन-से पापके लिए दी गई?

यमराज घबड़ा गए। उन्होंने सोचा कि यदि कहूँगा कि भूल हो गई तो ये मुनि मुझे शाप दे देंगे। अतः उन्होंने ऋषिसे कहा कि जब आप तीन बरसके थे, तब आपने एक तितलीको काँटा चुभोया था, उसी पापकी यह सजा दी गई है।

जाने या अनजाने जो भी पाप किया जाय, उसका दंड भुगतना ही पड़ता है। भगवान् पापको नहीं स्वीकार करते। पुण्यके उपभोगकी इच्छा न करें तो कोई बात नहीं किंतु पाप तो भोगना ही पड़ेगा।

पुण्य कृष्णार्पण हो सकता है, पाप नहीं। पाप तो भोगना ही पड़ेगा। अन्यथा पापका नाश नहीं हो सकता।

लोग शामको दूकानसे घर लौटते समय मन्दिरमें जाते हैं और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं—सारे दिनमें जो कुछ झूठ बोला हूँगा, किसीको ठगा होगा, जो कुछ भी कुकर्म किए होंगे, वे सभी तुम्हें अर्पित करता हूँ -

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥

काया, वाचा और मनसे जो किया जाय अर्थात् इनसे जो पुण्य किया जाय, वह प्रभुको अर्पण करना है। पुण्ण समर्पित हो सकता है, पाप नहीं। भगवान् पाप नहीं लेते। सामान्य सरकार पुरस्कार वापस लेती है किंतु किसीको दी गई सजा वापस नहीं लेती।

भगवान् कहते हैं कि यह कैसा मूर्ख व्यक्ति है जो मुझे अपने पाप अर्पित करने चला है। परमात्माको हमेशा पुण्य समर्पित करो। सदा यही सोचो कि पापकी सजा मैं सह लूंगा और ठाकुरजीको पुण्य अर्पित करूँगा।

ठाकुरजीको सर्वोत्तम वस्तु अर्पित करनी चाहिए। इसका नाम ही भक्ति है, भगवान्को पुण्य ही समर्पित किए जाने चाहिए।

मांडव्य ऋषिने यमराजसे कहा—शास्त्रकी आज्ञा है कि यदि अज्ञानावस्थामें कोई मनुष्य कुछ पाप कर दे तो, उसका उसे स्वप्नमें दंड दिया जाए। मैं बालक था अतः अबोध था। इसलिए उस समय किए गए पापकी सजा तुम्हें मुझे स्वप्नमें ही देनी चाहिए थी। तुमने मुझे अयोग्य प्रकारसे दंड दिया है। अतः मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हारा जन्म शूद्रयोनिमें होगा।

इस प्रकार मांडव्य ऋषिके शापके कारण यमराजको विदुरजीके रूपमें दासीके घर जन्म लेना पड़ा।

देवसे भूल होने पर उसे मनुष्य बनना पड़ता है और मनुष्य भूल करे तो उसे चार पगवाला पशु बनना पड़ता है। पापी मनुष्य पशु बनता है।

विदुरजी कहते हैं कि—एक बार मुझसे भूल हो गई तो मुझे देवसे मनुष्य बनना पड़ा और अगर अब भी मैं असावधान रहा तो मुझे पशु बनना पड़ेगा।

फिर इसके बाद मैत्रेयजीसे विदुरजीने अनेक प्रश्न पूछे—भगवान् अकर्ता हैं, फिर भी कल्पके आरम्भमें इस सृष्टिकी रचना उन्होंने कैसे की? संसारमें सभी लोग सुखके लिए प्रयत्न करते हैं, फिर भी न तो उनका दुःख दूर होता है और न तो उन्हें सुख मिलता है। ऐसा क्यों? इन प्रश्नोंका उत्तर मिले, ऐसी कथा कीजिए और भगवान्की लीलाओंका वर्णन कीजिए।

मैत्रेयजीने कहा—सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा भागवतमें बार-बार आती है। तत्त्विक दृष्टिसे जगत् मिथ्या है। अतः साधुओंने उसका अधिक विचार नहीं किया है किंतु सृष्टिके कर्ताका बार-बार विचार किया है।

परमात्माको मायाका स्पर्श हुआ सो उसने संकल्प किया कि मैं एकसे अनेक बनूं। एकोऽहम् बहु स्याम्। पुरुषमेंसे प्रकृति, प्रकृतिमेंसे महत् तत्त्व, महत् तत्त्वमेंसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारके चार प्रकार हैं। फिर पंचतन्मात्रासे पंच महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई। किंतु ये तत्त्व स्वयं कुछ भी क्रिया नहीं कर सकते थे, अतः ईश्वरने हरेक वस्तुमें प्रवेश किया।

उपनिषद्में कहा है कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुने प्रवेश किया है अतः सारा जगत् परमात्माका मंगलमय स्वरूप है।

भगवान्की नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ। उसमेंसे ब्रह्मा प्रकटे। ब्रह्माजीने कमलका मुख खोजनेका प्रयत्न किया तो चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। ब्रह्माजीने उनका स्तवन किया।

संतति और संपत्ति भगवत्कृपाका फल नहीं है, प्रारब्धका फल है। भगवान् जिस पर कृपा करते हैं, उसका मन शुद्ध होता है। बिना मनःशुद्धिके ईश्वरका दर्शन नहीं होता। ईश्वरके दर्शनके बिना जीवन सफल नहीं होता।

जिसने मुझे जन्म दिया उसीको जाननेका मैंने प्रयत्न भी नहीं किया। मेरे-जैसा मूर्ख और कौन होगा ?

ब्रह्माजीको डर लगा कि संसारमें आने पर इन्द्रियाँ कहीं गलत रास्ते पर न चली जाएँ।

ब्रह्माजीने सृष्टिका निर्माण किया। कामको जन्म दिया। कामने प्रथम पिताको मोहित किया।

प्रथम हुए स्वायंभु मनु और शतरूपा रानी। उस समय पृथिवी तो रसातलमें डूबी हुई थी। ब्रह्माने सोचा कि प्रजाका निर्माण तो करूँ, किंतु उसे बसाऊँ कहाँ ? अतः नासिकामेंसे वराह भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने पृथ्वीको पानीमें-से बाहर निकाला। रास्तेमें हिरण्याक्षको मारा और पृथ्वीका शासन मनुके हाथमें सौंपकर भगवान् स्वधाम लौट गये।

विदुरजीने कहा कि आपने तो बहुत संक्षिप्त कथा सुनाई। इस कथाका रहस्य क्या है ? वह हिरण्याक्ष कौन था ? धरती रसातलमें क्यों डूबी थी ? वराहनारायणका चरित्र मुझे सुनाइए।

यह कथा मैत्रेयजीने विदुरजीको सुनाई थी और शुकदेवजीने परीक्षितको।

दिति कश्यप ऋषिकी धर्मपत्नी थीं। एक दिन सायंकालको दिति शृंगार करके पतिके पास आई और कामसुखका उपभोग करनेकी इच्छा प्रकट की, क्योंकि वह कामातुर हो गई थी।

कश्यपने कहा—देवी, यह समय सायंकालका है, यह समय कामसुखके लिए उपयुक्त नहीं है। इस समय कामाधीन होना ठीक नहीं है। जाओ, दीपक जलाओ।

शास्त्रमें कहा गया है कि सौभाग्यवती स्त्रीमें लक्ष्मीका अंश है। सायंकालके समय लक्ष्मीनारायण घर आते हैं। उस समय घर बन्द होगा तो लक्ष्मीजी 'जय श्रीकृष्ण' कहती हुई वापस लौट जाएँगी। आज-कल तथाकथित सुधरे हुये लोग खास करके शामको ही ताला लगाकर बाहर निकल पड़ते हैं। घूमने जाना हो हो तो सूर्यास्तके पहले घरमें लौट आना चाहिए। स्त्रियोंको चाहिए कि शामको घरके बाहर भटकती न फिरें। सन्ध्या समय तुलसीकी पूजा करो और वहाँ दीपक जलाओ। भगवान्के आगे धूपदीप जलाओ।

मनुष्यके हृदयमें अन्धकार है। वहाँ प्रकाश जलाना है।

दशम स्कन्धमें कथा है। गोपियाँ यशोदाजीसे फरियाद करती हैं कि कन्हैया हमारा माखन चुराकर खा जाता है। तो यशोदा कहती हैं कि अँधेरेमें माखन रखा करो कि जिससे कन्हैया उसे देख ही न पाए। गोपियाँ कहती हैं कि माखन तो अँधेरेमें ही रखा था किंतु कन्हैयाके आते ही वहाँ उजियारा छा गया।

ईश्वर परप्रकाशी नहीं है, वह तो स्वयंप्रकाशी है। परमात्माको दीपककी आवश्यकता नहीं है। दियेकी जरूरत तो मानवको है।

सायङ्काल सूर्य और चन्द्रके तेज क्षीण होते हैं। दुर्बल होते हैं। सूर्य बुद्धिका स्वामी है और चन्द्र मनका। मन और बुद्धिके स्वामी सूर्य-चन्द्रके सायङ्कालमें दुर्बल होनेके कारण मन और बुद्धिमें काम उस समय प्रवेश पा जाता है। काम मनमें साँझकी बेलामें प्रवेश करता है और रात्रिको प्रकट होता है। सन्ध्याकालमें प्रभुके नामका जप करोगे तो मनमें कामका प्रवेश नहीं हो पाएगा।

कश्यप ऋषि दितिको समझाते हैं कि मानिनी मान जाओ। भगवान् शङ्कर इस समय जीवमात्रको निहारनेके लिए भ्रमण करते हैं। अतः इस समय स्त्रीसङ्ग करनेसे शङ्कर भगवान्‌का अपमान होगा और अपमानके कारण अनर्थ होगा। शङ्कर भगवान् देख लेंगे तो दण्ड देंगे।

'भस्मांतम् शरीरम्।' इस शरीरका अन्तमें तो भस्म ही होगा। अतः शिवजी भस्म लगाते हैं और जगत्‌को वैराग्यका बोध कराते हैं। शरीरका अतिशय लालन न करो। हमेशा याद रखो कि इस शरीरको एक-न-एक दिन श्मशानमें ही जाना है। गृहस्थाश्रम विलासके लिए नहीं है किंतु मर्यादामें रह कर, विवेकसे कामसुखका उपभोग करके कामका विनाश करनेके लिए है, वैराग्यके लिए है। नियमपूर्वक कामके विनाशके लिए यह गृहस्थाश्रम है। काम ऐसा दुष्ट है कि एक बार हृदयमें प्रवेश करनेके बाद वह बाहर निकलता ही नहीं है। एक बार कामके अन्दर प्रविष्ठ होने पर तुम्हारा सारा सयानापन हवा हो जाएगा। अतः जीवन ऐसा सादा और पवित्र बनाओ कि मन-बुद्धिमें प्रवेश करनेका अवसर काम कभी पा ही न सके।

उल्लुओंकी एक सभामें प्रस्ताव पास किया गया कि सूर्यनारायणका अस्तित्व है ही नहीं, क्योंकि वे हमें दिखाई नहीं देते। उल्लू सूर्यको देख न सके तो क्या इसका अर्थ यह है कि सूर्यका अस्तित्व ही नहीं है ? धर्ममें आस्था न रखनेवाले, ईश्वरको न माननेवाले इसी उल्लूके बड़े भाई ही हैं।

दितिकी भेद-बुद्धिमें-से ही इन हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका जन्म हुआ है। सभीमें मेरे नारायणका वास है, ऐसा अभेदभाव रखोगे तो पाप नहीं होगा।

दितिने कश्यपकी बात न मानी और कश्यप भी दितिके दुराग्रहके आगे झुक गए। अन्तमें दितिको अपनी क्षतिका भान हुआ। वह पछताई। उसने कश्यपकी पूजा की और भगवान् शिवजीसे क्षमायाचना की।

कश्यपने कहा कि तुम्हारे गर्भसे दो राक्षस उत्पन्न होंगे।

पति और पत्नी उचित संयमका पालन न करें तो उनसे पापी प्रजाकी उत्पत्ति होती है। पवित्र दिवस जैसे कि दोनों पक्षोंकी दूज, पंचमी, अष्टमी एकादशी, चौदस, पूर्णिमा अमावस्या तथा पर्वोंके दिन ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करें। लोग कहते हैं कि काल बिगड़ गया है अतः पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है। वैसे काल भी कुछ-कुछ बिगड़ा तो है ही किंतु लोगोंका दिल ज्यादा बिगड़ गया है। एकादशी, पूर्णिमा या पवित्र दिनोंका विचार किए बिना ही कामांध हो जाते हैं। अतएव पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है।

कामको हृदयमें प्रवेश करनेका अवसर ही न दिया जाये। एक बार कामका हृदयमें प्रवेश हो गया कि सयानापन निरर्थक हो जाता है।

दितिने भी कामांध होनेके कारण ही सयानापन गँवा दिया था।

मनुष्य केवल इस शरीरका ही विचार करेगा तो भी उसके हृदयमें शरीर-सुखके प्रति तिरस्कार उत्पन्न होगा और वैराग्यके भावों की उत्पत्ति होगी। यह शरीर कैसा है ? इसमें हड्डियाँ टेढ़ी-तिरछी बिठा दी गई हैं। उस पर मांस रख दिया गया है और फिर त्वचासे मढ़

दिया गया है। अतः अन्दरकी चीजें नहीं दीखतीं। अन्यथा रास्तेमें पड़े हुए हड्डीके टुकड़ेको कोई छुएगा भी नहीं। वह सोचेगा कि उसे छूनेसे शरीर अपवित्र हो जाएगा किंतु वही मनुष्य देहमें छिपी हुई हड्डियोंसे प्रेम करता है। ऐसी मूर्खता दूसरी और क्या होगी ?

भागवतमें एक स्थानपर कहा गया है कि यह शरीर तो कुत्ते और लोमड़ीका भोजन है। अग्निसंस्कार न हो तो इसे कुत्ते ही खाएँगे। ऐसे शरीरका मोह छोड़ो।

जब दितिने जाना कि उसके गर्भसे राक्षस उत्पन्न होंगे तो वह घबड़ा गई। तब कश्यपने कहा कि उनका संहार करनेके लिए भगवान् नारायण आएँगे। तो दितिने कहा कि तब तो मेरे पुत्र बड़े भाग्यशाली होंगे।

कश्यपने दितिको ऐसा भी आश्वासन दिया कि तेरा पौत्र महान् भागवत-भक्त और महान् वैष्णव होगा और प्रह्लाद नामसे जगत्में विख्यात होगा।

जो ठाकुरजीका सेवा-स्मरण अकेला करे, वह साधारण वैष्णव है। किंतु जिसके संगसे दूसरोंको भी ईश्वरकी सेवा और स्मरण करनेकी प्रेरणा मिले और इच्छा जागे वह महान् वैष्णव है।

भक्तोंने एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्यजीसे कहा कि हमें वैष्णवका लक्षण बताइए। तो महाप्रभुजीने कहा कि जो ठाकुरजीकी सेवा करे वही वैष्णव है। भक्तोंने कहा कि यह बात तो हम भी जानते हैं। हमें कुछ विशिष्ट लक्षण बताइए। तो महाप्रभुजीने कहा कि महान् वैष्णव वह है कि जिसके संगमें आनेवालेको ठाकुरजीकी सेवासे प्रीति हो जाय और उसपर भी कृष्ण-भक्तिका रंग लग जाय।

प्रह्लाद महान् वैष्णव हैं।

प्रह्लादके संगमें आनेवाले पर भी भक्तिका रंग लग जाता था। तुम्हारी संगत करनेवाले पर भक्तिका रंग न लगे तो मानो कि तुम्हारी भक्ति अभी कच्ची ही है। किंतु दूसरोंको सुधारनेकी तकलीफमें पड़नेकी साधारण मनुष्यको कोई जरूरत नहीं है। तुम अपना ही मन शुद्ध कर लो बस, यही काफी है।

व्यसन जैसा कोई पाप नहीं है। जो व्यसनको पराजित कर सकता हैं वही भक्ति कर सकता है। आजकल तो फैशन और व्यसनमें ही समय और संपत्तिका व्यय किया जाता है। व्यसनके पीछे पागल बना हुआ व्यक्ति भगवान्की सेवा नहीं कर सकता। वैष्णव तो वह है कि जो निर्व्यसनी हो। जो भगवान्की आराधना करना चाहता है, उसे लौकिक व्यसनसे प्रीति नहीं करनी चाहिए। जिसे ईश्वरकी आराधना करनी है उसे चाहिए कि वह फैशन और व्यसनमें न फँसे। व्यसन हो तो एक ही हो और वह व्यसन हो कृष्णभक्तिका।

विद्याव्यसनम् अथवा हरिपादसेवनम् व्यसनम्।

तुकाराम महाराजको भक्तिका ऐसा ही व्यसन था। उनकी आँखोंको ऐसी आदत पड़ गई थी कि जहाँ भी उनकी नजर जाती, वहाँ उन्हें मुरलीमनोहरका स्वरूप दिखाई देता था।

भक्ति व्यसनरूप हो जाएगी तो तुम्हें मुक्ति दिलाएगी। भक्ति व्यसन-सी हो जाती है तो तुरन्त मुक्ति मिलती है।

राज्यशासनसे समाज नहीं सुधरता। संत ही सद्भावके द्वारा उसे सुधार सकते हैं। प्रह्लादके सङ्गमें जो भी आए, उन सभीका उन्होंने कल्याण किया।

दिति गर्भवती हुई। उसने सोचा कि मेरे पुत्र देवोंको कष्ट देंगे, अतः इनका जन्म शीघ्र न हो। इस विचारसे दितिने सौ वर्षों तक गर्भ धारण किए रखा। सूर्य-चंद्रका तेज क्षीण होने लगा। देव घबड़ाए। वे ब्रह्माजीके पास आए और उनसे पूछा कि दितिके गर्भमें कौन हैं? उन्हें ब्रह्माजीने, दितिके गर्भमें जो थे, उनकी कथा सुनाई। ब्रह्माजी बोले कि—

एक बार मेरे मानसपुत्र सनकादि ऋषि घूमते-फिरते वैकुण्ठ-लोकमें गए।

अंतःकरण चतुष्टयके शुद्ध होने पर ही ईश्वरके दर्शन होते हैं। ईश्वरदर्शन करनेके लिए जाते समय इन चारोंको शुद्ध करके जाओ। अंतःकरणके चार विभाग (प्रकार) हैं। अंतःकरण जब संकल्प-विकल्प करता है, तब उसे मन कहा जाता है, वह जब किसी वस्तुका निर्णय करता है तब उसे बुद्धि कहते है, श्रीकृष्णका चिंतन करने पर उसे चित्त कहते हैं और उसमें जब क्रियाका अभिमान जगता है, तब उसे अहंकार कहते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारोंको शुद्ध करो। बिना इन चारोंको शुद्ध किए परमात्माके दर्शन नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्यके बिना इन चारोंकी शुद्धि नहीं होती। ब्रह्मचर्य तभी सिद्ध होता है जबकि ब्रह्मनिष्ठा सिद्ध होती है।

सनत्कुमार ब्रह्मचर्यके अवतार हैं। वे महाज्ञानी हैं फिर भी बालक जैसे दैन्यभावसे रहते हैं।

सनत्कुमार आदि नारायणके दर्शन करनेके लिए वैकुण्ठमें जाते हैं।

काम और काल वैकुण्ठमें प्रवेश नहीं पा सकते। जहाँ बुद्धि कुण्ठित होती है, वह वैकुण्ठ है। वैकुण्ठके वृक्ष और पुष्प दिव्य हैं। छः ऋतुएँ सखियाँ बनकर उस धामकी सेवा करती हैं। वहाँ सात बड़े-बड़े किले हैं, जिन्हें लाँघकर जाना पड़ता है।

दक्षिणमें रंगनाथका मन्दिर इस वर्णनके आधारपर ही बनाया गया है।

सनत्कुमारोंको अलौकिक वैकुण्ठधामका दर्शन हो रहा है। यहाँ भ्रमर भी प्रेमसे ईश्वरके गुणगान करते हों, ऐसा लगता है। वे भ्रमर गुन-गुन कर रहे हैं। मानों श्रीकृष्णका दर्शन-कीर्तन ही कर रहे हों। वैकुण्ठमें विषमता नहीं है। यहांके पार्षद भगवान्-जैसे हैं और दासियाँ लक्ष्मीजी जैसी हैं। पार्षद भी शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज हैं।

ईश्वर जब कुछ प्रदान करने लगते हैं तब वे देनेमें कुछ भी संकोच नहीं करते। भगवान् जब देते हैं तब लेनेवाला लेते-लेते थक जाता है। मनुष्य आखिर कितना ले सकता है?

ईश्वरकी राजसभामें विषमता नहीं है। तुम भी भोजन आदिमें विषमता मत करो। कई सेठ घरमें तीन प्रकारके चावल रखते हैं—नौकरानीके लिए अलग, साधु-बाबाओंको देनेके लिए अलग और स्वयंके खानेके लिए दिल्लीके बासमतीके चावल। इस तरह तीन प्रकारके चावल रखते हैं। ऐसा भेद कभी नहीं रखना चाहिए। सबके लिए समान भावसे एक ही तरहका भोजन पकाओ। हमारी माताएँ परोसनेमें बड़ी चतुर हैं। अपनी या अपनोंकी रोटीपर कुछ ज्यादा घी लगाती हैं।

भोजनमें विषमता मत करो। विषमता करनेवालेको संग्रहणीका रोग होता है। विषमता ही वैरको उत्पन्न करती है, विषमता करनी ही पड़े तो सद्भावसे करो। व्यवहारमें संपूर्ण समानता नहीं होती। वैकुण्ठमें विषमता नहीं होती। लक्ष्मीजी भी वैकुण्ठमें प्रमाद नहीं करतीं। वहाँ लक्ष्मीजी स्वयं सेवा करती हैं, झाड़ू बुहारती हैं।

शुकदेवजी कथा नहीं कर रहे अपितु वे लक्ष्मीनारायणका दर्शन कर रहे हैं। प्रतिबिंबको देखनेसे बिंबका मोह होता है। तब बिंबको देखनेसे कितना आनन्द होता होगा? वैष्णव भाग्यशाली हैं कि वे प्रतिबिंबको देख सकते हैं। भगवान् अपना बिंब नहीं देख सकते। कन्हैया दर्पणमें अपना प्रतिबिंब देखता है। कन्हैया यशोदाजीसे कहता है कि यह बालक बहुत सुन्दर है, मैं उसके साथ खेलना चाहता हूँ। माता समझाती है कि वह कोई और बालक नहीं है। वह तो तेरा ही प्रतिबिंब है। अपने प्रतिबिंबका दर्शन करनेसे जब भगवान् स्वयं मुग्ध हो जाता है तो गोपियाँ बिंबका दर्शन करके भान भूल जायें, उसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है?

सनत्कुमार वैकुण्ठके छः द्वार पार करके सातवें द्वारपर आए। वहाँ जय-विजय खड़े थे। सनत्कुमार भगवान्के प्रासादमें प्रवेश कर ही रहे थे कि भगवान्के द्वारपाल जय और विजयने उन्हें रोका।

सनत्कुमारोंने कहा कि हम तो माता और पिता—लक्ष्मी और नारायणसे मिलने जा रहे हैं।

सनत्कुमार कौपीनधारी थे। कौपीनका अर्थ केवल लँगोटी नहीं हैं। जितेन्द्रिय ही कौपीनधारी हैं।

भगवान्का दर्शन करनेके लिए जितेन्द्रिय होकर ही जाना पड़ता है।

द्वारपालोंने सनत्कुमारोंसे कहा कि अंदरसे आज्ञा मिलने पर हम आपको प्रवेश करने देंगे। तब तक आप यहीं रुकिए। सनत्कुमार यह सुनकर क्रोधित हो गए।

क्रोध कामानुज—कामका छोटा भाई है। अति सावधान रहनेपर कामको तो मारा जा सकता है किंतु उसके छोटे भाई क्रोधको मारना कठिन है। कामका मूल संकल्प है। ज्ञानी किसी औरके शरीरका चिंतन नहीं करते अतः काम उन्हें पीड़ा नहीं दे पाता। ज्ञानी पुरुषका पतन काम द्वारा नहीं; क्रोधके कारण ही होता है।

छः द्वार पार करके ज्ञानी पुरुष आगे बढ़ता है किंतु सातवें द्वार पर जय-विजय उसे रोकते हैं।

योगके सात प्रकारके अंग ही वैकुण्ठके सात द्वार हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा। इन सातों द्वारोंको पार करनेके बाद ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। योगके इन सातों अंगोंको सिद्ध करने पर वैकुण्ठमें प्रवेश मिलेगा।

ध्यानका अर्थ है एक अंगका चिंतन। शरीर और आँखको स्थिर रखना ही आसन है। धारणाका अर्थ है सर्वांगका चिंतन। धारणामें अनेक सिद्धियाँ विघ्न डालती हैं। सर्वांगका दर्शन ही धारणा है। साधकको जीवनकी अंतिम साँस तक सावधान रहनेकी जरूरत है। जय-विजय प्रतिष्ठाके दो स्वरूप हैं। सर्वांगके चिंतनमें सिद्धि-प्रसिद्धि बाधा उपस्थित करती हैं। सिद्धिके मिलने पर प्रसिद्धि होती है। सेवामें प्रमाद करनेवालेका पतन होता है।

जय अर्थात् स्वदेशमें प्रतिष्ठा और विजय अर्थात् परदेशमें विजय।

जगत् मेरे लिए क्या कहेगा, इसकी चिंता मत करो, किंतु जगदीश्वर क्या कहेंगे, उसीका ख्याल रखो। जो लौकिक प्रतिष्ठामें फँसता है, वह परमात्मासे दूर हो जाता है।

भगवान्‌के राजमहलके सातवें द्वारपर जीवको जय और विजय रोकते हैं।

जय-विजयका अर्थ है कीर्ति और प्रतिष्ठा। कीर्ति और प्रतिष्ठाका मोह मनुष्य नहीं छोड़ सकता। वह घरका नाम तो रखता है अशोकनिवास, किंतु वह अशोकभाई कबतक उसमें बने रहेंगे? घरको ठाकुरजीका नाम दो। घरपर भी नाम है और कथामें बैठनेके लिए रखे हुए आसनपर भी नाम है। घर और आसनपर लिखे हुए ये नाम कितने दिन तक रह पाएँगे? घरका मोह छूटता है, किंतु प्रतिष्ठाका मोह नहीं छूट पाता।

शिष्य कुछ प्रशंसा कर देते हैं तो गुरु मानने लगता है कि वह ब्रह्मरूप हो गया। सो सेवा-स्मरणकी वह धीरे-धीरे उपेक्षा करने लगता है और वह पतित हो जाता है।

मनुष्यका मन नामरूपमें फँसा हुआ है। नाम और रूपका मोह जबतक न छूट पाये तबतक भक्ति नहीं हो सकती। मन श्रीकृष्णके रूपमें फँस जाये, तभी मुक्ति मिलती है। प्रतिष्ठाका मोह आया नहीं कि भगवान्‌को द्वारपरसे ही वापस लौट जाना पड़ता है।

क्रोध करनेसे सनत्कुमारोंको प्रभुके सातवें द्वारसे वापस लौटना पड़ा किंतु उनका क्रोध सात्त्विक था। वे द्वारपाल भगवान्‌के दर्शनमें बाधा उपस्थित कर रहे थे, अतः वे क्रोधित हुए। अतः भगवान् अनुग्रह करके द्वारपर आये और सनत्कुमारोंको दर्शन दिया किंतु वे भगवान्‌के राजमहलमें तो प्रवेश पा ही न सके।

महाप्रभुने इस चरित्रकी समाप्ति करते हुए कहा है—ज्ञानीके लिए ज्ञान-मार्गमें अभिमान विघ्नकर्त्ता है। अभिमानके मूलमें यही क्रोध है। कुछ अज्ञानावस्थामें मरते हैं तो कुछ लोग ज्ञानी होकर अभिमानवश होकर मरते हैं। ब्राह्मणको शिक्षा न मिले तो वह अज्ञानी रहता है और शिक्षा कुछ अधिक पा ले तो कभी-कभी अभिमानी होकर भी मरता है।

कर्म-मार्गमें विघ्नकर्त्ता काम है। कश्यप और दितिके मार्गमें कामने ही बाधा डाली थी। कामसे कर्मका नाश होता है।

भक्ति-मार्गमें लोभ बाधक बनता है। लोभ भक्तिका नाश करता है।

ज्ञान-मार्गमें क्रोध विघ्न करता है। सनत्कुमारके मार्गमें क्रोधने ही बाधा डाली। क्रोधसे ज्ञानका नाश होता है।

देहदृष्टिसे काम उत्पन्न होता है। ज्ञानीके मार्गमें काम बाधा नहीं डालता किंतु क्रोध बाधा डालता है।

इन तीनोंके कारण पुण्यका लय (क्षय) होता है। विवेकसे काम नष्ट होता है, किंतु क्रोधको नष्ट करना कठिन है।

एकनाथजी महाराजने भावार्थ-रामायणमें लिखा है कि कामी और लोभीको तो कुछ न कुछ तात्कालिक लाभ हो सकता है, किंतु क्रोध करनेवालेको तो कभी कुछ भी लाभ नहीं हो सकता, इतना ही नहीं, उसके पुण्यका क्षय भी हो जाता है।

वल्लभाचार्यजीने इस चरित्रकी समाप्तिमें कहा है—

कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनम्।
लोभेन भक्तिनाशः स्यात् तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत् ॥

इसी कारणसे ही गीताजीमें काम, क्रोध, लोभको नरकद्वार कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ (गी. अ. १६ श्लोक ११)

भक्ति-मार्गमें लोभ विघ्नरूप है। मनुष्य भगवान्के लिए अथवा दान देनेके लिए घटियासे घटिया वस्तुओंका उपयोग करता है। पुत्रके लिए कपड़े बनवाने हों तो सात या सत्रह रुपये मीटरवाला कपड़ा ले आता है और ठाकुरजीके वस्त्र-शृङ्गार बनवाने हों तो दो-तीन रुपये मीटरवाला कपड़ा ढूँढ़ता है। एक गृहस्थ बाजारमें ठाकुरजीके लिए फूल लेने जाता है। माली कहता है कि गुलाबके फूलकी कीमत चार आना है। तो ग्राहक कहता है कि कनेरका फूल ही दे दो, क्योंकि मेरे भगवान् तो भावनाके भूखे हैं किंतु जब पत्नी कहती है कि मेरे लिए एक अच्छी-सी वेणी (सिरमें लगानेके लिए फूलोंका गजरा) ला दो तो बहुत-सा खर्च करके भी वह अच्छी मनपसन्द वेणी ले आता है।

सत्यनारायणकी कथा करानी हो तो वह दो सौ रुपयेका पीताम्बर पहनकर बैठता है और जब ठाकुरजीको वस्त्र-परिधान करनेका प्रसङ्ग आता है तो वह कहेगा कि वह कलावा (डोरी विशेष) कहाँ है ? वही लाओ। भगवान् कहते हैं कि बेटे मैं सब समझता हूँ। मैं भी तुझे एक दिन लँगोटी ही पहनाऊँगा। मैंने तेरी लँगोटीके लिए डोरी ही रख छोड़ी है।

ऐसा नहीं करना चाहिए। भगवान्को उत्तमोत्तम वस्तु अर्पित करो।

'२५२ वैष्णवनकी वार्ता' में जमनादास भक्तका एक दृष्टांत है। एक बार वे ठाकुरजीके लिए फूल लेनेके लिए बाजारमें निकले। मालीकी दूकानपर एक अच्छा-सा कमल देखा। उन्होंने सोचा कि आज अपने ठाकुरजीके लिए यही सुन्दर कमल ले जाऊँ। उसी समय वहाँ एक यवनराज आया जो वेश्याके लिए फूल लेना चाहता था। जमनादास भक्तने उस कमल-फूलकी कीमत पूछी तो मालीने कहा कि पाँच रुपये हैं इसकी कीमत। तो यवनराजने बीचमें ही कह दिया कि मैं इस फूलके लिए दस रुपये दूँगा। तू यह फूल मुझे ही दे। तो उस जमनादास भक्तने कहा कि मैं पच्चीस रुपये देनेको तैयार हूँ। फूल मुझे ही देना। इस प्रकार फूल लेनेके लिए दोनोंके बीच होड़-सी लग गई।

यवनराजने दस हजारकी बोली लगाई तो भक्त जमनादासने कहा कि एक लाख। वेश्याके लिए यवनराजको वैसा कोई सच्चा प्रेम नहीं था, केवल मोह था। उसने सोचा कि मेरे पास लाख रुपये होंगे तो कोई दूसरी स्त्री भी मिल ही जाएगी पर उधर जमनादास भक्तके लिए तो ठाकुरजी ही सर्वस्व थे। उनका प्रभुप्रेम सच्चा था, शुद्ध था। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेच दी और लाख रुपयेमें वह कमलफूल खरीदकर श्रीनाथजीकी सेवामें अर्पित कर दिया। फूल अर्पित करते ही श्रीनाथजीके सिरसे मुकुट नीचे गिर गया। इस प्रकार भगवान्ने बताया कि भक्तके इस फूलका वजन मेरे लिए अत्यधिक है।

सनत्कुमार क्रोधित हुए, अतः उनका पतन हुआ। प्रभुके द्वार तक पहुँच कर उन्हें वापस लौटना पड़ा।

मन और बुद्धि पर कभी विश्वास मत करो। वे बार-बार दगा दे जाते हैं। अपनेको निर्दोष माननेके समान दोष और कोई नहीं है।

काम-क्रोध अन्दरके विकार हैं। वे बाहरसे नहीं आते। सनत्कुमारोंका क्रोध बाहरसे नहीं आया है। अवसर मिलते ही ये विकार बाहर आ जाते हैं। अतः मन पर सत्संगका. भक्तिका अंकुश रखो। सतत ईश्वर-चिंतन करनेसे अंदरके विकार शान्त हो जाते हैं।

सनत्कुमारोंने क्रोधित होकर जय-विजयको शाप दिया कि राक्षसोंमें ही विषमता होती है। तुम दोनोंके मनमें भी विषमता है। अतः तुम राक्षस हो जाओ।

मन्दिरमें थोड़ा-सा पाप किया जाय तो वह भी महापाप ही होता है। सनत्कुमारोंने तो वैकुण्ठमें क्रोध किया।

शुकदेवजी सावधान करते हैं— राजन् ऐसा पाप कभी मत करना।

सनकादिक ऋषियोंने शाप दिया कि दैत्यकालमें तुम्हें तीन बार जन्म लेना पड़ेगा। भगवान्‌ने सोचा कि इन्होंने मेरे आँगनमें ही पाप किया है, अतः वे घरमें आनेके पात्र नहीं हैं। इन्होंने अभी तक क्रोधपर विजय नहीं पाई है। अतः वे मेरे धाममें आनेकी पात्रता गँवा चुके हैं। मैं बाहर जाकर उन्हें दर्शन दे आऊँ।

सनकादिकोंको अन्दर प्रवेश न मिल सका। यदि वे अन्दर जा सके होते तो फिर बाहर आनेका प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता, कारण भगवान्‌का परमधाम तो है—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते।"

भगवान्‌ने लक्ष्मीजीसे कहा कि लगता है कि बाहर कुछ झगड़ा हो रहा है। वे दोनों बाहर आए। ठाकुरजीने सनत्कुमारोंकी ओर नहीं देखा। आज नजर धरती पर है।

अपने द्वारा किए हुए पापोंके लिए सच्चे हृदयसे जीव जब तक पछताए नहीं, तब तक ठाकुरजी दर्शन नहीं देते।

अगर खुदा नजर दे

तो सब खुदाकी है।

लोग अपनेको वैष्णव कहलाते हैं किंतु पाप करना नहीं छोड़ते। स्वदोष-दर्शन—यह ईश्वरदर्शनका फल है। सनत्कुमार वन्दन करते हैं किंतु प्रभुजीने उनकी ओर नहीं देखा। दोनों ऋषि भगवान्‌से क्षमायाचना कर रहे हैं। प्रभुने कहा कि भूल तुमसे नहीं हुई। तुम्हारा अपमान मेरा अपमान है।

ब्राह्मण भगवान्‌को प्रिय हैं क्योंकि वे भगवान्‌की पहचान कराते हैं। भगवान् कहते हैं कि आपने मेरी भक्ति और ज्ञानका प्रचार किया है। ब्रह्मा, लक्ष्मीसे भी मुझे मेरे भक्त अधिक प्रिय हैं। भगवान् वाणीचतुर हैं। लक्ष्मीजीको कहीं बुरा न लग जाए इसलिए सोचकर वे फिर कहते हैं कि "यदि भक्ति अनन्य न हो तो वह मुझे प्रिय नहीं है।" लक्ष्मीजीकी भक्ति अनन्य

है। वे निष्काम भावसे प्रेम करती हैं, अतः वे भगवान्को विशेष प्रिय हैं। भगवान् कहते हैं "निष्काम भक्ति मुझे अतिशय प्रिय है। यदि लक्ष्मीजीको भी भक्ति निष्काम न हो तो मुझे वे भी प्रिय नहीं लगतीं।"

चंचल लक्ष्मी ठाकुरजीके चरणोंमें स्थित हो जाती है। तुलसीजी राधाजीका स्वरूप हैं। तुलसी-विवाहका तात्पर्य जीवात्मा और परमात्माका विवाह ही है।

सनकादिक सोच रहे हैं कि हमारी प्रशंसा तो बहुत की जा रही है किंतु हमें धामके अन्दर तो बुलाते ही नहीं हैं। हमें अभी तपश्चर्या करनेकी आवश्यकता है। अभी तक हमारा क्रोध नष्ट नहीं हो पाया है। वे ब्रह्मलोकमें पधारते हैं।

जय-विजयको सांत्वना देते हुए नारायण भगवान्ने कहा—तुम्हारे तीन अवतार होंगे।

सनकादिकोंके शापसे जय और विजय क्रमशः हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें अवतरित हुए हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

दितिके गर्भमें जय-विजय आए। दो बालकोंका जन्म हुआ। उनका नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रखा गया।

असमयमें किए गये कामोपभोगके कारण दिति-कश्यपके यहाँ राक्षसोंका जन्म हुआ। अतः कामके अधीन मत होओ। एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, जन्मतिथि आदि दिवसोंमें ब्रह्मचर्यका पालन करो।

महाप्रभुजीने इस चरित्रके अंतमें कश्यपके सिरपर तीन दोष आरोपित किए हैं—कर्मत्याग, मौनत्याग और स्थानत्याग।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रोज चार-चार हाथभर बढ़ते थे। यदि सचमुच ही ऐसा होने लगे तो माता-पिताकी दुर्गतिकी कल्पना कर सकते हैं? और मुसीबतोंको नजरअंदाज कर भी दें, तो भी रोज-रोज कपड़े छोटे पड़ने लगें।

किंतु यह तो भागवतकी समाधिभाषा है। भागवतमें समाधिभाषा ही मुख्य है तथा लौकिकभाषा गौण है।

इससे लोभका स्वरूप बताया गया है। चार-चार हाथभर रोज बढ़ते थे अर्थात् लोभ रोज-रोज बढ़ता ही जाता है। लाभसे लोभ बढ़ता है। बिना प्रभुकृपासे लोभका अंत नहीं होता। वृद्धावस्थामें शरीरके जीर्ण हो जानेके कारण काम तो मर जाता है किंतु लोभका नाश नहीं हो पाता।

लाभसे लोभ और लोभसे पाप बढ़ता है। पापके बढ़नेसे धरती रसातलमें जाती है। धरती माने मानव-समाज दुःखरूपी रसातलमें डूब जाता है।

हिरण्याक्षका अर्थ है संग्रहवृत्ति और हिरण्यकशिपुका अर्थ है भोगवृत्ति।

हिरण्याक्षने बहुत कुछ एकत्रित किया और हिरण्यकशिपुने बहुत कुछ उपभोग किया।

भोग बढ़ता है तो भोगके बढ़नेसे पाप बढ़ता है। जबसे लोग मानने लगे हैं कि रुपये-पैसेसे ही सुख मिलता है, तबसे जगत्में पाप बहुत बढ़ गया है। केवल धनसे सुख मिलता हो, ऐसी बात नहीं है।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके संहारके लिए भगवान्ने क्रमशः वराह और नृसिंह अवतार धारण किया था। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु लोभके ही अवतार हैं।

भगवान्ने कामको मारनेके लिए एक ही अवतार लिया अर्थात् रावण-कुम्भकर्णको संहारनेके लिए रामचन्द्रजीका अवतार लिया। क्रोधको मारनेके लिए—शिशुपालके वधके लिए एक कृष्णावतार ही लिया। किंतु लोभको मारनेके लिए दो अवतार लेने पड़े—वराह और नृसिंह अवतार।

काम-क्रोधको मारनेके लिए एक-एक अवतार ही लेना पड़ा। किंतु लोभको मारनेके लिए दो अवतार लेने पड़े, यही बताता है कि लोभको पराजित करना बड़ा दुष्कर है।

वृद्धावस्थामें तो कई लोगोंमें सयानापन आता है, किंतु जो जवानीमें ही सयाना बन जाए, वही सच्चा सयाना है। शक्तिके क्षीण होनेपर कामको जीतनेमें कौन-सी बड़ी बात है? कोई कहना माने ही नहीं तो यदि बूढ़ेका क्रोध मिटे तो उसमें कौन-सी अचरजकी बात हुई? किंतु यह लोभ तो वृद्धावस्थामें भी अन्त तक नहीं छूट पाता। लोभको मारना कठिन है। सत्कर्ममें विघ्नकर्ता लोभ है, अतः सन्तोषके द्वारा उसे मारना चाहिए। लोभ सन्तोषसे ही मरता है। इसलिए सन्तोषकी आदत डालो।

लोभ आदिके प्रसारसे पृथ्वी दुःखरूपी सागरमें डूब गयी थी। अतः भगवान्ने वराह अवतार लेकर उसका उद्धार किया। वराह भगवान् संतोषके अवतार हैं।

वराह अवतार यज्ञावतार हैं। वर+अह। वर अर्थात् श्रेष्ठ और अहका अर्थ है दिवस। कौन सा दिवस श्रेष्ठ है? जिस दिन तुम्हारे हाथोंसे सत्कर्म हो, वही दिन श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ कर्म करनेसे दिवस भी श्रेष्ठ बन जाएगा। जिस कार्यसे प्रभु प्रसन्न हों, वही सत्कर्म है। सत्कर्मको ही यज्ञ कहते हैं।

हिरण्याक्ष सत्कर्ममें विघ्नकर्ता है। मनुष्यके हाथों सत्कर्म नहीं होता क्योंकि उसे लगता है कि प्रभुने उसे बहुत कुछ दिया है। हिरण्याक्ष लोभका स्वरूप है।

समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वीको वराह भगवान्ने बाहर तो निकाला किंतु उसे अपने पास न रखा। उन्होंने पृथ्वी मनुको अर्थात् मनुष्योंको सौंप दी। जो कुछ अपने हाथोंमें आया उसे औरोंको दे दिया। यही संतोष है।

वराह भगवान् यज्ञके दृष्टांतरूप हैं। यज्ञ करनेसे चित्तशुद्धि होती है। लोभ आदिका नाश करके चित्तशुद्धि करनी चाहिए। चित्तशुद्धि होनेसे कपिलमुनिकी अर्थात् ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होती है।

यज्ञपूर्वक जीवन जिओगे तो ज्ञान मिलेगा। यज्ञावतारके बिना मनकी शुद्धि नहीं होती और मनशुद्धि या चित्तशुद्धिके बिना ज्ञान नहीं मिलता। और तब ज्ञानावतार भी नहीं होता और कपिलदेव भी नहीं आते। अज्ञानको दूर करनेका काम वराह अवतार बताता है। अज्ञानको दूर करनेके लिए यज्ञ करो। सत्यभाषण भी यज्ञ है। यज्ञ करोगे तो कपिल भगवान्की ब्रह्मविद्या बुद्धिमें स्थिर होगी।

कर्म चित्तशुद्धिके लिए है। भक्ति मनकी एकाग्रताके लिए है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी जीवनमें जरूरत है। कर्मसे चित्तशुद्धि होनेके बाद ब्रह्मजिज्ञासा जागती है।

श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि—"लोग त्वचाकी मीमांसा तो बहुत करते हैं परन्तु आत्माकी मीमांसा कोई नहीं करता।"

हिरण्याक्षकी इच्छा हुई कि स्वर्गमेंसे संपत्ति ले आऊँ। दिन-प्रति-दिन उसका लोभ बढ़ता जाता था। एक बार वह पातालमें गया। वहाँ उसने वरुणसे लड़ना चाहा।

वरुणने कहा कि तू वराह नारायणसे युद्ध कर।

हिरण्याक्षने वराह भगवान्‌के पास आकर उनसे कहा कि तू सुअर-जैसा है। तो वराह नारायणने उससे कहा कि तू कुत्ता जैसा है। और बात बढ़ गई।

सभी पापोंका मूल वाणी है। वाणीदोष होनेसे वीर्य दूषित होता है। उच्चारके बिना पाप नहीं होता। पहले मनके द्वारा उच्चारे जाने पर ही पाप होता है।

मुष्टिप्रहार करके वराह भगवान्‌ने हिरण्याक्षका संहार किया और पृथ्वीका राज्य मनु महाराजको सौंप दिया। मनुसे उन्होंने कहा कि धर्मसे पृथ्वीका पालन करना। और वे बद्रीनारायणके स्वरूपमें लीन हो गए।

मनुष्यमात्रका धर्म है समाजको सुखी करना। यह आदर्श वराह भगवान्‌ने अपने ही आचरण द्वारा मनुष्योंको सिखाया।

लोभको मारनेके लिए वराह नारायणके चरणोंका आश्रय लो। वराहके चरण संतोषके स्वरूप हैं।

मनुष्यके जीवनमें जब तक लोभ है, तब तक पाप है। और पाप जब तक है तब तक शान्ति प्राप्त हो नहीं सकती। जिसका जीवन निष्पाप है उसे शान्ति मिलती है।

केवल अर्थोपार्जनके लिए ही बुद्धिका उपयोग न करो। उसका उपयोग ईश्वरोपासनाके लिए करो। अन्यथा उस जौहरी जैसी ही तुम्हारी दशा भी होगी।

एक बार किसी राजाके दरबारमें एक जौहरी आया। उसके पास एक हीरा था। उस हीरेकी कीमत ठहरानेके लिए कई जौहरियोंको बुलाया गया। सभीने अलग-अलग कीमत बताई। राजा निराश हुआ। इतनेमें एक वृद्ध जौहरी आया। उसने हीरेकी कीमत निन्यानवे लाख रुपये बताई। तो राजाने पूछा कि पूरे एक करोड़ रुपये क्यों न कहा? तो उस वृद्ध जौहरीने और सौ हीरे मँगवाकर उस हीरेके आसपास रख दिए। तो उस हीरेका तेज निन्यानवे हीरों पर पड़ा किंतु एकपर न पड़ा। वृद्ध जौहरीने कहा कि यही कारण है कि मैंने एक लाख कम कहा।

राजाको लगा कि यह जौहरी कितना बुद्धिमान् है। वह बोला—मंत्रीजी, इन्हें कुछ पुरस्कार दो। तभी वहाँ बैठे हुए एक महात्माने कहा कि इस जौहरीके सिरपर धूल (खाक) डालो। महात्मासे ऐसे विचित्र प्रस्तावका कारण पूछा गया।

महात्माने कहा —इस जौहरीने अपनी बुद्धिका उपयोग केवल पत्थरोंका विचार करनेके लिए ही किया है, ईश्वरका भजन करनेके लिए नहीं। जिस बुद्धिका उपयोग उसने केवल पत्थरोंको देखने-परखनेमें किया है, उसका उपयोग यदि उसने ईश्वरको पहचाननेके लिए किया होता तो उसका उद्धार हो जाता। आप इस जौहरीको चतुर मानते हैं, किंतु मैं उसे मूर्ख मानता हूँ।

हिरण्याक्षकी मृत्यु होगी, तभी पाप मरेगा और तभी ब्रह्मविद्याका ज्ञान बुद्धिमें स्थायी होगा। बुद्धिके निष्काम होने पर ही ब्रह्मज्ञान स्थायी हो सकता है।

मनुष्यके शरीरमें नौ छेद हैं, जिनके द्वारा ज्ञान बाहर निकल जाता है। इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञान बाहर न निकल सके, इसलिए इन्द्रियोंका निरोध करो और उन्हें प्रभुके मार्गकी ओर मोड़ दो।

तृतीय स्कंधमें दो प्रकरण हैं पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

पूर्वमीमांसामें वराह नारायणके अवतारकी बात कही गई है और उत्तरमीमांसामें कपिल नारायणके चरित्रका वर्णन है।

यज्ञ किए बिना कपिल नारायणकी विद्या बुद्धिमें स्थिर नहीं होती।

मन, वचन और कायासे किसीको भी पीड़ा न देना, यही यज्ञ है। जो कारण बिना ही दिल जलाता है, वह आत्मघात कर रहा है। सदासर्वदा प्रसन्न रहना भी यज्ञ ही है।

यज्ञ किए बिना, सत्कर्मके बिना चित्तशुद्धि नहीं होती और चित्तशुद्धिके बिना ज्ञान टिकता नहीं। सत्कर्मसे सभी इन्द्रियाँ शुद्ध होंगी। जिसका मन कलुषित है, उसे परमात्माका अनुभव नहीं हो सकता।

मानवशरीर एक गगरी है। इसमें नौ छेद हैं। यदि गगरी छेदवाली हो तो वह कभी भरी नहीं जा सकती। हरेक छेदसे ज्ञान बह जाता है। ज्ञानका प्राप्त होना कठिन नहीं है। ज्ञान आता तो है किंतु वह रह नहीं पाता। विकार-वासनाके वेगमें वह कई बार बह जाता है।

वैसे तो सबकी आत्मा ज्ञानमय है, अतः अज्ञानी तो कोई नहीं है किंतु ज्ञानको सतत बनाए रखनेके लिए, इन्द्रियोंके द्वारा बही जाती हुई बुद्धि-शक्तिको रोकना है। ज्ञानी इन्द्रियोंको विषयकी ओर नहीं जाने देता, जब कि वैष्णव इन्द्रियोंको प्रभुके मार्गकी ओर मोड़ता है।

ज्ञान टिक नहीं पाता क्योंकि मनुष्यका जीवन विलासी हो गया है। साराका सारा ज्ञान पुस्तकमें ही पड़ा रहता है, मस्तकमें जाता ही नहीं है।

जो पुस्तकोंके पीछे दौड़े, वह विद्वान् है और भक्तिपूर्वक परमात्माके पीछे दौड़े वह संत है। विद्वान शास्त्रके पीछे दौड़ता है जब कि शास्त्र संतके पीछे दौड़ते हैं। शास्त्र पढ़कर जो बोले वह विद्वान् है। प्रभुको प्रसन्न करके उसीमें पागल होकर जो बोलता है, वह संत है।

गीतामें भगवान्‌के अर्जुनसे कहा है—अर्जुन, ज्ञान तो तुझीमें है।

हृदयमें सात्त्विक भाव जागे, मन शुद्ध हो जाये तो हृदयमेंसे ज्ञान अपने आप ही प्रकट होता है।

मीराबाईने अपने भजनमें कहीं पर भी लिखा नहीं है कि उनका कोई गुरु था या किसीके घर वे शास्त्र पढ़नेके लिए गई थीं। तुकाराम महाराज भी किसीके घर शास्त्र पढ़नेके लिए नहीं गए थे।

हृदयमें स्थित हुए लोभको मारनेसे कपिल भगवान् अपने आप आए।

ज्ञानका शत्रु है हिरण्याक्ष। भागवतमें बताए गए अवतारोंके क्रममें भी रहस्य है। ज्ञानको बुद्धिमें स्थिर करना है तो हिरण्याक्षको मारना होगा। पहले हिरण्याक्षको मारनेपर फिर कपिल भगवान् आते हैं।

अपने मनसे पूछो कि प्रभुसे मुझे जो सुख-सम्पत्ति मिली है, उसके लिए मैं पात्र भी हूँ या नहीं। उत्तर नकारात्मक ही होगा। लोभको संतोषसे मारो। ज्यादा पानेकी इच्छा न करो। पाप इसलिए होता है कि मनुष्य मानता है कि प्रभुने मुझे जो दिया है वह बहुत कम है। पाप नहीं होंगे तो इन्द्रियोंकी शुद्धि होगी और तभी इन्द्रियोंमें ज्ञान-भक्ति टिक पाएगी। यज्ञादि-सत्कर्मसे चित्तशुद्धि होती है। इसके बाद ब्रह्मज्ञान बुद्धिमें टिक पाता है।

पूर्वमीमांसाके बाद इस उत्तरमीमांसाका आरम्भ किया गया है। उत्तरमीमांसामें ज्ञान-प्रकरण है। कपिल मुनि ज्ञानके अवतार हैं।

स्वयंभू मनुकी रानीका नाम शतरूपा था। मनु महाराजके दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। तीन कन्याएँ भी थीं—आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। आकूतिका रुचिसे, देवहूतिका कर्दमसे और प्रसूतिका दक्षसे विवाह हुआ।

कर्दमऋषि और देवहूतिके घर कपिल भगवान् आए थे।

विदुरजी प्रश्न करते हैं कि हे मैत्रेयजी, आप कर्दम और देवहूतिके वंशकी कथा कहिए। कपिल भगवान्की इस कथाको सुननेकी मेरी इच्छा है।

मैत्रेयजी कहते हैं—कपिल ब्रह्मज्ञानके स्वरूप हैं। कर्दम बनोगे तो तुम्हारे घर कपिल आएँगे। कर्दम अर्थात् इन्द्रियोंका दमन करनेवाला। कर्दम अर्थात् जितेन्द्रिय। जब तक मनुष्य कर्दम नहीं बन पाता, तब तक उसे कपिल नहीं मिलता। शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धि होने पर अपने आप ज्ञानका झरना फूट पड़ता है. ज्ञान प्रकट होता है।

शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धिसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। शुद्ध आहार, शुद्ध आचार और शुद्ध विचारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। सत्त्वगुण बढ़ेगा तो ज्ञान मिलेगा। सत्त्वगुण बढ़ता है संयमसे, सदाचारसे। सत्त्वगुणके बढ़नेसे अंदरसे ज्ञानका स्फुरण होता है। जीभके सुधरनेसे जीवन सुधरता है। जीभ जो कुछ माँगे, वह सभी उसे मत दो। सोनेपर दो-चार मिनटमें ही नींद आ जाएगी, ऐसा महसूस हो तभी सोना चाहिए। सोनेपर तुरन्त नींद न आएगी तो जीव कामसुखका चिंतन करेगा। आगे कथा आएगी कि घरकामके पूरे होने पर गोपियाँ कृष्णकीर्तन करती थीं।

जीवन सात्त्विक बनाओ।

जितेन्द्रिय बननेके लिए सरस्वतीके किनारे रहना होगा। सरस्वतीका किनारा सत्कर्मका किनारा है। यमुनाजी भक्तिका स्वरूप हैं, गंगा ज्ञानका और सरस्वती सत्कर्मका स्वरूप हैं।

शुकदेवजी राजर्षिको सुनाते हैं—राजन्, कर्दम ऋषि सारा दिवस तप करते थे। उनके तपसे भगवान् प्रसन्न हुए। भगवान् ऋषिके घर पधारे। विदुरजीके घर भी द्वारिकानाथ गये थे।

भगवान् श्रीकृष्ण हर तरहसे उदार हैं, किंतु समय देनेमें उदार नहीं हैं। सुवर्णकी अपेक्षा समयको अधिक मूल्यवान् मानो। लक्ष्यको लक्षमें रखोगे तो जीवन सफल होगा। बिना लक्ष्यका मनुष्य बिना पतवारकी नाव जैसा है।

कर्दम जितेन्द्रिय महात्मा थे। उनकी तपश्चर्या सफल हो गई। उनके सामने भगवान् प्रकट हुए। सिद्धपुरके पास कर्दम ऋषिका आश्रम था। उन्होंने बड़ी तपश्चर्या की। शरीरमें केवल हड्डियाँ हो रह गईं। ऐसी कठोर तपश्चर्यासे भगवान् प्रसन्न हुए। आँखोंसे हर्षाश्रु निकल आये। उन्हीं आँसुओंसे बिंदु-सरोवर बना। सिद्धपुरकी यात्रा करते समय इस बिंदु-सरोवरमें स्नान करना पड़ता है।

तुम भी अधिक ध्यान करोगे तो भगवान् तुमपर भी प्रसन्न होंगे और तुम्हें दर्शन भी देंगे। भगवान्का ध्यान न हो सके तो कोई बात नहीं है, किन्तु सावधान रहो कि तुम्हारा मन कहीं सांसारिक विषयोंमें स्थिर न हो जाये। आँखरूपी रतन्का जतन करो। आँखोंकी शक्तिका दुर्व्यय मत करो।

संसारका सौंदर्य क्षणिक है।

धन-सम्पत्तिके बढ़नेपर लोगोंमें विवेकका अभाव होने लगता है। एक भाई मिले। उन्होंने कहा कि कश्मीर सुन्दर प्रदेश है। देखना चाहते हैं तो चलिए हमारे साथ।

जगत्की कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं है। आँखोंमें विकार होनेके कारण वस्तु सुन्दर लगती है। मनुष्य सौंदर्यके पीछे पागल होता है। किंतु जिस व्यक्तिके सौंदर्यमें वह पागल होता है, उसका मुख यदि चेचकके दागसे बिगड़ जाये तो उसे देखनेका भी दिल नहीं होगा।

शरीरकी नहीं, हृदयकी सुन्दरता देखो। जगत्की अपेक्षा जगत्का सजनहार अधिक सुन्दर है।

लोग कश्मीरका सौंदर्य देखने जाते हैं, किंतु उस कश्मीरको बनानेवाला मेरा श्यामसुन्दर कितना अधिक सुन्दर होगा ?

श्रीकृष्ण सुन्दर हैं, ऐसा बार-बार विचार करनेसे भक्तिका उदय होता है। एक ईश्वर ही नित्यसुन्दर है।

ठाकुरजीके दर्शन करनेसे आँखें सफल होती हैं। कर्दम कहते हैं—महाराज, आपके दर्शन करनेसे मेरी आँखें सफल हुई हैं। आपको प्राप्त करनेके बाद संसारकी माँग करनेवाला मूर्ख है। संसारके जिस सुखका भोग नरकके कीड़े भी करते हैं, वैसे सुखकी इच्छा परमात्मासे करनेवाला मूर्ख कौन होगा ?

लौकिक कामसुखकी इच्छापूर्तिके लिए श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाला तुच्छ है।

कर्दमने भगवान्से कहा कि मैं आपसे स्त्रीसङ्ग नहीं, सत्सङ्गकी इच्छा करता हूँ। मुझे ऐसी स्त्री दीजिए कि जो मुझे प्रभुकी ओर ले जाये। ऐसी पत्नी, मुझे मिले कि जब कभी मेरे मनमें पाप आ जाये तो वह मुझे उस पापकर्मसे रोके और प्रभुके मार्गमें ले चले। मेरा विवाह संसार-सागरमें डूबनेके लिए नहीं, किंतु तैरनेके लिए हो। कृष्णसेवा महान् धर्म है। मैं कामसुख नहीं माँगता। शास्त्रमें पत्नीको कामपत्नी नहीं, किंतु धर्मपत्नी कहा गया है। ब्रह्माजीने विवाह करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है। मैं पत्नी नहीं, घरमें सत्सङ्ग चाहता हूँ। स्त्रीसङ्ग कामसङ्ग नहीं, सत्सङ्ग है। धर्मके आचरणके लिए पत्नी है।

अकेला पुरुष या अकेली स्त्री धर्ममार्गमें आगे नहीं बढ़ सकती। नाविकके बगैर अकेली नाव संसार-सागरको पार नहीं कर सकती। नाविक भी अकेला संसार-सागर पार नहीं कर सकता। स्त्री नौका है पुरुष नाविक। दोनोंको एक-दूसरेके सहारेकी जरूरत है। पुरुषमें विवेक होता है और स्त्रीमें स्नेह। विवेक और स्नेहके मिलनसे भक्ति प्रकट होती है। पुरुष कमा सकता है। पुरुष ज्ञानस्वरूप है। स्त्रीका हृदय कोमल होनेके कारण वह समर्पण करती है। स्त्री क्रियाशक्ति है।

बहुतोंको आश्चर्य होगा कि कर्दमने इतने सारे वर्षकी तपश्चर्याके बाद भगवान्से मुक्ति क्यों न माँगी? कर्दमने सोचा कि हजारों जन्मोंकी कामवासनाएँ सुषुप्त रीतिसे मनमें जमा हो गई हैं, उन्हें सन्तुष्ट करके मनुष्यपर जो तीन प्रकारके ऋण हैं, उनसे मुक्त होना अच्छा है और उसके बाद मुक्तिकी इच्छा करनी चाहिए।

भगवान्ने कहा—दो दिनके बाद मनुमहाराज तुम्हारे पास आएँगे और अपनी पुत्री देवहूति तुम्हें देंगे। परमात्माने आज्ञा दी कि मनुमहाराज कन्या लेकर आएँ, तब नखरे मत करना। आजकलके लोग नखरे दिखाते हैं कि हमें विवाह नहीं करना है।

पति-पत्नी पवित्र जीवन जिएँ तो उनके यहाँ जन्म लेनेकी भगवान्की इच्छा होती है।

भगवान्ने कहा कि मैं पुत्ररूपमें तुम्हारे यहाँ आऊँगा। जगत्को मुझे सांख्यशास्त्रका उपदेश करना है। ऐसा कहकर श्रीहरि वहाँसे विदा हो गए।

नारदजी मनुमहाराजके पास आये और उनसे कहा कि तुम कर्दमको कन्यादान दो।

मनुमहाराज शतरूपा और देवहूतिके साथ कर्दम ऋषिके आश्रममें आए।

कर्दमने देवहूतिके विवेककी परीक्षा की। उन्होंने तीन आसन बिछाये। सभीको बैठनेके लिए कहा तो मनु-शतरूपा तो बैठ गए, किंतु देवहूति नहीं बैठी। तो कर्दमने उनसे कहा—देवी, यह तीसरा आसन तुम्हारे लिए ही है, बैठो।

देवहूतिने सोचा कि भविष्यमें यह तो मेरे पति होनेवाले हैं। पति द्वारा बिछाये गये आसनपर बैठूँगी तो पाप होगा। इस आसनपर बैठना मेरा धर्म नहीं है और आसनपर न बैठनेसे आसन देनेवालेका अपमान होगा। सो अपना दाहिना हाथ आसनपर रखकर आसनके पास वह बैठ गयी।

वह बेचारी पुराने जमानेकी थी। आजकलके जमानेकी होती तो उस आसनपर पहलेसे ही बैठ जाती। आज तो पत्नी पतिको पुत्रको झुलानेकी आज्ञा देती है। सन्तानको पतिके पास रखकर अकेली घूमने-फिरने निकल पड़ती है। ऐसा मत करो।

आर्यनारीके सच्चे संस्कार आज भुलाये जा रहे हैं। आज कन्यापरीक्षाकी रीति भी बदल गई है।

कर्दमने सोचा कि कन्या योग्य है, विवाह करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

मनु महाराजने कहा कि यह कन्या मैं आपको अर्पण करना चाहता हूँ।

कर्दम ऋषिने कहा—विवाह करनेकी इच्छा मेरी भी है, किंतु पहले एक प्रतिज्ञा करना है। मेरा विवाह विलासके लिए नहीं, किंतु कामका नाश करनेके लिए होगा।

विवाहका प्रयोजन कामविकास नहीं, किंतु कामविनाश है। कामभावको एक ही स्थान पर संकुचित करके, कामका उपभोग करके उसका विनाश करना ही गृहस्थाश्रमका आदर्श है।

कर्दम ऋषि कहते हैं—मेरा विवाह कामके विनाशके लिए है। काम कृष्णामिलनमें विघ्नकर्त्ता है। उसी कामको मुझे मारना है। एक पुत्रके होने तक लौकिक सम्बन्ध बनाए रखूँगा। एक पुत्रके हो जानेपर लौकिक सम्बन्धका त्याग करूँगा और संन्यास ले लूँगा।

कन्यादानके मन्त्रमें लिखा है— संतत्या इति एकवचनम्। संततिभिः ऐसा नहीं कहा है। वंशकी रक्षा करनेके लिए एक ही पुत्रके लिए कन्याको अर्पित करता हूँ। शास्त्रने पहले पुत्रको ही धर्मपुत्र कहा है। अन्य सभी पुत्र कामज पुत्र हैं। कामाचरणके लिए नहीं, धर्माचरणके लिए विवाह है। पिता पुत्रसे कहता है कि तू मेरी आत्मा है। एक पुत्र होनेके बाद पत्नी माता-समान होती है।

काम ईश्वरकी भाँति व्यापक होना चाहता है। जहाँ सुन्दरता दीखती है, वहीं काम उत्पन्न होता है। उसे एक ही स्त्रीमें सँजोकर नाश करने कोविवाह करना है।

विवाहके समय 'सावधान' कहा जाता है क्योंकि सभी जानते हैं कि विवाहके बाद वह सावधान नहीं रहेगा। विवाहके बाद सावधान रहे, वही जीत जाता है अथवा जो पहलेसे सावधान होता है, वह जीतता है।

रामदास स्वामी विवाहके पहले ही सावधान हो गये थे। विवाह-मण्डपमें पुरोहितजीने 'सावधान-सावधान' कहा और वे सावधान होकर मण्डपसे भाग खड़े हुए।

भोगके बिना रोग नहीं होता। पूर्वजन्मके पापके कारण भी कुछ रोग होते हैं। तो कुछ रोग इस जन्मके भोग-विलासके कारण होते हैं। 'भोगे रोगभयम्।' भोगोपभोगमें रोगोंका भय है। भोग बढ़नेसे आयुष्यका क्षय होता है। हम भोगका उपभोग नहीं कर पाते, भोग ही हमारा उपभोग कर जाता है।

जबसे वरराजा मोटरमें बैठकर विवाह करने जाने लगा है, तबसे घरसंसार बिगड़ गया है। आजके वरराजाको घोड़े परसे गिर जानेका डर लगता है। उससे पूछो कि एक ही घोड़ा तुझे गिरा देगा तो वे ग्यारह घोड़े तेरी क्या दशा करेंगे? एक घोड़ेको अंकुशमें नहीं रख सकता तो फिर उन ग्यारह घोड़ोंको कैसे अंकुशमें रख सकेगा? ग्यारह इन्द्रियाँ ही ग्यारह घोड़े है। जितेन्द्रिय होनेके लिए विवाह करना है। आज तो हम विवाहका हेतु ही भूल गए हैं।

कर्दमऋषिने आदर्श बताया कि मेरा विवाह एक सतपुत्रके लिए है। उसके बाद मैं संन्यास लूँगा। मेरी यह प्रतिज्ञा तुम्हारी कन्याको मान्य हो तो मैं विवाह करनेको तैयार हूँ।

मनु महाराजने पुत्रीसे कहा— ये तो विवाहके समय ही संन्यासकी बात करने लगे हैं।

किंतु देवहूति भी असाधारण थी।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

देवहूतिने कहा—मुझे ऐसे ही पतिकी जरूरत थी। कामांध होकर संसार-सागरमें डूबनेके लिए गृहस्थाश्रम नहीं है। मेरी ऐसी ही इच्छा थी कि मुझे कोई जितेन्द्रिय पति मिले।

देवको बुलानेवाली शक्ति ही देवहूति है। निष्काम बुद्धि ही देवको बुला सकती है।

मनु महाराजने विधिपूर्वक कन्यादान कर दिया। देवहूति-कर्दमका विवाह हो गया।

देवहूति कर्दमके आश्रममें रहने लगीं। उसने सोचा कि मेरे पति तपस्वी हैं, अतः मुझे भी तपस्विनी होना होगा। वे दोनों बारह वर्ष एक ही घरमें रहते हुए भी संयमी और निर्विकार रहे।

दक्षिण प्रदेशमें आजसे ग्यारह सौ वर्ष पहले वाचस्पति मिश्र नामके एक ऋषि हो गए हैं। षड्शास्त्रोंपर उन्होंने टीकाएँ लिखी हैं, जो आज भी प्रख्यात हैं।

वे सारा दिन तपश्चर्या और ग्रन्थलेखनमें बिताते थे। विवाह होनेके बाद छत्तीस बरस गुजर गये, किंतु वे यह भी नहीं जानते थे कि उनकी पत्नी कौन है? छत्तीस वर्ष साथ रहनेपर भी वे अपनी पत्नीको पहचानते नहीं थे।

एक दिवस वे ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यपर टीका लिख रहे थे। भाष्य लिख रहे थे, किंतु एक पंक्ति कुछ ढङ्गसे लिखी नहीं जा रही थी। दिया भी कुछ धुँधला हो चला था, अतः ठीक तरहसे दीखता भी नहीं था। उनकी पत्नी दिएकी लौ बढ़ा रही थी। इतनेमें वाचस्पतिकी नजर उसपर पड़ी तो उन्होंने पूछा— देवी, तुम कौन हो?

विवाह हुए छत्तीस बरस बीत चुके थे, फिर भी वे पत्नीको पहचानते नहीं थे। कितने संयमी और जितेन्द्रिय होंगे वे!

पत्नीने कहा—कभी आपका विवाह हुआ था, वह याद आता है?

वाचस्पतिने कहा—हाँ, कुछ-कुछ याद आ रहा है।

पत्नीने कहा—मेरे ही साथ आपका विवाह हुआ था। मैं आपकी दासी हूँ। आजसे छत्तीस बरस पहले हमारा विवाह हुआ था।

पत्नीने विवाहकी याद दिलायी तो वाचस्पतिके मनमें प्रकाश जगा और उन्होंने पत्नीसे कहा—तेरे साथ मेरा विवाह हुआ है। छत्तीस वर्ष तूने मौन ही रहकर मेरी सेवा की। तेरे उपकार अनन्त हैं। तेरी क्या इच्छा है?

पत्नी भामतिने कहा—नाथ, मेरी तो कोई भी इच्छा नहीं है। आप जगत्के कल्याणके लिए शास्त्रोंकी टीकाएं रचते हैं। मैं आपकी सेवा करके कृतार्थ हुई हूँ। आपकी सेवा करते-करते ही मेरी मृत्यु हो।

वाचस्पतिका हृदय भर आया। पत्नीसे और एक बार कुछ माँगनेको कहा, किंतु उसने कुछ भी नहीं माँगा।

वाचस्पति—देवी, तुम्हारा नाम क्या है?

भामति— इस दासीको सब भामति कहते हैं।

वाचस्पति— मैं शाङ्कर-भाष्यपर जो टीका लिख रहा हूँ, उसका नाम मैं 'भामति-टीका' रखूँगा।

आज भी वाचस्पतिकी वह टीका 'भामति-टीका'के नामसे प्रसिद्ध है।

ऐसा था हमारा देश भारतवर्ष। एक ही घरमें छत्तीस वर्षतक साथ-साथ रहकर भी संयमका उन्होंने पालन किया था। ऐसे संयमीको ही ज्ञान मिलता है। ज्ञान बाजारमें नहीं मिलता। आजकल पुस्तकोंके द्वारा ज्ञानका प्रचार और प्रसार तो बहुत हो रहा है, किंतु किसी भी व्यक्तिके मस्तकमें ज्ञान दिखाई नहीं देता।

पूर्ण संयमके बिना ज्ञान नहीं पाया जा सकता। पूर्ण संयमके बिना परमात्मा भी प्रकट नहीं होते।

एक ही घरमें रहकर भी कर्दम-देवहूतिने बारह वर्षतक और वाचस्पति-भामतिने छत्तीस वर्षतक संयमका पालन किया। आजकलका मनुष्य तो छत्तीस घण्टे भी संयमित नहीं रह सकता।

कर्दम जीवात्मा है और देवहूति बुद्धि है। देवहूति देवको बुलानेवाली निष्काम बुद्धि है। एक दिवस कर्दमने देखा कि देवहूतिका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है, उसने मेरी सेवा करते-करते अपना शरीर सुखा दिया है। यह देखकर उनका दिल भर आया। उन्होंने देवहूतिसे कहा कि देवी कुछ वरदान माँगो। तुम जो भी माँगोगी, वही मैं दूंगा।

देवहूतिने कहा—आप जैसे ज्ञानी पति मुझे मिले हैं, वही वरदान है। मैं तो पूजा करके बस इतना ही माँगती हूँ कि मेरा सौभाग्य अखण्डित रहे।

पहला पेट है या पेटका दाता परमात्मा ?

स्त्रीका धर्म है कि रोज वह तुलसी और पार्वतीकी पूजा करे। आजकी स्त्री तुलसीकी पूजा तो करती होगी, किंतु चाय-नाश्ता करनेके बाद ही।

यह सुनकर कर्दम बोले—कुछ-न-कुछ तो तुम्हें माँगना ही होगा।

पतिके आग्रह करनेपर देवहूतिने कहा कि आपने प्रतिज्ञा की थी कि एक सन्तानके होने पर आप संन्यास लेंगे। अब यदि इच्छा हो तो एक बालकका मुझे दान दें।

मनुष्यशरीरकी रचना ही ऐसी है कि वह भोगोंका मर्यादित प्रमाणमें ही उपभोग कर सकता है। मर्यादाका उल्लङ्घन करेगा तो वह रोगिष्ठ हो जाएगा। कर्दम बोले—मैं तुझे दिव्य शरीर अर्पित करूँगा।

देवहूति सरस्वतीके किनारेपर स्नान करने गईं। सरस्वतीमें-से अनेक दासियाँ निकलीं। देवहूतिने स्नान किया और उनका शरीर बदल गया। कर्दम ऋषिने सङ्कल्पके बलसे विमान बनाया और दोनों बैठ गए उसपर।

कथामें शांत और करुणरस प्रधान है। शृङ्गार और हास्य रस गौण है। कथामें शृङ्गार रसका वर्णन करनेकी आज्ञा महात्माओंने नहीं दी है।

श्रोताओंको संसारके विषयोंके प्रति अरुचि हो और ईश्वरके प्रति प्रेम हो, यह लक्ष्यमें रखकर वक्ताको कथा करनी चाहिए।

कथाश्रवणके बाद विषयोंके प्रति अरुचि और ईश्वरके प्रति रुचि न हुई तो समझो कि कथा सुनी ही नहीं है। कथा सुनकर वैराग्य होता है। भागवतके दूसरे स्कन्धमें ब्रह्माजीने नारदको बताया है कि कथा किस प्रकार की जानी चाहिए।

इन सौ वर्षोंमें देवहूतिकी नौ कन्यायें हुईं, किंतु पुत्र एक भी न हुआ। जो नौ कन्याओंका पिता होता है, उसके यहाँ कपिल आते हैं। जिसको नौ पुत्रियाँ होती हैं, उसे ज्ञान मिलता है। नौ कन्याओंका अर्थ नवधा भक्ति। नवधा भक्तिके बिना ज्ञान नहीं होता।। सामान्य अर्थ करें तो कह सकते हैं कि नौ कन्याओंका विवाह करते-करते पिताकी अक्ल ठिकाने आ जाती है कि मैंने यह क्या कर दिया।

नवधाभक्तिके न होने तक कपिल अर्थात् ज्ञान नहीं आता। श्रवण, कीर्तन, स्मरण पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये नौ अङ्ग नवधाभक्तिमें आते हैं। नवधाभक्तिके सिद्ध होनेपर ही कपिल भगवान् पधारते हैं। भक्ति ही ज्ञानरूपमें बदलती है। भक्तिकी उत्तरावस्था ही ज्ञान है। अपरोक्ष ज्ञानकी पूर्वावस्था ही भक्ति है। भक्तिके बाद ज्ञान आता है। ज्ञानकी माता भक्ति है। जिसको नवधाभक्ति सिद्ध नहीं होती, उसे ज्ञान नहीं मिलता। भक्ति द्वारा ही ज्ञान मिलता है। 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते।' तात्त्विक दृष्टिसे अन्तमें ज्ञान और भक्तिमें अन्तर नहीं है। भक्तिमें पहले 'दासोऽहम्' है और फिर 'सोऽहम्' है।

नौ कन्याओंके जन्मके बाद कर्दम संन्यास लेनेके लिए तैयार हुए। एक दिवस कर्दमने सोचा कि अब तो इस विलासी जीवनका अन्त आये तो अच्छा हो।

'सत्त्वप्रधानाः ब्राह्मणाः।' वैश्य विलासी जीवन जिये तो कोई बात नहीं, किंतु ब्राह्मणको यह शोभा नहीं देता। अतः कर्दमने सोचा कि एकांतमें बैठकर मैं तप करूँ। देवहूतिने कहा—मैं भी त्याग करना चाहती हूँ। विवाहका अर्थ है—तन दो, किंतु मन तो एक ही।

देवहूति बोली—नाथ, आपने तो वचन दिया था कि एक पुत्रके जन्मके बाद आप संन्यास लेंगे। पुत्रका जन्म तो अभी तक हो ही नहीं पाया है। फिर इन कन्याओंकी और मेरी देखभाल कौन करेगा? इन कन्याओंकी व्यवस्था करनेके बाद ही संन्यास लीजिए।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं—

कर्दम-देवहूतिने विकारका त्याग किया। उन्होंने कई वर्षों तक परमात्माकी आराधना की, इसके बाद देवहूतिके गर्भमें साक्षात् नारायणने वास किया। नौ मासका समय समाप्त हुआ। आचार्यों, योगियों और साधुओंके आचार्य प्रकट होनेवाले थे। ब्रह्मादिदेव कर्दम ऋषिके आश्रममें आये। ब्रह्माजीने कर्दम ऋषिसे कहा कि तुम्हारा गृहस्थाश्रम सफल हुआ। तुम अब जगत्के पिता बन गए हो। वह बालक जगत्को दिव्यज्ञानका उपदेश करेगा।

जीव भगवान्के लिए जब आतुर होता है, तब भगवान्का अवतार होता है। आतुरताके कारण भगवान्के दर्शन होते हैं।

कर्दम और देवहूतिकी तपश्चर्या और आतुरतासे भगवान् उनके यहाँ पुत्ररूपसे आए।

योगीजन योगसे ब्रह्माके दर्शन कर सकते हैं किंतु संसारी लोग शुद्ध भक्तिसे भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त कर सकते हैं और भगवान्का लालन-पालन कर सकते हैं।

कपिल भगवान्के जन्म लेने पर देवहूतिने कर्दमसे कहा—अब गृहस्थाश्रमका त्याग कर सकते हैं।

कर्दम कहते हैं कि अब मुझे इन नौ कन्याओंकी चिंता सता रही है।

एक युगल था। प्रभु पर पतिकी दृढ़ श्रद्धा नहीं थी। पत्नीने श्याम वस्त्र पहने। पतिने कारण पूछा तो उसने कहा कि तुम्हारी दृष्टिमें भगवान् नहीं हैं, अतः मैंने काले कपड़े धारण किए हैं।

महाभारतमें एक कथा है। भीष्मने प्रतिज्ञा की कि कल मैं अर्जुनका वध करूँगा। भीष्माचार्यकी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं हो सकती। पाण्डवसेनामें हाहाकार मच गया। अर्जुन तो नित्य नियमानुसार भगवत्-चिंतन करते हुए सो गए। श्रीकृष्णको चिंता होने लगी कि कल मेरे अर्जुनका क्या होगा? वे अर्जुनसे मिलने आये। अर्जुन तो सोये हुए थे। श्रीकृष्णने उन्हें जगाकर पूछा कि तुम सो कैसे रहे हो? तुम्हें आज नींद कैसे आ रही है? तो अर्जुनने कहा कि मेरे लिए जब आप स्वयं जागरण कर रहे हैं तो मुझे क्या चिंता हो सकती है? मैंने अपना कर्तव्य निभा लिया, अब आपको अपना कार्य निभाना है?

मनुष्यका कर्तव्य है अनन्य शरणागति। वह सदा यही सोचे कि मेरे मरनेसे श्रीकृष्णकी ही अपकीर्ति होगी।

कर्दम कहते हैं मुझे नौ कन्याओंकी चिंता है। तो ब्रह्माने कहा—'तुम क्यों चिंता करते हो? तुम्हारे घर तो स्वयं भगवान् पधारे हैं। तुम चिंता करनेके बदले प्रभुका चिंतन करो।'

वल्लभाचार्यजीने कहा है कि 'चिन्ता कापि न कार्या।' सेवा-स्मरण करते हुए जो वैष्णव तन्मय होते हैं, उनकी चिंता ठाकुरजी करते हैं।

ब्रह्मा नौ ऋषियोंको अपने साथ लाये थे। सभी ऋषियोंको एक-एक कन्या दे डाली, अत्रिको अनसूया, वसिष्ठको अरुन्धती आदि। कर्दम ऋषिने सोचा कि अब अपने सिरसे सारा भार उतर गया। वे कपिलके पास आये और कहने लगे कि मुझे संन्यास लेना है।

संन्यासका अर्थ है परमात्माके दर्शनके लिए सभी सुखोंका त्याग।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

केवल ईश्वरके लिए जो जिये, वही संन्यासी है।

कपिलने कहा कि आपकी इच्छा योग्य ही है। संन्यास लेनेके बाद आप किसी प्रकारकी चिंता न करें। आप अपना जीवन ईश्वरको अर्पित कर दें।

मुक्ति दो प्रकारकी है—

(१) कैवल्य मुक्ति—इसमें जीव ईश्वरमें लीन होता है और दोनों एक बन जाते हैं।

(२) भागवती मुक्ति—इसमें भी ईश्वरसे जीव प्रेमसे एक तो होता है, किंतु थोड़ा-सा द्वैत रखकर नित्यलीला, नित्यसेवामें मग्न रहता है।

कर्दम ऋषिने संन्यास ग्रहण कर लिया।

परमात्माके लिए सभी संसार-सुखोंका त्याग ही संन्यास है। त्यागके बिना संन्यास उजागर नहीं होता। कई लोग निवृत्त होनेपर (पेन्शनपर जानेपर) भी दूसरी नौकरीकी तलाश करते हैं। सरकारने जब कह दिया कि तुम नौकरी करने योग्य नहीं रहे हो, तो फिर दूसरी नौकरी क्यों ढूँढ़ते हो? अब तो भगवान्‌का भजन करनेके दिन आये हैं।

संन्यासकी विधि देखनेसे भी वैराग्य होता है। संन्यासकी क्रियामें विरजा होम करना पड़ता है। देव, ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि आदिकी साक्षीमें विरजा होम किया जाता है। फिर नदीमें स्नान करके, लँगोटी फेंककर नग्नावस्थामें ही बाहर निकलना पड़ता है।

आदि नारायणका चिंतन करते-करते कर्दम ऋषिको भागवती मुक्ति मिली।

कपिलगीताका आरम्भ हुआ। प्रसङ्ग दिव्य है। पुत्र माताको उपदेश दे रहा है। भागवतके इस महत्वके प्रकरणके नौ अध्याय हैं। कपिल गीताका प्रारम्भ २५वें अध्यायसे होता है। इसमें सांख्यशास्त्रका उपदेश है। तीन अध्यायोंमें पहले वेदान्तका ज्ञान आता है और अन्तमें भक्तिका वर्णन किया गया है। फिर उसके बाद संसारचक्रका वर्णन है।

देवहूतिने सोचा कि ऋषियोंने मुझसे कहा था कि यह बालक माताका उद्धार करनेके लिए आया है। तो मैं कपिल भगवान्से प्रश्न पूछूँ जिसका वे अवश्य उत्तर देंगे। देवहूतिने कपिल भगवान्के पास आकर उनसे कहा कि यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपसे प्रश्न पूछना चाहती हूँ।

कपिलने कहा—माता, संकोच मत करो। तुम जो कुछ पूछना चाहती हो, पूछो।

माता देवहूतिने आरम्भमें ही शरणागति स्वीकार कर ली।

बिना ईश्वरका आसरा लिए जीवका उद्धार नहीं हो सकता। गीतामें अर्जुनने भी पहले शरणागति स्वीकार की थी और भगवान्से कहा था—

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वाम् प्रपन्नम्।

देवहूतिने पूछा—जगमें सच्चा सुख कहाँ है? जगत्में सच्चा आनन्द कहाँ है? नित्य आनन्द कहाँ है? जिसका नाश न हो सके, ऐसा आनन्द बताओ।

अनेक बार इन्द्रियोंका लालन-पालन करनेपर भी मुझे शांति नहीं मिली है। समय बीतते जाने पर भान होता है कि विषयोंके आनन्दमें कोई सार नहीं है। इन्द्रियोंने जो कुछ माँगा, वह सभी मैंने दिया, फिर भी तृप्ति नहीं हुई है।

इन्द्रियाँ हररोज नये-नये विषय माँगती हैं। जीवको रससुखकी ओर खींचती हैं। आँखें रूपसुखकी ओर और त्वचा स्पर्शसुखकी ओर खींचती है। कई लोग याद करते रहते हैं कि दो महीनेसे अमुक चीज खायी नहीं है। दो महीनेसे वह चीज खायी नहीं है. यह तो वे याद रखते हैं, किंतु वही चीज आज तक कितनी बार खायी है, वह याद नहीं रखते। खा-पीकर जीभको सन्तोष दिया नहीं कि आँखें सताने लगेंगी कि दो महीनेसे फिल्म नहीं देखी है। ऐसा सोच ही रहे होते हैं कि इतनेमें पत्नी कहती है कि पास-पड़ौसके लोग तो महीनेमें चार बार फिल्म देखने जाते हैं। नई फिल्म तक उन्होंने देख ली। हम कब जायेंगे?

रुपये-पैसे खर्च करके फिल्म देखनेके लिए अन्धेरेमें बैठते हैं। उन्हें सुधरा हुआ कहें या बिगड़ा हुआ? कुछ तो कहते हैं कि हम तो धार्मिक फिल्म देखते हैं। धार्मिक चित्र भी देखने नहीं चाहिये, क्योंकि रामका अभिनय करनेवाला राम तो नहीं होता। रामका अभिनय करनेवाला यदि परस्त्रीको काम-भावसे देखता हो तो उसकी फिल्में क्यों देखी जाएँ? राम-जैसा ही कोई पुरुष रामका अभिनय निभाये, तभी प्रभाव अच्छा रहेगा। आप कहेंगे कि मैं कटु बातें

कर रहा हूँ। किंतु मैं तो जो देख रहा हूँ, वही कह रहा हूँ। विलासी चित्र देखनेसे जीवन बिगड़ता है।

एक स्थानपर शङ्कर स्वामीने कहा है कि ये इन्द्रियाँ चोर हैं। इन्द्रियाँ तो चोरसे भी अधिक बुरी हैं। चोर तो जिसके घरमें, जिसके सहारे रहता है वहाँ चोरी नहीं करता, जब कि इन्द्रियाँ तो अपने पतिके समान आत्माको ही धोखा देती हैं। देवहूति कहती है कि इन चोर-सी इन्द्रियोंसे मैं उकता गई हूँ। मुझे बताओ कि जगत्में सच्चा सुख, सच्चा आनन्द कहाँ है और उसे पानेका साधन कौन-सा है।

कपिल भगवान्को आनन्द हुआ। वे बोले —माताजी, किसी जड़ वस्तुमें आनन्द नहीं रह सकता। आनन्द तो आत्माका स्वरूप है। अज्ञानवश जीव जड़ वस्तुमें आनन्द ढूँढ़ता है। जड़ वस्तुमें आनन्द रह नहीं सकता। संसारके विषय सुख तो देते हैं किंतु आनन्द नहीं देते। जो तुम्हें सुख देगा, वही तुम्हें दुःख भी देगा। किंतु भगवान् हमेशा आनन्द ही देंगे। आनन्द परमात्माका स्वरूप है।

संसारका सुख खुजली (चमड़ीकी एक बीमारी) जैसा है कि जब तक आप खुजाते रहते हैं, तब तक अच्छा लगता है। किंतु खुजानेसे नाखूनमें रहे हुए जहरके कारण खुजलीका रोग बढ़ता जाता है। सर्वोत्तम मिठाईका स्वाद भी गले तक ही रहता है।

जगत्के पदार्थोंमें आनन्द नहीं है, उसका भासमात्र है। यह जगत् दुःखरूप है। गीताजीमें भी कहा है—

अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्।

भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन ! क्षणभंगुर और सुखरहित इस जगत्को और मनुष्य-शरीरको प्राप्त करके तू मेरा ही भजन कर।

आरम्भमें जड़ वस्तुमें सुख-सा अनुभव होता है किंतु वह सुख विषमय ही है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥ (गी. अ. १८ श्लोक ३८)

विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे जो सुख उत्पन्न होता है, वह आरम्भमें (भोगकालमें) तो अमृत-जैसा लगता है किंतु परिणामकी दृष्टिसे तो वह विष-समान ही है। इसी कारणसे इस सुखको राजस कहा गया है।

इन्द्रियोंको सुखसे तृप्ति नहीं होती। विवेकरूपी धनका हरण करके इन्द्रियाँ जीवको संसाररूपी गर्तमें फेंक देती हैं। बाहरके विषयोंमें न तो आनन्द है और न तो सुख। आनन्द बाहर नहीं, अन्दर है, आत्मामें है। आनन्द अविनाशी अन्तर्यामीका स्वरूप है। कपिल आगे कहते हैं—हे माता, यदि शरीरमें आनन्द होता तो उसमेंसे प्राणोंके निकल जानेके बाद भी लोग उसे सँजोकर अपने पास रखते।

विषय जड़ हैं। जड़ पदार्थमें आनन्द रह नहीं सकता। चैतन्यके स्पर्शके कारण ही जड़ पदार्थमें आनन्द-सा प्रतीत होता है।

दो शरीरोंके स्पर्शसे सुख नहीं मिलता, किंतु दो प्राणोंके एक होनेसे आनन्दका अनुभव होता है। यदि दो प्राणोंके इकट्ठे होनेपर सुख मिलता है तो जिसमें अनेक प्राण समाये हुए हैं, ऐसे परमात्माके मिलनसे कितना अधिक आनन्द होता होगा ?

बाहरके विषयोंमें आनन्द नहीं है, किंतु चित्तमें, मनमें आत्माका प्रतिबिंब पड़नेसे आनन्द-सा अनुभव होता है। इन्द्रियोंको मनचाहा पदार्थ मिलनेपर विषयोंमें वे तद्रूप हो जाती हैं, अतः कुछ समयके लिए एकाग्र व एकाकार होता है। उस समय चित्तमें आत्माका प्रतिबिंब पड़ता है, जिससे आनन्दका भास होता है। जगत्के विषयोंमें जब तक मन फँसा हुआ है, तब तक आनन्द नहीं मिल सकेगा। आनन्द आत्माका उसी प्रकार सहज स्वरूप है कि जिस प्रकार शीतलता जलका सहज स्वरूप है। आनन्द आत्मामें ही है।

आत्मा और परमात्माका मिलन ही परमानन्द है। भगवान्में मन फँसे और डूबने लगे तभी आनन्द मिलता है।

बार-बार अपने मनको तुम समझाओ कि संसारके जड़ पदार्थोंमें सुख नहीं है। सोनेपर सब भूल जानेसे आनन्द मिलता है। सारे संसारको भूलनेके बाद ही गाढ़ी नींद आती है।

आत्मा तो नित्य, शुद्ध और आनन्दरूप है। सुख-दुःख तो मनके धर्म हैं। मनके निर्विषय होनेपर आनन्द मिलता है। दृश्यमेंसे दृष्टिको हटाकर द्रष्टामें स्थिर किया जाए तो आनन्द मिलेगा। आनन्द परमात्माका स्वरूप है।

आदत-हाजत कम करोगे तो सुखी होगे।

कपिल कहते हैं—माताजो, यदि विषयोंमें ही आनन्द समाया हुआ हो तो सभीको सदा एक समान आनन्द मिलना चाहिए। तृप्त व्यक्तिके आगे यदि श्रीखण्ड भी रखा जाएगा तो उसे पसन्द नहीं आएगा। बीमार व्यक्तिके सामने मालपुए रखे जायें तो भी वह नहीं खाएगा। अतः श्रीखण्डमें, मालपुओंमें अर्थात् विषयोंमें, जड़ पदार्थोंमें आनन्द नहीं है। यदि श्रीखण्डमें आनन्द समाया हुआ होता तो बीमारको भी उसे खानेसे आनन्द मिलना चाहिए था। किंतु उसे आनन्द नहीं मिलता, अतः आनन्द श्रीखण्डमें नहीं। इसी प्रकार सभी विषयोंके बारेमें भी समझना चाहिए।

संसारके पदार्थोंमें तो आनन्द नहीं है, किंतु इन्द्रियोंको मनचाहे विषय, पदार्थ मिलनेपर वे अंतर्मुख होती हैं। अंतर्मुख हुए मनमें ईश्वरका प्रतिबिम्ब पड़ता है, अतः आनन्द होता है। मनके अंदर आनेपर सुख मिलता है और बाहर जानेपर सुख उड़ जाता है। कल्पना करो कि एक सेठ श्रीखण्ड-पूरीका भोजन कर रहा है, इतनेमें कहींसे तार आता है कि उनका कारोबार डूब गया तो वही श्रीखण्ड उसे जहर जैसा लगेगा और खानेको दिल ही नहीं होगा।

संसारके जड़ पदार्थोंमें आनन्द नहीं है। जब-जब आनन्द मिलता है, चेतन परमात्माके सम्बन्धके कारण ही मिलता है। परमात्माके साथ सम्बन्ध होनेपर ही आनन्द मिलेगा। जीव कपटी है, परमात्मा भोले हैं। जीव उपेक्षा करेगा तो भी परमात्मा उसके अपराधको क्षमा कर देंगे। आनन्द नारायणका स्वरूप ही है।

आनन्दका विरोधी शब्द नहीं मिलेगा। आनन्द—यह ब्रह्मस्वरूप है। जीवात्मा भी आनन्दरूप है। अज्ञानके कारण जीव आनन्दको ढूंढ़नेके लिए बाहर जाता है। बाहरका आनन्द लम्बे समय तक टिक नहीं सकता।

आत्माके लिए कोई वास्तविक सुख-दुःख नहीं है। सुख-दुःख मनमें ही होते हैं। सुख-दुःख मनका धर्म है। जन्म-मरण शरीरका धर्म है। भूख और प्यास आत्माके धर्म हैं। मनमें सुख-दुःख होनेपर आत्मा कलपती है कि मुझे दुःख होता है। मनपर हुए सुख-दुःखका आरोप अज्ञानसे आत्मा अपनेपर करती है। आत्मस्वरूपमें उपाधिके कारण सुख-दुःखका भास होता है—आत्मा स्फटिक मणि जैसी श्वेत, शुद्ध है। उसमें विषयोंका प्रतिबिंब पड़नेसे मनके कारण आत्मा मानती है कि उसे दुःख-सुख हुआ है। स्फटिक मणिके पीछे जिस रङ्गका फूल रखोगे, वैसा ही वह दीखेगा। वह रङ्ग स्फटिकका नहीं, फूलका ही है। स्फटिक मणि श्वेत है। उसके पीछे लाल गुलाबका फूल रखोगे तो वह लाल दीखेगा। गुलाबके संसर्गसे वह लाल हो जाता है।

जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिंब पड़ता है। जलके हलन-चलनके कारण वह प्रतिबिंब भी हलचल करता है, कंपित होता है। किंतु वास्तविक चन्द्रमापर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी तरह देहादिके धर्म, स्वयं में न होते हुए भी जीवात्मा उन्हें अपनेमें कल्पित कर लेता है। अन्यथा जीवात्मा तो निर्लेप है। जीवात्मामें देखे जाते हुए देहादिके धर्म इस प्रकार दूर होंगे। निष्काम भागवत धर्मके अनुसरणसे, भगवान्‌की कृपासे और उसीसे प्राप्त भगवान् परके भक्तियोगसे धीरे-धीरे वह प्रतीति दूर होती है। जो भक्तिनिष्ठ है वह समस्त लोकमें व्याप्त परमात्माको देख सकेगा।

संसारके विषयोंमेंसे सभी प्रकारसे हटा हुआ मन ईश्वरमें लीन होता है। जब मन निर्विषय होता है, तभी वह आनन्दरूप होता है।

जीव जैसा कपटी और ईश्वर जैसा भोला और कोई नहीं है।

दूसरोंके लिए कुछ करना पड़े तो तकलीफ-सी होती है, परन्तु अपनोंके लिए करना हो तो आनन्द होता है। रातको ग्यारह बजे कोई साधु आयगा तो उनसे पूछा जायगा कि महाराज, चाय लाऊँ या दूध लाऊँ। मन कहेगा कि इतनी रात गए यह बला कहाँसे आ पड़ी। विवेक तो करना ही पड़ता है। माहराज सरल होंगे तो कहेंगे कि सुबहसे भूखा हूँ, पूरी बना डालो। किसीका पत्र लेकर आये हैं अतः बनाना तो पड़ेगा ही, किंतु खाना बनानेके साथ-साथ बर्तनोंकी ठोकपीट भी सुनाई देगी।

पर यदि नैहरसे अपने भाई आयेंगे और कहेंगे कि मैंने नाश्ता कर लिया है, अतः भूख नहीं है, फिर भी वह कहेगी कि नहीं, तू भूखा होगा। मैं अभी हलवा-पूरी बना देती हूँ। कोई देरी नहीं होगी। अपने भाइयोंको तो हलवा-पूरी खिलायेगी और महाराजको चायसे ही टाल देगी।

यह सब मनका खेल है। मन बड़ा कपटी है। 'मेरा और तेरा' का खेल इस मनने ही रचा है। सचमुच मन ही बन्धन और मोक्षका कारण है।

कपिल कहते हैं—हे माता, मनको ही इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण माना गया है। मन जो विषयोंमें आसक्त हो जाये तो वह बन्धनका कारण बनता है और वही मन यदि परमात्मामें आसक्त हो तो मोक्षका कारण बन जाता है।

चेतः खल्वस्य बंधाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बंधाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ (भा. ३-२५-१५)

भगवान् मनुष्यका शरीर या घर नहीं, बल्कि हृदय देखते हैं। मन विशाल हो तो भगवान् आते हैं। मनमें छिपी हुई अहंता-ममता, अपने-परायेकी भावना ही मनको दुःखी करती है। मनके ये धर्म आत्मस्वरूपमें भासमान होनेके कारण आत्मा स्वयंको सुखी-दुःखी मानती है, परंतु वास्तवमें वह आनंदरूप है।

मनके सुधरनेपर सब कुछ सुधरता है और मनके बिगड़नेपर सब कुछ बिगड़ता है। सुख-दुःखके दाता हैं, अहंमन्यता और ममता। उन्हें छोड़ देनेपर ही आनंदरूप मिलता है।

पाप करनेके लिए किसीको प्रेरणा देनेकी जरूरत नहीं पड़ती, किंतु पुण्य करनेके लिए प्रेरणा देनी पड़ती है। मन अधोगामी है।

मनुष्यका मन पानीकी भाँति गड्ढेकी ओर ही बहता है। जलकी तरह मन भी अधोगामी है। जलकी भाँति मनका स्वभाव भी ऊपर नहीं, नीचेकी ओर जानेका है। इस मनको ऊपर चढ़ाना है। उसे परमात्माके चरणों तक ले जाना है। यंत्रके सङ्गमें आनेसे पानी ऊपर चढ़ता है, उसी तरह मंत्रके सङ्गमें आनेपर मन ऊपर चढ़ता है। मनको मंत्रका सङ्ग दो। मंत्रका सङ्ग होगा तो अधोगामी मन ऊर्ध्वगामी बनेगा। जिसने अपना मन सुधारा है वह दूसरोंको भी सुधार सकेगा। मनको सुधारनेका और कोई साधन नहीं है। मन शब्दके अक्षरोंको उलट दोगे तो शब्द बनेगा नम। नम और नाम ही मनको सुधारेंगे।

मनको स्थिर करनेके लिए नामजपकी आवश्यकता है। जपसे मनकी मलिनता और चञ्चलता दूर होती है। अतः किसी भी मंत्रका जाप करो। सांसारिक विषयोंके सङ्गसे बिगड़ा हुआ मन ईश्वरका ध्यान करनेसे सुधरता है। सभीके अन्तरमें परमात्मा है, फिर भी वे सभीका दुःख दूर नहीं करते हैं। अंदर विराजे हुए चैतन्यरूप परमात्मा मन-बुद्धिको प्रकाश देते हैं। भगवान्का स्वरूप ऐसा तेजोमय है कि हम-जैसे साधारण जीव उन्हें देख नहीं पाते।

भगवान्का निर्गुण स्वरूप सूक्ष्म होनेके कारण दिखाई नहीं देता और भगवान्का सगुण स्वरूप तेजोमय है, अतः वह भी नहीं दीखता। इस कारणसे हम जैसोंके लिए तो भगवानका नामस्वरूप, मंत्रस्वरूप ही इष्ट है। भगवान् चाहे स्वयंको छिपा लें, किंतु अपने नामको छिपा नहीं सकते। नामस्वरूप प्रकट है, अतः परमात्माके किसी नामस्वरूपका दृढ़ मनसे आश्रय ले लो।

मंत्रके बिना मनशुद्धि नहीं हो सकती। बिगड़ा हुआ मन ध्यानके साथ तप करनेसे सुधरेगा। लौकिक वासनासे मन बिगड़ता है, और अलौकिक वासनाके जागनेपर वह सुधरेगा। वासनाका नाश वासनासे ही करना पड़ता है। असत् वासनाका विनाश सद्वासनासे होगा।

जब मनुष्य सोचेगा कि मुझे जन्म-मरणके फेरोंसे मुक्त होना है, मुझे गोलोकधाममें जाना है, मुझे किसी माताके गर्भमें नहीं जाना है, मुझे इसी जन्ममें परमात्माके दर्शन करने हैं— ऐसी भावना रखनेसे मन सुधरेगा। काँटा काँटेसे निकलता है, उसी तरह वासना ही वासनाको

निकाल बाहर करती है। फिल्म देखनेकी वासना दूर करनी है तो परीक्षामें पहला नम्बर आनेकी वासना रखो। ऐसी वासनासे अध्ययनमें रुचि पैदा होगी और अध्ययनकी रुचिसे फिल्म देखनेकी वासना छूट जायगी।

किसी एक राजाके पास एक बकरा था। राजाने एक बार ऐलान किया कि इस बकरेको जङ्गलमे चराकर जो उसे तृप्त करके लाएगा उसे मैं आधा राज्य दूँगा, किंतु बकरेका पेट पूरा भरा है या नहीं इसकी परीक्षा मैं खुद करूंगा।

इस ऐलानको सुनकर एक मनुष्यने राजाके पास आकर कहा कि बकरा चराना कोई बड़ी बात नहीं है और वह बकरेको लेकर जङ्गलमें गया। वहाँ सारा दिन उसने कोमल हरी घास बकरेको खिलायी। शाम होनेपर उसने सोचा कि अब तो बकरेका पेट भर गया होगा, क्योंकि सारा दिन उसे चराता फिरा हूँ। बकरेके साथ वह राजाके पास आया। राजाने थोड़ी-सी हरी घास बकरेके आगे रखी। तो बकरा उसे खाने लगा। इसपर राजाने उस मनुष्यसे कहा कि तूने उसे पेटभर खिलाया ही नहीं है, वर्ना वह घास क्यों खाने लग जाता ?

बहुतोंने बकरेका पेट भरनेका प्रयत्न किया। परंतु ज्योंही दरबारमें उसके सामने घास डाली जाती कि वह खाने लगता।

एक सत्सङ्गीने सोचा कि राजाके इस एलानमें कोई रहस्य है, तत्त्व है। मैं युक्तिसे काम लूंगा। वह बकरेको चरानेके लिए ले गया। जब भी बकरा घास खाने जाता तो वह उसे लकड़ीसे मार देता। सारे दिनमें कई बार ऐसा हुआ। अंतमें बकरेने सोचा कि यदि मैं घास खानेका प्रयत्न करूंगा तो मार खानी पड़ेगी।

शामको वह सत्सङ्गी बकरेको लेकर राजदरबारमें लौटा। बकरेको घास बिलकुल खिलायी नहीं थी, फिर भी उसने राजासे कहा मैंने उसे भरपेट खिलाया है, अतः वह अब बिल्कुल घास नहीं खाएगा। कर लीजिए परीक्षा।

राजाने घास डाली लेकिन उस बकरेने खाया तो क्या, उसे देखा और सूंघा तक नहीं। बकरेके मनमें यह बात बैठ गयी थी कि घास खाऊँगा तो मार पड़ेगी। अतः उसने घास नहीं खायी।

यह बकरा हमारा मन ही है। बकरेको घास चराने ले जानेवाला जीवात्मा है। राजा परमात्मा है। मनको मारो। मनपर अंकुश रखो। मन सुधरेगा तो जीवन सुधरेगा। मनको विवेकरूपी लकड़ीसे रोज पीटो। भोगसे जीव तृप्त नहीं हो सकता। त्यागमें ही तृप्ति समाई हुई है।

मन अहंता और ममतासे भरा हुआ है। मन जब कुछ माँगे तब उसे विवेकरूपी लकड़ीसे मारोगे तो वह वशमें हो जाएगा।

रामदास स्वामीने मनको बोध दिया है। दृढ़ वैराग्य, तीव्र भक्ति और यम-नियमादिके अभ्याससे चित्त वशमें होता है और स्थिर होता है। अन्तमें धीरे-धीरे प्रकृति भी अदृश्य होती जाती है।

संसारपर वैराग्य लानेका एक ही उपाय है—

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।

इस जगत्‌में सुखी होनेके दो ही मार्ग हैं—एक ज्ञान-मार्ग और दूसरा भक्ति-मार्ग।

ज्ञान-मार्ग कहता है कि सब कुछ छोड़कर परमात्माके पीछे पड़ो। बिना वैराग्यके ज्ञान नहीं मिलता। ज्ञान-मार्गमें वैराग्य मुख्य है। इसमें सब कुछ छोड़ देना पड़ता है। ज्ञानी सब कुछ छोड़कर एक भगवान्को ही पकड़े रहता है। इस मार्गमें त्याग मुख्य है। इस मार्गके आचार्य शिवजी हैं। सर्वस्वका त्याग करना बड़ा कठिन काम है।

भक्ति-मार्ग कहता है कि सर्वस्वका त्याग कठिन है। इसकी अपेक्षा तो बेहतर है कि सभी कुछमें ईश्वर है, ऐसा मानकर सभीसे विवेकपूर्वक प्रेम करो। इस मार्गमें भगवत्भाव रखकर समर्पण करना है। भक्ति-मार्गमें कुछ भी छोड़नेकी बात नहीं है। वैष्णव कहेगा कि केलेकी छालमें भी भगवान् हैं। मैं इसे गायको खिलाऊँगा।

भक्ति-मार्गमें समर्पण मुख्य है। इस मार्गके आचार्य श्रीकृष्ण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण हर किसीपर प्रेम रखते हैं। इस मार्गमें हर किसीके साथ प्रेम करना होता है। भगवान् जैसा प्रेमी न तो कोई हुआ है और न कोई होगा।

एक बार भृगु ऋषि वैकुण्ठमें गये। भगवान् सो रहे थे। लक्ष्मीजी चरण-सेवा कर रही थीं। भृगुको लगा कि यह तो कोई विलासी लगता है, उसे बड़ा देव कौन कहे? ऋषि तो परीक्षा करने ही आये थे, अतः उन्होंने सोये हुए भगवान्की छातीपर लात मार दी।

भृगु ऋषिने लात मारी किंतु उस लात मारनेवालेसे भी मेरा कन्हैया तो प्रेम ही करता है। भगवान्ने ऋषिसे कहा—मेरी छाती तो बड़ी कठोर है और आपके चरण-कोमल हैं। शायद आपके चरणोंमें चोट आयी होगी और इतना कहकर भगवान् ऋषिके चरण दबाने लगे।

है कोई जगत्में ऐसा प्रेम करनेवाला दूसरा।

विष देनेवालेसे भी कन्हैया प्यार करता है। लक्ष्मीजीको बुरा लगा। वे बोलीं—ऐसी भी कहीं परीक्षा हो सकती है? परीक्षा करनेका यह ढङ्ग अच्छा नहीं है। मैं ब्राह्मणोंके घर नहीं जाऊँगी। लक्ष्मीने ब्राह्मणोंको त्याग दिया। इसीलिए सामान्यतः ब्राह्मण गरीब रह गये हैं।

ज्ञानी मानते हैं कि जबसे यह शारीरिक सम्बन्ध हुआ है, तबसे इसीसे दुःख हुआ है। अतः वे शरीरसे प्रेम नहीं करते।

प्रेम करना ही है तो सबसे प्रेम करो। किसीसे भी प्रेम नहीं करना हो तो कोई बात नहीं, किंतु अपने शरीरसे तो प्रेम करो ही नहीं। एक परमात्मासे प्रेम करो। सभीसे प्रेम करो अथवा सभीका त्याग करो और यदि तुम सभीका त्याग नहीं कर सकते हो तो सभीमें ईश्वरभाव रखकर सभीसे प्रेम करो। सभीमें-से ममताका त्याग करो अथवा सब कुछ ईश्वरको समर्पित करके सभी कर्मफलोंका त्याग करो।

सभीके प्रति ममता-मेरापन होना ही समर्पण-मार्ग है। अमुकके प्रति ही ममता होना स्वार्थ-मार्ग है, आज तो सभी स्वार्थमार्गी हैं।

पैसो मारो परमेश्वर ने, पत्नी मारी गुरु,
छैयां छोकरां मारां शालिग्राम, पूजा कोनी करुं ?

अर्थात् धन-सम्पत्ति मेरा परमेश्वर है, मेरी पत्नी ही मेरी गुरु है और मेरी सन्तान मेरे शालिग्राम हैं। अब मैं पूजा करूँ भी तो किसकी?

जो संसारमें-से जागृत नहीं होता, वह कभी कन्हैयाको पा नहीं सकता। कंस, काम और अभिमान है। वही सभीको कारागृहमें रखता है।

जागृत कौन है ? जो मनसे विषयसुखका त्याग करके भगवान्के नामका जाप करे वही।

जगत्में कौन जाग्रत हुआ है ? तुलसीदासजी कहते हैं—

जानिय तबहि जीव जग जागा।
जब सब विषय विलास बिरागा॥

जब सभीमें विषय-विलासके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाए, तब मानो कि वह जीव जागा है। कपिल कहते हैं—माताजी, यह मन अनादिकालसे संसारमें भटकता आया है। सत्सङ्गसे मन सुधरता है। वासनाका त्याग करनेसे मन सुधरता है। विवेकी पुरुष सङ्ग अथवा आसक्तिको आत्माका बन्धन मानते हैं, किंतु सन्त-महात्माओंके प्रति जब आसक्ति या सङ्ग हो जाए तब मोक्षके द्वार खुल जाते हैं। अतः सत्सङ्ग करो।

देवहूतिने कहा, आप सत्सङ्ग करनेकी आज्ञा देते हैं, किंतु मुझे तो इस संसारमें कहीं भी कोई सन्त दिखाई नहीं पड़ता।

कपिल भगवान्ने कहा—माता, तव मानो कि तुम्हीं पापी हो। पाप होनेपर तो सन्तका मिलन होनेपर भी सद्भावना नहीं होती। सन्तको ढूंढ़ने तुम कहाँ जाओगी ? तुम ही सन्त बनोगी तो तुम्हें सन्त मिलेंगे।

एकनाथ, तुकाराम, नरसिंह आदि गृहस्थाश्रमी थे। वे घरमें रहकर ही सन्त बने थे। सन्तोंके लक्षण जीवनमें उतारोगे तो सन्त बन सकोगे।

बिना सत्सङ्गके सुख नहीं मिलता। स्वयं सन्त बने बिना सच्चा सन्त नहीं मिलेगा। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। क्रोधके कारण हनुमान्जीको श्वेत फूल भी लाल दिखाई दिए थे।

एकनाथ महाराज रामायणके सुन्दरकाण्डकी कथा कर रहे थे।

इस सुन्दरकाण्डमें सभी कुछ सुन्दर है। सुन्दरकाण्डका यह नाम इसलिए रखा गया है कि इसमें हनुमान्जीको माता सीताजीकी पराभक्तिके दर्शन हुए हैं।

ब्रह्मचर्य और रामनाम हो तो इस संसारसागरको पार किया जा सकता है। हनुमान्जी जैसे ही इस सागरको पार कर सकते हैं। सागर पार करके हनुमान्जी अशोकवनमें आये। एकनाथ महाराज कथामें कहते हैं कि जब हनुमान्जी अशोकवनमें आए तब वहाँ वाटिकामें सफेद फूल खिल रहे थे। जहाँ सीताजी वहाँ अशोकवन। जहाँ भक्ति वहाँ अ-शोक (शोकका अभाव)।

हनुमान्जी वहाँ कथा सुननेके लिए आये थे। उन्होंने प्रकट होकर विरोध करते हुए कहा कि महाराज, आप गलत कह रहे हैं। अशोकवनमें उस समय लाल फूल खिले हुए थे, सफेद नहीं। मैंने अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष देखा था। एकनाथ महाराजने कहा कि मैं तो अपने सीतारामको मनाकर कथा कर रहा हूँ और मुझे जैसा दिखाई दे रहा है, वैसा कह रहा हूँ। अन्तमें इस झगड़ेको लेकर वे दोनों श्रीरामके पास गए। रामचन्द्रजीने कहा कि आप दोनोंकी बात सही है। क्रोधावेशसे लाल आँखें होनेके कारण हनुमान्जीने फूल लाल देखे थे, अन्यथा फूल तो सफेद ही थे।

जिसकी दृष्टि जैसी होगी उसे वैसी ही सृष्टि दिखाई देगी। दुर्योधनको जगत्‌में कोई सन्त न मिला, उसने सभीको दुर्जन ही पाया। युधिष्ठिरको कोई दुर्जन नहीं मिला, उसने सभीको सज्जन ही पाया।

सन्तोंके धर्म (लक्षण) में तितिक्षाको प्राधान्य दिया गया है। सहन करोगे तो सुखी होगे।

सन्तोंका चरित्र पढ़ो। सन्तोंको कई दुःख सहने पड़े हैं। किंतु उन दुःखोंका सन्तोंपर कुछ असर नहीं होता। अतिशय सहन करे वही सन्त है।

एकनाथ महाराज पैठणमें रहते थे। गोदावरी नदीकी ओर जानेवाले मार्गपर एक पठान रहता था। एकनाथ महाराज उसी रास्तेसे स्नान करनेके लिए जाते थे। वह पठान महाराजको बहुत सताता था किंतु महाराज सभी कुछ सहते रहते थे।

एक दिन उस पठानने सोचा कि यह ब्राह्मण क्रोधित नहीं होता है तो आज मैं उसे क्रोधित करके ही रहूँगा। महाराज स्नान करके वापस आ रहे थे तो उस पठानने महाराजपर थूका। महाराज दूसरी बार स्नान करने गये। फिर उस पठानने महाराजपर थूका। कई बार ऐसा होता रहा किंतु महाराज क्रोधित न हुए। गोदावरीसे वे कहने लगे कि तेरी कृपा है कि तू मुझे स्नान करनेके लिए बार-बार बुला रही है। वह पठान चाहे दुर्जनता करता रहे, मैं अपनी सज्जनता नहीं छोड़ना चाहता। पठानने एक सौ आठ बार महाराजपर थूका और उतनी ही बार महाराजने गोदावरी-स्नान किया। अन्तमें वह पठान लज्जित हुआ। उसने महाराजके पाँव छुए और क्षमा माँगी। उसने कहा— महाराज, आप सन्त हैं, ईश्वर हैं। मैं आपको पहचान न सका। महाराजने उत्तर दिया कि क्षमाका कोई सवाल नहीं है। तुम्हारे कारण तो आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरी-स्नानका पुण्य मिला।

शान्ति उसीको बनी रहती है जो अन्दरसे ईश्वरके साथ सम्बद्ध रहे। जो ईश्वरसे दूर है, उसे शान्ति कहाँसे मिलेगी ?

कपिलजी कहते हैं—माता, जो बहुत सहन करता है वही संत बन सकता है। अतिशय विपत्तिमें भी जो ईश्वरका अनुग्रह समझे, वही महान् वैष्णव है।

दुष्ट लोग किसीको भी अच्छा नहीं देख सकते। दुष्टोंने तुकारामको गधेपर बिठाया, तो तुकारामकी पत्नीको दुःख हुआ किंतु तुकाराम तो उससे बोले कि मेरे विठ्ठलनाथजीने मेरे लिए जो गरुड़ भेजा है, उसीपर बैठा हूँ मैं तो। सभीने गधा देखा किंतु तुकारामकी पत्नीने गरुड़ देखा।

जगत्‌में सब कुछ सहते रहो।

जगत्‌में अन्धकारका अस्तित्व है, अतः प्रकाशका मूल्य है।

सन्तोंका पहला लक्षण तितिक्षा है तो दूसरा है करुणा। तीसरा लक्षण है, सभी देहधारियोंके प्रति सुहृद्भाव। अजातशत्रु, शान्त, सरल स्वभाव आदि भी सन्तोंके लक्षण हैं। शान्तिकी परीक्षा प्रतिकूलतामें होती है। अर्थ-धनसम्पत्तिसे तो प्रतिदिन सम्बन्ध रखते हो, किंतु उसके साथ-साथ परमात्मासे भी सम्बन्ध रखोगे तो सम्पत्ति भी मिलेगी और शान्ति भी। भागवतकार कहते हैं कि इस जीवन-गाड़ीकी केवल पटरी ही बदलनी है। ईश्वरके लिए कुछ-न-कुछ त्यागो।

सन्त पुरुष प्रभुके हितार्थ सर्वस्वका त्याग करते हैं। "मत्कृते त्यक्तकर्माणः त्यक्तस्वजन-बान्धवाः।" सन्त मेरे अर्थात् परमात्माके लिए सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंका त्याग करते हैं। सन्त परमात्माके लिए संसारके विषयोंका बुद्धिपूर्वक त्याग करते हैं।

भगवान् परीक्षा करके ही अपनाते हैं—

भूखे मारुँ, भूखे सुवाडुँ,
तननी पाडुँ छाल, पछी करीश न्याल।

मैं भूखसे व्याकुल करूँगा, भूखा ही सुलाऊंगा, तनको गला दूंगा और तब उसे मालामाल करूँगा।

भगवान्ने नरसिंह मेहताकी कई बार परीक्षा ली थी।

पर, हे भगवान्, इस कलियुगमें आप ऐसी परीक्षा करेंगे तो कोई भी आपकी सेवा नहीं करेगा।

भगवत्-परायण रहकर भगवान्की कथाओंका श्रवण-कीर्त्तन करे, भगवान्में ही चित्त रमाता रहे तो भक्तिका विकास होता है। भगवान्की कथा सुननेसे श्रद्धा दृढ़ होती है। उसके बाद भगवान्के लिए आसक्ति बढ़ती है। आसक्ति बढ़नेसे व्यसनात्मिका भक्ति प्राप्त होती है और जिसको भक्ति व्यसनात्मिका बने, उसकी मुक्ति सुलभ होती है। भक्ति जब व्यसन-सी उत्कट बनती है, तब ईश्वरके पास ले जाती है।

हे माता, तीव्र भक्तिके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। तीव्र भक्तिका अर्थ है, व्यसनात्मिका भक्ति।

तुकारामने भक्तकी बड़ी अच्छी व्याख्या दी है। एक क्षण भी जो भगवान्से विभक्त न हो पाये, वह भक्त है। व्यवहारका कामकाज निभाते हुए भी जो भगवान्से विभक्त न हो पाये, वही भक्त है। "तीव्रेण भक्तियोगेन"

माता देवहूतिको तीव्र भक्ति करनेकी आज्ञा दी है। तीव्र भक्तिका अर्थ है—एक भी क्षण ईश्वरसे विभक्त न होना।

इस तरह, प्राकृतिक गुणोंसे निष्पन्न शब्दादि विषयोंका त्याग करके, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की गई सुदृढ़ भक्तिसे मनुष्य अपनी इसी देहमें, अपनी अन्तरात्माके समान मुझे प्राप्त कर लेता है।

भगवान्की अहैतुकी निष्काम भावना भक्तिसे भी श्रेष्ठ है।

कपिल भगवान् माता देवहूतिसे कहते हैं—यह सब जो दृश्यमान है वह सत्य नहीं है। स्वप्न असत्य होते हुए भी सुख-दुःख देता है। जिस प्रकार स्वप्न देखनेवालेको अपना मस्तक बिना कटे भी उसके कट जानेकी भ्रान्ति होती है और वह रोने लगता है, उसी प्रकार अविद्याके कारण जीवात्माको सब भ्रान्ति होती है। इसे ही माया कहते हैं। वस्तु न होनेपर भी वह स्वप्नमें दिखाई देती है, उसी तरह तात्त्विक दृष्टिसे कुछ भी न होते हुए भी जागृतावस्थामें माया और अज्ञानके कारण सब कुछका आभास होता है।

कपिल आगे कहते हैं—माता, जगत् स्वप्न जैसा है। यह सिद्धान्त भागवतमें बार-बार इसलिए कहा गया है कि जिससे जगत्के पदार्थके लिए मोह न जागे। संसारके विषयोंके प्रति पूर्णतः वैराग्य हो, इसीलिए यह कहा गया है।

सांसारिक सुखके उपभोगकी लालसा जब तक बनी रहे, तब तक मानो कि तुम सोये हुए हो। जागे हुएको ही कन्हैया मिलता है। सुख भोगनेकी इच्छा बड़ी दुःखद है। भागवत-ध्यानमें जगत् विस्मृत हो जाये तभी ब्रह्मसम्बन्ध जुड़ पाता है। ध्यानमें प्रथम, शरीरको स्थिर करो, फिर आँखोंको स्थिर करो और अन्तमें मनको स्थिर करो।

जब तक शरीर और आँखें स्थिर नहीं हो पातीं तब तक मन स्थिर नहीं हो पाता। आँखोंमें श्रीकृष्णके स्थिर होनेपर मन शुद्ध होता है। भागवत गोवर्धननाथका स्वरूप है। श्रीकृष्णके स्वरूपमें ध्यान रखकर कथा सुनो। आँखें श्रीकृष्णमें और प्राण कानोंमें स्थिर कर कथा सुनो।

जिसे ध्यान करना है, वह एक आसनपर बैठे और मनको स्थिर करे। ध्यान करते समय संसारको मनसे निकाल बाहर करो।

ध्यान करनेसे मन स्थिर होता है। बिना ध्यानके दर्शन परिपूर्ण नहीं होता।

भोगभूमिमें रहकर भगवान्‌का ध्यान करना टेढ़ा काम है। संसारमें रहकर ज्ञान-भक्तिमें निष्ठा रखना सरल नहीं है। भूमिका मनपर प्रभाव पड़ता ही है। ध्यान करनेवालेको चाहिये कि वह पवित्र और एकान्त स्थानमें बैठकर ध्यान करे।

कपिल कहते हैं—माता, जिसे ध्यान करना है, वह पवित्र भोजनका परिमित मात्रामें सेवन करे। आहार सात्त्विक और अल्प होना चाहिए। जिसे अजीर्ण हो, वह ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता।

जिसे ध्यान करना हो, वह चोरी न करे। अस्तेयम्। मनुष्य कई बार आँख और मनसे भी चोरी करता है। अन्यकी वस्तुका मानसिक चिन्तन भी चोरी ही है।

जो ध्यान करना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। सभी इन्द्रियोंसे ब्रह्मचर्यका पालन किया जाये। कई लोग शारीरिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं किंतु मानसिक ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते। ब्रह्मचर्यका मानसिक भङ्ग, शारीरिक भङ्ग जैसा ही है। मनसे करो या आँखोंसे, किंतु चोरी तो चोरी ही है। अतः प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्यका पालन करो। केवल शरीरसे नहीं, मनसे भी ब्रह्मचर्यका पालन करो। एक दिनके ब्रह्मचर्य-भङ्गसे चालीस दिन तक मन स्थिर नहीं हो पाता। जबतक देहका भान है, तबतक धर्मको न छोड़ो।

इसके बाद ध्यानकी विधि बताई गई, जिसका वर्णन पहिले हो गया।

कपिल भगवान्‌ने माता देवहूतिको ध्यान करनेकी आज्ञा दी। ध्यानके बिना ईश्वरका अनुभव नहीं होता। रात्रिको सोनेसे पहिलें प्रभुका ध्यान करो।

वे कहते हैं—माता, परमात्माके अनेक स्वरूप हैं जिनमें-से किसीको भी इष्टदेव मानकर उसका ध्यान करो।

व्यासजीने किसी विशेष स्वरूपका आग्रह नहीं किया है। तुम्हें जो भी स्वरूप पसन्द आए, उसीका ध्यान करो।

हे माता, तुम चतुर्भुज नारायणका ध्यान करो।

ध्यान करनेसे पहिले ठाकुरजीके साथ सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी है। दास्य भक्तिमें पहिले चरणोंमें दृष्टि स्थिर करनी पड़ती है।

बार-बार मनको किसी भी एक स्वरूपमें स्थिर करो। ध्यानमें तन्मयता होनेपर संसारका विस्मरण हो जाता है। ध्यानमें देहभान और जगत्‌भान विस्मृत होता जाता है। ज्यों-ज्यों संसारका विस्मरण होता जाता है, त्यों-त्यों प्रभुस्मरणमें आनन्द आने लगता है।

शक्करकी एक गुड़िया सागरकी गहराई नापने अन्दर गयी सो गई ही। परमात्मा समुद्रके समान व्यापक है, विशाल है। ज्ञानी पुरुष परमात्म-स्वरूपके साथ ऐसे घुलमिल जाते हैं कि फिर वे यह कह नहीं सकते कि ये जानते हैं या नहीं जानते। ध्यान करनेवाला ध्यान करते हुए ध्येयमें मिल जाता है। यही अद्वैत है। ध्यान करनेवालेका "अहम्-मेरापन" ईश्वरसे मिल जाता है। देहभानके विस्मृत होनेपर जीव और शिव एक हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी लोग भेदभावसे ध्यान करते हैं तो कुछ ज्ञानी लोग अभेदभावसे। पहले भेदभावसे ध्यान करते हैं और फिर अभेदभावसे।

फिर जीवका जीवत्व ईश्वरमें मिल जाता है, जीवत्व स्वतन्त्र नहीं रह पाता। जिस प्रकार कीड़ा भँवरीका स्मरण करते हुए स्वयं भँवरी बन जाता है, उसी प्रकार जीव ईश्वरका चिंतन करते-करते प्रभुमय बन जाता है। दोनोंका मिलन होनेके बाद जीवभाव नहीं रह जाता।

तुलसीदासजीने भी रामचरितमानसमें कहा है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई॥

किंतु उसे कौन जान सकता है? जिसपर वह (प्रभु) स्वयं कृपा करता है, वही उसको (प्रभुको) जान सकता है और फिर उसे (प्रभुको) जानकर वह तन्मय (ईश्वरमय) हो जाता है।

ध्याता, जिस स्वरूपका ध्यान करता है, उसी ध्येयकी शक्ति ध्याता (ध्यानकर्त्ता) में आती है।

शङ्कराचार्यके जीवनका एक प्रसङ्ग है। एक यवन उनसे मिला और बोला कि मैं भैरव-यज्ञ करना चाहता हूँ। भैरव-यज्ञमें पृथ्वीके चक्रवर्ती सम्राट्‌के मस्तककी आहुति देनी पड़ती है। वह तो अप्राप्य है. अतः तुम ही अपना मस्तक मुझे दे दो। तुम्हींने कहा है कि आत्मा देहसे भिन्न है, परमात्मासे भिन्न है। देहदानसे तुम मर नहीं जाओगे, अतः मस्तक मुझे दे दो।

शंकराचार्यने कहा—मेरे शारीरिक मस्तकसे अगर तेरा काम बन सकता हो तो, ले जा।

शंकराचार्यजीका देहाध्यास दूर हो चुका था, अतः वे मस्तक देनेको तैयार हो गये। वे बोले कि जब शिष्य न हों और मैं ध्यानमग्न होऊँ तभी आकर मस्तक ले जाना।

एक दिन मठमें जब अन्य कोई नहीं था तब वह यवन मस्तक लेने आया।

भगवान् शंकरके शिष्य पद्मपाद—जो नृसिंह स्वामीके भक्त थे—को गङ्गा-किनारे कई बार अपशकुन हुए। अतः वे दौड़ते हुए आश्रममें वापस आए। उन्होंने वहाँ देखा कि एक यवन तलवारसे गुरुजीका मस्तक काटनेकी तैयारी कर रहा है। पद्मपादने क्रोधसे सिंह बनकर उस यवनको चीर-फाड़कर मार डाला।

वह प्रसङ्ग हमें बताता है कि उपासकमें उपास्यकी शक्ति आरोपित होती है। नृसिंह स्वामीका ध्यान करनेसे पद्मपादमें नृसिंहका आवेश उतर आया।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

मदिरासे मदांध बने व्यक्तिको देहभान नहीं रहता। उसी प्रकार ध्यान करता हुआ जो देहभान भूलता है, वह भगवान्‌के पीछे पड़ जाता है। प्रभुप्रेममें जो पागल हुआ है, वह सुखी है और अन्य सब दुःखी हैं।

भगवान्‌के सिवा और कोई है ही नहीं। उस समय द्रष्टा भी भगवत्‌रूप हो जाता है। यह अपरोक्ष साक्षात्कार है। ऐसी तन्मयता होनेपर भक्ति सुलभ हो जाती है।

कपिल उपदेश देते हैं—माता, इन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए जो व्यक्ति देहभान भूल जाता है, वह सर्वश्रेष्ठ है। भगवद्-भक्त, प्रारब्धकर्मोंको भी मिथ्या कर सकते हैं, अतः वे श्रेष्ठ हैं।

प्रेम अन्योन्य होता है। तुम ठाकुरजीका स्मरण करोगे तो वे भी तुम्हें नहीं भूलेंगे।

एक बार नारदजी वैकुण्ठलोकमें आए। लक्ष्मीजी तो वहाँ थीं किंतु भगवान् नजर न आए। इधर-उधर ढूँढ़नेपर उन्होंने देखा कि भगवान् ध्यान लगाये हुए बैठे हैं। नारदजीने उनसे पूछा—किसका ध्यान कर रहे हैं आप ?

भगवान्‌ने कहा—मैं अपने भक्तोंका ध्यान कर रहा हूँ।

भगवान् अपने प्रिय भक्तोंका ध्यान करते हैं।

नारदजीने पूछा कि ये वैष्णव क्या आपसे भी श्रेष्ठ हैं, जो आप उनका ध्यान कर रहे हैं ?

भगवान्‌ने कहा—हाँ, वे मुझसे भी श्रेष्ठ हैं।

तब नारदजीने कहा कि सिद्ध करके दिखाइये अपनी बात।

भगवान्‌ने पूछा—जगत्‌में सबसे बड़ा कौन है ?

नारदने कहा—पृथ्वी।

प्रभुने कहा—पृथ्वी तो शेषनागके सिर पर आधार रखती है, फिर वह कैसे श्रेष्ठ मानी जाए ?

नारदजी—तो शेषनाग बड़े हैं।

भगवान्—वह कैसे बड़ा हो गया ? वह तो शंकरजीके हाथका कङ्कन है। अतः शेषसे शिवजी महान् हैं। उनसे बड़ा रावण है, क्योंकि उसने कैलास पर्वत उठा लिया था। रावण भी कैसे बड़ा कहा जाए, क्योंकि बाली उसे अपनी बगलमें दबाके सन्ध्या करता था। बाली भी कैसे बड़ा माना जायेगा क्योंकि उसको रामजीने मारा था।

नारदजी—तब तो आप ही श्रेष्ठ हैं।

भगवान्—नहीं, मैं भी श्रेष्ठ नहीं हूँ। मेरी अपेक्षा मेरे भक्तजन श्रेष्ठ हैं क्योंकि सारा विश्व मेरे हृदयमें समाया हुआ है किंतु मैं भक्तोंके हृदयमें समाया हुआ हूँ। मुझे अपने हृदयमें रखकर ये भक्तजन सारा व्यवहार निभाते है, अतः ये ज्ञानी भक्त ही मुझसे और सभीसे श्रेष्ठ हैं।

भगवान्‌के भक्त भगवान्‌से भी आगे हैं, बढ़कर हैं।

'रामसे अधिक रामकर दासा ।'

मेरे निष्काम भक्त किसी भी प्रकारकी मुक्तिकी इच्छा नहीं करते हैं। बिना मेरी सेवाके वे कोई और इच्छा नहीं रखते।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः ॥

भा. ३।२९।१३

मेरे निष्काम भक्त मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तिको भी स्वीकार नहीं करेंगे।

नरसिंह मेहताने गाया है—

हरिना जन तो मुक्ति न मांगे, मांगे जनम-जनम अवतार रे ;
नित सेवा, नित कीर्तन, ओच्छव, निरखवा नन्दकुमार रे ;
धन्य वृन्दावन, धन्य ए लीला, धन्य ए व्रजनां वासी रे ;
अष्ट महासिद्धि आंगणोथे ऊभी, मुक्ति छे ऐमनी दासी रे ;
भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोकमां नाहीं रे ।

अर्थात् हरिजन मुक्ति नहीं, जन्म-जन्ममें अवतार चाहते हैं कि जिससे प्रभुकी नित्य सेवा, कीर्त्तन, उत्सव करके नन्दकुमारका दर्शन किया जा सके। वृन्दावन धन्य है, लीला धन्य है और वे व्रजवासी भी धन्य हैं कि जिनके आँगनमें अष्ट महासिद्धि खड़ी हैं और मुक्ति जिनकी दासी है। ब्रह्मलोकमें भी जो प्राप्त नहीं हो सकता, ऐसा श्रेष्ठ पदार्थ भक्ति, केवल पृथ्वीपर ही प्राप्य है।

मेरे भक्तजन मेरे प्रेमरूपी अप्राकृत स्वरूपको प्राप्त करते हैं, जब कि देह-गेहमें आसक्त पुरुष अधोगति पाते हैं।

कपिलजी कहते हैं माता और मैं क्या कहूँ? ईश्वरसे विभक्त हुआ जीव कभी सुखी नहीं हो सकता।

वृद्धावस्थामें यह शरीर तो जर्जर होता है, किन्तु मन और बुद्धि जवान ही रह जाते हैं। यौवनमें जिनका उपभोग किया था, उन सुखोंका बार-बार चिंतन करता रहता है। भगवान्‌का चिंतन न हो सके तो कोई हर्ज नहीं है, किंतु सांसारिक विषयोंका चिंतन तो कभी मत करो। वृद्धावस्थामें दुःख सहना पड़ता है, सेवा कोई नहीं करता।

यदि तुम अपने माता-पिताकी सेवा करोगे तो तुम्हारी वृद्धावस्थामें तुम्हारी सन्तानें तुम्हारी सेवा करेंगी। माता-पिता, गुरु, अतिथि और सूर्य—ये चार इस संसारमें प्रत्यक्ष देव हैं। उनकी सेवा करो।

मनुष्यके पास वृद्धावस्थामें धन नहीं होगा तो उसका दशा कुत्ते जैसी होगी। "गृहपाल इवाहरन्।" वृद्धावस्थामें दुःखी होनेपर भी ममता नहीं छूटती है। औरोंको सुखी करोगे तो सुखी होगे।

वृद्धावस्थामें शरीरके दुर्बल हो जानेपर भी सत्सङ्ग और भजन करनेसे मन और जीभ युवा होंगे।

वृद्धावस्थामें यह जीभ बड़ी सताती है। पाचनशक्तिके ठीक न होनेपर भी बार-बार खानेकी इच्छा होती है। शरीर ठीक रहे, तबतक बाजी हाथमें है। इतनेमें प्रभुको प्रसन्न करोगे तो बेड़ा पार हो जाएगा।

बूढ़ा खटियापर पड़ा है। मलशुद्धि भी सेजपर ही करनी पड़ती है। कुछ पापी लोगोंको इसी लोकमें नरक-यातना भुगतनी पड़ती है। मृत्युके छः मास पहले यमदूतका स्वप्नमें दर्शन होता है। अति पापीको वृद्धावस्थामें यमदूत दिखाई देता है। जिनके लिए पानीकी तरह पैसे बहाये हों, वे ही लोग उस मरणके किनारे पहुँचे हुए बूढ़ेके मरणकी बेसब्रीसे राह देखते हैं। मरते-मरते हमें कुछ देता जायगा, ऐसा सोचकर ही आप्तवर्ग उसकी सेवा करता है। सभी स्वार्थी रिश्तेदार आ पहुँचते हैं। रिश्तेदारोंको भागवतने लोमड़ी-कुत्तों-सा कहा है। पुत्रियाँ भी बड़ी लालची होती हैं। पिताकी बीमारीको खबर सुनते ही दौड़ आती हैं। पिताजी, मैं आपकी मणि, मुझे नहीं पहचाना ? किंतु मणिबहिन कुछ भी उजाला दे नहीं सकीं। वह बूढ़ा रो रहा है। वह जानता है कि स्त्री या सन्तान कोई साथ नहीं आयेंगे। मुझे अकेले ही जाना पड़ेगा। फिर भी विवेक नहीं आ पाता।

यमदूत इस जीवात्माको देहमें-से बाहर खींच निकालते हैं। अन्तकालमें दो यमदूत आते हैं—पुण्यपुरुष और पापपुरुष। दोनों यमदूत जीवात्माको मारते हैं। पुण्यपुरुष जीवसे कहता है कि पुण्य करनेका तुझे अवसर दिया गया था, फिर भी तूने पुण्य नहीं कमाया। मरते समय जीव बड़ा ही छटपटाता है। यमदूतोंकी गति पगसे आँख तक होती है।

ब्रह्मरन्ध्रमें जो अपने प्राणको स्थिर कर सकता है, उसका यमदूत कुछ नहीं कर सकते।

मृत्युके बाद पूर्वजन्म याद नहीं आता।

स्थूल शरीरके अंदर सूक्ष्म शरीर होता है और सूक्ष्म शरीरके अन्दर कारण शरीर। सूक्ष्म शरीरके अंदर रहती हुई वासनाएँ ही कारण शरीर हैं।

यमदूत जीवात्माको उसके साथ ही यमपुरी ले जाते हैं। अतिशय पापी व्यक्तिके लिए यमपुरीका मार्ग भयंकर होता है। पापीको गर्म बालूपर चलना पड़ता है।

जीवात्माको, उसके द्वारा किए गए पापोंकी सूची यमकी राजसभामें चित्रगुप्त सुनाते हैं। चौदह साक्षी भी उपस्थित किये जाते हैं। वे साक्षी हैं, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य आदि। जीवात्माको उसके पापोंके अनुसार नरक-दण्ड दिया जाता है। यदि किसीके पाप-पुण्य समान हों तो उसे चन्द्रलोकमें भेजा जाता है। पुण्यके समाप्त होनेपर जीवको फिर मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ता है। कई जन्म-मरणका दुःख उसे भुगतना पड़ता है।

वृन्दावनमें एक महात्मा रहते थे। वे एक बार ध्यानमें बैठे थे कि एक चूहा उनकी गोदमें छिप गया, क्योंकि उसके पीछे बिल्ली दौड़ रही थी। महात्माने दयासे उस चूहेको कहा कि तू जैसा चाहे वैसा तुझे बना दूं। चूहेकी बुद्धि भी आखिर कैसी हो सकती है। उसने सोचा यदि मैं बिल्ली बन जाऊँ तो फिर किसीकी भी ओरसे कोई डर नहीं रहेगा। चूहेकी माँगपर महात्माने उसे बिल्ली बना दिया। एक बार उस बिल्लीका एक कुत्तेने पीछा किया तो उसने कुत्ता बनना चाहा। वह कुत्ता हो गया। जङ्गलमें एक बार एक शेरने उसका पीछा किया तो महात्मासे शेर बनना चाहा। महात्माने उसे शेर बना दिया। अब उसकी मति भ्रष्ट हो गई और हिंसकवृत्ति जाग्रत हुई। उसने सोचा कि मैं इस महात्माको खा जाऊँ, अन्यथा वे कहीं मुझे फिरसे चूहा न बना दें। अब वह महात्माको खानेके लिए आया तो महात्माने कहा

कि तू मुझे ही खाना चाहता है। उन्होंने बाघको फिर चूहा बना दिया।

यह कथा केवल चूहा-बिल्लीकी ही नहीं, हमारी भी है। यह जीव कभी चूहा था, बिल्ली था और अब मानव हो गया तो कहने लगा कि मैं ईश्वरको नहीं मानता। धर्म मुझे स्वीकार्य नहीं है। तब भगवान् भी सोचते हैं कि अब तू कहाँ जाएगा ? मैं तुझे फिर चूहा-बिल्ली बना दूंगा। इस मनुष्य जन्ममें जीव ईश्वरको पहचानने और प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करेगा तो उसे फिर पशु ही बनना पड़ेगा।

पशु-पक्षियोंके अवतारोंमें कई प्रकारके कष्ट सहन करनेके बाद जीव मनुष्ययोनि पाता है। गर्भाधानके दिन जीव पानीके बुलबुलेसा सूक्ष्म होता है। दस दिनोंके बाद वह फल-सा बड़ा होता है। एक मासके बाद गर्भ सिरवाला होता है। दो मासके बाद हाथ-पाँव, तीन महीनोंके बाद बाल-नाखून, चार महीनोंके बाद सात धातु, पाँच महीनोंमें भूख-प्यासका ज्ञान, छः महीनेमें माताके पेटमें भ्रमण, ऐसा क्रम है। अनेक जन्तु उत्पन्न हो सकें ऐसे विष्ठा-मूत्रसे भरे हुए भागमें जीवको रहना पड़ता है। जन्तुके काटनेसे वह मूर्छित भी हो जाता है। माताके द्वारा खाई हुई मिर्ची कटु, खट्टा, गर्म आदि आहारसे भी उसके अङ्गोंमें वेदना होती है। इस तरह गर्भमें वह कई प्रकारके कष्ट झेलता है। पिंजड़ेमें बन्द पक्षीकी भाँति वह कुछ भी करनेमें असमर्थ है। सातवें महीनेमें जीवात्माको पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। वह गर्भमें प्रभुकी स्तुति करता है। नाथ, मुझे बाहर निकालो। गर्भवास और नरकवास एक समान ही हैं। मुझे बाहर निकालोगे तो मैं आपकी सेवा करूँगा, भक्ति करूँगा। गर्भमें जीव ज्ञानी होता है। भगवान्के आगे वह अनेक प्रतिज्ञाएँ करता है। मुझे बाहर निकालिए, मैं बड़ा दुःखी हूँ। प्रसव-समयकी पीड़ाके कारण वह पूर्वजन्मका ज्ञान भूल जाता है। जीव अनादिकालसे बाल्यावस्थामें, यौवनमें और वृद्धावस्थामें दुःख झेलता आया है।

जन्म-मरणके दुःख एक ही समान भयंकर हैं। उनका कभी अन्त नहीं हो पाता।

जन्म होते ही मायाका स्पर्श हो जाता है। संसारमें माया किसीको भी नहीं छोड़ती।

जीव एक ही वस्तुसे प्रेम करे तो ईश्वर खुश होते हैं। जीव बाल्यावस्थामें मातासे और फिर खिलौनोंसे प्रेम करता है। फिर कुछ बड़े होने पर पुस्तकोंसे प्रेम करने लगता है। पुस्तकोंका मोह उतरते-उतरते रुपये-पैसोंसे प्रेम करने लगता है। फिर पत्नीसे प्रेम करने लगता है। उससे वह कहता है कि मैं तेरे लिए हजारों रुपये खर्च कर सकता हूँ। वह पत्नीके इशारोंपर नाचने लगता है। किंतु पत्नीप्रेम भी हमेशा नहीं रहता है। दो-चार बच्चोंके होनेपर व्याकुल हो जाता है। संतानोंके होनेपर पत्नीका मोह घटने लगता है। प्रभुकी माया बड़ी ही विचित्र है। विवाहित भी पछताता है और अविवाहित भी।

अनेक जन्मोंमें यह जीव इसी तरह भटकता आया है। अतः कपिल भगवान् कहते हैं— माता, अब भी तुम्हें कब तक भटकना है ? अपने मनको संसारके विषयोंमें-से हटाकर प्रभुमें स्थित करो।

परमात्माके चरणोंका आश्रय ग्रहण करके जन्ममरणके चक्रसे जो मुक्त हुआ है, उसीका जीवन सफल हुआ है, ऐसा मानो।

माताको उपदेश देकर कपिल भगवान् वहाँसे चलने लगे। माताजीसे आज्ञा माँग ली जानेके लिए।

कपिल भगवान् कलकत्ताके समीप संगम तीर्थपर आए। आज भी उनके वहाँ दर्शन होते हैं। समुद्रने कपिल नारायणका स्वागत किया।

माता देवहूति सरस्वतीके किनारे जा विराजीं। स्नान करती हैं, ध्यान करती हैं अतः मनकी शुद्धि होती है। मनको नारायणका चिंतन करते-करते मुक्ति मिल गई। उन्हें सिद्धि मिलनेके कारण उस गाँवका नाम सिद्धपुर पड़ा। देवहूतिके उद्धारके कारण उसका दूसरा नाम मातृगया भी पड़ गया।

इस कपिल गीताको सुननेसे श्रोता-वक्ताओंके अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं।

अनेक प्रकारके कर्म, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदविचार, मन-इन्द्रियोंका संयम, कर्मत्याग अनेक प्रकारोंका योगाभ्यास, भक्तियोग, प्रवृत्तिमार्ग, और निवृत्तिमार्ग, सकाम और निष्काम धर्म, आत्मतत्त्वका ज्ञान तथा दृढ़ वैराग्य—इन सभी साधनोंसे सगुण-निर्गुणरूप परमात्माकी प्राप्ति की जाती है। इन सभी मार्गोंसे प्राप्त करनेका तत्त्व तो एक ही है--परमात्मा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

चतुर्थ स्कन्ध

प्रथम स्कन्धमें अधिकारका वर्णन किया है। भागवतका श्रोता कैसा होना चाहिए आदि बातें बतलायी गयी हैं, दूसरे स्कन्धमें ज्ञानलीला बतलाई है। मृत्यु जब समीप आ गई हो तब जीव कैसा व्यवहार करे, उस समय मनुष्यमात्रका क्या कर्त्तव्य है, आदिका ज्ञान गुरुने द्वितीय स्कन्धमें दिया है।

पात्रताके अभावमें ज्ञान टिकता नहीं है। सुपात्रके अभावमें ज्ञान शोभा नहीं पाता है। धन और ज्ञान सुपात्रके बिना शोभा नहीं पाते हैं।

जबतक ज्ञान क्रियात्मक नहीं होता, तबतक वह अज्ञान जैसा ही होता है। बहुत जाननेकी अपेक्षा तो जितना जान लिया है, उसे जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान जबतक क्रियात्मक न बन जाये तबतक उसकी कोई कीमत नहीं होती। जब ज्ञान क्रियात्मक होता है तभी वह शान्ति देता है। ज्ञानको शब्दरूप ही मत रहने दो, उसे क्रियात्मक बनाओ। विचार करनेपर ज्ञान होता है कि ज्ञानका अन्त न कभी हुआ और न कभी होनेवाला ही है। परन्तु ज्ञान जब क्रियात्मक बनता है तभी शान्ति मिलती है।

गुरुके द्वारा दिये गये ज्ञानको क्रियामें और जीवनमें किस प्रकार उतारना चाहिये यह बात तीसरे स्कन्धमें बतायी गयी है। ज्ञान और क्रियाका मधुर मिलन कैसे करना चाहिये यह बात तीसरे स्कन्धमें बताई गई है।

कपिल अर्थात् जो जितेन्द्रिय है, वही ज्ञानको पचा सकता है। विलासी जन ज्ञानका अनुभव नहीं कर सकते। वेदान्त-ज्ञानका अधिकार सबको नहीं है, वेदज्ञानका अधिकार विरक्तको ही है।

वेदका संहिताभाग मन्त्ररूप है। ब्राह्मण संहिताका भाष्य है। आरण्यकमें उपनिषद् आते हैं। अत्यन्त सात्त्विक जीवन बितानेवाले ऋषि जो चिंतन करते हैं वह उपनिषद् है। वही वेदान्त है। वेदका अन्त ही वेदान्त है। अन्तका अर्थ है समाप्ति। वेदकी समाप्ति उपनिषद् है।

वैराग्य और संयमके अभावमें ज्ञान पचता नहीं है। उस ज्ञानको जीवनमें उतारकर, भक्तिमय जीवन बितानेवाले जन बहुत ही विरले हैं।

ज्ञान प्राप्त करना हो तो सरस्वतीके किनारे रहना पड़ेगा। कर्दम होना पड़ेगा। आप कर्दम बनेंगे तो आपकी बुद्धि देवहूति बनेगी अर्थात् यदि आप जितेन्द्रिय बनेंगे तो आपकी बुद्धि निष्काम बनेगी। ज्ञान सिद्ध होगा। ज्ञानके सिद्ध होनेके बाद पुरुषार्थ सिद्ध होगा, अतः चौथे स्कन्धमें ऐसे चार पुरुषार्थकी कथा कही है।

तृतीय स्कन्धमें सर्गलीला थी और इस चौथे स्कन्धमें विसर्गलीला है। पुरुषार्थ चार हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अतः चौथे स्कन्धमें चार प्रकरण हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म-प्रकरणमें सात अध्याय हैं। सात प्रकारकी शुद्धि होनेपर धर्मकी सिद्धि होती है। सात प्रकारकी शुद्धि जिसकी होती है, उसीको धर्मकी सिद्धि होती है। सात शुद्धियाँ ये हैं— (१) देशशुद्धि (२) कालशुद्धि (३) मन्त्रशुद्धि (४) देहशुद्धि (५) विचारशुद्धि (६) इन्द्रिय-शुद्धि और (७) द्रव्यशुद्धि।

अर्थ-प्रकरणमें पाँच अध्याय हैं जो यह बताता है कि अर्थकी प्राप्ति पाँच साधनोंसे होती है। अर्थकी प्राप्तिके पांच साधन ये हैं—(१) माता-पिताके आशीर्वाद (२) गुरुकृपा (३) उद्यम (४) प्रारब्ध और (५) प्रभुकृपा। इन पाँच प्रकारके साधनोंसे ध्रुवको अर्थकी प्राप्ति हुई थी।

काम-प्रकरणमें ग्यारह अध्याय हैं। ये अध्याय यह बताते हैं कि काम ग्यारह इन्द्रियोंमें बसा हुआ है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। इन ग्यारह ठिकानोंमें काम बसा हुआ है। रावणके दस मस्तक थे, अतः रावण अर्थात् काम इन्द्रियोंमें बसा हुआ है। जो सबको आनन्द देता है, वह राम और जो सबको रुलाता है वह रावण। काम जीवमात्रको रुलाता है।

काम मनमें-से जाता नहीं है, यही विघ्नरूप है। मनमें काम आँख द्वारा प्रवेश करता है, इसलिए आँखोंमें रावण-कामको मत आने दो।

राम जैसे निर्विकारी बनोगे तो रावण अर्थात् काम मरेगा। काम मरेगा तो राम मिलेंगे।

मोक्ष-प्रकरणके आठ अध्याय हैं। महाप्रभुजीने कहा है कि—

प्रकृतिके आठ प्रकार हैं। 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इति' पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। इस अष्टधा प्रकृतिको जो काबूमें रखता है, उसे मोक्ष मिलता है। जो अष्टधा प्रकृतिके बन्धनमें-से मुक्त होता है वह कृतार्थ होता है।

प्रकृतिपर विजय पानेवालेको मुक्ति मिलती है। पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, तेज, मन, बुद्धि तथा अहंकारको काबूमें रखो। प्रकृतिका अर्थ है स्वभाव। अनेक जन्मोंके संस्कार मनमें संचित रहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि भी प्रकृतिको अर्थात् स्वभावको वशमें नहीं रख सके हैं। इसलिए वे बन्धनमें पड़े हैं। अष्टधा प्रकृति पर विजय पानेवालेको मुक्ति मिलती है। प्रकृतिके वशमें जो होता है वह जीव है और जो प्रकृतिको वशमें रखता है वह ईश्वर है। श्रवण, कीर्त्तन और आठ प्रकारकी भक्ति जिसको सिद्ध होती है वह ईश्वरका हो जाता है। तुम भगवान् जैसे न बन सको तो कोई हर्ज नहीं, मगर भगवान्के तो होकर रहो।

इस प्रकार इकतीस अध्यायोंका चौथा स्कन्ध है।

चार पुरुषार्थोंमें पहले धर्म है और अन्तमें मोक्ष। बीचमें अर्थ और काम हैं। इस क्रमको लगानेमें भी रहस्य है। धर्म और मोक्षके बीचमें काम और अर्थको रखा गया है। यह क्रम यह बतलाता है कि अर्थ और कामको धर्म और मोक्षके अनुसार प्राप्त करना है। धर्म और मोक्ष ये दोनों पुरुषार्थ मुख्य हैं। बाकीके दोनों—अर्थ और काम—गौण हैं। धर्मके विरुद्ध कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता। धर्मका हमेशा स्मरण रखो। सबसे पहला पुरुषार्थ धर्म है। धर्मानुसार ही अर्थ और कामकी प्राप्ति करनी है।

पैसा मुख्य नहीं है, धर्म ही मुख्य है। मानव-जीवनमें धर्म ही प्रधान है। धनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है अच्छे संस्कारोंसे, संयमसे और सदाचारसे। प्रभुभक्तिसे और त्यागसे सुख मिलता है। धर्मसे धन कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। धर्म इहलोक और परलोकमें सुख देता है। मरनेके बाद धन साथ नहीं जाता, धर्म ही साथ जाता है। अतः धनसे धर्म श्रेष्ठ है। जबसे लोग अर्थको महत्त्व देने लगे हैं तबसे जीवन बिगड़ गया है। स्वामी श्रीशंकराचार्यने एक जगह अर्थको अनर्थ कहा है। अर्थं अनर्थं भावय नित्यम्। जब मनुष्य धर्मको धनसे विशेष समझता है तब जीवन सुधरता है।

अर्थको धर्मानुकूल रखो। जो अर्थ धर्मानुकूल नहीं होता वह अनर्थ है। देशको सम्पत्तिकी जितनी जरूरत है, इससे अधिक अच्छे संस्कारोंकी जरूरत है। तुम अपने जीवनमें धर्मको सबसे पहला स्थान दो। जीवनमें जब कामसुख और अर्थ गौण बनता है, तभी जीवनमें दिव्यता आती है। दिव्यताका अर्थ है देवत्व।

धर्मकी गति सूक्ष्म है। धर्म भी अनेकों बार अधर्म बन जाता है। सद्भावनाके अभावमें किया गया धर्म सफल नहीं होता। सत्का अर्थ है ईश्वर। ईश्वरका भाव जो सबमें प्रत्यक्ष सिद्ध करे उसीका धर्म पूर्णतः सफल होता है।

मनुष्योंके शत्रु बाहर नहीं हैं, वे तो मनके अन्दर ही हैं। अन्दरके शत्रुओंको मारोगे तो जगत्में तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा।

धर्मक्रिया सद्भावके बिना सफल नहीं होती। जगत्के किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखोगे तो वह जीव तुम्हारे प्रति भी कुभाव ही रखेगा।

सभी क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ रूपसे परमात्मा बसे हुए हैं, इसलिये किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखना ईश्वरके प्रति कुभाव रखनेके बराबर है। शास्त्रमें तो यहां तक कहा गया है कि किसी जीवके साथ तो क्या, किसी जड़ पदार्थके प्रति भी कुभाव नहीं रखना चाहिए। कहा गया है—"सुहृदः सर्वभूतानाम्"। ऐसा नहीं कहा गया कि "सुहृदः सर्वजीवानाम्"। जड़ पदार्थोंके साथ भी प्रेम करना है। सबमें सद्भाव रखो अर्थात् जड़ पदार्थोंके प्रति भी प्रेम रखो।

मनुष्यमें जब स्वार्थबुद्धि जागती है तब वह दूसरेका विनाश करनेके लिए तत्पर होता है। तुम यदि दूसरेके प्रति कुभाव रखोगे तो उसके मनमें भी तुम्हारे प्रति कुभाव जागेगा।

इस पर विचार करने योग्य एक दृष्टांत है। एक देशमें वहांके राजा और नगरसेठ गाढ़ मित्र थे। दोनों सत्सङ्ग करते थे। दोनोंका एक दूसरे पर खूब प्रेम था। उस बनियेका व्यापार चन्दनकी लकड़ी बेचनेका था। सेठका धन्धा अच्छा नहीं चल रहा था। चार-पाँच साल तक घाटा हुआ। आखिर मुनीमजीने बताया कि अब तो लकड़ीमें दीमक लग गई। बिगड़ा हुआ माल कोई लेता नहीं है। यदि इस सालमें पूरे प्रमाणमें चन्दन नहीं बिकेगा तो व्यापार ठप्प हो जाएगा। अब चन्दन जैसी कीमती लकड़ी ज्यादा प्रमाणमें राजाके सिवा और कौन लेता?

स्वार्थ मनुष्यको पागल बना देता है। मनुष्य—मनमें जब स्वार्थ जगता है, तब वह दूसरेका विनाश करनेको भी तैयार हो जाता है। दूसरेका नुकसान करनेवालेको कभी फायदा नहीं होता। मनुष्यके हृदयमें जब स्वार्थ जागता है, तब विवेक नहीं रहता। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें स्वार्थ तो रहता है मगर उसमें विवेक तो रखना ही चाहिए। जिसे बोलनेमें शर्म आए वैसा सोचना भी नहीं चाहिए। नगरसेठने सोचा कि इस राजाको कुछ हो जाये तो बहुत अच्छा हो। वह मर जायेगा तो उसको जलानेके लिए चन्दनकी लकड़ीकी जरूरत पड़ेगी। इस प्रकार मेरा सारा चन्दन बिक जायेगा और व्यापार ठीक चलेगा। इस तरह सेठके मनमें राजाके प्रति कुभाव उत्पन्न हुआ।

दूसरी ओर राजाके मनमें सेठके प्रति कुभाव जागा। उस दिन जब वह सेठ राजासे मिलनेके लिए आया, तब राजाके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि यह सेठ निःसंतान है, यह यदि मर जाएं तो उसका सारा धन राज्य भण्डारमें आ जाए। रोजके नियमानुसार सत्सङ्ग हुआ तो सही, मगर किसीको आनन्द नहीं आया।

दो तीन दिनके बाद राजाके मनमें विचार पैदा हुआ कि जो पहले कभी नहीं उत्पन्न हुआ था ऐसा दुष्ट विचार मुझे नगरसेठके बारेमें कैसे उत्पन्न हुआ।

मनुष्य पापको मनमें छुपाए रखता है, जिससे उसका जीवन बिगड़ता है। राजाने सारी हकीकत सेठसे कह दी। राजाने कहा तुम्हारे बारेमें मेरे मनमें बुरे विचार कभी नहीं आये। इसका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आ रहा है। क्या तुमने भी मेरे बारेमें कुछ बुरे विचार किये थे।

सेठने कहा कि मेरा चन्दनका व्यापार चलता नहीं है। सबका पोषण करना है। कोई माल लेता नहीं है, सो मैंने विचार किया कि यदि आप मर जाएँ तो कितना अच्छा हो। आप मरेंगे तो आपको जलानेके लिए चन्दनकी जरूरत पड़ेगी और मेरा सारा चन्दन बिक जायेगा। राजाने सेठको उलाहना दिया कि खराब विचार तुमने क्यों किया? वैष्णव होकर ऐसे दुष्ट विचार करते हो, वैष्णवको शोभा नहीं देता। तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों न आया कि राजा अपने महलके दरवाजे चन्दनके बनवाये और इसलिए चन्दन खरीद ले। राजा ठाकुरजीके लिए चन्दनका झूला बनवाये और मेरा चन्दन बिक जाए। इस प्रकार राजाका भी मन शुद्ध हो और बनिया सेठका मन भी। इसके बाद दोनोंमें एक दूसरेके प्रति शुभभावना जागी और दोनों सुखी हो गये।

भावशुद्धि सबसे बड़ा तप है। मानवजीवन तपके लिए ही है। जगत्के किसी भी जीवके प्रति वैर मत रखो। शुद्धभावनासे रहित किया गया सत्कर्म भी किसी कामका नहीं होता। उससे कई बार धर्म भी अधर्म बन जाता है। सत्कर्म करनेमें यदि हेतु शुद्ध नहीं हो, तो वह सत्कर्म भी पाप बन जाता है।

दक्ष प्रजापतिने शिवजीके प्रति कुभाव रखा अतः उसका धर्म अधर्ममें बदल गया। उसका यज्ञ उसको ही मारनेवाला हो गया।

प्रत्येक मनुष्यके प्रति सद्भाव रखनेसे कार्य सफल होता है। सबका कल्याण हो यही सत्य और सत्कार्य है।

'सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्'

अनेकमें एकका दर्शन करना ही सबसे उत्तम है। एक ब्राह्मण यदि रास्तेमें किसी स्त्रीको देखकर उसमें लक्ष्मीकी भावना करेगा तो इससे उस स्त्रीमें बसे हुए अन्तर्यामी ईश्वर उसको आशीर्वाद देंगे। जब कि एक कामी पुरुष कामभावसे उस स्त्रीको देखेगा तो उस स्त्रीमें बसा हुआ परमात्मा उसे शाप देगा। सभीमें ईश्वरभाव रखो। यदि तुम सबमें ईश्वरभाव रखोगे तो दूसरे भी तुममें ईश्वरभाव रखेंगे। कई बार धर्म भी अधर्म बन जाता है। उसका कारण यह है कि धर्म करनेवाला सबमें समभाव नहीं रखता। सबमें समभाव रखनाही सबसे उत्तम धर्म है। सबमें समभाव रखोगे तो सुखी होगे। सद्भावका अर्थ है ईश्वरका भाव। सबमें जो ईश्वरका भाव रखता है वह सुखी होता है। उसका धर्म भी सफल होता है। किसी भी जीवमें कुभाव रखनेवालेका धर्म सफल नहीं होता। महाभारतमें हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण कई बार अधर्म करते हैं। किंतु उनके मनमें सबके लिए सद्भाव ही होता है, इसलिए उनका अधर्म भी धर्म बन जाता है। सबमें सद्भाव रखकर किया हुआ अधर्म भी धर्म बन जाता है।

महाभारतके कर्णपर्वमें और द्रोणापर्वमें इसी विषयके दृष्टांत मिलते हैं।

कर्णपर्वमें कहा गया है कि जिस समय कर्ण अपने रथका पहिया जमीनसे निकाल रहा था और निःशस्त्र था उसी समय भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि तू इस कर्णको मार।

कर्ण कहता है—युद्धशास्त्रका नियम है कि जब शत्रु निःशस्त्र हो उस समय उस पर प्रहार न करो। अतः अर्जुनको मुझ पर प्रहार नहीं करना चाहिए।

तब श्रीकृष्ण कर्णसे कहते हैं—कर्ण, तुमने आज तक धर्मका कितना पालन किया है? तुमने स्वयं तो धर्मका पालन किया नहीं है और दूसरेको धर्मपालन करनेका उपदेश देते हो। भरी सभामें द्रौपदीका अपमान किया गया उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?

इस प्रकार द्रोणपर्वमें कथा आती है। द्रोणाचार्य पाण्डवसेनाका विनाश कर रहे थे। श्रीकृष्णने सोचा यह बुड्ढा मरेगा नहीं तो अनर्थ होगा। इतनेमें अश्वत्थामा नामका हाथी मारा गया। श्रीकृष्णने सोचा कि यदि द्रोणाचार्यको कहा जाये कि तुम्हारा पुत्र मारा गया है तो पुत्र शोकके कारण वे युद्ध बन्द कर देंगे। यह सोचकर उन्होंने घोषणा करवा दी कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्यने सोचा कि बेटा तो मार दिया गया है अब युद्ध क्यों करूँ? परन्तु यदि धर्मराज युधिष्ठिर कह दें कि अश्वत्थामा मार दिया गया है, तो मैं सच मानूं। युधिष्ठिरसे भगवान् कहते हैं—बोलो, अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिर कहते हैं कि राज्यके लिये मैं असत्य कैसे बोलूं?

भगवान् कहते हैं कि दुर्योधन पापी है। वह मरेगा तो सुखी होगा और जीवित रहेगा तो अधिक पाप करेगा और दुःखी होगा। जिससे सबका कल्याण हो वही सत्य है। द्रोणाचार्य ब्राह्मण होकर भी अधर्मी दुर्योधनकी सहायता कर रहे हैं। वे पाप कर रहे हैं। द्रोणाचार्य अगर युद्ध छोड़ दें तो उनसे ज्यादा अधर्म नहीं होगा। इसलिए कहता हूं कि बोलो कि 'अश्वत्थामा हतः'। भगवान्‌ने बहुत आग्रह किया इसलिये युधिष्ठिरको बोलना पड़ा कि 'अश्वत्थामा हतः'। असत्य बोलनेका पाप न लगे इसलिए वे उसके बाद बोले कि 'नरो वा कुञ्जरो वा।' परन्तु ये अंतिम शब्द किसीको सुनाई दें, इससे पहले ही प्रभुने जोरसे शङ्खनाद कर दिया, अतः ये शब्द किसीको सुनाई न दिये।

दक्ष प्रजापतिका यज्ञरूप धर्म शिवजीके प्रति कुभाव रखकर करनेके कारण अधर्म बनकर उसको ही मारनेवाला बना। दूसरी तरफ श्रीकृष्णका असत्यभाषणरूप अधर्म भी सबके कल्याणके लिये किया गया होनेके कारण धर्मरूप बन गया।

सत्कर्म करते समय भाव शुद्ध रखो। हृदय शुद्ध रखो। शुद्ध भाव रखना ही सबसे बड़ा तप है। इसलिये तो 'सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे' यह मन्त्र बोलकर प्रत्येक सत्कर्मका आरम्भ किया जाता है। सबके प्रति सद्भाव रखो। सबको सद्भावसे देखो। सद्भावके बिना किया हुआ सत्कर्म सफल नहीं होता।

मैत्रेयजी कहते हैं—मनु भगवान्‌के यहाँ तीन कन्याएँ हुईं। एक आकूति, दूसरी देवहूति और तीसरी प्रसूति। देवहूतिकी शादी कर्दमके साथ हुई थी। उनकी नौ कन्याएँ हुईं थीं। उन नौ कन्याओंका ब्याह नौ ब्रह्मर्षियोंके साथ हुआ था। प्रसूतिका ब्याह दक्ष प्रजापतिके साथ हुआ था। यह सब कथा कह चुके हैं। अब इन कर्दमकी कन्याओंके वंशका वर्णन करता हूँ। मरीचि और कलाके यहाँ कश्यप और पूर्णिमा नामके दो पुत्र पैदा हुए। अत्रिकी पत्नी अनसूयाके यहाँ दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा नामके तीन पुत्र हुए। वे अनुक्रमसे विष्णु, शंकर और ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न हुए थे।

विदुरजी पूछते हैं कि—इन सर्वश्रेष्ठ देवोंने अत्रि मुनिके यहाँ पधा करनेकी इच्छासे अवतार लिया था, वह कथा कहिए ।

मैत्रेयजी कहते हैं—दत्तात्रेय अत्रिके घर आये हैं। पुरुष यदि अत्रि जैसा तपस्वी बने और स्त्री अनसूया जैसी तपस्विनी बने तो आज भी उनके घर दत्तात्रेय आनेको तैयार हैं।

न–त्रि वह अत्रि । सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंका जो नाश करे और निर्गुणी बने वही अत्रि है । सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें जीव मिल गया है । इन तीन गुणोंसे जीवको अलग होना है ।

तर्जनी उँगली जीवभाव बताती है—अभिमान बताती है । जीवमें अभिमान प्रधान है । पाँचवीं उँगली सत्त्वगुण है । अँगूठा ब्रह्म है, इसीलिए पुष्टिसंप्रदायमें प्रभुको तिलक अँगूठेसे लगाया जाता है । वेदमें ब्रह्मका 'नेति' कहकर वर्णन किया गया है । इस जीव ब्रह्मका सम्बन्ध सतत होना चाहिए ।

इन तीन गुणोंमें जीव मिलता है, और इन तीन गुणोंको छोड़कर ब्रह्म सम्बन्ध करना है । जो त्रिगुणातीत ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुआ है, वह अत्रि है ।

शरीरमें जो तमोगुण है उसे रजोगुणसे मारो, दूर करो । रजोगुणको सत्त्वगुणसे मारो । रजोगुण काम और क्रोधका जनक है । सत्कर्मसे सत्त्वगुण बढ़ता है । सत्त्वगुण भी बन्धनकर्त्ता है । इसमें भी थोड़ा अहंभाव रह जाता है । अतः अन्तमें सत्त्वगुणसे ही सत्त्वगुणको मारना है । सत्त्वगुणका भी त्याग करना है और निर्गुणी होना है । यदि जीव अत्रि हो तो उसकी बुद्धि अनसूया हो । असूयासे रहित बुद्धि ही अनसूया है । बुद्धिमें सबसे बड़ा दोष असूया-मत्सर है । दूसरोंका भला देखकर ईर्ष्या करना, जलना यही असूया या मत्सर है ।

दूसरोंके दोषोंका विचार श्रीकृष्णदर्शनमें विघ्नकर्त्ता है । बुद्धिमें जबतक असूया-मत्सर होगा, तबतक ईश्वरका चिंतन नहीं कर सकोगे । भगवान्‌का दर्शन सबमें करना है । यदि जीव सबमें ब्रह्मका दर्शन करे तो वह कृतार्थ होता है ।

जिसकी बुद्धि असूयारहित होती है वही अत्रि बनता है । तत्पश्चात् दत्तात्रेय पधारते हैं । जीव तीन गुणोंका त्याग करके निर्गुणी बने और बुद्धि असूयारहित बने, तब ईश्वर प्रकट होते हैं ।

प्रभुके स्मरणसे बुद्धि जागृत होती है । असूया ईश्वरके मार्गमें आगे बढ़नेमें रुकावट करनेवाली है । असूया ज्ञानशक्तिके मार्गमें रुकावट करती है । इसलिए किसीसे असूया मत करो । जब बुद्धि अनसूया बनती है तब वह ईश्वरका चिंतन कर सकती है ।

अनसूया महान पतिव्रता हैं । एक बार देवर्षि नारद कैलासमें आये । शंकर समाधिमें थे । पार्वतीजी पूजन कर रही थीं । पार्वतीजीने नारदजीको प्रसाद दिया । नारदजी कहते हैं कि लड्डू बहुत स-रस हैं । आज आपके हाथका प्रसाद मिला है । परन्तु उस अनसूयाके घरके लड्डू आपके लड्डूसे श्रेष्ठ हैं । पार्वतीजी पूछती हैं कि यह अनसूया है कौन ? नारदजी कहते हैं कि आप पतिव्रता हैं मगर अनसूया महान् पतिव्रता हैं । पार्वतीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई । अनसूया मुझसे भी बढ़कर हैं । श्रीशंकर जब समाधिसे जागे तो पार्वतीने वन्दन किया ।

घरके आदमी बहुत वन्दन करे तो समझ लेना कि गड्ढेमें उतारनेकी तैयारी है । शंकरने पूछा—देवी, क्या बात है ? पार्वतीने कहा कि किसी भी प्रकारसे अनसूयाका पातिव्रत्य भङ्ग हो, ऐसा करो ।

शिवजी कहते हैं—जो दूसरोंका बुरा करनेकी इच्छा करता है, उसका ही बुरा होता है। इसमें कल्याण नहीं है देवी ! परन्तु तेरी इच्छा है तो प्रयत्न करूंगा।

इस ओर नारदजी वैकुण्ठमें आये। लक्ष्मीजीसे मिले। उन्होंने नारदजीसे पूछा कि आज इतने आनन्दमें क्यों हैं ? नारदजी कहते हैं कि वैकुण्ठकी महिमा तो पहले थी परन्तु अब तो अनसूयाके आश्रमके सिवा कहीं भी जानेकी इच्छा नहीं होती। मैं उनके आश्रमसे आ रहा हूं, अतः अति आनन्दमें हूँ। लक्ष्मीजी पूछती हैं कि यह अनसूया है कौन ? नारदजी कहते हैं कि वह तो महान् पतिव्रता है। लक्ष्मीजीने श्रीविष्णुजीसे कहा कि आप कुछ ऐसा करें कि जिससे अनसूयाका पतिव्रत भङ्ग हो।

पार्वतीका अर्थ है बुद्धि। बुद्धि-विद्यामें मत्सर है। लक्ष्मीजीका अर्थ है द्रव्य। द्रव्यमें ईर्ष्या अर्थात् असूया रहती है। ब्रह्माणी रजोगुण है।

सावित्रीने भी इसीप्रकार ब्रह्माजीसे विनती की।

शंकर-विष्णु-ब्रह्मा तीनों देवता चित्रकूटमें एक साथ मिले। तीनों देवता अनसूयाके आश्रममें आये। भिक्षा माँगते हुए उन्होंने कहा कि हम भिक्षा माँगते हैं, मगर आप नग्न होकर भिक्षा दें तो हम लेंगे। अनसूया सोचती है कि यदि नग्न होकर भिक्षा दूंगी तो मेरा पातिव्रत्य भङ्ग होगा और अगर भिक्षा नहीं दूं तो घर-आँगनमें आये हुए अतिथि वापस जायेंगे तो यह महापाप होगा। मुझे पाप लगेगा।

प्रभु कहते हैं कि हमें नग्न होकर भिक्षा दो। अर्थात् वे कहते है कि वैष्णव, मुझे वासनारहित होकर भिक्षा दो। ईश्वरको वासनारहित होकर, निष्काम होकर सब कुछ अर्पण करना है।

अनसूयाके मनमें कोई वासना नहीं थी। सूक्ष्म वासना भी यदि मनमें हो तो ये तीन देवता उसके पास नहीं आते।

अनसूयाने ध्यान किया और तीनों देवताओंपर पानी छिड़का। तीनों देव बालक बन गये। पतिव्रतामें इतनी शक्ति होती है।

पार्वती सोचती हैं कि शिवजी प्रातःकालके गये हैं, फिर भी अभी तक आये नहीं हैं। लक्ष्मी और सावित्री भी अपने-अपने पतियोंको खोजने निकली हैं। तीनों देवियां चित्रकूटमें आयीं। इतनेमें नारदजी भी वहां आ पहुँचे और अनुष्ठानमें बैठे। देवियोंने उनसे पूछा कि हमारे पतिका कुछ समाचार जानते हो। नारदजी कहते हैं कि पहले यह तो बताओ कि बड़ी कौन है, आप या अनसूया। देवियां कहती हैं कि अनसूया बड़ी हैं परन्तु हमारे पति हैं कहां ? नारदजीने कहा—सुना है कि आपके पति बालक बन गये हैं। वे अनसूयाके घरमें मिलेंगे।

दूसरोंसे असूया करनेवालोंको शान्ति नहीं मिलती। देवियां डरती हैं। सोचती हैं कि यदि हम वहां जायें और अनसूया यदि शाप दे तो ? नारदजी कहते हैं कि आप भले मत्सर करें परन्तु अनसूया मत्सर नहीं करेंगी। अनसूया तो आपको सद्भावसे देखेंगी। आपके प्रति सद्भाव रखेंगी। देवियां आश्रममें आती हैं। अनसूयाने देवताओंसे अनेक प्रतिज्ञायें करवायीं हैं। आजसे प्रतिज्ञा करो कि पतिव्रताको कभी कष्ट नहीं दोगे। जगत्‌की किसी भी स्त्रीको नहीं सताओगे। इतनेमें अत्रि ऋषि पधारते हैं। ये तीन बालक कौन हैं ? अनसूया कहती हैं कि ये मेरे तीन बालक हैं और ये तीन बालकोंकी स्त्रियां हैं। अत्रि ऋषि कहते हैं, देवी ! ऐसा न

कहो। ये तीन महान् देवता हैं। इसके बाद जल छिड़का और तीनों देवता प्रकट हुए। तीनों देवता कहते हैं कि आपके आँगनमें हम बालक होकर खेलते थे। वह सुख सदाके लिए आपको हम देंगे। इन तीनों देवताओंके तेज मिलकर दत्तात्रेयके रूपमें प्रकट हुए हैं।

जब यह जीव कुछ माँगता नहीं है, तब परमात्मा उसको अपने स्वरूपका दान करते हैं।

मार्गदर्शन, गुरुकृपाके बिना मिलता नहीं है। गुरु दत्तात्रेय मार्गदर्शन करानेवाले हैं। इसलिए उनका जन्म मार्गशीर्ष मासमें हुआ है।

पहले अध्यायमें कर्दम ऋषिकी कन्याओंके वंशका वर्णन किया गया है।

दक्ष प्रजापति और प्रसूतिके यहाँ सोलह कन्यायें हुईं। उनमेंसे तेरह उन्होंने धर्मको, एक अग्निको, एक पितृगणको और सोलहवीं सती श्रीशंकरजीको दी।

धर्मकी तेरह पत्नियाँ कही गई हैं। उनके नाम हैं—श्रद्धा, दया, मैत्री, शान्ति, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, स्मृति, तितिक्षा, धृति और मूर्त्ति। धर्मके तेरह ब्याह हुए हैं। इन तेरह गुणोंको जीवनमें उतारनेसे धर्म जरूर फलता है। इन तेरह गुणोंके साथ ब्याह करोगे तो भगवान् मिलेंगे।

धर्मकी पहली पत्नी है श्रद्धा। ईश्वरमें श्रद्धा रखो। धर्मकी प्रत्येक क्रिया श्रद्धासे करो। श्रद्धा दृढ़ होनी चाहिए।

एक दिन नामदेवजीके पिताजीको कहीं बाहर जानेका प्रसङ्ग आया। नामदेवजी उस समय छोटी उम्रके थे। घरमें देवपूजा रखी हुई थी। उस पूजाका काम नामदेवको सौंप दिया गया था। पिताजीने नामदेवको पूजाकी विधि समझा दी। उसी तरह नामदेवजी भगवान्को दूधके प्रसादका भोग धरते हैं। भगवान दूध पीते नहीं हैं। नामदेवजी बहुत मिन्नतें करते हैं। रोज तो पिताजीके हाथसे आप भोगको स्वीकार करते हैं। आज मुझसे कुछ भूल हुई है क्या? आप दूध क्यों नहीं पीते?

पिताजीने नामदेवसे कहा था कि भगवान् विठ्ठलनाथ शरमाते हैं, उनको मनाना पड़ता है। इसलिए नामदेव बहुत मनाते हैं। विठ्ठलनाथ, यदि आप दूध नहीं पियेंगे तो मेरे पिताजी मुझे मारेंगे। विठ्ठल, दूध पिओ ना! पर जब सब विनती व्यर्थ हो गई तो नामदेवजी मूर्त्तिके आगे अपना सर फोड़नेको तैयार हो गये। वे बोले विठ्ठल, दूध पीना है कि नहीं? दूध नहीं पिओगे तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगा।

भगवान्, नामदेवजीकी दृढ़ श्रद्धा और भक्ति देखकर प्रसन्न हुए। ज्योंही नामदेव सिर पटकनेको तैयार हुए, वहाँ भगवान् प्रकट हो गये। भगवान्ने दूधका कटोरा ले लिया और दूध पीने लगे। पाँच वर्षके नामदेव भगवान्को दूध पिलाते हैं। जब नामदेवको लगा कि भगवान् विठ्ठलनाथ सारा दूध पी जायेंगे, तो उन्होंने प्रभुको जोरसे आवाज दी—विठ्ठल, तुम तो सारा दूध पिये जा रहे हो। क्या मुझे प्रसादी नहीं दोगे? पिताजी तो मुझे रोज प्रसादी देते हैं। नामदेवका प्रेम देखकर विठ्ठलनाथजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभुने नामदेवको गोदमें ले लिया और दूध पिलाया।

दृढ़ श्रद्धाभक्तिसे, दृढ़ प्रेमसे जड़ भी चेतन बनता है।

जीवमात्रके साथ मैत्री रखो।

श्रीधरस्वामीने कहा है—सबके साथ मैत्री रखना तो शक्य नहीं है पर यदि सबके साथ मैत्री न हो सके तो कोई हर्ज नहीं, मगर किसीके साथ वैर मत रखो। किसीसे वैर न करना भी मैत्री करनेके समान है।

धर्मकी तेरहवीं पत्नी है मूर्त्ति और उनके घर नर-नारायण प्रकट हुए हैं। नारायणके माता-पिता मूर्त्ति और धर्म हैं। मूर्त्तिमें प्रेम रखो। जो मूर्त्तिको माता और धर्मको पिता मानेंगे, उनके यहाँ नारायणका जन्म होगा। बद्रीनारायण भगवान् सालमें एक बार मूर्त्तिदेवीसे मिलनेके लिए आते हैं। धर्म पिता है और मूर्त्ति माता है। यदि धर्मका बराबर पालन करोगे तो तुम्हारे घर नारायण प्रकट होंगे।

दक्षप्रजापतिकी छोटी कन्या सतीका विवाह शिवजीके साथ हुआ है। दक्ष प्रजापतिने शिवजीका अपमान किया, इसलिए सतीने अपना शरीर यज्ञमें भस्म कर दिया। भगवान् शंकर महान् हैं। सचराचर जगत्के गुरु हैं। सन्त ज्ञानेश्वरजीने ज्ञानेश्वरीमें कहा है—जगत्में जितने धर्म-सम्प्रदाय हैं उनके आदिगुरु श्रीशंकर हैं। गुरु किये बिना मत रहो। सभी मन्त्रोंके आचार्य शिवजी हैं। इसलिए उनको गुरु मानकर मन्त्रदीक्षा लेनी चाहिए।

विदुरजी पूछते हैं—देवोंमें सबसे श्रेष्ठ शिवजीके साथ दक्ष प्रजापतिने वैर किया, इस बातको सुनकर बहुत आश्चर्य होता है। यह कथा मुझे विस्तारसे सुनाइए।

मैत्रेयजी कहते हैं प्राचीनकालमें प्रयागराजमें बड़ा ब्रह्मसत्र हुआ था। त्रिग्रहीका योग जब होता है, तब कुम्भ होता है। गरुड़ जब अमृत लेकर जा रहा था, तब चन्द्र, सूर्य और गुरु इन तीनोंने अमृतकुम्भकी रक्षा की थी।

ज्ञान और भक्ति जब मिलते हैं, तब मानव समाजमें सुख और शान्ति होती है।

प्रयागराजमें बड़ा ब्रह्मसत्र हुआ। सभामें शिवजी अध्यक्षके स्थानपर थे। उस समय दक्ष प्रजापति वहाँ आये। जहाँ भी मनुष्य बैठा हो, वहीं भक्ति करे, वह उत्तम भक्त है। शिवजी महाराज भगवान् नारायणका ध्यान कर रहे थे। सभामें कौन आया और कौन गया, इसका उनको भान नहीं था। दक्ष वहाँ आये। दूसरे देवोंने उठकर उनका सम्मान किया, परन्तु शिवजी खड़े नहीं हुए। उस समय क्रोधमें आकर दक्षने शिवजीकी निन्दा की। श्रीधरस्वामीने तो निन्दामें-से भी स्तुतिके अर्थ निकाले हैं। अर्थात् इन निंदाके शब्दोंमेंसे भी शिवजीकी स्तुतिरूप अर्थ निकाले हैं। श्रीमद्भागवतपर सबसे उत्तम टीका श्रीधरस्वामीकी मानी गयी है। वे नृसिंह भगवान्के भक्त थे।

दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णकी शिशुपालने निंदा की है। उसका श्रीधरस्वामीने स्तुतिपरक अर्थ किया है, क्योंकि निंदा सुननेसे भी पाप लगता है। निंदा नरकके समान है। जो व्यक्ति उपस्थित न हो, उसके दोषोंके वर्णन करनेको निन्दा कहते हैं। शिवजीकी निन्दा भागवत जैसे ग्रन्थमें शोभास्पद नहीं है।

दक्ष प्रजापतिने निंदा करते हुए कहा—'शिव श्मशानमें रहनेवाला है।' परन्तु यह तो स्तुतिरूप है। सारा जगत् श्मशानके समान है। काशी महान् श्मशान है। देह भी श्मशान है। घर भी श्मशान है। इस प्रकार श्मशानका अर्थ है सारा जगत्। अर्थात् शिवजी संसारकी हर एक चीजमें विराजे हुए हैं। सारा जगत् श्मशानरूप है और शिवजी जगत्के प्रत्येक पदार्थमें व्याप्त हैं, इसलिए वे व्यापक ब्रह्मरूप हैं। जगत्की प्रत्येक चीजमें शिवतत्त्व है। ब्रह्मतत्त्व व्यापक है।

भगवान् शंकर आशुतोष हैं। शिवजीके दरबारमें हरेकको प्रवेश मिलता है। ऋषि, देव, दानव और भूतपिशाच भी आते हैं। शिवजीका दरबार सबके लिए खुला रहता है। शिवजीका दरबार सबके लिए यदि खुला न होता तो ये बेचारे भूतपिशाच कहाँ जाते ?

रामजीके दरबारके दरवाजेपर हनुमानजी गदा लेकर खड़े रहते हैं कि जिसने मेरे रामजीकी तरह भाईपर प्रेम रखा हो, रामजीकी तरह मर्यादाका पालन किया हो, परस्त्रीको माता-समान माना हो, उसे ही अन्दर जानेका अधिकार है। रामजीकी प्रत्येक मर्यादाका पालन करोगे तो रामजीके दरबारमें प्रवेश मिलेगा। इस प्रकारका बर्ताव न हो तो हनुमानजी गदा मारकर बाहर निकाल देते हैं। रामजी राजाधिराज हैं। उनके दर्शन रात्रिके बारह बजेके बाद नहीं होते। शिवजीके दर्शन जिस समय चाहो, उसी समय हो सकते हैं। शिवजी कहते हैं कि तुझे जब भी समय मिले, तब आ। मैं ध्यान धरकर बैठा हूँ। कृष्णके दरबारकी बात दशम स्कन्धमें आती है। कन्हैया कहता है. मेरे दरबारमें आना हो तो साड़ी पहननी पड़ेगी, नाकमें बाली पहननी पड़ेगी। वह कहता है कि, मेरे दरबारमें आना हो तो गोपी बनो। गोपी बनकर आओगे तो मेरे दरबारमें प्रवेश मिलेगा।

जिसकी अपेक्षा कम होती है, वह उदार बन सकता है।

एक बार कुबेर भण्डारी शिवजीसे पूछते हैं—आपकी क्या सेवा करूँ ? शिवजी कहते हैं—जो दूसरोंके पाससे सेवा माँगता है और लेता है वह वैष्णव नहीं है। दूसरोंकी सेवा करता है, वही वैष्णव है। मेरी तरह 'नारायण नारायण' करो। माताजीने (पार्वतीजी) कुबेरसे कहा—मेरे लिए सुवर्णमहल बना दो। कुबेरने सुवर्णमहल बनवा दिया। वास्तुपूजा किए बिना तो महलमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। वास्तुपूजाके लिए रावणको बुलाया गया। रावणने वास्तुपूजा कराई।

शिवजीने रावणसे कहा—जो माँगना हो वह माँग लो। रावण कहता है—यह अपना महल हो मुझे दे दो।

पार्वतीजी कहती हैं—मैं जानती थी कि ये लोग कुछ भी रहने नहीं देंगे।

माँगनेवालेको नहीं देना मरणके समान है। शिवजीने सुवर्ण-महल रावणको दे दिया। रावण जैसा कोई मूर्ख नहीं हुआ है। रावणने कहा—महाराज, महल तो सुन्दर दिया अब इस पार्वतीको भी मुझे दे दो। शिवजीने कहा—तुमको जरूरत हो तो ले जाओ।

जगत्‌में ऐसा दानवीर कोई नहीं हुआ। रावण माताजीको कंधेपर बिठाकर ले जा रहा है। पार्वतीने श्रीकृष्णका स्मरण किया। श्रीकृष्ण ग्वाल बनकर मार्गमें आए। उन्होंने रावणसे पूछा—तुम किसे ले जा रहे हो ? रावण बोला—शङ्कर भगवान्‌ने मुझे पार्वती दे दी है।

श्रीकृष्णने कहा—तू कितना भोला है ? शिवजी क्या तुझे पार्वती दे देंगे ? असल पार्वतीको तो वे पातालमें छिपाकर रखते हैं। यह तो तुमको पार्वतीकी दासी दे दी है। दासी देकर तुमको बहला दिया है। असल पार्वतीके देहमेंसे तो कमलकी सुगन्ध आती है। इसके शरीरमेंसे क्या ऐसी सुगन्ध आती है ?

रावण दुविधामें पड़ गया। पार्वतीजीकी रावणके साथ जानेकी इच्छा नहीं थी। उन्होंने शरीरमेंसे दुर्गन्ध निकाली। रावणने उसी जगह पार्वतीको छोड़ दिया। रावण चला गया। बादमें प्रभुने उसी जगह माताजीकी स्थापना की, वही द्वैपायनी देवी है।

दक्ष बोला—शिव स्वैरचारी तथा गुणहीन हैं।

प्रकृतिके कोई भी गुण शिवजीमें नहीं हैं, अतः वे निर्गुणब्रह्म विधिनिषेधातीत परमात्मा हैं। शास्त्रकी प्रवृत्ति, विधिनिषेधकी प्रवृत्ति अज्ञानी जीवके लिए है, शिवजीके लिए नहीं।

दक्ष प्रजापतिने कहा—आजसे किसी भी यज्ञमें दूसरे देवोंके साथ शिवको आहुति नहीं दी जायगी। श्रीधरस्वामीने अर्थ किया है—सब देवताओंके साथ नहीं। शिवजी सभी देवोंसे श्रेष्ठ हैं अतः महादेव है। इतर देवोंसे पहले शिवजीको आहुति दी जायगी और यज्ञके बाद जो बचेगा, वह भी समाप्तिमें शिवजीको दिया जायेगा।

शिवपुराणमें कथा है। शंकर और पार्वतीकी शादी हो रही थी। विवाहके समय तीन पीढ़ीका वर्णन करना पड़ता है। शिवजीसे कहा गया कि अपने पिताका नाम बताइये। शिवजी सोचमें पड़ गये। मेरा पिता कौन? महारुद्र शिवका जन्म नहीं है। नारदजीने कहा—बोलो मेरे पिता ब्रह्मा हैं। शिवजीने कहा—मेरे पिता ब्रह्मा हैं। फिर पूछा गया—तुम्हारे दादा कौन हैं? शंकर बोले—विष्णु दादा हैं। फिर पूछा गया आपके परदादा कौन हैं? यह सुनकर शिवजी बोले—मैं ही सबका परदादा हूँ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

शिवजी महादेव हैं। सूतजी वर्णन करते हैं—राजन्, शिवजीके मस्तकमें ज्ञानरूपी गङ्गा थी, निंदा सुनकर भी सहन कर ली। शंकरके मस्तकमें ज्ञानगङ्गा है।

श्रीकृष्णके चरणोंमें ज्ञानगङ्गा है, अतः वे शिशुपालकी निंदा सहन करते हैं।

प्रतिकार करनेकी शक्ति होनेपर भी जो सहन करता है वही महापुरुष है। वह धन्य है।

जिसके सिरपर ज्ञानगङ्गा हो, वही निंदा सहन कर सकता है। निंदा सहना बहुत कठिन है। निंदा सहन करोगे तो प्रगति कर सकोगे।

जो कलह बढ़ाता है, वह वैष्णव नहीं है, अतः शिवजी सभामें एक भी शब्द नहीं बोले।

सभामें नन्दिकेश्वर विराजे थे। उनसे यह सब नहीं सहा गया। उन्होंने दक्षको तीन शाप दिये। जिस मुखसे तूने निंदा की है, वह तेरा सिर टूट जायगा। तेरे सिरके बदलेमें बकरेका सिर लगाया जायेगा और तुझको ब्रह्मविद्या कभी प्राप्त न होगी।

शिवजी की निंदा करनेवालेको कभी मुक्ति नहीं मिलती। शिवतत्त्वको छोड़नेवाली बुद्धिको संसारमें भटकना पड़ता है। उसे दुःख होता है और कभी शान्ति नहीं मिलती। शिवनिंदा करनेवाला कामका विनाश नहीं कर सकता।

शिवजी कहते हैं—तुम क्यों शाप दे रहे हो? शिवजीने सोचा—मैं नहीं बोलूंगा तो नन्दिकेश्वर दूसरे देवोंको भी शाप देंगे। तुरन्त ही वे कैलास आ गए। शिवजीने मनमें कुछ नहीं रखा। सतीसे भी कुछ न कहा। भूतकालका जो विचार करता है, उसे भूतने घेर रखा है, ऐसा ही समझना चाहिए।

इसके बाद दक्षने कनखल क्षेत्रमें यज्ञका आरम्भ किया। उसने ऐसा दुराग्रह किया कि यज्ञमें मैं विष्णुकी तो पूजा करूंगा, किंतु शिवजीकी पूजा नहीं करूंगा। देवोंने उससे कहा कि तेरा यह यज्ञ सफल नहीं होगा। फिर भी दुराग्रहसे उसने यज्ञ किया ही। जिस यज्ञमें शिव-पूजा न हो, वहाँ विष्णु भी नहीं पधारते। ब्रह्मदधीचि भी यज्ञमें नहीं गए। कुछ देवता कलह देखनेमें आनन्द आयेगा, ऐसा सोचकर उधर जानेको निकले। विमानमें बैठकर देवता जा रहे थे। सतीने इन विमानोंको देखा। सतीने सोचा कि ये देवकन्याएँ कितनी भाग्यवाली हैं। ये लोग कहाँ जा रहे होंगे? एक देवकन्याने कहा—आपके पिताके यहाँ यज्ञ है, वहाँ हम जा रहे

हैं। क्या आपको मालूम नहीं है ? क्या आपको आमन्त्रण नहीं दिया गया है ? दक्षने द्वेषबुद्धिसे शिवजीको आमन्त्रण नहीं दिया था। सतीको मालूम नहीं था कि पति और पिताके बीच अनबन हो गई है। उनका मन पिताके यहाँ जानेके लिए अधीर हो उठा। शिवजी समाधिसे जागे। शिवजीने कहा, देवी, आज बहुत आनन्दमें हो ?

सतीने कहा—आपके ससुरजी महायज्ञ कर रहे हैं।

शङ्करने कहा—देवी, इस संसारमें किसीके घर बिवाह, तो किसीके घर मरण। संसार दुःखसे भरा हुआ है। सुखरूप तो एक परमात्मा ही हैं—तेरे और मेरे पिता तो नारायण ही हैं।

सतीने कहा—महाराज ! आप कैसे निष्ठुर हैं। आपको किसी भी सम्बन्धीसे मिलनेकी इच्छा तक नहीं होती।

शंकर—देवी, मैं सबसे मनसे मिलता हूँ। किसीको शरीरसे नहीं मिलता। प्रत्यक्ष शरीरसे किसीसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती।

सती—आप तत्त्वनिष्ठ है, ब्रह्मरूप हैं। किन्तु नाथ, मेरी वहाँ जानेकी बहुत इच्छा है। आप भी चलिये, आपका सम्मान होगा।

शिवजी—मुझे सम्मानकी इच्छा नहीं है।

सती—नाथ, आप सर्वज्ञ हैं, मगर व्यवहारका ज्ञान नहीं है। हम किसीके घर नहीं जायेंगे तो हमारे घर कोई नहीं आयेगा।

शिवजी—बहुत अच्छा। कोई नहीं आयेगा तो बैठे-बैठे राम-राम करेंगे।

सती—बुरा न मानो तो कहूँ। कन्याको मायकेमें जानेसे कितना सुख मिलता है, इसका आपको ज्ञान नहीं है। आप यदि कन्या हो जाएँ और आपका बिवाह हो, तभी आपको मालूम हो कि कन्याको मायके जानेमें कितना आनन्द मिलता है। आपको आना ही पड़ेगा।

शिवजी—देवी, जगत्में भटकनेसे शान्ति नहीं मिलती। एक जगह बैठकर प्रभुको खुश करो। मनमें जबतक जड़ पदार्थ या दूसरा जीव रहता है, तबतक परमात्मा वहाँ नहीं आते। बहुत भटकनेवालोंका मन और बुद्धि बहुत भटकती है।

सती अर्थात् बुद्धि, शंकर भगवान्को छोड़कर जाती है तो बहुत भटकती है।

शिवजी कहते हैं—तेरे पिताने मेरा अपमान किया है। वहाँ जानेमें कोई भलाई नहीं है।

सती—नाथ, आपकी कुछ भूल हुई होगी। मेरे पिता मूर्ख नहीं हैं कि बिना कसूर आपको अपशब्द कहें।

शिवजी—मैंने उनका कोई अपमान नहीं किया।

शिवजीने यज्ञ-प्रसङ्ग कह सुनाया।

सतीचरित्रमें पितृस्नेह और पतिनिष्ठाकी खींचतान है।

सती—आपने मेरे पिताको क्यों मान नहीं दिया ?

शिवजी—मैंने तेरे पिताको मनसे मान दिया था। मैं कभी किसीका अपमान नहीं करता।

सती—यह तो वेदान्तकी परिभाषा लगती है। मेरे पिताके अंतरमें बसे हुए वासुदेवको आपने वन्दना की थी यह मेरे पिताको कैसे मालूम होता ? आप यह बात अब भूल जाएँ।

शिवजी—देवी, मैं भूल गया हूँ, मगर तेरे पिता अबतक नहीं भूले हैं।

शिवजीजीने सतीको बहुत समझाया कि जहाँ मुझे मान नहीं मिलता है, वहाँ जानेसे तेरा अपमान होगा। तू मानिनी है। अपमान सहन न कर सकेगी। वहाँ मत जा। अनर्थ होगा।

सती न मानी। उसने सोचा कि यज्ञमें नहीं जाऊँगी तो पति और पिताके बीच वैर बढ़ेगा। सबको यह वैरकी बात मालूम होगी। उसने सोचा कि मैं वहाँ जाकर पिताजीसे कहूँगी कि मैं तो बिना आमन्त्रणके ही आ गई हूँ किंतु मेरे पति नहीं आएँगे, अतः भाईको उनको बुलानेके लिए भेज दो। पिता पतिके बीच जो वैर उत्पन्न हो गया है, उसे मैं शांत करूँगी। आज पतिकी आज्ञाके विरुद्ध पिताके घर जाऊँगी। सतीने घर छोड़ा। जिस दिन घरमें झगड़ा हुआ हो, उस दिन घर छोड़ना नहीं चाहिए। जो घर छोड़ता है, वह बाहर सुखी नहीं हो सकता। शिवजीने सोचा, सती जा रही है तो अब वापस नहीं आएगी। जाने दो किंतु वह अकेली जाए, यह ठीक नहीं है। शिवजीने अपने गणोंको आज्ञा दी कि तुम भी साथ जाओ।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—राजन्, शिवगण आ गये। उन्होंने कहा, माँ, तुम चल कर जाओ, यह ठीक नहीं है। सती नन्दिकेश्वरपर सवार हो गईं। शिवजीने सतीकी साड़ी आदि चीजें गठरीमें बाँध दीं। यह शिव और सतीका अन्तिम मिलन था। शिवजीने सोचा, सतीकी कोई चीज यहां रहेगी तो मेरे कृष्णभजनमें विक्षेप करेगी।

मनमें विकार उत्पन्न हो, ऐसा कोई चित्र घरमें नहीं रखना चाहिए। वह चित्र मनमें आयेगा तो कृष्णभजनमें विघ्न करेगा। सतीने कहा—इन सब चीजोंकी क्या जरूरत है?

शिवजीने कहा—देवी, तुमको जरूरत पड़ेगी, सब साथ ले जाओ।

सतीको बहुत जल्दी जाना था। इसलिए व्यासजीने रास्तेका वर्णन नहीं किया है। सतीजी यज्ञमण्डपमें पधारती हैं। वह शंकरकी अर्धाङ्गिनी हैं। सारा जगत् उनका सम्मान करता है। ऋषि-मुनि भी उनका सम्मान करते हैं, मगर सतीको इससे सन्तोष नहीं हुआ।

आदिशक्ति जगदम्बाने दक्षको प्रणाम किया सतीको देखकर दक्ष क्रोधित हुआ। यह गरबा क्यों इधर आयीं है? और यह कहकर उसने मुँह फेर लिया, दक्ष, दक्ष नहीं, अदक्ष है। शिवमहिम्न स्तोत्रमें लिखा है—

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता—
मृषीणमार्त्विज्यं शरणदसदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥

श्रीधरस्वामीने कहा है—क्रिया दक्षः अपि अदक्षः मूर्खः। दक्ष क्रियादक्ष नहीं अपितु क्रिया-अदक्ष था।

सती सोचती हैं, मेरे पिताजी मेरे सामने भी नहीं देखते। मेरी अब यहाँ रहनेकी इच्छा नहीं है। मैं घर जाऊँगी। शिवजी उदार हैं, वे मुझे स्वीकार करेंगे। माता सती यज्ञमण्डपमें भ्रमण करती हैं। सब देवताओंकी स्थापनाकी गई थी। केवल शिवजीकी स्थापना नहीं थी। सतीने देखा कि यज्ञमें सब देवताओंको यज्ञभाग दिया गया है परन्तु शिवजीको नहीं दिया गया है। शिवजीके लिए आसन भी नहीं रखा गया था। आज ईशान दिशा खाली

थी। दक्ष प्रजापतिने सतीका अपमान किया, पर वह सतीने सहन किया परन्तु सतीसे अपने पतिका अपमान न सहा गया। सतीको बहुत दुःख हुआ। जगदम्बा क्रोधित हुई। सिरपर बँधी हुई फूलोंकी वेणी भी छूट गई। यह देखकर देवता माताजीका वंदन करने लगे और बोले, माताजी क्रोध न कीजिए। सती कहती हैं—आप घबराइए नहीं। अब मैं क्रोध अपने शरीर पर करूँगी। इस शरीरसे मैंने पाप किया है। पतिकी आज्ञाका मैंने भङ्ग किया है। इस शरीरको अब मैं जला दूँगी। सभामें जगदम्बाने तेरह श्लोकोंमें भाषण दिया। अरे, तेरे जैसा विषयी शिवतत्त्वको क्या जानेगा ? जो शरीरको आत्मा मानता है, वह शिवतत्त्वको क्या जाने ? बड़े-बड़े देवता शिवके चरणोंका आश्रय लेते हैं। शिवकृपाके बिना कृष्णभक्ति सफल नहीं होती। प्रवृत्ति-निवृत्तिसे परे होकर स्वरूपमें मग्न रहनेवाले शिवजी परब्रह्म परमात्मा हैं। मुझे दुःख हो रहा है कि शिवनिंदा करनेवाले दक्षकी पुत्री हूँ।

सती, उत्तर दिशाके प्रति मुख रखकर बैठी हैं। देहको छोड़नेके लिए योगमार्गमें स्थित होकर बैठी हैं। शिवजीका ध्यान करते-करते उन्होंने शरीरमें अग्नितत्त्वकी भावना की है। अन्दरसे क्रोधाग्नि बाहर आयी। शरीर जलने लगा। आदिशक्ति जगदम्बाका अपमान हुआ। अब दक्षका कल्याण नहीं।

नारदजी कैलासमें शिवजीके पास पधारे हैं। भगवान् शंकर सनकादि ऋषियोंको ब्रह्म-विद्याका उपदेश कर रहे हैं। नारदजी कथामें बैठे हैं। वे सोच रहे हैं कि शिवजी कैसे भोले हैं। सतीने शरीरको जला दिया, फिर भी उनको दुःख नहीं हुआ। नारदजी रो रहे हैं। वे शिवजीसे कह रहे हैं—आप विधुर हो गये हैं। आपका अपमान हुआ, वह सतीसे नहीं सहा गया। सतीने अपनी देह जला डाली है। आदिशक्तिका नाश नहीं होता। सती अदृश्य रूपसे शिवमें मिल गयी हैं।

नारदजी कहते हैं—आप इन लोगोंको दण्ड दीजिए। शिवजी कहते हैं—मुझे किसीको भी सजा नहीं देनी है। जो गङ्गाजीको सिरपर रखता है, उसे क्रोध कैसे आयेगा ? शिवजी परमात्मा हैं, उन्हें क्रोध नहीं आ सकता। काम, कष्ट नहीं दे सकता।

बहुत सरल मनुष्यको जगत्में लोग दुर्बल मानते हैं। नारदजीने जब कहा कि आपके गणोंको मारा गया है, तब वे कुछ क्रोधित हुए। उन्होंने जटासे वीरभद्रको प्रकट किया। शिवजीने उससे कहा, दक्ष प्रजापतिके यज्ञका यजमानसहित तुम नाश कर दो। वीरभद्र वहाँ आये। उसने बड़ा संहार किया। यज्ञभूमि, श्मशानभूमि बन गई। यज्ञका विध्वंस हुआ। दक्षको पकड़कर उसका मस्तक अलग कर दिया गया। देवता घबड़ा गये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने सबको उपालम्भ दिया कि जिस यज्ञमें शिवजीकी पूजा नहीं होती थी, वहाँ तुम क्यों गये ? जाओ, जाकर शिवजीसे क्षमा-याचना करो। देवता कहते हैं—हमारी अकेले जानेकी हिम्मत नहीं है। आप हमारे साथ चलिए।

भगवान् शंकरकी कृपाके बिना सिद्धि नहीं मिलती। कैलासकी तलहटीमें सिद्ध महात्माओंके आश्रम हैं।

सब देवता कैलासमें आते हैं। महादेवजी ब्रह्माजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। देवता सदाशिवको नमन करते हैं। ब्रह्माजी हँसते हुए कहते हैं—यज्ञको उत्पन्न करनेवाले आप हैं और विध्वंस करनेवाले भी आप ही हैं। अतः अब यज्ञ परिपूर्ण हो ऐसा कीजिए। आप भी वहाँ पधारिए। शिवजी भोले हैं। आनेके लिए तैय्यार हो गए। यज्ञमण्डपमें रुधिरकी नदियाँ बहती

हुई देखीं तो वीरभद्रको उलाहना दिया। मैंने तो तुझे शान्तिसे काम लेनेके लिए कहा था। वीरभद्र-क्षमा याचना करता है। दक्षके धड़पर बकरेका सिर लगाया गया। बकरा अति कामी होता है। शिवजीकी निन्दा करनेवाला दूसरे जन्ममें बकरा बनता है।

अजका दूसरा अर्थ होता है परब्रह्म। दक्षके धड़पर अजका मस्तक रखा गया अर्थात् दक्षको परब्रह्म-दृष्टि प्राप्त हुई। अज मस्तकका अर्थ है ब्रह्मदृष्टि।

दक्ष होशमें आया और शिवकी स्तुति करने लगा। दक्ष प्रजापतिने शिवपूजन किया। उसने कहा—मैं अपनी पुत्री सतीका दर्शन करना चाहता हूँ।

शिवजीने सतीसे पूछा—तू बाहर आना चाहती है? जगदम्बाने इनकार कर दिया। शिवपूजन किया गया तो कृष्णभगवान् प्रकट हुए। कृष्णका मत है कि शिवमें और मुझमें जो भेद रखता है वह नरकगामी होता है। इस सिद्धान्तका भागवतमें अनेक बार वर्णन किया गया है।

हरि और हरमें दक्षने जो भेद किया था वह अब दूर हो गया। एकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें हरिहरका अभेद दिखाया है। सत्त्वगुणका रङ्ग श्वेत है। तमोगुणका रङ्ग काला है। विष्णु भगवान् सत्त्वगुणके स्वामी हैं अतः उनका रङ्ग श्वेत होना चाहिए फिर भी वे काले हैं और शिवजी तमोगुणके स्वामी हैं इसलिए उनका रङ्ग काला होना चाहिए फिर भी वे गोर हैं। ऐसा क्यों हुआ? विष्णु काले और शिवजी गोरे। एकनाथजी महाराज लिखते हैं कि शिवजी सारा दिन नारायणका ध्यान करते हैं और नारायण सतत शिवजीका ध्यान करते हैं इसलिए शिवजीको श्वेत रङ्ग मिला और नारायणको शिवजीका काला रङ्ग मिला। इस प्रकार ध्यानमें ऐसा गुण है कि जो जिसका ध्यान करता है उसे उसका वर्ण मिल जाता है। अतः दोनोंमें अभेद है। हरिहर एक हैं। शिवकृपाके बिना सिद्धि नहीं मिलती। ब्रह्मविद्या भी शिवकृपाके बिना नहीं मिलती। शिवतत्त्व एक ही है, यह जीवमात्रको बतानेका भगवान्का उद्देश्य है। जीवमात्रको शिवजीसे मिलनेकी इच्छा होती है।

निवृत्तिधर्मके आचार्य हैं शिवजी और प्रवृत्तिधर्मके आचार्य हैं श्रीकृष्ण। सब प्रकारकी प्रवृत्तिमें रहनेपर भी प्रवृत्तिका जरा भी रङ्ग न लगे इसका आदर्श श्रीकृष्णने जगत्को दिखाया है।

दक्षके यज्ञप्रसङ्गमें देखा कि अनन्य भक्तिका अर्थ यह नहीं है कि एक ही देवको भक्ति करो और दूसरेकी नहीं। अनेकमें एक ही देवका दर्शन करो। भक्तिका यही अर्थ है। प्रभु सर्वव्यापक हैं। जो सर्वमें प्रभुका दर्शन करे वही उत्तम वैष्णव है।

अपने एक इष्टदेवमें परिपूर्ण भाव रखना और दूसरे देवोंको अपने इष्टदेवका अंश मानकर वन्दना करना। पत्नी अनन्य भाव पतिमें रखती है और दूसरे सम्बन्धियोंमें सामान्य प्रेम रखती है। कई वैष्णव कहते हैं कि हम शिवजीका पूजन करेंगे तो हमको अन्याश्रयका दोष लगेगा। यह भूल है।

पाँच देव एक ही हैं, उनमें भेदबुद्धि मत रखो। शिव और पार्वतीके विवाहके समय भी श्रीगणेशका पूजन किया गया था। गणपति भी ब्रह्मस्वरूप हैं। वे तो नित्य हैं परन्तु पार्वतीके यहाँ उनका अवतार हुआ था। भले ही इन सबकी भक्ति करो परन्तु यदि बालकृष्णकी

सेवा न करोगे तो सभी पूजा निष्फल होगी। बालकृष्ण प्रेमका दान करते हैं। इस प्रेमके बिना ज्ञान शुष्क है। प्रेमके बिना ज्ञानकी शोभा नहीं। दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया मगर [illegible] भेद-बुद्धि रखनेके कारण शिवजीकी पूजा नहीं की, अतः उसके यज्ञमें विघ्न आया।

यह शरीर पञ्चायतन है। पञ्चतत्त्वोंका यह शरी[illegible] [illegible]चा हुआ है। एक-एक तत्त्वका एक-एक देव है।

इस पञ्चायतनके पाँच प्रधान देव निम्न हैं।

पृथ्वीतत्त्व—गणेश। गणेशकी उपासनासे विघ्नोंका नाश होता है। गणेश विघ्नहर्ता हैं। गणेशपूजनसे तुम्हारे सत्कार्यमें विघ्न नहीं आयेगा।

जलतत्त्व—शिव। शिवकी उपासना करनेसे ज्ञान मिलता है।

तेजतत्त्व—सूर्य। सूर्यकी उपासना हमें निरोगी बनाती है। "आरोग्यं भास्करात् इच्छेत्।" पृथ्वीपर सूर्य प्रत्यक्ष साक्षात् देव हैं। एक नास्तिकने मुझसे भगवान्के दर्शन करानेके लिए कहा। मैंने सूर्यकी ओर इङ्गित करके कहा कि यही साक्षात् परमात्मा हैं। प्रति-दिन कम-से-कम ग्यारह सूर्यनमस्कार करो।

नमस्कारप्रियो भानुः जलधाराप्रियो शिवः।
अलंकारप्रियो कृष्णः ब्राह्मणो मोदकप्रियः॥

वायुतत्त्व—माता। माता पार्वतीकी उपासना धन देती है।

आकाशतत्त्व—विष्णु। विष्णुकी उपासना प्रेम देती है और प्रेम बढ़ाती भी है।

सूर्यकी पूजासे तुम्हें अच्छा आरोग्य मिलेगा। शिवजीके पूजनसे तुम्हें ज्ञान-लाभ होगा। पार्वतीकी पूजासे सम्पत्ति होनेपर भी प्राप्त होगी। बुद्धि, शरीर, सम्पत्तिके होनेपर भी श्रीकृष्णकी सेवा न करोगे तो बात नहीं बनेगी। श्रीकृष्ण प्रेमदाता हैं।

द्वारिकाधीशकी सेवा-स्मरणमें तन्मय होनेके बाद यदि प्रजापति दक्षने शिवजीकी पूजा छोड़ दी होती तो कोई हर्ज नहीं था। किंतु उसके दिलमें वैरभाव था। उसने कुभावसे यज्ञ किया, अतः वह यज्ञ पापरूप हुआ।

जीव ही दक्ष है और सद्गुरु शिवजी हैं। शरीरको सादगीमय रखो। शरीर एक मुट्ठीभर भस्म है। अतः उसका अनावश्यक शृङ्गार और लालन छोड़ दो। यही है शिवजीका उपदेश। इसलिए तो वे अपने शरीरपर भस्म लगाते हैं। शरीरका शृङ्गार छोड़ दो। मानव-जीवन तपश्चर्याके लिए है। जो तप नहीं करता, उसका पतन होता ही है।

मानवजीवनका लक्ष्य भोग नहीं, भजन है, ईश्वरभजन है, समभाव और सद्भाव सिद्ध करनेके लिए सत्सङ्गकी जरूरत है। समभाव तब सिद्ध होता है कि जब हरेक जड़-चेतनकी ओर ईश्वरकी भावना जागे।

मानव-अवतार परमात्माकी आराधना और तप करनेके लिए है। पशु भी भोगोंका उपभोग करते हैं। यदि मनुष्य केवल भोगके पीछे ही दीवाना हो जाए तो फिर उसमें और पशुमें कौन-सा भेद रह जायेगा? प्रभुने मनुष्यको बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है। पशुको कुछ नहीं दिया है। आनेवाली कलकी चिंता मानव कर सकता है, पशु नहीं।

न तो देव तप कर सकते हैं और न तो पशु। देव पुण्यका उपभोग कर सकते हैं। तपश्चर्याका अधिकार केवल मनुष्यको ही है। मनुष्य विवेकपूर्वक भोगका भी उपभोग कर सकता है।

मनुष्य जीवन विविध प्रकारके तप करनेके लिए है। तपके कई प्रकार हैं।

कष्ट सहते हुए सत्कर्म करना तप है। उपासना भी तप है। पूर्णिमा-अमावास्याके दिन पवित्र माने गये हैं। उन दिनों अनशन करना चाहिए। ओंकारमें शरीरको लीन करना भी तप है।

गीताजीमें तपकी व्याख्या करते हुए कहा गया है।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।

भावसंशुद्धि बड़ा तप है। सभीमें ईश्वरका भाव रखना भी तप है। सभीमें ईश्वर विराजित हैं ऐसा अनुभव करना महान् तप है। अर्थात् अन्तःकरणकी पवित्रतासे हृदयमें सदा सर्वदा शान्ति और प्रसन्नता रहेगी। प्रिय और सत्य बोलना वाणीका तप है। पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा शरीरसम्बन्धी तप है।

सभीके प्रति समभाव और सद्भाव रखनेवालेके मनमें कभी काम प्रवेश नहीं पा सकता। विकार और वासनाको नष्ट करनेका यही श्रेष्ठ उपाय है। जो सभीकी ओर सद्भाव रखे और सभीमें ईश्वरके अंशका अनुभव करे तो वह सफल होता है

प्रजापति दक्षने यज्ञमें शुद्धभाव, समभाव न रखा, अतः उसे दुःख सहना पड़ा। उसका यज्ञसे कल्याण न हो पाया क्योंकि उसने शिवजीके प्रति कुभाव रखकर यज्ञ किया था। दक्षने यज्ञ करते हुए भी हृदयमें दुर्भावना रखी कि शिवजीकी वह पूजा नहीं करेगा। इसी कारणसे यज्ञकार्यमें बाधा उपस्थित हुई। अतः किसकी भी ओर कुभाव न रखो। तभी धर्म सफल होता है। सद्भावरहित होनेके कारण दक्षका धर्मकार्य अधर्मकार्य हो गया। प्रजापति दक्षके यज्ञकी कथाका उद्देश्य हरिहरका अभेद बतलानेका है।

शिवचरित्रकी यह कथा वक्ता और श्रोताके पापोंको भस्मीभूत करनेवाली है।

अधर्मके वंशजोंसे सावधान रहो। चौथे स्कन्धके आठवें अध्यायके प्रथम पाँच श्लोकोंमें अधर्मके वंशजोंका उल्लेख है। यह श्लोक महत्त्वके हैं। पुण्य न कर सको तो कोई बात नहीं किंतु पाप तो कभी मत करो।

अधर्मकी पत्नीका नाम है मृषादेवी। मिथ्याभाषण करनेका बुरा स्वभाव। उसीमें-से दम्भका जन्म हुआ। लोग वैष्णव तो कहलाना चाहते हैं किंतु सच्चा वैष्णव होनेकी इच्छा कोई नहीं रखता।

दम्भका पुत्र लोभ और लोभका पुत्र है क्रोध।

क्रोधकी पुत्री दुरुक्ति अर्थात् कर्कश वाणी है। महाभारतके युद्धके और रामायणके करुण प्रसङ्गोंके मूल इस कर्कश वाणीमें ही हैं।

पैर फिसलनेसे जब दुर्योधन गिर पड़ा तो भीमने कहा—'अन्धस्य पुत्रः अन्धः।' दुर्योधनने इन शब्दोंसे लज्जा और अपमानका अनुभव किया और परिणामतः महाभारतका दारुण युद्ध छिड़ गया।

सीताजीने वनमें लक्ष्मणकी कर्कश वाणीसे भर्त्सना की तो उनको इच्छा न होते हुए भी मारीच राक्षसके छलभरे शब्दोंका पीछा करना पड़ा। लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें रावण सीताको उठा ले गया और रामायणका आरम्भ हुआ।

अतः कर्कश वाणीका प्रयोग कभी मत करो। मात्र इस दुर्गुणसे बच पाओगे तो भी बहुत कुछ हो सकेगा। कर्कश वाणीसे कलि उत्पन्न होता है। कलि कलहका ही रूप है।

भागवतका उद्देश्य है इन्द्रियोंको हरिरसमें डुबो रखना।

नामदेव दर्जीका, गोरा कुम्हारका, सेना नाईका काम करते थे। उन्होंने अपने-अपने काम-धन्धोंसे ज्ञान पाया और व्यवहारशुद्धिके कारण उनका बेड़ा पार हो गया।

अब अर्थप्रकरणका आरम्भ होता है। शान्ति सम्पत्तिसे नहीं, किंतु संयम, सदाचार और अच्छे संस्कारोंसे प्राप्त होती है। सम्पत्तिसे विकारवासना बढ़ती है। अतः धर्मका प्रकरण पहले आता है और अर्थका बादमें।

अब ध्रुवजीका आख्यान आ रहा है। उत्तानपादकी कथा जीवमात्रकी कथा है।

ध्रुवाख्यान

मैत्रेयजीने मनु महाराजकी तीन कन्याओंके वंशका वर्णन किया। मनु महाराजके दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद। प्रियव्रतके वंशका वर्णन पाँचवें स्कन्धमें होगा। इस चौथे स्कन्धमें उत्तानपादकी कथाका वर्णन है।

उत्तानपादकी दो पत्नियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुरुचिके पुत्रका नाम था उत्तम और सुनीतिके पुत्रका नाम था ध्रुव।

जीवमात्र उत्तानपाद है। माताके गर्भमें रहनेवाले सभी जीव उत्तानपाद हैं। जन्मके समय पहले सिर और फिर पाँव बाहर आते हैं। जिसके पैर पहले ऊपर हों और फिर नीचे हो गये हों वही उत्तानपाद है। जिसके पाँव ऊपर और नीचे हों वह उत्तानपाद है। जन्मके समय सभीकी ऐसी ही दशा होती है।

जीवमात्रकी दो पत्नियाँ होती हैं—सुरुचि और सुनीति। मनुष्यमात्रको सुरुचि ही प्रिय लगती है। इन्द्रियाँ जो भी माँगें उन विषयोंका उपयोग करनेकी इच्छा ही सुरुचि है। सुरुचिका अर्थ है वासना। आजकल तो सभीको रुचि ही प्यारी लगती है। मनको, इन्द्रियोंको जो अच्छा लगता है, वही मनुष्य करने लगता है। वह न तो शास्त्रसे पूछता है न तो धर्मसे पूछता है और नहीं सन्तोंसे। रुचिका अर्थ है मनपसन्द इच्छा। मन जो भी माँगे, उन्हीं भोगोंमें लीन होनेके लिए जो आतुर बने वह रुचिका दास है। जिसे रुचिसे प्यार होगा, उसे नीति कैसे प्यारी लग सकती है? नीति भले ही विरोध करे, फिर भी इन्द्रियाँ तो स्वभावतया विषयोंकी ओर ही दौड़ती हैं। जीभ जो भी माँगे वह सब उसे मत दो। कई लोग सुपारी खाये बिना नहीं रह सकते। सुपारी वैसे तो ठीक है, किंतु प्रमाणसे अधिक खाने पर वह मनुष्य संयमी नहीं रह सकता।

मनुष्यमात्रको सुनीति अर्थात् नीतिसे अधिक प्रेम नहीं है। वह प्यारी रानी नहीं है

मनुष्यको सुनीतिसे नहीं, सुरुचिसे ही प्रेम है। जीवमात्रके लिए यही बात सच्ची है। उसे सदाचारयुक्त, संयमभरा जीवन नहीं भाता। जीव वासनाके अधीन होकर विलासी जीवन जीना चाहता है। जीवमात्र नीतिके अधीन नहीं रहना चाहता। वह सोचता है कि सुरुचिके अधीन होनेसे उत्तम फल मिलेगा। सुरुचिका फल उत्तम है। इसीसे सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम है। उद्=ईश्वर, तम=अन्धकार,। अन्धकार अज्ञान है। ईश्वरके स्वरूपका अज्ञान ही उत्तमका स्वरूप है। इन्द्रियोंके दास होनेपर ईश्वरस्वरूपका ज्ञान नहीं हो पाएगा। जो सुरुचिमें फँसा है, और विलासी जीवन जीता है उसे ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता। वह ईश्वरको पहचान नहीं सकता। ईश्वरका ज्ञान विलासीको नहीं हो सकता, विरक्तको ही हो सकता है।

गीताजीसे पूछो कि कैसे व्यक्तिको ईश्वरका ज्ञान हो सकता है? जिसमें सात्त्विक गुणकी वृद्धि होती है, उसीको ज्ञान प्राप्त होता है। सात्त्विक गुणकी वृद्धि संयमपूर्ण सदाचारी जीवन जीनेसे ही होती है। केवल शब्दज्ञान ज्ञान नहीं है। उत्तम विषय क्षणिकसुख देता है और वह उत्तम सुख क्षणिक विषयानन्द है।

इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे जो क्षणिकसुख मिलता है वह सुख नहीं सुखका केवल आभास ही होता है। खुजलीको खुजलानेसे सुख नहीं सुखका आभास ही हो पाता है। मनुष्यको हरेक इन्द्रियको विषयोपभोगकी आकांक्षा होती है। सयानापन वैसे आता तो है किंतु वह स्थायी नहीं हो पाता। इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे क्षणिकसुख मिल पाता है। भोजन सरस होगा तो जरूरतसे भी ज्यादा खा लिया जाएगा जिससे अजीर्ण होगा। फिर ऊपरसे अन्नपाचनके लिए गोलियाँ लेनी पड़ेंगी। ऐसे समयमें रुचि और खानेको कहती है किंतु नीति मना करती है।

स्वामी शंकराचार्य इसीलिए तो आज्ञा देते हैं कि—

स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन संतुष्यताम्।

स्वादिष्ट अन्नकी याचना मत करो। दैववशात् जो भी प्राप्त हो, उसीसे सन्तुष्ट हो जाओ। स्वादिष्ट भोजन करनेवाला भजन नहीं कर पायेगा। नीतिका फल आरम्भमें कष्टदायी होते हुए भी अन्तमें सुखदायी है। जब कि विषयानन्दका आरम्भमें परिणाम सुखदायी होनेपर भी उसका परिणाम दुःख ही होता है।

जिसका जीवन शुद्ध है, पवित्र है उसीको भजनानन्द मिलता है और वही आनन्द टिकाऊ होता है।

नीतिके अधीन रहकर जो पवित्र जीवन जीता है, उसीको ईश्वरका ज्ञान मिलता है।

सुनीतिसे ध्रुव मिलता है। सुनीतिका फल ध्रुव है, सुनीतिका पुत्र ध्रुव है। ध्रुवका तात्पर्य है अविनाशी। अनन्त सुखका, ब्रह्मानन्दका कभी विनाश नहीं होता। जो नीतिके अधीन रहेगा, उसे ध्रुव-सा ब्रह्मानन्द प्राप्त होगा।

मनुष्य यदि सुनीतिके अधीन होता है, तो सदाचारी बनता है, और यदि वह मात्र रुचिके अधीन होता है तो दुराचारी होता है।

तुम्हारे सामने ये दो आनन्द हैं। विषयानन्द और परमानन्द। तुम किसे पसन्द करोगे? भजनानन्द ही पसन्द करने योग्य है। पहला आनन्द क्षणिकसुख देता है और उसका परिणाम दुःखद होता है। दूसरा आनन्द शुरूमें तो कष्टदायी है, किंतु अन्तमें सुखदायी है।

दो मित्र यात्रा करने चले। एककी आदत ही ऐसी थी कि पलंग-तकियेके बिना उसे नींद ही नहीं आती थी। उसने बोरिया-बिस्तर बाँध तो लिया, किंतु उसे ढोनेके लिए मजदूर न मिला, अतः वह सारा सामान उसे खुद ही उठाना पड़ा। रास्तेमें एक सज्जन मिले। इस महाशयकी दशा देखकर उससे कहा कि यह बोझ कितना कष्टदायी है। इसके बिना ही यात्रा क्यों नहीं करते? तो उसने उत्तर दिया—चाहे यह बोझ मुझे ही क्यों न उठाना पड़े किंतु रातको सोते वक्त तो बड़ा मजा आता है। रात्रिके आनन्दके लिए सारा दिन वह बोझ उठाए फिरता था। फिर रातको कैसा आनन्द आता होगा?

यह कथा किसी औरकी नहीं, अपनी ही है। जीवात्मा यात्रा करने निकला है। क्षणिक सुखके लिए मनुष्य सारा दिन गधेकी भांति मेहनत करता है। सारा दिन दुःखका पर्वत सिर पर लेकर चलता रहता है। क्षणिक सुखके लिए कितनी चिंता और कितना कष्ट उठाता है वह। विषयसुख क्षणिक ही नहीं, तुच्छ भी है।

ध्रुव अविनाशी ब्रह्मानन्दका, भजनानन्दका स्वरूप है। जीव जब ब्रह्मानन्दकी ओर जाता है तो सुरुचि विघ्न उपस्थित करती रहती है। जीव और ब्रह्मका मिलन सुरुचि नहीं होने देती। जो मनुष्य सुरुचिके अधीन है, समझो कि वह कामाधीन भी है।

उत्तानपाद राजाकी दो रानियां और दो पुत्र थे। राजाको सुनीति नहीं, सुरुचि ही प्यारी थी। हम सभीकी भी यही बात है। हमें नीतिसे प्रेम नहीं है किंतु इन्द्रियों और वासनाको बहकानेवाली सुरुचिसे ही प्रेम है।

एक बार उत्तानपाद सिंहासन पर बैठे हुए थे। सुरुचि भी वहीं बैठी हुई थी। उत्तम राजाकी गोदमें खेल रहा था ध्रुवने यह देखा तो उसने सोचा कि मैं भी पिताजीके पास जाऊँ तो मुझे भी वे गोदमें उठा लेंगे। उसने दौड़ते हुए आकर पितासे अपनी गोदमें बिठानेके लिए कहा।

बालक बालकृष्णका ही स्वरूप है। उसका कभी अपमान मत करो। बड़े बड़े महात्मा भी बच्चोंसे खेलते थे। रामदास स्वामी जब बच्चोंसे खेल रहे थे, तो शिष्योंने पूछा कि यह क्या कर रहे हैं आप? तो स्वामीजीने कहा—

वये पोर ते थोर होउनी गेले,
वये थोर ते चोर होउनी मेले।

इन बालकोंके साथ खेलनेमें मुझे आनन्द मिलता है। बच्चे अपने मनमें जो होता है वैसा ही बोलते हैं और जैसा बोलते हैं वैसा ही करते भी हैं। मन, वाणी और क्रिया एक समान होने पर ही तुम भगवान्की भक्ति सही ढंगसे कर सकोगे। वैसी भक्ति ही तुम्हें आनंदित करेगी। बालक निर्दोष होता है। उसे कपट मत सिखाना। उन पर बचपनमें अच्छे संस्कार डालो। उनसे अनुचित लाड़ मत करो।

उत्तानपादने आनन्दसे ध्रुवको अपनी गोदमें लेना चाहा। किंतु सुरुचिको यह बात न भाई।

जीवके पास जब भी भजनानन्द आता है, सुरुचि बाधा उत्पन्न करती है। पूजा करते समय मन रसोईघरकी ओर गया या तो प्रभु भजन करते हुए मन विषयोंकी ओर बह गया तो समझ लेना कि सुरुचि आ गई है।

ध्रुवको राजा गोदमें बिठाए यह सुरुचिको पसन्द नहीं था। उसने सोचा कि राजा (जीवात्मा) को ध्रुव (भजनानन्द) मिलेगा तो वे वासनाधीन नहीं होंगे और मेरा कुछ भी काम नहीं बन पाएगा। सुरुचिने राजाको ध्रुवको गोदमें लेनेसे रोका। राजा रानीके अधीन था। वह कामांध था। उसने सोचा कि मैं ध्रुवको गोदमें बिठाऊँगा तो सुरुचि नाराज होगी। चाहे कुछ भी हो, मेरी रानी नाराज नहीं होनी चाहिए। जरूरतसे ज्यादा स्त्रीके अधीन रहना पाप है। शास्त्र तो यहां तक कहता है ऐसे स्त्री—अधीन पुरुषको देखना भी पाप है। वह था तो राजा, किंतु रानीका तो दास ही था। अकसर सभीकी ऐसी ही दशा होती है। साहब बाहर तो अकड कर फिरते हैं और घरमें पत्नीके आगे भीगी बिल्ली बन जाते हैं।

राजाने ध्रुवकी अवहेलना की और मुँह मोड़ लिया। ध्रुवजीको तो बड़ी आशा थी। उसने हाथ बढ़ाकर कहा भी कि मुझे गोदमें बिठा लीजिए। सुरुचिने ध्रुवकुमारसे कह दिया—भाग जा यहांसे। राजाकी गोदमें बैठनेकी पात्रता तुझमें नहीं है। तू राजाकी अप्रिय रानी सुनीतिका पुत्र है, सो तू उसकी गोदमें नहीं बैठ सकता।

ध्रुवजीने पूछा—माता, क्या मैं अपने पिताका पुत्र नहीं हूँ।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

सुरुचिने उस समय ताना दिया कि तेरी माता रानी नहीं है। रानी मैं हूँ। तेरी माता दासी है। राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा है तो तुझे मेरी कोखसे जन्म लेना होगा। तू वनमें जाकर तप कर और ईश्वरकी आराधना कर और मेरी कोखमें जन्म पानेकी मांग कर।

भगवान् जब प्रसन्न होते ही हैं तो, फिर तेरे घरमें जन्म लेना ही क्यों मांगा जाए? किंतु सुरुचि मूर्ख जो थी इसलिए ऐसा बोल रही थी।

ध्रुवको आशा थी कि पिताजी कुछ पलके लिए तो गोदमें लेंगे ही, किंतु सुरुचिके अपमानसे रोता हुआ वह अपनी माता सुनीतिके पास लौट आया। तो सुनीतिने पूछा - बेटा, तू क्यों रोता है? क्या हुआ है। तुझे?

बालक संस्कारी हैं, इसलिए वह कुछ बोलता नहीं है। बार बार रो रहा है। सुनीति समझती है कि मेरा सयाना बेटा मेरी दशा अच्छी तरह समझता है। जिसकी माता सुनीति हो वह सुशील ही होता है। वंशमें जब कई लोगोंका पुण्य इकट्ठा होता है तभी पुत्र उदार निकलता है।

ध्रुवने सोचा कि मैं सारी बात बताऊँगा तो परंपराके कारण माता पिताकी निंदा करनेका पाप होगा। तभी एक दासीने आकर सारी बता दी।

सारी बात सुनकर सुनीतिके मनमें विचार आया कि मैंने तो सुरुचिका कुछ नहीं बिगाड़ा। मेरे मुंहसे मेरी सौतके लिए यदि कुछ कटु वचन निकल पड़ेंगे तो ध्रुवके मनमें हमेशाके लिए वैर-भावके संस्कार जम जाएंगे और भविष्यमें अनर्थ होगा। इस प्रसंगसे सुनीतिको दुःख तो बहुत हुआ, किंतु वह अपने बालकको अच्छे संस्कार देना चाहती थी। वह चाहती थी कि अपने बालकको राज्य और संपत्ति चाहे न मिल पाए किंतु संस्कार तो अच्छे ही मिलने चाहिए।

यदि माता सुनीति हो तो अपने बालकको हजार शिक्षकोंकी अपेक्षा भी अधिक अच्छी शिक्षा दे सकती है।

सुनीतिने दुःखके आवेगको दबाकर धीरजसे कहा—तेरी विमाताने वैसे तो कुछ बुरा नहीं कहा है। उसने तुझे जो उपदेश दिया है वह अच्छा है और मैं भी तुझे यही उपदेश देती हूँ। बेटे, यदि भिक्षा माँगनी ही है तो फिर भगवान्से ही क्यों न माँगी जाए? मनुष्यसे बहुत कुछ माँगनेपर भी बहुत कम ही मिलेगा और कई बार तो अपमान या उपेक्षा ही मिलेगी। अतः ठाकुरजीसे ही माँगो। भगवान् जब देता है तो इतना अधिक दे देता है कि जीव वह सब कुछ ले भी नहीं पाता। बेटे, भगवान् तुझ पर कृपा करेंगे, तुझे प्रेमसे बुलाएँगे, गोदमें भी बिठाएँगे। तेरे ही नहीं, जीवमात्रके सच्चे पिता परमात्मा ही हैं।

मैंने तुझे नारायणको सौंप दिया है। जो पिता तेरा मुँह तक नहीं देखना चाहता, उसके घरमें पड़ा रहना निरर्थक है। इस घरमें तू रहेगा तो तेरी सौतेली माता तुझे हमेशा कष्ट देती रहेगी। किंतु तू रोना नहीं, अन्यथा मुझे भी दुःख ही होगा। तेरी विमाताने तुझे जो वनमें जानेके लिए कहा है, वह ठीक ही किया है। इसमें तेरा कल्याण है।

आराधयाधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा।

तू यदि उत्तमकी भाँति राजसिंहासन पर बैठनेकी इच्छा रखता है तो श्री भगवान्के चरण कमलोंकी आराधना कर।

अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥
भा. ४-८-२२

स्वधर्मपालनसे पवित्र बने हुए अपने चित्तमें पुरुषोत्तम भगवान्की स्थापना कर और अन्य सभीका चिंतन छोड़कर केवल प्रभुका ही भजन कर।

अब इस घरमें मत रह। वनमें जाकर भगवान् नारायणका भजन कर।

तो ध्रुवने मातासे कहा कि विमाताने हम दोनोंका अपमान किया है। इस घरमें न तो मेरा सम्मान है और न तो तेरा। क्यों न हम दोनों ही वनमें जाकर प्रभुका भजन करें?

सुनीतिने इस पर कहा—बेटे, मैं तो स्त्री हूँ। मेरे पिताने तेरे पिताको मेरा दान किया है। मुझे उनकी ही आज्ञामें रहना है। चाहे मेरा पति मेरा अपमान क्यों न करे, मुझसे पतिका त्याग नहीं हो सकता। तू स्वतंत्र है, मैं परतंत्र। मुझे तो मेरी सौतकी भी कि जो मेरे पतिकी प्रिय पत्नी है सेवा करनी है। मैं तुझे अकेला तो नहीं भेज रही हूँ। तेरे साथ मेरे आशीर्वाद भी तो हैं। परमात्मा तुझे अपनी गोदमें बिठलाएँगे। जब तू मेरे गर्भमें था उस समय जिन्होंने तेरी रक्षा की थी, वे वनमें भी तेरी रक्षा करेंगे। अतः तू वनमें जा और परमात्माकी वहाँ आराधना कर। मेरे नारायण तुझे अपनी बाँहोंमें समा लेंगे।

किंतु ध्रुवको अब भी डर लग रहा है।

तो सुनीति पुत्रसे कहती है—तू अकेला नहीं है। मेरे नारायण तेरे साथ ही हैं।

जीव यह अनुभव नहीं करता है कि भगवान् उसके साथ ही हैं, किंतु जीवमात्रके सच्चे मित्र तो नारायण ही हैं। भगवान् यह नहीं देखते कि अमुक व्यक्ति धनिक है या गरीब, शिक्षित है या अशिक्षित, छोटा है या बड़ा। भगवान् तो यही देखते हैं कि इस जीवके हृदयमें मेरे लिए प्रेम है या नहीं। प्रभुको प्रेमसे पुकारोगे तो वे दौड़ते हुए चले आएँगे।

अपने दुःखकी कथा प्रभुसे तुम एकान्तमें ही कहना। प्रभुको मनाओ। उनसे कहो कि मेरा पाप करनेका स्वभाव छूट नहीं पाता है। कृपा करो। वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। ध्रुवने पूछा—माता, मुझ जैसे अबोध बालकको भी भगवान् मिलेंगे क्या ?

ध्रुवको समझाते हुए सुनीतिने कहा—हाँ बेटे, भगवान् तुझे अवश्य मिलेंगे। दिल लगाकर भगवान्का भजन करना। भगवान् भावनाके भूखे हैं। ईश्वरको जो प्रेमसे पुकारता है, उसके समक्ष वे अवश्य प्रकट होते हैं।

बिना आतुरताके भगवान् नहीं मिलते। आर्त होकर आरती करो।

उपनिषद्में ईश्वरने कहा है—यह जीव मेरा पुत्र है 'अमृतस्य पुत्राः।' मैं तो जीवको अपनी गोदमें बिठलानेके लिए तैयार हूँ, किंतु वही मेरे पास नहीं आता।

श्रीनाथजीने एक हाथ ऊपर उठाया हुआ था, उसे देखकर एक वैष्णवने उनसे पूछा—आपने एक हाथ इस तरह ऊपर क्यों उठा रखा है ?

तो श्रीनाथजीने उत्तर दिया कि मेरे सभी बालक मुझे भूल गए हैं। मैं एक हाथ ऊपर उठाकर रोज उन्हें बुलाता हूँ, किंतु वे मेरे पास आते ही नहीं हैं।

सुनीतिने सोचा कि बालक मेरी तो वंदना कर रहा है किंतु विमाताकी भी वह सद्भाव-से वन्दना करे तो उसका कल्याण होगा।

किसीके भी प्रति द्वेष रखकर ईश्वरकी आराधना नहीं की जा सकती और ऐसी आराधना सफल भी नहीं हो सकती।

सुरुचिके प्रति मनमें यदि यह अरुचि-कुभाव रखकर जाएगा तो वह नारायणका ध्यान कर नहीं सकेगा। वह बार-बार सुरुचिकी बातें ही सोचता रहेगा।

सुनीतिने ध्रुवको समझाया—तू मेरा सयाना पुत्र है। अपने पूर्वजन्मके फलके कारण ही तुझे अपमान सहन करना पड़ा है। किसी जन्ममें तूने अपनी विमाताका अपमान किया होगा, अतः उसने इस जन्ममें बदला ले लिया।

लाभ हानि, सुख-दुःख, मान अपमान आदि सब कुछ पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। ज्ञानी उसे हँसते हुए सह लेते हैं और अज्ञानी रोते हुए। जैसा बीज बोया होगा, वैसा ही फल मिलेगा।

बेटे तू अपने मनमें कुछ भी न रखना। तेरी विमाता तेरे पिताको प्यारी है। तू क्या उसे प्रणाम नहीं करेगा ? तूने जिसप्रकार मुझे प्रणाम किया, उसी प्रकार अपनी उस विमाताको भी प्रणाम कर जो तेरे पिताजीको प्रिय है। जो तू मुझे प्रणाम नहीं भी करेगा तो भी मैं तुझे आशीर्वाद तो दूंगी ही, किंतु तेरी विमाता तो तेरे प्रणाम करनेपर ही आशीर्वाद देंगी। उसकी वन्दना करके तू जाएगा, तो भगवान् जल्दी प्रसन्न होंगे। सभीके आशीर्वाद लेकर वनमें जाएगा तो परमेश्वर जल्दी कृपा करेंगे।

जिस सुरुचिने बालकका अपमान किया, उसी सुरुचिकी वन्दना करनेके लिए अपने पुत्रको सुनीति भेज रही है। धन्य है सुनीति। ऐसी सुनीति जिसके भी घरमें होगी, वहाँ कलि नहीं आ सकता।

पाँच वर्षका बालक ध्रुवकुमार विमाता सुरुचिको वन्दना करने गया। वह तो आसनपर अकड़ कर बैठी थी। ध्रुवजीने उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सुरुचिने पूछा कि मुझे वन्दन क्यों कर रहा है ?

ध्रुवजीने बताया—माता, मैं वनमें जा रहा हूँ, अतः आपसे आशीर्वाद लेने आया हूँ।

एक पलभरके लिए तो सुरुचिका हृदय पिघल गया कि कैसा सयाना है यह। अपमानित होनेपर भी यह मुझे प्रणाम कर रहा है, किंतु वह स्वभावसे दुष्ट थी और स्वभाव जल्दी सुधर नहीं पाता। उसने सोचा कि ध्रुव यदि यहींपर रहेगा तो उत्तमके राज्यमें-से वह हिस्सा माँगेगा। अतः उसने ध्रुवसे कह दिया-ठीक है। वनमें जा ही रहा है तो जा। मेरा आशीर्वाद है तुझे।

बालकके प्रणाम करनेपर भी सुरुचिके दिलमें कुछ भी विशेष भाव नहीं जागा। स्वभावको सुधारना बड़ा मुश्किल काम है। इसीलिए तो कहा है—

कस्तूरीको क्यारी करी, केशरकी बनी खाद।
पानी दिया गुलाबका, तऊ प्याजकी प्याज॥

सत्कर्मका पुण्य जब तक ठीक-ठीक न बढ़ पाए, तब तक स्वभाव नहीं सुधर पाता।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं कि पाँच वर्षका बालक माताके आशीर्वाद लेकर वनमें गया।

भागवतकी माता पुत्रको तपश्चर्या करनेके लिए वनमें भेजती है, जैसे कि सुनीतिने ध्रुवको भेजा। आजकलकी माताएँ बालकोंको सिनेमा देखनेके लिए भेजती हैं—पैसे भी देकर कि जा तेरा कल्याण हो। अरे, सिनेमा देखनेसे क्या खाक कल्याण होगा ? इससे तो आँखें, शरीर और अन्तमें जीवन तक बिगड़ जाएगा। पैसोंको खर्च करके अँधेरेमें बैठना अज्ञान नहीं तो और क्या है ? यह हँसनेकी, या मजाककी बात नहीं, रोनेकी बात है। सिनेमा देखनेके लिए अपने बालकको भेजनेवाली स्त्री, माता नहीं शत्रु है।

धन्य हैं सुनीति जैसी माताएँ, जो अपनी सन्तानोंको अच्छे संस्कार देती हैं।

बालक माताके दोषके कारण चरित्रहीन, पिताके दोषके कारण मूर्ख, वंशके दोषके कारण कायर और स्वयंके दोषके कारण दरिद्र होता है—

दुःशीलो मातृदोषेन, पितृदोषेन मूर्खता।
कार्पण्यं वंशदोषेन, आत्मदोषाद् दरिद्रता॥

अपनी दोनों माताओंसे आशीर्वाद लेकर ध्रुव वनमें जा रहा है। देखिए, मात्र पाँच वर्षका बालक वनमें जा रहा है।

ध्रुव कभी सोचता है कि वनमें तो हिंसक पशु होंगे। वे मुझे खा तो नहीं जाएँगे ? तो दूसरे ही पल सोचता है—नहीं, नहीं। मैं अकेला तो हूँ नहीं। मेरी माताने ही तो कहा था कि मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, नारायण भी साथ-साथ होंगे।

सभीको प्रणाम करके, सभीसे आशीर्वाद लेकर जो व्यक्ति वनमें जाता है, उसे रास्तेमें सन्त मिलते हैं। घरमें जो झगड़ा करके जाता है, उसे सन्त नहीं मिलते। झगड़ा करके गृहत्याग करनेवालेको न तो राम मिलते हैं और न माया।

मार्गमें ध्रुवजी सोच रहे हैं कि घरमें तो माता मुझे बेटा कहकर पुकारती थी, किंतु यहाँ वनमें मुझे बेटा कौन कहेगा ? यहाँ मुझे गोदमें कौन बिठायेगा ? कौन मुझे प्यार करेगा ?

वे आगे बढ़ते ही जा रहे थे कि रास्तेमें सामनेसे नारदजी आ मिले। ध्रुवजीने सोचा कि यह कोई सन्त हैं। अच्छे संस्कारके कारण ध्रुवने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

प्रणाम साष्टांग ही करना चाहिए। प्रकृति अष्टधा है। अष्टधा-प्रकृति-स्वरूप परमात्मामें मिल जानेकी इच्छा व्यक्त करनेके लिए साष्टाङ्ग प्रणाम करना है। प्रणाम करनेसे आत्मनिवेदन होता है।

अधिकारी शिष्यको मार्गमें ही गुरु मिल जाते हैं। सद्गुरुत्व और ईश्वरत्व एक ही है। परमात्मा और सद्गुरु दोनों व्यापक हैं। सर्वव्यापीको खोजनेकी नहीं, पहचाननेकी आवश्यकता है।

बालककी विनम्रतासे नारदजी प्रसन्न हुए। उनका सन्तहृदय द्रवित हुआ। उस बालकको उन्होंने गोदमें उठा लिया। सिरपर हाथ फेरने लगे। महापुरुषका हाथ जब मस्तकपर फिरता है तो मनके सारे विकार शान्त हो जाते हैं। ध्रुवको लगा कि अपनी माताके आशीर्वादसे यहाँ मार्गमें एक और माता मिल गई।

जन्मदाता माता बालकको स्तनपान कराके पुष्ट करती है तो गुरुरूपी माता हमेशाके लिए स्तनपान छुड़ाती है, अर्थात् जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्त कराती है। मोक्ष दिलाये, अतः फिर कभी जन्म लेकर स्तनपान करना ही न पड़े। स्तनपान करानेवाली माता श्रेष्ठ है या स्तनपान छुड़ानेवाली माता ? स्तनपान छुड़ानेवाली माता-गुरु ही श्रेष्ठ है। गुरु तो कहते हैं कि बेटा, तुझे मैं ऐसा उपदेश दूंगा कि फिर कभी स्तनपान करना ही न पड़े।

नारदजीने पूछा—बेटे, तू कहाँ जा रहा है ?

ध्रुवजीने कहा—भगवान्के दर्शन करनेके लिए मैं वनमें जा रहा हूँ। मेरी माताने बताया है कि मेरे सच्चे पिता तो भगवान् नारायण हैं। मैं उन्हींकी गोदमें बैठनेके लिए जा रहा हूँ।

ध्रुवकी बात सुनकर नारदजीने उसकी परीक्षा लेनी चाही। सद्गुरु परीक्षा लेनेके बाद ही शिष्यको उपदेश देते हैं। नारदजीने उससे कहा—अरे, अभी तो तू छोटा-सा बच्चा है। यह तेरी खेलने-कूदनेकी अवस्था है, प्रभुका जप करनेकी नहीं। और भगवान् तो—

यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥

मेरा विचार है कि साधारण पुरुषोंके लिए ईश्वरको प्रसन्न करना बड़ा ही कठिन कार्य है। तू जिनकी कृपाकी इच्छा कर रहा है, वे तो दुराराध्य हैं। बड़े-बड़े ऋषि कई जन्मों तक ईश्वरका आराधन करते हैं, फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिल पाते। वे भगवान्का मार्ग ढूंढते तो हैं, किंतु जान नहीं सकते।

तू बड़ा होकर पहले हर प्रकारके सुखोंका उपभोग कर और वृद्धावस्थामें निवृत्त होकर वनमें चले जाना। तब शान्तिसे भजन करना, रामनाम जपना और भगवान्‌का दर्शन कर लेना।

तू चाहता है कि भगवान् तुझे गोदमें बिठा लें, किंतु बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हजारों बर्षोंकी तपश्चर्या करनेके बाद भी उन्हें पा नहीं सकते हैं, तो फिर तेरे जैसे बालकको तो वे मिलेंगे ही कैसे? अतः यही अच्छा है कि तू अपने घर वापस चला जा।

ध्रुवकुमारने कहा—जी नहीं, जिस घरमें मेरा अपमान होता है, वहाँ मैं नहीं रह सकता। अपने पिताजीके राजसिंहासनपर न बैठनेका मैंने निश्चय किया है। इसी जन्ममें प्रभुके दर्शन करनेका भी निश्चय किया है। गुरुजी! आप मार्गदर्शन करायें।

ध्रुवका अटल निश्चय देखकर नारदजीने कहा—

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्॥

—भा. ४.८.४१

जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र साधन है श्रीहरिके चरणोंकी सेवा।

तू मधुवनमें जा।

वृन्दावनमें यह मधुवन है, जहाँ ध्रुवजीको नारायणके दर्शन हुए थे।

यमुना कृपालु है। यमुना महारानी कृपादेवीका अवतार हैं।

भागवतमें कुछ ऐसे स्थानोंका निर्देश है, जहाँ परमात्मा अखण्ड रूपसे विराजते हैं। मधुवनमें, श्रीरङ्गम् आदिमें। श्रीरङ्गम्‌में 'अनन्तशयनम् पद्मनाभम्' हैं। द्वारिकामें भी भगवान् विराजते हैं। उन्होंने द्वारिका त्यागी नहीं है। बोडाणाकी भक्ति अनन्य थी, अतः उनका एक स्वरूप डाकोर आया था। गण्डक नदीके किनारे पुलक ऋषिके आश्रममें भी उनका अखण्ड वास है, ऐसा भागवतके पाँचवें स्कन्धमें कहा गया है।

वृन्दावनमें भगवान्‌का अखण्ड वास है। यमुनाजी तेरा ब्रह्मसम्बन्ध सिद्ध करेंगी। यमुनाजी तेरे लिए सिफारिश करेंगी। अपात्र होनेपर भी माता मानेंगी कि तू उसका हुआ है। अतः वे कृपा करेंगी।

नारदजीने ध्रुवको आज्ञा दी—

तस्मात् गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुभम्।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः॥

वत्स, तेरा कल्याण हो। यमुना नदीके तटपर स्थित परम पवित्र मधुवनमें तू जा। वहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है।

वृन्दावन प्रेमभूमि है। वहाँ रहकर भजन करनेसे मन जल्दी शुद्ध होता है।

वृन्दावन दिव्यभूमि है। वहाँ जीव और ईश्वरका मिलन शीघ्र होता है।

ध्रुवजीने पूछा—वृन्दावन जाकर वहाँ परमात्माकी आराधना किस प्रकार करनी है।

नारदजीने कहा—ध्यान करनेसे पहले मानसी सेवा करना। चतुर्भुज नारायणकी मानसी सेवा करना। उस समय मनकी धारा कहीं टूट न जाए, इसका ख्याल रखना। ईश्वरमें मन सतत संलग्न रहना चाहिए। मानसी सेवा श्रेष्ठ मानी गई है। भगवान शंकराचार्य भी कृष्णकी मानसी सेवा करते थे।

जो अपने पास कुछ नहीं रखते, वैसे विरक्त संन्यासी मानसी सेवा करें, वह उत्तम है, किंतु गृहस्थके मात्र मानसी सेवा करनेसे कुछ नहीं बन सकता। गृहस्थको चाहिए कि वह मानसी और प्रत्यक्ष दोनों सेवा करे।

मानसी सेवाके लिए उत्तम समय है प्रातःकालके चारसे साढ़े पाँच बजेका। किसी भी व्यक्तिका मुख देखे बिना सेवा करनी चाहिए। प्रातःकाल उठकर ध्यान करो कि तुम गंगा किनारे बैठे हो। मनसे ही गंगाजीमें स्नान करो। अभिषेकके लिए चाँदीके कलशमें गंगाजल लाओ, ठाकुरजीके जगने पर आचमन कराओ। मंगलके बाद माखन-मिसरीकी जरूरत पड़ेगी। भोलेनाथ शंकरको कुछ नहीं चाहिए, किंतु कन्हैया तो सभी कुछ माँगता है। फिर कृष्णको स्नान कराओ। शंकर तो शीतल जलसे स्नान कर लेते हैं, किंतु बालकृष्णको तो उष्ण जलसे ही स्नान कराओ। फिर ठाकुरजीका शृंगार करो। शृंगार न करने पर भी कृष्ण तो सुन्दर ही लगते हैं किंतु श्रृंगार करनेसे तुम्हारा मन भी सुन्दर होगा। अपने विकृत मनको सुधारनेके लिये ही श्रृंगार करना है। शृंगारसे समाधि-सा आनन्द मिलता है। श्रृंगारके बाद भगवान्को सुन्दर भोग लगा करके तिलक करो। आरती उतारो। उस समय तुम्हारा हृदय आर्द्र बनना चाहिये। पद्मपुराणमें आरतीका क्रम बताया गया है। चरण, जंघा वक्षस्थल, मुख और उसके बाद सर्वाङ्गोंकी आरती उतारी जानी चाहिए। आरती करते समय प्रभुदर्शनके लिए आर्त बनना चाहिए।

भगवान्के दर्शन करते हुए ध्यान करना है। श्रीहरिका धीर मनसे ध्यान करो। जप ध्यान-सहित होना चाहिए। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो जप करते समय भी संसारका ही चिंतन करते रहते हैं। ऐसा करनेके कारण जप निष्फल तो नहीं माना जा सकता, किंतु जैसा फल मिलना चाहिए, वैसा फल मिल नहीं पाता।

स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है।
दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है।
ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है।

जप और ध्यान एक साथ होने चाहिए। जप करते समय जिस देवका तुम ध्यान कर रहे हो, उसकी मूर्ति तुम्हारे मनसे हटनी नहीं चाहिए। जीभसे भगवान्का नाम लिया जाये और मनसे भगवान्का स्मरण किया जाये। आँखोंसे उनका दर्शन करो और कानोंसे उनका श्रवण।

मैं तुम्हें एक मंत्र भी दे रहा हूँ।
ॐ नमः भगवते वासुदेवाय।

इस महामंत्रका तुम सतत जाप करते रहो। भगवान् अवश्य प्रसन्न होंगे। मेरा आशीर्वाद है। तुम्हें छः महीनेमें भगवान् मिलेंगे।

संचित प्रारब्धकर्मको जलानेके लिए तीन जन्म लेने पड़ते हैं।

गीताजीमें भगवानने कहा है कि कई जन्मोंके बाद जीव मुझे प्राप्त करता है। बहूनां जन्मनामेन्ते।' विद्वानोंने यहां ऐसा अर्थ किया है कि बहूनाम् अर्थात् तीन जन्म। अपने कर्मोंके क्षयके लिए योगियों-ज्ञानियोंको तीन जन्म तो लेने ही पड़ते है, किंतु भागवतमें वर्णित ध्रुवचरित्रमें कहा गया है कि जप करनेसे छः महीनेमें भगवान् मिलते हैं—

मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोर्छायामुपेत्पापगतः।

ध्रुवजीने कहा है कि भगवत्-चरणोंकी छाया मैंने छः महीनेमें ही प्राप्त की थी।

यह सही बात है। तुम भी अनुभव करके देखो, किंतु जिस प्रकार ध्रुवने तपश्चर्या की थी, उसी प्रकार तपश्चर्या करो। साधना करनेसे सिद्धि प्राप्त होती हैं।

ध्रुवजीने कई जन्मों तक तपश्चर्या की थी। पूर्व जन्ममें छः मासमें ही उन्हें परमात्माके दर्शन होने वाले थे। उस योगके लिए अभी छः मास बाकी थे। पूर्वजन्ममें वे ध्यान कर ही रहे थे कि वहीं पर राजा-रानी ग्रा गए। ध्रुवजी सोचने लगे कि इन राजा-रानीने जो सुखोपभोग किया है, वैसा मैंने तो कभी नहीं किया। इसी कारणसे उन्हें राजाके घर जन्म मिला।

नारदजी अब उत्तानपाद राजाके पास गए। वियोगमें सभीको बिछड़े व्यक्तिके गुणोंकी याद आती है। उत्तानपाद पश्चात्ताप करते हुए बैठे हैं और ध्रुवके गुणोंको याद कर रहे हैं।

नारदजीने सोचा—चाहे जो कुछ भी हो, किंतु यह मेरे शिष्यके पिता हैं। मुझे इनका भी उद्धार करना ही होगा। यह सुरुचिके अधीन हो गया है। यह जीभको वशमें करेगा तो उसकी साधना सफल होगी। जीभपर काबू पानेसे सुरुचिका मोह कम हो जाएगा।

उत्तानपादसे नारदजीने कहा—तुम छः मास केवल दूध ही पीना। अनुष्ठान करना।

ध्रुवजी मधुवनमें आए। प्रथम दिवस उन्होंने अनशन किया और फिर तीन दिन एक आसन पर बैठकर ध्यान किया। केवल फलाहार ही किया।

अन्नाहारसे रजोगुणकी और फलाहारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है।

दूसरे महीनेमें और संयम किया। एक साथ छः दिनों तक ध्यानमें बैठने लगे। तीसरे महीनेमें एक साथ नौ दिनों तक ध्यान करने लगे। फलाहार छोड़ दिया। केवल वृक्षोंके पत्ते ही खाते रहे। धीरे-धीरे संयम बढ़ानेसे भक्ति भी बढ़ती ही जाती है। जिस विषयका एक बार त्याग किया हो उसमें मन—इन्द्रियोंको फिर कभी नहीं लगने दो।

चौथे मासमें केवल यमुनाजल पीकर बारह दिन एक ही आसन पर बैठ कर जप किया। पांचवें मासमें जल भी छोड़ दिया और वायुभक्षण करके पंद्रह दिन तक एक ही आसनसे जाप करते रहे।

अब छठा मास आया तो उन्होंने निश्चय किया कि जब तक परमात्मा नहीं मिलेंगे तब तक मैं आसन पर ही बैठा रहूँगा और वे ध्यान-जपमें मग्न हो गए।

निश्चय अटल होगा तो भगवान् अवश्य मिलेंगे।

वृत्ति ब्रह्माकार तो होती है किंतु उसे वैसी ही बनाए रखना बड़ा कठिन काम है।

ध्रुवजीने छः मास तक परमात्माका सतत ध्यान किया। अपने हृदयमें भगवान् नारायणके स्वरूपका दर्शन किया। अब जीभसे नहीं, मनसे जप करने लगे।

ध्रुवजीकी तपश्चर्यासे प्रभावित होकर देवगणने नारायणसे प्रार्थना की कि आप ध्रुव-कुमारको शीघ्र ही दर्शन दीजिए।

तो भगवान्ने देवोंसे कहा—मैं ध्रुवको दर्शन देने नहीं, उसका दर्शन करनेके लिए जा रहा हूँ।

स्वयं भगवान्को ध्रुवका दर्शन करनेकी इच्छा हुई है। लिखा है—

मधोर्वनं मत्र्यदिदृक्षया गतः।

एक बार पंढरपुरके श्रीविट्ठलनाथ और रुक्मिणीके बीच एक संवाद हुआ था।

रुक्मिणीजी कहती हैं—रोज-रोज इतने सारे भक्तजन आपके दर्शनके लिए आते हैं, फिर भी आप तो दृष्टि झुकाकर ही रहते हैं, किसीसे भी नहीं मिलते। आखिर ऐसा क्यों?

यह सुनकर भगवान्ने कहा—जो केवल मुझसे ही मिलने आते हैं, उन पर ही मैं कृपा-दृष्टि करता हूँ। लोग मंदिरमें कौन-कौन-से भाव लेकर आते हैं, वह सब मैं जानता हूँ। मंदिरमें सभी लोग अपने लिए ही कुछ-न-कुछ माँगते हैं। मुझसे मिलनेके लिए तो शायद ही कभी कोई आता है। जो मात्र मुझसे मिलनेके लिए आता है उसीसे मैं नजरें मिलाता हूँ।

भगवान्के दर्शनके लिए पंढरपुरके मंदिरमें इतनी बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है कि सुबह वहाँ पहुँचा हुआ व्यक्ति शामको ही दर्शन कर पाता है।

एक बार लक्ष्मीजीने भगवान्से पूछा—इतने सारे भक्त आपके दर्शनार्थ मचल रहे हैं, फिर भी आप उदास-से क्यों नजर आ रहे हैं?

भगवान्ने कहा—ये जो आए हैं, सभी स्वार्थी हैं, किंतु जिसके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा है, वह तुकाराम अभी तक नहीं आया है।

अब इधर तुकाराम बीमार थे। वे बिस्तर पर सोए हुए सोच रहे थे कि विट्ठलनाथजीके दर्शनके लिए मैं तो जा नहीं पाऊँगा। क्यों न वे ही दर्शन देनेके लिए मेरे घर पर ही आ जायें? प्रेम अन्योन्य और परस्परावलंबी होता है।

भगवान्ने लक्ष्मीजीसे कहा—तुकाराम बीमार होनेसे इधर आ नहीं सकता, तो चलो हम ही उसीके घर चलें।

लाखों वैष्णव पंढरपुरके मंदिरमें विट्ठलनाथजीके दर्शनके लिए उमड़ रहे हैं और विट्ठलनाथजी तो जा पहुँचे हैं तुकारामके घर पर।

जिस प्रकार सच्चा वैष्णव ठाकुरजीके दर्शनके लिए आतुर होता है, उसी प्रकार सच्चे भक्तके दर्शनके लिए भगवान् भी आतुर होते हैं।

ध्रुवजीके समक्ष भगवान् नारायण प्रकट हुए, किंतु ध्रुवजीने आँखें नहीं खोलीं। भगवान्ने सोचा कि इस तरह तो मैं कब तक खड़ा रहूँगा ? ध्रुवजीके हृदयमें जो तेजोमय प्रकट स्वरूप था, उसको प्रभुने अंतर्ध्यान कर दिया। अब ध्रुवजी व्यथित हो गए। सोचने लगे कि वह दिव्यस्वरूप कहाँ अदृश्य हो गया ? ध्रुवजीने आँखें खोलीं, तो अपने सामने चतुर्भुज नारायणको देखा। अब तो ध्रुवजी मानो भगवान्का दर्शन नहीं कर रहे हैं किंतु उनकी रूप-ज्योतिको पी रहे हैं। बहुत कुछ बोलनेकी इच्छा है किन्तु कैसे बोला जाए क्योंकि अज्ञानी जो ठहरे।

अपने शंख द्वारा भगवान्ने बालकके गालका स्पर्श किया और उसके मनमें सरस्वती जागृत की। तो ध्रुवजीने स्तुति की—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणन्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥
भा. ४-९-६

प्रभु ! आप सर्वशक्तिसंपन्न हैं। आप ही मेरे अंतःकरणमें प्रवेश करके अपने तेजसे मेरी इस सुषुप्त वाणीको चेतनायुक्त करते हैं तथा मेरे हाथ, पैर, कान, त्वचा आदि अन्य सभी इन्द्रियों और प्राणोंको चैतन्य देते हैं। ऐसे आप अंतर्यामी भगवान्की मैं वंदना करता हूँ।

मेरी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर उसे सत्कर्मकी प्रेरणा देनेवाले प्रभुको मैं बार-बार वंदन करता हूँ।

आपका कृतज्ञ आपको कैसे भूल सकता है ? जो आपकी स्तुति नहीं करता वह सचमुच ही कृतघ्न है। आप तो मनुष्यको जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त करते हैं। आपको कामादि विषयोंकी इच्छासे भजने वाला मूर्ख है। आप तो कल्पवृक्ष हैं। फिर भी वे मूर्खजन देहोपभोगके हेतु ऐसे सुखोंकी इच्छा करते हैं कि जिन सुखोंके कारण ही प्राणीको नरकलोकमें जाना पड़ता है।

जब आप कृपा करेंगे तभी यह जीव आपको पहचान सकता है। आपकी कृपा प्राप्त होने पर ही यह जीव आपका दर्शन कर सकता है, आपको प्राप्त कर सकता है।

मात्र साधनासे ईश्वरदर्शन नहीं होता। कृष्ण कृपासाध्य है, साधना-साध्य नहीं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम साधना न करो। साधना तो आवश्य करो किंतु उस साधना पर विश्वास मत करो, अभिमान मत करो। साधना तो करनी ही है। साधना करते-करते थका हुआ जीव दीन होकर जब रो पड़ता है, तभी भगवान् कृपा करते हैं।

उपनिषद्‌में भी कहा है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमैवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥

यह आत्मा न तो वेदाभ्याससे मिलती है, न तो बुद्धिचातुर्यसे मिलती है और न तो कई शास्त्रोंके श्रवणसे, किंतु जिसका वह वरण करती है, उसीको इस आत्माकी प्राप्ति होती है । आत्मा उसीको अपना स्वरूपदर्शन कराती है ।

साध्यकी प्राप्ति होनेके पश्चात् कई लोग साधनाकी उपेक्षा करते हैं । साधनाकी उपेक्षा करनेसे फिर माया प्रविष्ट हो जाती है । अद्वैत-भावकी सिद्धिके पश्चात् भी वैष्णव तो भगवान्‌की भक्ति करता ही रहता है । ईश्वरप्राप्ति हो जानेपर भी साधनाका न त्याग किया जाये । साधनाकी ऐसी आदत हो जाती है कि वह छूट भी नहीं पाती ।

तुकारामने कहा है—

आधीं केला सत्सङ्ग तुका झाला पाण्डुरङ्ग ।
त्याजे भजन राहिना मूल स्वभाव जाईना ॥

सत्सङ्गसे तुकाराम पाण्डुरङ्ग जैसे हो गए हैं । अब उन्हें भजन करनेकी आवश्यकता नहीं है, किंतु तुकारामको भजन करनेकी आदत ही ऐसी पड़ गई है कि भजन करना छूट ही नहीं पाता ।

तुकारामने प्रारम्भमें सत्सङ्ग किया तो उन्हें जप करनेकी आज्ञा मिली । जपसे भगवान्‌ने दर्शन दिये और कृपा की । अब तुकाराम और पाण्डुरङ्गमें द्वैतभाव नहीं है । फिर भी वे भजन करना छोड़ नहीं सकते, क्योंकि वे आदतसे मजबूर जो हैं । ऐसी उन्नत स्थितिपर पहुँचकर भी ज्ञानी भक्त, भक्तिका त्याग नहीं करता ।

ज्ञानी भक्तके लिए भक्ति एक व्यसन-सी होती है । भक्ति व्यसन-सी बन जाए तो बेड़ा पार लग जाता है ।

प्रभो ! आपके दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् भी सच्चे ज्ञानी भक्तजन आपकी भक्ति छोड़ नहीं सकते । आपके दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् जो आपका स्मरण नहीं करता, वह कृतघ्न है । शुकदेवजीसे राधाकृष्णका ध्यान एक क्षणमात्रके लिए भी छोड़नेको कोई कहेगा तो वे ऐसा नहीं कर सकेंगे । अपरोक्ष साक्षात्कार करनेके बाद भी भजन छोड़ा नहीं जा सकता ।

ध्रुवकुमारने सुन्दर स्तुति की । नाथ ! जब आपके लाड़ले भक्त आपका दर्शन करते हुए, स्मरण करते हुए आपकी कथा करें, तब वह सुननेका सुयोग मुझे देनेकी कृपा करें । वह आनन्द तो योगियोंके ब्रह्मानन्दसे भी श्रेष्ठ है ।

ध्रुवकुमारने विद्वानोंकी कथा सुननेकी इच्छा व्यक्त नहीं की है । उनकी तो इच्छा है कि जिनका हृदय कृष्णप्रेमके रसमें लीन हो गया है वह कथा सुनाएँ । ज्ञानीकी कथा और भक्त-हृदयकी कथामें अन्तर है । आपकी कथाका आनन्द ब्रह्मानन्दसे भी श्रेष्ठ है ।

श्रीधर स्वामीको इस श्लोकका अर्थ करनेमें कुछ कठिनाई-सी लगी है। उपनिषद्के सिद्धान्तका यहाँपर कुछ विरोध-सा किया गया है। उपनिषद्में कहा है कि ब्रह्मानन्द ही सर्वश्रेष्ठ है। कोई भी आनन्द ब्रह्मानन्दसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता। तैत्तिरीय उपनिषद्में आनन्दका वर्णन किया है। मनुष्यके आनन्दकी अपेक्षा गन्धर्वोंका आनन्द श्रेष्ठ है। इसकी अपेक्षा स्वर्गके देवोंका आनन्द श्रेष्ठ है। देवोंके आनन्दसे बढ़कर है इन्द्रका आनन्द। इन्द्रके आनन्दकी अपेक्षा बृहस्पतिका आनन्द सौ गुना श्रेष्ठ है, किंतु ब्रह्मानन्द तो सर्वश्रेष्ठ आनन्द है।

जो निष्काम है, निर्विकार है और जिसके मनका निरोध हो चुका है, उसे जो आनन्द मिलता है, वही ब्रह्मानन्द है। यह सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। ब्रह्माकारवृत्तिवाले योगियोंको जो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, वह श्रेष्ठ आनन्द है। जहाँ द्वैत, प्रपञ्च, 'मैं' और 'तू' नहीं है, वह आनन्द श्रेष्ठ है। जब तक 'मैं' और 'तू' का अस्तित्व है, तब तक श्रेष्ठ आनन्द नहीं मिल पाता। ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होनेपर सांसारिकताका, जगत्का अस्तित्व नहीं रह पाता।

भागवतमें ध्रुवजी कहते हैं कि भगवान्की कथाश्रवणका आनन्द ब्रह्मानन्दसे भी श्रेष्ठ है।

यह विरोधाभास क्यों है? इसमें कौन-सी बात सच्ची है? महापुरुषोंने अपनी-अपनी दृष्टिसे समाधान किया है कि ब्रह्मानन्द सर्वश्रेष्ठ है, किंतु इसमें एक दोष है। यह आनन्द एकभोग्य है, सर्वभोग्य नहीं। जिसकी वृत्ति ब्रह्माकार हुई हो, उसे ही वह आनन्द मिल सकता है। अतः यह आनन्द गौण है। कथा-कीर्त्तनका आनन्द अनेकभोग्य है। भजनानन्द सर्वभोग्य होनेके कारण सभीको एक साथ आनन्दित करता है। इसी कारणसे कथानन्दको ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। वैसे तात्त्विकदृष्टिसे तो ब्रह्मानन्द ही सर्वश्रेष्ठ कहा जाएगा।

ब्रह्मानन्द एक ही व्यक्तिको आनन्दित कर सकता है। जो आनन्द समाधिमें लीन योगी प्राप्त कर सकता है; वह आनन्द योगीके सेवकको नहीं मिल पाता। समाधिलीन योगी अकेला ही संसार पार करता है, जबकि सत्सङ्गी स्वयं भी पार होता है, अन्योंको भी पार ले जाता है।

कथाश्रवण सभीको एक-साथ आनन्द देता है। यह अनेकभोग्य है। अतः कथाश्रवणका आनन्द, कथानन्द भी श्रेष्ठ कहा गया है।

कुछ टीकाकारोंने कहा है कि ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा अन्य कोई भी आनन्द श्रेष्ठ नहीं है किंतु सत्सङ्गकी महिमा वृद्धिगत करनेके लिए ऐसा भागवतमें कहा गया है।

प्रभुने ध्रुवजीसे कहा—मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हुआ हूँ। तू मुझसे चाहे जो माँग सकता है।

ध्रुवजीने कहा—क्या माँगू और क्या नहीं, यह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। आपको जो भी प्रिय हो, वही मुझे दीजिए।

भगवान् शङ्कर जब प्रसन्न हुए थे, तब उन्होंने नरसिंह मेहतासे वर माँगनेको कहा था। नरसिंह मेहताने भी ध्रुव जैसा ही उत्तर दिया था। तो शिवजीने कहा था कि मुझे तो रासलीला प्रिय है, अतः मैं तुझे उसीका दर्शन कराऊँगा और शिवजीने मेहताको रासलीलाके दर्शन कराए थे।

ध्रुवजीसे भगवान्‌ने कहा—तू कुछ कल्पोंके लिए अपने राज्यका शासन कर। उसके पश्चात् मैं तुझे अपने धाममें ले चलूँगा।

ध्रुवजीने आशंका व्यक्त करते हुए कहा—मुझे अपना पूर्वजन्म याद आ रहा है। राजा-रानीके दर्शनसे मेरा मन विचलित हुआ था, अतः मुझे यह जन्म लेना पड़ा। अब जो राजा बना तो फिर रानियोंकी मायामें फँस जाऊँगा और असावधान हो जाऊँगा। मैं राजा नहीं बनना चाहता।

प्रभुने कहा—तू चिंता न कर। ऐसा कभी नहीं होगा। तेरी राजा बननेकी इच्छा न भी हो तो, मैं तुझे राजा बना हुआ देखना चाहता हूँ। यह माया तुझे प्रभावित नहीं कर सकेगी। मेरा नियम है कि जो मेरा पीछा करता है, मैं भी उसीका पीछा करता हूँ। मैं तेरी रक्षा करूँगा।

छोटे बच्चोंको चाहे आनन्द न होता हो किन्तु माताको तो उसका शृंगार करनेमें आनन्द मिलता ही है। मैं जगत्‌को यह दिखलाना चाहता हूँ, कि जो व्यक्ति मेरा हो जाता है, उसे मैं लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकारके आनन्द प्रदान करता हूँ। मैं अपने भक्तोंको अलौकिक सुखके साथ-साथ लौकिक सुखसे भी लाभान्वित करता हूं।

शबरी और मीरा जैसा अटल भक्तिभाव होने पर भगवान् कहते हैं कि मैं रक्षा करता रहूँगा।

जीवकी रक्षा जब तक भगवान् स्वयं नहीं करते, तब तक वह कामका नाश नहीं कर पाता।

जे राखे रघुवीर, ते उबरे तिहिं काल महुँ।

श्रीरामने जिनकी रक्षा की है, वे कभी कामांध नहीं हुए हैं।

फूल चुननेके लिए आए हुए एक राजसेवकने ध्रुवको देखा तो उसने राजासे ध्रुवके आगमनका समाचार दिया। अनुष्ठानमें बैठे हुए उत्तानपाद राजा दौड़ पड़े।

जरा देखिए तो सही। छः मास पूर्व जिस उत्तानपाद राजाने ध्रुवको अपनी गोदमें क्षणमात्र भी बैठने नहीं दिया था, वही राजा अब भगवान्‌के दर्शन करके आए हुए ध्रुवके स्वागतके लिए दौड़ते हुए जा रहे हैं।

जो ईश्वरसे सम्बन्ध जोड़ लेता है, जगत् उसीके पीछे दौड़ने लगता है। परमात्मा जिसे अपना बनाते हैं, उसकी शत्रु भी वंदना करते हैं। यदि तुम पीछे लग जाओगे तो जगत् तुम्हारे पीछे लग जाएगा।

वही उत्तानपाद कि जिन्होंने ध्रुवका कभी अपमान किया था, आज उसका स्वागत करनेके लिए दौड़ पड़े हैं। वे सोचते हैं, मेरे पाँच वर्षके बालकने भगवान्‌का दर्शन पा लिया और मैं आधी जिंदगी गुजार चुका फिर भी सुरुचिकी मायामें फँसा हुआ हूँ। धिक्कार है मुझे!

राजाकी आँखोंसे आनन्दाश्रु बह रहे हैं। कहां है मेरा ध्रुव? कहां है मेरा बेटा?

सेवकने कहा—देखिए महाराज, राजकुमार आपकी वन्दना कर रहे हैं। तो राजाने बालकको गले लगाकर कहा कि मैं वन्दनाके लिए अपात्र हूँ।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं कि उस समय परमानंदकी वर्षा हो रही है।

अब ध्रुव माताओंकी वन्दना करनेके लिए जा रहे हैं। वे सोचते हैं कि मेरी माताने तो कहा था कि उसकी मैं वन्दना न करूँ तो कोई वैसी बड़ी बात नहीं है किंतु विमाता सुरुचिको तो मुझे वन्दना करनी ही चाहिए। अतः ध्रुवने जब सुरुचिको प्रणाम किया तो उसका दिल भर आया। कितना सयाना है यह !

सुनीताका हृदय तो हर्षके मारे इतना भर आया कि वह तो कुछ बोल भी न पाई। उसे लगा कि आज ही वह पुत्रवती हुई है, क्योंकि उसका पुत्र आज भगवान्‌को प्राप्त करके आया है।

रामचरितमानसमें भी कहा गया है—

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुवर भगत जासु सुत होई॥

जो सभीका आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है वही सर्वेश्वरको भी प्रिय लगता है।

लोगोंने कहा कि ध्रुवजीने नारायणके दर्शन किए हैं, अतः हम उनका दर्शन करके कृतार्थ हो जाएँगे तो ध्रुवजीकी नगर-यात्राका आयोजन किया गया।

ध्रुवजीको हाथी पर सवार होनेके लिए कहा गया तो उन्होंने कहा कि मैं अकेला सवार नहीं हो सकता। मेरे भाई उत्तमको भी पासमें बिठलाओ। उत्तमको हाथी पर पहले बिठाकर ध्रुव ऊपर सवार हुए।

जो अपने भाई-बहनोंमें, नाते-रिश्तेदारोंमें परमात्माका दर्शन नहीं कर सकता, उसे मूर्ति आदिमें भी भगवान्‌का दर्शन नहीं हो सकता।

शब्दात्मक उपदेशका प्रभाव शीघ्र नहीं पड़ता। क्रियात्मक उपदेशका प्रभाव शीघ्र पड़ता है।

सुरुचि अब पश्चात्ताप करने लगी है। सुनीतिके चरणोंमें मस्तक नवाकर रो रही है। उसके आंसूके साथ-साथ उसके मनका मैल भी धुल गया।

ध्रुवकुमारका राज्याभिषेक किया गया और भ्रमिके साथ विवाह भी किया गया।

एक बार उत्तम शिकार करनेके लिए वनमें गया। वहाँ यक्षके साथ युद्ध होने पर उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसा दुःखद समाचार सुनकर ध्रुव वहाँ पहुँचा और भीषण युद्ध करके वह यक्षोंका संहार करने लगा।

उस समय ध्रुवके पितामह महाराज मनु वहाँ पधारे। उन्होंने ध्रुवसे कहा—बेटे, वैष्णव वैर नहीं करते। विष्णु भगवान् प्रेमके स्वरूप हैं। अपनी छाती पर लात मारनेवाले भृगुऋषिको भी विष्णु भगवान्‌ने प्रेम ही दिया था।

शिवजी वैराग्यके स्वरूप हैं।

अति प्रेम और अति वैराग्य दोनोंका निर्वाह कठिन है। ज्ञानीको चाहिए कि वह अतिशय वैराग्यसे रहे और वैष्णवको चाहिए कि वह अतिशय प्रेम करे।

महाराज मनु कहते हैं :

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजंतुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् संप्रसीदति ।।
सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।

भा. ४।११।१३-१४

अपनोंसे बड़ोंके प्रति सहनशीलता, छोटों के प्रति दया, समान वयस्कोंके साथ मैत्री और समस्त जीवोंके साथ समान वर्ताव करनेसे सर्वात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ।

तितिक्षा–सहनशीलता, सर्वजनके प्रति करुणा और जगत्के प्रत्येक जीवसे मैत्री—इन तीन गुणोंसे संपन्न व्यक्ति सुखी होता है और उस पर भगवान् भी प्रसन्न होते हैं । प्रत्येक प्राणीके प्रति स्वभाव रखनेसे प्रभु प्रसन्न होते हैं और भगवानके प्रसन्न होने पर, प्राकृतिक गुणों तथा लिंग-शरीरसे मुक्त होकर पुरुष सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति करता है ।

मनु महाराजके उपदेशको सुनकर ध्रुवने संहार रोका ।

ध्रुवजी विशालक्षेत्रमें आए । ये जब बालक थे, तब यमुनाजीके किनारे पर गए थे, अब वृद्धावस्थामें गंगाजीके तट पर आए हैं । गंगाजी मृत्यु सुधारती हैं । भागवतकी कथा प्रेमसे सुननेसे सभी यात्राओंका फल मिलता है ।

गंगाके किनारे बैठकर ध्रुवजी भजन-कीर्तन करने लगे । गंगाजीके प्रवाहके निनादसे ध्रुवजीके ध्यानमें विक्षेप होने लगा । वे गंगाजीका किनारा छोड़नेको उद्यत हुए । तो गंगाजी वहाँ प्रकट हुईं । ध्रुवने कहा—माता, तुम्हारा यह कलकल निनाद मेरे भजन-ध्यानमें विक्षेप करता है ।

तो गंगाजीने ध्रुवसे कहा—तू शांतिसे ध्यान करता है तो मैं भी अब शांतिसे ध्यान करूँगी । अब मैं कभी सशब्द नहीं बहूँगी । तू यहाँसे जाना नहीं ।

गंगाजी शांत हो गईं । ऋषिकेशके समीप ध्रुवाश्रम के पास गंगाजी आज तक शांत ही हैं । केवल ध्रुवाश्रमके निकट ही गंगा शान्त हैं और किसी स्थान पर नहीं ।

एक बार भगवान्की आज्ञासे ध्रुवकुमारको अपने साथ ले जानेके लिए विमान लेकर पार्षद आए । गंगातट छोड़कर वैकुण्ठ जानेकी ध्रुवकी इच्छा नहीं हो रही है । वे सोचते हैं कि गंगातट पर रहकर सत्संग, भजन, ध्यान आदिमें जो आनन्द मुझे मिला है वह वैकुण्ठमें कैसे प्राप्त होगा ? गंगाजीको साष्टांग प्रणाम करके वे अंतिम स्नान करने लगे । गंगाजीको छोड़ते हुए उन्हें वेदना हो रही है, उनका हृदय भर आया है ।

उस समय गंगाजी प्रकट हुईं । ध्रुवने कहा—भगवान्की आज्ञाके कारण मैं तुम्हें छोड़ कर वैकुण्ठ जा रहा हूँ । तुम्हारे तट पर जैसा आनन्द मिला है वैसा तो वहाँ वैकुण्ठमें कैसे मिलेगा ? यह सुनकर गंगाजीने प्यारसे कहा—यह तो मेरा भौतिक स्वरूप है । वैकुण्ठमें मैं आधिभौतिक स्वरूपसे रहती हूँ । ध्रुवने गंगाजीको प्रणाम किया ।

सभीकी वन्दना करके ध्रुवजी वैकुंठ गए। वे विनयकी मूर्ति हैं।

ध्रुवके समीप आकर मृत्युदेवने सिर नवाया, तो ध्रुवने उनके मस्तक पर एक पैर रखकर दूसरा पैर विमानमें रखा। विमानमें बैठकर भगवान्के धाममें गए। ध्रुवके वैकुंठ-गमनसे सभीको आनन्द हुआ।

नारदजी कुछ अप्रसन्न-से हैं। वे सोचते हैं कि मृत्युदेवके सिर पर पांव रखकर विमानमें बैठकर मेरा शिष्य वैकुंठमें पहुँच गया। मेरा शिष्य मुझसे भी आगे निकल गया। उसे लेनेके लिए वैकुंठसे विमान आया और मुझे तो अब भी इस संसारमें भटकना पड़ रहा है।

यह बात सिद्ध करती है कि बहुत कथा करनेसे भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। ध्यान के बिना, प्रभुदर्शनके बिना शांति नहीं मिलती। एकांतमें बैठकर ध्यान करनेकी आवश्यकता है।

प्रभुके लाड़ले भक्त मृत्यु अर्थात् कालके मस्तक पर पांव रखकर वैकुँठमें जाते हैं। भागवतके चौथे स्कंधके बारहवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें स्पष्ट कहा है कि मृत्युके सिर पर पांव रखकर ध्रुवजी विमानमें बैठे थे।

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्

भगवान्के भक्त मृत्युसे नहीं डरते। मनुष्य निर्भय नहीं बन पाता है क्योंकि वह ईश्वरका नहीं होता है। जो ईश्वरकी शरणमें गया है वह निश्चिन्त बनता है, निर्भय बनता है।

सुतीक्ष्ण ऋषि मानसमें कहते हैं—मेरा अभिमान प्रतिदिन वृद्धिगत हो। कौन-सा अभिमान? मैं भगवानका हूँ और भगवान् मेरे हैं ऐसा अभिमान।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।

जो भगवान्का आश्रय ग्रहण करता है, वह निर्भय बनता है। उसे कालका भय नहीं सता सकता। काल तो परमात्माका दूत है। कालके काल परमात्माकी शरणमें जानेके पश्चात् काल भी क्या बिगाड़ सकता है?

ध्रुव अर्थार्थी भक्त हैं। ध्रुवने भगवान्की शरणगति स्वीकार की तो भगवान्ने उनको दर्शन दिये, राज्य दिया और अंतमें वैकुंठवास भी दिया। यह है भगवान्की अनन्य शरणागतिका फल।

ध्रुवका दृष्टांत बताता है कि अटल निश्चयसे कठिनतम कार्य भी सिद्ध होता है। किंतु यह निश्चय कैसा होना चाहिए?—"देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि।" कार्य सिद्ध करूँगा और नहीं तो देहत्याग करूँगा।

यह दृष्टांत यह भी बताता है कि बाल्यावस्थासे ही जो भगवान्की भक्ति करता है उसे ही वे मिल पाते हैं। वृद्धावस्थामें भजन-ध्यान करनेवालेका अगला जन्म सुधरता है। किंतु इसी जन्ममें भगवान्को प्राप्त करना है तो बाल्यावस्थासे ही भक्ति की जानी चाहिए।

बाल्यावस्थाके अच्छे संस्कार नष्ट नहीं होते। सुनीतिकी भाँति तुम भी अपने बालकोंमें बचपनसे ही धार्मिक संस्कारोंका सिंचन करो।

ध्रुवचरित्रकी समाप्ति करते हुए मैत्रेयजीने कहा कि नारायण सरोवरके किनारे नारदजी तप कर रहे थे, वहाँ प्रचेताओंका मिलन हुआ।

विदुरजीने पूछा—ये प्रचेता कौन थे ? किसके पुत्र थे ? विस्तारसे सब कुछ बताइए।

मैत्रेयजी विदुरजीको और शुकदेवजी परीक्षित राजाको कथा सुना रहे हैं।

ध्रुवजीके ही वंशज थे प्रचेता।

ध्रुवजीके वंशमें एक राजा हुआ था अंग। अंगके यहां हुआ वेन। अंग सदाचारी था और वेन दुराचारी। वेनके शासनकालमें प्रजा बहुत दुःखी हो गई।

वेन राजाके शासनकालमें अधर्म बढ़ गया तो ब्राह्मणोंने शाप देकर उसका नाश किया। राजाके बिना प्रजा दुःखी होने लगी। वेन राजाके शरीरका मंथन किया गया। प्रथम एक काला पुरुष प्रकट हुआ। नीचेके भागमें पाप होनेके कारण उसका मंथन करके प्रथम तो पाप निकाल दिया गया। नाभिसे नीचेका भाग उत्तम नहीं है। उसके ऊपरका भाग उत्तम कहा गया है।

नाभिसे नीचेके भागका सुख लेने जैसा नहीं है। मनुष्यके ऊपरका भाग पवित्र है।

फिर ऊपरके पवित्र भागका, बाहुओंका मंथन वेदमंत्रों द्वारा किया गया। उससे पृथु महाराजका प्राकट्य हुआ।

श्रीधर स्वामीने कहा है कि इन लोगोंने बाहुओंका मंथन किया, अतः अर्चन-भक्तिरूप पृथु महाराज प्रकट हुए। यदि हृदयका मंथन किया गया होता तो साक्षात् नारायण प्रकट हुए होते।

पृथु महाराज अर्चन भक्तिके स्वरूप हैं, अतः उनकी रानीका नाम अर्चि है। अर्चन-भक्तिमें पृथु श्रेष्ठ हैं। वे नित्य महा-अभिषेक करते थे, अतः उनके शासनकालमें प्रजा सुखी हुई। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया। इस यज्ञमें अश्वको बंधनरहित करके उसकी इच्छानुसार घुमाया जाता है। यदि अश्व कहीं बाँधा न जाए तो यज्ञमें उसका बलिदान किया जाता है।

अश्व वासनाका स्वरूप है। यदि वह किसी विषयके बंधनमें न फँसे तो आत्मस्वरूपमें लीन होता है। यदि वासना किसी विषयके बंधनमें फंस जाये तो विवेकसे युद्ध करके उसे शुद्ध करना होता है।

पृथुके इस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रने बाधा उपस्थित की। वे उस अश्वको ले गए। उस यज्ञमें अत्रि महाराज बैठे हुए थे। पृथुका पुत्र घोड़ा वापस ले आया। उस समय भगवान् प्रकट हुए।

पृथुने भगवान्से प्रार्थना की—मैं मोक्षकी इच्छा नहीं रखता क्योंकि वहाँ आपकी कीर्तिकी कथा सुननेका सुख नहीं मिल पाता। मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आपकी कथाके श्रवणके लिए मुझे दस हजार कान दें कि जिससे मैं आपकी लीलाकथा सुनता रहूँ। आपके एक चरणकी सेवा चाहे लक्ष्मीजी करें किंतु दूसरे चरणकी सेवा मैं करना चाहता हूँ।

पृथुराजाने धर्मानुसार प्रजाका पालन किया और पृथ्वीमें समाहित कई प्रकारके

रसोंका युक्तिपूर्वक दोहन किया। उन्होंने अपनी प्रजाको बार-बार धार्मिक शिक्षा दी। वे चाहते थे कि उनकी प्रजा धर्मकी मर्यादाओंका पालन करे।

पृथु महाराज गाय तथा ब्राह्मणोंका पालन करते थे।

गाय घास खाकर दूध देती है। ब्राह्मण साधारण भिक्षासे जीवन-निर्वाह करके सभीको ज्ञानदान करता है। गाय और ब्राह्मणके संतुष्ट होने पर प्रजाको शक्ति और ज्ञान मिलते हैं और प्रजा सुखी होती है। आजकलके राज्यकर्ता ऐसा सोचें, तो प्रजा सुखी हो सकती है।

जब संपत्तिकी अपेक्षा अच्छे संस्कार और धर्मकी आवश्यकता अधिक महसूस होगी और वृद्धिगत भी होगी, तभी देश सुखी होगा।

पृथु महाराज एक बार रानी अर्चिके साथ बैठे हुए थे कि वहाँ सनतकुमार आए। उनके सत्संगसे राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे अर्चिके साथ वनमें गए। पृथु महाराज स्वर्गमें गए।

सनत्कुमारोंके उपदेशसे उन्होंने वनवास लिया।

प्राचीन कालमें तो राजा भी राज्यत्याग करके वनमें बसकर प्रभुभजन करते थे, किंतु इस अर्थ और भोगप्रधान कालमें वनवास करनेकी इच्छा किसीको होती ही नहीं है। फिर सुखशांति मिले तो कैसे मिले?

पृथुके पश्चात् उनका पुत्र विजिताश्व राजा बना। वे तीन बंधु थे—हर्यक्ष, धूम्रकेश और वृक। इसके पश्चात् अंतर्धानके यहां हविर्धान और हविर्धानके यहाँ प्राचीनबर्हि राजा हुआ। प्राचीनबर्हि राजाके यहाँ प्रचेता हुए।

प्रचेता नारायण सरोवरके किनारे आए। नारदजीने उनको रुद्रगीताका उपदेश दिया। उससे भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाओंसे कहा कि तुम तप करो। बिना तप किए सिद्धि नहीं मिल पाती। तप न करनेवालेका पतन होता है। शंकर भगवान् ऐसी आज्ञा देकर अदृश्य हो गए। शंकरके बताए हुए स्तोत्रोंका जाप करते हुए प्रचेता तपश्चर्या करने लगे।

नारदजीने उस समय बर्हिराजासे प्रश्न किया—तुमने यज्ञ तो अनेक किए हैं। क्या तुम्हें शांति मिली?

राजाने कहा—नहीं।

नारदजी—तो फिर तुम ये यज्ञ क्यों कर रहे हो?

राजा—मुझे प्रभुने बहुत कुछ दिया है अतः मैं यज्ञ कर रहा हूँ। यज्ञोंके द्वारा मैं ब्राह्मणोंकी सेवा कर रहा हूँ। यज्ञके द्वारा मैं संपत्तिका समाजसेवामें सदुपयोग कर रहा हूँ। यज्ञसे भी वैसे तो शांति नहीं मिल पाती है।

नारदजी प्राचीनबर्हि राजाको समझा रहे हैं—जन्ममृत्युके चक्रसे जीव मुक्त हो पाए, तभी पूर्ण शांति प्राप्त हो सकती है। यज्ञसे तेरा कल्याण नहीं होगा। कल्याणके लिए चित्तशुद्धि आवश्यक है। चित्तशुद्धि होनेके पश्चात् एकांतमें बैठकर ध्यान करनेकी आवश्यकता है। केवल यज्ञ करनेसे ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। तू स्वर्गमें तो जाएगा किंतु तेरे

पुण्योंका क्षय होगा। अतः स्वर्गमें-से तुझे निकाल दिया जाएगा। इसलिए शांतिसे बैठकर तू आत्म-स्वरूपका चिंतन कर। तुझे अपने ही आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं है। अब यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है। शांतिपूर्वक ईश्वरकी तू आराधना कर।

राजाने कहा—आप बड़ा अच्छा उपदेश दे रहे हैं।

नारदजी कहते हैं—तुझे अपने ही स्वरूपका ज्ञान नहीं है। जो स्वयंके स्वरूपको पहचान नहीं सकता, वह ईश्वरको कैसे पहचान सकेगा ? मैं एक कथा सुनाता हूँ, ध्यानसे सुन।

प्राचीनकालमें एक पुरंजन नामका राजा था। उसके एक मित्र था अविज्ञात। पुरंजनको सुखी करनेके लिए अविज्ञात हमेशा प्रयत्नशील रहता था। फिर भी अपने प्रयत्नकी उसे भनक भी न पड़े, उसका भी वह ध्यान रखता था।

ईश्वर ही अविज्ञात है। ईश्वर अज्ञातरूपसे जीवकी सहायता करता है। जीवात्मा-पुरंजनको सुखी करनेके लिए ईश्वर-अविज्ञात वृष्टि करता है, अनाज उत्पन्न करता है। फिर भी वह पुरंजनको खबर तक नहीं होने देता। पुरंजनभी यह नहीं सोचता कि वह किसीकी सहायताके कारण सुखी है।

परमात्माकी लीला अविज्ञात है। वहाँ बुद्धि कुछ काम नहीं दे सकती। भगवान् कहते हैं कि अशन करने का काम तेरा है और पाचन करनेका काम मेरा है। "पचामि अन्नं चतुर्विधम्।" जीव भोजन करता है और परमात्मा पाचन करते हैं। पेटमें ठाकुरजी अग्निके रूपमें बसे हुए हैं। भोजन कर लेनेके बाद भगवान् कहते हैं कि अब तेरा काम है सोनेका और मेरा काम है जागनेका।

मान लो कि हम गाड़ी हैं। जीवात्मा यात्री है और परमात्मा चालक। यदि भगवान् सो जाए तो 'अच्युतम् केशवम्' हो जाए। रेल्वे इंजनका चालक सो जाए तो गाड़ी रुक जाती है। यात्री सो सकता है, चालक-सूत्रधार-ईश्वर नहीं। फिर भी जीव कभी सोचता तक नहीं है कि उसे सुख-सुविधा देनेवाला है कौन ?

सत्कर्मका संकल्प करनेवालेको तो भगवान् भी बल देते हैं। प्रभुका भजन प्रातःकालमें किया जाता है। सूर्योदयके पश्चात् तो औरोंके रजोगुण, तमोगुणके रजकण तुम्हें प्रभावित करेंगे। अत. तुम अच्छे ढंगसे भजन नहीं कर पाओगे।

जीव चाहे सो जाए. भगवान् कभी. नहीं सोते।

पुरंजन जीवात्मा है। वह सोचता है कि मैं किसके कारण सुखी हूँ। सदा सर्वदा उपकार करनेवाले ईश्वरको भूलकर घूमता-फिरता हुआ वह नौ द्वारवाली एक नगरीमें प्रविष्ट हुआ। यह नगरी है मानव-शरीर।

वहाँ पहुँचने पर एक सुंदरीसे मिलन हुआ। पुरंजनने उससे उसका परिचय पूछा। स्त्रीने कहा कि मैं यह तो नहीं जानती कि मैं कौन हूँ किंतु मैं तुम्हें सुखी अवश्य करूँगी।

पशु जातिभेद मानते हैं। भैंसको देखनेसे बैल विकारी नहीं होता।

लोग गीताजी पढ़ते तो हैं किंतु उसे व्यावहारिक रूप नहीं देते। भगवान्ने कहा है कि ये जातियाँ और वर्णाश्रम मैंने बनाए हैं। फिर भी आजकलके सुधरे हुए लोग कहते हैं कि हम वर्णाश्रमकी व्यवस्थाको नहीं मानते। जिसके जीवनमें संयम नहीं है, सदाचार नहीं है, धर्मनिष्ठा नहीं है, प्रभुप्रेम नहीं है, वह सुधरा हुआ माना जाए या बिगड़ा हुआ ? उनका जीवन सुधरा

नहीं, बिगड़ा ही है। सुधरे हुए लोग कहते हैं कि यह स्त्री बड़ी सुंदर है। सुंदर होनी चाहिए, फिर जाति चाहे कोई भी हो।

कुल-गोत्रका विचार किए बिना पुरंजनने उस स्त्रीसे विवाह किया। उस सुंदरीमें वह इतना आसक्त हो गया कि उसके घर ग्यारह सौ पुत्रों का जन्म हुआ। उस स्त्रीका नाम था पुरंजनी। वे पुत्र आपसमें झगड़ते रहते थे।

बुद्धि ही पुरंजनी है। ग्यारह इन्द्रियोंके सुखोपभोगकी इच्छा ही ग्यारह सौ संतानें हैं। एक-एकके सौ-सौ पुत्र। इन पुत्रोंके पारस्परिक युद्धका अर्थ है संकल्प-विकल्पोंका संघर्ष। एक विचार उत्पन्न हुआ नहीं कि दूसरा उसे दबोचने दौड़ता है। ग्यारह इन्द्रियोंमें यह जीव फँस गया है। पंच प्राण शरीरकी रक्षा करते हैं। इन्द्रिय-सुखोपभोगके संकल्प-विकल्प ही ग्यारह सौ संतानें हैं। संकल्प-विकल्पसे जीव बंधनमें पड़ता है। बुद्धिगत संकल्प-विकल्प जीवात्माको रुलाते हैं।

कई वर्षोंतक पुरंजनने इस प्रकार सुखोपभोग किया।

कालदेव मृत्युकी पुत्री जराके साथ विवाह करनेकी इच्छा कोई नहीं करता। पुरंजन-की अनिच्छा होते हुए भी जराने उससे विवाह कर ही लिया।

जो भोगोपभोगका सुख लूटता है, उसे जरासे अर्थात् वृद्धावस्थासे विवाह करना ही पड़ता है। हमेशा याद रखो कि कभी-न-कभी वृद्धावस्था तो आएगी ही? "जवानी तो जवानी।" अर्थात् यौवन तो जाएगा ही। योगी कभी वृद्धावस्था नहीं पाता।

फिर एक रोज मृत्युका सेवक प्रज्वर आया। प्रज्वर है अंतकालका ज्वर। स्त्रीमें अतिशय आसक्त रहनेवाले पुरंजनने अंतःकालमें भी स्त्रीका ही चिंतन करते हुए देहत्याग किया, परिणामतः विदर्भ नगरीमें उसे कन्यारूपमें जन्म लेना पड़ा।

स्त्रीका चिंतन करनेसे पुरंजनको स्त्री बनना पड़ा। यह बात पुरुषोंको चेतावनी देती है कि वे किसी स्त्रीका अधिक चिंतन न करें। अन्यथा अगले जन्ममें साड़ी पहननी पड़ेगी, किसीकी पत्नी बनना पड़ेगा, संतानें होंगी। कई कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी, जिनका विचार-मात्र कँपकँपी करानेवाला है।

पुरंजन पुरुष था किंतु बार-बार स्त्रियोंका चिंतन करते रहनेसे उसे अगले जन्ममें स्त्री बनना पड़ा। कोई हमेशाके लिए पुरुष या स्त्री नहीं रह सकता। वासनाके अनुसार शरीर बदलता रहता है।

पुरंजनने केवल जवानीमें ही पाप किया था। बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें तो उसने सत्कर्म किया था। इन्हींके पुण्योंके कारण उसका जन्म एक ब्राह्मणके घरमें कन्यारूपमें हुआ। विदर्भ देशवासी उस कर्मकाण्डी ब्राह्मणके घरमें दर्भका विशेष उपयोग होता था। मर्यादाधर्मका पालन करने पर उसका विवाह द्रविड देशके पांड्य राजाके साथ हुआ। कर्म करनेसे चित्तशुद्धि होनेके बाद विवाह हुआ। द्रविड देश तो है महारानी भक्तिका नैहर। पांड्य राजा अर्थात् भक्त पतिसे विवाह हुआ।

कर्म करनेसे चित्तशुद्धि हो, तो भक्ति की जा सकती है। लोग मानते हैं कि भक्तिमार्ग सरल है किंतु यह तो अतिशय कठिन मार्ग है। मर्यादाधर्मका पालन किए बिना भक्तिका उदय

नहीं हो पाता। चित्तकी शुद्धि हुए बिना भक्तिका उदय नहीं होता। अन्तमें परमात्माका अनुभव करनेके लिए ज्ञान आवश्यक है।

भक्त पतिके साथ विवाह होनेपर एक कन्या और सात पुत्रोंका जन्म हुआ। कन्या है कथाश्रवणमें सत्सङ्गमें रुचि। इस प्रकार भक्तिका जन्म हुआ। सात पुत्र भक्तिके सात प्रकार हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य अर्थात् सात प्रकारकी भक्ति सिद्ध हुई।

भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव लीलाओंका कानसे श्रवण, मुखसे कीर्तन और मनसे स्मरण करने पर क्रमशः श्रवण, कीर्तन और स्मरण भक्ति सिद्ध होती है। प्रभुकी सेवा करनेसे अर्चनभक्ति सिद्ध होती है। प्रभुकी मूर्तिको वंदन करनेसे वंदनभक्ति सिद्ध होती है। ये सात प्रकारकी भक्ति मनुष्य अपने प्रयत्नसे प्राप्त और सिद्ध कर सकता है किंतु आठवीं सख्यभक्ति और नवीं आत्मनिवेदनभक्ति प्रभुकृपासे ही प्राप्त और सिद्ध हो सकती है।

श्रवणादि सात प्रकारकी भक्ति सिद्ध करनेके बाद, एक बार पतिकी मृत्युके समाचारसे दुःखी हुई उस कन्याको परमात्माने सद्गुरुके रूपमें आकर बोध दिया। भक्तिके सात प्रकार सिद्ध होने पर परमात्मा सख्यका दान करते हैं, आत्मनिवेदनका दान करते हैं।

अर्थात् जिस मित्रको, जिस अविज्ञातको यह जीव मायाके कारण भूल गया था, वही सद्गुरुके रूपमें आया। इसका अर्थ यह है कि अविज्ञातके रूपसे परमात्माने वहाँ आकर ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया कि तू मुझे छोड़कर मुझसे दूर हुआ और नौ द्वारवाली नगरीमें रहने गया, तबसे तू दुःखी हो रहा है। तू अपने स्वरूपको पहचान।

लौकिक सुखमें मनुष्य इतना तो फँसा हुआ रहता है कि वह अपने आत्मस्वरूपका विचार ही नहीं करता। "तत् त्वमसि।" तू मेरा मित्र है, मेरा अंश है, मेरा स्वरूप है। तू स्त्री-पुरुषरूप नहीं है। तू मेरी ओर देख।

पुरंजन प्रभुके सम्मुख हुआ। जीव और ब्रह्मका मिलन हुआ। जीव कृतार्थ हुआ। तू पुरंजन राजा है। तू कई बार स्त्री बना और कई बार पुरुष। फिर भी तुझे तृप्ति नहीं हुई, अब भी जगत्में कब तक और कितना भटकना है? परमात्माका आश्रय लेकर उसका चिंतन करते हुए उसके स्वरूपमें लीन होगा तो तू कृतार्थ हो जाएगा।

भक्तमालमें अमरदासजीकी एक कथा है। एक वार अमरदासजीने अपनी मातासे पूछा—माता, मैं तेरे विवाहके समय कहाँ था? तो माताने कहा वेटा, मेरे विवाहके पश्चात् तेरा जन्म हुआ है। तो पुत्रने कहा था, माता, तू गलत कहती है। उस समय भी मैं कहीं पर तो था ही। मेरा वह मूल निवास कहाँ है?

हमारी यह बुद्धि जानती नहीं है कि हमारा मूल निवासस्थान कहाँ है। अतः जीव जगत्में भटकता फिरता है।

नारदजीने प्राचीनबर्हिराजाको पुरंजनका आख्यान कह सुनाया।

विषयोंमें जीव ऐसा फँसा हुआ है कि वह सोचता तक नहीं है कि वह कौन है। फिर वह परमात्माको तो पहचान ही कैसे सकेगा? अपनेको जो पहचान नहीं पाता है, वह भगवान्को कैसे पहचान सकेगा?

इस तरह जीवात्माकी कथा सुनकर प्राचीनबर्हिराजाको आनन्द हुआ और बोला कि मैं अब कृतार्थ हो गया। अब मैं मात्र यज्ञ नहीं करता रहूँगा। वे अब भगवद्-चिंतन करते हुए भगवान्में लीन हो गए। कथा मनुष्यको उसके दोषोंसे परिचित कराती है और मुक्त भी कराती है।

पूर्वजन्मका प्रारब्ध तो झेलना और ऐसा प्रयत्न करना है कि नया प्रारब्ध उत्पन्न हो न हो। ऐसा पवित्र और सादगीभरा जीवन जिओ कि जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाए।

आत्मा परमात्माका अंश है। जीवात्मा देहसे भिन्न है। जीवात्मा न तो ब्राह्मण है और न तो वैश्य, न तो पुरुष है और न तो स्त्री। आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाए और देहका विस्मरण हो जाए तो मनुष्यको जीते जी मुक्ति प्राप्त होती है।

जगत् नहीं है, ऐसा बोध (अनुभव) तो मनुष्यको होता है किंतु अपने स्वयंके अनस्तित्वका बोध उसे नहीं हो पाता। अहम्का विस्मरण नहीं होता।

दस हजार वर्षों तक प्रचेताओंने नारायण सरोवरके किनारे जप किया, तभी उनके समक्ष नारायण प्रकट हुए थे।

जपसे मनकी शुद्धि होती है। जपके बिना जीवन नहीं सुधरता। रामदास स्वामीने अनुभवसे दासबोधमें लिखा है कि तेरह करोड़ जप करनेसे ईश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं।

जप पूर्वजन्मोंके पापोंको भी जलाता है। जपका फल तत्काल न मिल पाए तो मानो कि पूर्वजन्मके पाप अभी तक बाकी हैं, जिनका अभी नाश होना है। इस विषयमें स्वामी विद्यारण्यका दृष्टांत द्रष्टव्य है।

स्वामी विद्यारण्य बड़े गरीब व्यक्ति थे। अर्थप्राप्तिके हेतु उन्होंने गायत्री मंत्रके चौबीस पुरश्चरण किये, किंतु अर्थप्राप्ति न हो सकी। अतः उन्होंने थक-हारकर संन्यास ले लिया। उस समय उन्हें माता गायत्रीके दर्शन हुए। माताजीने कहा—मैं तुझ पर प्रसन्न हुई हूँ। जो चाहे सो मांग ले।

स्वामी विद्यारण्यने कहा—माताजी, जब आवश्यकता थी, तब आप न आईं। अब तो आपकी आवश्यकता ही क्या है? हाँ, इतना बताइए कि उस समय आप क्यों प्रसन्न नहीं हुई थीं।

माताने कहा—जरा पीछे मुड़कर तो देख।

स्वामीने पीछे देखा तो वहाँ चौबीस पर्वत जल रहे थे। उन्होंने माताजी से पूछा—यह क्या कौतुक है?

गायत्री माताने कहा—ये तो तेरे कई पूर्वजन्मोंके पाप हैं, जो तेरी तपश्चर्यासे जल रहे हैं। चौबीस पर्वतोंके समान महान् तेरे पापोंके क्षय होने पर मैं शीघ्र ही आ गई। जब तक पापोंका क्षय नहीं होता और जीवकी शुद्धि नहीं हो पाती, तब तक मेरे दर्शन नहीं हो सकते।

विद्यारण्यने कहा—माताजी, मैं अब शुद्ध हुआ। अब मुझे कुछ भी माँगना नहीं है।

और आगे जाकर उन्होंने पंचदशी नामका वेदांतका उत्तम ग्रंथ लिखा।

भगवान् नारायणने प्रचेताओंको दर्शन देकर आज्ञा दी कि तुम विवाह करो।

विवाह करना पाप नहीं है। गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नहीं, साधक है। एक-दो संतानें होनेके बाद संयमका पालन करो।

यह जीवात्मा कई जन्मोंसे कामवासना भोग रहा है । विवाह करनेसे कामसुखकी सूक्ष्म वासना दूर होती है । ईश्वरकी माया दो तरहसे जीवको मारती है : विवाहित भी पछताता है और अविवाहित भी ।

गृहास्थाश्रमका वातावरण ऐसा होता है कि विषमता करनी ही पड़ती है । भगवान्‌ने कहा है—रोज तीन घंटे, नियमपूर्वक मेरी सेवा, स्मरण करोगे तो मैं तुम्हें पाप करनेसे रोकूँगा और रक्षा भी करूँगा ।

एक साथ तीन घंटे भगवद्-स्मरण करनेवालेको भगवान् पाप करनेसे रोक लेते हैं। पाप करते समय मनको कुछ खटका-सा लगे तो मान लो कि प्रभुकी साधारण कृपा हुई है। पाप करनेकी आदत छूट जाए तो समझो कि प्रभुकी पूर्ण कृपा हुई है । पाप न करना भी महान् पुण्य ही है । पापकी माता है ममता और पिता है लोभ । उनका अवश्य त्याग करो ।

प्रभुसेवा जगत्-सेवा है । प्रभुसेवाके बिना देशसेवा सफल नहीं होती, अतः रघुनाथकी कृपा प्राप्त करनेका हमेशा प्रयत्न करो ।

जितने तारे गगनमें, उतने शत्रु होंय ।
जा पै कृपा रघुनाथकी, बाल न बाँका होय ॥

कोई कार्य भी बुद्धि और शक्तिके बिना नहीं हो सकता और बुद्धि तथा शक्ति ईश्वरकी आराधना किए बिना प्राप्त नहीं हो सकती ।

केवल परोपकारसे ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती । परोपकार कई बार ईश्वरकी प्राप्तिमें बाधक होता है—भरतमुनिको इस बातका बड़ा अच्छा अनुभव हुआ था ।

कामका अर्थ है घंटा । प्रहरका अर्थ है तीन घंटे । मनुष्यको चाहिए कि कमसे-कम तीन घंटे वह प्रतिदिन जप-स्मरण करे । भगवान् तुमसे संपत्ति नहीं, समय माँगते हैं । उन्हें समय देना ही चाहिए ।

दुःखका कारण मनुष्यका अपना स्वभाव ही है । स्वभावको सुधारना बड़ा टेढ़ा काम है । तीर्थस्नानसे, विष्णुयाग करनेसे स्वभाव नहीं सुधरता । परमात्माके ध्यानसे, जप करनेसे स्वभाव सुधरता है । अनेक जन्मोंसे यह जीव पाप करता आया है । पाप करनेका स्वभाव भगवान्‌के जपसे भगवान्‌की कृपा होनेसे ही छूटता है ।

गृहस्थोंको प्रचेताओंकी कथा द्वारा बोध दिया गया ।

भगवान् कहते हैं—तुम मेरे लिए तीन घंटे खर्च करो, मैं इक्कीस घंटे तुम्हारी निगरानी करूँगा । हे जीव, मैं तुझे पापसे रोकूँगा ।

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥

—भा ४-३०-१९

जो मनुष्य भगवदर्पण-बुद्धिसे कर्म करता है और जिसका समय मेरी कथावार्तामें व्यतीत होता है, उसके लिए, गृहस्थाश्रमी होने पर भी, घर बंधनका कारण नहीं होता । (वह इस संसारमें नहीं फँसता और यह संसार उसे नहीं फँसा पाता ।)

अन्यथा गृहस्थाश्रममें कामासक्ति और अर्थासक्ति बढ़ती है।

सभीको पूर्वके प्रारब्धकर्मानुसार ही संतति और संपत्ति मिलती है । अतः उसका हर्ष-शोक मनाना नहीं चाहिए। उसकी चिंता छोड़ कर भगवानके भजनमें लग जाओ।

मनके शुद्ध होने पर जानो कि भगवान्‌की कृपा हुई है । अन्यथा मनुष्यकी वृत्ति तो अहरनकी (वह लोहेका टुकड़ा, जिस पर रखकर लुहार लोहेपर घन चलाता है) चोरी और सुईका दान करनेकी होती है। ऐसी वृत्ति छोड़नी चाहिए और समलोष्टाश्मकांचन अर्थात् मिट्टी, पत्थर और कांचनको एक समान माननेकी दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए। रांका-बांका जैसा वैराग्य होना चाहिए।

रांका और बांका नामक पति-पत्नी कहीं जा रहे थे। रांका आगे था और बांका पीछे। रास्तेमें रांकाने देखा कि एक सुवर्णहार पड़ा हुआ है। उसने सोचा कि हारको देखकर बांकाकी दृष्टि-मति भ्रष्ट हो जाएगी। तो वह उस हारको धूलसे ढंकने लगा। उसे ऐसा करते देखकर बांकाने पूछा, तुम यह धूल क्यों इकट्ठी कर रहे हो ? रांकाने कहा कि वैसे तो कोई बात नहीं है किंतु बांकाने जब सच्ची बात जानी तो उसने कहा, धूलको धूलसे क्यों ढंक रहे हो ? क्या अभी तक तुम्हारी दृष्टिमें सुवर्ण और धूल दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं ? ऐसी भावना तुम्हारे मनमें कैसे रह गई ?

तो रांकाने कहा-तू तो मुझसे भी आगे बढ़ गई। तेरा वैराग्य तो बांका है । और पत्नीका नाम ही बांका पड गया।

संतोंके मनमें धूल और सुवर्ण एक समान होते हैं । ऐसा ही अनासक्तिभाव होना चाहिए।

किए हुए सत्कर्मोंको-पुण्योंको भूल जाओ। पुण्यका अहंकार अच्छी बात नहीं है । इस अहंकारके गए बिना चित्तशुद्धि शक्य नहीं है । पुण्यको भूल जाओ, किंतु किए हुए पापोंको सदा याद रखो!

महाभारतमें वर्णित राजा ययातिका उदाहरण द्रष्टव्य है।

अपने किए हुए पुण्योंके बलसे राजा ययाति सशरीर स्वर्गमें गए। उन्होंने इन्द्रासन पर बैठना चाहा। इंद्र भयभीत होकर बृहस्पतिके पास गया और सारी परिस्थिति बताकर मार्गदर्शन माँगा। तो बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा—तू ययाति राजासे पूछ कि उन्होंने पृथ्वी पर कौन-कौनसे पुण्य किए हैं, जिनके बलसे वे इंद्रासन पर बैठना चाहते हैं। अपने पुण्योंका वर्णन करनेसे उन पुण्योंका क्षय होगा

इंद्रने बृहस्पतिके परामर्शके अनुसार ययातिसे पूछा । ययातिने अपने पुण्योंका स्वयं ही वर्णन किया, अतः उन पुण्योंका क्षय हो गया और फलतः उनका स्वर्गसे पतन हुआ।

हमेशा याद रखो कि अपने द्वारा किए हुए सत्कर्मोका-पुण्योंका स्वयं वर्णन कभी मत करो।

यह श्लोक हमेशा याद रखो—

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादिगद्यं सुपद्यं करोति।
हरेरंघ्रि पद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किम् ततः किम् ततः किम् ततः किम् ॥

षडंगादि वेदोंका ज्ञान हो, शास्त्र-वर्णित सर्वविद्या मुखस्थ हो, कवित्वमयी वाणीमें सुंदर गद्य-पद्य रचनेकी शक्ति हो, किंतु चित्त हरिचरणमें लगा हुआ न हो तो उन सभीका क्या अर्थ है ? कुछ भी नहीं ।

भगवान्‌ने प्रचेताओंको विवाह करनेकी आज्ञा दी । वे अपने घर गए । सभीका विवाह हो गया और सभीके एक पुत्र भी हुआ ।

सभी प्रचेता फिर नारायण सरोवरके किनारे आए । उन्होंने नारदजीसे कहा-गृहस्थाश्रमके विलासी वातावरणमें अपने सारे ज्ञानको, अपने लक्ष्यको हम भूल गए हैं । गृहस्थाश्रममें विषमता रखनी पड़ती है, जिसके कारण ज्ञान विस्मृत हो जाता है । शिवजीने और भगवान् नारायणने हमको उपदेश दिया था, वह भी हम भूल चुके हैं । आप हमें फिरसे उपदेश दीजिए ।

सारे जगत्‌को कोई कभी खुश नहीं कर सकता । जगत्‌को प्रसन्न करना बड़ा कठिन है ।

एक बार कोई पिता-पुत्र एक घोड़ेको लेकर जा रहे थे । पुत्रने पितासे कहा—तुम घोड़े पर बैठ जाओ, मैं चलता रहूँगा । पिता घोड़े पर सवार हो गया । रास्तेमें कुछ लोगोंने कहा—यह पिता कितना निर्दय है ! स्वयं घोड़े पर सवार है और छोटे-से पुत्रको धूपमें चला रहा है । यह सुनकर पिता चलने लगा और उसने पुत्रको घोड़े पर बिठा दिया । आगे रास्तेमें फिर कुछ लोग मिले, जिन्होंने कहा कि यह पुत्र कितना निर्लज्ज है जो जवान होकर भी घोड़े पर सवार है और बूढ़े बापको पैदल चला रहा हैं । इनकी बात सुनकर पिता-पुत्र दोनों घोड़े पर सवार हो गए । रास्तेमें फिर कुछ आदमियोंने कहा—कितने निर्दय हैं ये लोग । दोनों भैंसे जैसे हैं और छोटेसे घोड़े पर सवार हैं । इनके भारसे बेचारा घोड़ा दब जाएगा । इनकी बात सुनी तो पिता-पुत्र दोनों पैदल चलने लगे । रास्तेमें आगे फिर कुछ लोगोंने सुनाया—कितने मूर्ख हैं ये लोग ! साथमें घोड़ा है फिर भी पैदल चल रहे है । एक बैठा तो भी टोका, दो बैठे तो भी निंदा और दोनों पैदल चले तो भी जली-कटी सुननी पड़ी ।

जगत्‌में कैसा व्यवहार रखें, कैसा वर्तन रखें यह समझमें नहीं आता । किंतु परमात्माको प्रसन्न करना इतना कठिन नहीं है । जो परमात्माको प्रसन्न कर सकता है वह जगत्‌को भी प्रसन्न कर सकता है । क्योंकि भगवान् ही जगत्‌के उपादान-कारण हैं ।

रामचंद्रजी कुटिलके साथ भी सरल व्यवहार करते थे, किंतु कृष्ण सरलके साथ सरल और कुटिल के साथ कुटिल व्यवहार रखते थे—

कृते प्रतिकृतम् कुर्यात् एष धर्मः सनातनः ।

यह है इन दोनोंके अवतारोंकी भिन्नता ।

जगत्‌को तो रामचंद्रजी भी प्रसन्न नहीं कर सके थे, तो सामान्य मनुष्य तो कर ही क्या सकता है ? समाजको राजा नहीं, संत ही सुधार सकता है । रामदास स्वामी मनको बोध (उपदेश) देते हैं—"बहु हिंडता सख्य होणार नाहिं ।" इसलिए जगत् को खुश करनेकी वृत्ति और इच्छा छोड़कर ईश्वरको ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करो ।

प्रभुको प्रसन्न करनेके तीन मार्ग नारदजीने चौथे स्कंधमें बताए हैं—

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा ।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ भा. ४-३१-१९

जीवमात्रके प्रति दया, जो कुछ भी मिले उससे संतुष्टि, सभी इन्द्रियोंका संयम—इन तीन उपायोंसे परमात्मा शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इन बातोंको कार्यान्वित करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं।

सभी इन्द्रियोंको संयमित करो और विषयोंमें उनको रमने न दो। संयमके बिना जीवन सरल नहीं हो सकता।

विषको खानेसेही मनुष्य मरता है, उसके चिंतनसे नहीं किंतु उपभोग न करते हुए भी विषयोंके चिंतनमात्रसे भी मनुष्य मरता है अर्थात् विषय विषसे भी बुरे हैं। उनका विषवत् त्याग करो।

विदुरजीने कहा-मैंने सुना कि उसका मुझे चिंतन करना है। मैं ही ईश्वरसे विभिन्न हो गया हूँ। मैं ही पुरंजन हूँ ऐसा सोचकर कथाका बार-बार चिंतन करो।

मैत्रेयजीने विदुरजीको यह पवित्र कथा सुनाई। विदुरजीको मुक्ति मिली।

प्रचेताओंकी कथा वक्ता और श्रोताओंके पापोंको जलाती है—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

पञ्चम स्कन्ध

श्रीशुकदेवजीने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा सात दिनोंमें मुक्ति देती है।

वक्ता अधिकारी हो और श्रोता सावधान होकर कथा सुने तो सांसारिक विषयोंके प्रति धीरे-धीरे अरुचि और परमात्माके प्रति रुचि जगती है। प्रभुके प्रति प्रेमभाव जाग जाए तो सात दिनोंमें यह कथा मुक्ति दिलाती है।

भागवतकी कथा सुननेके बाद भी मुक्ति न मिले तो मानो कि पूर्वचित्ति अप्सरा मनमें अभी तक बैठी हुई है।

अब पूर्वचित्ति अप्सराकी कथा सुनिये।

पूर्वजन्ममें जिनका उपभोग किया था, उन विषयोंकी वासना अब भी चित्तमें निहित रहती है, वही इस पूर्वचित्ति अप्सराका स्वरूप है। जीव और ईश्वरके मिलनमें वासना बाधारूप है। मनुष्यको चाहिए कि वह सुख-दुःख भोगकर प्रारब्धका नाश तो करे, किंतु नया प्रारब्ध उत्पन्न न करे। मनुष्य इसी जन्ममें अगले जन्मकी तैयारी करता है। अतः ज्ञानीजन संसर्ग-दोषसे दूर रहते हैं।

परमहंस ऋषभदेवजी ज्ञानी हैं। परमहंस भरतजी भगवद्भजन हैं।

ज्ञानी पुरुषोंको लगता है कि सांसारिक प्रवृत्तियाँ ज्ञाननिष्ठा और भक्तिमें बाधक हैं।

सांसारिक प्रवृत्तियोंको सहसा मत छोड़ो, किंतु विवेकसे कम करते जाओ।

परमहंसकी यह निष्ठा है कि जगत्‌में जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मिथ्या है। जगत्‌को मिथ्या माननेसे वैराग्य उत्पन्न होता है। संसारको सत्य माननेसे मोह उत्पन्न होता है। जगत्‌में जो दिखाई देता है, वह सब मिथ्या है, किंतु इन सबको देखनेवाली आत्मा सुखरूप है।

दृश्य विनाशी और फलरूप होनेके कारण ज्ञानी अपनी दृष्टि दृश्यमें नहीं रखते। ज्ञानीजन अपने मनको दृश्य वस्तुमें नहीं रमने देते, किंतु इन सभीके साक्षी परमात्मामें दृष्टिको स्थिर करते हैं।

मनको आत्मस्वरूपमें-से सत्ता मिलती है। मनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्माकी अनुज्ञा मिलने पर ही मन पाप करता है। आत्मा मनकी द्रष्टा है और साक्षी है। मनको पाप करनेकी अनुमति कभी मत दो।

ऋषभदेव मनको दृश्यमें कभी जाने नहीं देते थे और मनको ईश्वरमें स्थिर रखते थे, कि जिससे मन प्रभुमें मिल जाए और सुखदुःखका स्पर्श न हो।

निद्रामें मन निर्विषय बन जाता है। निद्रावस्थामें मन जिस प्रकार होता है, वैसा ही जागृतावस्थामें भी रहे तो समझ लो कि मुक्ति ही है। सभी विषयोंमें-से मनको हटाना ही होगा।

दृश्यमें-से हटकर मन द्रष्टामें मिल जाता है। मनका ईश्वरमें लय होनेपर मुक्ति मिलती है।

ज्ञानी पुरुषोंके लिए संसार बाधक नहीं । ज्ञानी पुरुष स्वेच्छासे नहीं, अपितु अनिच्छासे प्रारब्धके कारण जीते रहते हैं ।

भगवान्के भक्त परमहंस ज्ञानी प्रारब्धके कारण हो जीते रहते हैं । ये दोनों निष्ठायें वैसे तो एक ही हैं फिर भी भिन्न-भिन्न हैं । मार्ग भिन्न हैं । ज्ञानी जगत्को असत्य मानते हैं, तो भगवद्जन जगत्को सत्य मानते हैं ।

ज्ञानी और भगवद्भक्त परमहंसके लक्ष्य तो एक ही हैं, किंतु साधन भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञानी परमहंस जगत्को मिथ्यारूप अनुभव करते हैं । भागवत परमहंस जगत्को वासुदेव-स्वरूप समझते हैं ।

भागवत परमहंस मानते हैं—

।सुदेवः सर्वमिति । भा. अ. ७-११

भागवत परमहंस कहते हैं कि जगत् मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है और वासुदेवमय है ।

शंकर स्वामीने जगत्को मिथ्या माना है ।

इन दोनों निष्ठाओंमें शाब्दिक भेद है, तत्त्वतः नहीं ।

जगत् असत्य और सभीका द्रष्टा ईश्वर सत्य है, ऐसा ज्ञानी मानते हैं ।

वैष्णव-भागवत मानते हैं कि जगत् ब्रह्मकाही स्वरूप है ।

वेदांतीका विवर्तवाद है और वैष्णवोंका परिणामवाद ।

ज्ञानियोंका विवर्तवाद है : दूधसे दही बनता है किंतु दही दूध नहीं है ।

भागवत कहते हैं : ईश्वरमेंसे जगत्का जो परिणाम (जन्म) हुआ है, वह दहीकी भाँति नहीं किंतु सुवर्णसे बने हुए आभूषणोंकी भाँति हुआ है । सुवर्णका टुकड़ा सुवर्ण ही था और आभूषण बननेके पश्चात् भी सुवर्ण ही रहा । सुवर्णके टुकड़के सुवर्णमें और आभूषणके सुवर्णमें कोई भेद नहीं होता । जगत् ब्रह्मका ही परिणाम है, अतः सत्य है ।

सूतजी सावधान करते हैं ।

शंकराचार्य कहते हैं कि नाम-रूप मिथ्या हैं और अन्य सभी कुछ सत्य है । मिट्टी सत्य है, घड़ा नहीं । इसी प्रकार जगत् सत्य नहीं है ।

वैष्णव कहते हैं कि ब्रह्मरूप जगत् सत्य है । ये लोग जगत्को ब्रह्मरूप मानकर जगत्के प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूप ही देखते हैं और जगत्के सभी पदार्थोंसे प्रेम करते हैं ।

ज्ञानी पुरुष जगत्को मिथ्या मानकर, जगत्के पदार्थोंसे प्रेम नहीं करते । वे केवल ईश्वर से प्रेम करते हैं और विकार-वासनाको नष्ट करते हैं । वे कहते हैं कि शरीर विष्ठा-मूत्रसे भरा हुआ है और इस आधारसे वे देहका मोह छोड़कर परमात्मामें लीन होते हैं ।

किंतु वैष्णवोंके लिए तो सारा जगत् ब्रह्मरूप है ।

सियाराममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

ज्ञानीकी दृष्टि नारीकी ओर जाएगी तो वह समझ लेगा कि यह तो हड्डी-मांसकी पुतली है, जो मलमूत्रसे भरी हुई है। इससे क्या लेना-देना है और ऐसा सोचता हुआ वह ज्ञानी उस स्त्रीकी ओरसे दृष्टि फेर लेगा।

यदि वैष्णव किसी नारीको देखेगा तो वह मानेगा कि वह तो साक्षात् लक्ष्मी है।

ज्ञानी परमहंसोंका मार्ग साधारण गृहस्थके लिए कुछ कठिन ही है। वैष्णवोंका मार्ग हम जैसोंके लिए सरल है। जगत्को ब्रह्मरूप समझना सरल है। जो दृष्टिगोचर हो रहा है. उसे मिथ्या मानना कठिन कार्य है। माना कि स्त्री सुंदर है किंतु ज्ञानी कहेगा कि वह तो विष्ठामूत्रसे भरी हुई पुतली है, अतः उसमें-से मन हटा लो। सौंदर्य कल्पनामें है। ज्ञानी स्त्रीकी उपेक्षा करेगा। कभी नारी देखनेमें आएगी तो ज्ञानी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखेगा, तिरस्कारसे देखेगा।

किंतु यदि वैष्णव किसी नारीको देखेगा तो उसे वह लक्ष्मीदेवी समझेगा और ऐसा मानकर निर्विकार होकर उसे वह वंदन करेगा। वैष्णव नारीके प्रति सम्मान और सद्भावकी दृष्टिसे देखेगा।

किसी भी वस्तुके प्रति तिरस्कारसे देखनेकी अपेक्षा, प्रत्येकको भागवत-भावसे निर्विकार होकर वंदन करना अधिक अच्छा है।

महाप्रभुजी कहते हैं : प्रत्येक पदार्थ श्रीकृष्णका अंश है अतः यह जगत् सत्य है।

किंतु खंडन-मंडनके ऐसे संघर्षसे दूर रहना ही अच्छा है। अन्यथा रागद्वेष बढ़नेकी आशंका है।

ज्ञानी परमहंस ज्ञानसे उपदेश देता है तो भागवत परमहंस क्रियासे उपदेश देता है। जड़ भरतकी भाँति उसकी प्रत्येक क्रिया उपदेशरूप होती है।

ऋषभदेव आदर्श ज्ञानी परमहंस हैं तो भरतजी आदर्श भागवत परमहंस। सभी कुछका त्याग करके ऋषभदेव पागल जैसे होकर जगत्में भ्रमण करते हैं। सभीमें ईश्वरका भाव रखकर भरतजी सभीकी सेवा करते हैं : भरतजी कहते हैं : "मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत।"

ऋषभदेवको देहाध्यास ही नहीं है। वे आदर्श ज्ञानी परमहंस हैं। पहले इन्हींकी कथा आएगी। ऋषभावतार ज्ञानका आदर्श स्थापित करनेके लिए है।

पंचम स्कंध भागवतका ब्राह्मण अर्थात् भाष्यरूप या व्याख्यारूप है।

द्वितीय स्कंधमें गुरुने साधन दिया और उसके बाद ज्ञान दिया। ज्ञानको जीवनमें कैसे उतारा जाए, यह तृतीय तथा चतुर्थ स्कन्धके सर्ग-विसर्ग लीलामें बताया गया।

अब प्रश्न यह है कि ज्ञानको किस रीतिसे स्थायी करें। ज्ञानको स्थिर करनेकी, स्थायी करनेकी रीति पंचम स्कन्धकी स्थितिलीलामें बतायी गई है। स्थिति अर्थात् प्रभुकी विजय। सर्व सचराचर प्रभुकी मर्यादामें है।

परीक्षित राजा आरंभमें प्रश्न करते हैं—मनुके पुत्र राजा प्रियव्रतको विवाह करनेकी इच्छा नहीं थी फिर भी उन्होंने विवाह क्यों किया? गृहस्थाश्रम निभाते हुए भी उन्होंने सिद्धिकी प्राप्ति कैसे की? किस प्रकार कृष्णमें उनकी भक्ति दृढ़ हुई।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

घर भक्तिमें बाधकरूप है। घरमें गृहस्थको विषमता (पक्षपात) करनी पड़ती है। गृहस्थ सभीकी ओर समभाव नहीं रख सकता। वह शत्रु, मित्र, चोर, सेठ आदि सभीके प्रति समभाव नहीं रख सकता।

श्रीकृष्णका गृहस्थाश्रम ऐसा था कि वे सभीके प्रति समभाव रखते थे। एक बार दुर्योधन उनसे सहायता माँगने आया। वैसे उसने श्रीकृष्णका कुछ समय पहले अपमान किया था, फिर भी निर्लज्ज होकर वह सहायताकी याचना करने चला आया। सामान्य गृहस्थ अपना अपमान भूल नहीं पाता किंतु श्रीकृष्ण दुर्योधनको सहायता देनेके लिए तैयार हो गए। अर्जुन भी सहायता माँगने आया था। दुर्योधनने कहा कि मैं अर्जुनसे पहले आया हूं, अतः माँगनेका पहला अधिकार मेरा ही है।

श्रीकृष्णने कहा—मैं तो तुम दोनोंकी सहायता करूँगा। एकके पक्षमें मेरी नारायणी सेना होगी और अन्यके पक्षमें निःशस्त्र मैं।

दुर्योधनने सोचा कि कृष्ण तो बातें ही बनाते रहेंगे और मुझे तो युद्ध करनेवालेकी आवश्यकता है, बातूनीकी नहीं। उसने नारायणी सेना माँग ली। अर्जुनने श्रीकृष्णको माँगा।

इस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुन और दुर्योधन दोनोंके प्रति समभाव रखा। श्रीकृष्ण गृहस्थाश्रमी नहीं, आदर्श संन्यासी हैं।

गृहस्थाश्रमी होनेपर भक्ति-कार्यमें कुछ-न-कुछ बाधा उपस्थित होती ही रहती है, अतः राजा प्रियव्रतने सोचा कि इस व्यवहारका मुझे त्याग करना होगा।

परमार्थमें अभेदबुद्धि और व्यवहारमें भेदबुद्धिका निर्वाह करना पड़ता है। व्यवहार भेदभाव जगाता है। भेदभाव होनेपर काम, क्रोध आदि विकार पैदा होते हैं। ज्ञानी पुरुष सभीको अभेदभावसे देखते हैं। व्यवहार और परमार्थको एक करना टेढ़ी खीर है। भेदभावके कारण व्यवहारमें वैर और असमानता उत्पन्न होती ही हैं, अतः ज्ञानीजन सभी प्रवृत्तियोंका त्याग करके एकांतमें भक्ति करते हैं।

घरमें भक्ति नहीं हो पाती, क्योंकि कई विक्षेप आते रहते हैं। तुम गृहत्याग करके गंगा-किनारे जा नहीं सकते, अतः कहना पड़ता है कि घरमें ही रहकर भजन करो। जीव जब प्रभुके साथ एक होता है तभी साक्षात्कार कर सकता है। एकांतमें ईश्वरकी आराधना करनेसे यह शक्य होता है।

राजा प्रियव्रतकी इच्छा हुई कि मैं एकांतमें ईश्वरकी आराधना करूँ। वहाँ ब्रह्माजीने आकर राजासे कहा—प्रारब्धको भुगतना ही पड़ता है। मैं भी परमात्माकी आज्ञासे प्रारब्ध भुगत रहा हूँ। मुझे भी प्रवृत्ति करनेकी इच्छा नहीं है। तुम्हारे लिए अभी वनगमनकी आवश्यकता नहीं है। सावधानीसे व्यवहार करो। जितेन्द्रिय तो घरमें रहकर भी ईश्वरकी आराधना कर सकता है और जो जितेन्द्रिय नहीं है, वह तो वनमें भी प्रमाद ही करेगा।

स्त्री-पुत्रका त्याग करके वनमें जाकर भी भरतने वहाँ संसार बसाया था। भरतजी वनमें भी भटक गए। प्रह्लादने दैत्योंके साथ रहकर, कई प्रकारके कष्ट सहकर घरमें ही भक्ति की थी।

भागवत् सभीके लिए है—गृहस्थके लिए भी और गृहत्यागी वनवासीके लिए भी।

भागवत्की कथा मार्गदर्शक है। ऐसा नहीं है कि गृहत्यागीको ही भगवान् मिलते हैं।

पवित्र और सदाचारपूर्ण जीवन जीने वालेको तो घरमें रहते हुए भी भगवान् मिलते हैं। घरका वातावरण प्रतिकूल होते हुए भी प्रह्लादजीने घरमें रहकर भक्ति की और भगवान्का दर्शन किया।

अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित करना बड़ा आवश्यक है। लक्ष्यको ध्यानमें रखकर ही जीवन व्यवहार किया जाए। मानव-जीवनका लक्ष्य है प्रभुकी प्राप्ति।

प्रह्लादने प्रतिकूल परिस्थिति होनेपर भी भक्ति की। जबकि घरको भक्तिमें बाधारूप मानकर गृहत्याग करनेपर भी भरतजी वनवासमें भक्ति न कर सके। मनुष्य कहीं भी जाए पंचविषय तो साथ साथ आएँगे ही। घरमें रहकर ही भक्ति करनी है तो प्रह्लादका आदर्श दृष्टिके समक्ष रखो और वनवासी होकर भक्ति करनी है तो भरतजीका जीवन लक्ष्यमें रखो।

जीवके पीछे छः चोर लगे हुए हैं। वे छः चोर हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। इन विकारोंके वश जो नहीं होता उसके लिए घर बाधारूप नहीं है।

गृहस्थाश्रम एक किला है। पहले उसमें रहकर ही लड़ना उत्तम है। ये छः शत्रु तो वनमें भी साथ-साथ आकर सताते हैं। अतः उन छः शत्रुरूपी विकारोंको हराना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरको जीतना है। इन छः शत्रुओंका विजेता गृहस्थ होते हुए भी वनवासी जैसा ही होता है। गृहस्थाश्रमी रहकर इन छः विकारोंको कुचलना सरल है।

सुखी होना है तो अपने चालीसवें वर्षसे संसारके व्यवहारोंका धीरे-धीरे त्याग करने लगो और इक्यावनवें वर्षमें वनगमन करो।

ब्रह्माजी राजा प्रियव्रतसे कहते हैं—तुम विवाह करो। विवाह किए बिना विकारवासना नष्ट नहीं हो सकती। कुछ समयके लिए संसारके सुखोंका उपभोग करनेके पश्चात् परमात्माकी आराधना करो।

व्यवहार करो किंतु ऐसा करो कि पुनर्जन्मका बीजारोपण न हो जाए। रागद्वेष-रहित किया गया व्यवहार मनुष्यको मुक्ति दिलाता है।

जीवनमुक्त पुरुष शारीरिक अभिमानसे रहित होता है। वह वासना नहीं रखता, अतः उसे दूसरी देह नहीं मिलती है।

आज्ञा मिलनेपर प्रियव्रतने विवाह किया। उसके घर कई बालक उत्पन्न हुए। प्रियव्रतके पश्चात् आग्निध्रने शासन सँभाला।

वे तपश्चर्या करनेके लिए वनमें जा बसे। उनके तपमें पूर्वकी वासना—पूर्वचित्ति बाधायें उपस्थित करने लगी।

चित्तमें रहनेवाली पूर्वजन्मकी वासना ही पूर्वचित्ति है, भोगे हुए विषय-सुखका स्मरण और उनके कारण मनमें बसी हुई सूक्ष्म वासना ही पूर्वचित्ति है। पूर्वकी वासना शीघ्र छूट नहीं सकती। इन्द्रियोंको मिला हुआ सुख वे बार-बार माँगती रहेंगी। ऐसी वासना जगने पर मनको समझाना होगा कि तूने आज तक कितना सुखोपभोग किया फिर भी तृप्ति नहीं हो पाई है क्या? जबतक विषयोंका आकर्षण है तब तक विषयेच्छा नष्ट नहीं हो पाती। विषयोंके प्रति

आकर्षण न रहने पर विषयेच्छा नष्ट होती है। सांसारिक विषयोंमें जब तक रुचि रहती है, तब तक यह जीव ज्ञान-भक्तिके मार्गमें आगे नहीं बढ़ सकता। पूर्वचित्ति सभीको सताती है। पूर्वचित्तिका अर्थ है पूर्वके संस्कार। निवृत्ति होने पर भी पूर्वकी वासनाका स्मरण होते रहना ही पूर्वचित्ति है।

आग्निध्र राजा पूर्वचित्तिमें फँसे हुए हैं।

आग्निध्रके घर नाभि हुए। नाभिके घर पुत्ररूपमें ऋषभदेव हुए। ऋषभदेवजी ज्ञानके अवतार थे। ज्ञानी परमहंसोंका व्यवहार-वर्तन किस प्रकारका होता है, बतानेके लिए भगवान्ने ऋषभदेवजीके रूपमें जन्म धारण किया। वे जगत्को ज्ञानी परमहंसका आदर्श बताना चाहते थे। ऋषभका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ।

ऋषभदेव बार-बार उपदेश देते हैं कि मानवजीवन भोगके लिए नहीं, तपश्चर्याके लिए है। तप करो और सभीमें ईश्वरको देखो। विषय-सुखोंमें ही मानव-शरीरका दुर्व्यय मत करो।

जगत्में ज्ञानी परमहंसोंको किस प्रकार रहना चाहिए, यह बतानेके लिए ऋषभदेवजीने सभी संगोंका और सर्वस्वका त्याग किया। अनेक सिद्धियाँ उनके पास आई, फिर भी वे उनमें नहीं फँसे।

गृहस्थके लिए धनत्याग और काम-सुखका त्याग करना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है महात्माओंके लिए सिद्धियोंका त्याग।

ऋषभदेवजी नग्नावस्थामें ही घूमते-फिरते हैं, खड़े-खड़े ही खा लेते हैं, बैलकी भाँति सब्जीका आहार करते हैं। किसीके द्वारा पीटे जाने पर वे मान लेते हैं—शरीर ही पीटा गया है। मैं शरीरसे भिन्न हूँ, ब्रह्मनिष्ठ हूँ, सभी जानते हैं कि शरीरसे आत्मा भिन्न है, किंतु इसका अनुभव तो बहुत कम व्यक्ति कर सकते हैं।

श्रीफल—नारियलमें अन्दरका सफेद गोला और उसका कठोर आवरण एक न होने पर भी जब तक अन्दर पानी है, तब तक वे एक-दूसरेको छोड़ते नहीं हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्यको विषयमें रस है, विषयकी आसक्ति है, तब तक शरीर और आत्माकी भिन्नताका अनुभव नहीं हो सकता। शरीर आवरण है, आत्मा गोला है, विषयरस पानी है। संसारकी किसी भी वस्तुमें जब तक रस है, तब तक शरीर और आत्माकी भिन्नताका अनुभव नहीं हो पाता।

शारीरिक उपभोगोंमें आनंद नहीं है। आत्मा ही आनंदरूप है।

नामरूपका मोह जब तक नहीं छूटता, तब तक आत्मा और देहकी भिन्नता समझमें नहीं आती, इसके विपरीत देहाध्यास बढ़ता ही है। संसारके जड़ पदार्थोंसे अति स्नेह करनेसे जड़ाध्यास भी बढ़ता ही है।

वैराग्यके बिना ब्रह्मज्ञान स्थायी नहीं हो पाता। ब्रह्मज्ञानकी बातें करने वाला, धन और प्रतिष्ठासे भी प्रेम करनेवाला सच्चा ज्ञानी नहीं है। सच्चा ज्ञानी तो वही है जो ईश्वरसे प्रेम करता है। ईश्वरके बिना संसारके जड़ पदार्थोंसे स्नेह हो जाता है, और वह शरीरसे भिन्न आत्माको नहीं देख सकता। ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि सांसारिक विषयोंमें मोह होगा तो उसे ब्रह्मानन्द प्राप्त नहीं होगा। ब्रह्मज्ञान होनेके बाद ईश्वरसे प्रीति होने पर ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

ज्ञानी पुरुषको चाहिए कि किसी भी वस्तुसे वह स्नेह न करे। किसी वस्तुका संग्रह न करे। यह मनुष्यजन्म तप करनेके लिए है। मनुष्यदेहसे तप करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है। अंतःकरणकी शुद्धिसे अनन्त ब्रह्मसुखकी प्राप्ति होती है।

महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है। कामियोंका संग नरकद्वार है।

इस मृत्युरूप संसारमें फँसे हुए अन्य लोगोंका जो उद्धार करनेमें असमर्थ है, वह गुरु, गुरु नहीं हैं, वह स्वजन, स्वजन नहीं हैं, वह माता-पिता, माता-पिता नहीं हैं। अर्थात् वह मनुष्य गुरु, स्वजन, माता, पिता होनेके लिए अपात्र है।

योगवासिष्ठ रामायणमें ज्ञानकी सात भूमिकाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट हैं: (१) शुभेच्छा (२) सुविचारणा (३) तनुमानसा (४) सत्त्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पदार्थभाविनी (७) तुर्यगा।

(१) शुभेच्छा—आत्मकल्याणके हेतु, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाकर, उनके उपदेशानुसार शास्त्रोंका अवलोकन-अध्ययन करके आत्मविचार और आत्माके साक्षात्कारकी उत्कट इच्छा करना ही शुभेच्छा है।

(२) सुविचारणा—सद्गुरुकथित उपदेश वचनोंका तथा मोक्षशास्त्रोंका-बार बार चिंतन और विचार करना ही सुविचारणा है।

(३) तनुमानसा—श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे शब्दादि विषयोंके प्रति जो अनासक्ति होती है और सविकल्प समाधिमें अभ्याससे बुद्धिकी जो तनुता-सूक्ष्मता प्राप्त होती है वही तनुमानसा है।

(४) सत्त्वापत्ति—उपर्युक्त तीनसे साक्षात्कार पर्यन्त स्थिति अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूप स्थिति ही सत्त्वापत्ति है। ज्ञानकी चौथी भूमिकावाला पुरुष ब्रह्मविद् कहलाता है।

(५) असंसक्ति—चित्त विषयक परमानंद और नित्य अपरोक्ष ऐसी ब्रह्मात्म-भावनाका साक्षात्काररूप चमत्कार असंसक्ति है। इसमें अविद्या तथा उसके कार्योंका संबंध नहीं होता, अतः इसका नाम असंसक्ति है।

(६) पदार्थभाविनी—पदार्थोंकी दृढ अप्रतीति होती है वही पदार्थभाविनी है।

(७) तुर्यगा—तीनों अवस्थासे मुक्त होना, तुर्यगा है। ब्रह्मको जिस अवस्थामें आत्मरूप और अखंड जाने वही अवस्था तुर्यगा है।

इन सातों भूमिकाओंमेंसे प्रथम तीन भूमिकाएँ साधनकोटिकी हैं और अन्य चार ज्ञानकोटिकी हैं। तीन भूमिकाओं तक सगुण ब्रह्मका चिंतन करो। ज्ञानकी पांचवीं भूमिका तक पहुँचने पर जड़ और चेतनकी ग्रंथि छूट जाती है और आत्माका अनुभव होने लगता है। आत्मा शरीरसे भिन्न है। इस भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर देहभान भूलता जाता है और अन्तमें उन्मत्त दशा प्राप्त होती है। ऋषभदेवजीने ऐसी दशा प्राप्त की थी।

ज्ञानीजन भी इन्द्रियोंसे डरते हैं। वे इन्द्रियोंका विश्वास नहीं करते। मनका विश्वास कभी मत करो। बोलनेकी इच्छा ही न होने पाए, इसलिए ऋषभदेवजी अपने मुँहमें पत्थर रखते थे।

यौवनमें ही वैराग्य न आए, सांसारिक विषयोंके प्रति अरुचि न हो पाए तो प्रभुभक्ति प्राप्त नहीं होती। विषयोंके प्रति जब तक वैराग्य न जगे, तब तक भक्तिका आरंभ नहीं होता।

आँखको शक्ति देता है मन। मनको बुद्धि शक्ति देती है और बुद्धिको शक्ति देते हैं परमात्मा। आँखके साथ मन न हो तो वस्तु दिखाई नहीं देती।

ऋषभदेवजी कर्नाटक आए। दावाग्निमें बुद्धिपूर्वक प्रवेश किया। "देह जलती है, पर आत्माको तो कुछ नहीं होता"—ऐसी आत्मनिष्ठा परमहंसोंके लिए ही है। ऋषभदेवजीका चरित्र सामान्य मनुष्यके लिए अनुकरणीय नहीं है।

ऋषभदेवजीका सबसे श्रेष्ठ पुत्र था भरत। इसी भरतके नामसे अपने देशका नाम भरतखंड पड़ा। ऋषभदेवजीके पश्चात् भरतने देशका शासन सँभाला। उनकी कथा वर्तमानकालके लिए विशेष उपयोगी है। भरतजी महाभागवत हैं। उनके संगसे सभीमें भगवत-भाव जगता था। उनके संगमें आनेवाले भक्तिरंगमें रंग जाते थे।

भरतजीने व्यवहारकी मर्यादाका कभी उल्लंघन किया न था। वे महावैष्णव होने पर भी यज्ञ करते थे। अग्नि ठाकुरजीका मुख है। प्रत्येक देवको इष्टदेवका ही स्वरूप मानकर अन्य देवोंमें कृष्णका अंश मानकर पूजा करते थे। अनेक यज्ञ करके उसका सारा पुण्य श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित करते थे।

कर्मफल परमात्माको अर्पित करोगे तो आनन्द होगा। कर्मफल प्रभुको अर्पित करनेसे कर्मका अभिमान नष्ट होता है। ईश्वरसे अत्यधिक प्रेम करो, तभी किए हुए कर्मोंका पुण्य परमात्माको अर्पित कर सकोगे। पत्नी श्रम करती है और उसका फल दे देती है अपने पतिको।

कर्म करो किंतु कर्मके फलके उपभोगकी इच्छा न रखो। कर्मफलके उपभोगकी इच्छा रखोगे तो कर्मका अल्प फल ही मिलेगा। पर यदि वह कर्मफल भगवान्को अर्पित करोगे तो अनन्त फल मिलेगा। सकाम कर्मकी भागवतमें कई स्थानों पर निंदा की गई है। सकाम कर्ममें क्षति होने पर क्षमा नहीं मिल पाती। भरत निष्कामभावसे कर्म करते थे और उसका पुण्य श्रीकृष्णको अर्पित करते थे।

सत्कर्मकी समाप्तिमें कहना है—

अनेन कर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् न मम, न मम।

ऐसा कहते तो कई लोग हैं किंतु अर्थ नहीं समझते। कर्म कृष्णार्पण करनेकी भावनासे ही भरतजी यज्ञ करते थे।

भरतजीको युवावस्थामें ही एक दिन वैराग्य हो आया। जिसे युवावस्थामें ही वैराग्य हो और जो संयम करके भजनप्रवृत्ति बढ़ाए, उसे वृद्धावस्थामें भगवान्की प्राप्ति होती है। वृद्धावस्थामें शारीरिक अशक्ति हो जानेके कारण तुम भक्ति कर नहीं सकोगे। तपश्चर्या यौवनमें ही की जा सकती है। वृद्धावस्थामें तपश्चर्या करनेसे अगला जन्म सुधरेगा। शरीर दुर्बल होनेके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करनेका कोई अर्थ नहीं है। रामचंद्रजी युवावस्थामें ही वनमें गए थे। वनवासके समय उनकी आयु सत्ताईस वर्षकी थी और सीताजीकी अठारह वर्षकी। रामचंद्रने यौवनमें ही रावणको मारा था। तुम भी अपनी युवावस्थामें कामरूपी रावणका नाश करो।

वृद्धावस्थामें आनेवाला वैराग्य सच्चा वैराग्य नहीं होता। जवानीमें ही वैराग्यकी परीक्षा होती है। जिसके पास कुछ नहीं है, वह त्याग करे उसका कोई अर्थ नहीं है। जवानीमें सुख-संपत्ति होने पर भी विषयसुखमें मन न रमे, वही सच्चा वैराग्य कहला सकता है।

भरतजीका मन घरमें नहीं लगा। राजवैभव, सुख-संपत्ति, स्त्री-पुत्र आदि सभी कुछ हैं, परंतु आंखें बंद होने पर इनमेंसे कुछ भी नहीं रह जाता। जन्मके पूर्व जीवका रिश्तेदार कोई भी नहीं था। मृत्युके पश्चात् भी कोई रिश्तेदार नहीं रहेगा। प्रारंभ और परिणाम (अंत) में कोई न था। माया ही बीचमें भरमाती रहती है।

भरतजी सोच रहे हैं कि सांसारिक सुखका उपभोग तो मैंने कई वर्षों तक किया। अब विवेकपूर्वक उसका त्याग करूंगा। उन्होंने यौवनमें बुद्धिपूर्वक त्याग किया। विषयोंको अनिच्छासे बलात् छोड़ना पड़े तो दुःख होता है। किंतु विषयोंका समझ-बूझकर स्वैच्छिक त्याग करनेसे शांतिकी प्राप्ति होती है। यदि विषय हमें छोड़ जाएं तो अशांति होती है किंतु यदि स्वयं हम उन्हें छोड़ दें तो शांति प्राप्त होती है।

परमात्माने इन छै वस्तुओंमें माया रखी है कि जिनमें मन फंसता रहता है :—

(१) भोजन (२) द्रव्य (३) वस्त्र (४) स्त्री (५) घर और (६) पुस्तक। इनमें प्रथम चार प्रधान हैं और अन्य दो गौण। इसमें स्त्रीकी निंदा नहीं है, कामसुखकी निंदा है।

ईश्वरकी माया विचित्र है।

भरत मुनिने राज्यका त्याग किया, रानियोंका त्याग किया। सर्वस्वका त्याग करके वनमें आये। वनमें एक मृगबालसे स्नेह हो गया और अपने मनमें उसे स्थान दे बैठे। इस आसक्तिके कारण उनका भजन-ध्यान आदि खंडित हो गए और उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा।

अतः अपने घरमें चाहे किसीको भी रख लो, किंतु मनमें तो किसीको भी बसने मत दो। मनमें किसीको बसाओगे तो प्रभुभजनमें वह बाधारूप होगा।

जगत्‌के किसी भी पदार्थसे इतना तो स्नेह मत करो कि जिससे वह स्नेह तुम्हारी प्रभुभक्तिमें बाधा बन जाए।

भरतमुनिके मनमें मृगबालके लिए जिस आसक्तिने जन्म लिया, वह उनके लिए पुनर्जन्मका भी कारण बनी। संकल्प (वासना) पुनर्जन्मका कारण बनता है।

मनमें अन्य किसी भी वस्तुके प्रवेश होने पर मनमोहन वहांसे भाग निकलते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे कि संसारमें नौकाकी भांति रहना चाहिए। पानी पर रहनेसे नौका तैरती रहेगी, किंतु यदि नौकामें पानी आ जाए तो वह डूब जाएगी। इसी प्रकार संसारमें तुम रहो किंतु उसे अपनेमें रहने मत दो अर्थात् निर्लेपभावसे संसारमें रहो। शरीर नौका है, संसार समुद्र है और विषय जल है।

विषयोंका चिंतन करते रहनेसे आत्मशक्ति नष्ट होती है।

ममता बंधनकर्ता है। मनके मरने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है। बंधन मनका होता है, आत्माका नहीं। आत्मा तो मुक्त ही है।

गृहत्यागकी आवश्यकता नहीं है। गृहमें सावधान होकर रहना है।

प्रतिकूल परिस्थितिमें भी प्रह्लाद घरमें रहे और उनकी भक्तिमें कोई बाधा न डाल सका, जबकि वनमें एकांतमें भी भरतजी मृगबाल पर आसक्त हुए और भजन न कर सके।

प्रतिकूल संयोगमें, प्रतिकूल वातावरणमें भजन किस प्रकार किया जाये, यह प्रह्लादने जगत्को बताया है। और अनुकूल वातावरणके होने पर भी मनुष्य सावधान न रहे तो वह भजन नहीं कर सकता, ऐसा हम भरतके दृष्टान्तसे समझ सकते हैं।

घरमें समाहित वस्तुएँ भजनमें बाधारूप नहीं हैं किंतु मनमें बसी हुई वस्तुएँ बाधारूप हैं।

गृहत्यागी महात्माओंको माया किस प्रकार सताती है वह यह कथा बताती है। भरतजीने सोचा कि एकांतमें बैठकर मैं ईश्वरकी आराधना करूँगा। वे नेपालमें गंडकी नदीके किनारे आए। वहाँ वे आदिनारायण भगवान्की आराधना करने लगे।

ईश्वरके सिवा अन्य किसीका भी संग भजनमें विक्षेप करेगा। जिसे तप करना है वह अकेला ही तप करे। सदा यही सोचो कि मैं अकेला नहीं हूँ, मेरे भगवान् भी मेरे साथ हैं। ईश्वरके सिवा अन्यका संग रखोगे तो दुःखी होगे।

भरतजी अकेले ही तप करने गए थे। गंडकीका दूसरा नाम है शालिग्रामी।

भरतजीका नित्य नियम था—चार बजे ब्राह्ममुहुर्तमें स्नान करते थे। कटितक जलमें खड़े रह कर सूर्यनारायणका ध्यान और गायत्रीमंत्रका जप करते थे।

सूर्यनारायणकी कृपासे बुद्धि उज्ज्वल होती है, अतः उनकी हमें उपासना करनी चाहिए। सूर्यनारायणके उपकारके कारण हम उनके ऋणी हैं। वे जगत्को सतत प्रकाशदान करते हैं। उनका उदय न होने पर जगत्में प्रलय होता है। समस्त स्थावर-जंगमकी आत्मा सूर्य हैं। सूर्यनारायण सभीको प्रकाश देते हैं। किंतु वे बिजलीकी कंपनीकी भाँति बिल (नोटिस) नहीं भेजते हैं। वे रविवारकी छुट्टी भी नहीं मानते। जिस दिन वे छुट्टी मनाएँगे, जगत्का प्रलय हो जायगा।

सूर्य परमात्माका साकार स्वरूप है।

मनुष्य और कौएमें एक बार झगड़ा हो गया था। तो उस समय कौएने कहा था—वैसे तो तू अधिक बुद्धिशाली है, किंतु तुझसे हममें एक गुण अधिक है। हम सूर्योदयके पहले ही निद्रात्याग करते हैं।

सूर्योदयके पूर्व ही स्नानादि करके सूर्यनारायणको अर्घ्यदान करो। रात्रिके ग्यारह बजेके बादका समय राक्षसकाल कहा गया है। इस निषिद्ध कालमें भोजन मत करो। आजकल तो लोग सिनेमा देखनेके बाद ग्यारह बजे भोजन करते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है।

सूर्य-चंद्र-समुद्र ईश्वरकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते। हे मानव, परमात्माकी मर्यादाका पालन करनेके लिए तुझे सुखसमृद्धि दी गई है।

भरतजी प्रार्थना करते हैं—मेरी बुद्धि, मेरा मन कहीं दुर्मार्गी न हो जाये। भगवान्के तेजोमय रूपका मैं चिंतन करता हूँ।

अर्थ और ज्ञानके साथ जप करो।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

राजन्! भरतजी द्वारिकाधीशकी मानसी सेवा करने लगे। प्रत्यक्ष सेवा तो बहुत की थी, अतः अब मानसी सेवा करने लगे।

मानसी सेवा सरल नहीं है।

अधिकतर पाप शरीरसे नहीं, मनसे ही होता है। अतः मानसी ध्यान, मानसी सेवा श्रेष्ठ है। ईश्वरमें मनसे तन्मय होना ही मानसी सेवा है।

एक बार एक बनियेने गोसाईं जीके पास जाकर कहा–महाराज! मैं प्रभुसेवा करना तो चाहता हूँ, किंतु एक भी पैसेके खर्चके बिना सेवा हो सके ऐसा मार्ग बताइए।

तो गोसाईंजीने मानसी सेवाका मार्ग बताते हुए उस बनियेसे कहा—तू मानसी सेवा बिना खर्चके कर सकेगा। केवल मनसे संकल्प करते रहना कि मैं भगवान्‌को स्नान करा रहा हूँ, वस्त्र पहना रहा हूँ, पूजा कर रहा हूँ, भोग लगाता हूँ, भगवान् भोजन कर रहे हैं, आदि।

फिर गोसाईंजीने उससे पूछा—तुझे भगवान्‌का कौन-सा स्वरूप अधिक प्रिय है।

बनियेने उत्तर दिया—मुझे तो भगवान्‌का बालकृष्णस्वरूप अधिक प्रिय है।

गोसाईंजीने कहा—प्रातःकालमें ऐसी भावना कर कि ठाकुरजीके लिए यमुनाजल ले आया हूँ। घर आने पर ऐसा भाव जगाया जाय कि ठाकुरजी स्नान कर रहे हैं। यशोदाजी जैसी भावना रखके बालस्वरूपकी सेवा करना। बालसेवामें वात्सल्यभाव मुख्य है। सेवामें दूध और माखन लाना। बादमें कन्हैयाको मंगलगीत गाकर जगाना।

जागो बंसीवाले ललना मोरे प्यारे॥
रजनी बीती भोर भयौ है घर घर खुले किवारे।
गोपी दही मथत सुनियत हैं कंगनके झनकारे॥
उठो लालजी भोर भयौ है सुरंनर ठाढे द्वारे।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे॥
माखन-रोटी हाथमें लीन्हीं गउअनके रखवारे।
मीराके प्रभु गिरधर नागर शरण आये कूँ तारे॥
जागो बंसीवाले ललना मोरे प्यारे॥

यशोदाजी लालाको मनाती थीं कि इतना माखन खा लेगा तो तेरी चोटी दाऊजीसे भी जल्दी बढ़ जाएगी।

उष्णोदकसे लालको माङ्गलिक स्नान कराना। फिर ठाकुरजीका शृंगार करना। कन्हैयासे पूछना कि आज वह कौन-सा पीतांबर पहनेगा। कन्हैया जो कहें, वह पीतांबर पहनाना। शृंगारमें तन्मयता होने पर ब्रह्मानन्द-सा आनन्द प्राप्त होता है।

कन्हैयाको नैवेद्य देकर भावना करो कि लाला प्राशन कर रहा है। फिर आरती करके क्षमाप्रार्थना की जाए।

गोसाईंजीद्वारा बतायी हुई रीतिके अनुसार बनिया श्रीकृष्णके बालस्वरूपकी मानसी सेवा करने लगा। प्रतिदिन प्रेमसे मानसी सेवा करता था। वह इतना तो तन्मय होने लगा कि सभी वस्तुयें प्रत्यक्ष दीखने लगीं। इस सेवामें मनकी धारा टूटनी नहीं चाहिए। कोई सांसारिक विचार आ जाये तो समझ लो कि सेवा खण्डित हो गयी। बारह वर्षों तक उसने मानसी सेवा की।

अब एक दिन वह दूध लाया और उसमें चीनी डाली किंतु उसे लगा कि लालाके दूधमें आज कुछ अधिक चीनी पड़ गयी है। बनिया यह कैसे सह सकता था ? स्वभावसहज कृपणता कैसे मिट सकती है ? प्राण और प्रकृति (स्वभाव) साथ-साथ ही तो जाते हैं। उसने सोचा जरूरतसे अधिक जो चीनी दूधमें जा पड़ी है उसे निकाल लूं, कभी दूसरे काममें उपयोगी होगी। अब वहाँ न तो बर्तन था, न तो दूध था और न तो थी चीनी। क्योंकि वह तो मानसी सेवा ही करता था न। फिर भी तन्मयताके कारण उसे ये सारी वस्तुएँ प्रत्यक्ष दिखाई देती थीं, अतः मन-ही-मन कल्पनामें उस चीनीको निकालने लगा।

कन्हैयाने सोचा कि जैसा भी हो किंतु इस बनियेने मेरी बारह वर्षों तक मानसी सेवा की है। अतः उन्हें प्रकट होनेकी इच्छा हुई। बालकृष्ण प्रसन्न हुए थे। उन्होंने प्रकट होकर बनियेका हाथ पकड़ा और कहा कि चीनी अधिक चली गई तो क्या हुआ ? तूने एक पैसे का भी तो खर्च नहीं किया है।

भगवत्-स्पर्श होनेसे वह बनिया सच्चा वैष्णव बन गया। वह भगवान्‌का अनन्य सेवक बन गया।

बारह वर्षों तक जो भी सत्यकार्य नियमपूर्वक किया जाए, उसका फल अवश्य मिलता है। शंकराचार्य भी श्रीकृष्णकी मानसी सेवा करते थे।

भरतजी भी मानसी सेवा करते हुए तन्मय हुए हैं। सेवा करते हुए थक जाते थे, तो ध्यान और कीर्तन करने लग जाते थे।

प्रभुके पीछे जो लगता है उसे ही माया सताती है। सांसारिक विषयोंमें जो फँसा हुआ है, उसे माया नहीं सताती, क्योंकि माया मानती है कि यह तो मरा हुआ ही है फिर उसे और क्यों मारूँ ?

जो व्यक्ति प्रभुके पीछे पड़ा हुआ है, उसे ही माया अधिक सताती है ; किंतु जो मायाके प्रवाहमें बहता होता है, उसके लिए वह बाधारूप नहीं होती। माया मानती है कि वह तो मेरा बंदी है ही।

मायाकी गति बड़ी विचित्र है।

कमर तक जलमें भरतजी खड़े हुए थे। ग्रीष्म ऋतु थी। एक गर्भवती हरिणी प्रातः-काल जलपान करने आई। इतनेमें कहींसे सिंहने गर्जना की, जिससे वह हरिणी भयभीत हो गई। उसने सोचा कि गंडकी नदी पार कर लूं। उसने जोरसे छलांग मारी। प्रसवकाल समीप था। अतः हरिणबालका जन्म हो गया और वह नदीके जलमें गिर पड़ा। दूसरे किनारे पर हरिणीकी भी मृत्यु हो गई।

भरतजीने उस मृगबालको नदीके जलमें पड़ा हुआ देखा। उन्होंने इस बच्चेमें भी श्रीहरिका दर्शन किया। वे सोचने लगे कि इसकी माताकी तो मृत्यु हो गई है, सो जगत्‌में इसका तो कोई नहीं रहा है। अब इसका लालन-पालन-रक्षा आदि कौन करेगा ? वे दयावश होकर उस बच्चेको अपने आश्रममें ले आए।

वे सोचने लगे कि यह बच्चा मेरे सिवाय किसी औरको तो पहचानता नहीं है। इसका पालन-पोषण करना अब मेरा ही धर्म है। मैं इसकी उपेक्षा करूँगा तो यह मर जाएगा। मैं ही

इसका पिता हूँ और मैं ही इसकी माता हूँ। इसका पालन-पोषण-रक्षा करना मेरा ही कर्तव्य है। उन्होंने सोचा—"मैं ही इस मृगबालका रक्षक पिता हूँ। अतः हर प्रकारसे मुझे इसकी रक्षा करनी ही है।"

जीव मानता है कि मैं दूसरोंकी रक्षा करता हूँ। अरे, तू क्या रक्षा करेगा ? तू भी तो कालका ग्रास है। रक्षा करने वाले तो वह (प्रभु) ही हैं। कर्ताहर्ता तो श्रीहरि ही हैं। पालक और संहारक भी श्रीहरि ही हैं। तुम घरमें रहो या वनमें, तुम्हारी रक्षा करने वाले श्रीहरि हैं।

भागवतके सातवें स्कंधके दूसरे अध्यायके चालीसवें श्लोकमें यमराजने राजा सुयज्ञके रिश्तेदारोंको यह उपदेश दिया था, ऐसा कह कर हिरण्यकशिपुने कहा है—

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यतिं।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो बने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ।।

यदि परमेश्वरकी कृपा हो तो जो अनाथ हो या वनवासी हो तो भी वह जीवित रहता है और परमेश्वर द्वारा मारा गया जीव घरमें सुरक्षित होने पर भी जीवित नहीं रहता, मरता ही है।

मृगबालको पानीसे बाहर निकालनेका तो भरतजीका धर्म था। उन्होंने रक्षक पिता बननेका जो रिश्ता जोड़ लिया वह अच्छा नहीं किया। जीवमात्रका रक्षकपिता तो ईश्वर ही है। सभी दोष अभिमानके कारण ही उत्पन्न होते हैं।

भरतजी उस मृगबालका लालन-पालन करने लगे। धीरे-धीरे वह बड़ा होने लगा। भरतजी उसे अपनी गोदमें बिठलाते थे और उसके साथ खेलते रहते थे।

भरतजीने अपनी पूर्वावस्थामें बच्चोंका लालन-पालन किया था। यह पूर्वचित्ति अप्सरा वहाँ आ गई। पुराने संस्कारोंको भूलना बड़ा कठिन काम है। सूक्ष्म संस्कार मनमें अभी तक बसे हुए थे। अतः उनका मन उस हिरणके बच्चेमें फँस गया। अब उनका मन प्रभु-भजनमें स्थिर नहीं हो पाता था। ध्यानमें हर पाँच-दस क्षणके बाद वह बच्चा ही दिखाई देने लगा। वासनाका विषय तो बदल गया किंतु वासना तो मनमें ही रह गई। ऐसी हालतमें इसकी अपेक्षा गृहजीवनमें कौन-सी बुराई थी ? ज्ञानीको तो मनको भी मारना पड़ता है।

भरतजीने जो मृगबालको घरमें रखा वह ठीक तो हुआ, किंतु उसे जो मनमें भी रखा, वह ठीक नहीं किया।

संसारको छोड़कर कहाँ जाओगे ? जहाँ भी जाओगे, संसार वहीं उपस्थित हो जाएगा। इसी कारणसे महापुरुषोंने कहा है कि संसारको अपने मनमेंसे धीरे-धीरे हटा दो। संसारको मनमें कभी मत रखो। किसीको घरमें चाहे रख लो, किंतु मनमें मत रखो। मनमें या तो कामको ही रखो या फिर ईश्वरको ही। दोनों साथ-साथ नहीं रह पाएँगे। कहा भी है—

तुलसी दोनों नहिं रहैं, रवि रजनी इक ठाम।

भजन और भक्तिमें बाह्य संसार नहीं, आंतर संसार ही बाधारूप है।

वह मृगबाल भरतजीकी कुटियामें ही नहीं, मनमें भी बस गया। उन्होंने घर, राज्य, पत्नी, संतान आदि सभीका त्याग किया तो सही, पर अन्तमें वे उस बच्चेकी मायामें फँस गए।

परोपकारकी भावना ही अति साधकके लिए उसकी साधनामें बाधक होती है। परोपकारके पचड़ेमें अधिक मत फँसो। वैसे तो परोपकार करना सभीका धर्म है, परंतु परोपकार ऐसे तो न किया जाय कि जिससे प्रभुका विस्मरण हो जाए। संसारमें मनुष्य कपटी न बनें, किंतु अति सरल भी न बनें। परमात्माका ध्यान कदाचित् न हो सके तो कोई बात नहीं, किंतु जगत्‌के स्त्री, पुरुष या जड़ वस्तुओंका ध्यान कभी मत करो। शत्रु तो मित्र नहीं बनता, किंतु मित्र कभी भी शत्रु बन सकता है।

भरतजीका प्रारब्ध ही हिरण्यबालके रूपमें सामने आया। प्रारब्धको तो झेलना ही पड़ता है। ज्ञान होनेके पश्चात् वासना नष्ट न हो सके तो ज्ञान दृढ़ नहीं हो पाता। ज्ञानको दृढ़ करनेके लिए प्रथम वासनाको नष्ट करना आवश्यक है। वासनामें मन फँसा हुआ है। भरतजी वैसे तो महाज्ञानी हैं। किंतु ज्ञान होनेके बाद भी यदि मन वशमें न हो, तो ज्ञान स्थिर (स्थायी) नहीं हो सकता। जब तक ज्ञानी मन और वासनाका नाश न कर सके तब तक उसकी भक्ति और ध्यानमें स्थिरता नहीं आ सकती। वासनाके वेगमें कई बार ज्ञान बह जाता है। जो वैराग्यके बिना गृहत्याग करता है वह वनमें भी नया संसार बसा लेता है। भरतजी ज्ञानी तो हैं किंतु वासनाको अंकुशित नहीं कर सके हैं। घरमें रहकर वैराग्यकी पूर्णतः प्राप्तिके पश्चात् ही गृहत्याग करो।

ज्ञानीके दो प्रकार हैं। जिसने अधिक उपासना की है वह कृतोपास्ति ज्ञानी है। उसे माया नहीं सताती। किंतु जो अकृतोपास्ति ज्ञानी है, उसके लिए माया विघ्नकर्ता है। वासनाके नाशके बिना तत्त्वानुभव नहीं होता। वासनाके नाश किए बिना तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होने पर भी ब्रह्मनिष्ठा नहीं होती। भरतचरित्र इसका दृष्टांत है।

भरतजीको अब तक अपरोक्ष साक्षात्कार नहीं हुआ था। यदि यह साक्षात्कार हुआ होता तो उनका मन हिरणबालमें नहीं फँसता।

भरतजी अब दिनोंदिन उस बच्चेके लालन-पालनमें व्यस्त रहने लगे, परिणामतः संध्या-पूजा आदि नित्यकर्म छूटने लगे। भरतजी उसे हरी कोमल घास खिलाते। वह चौकड़ी भरता या मुनिके अंग चाटता तो भरतजी सोचते—वाह, कैसा सुन्दर और सयाना है यह।

दिन-प्रतिदिन यह आसक्ति बढ़ती चली। एक दिन वह बच्चा खेलता-कूदता घने वनमें जो चला गया तो रात होने पर भी वापस न आया। मुनिको चिंता होने लगी कि मेरे बच्चेका क्या हुआ होगा ? कब लौटेगा ?

कालको किसी पर भी दया नहीं आती। काल सदा-सर्वदा सावधान रहता है।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतम् अस्य न वा कृतम्।

मृत्यु कभी यह नहीं सोचती कि इसने अपना कार्य समाप्त किया भी है या नहीं। अतः हर क्षण सावधान रहो। मृत्युके लिए हमेशा तैयार रहो। जीवन इस प्रकार जीना चाहिए कि तुम सावधान रहो और मृत्यु आए। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी तैयारी न हुई हो और मृत्यु तुम्हें उठा ले जाए।

भरतजीको पकड़नेके लिए काल आया। भरतजीको मृगबालका स्मरण हो आया। उन्होंने श्रीहरिका नहीं अपितु मृगबालका चिंतन करते हुए देह-त्याग किया। इस मृगबालके

लालन-पालन करनेसे भरतजीको आत्मस्वरूपका विस्मरण हो गया। मृत्युके समय मृगबालका ही चिंतन करते रहनेके कारण उन्हें अगले जन्ममें मृगका ही शरीर मिला।

मनुष्य अगले जन्मकी अर्थात् पुनर्जन्मकी तैयारी अपने इसी जन्ममें करता है। इस जन्ममें बीज मिलते हैं, फल नहीं। पूर्वजन्ममें किया हुआ तप निष्फल नहीं होता। पूर्वजन्ममें किया हुआ भजन व्यर्थ नहीं होता।

भरतजीको मृगशरीरवाले जन्ममें भी पूर्वजन्मका ज्ञान था।

पशु-पक्षीका अनादर कभी मत करो। हो सकता है कि किसी कारणवशात् कोई साधु महात्मा पशु-पक्षी बन कर आए हों तो? अहल्या जैसी कोई महासती पत्थर बन कर आई हों तो? नृग राजा गिरगिट होकर आए थे और नल, कुबेर वृक्ष होकर आए थे। कोई सिद्ध पुरुष वृक्ष बनकर आए हों तो? किसी आत्मासे कुछ अपराध हो जाने पर वह पशु-पक्षीकी योनिमें भ्रमण करती है।

भरतजी मृगके स्वरूपमें घूम रहे हैं। उन्हें पूर्वजन्मका ज्ञान है। वे सोच रहे हैं कि मैं इसी गंडकी नदीके किनारे तपश्चर्या करता था। इसी स्थल पर मैंने हिरणके बच्चेको उठा लिया था और उसे मैं अपने आश्रममें ले आया था। उसके प्रति अत्यन्त आसक्ति होनेके कारण ही मुझे मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। मैं कभी महाज्ञानी था, योगी था, किंतु आज चौपाया पशु बना हुआ हूँ। अब मुझे नया प्रारब्ध नहीं कमाना है। जो मैं साथ लाया हूँ उसे ही सहना या भोगना है।

वह मृगबाल (भरतजी) नदीमें स्नान करता है, वृक्षोंके सूखे पत्ते खाता है। वह घास नहीं खाता है, क्योंकि उस पर जंतु होते हैं। हिंसा होने पर नया प्रारब्ध जुट जाएगा। इस मृगदेहमें भी वे एकादशीका व्रत करते थे। प्राचीनकालमें भारतमें पशु भी एकादशीव्रत करते थे। आजकल तो कई लोग एकादशीव्रत नहीं करते हैं।

फिर भरतजीने मृगदेहका भी त्याग किया और एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया।

मानवजीवन अतिशय विलासी हो गया है। प्रजामें संयम, सदाचार, भगवद्भक्ति बढ़ने पर ही संतोंका जन्म होता है। विलासी मातापिताके घर संतोंका जन्म नहीं होता। संत जन्म लेनेके लिए सुपात्र खोजते हैं।

पवित्र ब्राह्मणके घर भरतजीका जन्म हुआ। भरतजीका यह अंतिम जन्म था। उन्हें पूर्वजन्मका ज्ञान है कि हिरणकी मायामें फँसनेके कारण उन्हें पशुदेह धारण करनी पड़ी थी। पूर्वजन्ममें हिरणके साथ बातें करता था, अतः पशु होना पड़ा। अब तो इस जन्ममें किसीसे भी नहीं बोलूँगा। एक बार भूल हो गई। अब तो मैं बड़ा सावधान रहूँगा।

बचपनसे ही भरतजी भक्तिके रंगमें रँगे हुए हैं।

शास्त्रने अन्तिम जन्मके कुछ लक्षण बताए हैं। बाल्यावस्थासे ही जिसे भक्तिका रंग लगे, तो मानो कि उसका वह अन्तिम जन्म है। जिसकी बुद्धिने काम छोड़ा हो, उसका भी वह अन्तिम जन्म है। जब तक बुद्धिमें काम है, तब तक मान लो कि उसे अभी जन्म लेने बाकी हैं। प्रत्येक वस्तुमें जो भगवद्दर्शन करे. उसका वह जन्म अन्तिम है ही। जहाँ भी दृष्टि जाए वहाँ किसीको भगवान् ही दृष्टिगोचर हों, उसके लिए वह जन्म अन्तिम है। हृदयसे दीन और अभिमानरहित व्यक्तिका भी वह जंन्म अन्तिम जन्म है।

जड़ भरतजीका यह अन्तिम जन्म था। एक हँसता हुआ बदी बनता है तो दूसरा रोता हुआ। साधारण व्यक्ति (जीव) वासनाके आधीन होकर संसारमें आता है तो संत भगवद्-इच्छासे भगवद्-कार्यके लिए संसारमें आते हैं।

परमन और परधनको आकर्षित करनेवाला व्यक्ति संसारकी दृष्टिमें चतुर है, किंतु यह कला तो एक सामान्य स्त्रीके लिए भी साहजिक है। सांसारिक दृष्टिमें संत जड़ होता है, परंतु आनंदमय चेतन प्रभुको भूल कर, सांसारिक सुखोंमें फँसा हुआ मनुष्य तो सचमुच जड़ है। प्रभुप्रेममें मस्त, देहभानसे अज्ञात महापुरुषको जड़ कैसे कहें? किंतु संसारकी विपरीत मान्यताके कारण सांसारिक लोगोंने भरतजीका नाम जड़भरत रख दिया।

लोग भरतजीको मूर्ख मानते हैं तो भरतजी सोचते हैं कि लोग मुझे मूर्ख मानें तो इसमें बुराई भी क्या है? पूर्वजन्ममें ज्ञानका प्रदर्शन करने गया तो दुःखी हो गया। ज्ञान अन्यको उपदेश देनेके लिए नहीं, ईश्वरकी आराधना करनेके लिए है।

ज्ञान भोगके लिए नहीं, भगवान्‌के लिए है।

शंकराचार्यजीने कहा है—

विदुषाम् यच्च वैदुष्यम् मुक्तये न तु भुक्तये।

ज्ञान, धन या प्रतिष्ठा कमानेके लिए नहीं, परमात्माकी प्राप्तिके लिए है। ज्ञानका फल धन और प्रतिष्ठा नहीं, परमेश्वर है। ज्ञान परमात्माके साथ एक होनेके लिए है।

जड़भरतने सोचा कि पूर्वजन्ममें पशुके साथ वाणीव्यवहार निभाया था, अतः मुझे इस जन्ममें पशुका अवतार मिला, सो इस जन्ममें किसीके भी साथ मैं बातें नहीं करूँगा। यदि अब बातें करूँगा तो मात्र प्रभुके साथ।

वाणी और पानीका दुरुपयोग करनेवाला व्यक्ति ईश्वरका अपराधी है। अंतःकालमें वाणी उसका विश्वासघात करती है:

मीराबाईने भी तो निश्चय किया था कि बात करूँगी तो केवल अपने गिरिधर गोपाल श्रीकृष्णके साथ ही। मैं तो बस अपने गिरिधर गोपालको ही मनाऊँगी। संसारके लोगों या रिश्तेदारोंको मनानेसे क्या लाभ होगा?

राम नाम मेरे मन बसियो,
राम रसियो रिझाऊँ रे माय।

जड़भरत किसीसे भी बोलते नहीं थे।

अति बोलनेसे स्नेह उत्पन्न होता है। वैसे तो इस सृष्टिमें ईश्वरने एक-एक कामके लिए दो-दो इन्द्रियाँ दी हैं। एक आँखसे भी देखा जा सकता है फिर भी दो आँखें दी हैं, किंतु एक ही जीभको दो काम करने पड़ते हैं—बोलनेका और खानेका। अतः जीभ पर अधिक अंकुशकी आवश्यकता है।

दूसरोंके साथ बातें करनेसे, प्रेम करनेसे वासना उत्पन्न होती है। वैर और वासनासे नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है, अतः दूसरी बार जन्म लेना पड़ता है।

जड़ भरत हर तरहसे मन पर अंकुश रखते हैं। तुम्हें स्वयं ही अपने मन पर अंकुश रखना होगा। तुम्हारे मनको दूसरा कौन अंकुशित कर सकेगा?

रामदास स्वामीने कहा है कि अतिशय घूमने-घामनेसे शांति नहीं मिल पाती।

जड़भरतके पिता उसे पढ़ाने लगे और सोचने लगे कि लिख-पढ़कर मेरा पुत्र पण्डित होगा, किंतु इसकी पण्डिताई निराली ही थी। इसकी पण्डिताई सच्ची थी। सच्ची पण्डिताई कौन-सी है?

परधन परमन हरन कूँ, वेश्या बड़ी प्रवीन।
तुलसी सोई चतुरता, रामचरन लवलीन॥

भरतजी यों जानते तो सब कुछ हैं फिर भी मन्त्रोच्चार अच्छे ढङ्गसे नहीं करते। वे अपना ज्ञान प्रसिद्ध नहीं करना चाहते थे।

जड़भरतजी भगवान्‌के स्मरणमें ही लीन रहते थे। ज्ञान और भक्तिके परिपक्व होनेपर ही जीव संसारवृक्षसे उसी तरह अलग हो सकता है, जिस प्रकार परिपक्व होनेपर फल अपने आप वृक्षसे अलग होकर गिर पड़ता है।

माता-पिताने शरीरका त्याग किया तो जड़भरतजी पागलकी भाँति घूमने लगे। पागल-से लगते तो थे, किंतु वे एक क्षणमात्रके लिए भी श्रीकृष्णको भूलते नहीं थे।

जड़भरतजीने बताया है कि भोजन किस प्रकार किया जाय।

स्वादकी अपेक्षाके बिना, केवल शरीरके पोषणके हेतु ही भोजन करना चाहिए। जड़भरतके भाई उन्हें पीसे हुए तिल, धान्यका कूड़ा, सड़े हुए उड़द आदि खानेके लिए देते थे, तो उन वस्तुओंको भी अमृततुल्य मानकर वे खा लेते थे।

किस प्रकार चला जाए, वह भी जड़भरतजीने बताया है। किसी भी जीवकी हिंसा न हो पाए, ऐसा सोचकर वे रास्ता देखकर चलते थे। धरतीपर दृष्टि रखते हुए चलना चाहिए। हरदम सोचो कि कहीं मुझसे किसी जीवकी हिंसा न हो जाये।

भरतजी औरोंके काम भी करते थे। भाइयोंने उन्हें खेतके चारा ओर मेंड़ (मिट्टीकी छोटी-सी दीवार) बनानेको कहा। भरतजीने सोचा कि मैं आज यह काम करूँगा तो कल मुझे दूसरा काम सौंपेंगे। अतः उन्होंने मेंड़ बाँधनेकी जगह गड्ढा बना दिया।

एक दिन भाईने खेतकी देखभाल करनेको कहा तो भरतजीने गायोंको खेतमें चरनेके लिए छोड़ दिया। भरतजी गायोंको रोकते नहीं थे। वे कहते थे :—

खानेवाला राम, खिलानेवाला राम,
तो रोकनेका क्या काम!

जगत्‌के समक्ष मानों वे नाटक कर रहे थे कि वे पागल हैं। ज्ञानी पुरुषोंके ध्यानमें लोकसंग्रह बाधारूप हैं। सांसारिक व्यवहारकी कहीं माया न लग जाए, इस हेतुसे वे परमात्मा नारायणकी आराधना करते हुए एक दिन खेतमें बैठे हुए थे।

एक भील राजा निःसन्तान थे। उन्होंने मनौती मानी हुई थी कि सन्तान होगी तो मैं भद्रकालीको नरबलिकी भेंट चढ़ाऊँगा। पुत्रका जन्म हुआ। राजाने आज्ञा दी कि किसी नरको ले आओ। राजसेवकोंने जड़भरतको उस खेतमें देखा। उन्होंने सोचा कि यह अच्छा तगड़ा है। इसे ही हम पकड़ ले जायें।

संसारके लोगोंकी दृष्टिमें सन्त पागल हैं और सन्तोंकी दृष्टिमें संसारसुखमें फँसे हुए लोग पागल हैं।

उन भील राजसेवकोंने भी भरतजीको पागल ही मान लिया। वे उन्हें पकड़कर भद्रकालीके मन्दिरमें ले आये।

माताजीको बलिदान दो किंतु किसी जीवका नहीं। काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुण ही पशु हैं। उन्हींका बलिदान दो। देवी भागवतमें यही अर्थ बताया गया है बलिदानका।

भरतजीको स्नान कराया गया, पुष्पमाला पहनाई गई और भोजनके लिए अच्छे पकवान दिये गये।

भोजन करना पाप नहीं है किंतु स्वाद लेकर भोजन करना पाप है।

भोजन साधन है और भजन साध्य।

भरतजी भोजन करते थे, किंतु उनका भोजन भजनके लिए था।

भील सोचते हैं कि दो घण्टेके बाद तो इसे मरना है, फिर भी यह बड़े आरामसे भोजन कर रहा है।

इसके बाद भरतजीको मन्दिरके अन्दर ले गए।

सन्तकी परीक्षा उनकी मनोवृत्तिके आधार पर हो सकती है, दाढ़ी-जटासे नहीं। जड़भरतजीने माताजीको मन-ही-मन प्रणाम किया और सिर नवाकर शांत चित्तसे बैठ गए। भील राजाने भद्रकालीकी प्रार्थना की और वह तलवार लेकर बलिदान देनेके लिए तैयार हो गया।

सबके प्रति समभाव सिद्ध करनेवाले भरतको देखकर माताजीका हृदय भर आया। उनसे यह हिंसा देखी न गई। भद्रकाली मूर्त्ति तोड़कर प्रकट हुई और भील राजाकी तलवार लेकर उसीका मस्तक काट दिया तथा मस्तककी गेंद बनाकर खेलने लगीं।

ज्ञानी भक्त मानता है कि सहस्त्रबाहु भगवान उसकी रक्षाके हेतु खड़े हुए हैं। दो हाथों-वाला मनुष्य क्या रक्षा कर पायेगा? ज्ञानी भक्त माताजीको बहुत प्यारे होते हैं। ज्ञानी पुरुष अपने मनको एक क्षणके लिए भी ईश्वरसे अलग नहीं होने देता। उसकी दृष्टि ब्रह्ममय होती है।

किसी एक समय सिंधुदेशके राजा रहूगण कपिल मुनिके पास ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए गए। तत्त्वज्ञानकी विद्या प्राप्त करनेके लिए वे पालकीमें बैठकर कपिल ऋषिके आश्रमकी ओर जाने लगे। पालकी उठाकर चलनेवाले चार सेवकोंमें-से एक कहीं भाग गया, तो राजाने कहा कि जो भी मिले उसे पकड़ लाओ।

वैष्णवजन भगवद्-इच्छासे ही जीते हैं। ज्ञानी प्रारब्ध-कर्म भुगतनेकी इच्छासे जीते हैं। ज्ञानीजन अनिच्छासे प्रारब्धको देखते हैं तो वैष्णवजन इसमें भगवद्-इच्छाके दर्शन करते हैं।

साधकके लिए स्पष्ट आज्ञा है कि चार हाथके आगे दृष्टि न चली जाए। दृष्टिके चंचल होनेसे मन भी चंचल हो जाता है।

राजसेवक पालकी उठानेके लिए जड़भरतको पकड़ लाए कि यह तगड़ा है, अतः ठीक काम आयेगा। उन्होंने पालकी उठाई। आज तक कई बार स्वयं ही जो पालकीमें बैठे

थे, वे ही आज पालकी उठा रहे थे। यही उनका प्रारब्ध था। प्रारब्ध भुगतना ही पड़ता है। अंतिम जन्म होनेपर भी पालकी उठानी पड़ी है। भरतजी नीचे देखते हुए चल रहे हैं कि कहीं मुझसे किसी जीवकी हत्या न हो जाय। उन्हें तो प्रत्येक जीवमें भगवान्‌के दर्शन होते हैं

भरतजी सोचते हैं कि अब मेरा कुछ ही प्रारब्ध रह गया है। मरेगा तो मेरा शरीर ही। मैं तो नारायणसे मिल जाऊँगा। मुझे सावधान रहना है।

असावधान रहनेसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि सिरपर सवार हो जाते हैं। निर्भय बनो। निर्भयता तभी आती है कि जब जीव हमेशा परमात्माके सान्निध्यका सतत अनुभव करता है।

भरतजी रास्तेमें भी प्रभुको मनाते चलते हैं।

मनको शुद्ध करनेके लिए भरतजीको आतुरता बढ़ाकर भगवान् अदृश्य हो गए। भगवान्‌के दर्शन न होने पर भरतजी व्याकुल हो जाते हैं और रोने लगते हैं। मुझे जगत्‌में भटकना नहीं है। नाथ, मुझे कब अपनी शरणमें लोगे? मेरा प्रारब्ध कब समाप्त होगा? अब भी मुझे परमात्माके दर्शन क्यों नहीं होते? इन विचारोंसे वे रोते हैं।

रास्तेमें चींटी दीख पड़तीं तो भरतजी कूद जाते थे। ऐसा करनेसे पालकीके ऊपरी हिस्सेसे राजाका सिर टकरा जाता था। राजाने सेवकोंसे कहा कि अच्छी तरहसे चलो, मुझे असुविधा हो रही है। उन पुराने तीन सेवकोंने कहा—हम तो ठीक तरहसे चलते हैं किंतु यह नया सेवक ठीक ढङ्गसे नहीं चलता है। कभी रुकता है, कभी दौड़ता है, कभी कूदता है, कभी हँसता है, कभी रोता है। यह पागल-सा ही है। यही सताता है।

राजाने जड़भरतसे व्यंग्यमें कहा—तू तो बिलकुल दुबला-पतला है। तेरे अङ्ग भी कितने दुर्बल हैं? अतः तू ठीक तरहसे कैसे चल सकता है?

रहूगणने सोचा कि अब मैं भरतजी पर दृष्टि रखूंगा। भरतजी सोचते हैं कि रास्तेमें कोई जीव कुचल जाएगा तो पाप होगा। भरतजी चींटीमें भी कन्हैयाको देखते हैं। कृष्ण किसी एक ही घेरेमें नहीं रहते। सभीमें कृष्णका दर्शन करे, वही वैष्णव है।

जड़भरतने राजाके कहनेपर ध्यान न दिया। चींटीको देखकर भरतजीने छलाँग लगाई तो राजाका सिर पालकीके ऊपरी दण्डसे फिर टकरा गया। राजा यह सहन न कर सके। वे क्रोधित होकर जड़भरतका अपमान करने लगे—अरे, तू तो जीते जी मरा हुआ है। तुझे भान ही नहीं है। अच्छी तरहसे चल।

भस्ममें छिपी हुई अग्नि जिस प्रकार दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार ब्रह्मके चिंतनमें लीन ज्ञानी पहचाने नहीं जा सकते।

एक बार फिर राजाका सिर टकरा गया तो वह क्रोधित हो गया। उसने कहा—मैं रहूगण राजा हूँ। तुझे दण्ड दूंगा।

राजासे न तो एक भी पैसा लिया है और न ही उसका कुछ खाया है। फिर भी वह भरतको मारनेको तैयार हो गया। उन्हें मारनेका राजाको क्या अधिकार है? राजा अभिमानी था। वह मदान्ध हो गया था।

कुछ भी बोलनेकी भरतजीको इच्छा न थी। उन्होंने सोचा कि शरीर पुष्ट है। दुबलापन भी शरीरका धर्म है। आत्माको तो कुछ भी नहीं होना है। यह राजा मेरे शरीरसे बातें करता है, अतः उसके साथ बोलना आवश्यक नहीं है। मैं मौन ही रहूँगा।

भरतजी फिर सोचने लगे कि मेरा अपमान कुछ भी महत्त्व नहीं रखता ; किंतु मैंने जिसे उठाया है, वह रहूगण राजा यदि नरकवासी होगा तो पृथ्वी परसे सत्संगकी महिमा नष्ट हो जाएगी। लोग कहेंगे कि महाज्ञानी जड़भरतजीने जिनको अपने कंधेपर उठाया वह भी नरकवासी ही हुआ। जगत् में सत्संगकी बड़ी महिमा है। चाहे जो भी हो, किंतु राजाको जब मैंने अपने कंधेपर रखा ही है तो मैं उसका उद्धार भी करूँगा। उन्होंने राजाको उपदेश देनेका निश्चय किया। सत्संगकी महिमाको निभानेके लिए आज जड़भरतने बोलना चाहा। आज तक वे मौन ही रहे थे। राजाके लिए उहें दया आई और बोलनेकी इच्छा हुई।

राजाका कल्याण हो। कपिल मुनिके आश्रममें तत्त्वज्ञानका उपदेश प्राप्त करनेके लिए राजा जा रहा है। उपदेश लेनेके लिए तो दीन होकर, नम्र होकर, जाना चाहिए जब कि यह राजा तो अपना अहंभाव साथ लेकर जा रहा है। वह अभिमान लेकर जाएगा तो ऋषि उसे विद्या नहीं देंगे। आज मैं उसे अधिकारी बनाऊँगा।

रहूगण राजा भाग्यशाली हैं।

भागवतके संत मितभाषी होते हैं। सुदामा भी बहुत कम बोलते थे। मौन रखनेसे मायाका बंधन कटता है।

मुझ जैसे संतका अपमान तो मैं सह लूंगा, किंतु परमात्मा सहन नहीं करेंगे। वे इसे दंड देंगे। यह सोचकर आज भरतजीको बोलनेकी इच्छा हुई। राजाका कल्याण करनेकी उनकी इच्छा हुई।

बोलो तो ऐसा बोलो कि सुननेवालेका कल्याण हो।

भरतजी कहने लगे—हे राजन् ! यह सत्य है कि मैं पुष्ट नहीं हूँ। पर तुम्हारे कथनसे न तो मेरी निंदा हुई है और न तो उपहास। मोटापन या दुबलापन तो शरीरका धर्म है। इससे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

हे राजन् ! मैं जीते जी मरा हुआ हूँ, ऐसा जो तुमने कहा है, वह भी सच ही है, क्योंकि सारा जगत् ही जीते जी मृत-सा ही होता है। यह पालकी भी मरी हुई है और उसमें बैठे हुए तुम भी जीते होने पर भी मरे हुए ही हो।

सभी विकारी वस्तुओंका आदि और अंत होता ही है। जो जन्मे हैं, उन सभीको मरना ही है। राजन् ! तुम भी मरे हुए-से ही हो। यह शरीर शवके समान ही है।

आत्मा और शरीरके धर्म भिन्न हैं। आत्मा निर्लेप है। आत्मा मनका द्रष्टा है, साक्षी है। ज्ञानी पुरुष ईश्वरके सिवा अन्य किसी वस्तु या व्यक्तिको सत्य नहीं मानते। सभी जीवोंमें परमात्मा विद्यमान है, फिर इनमें कौन राजा है और कौन सेवक ?

व्यावहारिक दृष्टिसे ये भेद हैं, अन्यथा तात्त्विक दृष्टिसे तो 'मैं' और 'तुम' एक ही हैं।

राजन्, केवल ईश्वर ही सत्य है। तुमने जो मुझसे यह कहा कि तुम मुझे मारोगे तो बताओ कि शरीरको मारनेसे मेरी चाल तो नहीं बदल जायेगी ? शरीरकी पिटाई होने पर भी मैं तो सुखी या दुःखी नहीं होता। ये सब तो शरीरके धर्म हैं। शरीरको शक्ति देता है मन और मनको शक्ति देती है बुद्धि। बुद्धिको चेतना देनेवाली है आत्मा अर्थात् 'मैं'। शरीरके धर्म मुझे प्रभावित नहीं कर सकते।

राजन, मैं इस प्रकार इसलिए चल रहा हूँ कि चींटी आदि मेरे पाँव-तले आकर कहीं कुचल न जाएँ। चलते हुए मुझसे कहीं पाप न हो जाए। ऐसा सोचकर ही मैं छलाँग मारता हूँ। मेरे श्रीकृष्ण सभी जगह विराजमान हैं। इन चीटियोंमें भी परमात्मा हैं। मैं चीटियों तथा अन्य जीवजन्तुओंका खयाल करता हुआ चलता हूँ कि कहीं ये कुचल न जाएँ। चींटीमें भी ईश्वर है, ऐसा मानकर मैं अपने कृष्णका चिंतन करता हुआ चलता हूँ, अतः मेरी चाल तो ऐसी ही रहेगी।

जड़भरतके ऐसे विद्वत्तापूर्ण वचन सुनकर राजाने सोचा—'ना, ना, यह पागल नहीं, यह तो कोई परमहंस है। यह ज्ञानी महात्मा हैं। लगता है कि यह कोई अवधूत संत हैं। वेदांतके कठिन सिद्धान्त बता रहे हैं। इनकी ब्रह्मनिष्ठा अलौकिक है। मैंने उसका अपमान करके बड़ी क्षति कर दी है।' यह सोचकर चलती हुई पालकीसे राजा कूद पड़ा। जो मारनेके लिए तैयार हो गया था, वही राजा अब वंदन कर रहा था।

भरतजी तो निर्विकारी हैं। रहूगण द्वारा अपमान होने पर और सम्मान होने पर अर्थात् दोनों ही अवस्थाओंमें वे समस्थिति थे। न क्रोध, न दुःख, न सुख। संतकी परीक्षा उसकी मनोवृत्तिसे होती है, वस्त्रोंसे नहीं। सम्मान या अपमान होने पर भी वही समता। मानापमानमें संतकी वृत्ति सम ही रहती है।

वेश द्वारा संत होना सरल है, हृदयसे संत होना बड़ा कठिन है।

रहूगणने क्षमायाचना की। वह बोला कि आपके अपमान करनेवालेका कल्याण कभी नहीं होगा।

राजा रहूगणने पूछा—यह सांसारिक व्यवहार तो सत्य है, इसे हम मिथ्या कैसे कहें ? यदि वस्तु असत्य हो तो उससे कोई भी क्रिया नहीं हो सकेगी। जिस प्रकार कि मिथ्या घटसे जल लाना शक्य नहीं है।

आगे राजाने पूछा—आपने कहा कि शरीरको जो दुःख होता है वह आत्माको नहीं होता। परन्तु मैं तो मानता हूँ कि शरीरको कष्ट होने पर आत्माको भी कष्ट होता है। इसका कारण यह है कि इस शरीरका सम्बन्ध इन्द्रियोंके साथ है। इन्द्रियोंका सम्बन्ध मनके साथ है, मनका सम्बन्ध बुद्धिके साथ है और बुद्धिका सम्बन्ध आत्माके साथ है। अतः जो दुःख शरीरको होता है, वह आत्माको भी होगा ही। चूल्हे पर बर्तन हो बर्तनमें दूध हो और दूधमें चावल हों तो चूल्हेकी अग्निसे पारस्परिक सम्बन्धके कारण दूधमें पड़े हुए चावल पक जाते हैं। तो शरीरको होने वाला दुःख आत्माको भी होना ही चाहिए।

जड़भरतजीने कहा—राजन्! यह मिथ्या है। आत्मा निर्लेप है। अग्नि पर रखे गए बर्तनके दूधमें पड़े हुए चावल तो पकते हैं, किंतु दूधमें यदि पत्थर डाले जाएं तो वे नहीं पकेंगे क्योंकि वे निर्लेप हैं। आत्मा तो सर्वश्रेष्ठ और निर्लेप है।

संसार तो मनकी केवल कल्पना है

राजन, मनकी विकृति होने पर जीवन भी विकृत होता है। अतः जो मन यदि सुधर जाए, तो आत्माको मुक्ति मिलेगी।

एक बार मेरा मन मृगबालमें फँस गया तो मुझे भी मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। अतः अब मैं सावधान हो गया हूँ।

राजन् ! यह उपदेश व्यावहारिक मनका है। माताको अपनी संतानका बोझ नहीं सालता, क्योंकि वहाँ मनकी ममता काम कर रही है। माताको अपना पुत्र फूल-सा लगता है, दूसरोंका पुत्र वजनदार। अपना पुत्र वजनदार होने पर भी माताको फूल-सा लगता है, जब कि दूसरोंके पुत्रका वजन बोझ-सा लगता है। उसका कारण मन है। मन कहता है कि यह अपना है और वह पराया।

राजन्, ये सब तो मनके धर्म हैं। ये सब तो मनके ही खेल हैं। मनके खेलके कारण ही मुझे कभी मृग होना पड़ा था। मनके सुधरनेपर ही जगत् सुधरता है। मन मृगबालमें फँस गया था, अतः मुझे पशु बनना पड़ा था।

राजन्, तू तो केवल कच्छप देशका ही राजा है। मैं तो भरतखंडका राजा था। फिर भी मेरी दुर्दशा हुई थी।

गुणानुरक्तं व्यसनाय जंतोः तदेव नैर्गुण्यमथो मनः स्यात्।

भा. ५-११-८

विषयासक्त मन जीवको सांसारिक संकटमें फँसाता है और वही मन विषय-रहित होने पर जीवको शांतिमय मोक्षपदकी प्राप्ति कराता है।

जीवके सांसारिक बंधनका कारणरूप जीव ही है और वही मनके मोक्षका कारणरूप भी है।

मनुष्यका मन जो विषयासक्त हो जाए तो वह सांसारिक दुःखदाता बन जाता है। वही मन विषयासक्त होनेके बदले यदि ईश्वर-भजनमें लीन हो जाये तो मोक्षदाता बन जाता है।

विषयोंका चिंतन करता हुआ मन उसमें फँस जाता है तो उसका बंधन आत्मा अपनेमें मान लेती है, स्वयं पर आरोपित कर लेती है। यह सब मनकी ही दुष्टता है। अतः मनको परमात्मामें स्थिर करो।

तुम अपने मनको दंड दोगे तो यमराज तुम्हें दंड नहीं देंगे। जिस दिन जीभ असत्य बोले, उस दिन उपवास करो। जिस दिन कुछ पाप हो जाए, उस दिन माला अधिक फेरो।

भरतजी कहते हैं—राजन, तुम मुझसे पूछते हो कि मैं कौन हूँ, किंतु तुम स्वयंसे ही पूछो कि तुम कौन हो।

तुम शुद्ध आत्मा हो। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंका साक्षी आत्मा है।

राजन्, ज्ञानी जगत्को सत्य नहीं मानते। ससारको वे मनकल्पित मानते हैं।

जगत् स्वप्न जैसा है। जिस प्रकार स्वप्न मिथ्या होने पर भी मनुष्यको रुलाता है, उसी प्रकार यह मिथ्या जगत् भी मनुष्यको—जीवको रुलाता है।

मान लो कि एक मनुष्य सोया हुआ है। वह सपनेमें देखता है कि एक भयानक शेर हमला करनेवाला है। तो वह मनुष्य डर जाता है कि शेर मुझे खा जाएगा। ऐसा सोचकर वह चिल्लाने और रोने लगता है, उसकी नींद उड़ जाती है। जागने पर वह देखता है कि वह तो सपना था और सपनेके शेरसे ही वह डर गया था।

किंतु स्वप्न असत्य है, यह बात मनुष्यकी समझमें कब आती है? केवल तब कि जब वह जाग जाता है। कौन-सा व्यक्ति जागा हुआ है? विषयोंमें-से जिसका मन हट गया है, छूट गया है, वही जागा हुआ है। इसीलिए तो तुलसीदासजीने भी कहा है।

जानिय तबहि जीव जग जागा।
जब सब विषय बिलास बिरागा॥

राजन्, इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि ये सब तो मनके खेल हैं। मनको शुद्ध करनेके लिए संतोंका समागम करो। महापुरुषोंकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

महत्पादरजोऽभिषेकम्।

राजन्, सत्संगके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अपने स्वरूपका परिपूर्ण ज्ञान ही एक सत्य वस्तु है। एक ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म सत्यस्वरूप, भेदसे रहित, परिपूर्ण, आत्मस्वरूप है। पंडित उसका भगवान् वासुदेव, कृष्ण आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अन्यथा जगत् तो मिथ्या है।

भरतजीने प्रथम राजर्षिको दिव्य तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया और फिर भवाटवीका वर्णन किया।

आत्माका विवेकरूपी धन एक-एक इन्द्रिय लूट लेती है। कोई संत मिलने पर संसार-रूपी वनमें-से बाहर निकालते हैं। संसारमें अकेले कभी मत घूमो। किसी संतका, सद्गुरुका आसरा लोगे तो संसार-वनसे बाहर निकल सकोगे।

मायाके कारण जीव सुखकी आशामें इस संसाररूपी वनमें भटकता है, किंतु उसे सच्चा सुख नहीं मिल पाता।

जिस जीवका नेता (बुद्धि) असावधान और अपात्र है, उसे छः लुटेरे (इन्द्रियाँ) लूट लेते हैं। उसका धर्मरूपी धन लुट जाता है।

बड़ी-सी टोलीमें-से भी प्रमादी भेड़को जिस प्रकार भेड़िया खींच ले जाता है, उसी प्रकार जीवसंघके प्रमादी मनुष्यको शृगालादि (स्त्री-संतान) खींच ले जाते हैं।

यह वन (संसार) बेलों और जालोंसे (गृहस्थाश्रमसे) व्याप्त है। मच्छरोंसे (काम्य कर्मोंसे) यह जनसमुदाय पीड़ा पाता रहता है।

उस वनमें जीवसमुदाय गंधर्वनगरको देखता है (अर्थात् मिथ्या शरीरादिको सत्य मानता है तथा पिशाचको (सुवर्णको) देखता है। कई बार तो धूलभरी आँखोंके कारण (रजोगुणसे व्याप्त दृष्टि होनेसे) और बवंडर से उड़ती हुई धूलके कारण (बवंडरकी भाँति भरमानेवाली स्त्रीके कारण) दिशाओंको (देवोंको) वह जान नहीं पाता।

वह जनसमुदाय भूखसे व्याकुल होने पर अपवित्र वृक्षोंका (अधार्मिक मनुष्योंका) आसरा लेता है। उसे जब तृषा सताती है तो मृगजलकी (निष्फल विषयोंकी) ओर दौड़ पड़ता है। कई बार निर्जला नदीकी (दुखदायी मार्गकी) ओर दौड़ता है। कभी जल पा जाता है तो वनके यक्ष (राजा) उसका प्राण (धन) हर लेते हैं।

चलते-चलते उसके पाँव काँटों-कङ्कड़ोंसे (कई प्रकारके संकटोंसे) बींध जाते हैं।

इस संघके मनुष्योंको कभी-कभी सर्प (निद्रा) काटता है, अतः वह शव-सा हो जाता है। कभी उन्हें हिंसक पशु (दुर्जन) काटते हैं। कभी अंध (विवेक-भ्रष्ट) बनकर वह अंधेरे ((कुएँमें) गिर कर दुःखी होता है।

इसके अलावा यह जनसंघ इस जंगलमें लताकी शाखाओंका (नारीकी कोमल भुजाओंका) आसरा लेकर, वहीं अस्पष्ट किन्तु मधुर-मधुर शब्द करते पंछियोंकी (नारीकी गोदमें खेलते हुए नन्हें बच्चोंकी) इच्छा करते हैं। सिंहोंकी टोलियोंसे (कालचक्रसे उत्पन्न होने वाले जन्म-मृत्युसे) वह त्रास पाता है।

वृक्षोंके तले (घर-बारमें) वह खेलना चाहता है। कभी-कभी पर्वतकी गुफाओंमें (रोगादि दुःखोंमें) जाकर वहाँ बसे हुए हाथी-से (मृत्यु से) वह भयभीत होता है।

जीवात्मा कभी सुखी होती है तो कभी दुःखी। जीव जब भगवान्के चरणोंका आश्रय ग्रहण करता है, तभी कृतार्थ होता है।

संक्षिप्त शब्दोंमें कहें तो यह संसारमार्ग दारुण, दुर्गम और भयंकर है। मनको विषयासक्त किए बिना, श्रीहरिकी सेवासे तीक्ष्ण बनी हुई ज्ञानकृपाणको लेकर इस संसार-वनके उस ओर पहुँच जाओ।

भरतजीने प्रथम शिक्षा दी और फिर दी दीक्षा। भागवताश्रयीका आश्रय लेनेवाला कृतार्थ हो जाता है।

भरतजीने प्रभुका ध्यान करते हुए शरीरत्याग किया।

इसके आगे भरतवंशी राजाओंका वर्णन है। इसके बाद आता है भारतवर्षके उपास्य देवों और उपासक भक्तोंका वर्णन।

भगवान् नरसिंहके भक्त इन मन्त्रोंका जाप करते हैं—

ॐ नमः भगवते नृसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे
आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् ।
रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा ।
अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम् ॥ भा. ५-१८-८

मैं ॐकार स्वरूप भगवान् श्रीनरसिंहदेवको नमस्कार करता हूँ। हे देव! आप अग्नि आदि तेजोंके भी तेज हैं। आपको नमस्कार है। हे वज्रनख वज्र-सी दाढ़वाले, आप हमारे समक्ष प्रकट हों। हमारी कर्मवासनाओंको जला दीजिए। हमारे अज्ञानरूप अंधकारको नष्ट करें। हमारे अंतः करणमें अभयदान देते हुए प्रकाशित होइए।

यह है नरसिंह भगवान्‌का मन्त्र। इस मन्त्रका जप करते-करते श्रीधर स्वामीको वैराग्य हुआ था।

भागवतमें मानवशरीरको कई स्थानों पर निंदा की गई है। मानवशरीरकी स्तुति केवल पाँचवें स्कन्धमें है और वह भी देवोंके द्वारा की गई है।

मानवशरीर मुकुन्दकी सेवा करनेके लिए है। यदि मानव शुभ सङ्कल्प करे तो वह नरसे नारायण हो सकता है।

देवा गायन्ति—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥ भा. ५-१६-२१

मनुष्यजन्म सभी पुरुषार्थोंका साधन है, ऐसा कहकर इस भारतवर्षमें जन्मे हुए मनुष्योंकी महिमा देवगण इस प्रकार गाते हैं—अहो! इस भारतवर्षके मनुष्योंने कौनसे पुण्य किये होंगे? अथवा क्या श्रीहरि उनपर स्वयं प्रसन्न हुए होंगे कि इन्होंने भगवान्‌की सेवाके योग्य मनुष्यजन्म इस भारतवर्षमें पाया है। यह मनुष्यजन्म श्रीहरिकी सेवा करनेके लिये उपयोगी होनेके कारण हम भी इसकी इच्छा करते हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हम भी सदा इच्छुक हैं।

इसके बाद आता है भौगोलिक वर्णन। इस खण्डमें पृथ्वीके सात खण्डोंका वर्णन किया गया है। सप्तद्वीप और सात समुद्रोंका वर्णन है।

भरतखण्डके स्वामी हैं देव नारायण। भरतखण्ड कर्मभूमि है। अन्य खण्ड भोगभूमि हैं। भरतखण्डमें जन्म प्राप्त करनेकी इच्छा तो देवोंको भी होती है। शरीरकी भागवतमें स्तुति भी की गयी है और निंदा भी। इस मानवशरीरसे भगवत्सेवा, मुकुन्दसेवा हो सकती है।

इस स्कन्धमें ग्रहोंकी स्थितिका भी वर्णन किया गया है।

इसी स्कन्धमें सप्त पातालोंका प्रतिपादन किया गया है। इन पातालोंके नीचे हैं शेष नारायण।

राजाने पूछा—नरक-लोक कहाँ है?

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्, यह नरक-लोक दक्षिण दिशामें है। नरक अनेक प्रकारके हैं। चोर तमिस्र नामक नरकमें जाता है और व्यभिचारी अन्धतामिस्र नामक नरकमें। जितने पाप हैं, उतने ही नरक हैं।

कौनसे पापके कारण कौन-से नरकमें जाना पड़ता है, उसका क्रमबद्ध वर्णन इस स्कन्धमें किया गया है। इस प्रकार हजारों नरक और यमलोक हैं, ऐसा बताकर स्कन्ध समाप्त किया है।

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण

षष्ठ स्कन्ध

नारायण जिन नाम लिया, तिन औरका नाम लिया न लिया,
अमृत पान किया घट भीतर, गङ्गाजल भी पिया न पिया !

नरकोंका वर्णन सुनकर राजा परीक्षितने कहा—महाराज, मुझे ऐसा मार्ग बताइये कि जिसपर चलनेसे मुझे इन नरकोंमें जाना हो न पड़े। आपने प्रवृत्तिधर्म, निवृत्तिधर्म आदिकी कथा सुनाई, किंतु इन नरकलोकोंका वर्णन सुनकर मुझे डर लगता है। नरकमें जानेका प्रसंग कभी उपस्थित ही न हो, ऐसा कोई उपाय बताइये।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—राजन्, शास्त्रमें प्रत्येक पापका प्रायश्चित्त बताया गया है। पापका विधिपूर्वक प्रायश्चित्त किया जाये तो पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रायश्चित्त कर लेनेके पश्चात् फिर कभी पाप नहीं करना चाहिए, अन्यथा प्रायश्चित्त करनेका कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। दुःख सहकर ईश्वरका भजन करनेसे पाप जल जाते हैं।

राजाने पूछा—विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेके बाद भी पाप करनेकी इच्छा बनी रहती है। उसका क्या उपाय है? प्रायश्चित्त करनेसे पापका नाश तो होता है, किंतु पाप करनेकी वासना—इच्छाका तो नाश नहीं हो पाता। प्रायश्चित्त करनेसे भी पापवासना नष्ट न हो पाये तो क्या करें? कुछ ऐसा मार्ग बताइये कि पाप करनेकी वासना ही न रहे। प्रायश्चित्तसे पाप तो जल जाता है, किंतु पापवासना नष्ट नहीं होती। तो उसके लिए क्या किया जाये?

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

राजन्, मनका लेशमात्र भी विश्वास मत करो। मन बड़ा विश्वासघाती है। उसे अंकुशमें रखो। मनको कहीं एकाध बार भी छुट्टी मिलेगी तो वह फिरसे पाप करनेको तैयार हो जायेगा। पापवासना अज्ञानसे जागती है और अज्ञानका मूल अहङ्कार है।

जो व्यक्ति श्रीकृष्ण भगवान्को प्राणार्पण करता है, उसकी पाप करनेकी इच्छा ही नहीं होती। उसका अहङ्कार नष्ट हो जाता है।

तप (मन तथा इन्द्रियोंकी एकाग्रता), ब्रह्मचर्य, शम (मनका नियम), दम (बाह्य इन्द्रियोंका नियमन), मनकी स्थिरता, दान, सत्य, शौच, यम, नियम आदिसे पापकी वासना नष्ट होती है।

किंतु, हे परीक्षित,

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया॥ भा० ६-१-१६

भगवान्को आत्मसमर्पण करनेसे और भगवत्-भक्तोंकी सेवा करनेसे पापी जनोंकी ऐसी शुद्धि तपश्चर्या आदि द्वारा नहीं हो पाती।

पापी मनुष्य भक्तिसे जैसा पवित्र हो सकता है, वैसा शम, दम, तप आदिसे नहीं हो सकता।

राजन्, तुम अपने प्राण भगवान्को अर्पित करो। पापकी वासना चली जायेगी। भगवान् नारायणको जो अपना प्राण अर्पित करता है और जो प्रतिश्वास नारायणमन्त्रका जप करता है, उसको पाप कभी छूता तक नहीं है। जो अपना प्राण श्रीकृष्णको अर्पित करता है, उसकी पाप करनेकी इच्छा कभी नहीं होती। प्राणार्पणका अर्थ है प्राण-प्राणसे, श्वास-श्वाससे ईश्वरके नामका जप करना। प्रत्येक कार्यमें ईश्वरसे सम्बन्ध बनाये रखो। सतत, प्रतिश्वास भागवत-स्मरण करते रहोगे तो पाप नहीं होगा, पापमें प्रवृत्ति नहीं होगी। गीताजीमें कहा गया है—मामनुस्मर युध्य च। प्रथम भगवान्का स्मरण करो और फिर सारे सांसारिक कार्य।

जब तक परमात्माका ज्ञान नहीं होता, तब तक वासना नष्ट नहीं हो सकती। अज्ञानमें-से वासनाका जन्म होता है। ईश्वर और जगत्के स्वरूपका ज्ञान होने पर ही वासना विनष्ट होती है। ईश्वर आनन्दरूप है और संसार दुःखरूप, ऐसा अनुभव होनेके बाद वासना नष्ट होती है।

वासनाका मूल अज्ञान है। अज्ञानके नाश होने पर ज्ञान होता है। ज्ञानसे अज्ञानका नाश होता है। ज्ञानको सतत बनाये रखनेके लिए प्राण कृष्णको अर्पित कर दो। जब तक अज्ञानका नाश नहीं होता, तब तक वासनाका भी नाश नहीं होता और जब तक वासना नष्ट नहीं हो पाती, तब तक पापका होना भी नहीं रुकता।

ज्ञानी केवल इन्द्रियोंको ही विषयोंकी ओर जानेसे रोकते हैं, किंतु इससे वासनाका नाश नहीं हो पाता। इन्द्रियको रोकनेसे नहीं, किंतु उन्हें प्रभुकी ओर मोड़ देनेसे ही वासनाका नाश होता है। प्रत्येक इन्द्रियको परमात्माकी दिशामें मोड़ देनेसे वासनाका नाश होगा। मनको पवित्र करना है, तो आँखोंको भगवतस्वरूपमें स्थिर करो।

प्रस्तुत स्कन्धमें तीन प्रकरण हैं—

(१) ध्यान प्रकरण—चौदह अध्यायोंमें इस प्रकरणका वर्णन किया ... है। चौदह अध्यायोंका अर्थ है—पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। इन सभीको परमात्माके ध्यानमें रत रखें, तो ध्यान सिद्ध होता है।

(२) अर्चन प्रकरण—दो अध्यायोंमें सूक्ष्म अर्चन और स्थूल अर्चनका वर्णन किया गया है।

(३) नाम प्रकरण—गुण-संकीर्त्तन और नाम-संकीर्त्तनका तीन अध्यायोंमें वर्णन है।

परमात्माके मङ्गलमय नामका जप करो। चाहे ज्ञानमार्गी हो या भक्तिमार्गी, किंतु ईश्वरकी साधना और ध्यान किये बिना काम नहीं बन पाता। किसी एकमें मन स्थिर होनेपर मनकी शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार तीन साधन बताये गये हैं—ध्यान, अर्चन और नाम। इन तीन साधनोंके सहारे पापका नाश होता है और नरकमें जानेसे भी बचा जा सकता है। प्रभुके मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान-जप करनेकी आदत डालो और नियमित सेवा करो। नरकमें जाना न पड़े, इसलिए इन साधनोंका उपयोग करो।

प्रतिदिन ठाकुरजीकी सेवा करो। उनके नामका जप करो। उनका ध्यान करो।

ये तीनों साधन तुम्हारे लिए शक्य न हों, तो किसी भी एक साधन पर अटल श्रद्धा रखो।

इन्द्रियोंको भक्तिरसमें डुबोये बिना वासना नष्ट नहीं होती। भक्तिके सहारे जीव भगवान्के पास जाता है। महारानी यमुना भक्तिका स्वरूप हैं। वह जीवका ईश्वरसे सम्बन्ध जोड़ देती है। भक्ति द्वारा जीवका ब्रह्मसम्बन्ध हो पाता है।

ध्यान, अर्चन और नामस्मरण, इन तीन साधनोंसे भक्ति दृढ़ होती है। परमात्माका ध्यान न किया जाये, तब तक मन शुद्ध नहीं होता। व्रतसे द्रव्यशुद्धि होती है, किंतु मनकी शुद्धि नहीं होती।

दान करनेसे भगवान्की प्राप्ति नहीं होती। दानका फल है लक्ष्मी। गीताजीमें भी कहा गया है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न च इज्यया।

वेद, तप, दान और यज्ञसे मेरी (प्रभुकी) प्राप्ति नहीं हो सकती।

परमात्माका ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है। अतः प्रतिदिन ध्यान करनेकी आवश्यकता है। ध्यानमें एकाग्रता न हो सके, तो नामस्मरणकी आवश्यकता है।

ये तीनों एक साथ न हो सकें तो भी कोई बात नहीं, किंतु किसी भी एकको तो पकड़ना ही होगा। साधनके बिना सिद्धिकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

मनुष्यको चाहिए कि वह अपना जीवन-लक्ष्य निश्चित कर ले। एक ही ध्येयके बिना जीवन, बिना नाविककी नौका-सा है। ध्येय निश्चित करके उसे सिद्ध करनेके लिए साधना करो। इस कलिकालमें और तो कुछ हो नहीं सकता, अतः नामस्मरणका ही आसरा लेना चाहिए। कलिकालमें नामसेवा प्रधान मानी गयी है।

कलियुगमें स्वरूपसेवा शीघ्र फलदायी नहीं होती। स्वरूपसेवा है तो उत्तम, किंतु उसमें पवित्रताकी बड़ी आवश्यकता है। कलियुगमें मानव ऐसा पवित्र नहीं रह सकता। अतः कलियुगमें नामसेवा ही मुख्य कही गयी है।

अदृश्य वस्तुका नाम जपनेसे उस नामका स्वरूप प्रकटेगा। प्रत्यक्ष साक्षात्कार होने तक प्रभुका नामाश्रय लेनेवालेका एक-न-एक दिन प्रभुसे साक्षात्कार अवश्य होगा।

सीताजी ध्यानसे इस प्रकार नामस्मरण करती थीं कि वृक्षोंके पत्ते-पत्तेसे रामध्वनि होती थी।

परमात्माके नाममें निष्ठाका होना बड़ा कठिन है। नामस्मरणके समय जीभ रुक जाती है। पाप जीभको पकड़े रहता है। घरमें पग-पग पर भगवान्का नाम लो तो पग-पग पर यज्ञका पुण्य प्राप्त होगा। यों तो यह दीखता है अतिशय सुलभ, पर है बहुत ही कठिन।

नाममें अटल निष्ठा रखो। परमात्माके नामका सतत जप करनेकी आदत होगी, तो मृत्यु भी उजागर होगी। अन्तकाल तक ब्रह्मनिष्ठा बनाये रखना आसान नहीं है। नामनिष्ठाके सिवा कलिकालमें अपने उद्धारका अन्य कोई उपाय नहीं है।

रामनामसे तो पत्थर भी तैर गये थे, किंतु राम द्वारा डाले गये पत्थर तैरे नहीं थे।

एक बार रामचंद्रजी के मनमें कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरे नामसे पत्थर तैरे थे और वानरोंने समुद्र पर सेतु बनाया था। मैं भी तो देखूं कि मेरे स्पर्श होने पर पत्थर तैरते हैं या नहीं। यह सोच कर कोई भी जान न पाए, इस तरह वे समुद्रके किनारे पर आए और उन्होंने समुद्रमें पत्थर फेंके किंतु वे तो सबके सब पानीमें डूब गए। रामचन्द्रजी को आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्यों हुआ ? मेरा नाम लिखनेसे तो पत्थर तैरे थे।

हनुमान्जी यह कौतुक वहीं कहीं छिपकर देख रहे थे। श्रीरामचन्द्रको जब निराश होकर लौटते देखा तो हनुमान्जीने रास्तेमें रोककर उनका दर्शन किया। रामचन्द्रजीने उनसे पूछा—मेरे नाममात्रसे पत्थर कभी तैर गए थे, किन्तु जब आज स्वयं मैंने पानीमें पत्थर फेंके तो वे डूब गए। आखिर ऐसा क्यों हुआ ?

हनुमानजीने उत्तर दिया— यह तो स्वाभाविक ही है। जिसे रामचन्द्रजी स्वयं फेंक दें, तिरस्कृत करें, उसे भला कौन तैरा सकता है ? जिसे रामचन्द्रजी फेंक दें, जिसका वे त्याग कर दें उसे तो डूबना ही है। उन पत्थरोंका आपने त्याग किया, अतः वे डूब गए। जिसे आप अपनाते हैं, वह कभी नहीं डूब सकता। जिन पत्थरोंसे समुद्र पर सेतुका निर्माण किया गया था, उन पर श्रीराम (आपका नाम) लिखा गया था, अतः वे तैर गए। जो शक्ति आपके नाममें है, वह आपके हाथोंमें नहीं है।

रामनाममें जो शक्ति है वह स्वयं राममें भी नहीं है। अपने जीवनमें श्रीरामने कुछ ही लोगोंका उद्धार किया था, किंतु उनके नामने तो आज तक अनेकोंका उद्धार कर दिया।

नाम-जप की महिमा अनोखी है। जप करनेसे जन्मकुंडलीके ग्रह भी बदल जाते हैं। हम और क्या कहें, तुलसीदासजीको ही सुनिए :—

मंत्र महामनि विषय ब्यालके। मेटल कठिन कुअङ्क भालके ॥
भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिशि दसहू ॥

जप तो जनाबाईने किया था। जनाबाई गोबरके उपले बनाती थी. पर उन्हें कोई चुराले जाता था। जनाबाईने नामदेवसे इस विषयमें फरियाद की। नामदेवने कहा, उपले तो सभीके एकसे ही होते हैं, ये तेरे हैं, यह कैसे जाना जा सकता है ? जनाबाईने कहा कि यह तो बड़ी आसान बात है। उपलेको कानके पास लाने पर यदि उसमेंसे 'विट्ठल-विट्ठल' ऐसी ध्वनि सुनाई दे तो समझ लेना कि वे मेरे ही हैं। जनाबाई उपले बनानेके समय बड़ी लगनसे विट्ठलके नामका जप करती थीं। नामदेवने भी उन उपलोंमें-से विट्ठलके नामकी ध्वनि सुनी। तो उन्होंने जनाबाईसे कहा—नामदेव मैं नहीं, तुम्हीं हो।

उपले बनाते समय जनाबाई विट्ठलके नाम-जपमें ऐसी तल्लीन हो जाती थीं, कि उन जड़ उपलोंमें-से भी विट्ठल-विट्ठल' की ध्वनि सुनाई देती थी।

जपकी संख्या और फलकी चर्चा इसके आगे की गई है

दो नियमोंका पालन हमेशा करो—ब्रह्मचर्य और अस्तेय। पाँच कोटि जप करनेवालेको ज्ञान प्राप्त होता है। केवल पढ़ते रहनेसे ज्ञानका अनुभव नहीं हो सकता। प्राचीन संतोंके चरित्रमें ऐसा कहीं भी नहीं है कि वे अमुक स्थान पर पढाईके लिए गए थे। भगवद्भक्तिसे

चित्त शुद्ध होने पर उन्हें आंतरिक स्वयं-स्फुरणसे ज्ञान प्राप्त होता था। पंडित शास्त्रोंके पीछे दौड़ता है, जब कि मीराबाईकी वाणीके पीछे शास्त्र दौड़ता था।

तेरह कोटि जप करनेसे जीव और ईश्वरका मिलन होता है। कलिकालमें इसके सिवा अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

अधिकारी गुरु-द्वारा मंत्र ग्रहण करनेसे मंत्रमें दिव्य शक्ति आरोपित होती है। अजामिल भी नामस्मरणसे ही तर गया था।

वेदान्तके सिद्धांतोंको समझना आसान नहीं है और समझनेके बाद उनका अनुभव करना तो और भी कठिन है। आत्मा केवल द्रष्टा है और दुःख तो मात्र शरीरको ही होता है, ऐसी बातें करना और समझना तो कदाचित् आसान है, किंतु इन सिद्धांतोंका अनुभव करना टेढ़ी खीर है।

नामस्मरण बड़ा आसान है। भक्ति आसान और सरल है। वह मृत्युको उजागर करती है। जपके विना जीवन सुधरता नहीं है।

जीवन में कथा मार्गदर्शिका है, वह मनुष्यको अपने सूक्ष्म दोषोंका भान कराती है किंतु उसका उद्धार तो नाम-जप और नाम-स्मरणसे ही होता है।

भगवान्का नाम ही परमात्माका स्वरूप है। नामके आश्रयसे पापोंका भी विनाश होता है।

सिद्धान्त, दृष्टान्तके बिना बुद्धिग्राह्य नहीं हो पाता। अतः इस सिद्धांतको समझानेके लिए अजामिलका दृष्टांत कहा गया है। अजामिल जन्मसे तो अधम था, किंतु प्रभुके नामका आश्रय ग्रहण करके कृतार्थ हो गया।

हम सब अजामिल ही हैं। यह जीव मायामें फँसा हुआ है। जो मायासे एकरूप हो गया है, वही अजामिल है। जहाँ भी जाओगे, माया साथ-साथ जाएगी। कोयलेकी खानमें उतरें और हाथ स्वच्छ रहें, यह संभव नहीं है। संसारमें मायाके संसर्गमें तो आना ही पड़ता है। मायाका स्पर्श तो करना ही पड़ता है किंतु उसका स्पर्श अग्निकी भाँतिही करना चाहिए। उसे विवेकरूपी चिमटेसे पकड़ना चाहिए। वैसे तो अग्निके विना जीवनव्यवहार चल नहीं पाता, फिर भी उसे कोई हाथमें भी तो नहीं लेता।

माया हमारा पीछा करती है। पर उससे हमें बच निकलना है और ईश्वरके पीछे लगना है। हम ईश्वरका पीछा करेंगे तो माया हमारा पीछा छोड़ देगी। मायाका स्पर्श करते समय बड़ा सावधान रहना चाहिए। संसारमें रहते हुए मायाका त्याग करना तो अशक्य है। कनक और कांता ये दोनों मायाके ही दो रूप हैं। प्रयत्न ऐसा करो कि इन दोनोंमें मन न फँसे। चाहे शरीरसे पाप करो या मनसे, दंड तो भोगना ही पड़ेगा।

कनक और कांता, इन दो वस्तुओंमें माया निहित है। इन दोनोंकी ओरसे जिसका मन हट जाता है, उसका मन मायाकी ओरसे भी हट जाता है।

अजामिल शब्दका अर्थ देखिए। अजाका अर्थ है माया और मायामें फँसा हुआ जीव ही अजामिल है।

अजामिल अनेक प्रकारके पाप करके जीवनयापन करता था। यह अजामिल पहले तो मंत्रवेत्ता, सदाचारी और पवित्र व्यक्ति था।

एक दिन वह वनमें गया था। रास्तेमें उसने देखा कि एक शूद्र, वेश्याके साथ काम-क्रीड़ा कर रहा है। वेश्याकी साड़ी सरक गयी थी, अतः उसका स्वरूप उभरा हुआ दीखता था। इस दृश्यको देखनेसे अजामिल कामवश हो गया और कामांध हो गया। वेश्याके ऐसे लुभावने रूपको देखकर अजामिलका मन भ्रष्ट हो गया।

अजामिलने एक ही बार वेश्याको देखा, फिर भी उसका मन भ्रष्ट हो गया। तो प्रति रविवारको फिल्म देखनेवालेके मनका तो क्या होता होगा! कई लोगोंने तो नियम-सा बना लिया है कि प्रति रविवारको फिल्म देखी ही जाय। कई लोग अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी साथ ले जाते हैं। अपना जीवन तो बिगड़ा ही है, अब तुम्हारा भी क्यों न बिगड़े।

पाप प्रथम आँख द्वारा ही प्रविष्ट होता है। आँख बिगड़ी कि मन बिगड़ा और मन बिगड़ा तो जीवन भी बिगड़ेगा और नाम भी। रावणकी आँखें दुष्ट थीं, अतः उसका नाम भी हमेशाके लिए बिगड़ गया। जो भी पाप मनमें आते हैं, आँखोंके द्वारा ही आते हैं। आँखें बिगड़ने पर मन बिगड़ता ही है।

कामको आँखोंमें आने नहीं दोगे, तो वह मनमें भी नहीं आ सकेगा। मनुष्य शरीरसे नहीं, किंतु आँख और मनसे ही अधिक पाप करता है।

वेश्याको देखने मात्रसे अजामिल कूड़ा बन गया।

प्रयोजनके बिना किसीको भी आँखें मत दो अर्थात् उसे मत देखो। आँखोंमें रामको रखोगे तो वहाँ काम आ नहीं पाएगा। आँखोंके द्वारा ही सभी पाप प्रविष्ट हो जाते हैं।

कामांध अजामिल वेश्याके घर गया और उसे समझा-बझा कर अपने घर ले आया। वह पापाचार करने लगा।

एक बार कुछ साधुजन घूमते-फिरते अजामिलके घर आए। वेश्याने देखा कि संत आए हैं तो उसने अन्नदान किया।

वैसे तो वेश्याका अन्न ग्रहण करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है, किंतु साधु जानते ही नहीं थे कि अन्नदाता नारी वेश्या है। उन्होंने रसोई बनायी और भोजन भी कर लिया।

साधुजन तो जिससे अन्न ग्रहण करते हैं, उसका कल्याण भी करते हैं।

वेश्याके कहने पर अजामिलने साधुओंको वंदन किया। साधुओंने कहा कि तेरे घरसे भोजन तो मिल गया, किंतु दक्षिणा अभी तक बाकी है।

तो अजामिलने कहा—मेरी यही दक्षिणा है कि मैंने आपको लूटा नहीं है। मैं किसी भी साधुको धन नहीं देता। और कुछ माँगोगे तो दूंगा।

वेश्या सगर्भा थी। साधुओंकी इच्छा थी कि अजामिलका कल्याण हो जाए। तो उन्होंने कहा—तेरे घर पुत्रका जन्म होने पर तू उसका नाम नारायण रखना।

अजामिलने साधुओंसे पूछा—महाराज, मैं अपने पुत्रका नाम नारायण रख लूं तो उससे आपको क्या लाभ होगा?

साधुओंने कहा—हमारे भगवानका नाम नारायण है। अतः यह नाम सुनकर हमें आनन्द होगा और तुझे भगवानका स्मरण होता रहेगा।

अजामिलने कहा—ठीक, है, मैं अपने पुत्रका नाम नारायण रख दूंगा।

अजामिलके घर पुत्रका जन्म हुआ और उसका नाम रखा गया नारायण। संततिके प्रति माता-पिताका प्रेम कुछ विशेष होता ही है। अजामिल बार-बार नारायणको पुकारता रहता था। नारायणका नाम लेनेकी उसे आदत-सी हो गई।

अतिशय पापी, अतिशय कामी व्यक्ति अपनी पूरी आयु जी नहीं सकता।

अजामिलके अभी बारह वर्ष शेष थे कि उसे लेनेके लिए यमदूत आ धमके। मृत्युकाल समीप आ गया। अपने छोटे-से पुत्र नारायणके प्रति उसकी अतिशय आसक्ति थी, अतः उसे नाम लेकर पुकारने लगा–'नारायण, नारायण।'

भोजन, द्रव्य, कामसुख, स्थान, संतति और पुस्तकोंमें यह जीव फँसा रहता है। माता-पिताका मन अपनी अंतिम संततिमें विशेष फँसा रहता है।

प्रतिदिनकी आदतके अनुसार अजामिलने नाम ले-लेकर नारायणको कई बार पुकारा। उसका नारायण तो नहीं आया, किंतु वहाँ विष्णुदूत आ पहुँचे। उन्होंने यमदूतोंसे कहा कि अजामिलको वे छोड़ दें।

यमदूतोंने कहा—अजामिलका चरित्र भ्रष्ट है, अतः वह जीनेके लिए अपात्र है।

विष्णुदूतोंने कहा—यह सच है कि अजामिलने पाप किया है किंतु भगवान्का नाम लेकर इसने अपने पापोंका प्रायश्चित्त भी तो किया है। इस कारण उसके कुछ पाप जल गए हैं, अतः इसे अब जीने दो। उसकी आयुके बारह वर्ष अब भी शेष हैं।

यमदूतोंने कहा—अजामिलने 'नारायण-नारायण' तो कहा है, किंतु वैकुंठवासी नारायणको नहीं, अपने पुत्र नारायणको पुकारा है।

विष्णुदूतोंने कहा—उसके मुँहसे भगवान्का नाम अनजाने ही निकल पड़ा है। अग्नि पर अनजाने भी पैर पड़ जाए तो भी जलन तो होती ही है। इसी प्रकार अनजाने भी यदि प्रभुका नाम लिया जाय तो कल्याण ही होता है। भगवान्का नाम अनजाने लेने पर भी उसका फल मिलता ही है। अजामिलने नारायण शब्दसे चाहे अपने पुत्रको ही पुकारा हो, किंतु इस बहाने भी भगवान्के नामका उच्चार तो हो ही गया।

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोत्रं हेलनमेव वा।
वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाः॥

भा. ६-२-१४.१५

बड़े-बड़े महापुरुष भी जानते हैं कि संकेतसे, परिहाससे, तानके अलापके समय, किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि भगवान्के नामका उच्चार हो जाए, तो उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य गिरते समय, पैरके फिसलनेपर, अङ्गभङ्ग होनेपर, तापादिके दाहपर चोट लगनेपर यानी कैसी भी विवशतावश भगवान्‌के नामका 'हरि-हरि' शब्दका उच्चारण करता है, वह नरककी यातनाका पात्र नहीं रह जाता।

गिर जानेपर चाहे कितनी ही हानि हो, पर हाय-हाय मत करो, हरि-हरि ही कहो।

चूल्हे पर उबलता हुआ दूध जब छलकने लगता है तो हमारी माताएँ हाय-तोबा करने लगती हैं। पर 'हाय-हाय' करनेसे अब होगा ही क्या ? 'हरि-हरि' बोलो। अनजानेमें भी हरि-हरि करनेपर यज्ञका फल तो मिलेगा ही। अन्यथा वैसे तो अग्निको आहुति कौन देता है ? 'हाय' नहीं, 'हरि' कहो। ऐसा करनेसे अनजाने ही भगवान्‌का स्मरण होगा और जप होगा।

वाल्मीकि रामायणमें लिखा है कि मृतात्माके पीछे 'हाय-हाय' अधिक करनेसे मृतात्माको कष्ट होता है, उसे दुःख होता है, 'हरि-हरि' बोलनेसे उसका फल मृतात्माको मिलता है।

विष्णुदूतोंने अजामिलको यमदूतोंके बन्धनसे मुक्त किया और उसका उद्धार हो गया।

अपमृत्यु टल सकती है, पर महामृत्यु नहीं। अल्पायुके शेष होनेपर पापके कारण आनेवाली अपमृत्युको सत्कर्मसे टाला जा सकता है।

अजामिलकी अपमृत्यु टल गई।

अजामिल बिछौनेमें सोया हुआ सब कुछ सुन रहा था। सब सुनकर उसे अतिशय पश्चात्ताप हुआ। हृदयसे प्रायश्चित्त करनेके कारण उसके सारे पाप जल गए। उसके बादसे वह सब कुछ छोड़कर भगवद्स्मरण करने लगा।

पश्चात्ताप करनेसे तो अतिशय पापीका जीवन भी बदल जाता है। वह सुधरता है और इसी जीवनमें मुक्ति पा लेता है। अतः किसी भी पापीका तिरस्कार मत करो, पापका ही तिरस्कार करो।

हृदयसे पश्चात्ताप करनेपर पाप जल जाते हैं। प्रायश्चित्त चित्तकी शुद्धि करता है।

उसके बादसे अजामिल नीरस भोजन करने लगा।

जिसका भोजन सरस होगा, उसका भजन नीरस होगा, और जिसका भोजन नीरस होगा, उसका भजन सरस होगा।

जीवन, धन या कुटुम्बके लिए नहीं, श्रीकृष्णके लिए है।

अजामिलकी बुद्धि अब त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे परे होकर भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिर हो गई। उसे लेनेके लिए विमान लेकर पार्षद आये। विशिष्ट मान ही विमान है। अजामिल सोचता है कि उसने वैसे तो अनेक पाप किये थे, फिर भी सद्गति मिली। नाममें निष्ठा रखनेका ही यह फल था।

अजामिलने 'नारायण-नारायण' का जप करके जीभ और जीवनको पवित्र बना लिया।

जीभको समझानेसे वह सुधरेगी। श्रीखण्ड माँगे तो उसे कड़वे नीमका रस दो। वह व्यर्थका भाषण ही अधिक करती है, निरर्थक बक-बक करती रहती है, भगवान्‌का नाम तो

कभी लेती ही नहीं है। जीभको यदि नीमका कड़वा रस पिलाओगे तो उसपर रामका नाम बस जाएगा।

भगवान्‌की भक्ति करनेवालोंको इहलोक और परलोक दोनोंमें मान प्राप्त होता है।

भगवान्‌का कीर्तन करनेसे अजामिल भगवद्धाममें पहुँच गया। भगवान्‌के नामका आसरा लेकर वह तर गया। अजाका अर्थ पहले माया कहा था। पर अब भगवन्नामका सहारा लेनेपर अजाका अर्थ हो गया ब्रह्म। आज अजामिल अज-ब्रह्मके साथ मिलकर ब्रह्मरूप हो गया। आज जीव और शिव एक हो गये।

अजामिल शब्दके दो अर्थ हैं—(१) मायामें फँसा हुआ जीव तथा (२) ब्रह्मरूप हुआ जीव। मायाका वर्णन तो कई तरहसे किया गया है।

श्रीमद् शङ्कराचार्यने मायाकी व्याख्या करते हुए कहा है कि कञ्चन और कामिनीमें फँसे हुए व्यक्तिको मायामें फँसा हुआ जानो।

किमत्र हेयं कनकं च कांता।

इस जगत्‌में कौन-सी वस्तुएँ त्याज्य हैं? तो उत्तर देते हैं कि जीवको अधोगतिकी ओर ले जानेवाला कांचन और कामिनी। इन दोमें जो फँसा, जान लो कि वह मायामें फँस गया।

मणिरत्नमालाके प्रश्नोत्तर अति उत्तम हैं। उसके एक-एक शब्दमें उपदेश भरा पड़ा है।

बद्धो हि को वा विषयानुरागी, का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः, तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति॥

बन्धनयुक्त कौन है? जो पाँच विषयोंमें आसक्त है। स्वतंत्र कौन है? जो विषयोंकी ओर वैराग्यकी दृष्टि रखनेवाला है। घोर नरक कौन-सा है? स्वदेह ही घोर नरक है। इस देहमें सुन्दरता कहाँ है? यह तो मांस, रक्त आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंसे भरा हुआ है। स्वर्गके सोपान कौनसे हैं? सभी तृष्णाओंका क्षय ही स्वर्गका सोपान है।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः, श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः॥

दरिद्र कौन है? जिसकी तृष्णा विशाल है। श्रीमन्त कौन है? जो सदाके लिए सम्पूर्ण सन्तोषी है।

को दीर्घरोगो भव एव साधो, किमौषधं तस्य विचार एव॥

कौन-सा रोग अधिक कष्टदायी है? जन्मधारणका रोग ही अत्यधिक कष्टदायी है। रोगकी औषधि क्या है? परमात्माके स्वरूपका बार-बार चिन्तन और स्मरण करना ही इस भवरूपी रोगकी औषधि है।

अब अजामिल शब्दका दूसरा अर्थ भी देख लें।

अजका अर्थ है ईश्वर। ईश्वरमें, ब्रह्ममें विलीन हुआ जीव ही अजामिल है।

साधु होना कठिन तो है किंतु सादगीपूर्ण जीवनसे साधु बना जा सकेगा। साधु होनेकी नहीं, अपितु सरल होनेकी आवश्यकता है।

जिसने रसोंको जीता है, समझो कि उसने जग भी जीत लिया है।

जितं सर्वं जिते रसे।

लौकिक सुखके प्रयत्न सफल हो जायें तो मानो कि ईश्वरकी कृपा नहीं है। लौकिक सुखकी इच्छा और प्रयत्न असफल रहें तो समझो कि ईश्वरकी कृपा हुई है। इसका कारण यह है कि लौकिक सुखोंमें फँसा व्यक्ति ईश्वर-भजन नहीं कर पाता।

अजामिलका जीवन सुधर गया। अन्तमें वह विमानमें बैठकर वैकुण्ठधाम गया। अजामिल तो गया और साथ-साथ संसारको उपदेश भी देता गया कि अतिशय पापीको भी निराश नहीं होना चाहिए। पापीको ऐसा कभी न सोचना चाहिए कि नामजपके लिए आवश्यक शुद्धि या निर्मलता उसमें नहीं है। अतः रामनाम जपनेसे क्या लाभ होगा? यदि वह ऐसा सोचता है, तो वह यह भूल जाता है कि हर प्रकारकी शुद्धिकी प्राप्तिके लिए रामनामका जाप ही तो एकमात्र उपाय है। अतिपापी होनेपर भी प्रभुका आश्रय लेनेपर उसका उद्धार हो जाएगा। पापका सच्चा प्रायश्चित्त होनेपर पाप जल जाते हैं। भगवान्‌का नामजप पापको भस्मीभूत कर देता है।

श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।

यह महामन्त्र है। अर्थके ज्ञान-सहित इस मन्त्रका जाप करो।

कृष्ण—हे प्रभो! आप सभीके मनको आकर्षित करनेवाले हैं, अतः आप मेरा मन भी आकर्षित कीजिए।

गोविंद--इन्द्रियोंके रक्षक भगवन्, आप मेरी इन्द्रियोंको स्वयंमें लीन करें।

हरे—हे दुःखहर्ता, मेरे दुःखोंका भी हरण करें।

(जिसका मन भगवान्‌में लीन हो जाता है, उसके सारे दुःखोंका हरण हो जाता है।)

मुरारे—हे मुर राक्षसके विजेता, मेरे मनमें बसे हुए काम-क्रोधादि राक्षसोंका नाश कीजिए।

हे नाथ—आप नाथ हैं और मैं आपका सेवक।

नारायण—मैं नर हूँ और आप नारायण हैं।

वासुदेव—वसुका अर्थ है प्राण। मेरे प्राणोंकी रक्षा करें। मैंने अपना मन आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया है।

प्राचीनबर्हि राजाके यहाँ प्रचेता नामक दस पुत्र हुए थे। उनके दक्ष नामक एक पुत्र हुआ। प्रजापति दक्षने हंसगुह्य स्तोत्रसे आदिनारायण भगवान्‌की आराधना की तो उसके यहाँ हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए। दक्षने उन्हें प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी किंतु नारायण सरोवरके जलका स्पर्श करनेके कारण उनकी परमहंस धर्मका आचरण करनेकी इच्छा हुई।

वहाँ उन्हें नारदजी मिल गए। दक्षके इन दस हजार पुत्रोंसे नारदजीने कूट प्रश्न पूछे। उन प्रश्नोंका इन पुत्रोंने उत्तर सोच निकाला। उनमें-से कुछ प्रश्नोत्तर हम भी देखें—

प्रश्न—ऐसा कौन-सा देश है, जहाँ केवल एक ही पुरुष है ?

उत्तर—ईश्वररूप पुरुष इस देहरूप देशमें बसता है।

प्रश्न—ऐसी कौन-सी गुफा है, जिसमें प्रवेश तो किया जा सकता है किंतु बाहर नहीं आया जा सकता ?

उत्तर—प्रभुके चरण। वहांसे कोई वापस नहीं आ सकता। 'यद्‍ गत्वा न निवर्तन्ते।'

प्रश्न—वह कौन-सी नदी है जो परस्पर विरुद्ध दिशामें बहती है ?

उत्तर—संसार। संसाररूप नदीमें प्रवृत्ति विषयोंकी ओर खींचकर ले जाती है और निवृत्ति प्रभुके प्रति बहाकर ले जाती है।

प्रश्न—सिरपर जो चक्र मंडरा रहा है, वह कौन-सा चक्र है ? क्या है ?

उत्तर—सभी जीवोंके सिरपर कालचक्र मँडराता रहता है।

नारदजीके कूट प्रश्नोंकी चर्चा—विचारणा करते हुए वे दस हजार पुत्र मोक्षमार्गकी ओर प्रवृत्त हुए, सभीको नारदजीने संन्यासकी दीक्षा दी।

जब दक्षके सभी पुत्र प्रवृत्तिमार्गकी ओरसे भ्रष्ट हो गये तो उन्होंने दस हजार पुत्र और उत्पन्न किए। वे भी नारदजीके उपदेशसे निवृत्ति-परायण हो गये। ऐसा होनेपर प्रजापति दक्षने क्रोधावेशमें नारदजीको शाप दिया कि तुम कभी भी एक स्थानमें नहीं रह पाओगे, तुम्हें हमेशा भटकते रहना पड़ेगा।

नारदजीने दक्षके शापको स्वीकार किया और दक्षसे कहा—मैं तुम्हें शापके बदलेमें वरदान देता हूँ कि तुम्हारे घर बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी, अतः संन्यास उन्हें देनेका प्रश्न ही नहीं रहेगा।

नारदजीने दक्षको आशीर्वाद दिया।

जो शापका बदला आशीर्वादसे दे, वही संत है। सहनशीलताका निर्वाह ही साधुता है। सहन करना तो संतोंका धर्म है।

जड़-चेतन सभीमें जो ईश्वरभावका अनुभव करता है, उसके मनमें रागद्वेष कभी उत्पन्न नहीं होते।

ब्रह्माने सभी इन्द्रियाँ बहिर्मुख बनाई हैं। ये इन्द्रियाँ जब अन्तर्मुख हो जाती हैं, तभी आनन्दकी प्राप्ति होती है और तभी जीव और शिवका मिलना भी होता है। जब तक बाह्यद्वार बन्द नहीं करोगे, तब तक अंतस्के द्वार खुल नहीं पाएंगे।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन् ! फिर आगे चलकर दक्षके घर साठ कन्याओंका जन्म हुआ। इनमें-से अदितिके घर बारह संतानें हुई। इनमें-से एकका नाम था त्वष्टा। इस प्रजापति त्वष्टाके पुत्र उत्पन्न हुआ विश्वरूप।

एक दिन जब इन्द्र सिंहासनपर बैठे हुए थे तो वहाँ बृहस्पति आए। अपने और सारे देवोंके गुरु बृहस्पतिका आगमन हुआ, फिर भी इन्द्रने आसनसे उठकर उनका स्वागत नहीं

किया। बृहस्पति मानकी अपेक्षा रखते हैं, धनकी नहीं। ऐसे अपमानके कारण बृहस्पतिने देवोंका त्याग किया और इन्द्रको शाप दिया कि तू दरिद्र होगा।

संपत्तिके मदमें सुधबुध और ज्ञान-भान भूला हुआ व्यक्ति दरिद्र होनेपर ही सयाना होता है।

दैत्योंने तो इसे शुभ प्रसङ्ग माना और देवोंके साथ युद्ध शुरू कर दिया। उन्होंने स्वर्ग जीत लिया। पराजित देवगण ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माने देवताओंको कड़ा उलाहना दिया, क्योंकि वह पराजय तो उस ऋषिके अपमानका ही फल था। उन्होंने ऋषि-ब्राह्मणोंकी सेवा करनेका आदेश देते हुए कहा—किसी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणको गुरु मानकर उसे बृहस्पतिका आसन दो।

देवोंने पूछा—ऐसा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण कौन है।

ब्रह्माने कहा—प्रजापति त्वष्टाका पुत्र विश्वरूप ब्रह्मनिष्ठ है।

विश्व यानी जगत्। विश्व यानी विष्णु भगवान्। विश्वके प्रत्येक पदार्थमें जो विष्णुका दर्शन करे, वही विश्वरूप है।

जिस प्रकार सुनारकी दृष्टिमें आकारका नहीं, सुवर्णका महत्त्व ही अधिक है। इसी भाँति ज्ञानी पुरुष बाह्याकारको महत्त्व नहीं देते। आकारमें-से ही विकार उत्पन्न होता है।

विश्वरूप सभी जड़-चेतनमें ईश्वरकी झलक देखता था।

शत्रुको भी शत्रुभावसे नहीं, ईश्वरभावसे देखो। सभीके प्रति सद्भाव रखना कठिन है। मार्गमें किसी सौभाग्यवती नारीका दर्शन होनेपर तो लक्ष्मीजीकी भावना मनमें उत्पन्न हो जाएगी, किंतु विधवा मिल जाए तो झुँझलाहटसे आँखें फेर लेते हैं। वे यों नहीं सोचते कि विधवा भी तो गङ्गाके समान पवित्र है।

विश्वरूप ब्रह्मज्ञानी तो था ही, ब्रह्मनिष्ठ भी था। ब्रह्मद्रष्टा ही ब्रह्मोपदेश कर सकता है। इसी ब्रह्मरूपके सहारे देवोंने दैत्योंका पराभव किया।

दैत्य कौन हैं? काम, क्रोध आदि ही दैत्य हैं।

ब्रह्माके आदेशसे देवगण विश्वरूपके पास गये। उन्होंने देवोंको नारायण-कवच प्रदान किया। इसीके सहारे देवोंको अपना राज्य फिर प्राप्त हो गया, जो उन्होंने बृहस्पतिका अपमान करके गवाँया था। नारायण-कवचसे समर्थ होकर इन्द्रने असुरोंकी सेनाको पराजित कर दिया।

योद्धा संग्राममें जाते हुए लोहेका कवच (बख्तर) धारण करता है। इसी प्रकार नारायण-कवच मंत्रात्मक बख्तर है।

इस मन्त्रका जप करनेवालेको चाहिए कि वह पहले अङ्गन्यास करे, करन्यास करे। शरीरके प्रत्येक अंगोंका न्यास करके इस मंत्रका जप करना है, जो नारायण-कवच कहलाता है—

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायाबटुवामनोऽवतु त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः॥

जलके अन्दर रहनेवाले जलचर जन्तुओंसे और वरुणके पाशसे मत्स्यमूर्त्ति भगवान् मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारी-रूप धारण करनेवाले वामन प्रभु भूमिपर भी मेरी रक्षा करें। आकाशमें विश्वरूप त्रिविक्रम प्रभु मेरी रक्षा करें।

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥

यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारणसे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा सर्वत्र सर्व स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें ।

नारायण-कवचका यह अन्तिम श्लोक महत्त्वपूर्ण है, याद रखने योग्य है । डर लगनेपर, मनोद्वेगके समय इसका पाठ करो । मेरे एक ही भगवान् अनेक स्वरूप धारण करके क्रीड़ा कर रहे हैं ।

स्वप्नमें एकमें-से अनेककी उत्पत्ति होती है । स्वप्नका साक्षी कल्पित होता है । जागृतावस्थामें जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब एकमें-से ही निष्पन्न हुआ है । जब तुम ऐसा मानोगे कि यह सारा जगत् ईश्वररूप है, तभी तुम निर्भय हो सकोगे ।

नारायण-कवचका आश्रय लेकर देवोंने दैत्योंका नाश किया और स्वर्गका राज्य फिरसे प्राप्त कर लिया ।

विश्वरूपका मातृगृह दैत्यकुलमें था । वे सभीमें ब्रह्मनिष्ठा रखते थे । राक्षसमें भी वे ईश्वरके स्वरूपका साक्षात्कार करते थे । उनका अभेदभाव सिद्ध हो गया था । अतः वे यज्ञमें दैत्योंको भी आहुति देते थे ।

सभीमें 'मैं' है । इस 'मैं' को व्यापक बनाओ । 'मैं' को संकुचित करोगे तो दुःखी होओगे ।

विश्वरूपकी ब्रह्मनिष्ठा इतनी तो सिद्ध हुई थी कि वे राक्षसमें भी परब्रह्मका दर्शन कर लेते थे ।

उनका मातृगृह असुरकुलमें होनेके कारण विश्वरूप चोरी-छिपे असुरोंको यज्ञभाग देते थे । इन्द्रको यह बात उचित न लगी । इससे इन्द्रादि देवोंकी ब्रह्मभावना सिद्ध न हुई । दैत्योंको यज्ञभाग देनेके लिए मना करनेपर भी गुरु मानते नहीं थे, अतः उन्होंने (इन्द्रने) विश्वरूपका मस्तक काट दिया । यह समाचार सुनकर प्रजापति त्वष्टाको बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने सङ्कल्प किया कि मैं ऐसा यज्ञ करूँगा कि जिससे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र प्राप्त हो ।

सकाम कर्मोंमें थोड़ी-सी क्षति होनेपर भी विपरीत फल मिलता है । परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छासे कर्म करो । कोई भी काम करते हुए ऐसी इच्छा मत करो कि जगत् मेरी प्रशंसा करेगा । जगत्ने तो श्रीरामचन्द्रजी-की भी निन्दा की थी । लोक-कल्याणके हेतुसे ही प्रभु रामने मानव-शरीर धारण किया था, कई प्रकारके दुःख सहन किये थे, फिर भी जनताने उनकी कदर न की ।

तुम ऐसा ही निश्चय करो कि मेरे भगवान्को जो कुछ भाता है, वही मुझे करना है । सकाम कर्ममें हुई थोड़ी-सी भी क्षति अनर्थकारी होती है । निष्काम कर्ममें क्षति क्षम्य है, पर सकाम कर्ममें थोड़ी-सी भी क्षति अक्षम्य होती है ।

यज्ञमन्त्रसे कुछ ऐसी क्षति हो गयी कि इन्द्रकी हत्या करनेवाले पुत्रके बदले, इन्द्रके हाथोंसे ही मारा जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ । मन्त्र था—

इन्द्रशत्रो विवर्धस्व, इन्द्रशत्रो विवर्धस्व ।

इस मन्त्रको बोलते समय ऋत्विजोंने 'इन्द्र' शब्दको उदात्त कर दिया और 'शत्रो' शब्दको अनुदात्त कर दिया । ऐसा होनेसे शब्दार्थमें परिवर्त्तन हो गया और परिणामतः इन्द्रघातक पुत्रकी अपेक्षा इन्द्र द्वारा मरनेवाला पुत्र उत्पन्न हो गया ।

यही कारण है कि वेदमन्त्रका अधिकार सभीको नहीं दिया गया है । मन्त्रोच्चारण या मन्त्रपाठमें क्षति होनेपर अनर्थ हो जाता है । केवल सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मण ही वेदका शुद्ध पाठ कर सकता है ।

भागवतमें कर्मकी निंदा की गयी है । भागवतशास्त्रमें केवल भक्तिकी ही महिमा हो और कर्मको गौण माना गया हो, ऐसी बात नहीं है । हाँ, सकाम कर्मको गौण माना गया है । कर्म करते समय एक ही हेतु होना चाहिए । वह यह कि ठाकुरजीको प्रसन्न करना है ।

यज्ञकुण्डमें-से वृत्रासुर उत्पन्न हुआ । वह देवोंको सताने लगा । देवोंके सभी अस्त्र-शस्त्र उसके सामने प्रभावहीन सिद्ध हुए । घबराहटके मारे देव परमात्माकी शरणमें गए और परमात्मासे प्रार्थना करने लगे ।

परमात्माने देवोंसे कहा—यदि दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे वज्र बना सको तो उस वज्रसे वृत्रासुर मारा जा सकेगा ।

साथ-साथ भगवान्‌ने देवोंको उलाहना भी दिया कि मुझे प्रसन्न करके भक्ति-जैसा श्रेष्ठ वरदान माँगनेके बजाय तुमने एक तुच्छ वस्तुकी माँग की ।

प्रभुने अपना दिव्य तेज वज्रमें निहित किया ।

वृत्रासुरको मारनेके लिए इन्द्र वज्र लेकर युद्ध करने गया ।

त्रासदायक वृत्ति ही वृत्रासुर है । वृत्ति अन्तर्मुख हो जाये, तभी जीवका ईश्वरसे मिलन हो सकता है । किसी भी अवस्थामें ईश्वरसे विभक्त मत होओ । वृत्तिकी बहिर्मुखता दुःखद है, त्रासदायक है । यह तो देवोंको भी त्रास देती है ।

मनको स्थिर रखना है तो आँखोंको भी एक ही स्थानमें स्थिर करो । वृत्तिके बहिर्मुख होनेपर कथामें या मन्दिरमें दर्शन करनेमें आनन्द नहीं मिल पाता । बहिर्मुखवृत्तिको ज्ञानरूपी वज्रसे नष्ट कर दो ।

ज्ञान-प्रधान बल है । इसके सहारे विषयवृत्तियोंको, आवरण-वृत्तियोंको (वृत्रासुरको) मारो, तभी इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवोंको शान्ति मिलेगी ।

भागवतमें पहले चरित्र कहा जाता है और उपसंहारमें सिद्धान्त कहा जाता है ।

ब्रह्मनिष्ठा ऐसी अटल होनी चाहिए कि अन्य विषयोंमें रमनेका मन ही न हो । मनुष्य विषयोंमें आनन्द खोजता है इसीलिए वह मिलता नहीं है । प्रभुके भजनमें वज्र-सी अटल निष्ठा रखो ।

दधीचि ब्रह्मनिष्ठ थे, अतः उनकी अस्थियोंमें भी दिव्यता थी ।

एक करोड़ जप करनेपर मालामें दिव्यता आती है, चेतनता आती है । शास्त्रोंने कहा है—मन्त्र, मूर्त्ति और मालाको कभी मत बदलो । प्रत्येक मन्त्रमें दिव्य शक्ति है । जो भी मन्त्र प्राप्त हुआ हो, उसमें दृढ़ निष्ठा रखकर जप करो । मूर्त्ति भी कभी मत बदलो ।

जिस स्वरूपमें रुचि हो उसमें पूर्णतः निष्ठा रखो। उसीमें-से प्रभु प्रकटेंगे।

वज्र धारण करके इन्द्र वृत्रासुरसे युद्ध करने गया। दोनोंमें भयङ्कर युद्ध हुआ।

वृत्रासुर पुष्टि-भक्त अर्थात् अनुग्रह है। इन्द्रके हाथमें वज्र है, जिसमें नारायण हैं, किंतु इन्द्रको नहीं दिखाई देते। वृत्रासुरको दिखाई देते हैं, क्योंकि वह पुष्टि-भक्त है। वह इन्द्रसे कहता है—इन्द्र, तुम मुझपर वज्रका प्रहार शीघ्र करो। चाहे तुम्हारी जीत हो, किंतु तुम्हारी अपेक्षा मुझपर ही भगवान्की कृपा अधिक है।

लौकिक सुखोंकी प्राप्तिका प्रयत्न सफल न हो पाये तो मान लो कि ठाकुरजीने कृपा की है, परमेश्वर जिस किसी जीवपर अधिक कृपा करते हैं, उसे लौकिक सुख अधिक नहीं देते। लौकिक सुख मिलनेपर जीव ईश्वरसे विमुख हो जाता है।

श्रीकृष्णका नामस्मरण लौकिक सुखोंकी प्राप्तिके लिए कभी मत करो। लौकिक सुखमें विघ्न उपस्थित होनेपर समझ लो कि मुझे प्रभु अलौकिक सुख देने जा रहे हैं। जिस जीवपर प्रभुकी कृपा विशेष होती है, उसका लौकिक सुखप्राप्तिका प्रयत्न भगवान् सफल नहीं होने देते। जिस जीवपर वे साधारण कृपा करते हैं उसे लौकिक सुख देते हैं।

वृत्रासुरने इन्द्रसे कहा—इन्द्र, जीत तो तुम्हारी ही होनी है और स्वर्गका राज्य भी तुम्हें ही मिलेगा किंतु मैं तो अपने ठाकुरजीके उस धाममें जाऊँगा, जहाँसे मेरा पतन कभी न होगा। तुम्हारा स्वर्गसे पतन हो सकता है, किंतु मेरा नहीं। भले ही मुझे लौकिक सुख न मिल सके, किंतु मैं तो प्रभुके धाममें जाऊँगा।

वृत्रासुर श्रीहरिकी स्तुति करने लगा। इस स्तुतिकी वैष्णवग्रन्थोंने बड़ी प्रशंसा की है। इस स्तुतिके तीसरे श्लोकको कई महात्माओंने अपना प्रिय श्लोक माना है।

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जसं त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥

भा० ६-११-२४ से २७

प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा करें कि जिससे आपके चरणकमलोंके सेवकोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेके अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो सकें। प्राणवल्लभ, मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी आपका गुणगान करती रहे, मेरा शरीर आपकी सेवामें संलग्न रहे।

हे भगवन्! आपको छोड़कर तो मुझे स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डल, रसातल, योगसिद्धि और यहाँ तक कि मोक्षकी भी इच्छा नहीं है। (आपकी अनुपस्थितिमें इन सबका मैं क्या करूँ? आपको छोडकर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।)

हे कमलनयन ! आपके दर्शनके लिये मेरा मन उसी प्रकार व्याकुल है कि जिस प्रकार पंखके बिना पंछीके बच्चे अपनी माताकी राह तकते हैं या भूखे बछड़े दूध पीनेके लिए अपनी गोमाताकी प्रतीक्षा करते हैं या विरहिणी पत्नी अपने परदेशवासी पतिसे मिलनेके लिए उत्कंठित रहती है। (प्रभुसे मिलनेकी आतुरता कितनी उत्कट होती चाहिए, यह इन दृष्टांतोंके द्वारा बताया गया है।)

प्रभो ! मुझे मुक्तिकी इच्छा नहीं है। अपने कर्मोंके फलस्वरूप मुझे जन्म-मृत्युके चक्रमें बार-बार फँसना पड़े, तो उसकी भी मुझे परवाह नहीं है किंतु मैं जहाँ जाऊँ, जिस किसी भी योनिमें जन्मूं, वहाँ मुझे भगवान्के प्रिय भक्तजनोंकी मैत्री मिलती रहे। भगवन् मैं मात्र इतना ही चाहता हूँ कि आपकी मायाके कारण शरीर, घर, स्त्रीपुत्रादिमें आसक्त मनुष्योंसे कहीं भी किसी भी प्रकारका मेरा संबंध न होने पाए।

दीन होकर शरणमें जानेपर जीवको प्रभु अपनाते हैं। वृत्रासुर कितना दीन था ! वह कहता है कि मैं भगवान्की सेवा करनेके लिए तो अपात्र हूँ, अतः भगवान्के दासोंके दासकी सेवा करूँगा। मैं भगवान्के सेवक वैष्णवोंकी सेवा करूँगा। मैंने सभी इन्द्रियोंको भक्तिरसका दान किया। मेरी वाणी कृष्णकीर्तन करे। मेरे कान आपकी कथा सुनें।

वैराग्यके बिना भक्ति दृढ़ नहीं हो पाती। भक्ति भोगके लिए मत करो। भक्ति तो भगवान्के लिए ही की जाती है। दूसरा श्लोक वैराग्यका है। वृत्रासुर, भक्ति द्वारा इन्द्रका राज्य या मोक्ष पानेकी अभिलाषा नहीं करता।

भगवान्ने वृत्रासुरसे पूछा कि वैष्णवोंकी सेवा करके तुझे कुछ माँगना है क्या ? तो उसने उत्तर दिया कि मुझे स्वर्ग तो क्या, ब्रह्मलोकके राज्यकी भी इच्छा नहीं है।

भोग भक्तिमें बाधक है।

आजकल तो शिक्षा ही ऐसी दी जा रही है कि जिससे विषयवासना बढ़ती ही जा रही है और विषयवासना बढ़नेके कारण जीवन भी बिगड़ता जा रहा है।

वृत्रासुर कहता है कि मेरी तो कोई इच्छा नहीं है। मैं तो आपकी सेवा करना चाहता हूँ। आपके ही उपयोगमें आना चाहता हूं।

पहले श्लोकमें वृत्रासुरकी शरणागति है और दूसरे श्लोकसे उसका वैराग्य प्रकट होता है।

ज्ञानी शरणागतिके तीन भेद मानते हैं। नाथ, मैं आपका हूँ। परमात्मा द्वारा अपनाए जानेपर जीव मानता है कि ठाकुरजी मेरे हैं। भगवान् मेरे हैं, ऐसे भावके उदय होनेपर अनुभव होता है कि जगत्में अब और कुछ भी नहीं है।

ज्ञान और वैराग्यके बढ़नेपर सब कुछ भगवान्मय ही लगता है। 'मेरापन' चला जाता है। 'अहम् ब्रह्मास्मि' की प्रतीति होने लगती है। जगत्में उसके लिए भगवान्के सिवा और कुछ भी नहीं रह जाता। 'मैं' नहीं रह पाता, वह 'मैं' ईश्वरमें विलीन हो जाता है. वैराग्यके बिना शरणागति दृढ़ नहीं हो सकती।

तीसरे श्लोकमें प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! आप अपने दर्शनके हेतु मुझे आतुर बनाएं। परमात्मा पूर्ण प्रेम माँगते हैं, पर जीव उन्हें पूर्ण प्रेम नहीं देता, अतः उनको वह भाता

नहीं है। जीव अपना प्रेम देता है स्त्री-पुत्रादिको। अतः वृत्रासुर कहता है कि मेरी तो एक ही इच्छा है कि आपके दर्शनोंके लिए मैं आतुर बनूं।

चौथे श्लोकमें वृत्रासुरने सत्सङ्गकी अभिलाषा व्यक्त की है। वह कहता है कि यदि पुनर्जन्म मिलना ही है तो हे प्रभो ! आप मुझे वैष्णवके घरकी गाय ही बनाएँ। यदि मेरा दूध प्रभुके उपयोगमें आनेवाला हो तो मैं पशु भी बननेके लिए तैयार हूँ। पशु-शरीरमें भी मुझे सत्सङ्ग ही मिले।

वृत्रासुरने तो ऐसी स्तुति की कि इन्द्रासन भी डोलने लगा।

भक्ति भगवान्को परतन्त्र बना देती है अर्थात् भक्ति भगवान्को भक्तके वशमें कर देती है। अतः भगवान् मुक्ति तो देते हैं, भक्ति नहीं। भगवान् जब कृपा करते हैं, तब वे अन्तमें नष्ट होनेवाली संपत्ति नहीं, भक्ति ही देते हैं। भगवान् मुक्ति तो शीघ्र दे भी देते हैं, भक्ति नहीं, क्योंकि यदि भगवान् भक्ति दे दें, तो उन्हें भक्तका सेवक भी बनना पड़ जाता है। भक्ति स्वतन्त्र परमात्माको प्रेमके बन्धनसे बाँध देती है।

स्तुतिके समाप्त होनेपर इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया। वृत्रासुरके शरीरमें-से निकला हुआ तेज भगवत्-शरीरमें विलीन हो गया। भगवान्ने वृत्रासुरका उद्धार किया।

छठे स्कन्धमें पुष्टि-लीलाका वर्णन है। भगवान्ने वृत्रासुरको पुष्टि भक्ति प्रदान की, अर्थात् उसपर कृपा की।

परीक्षितने पूछा—ऐसे महान् भक्त होनेपर भी वृत्रासुरको राक्षसयोनिमें क्यों जन्म लेना पड़ा ? उसे ऐसी तीव्र हरि-भक्ति कैसे प्राप्त हुई ? उसका पूर्ववृत्तांत क्या है ?

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

राजन् ! सुनो। वृत्रासुर अपने पूर्वजन्ममें चित्रकेतु नामक राजा था। उसकी रानीका नाम था कृतद्युति। उसके कोई सन्तान नहीं थी।

यहाँ शब्दार्थ नहीं, लक्ष्यार्थसे काम लेना चाहिए। जो चित्र-विचित्र कल्पनायें किया करता है, वही चित्रकेतु है। बुद्धि ही कृतद्युति है। मन अनेक विषयोंका विचार करता है। उसी विषयाकार स्थितिमें चित्रकेतुका जन्म होता है।

मनमें जमे हुए बाहरके चित्र ही भजनमें विघ्नकर्त्ता हो जाते हैं।

एक बार राजा चित्रकेतुके घर अङ्गिरा ऋषि पधारे। राजाने उनसे पुत्र माँगा। अङ्गिरा ऋषिने राजासे कहा—पुत्रके माता-पिताको भी तो शान्ति कहाँ है ? तेरी कोई सन्तान नहीं है, यही अच्छा है।

राजाके मनमें संसारके कई चित्र जम गये थे, अतः उसने दुराग्रह किया। ऋषिकी कृपासे उसके घर पुत्रका जन्म हुआ। राजाकी और भी पत्नियाँ थीं। ईर्ष्यावश किसी विमाताने उस बालकको विष दे दिया, अतः उसकी मृत्यु हो गई। यह देखकर चित्रकेतु और कृतद्युति रोने लगे।

ऐसे शोकके समय वहाँ अङ्गिरा ऋषिके साथ नारदजी आए। पुत्रकी मृत्युपर राजा-रानीको विलाप करते देखकर नारदजीने उन्हें उपदेश दिया कि अब पुत्रके लिए रोना व्यर्थ है। अब तुम अपने लिए आँसू बहाओ। वह पुत्र जहाँ गया है, वहाँसे वापस नहीं आएगा।

पुत्र चार प्रकारके बताये गये हैं।

(१) शत्रुपुत्र—पूर्वजन्मका कोई वैरी ही सतानेके लिए पुत्ररूपसे आता है।

(२) ऋणानुबन्धी—पूर्वजन्मका ऋणदाता अपना बकाया वसूल करनेके लिए पुत्ररूपमें आता है।

(३) उदासीन पुत्र—जब तक यह अविवाहित होता है, तब तक वह माता-पिताके साथ रहता है। माता-पितासे न तो वह कुछ लेता है और न उन्हें कुछ देता ही है। ऐसा पुत्र विवाहित होनेपर माता-पितासे पृथक् हो जाता है। माता-पिताकी यह इच्छा रहती है कि पुत्रका विवाह होनेपर उसके चार हाथ होंगे और वह उनकी सेवा करेगा। पर यह सोचते समय वह यह भूल जाता है कि चार हाथ होनेके साथ-साथ चार पग भी तो हो जाते हैं। विवाहके बाद मनुष्य अधिकतर पशुवत् जीवन ही जीता है।

(४) सेवक पुत्र—पूर्वजन्ममें किसीने सेवा पायी होगी। अतः वह इस जन्ममें सेवा करनेके हेतु पुत्ररूपसे आकर सेवा करता है।

हम किसीकी सेवा न करें पर दूसरे लोग हमारी सेवा अवश्य करें, ऐसी आशा करना निरर्थक है।

स्कन्ध पुराणमें पुण्डलिकका चरित्र है। पुत्रको माता-पिताकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिए इसका यह उत्तम दृष्टान्त है।

पुण्डलिकके दर्शन करनेके लिए भगवान् स्वयं पधारे थे। वह भगवान्के दर्शन करने नहीं गया था।

पुण्डलिक माता-पिताकी हमेशा सेवा करता था। वह माता-पिताको ही सर्वस्व मानता था। माता-पिताकी ऐसी सेवासे भगवान्ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। जब भगवान् द्वारपर आए, तब पुण्डलिक तो माता-पिताकी सेवामें लीन था। वह तो बेचारा गरीब था। उसकी एक छोटी-सी कुटिया थी। अन्दर बैठनेके लिए स्थान तक न था। भगवान् बाहर ही खड़े-खड़े पुण्डलिककी प्रतीक्षा करने लगे।

माता-पिताकी सेवामें व्यस्त पुण्डलिकने भगवान्से कहा—माता-पिताकी सेवाके फल-स्वरूप आप मुझे मिले हैं, अतः मुझे उनकी सेवा प्रथम करनी है और उसने एक ईंट फेंकते हुए भगवान्से कहा—मैं जब तक माता-पिताकी सेवा पूरी न कर लूं, तब तक आप इसीपर खड़े रहिए।

भगवान् साक्षात् प्रकट हुए, फिर भी पुण्डलिकने माता-पिताकी सेवाका कार्य अधूरा न छोड़ा। भगवान ईंटपर खड़े रहे। ईंटसे वीट बना और उनका नाम पड़ गया विठोबा।

खड़े-खड़े भगवान् जब थक गए तो उन्होंने एक हाथ अपनी कटिपर रख लिया। आज भी पण्ढरपुरमें वे वैसी ही मुद्रामें खड़े हुए हैं। पुण्डलिकने उन्हें जिस तरह खड़े रहनेको कहा था, वैसे ही वे आज भी खड़े हुए हैं।

कटिपर हाथ रखकर वे बताते हैं कि मेरे पास आनेवालेके लिए, मेरा आसरा लेनेवालेके लिए संसार मात्र इतना (कटि तककी ऊँचाई जितना) गहरा है।

भगवान् पाण्डुरङ्गकी स्तुतिका स्तोत्र श्रीमद् शङ्कराचार्यने इस प्रकार रचा है।

भवाब्धेः प्रमाणं इदं मामकानाम् ।
नितंबं कराभ्यां धृतो येन यत्नात् ॥
समागत्य तिष्ठन्त आनन्दकन्दम् ।
परब्रह्म लिङ्गं भजे पांडुरंगम् ॥

भवाब्धेः प्रमाणं इदम् । किंतु किसके लिए ? जो भगवान्‌का बन जाए उसके लिए ।

नारदजी राजा चित्रकेतुसे कहते हैं—राजन्, तुम्हारा शत्रु ही पुत्र बनकर जन्मा था । अच्छा हुआ कि वह मर गया । तुम्हें तो आनंद मनाना चाहिए ।

घर, धन, पत्नी, विविध ऐश्वर्य, शब्दादि विषय, राज्यसमृद्धि, सेवक, मित्रजन, रिश्तेदार आदि सभी शोक, मोह, भय और दुःखके दाता हैं । ये सभी नाशवान् हैं ।

जीवके तो हजारों जन्म हो गए हो रहे हैं और होंगे । इनमें कौन किसका सगा और कौन किसका संबंधी है ?

जिस प्रकार जलप्रवाहमें बालूके कण कभी इकट्ठे होते हैं और कभी बिखर जाते हैं, उसी प्रकार समयके प्रवाहमें संसारमें प्राणी इकट्ठे होते हैं और बिछुड़ जाते हैं ।

जब उस मृत राजकुमारकी जीवात्माको लाया गया तो वह किसीको भी पहचानता नहीं था । उसने कहा कि—मेरे तो हजारों जन्म हो गए हैं, मैं उनमेंसे कौन-कोनसे जन्मके माता-पिताको याद रखूं और ऐसा कहकर वह जीवात्मा चली गई ।

नारदजीने कहा—राजन, तुम जिसके लिए रो रहे हो, वह तो तुम्हारी ओर दृष्टि भी फेरनेको तैयार नहीं है । फिर भी तुम शोक कर रहे हो ।

नारदजीने चित्रकेतुको दिव्यज्ञान दिया और तत्त्वोपदेश दिया तथा संकर्षण मंत्रका भी उपदेश दिया ।

इसके पश्चात् चित्रकेतु राजाने तपश्चर्या की और भगवान्‌के नामका जप किया । अतः उसे भगवान्‌के दर्शन हुए । उसके सारे पापोंका क्षय हो गया । वह महाज्ञानी और महासिद्ध हो गया और भगवान्‌ने उसे पार्षद बना लिया ।

एक दिन चित्रकेतु आकाशमें विहार कर रहा था । वह घूमता-फिरता कैलासधाम आया । वहाँ उसने देखा कि पार्वतीजी शिवजीकी गोदमें बैठी हुई हैं । यह देखकर उसके मनमें कुभाव जागा ।

विषयवासनामें-से चित्रकेतुका जन्म होता है । प्रत्येक स्त्री-पुरुषको नर-नारायणके रूपमें देखने पर वासना उत्पन्न नहीं होगी ।

चित्रकेतुने सांसारिक भावसे शिव-पार्वतीको देखा ।

इस चरित्रसे स्पष्ट होता है कि बिना ज्ञानकी भक्ति व्यर्थ है । मात्र सगुणके साक्षात्कार-से मन शुद्ध नहीं होता । साक्षात्कारसे मनकी चंचलता नष्ट नहीं हो पाती । सगुण और निर्गुण भक्तिके होनेपर ही जीव शिव बन सकता है ।

चित्रकेतु शिव-पार्वतीको लौकिक दृष्टिवश कामभावसे देखने लगा ।

शिव-पार्वतीके इस प्रकार बैठनेका एक कारण था। एक बार कामदेवने फिर शिवसे युद्ध करना चाहा। शिवजीने कहा कि मैंने एक बार तो तुझे जला दिया है तो कामदेवने कहा कि समाधिमें बैठकर जलाना कोई बड़ी बात नहीं है। समाधिकी अवस्थामें तो कोई भी जीव मुझे जला सकता है। मेरे मनमें एक छोटी-सी आकांक्षा अभी शेष है। आप पार्वतीजीको आलिंगनबद्ध कीजिए, मैं उसी समय अपना बाण चलाऊँ। यदि आप उस समय भी निर्विकार रह पाए तो मैं मान जाऊंगा कि आप महादेव हैं। शिवजी तैयार हो गए। पार्वतीको आलिंगन-बद्ध करके वे अर्धनारीश्वर, नटेश्वर बन गए। कामने उन्हें विचलित करनेकी पूरी-पूरी कोशिश की किंतु उसे सफलता न मिली। शंकर निर्विकार ही रहे। कामदेवने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और शिवजीकी शरणमें आ गया।

चित्रकेतु इन सारी बातोंसे अनजान था, अतः वह शिवजीकी निंदा करते हुए बोला— भारी सभामें ये अपनी पत्नीको आलिंगनमें लेकर, गोदमें बिठाकर बैठे हैं। इन्हें कोई लाज भी नहीं आती है क्या ?

शिव-पार्वती तो निर्विकारी थे किंतु उन्हें देखनेवालेकी आँखोंमें विकार था। किसीको लौकिक भावसे देखोगे तो मनमें विकार उत्पन्न होगा और विकृत चित्र मनमें उभरेंगे।

इस प्रकार लौकिक भावसे देखनेके कारण चित्रकेतुका पतन हुआ।

उसकी निंदासे शिवजीको तो कुछ बुरा न लगा। जिसके सिर पर गंगा—ज्ञानगंगा हो, उसे निंदारस प्रभावित नहीं कर सकता किंतु पार्वतीके लिए यह बात असह्य थी। उन्होंने चित्रकेतुको शाप दिया—उद्धत, तेरा अब असुरयोनिमें जन्म होगा।

चित्रकेतु पार्वती मातासे क्षमा-याचना करने लगा। तो देवीने कहा—दूसरे जन्ममें तुझे अनन्य भक्ति प्राप्त होगी और तेरा उद्धार होगा।

पार्वतीके शापके कारण चित्रकेतुका वृत्रासुरके रूपमें जन्म हुआ।

मन-चित्रकेतु यदि शुभ कल्पना करे (कि जिस प्रकार चित्रकेतुने वृत्रासुर-रूपमें की थी) तो अंतमें सुखी हो सकता है और दुष्ट कल्पना करनेपर दुःखी होता है।

नारदजी और अंगिरा जैसे संतोंके समागमसे मन-बुद्धि ऊर्ध्वगामी बनते हैं।

मनमें विषयोंके चित्र न उभरें और सात्त्विक भाव जागें इसके लिए लक्ष्मीनारायणका सतत पूजन करो। विष्णु सत्त्वगुणके अधिपति देव हैं। उनकी सेवा करनेसे मनमें सात्त्विक-भावकी जागृति होती है।

विषयोंके चित्र अंदर होते हैं। आँख मूंदकर बैठोगे तो वे बाहर आएँगे। इन चित्रोंको मिटानेके लिए लक्ष्मीनारायणकी सेवा करना आवश्यक है।

दितिके दोनों पुत्रोंकी मृत्यु हो गई। दितिने इन्द्रको मारनेके लिये व्रत किया। कश्यप ऋषिने (इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न हो सके) इस हेतु दितिको एक वर्षका व्रत बताया। उस उसका नाम था पुंसवन व्रत।

चंचल मनको ईश्वरमें स्थिर करनेका साधन ही व्रत है। व्रतसे मनकी चंचलता घटती जाती है और ईश्वरमें स्थिरता बढ़ती जाती है। मनको ईश्वरमें लगाए रखनेका साधन ही व्रत है।

दितिने व्रत तो किया किंतु व्रतके नियमोंका बराबर पालन न करनेके कारण व्रतभङ्ग हुआ। परिणामतः मरुत्‌गणोंकी उत्पत्ति हुई।

भेदबुद्धि ही दिति है। चंचल मनोवृत्तिको एक ही स्थानपर स्थिर करके, एकको अनेकमें निहारा जाए, तभी व्रत सफल होता है।

भेदभावके कारण दितिके व्रतका भङ्ग हो गया अब। दितिने इन्द्रसे कहा ये मेरी सन्तानें हैं, किंतु उनकी गणना देवोंमें होगी। अब दितिके मनमें इन्द्रके लिये कुभाव नहीं रहा।

इन मरुत्‌गणोंकी उत्पत्तिका वर्णन करके स्कन्धकी कथा समाप्त की गई है।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव॥

सप्तम स्कन्ध

श्रीराम श्रीराम श्रीराम

छठे स्कन्धमें पुष्टि-अनुग्रहकी कथा कही गयी थी। भगवदनुग्रहके पश्चात् विकार वासनाको नष्ट करके अनुग्रहका यदि सदुपयोग किया जाए तभी वह पुष्ट हो पाता है। सेवा-स्मरणमें तन्मय बनकर ही जीव पुष्ट हो सकता है। ठाकुरजी कई जीवोंपर अनुग्रह करते हैं किंतु उस अनुग्रहके सदुपयोग करनेकी रीति जीव जानता ही नहीं है। परिणामतः जीव पुष्ट तो बन नहीं पाता, अपितु दुष्ट बन जाता है।

अब हम हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी कथा सुनें। हिरण्यकशिपु दैत्य बना और प्रह्लाद देव। हिरण्यकशिपुने सारी सम्पत्तिका उपयोग भोग-विलासके लिए किया, अतः वह दैत्य बना। प्रह्लादने समय तथा अपनी शक्तिका उपयोग प्रभुकी भक्ति करनेमें किया, अतः वह देव बन गया।

सातवें स्कन्धमें वासनाके तीन प्रकार बताये गए है—(१) असद् वासना (२) सद् वासना (३) मिश्र वासना।

इस सातवें स्कन्धके आरम्भमें परीक्षित राजाने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है—आप कहते हैं कि ईश्वर सर्वत्र है और वह समभावसे व्यवहार करता है। यदि ऐसी ही बात है तो जगतमें यह विषमता क्यों दृष्टिगोचर हो रही है? चूहेमें भी ईश्वर है, बिल्लीमें भी। तो फिर बिल्ली चूहेको क्यों मारकर खाती है?

भगवान् यदि सम हैं तो जगत्में वे विषमता क्यों उत्पन्न करते हैं? यदि वे समभावी हैं तो फिर बार-बार देवोंका पक्ष लेकर वे दैत्योंको क्यों मारते हैं? यदि वे ईश्वर हैं तो फिर विषमता वे क्यों करते हैं?

भगवान्की दृष्टिमें यदि सभी प्राणी समान हैं तो उन्होंने इन्द्रके लिए वृत्रासुरका वध क्यों किया?

मैं मानता था कि दैत्य तो पापी हैं। अतः हरि उनकी हत्या करते हैं; किंतु वृत्रासुर तो भगवद्-भक्त था, फिर उसकी उन्होंने हत्या क्यों की?

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्, क्रियामें भले ही कदाचित् विषमता हो भी जाये, किंतु भावमें तो नहीं ही होनी चाहिए।

समता अद्वैतभावमें ही होती है, क्रियामें वह संभाव्य नहीं है। क्रियामें तो विषमता ही रहेगी। अतः भावमें समता रखनी चाहिए।

घरमें माता, पत्नी, सन्तान आदि होते हैं। पुरुष इन सभीके प्रति प्रेम तो एक समान ही रखता है, किंतु सभीके साथ एक समान बर्ताव नहीं कर सकता। वह माताको तो वन्दन कर सकेगा, पर पुत्रीको नहीं।

प्रेम आत्माके साथ होता है, देहके साथ नहीं।

भावनाके क्षेत्रमें तो अद्वैतभाव होना ही चाहिए। समदर्शी बनना है, समव्यवहारी नहीं। समव्यवहारी होना तो सम्भव नहीं है।

शंकराचार्यने आज्ञा दी है—

भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित् ।।

भागवतको आधिभौतिक साम्यवाद मान्य नहीं है, मात्र आध्यात्मिक साम्यवाद ही मान्य है।

राजन् ! तुम्हें लगता है कि देवोंका पक्ष लेकर भगवान्ने असुरोंका नाश किया परंतु उन्होंने यह संसार तो उन असुरोंपर कृपा करनेके हेतुसे ही किया था।

एक दृष्टांत सुनो। एक चोर चोरी करनेके हेतु घरसे निकला, किंतु मार्गमें ठेस लगनेके कारण वह गिर पड़ा और उसका एक पाँव टूट गया। इस कारण वह चोरी न कर सका। यह भगवान्की कृपा थी या अकृपा ? इसे कृपा ही समझनी चाहिए। पैर तो टूट गया किंतु उसके कारण वह पाप तो न कर सका।

राजन् ! जैसे तुम होओगे, ईश्वरका रूप भी तुम्हें वैसा ही दिखाई देगा। ईश्वरका कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं है। जीव जिस भावसे उन्हें देखता है, उसके लिये वे वैसे ही बन जाते हैं।

वल्लभाचार्यजी कहते हैं कि ब्रह्म ईश्वर-लीला करते हैं, अतः वे अनेक स्वरूप धारण करते हैं।

शंकराचार्यजी कहते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक और निर्विकार है। उस ब्रह्मकी कोई क्रिया नहीं है। कलशमें रखा हुआ जल तो बाहर निकाला जा सकता है, किंतु अंदर समाया हुआ अवकाश या आकाश नहीं। ईश्वरको कोई बाहर नहीं निकाल सकता।

ईश्वरमें मायासे इस क्रियाका अध्यारोप किया गया है। यह वेदान्तका सिद्धान्त है। मायाकी क्रिया ईश्वरके अधिष्ठानमें आभासित होती है। लोग गाड़ीमें बैठकर अहमदाबाद जाते हैं। अहमदाबादमें गाड़ीके पहुँचनेपर वे कहते हैं कि अहमदाबाद आ गया, किंतु यह आनेकी क्रिया उस नगरकी नहीं, गाड़ीकी ही है।

ईश्वर निराकाररूपसे सर्वत्र व्यापक है। ईश्वर यदि किसी स्थानपर आवागमन करेगा तो उन्हें सर्वव्यापक कैसे कहा जा सकेगा ? किसी भी स्थानपर जिसका अभाव न हो, उसे ही सर्वव्यापी कहा जा सकता है।

आचार्य शंकरका मत है कि ईश्वर निष्क्रिय है। मायाके कारण ही उनमें क्रियाका भास होता है ; पर वास्तवमें भगवान कुछ भी नहीं करते, अतः उनमें विषमता नहीं है।

अग्नि निराकार है, फिर भी जब लकड़ी जलती है तो लकड़ी जैसा ही आकार अग्निका भी आभासित होता है। उपाधिके कारण आकारका भास होता है।

परमात्माका वास्तविक स्वरूप व्यापक, निराकार और आनन्दरूप है। आचार्य शंकरका यह दिव्य सिद्धांत है।

महाप्रभुजीका सिद्धांत भी दिव्य है। वैष्णव मानते हैं कि ईश्वरकी अक्रियात्मकताकी बात बराबर ही। ईश्वर क्रिया तो नहीं कर सकते किंतु लीला करते हैं। ईश्वर निष्क्रिय हैं यह बात सच है, किंतु यह भी उतना ही सच है कि वे लीला करते हैं। जिस क्रियामें क्रियाका अभिमान नहीं होता,, वही लीला है। ईश्वर स्वेच्छासे लीला करते हैं।

'मैं करता हूँ' ऐसी भावनाके बिना निष्काम भावसे जो क्रिया की जाए, वही लीला है। केवल अन्यको सुखी करनेकी भावनासे जो क्रिया की जाए, वही लीला है । कृष्णका कार्य लीला है। ईश्वरको सुखकी इच्छा नहीं है। कन्हैया चोरी तो करता है, किंतु औरोंको भलाईके लिए ही। क्रिया बंधनकारक है लीला मुक्तिदायक।

जीव जो कुछ करता है, वह क्रिया ही है, क्योंकि उसकी हर क्रियाके पीछे स्वार्थ, वासना और अभिमान होते हैं।

दोनों सिद्धांत सत्य हैं। ईश्वर निराकार निर्विकल्प है और माया क्रिया करती है. यह सिद्धान्त भी दिव्य है। ईश्वर कुछ भी नहीं करते. किंतु उनमें क्रियाका अध्यारोप किया जाता है। मायाके कारण ईश्वरके व्यवहारमें विषमताका भास होता है । ईश्वर परिपूर्ण सम है। परमात्मा सम है और जगत् विषम।

समता ईश्वरकी है। विषमता मायाकी है। यों तो ईश्वर सम है, किंतु मायाके कारण उसमें विषमता दिखाई देती है। ईश्वरके अधिष्ठानमें माया क्रिया करती है, अतः माया जो भी क्रिया करती है, उसका अध्यारोप ईश्वर पर भी किया जाता है। दीपक स्वयं तो कुछ नहीं करता, किंतु उसकी अनुपस्थितिमें भी तो कुछ नहीं किया जा सकता।

भगवान् दैत्यको मारते नहीं, तारते (उद्धार करते) हैं। विषमता क्रियामें है, भावमें नहीं। भगवान् दैत्योंको मारते हैं किंतु उनके प्रहारमें भी प्रेम भरा हुआ होता है।

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं।

जीवनके उपभोगके लिए शरीरसर्जनकी इच्छा जब भगवान् करते हैं, तो रजोगुणके बलमें वृद्धि करते हैं। जीवोंके पालनके हेतु वे सत्त्वगुणके बलमें और संहारार्थ तमोगुणके बलमें वृद्धि करते हैं।

राजन्, जो प्रश्न आपने मुझसे पूछा, वही प्रश्न आपके पितामहने नारदजीसे पूछा था।

राजसूय यज्ञमें प्रथम श्रीकृष्णकी पूजा की, जो शिशुपालको मान्य नहीं हुई, अतः वह भगवान्‌की निंदा करने लगा। वैसे तो भगवान् लंबे अरसे तक निंदा सहते रहे. किंतु अंतमें उन्होंने सुदर्शन चक्रसे शिशुपालका मस्तक उड़ा दिया। उसके शरीरमें-से बाहर आया हुआ आत्मतेज द्वारिकाधीशमें विलीन हो गया और शिशुपालको मुक्ति मिली।

इस प्रसंगको देखकर युधिष्ठिरको आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारदजी से पूछा—भगवान्‌से शत्रुत्व होने पर भी शिशुपालको सद्गति क्यों प्राप्त हुई? उसने भगवान्‌को गालियाँ दीं, फिर भी वह नरकवासी क्यों न हुआ? ऐसी सायुज्य गति उसे क्यों मिली? भगवान्‌से द्वेष करनेवाले शिशुपाल और दंतवक्त्र नरकवासी होने चाहिए थे। तो ऐसी उल्टी बात क्यों हो गई?

नारदजीने कहा—श्रवण करो, राजन्! परमात्मामें किसी भी प्रकार तन्मय होनेकी आवश्यकता है। परमात्माने कहा है कि जीव चाहे जिस किसी भावसे मेरे साथ तन्मय बने, मैं उसे अपने स्वरूपका दान करता हूँ।

राजन्, किसी भी भावसे मन, परमात्माके साथ एकाकार होना चाहिए।

जिस प्रकार भक्तिके द्वारा ईश्वरसे मन लगाकर कई मनुष्य परमात्माकी गतिको पा सके हैं, वैसे ही काम, द्वेष, भय या स्नेहके द्वारा भगवान्‌से नाता लगाकर कई व्यक्ति सद्गति पा गए हैं ।

गोपियोंने मिलनकी तीव्र कामनासे, कंसने भयसे, शिशुपाल आदि कुछ राजाओंने द्वेषसे, यादवोंने पारिवारिक संबंधसे, आपने स्नेहसे और हमने भक्तिसे अपने मनको भगवान्‌से जोड़ लिया है ।

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
संबंधाद् वृष्णयः स्नेहाद् ययं भक्त्या वयं विभो ॥

भा. ७-१-३५

कुछ गोपियाँ कृष्णको कामभावसे भजती थीं । श्रीकृष्णका स्वरूप देखकर भले ही उनके प्रति कामभाव जाग जाए, किंतु जिसका ध्यान करते हैं वह तो निष्काम है । निष्काम कृष्णका ध्यान करती हुई गोपियाँ भी निष्काम हो गई, किंतु जगत् के स्त्री-पुरुषोंका ध्यान काम-भावसे करोगे तो नरकमें जाओगे ।

श्रीकृष्णके प्रति कामभाव रख कर सतत उनका चिंतन करती हुई भी गोपियाँ निष्काम बनी रहीं । परमात्माके पूर्ण निष्काम होनेके कारण उन्हें अर्पित किया गया काम भी निष्काम बन गया ।

कामका जन्म रजोगुणमें-से होता है । ईश्वर बुद्धिसे परे है । ईश्वरके पास काम नहीं जा सकता । सूर्यके पास अंधकार नहीं जा सकता ।

जिनका चिंतन किया गया था, वह श्रीकृष्ण निष्काम होनेके कारण, उनका कामभावसे चिंतन करनेवाली गोपियाँ भी निष्काम बन गई ।

कंस डरके मारे तन्मय हो गया था । उसे देवकीका आठवाँ पुत्र ही हमेशा दीखता रहता था । शिशुपाल अपने शत्रुके रूपमें भगवान्‌का चिंतन करता रहता था ।

इस प्रकार ईश्वरमें किसी भी भावसे तन्मय होना चाहिए ।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ।

अतः हर किसी व्यक्तिको चाहिए कि वह श्रीकृष्णसे अपना मन जोड़ ले ।

यह शिशुपाल साधारण व्यक्ति नहीं था, वह तो विष्णु भगवान्‌का पार्षद था ।

नारदजीने जयविजयके तीनों जन्मोंकी कथा संक्षेपमें सुनाई । जय और विजय पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने, दूसरेमें रावण और कुंभकर्ण बने और तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दंतवक्त्र बने ।

नारदजीने हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी कथाका आरंभ किया । वे कहने लगे कि दितिके दो पुत्र थे—हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु । वराह भगवान्‌ने हिरण्याक्षका वध किया था ।

धर्मराजने नारदजीसे प्रार्थना की—"मैं प्रह्लादकी कथा विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ । वे महान् भगवद्भक्त थे, फिर भी हिरण्यकशिपुने उन्हें क्यों मारना चाहा ?"

नारदजीने कहा—दिति वस्तुतः भेदबुद्धि है। भेदबुद्धिसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु–ममता और अहंकार उत्पन्न होते हैं। 'मैं' और 'मेरा' भेदबुद्धिकी संतानें हैं। सभी दुःखोंका मूल भेदबुद्धि है और सभी सुखोंका मूल अभेदभाव है। शरीरसे नहीं, अपितु बुद्धिसे यदि अभेदभाव स्थापित हो सके तो सभीके प्रति समबुद्धि हो सकती है।

अहंकारको मारना कठिन है। विवेकसे ममताका तो नाश हो सकता है किंतु अहंभावका नहीं। पर यदि अर्पण करनेवाला व्यक्ति अपना 'मेरापन' भी प्रभुको अर्पित कर दे, तो ठाकुरजी कृपा करते हैं। मुझमें अभिमान नहीं है, ऐसा मानना भी अभिमान ही है।

हिरण्यकशिपु अहंकारका रूप है। उसका व्यवहार ही ऐसा है कि जिससे देवोंको, ज्ञानी पुरुषोंको और अन्य सभीको कष्ट होते हैं। अभिमान सभीको सताता और रुलाता है। ममता तो शीघ्र मर भी जाती है किंतु अहंकार शीघ्र मरता नहीं है। उसे मारना बड़ा कठिन है। वह न तो रातको मरता है और न दिनमें। वह न तो घरके अंदर मरता है और न घरके बाहर। वह घरके बाहरभी होता है और अंदर भी। वह न तो शस्त्रसे मरता है और न अस्त्रसे। उसे मध्य-स्थानमें ही मारना पड़ता है। मनुष्य यदि अहंकारको नष्ट कर दे तो वह ईश्वरसे दूर नहीं रहेगा।

अभिमान अंदर ही समाया हुआ रहता है। मनुष्यको दुःख देनेवाला यही है। इस अहंकारको मारना है। वह दरवाजेकी देहली पर ही मरेगा। रासकथामें कहा गया है कि हर दो गोपियोंके बीचमें (साथमें) श्रीकृष्ण हैं। इसी प्रकार यदि तुम दो वृत्तियोंके बीचमें श्रीकृष्णको रखोगे तो तुम्हारे अहंकारका नाश होगा। एक संकल्पके समाप्त होने तथा दूसरी वृत्तिके उत्पन्न होनेके पहले यदि श्रीकृष्णको रखोगे तो तुम्हारे अहंकारका नाश होगा। प्रत्येक इन्द्रियका मिलन जब तक परमात्माके साथ नहीं हो पाता. तब तक अहंकार बना ही रहता है। पुरुष ईश्वर-स्मरणमें तन्मय हो जाए और अन्य किसी भेदका अस्तित्व न रहे तो अहंकारकी मृत्यु अवश्य होगी।

ज्ञान सुलभ है, किंतु जब तक अहं और ममता नष्ट न हो पाएँ, तब तक ज्ञान शोभा नहीं देता।

हिरण्यकशिपु ज्ञानी तो था किंतु उसका ज्ञान अहंभाव और ममतासे भरा हुआ था। अपने भाईकी मृत्युके अवसर पर भी उसने ब्रह्मोपदेश किया।

जो औरोंको उपदेश दे और स्वयं उसे अपने जीवनमे न उतारे, वह असुर है।

हिरण्यकशिपु अन्य मानवोंको तो ज्ञानोपदेश देता था किंतु स्वयं यह सोचता था कि अपने भाईके हत्यारेसे मैं कैसे बदला लूं।

एक गृहस्थके पुत्रकी मृत्यु हो गई तो किसी साधुने उस समय उपदेश दिया कि यह संसार तो मिथ्या है। कुछ दिनोंके पश्चात् उसी साधुकी एक भैंस मर गई तो वह रोने लगा। न जाने इस समय उसका ज्ञान कहाँ हवा हो गया? उस गृहस्थने वहाँ आकर साधुसे पूछा कि अब आप क्यों रो रहे हैं। साधुने कहा कि वह पुत्र तो तेरा था, अतः मैंने तुझे उपदेश दिया, किंतु यह भैंस तो मेरी थी, अतः रो रहा हूँ।

जब तक अहंभाव और ममता विद्यमान हैं, तब तक ज्ञानका पाचन नहीं हो पाता। भक्तिसे रहित ज्ञान शाब्दिक ही रह जाता है, अतः उस ज्ञानसे जीवको कोई लाभ नहीं होता। वैराग्य और भक्तिके अभावमें ज्ञानका अनुभव नहीं हो पाता।

कोई व्यक्ति बातें तो वेदान्त और ब्रह्मज्ञानकी करे, किंतु प्रेम सांसारिक विषयोंके साथ करे तो समझो कि वह दैत्य ही है। वह दैत्य वंशका है।

हिरण्याक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर हिरण्यकशिपुने कहा कि मैं अपने भाईके हत्यारे विष्णुसे युद्ध करूँगा। उसने माता दितिको कई प्रकारके उपदेश-वचन सुनाकर संतुष्ट किया। उसने सोचा कि मैं विष्णुसे अभी युद्ध नहीं करूँगा, अपितु पहले वरदान प्राप्त करके अमर हो लूं, फिर युद्ध करूँ।

हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने चला तो उसकी पत्नी कयाधुने पूछा कि वापस कब लौटोगे? तो उसने उत्तर दिया कि कुछ निश्चित नहीं है। मैं दस हजार वर्षों तक तप करूँगा। तपसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करके ही घर वापस आऊँगा।

हिरण्यकशिपु मंदराचल पर्वत पर आया। यह कथा भागवतमें नहीं है। व्यासजीने विष्णुपुराणमें यह कथा लिखी है। हिरण्यकशिपुकी तपस्याका वृत्तान्त जानकर देवोंने बृहस्पतिसे प्रार्थना की—आप हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्यामें बाधा उपस्थित कीजिए। यह सुनकर बृहस्पति तोतेका रूप धारण करके मंदराचल पर्वत पर आए और जहाँ हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने बैठा हुआ था, वहीं किसी वृक्ष पर बैठ कर 'नारायण नारायण' का जप करने लगे। जैसे ही हिरण्यकशिपु मंत्रजपका आरंभ करता कि तुरंत ही वह तोता 'नारायण' की रट लगाना शुरू कर देता। यह देखकर हिरण्यकशिपुने सोचा कि विष्णुकी हत्या करनेके लिए तो मैं तपश्चर्या कर रहा हूँ और उसीका कीर्तन यह तोता कर रहा है। यह कहाँसे आ गया इधर? हटता ही नहीं है। आज तपश्चर्या करनेके लिए शुभ दिवस नहीं है। यह सोचकर वह थककर सायं कालको घर वापस लौट गया।

कयाधुको आश्चर्य हुआ कि मेरा पति आज ही क्यों वापस आ गया? पर वह पतिसे यह बात कैसे पूछे, क्योंकि वह क्रोधी जो था। शायद वह कह दे कि तुझे क्या लेना-देना है।

अतः कयाधुने सोचा कि मैं किसी युक्तिसे पूछ लूंगी। उसने रसोईघरके सेवकोंसे कहा कि आज मैं स्वयं ही रसोई बनाऊँगी।

पतिकी गुप्त बातें जाननी हों तो कयाधुके रास्ते पर चलो। भोजनमें बड़ा वशीकरण होता है।

लोभीको द्रव्यसे वशमें करो और अभिमानीको प्रशंसासे।

हिरण्यकशिपु अभिमानी था, अतः उसकी पत्नी उसकी सेवा करते हुए उसकी प्रशंसा करने लगी।

राजा भोजने एक बार कालिदाससे पूछा था कि चीनीसे भी अधिक मीठी वस्तु कौनसी है।

कालिदासका उत्तर था—प्रशंसा।

कयाधु कहने लगी— इन्द्र, चंद्र आदि देव तो आपसे थरथर कांपते हैं। आप जितेन्द्रिय हैं, ज्ञानी हैं। आपके जैसा वीर न तो कभी कोई हुआ है और न कभी होगा। मैं कितनी भाग्यशाली हूँ कि आप जैसा पति मुझे मिला है। मैं जानती हूँ कि निर्धारित कामको संपूर्ण किये बिना आप लौट ही नहीं सकते। क्या आज वनमें कुछ ऐसा प्रसंग हो गया कि जिसके कारण आपको वापस लौटना पड़ा ?

कयाधुने कुछ गर्म-गर्म पकौड़े आदि खिला दिए होंगे। राक्षसको ऐसा भोजन ही पसंद आता है।

जिसे सात्त्विक भोजन पसंद नहीं आता, वही राक्षस है।

हिरण्यकशिपु अपनी प्रशंसा सुनकर खिल उठा और कहने लगा—वैसे तो मैं अपने निश्चित कामको पूरा किए बिना नहीं लौटता, किंतु एक बाधा आ गई और अपशकुन भी हो गया सो वापस आ गया।

कयाधुने पूछा—कौन-सी बाधा आ पड़ी थी ? क्या अपशकुन हो गया था ?

हिरण्यकशिपुने कहा— मैं जिस वृक्षके नीचे बैठ कर तपश्चर्या कर रहा था, उसी वृक्ष पर बैठकर एक तोता 'नारायण-नारायण' करने लगा।

कयाधुको बड़ा आनंद हुआ कि चाहे जैसे भी सही, आज इन्होंने नारायणका नाम तो लिया। क्योंकि मेरे पति तो बड़े ही अभिमानी और नास्तिक हैं। यदि मैं उन्हें 'नारायण' की धुन (जप) करनेको कहूँगी तो वे नहीं मानेंगे। अत मुझे कोई युक्ति सोचनी पड़ेगी।

अपने पतिको पाप प्रवृत्तिमेंसे युक्तिसे बचा ले, और उसे पाप करनेसे रोके, वही सच्ची पत्नी है। पतिको धर्म—परमात्माके मार्गसे ले जाए, वह पत्नी ही धर्मपत्नी है। पतिको पत्नी ही धर्म और मोक्षके मार्ग पर ले जा सकती है।

कयाधुने सोचा कि यह बड़ा अच्छा अवसर है कि इस बहाने मैं अपने पतिसे बार बार भगवानका नामोच्चार तो करा सकूँगी। वह चाहती थी कि उसका पति सुधर जाए। भोजनादिसे निवृत्त होकर शयनके समय उसने पतिकी चरणसेवा करते हुए कहा कि भोजनके समय आपकी बातोंमें मेरा पूरा-पूरा ध्यान नहीं था। हाँ, तो वनमें क्या हुआ था ?

हिरण्यकशिपु—देवी, वहाँ एक तोतेने आकर नारायणके नामकी रट लगादी।

कयाधु – तोता क्या बोलता था ?

हिरण्यकशिपु—नारायण-नारायण।

कयाधु—भला, ऐसा कैसे हो सकता है ? क्या सचमुच वह तोता बोलता था ?

हिरण्यकशिपु—हाँ, वह नारायण-नारायण बोलता था।

बेचारा कामातुर पति ! पत्नीने युक्तिसे बार-बार यही बात उससे कहलाई।

कयाधुने इस प्रसंगसे लाभ उठकर अपने पतिके मुखसे नारायणका एकसौ आठ बार नामोच्चार करवाया।

साधारणतः पुरुष कामांधताके कारण स्त्रीके अधीन ही होता है। अतः पत्नी चाहे तो अपने पतिको सुधार सकती है। पत्नी यदि सुपात्र होगी तो अपने पतिको भगवत्-भजनमें लीन कर सकेगी।

माता-पिता (हिरण्यकशिपु-कयाधु) भगवानका नामोच्चार कर रहे थे कि उसी समय माताके गर्भमें प्रह्लादजीकी स्थापना हुई। अतः पिताके राक्षस होने पर भी उसका पुत्र प्रह्लाद महान् भगवद्भक्त हुआ।

कयाधु सगर्भा हुई और हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने बनमें चला गया। उसने वहां छत्तीस हजार वर्ष तक तपश्चर्या की। अन्नजलका भी त्याग कर दिया। इस कलियुगमें प्राण अन्न और जलमय है, किंतु उस सत्‌युगमें प्राण अस्थिमय था। अतः वैसी तपश्चर्या शक्य थी।

मात्र तप करनेसे ही मनुष्यका कल्याण नहीं हो सकता, वह शुद्ध नहीं हो सकता। तपके साथ साथ भावना और हेतु भी शुद्ध होने चाहिए।

हिरण्यकशिपुका हेतु अशुद्ध था। दुर्योधनने भी विष्णुयाग किया था, किंतु वह धन तो पापमय ही था।

यदि योगकी साधना करते हुए योगीका हेतु अशुद्ध हो, निश्चय उसका पतन ही होगा। केवल योगसाधनासे हृदय विशाल नहीं हो सकता। योगसिद्धिसे अन्य शक्तियाँ तो प्राप्त होंगी, किंतु हृदयकी विशालता नहीं प्राप्त हो सकती। ब्रह्मानुभूतिके विना हृदय विशाल नहीं हो सकता।

हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्या तो देवोंको सताने और भोगविलासके हेतु ही थी। गीताजीकी परिभाषामें कहें तो उसका तप, तामस तप था। अतः जो फल मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला।

हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वहाँ आए। वह तो मिट्टीके ढेरमें ढका हुआ-सा था। ब्रह्माजीने जल छिड़का तो वह बाहर आया। ब्रह्माजीने उससे पूछा कि उसकी क्या इच्छा है। तो हिरण्यकशिपुने कहा कि मुझे अजर-अमर बनाइए। ब्रह्माजीने कहा कि मरना तो सभीको है। जिसका भी जन्म हुआ है, उसे मरना तो पड़ता ही है। तू कुछ और माँग।

हिरण्यकशिपुने कहा—मुझे तो अमरत्वका ही वरदान चाहिए। अतः मुझे ऐसा वर दें कि मैं न तो दिनमें मरूँ और न मैं रातमें, न जड़से मरूँ, न चेतनसे; न तो मैं शस्त्रसे मरूँ और न अस्त्रसे।

ब्रह्माजीने सोचा कि चूँकि इसने कठिन तपश्चर्या की है सो वर तो देना ही पड़ेगा। उन्होंने उसे अमरत्वका वर दे दिया।

अब हिरण्यकशिपु इतना शक्तिशाली हो गया कि उससे सभी देव पराभूत हो गए।

देवोंने दुःखके मारे प्रभुसे प्रार्थना की। भगवान्‌ने कहा कि जब भी मेरे प्रिय वैष्णव व्यथित होते हैं, मैं अवतार लेता हूँ।

यदि पापी दुःखी होता हो तो भगवान् उसकी उपेक्षा कर भी देंगे और अवतार नहीं भी लेंगे। पर वे अपने भक्तोंकी उपेक्षा कभी नहीं कर सकते। भक्तों पर विपत्ति आने पर उन्हें अवतार लेना ही पड़ता है। देवोंको भगवान्‌ने आश्वासन दिया कि जब कभी हिरण्यकशिपु अपने पुत्रसे शत्रुता करेगा और उसकी हत्याके लिए तत्पर होगा, तब मैं अवतार लूँगा और हिरण्यकशिपुका वध करूँगा।

दूसरी तरफ कयाधुके गर्भसे प्रह्लादका जन्म हुआ और वह दिनोंदिन बड़ा होने लगा। सभीको इससे आनंद-आह्लाद मिलता था, अतः उसका नाम प्रह्लाद रखा गया।

दैत्योंके गुरु थे शुक्राचार्य। उनके शंड और अमर्क नामक दो पुत्र थे। जब प्रह्लाद पाँच वर्षके हुए तो हिरण्यकशिपुने शंडामर्कको बुलाकर उनसे कहा कि मेरे इस पुत्रको राजनीतिकी शिक्षा दो।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, वैसे तो शंडामर्क प्रह्लादजीको राजनीति पढ़ाते थे, किंतु प्रह्लाद तो गर्भवासके समयसे ही भक्तिके रँगसे रंगे हुए थे।

प्रह्लादको भगवान् वासुदेवसे स्वाभाविक प्रीति थी। श्रीकृष्णके अनुग्रहरूप विग्रहने उनका हृदय इस प्रकार आकर्षित कर लिया था कि उन्हें जगत्से कुछ भी लगाव नहीं रह गया था।

वैसे तो भक्तिका रंग शीघ्र लगता नहीं है, पर जब एक बार लग जाता है तो फिर सांसारिक प्रवृत्तियोंके प्रति वैराग्य हो जाता है।

मीराबाईने कहा है कि मेरे कृष्णका रंग श्याम है और श्याम रंग पर किसी और रंगका प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रह्लादजी जन्मसे ही भक्तिके रँगमें रंगे हुए थे। वे महावैष्णव थे। वे गुरुजीकी शिक्षा सुनते तो थे, किंतु राजनीतिका चिंतन वे जरा भी नहीं करते थे।

सच्चे ज्ञानी भक्तका यही तो लक्षण है कि जब तक देहभान है उसके व्यवहारमें क्षति नहीं आती।

गुरुजीने सोचा कि यह राजपुत्र तो बड़ा सयाना है, अतः उसकी शिक्षासे प्रभावित होकर उसके पिता उसे कुछ-न-कुछ पुरस्कार अवश्य देंगे। वे प्रह्लादको लेकर राजसभामें आए। प्रह्लादने पिताजीको प्रणाम किया, तो पिताजीने बालकको उठाकर गोदमें बिठाकर प्यार किया और पूछा—बेटे, तू गुरुजीके घर कल पढ़ने गया था, तो कलकी पढ़ाई तुझे याद है या नहीं! जो भी पाठ (प्रकरण) तुझे अच्छा लगा हो, वह बोल जा।

प्रह्लादजीने सोचा कि पिताजी उत्तम प्रकरणकी बात पूछते हैं और इधर गुरुजीने तो मारकाटकी बात ही सिखलायी है। वह मैं कैसे बता सकता हूँ? अतः उन्होंने पिताजीको अच्छी-सी बात बताई—

हित्वाऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

भा. ७-५-५

अँधियारे कुएँके समान यह घर ही अपने अधःपतनका मूल कारण है। जीवोंके लिए यही श्रेयस्कर है कि वे गृहत्याग करके वनवासी बनें और वहाँ भगवान् श्रीहरिका आश्रय ग्रहण करें।

प्रह्लाद बोले—पिताजी, अनेक जन्मोंके अनुभवसे मैं यह कह रहा हूँ कि यह जीव कई बार स्त्री, पुरुष, पशु, पंछी बना है। हजारों जन्मोंसे विभुसे विभक्त बना हुआ यह जीव लौकिक सुखोपभोगमें लीन है। फिर भी वह अतृप्त ही है। तृप्ति भोगसे नहीं, त्यागसे ही प्राप्त होती है। संसार तो दुःखका सागर है। प्रत्येक जीव व्यथित है। पाप और पुण्यके समान होने पर यह मानवदेह प्राप्त होती है। जैसे पाप भोगना पड़ता है वैसे ही पुण्य भी भोगना पड़ता ही है। संसार प्रतिक्षण परिवर्तनशील है।

पिताजी, आज तक मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ कि स्वार्थ और कपटके सिवाय इस जगत्में और कुछ भी नहीं है। फिर भी जीव अविवेकी है। निःस्वार्थ प्रेमी मात्र परमात्मा ही हैं, अन्य सभीका प्रेम स्वार्थ और कपटसे भरा हुआ है। संसारमें रहकर कपट और छल करना ही पड़ता है। जहाँ कोई वासना आई कि छल-कपट करना ही पड़ता है।

पति-पत्नीके प्रेममें भी स्वार्थ और कपट होता ही है। जीव कितना स्वार्थी और कपटी है। मुझे एक सन्नारी मिली, जो बता रही थी कि उसकी सासजीने उसे चेतावनी दी है कि तीन पुत्रियां काफी हैं। अगर चौथी बार भी उसने पुत्रीको जन्म दिया तो किसी भी तरह उसे घरसे निकाल बाहर किया जाएगा।

वैसे तो पुत्रका जन्म हो या पुत्रीका, किसीके अपने बसकी बात तो नहीं है। पुत्र एक ही कुलका उद्धार करता है जब कि सुयोग्य पुत्री तो पिता और पति दोनोंके कुलोंका उद्धार करती है।

दुर्भाग्यवश यदि पत्नी बीमार पड़ जाए, तो वह चार-पाँच हजारका खर्च कर देगा, दो—चार वर्ष प्रतीक्षा भी करेगा। फिर भी उसकी बीमारी न ठीक हो पाए, तो वह ठाकुरजीकी मनौती रखेगा कि इसका कुछ हो जाए तो अच्छा हो। उसके कुछ हो जानेका मतलब मर जाना। वह सोचता है मेरी आयु भी अधिक नहीं है। ४८ वां वर्ष ही तो अभी शुरू हुआ है। मेरा कारोबार भी ठीक-ठीक ही चल रहा है, अतः दूसरी पत्नी तो मिल ही जाएगी।

पति-पत्नीके प्रेममें भी कपट है। पत्नी या पति एक दूसरेके लिए दुःखदायी हों तो वे सोचते हैं कि यह मर जाए तो कितना अच्छा हो।

सुर नर मुनि सबकी यह रीती,
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।

पति और पत्नी एकदूसरेको सुख-सुविधा देते हैं, अतः एक दूसरेको प्रिय लगते हैं।

उनमेंसे किसीने भी दुःख देना शुरू किया कि उससे घृणा होने लगेगी। जगत्में स्वार्थ और कपटके सिवा और कुछ भी नहीं है।

इस प्रकारकी बातें ऋषि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयीकी बीच हुई थीं।

ऋषि याज्ञवल्क्यने संन्यासग्रहण करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी और कात्यायनीसे कहा—मैं अब संन्यासी होने जा रहा हूँ। मेरी संपत्ति तुम दोनोंमें समान रूपसे बांट देता हूँ कि जिससे कभी तुम दोनोंके बीच कोई झगड़ा न होने पाए।

मैत्रेयी तो ब्रह्मवादिनी थीं। उन्होंने पतिसे पूछा—इस धनसंपत्तिसे क्या मुझे मोक्ष प्राप्त होगा? मैं अमर हो पाऊँगी?

याज्ञवल्क्य—अरे, धनसे भी कभी मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है क्या? हाँ, इससे तुम्हें सुख-सुविधा-भोगके पदार्थ मिल सकेंगे। अतः तुम आनंदसे जीवन बिता सकोगी।

मैत्रेयी- जिस धनसे मोक्षकी प्राप्ति न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगी? आप इसे कात्यायनीको ही दे दें।

मैत्रेयीकी जिज्ञासासे प्रभावित होकर मुनिने उसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया और मोक्षके साधन बतलाए।

याज्ञवल्क्यने कहा—हे मैत्रेयी। अपने स्वयंके सुखके हेतु ही घर, पुत्र, पत्नी आदि प्रिय लगते हैं। वैसे प्रिय तो मात्र आत्मा ही है—

आत्मा वै सर्वेषां प्रियः।
न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।
न वा अरे जायायाः कामाय जाया प्रिया भवति
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।
न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति॥

पतिसे पत्नीका जो प्रेम है वह पतिकी कामनापूर्तिके लिए नहीं, किंतु स्वयंकी कामनापूर्तिके लिए है। इसी प्रकार पतिका और माता-पिताका पुत्रप्रेम भी स्वयं अपनी कामनापूर्तिके लिए ही है। पत्नी पतिसे प्रेम करती है क्योंकि पति उसका जीवनयापन करता है। पति होगा तो मैं जी सकूंगी—इसी आशा और अपेक्षासे पत्नी पतिसे प्रेम करती है। इसी प्रकार पति भी मात्र पत्नीसे उसीकी खातिर प्रेम नहीं करता है। वह उससे प्रेम इसलिए करता है क्योंकि वह उसकी इच्छाएं पूर्ण करती है। मातापिता पुत्रसे इसलिए स्नेह रखते हैं, क्योंकि उन्हें आशा है कि वह बड़ा होकर उनका पालन करेगा। मनुष्य कभी मनुष्यके साथ प्रेम नहीं करता, अपितु अपने स्वार्थके साथ ही प्रेम करता है।

प्रह्लादजीने कहा—कई जन्मोंके अनुभवसे मैं यह कहता हूं कि संसारमें किसीको भी सच्ची शांति प्राप्त नहीं है।

घरमें अच्छी तरहसे भजन नहीं किया जा सकता। अतः भजन घरमें नहीं, वनमें जाकर करना है। एकांतमें जाकर नारायणकी आराधना करनी चाहिए।

समाजसुधारकी भावना वैसे तो ठीक है किंतु इसके साथ-साथ अहंकार भी उत्पन्न होता है और अहंकार अपने साथ सभी अवगुणोंको लेकर आता है। समाजको कोई भी सुधार नहीं सका है। अतः तुम यही भावना करो कि मैं अपने जीवन और मनको ही सुधारूंगा। साधारण मनुष्य जगत्‌को नहीं सुधार सकता। शंकराचार्य या वल्लभाचार्यका ही यह काम है।

प्रह्लादजीकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधित हो गया। उसने शंडामर्कको उलाहना दिया कि मेरे बालकको उसने यह कैसा उपदेश दिया है, यह कैसी शिक्षा दी है।

शंडामर्क—मैंने तो ऐसी शिक्षा उसे कभी दी ही नहीं।

हिरण्यकशिपु—देखो, देव मुझसे डरते हैं। अतः वे सूक्ष्म रूप धारण करके विष्णुका प्रचार करते हैं, अतः उनसे सावधान रहना।

शंडामर्कने प्रह्लादजीसे पूछा—मैंने जो बातें तुम्हें कभी पढ़ाई ही नहीं, वह तुम अपने पिताजीके समक्ष क्यों बोले ?

प्रह्लादजी— गुरुजी, जीव न तो किसीके कहने पर भक्ति करता है और न ईश्वरकी ओर गति ही करता है। वैसे तो संतकृपा और सत्संगके बिना भक्तिका रंग नहीं लगता। किंतु प्रभुकृपासे भी भक्तिका रंग लग जाता है।

कुछ दिनोंके पश्चात् हिरण्यकशिपुने फिर प्रह्लादसे पूछा— बेटे, गुरुजीसे इन दिनों तूने जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमेंसे कुछ अच्छी बातें मुझे भी तो बता।

प्रह्लाद कहने लगे—पिताजी, विष्णु भगवान्की भक्तिके नौ प्रकार हैं। भगवान्के नाम-गुण-लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, उनके स्वरूप-नाम आदिका स्मरण, चरणसेवा, पूजा-अर्चा, वंदन दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। भगवान्के प्रति समर्पण भावसे यह नवधा भक्ति करना ही सर्वोत्तम अध्ययन है, ऐसा मैं मानता हूँ।

नवधा भक्तिसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। प्रभुकी प्रसन्नतासे जीवन सफल होता है। मात्र भोगोपभोगसे शांति नहीं मिलती।

पुत्रकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधित हो गया और उसे उसने अपनी गोदसे फेंक दिया। उसने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस बालकको मारो। यह मारे जाने योग्य है। यह मेरे शत्रुके नामका भजन करता है। आज्ञा पाते ही दैत्यसेवक प्रह्लादको मारने दौड़े।

प्रह्लादकी दृष्टि तो दिव्य थी। उन्हें तो तलवारमें भी कृष्णका दर्शन हुआ और जिसके हाथमें तलवार थी, उस दैत्यमें भी कृष्णका दर्शन हुआ।

संसारमें बहुतसे सुन्दर पदार्थ हैं, किंतु सभीको भगवत्भावसे देखो। जगत्के काम करते हुए भी ईश्वरसे संबंध बनाए रहो। बालककी अपेक्षा बालकृष्णसे संलग्न रहोगे तभी कृष्ण मिलेंगे और साथ ही लक्ष्मी भी। लौकिक नामरूपमें मनका फँसना आसक्ति है किंतु श्रीकृष्णके नामरूपमें फँसना भक्ति है। लौकिक नामरूपमें फँसा हुआ मन श्रीकृष्णके नामरूपमें लीन हो जाए, तभी मुक्ति मिलती है और मनुष्यका उद्धार होता है।

स्वरूपासक्तिके बिना भक्ति फलवती नहीं हो पाती। सांसारिक विषयोंके प्रति प्रेम होना आसक्ति है। भगवान्के प्रति प्रेम होना भक्ति है। संसारासक्ति बंधनकर्ता है, भगवदासक्ति मुक्तिदाता है।

शुकदेवजी सावधान करते है।

राजन् ! आँखोंमें कामको स्थान मत दो और मनमें स्वार्थको स्थान मत दो। जगत्को समतासे देखो। अगर आँखोंमें खराबी है तो जगत् भी खराब ही दीखेगा। संसार पर प्रीति होने पर भक्ति नहीं हो सकती। प्रभुके स्वरूपमें आसक्ति ही भक्ति है। यदि भक्ति हो तो मुक्ति भी मिल सकती है। भगवान् श्रीकृष्णके सिवाय अन्य कोई भी वस्तु सुँदर नहीं है।

दो व्यक्ति फूल खरीदनेके लिए बाजारमें गए। एकको भगवान्की पूजाके लिए फूल लेना था और दूसरेको पत्नीकी वेणीके लिए। पहला व्यक्ति भक्त है और दूसरा आसक्त। पहलेके हृदयमें परमात्माका शृंगार करनेकी भावना है, भक्ति है। दूसरा व्यक्ति पत्नीका शृंगार करना चाहता है, उसके मनमें सांसारिक विलासकी आसक्ति है। दोनों व्यक्तियोंकी क्रिया तो एक ही है - फूलोंकी खरीद। फिर भी एककी क्रियामें भक्ति है और दूसरेकी क्रियामें आसक्ति।

दैत्य प्रह्लादको पीटने लगे फिर भी उनको तो जरा भी दुःख नहीं हुआ। प्रह्लादकी भक्ति दिव्य थी, वे निर्भय थे। उन्हें मारनेके हेतु कई उपाय किए गए, फिर भी वे तो मरे ही नहीं। हिरण्यकशिपुको लगा कि शायद वह जादूगर है। उसने आज्ञा दी कि प्रह्लादको अंधेरेमें बंद कर दो, वहाँ अन्न-जलके अभावसे मर जाएगा।

प्रह्लादजीको बंदी बना दिया गया, फिर भी उन्हें किसी तरहका डर नहीं लगा। उन्होंने सोचा कि चलो अच्छा ही हुआ। अब मैं यहाँ शाँन्तिपूर्वक भजन-कीर्तन कर सकूँगा।

सुखमें भगवत्कृपाका अनुभव करनेवाला सामान्य वैष्णव है, किंतु जो दुःखमें भी भगवत्कृपाका अनुभव करे, वह तो महान् वैष्णव है। दुःखमें भी जो सेवा-स्मरण न छोड़े, वही महान् वैष्णव है।

देवकी-वसुदेवको कितना कष्ट सहना पड़ा, फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा। हम तो छोटेसे दुःखसे भी घबराहट महसूस करने लगते हैं और सोचते हैं कि मैंने इतना तो सेवा-स्मरण किया, फिर भी भगवान्ने कष्ट ही दिया।

अतिशय दुःखदायी अवस्थामें भी प्रह्लाद यही सोचते हैं कि मेरे भगवान् तो मेरे संग ही हैं फिर डरना कैसा ?

भयाक्रांतसे ईश्वर दूर रहते हैं। गीताजीमें कहा है कि मैं तेरे निकट हूँ, मैं तुझे देखता हूँ, फिर भी तू मुझे देख नहीं पाता।

अँधेरेमें भी प्रह्लाद भयभीत नहीं हुए। वे कृष्णका कीर्तन करने लगे। उन्हें आज अपनी देहका भान भी नहीं था।

भगवत्प्रेममें जिसे देहभान नहीं रहता, उसे संसारके कोई भी विकार प्रभावित नहीं कर सकते।

आज ठाकुरजीने लक्ष्मीजीसे पूछा कि जगत्में कोई जीव भूखा तो नहीं रह गया है न ? लक्ष्मीजीने कहा कि आपका भक्त प्रह्लाद कैदमें भूखा पड़ा हुआ है। तो भगवान्ने कहा—देवी, उसके लिए शीघ्र ही प्रसाद भेजो। लक्ष्मीजाने सेवकोंसे कह कर स्वादिष्ट प्रसाद भेजा। लक्ष्मीने प्रह्लादको अपना पुत्र मानकर अपना लिया। पार्षदोंने प्रह्लादसे कहा कि तुम्हारे लिए लक्ष्मीजीने यह प्रसाद भेजा है। प्रह्लादने प्रणाम किया। उसने सोचा कि प्रभुकी मुझ पर कितनी कृपा है, उन्हें मेरी कितनी चिंता है जो इधर कारावासमें भी मेरे लिए उन्होंने प्रसाद भेजा।

हिरण्यकशिपुके सेवकोंको आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि हम यहाँ चौकसी कर रहे हैं फिर भी प्रह्लाद भोजन कैसे कर रहा है ? यह जादूगर तो नहीं है कहीं ? उन्होंने जाकर हिरण्यकशिपुसे बात कही। उसने कारावासमें जाकर देखा तो प्रह्लाद प्रसाद खा रहा था। उसने पुत्रसे पूछा—प्रह्लाद, सच-सच बतला कि यह भोजन तुझे किसने दिया ? प्रह्लादने कहा—माताके गर्भमें जिसने मेरा पोषण किया था, वही यहाँ पर भी मेरा पोषण कर रहा है।

पिताजी, यह कारावासका कमरा तो फिर भी बड़ा है, जब कि गर्भवास तो कितना छोटा होता है। वहां जिसने मेरा पोषण किया, मेरी रक्षा की, वही यहाँ भी मेरा पोषण करेगा, मेरी रक्षा करेगा।

हिरण्यकशिपु सोचने लगा कि यह तो किसी भी उपायसे मरता नहीं है। कहीं मुझे मारनेके लिए ही तो यह नहीं आया है ? वह घबड़ा कर शंडामर्कके पास आया।

राजाका निस्तेज मुख देख कर शंडामर्कने आश्वासन देते हुए कहा—पाँच वर्षका एक छोटा-सा बच्चा भला तुम्हें कैसे मार सकता है ? हम उसे-वरुणपाशसे बाँध देंगे। और वे वरुणपाशसे प्रह्लादको बाँध कर घर वापस आ गए।

प्रह्लादकी दृष्टि तो ऐसी मंगलमयी हो गई थी कि उन्हें तो सभी जगह श्यामसुन्दरके ही दर्शन होते थे।

एक बार गुरुजी कहीं बाहर गए हुए थे, तो शिष्योंने गेंद खेलनेकी सोची। प्रह्लादने उनसे कहा कि मैं आज तुम्हें एक नया खेल खिलाऊँगा। उन्होंने उन बालकोंको भागवतधर्मका उपदेश दिया।

प्रह्लादने कहा—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥ भा. ७-६-१

मित्रो, इस संसारमें मानव-जन्म अति दुर्लभ है। इसके सहारे तो परमात्माकी भी प्राप्ति हो सकती है किंतु कोई यह जान नहीं पाता कि इसका अन्त कब आनेवाला है। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह यौवन और वृद्धावस्थाका विश्वास न करे और बाल्यावस्थासे ही प्रभुप्राप्तिके लिए साधन करे।

प्रह्लादका चरित्र भी हमें यही सिखाता है कि बाल्यावस्थासे ही ईश्वरभजनमें लीन हो जाना चाहिए। मातापिताको चाहिए कि अपनी संतानोंमें वे धार्मिक संस्कारोंको उत्पन्न करें।

वृद्धावस्थामें देहकी सेवा तो हो सकती है किंतु देवकी सेवा नहीं।

मानवशरीरकी प्राप्ति भोगोपभोगके लिए नहीं हुई है, अपितु इसकी प्राप्ति तो भगवद्-भजनके द्वारा प्रभुप्राप्तिके लिए ही हुई है।

शरीरके नाशवान् होने पर भी मनुष्यजन्म दुर्लभ है। कारण यह है कि वह जन्म इच्छित वस्तु दे सकता है। इस अनित्य और नाशवान् शरीरसे नित्य वस्तु—भगवानकी प्राप्ति हो सकती है।

यह मानवशरीर बड़ा कीमती है। कई बार जन्म-मरणकी पीड़ा सहता हुआ जीव इस शरीरमें आया है।

ईश्वर नित्य है और शरीर अनित्य। किंतु इसी अनित्यसे (शरीरसे) ही नित्यकी (ईश्वरकी) प्राप्ति हो सकती है, अतः मानवदेहकी भी बड़ी भारी महिमा है।

कहते हैं कि कभी मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी होती थी। आज तो वैसी बात नहीं है। आज तो आधी आयु निद्रावस्थामें, चौथे भागकी आयु बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें बीत जाती है। बाल्यावस्था अज्ञानमें और कुमारावस्था खेलकूदमें बीत जाती है। वृद्धावस्थाके वर्ष भी निरर्थक ही होते हैं क्योंकि शारीरिक क्षीणताके कारण वृद्धावस्थामें कुछ भी काम नहीं हो पाता। यौवनके वर्ष कामभोगमें गुजर जाते हैं। तो अब कितने कम वर्ष शेष रहे ? और इन शेष वर्षोंमें आत्मकल्याणकी साधना कब और कैसे होगी ?

अतः व्यक्तिको चाहिए कि वह हमेशा आत्मकल्याणकी प्रवृत्ति करे। कहा गया है—

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृह यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

जब तक यह शरीररूपी गृह स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं हो पाया है, जब तक इन्द्रियोंकी शक्ति भी क्षीण नहीं हुई है, आयुष्यका क्षय भी नहीं हुआ है, सयाने व्यक्तिको चाहिए कि तब तक वह अपने आत्मकल्याणका प्रयत्न कर ले। अन्यथा घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेसे क्या लाभ होगा?

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय मयाश्रितः।
शरीरपौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम्।।

भा. ७-६-५

हमारे मस्तिष्कको कई प्रकारके भय घेरे हुए रहते हैं। अतः यह शरीर, जो भगवत्-प्राप्तिके लिए पर्याप्त है, रोगग्रस्त बनकर मृत्युवश हो जाए, उसके पहले ही आत्मकल्याण करनेका प्रयत्न बुद्धिमानोंको करना चाहिए।

वैसे तो मनुष्य दुःख नहीं मांगता, फिर भी वह अचानक आ धमकता है। कोई ऐसी मनौती तो मानता नहीं कि मुझे बुखार आए तो मैं सत्यनारायणकी कथा कराऊँ। फिर भी बुखार तो आता ही है। प्रयत्नके बिना भी जिस प्रकार प्रारब्धानुसार दुःख आता है उसी प्रकार सुख भी आता है। सुख और दुःख दोनों प्रारब्धके अधीन हैं। प्रारब्धके अनुसार ही वे प्राप्त होते हैं। इसके लिए प्रयत्न अनावश्यक है। पूर्वजन्मोंके कर्मोंका फल है प्रारब्ध। दरिद्र संपन्न हो जाता है और संपन्न दरिद्र। प्रारब्धानुसार जो मिलने जा रहा है, उसके लिए प्रयत्न अनावश्यक है। अतः सांसारिक सुखभोगोंकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न न करके परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए ही प्रयत्न करो। परमात्माको पानेके लिए ही प्रयत्न करो।

प्रारब्धसे ही जो प्राप्त होने जा रहा है, उसके लिए तो सब प्रयत्न करते हैं, किंतु जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। परमात्माके लिए कोई कुछ भी नहीं करता। सत्कर्ममें प्रयत्न प्रधान है, प्रारब्ध नहीं। सत्कर्ममें बाधा डालनेकी शक्ति प्रारब्धमें नहीं होती। मनुष्यकी अपनी दुर्बलताके कारण ही प्रभुभजनमें बाधा उपस्थित होती है।

बालकोंने प्रह्लादजीसे पूछा--यदि हम वृद्धावस्थामें ही भजन करें तो?

प्रह्लादजीने उनको समझाया कि भजन यौवनमें ही हो सकता है। वृद्धावस्थामें शारीरिक दुर्बलताके कारण ईश्वरकी आराधना नहीं हो पाती, वृद्धावस्थामें देहकी भक्ति तो हो सकती है, किंतु देवकी नहीं।

बालकोंने पूछा—तो फिर हम अभीसे भक्ति क्यों करें? युवावस्थामें ही कर लेंगे?

प्रह्लाद कहते हैं—यौवनमें मद उत्पन्न होता है। युवावस्थामें मनुष्य इन्द्रियोंसे प्यार करता है। वह इन्द्रियोंके अधीन हो जाता है। यौवनमें वह कई प्रकारके मोहमें फँस जाता है। अर्थोपार्जन और इन्द्रियोंके लालनमें ही उसकी आयु नष्ट हो जाती है। यों तो आत्मा इन्द्रियोंका स्वामी है, पर तो भी मनुष्य इन्द्रियोंका दास बन जाता है।

यह बात सर्वसामान्य है। बड़े-बड़े विद्वान् भी सारा दिन धनके पीछे मारे मारे फिरते हैं और रातको कामान्ध बन जाते हैं। विद्याका फल तो जन्ममृत्युकी व्यथासे मुक्ति और परमात्माकी प्राप्ति ही है। विद्याका फल धन या प्रतिष्ठा नहीं है।

दैत्य बालकोंने पूछा—हम परमात्माको प्रसन्न कैसे करें ?

प्रह्लादने कहा—सभीमें एक परमात्मा ही का दर्शन करो। जगत्‌को प्रसन्न करना कठिन है, पर कृष्णको प्रसन्न करना सरल है—

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यथा तुष्यत्यधोक्षजः॥
भा. ७-६-२४

इसलिए तुम अपने दैत्यत्व, आसुरी संपत्ति, आसुरी भावका त्याग करके सभी प्राणियोंके प्रति दया करो। प्रेमसे उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान् प्रसन्न होंगे।

भगवान् जब कृपा करते हैं तो मनुष्यकी पाशवी बुद्धि नष्ट हो जाती है—

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते।

बालकोंने पूछा—प्रह्लाद, हमें भगवान् दिखाई तो देते नहीं, तो फिर उनकी आराधना हम कैसे करें ?

प्रह्लादजी—भगवान्‌का ध्यान करते हुए तुम तन्मय हो जाओ। जिसे जगत् नहीं दीखता, उसे भगवान् दिखाई देते हैं।

प्रह्लादने दैत्यबालकोंको समझाया कि मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है, वह मेरा अपना नहीं, अपितु नारदजीका है।

बालकोंने पूछा—प्रह्लाद, तेरी आयु तो कितनी छोटी-सी है, फिर भी तू नारदजीसे कैसे मिल सका ?

प्रह्लादजीने कहा—जब मेरे पिताजी मंदराचल पर्वत पर तप करने गए थे, तब इन्द्रादि देवोंने दानवों पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र मेरी माताको बंदिनी बना कर ले जा रहे थे कि मार्गमें नारदजी मिल गए। उन्होंने इन्द्रसे कहा कि इस कयाधुको मुक्त कर दो, क्योंकि उसके गर्भमें प्रभुका परम भक्त समाया हुआ है। इन्द्रने मेरी माताको मुक्त कर दिया।

मेरी माता नारदजीके आश्रममें गई। मैं जब गर्भवासी था, तब माताने संतोंकी बड़ी सेवा की। वह कथाकीर्तनमें जाती थी। वहाँ उसे भी कभी-कभी नींद आ जाती थी, किंतु मैं तो बड़ी तत्परतासे सुनता रहता था।

यह निद्रादेवी कथाकीर्तनमें बाधा उपस्थित करती है।

कुंभकर्णकी पत्नी निद्रादेवीने विधवा होने पर रामचंद्रके पास आकर पूछा—अब मैं कहाँ जाऊँ ? रामचन्द्रजीने कहा कि वह जहाँ चाहे वहाँ रह सकती है । तो निद्रादेवीने कहा कि मैंने निश्चय कर लिया है कि जहाँ आपका कथाकीर्तन होता होगा, वहीं जाकर अपना आसन जमाऊँगी ।

पंचप्राणको कानमें रखकर कथा सुनो ।

मैं तुम्हें और तो क्या कहूँ ? मेरे प्रभुको प्रसन्न करनेका साधन तो कीर्तन ही है ।

एक बार मीराबाई अन्य भक्तोंके साथ कीर्तन कर रही थी । कई लोगोंका ताल ठीक न था । जब शरीरका ही भान नहीं रह पाता, तो तालकी तो बात ही क्या ? किसीने बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा, 'तालसे गाओ ।' अगले दिन मीराबाईने यह पढ़ा तो उन्होंने उसे रद्द करके लिखा, 'प्रेमसे गाओ ।' कीर्तनमें तालकी अपेक्षा प्रेम प्रधान है ।

कीर्तन करनेसे मनकी अशुद्धि धुलती है और हृदय विशुद्ध होता है ।

प्रह्लाद बालकोंको समझा रहे हैं--नाम ही ब्रह्म है । ईश्वरका निर्गुण स्वरूप अति सूक्ष्म है । मन, बुद्धि जब तक अति सूक्ष्म नहीं हो पाते, तब तक ईश्वरके निर्गुण स्वरूपका अनुभव नहीं हो सकता । ईश्वरका सगुण स्वरूप अतिशय तेजोमय है । प्रभुके सगुण स्वरूपका साक्षात्कार करनेकी शक्ति मनुष्यमें नहीं है । अर्जुनने कहा था कि 'भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।' अर्थात् आपका यह रूप देख कर मेरा मन भयसे बहुत व्याकुल हो रहा है ।

नामब्रह्मका दर्शन और अनुभव तो सभी कर सकते हैं । कीर्तनमें तालियाँ बजानेसे नादब्रह्म होता है । नादब्रह्म और नामब्रह्म एक होने पर परब्रह्मका प्राकट्य होता है । नामब्रह्मके साथ नादब्रह्मका संयोग होने पर प्रभुको प्रकट होना ही पड़ता है ।

तालियाँ बजा-बजा कर कीर्तन करो । प्रभु सभीको देखते हैं । कीर्तनमें जो तालियाँ नहीं बजाता है, उसके लिए भगवान् सोचते हैं कि मैं मूर्ख ही हूँ जो मैंने इसे हाथ दिए किंतु अगले जन्ममें मैं अपनी भूल सुधार लूँगा और उसे दो और पाँव दूंगा । प्रभुभजनमें तालियाँ बजानेमें शर्म क्यों ? पापसे शर्म करो । पाप करनेमें हेठी है । जो प्रभुभजनमें तालियाँ बजानेसे कतराता है, उसे अगले जन्ममें परमात्मा हाथकी जगह दो पाँव और दे देते हैं । अतः प्रेमसे तालियाँ बजाकर संकीर्तन करो ।

प्रह्लादजीने बालकोंको आज्ञा दी—प्रेमसे कीर्तन करो ।

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ भा. ७-७-५२

भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रत आदि ही पर्याप्त नहीं हैं । वे तो केवल निष्काम प्रेमभक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं । अन्य सब कुछ तो विडंबनामात्र हैं । अतः भक्ति करो ।

प्रह्लादजी सभीसे कीर्तन-मंत्र जप कराने लगे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण. कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

यह मंत्र कलिसंतरण उपनिषद्का है। यह महामंत्र है। इसके जप करनेके लिए किसी भी विधिकी आवश्यकता नहीं है। इस मंत्रका जप चाहे जिस स्थितिमें और स्नान किये बिना भी हो सकता है। रास्तेमें चलते-चलते जूतों सहित भी इसका जप किया जा सकता है।

सभी बालक तालियाँ बजाते हुए 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे' का कीर्तन करने लगे।

कथामें कीर्तन भी होना चाहिए। कीर्तनके बिना कथा परिपूर्ण नहीं हो पाती। कीर्तन से पाप जलते हैं, हृदय विशुद्ध होता है, परमात्मा हृदयमें आ बसते हैं। अतः कीर्तन प्रेमसे करो।

प्रह्लादजी तन्मय हो गए और राधाकृष्णका दर्शन करके थै थै नाचने लगे। बालक भी प्रभुभजनमें मग्न होकर नाचने लगे। इतनेमें शंडामर्क आए। उन्होंने सोचा कि हिरण्यकशिपु-ने कहीं यह जान लिया तो बड़ा अनर्थ होगा। उन्होंने प्रह्लादसे कहा कि यह क्या ऊधम मचा रहे हो? बंद करो यह भजन, परंतु उनकी कौन सुनता? मन तो श्रीकृष्णसे जा लगा था, तो प्रह्लादने भी नहीं सुना। शंडामर्कने दौड़ कर प्रह्लादका हाथ पकड़ा। प्रह्लादका शरीर तो दिव्य था। ज्यों ही शंडमार्कने उनका स्पर्श किया, तो वे भी नाचने लगे।

उसी दिन हिरण्यकशिपुने सोचा कि मैं भी तो जरा देखूँ कि गुरुजी कैसी शिक्षा दे रहे हैं? उसने वहाँ एक सेवक भेजा। सेवकने वह समूहनृत्य देखा तो सोचमें पड़ गया। नामसंकीर्तनमें लीन होकर गुरुजी और सभी बालक नाच रहे थे। सेवकने सोचा कि राजाको तो यह बात अच्छी नहीं लगती, अतः यदि वे जान जाएँगे तो गुरुजीकी हत्या करवा देंगे। सेवकने गुरुजीका हाथ पकड़ कर उन्हें आसन पर बिठलानेका प्रयत्न किया किंतु गुरुजीके स्पर्शसे वह भी नाचने लगा। वह भूल ही गया कि वह इधर क्यों आया था। सत्संगकी महिमा ही न्यारी है।

सेवकको लौटनेमें देरी हुई तो राजाने दूसरा सेवक भेजा। उसने भी देखा कि वहाँ सबके सब संकीर्तनमें पागल होकर नाच रहे हैं। उस भजनमंडलीमेंसे किसी व्यक्तिके स्पर्शसे वह भी नाचने लगा।

इस प्रकार राजा सेवक भेजता गया और वे भी सब उधर जाकर नाचने लगे। राजाने सोचा कि यह क्या रहस्य है? वह स्वयं वहाँ दौड़ता हुआ आया। उसने देखा कि गुरुजी, बालकगण और सभी सेवक नाम-संकीर्तनमें लीन होकर नाच रहे हैं। इस दृश्यको देखकर राजा आगबबूला हो गया। उसने उन नाचनेवालोंमें से किसी एकका हाथ पकड़ कर नीचे बिठा दिया। राजाको स्पर्शसे कुछ भी न हुआ क्योंकि वह तो बिजलीके बिगड़े हुये बल्ब जैसा था। बिजलीका गोला यदि चालू हालतमें हो, तभी बिजलीका प्रवाह असर कर पाता है, अन्यथा नहीं।

भजन-कीर्तन रुक गया। गुरुजीने राजाको सारी बात बताई। तो वह क्रोधित होकर प्रह्लादसे कहने लगा--अब भी तू मेरे शत्रु विष्णुका कीर्तन कर रहा है। जगत्में मेरे सिवाय कोई ईश्वर है ही नहीं। दुष्ट, आज मैं तुझे मार डालूँगा।

मेरा यह बालक स्वयं तो सुधरता है नहीं और अन्य बालकोंको भी बिगाड़ रहा है। ऐसा सोच कर राजाने लपक कर प्रह्लादका हाथ पकड़ा। राजा पर पुत्रकी भक्तिका रंग चढ़ नहीं पाया। जब गोला ही बेकार हो तो फिर विद्युत्शक्ति ही क्या करेगी ?

राजाने प्रह्लादको धरती पर पटका तो धरतीमाताने उसे अपनी गोदमें उठा लिया।

प्रह्लादजीने पिताको प्रणाम किया। तो हिरण्यकशिपुने कहा कि तू मुझे प्रणाम तो करता है किंतु मेरा कहा तो मानता नहीं है। बता तेरा रक्षक विष्णु है कहाँ ?

प्रह्लादने कहा—पिताजी, मेरे भगवान् तो सर्वत्र और सभीमें हैं।

पिताजी, शायद आप यह मानते हैं कि आप वीर हैं; किंतु वीर तो वही है, जिसने अपने आंतरिक शत्रुओंको पराजित किया है। आप मानते हैं कि आपने जगत्को जीता है; किंतु जगविजेता तो वही है, जिसने अपने मनको जीत लिया है। कामक्रोधादि छः चोर आपके मनमें बसे हुए हैं, जो आपके विवेकधनको लूट रहे हैं। क्रोध न करें। आपके मुख पर आज मृत्युकी छाया दीख रही है, अतः रागद्वेषका त्याग करके नारायणकी आराधना करें। मेरे नारायणका भजन कीजिए।

हिरण्यकशिपु क्रोधित होकर चिल्लाने लगा—मेरा पुत्र होकर मुझे ही उपदेश दे रहा है ? कहाँ है तेरा रक्षक विष्णु ?

प्रह्लाद—मेरे प्रभु तो सर्वव्यापक हैं। वे मुझमें है और आपमें भी हैं। आपमें वे हैं तभी तो आप बोल पाते हैं। विष्णु सर्वमें हैं, सर्वत्र हैं।

हिरण्यकशिपु—तेरे भगवान् यदि सर्वत्र हैं तो फिर इस स्तंभमें उनका दर्शन क्यों नहीं हो रहा है ?

क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तंभे न दृश्यते।

क्या तेरे भगवान् इस स्तंभमें हैं ?

प्रह्लाद—जी हाँ, मेरे प्रभु इसमें भी हैं। आपकी आँखोंमें काम है, अतः वे दिखाई नहीं देते।

हिरण्यकशिपु—मैं इस स्तंभको तोड़ कर विष्णुकी हत्या करूंगा ?

राजा तलवार लेने गया। तो इधर प्रह्लाद सोचने लगे कि मैंने कह तो दिया कि भगवान् इस स्तंभमें हैं किंतु क्या इसमें उनका वास हो सकता है ? उन्होंने स्तंभ पर जो कान लगाया तो अंदरसे 'गुरु' 'गुरु' की ध्वनि आई और प्रह्लादको विश्वास हो गया कि भगवान् इस स्तंभमें भी हैं। उन्होंने उस स्तंभका आलिंगन किया। अंदर नृसिंह स्वामी विराजमान थे। उन्होंने प्रह्लादको आश्वस्त किया कि वे इसमें हैं और प्रह्लादकी रक्षा करेंगे ?

इधर हाथमें तलवार लेकर हिरण्यकशिपु दौड़ता हुआ आया और चिल्लाने लगा—बता, वह तेरा विष्णु कहाँ है ?

प्रह्लाद—वे इसी स्तंभमें विराजमान हैं।

हिरण्यकशिपुने क्रोधावेशमें उस स्तंभ पर तलवारका प्रहार किया। तुरंत श्रीनृसिंह स्वामी 'गुरु' 'गुरु' बोलते हुए उस स्तंभमेंसे प्रकट हुए। उन्होंने हाथ बढ़ाकर हिरण्यकशिपुको

गोदमें बिठा लिया और कहा कि यह न रात है और न दिन, न धरती है, न आकाश। घरमें भी नहीं, बाहर भी नहीं किंतु देहली पर तुझे मारूँगा। अस्त्र या शस्त्रसे नहीं, नाखूनसे मारूँगा और भगवान्ने उस असुरको नाखूनसे चीर कर मार डाला।

नृसिंह भगवान्की जय।

मनुष्यके दुःखका कारण उसका देहाभिमान है। शरीर घर है। शरीर-घरमें रहनेवाली जीभ देहली है। उसे न तो अंदर कहा जा सकता है और न बाहर। यदि अभिमानको मारना है तो जीभ पर ठाकुरजीका नाम रखो।

अपने भक्त प्रह्लादके वचनोंको कृतार्थ करने और अपनी सर्वव्यापकता सिद्ध करनेके हेतु भगवान्, नृसिंहके स्वरूपमें वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन काष्ठस्तंभमेंसे प्रकट हुए थे।

पंजाबमें आजके मुलतान शहरमें हिरण्यकशिपुकी राजधानी थी, जहाँ नृसिंह स्वामीका प्राकट्य हुआ था। इसी कारणसे पंजाबवासी अपने नामके साथ सिंह शब्दका प्रयोग करते हैं। वे सिंहके समान बलवान् हैं। आज भी वे शक्तिशाली हैं। गुजरातकी जनता बकरी-सी भीरु बन रही है। सत्त्वहीन भोजन और चायपान करनेवाला शक्तिशाली कैसे बन सकता है? पंजाबवासी दूध और लस्सीका उपयोग अधिक करते हैं। किसी गुजराती युवासे दो सेर दूध पीनेको कहा जाएगा तो वह कहेगा—नहीं, नहीं। इतना दूध मैं किस तरह पी सकता हूँ? मेरे पेटमें गड़बड़ हो जाएगी। जो दो सेर दूध नहीं पी सकता है, वह देशसेवा कैसे करेगा?

बलवान् बनो। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' शक्तिहीन पुरुष आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता।

नृसिंह भगवान् भी 'गुरु-गुरु' का उच्चारण करते थे। यही बताता है कि गुरुके बिना भगवान्के दर्शन शक्य नहीं हैं।

हर प्रकारकी साधना की जाए, विवेक-वैराग्य भी हो, षट्संपत्ति आदि भी हों, किंतु जब तक किसी संतकी, गुरुकी कृपा नहीं होती, तब तक मन शुद्ध नहीं हो पाता और भगवान्की प्राप्ति भी नहीं हो पाती।

मनुष्य चाहे जितनी साधना करे किंतु संतकी कृपा होने पर ही मन हमेशाके लिए शुद्ध हो सकता है।

मन तो बड़ेसे बड़े साधुओंको भी सताता है। वह बड़ा ही चंचल है। इसलिए मन-शुद्धिके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

मल, विक्षेप, आवरण आदिसे मन कलुषित और मलिन होता है।

जिस प्रकार मलिन या चंचल जलमें प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार मलिन, चंचल और आवरणयुक्त मनमें परमात्माका प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता।

अतः किसी संतका आश्रय लो। किसी गुरुकी शरणमें जाओ।

गुरुकृपाके बिना हृदय शुद्ध नहीं हो सकता। साधना करने पर भी सद्गुरुकी कृपाके बिना काम नहीं बनेगा। मात्र साधन-साधनासे हृदय शुद्ध नहीं हो पाएगा।

नृसिंह स्वामीने गुरु शब्दका उच्चारण करके जगत्को बताया है कि सद्गुरुकी कृपाके बिना उनका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

नामदेवको भी गुरुके बिना ज्ञान नहीं हो पाया था।

आजकलके लोग पुस्तक पढ़कर ज्ञानी बन जाते हैं। उन्हें गुरुकी, ब्रह्मचर्यपालनकी, मौनव्रतकी, सदाचारकी, संतसेवाकी, मानो आवश्यकता ही नहीं है। बिस्तरमें लेट कर पुस्तक पढ़कर ज्ञानी बन जाते हैं?

एक बार महाराष्ट्रमें संतोंकी एक मण्डली-सी बन गई।

भक्तमंडलीके संतोंकी परीक्षा करनेके लिए मुक्ताबाईने गोरा कुम्हारसे कहा।

नामदेवको अभिमान था कि वह भगवान्‌का प्यारा है और वे उससे बातें भी करते हैं।

गोरा कुम्हार सभीके सिर पर एक-एक चपत लगाकर परीक्षा करने लगा।

उसने नामदेवके मस्तक पर भी एक चपत लगाई। ऊपरसे तो नामदेवने कहा कुछ भी नहीं, किंतु उनका मुँह फूल गया। उन्होंने अभिमानवश सोचा कि कहीं मिट्टीके बर्तनकी भाँति मेरी परीक्षा हो सकती है क्या? अन्य भक्तोंके चेहरेके भाव अपरिवर्तित ही रहे।

गोरा कुम्हारने अपना निर्णय सुनाया—सभीके भाँडे (मस्तक) पक्के हैं, किंतु इस नामदेवका कच्चा है।

यह सुनकर नामदेव बोले—तुम्हारा सिर ही कच्चा है। तुम्हें शिक्षाकी आवश्यकता है।

नामदेवने विट्ठलनाथजीके पास जाकर यह सारी घटना सुनाई।

विट्ठलनाथजीने कहा–नामदेव, यदि मुक्ताबाई और गोरा कुम्हार कहते हैं कि तेरा सिर कच्चा है, तो अवश्य तू कच्चा ही होगा।

नामदेव, तुझे अभी तक सर्वव्यापक ब्रह्मके स्वरूपका अनुभव ही नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि तूने अब तक किसी सद्गुरुका आश्रय नहीं लिया है। तू मंगलवेढामें रहनेवाले मेरे भक्त विसोबा खेचरके पास जा, वह तुझे ज्ञान देगा।

नामदेव उन्हें ढूंढ़ते हुए शिव मंदिरमें पहुँचे। वहाँ देखा तो विसोबा खेचर शिवलिंग पर पाँव पसारकर सोए हुए थे।

विसोबा पहलेसे ही जान गए थे कि नामदेव आ रहे हैं, अतः वे उन्हें शिक्षा देनेके हेतु ही शिवलिंग पर पाँव पसार कर सोए हुए थे।

नामदेव यह दृश्य देखकर सोचने लगे कि जो व्यक्ति भगवान्‌का अपमान कर रहा है वह मुझे कौन-सी शिक्षा दे सकेगा?

नामदेवने विसोबासे कहा कि वे शिवलिंग परसे पाँव हटा लें। विसोबा खेचरने नामदेवसे कहा—तू मेरे पाँव उठा कर किसी ऐसे स्थान पर या ऐसी दिशामें रख दे कि जहाँ शंकरका अस्तित्व ही न हो।

नामदेव विसोबाके पाँव इधर-उधर करने लगे। किंतु वे जहाँ भी खेचरका पाँव रखते थे वहीं पर शिवलिंग प्रकट होता जाता था और इसप्रकार सारा मंदिर शिवलिंगोंसे भर गया।

नामदेव यह देखकर आश्चर्यमें डूब गए। विसोबाने उनसे कहा—तू वास्तवमें अभी कच्चा ही है। सभी स्थानोंमें तू अब भी ईश्वरका दर्शन नहीं कर सकता। विश्वमें भगवान् तो सूक्ष्म रूपसे हर जगह व्याप्त हैं। तू सभी जड़-चेतनमें ईश्वरको निहार।

इस प्रकार जब भक्ति और ज्ञानका साथ मिल गया तो नामदेव सभीमें और हर जगह ईश्वरका दर्शन करने लगे।

ज्ञान प्राप्त करनेके बाद नामदेव वापस लौटे । वापस लौटते हुए रास्तेमें किसी वृक्षके नीचे बैठ कर वे कहीं भोजनकी तैयारी कर रहे थे कि एक कुत्ता रोटी चुराकर भागा । पर आज तो नामदेवने उस कुत्तेमें भी भगवान्‌का ही दर्शन किया । रोटी सूखी थी । अतः वे घी लेकर उस कुत्तेके पीछे यह चिल्लाते हुए भागे—रुक जा, रोटी तो सूखी-है । मैं तुझे उस पर घी लगाकर दूं ।

यदि गुरुही सांसारिक बंधनोंमें और विषयोंमें फँसे हुए हैं, तो निश्चय जानो कि वे तुम्हें भी सांसारिक बंधनोंसे मुक्त नहीं करा पाएँगे ।

यदि हम यह मानने लगें कि ईश्वर सर्वत्र सर्वव्यापी हैं तो पाप करनेके लिए कोई स्थान ही नहीं मिलेगा ।

ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव हो जाने पर पाप करनेके लिए न तो कोई स्थान ही मिलेगा और न कोई समय ही ।

हिरण्यकशिपुका संहार तो हो गया किंतु नृसिंह स्वामीका क्रोध अभी तक कायम ही था । उनका क्रोधित स्वरूप देखकर तीनों लोक भयभीत हो गए । किसीमें भी यह साहस नहीं था कि वह उनके पास जा सके । ब्रह्माजीने भी उन्हें शांत होनेके लिए प्रार्थना की, किंतु वे सुनें तब न ?

आखिर ब्रह्माने लक्ष्मीजीसे कहा—माताजी, आप ही इन्हें शांत कीजिए । देवोंने भी उनसे प्रार्थना की ।

लक्ष्मीजीने सोचा कि वे मेरे स्वामी हैं, अतः यदि मैं उनके पास जाऊँगी, तो वे शांत हो जाएँगे । मनमें ऐसा अभिमान लेकर वे उनके पास पहुँचीं । पर भगवान् तो नम्र व्यक्तिकी ही बात सुनते हैं, अभिमानीकी नहीं । आज उन्होंने लक्ष्मीजीको भी पहचाननेसे इन्कार कर दिया ।

अब भगवान् ब्रह्माने प्रह्लादसे ही कहा—बेटे, तेरे पिता पर ये क्रोधित हुए हैं, अतः तू ही उन्हें मना ले । प्रभु आज तेरे लिए ही प्रकट हुए हैं, अतः यदि तू उनके पास जाएगा तो वे शांत हो जाएँगे ।

प्रह्लादने प्रभुके पास जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । उन्हें देखकर प्रभुके हृदयमें आनन्दका सागर उमड़ आया । प्रह्लादको गोदमें बिठला कर वात्सल्य भावसे उनका शरीर चाटने लगे ।

प्रह्लादकी भाँति भगवानकी गोदमें जो विराजमान होता है, उसका काल कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।

परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए शुद्ध प्रेम आवश्यक है । ज्ञान आदिकी तो महत्ता कम ही है । शब्दज्ञान आवश्यक नहीं है । अनेक बार शब्दज्ञान प्रभु-भजनमें बाधक हो जाता है ।

अन्यकी क्षति ढंकनेके लिए ज्ञानी बनाया जाता है, क्षति खोल कर रखनेके लिए नहीं । प्रेम-भक्तिके बिना ज्ञान निरर्थक है ।

हिरण्यकशिपु जैसोंके लिए भगवान् भयंकर और क्रूर हैं, किंतु प्रह्लाद जैसोंके लिए तो वे कमलके समान कोमल हैं ।

विष्णु सहस्रनाममें भी भगवान्‌को भयरूप और भयकारकके साथ-साथ भयनाशी भी बताया गया है।

भगवान् दुष्टोंके लिए भयरूप और भयकारक हैं, जब कि भक्तोंके लिए वे भयका हरण करनेवाले हैं।

नृसिंह स्वामीने प्रह्लादसे कहा— तेरे पिताने तुझे बहुत सताया। मुझे प्रकट होनेमें जो विलंब लगा, उसके लिए मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ।

प्रह्लादकी भक्तिकी दिव्यता तो देखिए कि आज भगवान भी उनसे क्षमा-प्रार्थना कर रहे हैं।

जिस प्रकार गौमाता अपने बछड़ेको चाटती है, उसी भाँति नृसिंह स्वामी प्रह्लादको चाटने लगे और धीरे-धीरे उनका क्रोध कम होने लगा।

प्रह्लाद सत्त्वगुण है। हिरण्यकशिपु तमोगुण है। सत्त्वगुण और तमोगुणका यह युद्ध है। इसमें भगवान् प्रह्लादका—सत्त्वगुणका पक्ष लेते हैं। शुद्ध सत्त्वगुणके आगे तमोगुणका नाश अवश्य ही होता है।

प्रह्लादजीके वचनकी सार्थकता और अपनी सर्वव्यापकताकी सिद्धिके हेतु नृसिंह स्वामी स्तंभमें-से प्रकट हुए थे।

सभी जानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक हैं, किंतु इस बातका अनुभव बहुत कम व्यक्तियोंको ही होता है। यदि ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव सभी करें तो घर ही वैकुंठ बन जाए। घरमें कोई झगड़ा ही न होने पाए। उस घरसे पापका नाम ही मिट जाए।

सर्वव्यापकका अर्थ है, सभीमें बसे हुए, सभीमें समाए हुए। दूधमें माखन दीखता नहीं है, फिर भी उसके अणुपरमाणुमें वह समाया हुआ है। इसी प्रकार ईश्वर भी जगत्‌के सभी स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंमें बसे हुए हैं। उनका अभाव कहीं भी नहीं है। ईश्वर तो अणुसे भी अणु और महान्‌से भी महान् हैं। उनका कहीं भी अभाव नहीं है अतः वे सर्वव्यापी हैं।

जो ईश्वरको सर्वत्र विराजमान समझता है, उसके जीवनमें दिव्यता आती है। सबमें ईश्वरको निहारो। प्रथम मातृदेवो भव फिर पितृदेवो भव, और अंतमें परस्पर देवो भव। ईश्वरका पारस्परिक दर्शन करो। लोग एक-दूसरेसे मिलने पर राम-राम कहते हैं। इसका अर्थ यही है कि मुझमें और तुममें राम निहित हैं।

प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थमें ईश्वरका दर्शन करोगे, तो पाप तुम्हारे पास नहीं फटक सकेगा। विवाह करके आने पर वधूकी लक्ष्मीभावसे पूजाकी जाती है। वर नारायण है और वधू लक्ष्मी। यदि लोग यह सोचें कि हमारे घरमें साक्षात् लक्ष्मी-नारायण पधारे हैं तो घर ही वैकुंठ बन जाए।

सबमें ईश्वरका अनुभव करनेमें लाभ ही लाभ है। ऐसा अनुभव करनेसे मन विकार-वासनासे रहित हो जाएगा।

ईश्वर कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि जो एक ही स्थानमें रह सके। वे तो सर्वव्यापी हैं और सर्वत्र हैं।

ईश्वरकी सर्वव्यापकताको केवल जानने मात्रसे विशेष लाभ नहीं होगा। उसका अनुभव भी करना चाहिए और उसे व्यवहारमें भी लाना चाहिए।

भगवान्‌को केवल चंदन, पुष्प आदिका अर्पण करना ही भक्ति नहीं है। सभीमें भगवत्-भाव रखना ही सच्ची भक्ति है। किसी मूर्तिमें जो भगवान् तुम्हें दीखते हैं, वे सर्वत्र व्याप्त हैं। ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव जो करता या कर सकता है, उसीका जीवन धन्य है। ऐसा अनुभव करनेवाला कभी पाप नहीं कर सकता। तुम निश्चय करो कि तुम प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाओगे।

शुद्ध व्यवहार ही भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दंभ है, अभिमान है, उसका व्यवहार अशुद्ध है। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं है, वह भक्तिका आनंद पा ही नहीं सकता। ईश्वरकी सर्व-व्यापकताके अनुभवके बिना व्यवहारशुद्धि नहीं हो सकती।

हमेशा यही सोचो कि हमारा प्रत्येक व्यवहार और प्रवृत्ति ठाकुरजी देखते हैं। कोई भी व्यवहार ऐसा न होना चाहिए कि जिसमें कोई उपदेश न हो।

व्यवसाय—कारोबार कोई अपराध नहीं है। सेना भगत नाईका धंधा करते थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि मैं लोगोंके सिरसे तो मैलका बोझ उतारता हूँ किंतु अपनी ही बुद्धिकी मलिनता मैं अभीतक दूर नहीं कर सका हूँ।

कई महापुरुषोंने अपने व्यवसायमेंसे ज्ञान पाया है। महाभारतमें ऐसे कई दृष्टांत हैं कि जिनमें यह बताया गया है कि महाज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यादिके घर सत्संगके हेतु जाते थे।

जब महाज्ञानी जाजली ऋषिको अपने ज्ञान पर अभिमान हुआ, तो उन्होंने आकाश-वाणी सुनी कि तुम तुलाधार वैश्यसे जाकर मिलो। ऋषि वहाँ गए। बातों ही बातोंमें उन्हें ज्ञात हुआ कि वे भी ज्ञानी हैं। तो उन्होंने तुलाधारसे पूछा कि उन्होंने ऐसा ज्ञान कहाँसे पाया है। तुलाधारने कहा—वैसे तो मेरे माता-पिता ब्राह्मण हैं, फिर भी बहुत कुछ ज्ञान मुझे अपने व्यवसायमें से ही मिला है। मेरा व्यवसाय ही मेरा गुरु है। श्रमके अनुपातसे ही लाभ लेता हूँ। तुलाकी डंडीकी भाँति मैंने अपने मन-बुद्धिको सरल और समान बना लिया है। वैश्य लाभ न कमाए तो अपने कुटुंबका परिपालन कैसे करेगा? नफा कमाना वैसे तो अपराध नहीं है किंतु अयोग्य नफा लेना गुनाह है।

वाणिज्य भी भक्ति है। ऐसा मत सोचो कि भक्ति केवल मंदिरमें ही की जा सकती है। भक्ति हर जगह की जा सकती है। ईश्वरसे अविभक्त रह कर किया गया व्यवहार भक्ति है। ईश्वरसे कभी अलग मत होओ।

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

यदि मनुष्य ग्राहकमें ईश्वरका दर्शन करके व्यापार करे, तो उसका वह व्यापार भी भक्ति ही है। योग्य लाभ कमाना वैश्यका धर्म है किंतु जब भी ग्राहकके साथ व्यापारी बातचीत करने लगता है तो वह यह भूल जाता है कि इस ग्राहकमें भी भगवान् है और इस प्रकार किया गया वह अयोग्य व्यापार पापमय हो जाता है। दुकानमें स्थापित प्रभुकी उपस्थितिमें ही बहुत-से व्यापारी पाप करते हैं। पाँचका माल पच्चीसमें देते हुए कहते हैं कि मैं यह मूल कीमतमें ही बेच रहा हूँ। ऐसा कभी न करें।

भगवत-कथा मनको सावधान करनेके लिए ही है।

अनुभव करो कि प्रभु सर्वव्यापी हैं, सर्वत्र हैं। मैं जो कुछ बोलता हूँ, उसे भगवान् सुनते हैं और मैं जो कुछ देखता हूँ, उसे भगवान भी देखते हैं।

मनुष्यका शारीरिक पाप तो समाज भी देख सकता है, किंतु उसका मानसिक पाप केवल परमात्मा ही देख सकते हैं। मानसिक पाप ही सबसे बुरा है। बिलकुल पाप न करना बड़ा पुण्य है।

नृसिंह भगवान् अवकाशसे नहीं, स्तंभमें से प्रकट हुए थे। मात्र चेतनमें ही नहीं, जड़में भी ईश्वरका दर्शन करो। ईश्वर जड़ और चेतन दोनोंमें है। लौकिक दृष्टिसे पृथ्वी जड़ है किंतु इसमें भी ईश्वरकी भावना करनी चाहिए।

एक महात्माके दो शिष्य थे। वे दोनों पढ़े-लिखे थे, कथाकार भी थे। जब महात्माकी मृत्यु निकट आई तो उनकी गद्दीके लिए उन दोनों शिष्योंके बीच झगड़ा शुरू हो गया। महात्मा भी सोचने लगे कि वारिस किसे बनाया जाय? आखिर उन्होंने दो फल मँगवाकर दोनोंको एक-एक देते हुए कहा कि इस फलको किसी ऐसे स्थान पर जाकर खाना, जहाँ तुम्हें देखनेवाला कोई भी न हो।

वे दोनों फल लेकर चले गए। एक शिष्यने सोचा कि मैं कमरा बंद करके खा लूं, क्योंकि वहाँ मुझे कौन देखनेवाला है और उसने कमरा बंद करके खा लिया।

दूसरा शिष्य सारा दिन फल लेकर इधर-उधर घूमता फिरा, किंतु उसे तो एक भी स्थान ऐसा नहीं मिला जहां कोई न हो। वह जहां भी गया वहीं पर उसे परमात्माकी उपस्थितिका अनुभव हुआ। वेदोंमें भी कहा गया है कि प्रभु सर्वत्र हैं, विश्वतोमुखी हैं। इस प्रकार दूसरे शिष्यने ज्ञान केवल पाया ही नहीं था, अपितु उसने वह ज्ञान आत्मसात् भी किया था।

पहला शिष्य मात्र कथा करता था। वह ईश्वरके व्यापक स्वरूपक समझ नहीं पाया था।

गुरुजीने उस दूसरे शिष्यको अपना वारिस बनाया।

कथा कहना आसान है, किंतु ईश्वर सर्वत्र है ऐसा समझकर व्यवहार करना कठिन है।

प्रह्लाद ऐसे अटल निष्ठावान् थे कि वे सभीमें ईश्वरको निहारते थे।

अनेकमें एक (प्रभु) का दर्शन करना ही भक्ति है। जो सभीमें उसी एक ही तत्त्वको देखे, वही ज्ञानी है। ज्ञानी एकमें अनेकका लय करता है। तुम भी उसी तरह एकमें अनेकका लय करो। यह वेदांतकी प्रक्रिया है। अनेकमें एकको देखो।

वैष्णव अनेकमें एकको देखते हैं। शाब्दिक भिन्नता हो सकती है किंतु ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्गमें वैसे कोई भिन्नता नहीं है।

हनुमान्जीने सीताको रामकी मुद्रिका दी, तो उन्होंने उसमें भी रामके दर्शन किए।

एक परमात्मा ही सत्य है जो अनेकमें बसे हुए हैं।

अनेकमें एकको देखना भक्ति है। एकमें अनेकको देखना ज्ञान है।

शरीर होते हुए भी यदि उसमें प्राण-आत्माका अभाव हो तो उस शरीरकी कीमत ही क्या? ज्ञानी बाह्य रूपरंग नहीं देखते किंतु बाह्य रूपरंगकी सुंदरताके कारणभूत ईश्वरका ही चिंतन करते हैं।

भगवान् शंकराचार्यने दुःखसे कहा था कि लोग मांसकी (देहकी) मीमांसा तो करते हैं किंतु आत्माकी मीमांसा कोई भी नहीं करता।

एक गृहस्थका स्वभाव था कि वह साधु-संतको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन नहीं करता था। एक बार कोई महात्मा वहाँ घूमते-फिरते आए। उस गृहस्थने उनकी पूजा करके उन्हें भोजन करने बिठलाया। घरमें दूध नहीं था। उसने नौकरसे कहा कि दौड़ कर दूध ले आ। नौकर गया, पर तुरंत ही लौट कर उसने सेठसे पूछा—काली गायका लाऊँ या सफेद गायका? तो उन्होंने उत्तर दिया कि जरूरत दूधकी है, चाहे गाय जैसी भी हो। पर महात्मा भोजन पूरा करे, उससे पहले ही ले आना। नौकर दौड़ा और फिर लौटकर पूछने लगा कि बूढ़ी गायका लाऊँ या जवान गायका। सेठ क्रोधित होकर मारने दौड़े। महात्माने सेठसे क्रोधका कारण पूछा। सेठने कहा—कितना मूर्ख है यह नौकर। कई बार उसे दूध लेने भेजा, फिर भी वह नहीं ला सका।

महात्माने कहा—जो परमात्मा इस सेवकमें हैं, वही तुम्हारे शरीरमें भी हैं। हमें शरीरकी नहीं, शरीरमें बसे हुए परमात्माकी आवश्यकता है। तुम दोनोंमें एक ही प्रभुका वास है। उसे मत मारो।

सभीमें एक ही ईश्वरका वास है। प्रत्येक स्त्री-पुरुषमें, प्रत्येक जड़-चेतन, स्थावर-जंगम वस्तुमें उसी प्रभुका दर्शन करो।

जगत्में मूर्ख कोई नहीं है। ईश्वरके ही सभी अंश हैं। जो अन्यको मूर्ख मानता है, वह स्वयं मूर्ख है।

हमारे देशमें तो पशु तक की पूजा की जाती है। भैरवनाथका वाहन कुत्ता है और शीतला माताका वाहन है गधा। अतः कुत्ते और गधे भी तिरस्कार्य नहीं हैं।

ईश्वर चैतन्यरूपसे सभीमें हैं, अतः तुम अनुभव ऐसा करो कि ऐसे स्वभाववालेकी प्रत्येक क्रिया भक्ति और ज्ञानमय होगी।

नृसिंह भगवान्ने प्रकट होते समय 'गुरु' शब्दका उच्चारण किया था। यह सच है कि ईश्वर सर्वत्र हैं किंतु जब तक सद्गुरुकी ओरसे दिव्य दृष्टि न मिले, तब तक ईश्वरके दर्शन नहीं किए जा सकते। जो जितेन्द्रिय है, वही स्वतंत्र है। स्वातंत्र्य मनुष्यको स्वेच्छाचारी बनाता है। अतः स्वतंत्र और स्वच्छंदी न बनो।

बुद्धिका कभी विश्वास मत करो। किसी संतको गुरु बनाकर उसके अधीन रहो। जो तुम्हें पाप करनेसे रोके ऐसे किसी संतके अधीन रहो। गुरु करना ही चाहिए।

किंतु गुरु बनानेके पूर्व अच्छी तरहसे यह सोचना-परख लेना चाहिए कि जिस व्यक्तिको तुम गुरु बनाने जा रहे हो, वह योग्य और सुपात्र भी है या नहीं। किसीने कहा है—

पानी पीना छानके,
गुरु करना जान के।

वर्तमान जगत्के किसी महापुरुषमें यदि तुम्हें श्रद्धा नहीं है तो प्राचीन महात्माओंको ही गुरु मानकर उनके अधीन रहो। महापुरुष अमर होते हैं। शंकराचार्य और वल्लभाचार्य जैसे संत अमर हैं। उन्हें गुरु मानकर उनकी सेवा करो और उनका आश्रय भी लो।

गुरुके बिना कल्याण नहीं हो सकता। किसी संतके चरणोंका आश्रय लेने पर सद्गुरु कृपा करेंगे। यदि वे संत कृपा करेंगे तो तुम्हारी मानसिक वासना और विकारोंका नाश होगा। मन-बुद्धिकी वासना संतसेवाके बिना दूर नहीं होती। मन पर सत्संग-सेवाका अंकुश रखो। बुद्धिको किसी संतके चरणोंमें लगा दो। जब तक बुद्धि परमात्मासे विवाहित न हो जाए, तब तक उसे संतके अधीन ही रखो। सद्गुरुकी कृपाके बिना हर किसीमें ईश्वरके दर्शन नहीं हो सकेंगे।

जगत्‌में वैसे तो कई संत हैं किंतु उन सभी पर हमारे कल्याणका उत्तरदायित्व नहीं है। हम जिसे गुरु बनाएँ, वही संत हमारे कल्याणार्थ उत्तरदायी हैं।

शीघ्रतासे, बिना सोचे-समझे किसीका गुरु बनना भी अच्छा नहीं है। गुरु बननेसे शिष्यके पापोंका उत्तरदायित्व गुरुके नाम पर आ जाता है। शिष्यके पापोंका न्याय करनेके समय गुरुको भी वहाँ बुलाया जाता है और उनसे पूछा जाता है कि उन्होंने शिष्यको पाप करनेसे रोका क्यों नहीं, उसे सन्मार्ग पर क्यों नहीं ले जाया गया। तब शिष्यके साथ-साथ गुरुको भी दंडित होना पड़ता है।

मंत्र, माला और मूर्ति तथा गुरु बार-बार बदलना ठीक नहीं है। अपनी माला किसी औरको मत दो।

नृसिंह स्वामीका प्राकट्य स्तंभमें-से हुआ था। तुम ही सोचो कि वे स्तंभमें कैसे रह पाए होंगे। स्तंभ तो ठोस था, पोला नहीं। ठाकुरजी अंदर कैसे रहे होंगे? ठाकुरजी तो उक्त स्तंभमें सूक्ष्म रूपसे बसे हुए थे, पर प्रह्लादजीकी भक्तिसे आकर्षित होकर उन्होंने स्थूल-रूप धारण किया था। प्रह्लादका प्रेम इतना शक्तिशाली था कि प्रभुको सूक्ष्मरूप छोड़कर स्थूलरूप धारण करना पड़ा।

शिवजी उमासे कहते है—

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

जब सभी देव सोच रहे थे कि प्रभु कहाँ मिलेंगे, तो शंकर भगवान्‌ने कहा था—

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

अतिशय प्रेमके बिना प्रभु अपने स्वरूपका दर्शन नहीं देते। प्रभुके साथ प्रेम करना होगा।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।

प्रह्लादजीकी प्रेमभक्तिसे आकृष्ट होकर भगवान् निराकारसे साकार बने।

बुद्धि जब तक सूक्ष्म नहीं हो पाती, उससे ईश्वरका चिंतन नहीं हो सकता। परमात्मा प्रेमके कारण ही साकार-रूप धारण करते हैं। परमात्मा निर्गुण भी हैं और सगुण भी। निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही हैं। निर्गुण ही सगुण बनता है। प्रभु स्थूल भी हैं और सूक्ष्म भी। वे कोमल भी हैं और कठोर भी।

वेदान्ती मानते हैं कि यह सब धर्म मायाके कारण आभासित होते हैं। वैष्णवाचार्य मानते हैं कि विरुद्धधर्माश्रयी परमात्मा हैं। जो नृसिंह स्वामी हिरण्यकशिपुके प्रति कठोर हो गए थे, वे ही प्रह्लादके कारण कोमल हो गए।

ज्ञानी पुरुष सभीमें भगवद्दृष्टि रखते हैं। दृश्य पदार्थमें-से दृष्टिको हटा कर द्रष्टामें स्थिर करो। दृश्यमें-से दृष्टिको हटा लो और सर्वद्रष्टा, सभीके साक्षी परमात्माके स्वरूपमें दृष्टि स्थिर करो।

एक थे महात्मा। उन्हें जो कुछ दिखाई देता था, ईश्वरमय दिखाई देता था। उनके निकट आकर एक गृहस्थने कहा-मैं ईश्वरके दर्शन करना चाहता हूँ।

महात्मा—समझ लो कि तुम भी ईश्वर ही हो।

गृहस्थ—मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि मैं ईश्वर नहीं हूँ।

महात्मा—तुम्हें ईश्वरका दर्शन करना है न ? अतः तुम यदि ईश्वर नहीं हो तो तुम्हारे सिवाय जो भी कुछ दिखाई देता है, उसीको ईश्वर मान लो। जगत्में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है, उसमें ईश्वरका दर्शन करो। ऐसा ही मान कर सारा व्यवहार करो।

गृहस्थने वैसा किया तो उसका पाप-कार्य अपने आप रुक गया। उसका व्यवहार शुद्ध हो गया।

एक बार उसी गृहस्थने फिर महात्मासे पूछा—सबमें ईश्वर है, ऐसा अनुभव करनेसे शांति तो मिलती है, किंतु कभी-कभी ऐसा शंका भी होती है कि यह सब जो दिखाई दे रहा है उसमें ईश्वर नहीं है। तो मैं क्या करूँ ?

महात्मा समझाने लगे—यदि तुझे लगता है कि जो कुछ दीखता है, उसमें ईश्वर नहीं है और तुझे ईश्वरके दर्शन भी करने हैं तो अब ऐसा कर कि जो कुछ दृश्यमान है, उसमें ईश्वर नहीं है, ऐसा मान कर सभी कुछका मोह छोड़ दे। दृश्यमानके साथ प्रेम न कर। दृश्य वस्तु ईश्वर नहीं है। तू द्रष्टाके साथ प्रेम कर। संसारके दृश्यमान पदार्थोंके बदले दृश्यके द्रष्टाके साथ प्रेम कर। अब जो अदृश्यमान है, वह ईश्वर है और ईश्वर द्रष्टा है, ऐसा मान। ईश्वर दृश्य नहीं, द्रष्टा हैं।

वेदांत कहता है कि ईश्वर दृश्य नहीं, अपितु सबके द्रष्टा हैं। ईश्वरमें दृश्यत्वका आरोप मायाके कारण होता है। जो व्यक्ति सर्वद्रष्टामें दृष्टि स्थिर करे, उसे प्रभु मिलते हैं।

महात्माने दो मार्ग बताए। (१) जो दृश्यमान है, वह ईश्वर है। (२) जो अदृश्य है, वह ईश्वर है। ईश्वर द्रष्टा हैं। जो सभीका द्रष्टा और सभीका साक्षी है, उसे आसानीसे कौन जान सकता है ? पूर्ण वैराग्यके बिना ज्ञानानुभव नहीं हो पाता। अतः हम साधारण मनुष्योंके लिए तो भक्तिमार्ग ही अच्छा है। यह जो कुछ दृश्यमान है, सब ईश्वरमय है।

वैष्णव मानते हैं कि सभी पदार्थोंमें ईश्वर है। ऐसा मानकर व्यवहार करनेसे भक्ति-मार्गमें सफलता मिलेगी। ईश्वरके किसी भी स्वरूपके प्रति आसक्ति रखे बिना भक्ति नहीं हो पाएगी।

शंकर भगवान् समाधिमें बैठते थे। समाधिमें क्या है ? अपने स्वरूपको स्वयं देखना ही समाधि है।

कोई भी एक मार्ग निश्चित कर लो। प्रत्येक दृश्य वस्तु विनाशी है, ऐसा मान कर मोहका त्याग करके द्रष्टाके साथ प्रेम करोगे तो वेदांतानुसार आत्म-साक्षात्कार होगा। द्रष्टामें दृष्टि स्थिर करो अथवा प्रत्येक पदार्थमें ईश्वरका अनुभव करो।

प्रह्लाद स्तुति करते हैं—हे प्रभु, बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा कई वर्ष तपश्चर्या करने पर भी आपका साक्षात्कार नहीं पा सकते है, किंतु राक्षसकुलमें जन्म मिलने पर भी आज आपने दर्शन देनेकी मुझ पर कृपा की।

भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए न तो अधिक शिक्षाकी आवश्यकता है और न अधिक अर्थोपार्जनकी। यदि धनके सहारे परमेश्वर मिलते होते तो ये धनिक लोग लाख-दो-लाख रुपयेमें प्रभुको खरीद लेते। अधिक शिक्षा या ज्ञानसे भी भगवान् नहीं मिलते। जो अधिक ज्ञानी है, वह कई बार दूसरोंसे छल-कपट करनेसे भी बाज नहीं आता।

परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए संपत्ति, शिक्षा या उच्च कुलमें जन्म आवश्यक नहीं है। मात्र ब्राह्मण ही ईश्वरको पा सकते हों, ऐसा भी नहीं है। परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए आवश्यक है हृदयका शुद्ध प्रेम।

अधिक कमाना और उसको प्रभुसेवामें व्यय करना ठीक है, किंतु एक आसन पर बैठकर परमात्माका ध्यान करना उससे भी अधिक अच्छा है।

संपत्तिसे परमात्मा नहीं मिल पाते। इसके विपरीत कई बार तो धन भगवद्सेवामें प्रभुभजनमें बाधारूप भी हो जाता है।

ज्ञानका आधिक्य तर्क-वितर्कका जन्मदाता है। अतः ज्ञानी भगवान्‌की स्मरण-सेवा ठीक तरहसे नहीं कर पाता। वह ज्ञानी आरंभमें कुतर्क करता है, जब कि आरंभमें श्रद्धा आवश्यक है।

पढ़े-लिखे लोग अधिक कुतर्क करते हैं। वे कहते हैं कि पहले चमत्कार दिखाइये, बादमें हम आपके ठाकुरजीको नमस्कार करेंगे। दूसरोंको खुश करनेके लिए चमत्कारसे प्रारंभ करनेका काम वेश्याका है, क्योंकि उसे दूसरोंकी जरूरत है ईश्वरको तो किसीकी भी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हें ईश्वरकी जरूरत है, तो श्रद्धासे सेवा-स्मरण करो और बादमें चमत्कार देखो। जादूगर भी चमत्कार दिखाता है, क्योंकि उसे धनकी जरूरत है। पहले चमत्कार और बादमें नमस्कार, यह नियम इस जगत्‌के व्यवहारका तो हो सकता है, पर भगवान्‌के व्यवहारका नहीं।

परमेश्वरका व्यवहार है प्रथम नमस्कार और बादमें चमत्कार। बिना चमत्कारका नमस्कार मानवता है। चमत्कारके बादका नमस्कार अभिमान है। कुछ तो सोचो। यह जगत् भी एक चमत्कार ही तो है। पुष्पमें सुगंध है तो बीजमें वटवृक्ष। माताके स्तनमें दूध कौन बनाता होगा? सारा जगत् ईश्वरका चमत्कार ही तो है।

श्रद्धा—अंधश्रद्धा तो हमारे व्यावहारिक जीवनमें भी कहाँ नहीं है? कई बार डॉक्टरसे काम बिगड़ जाता है, फिर भी हम उसकी बातोंमें श्रद्धा रखते हैं। उससे तो कहा नहीं जा सकता कि पहले चमत्कार कर दिखाओ। डॉक्टरके प्रति श्रद्धा न होगी तो वह दवाई नहीं देगा और दवाईके बिना बीमारी कैसे हटेगी?

इसी प्रकार सेवा-मार्गमें भी प्रथम आवश्यकता श्रद्धाकी है। परमार्थमें श्रद्धा आव श्यक है।

आजके शिक्षित लोग यह भी कुतर्क करते हैं कि भगवान् आहार तो करते नहीं, फिर उन्हें भोग क्यों लगाया जाता है? थालमेंसे कुछ कम तो होता नहीं, पर वे यह नहीं जानते कि ठाकुरजी भोजन नहीं करते, किंतु सारतत्त्वका आहार कर लेते हैं। वे रसभोक्ता हैं। यदि वे सचमुच भोजन करने लगें, तो इस कलियुगमें कोई भोग लगाएगा भी या नहीं, इसमें सन्देह है।

ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए अति ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। अंतकालमें ज्ञान कई बार विश्वासघात करता है। ज्ञानको यदि भक्तिका साथ है, तो ठीक बात है।

बीमार तो शरीर होता है, आत्मा नहीं, ऐसी बातें तो वेदांती भी नहीं कर सकता, क्योंकि यदि वेदांती बीमार हो जाता है तो उसे भी औषधि और फलादिकी आवश्यकता सताती ही है।

वेदांतके सिद्धांत निरर्थक नहीं हैं, परंतु उनका अनुभव भक्ति और प्रेमके अभावमें नहीं हो सकता। प्रेमकी, भक्तिकी आवश्यकता ज्ञानीको भी पड़ती है।

ज्ञानका उपयोग ईश्वरकी व्यापकताका अनुभव करनेके हेतु है।

ईश्वर सर्वत्र है, ऐसा मानकर किया गया व्यवहार भक्ति बन जाता है।

स्वामी रामदासने दासबोधमें कहा है कि जो व्यवहारकुशल नहीं है, वह परमार्थ कैसे कर पाएगा? पर जिसका व्यवहार अतिशय शुद्ध है, वह परमार्थ ठीक तरहसे कर सकता है। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं है, वह भक्ति किस प्रकार सकेगा?

व्यवसाय या धंधा करना कोई पाप नहीं है, किंतु व्यवसायमें, धंधेमें ईश्वरको भूल जाना पाप है।

साधन-भक्तिमें सभी संत भी अपना-अपना काम-काज करते थे। सेना नाई हजामतका धंधा करते थे, तो गोरा कुम्हार मिट्टीके बर्तन बनानेका।

गजेन्द्र अनपढ़ पशु ही तो था। उसने न तो तपश्चर्या की थी और न तो अष्टांग योगकी साधना। पर उसकी भी प्रेमपुकार सुनकर, उसकी भक्तिके कारण भगवान् उस पर प्रसन्न हुए थे।

भक्तिसे भगवान् मिलते हैं। ईश्वरसे प्रेमभाव रखकर सेवा-स्मरण करते रहो। यदि भक्ति न हो तो ज्ञानीके ज्ञान और तपश्चर्याकी कोई सार्थकता नहीं है। ज्ञान तो चाहे जितना हो किंतु प्रभुप्रेम न हो तो उस ज्ञान और तपश्चर्याकी कोई कीमत नहीं है।

सभी साधन और साधनाका फल है श्रीकृष्ण-प्रेम। जो साधना प्रभु-प्रेम न जगा सके, उस साधनकी कोई कीमत नहीं है।

प्रभु-मिलनके लिए जो आतुर नहीं है, ऐसे ब्राह्मणकी अपेक्षा प्रभु-मिलनके लिए आतुर क्षुद्र व्यक्ति भी श्रेष्ठ है।

प्रभुको प्रसन्न करनेके दो साधन हैं—सेवा और स्मरण। प्रतिदिन तीन घंटे प्रभुकी सेवा और स्मरण करो। इन दो साधनोंसे भगवान् अवश्य मिलते हैं, और किसी वस्तुकी

आवश्यकता नहीं है। दक्षिणा देनेसे पुण्य नहीं मिल सकता। वह धनका सदुपयोग तो है किंतु स्वयं भी सेवा-स्मरण करना आवश्यक है। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन है प्रेम। सेवा और पूजामें धन नहीं, मन प्रधान है। स्नेह ही मुख्य वस्तु है।

श्रीगोसाईंजी महाराजकी "दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता" में पद्मनाभदासकी कथा है। वे गरीब थे, लिहाजा भगवान्‌को चनेके छिलके भोगमें देते थे। ठाकुरजी उसमें भी मिष्टान्न का अनुभव करते थे।

भगवान् यह नहीं देखते हैं कि कोई उन्हें क्या देता है? वे तो मात्र यही देखते हैं कि कैसे भावसे दिया गया है।

सेवा, स्मरणसे भगवान् सेवकाधीन बन जाते हैं।

एकनाथ महाराज सारा दिन अविरत प्रभुसेवा और भजन करते रहते थे, सो थक जाते थे। उनकी ऐसी अविराम सेवासे प्रभु दयार्द्र हो गए। वे सोचने लगे, मेरा भक्त मेरे लिए कितना श्रम करता है। बेचारा थककर चूर हो जाता है। चलो, मैं उसकी कुछ सहायता करूं उसका श्रम कुछ कम कर दूं।

यह सोचकर भगवान्‌ने ब्राह्मणका रूप धरकर एकनाथके पास आकर कहा—भाई, मुझे अपना सेवक रख लोगे क्या?

एकनाथ बोले—मुझे नौकरकी जरूरत ही क्या है? मैं तो अपना सारा दिन प्रभुकी सेवा और स्मरणमें ही बिताता रहता हूँ।

भगवान्—मैं तुम्हें ठाकुरजीकी सेवा करनेमें सहायता दूंगा।

एकनाथ—जैसी तेरी इच्छा। हां, तेरा नाम क्या है?

भगवान्—मेरा नाम है श्रीखंड्या।

और इस प्रकार सेवा करते-करते बारह वर्ष गुजर गए।

जिसे चन्दनका तिलक लगाया जाता था, वह स्वयं ही चंदन घिसने लगे। 'तुलसीदास चंदन घिसे, तिलक लेत रघुवीर' वाली बात उल्टी हो गई। यही तो है भक्तिकी महिमा।

रुक्मिणीने सेवासे प्रभुको प्रसन्न करके वैसे तो स्वाधीन कर लिया था, फिर भी मात्र एक ही तुलसीदलसे वे तुल गए थे।

श्रीधरस्वामीने हरिविजयमें एक प्रसंगका वर्णन किया है।

एक बार सत्यभामाके मनमें अभिमान हो आया कि प्रभुको वही सबसे प्रिय है। एक दिन नारदजी घूमते-फिरते वहाँ आ पहुंचे, तो सत्यभामाने उनसे कहा—मुझे हर जन्ममें यही पति मिलें, ऐसा कोई उपाय बताएं।

नारदजी—आप जिस वस्तुका दान करेंगी, वही अगले जन्ममें आपको प्राप्त होगी। अतः यदि आप श्रीकृष्णको ही अगले जन्ममें पतिके रूपमें पाना चाहती हैं तो उनका दान कर दीजिए।

ऐसा दान देनेके लिए सत्यभामा तो तैयार हो गई किंतु ऐसे दानको कौन स्वीकार करता?

कोई भी व्यक्ति उस दानको लेनेके लिए इच्छुक नहीं था।

अन्तमें नारदजीको ही स्वीकार करनेके लिए समझाया गया। वे राजी हो गए।

सत्यभामाने संकल्प करके श्रीकृष्णका नारदजीको दान कर दिया।

श्रीकृष्णको दानमें पाकर नारदजी उन्हें अपने साथ ले जाने लगे।

सत्यभामा नारदजीसे पूछने लगीं—मेरे पतिको आप कहाँ लिए जा रहे हैं?

नारदजी—आपने अभी-अभी तो मुझे उनका दान किया है न, अतः वे मेरे हो गए। दानमें दी गई वस्तु दान लेनेकी हो जाती है। अब कृष्ण पर मेरा अधिकार है।

अब सत्यभामाको अपनी भूल समझमें आ गई। वे कृष्णको माँगने लगीं और नारदजी देनेसे इन्कार करने लगे।

उधर जब ये सारी बातें अन्य रानियों तक पहुँचीं, तो वे भी सभी दौड़ कर आ गइ, पर एक रुक्मिणी नहीं आईं।

सभी रानियाँ नारदजीसे विनती करने लगीं कि उनके पतिको वापस दे दीजिए।

नारदजी—सत्यभामाने श्रीकृष्णका मुझे दान किया है, अतः अब तो वे मेरे हो गए हैं। हाँ, फिर भी यदि आप इन्हें वापस लेनेकी इच्छा करती हैं तो इनका जितना वजन है, उतना सुवर्ण मुझे दे दें, तो मैं इन्हें लौटा दूँ।

सत्यभामा प्रसन्न हो गईं। उन्होंने सोचा कि उनके पास तो ढेर-से आभूषण हैं और स्यमंतक मणि भी है। पतिका वजन होगा तो भी कितना होगा। वे अपने सारे आभूषण ले आईं।

किंतु यह क्या हुआ? सत्यभामाने हीरा, मोती, स्यमंतक मणि-सहित अपने सारेके सारे आभूषण तुलामें रख दिये, फिर भी कृष्णका पल्ला नीचा ही रहा।

अब तो सभी अन्य रानियां भी घबड़ा गईं और दौड़-दौड़ कर अपने-अपने आभूषण ले आईं। उनके आभूषण भी तुलामें रख दिए गए, फिर भी कृष्णका पल्ला नीचे ही रह गया।

जीव जब अभिमानी हो जाता है, तो भगवान् भी भारी हो जाते हैं। उनके आगे हीरा, मोती और सुवर्णका मोल ही क्या है?

रानियोंने आभूषणोंसे श्रीकृष्णका मोल करना चाहा, सो हजारों मन आभूषण रख देने पर भी उनका वजन श्रीकृष्णके वजनसे कम ही रहा।

सत्यभामाके अभिमानका नाश करनेके हेतु ही यह सारी लीला रची गई थी।

सब रानियाँ सोचमें डूबी हुई थीं कि अब क्या किया जाए। सत्यभामाने श्रीकृष्णका दान करके अनर्थ कर डाला था।

अन्तमें सत्यभामाने रुक्मिणीका आसरा लिया। रुक्मिणी भी वहाँ आईं।

रुक्मिणी सारा भेद समझ गईं कि भगवान्की तुला क्यों नहीं हो रही है।

रुक्मिणीने अन्य रानियोंसे कहा—भगवान्की तुला क्या सुवर्णसे हो सकती है। उन्होंने पल्लेमें प्रेमसे एक तुलसीदल रख दिया, तो भगवान्की तुला पूर्ण हो गई। रुक्मिणीने पूरे प्रेमसे तुलसीदल अर्पण किया था, अतः भगवानका पल्ला ऊपर उठ गया।

इसी प्रकार बोडाणाके लिए भगवान् सवा वाल (एक धान्य विशेष) के बराबर हो गए थे—

धन्य धन्य बोडाणाकी नारी।
सवा वाल भए बनमाली ॥

ईश्वर कभी ऐसी इच्छा नहीं करते, कि कोई उनकी सेवा करे। वे तो निज लाभसे परिपूर्ण हैं, उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वे स्वयं आनंदरूप हैं। उन्हें ऐसी इच्छा या अपेक्षा नहीं है कि वैष्णव उन्हें भोग लगाए। उन्हें भोजनकी इच्छा भी नहीं होती। वे तो निष्काम हैं। भक्तोंको प्रसन्न रखनेके लिए ही वे भोजन करते हैं।

भगवद्-निवेदन किए विना भोजन कभी नहीं करना चाहिए। ईश्वरको उनका ही पदार्थ अर्पण करना है। प्रेमसे अर्पण करोगे तो वे प्रसन्न होंगे। ईश्वरको अर्पित किए बिना खानेवाला व्यक्ति भूखा रह जाता है। तुम उन्हें अर्पित करोगे, तो वे कई गुना बढ़ाकर वापस लौटाएँगे। वे कहते हैं कि मेरी ही बनाई हुई वस्तुएँ मुझे अर्पित करनेमें वैसी कोई बड़ाई नहीं है; किंतु मुझे अर्पण किए बगैर खाना अनधिकृत खाना है।

भगवान्‌के घर कोई कमी तो है नहीं। वे तो केवल तुम्हारी भावना ही देखते हैं।

भगवान्‌ने जो दिया है वही तो उन्हें अर्पित करना है। जीव स्वयं तो किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति कर नहीं सकता, सभी कुछ श्रीकृष्णका ही तो है।

दीपक जलानेसे या आरती करनेसे भगवान्‌के घर तो प्रकाश होगा नहीं। यह तो तुम्हारे ही हृदयमें प्रकाश करनेके लिए है। ईश्वर तो वैसे ही स्वयंप्रकाशी हैं!

सेवा करनेसे सेवकको सुख होता है। भगवान्‌को तो क्या सुख मिलेगा? वे तो परमानन्दस्वरूप हैं।

जीवको देनेवाला तो ईश्वर ही है, किंतु मनुष्यके निवेदनसे वे प्रसन्न होते हैं।

सेवा और पूजामें भेद है। जहाँ प्रेमका प्राधान्य है, वह सेवा है और जहाँ वेदमंत्रकी प्रधानता है, वह पूजा है।

पूजा करो तो प्रेमसे करो। अन्यथा स्नेहादिका समर्पण व्यर्थ ही रहेगा। हमारे वस्त्र कहीं बिगड़ न जाएँ, इस डरसे कई लोग तो मंदिरमें साष्टांग दंडवत्-प्रणाम भी नहीं करते।

नर कपड़नकों डरत हैं,
नरक पड़नकों नाहिं।

जो कुछ भी है, वह ईश्वरका ही तो है। केवल उन्हें ही अर्पित करना है। अर्पण करनेकी रीतिसे ही आपके मनकी भावनाका उन्हें पता लग जाएगा।

दक्षिणमें एक कथा प्रचलित है।

किसी भी शुभकार्यके आरंभमें विघ्ननाशके हेतु सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा की जाती है।

किसी एक गाँवमें एक गृहस्थके घर विवाहका अवसर आया। ब्राह्मणने देखा कि गणपतिकी मूर्ति है ही नहीं। अब क्या किया जाए? वह ज्ञानी था। उसने सोचा कि ईश्वरकी प्रतिष्ठा प्रेमपूर्वक कहीं भी की जा सकती है। सुपारीमें भी भगवान् बसते ही हैं। उत्तमोत्तम वस्तु ठाकुरजीको अर्पित करना ही तो भक्ति है।

अतः उस ब्राह्मणने नैवेद्यके लिए रखे हुए गुड़में-से ही गणपति बना लिये। यजमान-से पूजा कराई गई। धूप-दीप आदि भी हो गया। अब नैवेद्यका समय आया। नैवेद्यमें-से तो गणपति बना लिए गए थे। अब क्या करें? तो उस विप्र महाराजने गुड़की उस गणपति-मूर्तिमेंसे ही थोड़ा-सा गुड़ निकाल कर नैवेद्य बना लिया—

गुड़ाचा गणपति, गुड़ाचा नैवेद्य।

गणपति भी गुड़के और नैवेद्य भी गुड़का ही। ऐसी पूजासे भी गणपति प्रसन्न हुए। उस यजमानका कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया। कार्यकी भावना तो शुद्ध थी न?

महत्त्व वस्तुका नहीं, भावनाका है। सद्भावपूर्वक सेवा करोगे तो वह सेवा सफल होगी। सेवा करते समय रोंगटें खड़े हो जायें, आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगे, तो समझो कि वही सच्ची सेवा है।

सेवा मात्र क्रियात्मक ही नहीं, भावात्मक भी होनी चाहिए। सेवा करते हुए आनन्द मिले, वही सेवा है। जो भी कुछ करो, प्रेमसे करो। भगवान्के लिए भोजन बनाओ। भगवान्-को अर्पित करनेके बाद भोजन करो।

साथमें प्रार्थना करो कि हे नाथ! आप तो विश्वंभर हैं। सभीके स्वामी हैं। आपको तो कौन खिला सकता है? तो भी यह पदार्थ मैं आपको मनसे अर्पण करता हूँ।

जो ईश्वरका है, वही तो उन्हें समर्पित करना है। यह जीव दूसरा कुछ तो लाएगा ही कहाँसे? केवल भावनाका मूल्य है। परमात्मा तो परिपूर्ण हैं। उन्हें कोई अपेक्षा नहीं है। उन्हें किसी भी वस्तुकी क्षुधा नहीं है। वे तो मात्र भावनाके भूखे हैं। उन्हें तुम भावसे अर्पित करोगे, तो वे उसका कई गुना अधिक बना कर तुम्हें ही वापस देंगे।

भक्तिमार्गमें भावके बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। ज्ञान-मार्गमें त्याग और वैराग्य आवश्यक है।

पिता बालकको रुपया देता है। वह कभी वापस भी माँगता है। यदि बालक रुपया वापस नहीं देगा तो पिताको दुःख होगा कि मैंने ही तो उसे दिया है, फिर भी यह नहीं लौटाता। पर यदि बालक रुपया वापस दे देगा, तो पिताको हर्ष होगा। रुपया तो उसीका है, फिर भी वह रुपया पाकर उसे संतोष होता है।

ईश्वर जीवमात्रके पिता हैं। उन्होंने हमें जो कुछ दिया है, वही तो हमें उन्हें देना है। प्रतिज्ञा करो कि ठाकुरजीको अर्पित किए बिना कुछ भी नहीं खाओगे।

कई बार ऐसा भी देखनेमें आता है कि घरके सारे लोग भोजनके लिए कहीं बाहर जा रहे हैं, तो भगवान्को मात्र दूध ही दे देते हैं और कहते हैं नाथ, दूध ही पी लीजिए, आज हम तो मोहनथाल खाने जा रहे हैं बाहर। पर यह कोई अच्छी बात नहीं है। चाहे सारे घरमें कोई भी भोजन नहीं करनेवाला हो, फिर भी भगवान्के लिए सभी कुछ बनाना ही चाहिए।

कथा सुनकर यदि कोई शुभ संकल्प नहीं किया जाता, तो श्रोताका सुनना और वक्ताका कहना दोनों निरर्थक ही होता है। कथा सुनकर उसे हृदयमें रखो।

किसी भी स्वरूपकी मूर्तिकी स्थापना करके उसकी प्रेम और भावपूर्वक सेवा करो। चित्त-स्वरूपकी अपेक्षा मूर्ति-स्वरूप अधिक अच्छा है। सेवा करते समय मनमें ऐसा ही भाव रहना चाहिए कि यह साक्षात् परमात्मा ही हैं। सेवाके आरंभमें ध्यान करो। संपत्तिके अनुसार खर्च भी करो। सुन्दर सिंहासन बनाओ। ध्यानसे भावना करो कि भगवान् वैकुंठसे इधर आ रहे हैं और मेरे घरके सेव्य स्वरूपमें प्रविष्ट हो रहे हैं। सेवा करते समय किसी भी व्यक्तिके साथ बातचीत मत करो। उसे भी नमस्कार ही कर लेना।

न तो कोई परमात्मासे श्रेष्ठ है और न कोई परमात्माके समान ही है।

सेव्यमें मनको लगाए रखना ही सेवा है। तुम अपने शरीरसे जैसा प्रेम रखते हो, वैसा ही प्रेम ठाकुरजीके स्वरूपसे भी रखो। परमात्माके अनंत उपकार हैं। सदा यही सोचो कि मेरी कई बार प्रभुने ही रक्षा की है। मैं भगवान्का सेवक हूँ, दासानुदास हूँ। मैं तुम्हारा हूँ। सेवामें दास्यभाव मुख्य है। दास्यभावसे हृदय शीघ्र ही नम्र बन जाता है। सेवामें दैन्यके आनेसे हृदय पिघलता है। कृष्णसेवामें जब तक हृदय पिघलता नहीं है, तब तक सेवा सफल नहीं हो सकती। दास्यभावके बिना सेवा नहीं फलती। सेवा स्नेह और समर्पण भावसे करो। जब तक मूर्तिके प्रति भगवद्भाव न जागे, तब तक प्रत्येक पदार्थके प्रति भी ईश्वरभाव नहीं जागेगा। सेवा करते समय लक्ष्यमें यही रहे कि यह तो प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

जिस दिन तुमसे कोई पाप हो गया होगा, उस दिन सेवा करते समय प्रभु अप्रसन्न-से लगेंगे। जीव पाप करता है तो उन्हें दुःख होता है, कष्ट होता है। अतः शुद्ध होकर सेवा करो। जब तक मन मलिन होगा, तब तक आनन्दकी प्राप्ति नहीं होगी। मनसे मलिनता दूर करो।

प्रभु-सेवामें भावना और अटलता कैसी होनी चाहिए, इस विषयमें नामदेव महाराजका एक जीवन-प्रसंग द्रष्टव्य है।

नामदेव महाराजके घरमें प्रतिदिन विठ्ठलनाथजीकी सेवा-पूजा की जाती थी। जब नामदेव तीन वर्षके बालक थे, तबकी यह बात है। उनके पिताजीको एक बार कहीं बाहर जाना पड़ा तो सेवा-पूजाका काम वे नामदेवको सौंपते गए। पिताने नामदेवसे कहा—बेटा, विठ्ठलनाथजी हमारे घरके स्वामी हैं। उनकी सेवा किए बिना भोजन करना पाप है। यह सुनकर नामदेवने सेवा करनेकी रीति पूछी।

पिताजीने कहा—श्रीविठ्ठलनाथ घरकी प्रत्येक वस्तुके स्वामी हैं, अतः उनके प्रसादके रूपमें वस्तुको ग्रहण करनेमें दोष नहीं है। ठाकुरजीको अर्पण न करना ही पाप है।

वेदांती ब्रह्मकी बात बताते हैं। जीव ब्रह्म है। जीव चाहे ब्रह्मरूप ही हो, किंतु मानव-शरीरके कारण आज तो यह प्रभुका दास ही है। परमात्मा उसे न जाने कब अपनाकर ब्रह्मरूप बनावेंगे। तब तक तो वह दास ही है।

दास्यभावसे जीवन सुधरता है और मृत्यु भी सुधरती है। भागवतमें वात्सल्यभाव, मधुरभाव आदिका वर्णन है, किंतु वे सभी दास्यभावसे मिश्रित ही हैं। दास्यभावके बिना ईश्वरको जीव पर दया नहीं आती।

पिताजी बोले—बेटे, प्रातःकालमें जल्दी जागकर स्नानादिसे पवित्र होनेके बाद भगवान्‌की प्रार्थना करना। प्रार्थना करके उन्हें जगाना—

उत्तिष्ठ मम गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यं मंगलं कुरु॥

किंतु प्रथम भोग-सामग्री तैयार कर लेना।

वैष्णवोंके हृदयमें प्रेमभाव जगने पर ही ठाकुरजीको भूख लगती है।

भगवान्‌के चरण धीरे-धीरे धोना। कहीं उन्हें कोई तकलीफ न होने पाए। क्योंकि—

यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ।

स्नान कराकर धीरे-धीरे उनके दर्शन करना। सद्‌भावसे सेवा करना। फिर उनका शृंगार करना। उनसे पूछना कि आज आप कौन-सा पीतांबर पहनेंगे ?

शृंगारकर्ता भगवान्‌के साथ एक हो जाता है। प्रभुने यदि दिया है, तो फिर उन्हींके लिए खर्च करनेमें संकोच क्यों ? योगीको जो आनंद समाधिसे मिलता है, वही आनन्द भक्तको ठाकुरजीका शृंगार करते हुए प्राप्त होता है। खुली आँखोंसे ही समाधि-सा आनन्द मिलता है। योगी, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि करते हैं, फिर भी उनका मन कई बार कुछ उल्टा ही कर बैठता है।

कन्हैयाको बार-बार बुलाने पर ही वह बोलेगा। जगत्‌को भूलकर परमात्मामें तन्मय होनेसे आनन्द प्राप्त होगा। शृंगारके पश्चात् दूध और भोग अर्पण करना। विट्ठलनाथजी तो बड़े लजीले हैं। बार-बार विनती करने पर ही वे भोजन करते हैं। उनसे प्रार्थना करना कि भले ही उन्हें आवश्यकता न हो, फिर भी वे भोग आवश्य ग्रहण करें। जब कई बार इस तरह प्रार्थना करोगे, तभी ठाकुरजी दूधको स्वीकार करेंगे।

सेवा-भक्तिमें प्रेम मुख्य है। सेवा भावसे करनी चाहिए—हे नाथ, आपने अजामिल जैसोंका भी उद्धार किया, तो क्या मेरा नहीं करोगे ? मैं अधम तो हूँ किंतु अजामिल जितना नहीं हूँ। अजामिल तो वेश्याके साथ रहता था। मैंने वैसा तो कुछ किया नहीं है। तो क्या मुझ पर आप कृपा नहीं करेंगे ?

स्तुतिके पश्चात् भगवान्‌को वंदन करना। स्तुतिमें कोई क्षति रह गई हो, तो प्रणाम करनेसे सब कुछ ठीक हो जाता है। सेवाकी समाप्तिमें बालकृष्णको साष्टांग प्रणाम करना।

नामदेव तो भोले-भाले बालक थे, सो उन्होंने पिताकी बातोंको अक्षरशः सच मान लिया।

नन्हें बालकको यदि ढंगसे समझाया जाएगा, तो उसे मूर्तिमें भी भगवान् दिखाई देंगे। बड़ा होनेके बाद समझाने लगोगे तो वह दलील करने लगेगा। अतः बाल्यावस्थामें ही भक्तिके संस्कार दृढ़ करने चाहिए :

नामदेवके मनमें भी यह बात जम गई कि विठ्ठलनाथ दूध अवश्य पियेंगे और वे भोजन भी करेंगे।

भक्त बना या बनाया नहीं जाता। भक्त तो जन्मसे ही बनते हैं। नामदेव बाल्यावस्थासे ही भक्त थे।

जिस दिन पिताजी बाहर गए, विट्ठलनाथकी सेवाकी धुनमें मस्त नामदेवको नींद ही नहीं आई। वह बालक प्रातःकाल चार बजे ही प्रभुकी सेवामें लीन हो गया। उसने प्रभुको प्रेमसे जगाया।

बालक बन कर भगवान्‌की सेवा करो। बालक प्रायः निर्दोष होते हैं। निर्दोषतासे सेवा करो।

नामदेवने ठाकुरजीके चरणोंको धोकर उनका सुंदर श्रृंगार किया। विट्ठलनाथजी प्रसन्न दीखने लगे। नामदेव गरीब घरके थे। तुलसीकी माला, जो ठाकुरजीको भी प्रिय है, पहना दी।

अल्प देने पर भी अधिक मान ले, वह ईश्वर है और अधिकको भी अल्प माने वही जीव है।

नामदेवने ठाकुरजीको गोपीचंदनका तिलक लगाया। श्रृंगारके बाद ठाकुरजीको भूख लगती है।

हमारे हृदयमें यदि प्रेम है, तो भगवान्‌की मूर्तिमें चेतना आती है। प्रेम जड़को भी चेतन और प्रेमका अभाव चेतनको भी जड़ बना सकता है।

नामदेव दूध लाकर प्रभुको अर्पित करते हुए कहने लगे—विट्ठलनाथ, आप तो जगत्‌के पालनकर्ता हैं, अतः मैं आपको क्या खिला सकता हूँ? आपका जो है वही आपको दे रहा हूँ।

त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।

नामदेव बार-बार प्रभुको मनाने लगे, बिनती करने लगे, पर नामदेवका प्रेम देखकर विट्ठलनाथ दूध पीनेकी अपेक्षा बालकको ही निहारने लगे।

विट्ठलको दूध पीते हुए न देखकर नामदेव बोले—मैं बालक हूँ। मैंने आज तक कभी आपकी सेवा नहीं की है, अतः आप कहीं मुझसे नाराज तो नहीं हैं? आप दूध क्यों नहीं पीते? आपको भूख लगी होगी। दूध पी लीजिए।

कहीं दूधमें शक्कर तो कम नहीं है?

यह सोचकर उन्होंने घरसे लाकर कुछ और शक्कर डाल दी उस दूधमें।

नामदेव फिर बोले—विट्ठलनाथ, यदि आप दूधपान नहीं करेंगे; तो मैं भी दूध पीना छोड़ दूंगा। आप दूध नहीं पियेंगे तो मैं आपके चरणमें अपना सिर फोड़ दूंगा।

बालक व्याकुल था कि विट्ठलनाथजी दूध नहीं पियेंगे, तो पिताजी उस पर क्रोधित हो जाएँगे। बालक अपना सिर फोड़ने ही जा रहा था कि परमात्माने दूधका बर्तन उठा लिया। आज जड़मूर्ति भी चेतनमयी हो गई। नामदेवके प्रेमसे विट्ठलनाथजी प्रसन्न हो गए। विट्ठलनाथजीको दूध पीते हुए देखकर बालक प्रसन्न हो गया।

बालकको यह भी तो आशा थी कि विट्ठलनाथका कुछ-न-कुछ प्रसाद तो मिलेगा ही, किन्तु आज तो विट्ठलनाथ सारा-का-सारा दूध पी जानेकी इच्छा कर रहे थे. वह देखकर नामदेव बोले—आपको आज क्या हो गया है? क्या आप ही सारा-का-सारा दूध पी जाएँगे? क्या मुझे थोड़ा-सा भी नहीं देंगे?

यह सुनकर विट्ठलनाथजीने नामदेवको उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और फिर दोनोंने एक-दूसरेको दूध पिलाया। इस प्रकार सेवाक्रम बताया।

प्रेम और सेवाके बिना भक्ति सफल नहीं हो पाती। इस प्रेममें तो ऐसा बल है कि निष्कामको सकाम और निराकारको साकार बनना पड़ता है। ईश्वरके साथ प्रेम करो। ईश्वर जीवसे प्रेमकी मांग करते हैं। प्रेम करने योग्य तो मात्र ईश्वर ही हैं। सेवा करते-करते यदि हृदय आर्द्र हो जाये और आँखोंसे अश्रुधारा बह निकले तो मानो कि सेवा सच्ची है।

ज्ञानसे वस्तुके स्वरूपका, पदार्थका ज्ञान होता है, किंतु ज्ञानसे उस वस्तुके स्वरूपमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

पर भक्तिमें उस वस्तुके स्वरूपमें भी परिवर्तन कर देनेकी शक्ति है। प्रेममें, भक्तिमें जड़मूर्तिको भी चेतनमय बना देनेकी शक्ति है।

बिंबका शृंगार करोगे तो प्रतिबिंब भी निखरेगा। ईश्वरको दोगे, तो वे भी तुम्हें कई गुना बढ़ाकर वापस देगें।

द्रौपदीकी लाज परमात्माने रख ली। उन दोनोंका किसी स्थान पर मिलन हुआ। मिलने पर द्रौपदीने भगवान्‌का आभार माना, तो भगवान्‌ने कहा— आभार ? उपकारकी तो कोई बात ही नहीं है। मैं तो आज तेरे ऋणसे ही मुक्त हुआ। शायद तू यह बात भूल गई है, किंतु मुझे तो याद है। एक बार मेरी उँगलीसे रक्तकी धार बह निकली थी, तो सारी रानियाँ महलमें पट्टी ढूँढ़ने निकल पड़ी थीं, तब तूने तो अपना ही वस्त्र फाड़कर मुझे पट्टी बाँध दी थी। उस पट्टीमें ९९९ धागे थे, तो मैंने उस समय सोचा था कि मैं अपनी बहनको ९९९ साड़ियाँ दूँगा। वह देकर आज मैं ऋणमुक्त हो गया हूँ।

मनुष्य ईश्वरको जितना भी देता है, ईश्वर उसे अनंत गुना बनाकर देते हैं। परमात्मा निजलाभ परिपूर्ण हैं। अतः परमात्मा अपनेको समर्पित की गई वस्तु कई गुना करके वापस देते हैं। वे अपने सिर पर किसीका भी ऋण नहीं रखते, इतना ही नहीं, अपितु वे उस ऋणको ब्याजके साथ वापस करते हैं।

प्रह्लादजी स्तुति करते हैं—प्रभु, आपके मांगलिक सद्गुणोंका वर्णन मैं कैसे करूँ ? ब्रह्मादि देव भी आपकी लीलाका पार नहीं पा सकते। आप शांत हो जाइए। मेरे पिताका तो, जो जगत्‌के लिए कंटकके समान थे, आपने वध कर दिया, वह अच्छा ही हुआ।

आपके इस भयंकर स्वरूपको देखकर देवोंको डर लग रहा है, किंतु मुझे कोई भय नहीं है। मुझे आपके उग्र स्वरूपका कोई भय नहीं है। मुझे तो इस संसारका ही भय है—

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुस्सहोग्रसंसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु॥

भा. ७-९-१६

हे दीनबंधु, मुझे तो मात्र इस असह्य और उग्र संसारचक्रमें पिस जानेका ही भय है। मेरे कर्मपाशोंसे बांधकर मुझे इन भयंकर जंतुओंके बीच छोड़ दिया गया है। सब जीवोंके एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप ऐसे अपने चरणोंमें, हे नाथ, प्रसन्नतासे आप मुझे कब बुलाएँगे ?

आप ही सभीके आश्रय हैं। आप ही हमारे प्रिय सुहृद हैं। आप ही सभीके परमाराध्य हैं। आपकी लीला-कथाका गान करता हुआ मैं बड़ी सरलतासे इस संसारकी कठिनाइयोंको पार कर जाऊँगा।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम्।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः॥ भा० ७.९.२३

हे भगवान्, जिन्हें प्राप्त करनेके लिए संसारी लोग उत्सुक रहते हैं, वह स्वर्गमें प्राप्त सभी लोकपालकोंकी आयु, लक्ष्मी और वैभव मैंने देख लिया। मेरे पिताके लिए किस वस्तुकी कमी थी? आँखोंका एक ही संकेत सभी कुछ ला देनेके लिए समर्थ था। स्वर्गकी सारी संपत्ति भी उनके लिए प्राप्त थी, फिर भी उनका नाश हो गया। भोगोपभोगके ऐसे विनाशकारी परिणाम मैंने देख लिए। अतः मैं भोगोपभोग, दीर्घायुष्य, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, इन्द्रिय-भोग्य वस्तु या ब्रह्माका वैभव आदि की इच्छा नहीं करता हूँ। मैं तो कहता हूँ—

आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् न इच्छामि ते।

भगवान्, यह संसार तो अंधकारसे भरा हुआ एक ऐसा कुआँ है, जिसमें काटनेके लिए हमेशा तत्पर एक कालसर्प घूमता रहता है। इस कुएँमें विषयभोगोंकी इच्छावाले मनुष्य फँसे हुए हैं।

हे वैकुंठनाथ, मैं यह सब कुछ जानता हूँ, फिर भी मेरा मन आपकी लीलाओंकी कथामें लग नहीं पाता। मेरे मनकी दुर्दशा हो गई है। वह पापवासनासे दूषित हो गया है और स्वयं भी दुष्ट है। वह कामवासनाके लिए ही आतुर रहता है। वह हर्ष-शोक, लोक-परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदिकी चिंतामें ही डूबा रहता है। मन इधर-उधर भटकता रहता है और उसे नियंत्रित करना बड़ा कठिन है। वह कामातुर है, भयत्रस्त है और भाँति-भाँतिकी इच्छाओंसे दूषित और दुःखी है।

मनके इन विशेषणोंके विषयमें सोचो। मन तो दुरितं दुष्टम् असाधु तीव्रम् कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं, है।

अतः आपकी कथाओंके प्रति मेरा मन उदासीन है। मनकी ऐसी स्थितिके कारण मैं दीन बन गया हूँ। ऐसी दशामें मैं आपके तत्त्वका विचार कैसे करूँ?

हे नाथ, मेरे ऐसे मनको नियंत्रित करनेकी शक्ति मुझे दीजिए और मेरी रक्षा कीजिए।

नृसिंह स्वामीने कहा—बेटे, बिगड़ा हुआ मन भगवान्के नामजपके बिना सुधरता नहीं है। प्रह्लाद तेरा मन शुद्ध है अतः तू मेरा दर्शन कर सका।

मनकी दशाकी बात तो हो गई अब इन्द्रियोंकी दशा देखें।

प्रह्लाद कहते हैं—वैसे तो मैं मात्र पाँच वर्षका हूँ, फिर भी मेरा पाँच स्त्रियोंके साथ विवाह हो गया है। ये पाँच पत्नियाँ मुझे चैनसे बैठने नहीं देतीं। ये मुझे नचाती रहती हैं। वे हमेशा अतृप्त ही रहती हैं।

भोजनसे तृप्ति नहीं होती। भोगसे ही यदि तृप्ति हो सकती, तो यह जीव तो कई जन्मोंसे भोगोपभोग करता आया है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई है। तृप्ति भोगसे नहीं त्यागसे ही हो सकती है।

यह लूली (जीभ) मुझे बहुत नचाती है। यदि इसे राजी करता हूँ, तो आँखें सताने लगती हैं, कि जरा सिनेमा तो दिखा दो।

क्या सिनेमासे मनोरंजन प्राप्त हो सकता है? मनोरंजन तो तब मिलता है कि जब मन निर्विषय बनता है और इन्द्रियाँ आत्मस्वरूपमें लीन हो जाती हैं। सच्चा आनन्द तो तभी मिलता है।

मनुष्य यह जानता ही नहीं है कि सच्चा सुख और सच्चा आनन्द कहाँ है।

आँखोंको समझाता हूँ तो कान चैन नहीं लेते देते। उन्हें तो रेडियोसे सिनेसंगीत सुनना है।

जो व्यक्ति मानवजीवन सफल करनेकी इच्छा रखता है, वह शृंगारी गीत कभी नहीं सुनता।

स्पर्श-सुख भी मुझे सताता है। मैं जानता हूँ कि मेरा शरीर हाड़-मांसके सिवा और कुछ भी नहीं है, फिर भी मैं लाचार हूँ। मेरा सयानापन न जाने कहाँ गायब हो जाता है?

इन इन्द्रियोंने अनेक पत्नियोंवाले पति-सी मेरी दुर्दशा कर दी है। मेरी दुर्दशा तो देखो–

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥

भा० ७.९.४०

हे अच्युत! हमेशा अतृप्त रहनेवाली यह जीभ मुझे स्वादिष्ट रसोंकी ओर खींचती रहती है, जननेन्द्रिय विषयभोगके लिए सुंदर स्त्रीकी ओर, त्वचा कोमल स्पर्शसुखकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर संगीतकी ओर नाक भीनीभीनी सुगंधकी ओर चपल नेत्र सौंदर्यकी ओर मुझे आकर्षित करते रहते हैं। कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयोंकी ओर मुझे आकर्षित करती हैं। मेरी दशा तो ऐसी हो रही है जैसे कि कई पत्नियोंवाले किसी पुरुषको सारी पत्नियाँ अपने-अपने शयनगृहकी ओर खींच रही हों।

कोई एक चोर किसीके घरमें चोरी करनेके लिए घुसा। किसी साहबका घर था वह। उसकी दो पत्नियाँ थीं। एक पत्नी साहबके केश पकड़कर ऊपरकी ओर खींच रही थी तो दूसरी पत्नी साहबके पाँव पकड़ नीचेकी ओर घसीट रही थी। चोरने जब यह दृश्य देखा तो वह अपनी हँसी रोक न सका और वह हँसनेके कारण पकड़ा गया और उसे राजाके पास ले आया गया। चोरने राजासे विनती की कि मुझे चाहे जो दंड दीजिए किंतु दो पत्नीवाले उस साहब जैसा दंड न देना।

यह कथा किसी और साहबकी नहीं जीवमात्रकी है।

पाँच इन्द्रियोंके पाँच विषय सच्चे पति नहीं हैं किंतु पति होना चाहते हैं। वैसे तो पाँचों इन्द्रियोंके पति तो परमात्मा ही हैं। इन्द्रियाँ परमात्माके साथ ही सोती हैं, वे विषयोंके साथ नहीं सो सकतीं।

तृप्ति भोगमें नहीं, त्यागमें है। इन्द्रियोंके आवेगको सह कर उसे नियंत्रित करोगे तो सुखी होगे।

भोगसे वासना बढ़ती है। भोगोपभोगसे इन्द्रियोंकी रक्षा नहीं, क्षय ही होता है। भक्तिरससे ही इन्द्रियां पुष्ट हो सकती हैं। विषयोंका चिंतन करनेसे शक्तिका क्षय होता है। ईश्वरस्मरणसे शक्तिकी प्राप्ति होती है।

प्रह्लाद आगे कहते हैं—

प्रभु, आप कहते हैं कि संसारका मोह त्याग कर मेरा ही भजन करो, किंतु भजन करें तो कैसे करें ? आपने इस संसारमें विषयोंका ऐसा आकर्षण रचा है कि बड़े-बड़े ज्ञानी भी भटक जाते हैं। मायाने इस संसारमें विषयोंका ऐसा आकर्षण रचा हुआ है कि बहुतसे विद्वान् भी भटक जाते हैं। संसारका सुख वैसे तो विष है, फिर भी अमृत-सा ही लगता है। संसारके विषय ऐसे आकर्षक क्यों बनाये हैं आपने ? जगत्में ऐसे सुन्दर पदार्थोंको उत्पन्न ही क्यों किया ? इन्हींसे तो इन्द्रियां ललचाती हैं, लिहाजा वे फँसती है।

नाथ, मैं बालका हूँ, मेरी त्रुटियाँ क्षमा करना, किंतु मैं कहता हूँ कि जगत्को सुन्दर बनाया है तभी तो इन्द्रियां मोहग्रस्त हो जाती हैं। इस जगत्के विषय ऐसे सुन्दर हैं कि आँखने देखा नहीं कि चित्त चंचल हो जाता है। संसारको ऐसा सुन्दर न बनाया होता, तो कितना अच्छा होता ? आप इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये कहते हैं किंतु इस सुन्दर दृश्यको देख कर सारा सयानापन हवा हो जाता है।

परमात्माने सोच-समझ कर ही इस संसारको सुन्दर बनाया है कि मेरी संतान सुखी हो, किंतु मर्यादाका उल्लंघन करके आसक्तिपूर्वक भोगोपभोग करके मनुष्य दुःखी हो जाये तो उसके लिए ईश्वर क्या करे ? इसमें ईश्वरका क्या दोष ?

जीव मर्यादा तोड़कर विषयोंका भोग करे और दुःखी हो जाये तो ईश्वरका क्या दोष ?

नृसिंह भगवान् प्रह्लादको समझा रहे हैं—

जीवोंको सुखी करनेके हेतु ही मैंने संसारके सारे पदार्थ उत्पन्न किए हैं। मनुष्य यदि अमर्यादापूर्वक, आसक्तिपूर्वक पदार्थोंका उपभोग करे और दुःखी होता रहे, तो इसमें मेरा क्या दोष ? मर्यादापूर्वक पदार्थोंको और विषयोंको भोगनेवाला मनुष्य सुखी होता है।

विषयोंके उपभोगके समय मनुष्यको यह न भूलना चाहिए कि संसार-निर्माता वह (भगवान्) हैं। संसारको त्याग कर मनुष्य कहाँ जाएगा ? मैं भी रहूँगा और संसार भी रहेगा। संसारको भोगदृष्टिसे नहीं, किंतु भगवद्दृष्टिसे मनुष्य यदि देखे तो वह सुखी होगा। तू स्वयंको ही सुधार। तू सारे संसारको तो कैसे सुधार सकेगा ?

एक बार अकबरकी पुत्रीके पाँवमें काँटा चुभ गया, तो अकबरने बीरबलको बुलाकर आज्ञा दी कि मेरे साम्राज्यकी सारी भूमिको चमड़ेसे आच्छादित करा दो कि जिससे भविष्यमें फिर कभी शाहजादीके पैरमें काँटा चुभ न सके। बीरबल सिर खुजलाने लगा कि चमड़ेका इतना बड़ा टुकड़ा कहाँसे लाया जाए, जो सारे सम्राज्यकी भूमिको आच्छादित कर दे। राजा कुछ तरंगी-से होते हैं। बीरबलने सोचा कि सारी भूमिको चमड़ेसे ढकनेकी अपेक्षा राजपुत्रीके पाँव ही क्यों न चमड़ेसे ढक दिए जाए और बीरबलने जूते बनवाकर राजपुत्रीको पहना दिये।

जगत्में काँटे हैं और रहेंगे भी, पर जिसके पाँवमें जूते हैं, उसको काँटे नहीं चुभ सकते। विवेकपूर्वक मर्यादामें रह कर मनुष्य सुखका उपभोग करे तो सुखी हो सकता है। सुखोंके उपभोगमें मर्यादा और विवेकका अनादर करनेपर मनुष्यको दुःखी होना पड़ता है

सभीके सुखके हेतु ही संसारका निर्माण किया गया है, किंतु मनुष्य विवेकपूर्वक इसका उपभोग नहीं करता है, अतः दुःखी होता है।

किसी एक गाँवमें पीनेके पानीकी बड़ी तकलीफ थी। अन्नदानसे भी जलदान श्रेष्ठ कहा गया है। अतः किसी एक सेठने पंद्रह-बीस हजार रुपयोंकी लागतसे जनताके हितार्थ एक कुआँ बनवाया। लोग जलका उपयोग करते हुए सेठको आशीर्वाद देने लगे।

एक दिन इत्तफाकसे खेलता-कूदता कोई लड़का एक कुएँमें गिरकर पानीमें डूबकर मर गया। अति दुःखमें विवेक नहीं रह पाता। उस मृत लड़केका पिता सेठके साथ झगड़ा करने लगा और उसे गाली देने लगा कि यदि उन्होंने कुआँ बनवाया ही न होता तो लड़केकी जान न जाती! अब आप ही सोचिए। क्या सेठने किसी व्यक्तिके पुत्रको मारनेके लिए कुआँ बनवाया था? उसने तो सभीके लाभके लिए ही बनवाया था। ऐसा परोपकारी काम करनेके कारण सारा गाँव उसकी प्रशंसा करता था, आभारी था। जो लड़का मर गया, यह अच्छा तो नहीं हुआ, किंतु इसमें सेठका क्या दोष?

यह संसार भी एक कुआँ ही है किंतु किसीको डुबा देनेके लिए तो इसका निर्माण नहीं हुआ है।

प्रह्लादजी कहने लगे—प्रभु, आपको अपराधी तो कौन कह सकता है किंतु इन विषयोंको सुन्दर बनाकर आपने ठीक नहीं किया। अतः अब तो आप हमें यही समझाएं कि संसारके विषयोंमें मन फंसने न पाए, इसके लिए हम क्या करें?

नृसिंह भगवान् कहने लगे—इस जगत्को सुखी करनेके हेतु मैंने दो अमृत बनाए हैं। उनका पान करनेसे तुम्हारा मन विषयोंकी ओर आकर्षित नहीं होगा और इन्द्रियाँ तुम्हें सताएँगी भी नहीं, ये दो अमृत हैं: (१) नामामृत और (२) कथामृत।

जब भी मनमें विषयका, पापका प्रवेश हो, तब कथामृत और नामामृतका आश्रय लो। जीवको, मनुष्यको विषय सता न सके, इसी हेतुसे मैंने ये दो अमृत बनाये हैं। उनका नित्य सेवन करो।

स्वर्गमें जो अमृत मिलता है, उसे पीनेसे सुख तो प्राप्त होता है किंतु कहते हैं कि उससे पुण्यका क्षय भी होता है किंतु कथामृत स्वर्गके उस अमृतकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। इसे पीनेसे पापका क्षय होता है। लीलाकथा और नाम अमृत हैं। कथामृत पापको भस्मीभूत करके जीवनको शुद्ध करता है।

मृत्यु सभीका भक्षण करती है किंतु श्रीरामचंद्र मृत्युभक्षकके भी काल हैं। रावणको मारनेके लिए राचचंद्रको यह सब क्यों करना पड़ा? रावणकी हत्याके लिए रामको ऐसी लीला क्यों रचनी पड़ी? राम तो कालके भी काल हैं। ईश्वर तो अनंत शक्तिशाली हैं। वे संकल्पमात्रसे ही रावणको मार सकते थे किंतु रामचंद्रने यह सारी लीला इस हेतु रची थी कि जनता रामायणका पाठ करे। रामायण-श्रवणके समय तो लोग जगत्को भूलेंगे ही। उन्होंने रावणकी हत्या करनेके लिए नहीं, किंतु कलियुगके लोगोंको लीलाश्रवणमें तल्लीन करनेके हेतु जन्म लिया था। लीलाकथा मोक्षदाता है।

प्रत्येक इन्द्रियको प्रेमसे अपनी ओर खींचकर गोपियोंको परमानंदका दान करनेके लिए श्रीकृष्णकी लीला थी। वे चाहते थे कि गोपियां मेरी लीला सुनें, देखें और जगत्‌को भूल जाएँ। उन्होंने गोपियोंको मरनेसे पहले परमानंदका दान दिया। रासलीला कामविजयकी लीला है। श्रीकृष्ण भगवान्‌की कामदेव पर यह विजय है। जगत्‌के सभी विषयोंको मन भूल जाये तो मनका निरोध होगा और वह ईश्वरमें लीन हो जाएगा। कृष्णलीलाका प्रयोजन ही यह है कि मनुष्य किसी भी रीतिसे जगत्‌को भूल जाये और कृष्णलीलामें तन्मय हो जाये। गोपियां इसी तरह तो सभी लीलाओंका श्रवण-स्मरण करती हुईं प्रभुमें लीन हुईं थीं।

जब नामब्रह्म और नादब्रह्म एक होते हैं, तब परब्रह्मका प्राकट्य होता है। नामामृत कुछ भी कर सकता है, इसके लिए क्या अशक्य है ?

श्रीराम नाम जपनसे सारे कष्ट जायें,
श्रीराम जपनसे सारा शुभ हो जाये।
श्रीराम रसना रटे जो सदा,
श्रीराम राममय विश्व सारा सुहाये।

मीराबाईने भी कहा है —

मेरो मन राम ही राम रटै रे।
रामनाम जप लीजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे ॥

नामजपनमें, रामभजनमें वंसे किसी वस्तुकी आवश्यकता भी तो नहीं है। मीराबाईने एक भजनमें कहा है—मेरे पास कोई साधन नहीं है। मैं बिलकुल साधन-रहित हूँ। मेरे लिए तो बस एक तेरा नाम ही सब कुछ है—

डंको नाम सुरतकी डोरी, कलियाँ प्रेम चढ़ाऊँ ए माय,
प्रेमको ढोल बन्यो अति भारी, मगन हो गुण गाऊँ ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ ढपली, सोती सुरत जगाऊँ ए माय,
कीर्तन करूँ मैं प्रीतम आगे, सो अमरापुर पाऊँ ए माय।
मो अबला पर किरपा कीजो, गुण गोविंदका गाऊँ ए माय,
मीराके प्रभु गिरधर नागर रज चरणोंकी पाऊँ ए माय।
रामनाम मेरे मन बसियो, रास रसियो रिझाऊँ ए माय,
रामरसियो रिझाऊँ ए माय।

ये दो अमृत मैंने निःशुल्क ही दिये हैं। ये दो अमृत श्रेष्ठ हैं। कृष्णका नाम स्वर्गके अमृतसे भी श्रेष्ठ है। देव स्वर्गके अमृतका पान करते हैं फिर भी उन्हें शांति नहीं मिल पाती। कथामृतके पानसे विषय शांत हो जाते हैं। नामामृत और कथामृतका पान करो। जब-जब

मनमें पाप उभरे और आँखोंमें विकार आए, तब-तब इन दो अमृतोंका पान करो। इनके पानसे विषय तुम्हें नहीं सताएँगे। भोगी कभी योगी नहीं हो सकता। कलिकालमें मनुष्य भोगी है, अतः यदि वह योगी बननेका प्रयत्न करेगा तो भी उसे सफलता तुरंत नहीं मिल पाएगी अतः नामामृत और कथामृत ही सरल उपाय हैं।

कथामृत और नामामृतके पानसे संसार सुखदायी और ब्रह्मरूप लगता है।

अज्ञानीको संसार दुःखरूप लगता है क्योंकि उसकी दृष्टिमें विकार है। ज्ञानीके लिए संसार सुखरूप है, क्योंकि उसकी दृष्टि ब्रह्ममय होती है।

प्रह्लाद कहने लगे—प्रभु, आपने दो अमृत बनाये हैं, यह तो ठीक है, किंतु मुझे तो इसका कोई लाभ है नहीं। मैं जानता हूँ कि भगवान्की कथा और नाम अमृत हैं किंतु मेरा मन इस कथा-कीर्तनमें स्थिर ही नहीं हो पाता।

कीर्तनके बिना कथा परिपूर्ण नहीं हो सकती। कीर्तनके बिना कथा अपूर्ण है। अतिशय पापीको कृष्णकीर्तनमेंसे आनन्द नहीं मिलता। पाप और अभिमानको दूर करनेके लिए कथामें जाना चाहिए। अभिमान जैसा शत्रु कोई नहीं है।

विवाह, मृत्यु और भोजनमें बदली (एकके बदलेमें दूसरा व्यक्ति) नहीं चल सकती है, तो फिर भजममें कैसे चल सकती है? विवाह, मृत्यु और भोजनकी भाँति भजन भी स्वयं ही करना है।

मात्र ज्ञान निरर्थक है। जीवनमें ज्ञानको जितना भी उतार सकोगे, उतना ही सार्थक होगा। भागव त् व्यक्तिको मृत्युके बाद मुक्ति देनेकी बात नहीं करती है। वह तो मृत्युसे पहले इसी जीवनमें ही मुक्ति देती है। इन्द्रियोंके समुदायको शुद्ध करो। गो—इन्द्रियाँ और कुल—समुदाय। इन्द्रियाँ शुद्ध होने पर तुम्हारा हृदय ही गोकुल बन जाएगा और उसमें परमात्मा विराजमान होंगे।

प्रह्लाद कहते हैं—नाथ, मैं जानता हूँ कि नामामृत और कथामृतका पान मन शुद्ध करता है और शुद्ध मनको जगत् ब्रह्ममय दृष्टिगोचर होता है किंतु मेरा मन ही ऐसा विचित्र है कि उन अमृतोंका शीघ्र आसरा नहीं लेता है।

सोचिए। क्या प्रह्लादजीका मन अशुद्ध था? नहीं। वे तो हम जैसे साधारण व्यक्तियोंकी बात कर रहे थे। वे हमारे मनकी कह रहे थे।

सांसारिक विषयोंके चिंतनसे हमारा मन विकृत हो गया है, अतः जगत् भी हमें विकृत ही दीखता है। सिद्ध ज्ञानीको जगत् विकृत नहीं, किंतु ब्रह्मरूप दिखाई देता है, क्योंकि वे परमात्माका सतत चिंतन करते हैं। साधकको भी जगत् दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह तो साधनामें लीन हो गया होता है।

जो ईश्वरसे विमुख है, उसीके लिए जगत् बिगड़ा हुआ है। नामका आश्रय लेने पर मन सुधरता है। हम जैसे साधारण मानवोंके लिए और कोई मार्ग नहीं है। संसारका चिंतन करनेसे मन बिगड़ा हुआ रहता है। श्रीकृष्णके स्वरूपका चिंतन और स्मरण करनेसे वह मन सुधर सकता है।

जब हम कथामें बैठे हुए होते हैं, तो हमारी दृष्टि बार-बार घड़ीकी ओर दौड़ती है, किंतु जब बातें करते होते हैं तब हाथ पर घड़ीके होने पर भी दृष्टि वहाँ जाती ही नहीं है और रातको डेढ़ भी बज जाता है। समयका नाश सर्वस्वका नाश है। यदि मरते समय कोई लक्षाधिपति भी ठाकुरजीसे कहे कि मैं लाख-दो लाख रुपये देनेको तैयार हूँ, मुझे दो दिन और दीजिए तो क्या ठाकुरजी उसकी आयु बढ़ा देंगे? नहीं, क्योंकि भगवान् समयका दान करनेमें बड़े कृपण हैं।

यह मन बड़ा दुष्ट है, कामातुर है, सदा कामसुखका चिंतन करता रहता है। विषयोपभोगकी अपेक्षा कामसुखका चिंतन अधिक बुरा है। मन ऐसा बिगड़ा हुआ होता है कि वह कथामें स्थिर ही नहीं रहता। मन हर्ष, शोक और भयसे युक्त है। मन थोड़ा-सा भी लाभ होने पर खुशीके मारे उछल पड़ता है और थोड़ी-सी हानिसे भी आँसू बहाने लगता है।

किसीभी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा हुआ है कि भगवानकी कृपासे धन मिलता है। भागवतके आठवें स्कंधमें कहा गया है कि मैं (प्रभु) जिस पर कृपा करता हूँ, उसकी सारी संपत्तिका नाश करता हूँ। भगवत्कृपाका फल धन नहीं है। धन तो प्रारब्धसे मिलता है। भगवान्की कृपासे तो मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जिस पर कृपा करते हैं, उसे संपत्ति नहीं, दरिद्रता देते हैं। प्रभुकृपा के होने पर तो सत्कर्म करनेकी इच्छा होगी।

जीव तो ऐसा दुष्ट है कि वह साधारण आनन्दसे भी पागल हो जाता है और थोड़े-से दुःखसे भी रोने लग जाता है।

संसारमें पाप है, ऐसी कल्पना कभी मत करो। तुम्हें संसारके नहीं, अपने मनमें छिपे हुए पापका उत्तर देना पड़ेगा। तुम जगत्के पाप दूर नहीं कर पाओगे।

प्रह्लाद कहते हैं—मेरा मन असाधु है। मेरा मन कामातुर है। आपकी कथामें, आपके नामस्मरणमें वह स्थिर नहीं हो पाता। कृपया आप ही मेरे मनको सुधारिए।

अपकारका बदला उपकारसे देना साधुता है।

भगवत्सेवासे विमुख व्यक्तिको देखकर मुझे दुःख होता है। संसारके प्रायः सभी लोग जितना श्रम करके दुःख उठाते हैं, उतना श्रम यदि भगवत्-सेवाके लिए करें, तो वे सुखी हो जाएँगे।

यह संसारका सुख कैसा है? सांसारिक सुख दाद-खुजलीको खुजलाने जैसा है। मैथुनसुख और अन्य इन्द्रियसुख भी इसी कोटिके हैं। जब तक खुजलीको खुजलाते रहोगे तब तक शांतिका आभास रहेगा किंतु नाखूनके विषसे दाद बढ़ता जाएगा और सताएगा भी अधिक। ये सभी सुख तुच्छ और दुःखदायी हैं

यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तत् तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखम्।

गीताजीमें भी कहा गया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

गी० ५-२२

इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होते हुए भोग निस्संदेह दुःखके कारण हैं। वे आदि और अंतयुक्त अर्थात् अनित्य हैं, अतः हे अर्जुन, ज्ञानी मनुष्य इन सुखोंमें कभी नहीं भटकते। वे ऐसे सुखोंकी इच्छा भी नहीं करते।

जब इन्द्रियाँ ललचाने लगें, उस समय मानव यदि मनको शांत रखे और सावधान रहे तो वह सुखी हो सकता है।

प्रह्लाद प्रार्थना करने लगे—हे नाथ, मैं इन सब झंझटोंसे थक गया हूँ।

तब प्रभु बोले—चल, मैं तुझे अपने धाममें ले चलूँ।

प्रह्लाद—मैं वहाँ अकेला नहीं आ सकता। मैं इतना स्वार्थी नहीं हूँ जो अपने इन बालमित्रोंको यहीं छोड़कर आपके साथ अकेला ही चल दूँ। मैं अकेला मुक्ति पाना नहीं चाहता।

प्रह्लादजी अपने सहपाठी असुर बालकोंका भी विचार करते हैं। वे सबकी मुक्ति चाहते हैं।

मात्र स्वयंके कल्याणार्थ वनमें साधन करनेवाला व्यक्ति स्वार्थी है। एकांतमें तप, साधन, भजन, जप करनेवाला मात्र अपने-आपका ही उद्धार कर पाता है। मात्र-अपने-आपका उद्धार करनेवाला स्वार्थी है।

अपने संसर्गमें, संगमें जो कोई आए, उसका भी उद्धार करे, वही सच्चा वैष्णव है।

अपनी जन्मभूमिको, जगत्के अन्य किसी भी जीवको सन्मार्गकी ओर न ले जाए और एकांतमें बैठकर तप, ध्यान करता रहे, वह चाहे कैसा भी ज्ञानी क्यों न हो, किंतु स्वार्थी ही है।

अतः प्रह्लाद बोले—हे प्रभु, मैं स्वार्थी नहीं हूँ। मैं आपके धाममें आऊँगा तो अपने इन सभी मित्रोंको साथ लेकर ही।

नाथ, मैं तो आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ? वेद भी आपकी स्तुति ठीकसे नहीं कर पाते हैं, फिर मैं तो बालक हूँ।

अनन्य भक्तिके छै साधन हैं (१) प्रार्थना (२) सेवा-पूजा (३) स्तुति (४) वंदन (पापोंको याद करते हुए वंदन) (५) स्मरण (व्यावहारिक कामकाज करते हुए भी प्रभुका स्मरण) (६) कथाश्रवण। इन छै साधनोंसे परमहंस गति मिलती है। कुछ साधन करो, साधनके बिना अनुभव नहीं होगा। इन साधनोंका आश्रय लेनेवाला प्रभुके चरण पाता है।

स्तुतिके अंतिम श्लोकमें प्रह्लादजीने ये छै साधन बताये हैं। जो इन साधनोंको कार्यान्वित करता है, उसे परमात्माके चरणोंमें अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

(१) प्रार्थना—प्रातःकालमें आँखें खुलने पर भगवान्का स्मरण करो, प्रार्थना करो। कर-दर्शन भी करो और धरतीमाताको प्रणाम करो।

सुबहमें कर-दर्शन करो अर्थात् हाथोंको देखकर सोचो कि मैं इन हाथोंसे आज पवित्र कर्म ही करूँगा ताकि परमात्माको मेरे घर आनेकी इच्छा हो सके। हाथ क्रियाशक्तिका प्रतीक है, इन हाथोंसे मैं सत्कर्म ही करूँगा।

शिवो भूत्वा शिवं यजेत् ।

कल्याणरूप बनकर उस कल्याणकारीकी पूजा करो ।

प्रातःकालमें इस श्लोकका पाठ करो—

करा‍ग्रे वसति लक्ष्मीः करमूले सरस्वती ।
करमध्ये तु गोविंदः प्रभाते करदर्शनम् ॥

आजकल तो प्रभातमें कर-दर्शनके बदले कपदर्शन किया जाने लगा है । जागते ही लोग चायका कप मुँहसे लगाते हैं और चाय के साथ बिस्किट खानेके बाद ही अन्य कामोंमें लगते हैं ।

प्रातःकाल एकदम बिस्तर छोड़नेके बदले प्रथम परमात्माको वंदन करो । उनसे प्रार्थना करो कि मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं । मेरे हृदयमें विराजिए और मेरे शरीररथका संचालन कीजिए ।

प्रातःकालमें दीनतापूर्वक प्रभुसे प्रार्थना करो—हे कृष्ण ! आपने जिस तरह अर्जुनका रथ चलाया था, उसी तरह मेरे शरीररथके स्वामी बनिए । भटकनेवाली इन्द्रियोंको रोकिए ।

मेरे इन्द्रियरूपी घोड़ोंको सँभालिए । मेरी रक्षा कीजिए ।

यदि श्रीकृष्ण तुम्हारे शरीररथके सारथी बनेंगे, तो रथ नियत स्थानपर पहुँचेगा और अगर तुम्हारा मन सारथी बनेगा तो तुम्हारा रथ गड्ढेमें गिर जाएगा ।

भगवान् जीवसे कहते हैं—यदि तू अपना रथ मेरे अधीन करेगा, तो तेरे इन्द्रियरूपी घोड़ोंको मैं नियंत्रित करूंगा, सम्हालूंगा और दिव्य मार्गकी ओर तुझे ले जाऊँगा ।

जिस प्रकार अपने रथकी बागडोर अर्जुनने प्रभुके हाथोंमें दे दी थी, उसी प्रकार तुम भी अपने रथकी बागडोर उनके हवाले करोगे, तो वे तुम्हारा रथ पार ले जाएंगे ।

(२) सेवा-पूजा—स्नानादिसे निवृत्त होकर एकांतमें प्रभुकी सेवा और उपासना करो ।

(३) स्तुति—नाथ, आपने जब अजामिल जैसे पापीका उद्धार कर दिया तो फिर मेरी ओर ही आप क्यों नहीं देखते ?

(४) कीर्तन—स्तुतिके बाद एकांतमें बैठकर प्रभुके नामका कीर्तन करो । अपना कामकाज करते समय भी प्रभुका स्मरण करते रहो ।

(५) कथाश्रवण—प्रभुके प्यारे सच्चे संतोंसे समागम करो । उनके श्रीमुखसे कथा-श्रवण करो । हो सके तो रोज कथा सुनो । यदि कथा न सुन सको तो रामायण, भागवतकी कथाका वाचन करो । प्रेमपूर्वक उसका पाठ करो ।

(६) स्मरण—समस्त कर्मोंका समर्पण--रातको सोनेसे पहले किए हुए कर्मोंका विचार करो कि क्या प्रभुको पसन्द आएँ, ऐसे कर्म मेरे हाथसे आज हुए हैं । यदि अंदरसे नकारात्मक उत्तर मिले, तो मान लेना कि वह दिन जीते हुए नहीं, मरते हुए ही गुजर गया है । यदि कोई पाप हो गया तो प्रायश्चित्त करो । और किए हुए सभी कर्मोंका फल परमात्माको अर्पित कर दो ।

इन छै साधनोंको विधिपूर्वक करनेसे जीवन सुधरता है और अनन्य भक्ति प्राप्त होती है ।

जिसके नयन स्नेहपूर्ण और हृदय विशाल है, भगवान्‌को वह बड़ा प्यारा है ।

जीवकी आदत ही कुछ ऐसी है कि किसीका उपकार तो वह भूल जाता है, किंतु अपकार याद रखता है।

जीव जो चाहता है वह सब कभी नहीं होता। भगवान् जो चाहते हैं वही होता है। ईश्वरसे कुछ भी न माँगना। यदि कुछ माँगोगे तो वह व्यापार-सा ही हो जाएगा।

नृसिंह स्वामीने प्रह्लादसे कुछ वरदान माँगनेको कहा। प्रह्लाद तो निष्काम भक्त थे, अतः वे कुछ भोगादि नहीं माँगते हैं।

जो प्रभुकी सेवा करे ओर उसके बदलेमें कुछ माँगे, वह तो बनिया है। भगवान्की भक्ति, भावके लिए करनी है, भोगके लिए नहीं। भोगार्थ भक्ति करनेवाला व्यक्ति भक्त नहीं बनिया है। बनिया वह है, जो देता तो अल्प ही है और अधिक पानेकी इच्छा करता है।

अपने लिए ठाकुरजीको कभी तकलीफ मत दो।

नृसिंह स्वामीने कहा—प्रह्लाद चाहे तेरी इच्छा न भी हो, फिर भी मुझे राजी करनेके लिए तो कुछ मांग।

प्रह्लाद—प्रभु, मुझ पर ऐसी कृपा करें कि संसारका कोई भी सुख पानेका विचार भी मेरे मनमें न आए। किसी भी प्रकारके इन्द्रिय-सुखकी भोगैषणा मेरे मनमें न जागे, ऐसा कीजिए।

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।

मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज ही अंकुरित न हो, मेरे हृदयमें किसी भी कामनाका अंकुर ही न रहे, ऐसा वरदान मुझे दें।

प्रह्लादने भगवान्से जो माँगा था, वही तुम भी माँगना। प्रह्लाद 'कामस्य' नहीं, 'कामानाम्' बोले थे। इन्द्रिय-सुखकी मनमें इच्छा ही नहीं जागनी चाहिए। ऐसा सादगीपूर्ण जीवन जिओ कि मनमें किसी सुखकी वासना ही न जागे। वासना बुरी है। वासनाके अनुसार विषयसुखका उपभोग न करने पर मन व्यग्र तो होता है, किंतु वासनाको तृप्त करने पर वह और ज्यादा भड़कती है।

सांसारिक सुखका उपभोग करनेकी इच्छा ही महादुःख है। जिसे किसी भी सुखकी इच्छा नहीं है, वही सच्चा सुखी है। सांसारिक सुखकी इच्छा कभी हो न पाए, ऐसा समझना ही सुख है। सुखकी इच्छा होते ही मनुष्यकी बुद्धि-शक्ति क्षीण होने लगती है। मन पर हमेशा भक्तिका अंकुश रखो।

प्रह्लादने वरदान भी कैसा माँगा! वासनाकी जागृति तेजका नाश करती है, सो ऐसी कृपा करो कि मेरे मनमें वासना जागे ही नहीं।

गीतामें कहा गया है—सर्व काम्यकर्मोंका और सर्व इच्छाओंका त्याग ही संन्यास है, ऐसा महात्मा कहते हैं—

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

जीव निष्काम होता है तो उसका जीवभाव नष्ट हो जाता है और फिर वह भगवान्के साथ एक हो जाता है। जीव ईश्वररूप बनता है। पुण्य भी मुक्तिमें बाधक है। विवेकसे पुण्योंका क्षय करो। मेरे स्वरूपका निरंतर ध्यान करो। पाप लोहेकी जंजीर है और पुण्य सुवर्णकी जंजीर है। इन दोनोंको नष्ट करके ही तुझे मेरे धाममें आना है।

इस स्तुतिका पाठ करके मुझे और तुझे जो याद करेगा वह कर्मबंधनोंसे मुक्त हो जाएगा।

प्रह्लाद— नाथ, ऐसी कृपा कीजिए कि मेरे पिताकी भी दुर्गति न होने पाए।

नृसिंह स्वामी—तेरे पिताको सद्गति देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । तेरे सत्कर्मोंके प्रतापसे ही तेरे पिता की सद्गति होगी। तेरे जैसे पुत्रसे तो इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार होता है — मातृपक्षकी सात, पितृपक्षकी सात और श्वसुरपक्षकी सात।

प्रह्लाद, आज तक मैंने रावण-शिशुपाल या अन्य किसी दैत्यको अपनी गोदमें कभी नहीं बिठाया, पर तुझ जैसे भक्तके कारण मैंने आज तेरे पिताको अपनी गोदमें लिया । तेरे जैसा भगवद्भक्त पिताका भी उद्धार करता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

माता-पिता दुराचारी हों किंतु यदि पुत्र सदाचारी होगा तो उनका भी उद्धार होगा। किंतु यदि माता-पिता सदाचारी हों और पुत्र दुराचारी हो तो उनका उद्धार नहीं हो सकता, उनकी दुर्गति ही होगी।

एक हंस-युगल आनंदसे रहता था। हंसिनी बड़ी सुंदर थी । एक बार घूमते-फिरते साँझ ढल गई तो वे एक वृक्ष पर बैठ गए। वहाँ कौएका एक घोंसला था। हंसने उससे रात गुजारने देनेकी विनती की। हंसिनीकी सुंदरता देखकर कौएकी मति भ्रष्ट हो गई।

शास्त्रमें कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी आँखसे पाप करता है, उसे अगले जन्ममें कौआ बनना पड़ता है।

कौएने हंस-हंसिनीको रातभर रहने दिया । दूसरे दिन वे जाने लगे तो कौआ हंसिनीको रोकने लगा । हंसने कहा—हंसिनी मेरी है, तो कौआ उसे अपनी कहने लगा। अंतमें दोनों न्याय माँगनेके लिए न्यायाधीशके पास पहुँचे।

न्यायाधीशने कहा कि मैं तो दोनोंकी बातें बराबर सुननेके बाद निर्णय करूँगा । वह कौआ बड़ा चालाक था। कौआ पितृदूत माना जाता है, अतः वह न्यायाधीशके घर जाकर कहने लगा कि तुम्हारे माता-पिता कौन-सी योनिमें हैं वह मैं जानता हूँ। अतः तुम मेरा काम करोगे, तो मैं तुम्हारा काम करूँगा। तुम हंसिनीको मुझे दिला दो और मैं तुम्हें यह बताऊँगा कि तुम्हारे माता-पिता कौन-सी योनिमें हैं।

न्यायाधीश कौवेकी बातोंमें आ गया। उसने दूसरे दिन न्याय करते हुए कहा—हंसिनी उसीकी है जो उड़ता हुआ आगे निकल जाए। हंसकी अपेक्षा कौआ अधिक गतिसे उड़ता है। कौआ उड़ता हुआ हंसके आगे निकल गया तो न्यायाधीशने हंसिनी उसीके हवाले कर दी।

अब न्यायाधीशने कौएसे अपने माता-पिताके बारेमें पूछा । कौएने उसे एक कूड़ेके ढेरके पास ले जाकर कहा—यह दो जंतु ही तुम्हारे माता-पिता हैं।

अन्यायी पुत्रके माता-पिताकी ऐसी ही दुर्गति होती है।

पिताके सिर बड़ी भारी जिम्मेदारी होती है । यदि वह अपने पुत्रको संस्कारी बनाए तो पुत्र ही उसका वैरी बन जाता है ।

प्रह्लाद, तू अशांत न होना। तेरे पिताका उद्धार हो गया है और साथ-साथ तेरी इक्कीस पीढ़ियाँ पवित्र हो गई हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, अब तो तुम्हें विश्वास हो गया होगा कि भगवान्के दण्डमें भी करुणा है। भगवान् जिन दैत्यादिको मारते हैं, उनका उद्धार भी तो करते हैं।

निष्काम भगवान्का कामभावसे चिंतन करनेवाली गोपियाँ भगवान्मय बन गईं, तो शिशुपाल क्रोधभावसे प्रभुका चिंतन करता था, फिर भी वह प्रभुमय हो गया। कंस भी भयसे प्रभुका चिंतन करता हुआ प्रभुमय हो गया।

भगवान्के ध्यानमें गोपियाँ कामभावसे, शिशुपाल वैर-द्वेषभावसे, कंस भयसे तन्मय हुआ था। अटल वैरभाव, वैरविहीन भक्तिभाव, भय, स्नेह या अन्य किसी भी भाव-कामनासे भगवान्में पूर्णतः मन लगाना चाहिए। भगवान्की दृष्टिसे इन भावोंमें कोई भेद नहीं है।

बात इतनी-सी और यही है कि किसी भी रीतिसे भगवान्से तन्मयता हो।

भगवान्के द्वारपाल जय और विजयके ये तीन अवतार हुए थे।

(१) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु—यह लोभका अवतार था।

(२) रावण और कुंभकर्ण—यह काम और प्रमादका अवतार था।

(३) शिशुपाल और दंतवक्र—यह क्रोध और अभिमानका अवतार था।

प्रह्लादजीने अपने पिताके मृतदेहका अग्निसंस्कार किया। ब्रह्माजीने प्रह्लादका राज्याभिषेक किया। प्रह्लादने नृसिंह स्वामीको प्रणाम किया। नृसिंह स्वामी प्रसन्न हो गए :

नारदजीने प्रेमसे प्रह्लादकी चरित्रकथा धर्मराजको सुनाई, फिरभी नारदजी ने देखा तो धर्मराजके मुख पर ग्लानि छाई हुई थी। नारदजी सोचमें डूब गए कि अब भी धर्मराज उदास क्यों हैं? क्या कथाके कथनमें कोई क्षति हो गई है, जो कि ये कथासे भी आनंदित नहीं हुए हैं।

धर्मराजसे नारदजीने पूछा—तुम्हारे मुख पर आनन्द क्यों नहीं है ? क्या चिंता है तुम्हें ?

धर्मराज—पाँच वर्षके प्रह्लादका ज्ञान, वैराग्य और प्रेम तो देखो। धन्य है प्रह्लाद और उसका बचपन और उसका प्रेम कि जिसके कारण प्रभु स्तंभमेंसे प्रकट हुए। मैं पचपन वर्षका हो गया फिर भी एक भी बार प्रभुका दर्शन नहीं कर सका हूँ। मेरा जीवन पशु-सा ही बीत गया। धनके पीछे दौड़ा, भूख लगी तो खाना खाया, नींद आई तो सो गया, वासना जगी तो कामांध हुआ। अवतार मनुष्यका मिला है फिर भी प्रभुके हितार्थ एक भी सत्कर्म नहीं किया। धिक्कार है मुझे। मेरा जीवन कुत्तेके जैसा ही बीत गया। मैं अब भी प्रभुमें लीन न हो सका, प्रभुप्रेममें पागल न हो सका, मुझे अभी तक भगवान् नहीं मिल पाए, जब कि उस पाँच वर्षके प्रह्लादने भगवान्को पा लिया था।

मुझे जगत्में प्रतिष्ठा, मान तो मिले, किंतु मैं भगवान्को न पा सका, अतः उदास हू।

भक्तिके विना, भगवान्के दर्शन बिना मेरा जीवन वृथा ही बीत गया। इसी कारणसे मुझे दुःख हो रहा है, मेरे चेहरे पर ग्लानि छाई हुई है। मेरा जीवन पशुवत् बीत गया। एक बार भी मैं परमात्माका दर्शन न पा सका, इसका मुझे दुःख है। मैंने वैसे तो बहुत किया किंतु जो करना चाहिए था, वही नहीं किया। मैंने भगवान्के लिए कुछ भी नहीं किया।

शरीरं सुरूपं नवीनं कलत्रं धनं मेरुतुल्यम् यशश्चारु चित्रम् ।
हरिरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किम् ततः किम् ततः किम्: ततः किम् ॥

सुन्दर शरीर, नवोढा पत्नी, मेरु पर्वत जितना धन और पुष्कल कीर्ति तो हो किंतु मन प्रभुचरणोंमें न लगा हुआ हो, तो उन सबसे क्या लाभ ? इनसे क्या हुआ ? क्या मिला ? कुछ भी तो नहीं ।

जगत्की प्रतिष्ठा, धन या विद्वत्ता अतकालमें कुछ भी काम नहीं आतीं ।

जो विद्या अंतकालमें निरर्थक और निरुपयोगी ही रह जाए, उससे लाभ ही क्या ?

एक बार एक नौकामें कुछ विद्वान् सुधारक प्रवास कर रहे थे । बातों ही बातोंमें उन्होंने नाविकसे पूछा—तुम कहाँ तक पढ़े लिखे हो ?

नाविक—कैसी पढ़ाई और कैसी लिखाई ? बस, मैं तो यह नौका चलाना ही जानता हूँ ।

विद्वान्—तुम्हें इतिहासकी कुछ भी जानकारी है क्या ? इंग्लैंडमें कितने एडवर्ड हुए हैं ?

नाविक—मैं इतिहास नहीं जानता ।

पंडित—तब तो तेरी एक चौथाई जिंदगी बेकार ही गुजर गई । क्या तुझे भूगोलका ज्ञान है ? लंदन शहरकी आबादी कितनी है ?

नाविक—मैं भूगोल भी नहीं जानता ।

पंडित—ओह ! अब तो तेरी आधी जिन्दगी बेकार ही चली गई । तुझे साहित्यका ज्ञान है ? शेक्सपीयरके कौनसे नाटक तूने पढ़े हैं ?

नाविक—मैंने साहित्य भी नहीं पढ़ा है ।

पंडित—तब तो तेरी तीन चौथाई जिन्दगी पानीमें ही चली गई ।

इतनेमें नदीमें तूफान आया और नैया इधर-उधर डोलने लगी ।

नाविकने उन विद्वानोंसे पूछा—महाराज, लगता है कि हमारी नौका पानीमें डूब जाएगी । क्या आप सब तैरना जानते हैं ।

सभी पंडितोंने कहा—नहीं हम तैरना तो नहीं जानते हैं ।

नाविक— हरिहर ! आप तैरना नहीं जानते हैं, तब तो आपकी सारी ज़िंदगी अभी पानीमें चली जाएगी ।

हुआ भी ऐसा ही, तूफानमें नौका डूब गई और उसके साथ विद्वान् भी डूब गए, पर नाविक तैरता हुआ बाहर आ गया ।

रामकृष्ण परमहंस बार-बार इस दृष्टांतको सुनाते रहते थे ।

संसार भी एक समुद्र ही है । इस भवसागरको येन-केन प्रकारेण पार करना ही होगा । जो विद्या संसार पार करनेकी कला सिखा सके, वही सच्ची विद्या है । भव-

सागरको तैरनेके लिए भजन ही एकमात्र साधन है। इस भजनरूपी विद्याको सीखनेके बदले मात्र सांसारिक विद्या सीखकर पंडिताईका अभिमान करनेवाला व्यक्ति इस सागरमें डूब ही जाता है।

जो विद्या अंतकालमें परमात्माके दर्शन न करा सके, वह विद्या ही नहीं है।

संयोगमें दोषदर्षन और वियोगमें गुणदर्शन ही जीवका स्वभाव है।

धर्मराजकी राजसभामें स्वयं द्वारिकानाथ विराजते थे, फिर भी धर्मराज उनके स्वरूपसे अज्ञात थे। ठाकुरजी अपना स्वरूप छिपाते रहते हैं।

कृष्ण भगवान् कहते हैं—मैं तो माखनचोर हूँ। जिसके मनकी मैं चोरी करता हूँ, वही मुझे पहचान सकता है। कृष्ण गुप्त ही रहना चाहते हैं।

परमात्मा गुप्त रहना चाहते हैं, तो जीव प्रकट। ईश्वरने भाँति-भाँतिके फूल, फल, आदि न जाने कितनी वस्तुओंका सर्जन किया, फिर भी उन पर कहीं अपना नाम नहीं लिखा है। मनुष्य तो मकान आदिसे लेकर अँगूठी जैसी छोटी-सी वस्तुओं पर और अपने शरीर पर भी नाम लिख देता है। अरे भाई, शरीरपर भी नाम क्यों लिखता है तू? उसे कौन ले जाएगा? मकान पर नाम लिखता है मनहरनिवास। पर यह मनहर कितने दिन जीनेवाला है? मकान पर नाम ही लिखना है तो रामनिवास, कृष्णभवन लिखो। यह सभी कुछ तो ठाकुरजीका है, फिर भी मानव नाम-रूपमें फँसा हुआ है।

आजकल लोग सेवा भी नाम कमानेके हेतुसे ही करते हैं, पुण्यलाभके लिए नहीं। मंदिरमें कोई वस्तु देता है तो उस पर भी पहले अपना नाम लिख देता है। याद रखो कि अतिशय प्रसिद्धि पुण्यका क्षय ही करती है।

कृष्ण पांडवोंके बीचमें ही रहते थे, फिर भी उन्हें कोई पहचानता नहीं था और वे पहचाने भी कैसे जा सकते थे? युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके भोजन-समारंभमें जूँठी पत्रावलियाँ (पत्तलें) उठाने जैसा काम वे करते थे।

गीतागायक श्रीकृष्णका यही तो है दिव्य कर्मयोग। उन्होंने अपनी वाणी अपने जीवनमें कार्यान्वित भी की।

प्रभुने धर्मराजसे कहा था—महाराज, अपने यज्ञमें थोड़ी-सी सेवा करनेका मुझे भी अवसर दीजिए। मैं जूँठन साफ करता रहूँगा। कृष्ण ऐसा काम करते थे, अतः धर्मराजने मान लिया था कि वे मामाके पुत्र हैं अतः वह काम करते हैं।

ईश्वर स्वयं ऐसा अनुभव ही नहीं करते हैं कि वे ईश्वर हैं। यदि ईश्वर ऐसा करें तो उनका ईश्वरत्व ही नष्ट हो जाए।

धर्मराज इस बातको भूल गए थे कि स्वयं श्रीकृष्ण ही उनके साथ बात कर रहे हैं, अतः वे कहते हैं कि भगवान्‌के दर्शन अभी तक नहीं हो पाए हैं।

नारदजी धर्मराजसे कहते हैं—वे बड़े-बड़े मुनि आपके घर आए हुए हैं। उन्हें दक्षिणाका लोभ नहीं है, ये दुर्वासा और जमदग्नि निःस्पृह हैं।

धर्मराजके यहाँ विशाल जनसमुदाय एकत्र हुआ था, अतः दुर्वासाको आशंका थी, कि कहीं कुछ अधर्माचरण न हो जाए और ऐसी आशंकाके कारण वे भोजन तक नहीं करते थे।

द्वारिकाधीश दुर्वासाको ब्रह्मविद्याका गुरु मानते हैं।

एक दिवस रुक्मिणीने कहा—नाथ, दुर्वासा आपके गुरु हैं और बड़े तपस्वी भी। क्यों न हम ऐसे पवित्र ब्राह्मणको भोजन कराएँ ?

कृष्ण—ये दूर रहें, वही ठीक है। घर पर आएँगे तो गड़बड़ करेंगे।

रुक्मिणीने अति आग्रह किया। तो कृष्ण-रुक्मिणी दुर्वासाको आमंत्रण देनेके लिए पिंडारक तीर्थ आए। दुर्वासाने कहा—भोजनकी बात जाने दीजिए। मेरे आशीर्वाद हैं आपको। मैं क्रोधी हूँ। कहीं क्रोधवश कुछ शाप न दे दूं।

किंतु कृष्ण-रुक्मिणीके अति आग्रहके कारण दुर्वासा आनेके लिए तैयार हुए। रथमें बैठे। दुर्वासाने उनकी परीक्षा करनेका विचार किया और कृष्णसे कहा—मैं हूँ ब्राह्मण और तुम हो क्षत्रिय। क्या यह योग्य है कि हम एक ही आसन पर बैठें। अतः इन बैलोंको हटाकर तुम स्वयं रथको खींचो तो मैं आऊँ।

कृष्ण और रुक्मिणी रथ खींचने लगे। माताजी थक गईं और प्यासी हो गईं। वे बोलीं—ब्राह्मण बड़े विचित्र होते हैं। मैं ब्राह्मणोंके घरमें नहीं रहना चाहती। कृष्णने समझाया कि अब अधिक देरी नहीं है, धीरज रखो। तो रुक्मिणीने कहा—मैं धीरज नहीं रख सकती। मैं इस प्रदेशमें नहीं रहूँगी।

कृष्ण—नहीं, नहीं। इस प्रदेशको कभी न छोड़ना। इस गुजरातमें हमेशा वास करना और लक्ष्मीजी गुजरातमें रह गईं।

प्रभुकी लीला है। दुर्वासाके हृदयमें भी श्रीकृष्ण हैं। रुक्मिणी जल पीने जा ही रही थीं कि दुर्वासा समाधिमेंसे जाग गए। दुर्वासाने क्रोधसे कहा कि ब्राह्मणको भोजन करानेसे पहले तुम जलपान कर रहे हो, अतः मेरा शाप है कि तुम दोनोंका वियोग होगा। कृष्णने कहा कि आपका शाप सिर-आँखों पर, किंतु आप मेरे घर तो चलिए।

दुर्वासाको लगा कि मैंने शाप देकर कुछ अनुचित-सा कर दिया है। अतः उन्होंने कहा—मैं बारह वर्षके पश्चात् आकर तुम दोनोंका विवाह करवाऊँगा।

नारदजी धर्मराजसे कहने लगे—ये ऋषि तुम्हारे यहाँ कुछ खाने या लेनेके लिए नहीं आए हैं। ये तो परब्रह्म परमात्माके दर्शन करनेके लिए यहाँ आए हैं। चिंतन करने पर भी उनके ध्यानमें परमात्माका स्वरूप आ नहीं सका, अतः वे उनका दर्शन करनेके हेतु तुम्हारे यज्ञमें आए हैं। इन्हें तो दर्शनका लोभ है।

राजन्, तुम तो प्रह्लादसे अधिक भाग्यशाली हो। परमात्मा तुम्हारे रिश्तेदार होकर तुम्हारे घरमें रहते हैं।

हमारे घरमें भी भगवान् हैं किंतु नारदजी जैसे संत द्वारा दृष्टि मिलने पर ही उनका दर्शन हो सकता है।

राजन्, तुम भाग्यशाली हो कि परमात्मा तुम्हारी सभामें ही विराजमान हैं।

नारदजीके वचन सुनकर धर्मराज राजसभामें चारों ओर निहारने लगे, किंतु कहीं भी वे परमात्माका दर्शन नहीं कर पाए। धर्मराज परमात्माको पहचान ही नहीं सके। द्वारिकानाथको देखते तो थे, किंतु उन्हें तो वे ममेरा भाई ही मानते थे।

इधर कृष्ण सोचते हैं कि नारदजी अब चुप हो जायें तों अच्छा रहे। अन्यथा वे मुझे प्रसिद्ध कर देंगे। उन्होंने नारदजीसे कहा—नारद मुझे तुम प्रकट मत करो। अपनी कथा ही पूरी करो।

नारदजीने कहा—इस सभामें जगत्के जन्मदाता उपस्थित हैं। ब्रह्माजीने माना कि नारदजी मेरा नाम घोषित करेंगे और मुझे प्रसिद्धि मिलेगी।

ईश्वर जीवको अपना ले, तो जीव ईश्वर बनता है।

राजन् जगत्सृष्टा और ब्रह्माके भी जो पिता हैं वे बैठे हुए हैं इस सभामें।

धर्मराज नारदजीसे पूछने लगे—कहाँ हैं भगवान्? कहाँ हैं परब्रह्म? मुझे क्यों दीखते नहीं हैं? कहाँ हैं वे?

अब नारदजीसे रहा नहीं गया। आज चाहे अप्रसन्न क्यों न हों, मुझे उन्हें प्रसिद्ध करना ही होगा।

नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर इंगित करते हुए कहा—अयम् ब्रह्म।

उपनिषद्में 'इदम ब्रह्म' की बातें हैं और इधर 'अयम् ब्रह्म' की।

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम्॥

सा वा अयम् ब्रह्म॥ भा० ७.१०.४८

इनके ही दर्शनार्थ ये सारे मुनि यहाँ आए हुए हैं।

प्रभुने सिर झुका कर मुँह छिपाया। मैं ब्रह्म नहीं हूँ। नारद असत्य बोल रहे हैं।

नारदजीने कहा—'अयम् ब्रह्म'। इन्हें असत्य बोलनेका स्वभाव ही है। भगवान् कभी-कभी लीला करते हुए असत्य बोलते हैं। उन्होंने बाल्यावस्थामें भी अपनी माता यशोदासे एक बार कहा था कि 'नाहं भक्षितवानम्ब'। मैंने मिट्टी खायी ही नहीं। ये सब बालक झूठ बोल रहे हैं।

आत्मानुभूति कई बार होने पर भी दृढ़ता नहीं आती है। दृढ़ता सद्गुरुकी कृपासे आती है।

नारदजीने धर्मराजको भगवान् नारायणके दर्शन कराए और सारी बातें खोल कर बताईं।

अब मिश्रवासनाके प्रकरणका आरंभ हो रहा है। सातवें स्कंधके ११ से १५ अध्यायमें मिश्रवासनाकी बातें हैं।

मनुष्यकी वासना मिश्रवासना है। प्रथम मैं स्वयं उपभोग करूँगा और फिर भी यदि कुछ बाकी बचा तो ही दूसरोंको दूँगा। यही है मिश्रवासना। संतकी वासना सद्वासना है

और राक्षसकी असद्वासना। दुर्जन जो कहता है, वह हमें पसंद नहीं है और वैष्णव जो कहते हैं, वैसा हमारा जीवन नहीं है।

प्रह्लादका चरित्र सुननेके बाद धर्मराजने नारदजीसे मनुष्यधर्म समझानेको कहा।

११ से १५ अध्याय तक धर्मकी कथा है। प्रथम चार अध्यायमें साधारण धर्म और पाँचसे पंद्रहवें अध्यायमें विशिष्ट धर्म बताया गया है।

मनुष्यका सच्चा मित्र धर्म ही है। जब कोई साथ नहीं दे पाता, तब धर्म साथ देता है। चाहे धनसंपत्ति नष्ट हो जाए, पर धर्मका नाश नहीं होने देना चाहिए। मनुष्य धनको ही सारे सुखोंका साधन मानता है, किंतु यह असत्य है, अज्ञान है। सभी सुखोंका साधन धन नहीं, धर्म है। मानवसृष्टिके संचालनके लिए भगवान्ने जो विधिविधान बनाये हैं, वही धर्म है।

आजके क़ायदे-क़ानूनोंमें कई बार परिवर्तन करने पड़ते हैं क्योंकि इनके बनानेवाले विलासी जो हैं। रामराज्यमें तो वसिष्ठका वचन ही धारा बन जाती थी।

प्रथम साधारण धर्मके तीस लक्षणोंका वर्णन है। साधारण धर्म अर्थात् सबका धर्म, मनुष्यमात्रका धर्म।

नारदजी कहते हैं—इस धर्मकी कथा बड़ी लंबी है। मैंने इसे नारायणके श्रीमुखसे सुना है। धर्मके तीस लक्षण हैं। प्रथम लक्षण है सत्य और अन्तिम लक्षण है आत्मसमर्पण। धर्मकथाका आरंभ सत्यसे होता है और समाप्ति आत्मसमर्पणसे।

सत्य ही ईश्वरका स्वरूप है। धर्मकी गति सूक्ष्म है। असत्यके समान कोई पाप नहीं है।

सत्य वह साधन है, जिसके सहारे मनुष्य सत्यनारायणमें लीन होता है।

हरिश्चंद्रने पत्नीका विक्रय करके भी सत्यका निर्वाह किया था।

सत्यमें अटल श्रद्धा रखो। यथार्थका नाम सत्य है। महाभारतके अनुसार जिससे सभीका कल्याण हो सके, ऐसा विवेकपूर्ण वचन ही सत्य है। सभीका कल्याण हो सके, ऐसा विवेकभरा वचन ही बोलो—

सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्।

श्रीकृष्णके असत्य वचन भी सत्य हैं, क्योंकि वे बहुजनहिताय हैं।

महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्यके प्रसंगमें श्रीकृष्णको असत्य बोलना पड़ा था। द्रोणाचार्य भीषण युद्ध कर रहे थे। उनके हाथमें जबतक शस्त्र था, तबतक उन्हें मार पाना असंभव था। क्या किया जाए? अश्वत्थामा नामक हाथीको मारकर द्रोणसे कहा गया कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मर गया है। द्रोणाचार्यने यह बात झूठी मानी। उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण जैसे भी असत्य बोल सकते हैं, किंतु धर्मराज कभी असत्य नहीं बोलते। मैं उनसे ही पूछ लूं। उन्होंने युधिष्ठिरके पास जाकर कहा—यदि मेरा पुत्र ही मरा है तो मुझे शस्त्रत्याग करना पड़ेगा। क्या सचमुच मेरा पुत्र मारा गया है?

श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा था कि बोल देना—अश्वत्थामा हतः। सत्यं वदका नियम मैंने बनाया है अतः इसमें परिवर्तन करनेका मुझे अधिकार है। सत्य वही है कि जिसे विवेकसे बोलनेसे सभीका कल्याण होता हो। द्रोणाचार्यके शस्त्रत्यागसे कौरवोंको पराजय होगी और पांडवोंको राज्य मिलेगा। दुर्योधनकी हत्यासे पाप अधिक नहीं होगा, अपितु इससे स्वयं दुर्योधनका कल्याण ही होगा।

कोई प्रश्न करेगा कि सभीका तो कल्याण होता किंतु द्रोणाचार्यको क्या लाभ होता?

द्रोणाचार्य वेदसंपन्न ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणको युद्ध करनेका अधिकार नहीं है। यदि उसे कभी युद्ध करना भी पड़े तो मात्र धर्मकी रक्षाके हेतु ही करना चाहिए। ब्राह्मण होते हुए भी द्रोणाचार्य युद्ध करते हैं। अतः उनके शस्त्रत्यागसे उनका ही कल्याण होता।

मैं द्रोणाचार्यको नरसंहारके पापकर्मसे रोकना चाहता हूँ। अतः मेरी यह आज्ञा है।

धर्मराजने द्रोणाचार्यको सुनाया—अश्वत्थामा हतः। किंतु दबे होठोंसे आगे बोले—नरो वा कुंजरो वा।

धर्मराजके शब्द सुनकर द्रोणाचार्यने शस्त्रोंका त्याग किया। श्रीकृष्णने धृष्टद्युम्नको आज्ञा दी कि द्रोणाचार्यका सिर उड़ा दो। उनकी मृत्यु हुई और सभीका कल्याण हुआ।

दयाभाव धर्मका द्वितीय लक्षण है। जहाँ तक हो सके, दूसरोंका भला करो। हर रोज सोचो, क्या मैंने आज किसीका कुछ काम किया है। क्या मैंने परमात्माको पसंद आए, वैसा कोई काम किया है?

तुलसीदासजीने भी कहा है—

तुलसी दया न छोड़िए जब लग घट में प्रान।

जो साधक इसी जन्ममें ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहता है, उसे सोच-समझकर विवेकपूर्वक दया करनी चाहिए। कभी-कभी दयाभाव भजनमें विक्षेप करता है।

तीसरी बात है पवित्रताकी। पावित्र्य सभीका धर्म है। आजकल लोग शरीरको बहुत शुद्ध करते हैं, किंतु मनको शुद्ध नहीं रखते। मनशुद्धि, चित्तशुद्धि आवश्यक है। मन मृत्युके बाद भी साथ-साथ जाएगा। मनके अलावा और कुछ साथ नहीं जाएगा, अतः इसे पवित्र रखना आवश्यक है।

शरीरकी अपेक्षा पाप तो मनसे अधिक होते हैं। जो मनसे पाप करता है, उसका मन ईश्वरके ध्यानमें स्थिर नहीं हो पाता। व्यवहारसे आत्मा इतनी घुल-मिल जाती है, कि मनके पापका उसे ज्ञान तक नहीं रहता।

चौथा धर्म है तपश्चर्या। विचार, वाणी और वर्तनको शुद्ध रखना ही तपश्चर्या है। पाँचवाँ धर्म है तितिक्षा। भगवद्कृपासे जो भी दुःख मिले, उसे सहन कर लो। शत्रुके प्रति भी सद्भाव बनाए रखो। तभी परमात्मा आपके पक्षमें रहेंगे और आपके शत्रुको दंड देंगे।

एक महात्मा जप करते हुए जा रहे थे। रास्तेमें किसी धोबीने सुखानेके लिए कपड़े फैलाए हुए थे। उन पर महात्माका पाँव पड़ गया। धोबीने यह देखा तो वह महात्माको लकड़ीसे पीटने लगा।

भगवान्‌ने सोचा कि वह महात्मा तो मेरा ही नाम जप रहा था, अतः मैं उसकी रक्षा नहीं करूँगा तो मेरी प्रतिष्ठाका क्या होगा ? महात्माकी रक्षाके लिए वे वैकुंठसे धरती पर उतर आए।

इधर महात्माकी सहनशीलताने जवाब दे दिया। उन्होंने सोचा कि इस धोबीसे मैं अधिक सशक्त हूँ। उन्होंने धोबीको मारनेके लिए लकड़ी उठायी। प्रभुने यह देखा तो वे वापस चले गए।

भगवान् तुरंत वापस जा पहुँचे तो लक्ष्मीजीने कारण पूछा। भगवान्‌ने कहा—अब वहाँ महात्मा नहीं है। दो धोबी लड़ रहे हैं। महात्माने सहनशीलताका त्याग करके उस धोबी-सा ही आचरण किया है। अब मुझे वहाँ करना ही क्या था ?

मनुष्य अपमानके कारण तभी दुःखी होता है, जब वह अभिमानी होता है। जीव दीन होकर ईश्वरके चरणमें आश्रय ग्रहण करे तो उस पर अपमानका कोई असर नहीं होगा।

सहनशक्ति ही तितिक्षा है।

(६) अहिंसा—मन, वचन और कायासे किसीको दुःखी न करना ही अहिंसा है। संत वही है कि जिसके संगमें आनेवालेका स्वभाव बदल जाए, सुधर जाए। ऋषियोंके आश्रममें हिंसक पशु भी शांत हो जाते थे।

(७) ब्रह्मचर्य—शारीरिक ब्रह्मचर्यपालन तो कई लोग करते हैं किंतु आँख और मनसे ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले बहुत कम होते हैं। किसी स्त्री या पुरुषका चिंतन करना भी ब्रह्मचर्यका भंग ही है। कामभावके गीतका श्रवण भी ब्रह्मचर्यभंग ही है। ब्रह्मचर्य तो मनको स्थिर करनेका साधन है।

(८) त्याग—कुछ भी त्याग करना धर्म है।

(९) स्वाध्याय—सद्‌ग्रंथका चिंतन, मनन ही स्वाध्याय है, जो हर किसीका धर्म है।

(१०) आर्जवम्—स्वभावको सरल रखना भी सभीका धर्म है।

(११) संतोष—ईश्वरने जो और जितना दिया है, उससे संतुष्ट रहनेवाला व्यक्ति ही श्रीमंत है और असंतुष्ट रहनेवाला दरिद्र है :

एक भिखमंगेको रास्तेमें एक रत्नखचित अँगूठी मिली। उसने सोचा कि मुझसे भी जो व्यक्ति गरीब होगा उसे मैं यह अँगूठी दे दूँगा। चलते-चलते एक स्थान पर उसने देखा कि एक पाँच बँगलोंका मालिक सेठ छठा बँगला बनवा रहा है और मजदूरोंके साथ मजदूरीके पैसोंकी बात पर झगड़ा कर रहा है। काम पूरा लेता है पर पूरा दाम नहीं देता है। उस भिखमंगेने उस सेठको अँगूठी दे दी। तो सेठ कहने लगा—मेरे पास तो बहुत कुछ है, मैं भिखमंगा नहीं हूँ। यह अंगूठी मुझे क्यों दे रहा है तू ?

तो उस भिखमंगेने कहा—यदि आपके पास बहुत कुछ है, तो फिर मजदूरोंसे झगड़ा क्यों करते हैं ? लोभ क्यों करते हैं ? आप संतोषी नहीं है, अतः भिखमंगे ही हैं।

तुम भी तो सोचो कि सच्चा भिखमंगा कौन था और सच्चा सेठ कौन था ?

(१२) समदृष्टि—सर्वमें, सर्वके प्रति समदृष्टिसे देखना सभीका धर्म है। कोई कारण-वशात् व्यावहारिक विषमता चाहे करनी पड़े, किंतु भावात्मक विषमता कभी न होनी चाहिए।

(१३) मौन—बिना कारण, व्यर्थ कुछ भी न बोलना ही मौन है और यह भी सभीका धर्म है। मौन मनसे भी होना चाहिए। मौनसे मनको शांति मिलती है और मानसिक पापोंका नाश होता है। वाणी पर बुद्धिपूर्वक अंकुश रखो।

(१४) आत्मचिंतन—प्रतिदिन सोचते रहो कि मैं कौन हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं परमात्माका ही अंश हूँ। जन्मसे पूर्व न तो कोई रिश्तेदार था और मृत्युके पश्चात् न कोई रिश्तेदार रहेगा। इन दोनोंके मध्यावधि समयमें ही रिश्तेदार होते हैं। ये कौन हैं, कहाँसे आते हैं? यह सब भगवान्‌की ही माया है। आत्मस्वरूपको बराबर जाननेवाला ही आनंद पा सकता है। यह जगत् नहीं है, ऐसा अनुभव तो मानव कर सकता है, किंतु स्वयंके अनस्तित्वको मान्य नहीं कर सकता। वह परमात्माका अंश है, उसे शरीरसे भिन्न होना है।

दृश्यमेंसे दृष्टिको हटाकर सभीके साक्षीस्वरूप द्रष्टामें मन स्थिर करोगे तो सच्चा आनंद मिलेगा।

आत्मा-अनात्माका विवेक भी सभीका धर्म है। जगत् अपूर्ण है, आत्मा परिपूर्ण। मनुष्य जब तक अपने स्वरूपको स्वयं देख नहीं पाता है, तब तक उसे आनंद नहीं मिल पाता।

वेदकी वाणी अति गूढ है।

एक सेठने अपनी बहीमें लिखा था कि गंगा-यमुनाके मध्यमें मैंने लाख रुपये रख छोड़े हैं। जब उनके पुत्र दरिद्र हो गए, तो उन्होंने पुरानी बही पढ़ते-पढ़ते वह बात भी देखी किंतु वे इसका अर्थ नहीं जान सके। एक बार उनके पिताके पुराने मुनीम कहींसे आए, तो उनसे उस बहीकी बातोंका अर्थ पूछा गया तो उन्होंने कहा—तुम्हारी दो गायें हैं यमुना और गंगा। ये जिस स्थान पर बाँधी जाती हैं, वहीं ये रुपये गाड़ कर रखे गए हैं।

इस दृष्टांतका आध्यात्मिक अर्थ हमें देखना है। गंगा और यमुना हैं हमारी इंगला और पिंगला नाड़ियाँ। इन दो नाड़ियोंके बीच होती है सुषुम्ना नाड़ी। जबतक किसी सद्गुरुके द्वारा यह सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत नहीं हो पाती, तब तक ब्रह्मका दर्शन नहीं हो पाता।

ज्ञानीजन ललाटमें ब्रह्मका दर्शन करते हैं, तो वैष्णवजन हृदय-सिंहासन पर चतुर्भुज नारायणका दर्शन करते हैं।

साधु होना उतना कठिन नहीं है, जितना कि सरल होना।

(१५) पंच महाभूतोंमें ईश्वरकी भावना करना, ईश्वरका अनुभव करना सभीका धर्म है।

(१६) कृष्णकथाका श्रवण करना भी सभीका धर्म है।

(१७) कृष्णकीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार और उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण—ये भी सभीका धर्म है।

मैं परमात्मा हूँ, ऐसा सतत चिंतन करनेसे जीवको वे अपना लेते हैं। हमेशा यह याद रखो कि भगवान् एक भी क्षण मुझसे दूर नहीं रहते हैं। जो ईश्वरको अपने संग रखता है, वह निर्भय बनता है।

परमात्माको आत्मसमर्पण करना सभीका धर्म है।

इसके आगे विशिष्ट धर्मोंका वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चारों वर्ण ईश्वरके अंगोंसे उत्पन्न हुए हैं। ये सब एक ईश्वरके स्वरूपमें हैं, ऐसी भावना रखो। चार वर्ण और चार आश्रमोंका वर्णन है।

ब्रह्ममयी दृष्ठि और अद्वैतनिष्ठा सिद्ध होने पर यदि वह व्यक्ति भेदभावका पालन न करे तो कोई आपत्ति नहीं है।

शास्त्रोंमें कहीं भी हरिजनोंकी निंदा नहीं की गई है।

सभीको चाहिए कि वे सब अपने-अपने धर्मोंका अर्थात् कर्तव्योंका पूर्णतः पालन करें। ब्राह्मणोंका धर्म है अध्ययन, अध्यापन, दान करना, दान लेना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना। क्षत्रियोंको प्रजाकी रक्षा करनी है। वैश्योंका धर्म है गोपालन, कृषि और व्यापार। शूद्रोंका कर्तव्य है समाजके सभी वर्गोंकी सेवा।

इसके बाद स्त्रियोंके धर्मोंका वर्णन किया गया है। स्त्रीको चाहिए कि पतिमें वह ईश्वरका भाव रखे। उसे तभी मुक्ति भी जल्दी मिलेगी। स्त्रीका हृदय ऊर्मिप्रधान और आर्द्र होता है। वह कृष्णप्रेममें शीघ्र द्रवित होता है। सती अनसूयाकी भाँति नारी पतिव्रतका पालन करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवोंको बालक रूपमें पा सकती है।

इसके बाद आश्रमधर्मकी बात आती है। आश्रम चार हैं। मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी बतायी गई है। आजके समयकी दृष्टिसे देखें तो मनुष्यको २३ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपालन करके २४ से ४० वर्ष तक गृहस्थाश्रमी और ४१ से ५० वर्ष तक वानप्रस्थाश्रमी रह कर ५१ वर्षकी वयके बाद संन्यस्ताश्रममें प्रवेश करना चाहिए।

ब्रह्मचर्याश्रम वृद्धि है तो गृहस्थाश्रम क्षय। वानप्रस्थाश्रममें संयम बढ़ाकर फिरसे शक्ति बढ़ानी हैं, शक्तिका गुणाकार करना है। संन्यासाश्रममें भागाकार है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी हमेशाके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करता है।

महाप्रभुने गृहस्थाश्रममें ही प्रवेश करके संन्यास लिया था।

वर्णाश्रमकी रचना क्रमशः धीरे-धीरे जीवको ईश्वरके निकट ले जानेका सोपान है।

ब्रह्मचारीको चाहिए कि वह सदा मितभोजी रहे। अधिक भोजन करनेवाला ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। उसका आहार अति सात्त्विक होना चाहिए। उसे इन्द्रियोंका बिलकुल विश्वास न करना चाहिए। बड़े-बड़े ऋषि तक भटक गए हैं, तो साधारण मानवकी तो बात ही क्या? भागवतने भी कहा है कि जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, उसे नारीका सहवास छोड़ना होगा।

कामांध व्यक्ति अविवेकी हो जाता है। अतः सावधानीकी आवश्यकता है। ज्ञानी भी कभी-कभी मोहित हो जाता है। उसका सयानापन स्थायी नहीं रह पाता। कामका मूल

संकल्प है। लौकिक कामनासे काम बढ़ता है और अलौकिक कामनासे काम कम होता है। काम क्रोधको उत्पन्न करता है। काम एकांतमें सताता है। एकांतमें भजन करो। जगत्‌में सभी अनर्थ कामके कारण ही होते हैं। काम यदि मर जाए तो समझो कि कन्हैया दूर नहीं है। जगत्‌को देखनेकी दृष्टि बदल जाए तो कामका भी नाश होगा।

संन्यास लेनेसे पहले गृहस्थको चाहिए कि वह वानप्रस्थधर्मका पालन करे, और पवित्र ग्रंथोंका अध्ययन करे। वैराग्य दृढ़ होनेके बाद संन्यास लेना चाहिए।

परमात्माके लिए सभी सुखोंका न्यास, त्याग ही संन्यास है।

प्रह्लाद और दत्तात्रेयका एक प्रसंग है। दत्तात्रेयसे प्रह्लादने पूछा—आप कोई सुख-चैनसे तो रहते नहीं हैं, फिर भी इतने हृष्ट-पुष्ट कैसे हो पाए ?

दत्तात्रेयने उत्तर दिया—जगत्‌के किसी भी जड़ पदार्थमें आनंद नहीं है। सुखकी इच्छा ही दुःख है। मुझमें समाहित आत्मानंदका ही मैं उपभोग करता हूँ। मैं अपना आनंद अपने आत्मस्वरूपमेंसे ही प्राप्त कर लेता हूँ। प्रारब्धको भुगत कर पूरा करता हूँ। मेरी आत्मनिष्ठा दृढ़ है। मेरे दो गुरु हैं।

मेरा पहला गुरु है मधुमक्षिका। मधुमक्खीकी भाँति लोग भी बहुत कुछ कष्ट झेलकर धन तो एकत्रित करते हैं, किंतु मधुमक्खीके शहदकी भाँति उस धनका उपभोग तो कोई और ही करता है।

मेरा दूसरा गुरु है अजगर। उसीकी भाँति मैं निश्चेष्ट पड़ा रहता हूँ, और प्रारब्ध-योगसे जो भी मिल जाए, उससे संतुष्ट रहता हूँ।

इन दो गुरुओंसे मैंने वैराग्य और संतोषका नियम प्राप्त किया है। एक ही स्थान पर बैठकर सतत ब्रह्मचिंतन करता हूँ। जिससे मनमें विक्षेप आए, ऐसे व्यवहारसे मैं दूर ही रहता हूँ और ॐकारका सतत जप करता हूँ।

अब आती है गृहस्थधर्मकी कथा। पति-पत्नी सावधानीपूर्वक पवित्र जीवन जियें तो संन्यासाश्रम जैसा ही आनंद गृहस्थाश्रममें भी मिल सकता है। पवित्र जीवन जीनेवाले दंपती साधु-संतोंकी सेवा करके परमात्माको पुत्ररूपमें पाकर अपनी गोदमें उनका लालन-पालन करेंगे। जब कि सन्यासी मात्र ब्रह्मचिंतनमें ही लीन रहेगा।

गृहस्थावस्थामें यह ध्यानमें रखना चाहिए कि पत्नी कामभोगका नहीं, धर्मका साधन है। पत्नी तो गृहस्थाश्रमकी सहायिका है। पत्नीसंग सत्संग बने, तभी गृहस्थाश्रम दिव्यता धारण करता है। गृहस्थको धर्म ही बनाये रखता है। संन्यासी ही गृहस्थके आँगनमें आता है, अतः गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है।

पति और पत्नी दोनों सुपात्र हों, तो धर्मपालन हो सकेगा। गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है। गृहस्थको सावधान रहना चाहिए कि कहीं उससे पापाचार न हो जाए। उसे अंदरसे अनासक्त रहकर बाहरसे सभीसे प्रेम करना चाहिए।

जो पात्रमें, थालीमें है वह सभी कुछ अपना नहीं है, किंतु जितना पेटमें समा सकता है, वही (उतना ही) अपना है। और पेटमें जो गया है, उसमेंसे जितना पच सकता है, उतना ही अपना है।

गृहस्थाश्रमीको न तो अधिक कठोर होना चाहिए और न अधिक सरल। स्त्रीसे अधिक ममता न रखे। स्त्रीके अधीन रहना अयोग्य है। जो स्त्रीके आवश्यकतासे अधिक अधीन रहता है उसे देखना भी पाप है।

एक राजा था, जो पशु-पंछीकी भाषा भी जानता था। एक बार राजा-रानी भोजन कर रहे थे, तो एक चींटीने भोजनका एक दाना रानीकी थालीमेंसे उठाकर राजाकी थालीमें रख दिया। यह देखकर एक दूसरी चींटीने उस चींटीसे कहा—यह अधर्म है। स्त्रीका उच्छिष्ट अन्न पुरुषको खिलाना अविवेक है।

इन दो चींटियोंकी बात सुनकर राजाको हँसी आ गई। रानीने हँसनेका कारण पूछा। तो राजाने कहा—छोड़ो इस बातको। सुनोगी तो अनर्थ होगा।

जिस महात्माने राजाको पशु-पंछीकी बोली जाननेकी विद्या दी थी, उसने कहा था कि मैंने यह विद्या सिखाई तो है, किंतु तुम यदि किसीसे इसकी बात करोगे या किसीको सिखाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।

राजाने पत्नीको बहुत समझाया किंतु स्त्री-हठ जो था। वह कहने लगी कि चाहे आपकी मृत्यु क्यों न हो जाए, किंतु मैं बात जानना चाहती हूँ। राजा भोला और पत्नीके अधीन था, सो उसने कहा हम दोनों काशी चलें। मैं वहीं तुझे सारी बात बताऊंगा। राजाने सोचा कि मरना ही है तो काशीमें मरकर मुक्ति क्यों न पा लूं।

वे दोनों काशीकी ओर चल निकले। रास्तेमें वनमें एक बकरा-बकरीका जोड़ा मिला। बकरी बकरेसे कह रही थी कि कुएँके पास जाकर मेरे लिए हरी घास ले आओ, नहीं तो मैं डूब मरूँगी। बकरेने समझाया कि मेरा पांव फिसल जाएगा तो कुएँमें गिरकर मर जाऊँगा। बकरीने कहा कि चाहे जो भी हो मैं तो घास खाऊँगी।

तो बकरेने तेवर बदल कर कहा—मैं उस राजाके जैसा मूर्ख नहीं हूँ, जो पत्नीके लिए बिना कारण जान दे दूं।

राजाने बकरेके ये वचन सुने तो सोचमें पड़ गया। मैं कितना मूर्ख हूँ कि प्रभु-भजनके लिए जो शरीर मिला है, इस स्त्रीकी मूर्खताभरी हठकी खातिर उसका नाश करनेके लिए तैयार हो गया। धिक्कार है मुझे। मुझसे तो बकरा भी अच्छा है। उसने रानीसे दृढ़तासे कह दिया—मैं कुछ भी बताना नहीं चाहता। तू चाहे सो कर सकती है। रानीको अपनी हठ छोड़नी पड़ी।

हृदयमेंसे राम चले जाते हैं, तो मनुष्य कामांध बन जाता है।

गृहस्थाश्रमीको आज्ञा दी गई है कि वह दान करे, क्योंकि दानसे धनशुद्धि होती है। वर्षमें एक मास गंगा किनारे रहनेकी भी आज्ञा दी गई है। उसे चाहिए कि वह एकांतवासमें नारायणकी आराधना करे। वर्षमें-से एक मास ठाकुरजीके लिए सुरक्षित रखे।

घरमें ठीक तरहसे भक्ति नहीं हो पाती है अतः तीर्थमें भक्ति करो। तीर्थमें जाकर घरको और लौकिक बातोंको कभी याद मत करो। वहाँ मात्र भक्ति ही करनी चाहिए।

भक्ति करनेके लिए स्थानकी शुद्धि भी आवश्यक है। स्थानके वातावरणका मन पर बड़ा असर पड़ता है।

मार्कंडेय पुराणमें एक कथा है ।

राम-लक्ष्मण वनमें प्रवास कर रहे थे । मार्गमें एक स्थान पर लक्ष्मणका मन कुभावसे भर गया, मति भ्रष्ट हो गई । वे सोचने लगे—कैकेयीने वनवास तो रामको दिया है, मुझे नहीं । मैं रामकी सेवाके लिए क्यों कष्ट उठाऊँ ?

रामने लक्ष्मणसे कहा, इस स्थलकी मिट्टी अच्छी दीखती है, थोड़ी बाँध ले साथ। लक्ष्मणने एक पोटली बना ली । मार्गमें जब तक वह इस पोटलीको हाथमें लेकर चलते थे तबतक उनके मनमें कुभाव भी बना रहता था। परंतु ज्यों ही वे उस पोटलीको नीचे रख कर दूर हो जाते थे तो उनका मन राम-सीताके लिए ममता और भक्तिसे भर जाता था। लक्ष्मण इस बातसे आश्चर्यचकित हो गये । उन्होंने रामसे कारण पूछा ।

श्रीरामने कारण बताते हुए कहा—भाई, तेरे मनके इस परिवर्तनके लिए तू दोषी नहीं है । उस मिट्टीका ही यह प्रभाव है । जिस भूमि पर जैसे काम किए जाते हैं, उसके अच्छे-बुरे परमाणु उस भूमिभागमें और वातावरणमें भी छूट जाते हैं। जिस स्थानकी मिट्टी इस पोटलीमें हैं, वहाँ सुंद और उपसुंद नामक दो राक्षसोंका निवास था । उन्होंने कड़ी तपश्चर्या करके ब्रह्माको प्रसन्न करके अमरताका वर माँगा । ब्रह्माने उनकी मांग तो पूरी करनी चाही किंतु कुछ नियंत्रणके साथ। उन दोनों भाइयोंके बीच बड़ा प्रेम था । अतः उन्होंने कहा कि हमारी मृत्यु केवल आपसी विग्रहसे ही हो सके। ब्रह्माने वर दे दिया ।

इन दोनोंने सोचा था कि हम कभी आपसमें झगड़नेवाले तो हैं नहीं । अतः अब हम तो मरेंगे ही नहीं ।

अपनी इस अमरताके घमंडमें उन्होंने देवोंको सताना शुरू कर दिया । देवोंने ब्रह्माजी-का आसरा लिया । तो ब्रह्माजीने तिलोत्तमा नामकी अप्सराका सर्जन किया और उसे उन असुरोंके पास जानेकी आज्ञा दी। सुंद और उपसुंदने इस सौंदर्यवती अप्सराको देखा, तो दोनों मोहांध हो गए। सुंदने कहा कि यह मेरी है तो उपसुंदने कहा, सोच-समझके बोल । यह तेरी भाभी अर्थात् मेरी पत्नी है । दोनों झगड़ने लगे। तिलोत्तमाने कहा मैं तो विजेताके साथ विवाह करूँगी। तो उन दोनों भाइयोंने विजेता बननेके लिए ऐसा घोर युद्ध किया कि दोनों मर गए ।

वे दोनों असुर जिस स्थान पर झगड़ते हुए मरे थे, उसी स्थानकी यह मिट्टी है । अतः इस मिट्टीमें भी द्वेष, तिरस्कार और वैरके संस्कारोंका सिंचन हो गया है ।

जिस भूमि पर जैसे कर्म किए जाते हैं, वैसे ही संस्कार वह भूमि भी प्राप्त कर लेती है ।

घरको गृहस्थ सदा पवित्र रखे ।

लोग माथेरान सैर करनेके लिए जाते हैं, किंतु यह नहीं सोचते कि अपने माथे पर रान (ऋण) कितना बढ़ गया है ।

माथेरान जानेके बदले जहां परमात्माने लीला की हो, वैसे भगवद्धाममें रहकर सत्कर्म करो ।

गृहस्थको पितृश्राद्ध भी करना चाहिए । दशरथके श्राद्धके प्रसंग पर सीता जब वसिष्ठको भोजन परोस रही थी, तो उसे वसिष्ठमें दशरथके दर्शन हुए थे । पवित्र ब्राह्मणके माध्यमसे पितर घर पर आते हैं। पवित्र ब्राह्मणके हाथ श्राद्ध कराया जाये।

कामका मूल है संकल्प । अतः संकल्पका त्याग करके कामको जीतना चाहिए। मनमें सुखका संकल्प ही नहीं आना चाहिए। संकल्प ही दुःखका कारण है । कामकी इच्छा अपूर्ण रहने पर क्रोध उत्पन्न होता है। कामनाओंका त्याग ही क्रोधको जीतनेका उपाय है। क्रोध दुःखदाता है। क्रोध पर ही क्रोधित होनेका निश्चय करो।

संसारी लोग जिसे अर्थ मानते हैं, वही अनर्थ है, ऐसा समझो और लोभको जीतो। तात्त्विक विचारसे भयको जीतना चाहिए । अध्यात्म-विद्यासे शोक और मोह पर, संतोंकी उपासनासे दंभ पर, मौन द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

गृहस्थको सद्गुरुका आश्रय लेकर उसकी आज्ञाका पालन करना चाहिए । सात्त्विक भोजन, स्थान और सत्संगसे निद्राको पराजित करना चाहिए । सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मनुष्यकी देह विलीन हो जाती है। ज्ञानेश्वरने १६वें वर्षमें और शंकराचार्यने ३२वें वर्षमें प्रयाण किया था।

तमोगुणकी वृद्धिसे निद्रा बढ़ती है और सत्त्वगुणकी वृद्धिसे नींद उड़ जाती है । निद्रा तमोगुणका धर्म है।

सदाचार, संयम, सात्त्विक आहार, विहार, आचार आदिसे सत्त्वगुण बढ़ता है । सत्त्वगुणकी वृद्धिसे प्रभुमिलनकी आतुरता भी बढ़ेगी।

हर रोज भगवान्का ध्यान करो। ध्यान करनेसे ध्यान करनेवालेमें ईश्वरकी शक्ति आती है। गृहस्थको इन्द्रियरूपी घोड़ोंको नियंत्रणमें रखना चाहिए।

विद्वान् कहते हैं कि यह शरीर रथ है और इन्द्रियाँ घोड़े । इन्द्रियोंका नियंता मन ही इन घोड़ोंकी बागडोर है। शब्दादि विषय विभिन्न मार्ग है। बुद्धि इस रथको चलानेवाला सारथी है। इस रथको बाँधनेके लिए ईश्वरने चित्तरूप बंधन बनाया है । दस प्राण इस रथकी धुरा हैं। धर्म और अधर्म पहिये हैं। इस रथमें बैठता है हमारा अहंकारी जीव। ॐकार धनुष है और शुद्ध जीव बाण। परब्रह्म लक्ष्य है, निशाना है। राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, असूया, माया, हिंसा, मत्सर, रजोगुण, प्रमाद क्षुधा, निद्रा आदि शत्रु हैं।

जब तक मनुष्य-देहरूपी रथ अपने वशमें है तथा इन्द्रियाँ आदि सशक्त हैं, उतने समयमें ही मनुष्यको चाहिए कि वह सद्गुरुओंके चरणोंकी सेवा करके, तीक्ष्ण ज्ञानरूपी तलवार लेकर, श्रीभगवान्का बल धारण करके रागद्वेषादि शत्रुओंको जीत ले और तत्पश्चात् शांत होकर स्वानंदरूपी स्वराज्यसे संतुष्ट हो जाए। शरीररथको भी छोड़ देना चाहिए।

यदि ऐसा न किया जा सका, तो रणमें विराजमान प्रमादी जीवको तथा दुष्ट इन्द्रियों रूपी घोड़ोंको बुद्धिरूपी सारथी अयोग्य मार्ग पर ले जाकर विषयोंरूपी चोरोंके अधीन कर देगा। वे चोर घोड़ों और सारथीके सहित जीवरूपी रथको अंधकारव्याप्त और महामृत्युके भयसे पूर्ण संसाररूप कुएंमें फेंक देंगे।

वेदमें दो प्रकारके कर्म बताए गए हैं। प्रवृत्ति-कर्मसे मनुष्य संसारमें वापस आता है और निवृत्तिकर्मसे मोक्ष प्राप्त करता है।

मैं कमाता हूँ, ऐसा अभिमान गृहस्थको नहीं रखना चाहिए। द्रव्य मेरा है, ऐसा भी अभिमान मत रखो। द्रव्य सभीका है।

गृहस्थ भावाद्वैत सिद्ध करे। पति-पत्नी सत्संग करें।

एकांतमें बैठकर हरि-कीर्तन करो। कीर्तनसे कलिके दोषोंका विनाश होता है। धर्मसे अर्थका उपार्जन करो।

मौजमजेमें सभी साथ रहते हैं और दँड अकेले जीवात्माको भोगना पड़ता है।

अनेक गृहस्थ संसार पार कर गए हैं। बड़े-बड़े ऋषि जो ईश्वरको देखनेके लिए तरसते हैं, वे आपके घरमें रहते हैं।

इस प्रकार नारदने धर्मराजको उपदेश दिया। अन्तमें इस प्रकरणकी समाप्तिमें धर्मराजने नारदजीकी पूजा की।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

अष्टम स्कन्ध

हरि तुम हरो जनकी भीर ॥
द्रौपदीकी लाज राखी तुम बढ़ायो चीर ॥
भक्तकारन रूप नरहरि धर्यो आप शरीर ।
हिरनकश्यप मार लीन्हों धर्यो नांहिन धीर ॥
बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ।
दासि मीरा लाल गिरधर दुःख जहाँ तहँ पीर ॥

प्रथम स्कंध में शिष्योंका अधिकार बतलाया गया है। अधिकारके विना ज्ञान शोभा नहीं देता। अनधिकारी मनुष्य ज्ञानका दुरुपयोग करता है। दूसरे स्कंधमें ज्ञानका उपदेश किया है। वहाँ मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है, यह बताया गया है। मनुष्यजीवन भोग भोगनेके लिए नहीं दिया गया है। ईश्वरकी आराधना करके ईश्वरको पानेके लिए मानव-शरीर दिया गया है। तृतीय स्कंधमें ज्ञानको जीवनमें किस प्रकार उतारना है, यह कथा सुनाई गई। इस ज्ञानको जीवनमें उतारनेवालेके चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, अतः चौथे स्कंधमें चार पुरुषार्थोंकी कथा सुनाई गई। पाँचवें स्कंधमें ज्ञानी परमहंसोंके और भागवत परमहंसोंके लक्षण बतलाए गए। सबके स्वामी परमात्मा हैं। इसके बाद छठे स्कंधमें पुष्टिकी कथा आई है। जीव पर परमात्मा अनुग्रह करते हैं। जीवके पाससे ईश्वर कुछ नहीं माँगते। ईश्वर निरपेक्ष हैं, तो भी ईश्वर जीव पर कृपा करते हैं। मनुष्य जब अपने किए हुए पापोंको याद करेगा, तो उसको पता लगेगा कि जो कुछ उसे मिला है, उसके लिए वह योग्य नहीं है।

जब जन्म हुआ, तब जीव शुद्ध था। पर जब उसमें समझ आई, तब वह असत्य बोलने लगा। ईश्वर जीवको अनेक अवसर देते हैं और वे आशा रखते हैं कि जीव अपना जीवन सुधारेगा।

केवल कथा सुननेसे लाभ नहीं होता। कथा सुनकर मनन करके उसे जीवनमें उतारो।

प्रभुने हमारे लिए चिंता करने जैसा कुछ नहीं रखा। ईश्वरकी जीव पर अनंत कृपा है परन्तु जीव उसका उपयोग नहीं करता। पवित्र विचार करनेके लिए प्रभुने मन दिया है। जो मनशक्तिका दुरुपयोग करता है, वही दैत्य है। मनमें शक्ति है। जब जीव ईश्वरस्वरूपमें लीन होता है, तब मनशक्तिका विकास होता है, पर जब मन बिषयोंमें भटकता है, तब मन-शक्तिका विनाश होता है।

ईश्वर जीवमात्र पर कृपा करते हैं। उसकी पात्रतासे अधिक उसे देते हैं।

सातवें स्कंधमें वासनाकी कथा सुनाई और बताया कि प्रह्लादकी सद्वासना है, मनुष्यकी मिश्रवासना और हिरण्यकशिपुकी असद्वासना है।

हिरण्यकशिपुको संपत्ति मिली और समय भी मिला, परन्तु इन सबका उपयोग उसने भोगविलासमें किया। शक्तिका उपयोग दूसरोंको दुःख देनेमें किया।

मर्यादाके बिना भोग मनुष्यको रोगी बनाता है। भोग इन्द्रियोंको रोगी बनानेके लिए नहीं है। इन्द्रियोंको निरोगी रखनेके लिए भोग है। अग्निमें लकड़ियाँ न डालना ही अग्निको शांत करनेका उपाय है। इसी तरह इन्द्रियोंको भोग न देनेसे इन्द्रियाँ शांत होंगी। भोग देनेके बाद ऐसा लगता है कि इन्द्रियोंको शांति मिली है, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। उससे तो अशांति ही बढ़ती है।

मुझे जो कुछ मिला है, वह केवल मेरे लिए ही है, ऐसा मानना ही असद्‌वासना ह। परमात्माने मुझे जो कुछ दिया है, वह सबके लिए है, ऐसा सोचना ही सद्‌वासना है। प्रह्लादमें सद्‌वासना थी, अतः उनको देव माना गया। हिरण्यकशिपुको उसकी असद्‌वासनाके कारण राक्षस माना गया। हिरण्यकशिपु, भोगवृत्ति, अहंकार और लोभ है। देव होना या दानव होना, यह मनुष्यके हाथोंमें हैं। जगत्‌के सब लोग पुण्यके फलकी इच्छा तो रखते हैं परन्तु वे खुद पुण्य करते नहीं हैं—

पुण्यस्य फलं इच्छन्ति, पुण्यं न कुर्वन्ति मानवाः।

सदा ध्यानमें रखो कि तुम्हारे कर्मके फल तुमको ही भोगने पड़ेंगे, इसमें दोष किसका? अगर दाँतोंके नीचे आकर जीभ कट जाये, तो दोष किसका? वह तो सहना ही पड़ेगा।

भक्तिमार्गमें आगे बढ़नेका पहला साधन संयम है। संयमको धीरे-धीरे बढ़ाओ और भोगमार्गकी ओर बहती हुई इन्द्रियशक्तिको प्रभुके मार्गकी ओर मोड़ दो। वासनाका विनाश होने पर ब्रह्मभाव जागता है। जब तक मनमें सूक्ष्म वासना है, तब तक जीव और ईश्वरका मिलन नहीं होता। वासना ज्ञानानुभवमें विघ्नकर्ता है।

वासनाके विनाशके लिए आठवें स्कंधमें चार उपाय बतलाये गए हैं। भागवतका फल है रासलीला। जीवको श्रीकृष्णसे मिलना है। एक बार श्रीकृष्णसे मिल जानेके बाद जीव उनसे अलग नहीं हो पाता। रासमें उसीको प्रवेश मिलता है जो कि वासनाका विनाश करता है। अनेक जन्मोंकी वासना मनमें भरी हुई है। वासना अनेक प्रकारके दुःख देती है, फिर भी मनुष्य उसको छोड़ता नहीं है। ईश्वरका अनुभव हुए विना वासना जाती नहीं है। जब तक वासनामें आकर्षण होगा, तब तक वासना नहीं जाएगी। कुंभकको बढ़ाओगे तो वासनाका विनाश होगा। प्राणोंको शरीरमें टिकाये रखोगे तो वासनाका विनाश होगा।

बार-बार मनमें ऐसा संकल्प करो कि मुझे परमात्मासे मिलना है। जब दो आत्माएँ मिलती हैं, तब उनके मिलनेसे भी यदि आनंद मिलता है, तो सब प्राण सूक्ष्मरूपसे जिन परमात्मामें बसे हुए हैं, उन परमात्मासे मिलते समय कितना आनंद होगा। मुझे ईश्वरसे मिलना है, ऐसी कामना करो। वासनाको अलौकिक बनाओ।

जो दुष्ट संस्कार मनको मिले हुए हैं, वे दूर हों और मनको अच्छे संस्कार मिलें, इसलिए सत्संग जरूरी है। सत्संगसे वासना उच्चतम बनेगी। वासनाको अलौकिक बनाओ। मनुष्य बार-बार जैसा बोलता है और जिसका विचार करता है, वैसा ही वह खुद बनता है।

आठवें स्कंधमें वासनाका विनाश करनेके लिए चार उपाय बतलाये गए हैं। वासनाका विनाश इन चार उपायोंसे होता है। जब जीव ईश्वरसे दूर होता है, तब वासना जागती है। सतत हरिस्मरण करनेकी आदत डालोगे, तो वासना नहीं जागेगी। हृदयमें यदि हमेशा रामका वास होगा तो वहाँ कामवासना नहीं आ सकेगी।

हरिस्मरणकी आदत रखनेसे वासनाका विनाश होगा। यह सब ईश्वरका है और सबके लिए है, ऐसा समझोगे तो वासनाका विनाश होगा। संपत्ति मेरी है, ऐसा सोचनेसे वासना बढ़ेगी। जीव लक्ष्मीका मालिक कभी नहीं हो सकता। जीव तो लक्ष्मीका पुत्र है। बालक होनेसे जो आनंद मिलता है, वह मालिक होनेसे नहीं मिलता। बालक बनोगे तो सुखी होगे। सूतजी सावधान करते हैं—बलि राजाने सर्वस्वका दान किया। विपत्तिमें स्ववचनका पालन करो। चौथा उपाय है शरणागति।

यदि जीव भगवानकी शरणमें नहीं जाएगा और भगवान्‌का स्मरण नहीं करेगा, तो वह वासनाका विनाश नहीं कर सकेगा। वासनाका नाश करनेके बाद ही रासलीलामें जाना है। धीरे-धीरे राजा परीक्षितके मनकी शुद्धि करके शुकदेवजी उन्हें रासलीलामें ले जायेंगे।

अष्टम स्कंधमें मन्वन्तर लीलाका वर्णन है। शुकदेवजी वर्णन करते हैं, हे राजन्, प्रत्येक मन्वंतरमें प्रभुका जन्म होता है। प्रत्येक मनुके राज्यमें प्रभुका एक विशिष्ट अवतार होता है।

इस कल्पमें छः मनु हुए हैं। प्रथम स्वायंभुव मनुकी कथा मैंने तुम्हें सुनायी। स्वायंभुव मनुकी पुत्रियाँ आकूति और देवहूतिके चरित्रकी कथा मैंने सुनायी।

दूसरे मन्वंतरमें स्वायंभुव मनु तपश्चर्या करनेके लिए वनमें गये। वहाँ श्रीयज्ञ भगवान्‌ने राक्षसोंसे उनकी रक्षा की।

उन्होंने कहा है—यह सारा जगत् और जगत्‌में रहनेवाले सब चर-अचर प्राणी परमात्मामें ओतप्रोत हैं, अतः संसारके किसी भी पदार्थसे मोह न रखकर इनका त्याग करके जीवननिर्वाहके लिए जितना जरूरी हो उतना ही उपभोग करना चाहिए। तृष्णाका सर्वथा त्याग करना चाहिए। इस जगत्‌की संपत्ति किसकी है और कब किसकी हुई है?

अतः हे मनुष्य! त्याग करके तुम इसका उपभोग करो, अर्थात् सर्वस्व ईश्वरको अर्पण करो और अनासक्त रहकर तुम उपभोग करो। दूसरोंके धनको प्राप्त करनेकी स्पृहा मत रखो।

यह सारा जगत् ईश्वरसे व्याप्त है अर्थात् प्रभु सर्वव्यापक हैं, ऐसा जो मनुष्य सोचेगा वह कभी भी किसीसे द्रोह नहीं करेगा।

विषयमें मन न फँसे, इस बातका ध्यान रखो। इस जगत्‌के पदार्थ आजतक किसीके नहीं हुए और होंगे भी नहीं। फिर भी मनुष्य उनसे ममता रखता है और उनमें अपनी आसक्ति बढ़ाता है।

ऊपर बतलाया हुआ अद्वैतवाद सुन्दर है। द्वैतवादका त्याग करो। ऋषि भी मोक्ष पानेसे पहले सत्कर्म करते हैं। सत्कर्म करनेवाले मनुष्य ही निष्कामभावको प्राप्त करते हैं।

ईश्वरको भी कर्म करने पड़ते हैं परन्तु ईश्वर किसी भी कर्ममें आसक्त नहीं होते। वे तो अनासक्त रह कर कर्म करते हैं। राम, कृष्ण आदि अवतारोंमें मनुष्योंको श्रेष्ठ आचरणोंका आदर्श बतलानेके लिए भगवान्ने सत्कर्म किए हैं।

कर्म किए बिना नहीं चलेगा—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

अतः अनासक्त रहकर ही कर्म करो।

तीसरे मनु हुए हैं उत्तम। प्रभुने सत्यसेनके रूपमें अवतार धारण किया था। चौथे मन्वंतरमें प्रभुका हरिके रूपमें जन्म हुआ था और उन्होंने गजेन्द्रकी मकरग्राहसे रक्षा की थी। दूसरे अध्यायसे चौथे अध्याय तक गजेन्द्रमोक्षकी कथा कही है। परीक्षित राजा कहते हैं कि मुझे गजेन्द्रमोक्षकी कथा सुनाइए।

शुकदेवजी राजासे कहते हैं—राजन्, त्रिकूट पर्वत पर एक बलवान् हाथी रहता था। वह अनेक हथिनियोंका पति था। गर्मीके दिन थे। कड़ी गरमीका मौसम था। गजेन्द्र हथिनियोंके साथ सरोवरमें जलक्रीड़ा करने गया। हथिनियोंसे और बच्चोंसे घिरा हुआ वह आनंद-विहार करने लगा। गजेन्द्र जलक्रीड़ामें तन्मय है, यह जानकर एक मगरने उसका पाँव पकड़ लिया। उसके पंजेमेंसे छूटनेके लिए हाथीने बहुत प्रयत्न किए। हाथी स्थलचर और मगर जलचर है, अतः हाथी जलमें दुर्बल बन गया। मगर, हाथीको छोड़ता नहीं है। गजेन्द्रमोक्षकी यह कथा प्रत्येक घरमें होती है—

संसार ही सरोवर है।
जीव ही गजेन्द्र है।
काल मगर है।

संसारके विषयोंमें आसक्त हुए जीवको कालका भी भान नहीं रहता। जीवमात्र गजेन्द्र है। हाथीकी बुद्धि स्थूल है। यदि ब्रह्मचर्यका भंग होगा, तो बुद्धि जड़ होगी। हाथी अति कामी है। सिंह सालमें एक ही बार ब्रह्मचर्यका भंग करता है। इसलिए उसका बल कम होने पर भी वह हाथीको मार सकता है। कामक्रीड़ा करनेवालेकी बुद्धि जड़ होती है।

यह जीवात्मा गजेन्द्र त्रिकूटाचल पर्वत पर रहता है। त्रिकूटाचल शरीर है। त्रिकूटाचलका दूसरा अर्थ होता है काम, क्रोध और लोभ। यह संसार सरोवर है। संसारमें जीव कामक्रीड़ा करता है। संसार-सरोवरमें जीवात्मा स्त्री और बालकोंके साथ क्रीड़ा करता है। जिस-जिस संसारमें जीव खेलता है उसी संसारमें ही उसका काल नियत किया गया है संसारमें जो कामसुखका उपभोग करता है, उसे काल पकड़ता है। जिसको काम मारता है, उसे काल भी मारता है। मनुष्य कहता है कि मैं कामसुखका उपभोग करता हूँ, यह बात झूठी है। काम मनुष्यका उपभोग करके उसे क्षीण करता है—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

इन्द्रियोंको जब भक्तिरस मिलता है, तब वे शांत होती हैं।

अनेक जन्मोंसे जीव कालको मारता चला आ रहा है। मगर और साँपको कालको उपमा दी गई है।

जिस संसारमें मनुष्य कामक्रीड़ा करता है वहाँ काल भी रहता है। जिस समय जन्म होता है, उसी समय मरणका समय भी नियत किया जाता है। मगरने हाथीका पांव पकड़ा था। काल जब आता है तो सबसे पहले पांव ही पकड़ता है। पाँवकी शक्ति क्षीण हो जाय तो मान लो कि कालने पकड़ लिया है। पाँवकी शक्ति क्षीण हो जाये तो सावधान हो जाना चाहिए कि अब काल समीप आ गया है। उस समय घबड़ाना नहीं चाहिए, भगवत्स्मरणमें लग जाना चाहिए। जब काल आकर पकड़ेगा, तब तुम्हें न पत्नी छुड़ा सकेगी और न पुत्र ही। जब काल पकड़ेगा, तब कोई भी प्रयत्न काम नहीं आएगा। उस मगरने जब हाथीको पकडा, तब न तो हथिनियाँ और न बच्चे ही उसे छुड़ा सके और न दूसरे हाथी। मनुष्यको जब काल पकड़ता है, तब उसको कोई नहीं बचा सकता। पत्नी, पुत्र, संबंधी कोई भी उसे नही बचा सकता। कालके मुखमेंसे वही छूटेगा, जिसको परमात्माका दर्शन होगा। कालके भी काल श्रीकृष्णके दर्शनसे कालका नाश होगा।

काल-मगरके मुखमेंसे तो श्रीहरिका सुदर्शन चक्र ही छुड़ा सकता है।

मगरके मुखमेंसे छूटनेके लिए हाथीने बहुत प्रयत्न किए, परन्तु कोई प्रयत्न काम न आया। हथिनियाँ और बच्चोंने भी प्रयत्न किए, परन्तु कुछ काम न चला। जब काल पकड़ता है, तो कोई भी प्रयत्न काम नहीं आता।

एक महीना इसी प्रकार दोनोंके बीच युद्ध चलता रहा। मगर हाथीको गहरे पानीमें खींचता चला जा रहा है, अतः अब हाथी मर जाएगा, ऐसा सोचकर हथिनियाँ तो उसका त्याग करके चली गईं। मनुष्यके जन्मसे पहले उसका कोई संबंधी नहीं था और न मरनेके बाद कोई रहेगा। फिर भी जन्म और मरण दोनोंके बीचमें जो समय है, उस समयमें उसे एक दूसरेके बिना चैन नहीं आता। परन्तु अंतःकालमें कोई भी काम नहीं आता। मनुष्यको ऐसी इच्छा रखनी चाहिए कि मेरी ऐसी हालत हो, कि मुझे प्रभुके बिना चैन न आये!

गजेन्द्र अब मर जायेगा, ऐसा सोचकर सब उसको छोड़कर चले गए। गजेन्द्र अकेला ही रह गया। मनुष्य भी जब अकेला हो जाता है, तब जाकर ज्ञान जागृत होता है। अकेला अर्थात् जब जेबमें पैसा भी न हो, तब ज्ञान जागृत होता है और वह ईश्वरकी शरणमें जाता है। निर्बलका बल राम है।

द्रोपदीने जबतक साड़ीका आँचल पकड़ रखा, तबतक श्रीकृष्ण नहीं आये। ईश्वर सम्पूर्ण प्रेम चाहते हैं। जीव ईश्वरको थोड़ा प्रेम देता है, अतः ईश्वर मदद नहीं करते।

गजेन्द्र निराधार हो गया। उसको यकीन हो गया, कि अब मेरा कोई नहीं है। जीव जब दुःखसे व्याकुल होता है, तब वह परमात्माको आवाज देता है।

हर रोज गजेन्द्रमोक्षका पाठ करना जरूरी है। बुड्ढा जब बीमार पड़ेगा और अधिक दिन बीमार रहेगा तो सब ऐसी इच्छा करेंगे, कि अब यह बुड्ढा मर जाये तो अच्छा हो। बेटा छुट्टी लेकर आया हो और बुड्ढेकी बीमारी बढ़ती जाए, तो वह कहेगा, मैं जा रहा हूं, मेरी छुट्टी खत्म हुई है। बुड्ढेको कुछ हो जाये तो खबर देना।

जीव जब मृत्युशैयापर अकेला होता है, तब उसकी हालत गजेन्द्र जैसी होती है। अंतःकालमें जीवको ज्ञान होता है, परन्तु तब वह ज्ञान उसके कुछ काम नहीं आता। मनुष्य घबड़ाता है और सोचता है कि मैंने मरनेकी कोई तैयारी नहीं की है, अब मेरा क्या होगा? जहाँ जाकर वापस आना होता है, ऐसे सफरके लिए तो मनुष्य बहुत तैयारी करता है, परन्तु जहाँ जाकर वापस लौटना नहीं होता, ऐसे सफरके लिए वह कुछ भी तैयारी नहीं करता। परमात्माको राजी करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार होगा। यह गजेन्द्र पशु है। पशु होकर भी वह परमात्माको आवाज देता है। परन्तु मनुष्य तो मृत्युशैया पर पड़कर भी हाय-हाय ही करता है। पर हाय-हाय करनेसे अब क्या मिलेगा?

गजेन्द्र जब अकेला हो गया, तो उसको यकीन हो गया, कि अब ईश्वरके सिवा मेरा कोई नहीं है। ईश्वरके आधारके बिना जीव निराधार है। अन्तमें सब छोड़कर चले जाते हैं। जिनके लिए सारे जीवनका भोग दिया, वे भी छोड़कर चले जाते हैं। अंतःकालमें जीवको यकीन हो जाता है कि ईश्वरके सिवा मेरा कोई नहीं। अंतःकालमें जीव पछताता है। हाय-हाय करके उसकी जान जाती है। अंतःकालमें हाय-हाय करके हृदय जलाना नहीं चाहते हो, तो अभीसे हरिका नाम लेना शुरू कर दो। आजसे श्रीहरिका स्मरण करोगे, तो अंतःकालमें भी श्रीहरि ही याद आयेंगे।

पशु संग्रह नहीं करता है। मनुष्य संग्रह करता है। मनुष्य आनेवाले कलकी चिंता करता है। कालने पाँवको पकड़ा हुआ है, यह भूलना नहीं चाहिए। पाँवकी शक्ति क्षीण हो जाये, तो मान लेना कि मरनेका समय आ गया है।

जब गजेन्द्र बहुत व्याकुल हो गया तब वह स्तुति करने लगा। गजेन्द्रने जो श्रीहरिकी स्तुति की, उसकी बड़ी महिमा है। संसारी लोगोंको गजेन्द्रकी तरह नित्य श्रीहरिकी स्तुति करनी चाहिए। इस तरह स्तुति करनेसे अज्ञानका नाश होता है और मरण सुधरता है।

काल जब जीवको पकड़नेके लिए आता है, तब वह प्रभुको पुकारता है कि, हे नाथ! आपकी शरणमें मैं आया हूँ। जीव जब चारों ओरसे निराधार बन जाता है, तब पूर्वजन्मके संस्कारसे और सत्कर्मोंसे वह प्रभुकी शरणमें जाता है। गजेन्द्र स्तुति करता है—भिन्न-भिन्न रूपोंमें नाटक करनेवाले अभिनेताके वास्तविक स्वरूपको जिस प्रकार साधारण दर्शक नहीं जान सकता, उसी प्रकार सत्वप्रधान देवता या ऋषि भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जान सके तो फिर दूसरे साधारण लोग तो तुमको पहचान ही कैसे सकेंगे या तुम्हारे स्वरूपका वर्णन कैसे कर सकेंगे? ऐसे दुर्गम चरित्रवाले हे प्रभु, मेरी रक्षा करो।

पशुतुल्य अविद्याग्रस्त जीवकी अविद्यारूप फाँसीको सदाके लिए काटनेवाले, अत्यंत दयालु और दया करनेमें कभी भी देरी न करनेवाले नित्य मुक्त प्रभुकी शरणमें आया हुआ मैं वंदना करता हूँ। अपने अंशसे सर्व जीवोंके मनमें तुम अंतर्यामी रूपसे प्रकट हो रहे हो। सबके नियन्ता और अनन्त—ऐसे आपकी मैं वंदना करता हूँ—

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय।

मैं पशु हूँ। कालके पाशमें फँसा हुआ हूँ। जरा विचार करो। जीवमात्र पशु है। सब कालके मुखमें फँसे हुए हैं। मुझे कालसे बचाओ। जहाँ कालका अस्तित्व न हो, वहाँ मुझे ले

चलो। जहाँ काल है, वहाँ दुःख है। जिसके सिर पर काल है, वह सुखी नहीं है। जहाँ काल न हो, ऐसे अपने निजधाममें ले चलो।

जो लोग शरीर, पुत्र, मित्र, घर संपत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं, उनको तुम्हारी प्राप्ति होनी अति कठिन है, क्योंकि तुम स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हो। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें तुम्हारा निरंतर चिंतन करते हैं। सर्वज्ञानस्वरूप, सर्वसमर्थ परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

नाथ, इस मगरके पाशसे छूटकर मैं जीनेकी इच्छा नहीं रखता हूँ। हाथीका शरीर अंदर और बाहर दोनों ओरसे अज्ञानरूप आवरणसे ढँका हुआ था। ऐसे शरीरको रखकर क्या फायदा? मैं तो आत्मप्रकाशको ढँक देनेवाले उस अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, कि जिसका कालक्रमसे अपने-आप नाश नहीं होता है उस अज्ञान-आवरणका तो केवल आपकी कृपासे या तत्त्वज्ञानसे ही नाश होता है।

हे नाथ, मुझ पर कृपा करो। शरणगतकी रक्षा करनेवाले, हे प्रभु, मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ।

गजेन्द्र इस तरह दुःखसे आर्द्र होकर श्रीहरिकी स्तुति करता है। बड़े-बड़े महात्मा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करते हैं। जब काल पकड़ता है, तब जीव भयसे व्याकुल होकर कैसा घबड़ाता है, ऐसा सोचकर गजेन्द्र जैसे आर्द्र बनकर गजेन्द्रमोक्षका पाठ करोगे, तो जीवन सुधरेगा। स्तुतिके एक-एक श्लोकमें दिव्य तेज भरा हुआ है। इस स्तुतिका पाठ नित्य करोगे, तो अंतःकालमें परमात्मा लेनेके लिए आएँगे।

प्रातःकालमें पवित्र हो कर जो भी व्यक्ति भगवान्की गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करेगा, उसकी बुद्धि अंतःकालमें भी निर्मल रहेगी। उसे अंतःकालमें भी हरिका स्मरण रहेगा।

इस स्तुतिका पाठ मनुष्यको संकटसे मुक्त कराता है। यह स्तुति दुष्ट स्वप्नके फलका नाश करती है। इस स्तुतिका पाठ करनेवालेको बुरे सपने नहीं सताते।

यह जीव अंतःकालमें घबड़ाता है। जब वह चेतनहीन हो जाता है, तब यमदूत उसे बाहर निकालते हैं। अंतःकालमें जीव अतिशय दुःखी होता है। ऐसे समयमें ईश्वरका स्मरण हो सकना बड़ा कठिन है। ईश्वरकी कृपा हो, तभी उनका स्मरण हो सकता है। अतः हो सके तो प्रतिदिन गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो। हो सके तो मत्स्यावतार-चरित्रका भी पाठ करो। मध्यरात्रिको रासपंचाध्यायीका पाठ करो। ऐसा करनेसे प्रभुकृपासे काम उसे नहीं सताएगा।

गजेन्द्र प्रार्थना कर रहा है। अब तो मुझे अविनाशी दिव्य शरीर दीजिए। यमुना महारानीकी कृपासे अलौकिक शरीरके नूतनतत्त्वका दान मिलता है। नाथ कृपा करके मुझे अव्यय अविनाशी तेजोमय शरीर दीजिए।

नाथ, आप शाप शीघ्रही पधारें। हे गोविंद, हे नारायण, मैं दीन हुआ हूँ। कालके मुखसे मुझे मुक्ति दें।

जब उस गजराजको बचानेके लिए ब्रह्मा आदि कोई भी देवता न आये, तो परमात्माको चिंता हुई। स्वयं दौड़ते हुए आए। द्वारिकानाथ निराधारके आधार हैं। अंतःकालमें याद करने पर तो वे दौड़ते हुए आते हैं।

गजेन्द्रने भगवान्को आते हुए देखा, तो उसने सरोवरमेंसे एक कमलका फूल लेकर भगवान्को अर्पित किया।

तुलसी और कमल परमात्माको अति प्रिय हैं। परमात्माकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है। कमल ब्रह्मका सर्जन नहीं है।

भगवान्ने उस कमलके फूलको स्वीकार किया और अपने सुदर्शनचक्रसे मगरमच्छका वध किया।

ज्ञानचक्रसे ही कालका नाश हो सकता है। ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि सबमें भगवान् दिखाई दें। जिसे ब्रह्मदृष्टि प्राप्त होती है, वह सभी स्थान और वस्तुमें प्रभुका ही दर्शन करता है।

ब्रह्मज्ञानी तो संसारमें कहीं कभी मिल भी जाएंगे, किंतु शुकदेवजी-सी ब्रह्म-दृष्टिवाले बहुत अल्प ही मिलेंगे। ऐसे ज्ञानीके लिए संसार बाधक नहीं है। अज्ञानीके लिए संसार बाधक है, ज्ञानीको नहीं। ज्ञानीके लिए जगत्, जगत् नहीं है।

मनुष्यको अज्ञानकी पकड़से छूटना है। भगवान्ने सुदर्शनचक्रसे मगरमच्छकी हत्या की थी, अर्थात् सुदर्शन भगवान्के दर्शनसे कालकी हत्या होगी। सर्वमें भगवद्दर्शन ही सुदर्शन है। जब काल पकड़ता है तो उसकी पकड़मेंसे कालके भी काल भगवान् ही छुड़ा सकते हैं।

सुदर्शनसे कालरूपी मगरमच्छका नाश हुआ। इसका एक अर्थ यही है कि तुम्हारी दृष्टि जब सुदर्शन—अर्थात् सभीमें प्रभुका दर्शन करनेवाली—होगी तभी तुम कालके मुखसे मुक्त होगे। तुम भी तब कालको जीत लोगे। ऐसे ज्ञानी पुरुषका काल क्या बिगाड़ सकता है? जिसके हृदयमें सर्वके प्रति भगवद्भाव जागृत हुआ है वह कालके मुखसे मुक्त हो जाएगा।

सर्वमें श्रीकृष्णका दर्शन करते-करते उसको अपनेमें भी श्रीकृष्णका ही दर्शन होने लगता है। अपने स्वरूपमें भी श्रीकृष्णका दर्शन करोगे तो काल तुम्हें मार नहीं सकेगा।

शरणमें आए हुए गजेन्द्रका जिस प्रकार उद्धार किया. उसी प्रकार शरणमें जानेसे सभी जीवका प्रभु उद्धार करते हैं।

वह गजेन्द्र अपने पूर्वजन्ममें इन्द्रद्युम्न नामका राजा था। वह ध्यानमें बैठा हुआ था कि वहाँ अगस्त्य मुनि आए। राजाने उठ कर उनका स्वागत नहीं किया तो मुनिको यह व्यवहार अपमानजनक लगा।

भगवान्से भी अधिक उनके भक्तका सम्मान किया जाये। पत्थरकी मूर्तिके प्रति सद्भाव रखनेसे वह चेतनमयी होती है, तो चेतनके प्रति सद्भाव रखनेसे ईश्वरकी प्राप्ति क्यों न होगी?

अगस्त्य मुनिको बुरा लगा तो उन्होंने शाप दिया, चूंकि मेरे आने पर भी तू जड़-सा ही बैठा रहा, अतः अगले जन्ममें तुझे पशुका जड़ अवतार प्राप्त होगा।

पूर्वजन्ममें गजेन्द्रने बहुत भक्ति की थी, अतः गजेन्द्रयोनिमें भी उसे अंतःकालमें प्रभुका स्मरण हुआ और फलतः उसका उद्धार हुआ।

जो भी संस्कार मनमें दृढ़ होकर जम जाते हैं, वे अंतःकालमें और अगले जन्ममें भी काम आते हैं।

ठाकुरजीका पहले स्वप्नमें अनुभव होता है। गोपाल सहस्रनामावलिमें भगवान्का एक नाम है 'भक्तानाम् स्वप्नवर्धनः।'

भगवान्ने गजेन्द्रको सारूप्य मुक्ति दी, अपने ही जैसा रूप दिया। गजेन्द्रकी भाँति तुम भी दीनता और व्याकुलतासे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो। अंतःकालमें ठाकुरजी गजेन्द्रकी भाँति तुम्हें भी लेनेके लिए आएंगे।

छठे अर्थात् चाक्षुष् मन्वंतरमें समुद्रमेंसे जो अमृत मिला, उसे भगवान्ने देवोंको पिलाया। इस मन्वंतरमें भगवान्ने अजीत नामसे अवतार लिया था। समुद्रमंथन करके अमृत निकाला। स्वयं विष्णुने ही कच्छपरूप धारण करके मंदराचल पर्वतको अपनी पीठ पर धारण किया।

परीक्षित राजाने पूछा—भगवान्ने समुद्रमंथन कैसे किया? कच्छपरूप लेकर मंदराचलको अपनी पीठ पर क्यों धारण किया? उन्होंने देवताओंको कैसे अमृत पिलाया? इस समुद्रमंथनकी कथा कृपया मुझे भी तो सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्! एक बार इन्द्र इधर-उधर घूम रहा था, कि मार्गमें ऋषि दुर्वासा मिल गए। दुर्वासाने इन्द्रको पुष्पमाला अर्पित की।

साधु, ऋषि जब कुछ देते हैं तो सद्भावपूर्वक देते हैं। उसे इन्कार न करके आदरसे ग्रहण करना चाहिए।

इन्द्र संपत्तिके मदसे विवेकभ्रष्ट हो गया था। उसने माला हाथीकी सूंड़ पर फेंक दी और हाथी उसे पाँवसे कुचलने लगा। दुर्वासाने सोचा कि इन्द्र मेरा और पुष्पवासी लक्ष्मीका अपमान कर रहा है। तब उन्होंने इन्द्रको शाप दिया—तू दरिद्र होगा।

संपत्तिके मदसे विवेकभ्रष्ट हुआ व्यक्ति दरिद्र हुए विना फिर विवेकी नहीं बन पाता।

इन्द्र दरिद्र हो गया और स्वर्गका राज्य दैत्योंको मिला। देवगणने भगवान्का आसरा लेकर उनसे प्रार्थना की कि कुछ ऐसा उपाय करें कि जिससे हमें स्वर्गका राज्य वापस मिल जाए। भगवान्ने समुद्रमंथन करनेकी आज्ञा दी और कहा कि इससे प्राप्त होनेवाला अमृत तुम्हें पिलाकर तुम्हें अमर बनाऊँगा। यह काम कोई आसान काम नहीं है। इस काममें शत्रुओंका भी साथ लेना, अन्यथा वे बाधा उपस्थित करते रहेंगे। दैत्योंके साथ मैत्री करके उनकी प्रशंसा करना। वे अभिमानी हैं, अतः अपनी प्रशंसा सुनकर वे मित्र बन जाएंगे।

जिसे ज्ञानरूपी, भक्तिरूपी अमृत मिलता है, वह अमर हो जाता है।

देव और दैत्य अमृतप्राप्तिके लिए समुद्र-मंथन करने लगे। मंदराचल पर्वतको मथानी और वासुकि नागको रस्सा बनाया गया।

संसार ही समुद्र है। अपने जीवनका मंथन करो। समुद्रमंथन जीवनका ही तो मंथन है। संसार-समुद्रका मंथन करके ज्ञान और भक्तिरूपी अमृत प्राप्त करना है। ज्ञान और भक्तिरूपी अमृतका पान करनेवाला अमर हो जाता है।

मनको मंदराचल पर्वतकी भाँति स्थिर करो। मन ही मंदराचल पर्वत है और प्रेमडोर ही वासुकि नाग है।

सोलहवें वर्षमें मनोमंथन शुरू हो जाता है।

शिवपुराणमें एक प्रसंग है। शिवजीने कामदेवको आज्ञा दी कि बाल्यावस्था और वृद्धावस्थाको छोड़कर मनुष्यको तू सताते रहना।

युवावस्थामें पूर्वजन्मके संस्कार धीरे-धीरे जागृत होते हैं। उस समय अपने मनको मंदराचल पर्वतकी भाँति स्थिर करना चाहिए। मनको चंचल न होने देना चाहिए। उसके लिए कमसे कम तीन घंटे ठाकुरजीकी प्रतिदिन सेवा करो।

जब मंदराचल समुद्रमें डूबने लगा तो भगवान्ने कूर्मावतार लेकर अपनी पीठपर उसे धारण कर लिया।

अपने मनको भी तुम ठाकुरजीके किसी भी स्वरूपमें स्थिर कर रखो। मनका स्वभाव होता है, मात्र साकार वस्तुका ही दर्शन करनेका। सगुणका साक्षात्कार जबतक भलीभाँति न हो पाए, तब तक निर्गुणमें दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती। भगवान्के सगुण स्वरूपमें स्थिर हुआ मन उनके निर्गुण स्वरूप स्थिर हो सकता है।

निराधार मन संसारसागरमें डूब जाता है। मनरूपी मंदराचल आधारके बिना स्थिर नहीं रह पाता। उसे भगवत्स्वरूप, भगवन्नामके आधारकी आवश्यकता है। उसे वह आधार मिलेगा, तो वह संसार-समुद्रमें कभी न डूबेगा।

अनेक औषधियोंको समुद्रमें विसर्जित करके समुद्रका मंथन किया गया है।

औषधिका एक अर्थ दवा है तो दूसरा अर्थ है अन्न। जल और अन्न औषधि हैं। ये दोनों शरीरको आवश्यकतानुसार देना चाहिए। भूख और प्यासको रोग मानो और उन्हें सहनेकी आदत डालो। जिस प्रकार रोगको मिटानेके लिए औषधि ली जाती है, उसी तरह अन्नजलका प्रमाणानुसार ही सेवन करो। शरीर हलका होगा तो भजन ठीकसे हो सकेगा।

समुद्रमें-से प्रथम विष निकला था और बादमें अमृत।

मनको स्थिर करके प्रभुके पीछे लग जाओगे, तो वे पहले तो विष ही देंगे। किंतु उसे सह लोगे तो अमृत भी देंगे। महापुरुषोंने विविध कष्टरूपी विषका पान किया था, दुःखोंको सहन किया था, अतः उन्हें ज्ञानामृत मिला।

जीवनमंथनके प्रारंभमें विष ही मिलेगा। मंथन यौवनसे ही शुरू हो जाता है। पहले विषय मिलेंगे और विषय, विष जैसे ही तो हैं।

निंदा और कर्कश वाणी विष ही है। निंदा और नरक एक ही है। निंदारूपी विष सह लोगे, तो अमृत मिलेगा। प्रतिकूल परिस्थिति भी विष ही है। दुःख भी विष ही है।

विषकी दुर्गंधि देवोंसे सही न गई, तो प्रभुने विषपानके लिए शंकरको बुला भेजा।

जिसके सिर पर ज्ञानगंगा होती है, वह विषको पचा सकता है। इस संसारका विष सभीको जलाता है, किंतु ज्ञानगंगाधारीको नहीं जला सकता। शंकर भगवान्की भाँति ज्ञान-गंगाको सिर पर धारण करोगे तो विष सहा जाएगा। शिवजीकी पूजा विष सहनेकी शक्ति देती है। शिवजी दान देते हैं, अतः विष सहनेकी शक्ति मिलती है।

निंदा शब्दरूप होनेके कारण उसका सम्बन्ध आकाशके साथ होता है, आत्माके साथ नहीं, ऐसा मान कर निंदा सह लेनी चाहिये।

देवोंने शिवजीसे विष पी जानेके लिए प्रार्थना की। उन्होंने पार्वतीसे अनुमति माँगी। तो पार्वतीने कहा ये सब तो स्वार्थी हैं। विष पीनेसे आपको अगर कुछ हो गया तो?

शिवजी—यदि सबका कल्याण हो सकता है तो भले ही चाहे मुझे दुःख क्यों न झेलना पड़े।

अन्यको सुखी करनेके लिए जो स्वयं दुःख सह ले, वही शिव है। स्वयंको सुखी करने के लिए दूसरोंको दुःखी करे, वह जीव है। दूसरोंका हित करनेके लिए जो अपना स्वार्थ भी छोड़ देता है, वह शिव है और अपने स्वार्थके लिए दूसरोंका काम बिगाड़ता है, वह जीव है।

शिवजीने भगवत्-स्मरण करते हुए विषपान किया।

विषको गलेमें ही रखना है, पेटमें उतारना नहीं। किसीको कटु शब्द सुनानेकी इच्छा हो जाए, तो उसे गलेमें ही रोक दो मुख पर मत आने दो। विष गलेमें रखा जाता है। इसे न तो बाहर निकालना है और न पेटमें उतारना है। निंदाकी ओर ध्यान ही न देना चाहिए। किसीके द्वेषको याद मत करो।

विषको पेटमें कभी मत रखो। कर्कश वाणी विष ही है। शिवजीने विषको कंठमें ही रखा हुआ है।

भागवतमें तो नहीं है किंतु किसी महात्माने कहा है कि जब शिवजी विषपान कर रहे थे तो कुछ छींटे नीचे गिरे थे और वह विषके छींटे कुछ जीवोंकी आंखोंमें और पेटमें पड़ गए थे।

विषकी जलन अधिक हो जाए तो भगवान्‌के नामका कीर्तन करो। भगवान्‌का नाम विषको भी अमृत बना देता है। शिवजी भी इसीसे तो भगवान्‌का नाम लेकर विष पी गए थे।

संसारमें विष भी है और अमृत भी। जो विषको पचा सकेगा, उसे अमृत मिलेगा। कृष्ण-कीर्तन ही अमृत है।

सोलहवें वर्षसे जीवनमें मंथन शुरू होता है। मनमें वासनाका विष उत्पन्न होता है। उस समय मनको मंदराचल-सा स्थिर कर लोगे, तो उस मनोमंथनमेंसे, संसारमेंसे भक्ति और ज्ञानरूपी अमृत प्राप्त होगा। फिर तो मानव अमर हो जाएगा। इस तरह जिसे भक्ति और ज्ञान मिलेंगे, उसकी मृत्यु नहीं होगी।

शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मीराबाई, तुकाराम आदि न जाने कितने संत-साधु-भक्तोंको कोई भूल नहीं पाया है। वे सब अमर हैं। उन्हें सभी याद करते हैं।

भगवान् पहले विष देते हैं और फिर अमृत। जो उनके पीछे लगता है, उसकी वे परीक्षा करते हैं।

जगत्‌के कल्याणके हेतु, भलाईके लिए शंकरने विषपान किया। साधु पुरुषोंका ऐसा ही वर्तन होता है। सज्जन पुरुष अपने प्राणका बलिदान देकर भी अन्यके प्राणकी रक्षा करते हैं। जब कि संसारके मानव मोह-मायासे लिपट कर पारस्परिक वैर भावना बढ़ाते रहते हैं।

परोपकारी सज्जन प्रजाके दुःख दूर करनेके लिए स्वयं दुःख सह लेते हैं। वे कहते हैं—सभीके लिए मैं दुःख सह लूंगा, किंतु अपने लिए किसीको भी दुःख सहने न दूंगा। साधु पुरुष अन्य लोगोंके दुःखसे दुःखी होते है, किंतु यह दुःख नहीं है। यह तो सभीके हृदयमें विराजमान परमात्माकी आराधना है।

साधु पुरुष कैसे होते हैं, वह तुलसीदासजीसे सुनिए :—

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह पर कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । परदुख द्रवइ संत सुपुनीता ॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

मंथन करते-करते गौमाता कामधेनु प्राप्त हुई। गौमाता कामधेनुका दान ऋषि-मुनियोंको दिया गया।

जो संपत्ति प्रथम मिले, उसका परोपकारमें उपयोग करो।

कामधेनु संतोषका प्रतीक है। संतोष कामधेनुका स्वरूप है। जिसके आँगनमें संतोषरूपी गाय है, वह ब्राह्मण ही ब्रह्मनिष्ठ है। असंतोषी मनुष्य पाप करता है। ब्राह्मणका जीवन अति सात्त्विक होना चाहिए।

आगे जाकर उच्चैश्रवा नामक घोड़ा प्राप्त हुआ। इसे देख कर दैत्योंका मन ललचाया तो उन्हें दे दिया गया।

श्रव शब्दका अर्थ है कीर्ति। उच्चैश्रवा कीर्तिका प्रतीक है। मनको जो पर्वत-सा स्थिर कर पाएगा, उसे जगत्में कीर्ति मिलेगी और लक्ष्मी भी। जिसका मन कीर्तिमें फँसता है, उसे अमृत नहीं मिल पाता।

साधनके आरंभमें कीर्ति मिलती है। यदि मन इसीमें फँस गया, तो भगवान् नहीं मिलेंगे। जिसे मान अधिक मिलता है, उसके पुण्योंका क्षय होता है। जिस जीवको मानका मोह नहीं है और जो दीनतासे प्रभुकी प्रार्थना करता है उस जीवको ईश्वर अपने जैसा बनाते हैं।

विष्णुसहस्रनामावलिमें भगवान्को 'अमानी मानदो' कहा गया है। भगवान् स्वयं अमानी हैं, किंतु जीवोंको मान देते हैं।

जिसका मन उच्चैश्रवा अर्थात् कीर्तिके मोहमें फँस जाता है, उसे अमृत नहीं मिलता। दैत्योंने उच्चैश्रवाको ले लिया था, अतः उन्हें अमृत नहीं मिला।

बिना कसौटीके परमात्मा कृपा नहीं करते। जो कीर्ति और प्रसिद्धिमें फँसता है उसे अमृत नहीं मिलता।

आगे चलकर समुद्रमंथनसे जब ऐरावत हाथी निकला तो दैत्य घोड़ा ले लेने के कारण पछताने लगे।

हाथी सूक्ष्म दृष्टिका प्रतीक है। हाथीकी आँखें छोटी-सी होती हैं। देवोंको यह हाथी दिया गया।

स्थूल दृष्टि देहदृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टि आत्मदृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टिवालेको अमृत मिलता है। सूक्ष्मदृष्टिवालेको कामदेव सता नहीं सकता।

आगे चलकर समुद्रमंथनसे अप्सरा प्राप्त हुई। दैत्योंसे देवोंने कहा कि इसके बाद जो कुछ निकलेगा उसे हम लेंगे। पारिजात और अप्सरा देवोंको मिले।

अब समुद्रमें लक्ष्मीजी प्रकट हुईं। ये तो साक्षात् जगदंबा, महामाया हैं। दैत्योंने सोचा कि हमें यह मिल जाएँ तो अच्छा हो किंतु माँगनेवालोंको, इच्छा करनेवालोंको लक्ष्मी नहीं मिलती।

लक्ष्मीजीको सिंहासन पर बिठाया गया। इस जगत्में भी लक्ष्मीनन्दनोंको सभी मान देते हैं।

लक्ष्मीजी सोचने लगीं कि किसके गले में वरमाला पहनाऊँ। सर्वगुणसंपन्न पुरुषकी खोजमें निकलीं।

उन्हें ऋषियोंके मंडपमें लाया गया। ये ऋषि ज्ञानी भी हैं और तपस्वी भी, किंतु क्रोधी अधिक हैं।

मात्र तप करनेसे कुछ फल नहीं मिलता। तपको भक्तिका भी साथ होना चाहिए। तप करनेसे शक्ति बढ़ती है और इससे क्रोध भी बढ़ जाता है। तप और ज्ञानसे शक्ति तो बढ़ती है किंतु वह छलकने भी लगती है। अतः ज्ञानके साथ भक्ति भी होनी चाहिए। भक्ति दीनता, नम्रताके सिंहासन पर विराजती है।

लक्ष्मीका मन न माना। आगे देवगण विराजमान थे। वे क्रोधी नहीं हैं, किंतु अतिशय कामी हैं।

शास्त्रने क्रोधका लाल, लोभका पीला और कामका काला रंग बताया है।

देव महान् होते हुए भी कामी हैं, अतः वे आगे चलीं। आगे बैठे थे परशुरामजी। वे जितेन्द्रिय हैं, कामी और क्रोधी नहीं हैं किंतु निष्ठुर हैं। क्षत्रियोंके छोटे बालकोंको भी मारते हैं, अतः मुझे पसंद नहीं है।

आगे मार्कण्डेय मुनि बैठे थे। वे सुंदर भी हैं और दीर्घायुषी भी, किंतु भरी सभामें आँखें मूँद कर बैठे हैं। लक्ष्मीजीकी ओर भी उन्होंने नहीं देखा। लक्ष्मीजीने सोचा कि ये महात्मा तो अनासक्त हैं। मेरी ओर देखते तक नहीं हैं। मैं यदि इन्हें वरूँगी तो भविष्यमें भी शायद मेरी ओर ध्यान नहीं देंगे।

मार्कंडेयने कहा—तुझे कैसे सुंदर मानूँ? तुझसे तो कन्हैया अधिक सुन्दर है। जब तक वह तुझे नहीं अपनाएगा, मैं तेरा दर्शन नहीं करूँगा। मुझे लक्ष्मीका मोह है ही नहीं।

जब लक्ष्मीका मोह छूटता है, तब प्रभुभक्तिका प्रारंभ होता है।

तुकारामके दरिद्रयको देख कर शिवजी महाराजने उनके लिए सुवर्णसे भरा थाल भेजा। तुकारामने कहा—जब मैं लक्ष्मीके पीछे भाग रहा था, तब वह मुझे मिली ही नहीं। अब मेरा चित्त भगवान्से जा लगा है तो वह बाधा डालने आ रही है। उन्होंने वह सुवर्णभरा थाल लौटा दिया।

सारा दिन भजन करनेवाले और कुछ भी उद्यम न करनेवालेको लक्ष्मीजी नहीं मिल पातीं।

आगे चलीं तो वहां शंकर विराजमान थे। लक्ष्मीजी अपनी सखियोंके साथ वहाँ आईं। शंकर कामी भी नहीं हैं और क्रोधी भी नहीं। लक्ष्मीजीने शंकरको देखा। इनका स्वभाव तो मंगल है, किंतु वेश अमंगल है और चेष्टा भयानक और वे भोले भी बहुत हैं।

शंकरके निकट भगवान् नारायण विराजमान थे। लक्ष्मीजीने सोचा कि वे ही उत्तम हैं। जिसका हृदय कोमल और मृदु होता है उसीके पास लक्ष्मीजी आती हैं। उन्होंने नारायणको वरमाला पहना दी।

लक्ष्मी-नारायणकी जय।

अब तक नारायणकी दृष्टि धरतीकी ओर थी। लक्ष्मीजीने उन्हें वरमाला पहनाई तो वे इधर-उधर देखने लगे।

जिसके पास लक्ष्मी हो, उसे आसपास भी देखना चाहिए। सामान्यतः धन मिलनेके बाद लोग चारों ओर नहीं देखते हैं। मैं, मेरी पत्नी और पुत्र बस। यह ठीक नहीं है। धनवानोंको तो चारों ओर देखकर सभी दीन-दुःखीका दुःख दूर करना चाहिए।

समुद्रमंथनका काम आगे चलने लगा। दैत्योंने सोचा कि एक बार घोड़ा पाया और सभी कुछ देवताओंको मिल गया। अब तो जो कुछ निकलेगा, वह हम ही लेंगे। इस बार मदिरा निकली। दैत्योंको मदिरा मिल गई। पियो, बस, पियो।

मंथन आगे चला तो भगवान् धन्वंतरि अमृत-कुंभ लेकर प्रकट हुए। दैत्योंने वह घड़ा छीन लिया तो देवगण दुःखके मारे भगवानकी शरणमें गए। तो भगवानने कहा—अब शक्ति नहीं, युक्तिसे काम लेना होगा।

जिस दैत्यके हाथमें सबसे पहले अमृतकुंभ आया था, वह कहने लगा कि वही पहले पियेगा। उसके बड़े भाईने कहा कि मैं पहले पिऊँगा और फिर सभी दैत्य इस बातको लेकर एक-दूसरेसे झगड़ने लगे। आपसी झगड़ेके कारण उन्हें अमृत मिल नहीं पाया।

जिसके घरमें इन दैत्योंकी भाँति गृहक्लेश होने लगता है, उसके घरमेंसे किसीको भी ज्ञानामृत और भक्ति-अमृत नहीं मिल पाता।

झगड़ते हुए दैत्योंके समूहके बीच भगवान् मोहिनीका रूप लेकर प्रकट हुए। मोहिनी-का सौंदर्य देखकर दैत्य चकरा गए। अहा! क्या सौंदर्य है!

मोहिनी मोहका ही स्वरूप है। जो मोहिनीमें आसक्त है, उसे अमृत नहीं मिलता। संसारकी प्रत्येक वस्तुमें माया है। सौंदर्य तो मात्र कल्पना ही है। एक वस्तु तुम्हें सुंदर लगती है, वही वस्तु, संभव है कि किसीको सुंदर न भी लगे। सौंदर्य आँखोंमें है। वस्तुमें मनुष्य ही सौंदर्यका आरोपण करता है। सुंदर तो मात्र श्रीकृष्ण ही हैं। जगत्‌में जो कुछ सुंदर दीखता है, वह सब श्रीकृष्णकी सुंदरताके कारण ही सुन्दर है।

जिसे मोहिनीका मोह लग जाता है, उसे अमृत-भक्तिरूपी अमृत नहीं मिलता। जो संसारकी मोहिनीमें, सौंदर्य और विषयोंके मोहमें फँसता है, उसे अमृत नहीं मिलता; किंतु जिसका मन मनमोहन श्रीकृष्णमें फँसता है, उसे अमृत मिलता है।

जबतक सांसारिक मोहिनीका मोह है, भगवान् नहीं मिलेंगे। सांसारिक पदार्थोंमें मन जैसे फँसा हुआ है, वैसे ही जब तक श्रीकृष्णके स्वरूपमें न फँसे, तब तक भक्ति फलवती नहीं होती और भक्तिकी सिद्धिके बिना भगवान् नहीं मिलते। स्वरूप-आसक्ति के बिना भक्ति सिद्ध नहीं हो पाती।

सांसारिक विषयोंका मोह छोड़ोगे, तो भक्ति हो सकेगी। इसे विवेकसे छोड़ना है। ज्यों-ज्यों प्रभुप्रेम बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों विषयोंकी ओरसे अरुचि होती जाएगी। समुद्रके

ज्वार और भाटा, परस्पर विरोधी हैं। इसी प्रकार प्रभु-प्रेम बढ़ते जाने पर विषयासक्ति घटती जाएगी। आँखोंमें कामको रखकर जगतको देखोगे. तो मोह उत्पन्न होगा और आँखोंमें ईश्वरको रखोगे तो मोहका नाश होगा।

सांसारिक स्वरूपमें आसक्ति ही माया है। ईश्वरके स्वरूपमें जो आसक्ति है, वही भक्ति है।

दैत्य कौन है ? राह पर चलती हुई किसी भी स्त्रीमें जिसका मन फँस जाए, वही दैत्य है। जो परस्त्रीका चिंतन करे, वह राक्षस है।

कामातुर दैत्योंने मोहिनीको घेर लिया और पूछने लगे—देवी, तुम कहाँसे आई हो ? तुम्हारा गाँव कौन-सा है ? तुम्हारा विवाह हो गया है या नहीं ? मोहिनीकी मायामें दैत्य सुधबुध खो बैठे थे।

भगवान् सोच रहे थे कि इन दैत्योंको अमृत न देनेमें ही कल्याण है। यदि इन्हें अमृत मिलेगा तो वे अमरता प्राप्त करके अभिमानी हो कर पाप अधिक करेंगे।

मोहिनीने हँसते हुए कहा—मैं तो आपके कल्याणके लिए आई हूँ। मेरा कोई एक घर नहीं है। मेरे तो कई घर हैं। जो भी पुरुष मुझसे प्रेम करता है, मैं उसके घर जाती हूँ।

मैं तुकारामके घर भी जाती हूँ और नरसी मेहताके घर भी।

वैष्णवोंके जितने भी घर हैं, सभी ठाकुरजीके भी हैं।

दैत्य मूर्ख थे, अतः मोहिनीके वचनोंका गूढार्थ समझ न सके। जिस दैत्यके हाथमें अमृतकुंभ था, वह ललचायी आँखोंसे मोहिनीकी ओर देख रहा था। उसने कहा—मैं यह कुंभ तुम्हें भेंट करता हूँ। उसने सोचा कि इससे प्रसन्न हो कर मोहिनी उसके घर आयेगी। मोहिनीने उससे पूछा—इस घड़ेमें क्या है ? तो उसने कहा कि अमृत है।

सौन्दर्य किसी जड़ वस्तुमें नहीं है। जिसे देखनेसे विकार जागे, वह सौंदर्य ही नहीं है।

दैत्यने वह घड़ा मोहिनीके हाथोंमें दे दिया और बोला—देवीजी बाँटेंगी और हम शांतिसे पियेंगे। हाथ जोड़कर बैठेंगे, झगड़ा नहीं करेंगे।

मोहिनीदेवीने देव और दानवोंको अलग-अलग दो पंक्तियोंमें बिठलाया और पहले दैत्योंके पास जाकर उनसे कहा—मैं आपका कल्याण करना चाहती हूँ किंतु वह ऊपरका अमृत पानी जैसा है, अतः उसे देवोंको पिला दूँ और नीचे जो अच्छा अमृत है, वह आपको पिलाऊँगी। ठीक है न ?

बेचारे मोहांध दैत्य ! वे कहने लगे, अच्छा-अच्छा। हम नीचेका अच्छा भाग ही पी लेंगे। आपके हाथोंसे मात्र एक बूंद भी मिल जाए, तो भी बहुत है। वे मोहांध होकर बुद्धि गवाँ बैठे थे। अन्यथा एक ही घड़ेमें अमृत दो प्रकारका कैसे हो सकता है ?

दैत्योंने कहा—देवीजी, आपको जो योग्य लगे, वही करें।

मोहिनीदेवी देवोंको अमृत पिलाने लगी। कुछ देर बाद दैत्य घबड़ाकर सोचने लगे कि इस बातमें छल दिखाई देता है। दैत्य राहुने सोचा कि इसमें कुछ-न-कुछ कपट है। इस नारीका विश्वास करके हमने बड़ी भूल की है। ऐसा सोचता हुआ वह देवपक्षमें जा बैठा कि जिससे अपना भाग गवाँना न पड़े। राहु देवोंकी पंक्तिमें सूर्य और चन्द्रके बीच बैठ गया।

मोहिनीदेवी जान गई कि वह दैत्य है. किंतु पंक्तिभेद न करनेके हेतुसे राहुको भी अमृत दिया।

भोजनमें विषमता कभी मत करो। जो पंक्तिभेद करता है उसे संग्रहणी नाम रोग हो जाता है। जब तक पूर्वजन्मका पुण्य बलवान् है, पापका फल नहीं मिलता।

यह भी तो सोचो। जब इन्द्रादि देवोंको अमृत मिल रहा था तब राहु वहाँ नहीं आया किंतु जब सूर्य-चंद्रको अमृत मिल रहा था तो वह आ पहुँचा। मनका स्वामी चंद्र है। चंद्र मनका स्वरूप है। बुद्धिका स्वामी सूर्य है। सूर्य बुद्धिका स्वरूप है। हाथोंसे, जीभसे मनुष्य भक्ति करता है, तब विषयरूपी राहु बाधा डालने नहीं आता है किंतु जब मनुष्य मनसे, बुद्धिसे ईश्वरका ध्यान करने लगता है. तो विषयरूपी राहु बाधा डालनेके लिए आ धमकता है। मन-बुद्धिको ईश्वरके ध्यानमें लगाया नहीं, कि राहुको आया हुआ ही समझो। मन और बुद्धिको जो भक्तिरूपी अमृत मिलता है, वह विषयरूपी राहुसे देखा नहीं जाता, अतः विषयरूपी राहु विघ्न डालने आ जाता है। इस विषय-राहुको ज्ञानचक्रसे नष्ट कर दो।

राहुने अमृत पीना शुरू किया ही था कि भगवान्‌ने सुदर्शन चक्र चलाकर उसका सिर उड़ा दिया।

अर्थात् सुदर्शनचक्र—ज्ञानरूपी सुदर्शनचक्रसे विषयराहुका नाश किया जाए किंतु मात्र ज्ञान और बुद्धिसे विषयराहु मरता नहीं। ज्ञान और बुद्धिका अधिक विश्वास मत करो। अकेले ज्ञानसे कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि राहु वैसे तो अमर है। जब तक कोई सच्चे संतकी कृपा नहीं मिल पाती, विषयराहु नहीं मरता।

मात्र ज्ञानसे विषयोंका नाश नहीं हो पाता। ईश्वरके अनुग्रहसे ही मन निर्विषयी होता है। भगवान्‌की कृपाके बिना मन निर्विषयी नहीं हो सकता। ज्ञानका आश्रय लेकर भी अति दीन बनोगे, तो परमात्मा कृपा करके विषयराहुको मारेंगे। मात्र ज्ञानसे ही निर्विषयता नहीं हो पाती। ईश्वरकी कृपासे निर्विषयता आती है—

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

गी. २-५९

परमात्माकी कृपा और साक्षात्कारसे ही विषयासक्ति और विषयानुरागितामेंसे मन निवृत्त हो पाता है।

दैत्य भगवानसे विमुख थे, अतः उन्हें अमृत नहीं मिला।

संसारकी मोहिनीमें फँस जाओगे, तो भक्तिरूपी अमृत कभी न मिलेगा।

मोहिनीदेवीने सारा अमृत देवोंको पिला दिया और घड़ा दैत्योंके सामने रख दिया। दैत्योंने चिल्लाना शुरू कर दिया—कपट ! विष्णु, तुम साड़ी पहन कर आए। तुम्हें लाज भी न आई ?

देव और दानवोंके बीच भयानक युद्ध हुआ। दैत्य पराजित हो गए।

जो मोहिनीके पीछे पागल बन कर दौड़ने लगता है, वही दैत्य है। संसारकी मोहिनीमें फँसनेवाला दैत्य है। दैत्योंके श्रम और तप सांसारिक सुखके हेतु ही होते हैं। रावण और

हिरण्यकशिपुने क्या कम तप किया था, किंतु उनका सारा तप भोग-विलासके हेतु था, भगवान्‌के हेतु नहीं।

नारदजीने कैलास पर जाकर शिवजीसे पूछा, क्या आपने नारायणके मोहिनीरूपका दर्शन किया ? तो शिवजी मोहिनी स्वरूपका दर्शन करनेके लिए सपरिवार वैकुंठधाममें पधारे।

नारायणने शिवजीका स्वागत करते हुए आगमनका कारण पूछा। शिवजीने बताया कि वे तो उनके दर्शनार्थ पधारे हैं। भगवान्‌ने कहा कि मैं तो सामने ही उपस्थित हूँ। शिवजी-ने कहा—मैं आपके मोहिनी स्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ।

प्रभु—आपने तो कामदहन किया है, फिर भी ऐसा मोह क्यों है ?

शिवजी—मैंने आपके सभी जन्म देखे हैं, अतः इस मोहिनी अवतारको भी देखना है। (शिवजी अनादि और अनंत हैं अतः ऐसा कहते हैं।)

प्रभुने लीलाकी रचना की। एक सुंदर उद्यान और उसमें पुष्पगुच्छ खेलती हुई सौंदर्य-वती युवती। शिवजीने यह देखा तो पार्वतीकी उपस्थिति भी भूल गए। भगवान्‌की मायासे शंकर भी मोहित हो गए।

जिसके सिर पर ज्ञानगंगा है और जिसका वाहन ज्ञान है, क्या उसे काम प्रभावित कर सकता है ? किंतु शिवजी यह बताना चाहते हैं कि भगवान्‌की मायाको पार करना बड़ा ही कठिन कार्य है।

गीतामें कहा गया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गी. अ. ७–१४)

मेरी इस मायाको पार करना बड़ा कठिन है किंतु जो मेरी शरणमें आता है, वह अनायास ही इस मायाको पार कर जाता है।

शिवजी देहभान भूल गए। दर्शन करने वाला देहभान भूल जाता है।

शिवजी सोच रहे हैं कि जब मात्र दर्शनसे ही इतना आनंद मिलता है, तो मिलन तो कितना अधिक आनंददायी होगा।

आनंद अद्वैतमें ही है।

शिवजी मिलनातुर होकर दौड़ पड़े। वे प्रेमसे आलिंगन देने गए, तो वहाँ चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। हरि और हरका मिलन हुआ।

हरि और हर वैसे तो एक ही हैं।

शिवजीने कैलास वापस आकर ऋषियोंको उपदेश दिया—मेरे श्रीकृष्णकी माया सभीको नचाती है। मनका कभी भरोसा न करो। यह माया कब पतनके गर्तमें फेंक देगी इसका कोई पता नहीं है। मैं जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा गर्व कभी मत करो। मनमें सूक्ष्मतासे छिपे हुए विषय अवसर पाते ही प्रकट हो जाते हैं। मायाके पर्देको हटानेके लिए मनको कृष्णमय बना लो।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी भटक गए थे, फिर आज तो कलियुग है। कलियुगीन मनुष्य कामका कीड़ा है। उसे तो और भी अधिक सावधान होना चाहिए।

शिवजी मनुष्यको समझाते हैं कि हरिस्मरण और हरिकीर्तन ही मनुष्योंको मोहिनीके मोहसे बचा सकता है।

सातवें मन्वन्तरमें श्राद्धदेव नामक मनु हो गए। उनके समयमें कश्यप और अदितिके घर भगवान्का वामन अवतार हुआ।

परीक्षित राजा कहते हैं—मैं सातवें मन्वन्तरके वामन भगवान्की कथा सुनना चाहता हूँ। मुझे उनका चरित्र सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

राजन्? देवोंके साथ हुए संग्राममें पराजित होने पर दैत्योंने शुक्राचार्यका आश्रय लिया। शुक्राचार्यकी कृपासे दैत्योंका बल बढ़ने लगा। इन्द्र द्वारा पराजित बलि राजा संतोंकी सेवा करके फिरसे बलवान् होने लगा। शुक्राचार्यने उससे विश्वजित यज्ञ करनेको कहा। विश्वजित यज्ञ किया गया तो उस यज्ञसे उन्हें सर्वजित रथ प्राप्त हुआ।

शुक्रकी सेवा करनेवाला बलि बनता है। शुक्र—शक्तितत्त्वस यह शरीर बना है। ब्रह्म-चर्यकी सेवा करनेसे बलि बनोगे। शुक्राचार्य अर्थात् संयम। ब्रह्मचर्यकी सेवा करनेसे, संयम-से दैत्य बलि (बलवान्) बना।

सभी विषयोंका यज्ञमें होम किया गया। संयमरूपी यज्ञमें सर्व विषयोंका होम करके बलि—जितेन्द्रिय बनो। बलवान् बने हुए बलिको शुक्राचार्यने अपना ब्रह्मतेज दिया। बलि राजाने देवोंका पराभव किया। स्वर्गका राज्य दैत्योंने हस्तगत किया। बलि राजाको इन्द्रासन पर बिठाया गया।

शुक्राचार्यने सोचा कि बलि यदि सौ अश्वमेध यज्ञ करे तो स्वर्गका राज्य उसे हमेशाके लिए मिल जाए। यज्ञ करनेके लिए बलि राजा भृगुकच्छ (भरुच-भड़ौंच) आए। अश्वमेध यज्ञ किया गया।

बलि राजाने स्वर्ग जीत लिया तो देवगण घबरा कर भागते हुए अपने गुरु बृहस्पतिके पास पहुँचे। बृहस्पतिने कहा, बलि जब भृगुवंशी ब्राह्मणोंका अपमान करेगा, तब वह नष्ट हो जाएगा।

इधर देवोंकी माता अदिति दुःखसंतप्त हो गई। कश्यप ऋषिके कारण पूछने पर उसने सारी बात बताई। अदितिने कश्यपकी अत्यधिक सेवा करके वर माँगा कि मेरे पुत्रोंको स्वर्गका राज्य वापस मिले।

कश्यपने कहा कि दैत्य ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। धर्मका कवच पहनते हैं। नीति ही जिनका शिरछत्र है उन्हें कौन मार सकता है? जीवका पाप ही उसे मारता है, भगवान् नहीं। दैत्य अब तो पवित्र जीवन जी रहे हैं, अतः इन्हें भगवान् भी नहीं मार सकते। अतः भगवान् शक्तिसे नहीं, युक्तिसे देवोंको सुखी करनेका यत्न करेंगे।

इसी कारणसे वामनचरित्रमें युद्धकी कथा नहीं है। भगवान्ने भी बलिको नहीं मारा।

कश्यपने कहा—देवी तुम पयोव्रत करो। फाल्गुन मासमें यह व्रत करना है। विधि-पूर्वक व्रत करनेसे स्वयं भगवान् तुम्हारे घर पुत्ररूपसे आएँगे।

पति-पत्नी साथ-साथ ईश्वरकी आराधना करें, तो प्रभु शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

सभी आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। अदिति-कश्यपका गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ था।

गृहस्थ योगाभ्यास करता नहीं है, फिर भी उसे योगका फल मिल सकता है—

यत्र योगोह्ययोगिनाम्।

भा. ८-१६-५

जो लोग योगसाधना नहीं कर पाते हैं, उन्हें गृहस्थाश्रम योगका फल देता है। गृहस्थाश्रममें धर्म ही मुख्य है, काम-सुख तो गौण है।

जबसे वरराजा घोड़ेके बदले मोटर पर सवारी करने लगा है, गृहस्थाश्रममें गड़बड़ हो गई है। आजकलके वरराजाको डर रहता है कि घोड़ा कहीं गिरा न दे।

जो एक घोड़ेको नियंत्रित नहीं कर सकता है, वह ग्यारह घोड़ोंको—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मनको कैसे नियन्त्रित कर सकेगा? गृहस्थको तो इन ग्यारह इन्द्रियोंको नियंत्रणमें रखना पड़ता है। संयम रखना पड़ता है। विवाह विलासके लिए नहीं, कामविनाशके लिए है।

सत्संगसे गृहस्थाश्रम सफल होता है। जो आनन्द योगीको समाधिमें मिलता है, वही आनंद गृहस्थ घरमें पा सकता है किंतु इसके लिए पति-पत्नीको चाहिए, कि वे एकांतमें कृष्णकीर्तन करें।

शास्त्रोंमें गृहस्थाश्रमकी तो बड़ी प्रशंसा की गई है और जो निंदा की गई है, वह तो वासनाकी है। कोई भी स्त्री या पुरुष बुरा नहीं होता, किंतु उसके मनमें छिपी हुई कामवासना बुरी होती है। महात्माओंने तो कई बार कहा कि गृहस्थोंका आनंद योगीके आनंदसे भी श्रेष्ठ है।

ईश्वरके साथ खेलनेवाला श्रेष्ठ है कि अपनी गोदमें स्वयं ईश्वरको भी खिलानेवाला श्रेष्ठ है? योगी परमात्माके साथ खेलता है, अतः श्रेष्ठ तो है, किंतु गृहस्थ भी साधारण नहीं है।

गृहस्थाश्रम बिगड़ता है कुसंगसे। गृहस्थाश्रमका लक्ष्य ठीकसे समझमें न आनेके कारण ही वह बिगड़ता है।

कश्यप-अदितिका गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ था, दिव्य था। वे पवित्रतापूर्वक जीते हुए तपश्चर्या करते थे। अतः प्रभुने उनके घरमें जन्म लेनेकी सोची।

आज भी यदि कोई नारी अदितिकी भाँति पयोव्रत करे और उसका पति कश्यप-सा बने, तो भगवान् उनके घर जन्म लेनेको तैयार हैं। अदितिका अर्थ है अभेदबुद्धि, ब्रह्माकारवृत्ति। ऐसी वृत्तिमेंसे ही ब्रह्मका प्रकटीकरण होता है।

कश्यपका अर्थ है मन। जिसकी मनोवृत्ति ब्रह्माकार हो गई होती है, वही कश्यप है। यदि पत्नी अदिति बने और पति कश्यप बने तो परमात्मा उनके घर अवतार लेते हैं, प्रकट होते हैं।

योगी ब्रह्मचिन्तन द्वारा प्रभुमय हो सकता है, तो पवित्र गृहस्थ प्रभुको पुत्ररूपमें प्राप्त कर सकता है।

पवित्र गृहस्थाश्रमी युगल, भगवान्‌को पुत्रके रूपमें पा सकते हैं किंतु पहले उन्हें कश्यप और अदितिके समान बनना पड़ेगा।

जब तक देहदृष्टि होगी, तब तक काम पीछे-पीछे आएगा। कामका नाश करना है, तो देहदृष्टिकी अपेक्षा देवदृष्टि रखो।

शंकराचार्यने शतश्लोकीमें कहा है कि लोग त्वचाकी तो मीमांसा करते हैं, किंतु इस देहके सौंदर्यका कारणभूत जो है, उस आत्माकी मीमांसा कोई नहीं करता है।

जगत् नहीं बिगड़ा है, मनुष्यकी दृष्टि-बुद्धि-मन बिगड़ गए हैं। तुम इन्हें सुधारोगे, तो जगत् भी सुधरेगा। किसीको भी भोग-दृष्टिसे न देखो, किंतु भगवत्-दृष्टिसे ही देखो। दृष्टि सुधरेगी, तो सृष्टि भी सुधर जाएगी। भागवत आँख और दृष्टि देती है। किसीका भी बाह्या-कार मत देखो।

एक बार राजा जनककी राजसभामें मुनि अष्टावक्र पधारे। उनके आठ-आठ अंग टेढ़े-मेढ़े देख कर लोग हँसने लगे। अष्टावक्र लोगोंकी हँसी पर हँसने लगे।

जनक राजाने मुनिसे पूछा—महाराज, हम तो आपके विचित्र अंगोंको देखकर हँस रहे हैं किंतु आप किस बात पर हँस रहे हैं?

अष्टावक्रने उत्तर दिया—मैं तो मानता था कि आपकी इस सभामें सभी ज्ञानी विराजते हैं किंतु मैंने आज देखा कि सबके सब मूर्ख चमार हैं। आप सब मेरी देहको देख रहे हैं। यह तो है ही मिट्टीका। मेरी आत्माको देखो। मैं पवित्र ब्राह्मण हूँ। तुम सब मेरी आकृतिको देखकर हँस रहे हो किंतु मनुष्यकी कृतिको देखना है, आकृतिको नहीं। आकृति तो पूर्वजन्मके प्रारब्धसे प्राप्त होती है। मेरी कृतिको तो देखो।

परमात्मा कृतिको देखते हैं और मनुष्य आकृतिको।

ज्ञानी पुरुष अनेकोंमें एकको देखते हैं।

दिति ही भेदबुद्धि है और अदिति अभेदबुद्धि, ब्रह्माकार वृत्ति है। दिति—भेदबुद्धि राक्षसोंको जन्म देती है जैसे कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। अदिति—अभेद बुद्धि भगवान् वामनको जन्म देती है।

जगत्‌को भेदभावसे नहीं, अभेदभावसे देखो। जिसकी बुद्धिमें भेद है, उसके मनमें भी भेद है। भेद विकार-वासनाको जन्म देता है। ज्ञानी सभीको अभेद भावसे देखते हैं। अनेकमें एकका अनुभव करना ही तो ज्ञान है।

मूल्य आकारकी अपेक्षा मूलभूत वस्तुका अधिक है। मूल्य सुवर्णका है, आभूषण विशेषके आकारका नहीं।

एक महात्माके पास सुवर्णमेंसे बनाए हुए एक गणपति थे और सोने का ही एक चूहा भी था। महात्मा वृद्ध हुए तो उन्होंने सोचा कि मेरे बाद मेरे शिष्य मूर्तियोंको लेकर शायद

झगड़ा करेंगे। अतः मैं इन्हें बेच कर भगवान्‌को भोग लगा दूँ। वे दोनों मूर्ति बेचने लगे। गणपतिकी मूर्ति दस तोले सोनेकी थी और चूहेकी ग्यारह तोले सोनेकी। सुनार गणपतिकी मूर्तिसे चूहेकी मूर्तिका दाम अधिक देने लगा। महात्माने साश्चर्य पूछा—अरे भाई, गणपति तो देव हैं और चूहा तो जंतु, फिर भी तुम गणपतिकी मूर्तिका दाम कम क्यों दे रहे हो? सुनारने कहा—कीमत तो मैं सोनेकी दे रहा हूँ, देव या चूहेकी नहीं।

ज्ञानी पुरुष आकार पर ध्यान नहीं देते। वे तो सृष्टिको निर्विकार भावसे देखते हैं। आकारसे विकार उत्पन्न होता है। गोरा-काला जैसा भेद उत्पन्न होता है। जबतक यह भेद-बुद्धि है तब तक विकार-वासनायें भी रहेंगी। अदिति ब्रह्मवृत्ति है। ब्रह्माकार दृष्टि और वृत्ति प्राप्त होने पर परमात्मा मिलते हैं।

सभीमें एक ही वस्तु है। एकमेंसे ही अनेक बने हैं। स्वप्नावस्थाकी भाँति जागृतावस्थामें भी एकसे अनेक होते हैं। सभीके मूलमें एक ही है। अतः सभीमें एक ही को निहारो।

मनमें जिस वस्तुका बार-बार चिंतन होता है, उसीका आकार मनमें स्थिर होता है। व्यापारीका मन द्रव्याकारमें स्थिर हुआ होता है, सो वह स्वप्नमें भी रुपये-पैसे ही देखता रहता है। इसी प्रकार भक्तकी चित्तवृत्ति भगवदाकार बन जाती है। एक ही स्वरूपका बार-बार ध्यान करो, स्मरण करो, चिंतन करो। पूजा सभी देवोंकी करो किंतु ध्यान तो एक प्रभुका ही करो।

जिसकी आँखोंमें (अर्थात् ध्यान में) पैसा ही है, वह हर स्थान पर पैसा ही देखता रहता है। एक सेठ काश्मीर गया तो वहाँ उसने गुलाबके पुष्पोंका ढेर-सा देखा। उसके मनमें यह भाव तो नहीं आया कि इन फूलोंमें श्रीकृष्ण विराजते हैं किंतु उसके मनमें द्रव्यभाव था, अतः उसने सोचा कि यहाँ गुलकंदका उत्पादन शुरू कर दूँ, तो बहुत लाभ हो सकता है।

प्रभु अव्यक्त रूपसे फूलमें विराजमान हैं, अतः सुगंध है। वे तो जल, स्थल, आकाश, पाताल सभीमें अव्यक्त रूपसे विराजमान हैं, अतः सभी वस्तुमें भगवद्भाव रखो।

दृष्टि भगवन्मय होगी, तो हर कहीं भगवान् दिखाई देंगे। गोपीकी दृष्टि परमात्मामें थी। वह जहाँ जाती थी, कन्हैयाका ही उसे दर्शन होता था। कृष्ण मथुरामें विराजते थे, फिर भी गोपियोंको तो वे गोकुलमें ही दिखाई देते थे।

गोपियोंने उद्धवजीसे भी कहा—आप किसका संदेश लाए हैं? कन्हैया तो हमारे साथ इधर ही तो हैं। और संदेशा भी क्या लाए होंगे? गोपियोंकी वृत्ति कृष्णाकार, कृष्णमय थी—

> जित देखौं तित श्याममयी है।
> श्याम कुंज वन जमुना श्यामा, श्याम गगन घन घटा छई है॥
> सब रंगनमें श्याम भरयौ है, लोग कहत यह बात नई है।
> नीलकंठको कंठ श्याम है, मनो श्यामता फैल गई है॥

गोपियाँ जानती ही नहीं थीं, कि कृष्ण उन्हें छोड़ गए हैं। वे तो यही कहती हैं कि मैं जहाँ भी जाती हूँ, कन्हैया तो मेरे संग ही है। यह है गोपीप्रेम।

जीवको भय रहता है क्योंकि वह ईश्वरके सान्निध्यका अनुभव सतत नहीं कर सकता।

ब्रह्माकार वृत्ति—अदितिका कश्यपके साथ संबंध हुआ।

कश्यप शब्दका अर्थ तो देखो। इस शब्दको उलटा पढ़ेंगे तो होगा पश्यक। उपनिषद्के अनुसार 'क' का अर्थ है ईश्वर और 'पश्य' का अर्थ है देखना अर्थात् सभीमें एक ईश्वरको देखनेवाला ही कश्यप है।

जब कश्यपकी वृत्ति ब्रह्माकार, ब्रह्ममयी हुई तो परमात्माको प्रकट होना पड़ा।

गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नहीं, साधक है। बाधक तो है गृह-आसक्ति। गृहस्थाश्रममें कामासक्ति, द्रव्यासक्ति, विषयासक्ति ही बाधारूप हैं। संसारकी किसी वस्तुमें सच्चा सुख नहीं है। सच्चा आनंद एकमात्र ईश्वरमें ही है।

संसारमें ही सुख है, ऐसा जब तक मानते रहोगे, भक्तिमें मन नहीं लगेगा। यदि सांसारिक विषयमें ही सच्चा सुख हो, तो निद्राकी आवश्यकता ही कैसे उपस्थित होती है? विषयोंको त्याग कर, भूल कर निद्राकी इच्छा होती है, वही बताता है कि विषयोंमें सुख नहीं है।

जिस प्रकार प्रतिदिन अन्नका सेवन करते हैं, वैसे ही सत्संगकी भी आवश्यकता है।

ईश्वरके प्रकाशके बिना जड़ प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती।

भगवान् गीतामें कहते हैं— मैं अविनाशी, अजन्मा और सब भूतप्राणियोंका ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिके अधीन रह कर मैं योगमायासे प्रकट होता हूँ।

स्वरूप चैतन्य प्रकाश देता है, किंतु दुःख दूर नहीं कर सकता—

सर्वस्य चाहम् हृदि सन्निविष्टो।

अंतर्यामीके रूपसे ईश्वर सभीमें बसे हुए हैं, फिर भी जाव दुःखी है। केवल स्वरूप चैतन्य अज्ञान और दुःखका निवारण नहीं कर सकता। अंदरका निराकार और बाहरका साकार स्वरूप एकत्र होकर प्रकट होगा, तभी भगवान् वामन अवतरित होंगे।

अदितिने पयोव्रत किया। उसको रात्रिमें, स्वप्नमें चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। अदितिने स्वप्नावस्थामें ही वंदन किया, स्तुति की। जगत्पति, लक्ष्मीपति, तात्त्विक दृष्टिसे तो मेरे भी आप पति हैं।

भगवान्ने उससे कहा—मेरे चतुर्भुज स्वरूपको निहारो। मेरे इस स्वरूपका अपने पतिमें सतत ध्यान करोगी, तो मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र रूपमें आऊँगा।

वेदमें अदिति शब्द बार-बार आया है। अदिति अर्थात् अभेदबुद्धि, ब्रह्माकार वृत्ति। एक ही स्वरूपका वार-बार चिंतन करने पर वह मनमें जम जाता है।

अदिति और कश्यप, नारायणका ध्यान करने लगे। उनकी वृत्ति नारायणाकार हो गई, तो उनके घर नारायण पधारे। अदिति सगर्भा हुई। नव मास पूर्ण हो गए, तो अदिति तन्मयतासे प्रार्थना करने लगी कि भगवान् कब प्रकट होंगे। आतुरताके बिना भगवान्का अवतार नहीं होता। इस जीवके मनमें जब तक कोई अन्य इच्छाका अस्तित्व होगा, तब तक भगवान् नहीं आएँगे।

परम पवित्र समय आया। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन मध्याह्न कालमें माता अदितिके सम्मुख वामन भगवान् प्रकट हुए। चारों ओर उजियाला छा गया। हृदय आनंदसे भर गया। कश्यप भी वामनका दर्शन करनेके लिए दौड़ते हुए आए।

माता-पिताको भान करानेके लिए वामनने अपने चतुर्भुज स्वरूपका दर्शन कराया। माता-पिताका हृदय आनंदसे छलक रहा था। उनका मूक हृदय भगवान्‌का जयजयकार कर रहा था।

नारायणका चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया और वे सात वर्षके बटुक बन गए। सुन्दर लँगोटी थी। मुख परसे दिव्य तेज झलक रहा था। ब्रह्मादि देव भी वहाँ पधारे। उन्होंने कश्यप-अदितिको बधाई देते हुए कहा—आपका गृहस्थाश्रम सफल हुआ, सार्थक हुआ। आज आप जगत्पिताके भी माता-पिता बन गए।

कश्यप-अदितिका गृहस्थाश्रम अत्यंत पवित्र था, अतः भगवान् उन्हींके घर प्रकट हुए।

जब वामनजी प्रकट हुए, तभी वे सात वर्षके थे, अतः उनकी बाललीलाका वर्णन है ही नहीं। उनको यज्ञोपवीत देनेका निश्चय किया गया।

यज्ञोपवीतकी क्रियासे ब्रह्मसंबंध होता है। मंत्रदान करता हुआ पिता पुत्रसे कहता है कि आजसे वह अपना नहीं किंतु ईश्वरका हो गया। उस दिन माताके साथ उसका अंतिम भोजन कराया जाता है। इस पवित्र विधिके बाद पुत्रके माता-पिता बनते हैं सूर्यनारायण और गायत्रीदेवी। जनेऊ वेदविहित सेवा है। मैं नारायणका सेवक हूँ। जनेऊमें हरेक देवकी स्थापना की गई है।

आजके लोग यज्ञोपवीत संस्कार आदिको मानते नहीं हैं। संस्कार किए बिना जीव शुद्ध नहीं हो पाता। लोग सभी संस्कार भूल गए। मात्र विवाहसंस्कार ही बाकी रह गया है, क्योंकि इसके बिना किसीसे भी रहा नहीं जाता। संस्कारका लोप होनेके कारण अधार्मिक और पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है।

तैत्तिरीय आरण्यकमें जनेऊ बनानेकी विधि बताई गई है। उसे हाथसे ही बनाना चाहिए। सूत्रको ९६ बार लिपटाया जाता है। वेदमें कर्म और उपासना संबंधित ९६००० मंत्र हैं, उन्हें पढ़नेका अधिकार यज्ञोपवीत संस्कारमें मिलता है। वैसे तो वेदके मंत्र एक लाख हैं, किंतु बाकी ४००० मंत्र संन्यासीके लिए है। जनेऊके निर्माता हैं ब्रह्मा और उसे त्रिगुणातीत करनेवाले हैं विष्णु। इसका गठबंधन शिवजी करते हैं और अभिमंत्रित करती हैं गायत्रीदेवी। यह दिव्य तेजसे पूर्ण है। वैसे तो यह संस्कार सातवें वर्षमें देना चाहिए, किंतु ग्यारहवें वर्ष तक देनेकी अनुमति है।

जनेऊके एक-एक धागेमें एक-एक देवीकी प्रतिष्ठा की जाती है, अतः इसको लोहेका स्पर्श न होना चाहिए, इससे चाबी नहीं बाँधनी चाहिए। आजके ब्राह्मण जनेऊसे चाबी बाँधकर लटकाए फिरते हैं, जो ठीक नहीं है। ऐसा करनेसे सभी देव-देवियाँ जनेऊको छोड़कर चले जाते हैं

संस्कारकी परंपरा नष्ट हो गई है, अतः प्रजामें संयम और सदाचारका अभाव हो गया है। हमारे कल्याणके हेतु ही तो प्राचीन ऋषियोंने संस्कारोंकी रचना की थी।

तो वामनजीको भी यज्ञोपवीत दिया गया। उनको अदितिने लँगोटी, धरतीने आसन, ब्रह्माने कमंडल, सरस्वतीने जपमाला तथा कुबेरने भिक्षापात्र दिया। ब्राह्मणको तीन बार संध्या करनेका आदेश है। महाप्रभुजीने भी तीन बार संध्या करते हुए जगत्के सामने यह आदर्श स्थापित किया कि वे महान् होते हुए भी तीन बार संध्या करते हैं।

प्रातः संध्यासे रात्रिका पाप नष्ट होता है। मध्याह्नकी संध्यासे अन्नजलका दोष नष्ट होता है। त्रिकाल संध्याकी बड़ी महिमा है। संध्या समय सूर्यका जप करते हुए जगदंबा गायत्रीमाताका ध्यान करना है। संध्यामें गायत्रीमाताका आह्वान करना है, हे माता, मेरे हृदयमें पधारिए, मेरी रक्षा कीजिए।

संध्यामें अघमर्षण करना है, ध्यान करना है। संध्या नियमित और समयपर होनी चाहिए। आकाशमें जब नक्षत्र होते हैं, उसी समय की जानेवाली संध्या उत्तम है। नक्षत्र न दीखते हों और सूर्यनारायणका उदय न हुआ हो, उस समय की जानेवाली संध्या मध्यम संध्या है और सूर्योदयके बादकी संध्या अधम संध्या कही जाती है।

बृहस्पतिने वामनजीको उपदेश दिया। अब आजसे मधुकरी (भिक्षा) माँगने जाना है। इस अन्नमें मधुरता होती है। मंत्रोपदेशके साथ-साथ ब्रह्मचारीका धर्म भी समझाया।

जबसे ब्रह्मचर्याश्रमकी परंपरा हमारे देशमेंसे नष्ट हुई है, तबसे इस देशकी दुर्दशा हो गई है।

ब्रह्मचर्यके पालनके बिना न तो कोई महान् हुआ है और न कोई होगा।

जो ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा करता है, उसे सजीव नारीका तो क्या, नारीकी काष्ठमूर्तिका भी तनसे या मनसे स्पर्श नहीं करना चाहिए—

न स्पृशेत् दारवीमपि।

यदि ब्रह्मचर्यका पालन करना है तो नारीके मुख या केशकी ओर भी दृष्टि न करो। इनमें कामका वास होता है। यह नारीकी निंदा नहीं है, कामकी निंदा है। परस्त्रीको माता समान मानो। जगत्में जितने भी महापुरुष हो गए हैं, उन सभीने परस्त्रीको माता मान लिया था। वे ब्रह्मचर्यके पालनसे महापुरुष बने थे।

लक्ष्मण चौदह वर्ष तक अपनी भाभीके साथ वनमें रहे, फिर भी उन्होंने सीताके मात्र चरणों पर दृष्टि रखी थी। एक बार श्रीरामचंद्रने एक चंद्रहार दिखाते हुए उनसे पूछा—क्या यह हार तेरी भाभीका है?

तब लक्ष्मण बोले—मैं क्या जानूँ? मैंने भाभीका मुख कभी देखा ही नहीं है।

रामचंद्रने अन्य आभूषणोंके विषयमें भी वैसा ही प्रश्न किया तो लक्ष्मणने कहा—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुंडले।
नूपुरेत्वऽभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात्॥

मैं न तो हारको पहचानता हूँ, न कुंडलको। मैं तो मात्र उनके नूपुरोंको पहचान सकता हूँ, जिनको मैं नित्य प्रणाम करते हुए देख पाता था।

कैसा आदर्श ब्रह्मचर्य-पालन।

कामको पराजित करना बड़ा कठिन है, अतः ब्रह्मचर्यकी बड़ी प्रशंसा की गई है।

जब व्यास भगवान् भागवतकी रचना कर रहे थे तो श्लोककी रचना करते हुए वे श्लोक अपने शिष्य ऋषि जैमिनीको जाँचनेके लिए देते जाते थे। तो जैमिनीने नवम स्कंधका यह श्लोक देखा—

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

भा. ९-१०-१७

इन्द्रियाँ इतनी बलवान् होती हैं कि बड़े-बड़े विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं।

इस श्लोकको पढ़कर जैमिनीने सोचा कि व्यासजीसे इसमें कुछ भूल हो गई है। क्या इन्द्रियाँ विद्वानोंको कभी विचलित कर सकती हैं? उन्होंने व्यासजीसे कहा—इस श्लोकमें 'विद्वांसमपि कर्षति' के स्थान पर 'विद्वांसं नापकर्षति' लिखना चाहिए।

व्यासजीने कहाकि मैंने जो लिखा है वह ठीक ही है। इसमें कोई भूल नहीं है।

एक दिवस जैमिनी संध्या समाप्त करके जलादिको बाहर विसर्जित करने जा रहे थे तो वहाँ उन्होंने देखा कि एक सुंदर युवती वृक्षके नीचे वर्षासे भीग रही है। भीगे हुए वस्त्रों-से झलकते हुए सौंदर्यको देख कर जैमिनी विचलित हो गए।

जैमिनीने उस सुंदरीसे कहा—यह कुटिया तुम्हारी ही तो है। चली आओ भीतर। आश्रममें विश्राम करो।

सुंदरी—पुरुष कपटी होते हैं। मैं आपका विश्वास कैसे करूँ?

तो जैमिनी कहने लगे—मैं तो पूर्वमीमांसाका आचार्य जैमिनी ऋषि हूँ। क्या मेरा भी विश्वास नहीं करोगी? मुझ जैसे तपस्वीका भरोसा नहीं है तो फिर किसका भरोसा करोगी तुम? यह तुम्हारी ही कुटिया तो है। आश्रम में विश्राम करो।

वह सुंदरी आश्रममें आई। बदलनेके लिए कपड़े दिये गये। जैमिनीने फिर रूप देखा तो मन और भी ललचा गया। उन्होंने उस स्त्रीसे पूछा—तुम्हारा विवाह तो नहीं हुआ होगा? वह स्त्री अविवाहिता थी। अतः जैमिनीने विवाहका प्रस्ताव रखा।

उस युवतीने कहा—मेरे पिताने प्रतिज्ञा की है कि जो पुरुष घोड़ा बनकर मेरी पुत्रीको अम्बाजी माताके मंदिर दर्शन कराने ले जाएगा, उसीके साथ उसका विवाह करूँगा और मैंने भी पिताजीसे कहा है कि आपके दामाद का मुंह काला कर उन्हें ले आऊँगी।

जैमिनीने सोचा, चाहे घोड़ा बनना पड़े और मुँह काला करना पड़े किंतु यह सुंदरी तो मेरी ही हो जाएगी न। वे सब कुछ करने को तैयार हो गए।

पुरुष परस्त्रीको काम भावसे निहारे तो उसका मुँह काला हो जाता है।

जैमिनीने घोड़ा बन कर उस युवतीको अपने पर सवार करा लिया और यह अनोखी सवारी अंबाजीके मंदिर पर आई। उस मंदिरके बरामदेमें व्यासजी बैठे हुए थे। उन्होंने सारी बात जानकर जैमिनीसे पूछा—उस श्लोकमें कौन-सा शब्द होना चाहिए—कर्षति या नापकर्षति?

अब जैमिनीके मन पर मानो बिजली गिर गई। उन्होंने व्यासजीसे कहा, आप ही सच्चे हैं।

क्षण मात्र भी असावधान न होना। असावधान हो गए तो काम सिर पर चढ़ ही जाएगा।

ज्ञानी होते हुए भी जैमिनी असावधान हो गए। उस सुंदरीसे विवाहिता-अविवाहिता-की चर्चा ही क्यों की उन्होंने ? ऋषिका अवतार परोपकारके लिए होता है. अनावश्यक बातोंकी पूछताछ करनेके लिए नहीं।

कामके कारण बड़े-बड़े ज्ञानी भी भटक गए हैं, तो फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या ?

भर्तृहरिने भी तो कहा है—

विश्वामित्रोपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजसुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् ॥

मात्र वृक्षके पत्ते और जल पी कर निर्वाह करनेवाले ऋषियोंको भी कामने विचलित कर दिया है। तो जीभका लालन करनेवाला और सिनेमाकी अभिनेत्रियोंकी रात-दिन पूजा करनेवाला आजका मनुष्य काम जीतनेकी बात करे तो वह निरर्थक ही है।

जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, उसे अपने पेटमें कभी अजीर्ण नहीं होने देना चाहिए। भेलपूरी और फरसाण-भजिया खानेवाला ब्रह्मचर्यका पालन कैसे कर पाएगा ?

श्रीकृष्णको दुर्बलता पसंद नहीं है। नरसिंह मेहताने कहा है—

हरिनो मारग छे शुरानो, नहीं कायरनुं काम जोने।

हरिका मार्ग शूरवीरोंका है, कायरोंका नहीं।

श्रुति भी कहती है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

सो ब्रह्मचर्यका पालन करो और बलवान् बनो।

स्त्रीका मुख या केश कभी घूर-घूर कर न देखो। आँख या मनमें विकार आते ही गायत्री मंत्रका जप करो। मनरूपी हाथीको सत्कर्मरूपी अंकुश वशमें रख सकता है।

वामनजीने जगदंबा पार्वतीके पास जाकर कहा—ॐ भगवति, भिक्षां देहि मे। पार्वतीकी दी हुई भिक्षा उन्होंने गुरुजीके सामने रख दी। गुरुजीने कहा कि भिक्षा बहुत कम है। तो वामनजीने किसी बड़े यजमानका नाम-पता पूछा। बृहस्पतिने आज्ञा की - नर्मदा नदीके किनारे पर बलि राजा अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उनसे तुम्हें अवश्य अच्छी-सी भिक्षा मिलेगी। वहाँ जाओ।

वामनजीने उसी दिशामें प्रयाण किया। वामन लँगोटी पहने हैं। पाँवमें पादुका हैं। हाथमें कमंडल, छत्र और दंड है। कमर पर मुंजमेखला, बगलमें मृगचर्म. शिर पर जटा, गलेमें यज्ञोपवीत और मुख पर ब्रह्मतेज है।

किसी अपरिचित व्यक्तिके सम्मुख, अनायास ही नमन हो जाते तो समझ लो कि उस व्यक्तिमें ईश्वरका अंश है ।

अपरिचित होने पर भी वामनजीको मार्गमें सभी नमस्कार कर रहे हैं। वे नर्मदातट पर यज्ञमंडपमें पहुँचे । ब्रह्मतेज छिपाया नहीं जा सकता । यज्ञमंडपमें उपस्थित ऋषि-समूह सोचने लगा कि आज तक ऐसा ब्रह्मतेजस्वी कभी नहीं देखा गया । क्या साक्षात् सूर्यनारायण तो इस रूपमें नहीं आए हैं ? यह कौन-सा ब्राह्मणकुमार होगा ?

शंकर स्वामीसे पूछा गया था कि जगत्‌में भाग्यशाली कौन है ।

शंकर स्वामीने उत्तर दिया था—

कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ।

जो लँगोटी पहनता है, जितेन्द्रिय है, सदा-सर्वदा प्रभु ही के साथ बातें करता है, प्रभु ही के साथ खेलता रहता है, वही सर्वाधिक भाग्यशाली है । जो धनसंपत्ति और देहके साथ खेलता रहता है, वह भाग्यहीन है ।

इस अपरिचित बालकके विषयमें ब्राह्मण सोच ही रहे थे कि यज्ञके प्रधानाचार्य शुक्राचार्यने वामनजीका स्वागत किया । इस महातेजस्वी बटुकका शुक्राचार्य-सहित सब ऋषियोंने सत्कार किया ।

ब्राह्मण, ब्रह्मतेज और ज्ञानके कारण ही सम्मान पाता है । क्षत्रिय बलसे और वैश्य धनसंपत्तिसे सम्मान पाते हैं। शूद्रमें वृद्ध मानके भागी होते हैं । सेठ-साहूकार चाहे जितनी काली कमाई करें, फिर भी उन्हें कथामें भी आगे आसन दिया जाता है । देरसे आने पर भी आगे बिठलाये जाते हैं। यह मान सेठका नहीं, लक्ष्मीका है ।

चारों वर्णकी दिवाली भी शायद अलग-अलग-सी हो गयी है । ब्राह्मणोंकी दिवाली है राखीका दिन । क्षत्रियोंकी दिवाली विजयादशमी, वैश्योंकी, दिवाली लक्ष्मी-पूजाका दिन और शूद्रोंकी तो होली ही दिवाली है ।

ब्राह्मणोंने उस ब्रह्मचारी बटुकका स्वागत किया, तो बलि राजा भी देखने लगे। उन्होंने सोचा कि मैंने आज तक कई ब्राह्मणोंकी सेवा की है किंतु ऐसा तो कोई देखने ही में नहीं आया। वे वामनजी महाराजको महलमें ले गए, सिंहासन पर बिठलाया और रानीसे पूजाका सामान तैयार करनेकी आज्ञा दी ।

बलि राजाकी पत्नीका नाम था विंध्यावली और पुत्रीका रत्नमाला । रत्नमाला बटुकके सौंदर्यसे प्रभावित होकर सोचने लगी कि जिस माताने इसे अपना दूध पिलाया होगा, वह कितनी भाग्यशालिनी और सुखी होगी । बटुकजीका स्वरूप देखकर उसके मनमें वात्सल्य भाव उमड़ पड़ा और दूध पिलानेकी इच्छा भी जागी और आगे चल कर जब वामनजीका पराक्रम देखा तो उसके मनमें वामनजीकी हत्या करनेकी इच्छा हो आई । रत्नमाला अपने इन्हीं दो मनोभावोंको लेकर अगले जन्ममें पूतना बन कर आई कि जिसने कन्हैयाको अपना दूध पिला कर मारनेका प्रयत्न तो किया किंतु उसका अपना ही उद्धार हो गया ।

वामनजी महाराजके चरणों पर विंध्यावली जलधारा डालने लगी, बलि राजा चरण धोने लगे और सभी ब्राह्मण पुरुषसूक्तका पाठ करने लगे । राजा चरणसेवा करते हुए कहने लगा—आप जैसे पवित्र ब्राह्मणका चरणोदक मिलनेसे मैं पवित्र हुआ और मेरे पितरोंको भी

सद्‌गति मिल गई। मेरा यज्ञ सफल हो गया। आज मेरा कल्याण हो गया। मैं आपके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करता हूँ। बड़े पुण्यशाली माता-पिताको ही आप जैसा पुत्ररत्न प्राप्त हो सकता है। मैं सोचता हूँ कि अपना सब कुछ आपको अर्पित करके मैं वनवासी बनकर ईश्वर-भजनमें लीन हो जाऊँ।

वामनजीने मन ही मन कहा, मैं सब कुछ लेनेके लिए ही तो आया हूँ। उनसे राजाने कहा—महाराज, लगता है आप कुछ माँगना चाहते हैं। जो भी चाहिए वह निःसंकोच माँग लीजिए। राज्य, गाय, कन्या, धन-सम्पत्ति आदि जो माँगेंगे, मैं दूँगा। बार-बार बलि राजाने यही प्रार्थना दुहराई।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं कि राजन्, अतिशय आनंद हुआ है।

जिसके पास-से कुछ माँगना चाहते हो, उसके पितरोंकी प्रशंसा करो। आजकल तो उसकी पत्नीकी प्रशंसा करनेसे भी बहुत कुछ मिल जाता है।

वामनजी भी बलि राजाके आगे प्रशंसाके पुष्प बिखेरने लगे। आपके पितामह प्रह्लादके समान महान् भक्त न तो कोई हुआ है और न कोई होगा। उनका प्रभु-प्रेम तो इतना प्रबल था कि भगवान्‌को स्तंभ चीर कर प्रकट होना पड़ा था। मैंने सुना है कि आपके पिता राजा विरोचन भी बहुत उदार व्यक्ति थे। उनके पास इन्द्र ब्राह्मणका रूप लेकर आए और कहने लगे—राजन्, मेरी आयु अब समाप्त होने पर आई है। मेरी मृत्युसे मेरी पत्नी विधवा हो जाएगी। अपने आयुष्यका मुझे दान दीजिए। दान माँगने आए हुए ब्राह्मणको निराश कैसे किया जा सकता था? तो आपके पिताने अपने आयुष्यका ही दान कर दिया। आपके प्रपितामह भी महान् वीर थे।

बलि राजाने सोचा कि यह बटुक लगता तो है सात-आठ वर्षका और बातें कर रहा है मेरे पिता, पितामह और प्रपितामहकी। उन्होंने वामनजीसे पूछा – महाराज, क्या आपने मेरे उन पितरोंको देखा है?

वामनजी—जी, मैं तो आठ वर्षका हूँ। मैं उनको कैसे देख सकता था। मैंने तो अपने बड़ोंसे उनकी कथा सुनी है।

और हाँ राजन्, आप भी कुछ कम नहीं हैं। आपमें अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपु-सा बल, वीरता और शक्ति है। आपमें अपने पितामह प्रह्लाद-सी भक्ति है और पिता विरोचन-सी उदारता भी। तीनों पितरोंके गुण आपने एक साथ पाये हैं। आप बड़े भाग्यवान् हैं।

अपनी और अपने पितरोंकी प्रशंसा सुन कर बलि राजाने फिर वामनजीसे कहा—महाराज, जो भी चाहें, माँग लीजिए। मैं अपना कुछ भी देनेको तैयार हूँ।

बलि राजाको वामनजीने बचनबद्ध कर लिया और कहने लगे—राजन्, मैं लोभी नहीं, संतोषी ब्राह्मण हूँ। मैं तो अपने पाँवसे नाप कर मात्र तीन कदम तककी भूमि चाहता हूँ।

बलि राजाने सोचा कि यह बालक माँगना भी तो नहीं जानता। ज्ञानी और पढ़े-लिखे तो हैं किंतु थोथे ही हैं। वे कहने लगे, महाराज, आपने मात्र इतना ही क्यों माँगा। मैं तीन कदम भूमि तो क्या तीन ग्राम दे सकता हूँ आपको। यह जगप्रसिद्ध बात है कि पूजन आदि करके जिस ब्राह्मणको मैं दान देता हूँ, उसे अन्य किसीसे कुछ भी माँगनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। मेरा दान स्वीकार करके किसी अन्यके पास आपको माँगना पड़े तो मेरा ही अपमान होगा।

मैंने यह तो आपको देखते ही जान लिया था कि आप संतोषी ब्राह्मण हैं किंतु केवल तीन कदम भूमि देनेमें मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। मैं जानता हूँ कि आप लोभी नहीं हैं, संतोषी हैं फिर भी कुछ और माँगिए। तीन कदम भूमि देते हुए तो मुझे बड़ा संकोच और लज्जा हो रही है।

वामनजीने कहा—राजन्, धन्य हैं आप ! आप तो ऐसा ही कहेंगे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। राजन्, आप तो उदार हैं, किंतु मुझे भी माँगते हुए कुछ सोचना तो चाहिए न ? लोभसे लोभ बढ़ता है और संतोषसे संतोष। संसारके सभी भोगपदार्थ प्राप्त कर लेने पर भी संतोष और वैराग्यके अभावमें शांति नहीं मिलेगी। लोभ तो पापका मूल है। संग्रहवृत्तिसे ब्राह्मण दान न लें। ब्राह्मण यदि संग्रहवृत्तिसे दान लेगा तो यजमान भी पापका भागी होगा। अतिसंग्रह विग्रहको जन्म देता है। मुझे अधिकको आवश्यकता नहीं है।

भागवत कहता है कि अपनी आयके पाँचवे हिस्सेका दान देना चाहिए। मनु महाराजने दशमांशका दान करनेको कहा है। घरमें आनेवाला सारा धन शुद्ध नहीं होता। दानसे उसकी शुद्धि होती है।

भिखारी (भिखमंगा) मात्र भीख माँगनेके लिए नहीं, उपदेश देनेके लिए भी आता है। भिक्षुकाः नैव भिक्षन्ति बोधयन्ति गृहे गृहे। कौन-सा उपदेश है वह ? मैंने गत जन्ममें किसीको कुछ भी नहीं दिया था, इसीलिए मेरी ऐसी दशा हुई है। तुम नहीं दोगे तो तुम्हारी भी मेरे जैसी ही दशा होगी।

राजन्, मैं किसी औरके पास दान लेने नहीं गया। मैं तो संतोषी ब्राह्मण हूँ। तुम भाग्यशाली हो कि मैं तुम्हारे द्वार पर आया हूँ।

आज मैं किसी सेठके बरामदेमें पूजा कर रहा था, तो उसने मुझे वहाँसे भगा दिया। मेरी संध्या-पूजा अपूर्ण ही रह गई। कुछ लोग बरामदेमें बैठे हुए लोगोंको भगा देते हैं। उठो यहाँसे। मेरा है यह बरामदा। मूर्ख है वह। क्या वह बरामदा अपने साथ ले जाएगा ?

इस संसारमें अपना क्या है और क्या नहीं है, यह यदि मनुष्य जान ले तो वह सुखी हो जाएगा।

आँगनमें आए हुए किसी भी आदमीसे पूछना चाहिए कि क्या पानी पियोगे ? हाँ ! ठग और धूर्तसे सचेत रहना चाहिए। ऐसे लोग दिनमें घर देख कर रात्रिमें चोरी करनेके लिए घुस जाते हैं।

वामन बोले–जब मेरी संध्या अपूर्ण ही रह गई तो मैंने सोचा कि मेरी भी अपनी थोड़ी-सी भूमि हो तो मैं संध्या-पूजा तो कर सकूँगा। तुम्हें तो इसका भी पुण्य तो मिलेगा ही। मैं ब्रह्मचारी हूँ। मात्र तीन कदमभर भूमिका मुझे दान दे दो।

बलि राजाको आनंद हुआ। चलो, मेरी भूमि भी इस पवित्र ब्राह्मणकी संध्या-पूजासे पवित्र हो जाएगी। कैसा विरागी है यह ब्राह्मण। मैं अपना सर्वस्व देनेको तैयार हूँ, फिर भी यह नहीं लेता। वामनजीसे वे कहने लगे – महाराज, जैसी आपकी इच्छा। आपकी इच्छानुसार तीन कदम भूमि मैं आज आपको देता हूँ किंतु भविष्यमें भी आपको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता होने पर आप मुझसे ही माँग लें। अपनी सेवा करनेका अवसर आप मुझे देते रहें।

वामनजीने कहा—भविष्यकी बात भविष्यमें। आज तो मुझे मात्र तीन कदम भर भूमि दीजिए।

बलि राजा तीन कदम भर भूमिका दान करनेका संकल्प करनेको तैयार हो गए। किंतु यज्ञमंडपके आचार्य शुक्राचार्य जान गए कि यह कोई सामान्य ब्राह्मण नहीं है। उन्होंने बलि-राजासे कहा—शीघ्रता न करो। देवोंके कार्यकी सिद्धिके हेतु साक्षात् नारायण ही आए हैं वामन बनकर। राजन ! तुम्हारा सारा साम्राज्य इनके दो कदमोंके नापमें समा जाएगा। तीसरा कदम रखनेके लिए भूमि बचेगी नहीं, सो तुम्हें पातालमें डुबा देंगे। जरा सोचकर संकल्प करना। यह वामन तो तुम्हारा सर्वस्व छीन लेगा।

राजन्, दान तो दो किंतु विवेकपूर्वक। इस बालकके कदम कैसे होंगे, वह तुम नहीं जानते। दान ऐसा न दो कि तुम्हीं दरिद्र हो जाओ और घरवाले दुःखी हो जायें।

साधु-संतोंको सद्‌भावसे, ईश्वरभावसे दान करो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। पवित्र सदाचारी ब्राह्मण और सती नारी ही इस धरतीका आधार हैं।

बलि राजाने पूछा—दान न दूँ तो ?

शुक्राचार्य—दान अवश्य दो किंतु अपने कदमोंसे नाप कर भूमि दो। यह वामन तो विराट् रूप धारण करेगा। देवोंके हितार्थ स्वयं विष्णु ही वामनका रूप लेकर आए हैं।

संकल्पानुसार दान न देनेवाला मनुष्य नरकमें जाता है। भविष्यका विचार करके सोच-समझकर दान करो। सर्वस्वका नहीं, पंचमांशका दान करो।

कलियुगकी संतान धन-संपत्तिकी सेवा करती है, माता-पिताकी नहीं। धन होगा तो तुम्हारे रिश्तेदार तुम्हारी सेवा करेंगे।

वृद्धावस्थाके लिए कुछ-न-कुछका संग्रह अवश्य करो कि जिससे संतानसे माँगनेका प्रसंग ही न आए।

एक बूढ़ा बीमार हो गया। उसने जान लिया कि उसकी मृत्यु निकट है। उसने अपनी सारी संपत्ति अपने तीनों पुत्रोंमें बाँट दी। बूढ़ेका दुर्भाग्य तो देखो। मरनेके बदले वह तो भला-चंगा हो गया किंतु अब तो उसके पास कुछ भी न था सो तीनों पुत्र उसे दुत्कारने लगे। बूढ़ा दुःखी हो गया। किसी पुत्रके पास से एक बार कुछ माँगा तो वह तो आना-दो-आना देनेकी बात करने लगा। बूढ़ेका ही सब कुछ था फिर भी आज उसका ही परिवार उसकी उपेक्षा करने लगा।

एक बार इस बूढ़ेने अपने किसी मित्रके आगे रोना रोया। तो उस मित्रने उससे कहा—मेरे पास एक संदूक है। उसमें कुछ पत्थर भर कर ताला लगा कर तुम्हें भेज दूँगा। तुम उस संदूकको दिखाकर पुत्रोंसे कहना कि मैं अब इस थोड़ी-सी बची-खुची पूंजीको लेकर हरिद्वार-की यात्रा करने जा रहा हूँ। फिर देखो मजा।

संदूक पाते ही उस बूढ़ेने पुत्रोंसे यात्रा करने जानेकी बात कही। अब तो मैं बूढ़ा हो चला हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि इस पूँजीसे यात्रा करूँ, साधुसंतोंको भोजन कराऊँ और तीर्थस्थानमें कुछ दिन निवास करूँ।

किसी पुत्रने पूछा—कहाँ जाएँगे आप ?

बूढ़ा—हरिद्वार।

दूसरे पुत्रने पूछा—यह संदूक आज यहाँ था ? क्या है इसमें ?

बूढ़ा—यह संदूक अपने एक मित्रके पास रख छोड़ा था। होंगे दस-पंद्रह हजार रुपये इसमें।

संदूक था भी वजनदार। पुत्रोंने मान लिया कि अब भी पिताके पास पूंजी है। बस, फिर तो क्या था ? सभी पुत्र पितासे अपने-अपने घर रहनेका आग्रह करने लगे। मेरे साथ रहो, मेरे साथ रहो। आप अकेले-ही-अकेले तीर्थस्थानोंमें रहें, यह हमें शोभा नहीं देता ? संसार हमें क्या कहेगा ? आप मत जाइए। हम आपकी पूरी सेवा करेंगे।

संसार स्वार्थी है, फिर भी जीव अविवेकी ही रह गया है। जीव ऐसा दुष्ट होता हो, उसका उसे दुःख नहीं है। उसे तो बुरा दीखे इसका ही दुःख है। वह करता तो है बुरा किंतु इच्छा करता है कि अच्छा ही दिखाई दे।

सारा परिवार उस बूढ़ेकी सेवा करने लगा। मित्रने कहा था कि मरते दम तक उस संदूककी चाबी किसीको न देना। आखिर एक दिन उसकी मृत्यु हो गई।

पुत्रोंने सोचा कि पिताजी बहुत कुछ छोड़ गए हैं हमारे लिए।

लोगोंने भी कहा—आपके पिताजी तीन पीढ़ियोंको हँसती-खेलती देखकर सुख-संतोषसे गए हैं अतः बिना संकोच उत्तरक्रिया की जाए तो अच्छा होगा।

पुत्रोंने दिल खोलकर उत्तरक्रिया की। उन्होंने सोचा था कि सारी भीड़के चले जाने पर पेटी खोलेंगे। अंतमें वह खोली गई तो उसमेंसे तो मात्र पत्थर मिले।

जगत्‌में चारों ओर स्वार्थका ही साम्राज्य फैला हुआ है—

सुर नर मुनि सबकी यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

बलि राजासे शुक्राचार्यने कहा—वामनके तीन कदमसे नाप कर भूमिका दान करोगे तो तुम्हारा सर्वस्व चला जाएगा, अतः तुम्हें सावधान कर रहा हूँ।

बलि राजा बोले—मैंने तो वचन दे दिया है। अब मना करूँ तो असत्य बोलनेका पाप होगा।

शुक्राचार्यने कहा—विपत्तिके समयका असत्य-भाषण क्षम्य है। सत्य बोलना ही धर्म है। असत्य-भाषण धर्म है, ऐसा कहा नहीं गया है किंतु ऐसे समयमें वह क्षम्य है और शायद स्तुत्य भी।

इन चार प्रसंगों पर असत्य कहना क्षम्य माना गया है—(१) किसीके विवाहके प्रसंग पर। (२) स्त्रियोंसे (पत्नीसे) बात करते हुए। महाभारतमें भी कहा है—'न तु गुप्तं धारयति।' स्त्रियोंको शाप ही है कि वे कोई भी बात गुप्त नहीं रख सकती। (३) जब प्राण संकटमें पड़ जाएँ। सत्य बोलनेसे किसीके प्राणकी हत्या होती हो तो असत्य बोल सकते हो। (४) गाय और साधु, संत, तपस्वी ब्राह्मणोंकी रक्षाके हेतु।

राजन्, तुम्हारे सिर पर प्राणसंकट आ खड़ा हुआ है। अपने वचनसे मुकर जाओ। वामनजीसे मना कर दो। ऐसे समयमें वचनभंगसे कोई दोष नहीं होता।

बलि राजाने कहा—गुरुजी, आपने उपदेश तो बड़ा अच्छा दिया किंतु मैं तो वैष्णव हूँ। पहले मैं मानता था कि कोई ब्राह्मण-बालक मुझसे भिक्षा माँगने आया है। अब मैंने जाना कि साक्षात् विष्णु भगवान् मुझसे भिक्षा माँगने आए हैं तो फिर मैं नारायणको क्यों न अपना सर्वस्व अर्पित कर दूं ? मैं वचनका भंग नहीं करूँगा।

हम वैष्णव तो सेवा करते समय ठाकुरजीके चरणोंमें सब कुछ रख देते हैं। आपने बताया कि ये साक्षात् विष्णु हैं। बड़ी अच्छी बात है यह। मेरे इष्टदेव विष्णु ही हैं। वे मेरे घर आज बाल स्वरूपमें दान माँगने आए हैं तो मैं अपना सर्वस्व इनके चरणोंमें न्योछावर कर दूंगा। दाताकी महिमा न्यारी है, लेनेवालेकी नहीं। जगत्में मेरी ही प्रतिष्ठा होगी।

शुक्राचार्य समझाने लगे—तीसरा चरण रखनेके लिए भूमि बचेगी ही नहीं, अतः वे तुम्हारे सिर पर पाँव रख कर तुम्हें नरकमें भेज देंगे।

बलि राजा बोले—मुझे नरकका कोई भय नहीं है। पाप करके नरकमें जाना अच्छा नहीं है, किंतु परमात्माको सर्वस्व अर्पित करके नरकमें जाना भी अच्छा ही है।

संपत्तिका सन्मार्गसे उपयोग करने पर चाहे जितने विघ्न क्यों न झेलने पड़ें, शांति ही मिलती है।

इस लोकमें और परलोकमें सुखी होना है तो धनका उपयोग विवेकसे करो। धनका सदुपयोग न होगा तो मृत्युपर्यन्त शांति नहीं मिलेगी।

बलि राजा बोले—मैं प्रह्लादका वंशज हूं। मैं वैष्णव हूँ। मैं गलेमें कंठी धारण करता हूँ। मैं ठाकुरजीको सर्वस्व अर्पित करता हूँ। आज मैं सर्वस्व दान करूँगा। दान देनेके बाद नरकमें भी जाना पड़े तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं पापकर्मसे नरकमें नहीं जा रहा, चाहे दान करनेसे जाना पड़े। मैं तो भगवान्का हो जाऊँगा। भगवान्का बन जानेके बाद नरकवास करनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। एक बार ब्रह्मसंबंध स्थापित होनेके बाद तो मेरे प्रभुको भी मेरे साथ नरकवासी बनना पड़ेगा।

ब्राह्मणको जब दान दिया जाता है, तब उसके शरीरमें विष्णुका आवाहन किया जाता है। यहाँ तो स्वयं महाविष्णु अपने आप ही आए हैं। गुरुजी, मैं ठाकुरजीको सर्वस्वका दान करूँगा। जीव विश्वासघात कर सकता है किंतु आपत्तिके समय तो भगवान् दौड़ते हुए आते हैं। मैं प्रभुका हो जाऊँगा और वे मेरे। फिर मैं जहाँ जाऊँगा, वे भी साथ-साथ आएँगे, नरकमें भी आएँगे।

तुकारामने कहा है—चाहे गर्भवासी होना पड़े, चाहे नरकवासी, किंतु यदि मेरे विट्ठल मेरे साथ हैं, तो कहीं भी जानेको तैयार हूँ। तुकाराम गर्भवास माँगते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है—तुका म्हणे गर्भवासी घालावी आम्हावी। मैं जहाँ भी जाऊँगा, विट्ठलनाथ साथ-साथ आएँगे।

गुरुजी, हरेक सत्कर्मके समय आप संकल्प कराते हैं—

अनेन कर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् न मम।

आप सारा कर्म कृष्णार्पण कराते हैं। जब आज श्रीकृष्ण स्वयं दान माँगने आए हैं, तो मैं इनकार कैसे करूँ ? आप संकल्प कराएँ। कृपया दानका संकल्प कराएँ। अपने भगवान्को मैं सर्वस्व अर्पित करूँगा।

शुक्राचार्य—में संकल्प नहीं कराऊँगा।

वामनजी—राजन्, आपके पुरोहित इन्कार करते हैं तो मैं संकल्प कराऊँगा। मैं ब्राह्मण-पुत्र हूँ। संकल्प कराना मैं जानता हूँ।

बलि राजाने अनुमति दी तो वामनजी दानका संकल्प कराने लगे। उन्होंने जलपात्रसे हाथमें जल रखनेको कहा। शुक्राचार्यसे यह देखा न गया। उन्होंने सूक्ष्म देह धारण की और जलपात्रकी नालीके छिद्रमें बैठ कर जलका अवरोध किया। उनके वहाँ बैठ जानेसे जल बाहर नहीं आ सका।

शुक्राचार्यका प्रपंच वामनजीकी समझमें आ गया तो उन्होंने दर्भका एक तृण लेकर जलपात्रकी नालीमें डाला। ऐसा करनेसे शुक्राचार्यकी एक आँख फूट गई।

जब भगवान् कृपा करते हैं तो एक आँख फोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि मेरा दर्शन कर लेनेके बाद जगत्‌को एक ही आँखसे देखो। जगत्‌को एक ही दृष्टिसे देखो। अनेकमें एक व्याप्त है, ऐसी दृष्टिसे देखो। यही समभाव है। एक ही ईश्वर सभीमें है, ऐसा देखना ही समता है। एक ही ईश्वर अनेक रूपोंसे क्रीड़ा कर रहे हैं, ऐसे भावसे देखना ही समानभाव है। दो आँखोंसे देखना विषमता है। एक ही आँखसे, समदृष्टिसे देखो। कुछ भी कपट-भाव मनमें न रखो।

भगवान् स्वयं माँगने आए, फिर भी शुक्राचार्यके मनसे द्वैतभाव नहीं गया। यह मेरा यजमान है, वह भिक्षुक है, ऐसा द्वैतभाव उनके मनमें था। उनकी एक आँख फोड़ दी गई अर्थात् अद्वैत दृष्टिसे ही देखना है। योगी एक ही दृष्टिसे जगत् को देखते हैं।

परमात्मा सोचते हैं कि दोनों आँखें फूट गईं तो मेरे दर्शन कैसे कर पाएगा।

परमात्माके दर्शन होनेके पश्चात् एक ही दृष्टिसे सभी कुछ निहारो। दो आँखोंसे, दो दृष्टियोंसे देखने पर विषमता होगी।

शुक्राचार्य समझ गए कि अधिक बाधा करने पर मेरी दूसरी आँख भी फोड़ दी जाएगी और वे वहाँसे हट गए।

आँखके विकृत होने पर नाम भी बिगड़ता है, कलंकित होता है। रावणकी आँख—दृष्टि बिगड़ी, तभी तो उसका नाम भी बिगड़ गया।

परमात्मा एक ही आँख फोड़ देते हैं। रामायणमें भी एक प्रसंग है। रामचंद्रने जयंतकी एक आँख फोड़ दी थी।

भगवान् कहते हैं कि एक ही दृष्टिसे जगत्‌को देखो। अपने-परायेका भाव छोड़ो। सभीमें भगवान्‌का अंश है, ऐसा मानो। एक दृष्टिसे देखना समता है, दो आँखोंसे देखना विषमता है।

गीताजीमें कहा गया है—समत्वं योग उच्यते। सबके प्रति समता रखना ही योग है।

संकल्प पूर्ण होते ही वामनजीका स्वरूप विराट् हो गया।

भगवानने जगत्‌को आवृत कर लिया। सभी स्थानोंमें उनका ही स्वरूप दीखने लगा। जगत् बाहर (ऊपर) दशांगुल है। दशांगुलका अर्थ शंकराचार्यने किया है कि दश उँगलियोंसे प्रभुको वंदन किया जाता है। परमात्मा वंदनीय हैं। वेद भी परमात्माका प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं, सो निषेधात्मक रीतिसे नेति नेति कहते हैं। ईश्वरको जाननेवाला भी उनके स्वरूपका वर्णन नहीं कर पाता। भगवान् वंदनीय हैं, चिंतनीय हैं। वे अपनी कृपासे अज्ञान दूर करते हैं, तभी उन्हें जाना जा सकता है।

प्रभुके एक ही चरणमें सारी पृथ्वी समा गई। दूसरे चरणने ब्रह्मलोकको व्याप्त कर लिया। तीसरे चरणके लिए स्थान ही न बचा। उस समय सारे दैत्य युद्ध करनेके लिए तैयार हो गए। बोले कि हमारे स्वामीको छला जा रहा है। मारो, मारो। तो बलि राजा ने उन्हें समझाया कि यह समय प्रतिकूल है। शांत रहो, नहीं तो तुम्ही मारे जाओगे।

वामनजी बोले—राजन्, तुमने संकल्प किया है कि तीन चरण जितनी भूमि दूँगा। अब मैं तीसरा चरण रखूँ तो किधर रखूँ। संकल्पानुसार दान न देनेवाला मनुष्य नरकवासी होता है। तुम मुझसे छलना कर रहे हो।

जरा सोचो तो। इस प्रसंगमें कौन किसके साथ छलना कर रहा है ? भगवान् दान लेने आए थे, तब सात वर्षके बटुक थे किंतु दानका संकल्प हो जाने पर विराट बन गए।

गणेशपुराणमें बलि राजाने भगवान्से पूछा था कि वह निष्पाप है फिर भी उसके साथ ऐसा छल क्यों किया गया ?

बलि राजा निष्पाप था सो भगवान्ने उसके साथ युद्ध नहीं किया

ईश्वर निष्पाप हैं। वे किसीको भी नहीं मारते। मनुष्यका पाप ही उसे मारता है।

आपने कपट किया। मुझे पातालमें उतार दिया। क्या यह योग्य है ? आप ही निर्णय करें।

वामनजीने उत्तर दिया—तुम पूर्ण निष्पापी नहीं हो। यज्ञके आरंभमें गणपतिपूजाकी आज्ञा की गई तो तुमने इन्कार कर दिया था। मैं विष्णुकी पूजा करूँगा। गणपति भी तो विष्णु हैं, किंतु तुम न माने। यह तुम्हारी भेददृष्टि थी।

जब तक अनन्य भक्ति सिद्ध नहीं हो पाई है, तब तक अन्य देवोंमें भी अपने इष्ट देवका अंश मानकर उन्हें वंदन करो और इष्टदेवसे अनन्य भक्ति करो।

तुमने शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन किया। तुमने गणपतिकी पूजा तो की किंतु पूज्य भावसे नहीं की। गणपतिने मुझसे प्रार्थना की कि मैं तुम्हारे यज्ञमें बाधा डालूँ। अतः मैं यहाँ आया हूँ।

गणपति महाराज विघ्नहर्ता भी हैं और विघ्नकर्ता भी।

अब मैं तीसरा चरण कहाँ रखूँ ?

भगवान्के विराट् स्वरूपको देख कर बलि राजा भयभीत हो गए। उस समय सत्त्व-गुणस्वरूपा विंध्यावली कहने लगी—यह सब तो तुम्हारी क्रियाभूमि है। इस शरीर पर भी जब जीवका अधिकार नहीं है तो संपत्ति और संतति पर तो कैसे हो सकता है ? शरीर मिट्टीसे ही बना हुआ है। जीव व्यर्थ ही ऐसा मान बैठता है कि शरीर, संपत्ति आदि मेरी अपनी है। वास्तवमें ऐसा नहीं है।

गीताका आरंभ ' धर्म ' शब्दसे किया गया है। गीताका प्रथम शब्द है ' धर्मक्षेत्रे '। गीताकी समाप्ति ' मम ' शब्दसे की गई है। गीताका अंतिम शब्द है ' मम '। इन दो शब्दोंके मध्यमें समायी हुई है सारी गीता। ' मम ' का अर्थ है मेरा। ' मम धर्मः ' मेरा धर्म। धर्म अर्थात् सत्कर्म। मेरे हाथोंसे जो भी सत्कर्म हो पाए, वही और उतना ही मेरा है।

मात्र सत्कर्म ही तुम्हारा है, शरीर नहीं। जितना सत्कर्म जीवने किया होगा, उतना ही साथ जाएगा। जितना सत्कर्म करोगे, उतना ही तुम्हारा होगा।

धृतराष्ट्रने कहा था—'मामकाः' । ये मेरे पुत्र हैं । इसी कारणसे भगवान्ने उनके पुत्रोंको मारा था । धृतराष्ट्रने कहा था—'मामकाः पांडवाः' ।

अर्जुनने भगवान्से कहा था—'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' । मैं आपका हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ । तब भगवान्को उसे अपनाना पड़ा और उसके रथको चलाना भी पड़ा ।

मनुष्य यह नहीं जानता है कि उसका अपना क्या है और क्या नहीं है, फलतः वादविवाद और संघर्ष होता रहता है । यदि वह यह समझ पाए कि वास्तवमें उसका क्या है तो सारे टंटे-फसाद मिट जाएँगे । द्रव्यके सिवाय भी कोई अन्य सुख है या नहीं और आत्मानंद जैसी भी कोई वस्तु है, यह मनुष्य जानता ही नहीं है ।

अपने हाथोंसे किया हुआ सत्कर्म ही अपना है । यह जीव नहीं, प्रभु ही स्वामी हैं । जीव तो मात्र मुनीम है । इस शरीर पर जब जीवकी सत्ता नहीं है तो और किसी वस्तु पर तो कैसे हो सकती है ? यमराजकी आज्ञा होते ही शरीरका त्याग करना पड़ता है । जगत्के कानून वहाँ नहीं चल सकते । यह कभी मत भूलो कि तन और मनके स्वामी मात्र परमात्मा ही हैं । किसी भी वस्तु पर जीवका अधिकार नहीं है और स्वामी परमात्मा हैं, फिर भी जीव मेरा-मेरा करता है । जो मेरा-मेरा करता है, उसे भगवान् मारते हैं । जो तेरा-तेरा कहता है, उसे भगवान् तारते हैं ।

विंध्यावलीने कहा—हे प्रभु, यह तो आपकी ही लीला है । आपको कोई क्या दान देगा ? मेरे पतिने अभिमानवश दान देना चाहा और दिया । आपको कोई कुछ नहीं दे सकता । सर्वस्वके आप ही स्वामी हैं । इसी कारणसे वैष्णव संप्रदायी दानके बदले भेंट शब्दका प्रयोग करते हैं । जो ईश्वरका है, वही उन्हें समर्पित करना है ।

प्रभु, मेरे पतिके कथनमें गड़बड़ी हो गई है ।

बलिमें जो सूक्ष्म अभिमान अब तक रह गया था कि मैंने दान दिया, इस अभिमानको दूर करनेके हेतुसे विंध्यावलीने अपने पतिसे कहा—ठाकुरजीको प्रणाम कीजिए । भगवान्को कौन क्या दे सकता है ? उन्होंने जो दिया था, वही उन्हें देना है । यह शरीर बच गया है, जो मिट्टीका ही है । भगवान्से कहिए कि वे अपना तीसरा चरण आपके मस्तक पर ही रखें ।

मस्तक बुद्धिप्रधान है । उसमें कामका वास है । मस्तक पर भगवान्का चरण आने पर उस बुद्धिगत कामका नाश होता है । जो तन, मन, धन भगवान्को अर्पित करता है, उसीके मस्तक पर चरण रखनेकी कृपा भगवान् करते हैं । परमात्माका हाथ या चरण मस्तक पर आनेसे मस्तकस्थित सूक्ष्म कामका नाश होता है ।

गोपियाँ भी तो कहती हैं—

शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् !

गोपियाँ गोपगीतामें भगवान्से कामना करती हैं, कि उनके मस्तक पर उनका करकमल फिरे । गोपी कौन है ?

गोभिः—इन्द्रियैः भक्तिरसं पिबति सा गोपी।

प्रत्येक इन्द्रियसे जो भगवत्-रसका पान करे, वही गोपी है।

प्रभुसे प्रार्थना करो कि अपने चरण मेरे मस्तक पर रखिए।

बलि राजाने भगवानसे कहा—'पदं तृतीयं शिर्ष्णि मे निजम्'। मेरे मस्तक पर ही आप अपना तीसरा चरण रखिए।

मस्तकमें बुद्धि होती है और बुद्धिमें सूक्ष्म रूपसे काम समाया होता है। उसको नष्ट करनेके हेतु ही अपने मस्तक पर चरण रखनेकी प्रार्थना बलिने की। ऐसा होने पर सकाम बुद्धि नष्ट होती है।

जीव और ईश्वरके मिलनमें बाधक, अवरोधक काम ही है।

मैं ठीक तरहसे कह न सका। मुझे क्षमा करें। मेरा तो कुछ नहीं है। आपका ही जो है, वह आपको दे रहा हूँ। अपराध क्षमा करें। सचमुच ही आप हम असुरोंके भी परोक्ष गुरु है, क्योंकि हमारे बड़प्पनकी दीवार तोड़ कर, आपने हमारी आँखें खोल दी हैं।

इतनेमें बलि राजाके पितामह प्रह्लादजीका वहाँ आगमन हुआ। वे भगवान्से कहने लगे—आपने मेरे इस पौत्रको दिया हुआ इन्द्रपद छीन लिया और लक्ष्मी-विहीन भी कर दिया। मैं मानता हूँ कि ऐसा करके आपने उस पर बड़ा अनुग्रह किया है।

दाताको कभी अभिमानी नहीं बनना चाहिए। जो वंदन करता है, वह प्रभुको भी बंधनमें रख सकता है।

शरीरका अर्पण अर्थात् मेरापन, अहंकार, अभिमानका अर्पण। यदि दाता, दीन नहीं बनेगा तो उसका दान भी सफल नहीं होगा।

बलि राजाके हृदयमें जब दैन्य आया तो परमात्माका हृदय पिघल गया। उन्होंने बलि राजासे कहा—तुमने मुझे सर्वस्वका दान दिया सो मैं तुम्हारा ऋणी हो गया।

नम्रता, दैन्यके आने पर परमात्मा ऋणी हुए।

मैंने इन्द्र आदिको स्वर्गका राज्य दिया है, किंतु तुम्हें पातालका राज्य देता हूँ। आजसे तुम्हारे प्रत्येक द्वार पर मैं चौकसी करूँगा।

बलि राजाके कानोंमें और आँखोंमें ईश्वर समा गये। बलि राजाने कहा—स्वर्गके राज्यकी अपेक्षा यह सुतल पातालका राज्य अधिक अच्छा है। यहाँ भगवान्का सतत सान्निध्य है।

इस बलि राजाकी कथामें थोड़ा-सा रहस्य भी है। बलि जीवात्मा है और वामन परमात्मा। बलि राजाके गुरु हैं शुक्राचार्य। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति शुक्रकी सेवा—वीर्य और ब्रह्मचर्यकी रक्षा करता है और जो संयमी है, उसे कोई भी मार नहीं सकता।

बलि राजाको कोई मार नहीं सकता। कंस आदिको तो मारा था किंतु वामन भगवान्ने बलिको नहीं मारा। बलि निष्पाप है, शुक्राचार्यकी सेवा करता है, सदाचारी है।

भक्त शुक्रकी सेवा करके जब बलि बनता है, तभी भगवान् आँगनमें पधारते हैं। तुम बलि बनोगे, तभी भगवान् तुम्हारे भी आँगनमें आएंगे। बलि बलवान् है। बलवान् ही भगवान्के मार्ग पर चल सकता है, प्रगति कर सकता है।

किंतु बलवान् कौन है ? जो अंदरूनी शत्रुओंको—काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सरको मारता है, वही बलवान् है।

जीवात्मा बलि, जब बलवान् बनता है, तो उसके द्वार पर भगवान् आ खड़े हो जाते हैं। शारीरिक, बौद्धिक और ज्ञानबलकी अपेक्षा प्रेमबल अधिक श्रेष्ठ है। प्रेमबलके सामने सभी अन्य बल गौण हैं। बलि वही है, जो एक प्रभुके साथ ही प्रेम करता है। सभी बलोंकी अपेक्षा प्रेमबल श्रेष्ठ होनेके कारण तुम परमात्माके साथ ही प्रेम करो। द्रव्य-बल या ज्ञानबलसे प्रभुको जीता नहीं जा सकता। प्रेमबलसे परमात्माको जीता जा सकता है।

यदि परमात्माके साथ प्रेम करना है तो जगत्के पदार्थोंके प्रति प्रेमको छोड़ना होगा। परमात्माके साथ तभी प्रेम हो सकता है कि जब जीव, जगत्के पदार्थोंका प्रेम छोड़ता है। परमात्माके साथ प्रेम करोगे और संयम बढ़ाओगे, तभी तुम बलि बन पाओगे। तभी वामन बन कर भगवान् तुम्हारे यहां आएँगे।

भगवान्को माँगते हुए संकोच हो रहा था, अतः वामन बनकर आए थे। जीव प्रेम-भाव बढ़ाए तो भगवान् बटुक बन कर, निर्बल-से बनकर आँगनमें आते हैं।

कोई एक स्त्री कथा सुनने के लिए चली। मार्गमें उसका बालक रोने लगा। माताने उसे कुछ खिलौने दिये, फिर भी वह रोता ही रहा। वह माताका आंचल खींचने लगा और कथामें जानेसे रोकने लगा। बालकके प्रेममें माता दुर्बल हो गई, अतः वह स्त्री कथामें नहीं गई। वही बालक युवक बना, विवाहित भी हो गया और माताका प्रेम भी भूल गया और माताका प्रेम भी समयके साथ-साथ कुछ कम-सा हो गया ! अब युवक यदि माताको कथामें जानेसे रोकता तो माता नहीं मानती, वह कहती कि अब तुम्हें मुझ पर वह प्रेम नहीं है। युवक जब बालक था तो उस पर माताका पूरा-पूरा प्रेम था।

तुम प्रेमबल बढ़ाओगे, और बलि बनोगे तो परमात्मा तुम्हारे आँगनमें पधारेंगे।

जो सदाचारपूर्ण और संयमित जीवन जीता है, उसके घर ही भगवान् भिक्षा माँगने जाते हैं।

परमात्मा जब द्वार पर पधारते हैं, तो तीन वस्तुएँ माँगते हैं। वे तीन कदम भर पृथ्वी माँगते हैं, अर्थात् वे जीवमात्रसे तन, मन और धन माँगते हैं। इन तीनोंका भगवान्को दान करना चाहिए। तनसे सेवा करने पर देहाभिमान नष्ट होता जाएगा। तनसे सेवा करनेसे अहंकार घटता जाता है। धनसे सेवा करने पर धनकी माया-ममता-मोह नष्ट होने लगेगा। मनसे सेवा करनेसे श्रम नहीं होता। तन, मन, धन भगवान्को देने पर ही रासलीलामें स्थान मिलता है। जीव और ब्रह्मका मिलन होता है। अतः इन तीनोंसे भगवान्की सेवा करो।

सभी वस्तुएँ भगवान् ही की हैं और उन्हींको अर्पण करनी हैं। उन्हींका दिया हुआ उन्हें देना है—

त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।

जो व्यक्ति बलिकी भाँति तन, मन, धन भगवान्को अर्पित करता है, भगवान् उसके द्वारपाल बनते हैं। ऐसे दाताके शरीरकी प्रत्येक इन्द्रियके द्वार पर भगवान् नारायण विराजते हैं। उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। ये इन्द्रियाँ शरीरके द्वार हैं। इन सभीके द्वार पर रामका पहरा होगा तो काम अंदर नहीं जा सकेगा।

जो व्यक्ति अपना तन, मन, धन परमात्माको अर्पण कर देता है, उसके शरीर और इन्द्रियोंकी वे रक्षा करते हैं। तन, मन, और धनसे सेवा करने पर भगवान् तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रियकी चौकसी करेंगे। ऐसे व्यक्तिके कानोंमें, आँखोंमें, हृदयमें कन्हैयाका वास होगा।

तीन चरण पृथ्वीका एक और भी अर्थ है : सत्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंको भगवान्को अर्पण कर दो। शरीरसे ईश्वरसेवा करनेसे तमोगुण घटता जायगा। ईश्वरसेवामें धनका उपयोग करनेसे रजोगुण कम होगा। तन और धन दोगे किंतु मन नहीं दोगे, तो ईश्वर प्रसन्न नहीं होंगे। तन और धनसे तो सेवा की जाए किंतु मनसे न की जाए, तो प्रभुसेवामें आनंद नहीं आएगा। ईश्वरके साथ मनसे संबंध जोड़ना है। मनुष्य अपना सर्वस्व ईश्वरको नहीं देता है, कुछ अपने पास रख छोड़ता है, अतः प्रभु प्रसन्न नहीं होते!

सत्वगुणके क्षयके हेतु मन भी ईश्वरको अर्पण करना है। मनको उनकी सेवामें लगाए रखना है। मन विषयोंमें और तन ठाकुरजीके पास होगा, तो काम नहीं बनेगा। सेवा करते हुए आँखोंमें आँसू आ जाएँ, तो मान लेना कि ठाकुरजीने कृपा की है। सेवा करनेसे थकावट दूर होती है। ईश्वरके साथ संबंध हो जाये, तो थकावट दूर होती है। ज्ञानी व्यक्ति ईश्वरके साथ शरीरसे नहीं, मनसे संबंध जोड़ता है।

समर्पणकर्ताको अपने आपको भी समर्पण करना चाहिए।

दान देनेके बाद बलि राजाने भगवान्को नमन नहीं किया, सो वे अप्रसन्न रहे। बलिके मनमें सूक्ष्म अभिमान था कि मैंने बहुत कुछ दिया है। अर्पण करके भी उसके मनमें दीनता, नम्रता नहीं आई।

सब कुछ विधिपूर्वक करके भी मानो कि मैंने कुछ भी नहीं किया है।

भगवान्से कहो—

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।

मैं भक्तिरहित, क्रियारहित, मंत्ररहित हूँ। मेरी कुछ भूल हो तो क्षमा करना और मेरे कर्मोको परिपूर्ण मान लेना।

सत्कर्म करनेके बाद यदि दैन्य न आए तो सत्कर्म फलता नहीं है। कर्म नहीं किंतु मैंने कर्म किया है, ऐसा अहंकार बाधक है। मैं कुछ करता हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, ऐसा अहंकार होने पर प्रभु उपेक्षा करते हैं।

हृदयसे नमन करोगे तो भगवान्को प्यारे होगे।

बलिके मनमें दैन्य आया तो सेव्यको सेवक बनना पड़ा। प्रभु द्वारपाल तक बननेको राजी हो गए।

जिसकी इन्द्रियाँ भगवान्का नामरटन करती हैं, उसकी उन सारी इन्द्रियोंमें भगवान् आकर विराजते हैं। सुतलपातालके द्वारपरकी भगवान्की चौकसीका यही अर्थ है।

सुतलपातालमें बलिने प्रवेश किया। प्रत्येक द्वार पर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीकृष्ण विराजमान थे।

तन, मन, धनसे सेवा करनेवालेकी आँखोंमें और कानोंमें, प्रत्येक इन्द्रियमें श्रीकृष्ण रहते हैं।

एक बार रावण घूमता-फिरता बलिके पास आया और लड़नेको तैयार हो गया। उसने देखा कि बलिके द्वार पर वामनजी चौकीदारी कर रहे हैं। उसने वामनजीसे कहा कि वह बलिके साथ युद्ध करना चाहता है। तो वामनजीने कहा—पहले मुझसे युद्ध कर। मैं सेवक हूँ और वे स्वामी। तो रावणने वामनजीके साथ लड़ना शुरू किया। वामनजीने उसकी छाती पर एक ऐसी लात मारी कि वह समुद्र-किनारे जा पड़ा।

रावण काम है। तुम्हारी इन्द्रियोंके द्वार पर अगर भगवान् चौकीदारी करने लगें, तो काम उसमें प्रवेश नहीं पा सकेगा।

वामनजीने स्वर्गका राज्य इन्द्रको दिया। वामनजी बलि राजाके घर दान लेने गए तो दान लेकर वहाँ उनको द्वारपाल बनना पड़ा।

जो दान लेता है, वह बंधनमें फँसता है।

वामनजी बंधनमें फँस गए तो सभीको आनन्द हुआ किंतु महालक्ष्मीको दुःख हुआ। घरमें सब कुछ था, किंतु नारायणकी अनुपस्थितिसे वे बेचैन थीं। वे सदा यही सोचती रहतीं थीं कि वे कब आएँगे? कहाँ होंगे? एक दिन उन्होंने अकुलाहटके मारे नारदजीसे पूछा—कहाँ हैं मेरे स्वामी? आप कुछ जानते हैं क्या? तो नारदजीने उत्तर दिया—सुना है कि नारायण सुतलपातालमें बलिराजाके घर-द्वारकी चौकीदारी कर रहे हैं। बलिके पास दान लेने गए थे सो बंधनमें पड़ गए। सर्वस्वका दान लेकर ऋणी हो गए।

लक्ष्मीजी सुतलपातालमें आईं। घरमें ठाकुरजीको प्रसन्नतासे स्थापित करोगे तो लक्ष्मीजी भी उनके पीछे-पीछे बिना आमंत्रणके भी आ जाएँगी। जहाँ भगवान् होते हैं, वहाँ लक्ष्मीजी आ ही जाती हैं।

यह कोई आश्चर्य तो नहीं है कि जिस घर पर नारायण द्वारपाल हों, विराजमान हों वहाँ लक्ष्मीजी भी आमंत्रणके बिना भी आ जाएँ। सो लक्ष्मीजीके नहीं, भगवान् ही के पीछे लग जाओ। नारायणकी आराधना करोगे तो लक्ष्मीजी अपने आप आएँगी।

लक्ष्मीजीने ब्राह्मण-पत्नीका रूप धारण किया। उन्होंने बलि राजासे कहा—मैं तुम्हारी धर्म-बहन हूँ। जगत्में न तो मेरा कोई भाई है और न तुम्हारी कोई बहन। आजसे तुम्हारी धर्म-भगिनी और तुम मेरे धर्मभ्राता। बलिको आनन्द हुआ। उसने लक्ष्मीको वंदन किया। उसे दुःख था कि आज तक उसकी कोई बहन ही न थी। लक्ष्मीजीके आगमनके साथ सभीको आनन्द हुआ किंतु स्वयं लक्ष्मीमाताको कोई आनंद नहीं था। उन्हें दुःख था कि उनके स्वामी हाथमें लाठी पकड़ कर एक सामान्य चौकीदारकी भाँति पहरा दे रहे हैं।

श्रावण मास आया। लक्ष्मीने राखी के दिन (पूर्णिमाके दिन) बलि राजासे कहा कि मैं आज तुम्हें राखी बाँधूगी। बलि राजाने राखी बँधवा कर वंदन करते हुए लक्ष्मीजीसे कहा, बहन, आज मुझे तुम्हें कुछ देना चाहिए। जो जीमें आए, माँग लो। जरा भी संकोच न रखना।

लक्ष्मीजी बोलीं—माँगते हुए संकोच हो रहा है।

बलि राजा—आज वही माँग लो, जो तुम्हारे घर न हो।

लक्ष्मीजी—वैसे तो मेरे घरमें सब कुछ है किंतु एक वह नहीं है कि जिसके बिना मैं बेचैन हूँ। मुझे और कुछ न चाहिए। अपने इस द्वारपालको ही मुझे दे दो। तुम उन्हें मुक्त कर दो।

बलि राजा—क्यों ? क्या यह तुम्हारा कोई रिश्तेदार है क्या ?

लक्ष्मीजी—ये तो मेरे नारायण हैं, मेरे सर्वस्व हैं।

और नारायण चतुर्भुज स्वरूपमें प्रकट हुए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन ! माता महालक्ष्मी भगवान् नारायणके साथ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके दिन वैकुंठ धाममें सिधारीं। इसीकी स्मृतिमें रामानुजाचार्य पंथके मंदिरोंमें इस दिन पाटोत्सव मनानेकी प्रणाली चली आई है।

और इस प्रकार लक्ष्मीजीने दानसे बद्ध नारायणको मुक्त किया।

अतः भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ भा. ८-२२-२४

ब्रह्माजी, मैं जिसपर कृपा करता हूँ उसका धन छीन लेता हूँ क्योंकि धनसे व्यक्ति अभिमानी बनता है तथा मेरा और अन्य लोगोंका अपमान करने लगता है।

इसी कारणसे तो प्रह्लादजीने भगवान्से कहा था—मेरे पौत्र बलिको आपने इन्द्रपद तथा स्वर्गका जो राज्य दिया था, वह छीन कर लक्ष्मीभ्रष्ट किया, वह उस पर (बलि पर) कृपा करनेके हेतु ही किया है।

इस परम पवित्र वामनकी चरित्र-कथा समयानुसार, यथामति कह सुनाई। पितृतिथि-के दिनोंमें इसका पाठ करनेसे पितरोंको सद्गति प्राप्त होती है।

अब शरणागतिकी कथा आरंभ होती है। रासलीलामें जाना है। यदि मन पर वासनाका आवरण है तो श्रीकृष्णसे मिलन नहीं होगा। वासनाके नाशके लिए भी उपाय बताए गए हैं।

महाप्रभुने कहा है—मैं भगवान्‌की शरणमें हूँ, ऐसा जिसे सतत स्मरण रहे, वही सिद्ध पुरुष है।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, कूर्म या मत्स्यके गुणदोष परमात्मामें नहीं आते। परमात्मा कूर्म बनें या मत्स्य किंतु वे तो सदा परमात्मा ही बने रहते हैं। जीव जब पशुका अवतार लेता है, तो उस पशु-विशेषके गुणधर्म उसमें आ जाते हैं।

महाराज सत्यव्रत मनु एक समय कृतमाला नदीके किनारे तपश्चर्या कर रहे थे। यह नदी त्रिवेन्द्रमकी ओर है। वहाँ उन्होंने कई वर्ष तक तपश्चर्या की। एक बार वे नदीमें जलतर्पण कर रहे थे।

ऋषितर्पणसे बुद्धि शुद्ध होती है। भारत धर्मप्रधान देश है। ऋषियोंका स्मरण करनेसे दिव्य संस्कार हमारे हृदयमें अवतीर्ण होते हैं। आज तो शिक्षामें धर्मका कोई स्थान ही नहीं है।

जलतर्पण करते हुए महाराज मनुके हाथोंमें एक मत्स्य आया। मनुने उसे जलमें छोड़ दिया।

मत्स्यने कहा—मैं आपके हाथोंमें अर्थात् आपकी शरणमें आया हूँ। नदीके अन्य बड़े-बड़े मत्स्य मुझे खा जाएंगे, अतः आप मेरी रक्षा करें।

तब राजाने उसे कमंडलमें रख लिया। मत्स्य ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया त्यों-त्यों उसके लिए दिनोंदिन विशाल स्थानकी आवश्यकता पड़ने लगी। दिनोंदिन वह विशाल स्वरूप धारण करता गया। सत्यव्रतको आश्चर्य होने लगा। उन्होंने सोचा कि अवश्य यह कोई असाधारण मत्स्य है।

वस्तुतः वृत्ति ही वह मत्स्य है। वृत्ति विशाल बने, किंतु जब तक वह ब्रह्माकार न हो जाये, तब तक शांति नहीं है। मेरापन—'अहम्' एक ही स्थानमें नही रह सकता, नहीं समा सकता। मैं सर्वमें हूँ और मुझमें सर्व है। मनके आवरणको तोड़नेके लिए ब्रह्माकारवृत्ति आवश्यक है। इस जीवके हृदयमें ईश्वर रहते हैं। फिर भी जीवकी पीड़ा या मृत्यु ईश्वरको व्यथित नहीं कर सकती। मानो भगवान्को इससे कोई संबंध ही नहीं है।

दीपकके प्रकाशमें चाहे कोई भागवत-पाठ करे, चाहे चोरी। दीपकके मनमें न तो किसीके प्रति सुभाव होगा, न तो कुभाव। दीपकका धर्म तो एक ही है, प्रकाशित होना, प्रकाश देना। प्रकाशका किसीके कर्मके साथ कोई संबंध नहीं है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

परमात्मा सभीके हृदयमें बस कर दीपककी भाँति प्रकाश देते हैं। जीव पाप करे या पुण्य, किंतु साक्षीभूत परमात्मा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ईश्वर न तो निष्ठुर है और न दयालु। ईश्वरका अपना कोई धर्म नहीं है। ईश्वर आनंदरूप हैं, सर्वव्यापी हैं। इस स्वरूपमें हमें कोई विशेष हानि या लाभ नहीं हैं। परमात्मा बुद्धिसे परे हैं। ईश्वर ही बुद्धिको प्रकाशित करते हैं। ईश्वरको प्रकाश देनेवाला कोई नहीं है। ईश्वर तो स्वयंप्रकाशी हैं। ईश्वरके सिवाय अन्य सभी परप्रकाशी हैं।

ईश्वरका दीपक-सा यह स्वरूप हमें प्रकाश देता है। इस स्वरूपका अनुभव करनेके लिए ज्ञानी पुरुष ब्रह्माकारवृत्ति धारण करते है। जब मन ईश्वरका सतत चिंतन करे, वृत्ति जब कृष्णाकार, ब्रह्माकार बने, तभी शांति मिलती है। ईश्वरको छोड़ कर मनोवृत्तिको जहाँ भी रखोगे, वह स्थान उसे समा नहीं पाएगा। ईश्वरको छोड़ कर सभी कुछ अल्प है। अतः अन्य किसी भी वृत्ति-प्रवृत्तिमें मनोवृत्तिको शांति नहीं मिलेगी। वृत्ति कृष्णाकार, ब्रह्माकार बनेगी, भगवत्-स्वरूप बनेगी, तभी आनन्दकी प्राप्ति होगी।

लकड़ीमें जो अग्नि समायी हुई है, उसका उपयोग कैसे किया जाय, यह जानना चाहिए। लकड़ी पर बाहरसे अग्नि लगाओगे तो वह जलेगी। स्वयंप्रकाशी परमात्मा सभी हृदयमें रहते हुए प्रकाश ही देते हैं और कुछ नहीं करते। प्रभुके सगुण स्वरूपको हृदयमें बसा कर, उसीमें वृत्तिको तदाकार करोगे तभी शांति मिलेगी।

मनको ही मत्स्यकी उपमा दी गई है।

मत्स्यनारायणने कहा—राजन् मैं तेरा कल्याण करनेके हेतु ही आया हूँ। आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और सर्वनाश हो जाएगा। तब तुम मेरा स्मरण करना। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। मुझसे अपनी नैया बाँध देना।

मनु महाराज प्रभुका ध्यान करने लगे। पृथ्वी जलमय हो गई।

तभी वृत्ति ब्रह्माकार होती है कि जब कोई ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिल जाते हैं। मत्स्य नारायण भगवान् सद्गुरुका ही स्वरूप हैं। गुरुकृपाके बिना मन ईश्वरमें स्थिर नहीं हो पाता।

मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मेरी नौका आप पार लगा दीजिए।

वृत्तिको ब्रह्माकार बनाओ। सत्यव्रती बनो। सत्यका पालन करो।

सत्यनिष्ठ जीव ही सत्यव्रत, मनु है। कृतमालाके किनारे बसनेका अर्थ है, सत्कर्मकी परंपरामें जीना। ऐसा होने पर ही सत्यव्रत, जीवात्माकी वृत्ति ब्रह्माकार होती है और मत्स्य-नारायण भगवान् उनके हाथमें आते हैं। ऐसे अधिकारी जीवको ही परमात्मा मिलते हैं।

प्रलयमें चाहे अन्य किसी भी वस्तुका नाश हो जाए किंतु भगवान् सत्यनिष्ठका नाश नहीं होने देते। सत्कर्मी और सत्यनिष्ठ व्यक्ति प्रलयमें भी नहीं मरेगा। जो भगवान्‌की शरणमें जाता है, भगवान् जिसे अपनाते हैं उसका प्रलयमें नाश नहीं होता।

प्रलयमें सारी सृष्टि नष्ट हो गई, किंतु सत्यव्रतका नाश नहीं हुआ क्योंकि उसने मत्स्य-नारायण भगवान्‌के साथ अपना संबंध जोड़ लिया था।

शरीर नैया है। प्रभुके चरण सींग हैं। इस शरीरको परमात्माके चरणोंके साथ बांध दो।

आदि मत्स्य नारायण भगवान्‌को शुकदेवजी बार-बार प्रणाम करते हैं।

मत्स्य नारायणकी स्तुतिको महात्माओंने गुरुष्टकी कहा है।

इस मत्स्यनारायणकथा जो भी कोई पाठ करता है, उसके सभी सङ्कटोंका विनाश होता है।

मत्स्य नारायण प्रभुने वेदके चोर दैत्य हयग्रीवका संहार किया। मनु महाराजको मत्स्य संहिताका उपदेश दिया। ऐसे प्रभुको प्रणाम करते हुए हम इस आठवें स्कंधको समाप्त करते हैं।

श्रीराम - स्तुति

श्रीरामचंद्र कृपालु भज मन हरण भवभय दारुणं,
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर कंज, पद कंजारुणं।
कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद सुंदरं,
पट पीत मानहु तडित रुचि शुचि, नौमि जनक सुतावरं।
भज दीनबंधु, दिनेश, दानव दैत्य वंश निकंदनं,
रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद्र दशरथ नंदनं।
शिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणं,
आजानुभुज शर-चापधर, संग्रामजित खरदूषणं।
इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मनरंजनं,
मम हृदय कंज निवास कुरु, कामादि खल दल गंजनं।
सियावर रामचंद्रकी जय—

नवम स्कन्ध

ॐ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदय आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।

भा. १-१-१

श्रीकृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ।
जगत् गुरु श्रीशंकराचार्याय नमः ।

प्रथम स्कंध अधिकार-लीलासे संबंधित था । शिष्यका अधिकार बताया गया । जिसका अधिकार सिद्ध होता है, उसे संत मिलते हैं ।

मृत्यु सिरपर सवार होनेवाली है ऐसा सुनने पर राजा परीक्षितके विलासी जीवनका अंत आया और वह सुधर गया ।

विलासी जीवनका अंत और भक्ति सिद्ध हो पाये, तभी जीव अधिकारी बनता है ।

वैराग्य धारण करके जो बाहर निकल पड़ता है, वह संत बनता है और उसे अपने आप सद्गुरु आ मिलते हैं । संतके घर ही संत पधारते हैं । तुम संत बनोगे तो तुमसे भी संत आ मिलेंगे ।

द्वितीय स्कंधमें ज्ञानलीला आई । मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है ? आसन्न मृत्यु व्यक्तिका कर्तव्य क्या है ? इन जैसे प्रश्नोंकी चर्चा करके ज्ञान दिया गया ।

तृतीय और चतुर्थ स्कंधोंमें सर्ग-विसर्ग लीला वर्णित है । इनमें ज्ञानको क्रियात्मक रूप देनेका उपदेश दिया गया है । ज्ञानको किस भाँति जीवनमें उतारा जाय, उसे कैसे क्रियात्मक किया जा सके यह ध्रुव आदिके दृष्टांतके द्वारा बताया गया ।

ज्ञान जब तक शब्दात्मक है, तब तक शांति नहीं मिलेगी । जब वह क्रियात्मक, सक्रिय होगा तभी शांति मिलेगी ।

पाँचवा स्कंध/स्थिति लीलाका है । गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञानको जीवनमें उतारोगे तभी स्थिरता प्राप्त होगी । यह पाँचवें स्कंधमें बताया गया है ।

छठे स्कंधमें पुष्टि लीला, अनुग्रह लीलाका वर्णन है । जो साधना करता है, उसी पर प्रभु कृपा करते हैं ।

मनुष्य जब किसी स्वरूपमें स्थिर (निमग्न) होता है तभी ठाकुरजी कृपा करते हैं । कुछ लोग समझते हैं कि खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट होना ही पुष्टि मार्ग है । नहीं, ऐसा नहीं है । पुष्टि मार्ग तो यह बताता है कि ठाकुरजीके विरहमें मनुष्यका जीवन कैसा होना चाहिए ।

ईश्वरको अपना सर्वस्व अर्पण कर दो। इन्द्रियोंको भक्तिरसमें सराबोर कर दो। वैसा करने पर ही इन्द्रियोंको पुष्टि मिलती है।

मनुष्य यदि पुष्टिका ठीकसे उपयोग न करे और वासनाके वेगमें बह जाए तो वह पुष्ट होनेकी अपेक्षा दुष्ट ही बनता है।

अनुग्रहके बाद भी अगर मनुष्य वासनाके अधीन हो जाय तो वह पुष्ट नहीं बन पाता।

सातवें स्कंधमें असद् वासनाको दूर करनेके संतोंके धर्म बताए गए हैं। सातवाँ स्कंध वासनालीलाका है। प्रभुकी कृपाका यदि मनुष्य अच्छा उपयोग नहीं करे तो वासना ही जागती है।

जो कुछ है, उसका मैं अपने सुखके लिए ही उपयोग करूँगा, ऐसा सोचना असद् वासना है। प्रह्लादको जो कुछ मिला था, उसका उसने सभीके लिए उपयोग किया था।

मुझे जो सुख मिला है, वह प्रभुका ही है। सुख भोग कर जो दूसरोंको सुख देता है वह सज्जन तो है किंतु संत नहीं है। जो स्वयं दुःख उठा कर अन्योंको सुख देता है, वही संत है।

रासलीला भागवतका फल है। रासलीलामें वासनाको संग लेकर जाओगे तो वहाँ प्रवेश नहीं मिलेगा। पुष्टिके बाद जगनेवाली वासना अनर्थ उत्पन्न करती है।

पुष्टिका सदुपयोग करनेवाला देव है और दुरुपयोग करनेवाला दैत्य।

प्रह्लाद देव माना गया क्योंकि उसने पुष्टिका सदुपयोग किया। हिरण्यकशिपुने पुष्टिका दुरुपयोग किया इसलिये वह दैत्य कहलाया।

प्रह्लादकी वासना सद्वासना है, हिरण्यकशिपुकी असद् वासना है और सामान्य मनुष्यकी मिश्र वासना है। किंतु सभी लोग बुद्धिका सदुपयोग नहीं करते हैं।

ईश्वर द्वारा प्राप्त समय, संपत्ति और शक्तिका जो सदुपयोग करे, वह देव है और दुरुपयोग करे वह दैत्य।

ईश्वर तो जीव पर कृपा करते ही हैं किंतु अज्ञानी जीव उसका दुरुपयोग करता है इसलिये वह दुष्ट बन जाता है।

सातवें स्कंधमें बताई गई वासनाका चार उपायोंसे तो नाश हो सकता है। आठवें स्कंधमें संतोंके चार धर्म वर्णित हैं।

(१) आपत्तिमें, दुःखमें हरिका, भगवान्का स्मरण। दृष्टांत : गजेन्द्र।

(२) संपत्तिकी अवस्थामें सर्वस्वका दान। बलि राजाकी भाँति इस अवस्थामें सर्वस्वका दान करनेसे वासनाका क्षय होता है।

(३) विपत्तिकी अवस्थामें स्ववचनका पालन। दृष्टांत : बलिराजा।

(४) सभी अवस्थामें भगवत् शरणागति। दृष्टांत : सत्यव्रत। सत्यव्रत भगवान् मत्स्य नारायणकी शरणमें गया था।

वासनाको नष्ट करनेके ये चार उपाय हमने देखे।

वासनाको यदि प्रभुके मार्गकी ओर मोड़ दिया जाए तो वह वासना ही भक्ति बन जाती है। रासलीलामें हमें प्रभुसे मिलना तो है किंतु वासनाका आवरण जब तक बीचमें है तब तक मिलनमें आनन्द नहीं आ सकता। वासनाका विनाश करके निर्वासन होकर रासलीलामें जाना है। वासनाका क्षय होनेके बाद रासलीलामें ईश्वर और जीवका मिलन होता है। संयम और सदाचारका आसरा लोगे तभी रासलीलामें स्थान मिलेगा।

अष्टम स्कंधमें संतोंके चार धर्म बताए, फिर भी शुकदेवजीको लगा कि अब भी परीक्षित राजाके मनमें कुछ थोड़ी-सी सूक्ष्म वासना रह गई है। यदि राजा उस सूक्ष्म वासनाको मनमें ही लेकर रासलीलामें जाएगा तो वहाँ भी उसे काम ही दिखाई देगा। मैं राजाको रासलीलामें ले तो जाऊँगा किंतु यदि उसके मनमें काम बाकी रहा होगा तो उसे वहाँ भी लौकिक कामाचार ही दीखेगा।

जिसके अपने मनमें काम है उसे हर कहीं काम ही दिखाई देता है। एक गृहस्थकी जवान पुत्री ससुराल जाने लगी तो उसे रोना आ गया। पिताका हृदय भी भर आया। रोते-रोते पुत्री पिताको वंदन करने लगी तो पिताने उसे हृदयसे लगा लिया और सांत्वना देने लगा। यह तो वात्सल्यभरा निर्दोष आलिंगन था किंतु रास्ते पर चलते हुए किसी व्यक्तिने इसमें विकार देखा। वह नहीं जानता था कि ये कौन हैं।

पिता-पुत्रीका मिलन शुद्ध है किंतु उससे भी लाख गुना शुद्ध है गोपी और कृष्ण-जीव और ईश्वरका मिलन। यह मिलन रासलीलामें होता है। रासलीलामें काम बिलकुल नहीं है। शुकदेवजीके दर्शनमात्रसे अप्सराओंके कामका नाश हुआ था।

जो अतिशय निष्कामी है, वह कामकी कथा कैसे कह पाएगा? शुकदेवजी निष्कामी हैं। जिनके दर्शन मात्रसे अन्य लोगोंके मनमें बसे हुए कामका नाश हो जाता है वैसे महात्मा यह कथा कह रहे हैं।

जिस प्रकार सूर्यके निकट अंधकार नहीं जा सकता है, वैसे ही काम कृष्णके निकट जा नहीं पाता है।

बुद्धिमें काम होगा तो कृष्णके दर्शन नहीं होंगे। बुद्धिमें जब तक वासानारूपी विष कायम है, तब तक ईश्वररूपी रस जम नहीं पाएगा।

राजाकी बुद्धिको स्थिर करनेके लिए, शुद्ध करनेके लिए नवें स्कंधमें सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओंकी कथा कही गई।

सूर्य हैं बुद्धिके स्वामी और चंद्र हैं मनके स्वामी। बुद्धिकी शुद्धिके लिए सूर्यवंशी रामचंद्रजीका चरित्र कहा गया और मनकी शुद्धिके लिए चंद्रवंशी श्रीकृष्णका।

रामचंद्रकी मर्यादाका पालन करोगे तो तुम्हारे मनका रावण मरेगा। तुम्हारे मनका काम मरेगा तो परमात्मा कृष्ण पधारेंगे। रामके बाद कृष्ण आते हैं। जो रावणको—कामको मार सकता है, वही कृष्णलीलाका दर्शन कर सकता है।

रामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन रामायणमें विस्तारसे किया गया है। उसीका संक्षिप्त वर्णन यहाँ भी कुछ हेतुपूर्वक ही किया गया है। जो रामचंद्रजीकी मर्यादाका पालन करता है, उसे ही कन्हैया मिलता है।

मनको शुद्ध करनेके लिए ही ये लीलायें हैं।

इस नवें स्कंधके दो प्रकरण हैं जो सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके विषयमें हैं। सूर्यवंशमें श्रीरघुनाथजी और चंद्रवंशमें श्रीकृष्ण अवतरित हुए।

सप्तम स्कंधमें वासनाकी कथा थी। उस वासनाका नाश करनेके लिए अष्टम स्कंधमें चार उपाय बताए गए। संतोंके इन चार धर्मोंको जीवनमें उतारनेसे वासनाका नाश हो सकता है।

वासनाको यदि विवेकपूर्वक प्रभुके मार्गमें मोड़ दिया जाए तो वह उपासना बन जाती है और मनुष्यको मुक्ति भी दिलाती है। वासनाके विनाशके बाद नवम स्कंधमें प्रवेश करना है। मन और बुद्धिकी शुद्धिके लिए यह नवम स्कंध है।

इन्द्रियोंमें बसी हुई वासना स्थूल वासना है और मनोगत वासना सूक्ष्म। संतोंके धर्मोंको जीवनमें उतारनेसे स्थूल वासनाका तो नाश होता है किंतु मन और बुद्धिमें बसी हुई सूक्ष्म वासनाका नाश वैसी आसानीसे नहीं हो पाता।

मनके स्वामी हैं चन्द्र और बुद्धिके स्वामी हैं सूर्य। सूर्य और चन्द्र बुद्धि और मनके देव हैं। इन दोनोंकी आराधना करने पर बुद्धिगत वासनाका क्षय होता है। वासनाका पूर्णतः क्षय हुए बिना मोहका क्षय नहीं हो पाता और मोहके क्षय बिना मुक्ति नहीं मिलती। मनके सूक्ष्म मलका नाश होने पर ही मुक्ति मिलती है।

ज्ञानी पुरुष बार-बार सोचते हैं कि संसारमें सच्चा सुख नहीं है। जब तक शरीर है, तब तक सुख-सुविधाकी अपेक्षा तो रहती है किंतु अंतमें परिणाम तो दुखःमय ही है, ऐसा मान कर ही वे भोगोपभोग करते हैं।

सूर्य-चन्द्रकी उपासनाके बिना बुद्धिगत वासनाका नाश नहीं हो पाता।

मनमें सूक्ष्म मल भी नहीं रह पाएगा तो मन मरेगा अर्थात् श्रीकृष्णमें मिल जाएगा। मन मरेगा तो मुक्ति मिलेगी। आत्मा तो नित्य मुक्त है, मुक्त तो मनको करना है। संत-धर्मके आचरणसे इन्द्रियगत विकारका नाश होता है। जो विकार-वासना मन और बुद्धिमें सूक्ष्म रूपसे व्याप्त है उसका शीघ्र विनाश नहीं हो पाता। जिसका जन्म अंतिम है उसीका मन अति शुद्ध हो सकता है। मेरा मन तो शुद्ध ही है, ऐसा विचार कभी न करो क्योंकि ऐसा करनेसे साधन-साधना उपेक्षित हो जानेकी संभावना है।

भोजनसे चाहे संतुष्ट बनो, भजनसे नहीं। सत्कर्मका तो असंतोष ही बना रहना चाहिए।

इन्द्रियगत वासना नष्ट होने पर भी मनोगत वासना बाकी रह जाती है। ईश्वरके साथ एक होना है। मन और बुद्धिमें बसी हुई वासना कृष्णमिलनमें बाधा उपस्थित करती रहती है। हमारा लक्ष्यबिंदु तो है श्रीकृष्णमिलन। हमें ईश्वरके साथ एकत्व साधना है। भगवान्के साथ एक होनेके लिए ही यह भागवत कथा है।

भागवत कथा जीवको भगवान्के साथ तन्मय करती है। कथा-श्रवण पुण्यका काम है। कर्मोंका फल तो कालांतरमें मिलता है जब कि भागवतकथा-श्रवणका फल तो शीघ्र ही मिलता है। इस कथाश्रवणका फल है सांसारिक विषयोंका विस्मरण और ईश्वरके साथ तन्मयता। सभी साधनोंका यही फल है। कथाकीर्तनमें अनायास ही तन्मयता हो जाती है। जगत्को अनायास भूल कर ईश्वरके साथ तन्मय होना ही सभी साधनाओंका फल है।

हमें जगत् में रहना है किंतु जगत्को अपने मनमें बसाना नहीं है। जिसके मनमें संसारके विषय आते ही नहीं है, उसके लिए मुक्ति सुलभ है।

प्रभुके द्वारा उत्पन्न जगत्, भजनमें विक्षेपकर्ता नहीं है किंतु जीव अपने मनमें जिस जगत्को बसाता है, वही भजनमें विक्षेपकर्ता बन जाता है। मनमेंसे संसारके सूक्ष्म स्वरूपको निकाल बाहर करोगे, तभी वहां श्रीकृष्ण आ बसेंगे।

बुद्धिगत कामके विनाशके हेतु ही यह नवम स्कंधकी कथा है। जिसमें बरसोंसे तेल ही रखा जाता है, ऐसे बर्तनको पांच-दस बार धोने पर वह स्वच्छ तो होगा किंतु तेलकी बास नहीं जाएगी। अब उस बर्तनमें चटनी-अचार रखोगे तो वह बिगड़ जाएगा। मनुष्यका मस्तिष्क भी ठीक ऐसा ही है। इसमें कई वर्षोंसे कामवासनारूपी तेल रखा गया है। इस बुद्धिरूपी पात्रमें श्रीकृष्ण-रूपी रस रखना है। अब इस मस्तिष्करूपी बर्तनमें कामका अंशमात्र भी होगा तो उसमें प्रेमरस, भक्तिरस जमेगा ही नहीं।

जब बुद्धिमें परमात्माका निवास होता है, तभी पूर्ण शांति मिल पाती है। जब तक बुद्धिमें ईश्वरका अनुभव नहीं हो पाता है, तब तक आनंदका अनुभव नहीं हो पाता। संसारके विषयोंका ज्ञान बुद्धिमें आने पर विषय सुखरूप बनते हैं। परमात्माको बुद्धिमें रखना है। मस्तिष्कमें जब ईश्वर आ बसते हैं, तभी ईश्वरस्वरूपका ज्ञान पूर्ण आनन्द देता है। तेलके अंशसे चटनी-अचार बिगड़ते हैं, वैसे ही बुद्धिमें वासनाका अंश रह जाने पर वह अस्थिर ही रहेगी।

बुद्धिको स्थिर और शुद्ध करनेके हेतु मनके स्वामी चंद्र और बुद्धिके स्वामी सूर्यकी आराधना करनी है। त्रिकाल संध्या करनेसे बुद्धि विशुद्ध होगी।

वासना-विनाशके हेतु संत-धर्म बताने पर भी शुकदेवजीको लगा कि परीक्षितके मनमें अब भी सूक्ष्म वासना बाकी रह गई है। राजाको रासलीलामें ले जाना है। मृत्युके पूर्व ही उसे परमानंद देना है। जब तक बुद्धिमें काम-वासना है, श्रीकृष्णके दर्शन उसे नहीं होंगे। अतः राजाके मनमें शेष रही हुई वासनाका पूर्णतः नाश करनेके लिए शुकदेवजीने सूर्य और चंद्रवंशकी कथा सुनाई।

जब तक राम नहीं आते हैं, तब तक कृष्ण भी नहीं आते हैं। भागवतमें मुख्य कथा श्रीकृष्णकी है। फिर भी रामके आगमनके बाद ही श्रीकृष्ण आते हैं। जिसके घरमें राम नहीं आते हैं, उसका रावण-काम मरता नहीं है और जब तक कामरूपी रावण मरता नहीं है, तब तक श्रीकृष्ण नहीं आते हैं। इस रावणको मारना है। रावण तभी मरेगा, जब रामकी मर्यादाका पालन किया जाए। चाहे जिस संप्रदायमें विश्वास हो, किंतु जब तक रामचंद्रकी मर्यादाका पालन नहीं करोगे, तब तक आनंद नहीं मिलेगा।

आरंभमें रामचंद्रके चरित्रका वर्णन है। फिर दशम स्कंधकी कथा आएगी। भागवतकी कथाके वक्ता और श्रोताको रामकी मर्यादाका पालन करना चाहिए। मनुष्यको थोड़ी-सी संपत्ति या थोड़ा-सा अधिकार मिलते ही वह रामकी मर्यादा भूल जाता है। रामके आए बिना कृष्ण भी नहीं आते। रामचंद्रकी उत्तम सेवा यही है कि उनकी मर्यादाका पालन किया जाए। उनका-सा ही वर्तन रखो। रामजीका भजन करना अर्थात् उनकी मर्यादाका पालन करना। उनका वर्तन हमें अपने जीवनमें उतारना चाहिए।

यदि रामजीको मनमें बसाओगे, मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रका अनुकरण करोगे तो भगवान् मिलेंगे। उनकी लीलाका अनुकरण करो। उनका चरित्र सर्वथा अनुकरणीय है।

श्रीकृष्णको सभी लीलाओंका अनुकरण नहीं करना है, श्रवण करना है। उनका चरित्र चिंतनीय है। श्रीकृष्णकी लीला चिंतन करनेके लिए और चिंतन करके तन्मय होनेके लिए है।

रामचंद्रने जो किया था वह करना है किंतु श्रीकृष्णने जो कहा था, वह करना है। राम पूर्ण पुरुषोत्तम होने पर भी मनुष्यको आदर्श दिखाते हैं।

रामचंद्रका मातृप्रेम, पितृप्रेम, बंधुप्रेम, एक पत्नीव्रत आदि सब कुछ जीवनमें उतारने योग्य है। रामायणके सभी पात्र आदर्श हैं। दशरथजीका पुत्रप्रेम, सीताजीकी पतिभक्ति, लक्ष्मण और भरतका बंधुप्रेम आदि सब आदर्शमय है।

श्रीकृष्ण जो करते थे, वही सब कुछ करना हमारे लिए अशक्य है। उन्होंने तो कालिनागको वशमें करके उसके सिर पर नृत्य किया था। गोवर्धन पर्वतको भी ऊँगलीसे उठा लिया था। श्रीकृष्णके चरित्रका अनुकरण करना ही है तो पूतना-चरित्रसे प्रारंभ करना। पूतनाका सारा विष उन्होंने पी लिया था। विषका पाचन होनेके पश्चात् अन्य सभी लीलाका अनुकरण करना।

रामचंद्रने अपना ऐश्वर्य छिपाया था और मनुष्यके जीवनका नाटक किया।

साधकका वर्तन कैसा होना चाहिए वह रामचंद्रजीने बताया है। साधकका वर्तन रामचंद्र जैसा होना चाहिए सिद्ध पुरुषका वर्तन श्रीकृष्णका-सा हो सकता है।

रघुनाथका अवतार राक्षसोंकी हत्याके हेतु नहीं, मनुष्योंको मानवधर्म सिखानेके हेतु हुआ था। वे जीवमात्रको उपदेश देते हैं। उन्होंने किसी भी मर्यादाको भंग नहीं किया है।

रामचंद्रकी लीला सरल है। उनकी बाललीला भी सरल है। जब कि श्रीकृष्णकी सारी लीला गहन है।

रामचंद्रकी सरलता तो अंतिम कक्षाकी है। उन जैसा सरल आज तक कोई नहीं हुआ।

अग्निनारायणने सीताजीको निर्दोष घोषित किया। फिर भी उस मूर्ख धोबीके कटु वचन सुन कर रामचंद्रने सीताजीका त्याग किया। जगत्के समक्ष आदर्श रखनेके हेतु वे निष्ठुर हो गए। वे जगत्को यह बताना चाहते थे कि आदर्श राजाका वर्तन कैसा हो सकता है और कैसा होना चाहिए।

सीताने नारीधर्मका आदर्श प्रस्तुत किया। मेरे पति ही मेरे परमेश्वर हैं।

राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और श्रीकृष्ण पुष्टि-पुरुषोत्तम। कृष्ण माखन-चोर हैं अर्थात् मृदु मनके चोर हैं। वे सर्वस्व ही माँगते हैं।

राम-नाम जैसा सरल है वैसा ही उनका काम, उनकी लीला भी सरल है। रामके नाममें एक भी संयुक्त अक्षर नहीं है। कृष्णके नाममें एक भी अक्षर सरल नहीं है, सभी संयुक्ताक्षर ही हैं।

श्रीराम दिनको बारह बजे आए थे तो श्रीकृष्ण रात्रिको बारह बजे। एक मध्याह्नमें आए तो दूसरे मध्यरात्रिको। एक राजा दशरथके भव्य राजप्रासादमें अवतरित हुए तो दूसरे कंसके कारागृहमें। रामजीको पहचानना, समझना सरल है किंतु कृष्णको समझना बड़ा कठिन है किंतु रामजीकी मर्यादाको जीवनमें उतारनेका काम सबसे कठिन है।

सूक्ष्म वासनाके नाशके हेतु नवम स्कंधमें संतोंके चरित्र कहे गए हैं।

सूर्यवंशके प्रकरणमें रामजीका चरित्र आता है।

रामचंद्र मर्यादा हैं तो श्रीकृष्ण प्रेम। मर्यादा और प्रेमको जीवनमें उतारोगे तो सुखी होगे।

नरसिंह-अवतारकी कथामें क्रोधनाशकी, वामन-अवतारकी कथामें लोभके नाशकी और रामचंद्रजीके अवतारकी कथामें काम-नाशकी रीति बताई गई है। क्रोध, लोभ और कामका जब नाश होता है, तभी कृष्ण भगवान् प्रकट होते हैं।

वैसे तो भागवत्का लक्ष्य कृष्णलीलाका कथन ही है। तो फिर प्रथम स्कंधसे ही कृष्ण-लीलाका वर्णन क्यों नहीं है? इसका कारण यही है कि क्रोध, लोभ और काम आदिका नाश होने पर ही परमात्मा कृष्ण मिलते हैं।

अष्टम स्कंधके समाप्ति-अंशमें सत्यव्रत मनु महाराजकी और मत्स्यावतारकी कथा कही गई है।

राजा परीक्षितने कहा—मुझे इस सत्यव्रत मनुके वंशकी कथा सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—राजन्! इस कल्पमें राजर्षि सत्यव्रत वैवस्वत् मनु बने थे। विवस्वन्के घर वैवस्वत हुए थे। मनु वैवस्वत सूर्यवंशके आदि प्रवर्तक हैं। उनका विवाह श्रद्धा नामक स्त्रीके साथ हुआ था। उनके दश संतान हुई थीं। उनके नाम हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्टि, करुष, नरिष्यंत, पृषध्न, नभग और कवि।

दिष्टिके वंशमें मरुत्त नामक चक्रवर्ती राजा हुए थे। मरुत्तके गुरु थे बृहस्पति। वे इन्द्रके भी गुरु थे। मरुत्त राजाको यज्ञ करना था। बृहस्पतिने आनेसे इन्कार कर दिया। हरेक कार्यमें पहले कुलगुरुका पूजन तो किया ही जाना चाहिए। अब क्या किया जाए।

एक बार मरुत्तको मार्गमें नारदजी मिल गए तो उन्होंने नारदजीसे अपनी कठिनाई सुनाई। तो नारदजीने कहा कि बृहस्पतिके छोटे भाई संवर्त्तको हो बुला लीजिए। वे भी गुरु-समान ही हैं। यज्ञ तो करना ही चाहिए।

राजा—संवर्त्त तो योगी हैं और उनका कोई पता ही नहीं है।

नारदजी—उनका पता मैं बताऊँगा किंतु मेरा नाम मत लेना।

कई बार ज्ञानी पुरुष भी संसारसे डरते है। संसारके स्त्री-पुरुषोंका संग होनेसे ब्रह्माकारवृत्तिका भंग हो जाता है।

संवर्त्त योगीका नियम था कि चौबीस घंटोंमें एक बार वे काशी आते थे। महापुरुष भजनमें भी नियमका पालन करते हैं। संवर्त्त काशीविश्वनाथके दर्शन करनेके लिए आते थे किंतु मार्गमें यदि शवका दर्शन हो जाता तो उसे ही शिव रूप मान कर, वंदन करके वापस लौट जाते थे।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें विस्तारसे यह कथा कही गई है।

मरुत्त राजा शव लेकर रातको मार्गमें बैठ गए। एक पागल-सा व्यक्ति आया। उसने शवको देखा तो वंदन करके वापस लौटने लगा। मरुत्त राजाको विश्वास हो गया कि यह संवर्त्त योगी ही हैं। राजाने उनके चरण पकड़ लिए और प्रणाम किया। संवर्त्त कहने लगे—मैं अज्ञानी हूं, मुझे ज्ञान दीजिए।

मरुत्त—आप संवर्त्त हैं, मेरे गुरु हैं। आप तो गुरु बृहस्पतिके लघुबंधु हैं। बृहस्पति देवोंके गुरु बन गए हैं और उन्होंने मेरे घर आना बंद कर दिया है। मैं यज्ञ करना चाहता हूं। कोई मुझसे यज्ञ ही नहीं करवाता है।

संवर्त्त—मैं यज्ञ तो कराऊँ किंतु तेरा ऐश्वर्य देखकर बृहस्पति तुम्हें कहेंगे कि वे तुम्हारा यज्ञ करनेको तैयार हैं और तुम्हारे गुरु बनना चाहते हैं। यदि वैसा समय आया और तुमने मेरा त्याग किया तो मैं तुम्हें भस्मीभूत कर दूंगा।

राजाने संवर्त्तकी शर्तको स्वीकार किया। संवर्त्तने राजाको मंत्र-दीक्षा दी। यज्ञका आरंभ होने चला। यज्ञके सभी पात्र सुवर्णके थे। राजाके वैभव और यज्ञकी भव्य तैयारी देख कर बृहस्पति लालायित हुए। उन्होंने राजाको संदेश भेजा—तुम्हारा मैं ही आचार्य हूँ। मैं यज्ञ करानेको तैयार हूँ। बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा और इन्द्रने अग्निके द्वारा संदेश भेजा कि बृहस्पतिको ही गुरु बनाया जाए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो इन्द्र यज्ञमें बाधा उपस्थित करेंगे। अग्निने संवर्त्तसे कहा—मेरी आज्ञाका उल्लंघन करोगे तो मैं तुम्हें भस्मीभूत कर दूंगा।

जिस देवको संवर्त्त योगी आज्ञा करते हैं, वह वहाँ उपस्थित होता है और वह देव प्रत्यक्ष हविर्भाग ग्रहण करता है। जैसा यज्ञ मरुत्तका हुआ था, वैसा न तो कभी किसीका हुआ और न कभी होगा। मरुत्तके इस यज्ञका वर्णन ऋग्वेदमें भी है। भागवतमें तो यह संक्षिप्तमें ही वर्णित है!

मनुपुत्र नभगके घर नाभाग हुए और भगवान् शंकरकी कृपासे नाभागके घर भक्त अंबरीषका जन्म हुआ। अंबरीष मर्यादा-भक्तिके आचार्य हैं। कांकरोलीमें बिराजमान द्वारिकानाथ राजा अंबरीषके सेव्य ठाकुरजी हैं। ये ठाकुरजी रोज बावन मन भोग आरोगते थे। कितनी सामग्री इकट्ठी की जाती होगी!

अंबरीष शब्दका अर्थ भी तो देखिए। अंबर अर्थात् आकाश और ईश अर्थात् ईश्वर। आकाश अंदर भी है और बाहर भी। जिसके अंदर और बाहर सभी स्थान पर ईश्वर हैं, वही अंबरीष है। चारों ओर जिसे परमात्मा दिखाई दे, वही अंबरीष है।

ज्ञानमार्गमें इन्द्रियरूपी द्वार बंद रखने पड़ते हैं। भक्तिमार्गमें सभी इन्द्रियाँ भगवानके मार्गमें लगानी पड़ती हैं। भगवानके चरणोंमें भक्त अपनी इन्द्रियाँ अर्पित कर देता है। भक्त अपनी सारी इन्द्रियोंका भगवान्से विवाह कर देता है। भगवान् हृषीकेश हैं, इन्द्रियोंके स्वामी हैं।

राजा अंबरीष महान् भक्त थे। उनका मन भगवान्के चरणकमलोंमें, वाणी भगवद्गुण-वर्णनमें, हाथ हरि-मंदिरकी सफाईमें, पाँव प्रभुके क्षेत्रादिकी पदयात्रामें, कान भगवान्की उत्तम कथाओंके श्रवणमें, तथा दोनों नेत्र मुकुंद भगवान्की मूर्तियोंके दर्शनमें व्यस्त रहते थे। मस्तकसे वे भगवान् श्रीकृष्णको वंदन करते रहते थे।

भगवान्की सेवामें जो व्यक्ति अपना सारा शरीर लगा देता है, उसका देहाभिमान कम होता जाता है।

भक्ति-मार्गमें धन या तन नहीं, मन ही प्रधान है। जबसे भक्तमें धनका प्राधान्य हुआ है तबसे भक्ति छिन्न-भिन्न होती जा रही है।

राजा अंबरीष तभी सर्वप्रथम कहते हैं—मेरा मन सदा कृष्णके चरणकमलोंमें ही रहे—

तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष परमेश्वर ।

सेवामें धन नहीं, मन ही मुख्य है। सेवाका अर्थ है सेव्य—श्रीकृष्णमें मनको पिरोए रखना। सेवाका सम्बन्ध मनसे है। शरीरसे जो क्रिया की जाये, उसमें यदि मनका सहकार नहीं होगा तो व्यर्थ ही हो जायेगी।

सेवाका क्रम अम्बरीषने बताया है। सेवाका आरम्भ मनसे होता है। मन सूक्ष्म होता है। वह जगत् और ईश्वरके साथ, एक साथ सम्बन्ध नहीं रख सकता। मनको मनाओगे तो वह मानेगा, किसीके उपदेशसे नहीं। तुम स्वयं अपने मनको समझाओगे तो असर होगा। अपने मनको और कोई क्या और कैसे समझा सकता है?

राजा अम्बरीषके इष्टदेव द्वारिकानाथ हैं। राजा होने पर भी वे स्वयं सेवा-पूजा करते हैं। घरमें कई सेवक होने पर भी वे कहते हैं—मैं तो ठाकुरजीका दास हूँ। उनकी सेवा स्वयं मुझे ही करनी चाहिये।

दास्य भावमें सेवा ही मुख्य है।

उसीका पेट भरता है जो स्वयं भोजन करे। जो भजन और सेवा स्वयं करे, उसे फल मिलता है। चार काम स्वयं करने पड़ते हैं—भोजन, विवाह, ठाकुरजीकी सेवा और मृत्यु।

अम्बरीष तो चक्रवर्ती राजा था फिर भी वह प्रभुसेवा तो स्वयं ही करता था। ठाकुरजीके मन्दिरकी सफाई भी करता था। वैसा करनेसे वैष्णवोंकी चरणरजका लाभ मिलता है। भागवतमें स्पष्ट लिखा है कि अम्बरीष भगवान्‌के दर्शनके लिए खुले पाँव पैदल ही जाता था। माना कि हम अम्बरीषका पूरा-पूरा अनुकरण नहीं कर सकते किंतु उनका कुछ-न-कुछ तो अनुकरण करना ही चाहिये।

एक बार तो अम्बरीषने भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनाके हेतु एक वर्ष तक एकादशी करनेका व्रत लिया था।

एकादशी व्रत सभी व्रतोंसे श्रेष्ठ है। इसके दो प्रकार हैं—निषेध-व्रत और परिपालन-व्रत। अन्नाहारसे दोष न हो इसके लिये निषेध-व्रत किया जाता है। भगवान्‌की आराधनाके हेतु किया गया भागवतव्रत सुखदायी है। एकादशीका व्रत त्रिदिवसीय है। दशमीके दिन एक बार भोजन करें। हो सके तो हविष्यान्नका भोजन करें, दूध और चावल-सा सात्त्विक आहार करें। इस दिन अजीर्ण हो जाय, उतना भोजन न करें। एकादशी तो यदि शक्य है तो निर्जला ही की जाये। ऐसा न हो सके तो दूध या ऋतुफलका संयमपूर्वक आहार करें। ऐसा करने पर ही इस व्रतका फल मिलेगा, अन्यथा नहीं।

व्रत करनेका विचार दृढ़ होगा तो भगवान् शक्ति देंगे। एकादशी करनेका सङ्कल्प करोगे तो प्रभु सहायता करेंगे। सत्यनारायणकी कथामें उस लकड़हारे (लकड़ी काटकर बेचने-वाला) की बात आती है जिसने अपने पास पैसे न होते हुए भी सत्यनारायणकी पूजाका व्रत लिया और परमात्माने उसका सङ्कल्प परिपूर्ण किया।

परमात्मा सत्कर्ममें हमेशा सहायक होते हैं। लोग मानते हैं कि एकादशी क्या आयी, दिवालीके आगमनका सन्देश आ गया। ऐसा कभी न सोचा जाय। एकादशीके दिन घरमें अन्न पकाया तो क्या, उसका दर्शन तक न किया जाय। इस दिन अन्नमें सभी पापोंका वास होता है। वे सब उस अन्न खानेवालेके शिर पर जा पहुँचते हैं। एकादशीके दिन पान-सुपारी भी न खायी जाए। दिनको सोया भी न जाए। रातको एक-दो घण्टा भजन अधिक करें। इस दिन पंढरपुरमें विट्ठलनाथजी भी नहीं सोते।

पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और एक मन—इन सभीको प्रभुमें लगाये रखना ही एकादशी है। यद्यपि आज तो लोग एकादशीमें ग्यारह रसोंको भोगते हैं और उसे बिवालोका लघु रूप ही बना लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। ऐसी एकादशीसे कोई फल नहीं मिल पाता।

उप—समीप और वास—रहना। उपवासका अर्थ है प्रभुके समीप रहना। और वही है सच्ची एकादशी।

द्वादशीके दिन एक ही बार भोजन करो। सुपात्र ब्राह्मणकी सेवाके बाद प्रसाद ग्रहण करो। द्वादशीके दिन दो बार भोजन करनेसे एकादशीव्रतका भङ्ग हो जाता है।

एकादशीव्रत विधिपूर्वक करो। यदि विधिपूर्वक न किया जा सके तो मर्यादानुसार अन्नाहारका त्याग करके फलाहार करो। यह व्रत आरोग्यकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। लोग आजकलके डॉक्टरोंका विश्वास करते हैं, किंतु व्यास जैसे महान् ऋषि-मुनियोंके शब्दोंका नहीं। डॉक्टर टाइफॉइड कह कर इक्कीस दिन अनशन कराये तो लोग कर लेते हैं, किंतु एकादशीको मात्र एक दिन अनशन नहीं करते हैं। एकादशी न करनेवालेको, ऐसी एक साथ कई एकादशियाँ अनिवार्यतः करनी पड़ती हैं।

राजा अम्बरीषने विधिपूर्वक एकादशीका व्रत किया और व्रतकी पूर्णाहुतिके समय यमुना-किनारे आये। वहाँ उन्होंने स्नान किया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके व्रतकी पूर्णाहुति करनेकी तैयारी करने लगे। इतनेमें वहाँ मुनि दुर्वासा अतिथि बनकर आये। भगवान्को भोग लगा दिया था। राजाने मुनिका स्वागत करते हुए कहा, पधारिये महाराज। मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण कीजिए। दुर्वासाने कहा, मैं मध्याह्न कर्म आदिसे निवृत्त होकर आता हूँ।

ईश्वरकी धर्ममर्यादा तोड़ने जैसा कोई और पाप नहीं है। ईश्वरकी धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करोगे तो भक्ति असफल रहेगी। ईश्वरके साथ तन्मयता होनेके बाद देहभान विस्मृत होने पर यदि धर्ममर्यादा छूट जाए तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु जान-बूझकर कभी धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन होना नहीं चाहिए।

इधर राजाको त्रयोदशीके पहले व्रत छोड़कर प्रसाद लेना है, और उधर दुर्वासा सन्ध्या-पूजामें ऐसे लीन हो गये हैं कि उन्हें समयका भान ही नहीं रहा है।

राजाको चिंता हो रही है। ब्राह्मणोंको भोजनके लिए आमन्त्रण दिया गया है। उन्हें भोजन करानेके पहले तो भोजन किया नहीं जा सकता। यदि मैं प्रसाद ग्रहण कर लूं तो ब्राह्मणकी मर्यादा भङ्ग होती है और ग्रहण न करूं तो त्रयोदशीका आरम्भ हो जाने पर व्रत भङ्ग होने जा रहा है। द्वादशीकी समाप्तिमें कुछ ही पल शेष हैं। ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर राजाने प्रसाद ले लिया।

राजाने दुर्वासाका स्वागत किया। दुर्वासाने अनुमान करके मान लिया कि राजाने प्रसाद ले लिया है। उन्होंने राजासे कहा— राजन्. तूने मुझे आमंत्रण तो दिया. किंतु भोजन करके अच्छा नहीं किया। मैं अतिथि और मुझे ही भूखा रखकर तूने भोजन कर लिया? यह कैसी है तेरी विष्णु-भक्ति ?

राजा— मैंने तो मात्र जलपान ही किया है, महाराज।

किंतु दुर्वासा कब सुननेवाले थे? उन्होंने क्रोधवश राजाकी एक भी न सुनी।

जब तक दुर्वासना है, तब तक क्रोध भी शेष ही है।

दुर्वासाने अपने शिरकेशमेंसे कृत्या उत्पन्न की और उसे राजाको मारनेकी आज्ञा दी।

कृत्या अंबरीषको मारने चली तो अंबरीषकी प्रार्थनासे भगवान्ने सुदर्शन चक्र छोड़ा और कृत्याकी हत्या की। अब वह सुदर्शन चक्र दुर्वासाके पीछे दौड़ चला। मुनि एक लोकसे दूसरे लोक भागने लगे किंतु चक्रने पीछा न छोड़ा। दुर्वासाकी रक्षा कोई न कर सका। अंतमें वे वैकुंठमें आकर नारायणसे प्रार्थना करने लगे—भगवान्, मेरी रक्षा कीजिए। नारायणने स्वागत किया तो मुनिने कहा—मेरे पीछे आपका चक्र दौड़ रहा है, मेरी रक्षा करें।

भगवान् मुनिसे कहने लगे—जो वैष्णव अनन्य भावसे मेरी सेवा करके मुझे उसका सर्वस्व अर्पण करता है उसे मैं भी अपने सर्वस्वका दान करता हूँ। मैं भक्ताधीन हूँ। मेरा चक्र इस समय राजा अंबरीषकी आज्ञाके आधीन है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

दुर्वासाजी, मैं तो पूर्णतः भक्ताधीन हूँ। मैं लेश मात्र भी स्वतंत्र नहीं हूँ। मेरे भोले-भाले सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने बसमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्रेम करते हैं, मैं भक्तजनसे।

भक्तके आगे न तो मैं अपनी परवाह करता हूँ और न तो लक्ष्मीकी। भक्त मेरे लिए सब कुछ छोड़ कर मेरी शरणमें आते हैं। मेरे लिए वे अपने सर्वस्वका त्याग करते हैं। मुझे छोड़ कर उनको अन्य कोई आश्रय नहीं है। ऐसे भक्तोंको त्यागनेका विचार मात्र भी मैं कैसे करूँ?

भक्तोंने मेरे हृदयको वशमें कर लिया है। वे मुझे अत्यंत प्रिय हैं। मेरे सिवाय अन्य किसी भी प्रकारकी मुक्तिकी वे कभी इच्छा तक नहीं करते हैं। मैं भक्तोंका हृदय हूँ और भक्तजन मेरा हृदय हैं।

भगवान् कहते हैं—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥
भा ९-४-६५

अपनी पत्नी, पुत्र, घर, स्वजन, धन, इहलोक, परलोक, प्राण आदि सब कुछका त्याग करके जो मेरी शरणमें आए हैं, उनका त्याग मैं कैसे करूँ?

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिः यथा ॥

भक्त मुझे भक्तिसे वशमें कर लेते हैं।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।

मेरे भक्तजन मरा हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ।

भगवान् कहते हैं--तप और विद्या अति उत्तम हैं। फिर भी उसे यदि विनय-विवेकका सहारा न हो तो व्यर्थ ही है। आप तपस्वी हैं और आपके पास प्रबल शक्ति भी है किंतु आपने उसका दुरुपयोग किया। आप ही तो जरा सोचें। क्या अंबरीषने कोई अपराध किया था ? उसकी कोई भूल थी ? उसने व्रतके पालनके हेतुसे ही मात्र जलपान ही किया था। फिर भी आप क्रोधित हो गए। आप उसीके पास जाइए और उससे प्रार्थना करके क्षमा माँगिए। यदि भक्तराज अंबरीष क्षमा करेंगे, तभी इस सुदर्शन चक्रकी गति रुकेगी।

दुर्वासा अंबरीषके पास आए और क्षमायाचनाके लिए उन्हें प्रणाम करने जा रहे थे कि राजाने कहा—नहीं, नहीं, महाराज। आप वंदन करें यह शोभास्पद नहीं है। प्रणाम तो मुझे ही आपको करना चाहिए।

राजाने सुदर्शन चक्रसे प्रार्थना की—शांत हो जाओ। यदि आज दिन तक मैंने कभी कोई दान, पुण्य, यज्ञ, सेवा की है तो उन सबके पुण्यसे तुम्हारा वेग शांत हो जाए और सुदर्शन चक्र शांत हो कर वापस लौट गया।

अंबरीषकी कथामें भी एक रहस्य है। अंबरीष शुद्ध भक्तिका स्वरूप है। अतः चरित्रके आरंभमें सभी इन्द्रियोंकी भक्ति बताई गई है। अंबरीषका चरित्र भक्तिका चरित्र है।

भक्तिमार्गमें दुर्वासा अर्थात् दुर्वासना बाधा उपस्थित करती है। मैं ही बड़ा हूँ और बाकी सब छोटे हैं, ओछे हैं ऐसी दुर्भावना, दुर्वासना है। सुखको मैं ही भोगूं, ऐसी भावना भी दुर्वासना ही है। दूसरोंको दुःखी करनेकी दुर्वासना भक्तिमें बाधारूप है।

भक्ति करते हुए यदि अहंकार हुआ तो मान लो कि दुर्वासना आ गई। दुर्वासनामेंसे अभिमान जागता है और अभिमानसे क्रोध। क्रोध कृत्या—कर्कशा वाणीको उत्पन्न करता है। कृत्या—कर्कशा वाणी भक्तिको मारनेकी तैयारी करती है तो ज्ञानरूपी सुदर्शन चक्र भक्तिको बचाने आ जाता है। ज्ञान कृत्याको विनष्ट करता है। यदि भक्ति शुद्ध है तो कर्कशा वाणी उसका कुछ भी नहीं कर सकती है। भक्तिकी रक्षा सुदर्शन चक्र अर्थात् ज्ञान करता है।

सभीमें श्रीकृष्णका दर्शन ही सुदर्शन है। भक्तिके निकट जब कृत्या—कर्कशा वाणी आती है तो वैष्णव उसका ज्ञान-सुदर्शन-चक्रसे नाश करते हैं। यदि मन निंदासे प्रभावित हुआ तो वह सच्चा वैष्णव नहीं है। कर्कशा वाणीको सहन कर लोगे तो सुखी होगे। कर्कशा वाणी बोलनेवाला ही अधिक दुःखी होता है।

यदि भक्ति शुद्ध है तो ज्ञान और वैराग्य दौड़ते हुए आएँगे। जैसे कि सुदर्शन चक्र आया था और ज्ञान-वैराग्य कृत्या-कर्कशावाणी, निन्दाका नाश करेंगे।

दुर्वासाने राजा अंबरीषको कटु वचन सुनाए फिर भी वे क्रोधित नहीं हुए थे। जिसके मस्तक पर ठाकुरजी विराजते हैं, वही अंबरीष है। जब दुर्वासाने प्रशंसा की तब भी राजाको वैसी कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी अर्थात् वे दोनों स्थितिमें एक-से ही रहते थे :

सच्चा भक्त निंदा और स्तुतिको एक समान मानता है। 'तुल्यनिंदास्तुतिः।' यदि भक्तको कोई कुछ कर्कश बात कह दे, उसकी निंदा करे फिर भी उसपर अंबरीषकी भाँति कोई असर नहीं होता।

भक्ति करो तो अंबरीषकी भाँति करो। अंबरीषकी भक्ति ऐसी सच्ची और बलशाली थी कि भगवान्‌को भी कहना पड़ा था ' अहं भक्तपराधीनः। '

सभीके प्रति समभाव, समता रखे वही ज्ञानी है। सभीमें ईश्वर है, ऐसा ज्ञान होना ही सच्चा ज्ञान है।

ईश्वरस्वरूपके ज्ञानके बिना न तो भक्ति होती है और न भक्ति दृढ़ होती है। अतः भक्तिमें ज्ञान भी आवश्यक है।

विषयके प्रति जब तक वैराग्य नहीं उत्पन्न होता तब तक भक्ति हो नहीं सकती। भक्तिके पहले ज्ञान और वैराग्य आते हैं। जहाँ भक्ति है, वहाँ ज्ञानरूपी सुदर्शन चक्र रक्षा करता है।

भक्ति सिद्ध हुई नहीं कि सभी शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हो गया।

नामकी महिमा भी बहुत बड़ी है—

नाम लिया उन्होंने जान लिया सकल शास्त्रका भेद।
बिना नाम नरकमें गया पढ़ - पढ़ चारों वेद॥

अंबरीषने दुर्वासाको प्रेमसे भोजन कराया और क्षमा माँगी। सच्चे वैष्णव थे अंबरीष तो। न तो वे दुर्वासाके क्रोधसे व्यथित हुए और न उनकी प्रशंसासे सुखी।

सच्चे वैष्णव कभी दूसरेका दोष नहीं देखते है बल्कि अपना ही दोष बार-बार देखते हैं।

अंबरीषने माना कि जीत उसकी नहीं ईश्वरकी हुई है। जो मानता है कि जीत अपनी हुई है, उसकी हार अवश्य होती है।

जरा सोचो तो। इन राजाओंका इतिहास कहनेकी शुकदेवजीको आवश्यकता ही क्या थी ? किंतु अंबरीष जैसे राजा शुकदेवजीको बहुत प्रिय हैं। धन्य है राजा अंबरीषको। वे घरमें भी संन्यासी-सा जीवन जीते हैं, जब कि मैं (शुकदेवजी) वनवासी होनेके बाद संन्यासी-सा जीवन जी रहा हूं।

शुकदेवजी सोचते थे कि सभी कुछ त्याग कर, वनवासी बन कर संन्यासी हुआ। जब कि यह अंबरीष तो राजप्रासादमें, वैभवयुक्त वातावरणमें रानियोंके साथ रह कर भी संन्यासी-सा जीवन जी रहा है। मैं सभी कुछ छोड़ कर प्रभुके पीछे दौड़ रहा हूँ, जब कि इधर अंबरीष घरमें बस कर भी द्वारिकाधीशके साथ है। निःसंदेह वह मुझसे श्रेष्ठ है। यही कारण है कि मैंने इसकी कथा सुनाई।

ज्ञान प्रभुको परतत्र नहीं कर सकता, बाँध नहीं सकता। भक्ति ही भगवानको बाँधती है, परतंत्र करती है। ज्ञानी महात्मा ब्रह्मानुभव तो कर सकते हैं किंतु भगवानको स्वाधीन नहीं कर सकते, पराश्रयी नहीं कर सकते हैं, बाँध नहीं सकते हैं।

भक्ति माता है और ज्ञान-वैराग्य संतान। जहाँ शुद्ध भक्ति है, वहाँ ज्ञान-वैराग्य दौड़ते हुए आ जाते हैं।

मनु महाराजको पुत्र हुआ—इक्ष्वाकु। वह वंशमें मांधाता हुआ। इस राजा मांधाताकी पचास कन्याओंका विवाह सौभरी ऋषिके साथ हुआ।

सौभरी तपश्चर्या करके सिद्ध बने। सो वहाँ दर्शनार्थी जनताकी बड़ी भीड़ जमती रहती थी। भीड़ जमा होनेसे भजनमें भंग होना स्वाभाविक है। तो सौभरीने सोच-विचार कर यमुनाजीमें प्रवेश किया और वहाँ जलमें तप करने लगे।

सौभरीके मनमें एक बार विचार आया—परमात्माकी माया मुझे बिलकुल प्रभावित कर नहीं सकती। तो भगवान्‌ने मायाकी रचना की। ऋषिने बार-बार एक मत्स्ययुगलकी प्रेम-केलि देखी तो उनके मनमें भी काम जागा और वैसा ही सुख भोगनेकी इच्छा करने लगे। तो पचासी वर्षकी वृद्धावस्थामें भी विवाह करनेकी उन्होंने सोची ओर राजा मांधाताके पास आए।

राजाने सोचा कि यदि इस वृद्ध मुनिसे किसी कन्याने विवाह किया तो वह जीवन-भर दुःखी होगी और विवाह न होगा तो वे मुझे ही शाप देंगे। फिर मुनिसे उन्होंने कहा—आप राजमहलमें पधारें। जो भी कन्या आपको पसंद आएगी, उसीसे आपका विवाह होगा। भगवान् शंकराचार्यने कहा है—

अंगं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं जातं तुंडम् ।
वृद्धो याति गृहित्वा दंडं तदपि न मुंचति आशा पिंडम् ।
भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढमते ॥

ऋषि सौभरीके मनमें विवाहभावना जागी तो वे स्वरूप बदल कर गए। वे सिद्ध थे सो सुंदर स्वरूप धारण करके राजमहलमें पहुँचे। उनका स्वरूप देखकर उनसे विवाह करनेके लिए पचासों राजकन्याएं आपसमें झगड़ने लगीं। ऐसा हाल देख कर राजाने सभी कन्याओंका विवाह इस ऋषिसे ही कर दिया। सौभरी सुखोपभोग करने लगे।

किंतु आगे चल कर ऋषिकी विवेक-बुद्धि जाग्रत हुई। वे पछताने लगे। अरे, मैं यह कैसा अनर्थ कर बैठा? मैं था तो तपस्वी किंतु मत्स्यदंपतीकी प्रेमकेलि देख कर मतिभ्रष्ट हुआ और विलासी बन गया।

जो साधना करना चाहता है, जो इसी जन्ममें साध्यकी प्राप्ति करना चाहता है, उसे काम-सुखके भोगीका संग करना नहीं चाहिए। कामसुखके भोक्ताका संग भी कुसंग ही है। स्त्रीसंगीका संग भी कुसंग है। यह स्त्री-पुरुष संबंधकी नहीं, कामकी निंदा है।

संगके रंगकी यह घटना है। सो मोक्षकी इच्छा करनेवालेको चाहिए कि मैथुनधर्मी स्त्री-पुरुषोंका और उनके संगीका भी संग न करे—

मुमुक्षुः मिथुनव्रतिनां संगं त्यजेत् ।

नारी और नारीके संगीका संग भी साधकको नहीं करना चाहिए—

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यजेत् ।

सौभरी ऋषिने जगत्‌को उपदेश दिया है कि कामी और विलासी लोगोंके बीच रह कर ब्रह्मज्ञानी बन पाना बड़ा कठिन है। मानवके साथ रह कर मानव बनना सरल है। सत्संग न किया जा सके तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु कामीका संग तो कभी न करना।

इसके बाद सगर नामक चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसके यज्ञका घोड़ा इन्द्रने छिपा लिया तो उसके पुत्र घोड़ेकी खोजमें निकल पड़े। उन्होंने अपने घोड़ेको कपिल मुनिके आश्रममें देखा तो मान लिया कि इस ऋषिने ही घोड़ा चुराया है। मारो उसे, यही चोर है ऐसा कहते हुए वे ऋषिकी ओर बढ़ ही रहे थे कि सबके सब कपिलकी तेजोग्निमें जलकर भस्मीभूत हो गये।

अब इनको ढूंढ़नेके लिए सगरका पौत्र अंशुमान निकला। उसने कपिल भगवान्की स्तुति की तो मुनिने उससे कहा—यह घोड़ा तेरे पितामहके यज्ञका है। ले जा इसे।

अंशुमानने ऋषिसे अपने चाचाओंके उद्धारका उपाय पूछा। तो ऋषिने कहा—इनका उद्धार गङ्गाजलसे ही हो सकता है। यदि गङ्गाजी यहाँ पधारें, तभी शक्य हो सकता है, और तो कोई उपाय है ही नहीं।

गङ्गाको प्रसन्न करनेके लिए अंशुमानने, उसके पुत्र दिलीपने और दिलीपके पुत्र भगीरथने भी तप किया। तीन पुरुषोंका पुण्य एकत्र हुआ, तभी गङ्गावतरण हुआ।

तीन-चार जन्मका तप, पुण्य एकत्र होने पर ही ज्ञानगङ्गाका अवतरण होता है।

भगीरथ राजाने भगवान् शङ्करकी प्रार्थना की तो गङ्गाकी धाराको शिर पर झेलनेके लिए वे तैयार हुए। शिवजीने अपनी जटामें गङ्गाजीको उतारा, और वहाँसे वे धरती पर प्रवाहित हुईं। गङ्गाजी अनेक स्थानोंको पवित्र करती हुईं पातालमें गयीं। गङ्गाजीका स्पर्श होने पर उस भस्ममें-से दिव्य पुरुष उत्पन्न हुए। इस प्रकार सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई।

राजन्! गङ्गाजलका स्पर्श यदि मृत्युके पश्चात् भी मुक्ति देता है तो जीते-जी उसका पान करनेसे सद्गति मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

जीवको शिव होना है। यदि ज्ञानगङ्गाको वह अपने शिर पर धारण करे तो शिव बना जा सकता है। गङ्गा ज्ञानका स्वरूप है।

गङ्गाजीको भगीरथ राजाने अवतरित किया, अतः उनका एक नाम भागीरथी भी हुआ। गङ्गाजी नारायणके चरणोंमें-से प्रगट हुई हैं। गङ्गाजी नारायणके चरणोंमें हैं तो शिवजीके शिर पर।

आगे चलकर इस वंशमें एक खट्वांग नामक राजा हुआ। उसने देवोंकी ओरसे जाना कि दो घटिकाके बाद उसकी मृत्यु होगी तो उसने सब कुछ छोड़कर भगवान्से मन जोड़ लिया। परमात्माका ध्यान करते हुए उसने देह-त्याग किया। उसे सद्गति मिली। इस प्रकार मात्र दो घटिका (उनतालीस मिनट) में खट्वांगने आत्म-कल्याण कर लिया।

खट्वांगके बाद दीर्घबाहु राजा हुआ और उसके बाद हुआ रघु। रघु महाज्ञानी और उदार था। अन्तमें तो उसने सर्वस्वका, धोती तकका त्याग कर दिया था। उनकी बड़ी कीर्त्ति फैली। इसी कारणसे सूर्यवंशका नाम हुआ रघुवंश। रघु राजाने कई यज्ञ-याग भी किये थे।

जो भगवान्के वंशको (सम्बन्धको) सँभालता है, उसके अपने वंशका कभी नाश नहीं होता।

राजा रघुके घर अज नामक राजा हुआ और अजके बाद दशरथ। दशरथ अयोध्यामें राज्य करते थे। वे पूर्वजन्ममें ब्राह्मण थे।

इस पूर्वजन्मके ब्राह्मणका नियम था, गाँवके बाहर आये हुए मन्दिरमें रणछोड़रायजीको प्रतिदिन एक हजार तुलसीदल चढ़ाना। वृद्ध हो चले, पचासी वर्षके हो गये। एक बार ज्वर आया तो उन्होंने ज्वरसे कहा, तू आये इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किंतु मेरे ठाकुर-पूजाके बाद आना। मेरी सेवाका क्रम अटूट रहना चाहिए। ऐसा सङ्कल्प सुनते ही ज्वर भाग गया।

वे मन्दिरमें सेवा-पूजाके लिए आये तो वहाँ किसीके रोनेकी आवाज सुनायी दी। देखा तो एक पिशाचिनी रो रही थी। वह कहने लगी—पूर्व जन्ममें मैंने दुराचार किया था। अपने पतिको मैंने बहुत दुःख दिया था सो मुझे इस जन्ममें पिशाचिनी होना पड़ा। आप कृपया मेरा उद्धार करें।

ब्राह्मण दयालु था। उसने प्रतिदिनके नियमानुसार विष्णु सहस्रपाठके साथ तुलसीदल अर्पण करते हुए भगवान्से प्रार्थना की—हे प्रभु! यह पापी जीव व्यथित हो रहा है। मैं अपना सारा पुण्य अर्पण करता हूँ। आप इसका उद्धार करें। प्रभु प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—अगले जन्ममें तुम दशरथ होंगे और यह पिशाचिनी कौशल्या। मैं पुत्र-रूपसे तुम्हारे घरमें आऊँगा। अपना सारा पुण्य तुमने एक जीवके उद्धारमें लगा दिया है, अतः वह अनन्त, अमाप हो गया है। ब्राह्मणने वहीं शरीर त्याग दिया।

वही ब्राह्मण अब इस जन्ममें दशरथ हुए। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। कौशल्या धर्मपत्नी थी और सुमित्रा-कैकेयी भोगपत्नी। तीन पत्नियाँ होने पर भी दशरथ निःसन्तान थे सो वे वसिष्ठके पास गये। वसिष्ठने कहा—पुत्रकामेष्टि यज्ञ करो। इस यज्ञमें तुम्हारे चार पुत्र होंगे।

पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया गया तो यज्ञकुण्डमें-से क्षीर लेकर स्वयं अग्निदेव प्रगट हुए। उन्होंने राजासे कहा—इस प्रसादको अपनी रानियोंको खिला देना। आपके यहाँ दिव्य सन्तानें होंगी।

वसिष्ठ मुनिने राजाको आज्ञा दी—धर्मपत्नी कौशल्याको इस प्रसादका अर्धभाग देना, और बाकी रहे प्रसादको कैकेयी-सुमित्राको बाँट कर देना। दशरथ राजाने वैसा ही किया।

तुलसीदासने रामचरितमानसमें कैकेयीको ओरसे बड़ी सफाई दी है, किंतु एकनाथ महाराजने उसे कर्कशा ही बताया है।

कर्कश वाणीसे पतिका अपमान करनेवाली स्त्री ही कैकेयी है।

कैकेयीने दशरथका अपमान किया, झगड़ा किया कि उसे प्रसाद क्यों अन्तमें दिया गया। उसने प्रसाद उठाकर बाहर फेंक दिया। उस प्रसादको समड़ी (गिद्ध जैसा एक पक्षी) उठा ले गयी और एक पर्वत पर आयी। वहाँ अञ्जनीदेवी तपश्चर्या कर रही थीं। उस समड़ीने अञ्जनीदेवीके शिर पर छाया को और प्रसाद भी दे दिया।

अञ्जनीदेवीने प्रसाद खा लिया तो उनको हनुमानजी प्राप्त हुए।

अब कैकेयीको प्रसाद गँवानेका दुःख और पश्चात्ताप होने लगा। कौशल्या बड़ी उदार थीं। उन्होंने अपने भागके प्रसादसे कुछ अंश कैकेयीको दिया। सुमित्राने भी कैकेयीको थोड़ा-सा प्रसाद दिया। इस प्रकार तीनों रानियोंने प्रसाद खाया।

अपने घरको अयोध्या-सा बनाओ। जहाँ युद्ध, क्लेश नहीं है वहीं अयोध्या है। सरयू नदी अर्थात् भक्ति-प्रवाहके किनारेपर रहने पर शरीर भी अयोध्या बनेगा और ऐसी नगरीमें बसा हुआ जीवात्मा दशरथ—जितेन्द्रिय बनेगा।

मानव-जीवन क्षणभंगुर है, ऐसा मानकर मनुष्यको निरपेक्षता और नम्रता धारण करनी चाहिये।

अपने इन्द्रियरूपी अश्वोंको नियन्त्रित करके शरीररथको योग्य मार्ग पर चलाओगे तो रामचन्द्रजी पधारेंगे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखो, जितेन्द्रिय बनो।

ईश्वरकी सलाह लेना, मनकी नहीं। मन विश्वासघाती है।

दस इन्द्रियोंरूपी अश्वोंको नियन्त्रित करके शरीररथको लेकर जो रामचन्द्रकी ओर जाता है, वही दशरथ है। ऐसे दशरथके घर भगवान् पुत्ररूपसे आते हैं।

दशानन रावण—विषयोंके अमर्याद भोक्ता—के घर भगवान् कालरूपसे आते हैं।

दशरथ जीवात्मा है। इन दस इन्द्रियोंको वशमें करके जो जितेन्द्रिय बन सकता है, वही दशरथ है।

जो सभीको प्रसन्न करता है, उसके यहाँ सर्वेश्वर आते हैं। दशरथ सभी रानियोंकी इच्छा जान लेते थे। सुमित्रा कहती है कि वह तो कौशल्याकी सेवामें ही रहना चाहती है। दशरथने सोचा कि इसका पुत्र महाज्ञानी होगा।

रामके गर्भजन्मके समयसे ही कौशल्या तो ईश्वरके ध्यानमें लग गयीं। उनका सहज सुमिरन चल रहा था। कौशल्याके तो रोम-रोमसे परमात्माके मङ्गलमय नामका जप हो रहा था।

दशरथने कौशल्यासे पूछा—महारानी, आपकी क्या इच्छा है?

कौशल्या—इच्छा ही तो दुःखका कारण है। मुझे सुखकी इच्छा नहीं है। मैं तो आनन्दरूप हूँ। मुझे अकेले ही ध्यान करने दें।

दशरथने वशिष्ठसे कहा—गुरुजी, कौशल्या तो ऐसी बातें कर रही हैं।

वशिष्ठ—यह तो शुभ चिह्न है।

नव मास परिपूर्ण होने आये थे। एक रात्रिको दशरथने स्वप्नमें देखा कि उनके आँगनमें कुछ ऋषि-महात्मा आये हैं और जगा रहे हैं। राजाने स्वप्नमें ही सरयू-स्नान किया। श्रीनारायणका पञ्चामृतसे अभिषेक किया। स्वप्नमें ही लक्ष्मीनारायणकी आरती और दर्शन कर रहे थे। उन्हें लगा कि प्रभु भी प्रसन्न हैं।

इस सुन्दर स्वप्नकी समाप्तिके बाद वे जाग गये। अच्छे स्वप्नके दर्शनके बाद सोना नहीं चाहिए। राजाने सोचा कि इस स्वप्नके विषयमें गुरुजीसे निवेदन करना चाहिये। वे वशिष्ठके पास आये।

वशिष्ठने पूछा—आप इस प्रातःकालमें क्यों आये हैं?

दशरथ—मैंने आज स्वप्नमें लक्ष्मीनारायणकी आरती की। मैंने यह भी देखा कि नारायणका दिव्य तेज कौशल्याके गर्भमें जा रहा है।

वशिष्ठ—इस स्वप्नका फल उत्तम होगा। तुम्हारे घर भगवान् नारायणके आगमनकी इसमें सूचना है। मुझे विश्वास है इस स्वप्नका फलतुम्हें २४ घण्टोंमें ही मिलेगा।

राजा आनन्दसे झूमने लगे। उनके घर स्वयं भगवान् जो आ रहे हैं। उन्होंने सरयूमें स्नान किया और भगवान्की पूजामें लीन हो गये।

इधर कौशल्या भी प्रभुध्यानमें मग्न हैं। आज परम पवित्र रामनवमीका दिन है।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

भगवान् शङ्कर ज्योतिषीके वेशमें अयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे हैं। उनके इष्टदेव हैं बालक राम। प्रातःकालसे ही देव-गन्धर्व प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वैष्णवजन जबतक अत्यन्त आतुर नहीं होते हैं, तबतक भगवान्का जन्म नहीं होता।

परम पवित्र समय आया। चैत्र मास, शुक्ल पक्ष और नवमी तिथि। मध्याह्नका समय हुआ और……

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन बिशाला शोभा सिन्धु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी स्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता।
माया गुन ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता॥
करुना सुख सागर सब गुनआगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकन्ता।

दोहा

विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

सियावर रामचन्द्रकी जय।
रघुपति रामचन्द्रकी जय॥

दशरथके घर साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि प्रकट हुए। जो निर्गुण थे वही भक्तोंके प्रेमके कारण आज सगुण बन गये।

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम-बस सगुन सो होई।

वेदोंने जिनका इस प्रकार वर्णन किया है, वही श्रीहरि भक्तोंके हितार्थ आज दशरथके घर पुत्रका रूप लेकर आये हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहि बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोशलपति भगवान॥

आकाशमेंसे देव और गन्धर्वोंने पुष्प-वृष्टि की। आज बताया कि मैं अपने भक्तोंकी चारों ओरसे रक्षा करता हूँ। सो चतुर्भुज रूपसे प्रागट्य हुआ।

माताजीने स्तुति की—प्रभु, मेरे लिए आप बालक बन जाइये। मुझे माता कहकर पुकारें। माताजीको उन्होंने दिखाया कि वे परमात्मा है। उनका चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया और छोटे-छोटे दो हाथों वाले बालक बन गये।

दासियोंमें भी यह शुभ समाचार फैल गया। कौशल्याने दासीको नवलखा हार दिया। मेरा राम सुखी होगा। मैं आनन्दसे दे रही हूँ। दासीने कहा—मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिये। मैं तो रामको खिलाना चाहती हूँ। राम दासीकी गोदमें गये। आज उसका भी ब्रह्मसंबंध हो गया।

दासी दौड़ती हुई राजाके पास आयी और बधाई दी। लाल भयौ है। लगता है कि साक्षात् नारायण आये हैं। वृद्ध दशरथजीके घर पुत्र जन्म हुआ। और पुत्र भी साधारण नहीं, साक्षात् परमात्मा पुत्रका रूप लेकर आये हैं। दशरथजीने वस्त्रादिसे भृङ्गार किया।

प्रथम गणपतिकी पूजा की गयी। दान तो इतना दिया गया कि सारी अयोध्यामें कोई भी दरिद्र न रहा। वसिष्ठने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके मानसिक अभिषेक किया। दशरथजी अन्तःपुरमें आये। आज रामके दर्शनसे सारी दासियाँ इतनी हर्षान्वित हो गयी थीं कि वे देह भान भी भूल गयी थीं। देह-भान ही नहीं है तो मान-मर्यादा और लाजकी बात ही क्या?

परमानन्द हो गया। देव-गन्धर्व आदि भी सूक्ष्म रूपसे पुत्र रामके दर्शन कर रहे हैं।

रामजन्मसे सभी देवोंको आनन्द हुआ, किंतु एक चन्द्रको दुःख हुआ। रामलीलाके दर्शनसे सूर्यनारायण आनन्दसे स्तब्ध होकर स्थिर हो गये। आगे बढ़ते ही न थे। सूर्यास्तके बिना चन्द्र रामका दर्शन कैसे करें? तो चन्द्रने रामसे प्रार्थना की—इस सूर्यको कहिए कि

वह आगे बढ़े। वह मुझे आपके दर्शन ही नहीं करने देता है। चन्द्रको रोना आ गया। तो रामचन्द्रने उसे आश्वासन देते हुए कहा—आजसे मैं तेरा नाम धारण करूँगा। फिर भी वह प्रसन्न नहीं हुआ।

तो रामचन्द्रने उससे कहा—तू धीरज धर। इस बार मैंने सूर्यको लाभान्वित किया है किंतु भविष्यमें कृष्णावतारमें सबसे पहले तुझे दर्शन दूंगा। कृष्णावतारमें मैं रात्रिके बारह बजे जन्मूंगा॥ सो तुझे ही लाभ मिलेगा।

कृष्णजन्मके समय तीन व्यक्ति ही जाग रहे थे—वसुदेव, देवकी और चन्द्र।

जो रात्रिके समय जागते रहते हैं उन्हें ही कन्हैया मिलता है। सोये हुएको कन्हैया नहीं मिलता। जागनेका अर्थ क्या है ?

जानिय तबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषय विलास विरागा॥

गीताजीमें कहा गया है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

नित्य शुद्ध परमानन्दको प्राप्त करनेकी ओर जो कभी ध्यान नहीं देते हैं, उन सभी भूत-प्राणियोंके लिए जो रात्रि है, उसी समयमें योगी जाग कर प्रभुस्मरण करते हैं। प्राणी जिस सांसारिक नाशवान् क्षणिक सुखोंमें जागते हैं, वह रात्रिके समान ही है। वैसे पुरुषोंको परमात्माका ज्ञान नहीं हो सकता।

वसुदेवजी-देवकीकी स्थिति तो देखो। सम्पत्ति, राज्य, सन्तति सब कुछ छिन गया। निरपराध होते हुए भी हाथ और पाँवोंमें जंजीर लगा दी गयीं। फिर भी वे हमेशा प्रभुका स्मरण करते रहे।

दुःखमें भी प्रभुके नामका विस्मरण न करना। दुःखमें सचेत रहकर जो व्यक्ति ईश्वरका भजन करता है, उसके घर स्वयं भगवान् आते हैं।

स्वामी विद्यारण्यने कहा है कि नल और राम जैसी विभूतियोंके जीवनमें भी दुःखद प्रसङ्ग आये थे तो हम जैसे साधारणजनोंकी तो बात ही क्या है ? सो दुःखसे कभी न डरना।

वियोगमें कथा होती है, संयोग हुआ नहीं कि कथा बन्द। जबतक जीवका ईश्वरसे विरह है, तबतक कृष्णकथा है। जीव और ईश्वरके मिलनके बाद तो कथाका प्रश्न ही नहीं है।

भागवतके दशम स्कन्धके चौदहवें अध्यायमें सुदामा-चरित्रके समय शुकदेवजीको प्रेमको नियन्त्रित करना पड़ा था, दबाना पड़ा था। यदि प्रेममें समाधि-सी लग जाये तो राजा परीक्षितका क्या हो ?

दशरथने बाल स्वरूप देखा तो उनका हृदय प्रेमसे भर आया। दशरथके आनंदका वर्णन तो सरस्वती भी कर नहीं सकती है। पिता-पुत्रकी दृष्टि मिली। बालक हँस दिया। दशरथ रामको मधु चटाने लगे। उन्होंने वसिष्ठजीसे वेदमंत्रोंका पाठ करनेको कहा।

वसिष्ठ—रामके दर्शन करने पर मैं वेदमंत्र तो क्या, अपना नाम तक भूल गया हूँ। मैं बोलूँ तो क्या बोलूँ?

दर्शनमें नामरूप भूलने पर दर्शनका बड़ा आनंद होता है। ब्रह्मदर्शनका आनंद होता है।

तत्र वेदा अवेदा भवन्ति।

ईश्वर दर्शन होनेके बाद तो वेद भी विस्मृत हो जाते हैं। ईश्वरके साक्षात्कारके बाद वेद भी मिथ्या है। ईश्वरके साक्षात्कारके बाद वेदको कोई आवश्यकता नहीं है। प्रभुका साक्षात्कार होने पर वेद, जगत्के नाम-रूप और अपनापन सभी कुछ विस्मृत हो जाता है। सो वशिष्ठ कहते हैं कि मैं तो अपना नाम तक भूल गया हूँ।

कौशल्या बालक रामको गोदमें उठा कर बाहर आईं। अयोध्याकी प्रजाने रामलीलाके दर्शन किए। किसीको भूख और प्यास तकका भान नहीं था।

रामके बिना आराम नहीं है। जीवमात्र आराम चाहता है। जीवमात्र शांतिका उपासक है, ऐसी शांतिका जिसका कभी भंग हो न पाए। रामकी मर्यादाका पालन करोगे तो जीवनमें सच्ची शांति मिलेगी। मनुष्य रामकी जीवनमर्यादाको जीवनमें उतारता नहीं है, अतः उसे सच्ची शांति नहीं मिलती है।

धर्मका फल है शांति। अधर्मका फल है अशांति। धर्मकी मर्यादाका पालन न करने पर शांति नहीं मिलती। स्त्री और पुरुषको अपनी अपनी मर्यादामें रहना चाहिए। मानव जब मर्यादाका उल्लंघन करता है, अशांति आती है। धर्ममर्यादाके बिना ज्ञान, भक्ति या त्याग सफल नहीं हो सकते।

आजकल मंदिरोंमें और कथा-आख्यानोंमें भीड़ बहुत बढ़ती जा रही है। लगता है कि आजकल ज्ञान और भक्ति बढ़ गए हैं। फिर भी शांति तो किसीको भी मिल नहीं रही है। इसका यही कारण है कि लोग धर्ममर्यादाका पालन करते ही नहीं हैं। लोग आज धर्मको भूल गए हैं। धर्मके बिना शांति नहीं है। धर्मकी मर्यादा कभी न तोड़ो। धर्मपालनके बिना ज्ञान और भक्ति व्यर्थ है। चंद्र, सूर्य, समुद्र कभी अपनी मर्यादाका उल्लंघन करते नहीं हैं। जब कि लोग तो थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा, अधिकार या मान मिल जाने पर अपनेको लाट साहब मान लेते हैं। मुझे पूछने-रोकनेवाला है कौन?

तुम्हें ज्ञान दिया है धर्ममर्यादाके पालनके लिए, उल्लंघनके लिए नहीं।

रघुनाथजी मर्यादा-पुरुषोत्तम और सभी सद्गुणोंके भंडार हैं। वे स्वयं परमात्मा होते हुए भी धर्ममर्यादाओंका पूर्णतः पालन करते हैं।

सभी दिव्य गुण जिसमें एकत्र होते हैं, वही परमात्मा है। लक्ष्मण विवेकका, भरत वैराग्यका, शत्रुघ्न सद्विचारका स्वरूप हैं। भरत और शत्रुघ्न अर्थात् वैराग्य और सद्विचार यदि अयोध्यामें नहीं हैं तो दशरथ कैकेयीके अधीन हो जाते हैं।

चंदन और पुष्पसे रामकी सेवा करना अच्छी बात है किंतु उनकी मर्यादाका पालन करना तो सर्वोत्तम सेवा है। उनकी मर्यादाका पालन नहीं करोगे तो संभव है, वे तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे। भगवान्की आज्ञाओंका पालन करना ही उनकी सर्वोत्तम सेवा है। ऐसा न करने पर ईश्वर कहते हैं कि मेरा कहा तो मानता नहीं है सो तेरी सेवा मुझे स्वीकार्य नहीं है।

श्रीरामका जीवन तो ऐसा पवित्र है कि उनके स्मरण मात्रसे हम पवित्र हो जाते हैं। वर्तन यदि रावण-सा है और जप रामके नामका है तो नामजपका फल कभी नहीं मिलता। राम जैसा वर्तनहोगा और रामनामका जाप् होगा तभी कुण्डमेंसे अमृत झरेगा। रामके एक-एक गुणको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न ही उनकी सर्वोत्तम सेवा है।

रामचंद्रजीका अवतार राक्षसोंके संहारके हेतु नहीं, मनुष्योंको उच्च आदर्श बतानेके लिए हुआ था। राक्षसको मारने नहीं, मानवको आदर्श मानवधर्म समझानेके लिए वे आए थे। उनका अवतार जगत्को मानवधर्म उपदेशके लिये था।

वाल्मीकिने रामके लिए उपमान ढूंढा किंतु एक भी न मिला। राम तो राम ही हैं।

मनुष्य चाहे किसी भी देव या देवीमें श्रद्धा रखे, चाहे वह विष्णुको पूजे, चाहे शंकरको, किंतु उसका वर्तन तो राम जैसा ही होना चाहिए। जिसका व्यवहार राम जैसा होगा उसकी भक्ति सफल होगी।

कृष्णकी लीलाएँ अनुकरणके लिए नहीं, श्रवण करके तन्मय होनेके लिए हैं। गोकुल-लीलामें पुष्टि है, द्वारिकालीलामें मर्यादा।

ऐसा नहीं है कि रामकी अमुक लीलाएँ अनुकरणीय हैं और अमुक चिंतनीय। उनकी तो सभी लीलाएँ अनुकरणीय हैं। वे सभी गुणोंके भंडार हैं। वे प्रत्येक स्त्रीको मातृभावसे देखते थे। किसीभी स्त्रीको वे कामभावसे नहीं देखते थे।

मनुष्य एक ओर पुण्य तो करता है किंतु दूसरी ओर पाप भी करता रहता है। परिणामतः उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता।

राम माता-पिताकी आज्ञा हमेशा मानते थे। कभी स्वच्छंद न बनो। वे हमेशा दशरथ-कौशल्याको प्रणाम करते थे आजकलकी प्रजा अपने मातापिताको प्रणाम करते हुए लजाती है। तुच्छ है तुम्हारी यह पढ़ाई जो तुम्हें माता-पिताको प्रणाम करनेसे रोकती रहती है। पिताकी धन-संपत्ति लेनेमें तुम्हें कोई शर्म-संकोच नहीं होता और वंदन करनेमें संकोच होता है लाज आती है। माता पिता तो लक्ष्मी-नारायणका स्वरूप हैं। उन्हें वंदन करो।

रघुनाथजीकी उदारता और दीनवत्सलता जगतमें बेजोड़ है। उन जैसा कोई राजा पहले न तो हुआ है और न तो कभी होगा—

ऐसो को उदार जग माँहीं।
बिन सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति योग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध शबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी॥

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो ।।

रामचरित दिव्य है। उनका चरित्र सभीको डोलायमान करता है। सर्पके कान नहीं होते हैं। कारण जानते हैं इसका ?

शेषनाग सर्पोंका राजा है। उसीके फनपर धरती थमी हुई है। रामकथाके श्रवणसे यदि शेष डोलने लगे तो धरतीका विनाश हो जाय। सो ब्रह्माजीने सोचा कि अच्छाई इसीमें है कि उसे कान दिये ही न जायँ। वैसे यह तो कवि-कल्पना ही है।

राममें सभी सद्गुण इकट्ठे हुए हैं। उन्होंने एक पत्नी-व्रतका पालन किया। आपने बड़ोंका जो भी अच्छा लगा उसे जीवनमें उतारा। उन्होंने दशरथसे सभी कुछ लिया, किंतु बहुपत्नीत्वको नहीं लिया।

पुरुष यदि एक ही स्त्री (पत्नी) में काम-भाव रखे और धर्मानुकूल कामोपभोग करे तो गृहस्थ होनेपर भी वह ब्रह्मचारी ही है। कामको व्यापक न होने देना। उसे एक ही पात्रमें संकुचित कर दो। इस हेतुके लिए ही तो विवाहका आयोजन किया गया है। काम-भावको एक ही पात्रमें निहित करके उसका नाश करो।

निर्दोष तो केवल ईश्वर ही है। सम्भव है, गुरुमें भी कोई दोष हो। किंतु गुरुके दोषका अनुकरण करना नहीं चाहिये। राम किसी स्त्रीको और सीता किसी पुरुषको नहीं देखती थीं। शास्त्रकी यह मर्यादा है। ऐसी मर्यादाका पालन करनेसे जीवन सुधरेगा। रामचन्द्रने एक-पत्नी-व्रतका और सीताने एक पतिव्रतका पालन किया। ईश्वरकी धर्म-मर्यादाका जो पालन करे, वही सच्चा मनुष्य है।

वाल्मीकि-रामायणके सुन्दर-काण्डका एक प्रसङ्ग है। हनुमानजी सीताजीसे मिलनेके लिए अशोकवनमें आये थे। वापस लौटते समय उन्होंने माताजीसे कहा—अच्छा, मैं अब जा रहा हूँ।

सीताजी—ठीक ही हुआ कि तू मुझे मिलने आया। तेरे जानेके बाद ये राक्षसियाँ मुझे सतायेंगी।

हनुमानजी—यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको अपने कन्धे पर बिठा कर इसी समय रामजीके पास ले चलूँ। मैं रामदूत हूँ। मुझे कोई मार नहीं सकता।

सीताजी—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तू मेरा पुत्र-सा है, बाल-ब्रह्मचारी है, पवित्र है। फिर भी तू पुरुष है और मैं स्त्री। मेरे लिए किसी भी पराये पुरुषका स्पर्श वर्ज्य है। परपुरुषके स्पर्शसे सती नारीके पातिव्रत्यका भङ्ग होता है। जगत्को स्त्रीधर्मका आदर्श बतलानेके लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मैं तेरे कन्धे पर बैठ जाऊँ तो लोग क्या कहेंगे ?

रघुनाथजी मेरे सिवा अन्य किसी भी स्त्रीका स्पर्श नहीं करते हैं। मैंने भी उनके सिवा किसी अन्य पुरुषके चरण तकका स्पर्श नहीं किया है।

मनसे भी किसीका स्पर्श न करो। स्त्रीको चाहिए कि पतिके सिवा किसी साधु-संतके चरणका भी स्पर्श न करे। उनको दूरसे ही प्रणाम करो।

बेटा, तू बालब्रह्मचारी है फिर मैं तेरा स्पर्श करूँ तो धर्मकी मर्यादा टूटती है।

सीताजी जगत्को आदर्श स्त्रीत्व दिखाती हैं। इसी हेतु ही वे प्रगट हुई हैं। राम सरल हैं, किंतु सीताजीकी सरलता तो अलौकिक है।

रामकी मातृ-पितृ-भक्ति अलौकिक है; बन्धु-प्रेम भी दिव्य है।

बड़ोंका दिल कभी न दुखाना। कैकेयीने जब रामको वनवास दिया तो उन्होंने उसे प्रणाम करके कहा—माताजी, मेरा भाई भरत यदि राजा बननेवाला हो तो मैं चौदह वर्ष तो क्या आजीवन वनवासी रहनेको तैयार हूँ। यह तो तुम्हारा मेरी ओर ही पक्षपात है। भरतकी अपेक्षा मुझ पर तुम्हारा प्रेम अधिक ही है। मुझे ऋषि-मुनियोंके सत्सङ्गका लाभ मिले, इस हेतुसे ही तुमने मुझे यह वनवास दिया है। मेरे कल्याणके कारण ही तुम मुझे आज वनमें भेज रही हो।

राम-कथा तो सागर जैसी है। शिवजीने एक करोड़ श्लोकोंमें यह कथा वर्णित की है। रामके सभी गुण जीवनमें उतारो। राजा रामकी प्रत्येक मर्यादा जीवनमें उतारोगे तो राम-नवमीका उत्सव परिपूर्ण होगा, सफल होगा।

शिवजी हर रोज उमाको इस रामकथाका रसपान कराते थे। हनुमानजी भी हर रोज सुनते थे। इस रामकथाका एक-एक श्लोक पापोंका नाशकर्त्ता है।

एक बार देव, ऋषि और मनुष्य शिवजीके पास रामायण माँगने गये। रामायणके एक करोड़ श्लोक हैं। शिवजीने तीनोंको बराबर-बराबर बाँटा तो एक श्लोक शेष रहा। देव, ऋषि और मनुष्य इस शेष बचे हुए श्लोकके लिए झगड़ने लगे।

शिवजीको लड़ाई-झगड़ा पसन्द नहीं है। जहाँ युद्ध, वैर, स्वार्थ, वासना, विषमता नहीं, है वही स्थान अयोध्या है, और राम भी वहीं अवतरित होते हैं। जब कैकेयीके मनमें विषमता, स्वार्थ, वासना जन्मी कि रामने अयोध्याका त्याग किया। विषमता, लड़ाई-झगड़ा हुआ नहीं कि राम अयोध्या छोड़ देते हैं।

शिवजीकी सभामें तो बैल और सिंह, चूहा और सर्प, मोर और सर्प सभी अपना-अपना जन्मजात वैर भूलकर एक साथ बैठते हैं। गरुड़ और सर्प भी अपना वैर भूलकर विष्णु भगवान्के सामने शांत बैठ जाते हैं। वैरको भूल जाओ।

शिवजीने कहा—श्लोक एक है और उसकी इच्छा करने वाले तीन। इस श्लोकमें बत्तीस अक्षर थे। सो शिवजीने तीनोंको दस-दस अक्षर दिये। अब शेष रहे दो अक्षर। तो शिवजीने कहा कि इन दो अक्षरोंको मैं ही अपने कण्ठमें रखूँगा। ये दो अक्षर हैं राम। शिवजीने रामको अपने ही पास, अपने हृदयमें रखा। इसी भाँति तुम भी रामको हमेशा अपने हृदयमें ही रखना। शिवजीकी भाँति हृदयमें रामका स्थान और नाम हमेशा रहे तो भी ठीक संतोषकी बात है।

श्रीरामके नामजपसे सभी कष्ट दूर होते हैं और सब कुछ शुभ होता है।

भगवान् शंकर रामायणके आचार्य हैं। वे जगत्को बताते हैं कि मैं विष पी गया, फिर भी रामनामके प्रतापसे मुझे कुछ भी नहीं हुआ। जीवनमें विष पीनेके कई प्रसंग आते हैं। जब भी ऐसा कटु प्रसंग आए, प्रेमसे श्रीराम, श्रीराम बोलो। रामनामसे कंठमेंसे अमृत झरता है, जो विषको नष्ट कर देता है।

रामका नाम लेकर विष पी गए तो वह अमृत बन गया। संसारमें भी निंदा, वैर, व्याधि आदि विष ही है। ऐसा सांसारिक विष जब भी जलानेके लिए आ पहुँचे तो रामनामका जप करना। जब भी परिस्थिति प्रतिकूल हो जाए, पंद्रह मिनट रामनामका जप करो, इसीसे तो शिवजीको श्मशानमें भी शांति है—

श्मशानेश्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः।
चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः॥
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवखिलं।
तथाऽपि स्मतृणां वरद परमं मंगलमसि॥

भगवान् शिव रामनामामृतका सदा पान करते हैं, अतः वे शिव हैं। कहते हैं कि रामकी कथा तो मैं करता हूँ, फिर भी यह मैं नहीं जानता कि वे कैसे हैं। शिवजीकी यह विनयशीलता है।

जो जान कर भी अज्ञानी-सा बन कर जप करता है, वही कुछ-न-कुछ जानता है।

अयोध्यामें रघुनाथजीका प्राकट्य हुआ। लक्ष्मण, भरत और शुत्रुघ्नका भी जन्म हुआ। चारों बालक कौशल्याके आँगनमें खेलने लगे और दिनों-दिन बड़े होने लगे।

रामचन्द्रजी तो खेल-कूदमें भी अपने छोटे भाइयोंको सताते नहीं थे। वे जीत हमेशा अपने छोटे भाइयोंको ही देते थे। वे मानते थे कि मेरे छोटे भाइयोंकी जीत ही मेरी जीत है। यदि उनकी हार होगी तो उन्हें दुःख होगा। सो स्वयं हार स्वीकार लेते थे। भरतकी आँखोंके आँसू उनसे देखे नहीं जाते थे।

आज तो लोग एक ओर रामायण पढ़ते हैं, रामनामका जप करते हैं और दूसरी ओर धन-संपत्तिके लिए भाइयोंके साथ कोर्टमें लड़ते हैं। यदि बड़ा भाई राम बनेगा तो छोटे भाई भरत-लक्ष्मण जैसे होंगे। यदि बड़ा भाई राम जैसा बने और छोटा भाई भरत जैसा बने तो सारा जगत् आज भी अयोध्या बन सकता है और रामराज्य स्थापित हो सकता है। भरतको राज्य मिला फिर भी उसने त्याग किया। बड़े भाई अयोध्यामें नहीं थे सो स्वयं महलोंमें रह कर भी तपश्चर्या करने लगे। भरतजीकी तपश्चर्याकी जगत्के सभी महापुरुषोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

भारतभूमि तो कर्मभूमि है। इस कर्मभूमिमें जैसे काम करोगे वैसे हा फल पाओगे। जैसा भाव अन्यके लिए तुम रखोगे, वैसा ही भाव उसके मनमें तुम्हारे लिए होगा। अभिमान मूर्खोंको नहीं सताता किंतु जिसे जगत् मान-कीर्ति देता है; उसे ही सताता है। मानके बिलकुल पीछे ही अभिमान भी खड़ा रहता है।

विष्णु सहस्र नामावलिमें भगवान्को अमानी मानदः कहा गया है। भगवान् मानके दाता हैं। भरत कैकेयीको कहते हैं कि राम बड़े होते हुए भी उसे मान देते हैं। रामने बाल-लीलामें भी मर्यादा-भंग नहीं की थी।

जो अपने भाईमें प्रभुका दर्शन नहीं कर पाता है, उसे जगतमें ईश्वर कहीं नहीं दीखेंगे। रामने माताको कभी सताया नहीं था। कन्हैयाने सोचा कि रामावतारमें मैंने मर्यादाका अतिशय पालन किया था सो मुझे बहुत दुःखी होना पड़ा। अब कृष्णावतारमें मैं मर्यादाका पालन नहीं करूँगा। कन्हैया माताको सताता है। माता, मुझे छोड़ कर कहीं न जाना। तू काम-काज छोड़ दे और मुझीसे खेला कर।

यशोदा अर्थात् बुद्धि ईश्वरसे दूर हो जाय तो उन्हें दुःख होता है। सो कन्हैया मातासे कहता है कि मुझे गोदीमें बिठाए रह। मुझे छोड़कर न जाना। यशोदा—बुद्धिको वे अपने साथ ही रखना चाहते हैं।

रामचंद्रजीका अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तमका है। कृष्णका अवतार पुष्टि-पुरुषोत्तमका है। रामकी लीलामें मर्यादा है, कृष्णलीलामें प्रेम।

कन्हैया कहता है—मैंने रामावतारमें मर्यादाका पूरा-पूरा पालन किया, मैं सरल भी बहुत रहा, एक पत्नीव्रत निभाया, फिर भी जगत्ने मेरी कोई कदर न जानी। सो मैंने इस कृष्णावतारमें सारी मर्यादा फेंक दी। अब मैं पुष्टि-पुरुषोत्तम हूँ। जो भी जीव मेरे निकट आए मैं उसे अपनाऊँगा। कृष्णावतारमें सभीके लिए द्वार खुले हैं। जो चाहे सो आ सकता है।

कन्हैयाकी वाणीको कोई बाँध नहीं सकता। एक-एक गोपीको उन्होंने बाँध लिया। वेसब कृष्णसे प्रार्थना करती हैं कि हमें छोड़ दो। तो कन्हैया कहता है कि मुझे तो मेरी माँने बाँधना ही सिखाया है, छोड़ना तो सिखाया ही नहीं है। मैं जाता हूँ। जय जय। कन्हैया जिसे बाँधता है, उसे कभी नहीं छोड़ता।

ईश्वर जिसे अपने बंधनमें बाँधते हैं, अपनाते हैं, वह यदि मायाके प्रवाहमें बहने भी लगे तो भी उसे भगवान् बचा लेते हैं।

कृष्णकी बाललीला अनोखी है। एक गोपीने देखा कि कन्हैया माखन चुरा रहा है तो उसने उसे बाँध लिया। कन्हैयाने कहा, छोड़ दो मुझे। तुम्हें अपने पिताकी कसम, अपने पतिकी कसम। गोपीने कहा, नहीं, मैं तो बाँधूगी ही। और उसने एक खंभेसे बाँध दिया। गोपीने लालासे पूछा, तुझे कोई तकलीफ तो नहीं है न? कन्हैया रोनेका अभिनय करने लगा— बड़ी तकलीफ हो रही है। बंधन थोड़ा-सा खोल दो। गोपीने सोचा कि जकड़ कर बाँधना ठीक नहीं है। लालाको दुःख होगा। उसने बंधन कुछ ढीला किया। ऐसा होते ही कन्हैया भाग निकला। गोपी कहती है कि दो संतानोंकी माता होते हुए भी मुझे बाँधना नहीं आया।

श्रीकृष्ण गोपीको बाँधते हैं। श्रीकृष्णका मनसे स्पर्श करने पर भी हृदय द्रवित होता है तो प्रत्यक्ष श्रीअंग स्पर्शसे तो कितना अधिक आनंद होता होगा। गोपीका ब्रह्मसंबंध हुआ। उसने कन्हैयासे कहा, मुझे छोड़ दे। तो कन्हैयाने कहा, छोड़ना तो मैं जानता ही नहीं हूँ। परमात्मा जिसे बाँधते हैं उसे कभी नहीं छोड़ते। वह उस जीवको अपने ही पास रखते हैं।

ईश्वर किसीको शीघ्रतासे अपनाते नहीं हैं और जिसे एक बार अपना लेते हैं, उसका कभी त्याग नहीं करते। जीव स्वार्थी है। वह अपनानेके बाद भी छोड़ देता है। स्वार्थकी समाप्तिके साथ-साथ सम्बन्ध भी समाप्त करता है। जब कि ईश्वर तो सम्बन्धको सदा बनाये रखते हैं।

दिल कहता है कि कन्हैया, जब तुम्हारा प्राकट्य हो, मुझे गोपी बनाना।

प्रेम माँगना नहीं, देना चाहिये। सर्वेश्वरको वही पसन्द आता है, जो सभीसे प्रेम करता है। विकार, वासना, स्वार्थ आया नहीं कि प्रेम खण्डित हो गया। दूसरोंको सुखी करनेकी भावना करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता।

कृष्णलीलामें प्रेम शुद्ध है। रामजीकी लीलामें विशुद्ध मर्यादा है। कृष्णको वही समझ सकता है, जो रामजीकी मर्यादाका पालन करता है।

लाला कभी सीधा खड़ा नहीं रहता। वह तो बाँका बिहारी है। वह बाँकेके साथ बाँका है। वह तो योगीके साथ योगी, भोगीके साथ भोगी, बालकके साथ बालक और संन्यासीके साथ संन्यासी है।

श्रीकृष्णने कहा था कि—जगत् मिथ्या है। सुवर्णकी द्वारिका भी डूब गई'

जिसकी लँगोटी तक छूट गयी है, वैसे विरक्त शुकदेवजी जैसे महात्मा भी श्रीकृष्णप्रेममें पागल बन जाते हैं। श्रीकृष्णकी बाललीला ऐसी दिव्य है कि शुकदेवजी जैसे भी उसका वर्णन करते हुए आँसूसे भीग जाते हैं, पागल हो जाते हैं। महायोगी हँसते ही नहीं हैं, सो उनके लिए रोनेका प्रसङ्ग ही नहीं आता। श्रीकृष्ण भोगी नहीं, योगी हैं।

भक्तिमें दुराग्रह न रखो। रामजी कुछ कम हैं, ऐसा कभी न मानना। कृष्ण और राम दोनों अवतार परिपूर्ण हैं। श्रीकृष्ण पुष्टि-प्रेमका आनन्द देते हैं।

रामचंद्रकी बाललीलाका वर्णन अधिक नहीं है। वे वसिष्ठके आश्रममें पढ़नेके लिए गए।

संसार माया है। इस मायामें आने पर तो भगवान्‌को भी गुरुकी आवश्यकता रहती है। किसी सद्‌गुरुके अनुग्रहके बिना मन सदाके लिए पवित्र नहीं हो पाता। संसारमें आने पर भगवान्‌को अपने स्वरूपका विस्मरण होता है और गुरुकी आवश्यकता हो जाती है।

श्रीराम हैं तो परमात्मा। उन्हें मायाका स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर भी जगत्‌को आदर्श सिखानेके हेतु वे गुरुके पास विद्याभ्यासके लिए गए। गुरुजीकी सेवा भी की। विद्याभ्यास समाप्त किया।

श्रीराम १६ वर्षकी अवस्थामें यात्रा करने गए। यात्रा करनेसे उन्हें वैराग्य आ गया। इस वैराग्यको दूर करनेके लिए वसिष्ठजीने योगवासिष्ठ महारामायणमें उपदेश दिया है। इसका प्रथम प्रकरण वैराग्यसे सम्बन्धित है। यह प्रकरण सभीको पढ़ना ही चाहिए, इसमें वसिष्ठजी कहते हैं—वैराग्यको अन्दर ही रखना। प्रारब्ध तो भुगतना ही चाहिए किंतु नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो जाय, यह भी देखना चाहिए। वनमें संसार साथ-साथ घर आयेगा। बाधक नहीं है, किंतु घरकी वस्तुओंकी आसक्ति बाधक है।

राम ! तुम यदि राजप्रासादका त्याग करोगे तो कुटीरकी आवश्यकता उपस्थित होगी। सुन्दर वस्त्र छोड़ दोगे तो लँगोटीकी जरूरत होगी। अच्छा भोजन छोड़ दोगे तो भी कन्दमूल तो खाने ही पड़ेंगे। अतः राज्यका त्याग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। छोड़ना तो है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, वासना आदिको।

वैराग्य अन्दरका होना चाहिए, जगत्को दिखानेके लिए नहीं। साधु बननेकी नहीं, सरल होनेकी ही आवश्यकता है।

भजनके लिए भोजन है, ऐसा मानो तो भोजन साधन है। केवल भोजनके लिए भोजन बाधक है।

सुखी होना है तो बोलो—जो होगा सो चलेगा, भायेगा, पसन्द आयेगा। प्रभु मुझे जिस स्थितिमें रखेंगे, उसीमें मैं रहूँगा। थालीमें जो भी मिलेगा, खा लूँगा।

ज्ञानी पुरुषोंको भी भाग्य तो झेलना ही पड़ता है। रामचन्द्रजीका वैराग्य दूर हुआ। वे १६ वर्षके हो गये हैं अब।

उस समय विश्वामित्रका यज्ञ सम्पन्न हो रहा था। उसमें मारीच, सुबाहु आदि राक्षस बाधा डाल रहे थे। विश्वामित्रने सोचा कि रामचन्द्रजी ही मेरे यज्ञकी रक्षा कर सकते हैं। अयोध्या जाकर राम-लक्ष्मणको ले आऊँ। दर्शनसे कृतार्थ भी हो जाऊँगा। भागवतमें राम-चरित्रका आरम्भ इसी प्रसङ्गसे किया गया है। विश्वामित्र अयोध्यामें आये। सरयूमें स्नान किया और फिर महाराज दशरथकी राजसभामें आये। दशरथजीने स्वागत करते हुए नमन किया। मेरे पूर्वजोंके पुण्य-प्रतापसे आप जैसे ऋषि मेरे घर आये हैं। क्या सेवा करूँ मैं आपकी ? विश्वामित्रने आशीर्वाद देते हुए कहा, मेरे यज्ञमें राक्षस विघ्न कर रहे हैं। सो राम और लक्ष्मणको मेरे यज्ञकी रक्षाके लिए मेरे साथ भेजिए। विश्वामित्रकी ऐसी माँगसे राजा घबड़ा गये।

दशरथजीने कहा—मुनिवर, आपने ठीक नहीं माँगा। ये बालक मुझे अपनी वृद्धावस्थामें मिले हैं। मुझे तो संतानकी कोई आशा ही नहीं थी, किंतु आप सभीके आशीर्वादसे चार संतानें मिलीं। मुझे ये सब अत्यन्त प्रिय हैं किंतु राम सर्वाधिक प्रिय है। रामके बिना मैं नहीं रह सकता। उसे मेरी आँखोंसे दूर न करें। मैं आपसे क्या कहूँ ? राम मुझे प्रतिदिन दो बार साष्टांग प्रणाम करता है। मेरी हर आज्ञाका पालन करता है। ऐसा पुत्र न तो कभी हुआ है और न कभी होगा। छोटे भाइयोंसे भी उसे अलौकिक प्रेम है। वह बहुत भोला है। मर्यादाका पूर्णतः पालन करता है।

रामकी प्रशंसा करते-करते राजाका हृदय भर आया। जलके बिना मछली शायद रह सकती है, किंतु रामके बिना दशरथ नहीं जी सकते। वे फिर बोले—गुरुजी ! मैं आपसे ठीक ही कहता हूँ कि रामके दूर जानेसे मेरे प्राण चले जायेंगे ! आप चाहें तो मैं अपना सारा राज्य दे दूँ, अपने प्राण तक दे दूँ, किंतु मुझसे मेरे रामको दूर न करें।

राम देत नहिं बनइ गुसाईं।

मैं अपने रामके बिना एक क्षण भी जी नहीं सकता। मैं प्राण दे सकता हूँ, राम नहीं।

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥

जगत्‌में दशरथ-सा पिता नहीं हुआ है, और राम-सा पुत्र भी नहीं। राम जब वनमें गए थे तो दशरथने अपनी अन्तिम साँस तक रामका ही नाम लिया था। उन्होंने कौशल्यासे बार-बार पूछा कि मेरे राम कहाँ हैं। मुझे कोई रामके पास ले चलो। मैं रामके बिना जी नहीं सकता और रामके वनगमनके साथ ही दशरथजीके प्राणपखेरू उड़ गये।

रामायणका एक-एक पात्र दिव्य है। भरतके जैसा कोई भाई नहीं है। सीता जैसी कोई स्त्री नहीं हुई है। रामजीकी अपेक्षा सीताजीका हृदय अति कोमल था। वाल्मीकि भी सीताजीके चरित्रका वर्णन करते हुए पिघल गये थे। उन्होंने कहा था कि रामायणमें रामजीका नहीं, सीताजीका चरित्र अलौकिक है। रामजी सरल हैं, किंतु सीताजीकी सरलता तो अद्भुत है।

वाल्मीकि रामायणमें एक प्रसङ्ग है। रावणके साथ युद्धकी समाप्ति होनेपर हनुमानजी अशोकवनमें आये। सभी राक्षसोंका तो विनाश हो गया था और श्रीरामकी विजय हुई थी। सीताजीने हनुमानजीको बहुत आशीष दी। काल तेरा सेवक बनेगा। अष्टसिद्धियाँ तेरी सेवा करेंगी।

हनुमानजी, ज्ञानी पुरुषोंके आचार्य हैं।

मनोजवं मारुततुल्य वेगम्
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यम्
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

हनुमानजीका वर्णन कर ही कौन सकता है?

माँ सीताने आनन्दसे आशीर्वाद दिया। फिर भी हनुमानजीकी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने कहा—आपने मुझे आशीष तो बहुत दी, फिर भी हृदयमें एक इच्छा बाकी रह गयी है।

सीताजी—वत्स, जो चाहे सो माँग ले।

हनुमानजी—पहले जब मैं लङ्का आया था तो देखा था कि राक्षस-स्त्रियाँ आपको बहुत सताती थीं। आपको डराती थीं। अब राक्षसोंका तो प्रभुने विनाश कर दिया, किंतु ये राक्षस-स्त्रियाँ बाकी रह गयी हैं। मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा और आशीर्वादसे मैं इनका विनाश कर दूँ।

सीताजी—अरे, यह क्या माँग रहा है तू? ऐसा वरदान माँगना कोई ठीक बात नहीं है।

हनुमानजी—इन्होंने आपको बहुत सताया है। मैंने अपनी आँखोंसे देखा था।

माताजी हनुमानजीको उपदेश देने लगीं—बेटे, अपकारका बदला जो उपकारसे देता है, वही सन्त है। इन राक्षसियोंका कोई दोष नहीं है। वे तो रावणकी आज्ञाके कारण ही मुझे

सताती थीं। वह दुःख तो मेरे ही कर्मोंका फल था। मैंने लक्ष्मणका अपमान किया था, अतः दुःखी होना पड़ा। मैं तो सोचती हूँ कि इन राक्षसियोंको वर देकर अयोध्या ले चलूँ। मैं वैसा आशीर्वाद तुम्हें नहीं दे सकती।

हनुमानजीने वन्दन करते हुए कहा—माताजी, आपके सिवाय ऐसी दया तो कोई नहीं कर सकता।

राक्षसोंके लिए राम कठोर थे किंतु राक्षसियोंके लिए सीताजी दयालु थीं। राक्षसियोंको सीताजीने आशीर्वाद दिया। सीताजी जैसी दयालु स्त्री कोई हुई ही नहीं है। वे साक्षात् दयाकी मूर्त्ति हैं। माताजीके गुणोंको याद करनेसे लगता है, रामकी अपेक्षा सीताजी श्रेष्ठ हैं।

जब दशरथने रामको छोड़ना नहीं चाहा तो उन्हें वसिष्ठजी समझाने लगे। दशरथको उनमें पूर्णतः विश्वास था। वे सद्गुरुके अधीन थे। वसिष्ठने दशरथजीसे कहा—राजकुमार रामके जन्माक्षर बता रहे हैं कि इस वर्षमें विवाहका योग है। इस वर्षमें इन चारों कुमारोंके विवाहका योग है। अतः इन्हें भेजनेमें कोई बाधा नहीं है। सब कुशल-मङ्गल होगा। मैं तो मानता हूँ कि विश्वामित्र इन्हें विवाहके हेतु ही लेने आये हैं।

विवाहकी बात सुनकर दशरथ हर्षित हो गये। क्या मेरे रामका विवाह होगा? तब तो मैं आज ही भेजनेके लिए तैयार हूँ और राम-लक्ष्मणको राजसभामें बुलाया गया। उन्होंने आकर प्रणाम किया।

दशरथ—तुम दोनोंको विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिए जाना है।

राम—जैसी आपकी आज्ञा।

राम-लक्ष्मण तैयार होकर माता कौशल्यासे आज्ञा-आशीर्वाद लेने गये। कौशल्याने भी पिताकी आज्ञाका पालन करनेको कहा। नारदजीने कौशल्याको पहलेसे ही राम-लक्ष्मणके विवाहके योगकी बात बता दी थी।

राम-कृष्णको माखन और शक्करसे बड़ा प्रेम है। जीवनको मधुर बनाना। जीवनमें सद्गुणसे ही मिठास आती है। सभीको मान दोगे तो तुम्हारा अपना जीवन भी शक्कर-सा मीठा और मधुर बनेगा। सभीको मानका दान करना उत्तम है। दूसरोंको मान देनेसे और अपने जीवनमें संयम बढ़ानेसे जीवन मधुर और उत्तम बनता है।

जिसके जीवनमें मधुरता नहीं है, वह भगवान्‌को प्यारा नहीं हो सकता। विद्यादान, ज्ञानदान और द्रव्यदानसे भी मानदान अधिक श्रेष्ठ है। मानदान श्रेष्ठ दान है। इसमें एक पैसे तकका व्यय नहीं है। सभीको मान दो। जो कर्कश वाणी नहीं बोलता है, जो किसीका अहित नहीं करता है, उसके जीवनमें शक्कर-सी मिठास आती है।

कौशल्याने विश्वामित्रसे कहा—मेरे रामको माखन मिश्री खिलाइयेगा। नहीं तो वह दुर्बल हो जायेगा।

जिस समय विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मण चल दिये, उस समय वे कितने शोभायमान थे!

अरुन नयन उर बाहु विसाला।
नील जलज तनु श्याम तमाला।।
कटि पट पीत कसे वर भाथा।
रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा।।

विश्वामित्र अर्थात् सारे विश्वके मित्र। विश्वस्य मित्रः सः विश्वामित्रः। पाणिनीने यह अर्थ दिया है। विश्वामित्रने आशीर्वाद दिया। पाणिनीका व्याकरण अमर होगा। विश्व जिसका मित्र है, वही विश्वामित्र है। जगत्का मित्र है जीव। मनुष्य अर्थात् जीव मित्र बनता है तो शब्द, ब्रह्म उसके पीछे-पीछे आता है और उसके पीछे परब्रह्म भी आता है। तुम जगत्-मित्र बनोगे तो राम-लक्ष्मण तुम्हारे पीछे-पीछे आयेंगे। राम ही परब्रह्म है, शब्दब्रह्म है। शब्द-ब्रह्मके बिना परब्रह्म प्रगट नहीं होता।

विश्वामित्रके पीछे-पीछे राम-लक्ष्मण चल दिये। मार्गमें ताड़काका उद्धार किया। विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको बला और अतिबला विद्या दी थीं सो उन्हें भूख-प्यास लगती ही नही थीं।

वे सब आश्रममें आये। रामने विश्वामित्रसे कहा—गुरुजी, आप अपने यज्ञका आरम्भ करें। मैं उसकी रक्षा करूँगा।

जनकपुरीके निकट ऋषि विश्वामित्रका सिद्धाश्रम है। वहाँ वे रास और यज्ञ करते हैं।

विशाल यज्ञमण्डप बनाया गया है। राम-लक्ष्मण धनुष-बाणसे सज्जित होकर यज्ञकी रक्षा करने खड़े हैं

द्वारिकामें द्वारिकानाथ खड़े हैं।
डाकोरमें रणछोड़रायजी खड़े हैं।
श्रीनाथजीमें गोवर्धननाथ खड़े हैं।
पंढरपुरमें विट्ठलनाथजी खड़े हैं

भगवान् कहते हैं—जब जीव मेरे दर्शनके हेतु आता है तो मैं खड़ा होकर उसे दर्शन देता हूँ। मैं जीवसे मिलनेके लिए आतुर हूँ। मुझे प्रेमसे मिलनेके लिए जो भी आता है, उससे मिलनेको मैं भी आतुर हूँ। अपने वैष्णवोंसे, भक्तोंसे मिलनेकी प्रतीक्षामें मैं खड़ा हूँ। मैं खड़ा-खड़ा भक्तोंकी प्रतीक्षा करता हूँ। मुझसे विभक्त हुआ जीव मुझसे मिलनेके लिए कब आयेगा?

ईश्वरकी दृष्टि तो जीवकी ओर अखण्ड रूपसे है, किंतु जीव ही ईश्वरकी ओर दृष्टि नहीं करता है।

राम तो जीवको अपनानेके लिए तत्पर हैं, किंतु यह अभागा जीव ही उनसे मिलनेके लिए आतुर कहाँ है?

श्रीराम आजानुबाहु हैं। किसीने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—मेरे भक्त मुझसे मिलने आते हैं। उनमें यदि कोई भक्त मोटा हो तो उसे भी मैं बाहोंमें भर सकूं, इसलिए मैंने अपने हाथ लम्बे रख लिए हैं।

मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले भक्तोंको आलिङ्गन देनेके लिए मैंने अपने हाथ लम्बे रखे हैं।

राम, वानर आदि पशुओंको भी आलिङ्गन देते हैं। रामजी सभीसे प्रेम करते हैं। वे हमेशा धनुष-बाण अपने साथ रखते हैं। धनुष-बाणके बिना रामके दर्शन कहीं नहीं होते हैं। चाहे राज्यासन पर बैठे हों, चाहे अन्तःपुरमें सीताजीके पास, उनके हाथोंमें धनुष-बाण होते ही हैं। उपनिषद्में भी कहा है—'प्रणवो हि धनुः।' उपनिषद्में धनुषको ॐकारकी उपमा दी गई है। ॐकार अर्थात् ज्ञान। ज्ञान ही धनुष है।

धनुष, ज्ञानका स्वरूप है।

बाण, विवेक-स्वरूप है।

धनुष और बाण अर्थात् ज्ञान और विवेकसे सदा सज्जित रहो, क्योंकि कामरूपी राक्षस न जाने कब विघ्न करने आ जाये। काम-राक्षस तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, तुम्हें पराजित करने आ रहा है। रामकी भाँति धनुष-बाणसे सदा सज्जित रहना। ज्ञान और विवेकको सतेज रखोगे तो राक्षस बाधा नहीं डाल सकेंगे। धनुष-बाणसे सज्जित रहोगे तो राक्षस भाग जायेंगे। जिसकी आँखोंमें पाप है, वही राक्षस है। राक्षस जीवमात्रके पीछे लगे हुए हैं। काम, लोभ, मोह आदि राक्षस ही हैं जो जीवमात्रको सताते हैं। जो प्रतिक्षण सावधान रहता है, उसे राक्षस मार नहीं सकते।

रामका स्वरूप अद्भुत है। शूर्पणखा राक्षसी थी फिर भी उसके मनमें रामको पति-स्वरूपमें पानेकी इच्छा जागी थी। हमारे हृदय तो उस राक्षसीसे भी कठोर हैं कि हमारे मनमें रामको पानेकी इच्छा ही नहीं होती है।

श्रीधर स्वामीने रामविजय-लीला-कथामें कहा है—यज्ञके चारों द्वारोंकी राम-लक्ष्मण चौकसी करते थे। उन्होंने इतने रूप धारण कर लिए थे कि सभी द्वारों पर राक्षसोंको इनकी उपस्थिति दिखाई देती थी।

विश्वामित्र आहुति देते थे यज्ञकुण्डमें और निहारते थे राम-लक्ष्मणको। श्रुति वर्णन करती है—अग्नि भगवान्‌का मुख है। परमात्मा अग्नि-मुखसे आहार करते हैं। अग्नि-ज्वाला प्रभुकी जिह्वा है। ब्राह्मणगण वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अग्निमें आहुति दे रहे हैं। विश्वामित्र राम-लक्ष्मण पर ही दृष्टि लगाये हुए यज्ञ कर रहे हैं।

मनकी मलिनताको दूर करनेके लिए यज्ञ किया जाना चाहिए। यज्ञ, स्वाध्याय, तप, ध्यानका फल है मनशुद्धि। मनशुद्धिका फल है परमात्माका दर्शन।

राक्षस जान गये कि विश्वामित्रने यज्ञका आरंभ किया है तो वे बाधा डालने आ पहुँचे। रामचन्द्रके बार-बार दर्शन होनेसे मारीचका स्वभाव बदल गया। जिसके दर्शनसे स्वभाव बदलता है, वही ईश्वर है। मारीचने सोचा कि विश्वामित्रके इस यज्ञमें विघ्न करना ठीक नहीं है। आज मेरे मनमें ऐसे विचार क्यों आ रहे हैं? शायद इन बालकोंको देखकर मेरा मन बदल गया है। आज मेरा मन मेरे बसमें नहीं हैं। इन बालकोंसे मिलनेकी इच्छा हो रही है। मारीच था तो राक्षस, फिर भी रामके दर्शनसे उसकी बुद्धि सुधर गई।

आजकलके लोग रामके दर्शनके लिए जाते तो हैं, किंतु दर्शनके बाद भी इनकी बुद्धि सुधर नहीं पाती है। रामके दशनके बाद भी बुद्धि न सुधरे तो मान लेना कि तुम राक्षससे भी अधम हो। रोज रामायण पढ़े, देवदर्शन करे फिर भी यदि जीवनमें संयम, सदाचार, सरलता न आ पाये तो मानो कि मारीचसे भी तुम गए बीते हो।

राम परमात्मा हैं। उनके प्रत्यक्ष दर्शनसे मारीचकी बुद्धि बदल जाय तो आश्चर्य ही क्या है? रामकी नकल करते-करते और रामका ही चिंतन करते-करते रावणका काम मरता है।

रामको याद करनेसे सारा जगत् मातृवत् दीखता है।

एकनाथ महाराजने राम-रावण-युद्धके समयका एक प्रसङ्ग लिखा है। गहरी नींदमें डूबे हुए कुम्भकर्णको जब जगाया गया तो उसने पूछा—मुझे क्यों जगाया गया है?

रावण—जानकीको लेकर युद्ध जो हो रहा है।

कुम्भकर्ण—तेरी इच्छा पूर्ण हुई?

रावण—नहीं।

कुम्भकर्ण—तू अपनी मायासे रामका रूप धारण करके सीताके पास जा। तुझे राम मान लेगी और तेरे वशमें हो जायेगी।

रावण—इस रामके पास कुछ जादू-सा लगता है। मैं उसका रूप धारण करनेके लिए उसके रूपका विचार करता हूँ कि तुरन्त मेरा मन ही बदल जाता है। जो रूप धारण करनेकी इच्छा होती है उसका विचार तो करना ही पड़ता है। जब मैं रामका रूप मायासे धारण करके देखता हूँ तो सीता मुझे माता-रूपसे दिखाई देती हैं। मेरे मनमें काम तक नहीं रह पाता।

तब कुम्भकर्ण कहने लगा—रामका मायावी रूप तेरे कामको मारता है। जिसका नकली रूप भी इतना प्रभावशाली है, उसका मूलरूप तो कितना अधिक प्रभावशाली होगा? अतः निश्चय ही राम परमेश्वर हैं। तू अतिशय कामी है, फिर भी रामके स्मरणसे निष्कामी बन जाता है। सो राम ईश्वर ही हैं। ऐसे रामके साथ वैर करना ठीक नहीं है। देवाधिदेवसे वैर करनेवाला तू मूर्ख ही है। मैं तेरी सहायता नहीं कर सकता। विभीषणकी भाँति मैं भी रामके चरणोंका आश्रय लूँगा।

रावण—मैं रामकी शत्रुभावसे भक्ति करता हूँ। यदि मैं अकेला ही भक्ति करूँ तो मात्र मेरा ही कल्याण होगा। किंतु शत्रुभाव रखूँ तो मेरे सारे वंशका कल्याण होगा। ये सभी राक्षस तामसी हैं। वे जप, तप, ध्यान, सेवा, पूजा तो कर नहीं सकते। रामचन्द्रके साथ शत्रुता होगी तो युद्ध होगा युद्ध होगा तो रामका प्रत्यक्ष दर्शन होगा और रामदर्शनसे हम सभीका उद्धार होगा। अपने सारे वंशके कल्याणके हेतु ही मैंने रामसे शत्रुता की है।

यज्ञ करते समय तुम भी अपने प्रत्येक द्वार पर राम-लक्ष्मणको बिठला देना। जप, कथाश्रवण, नारायणसे मानसिक मिलन आदि यज्ञ ही हैं, जो गरीबसे गरीब व्यक्ति भी कर सकता है।

कुछ यज्ञ ऐसे हैं, जिनके लिए कुलकी श्रेष्ठता और अत्यधिक धनकी आवश्यकता रहती है। विधुर और विधवाके लिए वे निषिद्ध हैं। प्रायश्चित्त भी करना पड़ता है। साधारण ब्राह्मण नहीं, अग्निहोत्री ब्राह्मण ही उन्हें कर सकते हैं। बहुत-सा धन खर्च करना पड़ता है। कुछ यज्ञोंके लिए देश-कालकी भी मर्यादा निर्दिष्ट है।

उपनिषद्में एक यज्ञ ऐसा बताया गया है, जो जाति-समय-स्थल आदिके किसी भी प्रकारके बन्धनके बिना किया जा सकता है। वह है जपयज्ञ। यह सभी यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। आँखसे दर्शन, कानसे श्रवण और मनसे स्मरण करते हुए जप करोगे तो समाधिकी अवस्था प्राप्त हो सकेगी। कृष्णमिलन महायज्ञ है।

कृष्णमिलन-यज्ञमें श्रद्धा पत्नी है, आत्मा यजमान है, शरीर यज्ञभूमि है और यज्ञफल है परमात्मा विष्णुसे मिलन। परमात्मासे मिलन महानतम यज्ञ है। जीवात्मा और परमात्माका मिलन महायज्ञ है।

यज्ञसे चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धिका फल है परमात्माकी प्राप्ति। सभी इन्द्रियाँ यज्ञमण्डपके द्वार हैं। इस यज्ञमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षस बाधा करनेके लिए आते हैं। इस महायज्ञमें विषयरूपी मारीच बाधा डालता है। द्वार पर राम-लक्ष्मणको स्थापित करोगे तो काम, क्रोध, वासनारूपी मारीच-सुबाहु विघ्न करने आ नहीं पायेंगे।

आँखोंमें, कानोंमें, मुखमें सभी इन्द्रियोंके द्वार पर राम-लक्ष्मणको बैठा दो। ऐसा करनेसे मारीच-विषय विघ्न नहीं कर सकेगा। मारीच शीघ्र मरता नहीं है। अपनी प्रत्येक इन्द्रियके द्वार पर राम-लक्ष्मणको, शब्दब्रह्मको, परब्रह्मको आसीन करोगे तभी काम-मारीच तुम्हारे यज्ञमें बाधारूप नहीं हो सकेगा। तभी तुम्हारा जीवनयज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा। माया-मारीचको रामचन्द्रजी विवेक–बाणसे मारते हैं।

जिसका चिंतन मात्र करनेसे कामका नाश होता है, वही ईश्वर है।

ज्ञानी महात्मा अपनी इन्द्रियोंके द्वार बन्द रखते हैं, जबकि वैष्णव जन द्वार पर राम-लक्ष्मणको पधराते हैं। भागवतका राहु और रामायणका मारीच-विषय—दोनों एकसे हैं, तुरन्त मरते ही नहीं हैं।

विश्वामित्रका यज्ञ समाप्त होने पर था कि जनकपुरसे निमन्त्रण-पत्रिका आयी कि सीताजीका स्वयम्बर होने जा रहा है। यज्ञादिसे निवृत्त होकर राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्र जनकपुरकी ओर निकल पड़े। मार्गमें अहिल्याका उद्धार करनेका प्रसंग आया। विश्वामित्रने रामसे एक शिलाको स्पर्श करनेकी आज्ञा की। इस शिलारूप अहिल्याका उद्धार करो।

राम सोचमें डूब गए। क्योंकि जो साधक है वह तो लकड़ीकी स्त्रीका भी स्पर्श नहीं करता है। 'न स्पृश्येत् दारवीमपि।' एकादश स्कन्धके एक श्लोकका यह चरण है।

रामने कहा—मैं इसे प्रणाम करता हूँ।

विश्वामित्र—प्रणाम करनेसे तो कुछ भी नहीं होगा।

राम—मैं चरणसे भी स्पर्श कर दूँ तो पापका भागी हूँगा।

राम पापसे डरते हैं। आजकल लोग पापसे डरते ही नहीं हैं। मन चाहे सो कर लेते हैं। पापसे डरकर चलोगे, तभी कल्याण होगा। पाप और ईश्वरसे डरोगे तो मन शुद्ध रहेगा।

मैं परस्त्रीको वंदन करता हूं, स्पर्श नहीं ।

राम परस्त्रीका और सीता परपुरुषका स्पर्श नहीं करती थीं ।

जहां तक हो सके, परपुरुष और परस्त्रीका स्पर्श करना नहीं चाहिए । ब्रह्मचर्यका यही आदर्श है ।

कवियोंने कल्पना की है । रामने अहल्याका चरणसे भी स्पर्श नहीं किया । बहती हुई हवाने रामके चरणोंकी धूलि उड़ाई जो उस शिला पर जा पड़ी । फलतः शिला अहल्या बन गई । एकनाथजीने भी यही कहा है । राम-चरणकी रजमें ऐसी शक्ति थी कि अहल्याका उद्धार हो गया ।

अहल्या अर्थात् बुद्धि । मात्र कामसुखका ही विचार करनेवाली बुद्धि जड़ पत्थर-सी बन जाती है । कोमल बुद्धि ही ईश्वरके पास जा सकती है, जड़ पत्थर-सी नहीं । कोमल बुद्धि ही कृष्ण-सेवामें द्रवित हो सकती है । कृष्ण-कीर्तनसे आज आनंद नहीं मिलता है क्योंकि काम-सुखका चिंतन करते रहनेसे बुद्धि पत्थर-सी हो गई है । जड़ बुद्धि चेतनमयी कैसे हो सकती है ? जब कोई सद्‌गुरु संत महात्मा मिल जाते हैं तभी । जब किसी पवित्र संतकी चरण-रज पावन करती है तभी । पत्थर-सी जड़ बुद्धि प्रभुकी चरणरजसे जागृत, चेतनायुक्त बनती है ।

अहल्या-बुद्धि रामचरण-रजसे शुद्ध, सचेतन बनी । अहल्याने प्रभुसे प्रार्थना की । मेरे पतिने मुझे शाप देकर ठीक ही किया था क्योंकि इसी कारणसे तो मैं आपका दर्शन पा सकी । उसी समय ऋषि गौतम भी वहां आए । उन्होंने भी भगवान् रामसे कहा—मेरी पत्नीका आपने उद्धार किया । मैं आपको आशीर्वाद देता हूं कि आपका विवाह सुंदर गुणवती कन्याके साथ हो ।

विश्वामित्र राम-लक्ष्मणको लेकर राजा जनककी राजसभामें आए । इन कुमारोंको देखकर जनक सोचने लगे कि ये ऋषिकुमार हैं या राजकुमार ।

उन्होंने विश्वामित्रसे पूछा—ये कौन हैं ?

विश्वामित्र —तुम तो महाज्ञानी हो । स्वयं ही निर्णय करो कि ये कौन हैं ।

जनकका एक और नाम है विदेह । जो देहयुक्त हो कर भी देहधर्मोंसे अस्पृश्य है वही विदेह है । विदेह—जीते-जी मुक्त । जनक तो शुकदेवजीके भी गुरु हैं ।

धर्मराज कहते हैं कि ब्रह्मानुभवमें जो विषयरसका भान भूल जाए, वही ज्ञानी है । आसक्ति और अभिमान जीवको बांधे रहते हैं । ज्ञानी इन दोनों का त्याग करते हैं ।

सभी इन्द्रियां अपने-अपने कार्य और अर्थमें काम करती हैं, ऐसा मान कर ज्ञानी किसी भी विषयमें आसक्त नहीं होते ।

इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।

इस जगत्‌में सब कुछ करते हुए भी वे तो ऐसी ही भावना रख कर काम करते हैं कि वे कुछ भी नहीं करते हैं ।

जनक राजाने त्राटक किया। ये कोई परब्रह्म हैं। जनक कहते हैं कि अपनी आँखोंसे मैं दूसरोंको देखता हूँ किंतु मेरा मन किसीकी भी ओर आकर्षित नहीं होता है, मुझमें वैराग्य भरा है। इन कुमारोंको देख कर मेरा मन आकर्षित हो रहा है। मेरे मनको ईश्वरके सिवा अन्य कोई भी आकर्षित नहीं कर सकता। सो ये अवश्य ही ईश्वर हैं। ईश्वर के बिना मेरा मन किसी भी विषयमें जा नहीं सकता। उन्हें अपने मन पर कितना विश्वास था!

जनक कहते हैं —

सहज बिरागरूप मन मोरा।
थकित होत जिमि चंद्र चकोरा॥

सो ये राम ही हैं— 'ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।'

जनक राजाने रामको पहचान लिया। उन्होंने कहा:—ये ऋषिकुमार नहीं हैं, राजकुमार भी नहीं है। वेद जिसका वर्णन नेति-नेति कह कर करते हैं, शंकर जिनका सदासर्वदा चिंतन करते हैं, वही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं ये।

ये राम मेरे मनको खींच रहे हैं। सो लगता है कि ये ईश्वर ही हैं। यदि ये प्रभु नहीं होते तो मेरे मनको खींच नहीं पाते।

कण्व मुनिके आश्रममें प्रथम मिलनके समय दुष्यंतने शकुंतलासे पूछा—कौन हो तुम ?

शकुंतला—मैं महर्षि कण्वकी कन्या हूँ।

दुष्यंत—तुम्हें देख कर मेरा मन चंचल हो गया है। वैसे तो मेरा मन पवित्र है। ब्राह्मणकन्या मेरे लिए माता समान है। तुम्हें देख कर मेरा मन चंचल हुआ है अतः मैं मानता हूँ कि तुम मेरी ही जातिकी हो। मेरा मन ही प्रमाण है इस बातका। प्रमाण अंतःकरण्य प्रवृत्यः। अपने मन पर उसे कितना विश्वास था।

शकुंतला—आप पवित्र हैं, महान् हैं। मेरे जनक हैं क्षत्रिय विश्वामित्र। कण्वऋषि तो मेरे पालक पिता हैं। मैं क्षत्रिय-कन्या ही हूँ।

जनकराजा कहने लगे—आज तक मैं निराकार ब्रह्मका चिंतन करता था। आज मेरा मन कह रहा है कि निराकार ब्रह्मका चिंतन छोड़ कर इस सगुण रामका ही चिंतन किया जाए तो अच्छा हो। मुझे अब लगता है कि निराकार नहीं, साकारका ध्यान करूँ। ये राम ईश्वर ही हैं।

विश्वामित्र कहने लगे—राजद, यह तो तुम्हारी दृष्टिका गुण है। ज्ञानी अभेदभावसे चिंतन करते हैं। तुम्हारी वृत्ति ब्रह्माकार है सो तुम्हें ऐसा लगता है अन्यथा ये तो दशरथ राजाके पुत्र हैं।

जनक तो महाज्ञानी हैं। उनकी प्रशंसा गीतामें श्रीकृष्णने भी की है—

कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः।

जनक राजाने कर्म द्वारा ही परम सिद्धि प्राप्त की थी, अन्यथा गीतामें और किसीकी भी प्रशंसा नहीं की गई है।

विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण जनकपुरीके बाहर एक उद्यानमें रहे हैं। सायंकालकी संध्योपासना भी नियमित रीतिसे करते हैं। विश्वामित्रके साथ उन्होंने सत्संग किया। रात्रिके समय वे विश्वामित्रकी चरणसेवा करने लगे।

आशीर्वाद माँगनेसे नहीं, अपने आप हृदयसे ही मिल जाते हैं।

विश्वामित्रने भी इन राजकुमारोंको हृदयसे आशीर्वाद दिया—कल्याण हो तुम्हारा।

लक्ष्मण रामकी सेवा कर रहे हैं। वे सोचने लगे कि संभवतः मैं कलसे चरणसेवाका लाभ पा न सकूँगा। कल बड़े भैयाका विवाह होगा, अतः उनकी चरणसेवाका अधिकार अब तो भाभीको ही मिलेगा। सेवा करनेका यह मेरा अंतिम दिन है। कलसे मैं सेवा कर न पाऊँगा। रामकी सेवाके बिना मुझे चैन नहीं मिलता।

सेवा और स्मरणके बिना जिसे चैन न मिले, वही सच्चा वैष्णव है। जो सेवा और स्मरणके हेतु जीता है, वही वैष्णव है।

लक्ष्मणको बड़ा दुःख होने लगा कि अब सेवाका अधिकार और अवसर छीना जाएगा। उनका मन अकुलाने लगा। उनका हृदय भर आया। आँखोंसे आँसूकी बौछार होने लगी। प्रभुने देखा कि उनका लक्ष्मण रो रहा है। वे लक्ष्मणसे रोनेका कारण पूछने लगे। क्यों रोते हो? क्या माताकी याद तो नहीं आई है? तुम रोते हो तो मुझे बड़ा दुःख होता है।

रामचंद्रका प्रेम आदर्श प्रेम था। लक्ष्मण संकोचवश बोल नहीं पा रहे थे। राम, लक्ष्मणके हृदयको जानते हैं। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—भाई, मेरे विवाहके बाद दाहिने चरणकी सेवा तुम करना और बाएँ चरणकी सेवा सीता करेगी। तुम्हें देखे बिना मुझे नींद ही नहीं आती। विवाहके बाद भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। चाहे तेरी भाभीको छोड़ना पड़े, तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।

राम सभीके अंतर्यामी है किंतु लक्ष्मण तो रामके भी अंतर्यामी हैं।

तो ऐसा था रामका बंधु-प्रेम।

दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ तो लक्ष्मणजी सबसे पहले उठ गए।

स्त्रीका धर्म है कि पतिके भोजनके पहले भोजन और शयन के पहले शयन न करे। यही धर्म सेवकका भी है।

विश्वामित्र, शालिग्रामकी पूजा करते थे सो राम-लक्ष्मणको पूजाके लिए पुष्प-तुलसीदल आदि लेने के लिए उन्होंने उद्यानमें भेजा।

राम-लक्ष्मण पुष्प और तुलसीदल एकत्र करनेके लिए उद्यानमें घूमने लगे। मालीको चाचा कहकर पुकारा। मालीने पीछे देखा तो राम-लक्ष्मण उसे बुला रहे थे। उसने कहा, मैं तो एक अधम सेवक हूँ। रामने कहा, सेवक भले हों किंतु हमसे तो आप बड़े हैं। रामकी विनयसे माली उन्हें बार-बार नमन करने लगा।

राम सभीको एक समान मानते थे। अतः उनके वनगमनमें अयोध्याकी समग्र प्रजाका अश्रुश्रावण कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

राम-लक्ष्मण तुलसीको भी वंदन करते हैं। तुलसीकी नित्य वंदना करनेवालेको कभी बीमार नहीं होना पड़ता।

प्रणाम किए बिना कभी तुलसीदल न लो। उसे नाखूनसे मत तोड़ो। जब भी तुलसी-दल चुननेका प्रसंग आए, उसे प्रणाम करके कहो कि ठाकुरजीके चरणारविंदमें चढ़ानेके लिए चुननेकी अनुमति दें। तुलसी तो राधाजीका अवतार हैं। सायंकालके बाद तुलसीका स्पर्श न करो। स्त्रीका धर्म है कि प्रतिदिन तुलसी और पार्वतीकी पूजा करे। ऐसा करनेसे सौभाग्य अखंडित रहता है।

उसी समय उद्यानमें सीताजी भी आईं। राम और सीताकी दृष्टिका मिलन हुआ। इस दृष्टिमिलनकी कथा मात्र तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें ही है। वाल्मीकि रामायण, भावार्थ रामायण, आनंद रामायण, अध्यात्म रामायण आदिमें नहीं है।

सीताजीने जगदंबाको प्रणाम करके राम जैसा पति माँगा। सीताजी प्रार्थना करती हैं—

जय जय गिरिबर राजकिशोरी।
जय महेश मुखचंद चकोरी॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होंहिं सुखारे॥

राम-लक्ष्मण पुष्पादि लेकर वापस आए और विश्वामित्रसे कहा कि जिस कन्याका स्वयंवर होने जा रहा है, वह भी उद्यानमें आई हुई थी।

रामका स्वभाव बड़ा सरल है। उनके मनमें छलकपट नहीं है।

'सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं।'

विश्वामित्रने कहा—वत्स, मैं जानता हूँ कि इस समय प्रतिदिन वह उद्यानमें आती है और इसीलिए तो मैंने तुम्हें वहाँ भेजा था कि वह तुम्हें देख ले।

स्वयंवरका समय आया। राजा जनकने राजसभामें कहा—मेरी पुत्री जब तीन वर्षकी थी, तब इस धनुष का घोड़ा बना कर खेलती रहती थी। इस धनुषका भंग जो करेगा, उससे मैं अपनी पुत्रीका विवाह करूँगा।

इस सभामें रावण भी उपस्थित था। बिना कारण क्लेश करे, अपनी जयकार स्वयं ही करे, जो स्वयं आत्मप्रशंसा करता फिरे, वही रावण है। इस सभामें भी वह अपनी जयकार कराने लगा। बिना कारण ही उसने राजा जनकसे झगड़ा मोल लिया। धनुष उठाने का प्रयत्न करता हुआ वह अपनी जयकार कराने लगा।

अपनी प्रशंसा अपने आप ही करे, वह रावण ही है।

पार्वतीने शिवजीसे कहा—आपका शिष्य रावण बहुत अभिमानी हो गया है। कुछ ऐसा उपाय करें कि वह धनुष उठा ही न सके। तीन सौ शिव-सेवक सूक्ष्मरूप धारण करके उस धनुष पर बैठ गए।

रावण धनुष न उठा सका और भरी सभामें उसकी शेखी धूलमें मिल गई । ऐसा होने पर अन्य सभी राजा भी सावधान हो गए । जब महाबलवान् रावणको मुँहकी खानी पड़ी तो हमारी तो हस्ती ही क्या है। धनुष उठानेसे सब कतराने लगे।

विश्वामित्रने रामचंद्रको धनुष उठानेकी आज्ञा दी तो वे उन्हें प्रणाम करके आशीर्वाद लेकर धनुष-भंगके लिए चल पड़े।

सीताजी प्रार्थना करने लगीं कि इस बार धनुष पुष्प-सा हो जाय । रामने धनुषको वंदन करके उठाया और डोरी बाँधनेके लिए खींचा ही था कि उसके दो टुकड़े हो गए।

विश्वामित्रने कहा—अब सीताजी बाहर आएँ। हम उनका दर्शन करेंगे। सीताजी वरमाला लेकर बाहर आईं ।

इधर रामचंद्र सोचमें डूब गए कि मातापिताकी आज्ञा के बिना विवाह कैसे करूँ। सुंदर राजकन्या विजयमाला पहनाने आई किंतु मातापिताकी आज्ञाके बिना रामचंद्र उसे स्वीकारनेके लिए तैयार नहीं हैं। सीताजी हार पहनानेका प्रयत्न तो कर रही हैं किंतु रामचंद्र उनसे कुछ अधिक लम्बे हैं सो पहना नहीं पा रही हैं। हार पहनानेके लिए उन्होंने जो हाथ बढ़ाए तो कंगनमें रामका प्रतिबिंब दीखने लगा तो वे देखनेमें तल्लीन हो गईं। रामचंद्र शिर नवाते ही नहीं थे। ऐसा देखकर विश्वामित्रने पास आकर कारण पूछा। तो रामने कहा—मेरा लक्ष्मण अविवाहित है। उसका भी तो विवाह होना चाहिए और वह भी मुझसे पहले। राम अपने लघु बंधुको भूलते नहीं है।

विश्वामित्र कहते हैं—मेरे रामकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह कम ही है।

राजा जनकने घोषणा की कि उनकी दूसरी पुत्रीका लक्ष्मणसे विवाह किया जाएगा। रामजीको आनंद हुआ और सीताजीकी वरमालाको उन्होंने स्वीकार कर लिया।

जनक राजाके सेवक कुमकुम-पत्रिका लेकर अयोध्या आए। दशरथजीने पत्रिका पढ़ी। वैदिक विधिपूर्वक विवाह संपन्न करनेके हेतु अयोध्याकी प्रजाके साथ जनकपुर आनेका उनको निमंत्रण था। दशरथजीका हृदय आनंदसे भर गया। वे जनक-सेवकोंको पुरस्कार देने लगे तो उन सेवकोंने कहा—हम इसको स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि हम तो कन्यापक्षके हैं।

प्रातःकालमें वसिष्ठ तथा अयोध्याकी प्रजाके साथ राजा दशरथने जनकपुरीकी दिशामें प्रयाण किया। मार्गमें शकुन भी अच्छे हुए। दो पवित्र ब्राह्मण मिले तथा सिर पर पानीकी मटकी और बालकको लेकर आ रही सौभाग्यवती नारी भी मिली।

बरात जनकपुरी आ पहुँची। जनक और दशरथका मिलन हुआ। राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्र भी आए। दोनों पुत्रोंने पिताको प्रणाम किया।

नारदजीने विवाहका मुहूर्त बताया—मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पंचमी और समय गोरज-वेला।

बरात धनतेरसके दिन आई थी और वसंतपंचमीके बाद लौटी थी।

रघुनाथजीकी बारातमें कामदेव घोड़ा बनकर आया। काम-अश्व पर बैठ कर राम विवाह करने गए। जब साधारण मनुष्य विवाह करने जाता है तो काम उसी पर सवार हो जाता है।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—राजन्, परमानंद हुआ है।

भगवान्को सुवर्ण-रचित सिंहासन पर विराजमान कराया गया।

एक-एक राजकुमारको एक-एक कन्याका दान देना है । सभी ब्राह्मण मंगलाष्टक बोलने लगे ।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ॥
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं ।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥

विधिपूर्वक रामसीताका विवाह किया गया । जनकने कहा—मैंने कन्याका दान दिया है ।

राम—'प्रतिगृह्णामि ।' मैं स्वीकारता हूँ । राम सरल स्वभाववाले हैं ।

अब लक्ष्मणजीकी बारी आई । लक्ष्मणजीने कहा—हम क्षत्रिय हैं । हम दान लेते नहीं, देते हैं । मैं प्रतिगृह्णामि नहीं बोलूंगा ।

ब्राह्मण—आपके बड़े भाईने कहा है ।

लक्ष्मण—वे तो भोले हैं । मैं नहीं बोलंगा ।

रामचंद्र उसे समझाने लगे । लक्ष्मण, यह तो बोलना ही पड़ता है ।

लक्ष्मण—आप और जो चाहे सो करूँगा किंतु मैं कन्याका दानके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकता ।

विश्वामित्रने उसे समझाया कि उन शब्दोंके उच्चारणके बिना विवाहविधि पूर्ण नहीं कही जा सकती । गुरुजीके समझाने पर लक्ष्मणने कहा—'प्रतिगृह्णामि ।'

विवाहविधि संपन्न हो गई । वरवधू भोजन करने लगे । भोजनके समय यदि कुछ विनोद किया जाय तो भोजन ठीक तरहसे होता है । जनकपुरीकी स्त्रियाँ आसपास बैठकर विनोद कर रही हैं । ये युवक भाग्यशाली हैं । अन्यथा ऐसी रूपवती कन्याएँ उन्हें मिलती ही कहाँ ? दशरथजीको तो कोई संतान ही नहीं थी । यह तो अच्छा हुआ कि उनकी पत्नियोंने क्षीरका प्रसाद खाया तो वृद्धावस्थामें भी उन्हें संतान प्राप्त हुई ।

लक्ष्मणजीसे यह विनोद सहा न गया । उन्होंने कहा—अयोध्यामें तो क्षीरके आहारसे संतान प्राप्त होती हैं किंतु जनकपुरीमें आकर हमने यह जाना कि यहाँ तो स्त्रियोंको ऐसा भी नहीं करना पड़ता है । यहाँ तो धरतीमेंसे ही संतान उत्पन्न होती हैं ।

विवाहके बाद 'एकी-बेकी' का खेल रखा जाता है । जब तक पति-पत्नीका स्वभाव एक न हो सके, तब तक विवाहित जीवन सफल नहीं हो सकता । दो तन किंतु एक मन ही तो विवाह है । विवाहके बाद दोनों एक हो जाते हैं । अद्वैतकी सिद्धिके लिए विवाह पहला सोपान है ।

सीताजीने मुट्ठीमें कौड़ियां छिपाकर पूछा—एकी या बेकी ? (अर्थात् मुट्ठीमें एक कौड़ी है या दो ?) रामने कहा—एकी । सखियाँ हँसने लगीं । कहने लगीं कि आज तक अकेले थे, अब तो बेकी (दो) हो गए, फिर भी कहते हो एकी ।

लक्ष्मणने कहा—बड़े भैयाकी बात बिलकुल सही है । उनकी भाषामें गूढ़ार्थ है। विवाहके बाद बेको (दो व्यक्ति) एकी (एक) हो जाती है। राम और सीता अब दो नहीं, एक हैं, अभिन्न हैं।

सभीको आनंद हुआ किंतु आनंदकी तृप्ति नहीं हुई। कनक-सिंहासन पर रामचंद्रजी और सीताजी विराजमान हैं।

राम-चरित अनंत है। रामकी विवाह-कथा जो प्रेमसे सुनेगा, उसका सदा मंगल होगा।

विवाहकी सभी विधियाँ पूर्ण होनेके बाद रंग-महोत्सव हुआ और अब सभीने अयोध्याकी दिशामें प्रयाण किया।

चारों भाइयोंका विवाह हो गया। आज मेरे आँगनमें तो चार-चार लक्ष्मी-नारायण आए हैं, ऐसा मानकर कौशल्याने पूजा आदि विधिसे उनका हार्दिक स्वागत किया।

साक्षात् महालक्ष्मी सीताजी जनकपुरी छोड़ कर जा रही हैं। मेरे जानेके बाद इन लोगोंका क्या होगा ? माताजीने अपने आँचलमें चावल भर कर चारों ओर बिखेर दिये। आज भी मिथिलामें चावल बहुत पकते हैं।

अयोध्याकी प्रजा सीतारामका दर्शन कर रही है। अतिशय आनंद हुआ। विश्वामित्रका भी बड़ा सम्मान किया गया। घर आने पर राजा दशरथने रानियोंके समक्ष जनक राजाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

कन्याके (वधूके) माता-पिताकी प्रशंसा करनेसे वह प्रसन्न रहेगी। तुम प्रेम करोगे तो लोग भी तुमसे प्रेम करेंगे। जनक राजाकी प्रशंसा सीताजीने भी सुनी।

दशरथजीने कहा—यह परायी पुत्री अब हमारे घर आई है। जिस प्रकार हमारी आँखोंकी रक्षा पलकें करती है, उसी प्रकार सीताजीकी भी रक्षा करना।

वधू लरिकनीं पर घर आईं ।
राखेहु नयन पलककी नाईं ॥

सूतजी सावधान करते हैं।

आनंदके दिन कुछ शीघ्र ही बीत जाते हैं। रामचंद्रजी २७ वर्षके हुए और सीताजी १८ वर्षकी।

एक दिन राजा दशरथजी राजसभामें विराजमान थे। उनका मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया। दर्पणमें देखा तो मुकुटके साथ-साथ उन्होंने यह भी देखा कि उनके कानके कुछ केश श्वेत हो चले हैं। कानके केश श्वेत होने लगें तो मान लो कि वृद्धावस्था बहुत बढ़ चली है। दशरथने सोचा कि ये श्वेत केश मुझे उपदेश दे रहे हैं कि तुम अब अतिशय वृद्ध हो गए हो। रामका राज्याभिषेक क्यों नहीं करते हो ? राम-सीताका राज्याभिषेक मैं अपनी ही आँखोंके आगे कर लूँ तो अच्छा रहेगा। वैसे तो मेरी अन्य सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गई हैं किंतु यही एक बाकी रह गई है।

इच्छाओंका कोई अंत तो है नहीं। सो इनका त्याग करके भगवद्-भजन करना उत्तम है।

दशरथ राजाकी इच्छाके विरुद्ध कोई क्या बोल सकता है ? दशरथका राज्य वैसे तो प्रजातंत्र ही है। मंत्रीगण और महाजनों की अनुमतिके विना रामका राज्याभिषेक किया नहीं जा सकता। प्रजाकी भी इच्छा थी कि राम राजा बनें। राजा दशरथने मंत्रीगण और महाजनोंसे कहा, यदि आप अनुमति दें तो राजपद देनेकी विधि हम करें।

मंत्री सुमंतने कहा—धन्य है। हम भी वही चाहते थे किंतु संकोचवश बोल नहीं पाते थे।

उसी समय राजसभामें वसिष्ठजीका आगमन हुआ। सभीने उनका सत्कार किया। दशरथने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—प्रजाकी इच्छा है कि रामका राज्याभिषेक किया जाय। आपकी हम आज्ञा चाहते हैं।

वसिष्ठजी—राजन्, विचार तो अच्छा है।

दशरथजी—महाराज, कोई शुभ मुहूर्त बताइए।

वसिष्ठजीने सोचा कि आजका मुहूर्त बताऊँ किंतु वे जानते थे कि आज उनका राज्याभिषेक नहीं हो पाएगा। सो उन्होंने कहा—राम जिस दिन, जब भी राज्यपद ग्रहण करें वही श्रेष्ठ दिन है।

वसिष्ठजीकी गूढार्थ वाणी दशरथजी समझ नहीं पाए। उन्होंने तो अगले ही दिन राज्याभिषेक करना चाहा। उन्होंने मंत्रीगणसे राज्यभिषेककी तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी।

मंत्री सुमंतने कहा—राजन्, सभी तैयारी हो चुकी है।

दशरथजी—वसिष्ठजी, रामको यह समाचार आप ही दें तो अच्छा हो। आप कुलगुरु हैं।

तो वसिष्ठजी रामचंद्रके आवासमें पधारे। रामने कहा—आपने मेरे यहाँ पधार कर मुझे पावन कर दिया।

वसिष्ठजी—तुमतो विनयकी मूर्ति हो, अतः ऐसी बातें स्वाभाविक हैं। कल तुम्हारा राज्याभिषेक होगा। राज्याभिषेककी बात सुनकर सभी लोग आनंदित हो गए किंतु राम कुछ उदास हो गए। वे वसिष्ठजीसे पूछने लगे—क्या मुझे अकेले ही राजा बनना है।

वसिष्ठजी—राजा तो एक ही होता है।

रामजी—नहीं, नहीं। हम चारों भाइयोंका राज्याभिषेक होना चाहिए। मेरे भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको भी राजा बनाइए।

वसिष्ठने मंद-मंद स्मित करते हुए कहा—मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि राजा तो एक ही व्यक्तिको बनाया जा सकता है। जो ज्येष्ठ हो, वही राजा बन सकता है और तुम ज्येष्ठ हो। सभीकी यही इच्छा है कि सीताजीके साथ तुम्हारा राज्याभिषेक किया जाय। कलसे रामराज्यका आरंभ होगा।

वहाँ लक्ष्मणजी आए। रामने उनसे कहा—भाई, पिताजी मुझे कल राजा बनाने जा रहे हैं। मैं तो नाममात्रका राजा रहूँगा, अन्यथा राज्य तो तुम सभी का है।

राम सभीके अंतर्यामी हैं किंतु लक्ष्मण रामके भी अंतर्यामी हैं । रामको लक्ष्मण बहुत प्रिय हैं, तभी वे कहते हैं, लक्ष्मण, वह राजलक्ष्मी तुम्हारी ही है । तुम जैसा कहोगे वैसा ही होगा। लक्ष्मणको अत्यंत आनंद हुआ । उसे स्वयं तो राजा होनेकी इच्छा थी ही नहीं । बड़े भैया सिंहासन पर विराजेंगे और मैं चमर लेकर उनकी सेवा करूँगा । लक्ष्मणका बंधुप्रेम दिव्य है ।

आज सारे नगरको सुशोभित किया गया है । वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार दशरथने भी आज्ञा दी । हृदय आनंदसे छलक रहा है । दशरथके राज्यकालकी यह अंतिम राजसभा है । यह तो सूर्यवंशका पवित्र सिंहासन है । जिस राज्यासन पर कभी रघु, भगीरथ, दिलीप आदि भी विराजमान हुए थे, उसे उन्होंने प्रणाम करते हुए कहा—आज तक मैं तुम्हारी गोदमें था । कल मेरा राम वहाँ बैठेगा । उसकी रक्षा करना ।

सारी अयोध्यामें बात फैल गई । सारे नगरमें आनंदकी लहर दौड़ पड़ी किंतु देवोंको दुःख हुआ । यदि राम कल राज्यपद ग्रहण करेंगे तो रावणका नाश कौन करेगा ? रावण और उसके राक्षस बहुत सता रहे हैं । देवोंने विघ्नेश्वरी देवीका आवाहन किया । माताजी पधारीं ।

देवोंने विघ्नेश्वरी देवीसे कहा—अयोध्यामें जा कर रामके राज्याभिषेक-प्रसंगमें कुछ बाधा उपस्थित कीजिए । राम तो सुखदुःखसे परे हैं । वे तो आनंदरूप ही हैं और दशरथकी भी सद्गति होने वाली है ।

महात्माओंने कहा है—किसीका संपूर्ण सुख तो कालसे भी देखा नहीं जाता । दशरथ राजाके सुखको कालकी अशुभ नजर लग गई ।

कालने माता विघ्नेश्वरीमें प्रवेश किया । विघ्नेश्वरी सोचने लगी कि अब क्या करूँ । किसके शरीरमें प्रवेश करूँ ? सोचते हुए उनके मनमें मंथरा की याद आ गई । मंथराका जन्म कैकेय देश में हुआ था । विघ्नेश्वरीने मंथरामें प्रवेश किया । मंथरा अयोध्या नगरीमें घूमती हुई नगरका साज-सिंगार देखने लगी । उसने किसीसे पूछा कि यह कौन-से उत्सवकी तैयारी चल रही है । लोगोंने कहा—क्या तुझे अभी तक शुभ समाचार मिले ही नहीं हैं ? कल राजकुमार रामचंद्रजीका राज्याभिषेक होने जा रहा है ।

महात्मा कहते हैं कि कौशल्यासे एक भूल हो गई । जब एक दासी दौड़ती हुई आई और कौशल्याको राज्याभिषेकका समाचार सुनाया तो उन्होंने आनंदित होकर दासीको एक मोती का हार दिया और कहा कि कल मेरा पुत्र राम राजा बनेगा तो तुम्हें दो-तीन गाँवकी जागीर देगा । राम तुम्हें मुझ-सा ही सम्मान देगा ।

दासी आनंदभरी घरकी ओर जाने लगी तो रास्तेमें मंथरा मिली । मंथराने आनंदका कारण पूछा । दासीने कहा—कल राम राजा बनेंगे । देख तो सही, माता कौशल्याने मुझे यह मोतीमाला दी है । राजा राम कल मुझे दो गाँवकी जागीर देंगे । मैं कौशल्याकी दासी जो हूँ । तुम्हें तो कुछ भी नहीं मिला ।

परमार्थमें यदि कोई भूल हो जाए तो भगवान् शायद क्षमा कर देते हैं किंतु व्यवहारकी छोटी-सी भूल भी लोग क्षमा नहीं कर सकते । परमात्मा बड़ी भूल भी क्षमा कर देते हैं । व्यवहार बड़ा कठोर है । व्यवहारमें अत्यंत सावधान रहना चाहिए ।

कौशल्याने अपनी दासीको तो बहुत कुछ दिया किंतु अपनी सखियोंको दासियोंको कुछ नहीं दिया । मंथरा आदिको भी कुछ-न-कुछ दिया जाता तो वह विघ्न टल सकता था ।

व्यवहार करो किंतु व्यवहारमें ही डूब न जाना। जब तक साधु-महात्माको मुट्ठी भर अन्नकी जरूरत रहती है, तब तक उन्हें भी गृहस्थकी भाँति ही व्यवहार करना पड़ता है । जब तक शरीर है, व्यवहार छोड़ा नहीं जा सकता। व्यवहार करो किंतु उससे परे रह कर।

व्यवहार करते समय आत्मस्वरूपसे संबंध न रखा जाए तो पाप होता है । मनके दो भेद हैं—सूक्ष्म और स्थूल। मनका स्थूल अंश चाहे व्यवहारसे लगा रहे किंतु उसके सूक्ष्म अंशको तो भगवान्से ही लगाए रखना चाहिए। जब पनिहारी अपने सिर पर पानीका घड़ा उठाए चलती है, तब उसका स्थूल मन सखियोंकी बातोंमें लगा रहता है किंतु सूक्ष्म मन तो पानीके घड़ेमें ही अटका रहता है।

परमार्थ सरल है किंतु सांसारिक व्यवहार बड़ा संकुल है । व्यावहारिक कामकाजके समय भगवान्को कभी न भूलना।

जिस प्रकार स्त्री अपने बालकमें अपना सूक्ष्म मन रख कर घरका कार्यभार सँभालती है, उसी प्रकार सूक्ष्म मनको परमेश्वरके साथ जोड़ कर व्यवहार करोगे तो सफल होगे।

कौशल्याकी दासीने मंथराको ताना मारा तो उसके दिलमें मत्सर जाग उठा। वह ईर्ष्याकी अग्निमें जलने लगी। वह कैकेयीके पास आई और स्त्री-चरित्र शुरू कर दिया। कैकेयीके आगे वह जोर-जोर से रोने लगी। कैकेयीने पूछा—क्यों रोती है री तू ? क्या लक्ष्मणने तुम्हें कोई सजा दी है क्या ?

मंथरा तो बिना कुछ कहे-सुने रोती ही जा रही थी । कैकेयीके हृदयमें रामके लिए स्नेह है सो वह रामका कुशल-मंगल पूछती है । राम कुशल तो है न ? वैसे तो पतिकी कुशलताकी पूछताछ पहले करनी चाहिए किंतु राम पर अतिशय स्नेह है, अतः उन्हींके समाचार पूछ रही है।

मंथरा कहने लगी—हाँ, राम तो आनंदमें ही हैं। आनंदमें क्यों न हो ? कल उनका राज्याभिषेक होने जा रहा है। कैकेयीने मंथरासे यह समाचार सुनकर उसे मालाका उपहार दिया। कैकेयीके मनमें अभी तक कलिने प्रवेश पाया नहीं था किंतु मंथराने तो वह माला फेंक दी। सभी आनंदित थे, किंतु मंथरा तो बेचैन थी।

कैकेयीने कहा—तू तो मूर्ख है । सूर्यवंशकी यही परंपरा है कि ज्येष्ठ पुत्र राजाका पद पाए। मैंने कई बार रामकी परीक्षा की है। वे कौशल्यासे भी बढ़कर प्रेम मुझसे करते हैं।

कैकेयी तो भोली है। मंथराका स्पर्श होने पर ही उसके भी मनमें पाप जागेगा । मंथराने स्त्रीचरित्र शुरू कर दिया। रोती हुई वह धरती पर जा गिरी और सिसकियाँ लेती हुई कहने लगी—चाहे राम राजा बने या भरत। मुझे क्या लेना-देना है ? मैं तो दासीकी दासी ही तो रहूँगी। जिसकी भी भलाई करना चाहती हूँ वही मेरे विरुद्ध हो जाता है । मेरा तो कोई स्वार्थ है ही नहीं। बात तो तुम्हारी ही बिगड़ रही है। मैं चाहती हूँ कि तेरी बिगड़ने जा रही बातको सुधार दूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा पड़ गया है।

कैकेयी मंथराकी कपटभरी वाणीमें फँस गई। मेरे लिए उसे प्रेम है, तभी तो मुझे कहने आई है। उसने मंथराको थपथपाया । कैकेयीने ज्योंही मंथराका स्पर्श किया, उसके मनमें कलिने प्रवेश पा लिया।

पापीका कभी स्पर्श न करो। शास्त्रमें दोषोंका वर्णन किया गया है। किसीका स्पर्श बिना कारण कभी न करो।

कैकेयी—मंथरा, सच-सच बता, क्या हुआ है तुझे ?

मंथरा—मुझे तो वैसे कुछ कहना है ही नहीं किंतु तुम्हारा जो अहित होने जा रहा है, वह मुझसे देखा नहीं जाता है। मैं तेरी बिगड़ी बातको बनाना चाहती हूँ। मेरा अपना तो कोई स्वार्थ है नहीं।

कैकेयी—बताओ, मुझे क्या करना है ?

मंथरा—कैकेयी, तुम तो बड़ी भोली हो। तुम मानती हो कि राजा तुम्हारे हाथोंमें हैं किंतु पुरुष झूठे होते हैं। वे तुम्हारे कहेमें हैं ही नहीं। वे कौशल्याकी बातें ही मानते हैं। कौशल्याने तुम्हें अपने रास्तेसे हटानेका षड्यंत्र रचा है। पंद्रह दिनोंसे रामके राज्याभिषेककी तैयारी चल रही है और तुम्हें तो पता तक नहीं है। दशरथ बड़े कपटी हैं। वे कौशल्यासे ही प्रेम करते हैं, तुम्हारे साथ तो प्रेमका दिखावा ही करते हैं। रामका राज्याभिषेक करनेमें इतनी शीघ्रता क्यों की जा रही है ? कौशल्याके कहनेसे ही तो भरत-शत्रुघ्नको मामाके घर भेज दिया गया है। देशके सभी राजाओंको निमंत्रण भेजा गया है किंतु भरत-शत्रुघ्नको तो कोई याद तक नहीं करता है। तुम्हें तो कुछ खबर ही नहीं है। बस, आरामसे सो रही हो तुम।

कैकेयी—हाँ, तेरी बात बिलकुल सही है। मेरा कोई नहीं है। तू ही बता, मैं क्या करूँ अब ?

मंथरा अब भी विष उगलती जा रही थी। रामके राजा बन जानेके बाद तेरी कोई भी सेवा नहीं करेगा। लक्ष्मणको मंत्रीपद दिया जायगा और भरतको कारावास। तुम्हें कौशल्याकी दासी बनना पड़ेगा। तुम्हारा रानी-पद छीन लिया जाएगा। कौशल्या, राजाको तुम्हारे अधीन रहने देना नहीं चाहती है। मुझसे तो यह सब देखा नहीं जाता।

कैकेयी—मैं कर ही क्या सकती हूँ ? तीन दिनसे मुझे बड़े अशुभ सपने दिखाई दे रहे हैं। (वे अशुभ स्वप्न उसके विधवा होनेकी पूर्वसूचना ही थी किंतु वह समझ नहीं पा रही थी। वह तो इतना ही सोचती थी कि मेरे भरतकी दुर्दशा होने जा रही है।)

मंथरा—बाजी अब भी तुम्हारे हाथोंमें है। तुम्हें राजासे दो वरदान माँगने हैं। वे आज ही तुम माँग लो।

कैकेयी—क्या माँगू मैं ?

मंथरा—एक वरदान यह माँगो कि अपने भरतको राजा बनाया जाय और दूसरा वरदान यह माँगो कि रामचंद्र को चौदह वर्षका बनवास दिया जाय। वस्त्राभूषणका त्याग करके कोपभवनमें चली जाना। जब दशरथ तुम्हारे इस रूपसे कातर हो जायं, तब वे तुम्हें किसी भी वस्तुके माँगनेका अनुरोध करेंगे। वे रामकी कसम भी खाएंगे। बड़ी सावधानीसे काम लेना। वे रामको वनवास देनेके लिए वैसे तो तैयार होंगे ही नहीं। सो उनको रामकी ही कसमसे बाँध लेना। 'भूपति राम शपथ जब करहीं', जब वे रामकी शपथ लें तभी अपने दो वरदान माँग लेना।

कैकेयी वैसे तो बड़ी भोली थी किंतु कुसंग तो हर किसीको बिगाड़ देता है । कुसंग-के कारण ही कैकेयीकी मति भ्रष्ट हो गई और वह अनर्थ करनेको तैयार हो गई ।

कैकेयीने क्रोधभवनमें जाकर अपने आभूषण आदि उतार फेंके और क्रोधित मुद्रा करके धरती पर ही सो गई । वह वीरांगना थी सो राजाको प्रिय थी । वे राजसभाकी समाप्तिके पश्चात् प्रतिदिन कैकेयी से मिलनेके लिए आते थे । आज उन्होंने आकर देखा तो कैकेयीका पता ही नहीं था ।

राजाको समाचार मिला कि कैकेयी तो कोपभवनमें पड़ी हुई है । वे धैर्य धारण करते हुए वहाँ आए और पास बैठ कर कैकेयीका स्पर्श ही करने जा रहे थे कि उसने बिगड़ कर कहा, मुझे मत छूना । कैकेयीने अपने पतिका अपमान किया । दशरथजीने कहा—मैं तुम्हारे लिए आनंददायी समाचार लेकर आया हूँ । एक बार तुम्हींने कहा था कि आप अब वृद्ध हो चले हैं सो रामको राज्यासन पर बिठला कर निवृत्त हो जाइए । मैंने तेरी बात मान ली है । कल रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है । क्या राय है तुम्हारी ?

भरत स्वरूप है वैराग्यका और शत्रुघ्न स्वरूप है सद्विचारका । यदि वे दोनों दशरथके पास होते तो दशरथ कैकेयीके कहनेमें नहीं आते किंतु वे दोनों पास नहीं थे । सो कैकेयीके कहने में आ गए ।

सभी प्रकारकी अनुकूलता होते हुए भी यदि मन किसी भी विषयमें नहीं जाए, वही सच्चा वैराग्य है । भरतका वैराग्य दिव्य है ।

संपत्ति प्राप्त होने पर भी संपत्तिका मोह न जागे, वही वैराग्य है ।

भोज्य पदार्थ न मिलने पर उपवास करना निरर्थक है किंतु भोजनके लिए मिष्टान्न सामने हों, फिर भी जो संयम निभाये, वही वैरागी है ।

ईश्वरके चरणोंमें वास करना ही उपवास है । जो ईश्वरके चरणोंमें बसनेकी इच्छा रखता है, उसे देहधर्म—भूख-प्यासका भान भूलना ही पड़ेगा । भूख-प्यास भुला कर ही ईश्वरके चरणोंमें बसा जा सकता है ।

भरतजी—वैराग्य-को हमेशा अपने पास रखो । जो अपने पास भरतजी और शत्रुघ्न-सद्विचारको नहीं रखता है, वह कैकेयी-कुबुद्धिके अधीन हो जाता है ।

कौशल्या निष्काम बुद्धि है, सुमित्रा श्रद्धा है और कैकेयी है कुबुद्धि ।

कैकेयीका क्रोध कब उतरनेवाला था ? दशरथजीने उससे कहा, जो चाहे सो माँग लो । मैं तेरे ही अधीन हूँ । मैंने आज तक कभी रामकी कसम नहीं खायी । आज रामकी कसम खा कर कहता हूँ कि तू जो कुछ माँगेगी, मैं अवश्य दूँगा ।

दशरथ राजा रामकी कसमसे बँध गए तो कैकेयीने कहा, आपको याद ही होगा कि मुझे दो वरदान आपसे लेने हैं । मैं आज वही माँगना चाहती हूँ ।

दशरथ—अरे, दो क्या चार माँग ले ।

कैकेयी—कहीं आप देनेसे इन्कार कर दें तो ?

दशरथजी—

रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
प्राण जायँ पर वचन न जाई ।।

मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता । जो चाहे सो माँग ले तू ।

कैकेयी जानती थी कि राम कल वनमें जाएँगे । मैं आज शृंगार कैसे करूँ ? मेरा राम रावणका नाश करके राज्य सँभाले, इसीमें उसकी शोभा है ।

झगड़ा होता है स्वार्थ और लोभके कारण । वनवासके विना जीवनमें सुवास नहीं आनेकी । तपश्चर्याके बिना जीवन सुवासित नहीं हो पाता । राम युवावस्थामें ही वनवासी बने ।

काम ही रावण है । यह रावण सभीको रुलाता है । सभीको रुलाए वही रावण है । रावण (काम) जीवमात्रको रुलाता है । ऐसे रावणको मारनेके लिए तपश्चर्या द्वारा जीवनमें सात्विकता प्राप्त कर लेनी चाहिए ।

कैकेयीकी कुबुद्धि ही रामके बनवासके लिए कारणभूत है ।

कैकेयीने प्रथम वरदान माँगा—भरतका राज्याभिषेक किया जाए ।

मंथराने कैकेयीसे कहा था कि यदि रामके वनवासकी बात पहले कर देगी तो राजा मूर्च्छित हो जाएँगे और यदि उनकी मृत्यु हो गई तो दूसरा वरदान बाकी ही रह जाएगा ।

दशरथने कहा—तेरी इच्छा ही है तो भरतका ही राज्याभिषेक करेंगे । अब दूसरा वरदान भी माँग ले ।

कैकेयीने कहा—

तापस बेष बिसेषि उदासी ।
चौदह बरिस रामु बनवासी ।।

इस दूसरे वरदानको सुन कर राजा निस्तेज होकर मूर्च्छित हो गए । वे मूर्च्छावस्था में सीताराम सीताराम बोलने लगे । मूर्च्छासे जब जगे तो कहने लगे—कैकेयी, तूने यह क्या माँगा ? मेरे रामको वनमें क्यों भेज रही है तू ? उसने तेरा कौनसा अपराध किया है ? राम जैसे सरल बालकको वनमें कैसे भेजें ? मेरे रामको मेरी आंखोंसे दूर न कर । मैं रामके बिना जी नहीं सकता ।

जिऐ मीन बरु वारि बिहीना ।
मनि बिनु फनिकु जिऐ दुःख दीना ।।
कहउँ सुभाव न छल मन माहीं ।
जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ।।

संभव है कि मछली पानीके बिना जी सके या सर्प मणिके बिना दुःखी, दीन हो कर जी सके किंतु मैं साफ-साफ कहता हूँ कि रामके बिना जीना मेरे लिए अशक्य है । मेरा जीवन रामदर्शनके अधीन है ।

अब मैं कुछ अधिक तो जिऊँगा नहीं। तुम्हें और मुझे लोग क्या कहेंगे ? कैकेयी, भरतका राज्याभिषेक चाहे किया जाय किंतु रामको अयोध्यामें ही रहने दे। मुझे लगता है कि तुझे बिना कहे कि राज्याभिषेककी तैयारी की जा रही है अतः तू गुस्सा कर रही है किंतु सच कहता हूँ कि कौशल्याने मुझसे कुछ भी नहीं कहा है।

कैकेयी—कौशल्या और राम कैसे हैं, वह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। आप अपने वचनका पालन करनेसे क्यों कतराते हैं ? आपकी रघुकुल-रीति कहाँ चली गई ?

दशरथने कैकेयीको मनानेका बहुत प्रयत्न किया, विनती की किंतु वह कब माननेवाली थी।

अंतमें बड़े दुःखसे राजा दशरथने कहा—कैकेयी, तेरा भी क्या दोष ? मेरा काल ही तेरा रूप लेकर आया है। अब भी कहता हूँ कि मान जा। अपने रामके बिना मैं एक क्षण भी जी नहीं सकूँगा।

किंतु कैकेयी तो अब निष्ठुर ही हो गई थी। वह नहीं मानी सो नहीं मानी।

दशरथजीने कहा—कलमुँही, हट जा मेरे सामनेसे। मुझे विश्वास है कि भरत कभी राजा बननेवाला नहीं है। चौदह वर्षोंके बाद राम ही राजा बनेगा। आज विधाता ही प्रतिकूल है। रामके राज्याभिषेको देखनेके लिए मैं जीवित नहीं रह पाऊँगा।

दशरथ राजा भगवान् सूर्य नारायणको मनाने लगे। आजकी रात बस कभी समाप्त ही न हो पाए तथा रामको वनमें जाना न पड़े।

वे शिवजीसे भी प्रार्थना करने लगे। हे शंकर भगवान् ! रामको प्रेरणा दीजिए कि मेरी आज्ञाका वह उल्लंघन करे और वनगमन न करे।

प्रातःकाल हुआ। राजा जगे ही नहीं। मंत्री सुमंत आए। उन्होंने कैकेयीके राजमहलमें आकर देखा तो दशरथजी मूर्च्छित पड़े थे। वे समझ गए कि कैकेयीने ही कुछ कपट किया है। उन्होंने कैकेयीसे पूछा—महाराज क्यों अब तक जगे नहीं हैं ?

कैकेयीने गुस्सा करके कहा—मैं कुछ नहीं जानती। सारी रात राम-राम करते रहे हैं। सो रामसे ही जाकर पूछो।

तो सुमंतने रामके पास जाकर कहा कि पिताजी तुम्हें याद कर रहे हैं। रामने कैकेयीके आवासमें जा कर पिताकी स्थिति देखी और कैकेयीसे पूछा—क्या हो गया है मेरे पिताजीको ? मुझे समाचार क्यों नहीं भेजा गया।

कैकेयी—क्या बताऊँ मैं तुम्हें ? अपने पिताके दुःखका कारण तुम्हीं हो। मैंने उनसे दो वरदान माँगे। वे पहलेसेही बचन-बद्ध हो गए थे। वरदान सुनते ही वे अचेत हो गए हैं।

वरदान सुन कर रामचंद्रने माताको प्रणाम किया और कहा—माता कैकेयी, तुम मेरे लिए कितना पक्षपात करती हो ? मुझे वनमें ऋषि-मुनियोंके सत्संगका लाभ हो और मेरा कल्याण हो, इसी हेतुसे तुम मुझे वनमें भेज रही हो। भरतसे भी अधिक प्रेम तुम मुझसे कर रही हो।

कैकेयीकी निष्ठुरताकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

'राम' शब्द सुनते ही दशरथजीकी आँखें खुल गईं। रामने प्रणाम किया तो दशरथने उन्हें बाँहोंमें भर लिया। राम, मुझे छोड़ कर कहीं न जाना।

रामचंद्रजी पिताजीको धीरज देते हुए समझाने लगे—आप तो धर्मधुरंधर हैं। आपको कौन क्या समझा सकता है? चौदह वर्षका समय तो अत्यंत शीघ्र ही बीत जाएगा। और आपके दर्शनके लिए मैं वापस आ जाऊँगा। आपके आशीर्वादसे वनमें मेरा कल्याण ही होगा। मुझे तो बड़ा आनंद है कि मेरा प्रिय भाई भरत राजा होने जा रहा है।

वहांसे अब रामचंद्र कौशल्याके पास आए। माताका दिल भर आया। सुंदर आसन पर बिठला कर बला उतारी और कहने लगी—अच्छा ही हुआ कि तू आ गया। आज तो तेरा राज्याभिषेक होगा। वसिष्ठजी राजतिलक करेंगे। राजसभामें अधिक समय रहना पड़ेगा सो अभी भोजन कर ले।

रघुनाथजीने गंभीरतासे मातासे कहा—पिताजीने भरतको अयोध्याका राज दिया है और मुझे वनवास।

कौशल्याने सारी बात सुनी तो वह दुःखसे स्तब्ध-सी हो गईं। ऐसी बातें उसके हृदयमें बाणकी भाँति चुभ गईं। उसे जो दुःख हुआ, उसका वर्णन शब्दोंमें कैसे किया जा सकता है?

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू।

किंतु कौशल्याने अपनेको सँभालते हुए कहा—भरत राजा बने, तू वनवासी बने यह तो ठीक है किंतु तेरे जानेके बाद तेरे पिताजीका क्या होगा? आज तो स्थिति ऐसी हो गई है कि—

बड़ भागी बनु, अवध अभागी।

मैं तेरे साथ वनमें जा नहीं सकती क्योंकि मेरा पतिव्रत धर्म अनुमति नहीं देता है।
पुत्र, वनके देवता तेरी रक्षा करें।

उसी समय सीताजी भी वहाँ आ पहुँची। अपनी सासको प्रणाम करके धरती पर दृष्टि रख कर वहाँ खड़ी रह गईं।

कौशल्याने रामसे कहा—बेटा, यह मात्र मेरी कुलवधू ही नहीं, साक्षात् लक्ष्मीजी है। मुझे तो आशा थी कि प्रेमलता फूलेगी, फलेगी।

बेटे, यदि बनमें तुझे जाना है तो जा सकता है किंतु मेरी सीता मेरे ही पास रहेगी। मेरा अपना पुत्र चाहे जो कष्ट उठाए, पराई पुत्रीको कभी दुःखी नहीं करना चाहिए। अपनी पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं, उसी तरह इस सीताकी भी मुझे रक्षा करनी चाहिए।

राखहु नयन पलककी नाईं।

रामने सीतासे कहा—तुम यहीं घरमें ही रहोगी तो माताको प्रसन्नता होगी। सास-ससुरकी सेवा करना भी तो तुम्हारा धर्म है। वनमें राक्षस भी होते हैं। बनवासमें बहुत कष्ट होता है। वनवास केवल मुझे दिया गया है, तुम यहीं रह कर सभीकी सेवा करना।

सीताजी मनमें सोच रही थीं कि प्राणनाथके साथ मेरे शरीर और प्राण दोनों जा पाएँगे या केवल प्राण ही।

की तनु प्राण कि केवल प्राना।

धैर्यसे सीताने कहा—आपकी बात वैसे ठीक तो है किंतु नारीका आधार मात्र एक पति ही होता है। यदि आपको ऐसा विश्वास है कि आपके विरहमें मैं चौदह वर्ष तक जीवित रहूँगी तो मुझे यहाँ छोड़ कर जा सकते हैं। आपके विरहमें मेरे प्राण चले जाएँगे सो मैं तो भाग्यशाली ही हूँ किंतु मेरे शरीर पर भी आप कृपा कीजिए।

और तो क्या कहूँ? आप तो अंतर्यामी हैं।

रामचंद्रजीने सोचा कि इसे यहाँ रहनेका अति आग्रह करूँगा तो यह प्राणत्याग करेगी। ठीक है, मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊगा।

कौशल्या—बेटे, मेरी सीताको क्षण मात्र भी अकेली न छोड़ना। मैं तुम्हारे इस मनोहर युगलका दर्शन अब फिर कब पाऊँगी?

तभी लक्ष्मणजी वहाँ आ पहुँचे। रामने उससे कहा—लक्ष्मण, माता-पिता आदिकी भली भाँति सेवा करना।

लक्ष्मण—मेरे माता-पिता तो आप ही हैं। यदि आप मेरा त्याग करेंगे तो मैं किसकी शरणमें जाऊँगा? मेरा त्याग मत करो। जल बिना मछली शायद जी सकती है, किंतु राम-सीताके बिना मैं जी नहीं सकता।

राम भी जानते थे कि लक्ष्मण उनके बगैर रह नहीं सकेगा। सो उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—माता सुमित्राकी अनुज्ञा ले आ।

लक्ष्मणजीने मातासे सभी बात की। सुमित्राने कहा, कैकेयी तूने तो अयोध्या उजाड़ दी। लक्ष्मणसे कहा, 'गच्छ तात यथा सुखम्।'

लक्ष्मण, मात्र तुम्हें ही अपनी सेवाका लाभ देनेके लिए राम वनमें जा रहे हैं। अनन्य भावसे तू राम-सीताकी सेवा करना।

पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगत जासु सुत होई॥

लक्ष्मण, मेरी अनुमति है।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू।

वहाँ उर्मिला आई। एक भी शब्द बोल न सकीं। मन-ही-मन प्रणाम किया।

सीता, राम और लक्ष्मण दशरथके पास आए। दुःख संतप्त पिताजीको राम धीरज देते हुए कहने लगे—पिताजी शांत हो जाइए। हम वनमें जा रहे हैं। हमें आज्ञा दीजिए, आशीर्वाद दीजिए।

इस समयका वर्णन कौन कर सकता है?

दशरथ तो मूर्च्छित-से ही थे। कैकेयी कहने लगी—मेरी आज्ञा ही पिताकी आज्ञा है। वे स्वयं तो कुछ भी कह नहीं पाएँगे।

कैकेयीकी आज्ञासे वल्कल लाए गए। राम, लक्ष्मण और सीता अपने राजसी वस्त्र छोड़ कर वल्कल धारण करनेकी तैयारी करने लगे। इतनेमें वहाँ वसिष्ठजी आए। उन्होंने सीताजीका वल्कल छीन लिया और कैकेयीसे कहा—तुमने रामको वनवास दिया है, सीताको नहीं। सीता तो हमारी राज्यलक्ष्मी है।

अयोध्याकी प्रजा दुःखके मारे व्याकुल हो गई।

रामने जनतासे कहा—मेरे माता-पिताकी सेवा करो। जो उनकी सेवा करेगा, वही मुझे प्रिय होगा। वसिष्ठजी आप सबकी रक्षा करेंगे।

किंतु प्रजा तो कहने लगी—जहाँ हमारे राम होंगे, वहीं हम भी होंगे।

राम, लक्ष्मण, सीताने वनकी ओर प्रयाण किया। कैकेयीने कहा कि राम तो गया और साथ-साथ अयोध्या भी उजाड़ता गया।

जहाँ तेरा-मेरा, अपने-परायेका भेद भाव है, वहाँ भगवान् विराज नहीं सकते।

दशरथ मूर्च्छासे जाग्रत हुए तो उन्हें समाचार मिला कि राम वनकी ओर चले गए हैं। ओह, मेरा राम गया तो मेरे प्राण क्यों अब तक बाकी रह गए हैं।

अजहुँ न निकसे प्राण कठोर।

मंत्रीजी, मेरा सुवर्णरथ ले जाओ। रामसे कहो कि वह पैदल न जाए, रथमें बैठ कर ही जाए। मेरी आज्ञा है। दो-चार दिन उन्हें वनकी सैर कराना और फिर सभीको अयोध्या वापस लाना। यदि राम वापस न भी आए तो सीताको तो अवश्य ही लेते आना।

दशरथकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके मंत्री सुमंत, रथ लेकर रामके पास आए। कहा, आपके पिताकी आज्ञा है कि वनमें पैदल नहीं, रथमें बैठ कर जाइए। अयोध्या उजड़ गई है।

सभी तमसा नदीके किनारे आए। मध्यरात्रिका समय है। सभी गहरी नींदमें हैं। रामने मंत्रीजीसे कहा, ये सब सोए हुए हैं, धीरेसे रथ चलाइए कि जिससे कोई जाग न जाए। हम यहाँसे चल दें। भगवान् शंकरको प्रणाम करके रामचंद्रजीने वहाँसे आगे प्रयाण किया।

प्रातःकाल हुआ तो रामका रथ शृंगवेरपुरके पास आ गया था।

इधर प्रजाजनोंने जाग कर देखा तो रामका कहीं पता ही नहीं था। वे सब व्याकुल हो कर विलाप करने लगे।

शृंगवेरपुरके राजाको रामके आगमनका समाचार मिला। गुहक वहाँ आए। प्रभुने गुहकका स्वागत किया। गुहकने रामचंद्रजीसे निवेदन किया—मेरा राज्य आपका ही है। मेरे यहाँ पधारिए। मेरे नगरको पावन कीजिए।

रामचंद्रजी—चौदह वर्ष तक मैं किसी भी नगरमें प्रवेश नहीं कर सकता।

एक दिन व्रत किया और दूसरे दिन फलाहार । रामचंद्रजी मंत्रीजीसे कहने लगे— अब आप अयोध्या वापस लौटें । विपत्तिके समयमें भी महापुरुष धैर्यरहित नहीं होते । मेरे पिताजीसे मेरा प्रणाम कहना ।

सुमंत—सीताजीको तो मेरे साथ भेजिए । सीताजी दशरथजीका बड़ा आधार होंगी ।

सीताजी—मंत्रीजी ! मैं नहीं जाऊँगी । मैंने जनकपुरीका वैभव भी देखा है और अयोध्याका भी देख लिया । मैं तो वही रहूँगी, जहां मेरे पतिको रहना है ।

सुमंत अकेले ही लौट गए । रामने राजा गुहकसे वटवृक्षका दूध मँगवा कर केशमें डाला और जटा बनाई । रघुनाथजी तपस्वी हो गए । गुहक यह देख न सके और मूर्च्छावश धरती पर जा गिरे ।

गङ्गा पार करनी थी सो गङ्गा किनारे आए । लक्ष्मणजीने केवटको पुकारा और पूछा, क्या तू हमें पार ले जाएगा ? केवट अपनी नौकामेंसे ही कहने लगा, मैं तुम्हारा मर्म जानता हूँ ।

लक्ष्मणजी—अरे भाई, कौन-सा मर्म जानता है तू ?

केवट—रामके चरणोंकी धूलिके स्पर्शसे पत्थरकी अहल्या सजीव हो गई । मेरी नौका तो लकड़ीकी है । रामके चरण-स्पर्शसे मेरी नौका भी यदि स्त्री बन जाय तो अपने कुटुंबका परिपालन कैसे करूँगा और इस दूसरी स्त्रीका क्या करूँगा ? यदि मेरी नौकामें आप बैठना ही चाहते हैं तो पहले मुझे रामचंद्रजीके चरण धोनेकी अनुमति दी जाय । उनके चरण धो कर धूलि साफ करनेके बाद ही मैं उन्हें अपनी नौकामें बैठने दूंगा ।

केवटके प्रेमपूर्ण वचनसे रघुनाथजीको प्रसन्नता हुई । उन्होंने केवटको अपने पास बुलाया । वह लकड़ीका बर्तन लेकर आया और कहने लगा कि मेरी इच्छा है कि आपके चरण पखारूँ ।

रामचंद्र सोच रहे हैं कि मेरे दोनों पाँवोंके स्वामी तो यहां हैं ही, अब तीसरा आ गया । वसिष्ठजीने न्याय किया था । निर्विकारी लक्ष्मण दक्षिण चरणकी सेवा करेगा और सीताजी वाम चरणकी ।

केवट भाग्यशाली था । वह दोनों चरणोंकी सेवा कर सका । गङ्गाजलसे दोनों पाँव पखारने लगा । उसने बड़ी लगनसे पाँव पखारे । मेरी इच्छा पूर्ण होने दीजिए ।

जिन चरननकी चरनपादुका भरत रह्यो लौ लाई ।
सोइ चरन केवट धोय लीन्हें तब हरि नाव चलाई ।।
भज मन रामचरण सुखदायी ।।

यह केवट पूर्वजन्ममें क्षीर समुद्रमें कच्छप था । वह नारायणकी चरणसेवा करना चाहता था । लक्ष्मीजी और शेषने अनुमति नहीं दी । आज लक्ष्मीजी सीता बनी हैं और शेष लक्ष्मण । अगले जन्ममें तो आपने मुझे नारायणकी चरणसेवा नहीं करने दी थी । आज आप दोनों खड़े हैं और मैं सेवा कर रहा हूँ ।

केवटने राम, लक्ष्मण, सीताको गङ्गा पार कर दिया। केवटने उनको साष्टांग प्रणाम किया। रामजीने सोचा कि इसे कुछ देना चहिए, किंतु क्या दूँ ? मेरे पास कुछ है तो नहीं। सीताजी रामजीका मनोभाव जान गईं। उन्होंने अपनी अँगूठी रामको दे दी। रघुनाथ केवटको वह अँगूठी देने लगे। हम तुझे दामके रूपमें नहीं, सेवाके उपहारके रूपमें यह देते हैं।

केवटने कहा—मेरी प्रतिज्ञा है कि साधुसंतोंको बिना दाम ही पार लगाऊँ।

श्रीराम—प्रसादके रूपमें ले लो।

केवट—आजका प्रसंग प्रसाद लेनेके जैसा नहीं है। चौदह वर्षके वनवासकी समाप्तिके बाद जब आपका राज्याभिषेक होगा तभी मैं प्रसाद लूँगा।

केवटने अँगूठी लेने से बार-बार इनकार किया तो लक्ष्मणजी उससे स्वीकारनेके लिए आग्रह करने लगे। तो केवटने कहा—मैं और राम एक ही जातिके हैं। मैं अपने जाति भाईसे दाम कैसे लूँ ?

केवट, केवटसे उतराई क्या लेता है ?

लक्ष्मणने क्रोधित हो कर कहा—क्या बकता है तू ? क्या हम एक जातिके हैं ?

केवट—मेरी और आपकी नहीं, किंतु मेरी और रामचंद्रजीकी जाति एक है।

मैं गङ्गा नदीका केवट हूँ, लोगोंको गङ्गा पार कराता हूँ। तो रामचंद्रजी संसारसिंधुके केवट हैं, लोगोंको संसार-सागर पार करा देते हैं। इस जीवको भी कभी संसार-सागरके किनारे लगा दीजिएगा।

जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

राज्याभिषेकके समय केवट आ नहीं सका था क्योंकि रामचंद्र विमान द्वारा अयोध्या लौटे थे, किंतु रामचंद्रने उसे याद करके गुहक द्वारा प्रसाद भिजवाया था।

अब तीनों आगे बढ़ने लगे। सीताजी साहजिक विवेक और संकोचसे चलती थीं। आगे राम चल रहे थे, बीचमें सीताजी और अंतमें लक्ष्मणजी। राम और लक्ष्मणके बीच चल रही सीताजीकी शोभाकी क्या बात करें ?

ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।

मानों जीव और ब्रह्मके बीच माया चल रही है।

पगडंडी बड़ी सँकरी थी। लक्ष्मण काँटों पर चल रहे थे। रामसे यह देखा नहीं गया। उन्होंने लक्ष्मणको आगे और स्वयं सीताके पीछे चलने लगे।

रास्तेमें मुकाम किया। गाँवके लोग दर्शनार्थ आए। स्त्रियाँ सीताजीको वंदन करती जा रही थीं।

ग्रामजन आपसमें बात कर रहे थे—ऐसे सुकुमारोंको वनमें भेजते हुए कैकेयीको लाज भी न आई ?

गाँवकी स्त्रियोंने सीताजीसे पूछा—ये दोना आपके क्या लगते हैं ?

सीताजीने कहा—जो गोरे हैं, वह मेरे देवरजी हैं । रामका परिचय शब्दसे नहीं, आँखोंके संकेतसे दिया ।

श्रुतिने भी परमात्माका वर्णन निषेधपूर्ण ही किया है—'न इति, न इति' ।

राम-सीताने दर्भासन पर शयन किया । गुहक और लक्ष्मणजी चौकसी करने लगे ।

गुहकने कैकेयीके विषयमें कटु वचन सुनाए तो लक्ष्मणजी उसे समझाने लगे । यह उपदेश लक्ष्मणगीता नामसे प्रसिद्ध है ।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता ।

मनुष्यको उसका कर्म ही सुख या दुःख देता है । इस सृष्टिका आधार ही कर्म है । इसी कारणसे तो ज्ञानी-महात्मा किसीको भी दोषी नहीं मानते हैं ।

रामचंद्रजी स्वेच्छासे ही वनवासी बने हैं । सीता-रामके चरणारविंदका नित्य स्मरण ही परमार्थ है ।

सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥

सुख-दुःखका कारण जो अपने अंदर ही खोजे, वह संत है । ज्ञानी पुरुष सुख-दुःखका कारण बाहर नहीं खोजते हैं । मनुष्यके सुखदुःखका दाता बाहर जगत्में कोई नहीं है । यह कल्पना ही भ्रामक है कि मुझे कोई सुख-दुःख दे रहा है । ऐसी कल्पना तो अन्योंके प्रति वैरभाव जगाएगी । वस्तुतः सुख या दुःख कोई दे ही नहीं सकता है । यह मनकी कल्पना मात्र है । सुख-दुःख तो कर्मका ही फल है । सदासर्वदा मनको समझाओ कि उसे जो सुख-दुःखानुभव हो रहा है, वह उसीके कर्मोंका फल है ।

कोउ न काहु सुख-दुःख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥

राम तो परमानंद स्वरूप हैं । जो उनका स्मरण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता । सुख ही होता है । सो उनको दुःख होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है । उनके मनमें कैकेयीके प्रति कोई मनोदुःख नहीं है । रामको कर्मका बंधन तो है नहीं, वे कर्मसे परे हैं । वे अपनी इच्छासे ही प्रकट होते हैं । जीवको अपने कर्मके कारण जन्म लेना पड़ता है । ईश्वर स्वेच्छासे प्रगट होते हैं ।

फिर भी परमात्मा लीला करनेके लिए प्रगट हुए हैं, सो कर्मकी मर्यादामें रहते हैं । जगत्के सामने एक आदर्श रखते हैं कि स्वयं परमात्मा होते हुए भी कर्मके बंधनमें हैं । वे स्वेच्छासे ही अवतरित हुए हैं । जीव अपने कर्मसे जन्म लेता है ।

रामकथा कई ग्रंथोंमें वर्णित की गई है । कैकेयीने रामको वनवास दिया । कौशल्या माताको अति दुःख हुआ । रामचंद्र कहते हैं कि यह मेरे कर्मोंका फल है । पूर्वजन्ममें मैंने कैकेयीको दुःख दिया था, उसका ही फल है । मैंने परशुरामावतारमें जो किया उसका फल इस अवतारमें पा रहा हूँ । पूर्वजन्ममें कैकेयी जमदग्नि ऋषिकी पत्नी रेणुका थी । परशुराम उन्हींके पुत्र थे ।

एक बार गंधर्व चित्रसेन कई अप्सराओंके साथ सरोवरमें विहार कर रहा था। रेणुकाने वह दृश्य देखा तो उसके मनमें भी विकार जागा और कुछ असंतोष भी। इन अप्सराओंको जैसा सुख मिल रहा है, वैसा तो कभी मुझे मिला ही नहीं है। रेणुकाको लौटनेमें देर हुई। जमदग्नि जान गए कि रेणुकाने मनसे व्यभिचार किया है। जमदग्नि खिन्न हो गए। उन्होंने पुत्रसे कहा—तेरी माताने पाप किया है, उसकी हत्या कर दे। पिताकी आज्ञा सुन कर, बिना कुछ सोचे-विचारे ही परशुरामने रेणुकाका शिरच्छेद कर दिया।

रामचंद्र कौशल्याको समझा रहे हैं कि उस जन्ममें मैंने माताको दुःख दिया था सो इस जीवनमें वह मुझे दुःख दे रही है।

महात्मा तो यहाँ तक कहते हैं कि रामने बालीकी हत्या की थी तो वही बाली कृष्णावतारके समय पारधिका रूप लेकर आया और भगवान्को उसके बाणसे प्राण त्यागने पड़े।

किए हुए कर्मोंका फल भुगतना ही पड़ता है।

सारी रात लक्ष्मणजी और गुहक बातचीत करते हुए चौकसी करते रहे। ब्राह्ममुहूर्तमें रामचद्रजीने स्नानादिसे निवृत्त होकर शिवजीकी पूजा की।

अपने जीवनमें कुछ नियम होने ही चाहिए। जिसके जीवनमें कुछ शुभ संकल्प नहीं है, वह पशुसे भी अधम है। नियमके पालनके अभावमें मनुष्य पशुसे भी बदतर हो जाता है।

रघुनाथने जगत्के समक्ष आदर्श रखा कि वे स्वयं ईश्वर हैं फिर भी भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं।

गुहकको वापस लौटनेको कहा गया किंतु वह न माना। तो रामजीने कहा, ठीक है। हम चित्रकूट पहुंच जायँ, तब लौट जाना।

भगवान धीरे-धीरे आगे बढ़ते जा रहे हैं। प्रयागराजमें आए और वहाँ भरद्वाज मुनिके आश्रममें पधारे।

तुम भरद्वाज बन जाओगे तो तुम्हारे यहाँ भी भगवान पधारेंगे। भरद्वाज अर्थात् उपदेशको कानमें भर लेना।

इस जगत्की बातों पर अधिक ध्यान देनेसे कोई लाभ नहीं होता है परंतु भक्तिमें विक्षेप होता है। भरद्वाज अधिक बोलते नहीं हैं। वे बार-बार राम-कथा सुनते थे और राम-चरणके बड़े अनुरागी थे। राम-सीता-लक्ष्मणके आगमनसे वे बड़े हुए। आसपासके अन्य ऋषि भी आने लगे। भरद्वाज कहते हैं, आज तककी कड़ी साधनाका फल मिल गया। सभी साधनाका फल है, भगवान्का दर्शन। भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शनके बिना शांति नहीं है। भगवान्ने एक रात उनके आश्रममें बिताई।

दूसरे दिन प्रातःकालमें रामने मुनिसे कहा कि वाल्मीकि आश्रमका मार्ग दिखलानेके लिए किन्हीं मुनिकुमारोंको हमारे साथ भेजिए। तो चार ऋषिकुमार साथ-साथ आए। सभी वाल्मीकि आश्रममें आ पहुंचे।

वाल्मीकिने समाधिभाषामें रामकथा लिखी है। रामजीके प्रागट्यके पूर्व ही वाल्मीकिने रामायण लिख दी थी। वे तो आदिकवि हैं। उनके मुखसे ही सर्वप्रथम श्लोक प्रगट हुआ

था। इससे पहले कोई श्लोक था ही नहीं। प्रथम श्लोक क्रौंचवध संबंधी है। किसी पारधिने एक क्रीड़ारत क्रौंचयुगल पर तीर छोड़ा तो एक पंछी मर गया। वाल्मीकि इस दृश्यको देख कर बड़े दुःखी हुए। उन्होंने उस पारधिको शाप दिया। इस श्लोकके दो अर्थ हैं, एक सामान्य और दूसरा रामसंबंधी।

वाल्मीकि आश्रममें श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण पधारे। श्रीरामने वाल्मीकिसे कहा—आप तो त्रिकालदर्शी हैं।

वाल्मीकि—यह तो सत्संगका फल है। पहले मैं था भील जो लोगोंको लूटता रहता था। कुटुंबको निभानेके लिए पापाचार करता था। नारदजीके सत्संगने मेरा जीवन बदल दिया।

एक बार नारदजी मार्गमें मिल गए तो मुझसे पूछा, तू किसके लिए पाप कर रहा है ? मैंने कहा कि अपने कुटुबके लिए।

नारदजी—क्या तेरे कुटुंबके सभी लोग तेरे इस पापके भी भागीदार हैं ? मैंने कहा, क्यों नहीं ? वे सब मेरे पापके भागीदार हैं।

नारदजी—तू अपने घर जा और सभीसे पूछ कि क्या वे तेरे पापमें हिस्सा लेंगे क्या ?

मैंने अपने घर आकर पत्नी और संतानोंसे कहा, तुम सबके लिए मुझे अत्याचार और पाप करना पड़ता है। सो तुम सब भी मेरे पापके भागीदार हो। ठीक है न ? तो उन सभीने कहा—हम क्यों बनें भागीदार ? जो पाप करे उसे ही पापके फल भुगतने पड़ेंगे। हमें क्या लेना-देना है तुम्हारे पापोंसे ?

तो मेरी आँखें खुल गईं। उन सब पर मुझे ग्लानि आ गयी। मेरा मोह, मेरा भ्रम अब नष्ट हो चुका था। मैंने नारदजीके समक्ष सारी बात कह सुनाई। तो उन्होंने मुझे राम-नामका मंत्र दिया किंतु मैं पापी और अनपढ़ था। मेरे मुँहसे 'राम राम' के बदले 'मरा मरा' शब्द निकलता रहा। राम नामका जप ठीकसे नहीं कर सका। मैं तो उलटा ही जप करता रहा। किंतु प्रभुने मुझ पर कृपा की और मेरा उद्धार किया।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

आप कृपा करके जिसे अपने स्वरूपका ज्ञान कराते हैं, वही आपको जान सकता है। आपको जाननेके बाद वह भी आपका ही स्वरूप बन जाता है।

तुलसीदासजीने रामायणमें पूर्णाद्वैतका वर्णन किया है। आगे भगवान् और भक्तमें कोई भेद ही नहीं रह जाता है।

रामचंद्रजीने वाल्मीकिजीसे कहा—हम वनमें रहना चाहते हैं। हम कहाँ रहें ? हमें कोई अच्छा-सा स्थान बतानेकी कृपा कीजिए।

वाल्मीकि—वैसे तो आप कहाँ नहीं हैं ? जहाँ आप न हों, ऐसा एक भी स्थान कहीं नहीं है। आप तो सभी स्थानमें हैं। आप तो भक्तोंके हृदयमें भी हैं।

इन चौपाइयोंमें बताए गए लक्षण आपमें आएँगे तो भगवान् आपके हृदयमें भी वास करेंगे।

जिनके श्रवण समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे ।।
काम, क्रोध, मद, मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।
जिनके कपट दंभ नहिं माया । तिनके हृदय बसहु रघुराया ।।
सबके प्रिय सबके हितकारी । दुःख, सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।
कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी । जागत, सोवत सरन तुम्हारी ।।
तुमहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिनके उर माँही ।।
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव विष तें विष मारी ।।
जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं पर बिपति विशेखी ।।
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे । तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ।।

स्वामि सखा पितुमातु गुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात ।
तिन्हके मनमंदिर बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ।।

अध्यात्म रामायणके श्लोकोंका यह भाषांतर है। भक्तोंके चौदह लक्षण इनमें कहे गए हैं।

वाल्मीकि कहते हैं—प्रभु, आप निवासके लिए मुझसे स्थान पूछते हैं, किंतु आप कहाँ नहीं हैं ? नाथ, आप तो लीला कर रहे हैं। आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए।

श्रीमद्भागवत समाधि भाषामें है। वाल्मीकि रामायण भी समाधि भाषामें है।

चित्त ही चित्रकूट है। अंतःकरण परमात्माके स्वरूपका सतत ध्यान करे, तभी उसे चित्त कहते हैं। परमात्माका चिंतन सतत हो, तभी चित्त कहा जाता है। चिंतन करना चित्तका धर्म है। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है, संकल्प करना मनका धर्म है। एक ही अंतःकरणके ये भेद हैं। पाप होता है अज्ञानसे। परमात्मा यदि चित्तमें आएँ, तो जीव कृतकृत्य होता है।

लक्ष्मण वैराग्य हैं। सीताजी पराभक्तिका स्वरूप हैं। राम परमात्मा है। जब भी संकल्प करो, शुभ ही करो। हमेशा मानो कि परमात्मा चित्तमें बसते हैं।

रघुनाथजी मंदाकिनीके किनारे पधारे। वहाँ अत्रि ऋषिका आश्रम है। वे वयोवृद्ध ऋषि हैं। उनका गङ्गास्नानका नियम था किंतु जा नहीं पाते थे। सो अनसूयाने गङ्गाजीसे प्रार्थना की कि वे उनके आश्रममें प्रगट हों। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो कर गङ्गाजी वहीं प्रगट हुईं।

तुलसीदासजीको चित्रकूटके घाट पर रघुनाथजीके दर्शन हुए।

चित्रकूटके घाट पर भइ संतनकी भीर ।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक करैं रघुवीर ॥

तुलसीदासजी जब रामको पहचान नहीं पाए थे सो हनुमानजीने तोतेका रूप लेकर यह दोहा तीन बार सुनाया था।

सोचिए। पापका मूल चित्तमें है। पाप होता है अज्ञानसे। इस चित्तमें यदि रघुनाथजी आएँ तो चित्त विशुद्ध होता है।

गुहक सेवा कर रहा है। रामके आगमनका समाचार भील, किरात आदि लोगोंमें फैल गया। रामचंद्रजीके दर्शन करनेके लिए सभी आने लगे। उनके दर्शन करते हुए जड़, चेतन बन जाता है और चेतन जड़-सा। कुशल-मंगल पूछा गया। प्रभुजी, आपके दर्शनसे हमारा कल्याण हो गया। पाप छूट गया, स्वभाव बदल गया, जीवन सुधर गया। यहाँके वन, पहाड़, गुफा आदि सब हमारे देखे और जाने-पहचाने हैं। हम आपके सेवक हैं। आप जहाँ चाहें, हम आपको ले जाएँगे।

रामचंद्रजी चित्रकूटमें विराजे। तबसे चित्रकूटके वृक्ष, फूल और फलसे भर गए और झूमने लगे। प्रतिदिन कई ऋषि-मुनि रामजीके दर्शनको आते रहते थे।

रामके चरित्रका वर्णन कौन कर सकता है ? एक-एक अक्षर महापातकका नाशक है।

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

मंत्री सुमंतको अयोध्या वापस लौटनेकी आज्ञा दी। गुहक चित्रकूटसे वापस आए तब तक सुमंत गङ्गा-किनारे पर ही रहे थे। अयोध्याकी प्रजा पूछेगी कि रामको कहाँ छोड़ आए तो मैं क्या उत्तर दूँगा। राजा दशरथ भी तो प्राणत्याग कर ही देंगे।

सुमंतके रथके घोड़े भी उसी दिशामें टकटकी लगाते रहे हैं, जिस दिशामें रामचंद्रजी गए थे। वे भी समझते हैं कि हमें छोड़ कर हमारे स्वामी उस ओर कहीं चल दिए हैं। उन्होंने खाना-पीना भी छोड़ दिया है। जिनके वियोगमें पशु तक इतने दुःखी हो रहे हैं, उनके माता-पिताकी व्याकुलताका तो कहना ही क्या ? वे अब जी ही कैसे पाएँगे।

गुहक आए और सुमंतसे कहने लगे—मंत्रीजी, आप तो ज्ञानी हैं। अब आप धैर्य ग्रहण करें और अयोध्या वापस पधारें। साथमें चार भील सेवक भी भेजें।

मध्यरात्रिके समय सुमंत अयोध्या पहुँचे। मैं किसीको भी अपना मुँह नहीं दिखाऊँगा। कोई पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? फिर भी वे कैकेयीके आवासमें गए। महाराज दशरथका दर्शन नहीं हुआ तो कैकेयीसे पूछा, महाराज कहाँ हैं ?

जब रामचंद्रने वनकी ओर प्रयाण किया था तब दशरथने कहा था कि मैं अब कैकेयी-के आवासमें नहीं रह सकता। मुझे कौशल्याके आवासमें ले जाओ। अतः वे कौशल्याके आवासमें थे।

रामविरहमें जिसकी आँखोंसे दो बूँद आंसू भी टपक न सकें, उसका मन शुद्ध नहीं हो पाता।

एक दासी, मंत्री सुमंतजीको कौशल्याके आवासमें ले आई।

रामवियोगमें पाँच दिन बीत गए हैं। दशरथजीके मुख पर मृत्युकी छाया पड़ने लगी है। मंत्रीने पास आकर उनको दंडवत् प्रणाम किया। दशरथजीने आँख खोल कर देखा और पूछा—मेरा राम कहाँ है? कहाँ है मेरा राम? कहाँ छोड़ आए मेरे रामको? सीता वापस आई या नहीं? मुझे वहीं ले चलो, जहाँ मेरा राम है।

दशरथजीको व्याकुलता देख कर सुमंतकी आँखें भी आँसू बहाने लगीं। वे कहने लगे—महाराज, आप तो ज्ञानी हैं। धीर धरें। मैं रामजीका संदेशा लाया हूँ। उन्होंने कहा है कि मेरे पिताजीको मेरा प्रणाम कहना और उनके ही प्रतापसे हम वनमें सकुशल हैं। महाराज, मैं कितना निर्दय हूँ कि रामको छोड़ कर वापस जीते-जी आया हूँ।

सीताजीने भी मुझसे कहा था, मंत्रीजी आप तो मेरे पिता-समान हैं। मैं अयोध्या वापस नहीं जा सकती। अपने पतिके बिना मैं जी नहीं पाऊँगी। मेरे ससुरजीको मेरा प्रणाम कहना।

नाविक केवटने उन सभीकी सेवा की और निषादराजने भी उनकी बड़ी सेवा की और मैं वापस आया। मेरे जैसा निष्ठुर और कौन हो सकता है?

सुमंतके वचन सुनते ही राजा, हे राम, हे राम, बोलते हुए नीचे गिर गए। कौशल्या व्याकुल हो गईं। फिर भी राजाको धीरज दे रही हैं।

राम-विरह तो एक बड़ा सागर है, जिसे पार करना बड़ा कठिन है। आप तो कर्णधार हैं। यदि आप ही धैर्य खो देंगे तो और सबका क्या होगा?

दशरथजीने कहा—मेरे वक्षःस्थलमें वेदना हो रही है। मुझे श्रवणकुमारके मातापिताने शाप दिया था कि पुत्रविरहमें मेरी मृत्यु होगी। सारी बात इस समय उन्हें याद आ गई और कह सुनाई। दशरथजी विलाप करते हुए कहने लगे, मुझे वहीं ले जाइए, जहाँ मेरा राम है। अपनी स्त्रीके कहनेमें आकर मैंने अपने सुयोग्य पुत्रको वनवास दिया।

मध्यरात्रिका समय था। राजाने राम-राम कहते हुए देहत्याग कर दिया।

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परहरि रघुवर विरह, राउ गयउ सुरधाम॥

दशरथजीका रामप्रेम और रामविरह इतना हार्दिक था कि उनके प्राणपखेरू उड़ गये।

सभी विलाप करने लगे। सारे नगरमें कोहराम मच गया। गुरु वसिष्ठजी सांत्वना देने लगे। उन्होंने सेवकोंको आज्ञा दी—कैकय देशमें जाओ और भरत-शत्रुघ्नसे कहो कि गुरुजीने उनको शीघ्र बुलाया है।

भरत-शत्रुघ्न आ पहुँचे। उन्हें मार्गमें अपशकुन भी बहुत हुए। सभी बाजार और कारोबार बंद थे। लोगोंने श्याम वस्त्र धारण किए हुए थे। भरतजी कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह सब क्या है।

भरतके आगमनका समाचार सुनकर कैकेयी बड़े आनंदसे दौड़ती हुई उसका स्वागत करने आई। भरतने पूछा—कहाँ हैं मेरे पिताजी ? कुशल तो हैं न ?

कैकेयी—क्या बताऊँ तुम्हें ? सारा साम्राज्य चला जा रहा था किंतु मैंने बचा लिया। मंथराकी रायके अनुसार तेरे पितासे मैंने वरदान माँगे सो यह सारा राज्य तुम्हारा है और पिताजी तो वरदान देकर व्याकुल हो गए और उन्होंने प्राणत्याग किया।

भरत—उस समय मेरे बड़े भैया राम कहाँ थे ? अब क्यों दिखाई नहीं देते हैं ? कहाँ हैं वे ?

कैकेयी—वह तो वनमें हैं। मेरे वरदानके अनुसार उसे वनवास दिया गया है।

सारी बातें जान कर भरतका हृदय दुःखसे कातर हो गया। अपनी माताके लिए उनके मनमें बड़ा क्रोध और तिरस्कार उमड़ आया। मेरे बड़े भैयाको वनवास देते हुए तुम्हें लाज न आई ? ऐसा अशुभ बरदान माँगते हुए तुम्हारी जीभ क्यों न कट गई ?

शत्रुघ्नने मंथराको देखा तो उन्होंने उसे एक लात लगा दी।

भरत-शत्रुघ्न कौशल्याके पास आए। माताका विरह-संतप्त रूप उनसे देखा न गया। भरतजीको तो मूर्च्छा आ गई। भरतजी कौशल्या मातासे कहने लगे—माता, राम कहाँ होंगे ? इन सभी अनर्थोंका मूल मैं ही हूँ। कैकेयीके वरदानमें यदि मेरी रजमात्र भी सम्मति है तो मुझे मातृ-पितृ-हत्याका फल मिले।

कौशल्या—बेटे, धीरज रख। शोकका त्याग कर। राम तो हँसता हुआ गया है वनमें। तेरे पिताने प्राणत्याग किया। मेरा भाग्य ही रूठा हुआ है। मैं ही हूँ इस अनर्थका कारण। अब भी मेरे प्राण शेष क्यों हैं ?

प्रातःकालके समय सरयू नदीके किनारे महाराजा दशरथकी पार्थिव देहका अग्नि-संस्कार किया गया।

दशरथ महाराजकी आज्ञा थी कि रामको वनवास देनेमें यदि भरतकी भी सम्मति हो तो उसके हाथों अग्निसंस्कार मत कराना।

दशरथकी पत्नियाँ भी चितामें जल कर सती होने जा रही थीं किंतु भरतजीने उन्हें वैसा नहीं करने दिया।

पन्द्रह दिनोंके बाद शोकसभाका आयोजन हुआ। वसिष्ठ सहित कई ऋषि भी वहाँ उपस्थित थे। सबसे पहले वसिष्ठजीने महाराज दशरथका गुणगान किया और शोकांजलि दी। फिर उन्होंने राजकुमार रामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, और भरतसे कहा कि पिताजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके रामने वनगमन किया है। दशरथजी स्वर्गमें सिधारे। अतः कल हम तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे।

किंतु भरतको यह बात स्वीकार्य नहीं थी। उन्हें बहुत समझाया गया।

विधाताकी गति अति क्रूर है।

जिसे ब्राह्मणका शरीर मिला है, फिर भी जो वेदशास्त्र जानता नहीं हो और अपने धर्मको छोड़कर विषय-भोगमें ही लीन रहता हो, उसका शोक करना चाहिए।

शोक तो उस वैश्यका करना चाहिए जो अपने पास धन होते हुए भी न तो दान करता है, न अतिथि-सत्कार करता है और न भक्ति करता है।

शोक तो उस गृहस्थका करना चाहिए कि जो मोहवश अपने कर्म-मार्ग का त्याग करता है।

उस सन्यासीका शोक किया जाय जो ज्ञान-वैराग्यको छोड़कर सांसारिक प्रपंचमें फँसा हुआ है।

वह नारी शोचनीय है, जो अपने पतिसे छल करती है, जो कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है।

सर्वाधिक शोचनीय तो वह है, जो अपने समय और संपत्तिका दुरुपयोग करता है, दूसरोंका अनिष्ट करता है, अपने शरीरके पोषण और लालनमें ही रत है और जो नाम-मात्र भी हरि-भक्ति नहीं करता है।

महाराज दशरथके लिए क्यों शोक करें? सच्चा राम-प्रेम तो उन्हींका था, कि रामगमनके दुःखसे उनका प्राणपखेरू उड़ गया। उनका तो इहलोक भी सुधर गया और परलोक भी।

भरत! वनवासकी अवधि समाप्त होने पर रामका पुनरागमन होनेके बाद तुम जो चाहो सो करना किंतु कल तो हम तुम्हें राज-सिंहासन पर आरूढ़ करेंगे ही। आज अयोध्या अनाथ है, उसे सनाथ करना है तुम्हें।

कौशल्याने भी भरतको वैसी ही आज्ञा दी।

भरतजी उत्तर देनेके लिए खड़े हुए। राम-सीताके स्मरणसे उनकी आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

पिताजी स्वर्गमें गए और रामचंद्रजी गए वनमें। अब मेरा राज्याभिषेक होने पर मुझे कौन-सा आनंद और सुख मिलेगा? अयोध्याकी प्रजाको भी क्या लाभ होगा? सभी अनर्थोंका कारण मैं ही हूँ। जगत्‌में मुझ पापीका जन्म ही न हुआ होता तो अच्छा होता। मेरे पिताजीको तो सद्गति प्राप्त हुई है। उनके लिए मुझे अधिक दुःख नहीं है। मुझे जो दुःख है, वह तो यह है कि मेरे ही कारण मेरे बड़े भैयाको वल्कल धारण करके नङ्गे पाँव वनमें भटकना पड़ रहा है।

रघुनाथजीके बिना सब कुछ व्यर्थ है। मुझे तभी शांति मिलेगी कि जब मैं अपने भाई-भाभीका दर्शन पा सकूंगा। कैकेयीका यह पुत्र कैकेयीसे भी अधम है। रामचंद्रजीकी सेवा करनेमें ही मेरे जीवनकी सफलता है।

जिस राज्यासन पर कभी महाराजा भगीरथ विराजते थे, उस पर बैठनेकी मेरी पात्रता नहीं है। मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए। मैं कल रामचंद्रके पास जाऊंगा। आप प्रार्थना करें कि वे मेरे ही साथ अयोध्या वापस आएं। मैं उनसे अपने पापोंकी क्षमायाचना करूंगा। वे मेरे स्वामी हैं, मैं उनका सेवक।

राम-सीताका स्मरण करते हुए भरतकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे । जनताको विश्वास हो आया कि भरतजी तो प्रेमकी मूर्त्ति हैं। सभी रामका दर्शन करनेके लिए भरतजीके साथ जानेकी तैयारी करने लगे।

भरतचरित्र में तुलसीदासजी भी समाधिस्थ हो गए थे।

सभा विसर्जित होने लगी । नगरके आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी रामचंद्रजीके दर्शनार्थ आतुर थे, अतः वनगमनकी तैयारी करने लगे। सभीके मनमें एक ही भाव जग रहा था कि कब प्रातःकाल हो और कब हम वनकी ओर चल दें।

प्रातःकालमें राजप्रासादके आँगनमें सारा नगर उमड़ आया। सभीको आशा बँध गई कि राम-सीता आज अयोध्या वापस आएँगे। भरतजीने कहा कि जो भी साथ चलना चाहता है, वह आ सकता है।

ऋषि वसिष्ठजी और अरुंधती भी रथमें विराजमान हुए। अब तो कैकेयीके सिरसे भी कलिका भूत उतर चुका था और वह रामके दर्शनके लिए आतुर हो गई थी। भरतके लिए सुवर्णरथ तैयार किया गया किंतु वे उसमें बैठना नहीं चाहते थे, तो लोग कहने लगे कि यदि आप रथ पर सवार नहीं होंगे तो हम भी पैदल ही चलेंगे। माता कौशल्याने भरतको समझाया कि यदि तू रथ पर सवार नहीं होगा तो अयोध्याकी सारी प्रजाको कष्ट होगा। कौशल्याकी आज्ञासे वे रथ पर सवार हुए।

भरतजी आदि श्रृंगवेरपुरके निकट आए तो गुहकको सेवकोंने समाचार दिया कि भरत अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ आ रहे हैं। गुहकने सोचा कि भरत सेनाके साथ राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने जा रहे हैं। अगर ऐसा नहीं है तो सेनाको भी क्यों साथ लाये हैं। गुहकने भील-सेनाको आज्ञा दी कि किसीको भी इस पार आने न दिया जाय।

एक वृद्ध भीलने गुहकसे कहा कि भरत शायद रामचंद्रजीको मनानेके लिए आ रहे हैं। गुहकने सोचा कि यह भी संभावित है। जल्दीमें झगड़ा करना ठीक नहीं है। वे अपने मंत्रीके साथ भरतसे मिलने आए।

सबसे आगे महर्षि वसिष्ठजीका रथ था। गुहकने उनको साष्टांग प्रणाम किया। वसिष्ठजीने भरतसे कहा कि भरत ! रामका अंतरंग सेवक गुहक तुमसे मिलने आया है।

भरतकी दृष्टि निर्गुण है। उनको प्रसन्नता हुई कि बड़े भाईका सेवक मिलनेके लिए आया है।

भरतके मनोभावकी परीक्षाके लिए राजा गुहक अपने साथ सात्त्विक, राजसिक और तामसिक, तीनों प्रकारकी भोजन-सामग्री लेकर आए हैं। कंदमूल सात्त्विक भोजन है, मिष्टान्न राजसिक भोजन है और मांस-मदिरा तामसिक। इन तीनोंमेंसे जिस पर भरतकी दृष्टि सबसे पहले आकृष्ट होगी, वही भाव भरतके मनमें है, ऐसा समझूँगा। किंतु देखिए तो। भरतने इन तीनोंमेंसे एक पर भी दृष्टि नहीं डाली क्योंकि वे तो निर्गुण हैं।

मनुष्यके मनकी परीक्षा आहार-विहारसे हो सकती है।

भरतके मुखसे तो बस राम-नाम ही उच्चारित हो रहा था। गुहकको विश्वास हो गया कि भरतजी लड़ने नहीं मिलनेके लिए ही जा रहे हैं। राजा गुहकने भीलोंको आज्ञा दी कि अयोध्याकी प्रजाका भली भाँति स्वागत करो। भील लोग तरह-तरहके फल और कंद-मूल ले आए और स्वागत किया।

भरतजीने गङ्गाजीको प्रणाम करते हुए कहा, माता मैं आज कुछ माँग रहा हूँ—

जोरि पानि वर मागउँ एहू।
सीय राम पद सहज सनेहू॥

मेरी यही भावना है। मुझे यही वरदान दो। मुझे रामचरण-प्रेमका दान करो। उनकी प्रार्थना सुनकर गङ्गाजीने ध्वनित किया—तुम चिंता न करो। सभीका कल्याण होगा।

गुहकने भरतको वह अशोक-वृक्ष दिखाया, जिसकी छायामें श्रीरामने विश्राम किया था। भरतने उस वृक्षको भी प्रणाम किया। श्री रामकी दर्भकी सेज देख कर तो उनका हृदय भर आया। मेरी भाभीको कितना कष्ट भुगतना पड़ रहा है। कैकेयी, इन सभी कष्टोंका कारण मैं ही हूँ।

सारी रात सभीने वहाँ विश्राम किया।

प्रभात आया तो भरतजी कहने लगे कि इस स्थानसे रामचंद्रजी पैदल ही आगे बढ़े थे। अतः मैं भी पैदल ही चलूंगा। सभीके रथ आगे ले लो।

आगे-आगे सभी रथ चलने लगे और पीछे-पीछे भरत शत्रुघ्न और गुहकराज पैदल चलने लगे। भरतकी दशा करुणाजनक है। वे शत्रुघ्नके कंधेके सहारे, हे राम हे राम, बोलते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

धन्य है भरतको कि पिताजीसे प्राप्त राज्यको अस्वीकार किया और बड़े भाईको मनाने जा रहे हैं।

भरतकी भक्ति दास्य भक्ति है। उनके जैसा बड़भागी और कौन होगा ? भरतजीको रामचंद्रजी सदा याद करते हैं।

जग जपु राम, राम जपु जेही।

स्वयं ईश्वर जिसका स्मरण करे, उसीकी भक्ति सच्ची भक्ति कही जाएगी।

जीव ईश्वरको याद करे, यह तो सामान्य-साहजिक बात हुई किंतु स्वयं ईश्वर जिस जीवको याद करते हैं, उसे धन्य है, उसकी भक्ति धन्य है।

भरतजीके पाँवमें चलते-चलते छाले पड़ गए किंतु वाहनमें न बैठनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली है।

वे सब प्रयागराज आए। भरतजीने प्रणाम करते हुए कहा—तीर्थराज, मैं और कुछ तो नहीं चाहता। मात्र एक ही माँग है मेरी।

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहहुँ निरवान ।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन ॥

लोगोंने भरतजी से कहा कि मुनि भरद्वाजके आश्रममें भी जाना चाहिए। भरतने कैकेयीसे कहा—कैकेयी, तुमने मेरे मुख पर कालिमा पोत दी है । मैं संतोंको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा ?

तीर्थका नियम है कि जब तक वहाँ साधु-संतोंका संग न किया जाय, तब तक तीर्थयात्रा फलवती नहीं हो पाती ।

भरतजी भरद्वाज मुनिके आश्रममें आए । मुनिने भरतजी कहा कि शोक न करो । यह तो सब ईश्वरकी ही लीला है । तुम तो बड़े भाग्यशाली हो । भगवान् रामचंद्र तुम्हें प्रतिदिन याद करते हैं कि तुम जैसा कोई भाई नहीं है । भ्रातृप्रेमका आदर्श स्थापित करनेके के लिए आज तुम रामको मनानेके लिए जा रहे हो, यह अच्छी बात है ।

सभी साधनाका फल रामदर्शन है। साधन करनेसे हमें रामदशनका लाभ हुआ किंतु रामजीके दर्शनका फल तो भरतजी हैं। हम तुम्हारे दर्शनसे कृतार्थ हो गए । रामके दर्शनके बाद मैं सोचता था कि उनके दर्शनका फल क्या मिलेगा । मेरी समझमें आ गया कि रामदर्शन का फल है भरतदर्शन ।

भरतजीने वहाँ वार्तालाप किया । इन सभी अनर्थो और दुःखोंका कारण मैं ही हूँ ।

भरद्वाज ऋषिने भरतसे कहा—राक्षसोंका वध करनेके हेतु ही रामचंद्रजीने यह सारी लीलाकी रचना की है. अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ।

भरद्वाजने अणिमा आदि ऋद्धि-सिद्धियोंका आवाहन करके भरत और उनके साथ आए हुए सभी लोगोंका भली भाँति स्वागत किया । रामजीके दर्शनार्थीका भली भाँति स्वागत होना कोई आश्चर्यकी बात तो है नहीं।

भरतके भ्रातृप्रेमकी परीक्षा लेनेकी इच्छासे भरद्वाज मुनि रात्रिके समय वहाँ आए। उन्होंने देखा कि भरतजीने दर्भासन बिछा कर आसन किया है और नासिका पर दृष्टि स्थिर करके सीता-रामका जप कर रहे हैं। अणिमा सिद्धिने उनसे भोजन और विश्राम करनेकी विनती की किंतु भरतजीने कहा, राममिलनके बाद ही मुझे सच्ची विश्रांति मिलेगी ।

भरतके रामप्रेमका वर्णन कर ही कौन सकता है ? वाणीके सामर्थ्यके बाहरकी वस्तु है यह ।

प्रातःकालमें भरद्वाज फिरसे वहाँ आए। सारी रात भरतने शय्याका स्पर्श तक नहीं किया था । भरतजीकी ऐसी कठोर तपश्चर्यासे मुनिका हृदय भर आया । बोल उठे, भरतदर्शन ही रामदर्शनका फल है ।

भरद्वाज मुनिने बहुत-सी सिद्धियाँ बताईं किंतु भरतजी उनमें नहीं फँसे ।

चक्रवाक और चकवी रात्रिके समय साथ-साथ नहीं रहते । यदि इन्हें पिंजड़ेमें रखा जाय तो भी रात्रिके समय ये संयोग नहीं करते । ऋषिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा पिंजड़ा है । सिद्धियाँ, भोगविलासकी वस्तुएँ चकवी हैं । भरतजी हैं चक्रवाक । भरतजीने उन भोग-विलासकी सामग्रियोंका मनसे भी स्पर्श नहीं किया ।

जिसे भक्तिका रंग लग जाता है, उसे सांसारिक भोग रोग-समान ही लगते हैं। जब तक सांसारिक माया मीठी लगती है, तब तक जीवको भक्तिका रंग नहीं लगता है। भोग और भक्ति एक ही स्थान पर रह नहीं सकते।

लोग मानते हैं कि भक्ति करना बड़ा आसान है किंतु भक्ति करना तो बड़ा ही कठिन काम है। यह तो सिरका सौदा है। तभी नटवरसे संबंध हो सकता है। जब तक मन संसारके किसी भी विषय-सुखमें फँसा हुआ है, भक्तिका रंग लग नहीं पाता। सांसारिक विषयसुखोंका मनसे भी त्याग करने पर ही भक्ति हो पाएगी।

काम शब्दमें दो अक्षर हैं। 'क' का अर्थ है सुख और 'आम' का अर्थ है कच्चा। अर्थात् कामका अर्थ है कच्चा सुख। काम सच्चा सुख नहीं है। कामको हृदयसे निकाल बाहर कीजिए। हृदयके सिंहासन पर ठाकुरजीको पधराइए।

एक सेठका पुत्र वेश्याके चक्करमें फँसा हुआ था। सेठने उससे कहा—यदि तू इस कुसंगको छोड़ दे तो तेरा विवाह किसी अच्छी-सी कन्यासे हो पाएगा।

पुत्र—पिताजी, पहले मुझे वैसी कन्या मिलेगी तो बादमें मैं वेश्याको छोड़ दूँगा।

पिता—विचार तो कर। वेश्याके संग छोड़े बिना किसी अच्छे घरानेकी कन्या मिल ही कैसे सकती है?

हमारी भी यही कथा है। हम विषयभोगका त्याग करनेकी इच्छा या प्रयत्न तो करते नहीं हैं और कहते हैं कि मुझे भक्तिसे आनंद नहीं मिल पाता है। आनंद मिले तो कैसे मिले?

भोग बाधक नहीं है किंतु भोगसक्ति बाधक है। भोगवासनामें फँसा हुआ मन ईश्वरसे दूर भागता है।

भरतका त्याग अति उत्तम है। अष्टसिद्धियाँ सेवा करनेको तत्पर हैं किंतु भरत उनकी ओर दृष्टि भी नहीं करते हैं। वैराग्यके बिना भक्ति रोती है। वैराग्य नहीं है तो भक्ति थोथी है। भरतको तो एक ही इच्छा है—रामके दर्शनकी।

मोहि लागी लगन हरि दर्शनकी।

यह भागवत-कथा ज्ञान और वैराग्यको पुष्ट करनेके लिए है।

भरत सीतारामके बिना बिकल हैं। भोगके अनेक पदार्थ अपने समक्ष हैं किंतु उनका मन उनकी ओर जाता ही नहीं है।

सभी-भोग पदार्थ सुप्राप्य होने पर भी जिसका मन वहीं जाता नहीं है, वही सच्चा वैष्णव है। वही सच्चा भक्त है।

जनम जनम रति रामपद, यहि वरदान न आन।

भरतजी त्रिवेणी गङ्गासे भिक्षा माँग रहे हैं। मुझे और कोई इच्छा नहीं है। मैं मोक्ष नहीं माँगता। अर्थ, धर्म, कामकी भी इच्छा नहीं है। अब तो मुझे रामदर्शनकी ही इच्छा है।

ज्ञानी पुरुष मुक्तिकी इच्छा नहीं रखते । जो भक्तिरसमें डूब गया है, उसे मोक्षका आनंद तुच्छ लगता है । वेदांत कहता है, आत्मा तो सदा मुक्त ही है, उसकी और मुक्ति क्या होगी ? भगवान् मुक्ति तो देते हैं किंतु भक्ति जल्दी नहीं देते ।

साधुगण भरतजीकी प्रशंसा करते हैं । अपने वैराग्यसे भी उनका वैराग्य श्रेष्ठ है ।

भरतजी आगे बढ़े । दसवें दिन उनका रामसे मिलन होने जा रहा है । सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर बढ़ गए । भरत 'सीताराम सीताराम' बोलते हुए आगे बढ़ रहे हैं । चित्रकूट पर्वत दृष्टिगोचर हुआ तो लोग साष्टांग प्रणाम करने लगे । लोगोंने चित्रकूटकी तलहटीमें विश्राम किया ।

इधर सीताजीने सपना देखा कि भरतजी हमसे मिलने आ रहे हैं । उनके साथ अयोध्याकी प्रजा भी । सासजीका वेश शोकसूचक है । रामजीने सपनेकी बात सुनी तो कहा— यह स्वप्न मंगलमय नहीं है । कदाचित् कोई दुःखद समाचार सुनने पड़ेंगे ।

प्रातःकाल हुआ तो भरतजीने पर्वत पर जाने लिए वसिष्ठजीसे अनुज्ञा माँगी किंतु वे व्याकुल होकर यह भी सोच रहे थे कि मैं अपना काला मुख रामजी को कैसे दिखाऊँगा, मुझे देखने ही वे मुँह फेर लेंगे तो ? नहीं नहीं । वे ऐसा कभी नहीं करेंगे । वे मुझे अवश्य अपनाएँगे किंतु यदि भाभी उन्हें मुझसे मिलनेसे रोक लेंगी तो ? नहीं, नहीं, वे भी ऐसा तो नहीं करेंगी । भरतजी 'सीताराम, सीताराम' बोलते हुए जाने लगे ।

भीलोंने यह देखा तो वे दौड़ते हुए रामचंद्रजीके पास आए और कहने लगे—कोई भरत नामका राजा आपसे मिलने आ रहा है । साथमें चतुरंगिणी सेना भी है । यही कारण है कि हमारे पशु भयसे भाग रहे हैं ।

रामचंद्रजी सोचमें डूब गए । लक्ष्मणके मनमें प्रश्न जागा कि यदि उसे मिलने ही आना था तो अपने साथ सेनाको क्यों लाया है । वैसे तो वह साधु-सा था किंतु राज्यप्राप्तिके बाद उसकी मति भ्रष्ट हो गई है । वह अपना मार्ग निष्कंटक करनेके लिए ही आ रहा है । सत्ता मनुष्यको स्वार्थी और अंधा बना देती है । लक्ष्मणजी क्रोधित हो गए किंतु रामचंद्रजी उन्हें समझाते हुए और शांत करते हुए कहने लगे—लक्ष्मण, भरतको यदि ब्रह्मलोकका राज्य प्राप्त हो जाए तो भी उसे सत्ताका मद प्रभावित नहीं कर सकेगा । भरत-सा भाई जगत्में न तो हुआ है और न होगा ।

भरत सीतारामका जप करते हुए आ रहे हैं । उनके प्रेमसे तो चित्रकूटके पत्थर भी मानो सचेतन-से हो गए हैं । भरतने दूरसे देखा कि राम आँगनमें विराजमान हैं और ज्ञानवार्ता कर रहे हैं । सीता और लक्ष्मण सेवामें उपस्थित हैं । भरत असमंजसमें हैं । मैं तो पापी हूँ । उनके सामने कैसे जाऊँ ?

अपने आपको धीरज देते हुए भरतजीने रामके निकट जाकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया । लक्ष्मणजीने यह देखा तो रामचंद्रजीसे कहा कि भरत आपको प्रणाम कर रहा है । रामचंद्रजी कहने लगे, कहाँ है मेरा भरत ? उन्होंने भरतको उठा कर अपने हृदयसे लगा लिया ।

चित्रकूट पर्वत पर जीव और शिवका मिलन हुआ ।

चित्रकूटमें भगवान्, लक्ष्मण और जानकीके साथ निर्वासित हैं । लक्ष्मण वैराग्य है, सीताजी पराभक्ति और चित्रकूट चित्त । तो भगवान् वैराग्य तथा परभक्तिके साथ चित्तमें, अंतरमें विराजमान हैं । भरत जीव है जो मिलनके हेतु गया है । उस मिलनका चिंतन या कल्पना भी पापनाशक है । प्रभुमिलनकी इच्छा तीव्र होगी, तभी सुख होगा ।

मेरा भरत दुःखी है, इस विचारसे रामके मुखसे एक शब्द भी निकल नहीं रहा है ।

दुःख हमारे अपने कर्मोंका ही फल है । चाहे जैसा भी दुःख आ पड़े, प्रभुसे मत कहो । हमेशा सोचो कि मैं अपने सुखके लिए कृष्णको कभी कष्ट नहीं दूँगा । सदा भगवान्की सुविधाका ही विचार करो ।

भरतके साथ वसिष्ठजी और माताजी भी हैं । भरतने सीताजीको प्रणाम किया तो उन्होंने आशीष दी । अब भरतको विश्वास हुआ कि इन्होंने मेरे पापको क्षमा कर दिया है ।

रामचंद्रजीने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और कैकेयीसे मिले । कैकेयी दुःख और पश्चात्तापसे कातर हो गई है । रामजीने उसे समझाया—मनमें क्लेश न करो । आपका कोई दोष नहीं है । यह तो विधिकी लीला है । वे सभी माताओंसे मिले और सभीको धीरज बँधाया ।

सासजीके दुःखसे सीताजी व्याकुल हो गई हैं तो कौशल्याका हृदय सीताजीके तापसी वेशको देखकर भर आया है ।

कौशल्याने दशरथजीके महाप्रयाणकी बात सुनाई । रामचंद्रजी विलाप करने लगे । पिताजीके प्रेमको याद करके रो दिए ।

रामचंद्रजी पिताजीका श्राद्ध किया ।

भरतको एक ही चिंता है कि राम-सीता लौटेंगे या नहीं । मैं अपने मुखसे इन्हें कहूँ भी कैसे ? वसिष्ठजी परीक्षा लेना चाहते हैं भरतको । सो उन्होंने भरतसे कहा कि तू उनसे विनती करना ।

भील लोगोंने अयोध्याकी प्रजाका स्वागत किया । लोग उन्हें भेंट दे रहे हैं किंतु भील तो कुछ स्वीकारते ही नहीं हैं । रामचंद्रके आगमनके पहले यदि उन्हें कुछ दिया जाता तो वे अवश्य ले लेते किंतु रामचंद्रजीके दर्शन होनेसे उनकी मनोवृत्ति बदल गई है । रघुनाथकी दृष्टि ही चमत्कारी है । रघुनाथजीके दर्शनसे पाप छूट गया है । चोरी, मारकाट, हिंसा आदि भी छूट गए हैं ।

रामचंद्रजीके दर्शनसे यदि चित्रकूटके अनपढ़ आदिम भीलों तकका जीवन सुधरता है तो भी यदि हमारा जीवन सुधर नहीं पाता है तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है । रामचंद्रके दर्शनसे स्वभाव सुधरना आश्चर्यकी बात नहीं है । अरे, उनके नाम-जपसे भी स्वभाव बदल सकता है ।

इधर प्रजाजन व्याकुल हैं । रामचंद्रजीकी वापसीके बिना शांति उन्हें नहीं मिलेगी । वे कहते हैं कि भरत और शत्रुघ्न, तुम वनमें रहना । हम तो राम-लक्ष्मण-सीताको अपने साथ ही अयोध्या ले जाएँगे ।

भरतजीने कहा—गुरुजी, मेरे ही मुँहकी बात छीन ली गई है । यदि रामचंद्रजी अयोध्या वापस जानेको तैयार हो जायँ तो हम चौदह वर्ष तो क्या जीवन वनमें बितानेके लिए तैयार हैं ।

कानन करउँ जनम भरि बासू ।

कौशल्याने सुना तो उन्होंने कहा, यह भी कोई बात हुई ? मेरे लिए तो राम और भरत दोनों समान हैं । मैं किसीको भी गवाँनेको तैयार नहीं हूँ ।

वसिष्ठजी कहने लगे—लोग मुझे ब्रह्मनिष्ठ समझते हैं । आज भरतको देखकर मुझे लगता है कि वह मुझसे कई गुना श्रेष्ठ है । राम, भरतके सुखका उपाय बताओ ।

राम—भरत जो कहे मैं वह करनेको तैयार हूँ । वह अपने मनमें कोई संकोच न रखे । मैं उसे अप्रसन्न नहीं करूँगा ।

भरतजीको लगा कि बड़े भैयाने उसके सभी पाप क्षमा कर दिये हैं । उन्होंने कभी मेरा दिल दुखाया नहीं है । भरतजी कहने लगे—मैं तो आपका सेवक हूँ । आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आपके राज्याभिषेकका सारा प्रबंध हम करके ही आए हैं । आपका ही राजतिलक किया जाय । अयोध्या वापस लौट कर आप सबको सनाथ कीजिए । राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या वापस लौटें और मैं शत्रुघ्नके साथ वनवास करूँगा या लक्ष्मणके साथ शत्रुघ्नको भी अयोध्या भेजिए और मुझे सेवा-लाभ दीजिए अथवा हम तीनों भाई वनमें रहें और आप सीताजीके साथ अयोध्या जायँ । तो रामजीने कहा—चौदह वर्ष तो अभी पूरे हो जाएँगे ।

उसी समय राजा जनकजीका दूत भी वहाँ आया । प्रातःकाल महाराजा जनक भी आ गए । उनका स्वागत किया गया । बहुत-सी बातें भी हुईं । अपनी पुत्रीका तपस्विनीका वेश देख कर उनका हृदय भर आया ।

कौशल्याने कहा—इस भरतको समझाइए । वह वनमें चौदह वर्ष कैसे रह सकेगा ? वह राम-विरह सह नहीं पाएगा । भरतको संतोष मिले, ऐसा कुछ कीजिए ।

जनकजी—वैसे तो मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ फिर भी उसके प्रेमके आगे मेरी बुद्धि भी कुंठित हो गई है । मैं सीताजीको अपने साथ ले जाऊँगा । बेटी, तुमने तो दोनों कुलोंका उद्धार किया, दोनों कुलोंको पवित्र कर दिया ।

सीताजी—मेरे पतिका वनवास, मेरा भी तो वनवास है । पिताजी, मैं आपके साथ जा नहीं सकती । आप अधिक आग्रह न करें ।

अब अंतिम मिलन हुआ । भरत आज्ञा माँग रहे हैं ।

रामचंद्रजी—भरत, मैंने आज तक कभी तेरा मन नहीं दुखाया किंतु आजकी बात ही कुछ और है । हम दोनोंको पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है । एक आज्ञाका पालन मुझे करना है और दूसरीका तुम्हें ।

भरतजी—नाथ, मैं अकेला कैसे जाऊँगा ? मुझे कुछ अवलंबन दीजिए ।

भरतको रामचंद्रजीने अपने स्मरणके स्वरूपमें अपनी चरणपादुका दी । भरतने उन्हें अपने माथेसे लगाया ।

बंधुप्रेमका आदर्श स्थापित करनेके लिए भरत 'सीताराम सीताराम' रटते हुए अयोध्या वापस लौटे। भगवान्की चरणपादुकाको सिंहासन पर स्थापित किया।

भरतजी गोमुखयावक व्रत करते हैं। गायको जो खिलाया जाय, वह गोबरके साथ बाहर आने पर गौमूत्रके साथ उबाला जाता है। वैसे वे दिनमें एक बार खाते थे। रामचंद्रजीकी तपश्चर्यासे भी भरतजीकी तपश्चर्या अधिक श्रेष्ठ है। उनका प्रेम ऐसा तो प्रबल है कि जड़ पादुका भी मानो चेतन हो गई है।

रामवियोगीका जीवन कैसा होना चाहिए, उसका आदर्श भरतने जगत्के समक्ष प्रस्तुत किया। हम भी रामवियोगी ही हैं। भरत-सा जीवन बन पाए, तभी राम मिलते हैं। भरतका जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है।

भरत, रामकी पादुकासे हर बातमें आज्ञा माँगते हैं।

किसी उलझनके समयसे किसी जीवसे परामर्श करना अच्छा है किंतु भगवान्से परामर्श करना तो अति उत्तम है। जीवकी राय शायद रागद्वेषसे भरी हुई हो सकती है सो ठाकुरजीसे ही सलाह-मशविरा करना अच्छा है। तुम्हें यदि कोई उलझन सता रही है तो ठाकुरजीका शृंगार, भोग और आरती करके शांतिसे हाथ जोड़कर इस महामंत्रका जप करो। यह श्लोक महामंत्र है। इसका जप करते हुए भगवान्के चरणमें सो जाओ। यह श्लोक है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेता।

भगवान् तुम्हें स्वप्नमें मार्गदर्शन देंगे।

रामचंद्रजी शय्या पर सोते थे, भरतजी धरती पर ही सोते हैं।

रामचंद्रजीने चित्रकूटका त्याग करनेका निश्चय किया। वे अत्रि ऋषिके आश्रममें आए। अनसूयाने सीताजीकी बड़ी प्रशंसाकी। वहाँसे वे सुतीक्ष्णके आश्रममें गए। यह प्रसंग दिव्य है।

सुतीक्ष्ण मुनि अगस्त्यके शिष्य थे। विद्याभ्यासकी समाप्ति होने पर उन्हें गुरुजीसे गुरुदक्षिणा माँगनेकी प्रार्थना की। अगस्त्य ऋषिने कहा—कल्याण हो तेरा। कुछ पानेकी आशासे मैंने विद्यादान किया हो, ऐसा नहीं है। यदि हो सके तो मुझे कभी रामचंद्रजीके दर्शन कराना।

सुतीक्ष्णने आज रामचंद्रजीके दर्शन किए। उन्होंने रामजीसे कहा, चलिए, मैं आपको मार्ग दिखाऊँ।

रामचंद्रजीने लक्ष्मणसे कहा—सुतीक्ष्ण मार्ग दिखलानेके लिए नहीं, अपनी प्रतिज्ञा निभानेके लिए हमारे साथ हो लिया है। सुतीक्ष्ण सभीको अगत्स्यके आश्रममे ले आए।

ॐ कारका भावार्थ रामनाममें समाया हुआ है।

सुतीक्ष्ण ऋषि अगस्त्य मुनिसे कहने लगे—गुरुजी, प्रणाम। आज मैं आपको दर्शन करानेके लिए रामचंद्रजीको ले आया हूँ। ऋषि दौड़ते हुए आए और दर्शन करके कृतार्थ हो गए।

वहाँसे सब चल निकले। गोदावरी नदीके किनारे पर आए तो वहाँ पंचवटीमें निवास करनेके हेतु आश्रम बनाया।

पंचवटीका अर्थ है, पाँच प्राण। परमात्मा पाँच प्राणोंमें विराजमान हैं। संसार-अरण्य-में भटकनेवालेको वासना-रूपी शूर्पणखा मिल जाती है। राम तो उसकी ओर देखते तक नहीं हैं। शूर्पणखा मोहका स्वरूप है। वह रावणकी बहिन है। बन-ठनकर वह रामके पास आई और कहने लगी, मैं कुमारी हूँ। मेरा मन तुम्हींमें खो गया है। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ। शूर्पणखा कामवासना है।

रामचंद्रजी—तेरी ही भाँति मेरा भाई लक्ष्मण अविवाहित है, उसके पास जा। मैं तो एक पत्नीव्रतका पालन करता हूँ।

शूर्पणखा आगबबूला हो गई। तुम अपनी सीताके कारण मेरी उपेक्षा कर रहे हो। उसने अपना विशाल राक्षसी रूप धारण किया।

वासना भी शूर्पणखाकी भाँति पहले तो सुंदर ही लगती हैं किंतु आगे चल कर उसका वास्तविक रूप सामने आता है और जीव फँस जाता है। वह आरंभमें सुकुमार लगती है, किंतु आगे चलकर भयंकर हो जाती है। उसकी पकड़से छूटना आसान नहीं है।

लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके नाक-कान काटके रख दिए। वह रोती-चिल्लाती हुई रावणके पास आई। रावणने पूछा—क्या हुआ ? कैसे हुई तेरी ऐसी दशा ?

शूर्पणखा—दशरथके दो पुत्र पंचवटीमें रहते हैं। उनके साथ एक सुंदर स्त्री भी है— मैं तुम्हारे लिए उसे लेने गई थी। तो मेरी यह दशा हुई। रावण उसे सांत्वना देने लगा।

इधर रामचंद्रजीने सीताजीसे कहा—देवी, अब लीलाका समय आ गया है, तुम अग्निमें निवास करो।

इसीलिए तो लिखा गया है, रावण जिस सीताको ले गया था, वह सीता नहीं, सीताकी मात्र छाया ही थी।

रावण मारीचके साथ पंचवटी आया। मारीचने कपटसे कनकमृगका रूप धारण किया। सीताजीने वह सुवर्णमृग देखा तो रामजीसे कहा—मुझे इसकी खालका वस्त्र पहननेकी इच्छा है। आप इसका शिकार कीजिए।

रामने भागते हुए उस मृग पर बाण बाण चलाया तो वह 'हे लक्ष्मण' बोलता हुआ धराशायी हो गया।

इधर सीताजीने लक्ष्मणके नामकी पुकार सुनी तो लक्ष्मणको अपने पतिकी सहायताके लिए दौड़ाया। लक्ष्मण आश्रमसे बाहर निकले तो रावण ने भिक्षुकका रूप लेकर सीताजीका हरण किया।

रावण सीताजीको रथ पर बिठलाकर आकाशमार्गसे जा रहा था। मार्गमें जटायुने सीताजीकी आर्त वाणी सुनी तो उन्होंने रावणसे युद्ध किया। उन्होंने रावणसे पूछा कि कहाँ है उसकी मृत्यु। रावणको छल करनेका अवसर मिल गया। उसने झूठ-मूठ कह दिया कि अपने पाँवके अँगूठेमें हैं। जटायु ज्यों ही उसका अँगूठा काटनेके लिए झुके कि रावणने पाँखें काट दीं।

लक्ष्मणको आया हुआ देख कर रामने उनसे पूछा—तुम्हें तो अपनी भाभीकी रक्षाके लिए वहीं रहनेको कहा था। यहाँ क्यों आये ?

लक्ष्मणजी—मैं तो वहीं रहना चाहता था किंतु भाभीके आग्रहके कारण आना पड़ा और उन्होंने बड़े भाईसे सारी बात सुनाई।

रामचंद्रकी सेवा करना बड़ा कठिन है। लक्ष्मणसे रामने कहा—अगले जन्ममें मैं तेरी सेवा करनेके लिए आऊँगा। लक्ष्मणका दूसरा जन्म हुआ बलरामका।

तो दोनों भाई आश्रम पर वापस लौटे। देखा तो सीताका कोई पता ही न था।

एकनाथजीने सीतावियोगका वर्णन बड़ा अच्छा किया है। रामजी सीते सीते' पुकारते हुए विलाप करने लगे। लक्ष्मण उन्हें बार-बार धीरज देते हुए समझा रहे थे।

राम कहते हैं—यह धरती मेरी सासु है। जब भी वहीं दृष्टि जाती है तो मानो वह मुझे कोसती है, अपनी पत्नीकी रक्षा करनेकी यदि तुममें शक्ति ही नहीं थी तो विवाह ही क्यों किया था? आकाशकी ओर दृष्टि जाती है, तो मानो भगवान् सूर्यनारायण दुःखसे कहते हैं कि मेरे कुलमें यह कैसा कुपुत्र जन्मा जो अपनी पत्नीकी भी रक्षा न कर सका।

दोनों भाई सीताको ढूँढ़ते हुए घूम रहे थे कि एक स्थान पर घायल जटायुको देखा। जटायुने कहा, रावण ही ने मेरी यह दशा की है। वह सीताको उठाकर दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ गया है।

रामचंद्रजी—यदि तुम्हारी इच्छा है तो मैं तुम्हें ठीक कर दूँ।

जटायु न माना। कहा, मृत्युके समय मुखसे जिनका नाम उच्चारित होने पर अधमको भी मुक्ति मिलती है, वैसे आप मेरे समक्ष उपस्थित हैं। तो फिर मुझे कौन-सी इच्छा अब पूरी करनी है, जिसके लिए इस शरीरको बनाये रखूँ।

जाकर नाम मरत मुख आवा।
अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगे।
राखहुँ देह नाथ केहि खाँगें॥

जटायुने गिद्धकी देह छोड़ दी और हरिधाम चले गए। जिस गतिकी योगी इच्छा करते हैं, वह उत्तम गति रामजीने जटायुको दी।

इसीलिए शिवजी पार्वतीसे कहते हैं—पार्वती, वे लोग सत्य ही अत्यंत दुर्भागी हैं, जो हरिको छोड़ कर सांसारिक विषयोंसे प्रेम करते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥

वहांसे वे शबरीकी कुटिया पर आए।

यह शबरी अगले जन्ममें किसी राजाकी रानी थी। वह धनसे तो सेवा कर सकती थी किंतु तनसे नहीं। एक समय वह प्रयागराज गई। वहाँ कई महात्माओंसे मिलना हुआ। अगले जन्ममें किसी सच्चे संतसे सत्संग हो, ऐसी इच्छा करते हुए उसने त्रिवेणीमें आत्मविसर्जन कर दिया। उसी रानीका भील जातिमें शबरीके रूपमें जन्म हुआ।

शबरीके विवाहका दिन आया। उसके पिताने भोजन देनेके लिए तैयारी की। बहुत-सी बकरियाँ भी लाई गईं, जिनके मांसका भी उपयोग किया जाना था। शबरीने सोचा, मेरे कारण ही तो यह हिंसा होने जा रही है। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। उसने मध्यरात्रिके समय घर ही छोड़ दिया।

शबरी पंपा सरोवरके किनारे आई और मातंग ऋषिके आश्रमके निकट रहने लगी।

यह मातंग ऋषि वर्षमें एक हाथीका शिकार करते थे और उसके मांसका भक्षण करते हुए सारा वर्ष बिताते थे। अन्य ऋषि उनकी निंदा करते तो वे कहते, आप तो कई जीवोंकी हत्या करते हैं, जब कि मैं तो वर्षमें मात्र एक ही जीवकी हत्या करता हूँ।

शबरी वहाँ आई। सारा दिन किसी वृक्ष पर बैठी रहती और रातके समय संतोंकी सेवा करती थी।

सत्कर्मोंकी प्रसिद्धिसे पुण्य नष्ट हो होता है।

किसीको दिखानेके लिए नहीं, भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए ही सेवा करो।

जिस मार्गसे ऋषि-मुनि स्नानार्थ जाते थे, उस मार्गकी सफाई रात्रिके समय शबरी कर देती थी। किसीको पता नहीं चलता। उससे मातंग ऋषिने पूछा, तू कौन-सी जातिकी है? शबरीने सच्ची बात ही कह दी कि वह किरात-कन्या है।

मातंग ऋषिने सोचा कि यह हीनजातिकी है किंतु हीनकर्मा नहीं है। उन्होंने कहा, पुत्री, तुम मेरे आश्रममें ही रहना। शबरी शुद्ध थी, फिर भी लोग निंदा करते थे कि ऋषि होकर भी भील-कन्याको अपने पास रखा है। ऋषि उसे राममंत्रकी दीक्षा दी।

एक दिन मातंग ऋषि ब्रह्मलोकमें जानेकी तैयारी करने लगे तो शबरीको बड़ा दुःख हुआ। वह कहने लगी, पिताजी, आप मत जाइए। आप चले जाएँगे तो मेरा क्या होगा?

ऋषिने कहा—मैंने तुम्हें राममंत्रकी दीक्षा दी है। श्रद्धा रखना। एक-न-एक दिन तेरी कुटिया पर रामचंद्रका आगमन होगा। कब आएँगे, वह तो मैं भी नहीं जानता किंतु अयोध्यामें तो उनका प्राकट्य हो चुका है।

जप, तप, दान, तीर्थ आदि सब कुछ करने पर भी यदि किसी सच्चे संतकी कृपा न होगी, तब तक भक्ति सफल नहीं होगी।

वैष्णव आशामें ही जीते हैं कि कभी मेरे प्रभु मुझे अपनाएँगे।

बड़े उत्साहसे सेवा-स्मरण करते रहो। मन न लगे तो सतत सत्कर्म करो।

शबरीको श्रद्धा थी कि राम कभी तो आएँगे ही। वह वनमेंसे बेर आदि फल ले आती थी। सारा दिन प्रतीक्षा करती थी और शामको ही खाती थी। वह सोचती थी कि मैं पापिनी हूँ, तभी तो वे मेरे यहाँ आते नहीं हैं।

रामकी प्रतीक्षा करते-करते अब तो वह वृद्धा हो गई है फिर भी वह उसी आशामें जी रही है। मेरे गुरुजीने कहा है न। रामजीके लिए लाए गए फल वह ऋषि-कुमारोंमें बाँट देती थी। घट-घटमें राम बसा है। तपश्चर्या करनेसे सिद्धि अवश्य मिलती है।

शबरी सारा दिन राममंत्र जपती रही थी। उसका जीवन संयमी और सेवामय था। उसकी निष्ठा दिव्य थी। ऐसोंके घर राम नहीं जाएँगे तो फिर किसके घर जाएँगे ?

राम-लक्ष्मण पंपा सरोवर आए तो ऋषि-मुनियोंने उनका स्वागत किया। वे सब उसके यहाँ पधारनेका आग्रह करने लगे। तो रामजीने कहा, पहले मैं शबरीकी कुटिया पर जाऊँगा।

सभी स्थानोंमें हमेशा जो मुझे ढूँढ़ता है, उसे मैं भी ढूँढ़ता हूँ और उसके पास जाता हूँ।

जिस समय राम-लक्ष्मण शबरीकी कुटिया पर पहुँचे, उस समय वह राम मंत्रका जप कर रही थी। शबरीने दोनोंका स्वागत किया और बैठनेके लिए अच्छा-सा आसन दिया। मैं वैसे तो जातिहीन हूँ, फिर भी आपकी शरणमें आई हूँ।

राम—मैं और किसी भी प्रकारका संबंध नहीं चाहता। सबसे ऊँची प्रेम सगाई।

शबरी बेरका दोना ले आई और चख-चख कर सभीको देने लगी कि कहीं खट्टे तो नहीं हैं। वह भगवान्के दर्शन होने पर इतनी तो भावावेशमें है कि उसे यह भी विचार नहीं आता है कि वह भगवान्को जूँठे बेर खिला रही है। रामजीने बेरोंकी बड़ी प्रशंसा की।

मिठास तो प्रेममें ही है।

प्रेम कलंकित न हो। ईश्वरको मात्र उनके लिए ही प्रेम करो।

महापुरुष वर्णन करते हैं कि शबरीके बेर खाकर रामजीने जो गुठली फेंक दी थीं उनमेंसे द्रोणाचल पर्वत पर संजीवनी वनस्पति उत्पन्न हुई। इसी संजीवनीसे लक्ष्मणजीको जीवनदान मिला था।

अतिशय भजन करो। सच्चे साधु-संतोंमें विश्वास रखो। शबरीका चरित्र मानवमात्रके लिए आश्वासन रूप है। भगवान् अवश्य मिलते हैं।

श्रीरामने शबरीसे पूछा, तेरी कोई इच्छा है ? शबरीने कहा, इस पंपा सरोवरके बिगड़े हुए जलको आप शुद्ध कर दीजिए। किसी समय एक ऋषिने शबरीको लात मारी थी सो इस सरोवरका जल बिगड़ गया था।

रामजी लोगोंसे कहते हैं कि इस जलको शुद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। यदि शबरीके चरणतीर्थके जलकी इस सरोवरमें अंजलि दी जाए तो बात कुछ बन सकती है।

शबरीको उस सरोवरमें स्नान कराया गया और फलतः सरोवरका जल शुद्ध हो गया। रामने शबरीका भी उद्धार किया। रामका दर्शन करती हुई शबरी योगाग्निमें विलीन हो गई।

रघुनाथजी अब ऋष्यमूक पर्वतके समीप आए। वहाँ सुग्रीव रहते थे। वहाँ प्रथम तो हनुमानजीसे मिलन हुआ। हनुमानजीने उनका परिचय जाना और सुग्रीवसे मैत्री करा दी।

जब तक ईश्वरसे जीवकी मैत्री नहीं हो पाती है, तब तक जीवन सफल हो नहीं पाता है और ऐसी मैत्री हनुमानजी अर्थात् ब्रह्मचर्यके बिना नहीं हो पाती।

रामनाम तो अमृतसे भी श्रेष्ठ है। रामनाम भवरोगकी दवा है। किंतु संयमके बिना वह भी कारगर नहीं हो सकती।

रामनाम तो सब कहें,
दसरथ कहे न कोइ ।।

जब तक हनुमानजी सिफारिश नहीं करते हैं, तब तक रामचंद्र अपना नहीं बनाते ।

परमात्मा जीवमात्रके सच्चे मित्र हैं । ईश्वरके साथ मैत्री करनेसे जीवन सफल होता है । सांसारिक मित्र तो केवल इसी जगत्में सुख दे सकता है किंतु परलोक और अंतकालमें सुख नहीं दे सकता ।

जीव यदि ईश्वरके साथ मैत्री करे तो वे उसे अपना लेते हैं । वे उसे भी ईश्वर बनाते हैं । वे तो अति उदार हैं । वे जब देने पर आते हैं, तब बहुत उदार हो कर देते हैं । जीवको जब कुछ देनेका प्रसंग आता है तो सोचविचारके, अपने लिए बहुत कुछ बाकी रख कर देता है । विश्वका सर्जक देते समय ऐसा कभी नहीं सोचता है कि अपने लिए भी शेष रखना चाहिए ।

मैत्री परमात्माके साथ ही करो । परमात्मासे मैत्री वही कर सकता है जो कामको अपना शत्रु बनाता है । कृष्ण और काम, राम और रावण एक साथ रह नहीं सकते ।

रामचंद्रजीने सुग्रीवको अपना मित्र बनाया क्योंकि सुग्रीवको हनुमानजीने अपनाया है ।

हनुमानजी ब्रह्मचर्यका स्वरूप हैं । ब्रह्मचर्यकी मैत्री जितेन्द्रिय बनाएगी और तभी परमात्माके साथ भी मैत्री होगी। संयम और धर्ममर्यादाका पालन करोगे तो रामराज्यके कालकी भाँति डाक्टर-वकीलकी आवश्यकता नहीं रहेगी ।

हनुमानजीको जो अपना मित्र नहीं बनाता है, उसे राम भी अपना मित्र बनाते नहीं हैं । परमात्मासे प्रेम किए विना जीवन सुंदर नहीं हो पाता । प्रेम किए विना मनुष्य जी नहीं सकता । कोई धनसे, कोई स्त्रीसे, कोई बालकोंसे प्रेम करता है किंतु प्रेम करने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं । परमात्माके सिवाय अन्य किसी भी व्यक्तिके साथ किया गया प्रेम जीवको अंतमें रुलाता ही है ।

जगत् अपूर्ण है और जीव भी अपूर्ण है । परमात्माके साथ मैत्री होने पर ही जीवन परिपूर्ण हो पाता है । परमात्माके साथ प्रेम करनेवालेको वे पूर्ण बनाते हैं । ईश्वर उसीको मिलते हैं, जो उनसे पूर्णतः प्रेम करते हैं । वैसे व्यक्ति ही प्रभुको अपना मानते हैं । ईश्वरके साथ प्रेम करना है तो दूसरोंका प्रेम छोड़ना पड़ेगा । लौकिक प्रेमको धीरे-धीरे कम करते जाओ और प्रभुके साथ प्रेम बढ़ाते जाओ ।

हनुमानजीके पूछने पर रामजीने अपना परिचय दिया । हनुमानजीने प्रणाम करके स्तुति की और कहा, इस पर्वत पर बानरराज सुग्रीव रहते हैं, उनके साथ मैत्री कीजिए । वे आपके दास हैं और तब सभी सुग्रीवके पास आए ।

रामजीने सुग्रीवसे पूछा—तुम इतने दुःखी क्यों दिखाई देते हो ?

सुग्रीव—मेरे भाई बालीने मेरी धन-संपत्ति और पत्नी छीन कर मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है ।

जो मित्रके दुःखसे दुःखी होता है, वही सच्चा मित्र है ।

सुग्रीव और बालीके बीच युद्ध हुआ। राम सुग्रीवके पक्षमें थे। उन्होंने एक वृक्षकी आड़ लेकर बाली पर तीर छोड़ा। तो बालीने कहा—

अवगुन कवनु नाथ मोहि मारा।

आपने तो धर्मकी रक्षाके हेतु अवतार धारण किया है। मैंने तो कोई अपराध किया नहीं, फिरभी आप मेरा वध क्यों करना चाहते हैं? धर्मकी रक्षाके हेतु अवतार धारण करके भी आपने अधर्माचरण किया है।

रामचंद्रजी—बाली, अपना दोष तो तू देखता नहीं है और मुझ पर ही दोष लगाए जा रहा है।

भाभी, बहन, पुत्रवधू और अपनी कन्या एक समान हैं, फिर भी तुमने अपने भाईकी पत्नी पर कुदृष्टि डाली। सो तू महापापी है। अतः तेरा उद्धार करनेके लिए ही तेरा वध कर रहा हूँ।

स्वदोषके दर्शनके बिना ईश्वरके दर्शन हो नहीं पाते। परदोष-दर्शन परमात्माके दर्शनमें बाधारूप है।

बाली कहने लगा—प्रभु, यदि मैं पापी हूँ तो मुझे बताइए कि कौनसे ग्रंथमें ऐसा लिखा हुआ है कि पापीको भी आपके दर्शनका लाभ प्राप्त हो सकता है। उलटे कहा गया है—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं॥

मुनिगण जन्म-जन्मांतरमें कई प्रकारकी साधना करते रहते हैं, फिर भी अंतकालमें उनके मुखसे राम-नाम उच्चारित नहीं हो पाता है।

मैं पुण्यशाली हूँ, तभी आपके दर्शन इस समय कर रहा हूँ। आपके दर्शनसे अब मैं पापी तो रहा ही नहीं। आपके दर्शनसे पापोंका नाश होता है। आपके दर्शन देवोंको भी दुर्लभ हैं फिर भी मैं आपके दर्शन कर रहा हूँ।

भगवान् रामने कहा—मेरे दर्शन तुम्हें हुए, वह तेरे प्रतापसे नहीं हुए हैं। तुम सुग्रीवके भाई हो सो मैं तुम्हारा उद्धार कर रहा हूँ। तुम सुग्रीवके कारण ही मेरे दर्शन पा रहे हो।

भगवान्‌की बात सुन कर बालीने सुग्रीवको प्रणाम किया और कहा, तेरे ही कारण मुझे भगवान्‌के दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सुग्रीव बालीसे कहने लगा—नहीं, नहीं। तुम्हारे कारण ही मुझे भगवान्‌के दर्शन हुए। यदि तुमने मुझे घरसे निकाल न दिया होता तो प्रभुदर्शन मैं भी कैसे पा सका होता।

बाली देह छोड़ रहा था तो सुग्रीवने भगवान्‌से प्रार्थना की कि मेरे भाईके पापको क्षमा कीजिए।

वैर और वासना मृत्युको बिगाड़ते हैं। जो वैर और वासनाको अपने ही मनमें रख कर मरता है, उसे सद्गति नहीं मिल पाती। अपना कर्तव्य है कि किसीके साथ वैर न रखें।

राम-राम जपते हुए बालीने प्राणत्याग किया। सुग्रीवको किष्किंधाका राज्य दिया गया।

रामकी अनासक्ति भी कैसी है।

रावणकी हार हुई और लंकाका राज्य रामको मिला किंतु उन्होंने कहा, मुझे धन या राज्यकी आसक्ति नहीं है। लंकाका राज्य कुंभकर्णको दे दिया। कंसकी मृत्यु होने पर मथुराका राज्य कृष्णके हाथोंमें आया किंतु उन्होंने उग्रसेनको दे दिया।

राम और कृष्ण जैसा बोलते हैं, वैसा ही आचरण करते हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनको युद्ध-भूमिमें छः शास्त्रोंका सार एक ही घंटेमें सुनाया था। भगवानका ज्ञान भी कैसा है। अर्जुनने कहा था, आप जो कहेंगे वही करूँगा।

ज्ञानकी शोभा व्याख्यान नहीं, क्रियात्मक भक्तियोग है।

रामके समान जगहितार्थी कोई नहीं है। ऐसा भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा। देवता, मनुष्य और मुनि सभीकी यह रीति है कि अपने स्वार्थके हेतु ही वे सभीसे प्रीति करते हैं।

सुर नर मुनि सबकी यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

भगवान् राम प्रवर्षण पर्वत पर विराजे। हनुमानजी अपनी वानरसेनाके साथ आए। रामजीने अपनी मुद्रिका हनुमानजीको देते हुए कहा, यह सीताजीको देना और मेरे विरह तथा बलकी सारी बातें सुना कर तुरंत लौट आना। हनुमानजीने अपनी वानरसेनाके साथ दक्षिणकी ओर प्रयाण किया। वे जाम्बवन्तके पास आए, जहाँ संपातीने उन्हें समाचार दिया कि सीताजीको अशोकवनमें रखा गया है। समुद्रको पार करना बड़ा कठिन था। राम-नाम और संयमके बलके बिना समुद्र पार किया नहीं जा सकता।

हनुमानजीने आवेशपूर्वक कहा, यदि आप कहें तो सारी लंकाको समुद्रमें डुबो दूँ।

जांबवन्त—धीरज रखो। यदि लंकाको डुबो दोगे तो सीताजी भी डूब जाएँगी।

तो हनुमानजीने उड़ान भरी और उड़ते हुए समुद्र पार करने लगे। मार्गमें सुरसाने अवरोध करनेका प्रयत्न किया। हनुमानजीने उसका नाश किया। हनुमानजी लंका आ पहुँचे। सायंकालका समय था। लंका-दर्शन करने निकले। वहाँका वैभव अलौकिक है।

मध्यरात्रिके समय लंकामें प्रवेश करने जा रहे थे कि लंकिनीने रुकावट की। तो उन्होंने उसे मार दिया। मरते हुए लंकिनीने कहा, मुझे ज्योतिषीने कहा है कि तुझे कोई मारे, तब समझ लेना कि रावणकी भी मृत्यु होने जा रही है। हनुमानजीको लंकिनीने यह भी कहा कि लंकामें घूमते समय रामजीको हमेशा अपने हृदयमें रखना। शायद राक्षसियोंके विहारको देख कर मन विकारी हो जाए।

हृदय राखि कोशलपुर राजा।

मानवसमाजमें बस कर मानव बनना आसान नहीं है। एकांतमें बैठ कर ब्रह्मचिंतन करना आसान है। जनसमाजके मध्यमें विलासी लोगोंके साथ रह कर निर्विकार रहना बड़ा कठिन है। शरीर से चाहे पाप न हो, मनसे तो हो ही जाता है।

हनुमानजीको कौन उपदेश दे सकता है ? वे तो सकल विद्याके आचार्य हैं । फिर भी लंकिनीके वचन उपेक्षणीय नहीं हैं । हनुमानजीको लगा, मैंने आँखसे यह दृश्य देखा । नहीं, नहीं, आँखसे चाहे देखा है, मनसे चिंतन तो किया ही नहीं है । हनुमानजी तो बालब्रह्मचारी हैं ।

वहाँसे वे इन्द्रजीतके आवासमें आए। वहाँ सुंदरी सुलोचनाको देख कर उन्होंने सोचा, शायद यही सीताजी हैं । नहीं, यह सीताजी नहीं है ।

एकनाथजी महाराजने सुंदरकांडमें बड़ा अच्छा वर्णन किया है ।

हनुमानजी साक्षात् शिवजीका अवतार थे । पार्वतीजी भी अवतार लेनेका आग्रह करने लगीं तो शिवजीने कहा, नहीं मुझे ब्रह्मचारी रहना है । पर्वतीने कहा, मैं आपके बगैर जी नहीं सकूँगी । सो शिवजीने हनुमानजीका रूप लिया और पार्वतीजी बनीं उनकी पूँछ । यह योगमाया सभीके घरमें जाती हैं ।

हनुमानजीकी पूँछ बढ़ती ही गई । रावणकी बहुत फजीहत हुई ।

हनुमानजीने सारी रात सूक्ष्म रीतिसे भ्रमण किया किंतु सीताजी कहीं भी दिखाई नहीं देती थीं । प्रातःकालमें विभीषणके आवासमें प्रविष्ट हुए । वहाँ उन्होंने देखा कि विभीषणने नींदसे जागते ही रामका स्मरण और उच्चार किया । हनुमानजी सोचने लगे, इन राक्षसोंकी बस्तीमें यह कौन वैष्णव है ? हनुमानजीने ब्राह्मणका रूप लिया और विभीषणके निकट गए । विभीषणने उनसे पूछा, कौन है आप ? राम तो नहीं हैं क्या ? प्रभातमें आपके दर्शन हुए सो मेरा सारा दिन अच्छा बीतेगा और कल्याण होगा । हनुमानजीने सारी बात बताते हुए सीताजीका पता पूछा ।

विभीषण—आपके दर्शन होनेसे मुझे विश्वास हो गया है कि रामजीके दर्शन मुझे अवश्य होंगे । मैं तो अधम हूँ, किंतु आपके कारण राम मुझे अवश्य अपनाएँगे ।

रात्रिमें सोनेसे पहले तथा प्रातःकालमें जागते ही प्रभु-स्मरण और शुभ विचार करो ।

हनुमानजी अशोक बनमें आए । वहाँ सीताजी समाधि-अवस्थामें बैठकर रामनाम जप रही थीं । उनका शरीर दुर्बल हो गया था । हनुमानजीने उनको मन-ही-मन प्रणाम किया और वृक्षकी डाली पर बैठ कर रामकथा सुनानी शुरू की । आपको ढूँढ़नेके लिए कई वानर भेजे गए हैं । उनमेंसे मैं भी एक हूँ । मैं रामचंद्रजीका दूत हूँ । आज मेरा जीवन सफल हो गया । साक्षात् आद्याशक्ति सीताजीको प्रणाम करता हूँ ।

सीताजी—भाई, कौन है तू ? प्रत्यक्ष क्यों नहीं आता है तू ? मेरे समक्ष आ ।

हनुमानजीने सामने आकर माताजीको प्रणाम किया । माताजी, मैं हूँ रामचंद्रजीका दूत । आप मेरी माता हैं । मुझे आज बड़ा आनंद हुआ और उन्होंने रामचंद्रजीका संदेश सुनाया । वे आपकी उपेक्षा नहीं करते हैं । वे शीघ्र ही यहाँ आ रहे हैं ।

माताजी, मुझे भूख लगी है, यहाँ फल तो बहुत हैं किंतु राक्षस लोग निगरानी कर रहे हैं ।

सीताजीने कहा, नीचे गिरे हुए फल ही खाना, तोड़ कर न खाना हनुमानजीने सोचा कि माताजीने फल तोड़नेकी मनाही की है, वृक्षोंको झंझोड़ कर फल गिरानेकी नहीं और उन्होंने वृक्षोंको झंझोड़ कर फल गिराए और आहार किया ।

संत तो भोजन करते समय भी भजन चालू ही रखते हैं। अन्नकी निंदा पाप है।

हनुमानजीने दिव्य वानरका स्वरूप धारण किया और पूँछको उसका काम करनेकी आज्ञा दी। पूँछने बहुतोंको मारा, कई राक्षसियोंका संहार किया। इतनेमें इन्द्रजीतने वहाँ आकर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। हनुमानजीने ब्रह्मास्त्रका सम्मान किया। इन्द्रजीत हनुमानजीको बाँध कर राजसभामें ले आया। रावणने हनुमानजीसे पूछा—ऐ बंदर! कहाँसे आया है तू? क्यों आया है?

हनुमानजी—ऐ दशानन, मैं तो तुम्हें उपदेश देनेके लिए आया हूँ। शिवजीको प्रसन्न करनेके लिए तू तपस्वी बना था। फिर भी पराई स्त्री सीताजीको बंदी बनाया? रामचंद्रजीकी शरणमें आ। वे तेरे सभी पाप क्षमा करेंगे।

किंतु रावण कब समझनेवाला था? वह तो अहंकारी था। उसने अपने सेवकोंसे कहा, इस बंदरकी पूँछमें ही शक्ति है। जला दो इस पूँछको। सेवक हनुमानजीकी पूँछको कपड़ेसे लपेटने लगे। हनुमानजी अपनी पूँछको बढ़ाते गए। लंकाके सारे बाजारका कपड़ा खत्म हो चुका। कपड़ोंको घी-तेलसे भिगोया गया और फिर उन्हें जलाया गया।

हनुमानजीने कहा, यह तो पूँछ-यज्ञ हो रहा है। रावण! अपने मुँहसे जरा उसे हवा तो दे। रावण फूँक मारने गया तो उसकी दाढ़ी जल गई।

हनुमानजीने कई घरों पर कूद करके सारी लंकामें आग लगा दी।

राक्षसियाँ दौड़ती हुईं सीताजीके पास आईं और कहने लगीं, आपके पास जो पुरुष आया था उसकी पूँछ सारी लंकाको जला रही है।

सीताजी प्रार्थना करने लगीं—हे अग्निदेव! यदि मैंने अपने पतिके सिवाय अन्य किसी भी पुरुषका चिंतन न किया हो और पतिव्रतका पूर्णतः पालन किया हो तो आप शांत हो जाइए। अग्निदेव चंदनसे शीतल हो गए।

लंका जल रही थी। हनुमानजीने समुद्रके किनारे पर आकर देखा तो उन्हें लगा कि यह अच्छा नहीं हुआ। अशोक बन भी यदि जल गया तो? समुद्र-स्नान करके वे अशोक वनमें आए। वहाँ देखा कि एक भी वृक्ष जला नहीं था। सीताजीसे मिले। सीताजीने आशीष दी, अष्ट सिद्धियाँ तेरी सेवा करेंगी और सारे जगत्‌में तेरी जयकार होगी किंतु इन आशीषोंसे हनुमानजीको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने तो रामसेवाकी आशीष माँगी। हनुमानजी अमर हैं। काल उनका सेवक है।

हनुमानजी वहाँसे जाने लगे तो ब्रह्माजीने उनके पराक्रमकी सारी बातें पत्रमें लिख दीं। हनुमानजी इतने नम्र हैं कि अपने कार्यका वर्णन स्वमुख से नहीं करेंगे सो पत्र लिख दिया।

हनुमानजी रामजीके पास आए। लक्ष्मणने पत्र पढ़ कर रामजीको सुनाया। हनुमानजीने कहा—प्रभु यह तो सब आपका ही प्रताप है। कृपा कीजिए कि मैं अभिमानी न हो जाऊँ। रामजीने सोचा कि हनुमानजीको मैं दूँ तो क्या दूँ। उन्होंने हनुमानजीको अपनी बाँहोंमें भर लिया।

रामचंद्रजीने वहाँसे विजयादशमीके दिन प्रयाण किया और समुद्रके किनारे पर आए। उनका नियम था प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करना। वहाँ कोई शिवलिंग नहीं मिला तो

हनुमानजीको काशीसे शिवलिंग ले आनेकी आज्ञा दी। हनुमानजी को लौटनेमें देरी हुई तो रामजीने बालूका शिवलिंग बनाया और पूजा की। वही शिवलिंग रामेश्वर है। जो रामेश्वरका दर्शन करेगा, वह देहत्यागके बाद मेरे धाममें आएगा।

जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं।
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥

इधर लंकामें रावणने नगरजनोंकी सभा बुलाई। विभीषणने कहा, भैया, रामजीकी शरणमें जाकर सीताजीको सकुशल लौटा दो।

रावणने गुस्सेसे विभीषणको लताड़ दिया। धन्य है विभीषणको कि लात खा कर भी बड़े भाईको वंदन किया। तुमको जो ठीक लगे, वही करो। मैं तो श्रीरामकी शरणमें जा रहा हूँ।

विभीषणके लंकात्याग करते ही सभी राक्षस आयुष्यहीन हो गए।

साधुपुरुषका अपमान सर्वनाशका कारण बन सकता है।

विभीषण वानरसेनाके पास आए। वे सोच रहे थे कि मुझे यहाँ अपनाया जाएगा या नहीं। रावणका भाई होनेके कारण मेरा तिरस्कार तो नहीं करेंगे न ? नहीं, नहीं, प्रभु तो अंतर्यामी हैं। मेरा मनोभाव शुद्ध है, अतः वे मुझे अवश्य अपनाएंगे।

सुग्रीवने भगवान्‌को समाचार दिया कि रावणका भाई विभीषण आया है। मुझे तो लगता है कि यह राक्षसोंकी माया है और वे हमारा भेद जानना चाहते हैं।

राम—किंतु विभीषण क्या कहता है सो तो बताओ।

सुग्रीव—वह तो कहता है—

राघवं शरणं गतः।

हनुमानजी वकालत करने लगे—उसके हृदयमें छलकपट नहीं है। उसको हमें अपनाना चाहिए।

राम—सुग्रीव, विभीषणका स्वागत करो और यहाँ ले आओ। जब भी जीव मेरे सम्मुख आता है, उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य मनसे निर्मल है, वह मुझे प्राप्त करता है। मुझे छल-कपट और छिद्रान्वेषण पसंद नहीं हैं।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

सुग्रीव विभीषणको ले आया। विभीषणने कहा—नाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मेरे भाईने मुझे लताड़ कर तिरस्कृत किया है।

रामजीने अपने आसनसे खड़े होकर विभीषणका सत्कार करते हुए कहा, तुम मेरे भाई लक्ष्मणके समान मुझे प्रिय लगते हो। लंकाका राज्य तुम्हें ही दिया जाएगा।

विभीषणने भी सोचा था कि रावणकी मृत्युके पश्चात् प्रभु मुझे ही लंकापति बनाएँगे। आज उनकी इच्छा पूर्ण हो गई।

सुग्रीवने रामजीसे कहा—आप बड़ी शीघ्रता करते हैं। विभीषणको लंकाका राज्य देनेका वचन तो दे दिया किंतु यदि रावण शरणमें आकर सीताजीको सौंप दे तो आप उसे क्या देंगे ?

रघुनाथजी—मैं जब भी कुछ बोलता हूँ, सोच-विचार करके ही बोलता हूँ। यदि रावण शरणमें आएगा तो मैं उसे अयोध्याका राज्य दूंगा।

विभीषन शरण आयो, कर्‌यो लंकाधीश।
यह सुनि रावण शरण आये तो करहुँ कौशलाधीश ॥

रावण यदि शरणमें आएगा तो उसे अयोध्याका राज्य देकर हम सभी भाई वनवास करेंगे।

समुद्र पर पत्थरका सेतु रचा गया। पत्थर पर रामनाम लिखनेसे पत्थर तैरते हैं।

रामनामसे यदि जड़ पत्थर तैर सकता है तो मनुष्य क्यों तैर न सके ? विश्वासपूर्वक, श्रद्धापूर्वक रामनामका जप करोगे तो भवसागर पार कर सकोगे। इस कलियुगमें इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। पत्थर तक रामनामसे तैर जाते हैं।

रामचंद्रजीने लंकामें प्रवेश किया। अंगदको विष्टिके लिए भेजा गया। अनेक राक्षस मर गए। लक्ष्मणने कपटसे इन्द्रजीतका मस्तक उड़ा दिया। सुलोचनाने सती होना चाहा। उसने रावणसे अपने पति इन्द्रजीतके मस्तककी माँग की। तो रावणने कहा, वह मस्तक तो रामके पास है। जा उसके पास।

तो सुलोचनाने कहा, मुझे शत्रुके पास क्यों भेज रहे हो ? मैं सुंदर हूँ सो वहाँ कुछ अनर्थ हुआ तो ?

रावण रामचंद्रजीकी प्रशंसा करते हुए कहने लगा—राम तो तुम्हें माताके समान हा मान देंगे। तुम्हारी स्तुति करेंगे और तो मैं क्या कहूँ ? मैं रामको अपना शत्रु मानता हूँ किंतु वे मुझे शत्रु नहीं मानते हैं। रामकी शरणमें जा। वे अवश्य तुम्हें इन्द्रजीतका मस्तक लौटा देंगे।

सुलोचना रामजीके पास आई। बाला कि मेरे पतिका हाथ आँगनमें आया और पत्र लिख दिया। उससे पूछा कि जड़ हाथ लिख कैसे सकता है। तुम अपने पतिकी प्रार्थना करो। यदि आँखें हँसेगी तो मानेंगे कि जड़ हाथने पत्र लिखा है।

सुलोचना बहुत मनाती है। मस्तक हँसता नहीं है। नाथ, तुम अप्रसन्न हो। ऐसा सुन कर मस्तक डोलने लगा और स्मित किया।

शेषनाग लक्ष्मणका रूप ले कर आए।

मस्तकने सुलोचनासे कहा, तेरे पिताने मुझे मारा है।

आज श्वसुर और दामादके बीच नहीं किंतु दो पतिव्रताओंके बीच युद्ध हो रहा है। उर्मिला और सुलोचनाका संग्राम है। सुलोचनाकी पराजय हुई। सुलोचनाने लक्ष्मणजीसे कहा—जय आपकी नहीं उर्मिलाकी हुई है। उसका पातिव्रत्य मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ है। मेरे पति पापी

रावणके पक्षमें होनेके कारण दुर्बल हैं। मेरे पति पापीकी सहायता कर रहे थे। सो मेरी पराजय हुई और उर्मिलाकी जय। परस्त्रीके हरण करनेवालेकी मेरे पति सहायता करते थे सो मुझे हारना पड़ा।

सुलोचना सती हो गई। रामजीने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

राम और रावणके मध्य भयंकर युद्ध छिड़ गया। रावणकी नाभिमें जो अमृत था, उसे अग्न्यस्त्र द्वारा सुखा दिया गया। रावणकी मृत्यु हुई।

हनुमानजीने सीताजीको रामकी विजयका समाचार दिया।

प्रभुने स्वयं कुछ भी नहीं लिया। लंकाका सारा राज्य विभीषणको सौंप दिया। वानरोंका सम्मान किया गया।

अब रामचंद्रजी आदि पुष्पक विमान पर सवार हो कर अयोध्याकी दिशामें लौट चले। मार्गमें उन्होंने सीताजीको रामेश्वरका दर्शन कराया।

विमान प्रयागराज आया। हनुमानजीको आगे बढ़नेकी आज्ञा की। हनुमानजी भरतके पास आए। भरत रामपादुकाकी पूजा करते हुए सीतारामका जप कर रहे थे। हनुमानजीने कहा, भरतजी ! राम-लक्ष्मण-जानकी पधार रहे हैं।

भरतजीने विमान देखा तो आनंदित हो गए। विमानमेंसे सब नीचे उतरे। रामजीने भरतको बाँहोंमें भर लिया। दोनोंका मिलन हुआ तो लोग समझ भी नहीं पा रहे थे कि इन दोनोंमेंसे राम कौन है और भरत कौन है। दोनोंका वर्ण श्याम है, वल्कल समान हैं और शरीर कृश है।

वसिष्ठ ऋषिने राज्याभिषेकका मुहूर्त दिया—वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी। राज्याभिषेककी विधि संपन्न हुई। भगवान् रामचंद्रजी और सीताजीने कनक-सिंहासन पर आसन लिया।

रामराज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, लोभी, झगड़ालू नहीं था। प्रजा हर तरहसे सुखी थी। उनके राज्यमें वकील-वैद्योंका कोई काम न था। उस समय वकील-वैद्य बेकार हो गए थे। शायद इसी कारणसे उनके धंधेमें आज बड़ी तेजी है।

रामराज्यमें सारी प्रजा एकादशीका व्रत करती थी।

एकादशीके दिन रसोई बनानेकी बात तो दूर रही, अन्नके दर्शन नहीं करने चाहिए। कथा सुनते तो हैं तो कुछ व्रत भी रख लीजिए। जप करूँगा, एकादशी करूँगा प्रभुसेवाके पहले भोजन न करूँगा। ऐसा कोई भी नियम अपनाओगे तो कथाश्रवणका फल मिलेगा।

हनुमानजी रामचंद्रजीकी सेवा कर रहे हैं। वे इस प्रकार सेवा करते थे कि अन्य किसीके लिए सेवा करनेका कोई अवकाश ही नहीं रहता था। सीताजी सोचने लगीं कि इस हनुमानके कारण मैं तो अपने पतिकी कुछ सेवा कर ही नहीं पाती। जब सेव्य एक है और सेवक अनेक तो ऐसी विषमता हो ही जाती है।

दासोऽहम् के बाद सोऽहम् हो सकता है। ज्ञानी लोग भी पहले दास्यभाव रखते हैं और बादमें सोऽहम्की भावना करते हैं।

सीताजीने अपने पतिदेवसे कहा—मैं सेवा करूँगी। हनुमानजीको आप मना करें।

रामजी—हनुमानजीको भी सेवाका अवसर देना ही पड़ेगा। उसने आज तक मेरी बड़ी सेवा की है। मैं उसका ऋणी हूँ। प्रभुको दुःख हुआ कि लोग हनुमानजीको पहचानते और समझते नहीं हैं।

सीता, भरत और शत्रुघ्न हनुमानजीको सेवा करने नहीं देते हैं। रामसेवा ही तो हनुमानजीका जीवन था।

सेवा और स्मरणके हेतु ही जो जीता है, वही सच्चा वैष्णव है। वेशसे वैष्णव होना, वैष्णव कहलाना कठिन नहीं है किंतु हृदयसे वैष्णव बनना बड़ा कठिन है।

हनुमानजीने सीताजीसे पूछा—माताजी, आप मुझसे नाराज हो गई हैं क्या ? आप मुझे रामजीकी सेवा क्यों नहीं करने देतीं ?

सीताजी—कल सेवाका सारा काम बाँट दिया गया है और तेरे लिए कोई काम बाकी नहीं रहा है।

हनुमानजी—एक सेवा बाकी है। राम जँभाई लेंगे तो चुटकी कौन बजायेगा ? जँभाई आने पर चुटकी बजनी चाहिए अन्यथा आयुष्य कम होता है।

सीताजी—अच्छा, तो यह सेवा तू करना।

हनुमानजी आज तक दास्यभावसे रामजीके चरण ही निहारते रहते थे। अब माताजी-की आज्ञाके कारण मुखारविंदके दर्शन करने लगे हैं।

सीताजी और रामजी यदि बातचीत करना चाहें तो भी बीचमें हनुमानजी उपस्थित ही हैं। सारा दिन तो विनोदमें निकल गया। रात्रि आई। रामजीके पास हनुमानजी पहलेसे ही आ गए हैं।

सीताजी—हनुमान, अब तुम जा सकते हो।

हनुमानजी—माताजी, आप ही ने तो मुझे यह सेवा सौंप दी है। प्रभु कब जँभाई लें, यह कौन जान सकता है। सो मुझे तो यहीं रहना पड़ेगा।

सीताजीने रामजीसे कहा—नाथ, अपने इस सेवकको अब बाहर जानेकी आज्ञा दीजिए।

रामजी—मैं हनुमानजीको तो कैसे कहूँ ? मैं उसका ऋणी हूँ। उसके एक-एक उपकारके बदलेमें, मैं अपना प्राण दूँ तो भी कम है।

प्रभुकी ऐसी बात सुन कर भी सीताजीने हनुमानजीको बाहर जाने की आज्ञा दी। वे बाहर आकर सोचने लगे, एक सेवा मिली थी, वह भी छीन ली गई। अब सारी रात मैं चुटकी बजाता रहूँगा कि जिससे रामकी सेवा हर समय अपने आप ही होती रहे।

इधर रामजी सोच रहे हैं कि मेरे ही कारण हनुमान जग रहा है। वह जागा करे और मैं सोता रहूँ, यह ठीक नहीं है।

कीर्तन-भक्ति भगवान्को अतिशय प्यारी है।

मेरा हनुमान जाग रहा है। मैं अकेला कैसे सो सकता हूँ? मेरे हनुमानको मेरी पत्नीने निष्काल बाहर किया है। रघुनाथजीने भी युक्ति सोची। वे बार-बार जँभाई लेने लगे और हनुमानके साथ-साथ जागते रहे।

सीताजी मन-ही-मन डर गईं। पतिदेव कुछ बोलते नहीं है। वह भागी हुईं कौशल्याके पास गईं और कहा, माताजी, उनको शायद किसी राक्षसकी नजर लग गई है। वसिष्ठजीको बुलाया गया। वे समझ गए कि भगवान्के किसी लाड़ले भक्तका आज अपमान हुआ है। भक्तके दुःखसे भगवान् दुखी हो रहे हैं।

वसिष्ठजीने सीताजीसे पूछा—आजका सारा दिन कैसे बीता था? कुछ गड़बड़ तो नहीं हुई थी?

सीताजी—हनुमानजीसे सेवाभार छीन लिए जानेके कारण यह सब हुआ और प्रभुने ठीकसे भोजन तक नहीं किया।

उन्होंने हनुमानजीकी चुटकी बजानेकी सेवाकी भी बात बताई।

सभी रामके आवासमें आए। वहाँ हनुमानजी नाचते हुए रामनामका जप कर रहे थे।

वसिष्ठजी—महाराज, कीर्तन करो किंतु चुटकी मत बजाओ। वैसा करनेसे रामजीको जँभाई आएगी।

जगत् रामके अधीन है और राम आपके अधीन।

तो वैसे आप कौन हैं? हनुमानजी कहते हैं—देहबुद्धिसे मैं रामका दास हूँ। जीवबुद्धिसे रामका अंश हूँ। आत्मदृष्टिसे सोचो तो हम एक हैं। मुझमें और राममें कोई भेद नहीं है। भक्त और भगवान् एक हैं।

ब्रह्मका ज्ञाता ब्रह्मसे अलग रह नहीं सकता।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

रामायणकी कथा करुणरस-प्रधान है। बालकांडके सिवाय अन्य सभी कांड आँसुओंसे भरे हुए हैं। रामायण समाप्त होने पर वाल्मीकि सोचने लगे कि इसमें तो बस करुणरस ही है। अतः उन्होंने बादमें आनंद रामायणकी रचना की। उसमें शोकपूर्ण प्रसंग नहीं हैं।

महापुरुषोंने तो यहाँ तक कहा है, हे सीते! हे देवी, इस जगत्में आप क्यों आईं? यह जगत् आपके लिए अपात्र था।

रामचंद्रजीका चरित्र दिव्य है। रामचंद्रजीकी भाँति मर्यादा-पालन, माता-पिताकी सेवा, एक पत्नीव्रत, भ्रातृप्रेम आदि होने पर ही राम मिल पाते हैं। राम मिले तो आराम मिले। रामके बिना आराम शक्य नहीं है।

रामायणका एक-एक पात्र आदर्श है—

श्रीराम जैसा कोई पुत्र नहीं हुआ।
वसिष्ठ जैसा कोई गुरु नहीं हुआ॥

दशरथ जैसा कोई पिता नहीं हुआ।
कौशल्या जैसी कोई माता नहीं हुई।
श्रीराम जैसा कोई पति नहीं हुआ।
सीता जैसी कोई पत्नी नहीं हुई।
भरत जैसा कोई भाई नहीं हुआ।
रावण जैसा कोई शत्रु नहीं हुआ।

रामायणमें बताया गया है—मातृप्रेम, पितृप्रेम, पुत्रप्रेम, भ्रातृप्रेम, पतिप्रेम, पत्नी-प्रेमका सर्वोच्च आदर्श रूप।

एकनाथजीने भावार्थ रामायणमें लिखा है कि रावणकी भक्ति, शत्रुभक्ति, विरोधभक्ति थी। रावणने सोचा कि यदि मैं अकेला ही रामकी भक्ति करता रहूँ तो मात्र मेरा ही उद्धार होगा। मेरे ये राक्षस तो कभी प्रभुका नाम लेंगे ही नहीं। सो यदि मैं रामसे शत्रुता करूँ, तो रामके साथ युद्ध होगा और युद्ध-भूमिमें सभी राक्षस मरते समय भगवान्के दर्शन पा सकेंगे और उनका उद्धार होगा। इस प्रकार सारे राक्षस-समुदायके उद्धारके हेतु ही रावणने श्रीराम-से शत्रुता मोल ली। रावणने कुंभकर्णसे यही कारण बताया था रामसे अपनी शत्रुताका।

रामायण श्रीरामका नामस्वरूप है। रामायणका एक-एक कांड रामजीका अंग है।

बालकांड श्रीरामका चरण है।
अयोध्याकांड श्रीरामकी जंघा है।
अरण्यकांड श्रीरामका उदर है।
किष्किंधाकांड श्रीरामका हृदय है।
सुंदरकांड श्रीरामका कंठ है।
लंकाकांड श्रीरामका मुख है।
उत्तरकांड श्रीरामका मस्तक है।

श्रीरामका नाम-स्वरूप रामायणग्रंथ जीवमात्रका उद्धारक है। रामचंद्रजी जब भी इस पृथ्वीपर साक्षात् अवतरित होते हैं, तभी अनेक जीवोंका उद्धार होता है। इतना ही नहीं, जब वे प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं होते हैं, तब रामायण अनेक जीवोंका उद्धार करती है। श्रीरामने तो कुछ ही जीवोंका उद्धार किया था, जब कि रामायण तो अब भी कई जीवोंको प्रभुके मार्गकी ओर ले जा रही है। अनेकोंका कल्याण उसने किया है, कर रही है और करती रहेगी। सो एक दृष्टिसे हम रामायणको रामसे श्रेष्ठ कहें तो कोई आपत्ति नहीं है।

रामचरित्र मार्गदर्शक है। रामायणसे सभीको सीख मिलती है। अपना मन कैसा है, यह जानना है तो रामायण पढ़ो। रामायण का मनन करनेसे उसमें अपना मन दिखाई देगा।

रामायण मनोमालिन्यका दर्पण है। जिसका अधिकतर समय निद्रा और आलस्यमें बीत जाता है, वह कुम्भकर्ण है। परस्त्रीका कामभावसे चिंतन करनेवाला व्यक्ति रावण है। रावण अर्थात् काम। काम रुलाता है। काम ही दुःखदाता है। जो रुलाता है, वह रावण है। परमानन्दमें झुलानेवाला राम है।

रामायणके सात कांड हैं। उन सभीकी कथा ऊपर संक्षिप्तमें कह दी गयी है। अब उसका आध्यात्मिक रहस्य देखना है। इसके सात कांड मनुष्यकी उन्नतिके सात सोपान हैं।

एकनाथ महाराजने कहा है कि कांड विशेषके नामोंका भी रहस्य है।

प्रथम कांड बालकांड है। बालक-से निर्दोष बनोगे तो रामको प्रिय लगोगे। बालक प्रभुको प्रिय हैं। कारण कि बालक निरभिमानी होते हैं। उनमें छलकपट नहीं होता। विद्या, धन और प्रतिष्ठा बढ़ने पर भी अपना हृदय बालक-सा निर्दोष और भोला-भाला ही बनाये रखना। बालकांड निर्दोष कांड है। राम किसे मिलते हैं? जो बालक जैसा निर्दोष बन पाता है, उसे ही। बालक-से निर्दोष और निर्विकारी बननेका प्रयत्न करो।

आँखोंके द्वारा दोष मनमें प्रविष्ट होता हैं। सो दृष्टिपर अंकुश रखोगे तो जीवन निर्दोष बनेगा। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। सृष्टि किसीको सुखरूप लगती है तो किसीको दुःखरूप। सृष्टिमें वैसे तो कोई सुख भी नहीं है और दुःख भी नहीं है। सुख और दुःख तो अपनी दृष्टिमें ही होता है। इसी कारणसे तो भगवान् शङ्कराचार्य संसारको अनिर्वचनीय मानते हैं। वह वर्णनसे परे है।

बालक जैसी निर्दोष, निर्विकारी दृष्टि रखोगे तो रामके स्वरूपको पहचान सकोगे। जीवनमें सरलता आती है संयमसे, ब्रह्मचर्यसे। जीव मानापमानको भूल जाये तो जीवनमें सरलता आ जाये। बालकके समान निर्मोही और निर्विकारी बननेसे तुम्हारा शरीर अयोध्या बनेगा। जहाँ युद्ध, वैर, ईर्ष्या नहीं है, वही अयोध्या है।

बालकांडके बाद अयोध्याकांड है। अयोध्याकांड मनुष्यको निर्विकार बनाता है। जब जीव भक्तिरूपी सरयू नदीके किनारे हमेशा निवास करता है, तभी मनुष्य निर्विकार बनता है।

भक्ति अर्थात् प्रेम। अयोध्याकांड प्रेम प्रदान करता है। रामका भरतप्रेम, रामका सौतेली मातासे प्रेम आदि सब इसी कांडमें हैं। रामकी निर्विकारता यहीं दिखायी देती है।

आनन्द रामायणमें प्रत्येक कांडकी भिन्न-भिन्न फलश्रुति बतायी गयी है। जो अयोध्या-कांडका पाठ करता है, उसका घर अयोध्या बनता है। उसके घरमें लड़ाई-झगड़े नहीं होते। गृहस्थाश्रमीके लिए यह कांड आवश्यक है। कलहका मूल है धन और प्रतिष्ठा। अयोध्याकांडका फल है निर्वैरता।

शास्त्र कहता है कि सबसे पहले तो अपने घरके ही सभी व्यक्तियोंसे भगवत्-भाव रखना चाहिए। जो अपने बन्धु आदिमें प्रभुको देख नहीं पाता है, उसे मन्दिरमें भगवान् कैसे दीखेंगे?

जगत्का सर्जन करनेके बाद उसकी प्रत्येक वस्तुमें भगवान्ने वास किया है।

जब कैकेयीने कहा कि उसने भरतको राज्य दिया है तो रामने वन जाते हुए कहा था, माता यदि मेरा भाई इसीमें सुख पा सकता है तो मुझे वनवास स्वीकार्य है। मेरी तो यही भावना है कि मेरा भाई सुखी हो।

जो भाईमें भगवान्‌को देख नहीं पाता, उसे मंदिरमें भी भगवान् दिखाई नहीं देते। मूर्त्तिवासी भगवान् हमारे लिए दौड़ते हुए नहीं आते, फिर भी उसमें भगवत्‌भाव स्थिर करना है किंतु सजीव देव (कुटुंबीजन) से जो प्रभु-सा भाव जोड़ नहीं पाता है, वह पत्थरकी मूर्तिसे देवत्वका भाव कैसे जोड़ पाएगा ?

सृष्टि-सर्जनके बाद सभी पदार्थोंमें भगवान्‌ने वास किया है। जबतक वे प्रवेश नहीं करते हैं, तबतक सृष्टि निरर्थक है।

सभीमें ईश्वर है। मेरे भाई-बहन-माता-पिता आदि सभीमें वही ईश्वर है। रामने अलौकिक आदर्श स्थापित किया कि अपने भाईके सुखके हेतु हँसते हुए वनगमन किया। भरतका भ्रातृप्रेम भी वैसा ही दिव्य था। उन्होंने राज्य स्वीकार नहीं किया। मेरे बड़े भाई वनकी धूल छानते हैं, कंद-मूल खाते हैं, दुःखी हो रहे हैं सो मुझे यह राज्य स्वीकार्य नहीं है। मेरे ही कारण वे दुःखी हो रहे हैं।

अयोध्याकांडके पठनसे लगाई-झगड़े मिट जाते हैं।

जीवनको विशुद्ध प्रेममय बनाओ।

अयोध्याकांडके बाद आता है अरण्यकांड। वह निर्वासन बनाता है। निर्वैर होनेके बाद भी वासना सताती है। इस अरण्यकांडके मननसे वासना निर्मूल होगी। अरण्यवास करके तप किए बिना जीवनमें दिव्यता नहीं आ पाती। रामचन्द्रजीने राजा होते हुए भी सीताजीके साथ वनवास किया और तपश्चर्या भी की। तप करनेके बाद राम राजा बने।

जिसने पहले तपश्चर्या की होगी, भोगोपभोगके प्रसङ्गोंमें संयम और सावधानीसे काम लेगा।

सभी महान् व्यक्तियोंने अरण्यवास किया था। महाप्रभुजीने खुले पाँव ही भारतकी यात्रा की थी। वे दोसे अधिक वस्त्र तक नहीं रखते थे। जीवनमें तपश्चर्या जरूरी है।

वनवासके बिना जीवनमें सुवास आ नहीं पाती। वनवासके बिना जीवन सत्त्वहीन रह जाता है। अधिक नहीं तो कम-से-कम एक मास तो किसी वनमें पवित्र नदीके किनारे वास करना ही चाहिए। जहाँ भगवान् और तुम्हारे सिवाय अन्य कोई न हो। तीसरा आया नहीं कि गड़बड़ शुरू हो जाती है। वनवास मनुष्यके हृदयको कोमल बनाता है। वनवाससे विश्वास हो पाता है कि भगवान्‌के सिवाय अपना और कोई भी नहीं है।

अरण्यकांड हमें वासनासे रहित बनाता है।

रामचन्द्रजीने भगवान् होते हुए भी यह दिखाया कि तपके बिना वासना नष्ट नहीं हो सकती। उत्तम संयम तप ही है। पहले तो जीभ पर संयम रखना है। वनवासके समय रामने अन्नाहार नहीं, फलाहार ही किया था। अन्नमें निहित रजोगुण कामको उत्पन्न करता है। सात्त्विक आहारके बिना कामका नाश अशक्य है। रामने वनमें कन्दमूलका सेवन करके तप किया था। वनमें उन्होंने किसी धातुका भी स्पर्श नहीं किया था। श्रीफलसे बने पात्रसे ही जलपान किया था। सीताजी सङ्गमें थीं, फिर भी राम निर्विकारी ही रहे। वासनाका धीरे-धीरे नाश किस प्रकार किया जा सकता है, वह अरण्यकांड दिखलाता है।

यदि वासना पर विजय पानी है तो जीवनको सात्त्विक बनाना होगा। तपश्चर्या करोगे, तभी रावण मरेगा। काम-रावणको मारनेके लिए अरण्यवास-तपश्चर्या आवश्यक है। इस अरण्यकांडमें सूर्पणखा (मोह) शबरी (भक्ति) भी है। सूर्पणखा अर्थात् वासना, मोहकी ओर भगवान् कभी नहीं देखते हैं। वे तो शबरी अर्थात् शुद्ध भक्तिकी ओर ही देखते हैं। मोहका नाश करो और शुद्ध भक्तिको अपनाओ।

मनुष्य निर्वैर और निर्विकार, वासनारहित होता है, तभी किष्किधाकांडमें जीवकी ईश्वरसे मैत्री हो पाती है।

अरण्यकांडमें वासनाके विनाशके बाद किष्किधाकांडमें सुग्रीवकी रामसे मैत्री हुई। जीव जबतक कामकी मैत्रीका त्याग नहीं करता है, तबतक ईश्वरसे मैत्री नहीं हो पाती।

इस किष्किधाकांडमें सुग्रीव और राम अर्थात् जीव और भगवान्की मैत्रीका वर्णन है। सुग्रीवने कामका त्याग किया सो ईश्वरसे मिलन हो पाया। ईश्वरसे जीवका मिलन तभी शक्य है, जब कि हनुमानजी (ब्रह्मचर्य और संयम) मध्यस्थता करते हैं। जिसका कण्ठ सुन्दर है, वही सुग्रीव है। कण्ठकी शोभा आभूषण नहीं, ब्रह्मचर्य और नामजप है। ईश्वर और जीवकी मैत्री हनुमानजी अर्थात् ब्रह्मचर्य पर ही आधारित है। हनुमानजी ब्रह्मचर्य और संयमके प्रतीक हैं।

जिसका कण्ठ सुन्दर है, उसीकी रामसे मैत्री होती है किंतु सुग्रीव अकेला कुछ नहीं कर पाता। उसे हनुमानजी—ब्रह्मचर्यका सहयोग भी आवश्यक है। ब्रह्मचर्यकी शक्तिके बिना भजनमें-से आनन्द नहीं मिल सकता, क्योंकि एकाग्रता नहीं हो पाती। हनुमान-ब्रह्मचर्यकी सहायताके बिना रामजीसे मैत्री नहीं हो पाती। सुग्रीवको हनुमानके कारण ही रामजी अपनाते हैं।

सुन्दरकांड—ईश्वरसे मैत्री हुई सो जीवका जीवन सुन्दर हो गया। सो किष्किधाकांडके बाद आया है सुन्दरकांड। जबतक जीव प्रभुसे मैत्री करता नहीं है, तबतक उसका जीवन सुधर नहीं पाता।

किष्किधाकांडके बाद आया हुआ सुन्दरकांड सचमुच ही सुन्दर है। इसमें राम-भक्त हनुमानजीकी कथा वर्णित है। भागवतके दशम स्कन्धकी भाँति यह सुन्दरकांड भी बड़ा रोचक है। भागवतमें जो स्थान दशम स्कन्धका है, वही स्थान रामायणमें सुन्दरकांडका है। सुन्दरकांडमें हनुमानजीको सीताजीके दर्शन हुए। सीताजी पराभक्ति हैं किंतु उनका दर्शन कब हो सकता है ? जिसका जीवन सुन्दर बन पाता है, उसीको सीताजी—पराभक्तिका दर्शन हो सकता है। संसार-समुद्रको पार करनेवालेको ही सीताजी-पराभक्तिके दर्शन हो पाते हैं। अकेले हनुमानजी ही संसार-समुद्रको पार करते हैं। ब्रह्मचर्य और रामनामके प्रतापसे उनमें दिव्य शक्तिका संचार हुआ। उनके सिवाय और कोई भी इस समुद्रको पार नहीं कर सका। ब्रह्मचर्य और रामनामने ही उन्हें वह अपार शक्ति दी। समुद्र पार करते समय मार्गमें सुरसा बाधा डालने आ धमकती है। सुरसा सताती है। अच्छे रस ही सुरसा हैं। सुरसा नई थी। नये-नये रसकी वासना रखनेवाली जीभ ही सुरसा है। सुरसाको हनुमानजी (संयम) नष्ट करते हैं। जो संसार-सागरको पार करनेका इच्छुक है, उसे जीभको वशमें करना पड़ेगा, स्वादवासनाको मारना पड़ेगा।

जीवनको यदि सुन्दर बनाना है, तो उसे भक्तिमय बनाओ। सीताजी पराभक्ति हैं। जहाँ पराभक्ति हो, वहाँ शोक नहीं रह पाता। सो सीताका जहाँ वास है, वही अशोकवन है। ब्रह्म-दृष्टिकी सिद्धि होने पर शोक नहीं रह पाता। वही अशोकवन है।

लङ्काकांड—जीवन भक्तिपूर्ण और सुन्दर हो जानेपर लङ्काकांडमें राक्षसोंका नाश हुआ। राक्षस मरते हैं तो काम भी मरता है। क्रोध भी नष्ट होता है। भक्तिदेवीके दर्शनसे जीवन सुन्दर हो गया। लंकाकांडका रावण ही काम है जो नष्ट हो गया।

भक्तिसे परिपूर्ण होनेपर ही जीवन सुन्दर बनता है। जो कामको मार सकता है, वह कालको भी मार सकता है। जिसे काम मारता है, उसे काल भी मारता है। लङ्का शब्दके अक्षरोंको आगे-पीछे पीछे करनेसे होगा कालं। काल सभीको मारता है, किंतु हनुमानजी उसे भी मारते हैं। वे लंकाको अर्थात् कालको जलाते हैं। हनुमानजीको काल मार नहीं सकता है, क्योंकि वे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और पराभक्तिका दर्शन करते हैं।

उत्तरकांड—तुलसीदासजीने इस कांडमें सब कुछ भर दिया है। इस कांडमें मुक्ति मिलेगी। गरुड़जी और काकभुशुण्डिके संवादको बार-बार पढ़ो। जबतक राक्षस, कामका विनाश नहीं हो पाता, तबतक उत्तरकांडमें प्रवेश नहीं मिल पाता। उत्तरकांडमें भक्तिकी कथा है। भक्त कौन हैं? भगवान्से जो एक भी क्षण विभक्त नहीं रह पाता, वही भक्त है।

पूर्वार्धमें जो रावणको मारता हैं, उसीका उत्तरकांड सुन्दर बनता है। वही वृद्धावस्थामें राज्य करता है। जीवनके पूर्वकांड—यौवनावस्थामें कामको मारनेका प्रयत्न करोगे, तभी तुम्हारा उत्तरार्ध—उत्तरकांड सुधर पायेगा। सो जीवनको सुधारनेका प्रयत्न युवावस्थासे ही करना चाहिए।

इस प्रकार ये सात कांड मानवजीवनकी उन्नतिके सात सोपान हैं।

रामकथा सागर जैसी है। रामकथा, अमृतकथा है किंतु इसमें ही उलझे रहेंगे तो कन्हैया कब आ पायेगा?

शिवजीकी भांति हृदयमें रामका नाम रखोगे तो भी अच्छा ही रहेगा। हमेशा रामका नाम रटते रहो। हनुमानजी कहते हैं कि सबसे बड़ी विपत्ति वही है कि जब रामका स्मरण न किया जाता हो।

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई॥

रावण आदि राक्षसोंका संहार करके राम अयोध्या वापस लौटे। उनका राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेकके बाद रामजीने अयोध्यावासियोंको— मानवसमाजको उपदेश दिया।

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई॥
नरतनु पाइ विषय मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

यह मानव-शरीर जो मिला है, वह विषय-भोगके लिए नहीं। विषय-सुख एकाध घड़ीके लिए स्वर्ग-सा सुखद लगता है किंतु अंतमें तो दुःख, दुःख और दुःख ही हाथ लगता है। मानवशरीर पा कर जो मनुष्य, मात्र विषयोंके पीछे ही लगा रहता है, वह अमृतके बदलेमें विष ही ग्रहण कर रहा है। सो ऐसा कभी न करें।

'तमे भावे भजी लो भगवान्, जीवन थोडुं रह्युं।' अर्थात् भगवान्को भावसे भजो क्योंकि जीवन अब बहुत कम ही बाकी रह गया है।

भोगोपभोगसे कभी शांति नहीं मिलेगी।

राजा ययातिको ही देखिए। उनका विवाह शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीके साथ हुआ था।

एक बार देवयानीके साथ राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा तथा अन्य कई सखियाँ स्नानार्थ गई हुई थीं। स्नानादिसे निवृत्त होने पर जब वे सब वस्त्र पहनने लगीं तब शर्मिष्ठाने भूलसे देवयानीके कपड़े पहन लिए। देवयानीने क्रोधवश शर्मिष्ठाको बहुत-सी जली-कटी सुनाई। तो शर्मिष्ठा भी क्रोधित हो गई और उसने देवयानीके वस्त्र छीन कर उसे कुएँमें फेंक दिया और सब चल दिए।

मृगया के लिए निकला हुआ राजा ययाति वहाँ आया। उसने कुएँसे चीख-पुकार सुनी तो देवयानीको बाहर निकाला। देवयानीने राजासे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की।

इधर शुक्राचार्यने अपनी पुत्री-विषयक समाचार सुने तो वे वृषपर्वाके नगरकी ओर चल दिये। उधरसे वृषपर्वा भी गुरुजीसे क्षमा माँगनेके लिए आ गया। तो गुरुजीने अपनी पुत्रीको प्रसन्न करनेका प्रस्ताव रखा। देवयानीने कहा राजन्, मैं विवाहके बाद जहाँ भी जाऊँ, आपकी पुत्री शर्मिष्ठाको मेरी दासीके रूपमें आना होगा। शर्मिष्ठा दासी बनकर राजा ययातिके आवास पर आई।

शुक्राचार्यने राजा ययातिसे शर्मिष्ठाके साथ विषयसुख भोगनेकी मनाही की थी। राजाने शुक्राचार्यकी आज्ञाका उल्लंघन किया तो गुरुजीने उसे वृद्धत्व दे दिया। ययातिने प्रार्थना करते हुए, गुरुजीसे पूछा कि उसकी वृद्धावस्था कैसे दूर होगी। शुक्राचार्यने कहा, यदि तेरी वृद्धावस्थाको कोई अपना ले और तुझे अपनी युवावस्था दे, तभी बात कुछ बन पाएगी।

राजा ययातिने अपने ही पुत्र पुरुकी युवावस्था ले ली और हजारों वर्ष विषय-सुखका उपभोग किया फिर भी उसे तृप्ति न हुई तो उसके मनमें वैराग्य जागा। उसने जगत्को उपदेश दिया।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

भा. ९-१९-१४

विषयोंका उपभोग करते रहनेसे कामवासना कभी तृप्त या शांत नहीं होती किंतु जैसे अग्निको घीकी आहुति और भड़काती है, वैसे ही वासना उग्र होती जाती है। भोगोपभोगसे वासना अधिकाधिक बढ़ती जाती है।

मनुष्यका शरीर तो वृद्ध होता है किंतु वासना, तृष्णा कभी वृद्ध नहीं होती।

जीर्यतो या न जीर्यते।

भर्तृहरिने भी कहा है—भोगोंका नहीं, हमारा ही उपभोग हो जाता है। तृष्णा नहीं हम ही जीर्ण होते जाते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भागवत तो गीताका भाष्य है। गीताजीके सिद्धांतोंके दृष्टांत हमें भागवत देती है।

'काम महाशनो महापाप्मा।' अग्निकी भाँति भोगोंसे कभी तृप्त न होनेवाला महापापी और वैरी है।

काम शत्रु है, फिर भी राजा ययातिकी भाँति कई लोग उसे मित्र बनानेका प्रयत्न करते हैं और अंतमें दुःखी ही होते हैं।

काम और क्रोधको कभी मित्र न बनाना। वे वैरी हैं। उनके साथ वैरी-सा ही व्यवहार किया जाय।

गीतामें कहा गया है—

न मे भक्तः प्रणश्यति।

भागवतमें प्रह्लाद, अंबरीष आदि के कई उदाहरण दिए गए हैं।

राजन्, रंतिदेवका चरित्र भी अद्‌भुत है। उसे जो कुछ मिलता था, वह दूसरोंको देता था। उसका जीवन-ध्येय था कि चाहे उसे स्वयं कितना भी दुःखी क्यों न होना पड़े, दूसरोंको सुखी करता रहेगा।

रंतिदेवने एक बार तो अपने प्राणको भी संकटमें डाल कर अपना भोजन, पानी आदि सब कुछ औरोंको दे दिया था। उसने कहा था—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

भा. ९-२१-२२

मैं ईश्वरसे आठों सिद्धियों से युक्त उत्तम गतिकी इच्छा नहीं करता। मुझे मोक्षकी इच्छा भी नहीं है। मेरी तो मात्र इतनी ही इच्छा है कि मैं सभी प्राणियोंके हृदयमें बस जाऊँ, उन सभीके दुःख मैं ही झेलूँ कि जिससे उनको दुःख न भुगतने पड़े।

मेरी तो बस यही इच्छा है कि सभी प्राणी दुःखमुक्त हो जायँ और उनका दुःख मैं झेलूँ।

अंतमें यदुराजके वंशका वर्णन है। यदुराजका वंश दिव्य है। इसी वंशमें श्रीकृष्णने जन्म लिया था।

राजन्, सावधान हो जाओ। इस वंशकी कथाका जो भी श्रवण करेगा उनके वंशकी वृद्धि होगी। यह हरिवंशकी कथा है।

आहुकके यहाँ दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन। देवकने सात कन्याओंका विवाह वासुदेवके साथ किया। वसुदेव-देवकीके यहाँ छः बालक हुए। रोहिणीसे सातवीं संतान हुई—बलराम और आठवीं संतानके रूपमें जन्म लिया भगवान् श्रीकृष्णने।

परमात्मा जब पृथ्वी पर आते हैं, तब भार तो बहुत उठाना पड़ता है किंतु वे धर्मकी संस्थापना और अधर्मके नाशके हेतु अवतार लेते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण चौदह वर्ष मथुरामें रहे और द्वारिकामें वास किया, वे द्वारिकानाथ बने। पृथ्वी परसे अधर्मका भार दूर करनेके लिए उन्होंने पांडव-कौरवोंके युद्धका आयोजन किया।

इस प्रकार नवम स्कंधकी समाप्तिमें संक्षिप्त कृष्ण-कथा कही गई।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध)

मैंने मेंहदी रचाई रे, कृष्णनामकी ।
मैंने बिंदिया सजाई रे, कृष्णनामकी ।
मेरी चुड़ियों पै कृष्ण, मेरी चुंदरी पै कृष्ण;
मैंने नथनी गढ़ाई रे, कृष्णनामकी—मैंने

मेरे नयनोंमें गोकुल वृन्दावन,
मेरे प्राणोंमें मोहन मनभावन,
मेरे होठों पैं कृष्ण, मेरे हृदयमें कृष्ण,
मैंने ज्योति जगाई रे, कृष्णनामकी—मैंने

अब छाया है कृष्ण अंग-अंगमें,
मेरा तन-मन रँगा है कृष्णरंगमें,
मेरा प्रीतम है कृष्ण, मेरा जीवन है कृष्ण,
मैंने माला बनाई रे कृष्णनामकी—मैंने

'द्वारिकाधीश' मेंसे

अब दशम स्कंधका आरंभ हो रहा है। भागवतका फल दशम स्कंध है। दशम स्कंधमें शुकदेवजी मानों, आनन्दसे खिल गए हैं। यह शुकदेवजीके इष्टदेवकी कथा है।

श्रीमद्भागवत सात दिनोंमें मुक्ति दिलाने वाला ग्रंथ है। अनेक जन्मों तक साधन-साधना करने पर भी नहीं मिलनेवाली मुक्ति, अति दुर्लभ मुक्ति, राजा परीक्षितको सात दिनोंमें मिल गई थी।

परीक्षितका प्रश्न था—आसन्नमृत्यु व्यक्तिका क्या कर्तव्य है ? शुकदेवजी यदि यज्ञ करनेकी आज्ञा दें तो सात दिनोंमें मुक्ति पाना संभव नहीं था। जीवनके अंतिम श्वासमें भी विकारका विचार न आए वैसा उपाय करना था। शुकदेवजीने सोचा कि यदि राजा कृष्णकथामें तन्मय हो सके तो उसे मुक्ति मिल सकती है।

मुक्ति मनको मिलती है, आत्माको नहीं। कुछ आचार्य मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक हैं। तो कुछ आचार्य आत्मा और परमात्माको भिन्न मानते हैं। वे मानते हैं कि आत्मा अंश है और परमात्मा अंशी।

शंकर स्वामीका सिद्धांत इस प्रकार है—जीव और ईश्वर एक हैं। यह जो भेद दिखाई देता है, वह अज्ञानके कारण दीखता है। भेद औपाधिक है। उपाधिके कारण भेदका भास होता है किंतु तत्त्वतः भेद नहीं है।

भेदके दो प्रकार हैं—स्वतः सिद्ध भेद और औपाधिक भेद।

घोड़ा और गायका भेद स्वतः सिद्ध है। न तो घोड़ा गाय बन सकता है और न गाय घोड़ा।

औपाधिक भेद—जलका वास्तविक स्वरूप शीतलता है। उष्ण जलकी उष्णताका कारण उपाधि है।

वास्तविकतया, तत्त्वतः आत्मा और परमात्मा, जीव और ईश्वर एक ही हैं। जो भेद दीखता है, वह औपाधिक है। घटाकाश और व्यापक आकाश एक ही हैं किंतु घटकी उपाधिके कारण भेदका आभास होता है। घटके फूट जाने पर घटाकाश और महाकाश एक हो जाते हैं किंतु मिलता क्या है ? वे तो एक ही हैं। वास्तविक दृष्टिसे वे तो मिले हुए ही हैं।

व्यापक चैतन्य ही ईश्वर है। व्यापकाधिष्ठ चैतन्य ही परमात्मा है। शरीराधिष्ठ चैतन्य ही जीव है। अविद्याके आवरणसे युक्त चैतन्य ही जीव है। अविद्यारूपी आवरणके दूर होने पर जीव और शिव एक बनते हैं। उपाधिके कारण ही शिव और जीवकी भिन्नता भासमान होती है। यह वेदान्तका सिद्धांत है।

यह जीव, अंश नहीं बन सकता। यदि अंशीमें-से अंश विभक्त हो जाय तो अंशीका स्वरूप खण्डित होगा। पुष्पकी एक पंखुड़ी अलग होने पर पुष्पका स्वरूप खण्डित होता है। अंशीमें-से अंश अलग होने पर अंशीका अखण्डित स्वरूप टूट जाएगा। अतः शंकराचार्य कहते हैं, जीव अंश जैसा है, पूर्णांश नहीं है। ईश्वर ऐसे नहीं हैं कि जिसका विभाजन किया जा सके। वे व्यापक चैतन्य हैं, सर्वव्यापी हैं। आकाशकी भाँति वे सर्वत्र हैं।

वैष्णव आचार्य मानते हैं कि जीव और ईश्वर एक नहीं हैं। जीव ईश्वरका अंश है। अंशीसे अंशके विभक्त होने पर भी अंशीका नाश नहीं हो पाता। समुद्रमें-से एकाध बूँद पानी लेने पर समुद्रका नाश नहीं होता है। इसी प्रकार अंशके विभक्त होने पर अंशका नाश नहीं हो पाता, उसके स्वरूपमें भी परिवर्त्तन नहीं होता।

हम सब मानो एक राजाकी सन्तान हैं। माया एक दासी है जो हमारे लालन-पालनके लिए ही है, हमें सतानेके लिए नहीं। यदि वह हमें सतायेगी तो राजा (प्रभु) उसे छुट्टी दे देंगे। परमात्माके साथ घनिष्ठतासे प्रेम करेंगे तो मायाका बन्धन छूट जायेगा। गोकुललीलाका यही तो रहस्य है।

अति सूक्ष्म बुद्धिवाला व्यक्ति वेदांतके विवर्तवादको समझ सकता है। ऊर्मिप्रधान व्यक्तिको वैष्णवाचार्योंका सिद्धांत पसन्द आयेगा। ये दोनों सिद्धांत दिव्य हैं।

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

चाहे जो भी समझा या माना जाय किंतु मुक्ति मनको मिलती है, आत्माको नहीं। आत्मा तो नित्य मुक्त है। जीवको ईश्वररूप मानो या अंश किंतु वह आत्मासे भिन्न है।

सुख और दुःखका अनुभव मनको होता है, आत्माको नहीं। फिर भी आत्मा पर उसका आरोप किया जाता है।

परीक्षितको मात्र सात ही दिनोंमें मुक्ति प्राप्त करानी है। यदि उसका मन श्रीकृष्णके सिवाय अन्य किसी भी वस्तुसे न लगे तो उसे मुक्ति मिलनेकी सम्भावना है।

मुक्ति उसे मिलती है, जिसका मन मरता है। पूर्वजन्मका शरीर चाहे मर गया हो किंतु पूर्वजन्मका मन लेकर जीवात्मा इस जन्ममें आई है। मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृति स्थानि कर्षति। मनको किसी भी प्रकार मारना ही है। थोड़ेसे पानीमें मछली न तो बराबर जी सकती है और न मर सकती है।

मन यदि सांसारिक विषयोंका चिंतन छोड़ दे तो वह ईश्वरमें लीन हो, सकता है। कृष्णकथाका आकर्षण मनको ईश्वरमें लीन कर सकता है। मनको संसारके विषयोंकी ओरसे हटा कर कृष्णलीलामें लगा दो। कृष्णकी बाललीला, गोपालनलीला आदिको याद करो।

मनको प्रतिकूल बातोंमें-से हटाकर अनुकूल विषयोंसे जोड़ दो। इस कथाका हेतु भी तो यही है। इस कथासे ज्ञान और वैराग्य बढ़ते हैं। इस कथाके श्रवणसे मनुष्यको प्रवृत्तिसे छुटकारा पानेका मन हो जाता है। भागवतकी कथा ज्ञान, वैराग्य और कृष्णप्रेम बढ़ानेवाली है। भागवतकी कथा श्रोताको कृष्णप्रेममें पागल बना देती है।

परीक्षित राजाका संसारमोह नष्ट हो सके और मन कृष्णलीलामें तन्मय हो जाय, तभी उसके मनका निरोध हो सकता है।

श्रीकृष्णलीला निरोधलीला है। मनका निरोध करना है। जगत्‌का विस्मरण और भगवद्-आसक्ति ही निरोध है। सांसारिक विषयोंका विस्मरण होने पर ही सच्चा आनन्द प्रकट होता है। सांसारिक सम्बन्ध छूटने पर ही ब्रह्मसम्बन्ध जुड़ता है। यदि सांसारिक विषयोंमें सच्चा आनन्द होता तो यह सब कुछ छोड़कर निद्राकी इच्छा ही नहीं होती।

कृष्णकथा ऐसी है कि जगत्‌को भी भुला देती है। जगत्‌में रहना भी है और उसे भुलाना भी है। संसारको छोड़कर कहाँ जाओगे? जहाँ भी जाओगे, संसार साथ-साथ आयेगा। संसारको छोड़ना तो नहीं है किंतु उसे मनसे निकाल बाहर करना है। संसारमें रहते हुए ही उससे अलग भी रहना है। भागवतकी कथा भूख-प्यास और सांसारिक झंझटोंको भुला देती है।

दशम स्कन्धके आरम्भमें शुकदेवजीने राजाकी परीक्षा ली। पाँच दिनोंसे एक आसनसे बैठे हो। यदि कुछ जलपान करना हो, खाना-पीना हो तो कर सकते हो।

परीक्षितने कहा, भगवन्! अन्न तो क्या मैंने तो जलका भी त्याग किया है। जिस भूख और प्यासके कारण कभी मैंने मुनिको मृत सर्पका हार पहनाया था, वही भूख-प्यास मुझे अब बिलकुल सता नहीं पाती। इसका कारण यही है कि मैं आपके मुखकमलसे बह रहे श्रीहरिकथा-मृतका पान कर रहा हूँ।

कथाके रसपानके कारण मुझे भूख और प्यास सता नहीं सकती।

राजाके वचन सुनकर शुकदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा सुपात्र है और जिज्ञासु भी है।

कथामें ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए। कृष्णकथा अनायास ही संसार भुला देती है। इससे जगत् भूल जाता है। कृष्णकी कथा जगत्‌का विस्मरण कराती है।

कृष्णकथाकी यही महिमा है कि वह देहभान भुला देती है। कृष्णकथा महिमामयी है। इस कथामें लीन मन जगत्को भूल जाता है।

संसारका सम्पूर्ण विस्मरण और परमात्माका सतत स्मरण हो तो मुक्ति है।

कथा तुम्हें अपने दोषका भान कराती है। कथा सुनने पर रोना आये तभी मानो कि कथा सुनी गयी है। अम्बरीषकी भक्ति कैसी दिव्य थी और मेरा जीवन कैसा क्षुद्र है। हाय, मेरा जीवन कुत्तोंकी भाँति व्यर्थ ही चला गया।

कृष्णकथा सभीको आनन्द देती है, क्योंकि इसमें सभी रसोंका समन्वय है। यह कथा बालकको भी आनन्द देती है और संन्यासीको भी। श्रीकृष्ण बालकके साथ बालक है और युवाके साथ युवा। वे ज्ञानीके लिए ज्ञानी हैं और योगीके लिए योगी।

श्रीकृष्ण भोगी तो हैं फिर भी रोगी नहीं, योगी ही हैं। सामान्यतः भोगी रोगी बन जाता है किंतु एकादश स्कन्धके वर्णनानुसार, श्रीकृष्ण जब एक सौ पच्चीस वर्षकी आयु पूर्ण करके स्वर्गमें पधारे, तब उनका एक भी शिरकेश श्वेत नहीं हुआ था।

मनुष्यका मन किसी-न-किसी रसमें फँसा हुआ होता है।

इस कथामें हास्य, शृङ्गार, करुण, भयानक आदि सभी रस भरे हुए हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं ही रसरूप हैं। रसो वै सः।

बाललीला हास्यरस है, रासलीलामें शृङ्गार रस है। चाणूर, मुष्टिक, कंस आदिकी हत्यामें वीर रस है। चाहे जिस रसमें रुचि हो, कृष्णकथा सभीको पसन्द आती है। यही विशेषता है इस कथाकी।

कन्हैया सभीको दसवाँ रस देता है—प्रेमरस। इस कृष्णकथामें सर्वश्रेष्ठ रस—प्रेमरस छलाछल भरा हुआ है।

जिसने प्रेमरसका आस्वाद किया है, उसके लिए अन्य सभी रस अ-रस ही हैं। मीराबाईके शब्दोंमें कहें तो अन्य सभी रस कडुए हैं—

साकर शेरडीनो रस त्यजीने-कडवो ते लीमडो घोल मा,
राधाकृष्ण विना बीजुं बोल मा।

अर्थात् कृष्णप्रेम शक्कर और ईखका मीठा रस है। उसे छोड़ कर कडुए नीमका (सांसारिक) रस क्यों पिया जाए? राधाकृष्णके बिना और क्या और क्यों बोला जाए?

हाँ, इस कृष्णरसका आस्वाद कर पाना सरल नहीं है। नरसिंह मेहता कहते हैं—

ए रसनो स्वाद शङ्कर जाणे के जाणे शुक जोगी रे।
कई एक जाणे व्रजनी रे गोपी, भणे नरसैंयो भोगी रे॥

अर्थात् इस रसका आस्वादन शंकर, शुकदेव, योगी और व्रजकी गोपी जैसे हो कर पाते हैं।

जगत्के सभी रस कटुतासे भरे हुए हैं। शृङ्गाररस आरम्भमें तो मीठा लगता है किंतु अन्तमें तो कडुआ ही लगेगा। अन्य किसी भी रसमें मिठास नहीं है। मात्र प्रेमरस ही मधुर है।

प्रेमके बिना प्रभुका साक्षात्कार नहीं हो पाता। श्रीकृष्ण प्रेमरूप हैं। वे अलौकिक प्रेमरसका दान करते हैं। प्रेमरसमें न तो वासना है, न तो विषमता है, न स्वार्थ है और न मैं और तू है।

गोपी कहती है—

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

गोपी कृष्णको ढूँढ़ने गई तो उसका अपना आपा नहीं रहा, वह कृष्णसे एकरूप हो गई। श्रीकृष्णके समक्ष मैं और मेरापन बाकी नहीं रह सकता।

मानव-जीवनकी यही विशेषता और सार्थकता है कि वह कृष्णप्रेममें पागल हो जाए।

प्रतिदिन ठाकुरजीसे प्रार्थना करो, आप मेरे मनको-अपनी ओर खींच लीजिए। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मैं आपको खींच सकूँ। अतः आप ही मुझे खींच लीजिए।

कृष्ण-प्रेममें हृदय लीन हो जाय, सराबोर हो जाय, आँखें प्रेमाश्रुसे भीग जाएँ तभी ब्रह्मसंबंध होगा, तभी जीव ब्रह्मरूप होगा।

ब्रह्मसंबंध सतत बनाये रखो। सावधान रहना कि कहीं फिरसे मायाके चक्करमें मन फँस न जाय। यदि परीक्षितकी भाँति, मायाके साथ विच्छेद और ब्रह्मके साथ संबंध हो जाय तो सात ही दिनोंमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है। ब्रह्मचिंतन करते-करते मर जानेसे मुक्ति मिल जाती है।

दशम स्कन्ध तो भगवान् श्रीकृष्णका हृदय है। वे रसस्वरूप हैं, अतः जीव भी रस-स्वरूप है। प्रत्येक जीवको किसी-न-किसी रसमें रुचि होती है। भिन्न रुचिवाले सभीको यह कृष्ण-कथा आनन्द देती है। श्रीकृष्ण भी एक दिव्य रस ही हैं।

प्रेम और विरह दोनोंमें हृदय आर्द्र बनता है, तब रसानुभूति होती है।

श्रीकृष्ण-कथा सभी प्रकारके जीवोंको आकर्षित करती है।

सामान्यतः जीवके चार भेद हैं (१) पामर (२) विषयी (३) मुमुक्षु (४) मुक्त।

अधर्मसे धनका अर्जन करे और अनीतिपूर्वक उपभोग करे, वह पामर जीव है। धर्मका पालन करके कमाई करके इन्द्रिय-सुखका उपभोग करे वह विषयी जीव है। सांसारिक बंधनोंसे मुक्ति पानेकी इच्छा और प्रयत्न करनेवाला जीव मुमुक्षु जीव है। कनक और कांतारूपी मायाके बन्धनोंसे मुक्त होकर प्रभुमें तन्मय हुआ जीव मुक्त जीव है।

श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं, रजस, तमस और सात्त्विक, किसी भी प्रकृतिका जीव कृष्ण-कथामेंसे आनन्द पा सकता है। इसी कारणसे तो उन्होंने दशम स्कन्धके तीन विभाग किये हैं—सात्त्विक प्रकरण, राजसिक प्रकरण और तामसिक प्रकरण।

श्रीकृष्ण-कथा सभीके लिए उपयोगी और सभीको आनन्द देनेवाली है। इसका कारण यह है कि श्रीकृष्ण भोगी भी हैं और महान् योगी भी। इसीलिए तो शुकदेवजी जैसे योगी को भी इस कथासे आनन्द-लाभ होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने गृहस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रम दोनोंका समन्वय जगत्के समक्ष रखा है। सोलह हजार रानियोंके स्वामी श्रीकृष्ण संन्यासियोंकी व्यासपूजामें अग्रस्थान पाते हैं।

श्रीकृष्णकी दिव्यता तो देखो कि सोलह हजार रानियोंके बीच रह कर, उन सभीके साथ प्रेम करते हुए भी वे अनासक्त रहते हैं।

पति-पत्नीको चाहिए कि एक-दूसरेके साथ प्रेम करते हुए भी अनासक्त रहें। श्रीकृष्ण सभी रानियोंके साथ प्रेम करते हुए भी किसी भी रानीमें आसक्त नहीं थे। आजकल लोगोंने प्रेम शब्दको भी कलंकित कर दिया है। जहाँ विकार और वासना है, वहाँ प्रेम नहीं मोह ही है।

श्रीकृष्णके वैकुण्ठ-गमनका शुकदेवजीने वर्णन किया है। उस समय युवाको लज्जित होना पड़े, वैसी दिव्य कांति भगवानके मुख पर थी। एक सौ पच्चीस वर्षकी अवस्था होनेपर भी उनका न तो एक भी केश श्वेत हुआ था और न एक भी दाँत टूटा था। ऐसा था उनका दिव्य स्वरूप। इसी कारणसे तो वे योगियोंको भी प्रिय हैं।

सच्चे महायोगीका यही लक्षण है कि वह कभी बीमार नहीं होता। जिस योगीको बीमारी लग जाए, उसके योगमें कहीं-न-कहीं कोई क्षति होगी। श्रीकृष्ण योगी और भोगी दोनोंको प्रिय हैं।

श्रीकृष्णलीलामें सभी प्रकारके रस दिखाई देते हैं। साधारणतः साहित्यमें नव रस होते हैं—हास्य, वीर, करुण, शृङ्गार, वीभत्स आदि। श्रीकृष्णका हास्य, विनोद भी अद्वितीय है। श्रीकृष्णके वीर रसका तो महाभारतमें अनेक स्थानों पर वर्णन है। श्रीकृष्ण प्रेमस्वरूप होनेके कारण परिपूर्ण माधुर्य रससे भरे हुए हैं। अतः किसी भी रसकी रुचि पुष्ट होकर अलौकिक प्रेमरसकी प्राप्ति करायेगी। लौकिक आसक्ति धीरे-धीरे विनष्ट होगी और अलौकिक श्रीकृष्णकी आसक्ति-रूपा भक्ति प्राप्त होगी और जीवन सफल होगा।

महापुरुष श्रीकृष्णलीलाको निरोधलीला कहते हैं। मनका निरोध होने पर मुक्ति सुलभ है।

मनका निरोध ईश्वरमें ही हो सकता है, अन्य किसी वस्तुमें नहीं। क्योंकि संसार जड़ है, मन नहीं। दूध और मिश्रीकी भाँति सजातीय एक दूसरेमें मिल जाते हैं। पत्थर एक रूप नहीं हो सकते। इसी प्रकार मन संसारके जड़ पदार्थोंके साथ एक रूप नहीं हो सकता। मन न तो पूर्णतः चेतन है और न पूर्णतः जड़। वह अर्धचेतन है और अर्धजड़।

परीक्षित राजाके मनको सांसारिक विषयोंमें-से अनायास हटाकर, श्रीकृष्णके साथ एकरूप करके उसे मुक्ति प्राप्त करानेके लिए ही यह दशम स्कन्ध रचा गया है।

दशम स्कन्ध तो भगवान्का हृदय है। इसमें श्रीकृष्णकी वह लीला वर्णित है, जिसने अनेकोंको प्रेम-पागल बना दिया।

सनातन स्वामी कभी किसी राजाके महामंत्री थे। दशम स्कन्धकी कथा सुनकर वे साधु हो गए।

श्रीकृष्ण योगी थे और भोगी भी।

यह कथा राजाओंको भी आकर्षित करती है और योगियोंको भी। इसका कारण हैं श्रीकृष्ण। 'चित्त चैन नहीं, चित्त चोर चुरायो' है।

श्रीकृष्ण चित्तकी शांति तो क्या, स्वयं चित्तको ही चुराते हैं।

उनका रूप भी बड़ा अद्भुत है।

धूरि-भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पगपैंजनी बाजति, पीरी कछोटी॥
वा छविकों रसखानि बिलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
कागके भाग कहा कहिये, हरि हाथसे लै गयौ माखन-रोटी॥

युगलप्रियाजीका पद

(राग : मेघरंजनी; ताल : झप)

स्याम स्वरूप बस्यो हियमें, फिर और नहीं जग भावैं री।
कहा कहूँ को माने मेरी, सिर बीती सो जानैं री॥
रसना रसना सब रस फीके, दृगनि न और रँग लागैं री।
स्रवननि दूजी कथा न भावैं, सुरत सदा प्रियकी जागैं री॥
बढ्यो बिरत अनुराग अनोखो, लगन लागी मन नहीं लागै री।
जुगल प्रियाके रोम-रोम तें, स्याम ध्यान नहिं पल त्यागै री॥

भगवान् कृष्णकी छवि, उनकी लगन, उनके प्रेमकी कसक ऐसी है कि एक बार हृदयमें प्रविष्ट होनेपर निकलनेका नाम ही नहीं लेती।

मुकुट लटक अटको मन माहीं॥
नृत्यत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक अलक बिथुराई॥
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई।
ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बाँह उठाइ करत चतुराई॥
झुनक झुनक नूपुर झनकारत तत्ता थेई थेई रीझ रिझाई।
चरनदास सहजो हिय अन्तर, भवन करौ जित रहो सदाई॥

राजा परीक्षितने कहा, आपने सूर्यवंश और चन्द्रवंशकी कथा सुनाई। चन्द्रवंशी श्रीकृष्णकी कथा संक्षेपमें ही बताई।

कृष्ण-कथा योगी और भोगी दोनोंको आनन्द देती है। शुकदेवजी तो महायोगी हैं। ध्यानकी आत्यन्तिकताके कारण वस्त्रभान भी नहीं रहा है। वे कृष्णकथामें पागल हो गये हैं।

परीक्षित कहते हैं, आपने वैसे तो सर्वस्वका त्याग किया है किंतु कृष्णकथाका त्याग नहीं कर सके। आपने अपने पितासे भी कह दिया था कि न तो आप उनके पुत्र हैं और न वे आपके पिता। आपने पिताका तो त्याग किया किंतु कृष्णकथाका नहीं। आपके लिए भी यह कथा आनन्ददायिनी है।

शुकदेवजी जैसे वीतरागी साधुपुरुष भी कृष्णकथाका मोह छोड़ नहीं पाये। महापुरुषोंको लगता है कि जबतक नाक पकड़कर बैठे हैं (अर्थात् तप कर रहे हैं) तबतक तो ठीक है किंतु आसनसे उठ जानेपर कब मन भागने लगता है, उसकी खबर तक नहीं हो पाती।

मनको निर्विषयी बनाओ। उसे कृष्णलीलामें पिरोये रखो। चिंतन करना है तो कृष्ण-लीलाका चिंतन करो। मनको निर्विषयी बनानेका आदेश वेदांत भी देता है। यह बड़ा कठिन काम है। इसीलिए तो वैष्णव कहते हैं कि मनको प्रतिकूल विषयोंमेंसे हटा कर अनुकूल विषयोंमें जोड़ दो।

वेदांती कहते हैं कि जब आत्माको बन्धन ही नहीं है तो फिर मुक्तिका प्रश्न ही कैसे उपस्थित हो सकता है। वैष्णवोंको भगवान्‌की सेवामें ऐसा आनंद मिलता है कि मुक्तिकी वे इच्छा ही नहीं करते हैं।

योगी जब तक आँखें मूंद कर समाधिमें बैठे रहते हैं, तब तक उनका मन स्थिर रहता है किंतु योगावस्थामें जागृत होनेपर, आँखें खुलते ही उनका मन चञ्चल होकर सांसारिक विषयोंमें खो जाता है। ऋषि विश्वामित्रने आँखें मूंद कर साठ हजार वर्ष तपश्चर्या तो की किंतु आँखें खुलते ही वे मेनकाकी मायामें फंस गए।

अजी, खुली आँखों और खुले कानोंसे भी समाधि लगे, वही समाधि सच्ची समाधि है।

साधो, सहज समाधि भली।

समाधिके दो प्रकार हैं। जड़ और चेतन। जड़ समाधि वह है, जिसमें योगी मनको बलपूर्वक वशमें रखनेका प्रयत्न करते हैं। मन पर ऐसा बलात्कार करना कोई अच्छी बात नहीं है। वैसे योगी कभी रोगी भी बन जाते हैं। इसी कारण तो हठयोगकी निंदा की गई है। हठ-योगीको भक्तिका सहारा न मिल पाए तो उसका योग निरर्थक है।

मनपर बलात्कार करनेकी अपेक्षा उसे प्रेमसे समझा-बुझा कर वशमें करना अच्छा है।

मन सज्जन है। मनकी कोई सत्ता नहीं होती। मन आत्मा की आज्ञामें है। आत्माके आदेशानुसार मनको कार्य करना पड़ता है। मनको शास्त्रमें नपुंसक कहा गया है। आत्माकी सत्ता और आज्ञानुसार ही मन दौड़ सकता है। योगी मनको बलपूर्वक ब्रह्मरन्ध्रमें स्थापित करते हैं। उस समय उनका शरीर जड़ हो जाता है। जड़ समाधिमें शरीरका भान नहीं रह पाता।

जड़ समाधिकी तुलनामें चेतन समाधि श्रेष्ठ है।

गोपियोंकी समाधि चेतन समाधि है। वे कान बन्द करके या आंख मूंदके नहीं बैठतीं। वे तो खुले कान और खुली आँखोंसे ही कृष्णके ध्यानमें तन्मय हो जाती हैं। वे तो अपने कानों

और आँखोंमें श्रीकृष्णको ही बसाती हैं। इन्हें देखकर तो उद्धव (उल्टा) सीधो (सरल) बन गए थे।

ये गोपियाँ खुली आँखोंसे भी समाधि लगा सकती हैं। जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ उन्हें कृष्णके ही दर्शन होते हैं।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र माधवः।

समाधि ऐसी साहजिक ही होनी चाहिए। इसीलिए तो उद्धवजीकी निर्गुण निराकार ब्रह्मकी आराधनाकी बात सुनकर गोपियोंने कहा था, हम तो खुली आँखोंसे ही सर्वत्र साकार ब्रह्म श्रीकृष्णका दर्शन करती हैं। अतः साकार ब्रह्मको छोड़कर तुम्हारे निराकार ईश्वरका ध्यान-चिंतन क्यों करें?

उद्धवजी, जो खुली आँखोंसे ब्रह्मका दर्शन नहीं पा सकता, वही अपनी आँखोंको मूँदकर ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करनेका प्रयत्न करता है। हम तो श्रीकृष्णका दर्शन, चिंतन और ध्यान करती हैं।

आँखें बन्द करनेके बाद ही जो समाधिस्थ हो सकता है, उसके लिए संभव है कि आँखें खुलनेके बाद उसका मन संसारमें भटक जाए।

गोपियाँ गृहस्थ होनेपर भी महापरमहंस हैं। व्रजवासी ही उत्तमोत्तम परमहंस हैं, जो सभी बाह्य विषयोंसे अलिप्त होकर कृष्ण प्रेममें तन्मय हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण महागृहस्थ भी हैं और महासंन्यासी भी। घरमें रहते हुए भी संन्यासी जीवन कैसे जिया जा सकता है, यह श्रीकृष्णने बताया है। वे तेरह बार भोजन करते हैं और सोलह हजार स्त्रियोंके स्वामी हैं, फिर भी वे अच्युत, युवा हैं। वे कभी वृद्ध नहीं होते, जीर्ण नहीं होते। वे अर्जुन और दुर्योधन दोनोंको समान दृष्टिसे देखते थे और उन्होंने दोनोंकी सहायता की थी। यदुवंश और सुवर्ण द्वारिकाका विनाश हो गया, फिर भी उनकी मनोशांति अविचल रही।

भागवत परमहंसोंकी संहिता है।

परीक्षित कहते हैं—महाराज, आप वीतरागी योगी हैं, फिर भी कृष्णकथा नहीं छोड़ पाए।

कथा मनुष्यकी थकावट दूर करती है। भगवान्की कथा आतुरता बढ़ाती है। बार-बार इसे सुनने पर भी तृप्ति नहीं होती।

श्रीखण्ड जैसे मिष्टान्नका आहार करने पर, विषयसुखोंका उपभोग कर लेनेपर तृप्ति होती है और अरुचि भी किंतु वह तृप्ति और अरुचि कायम नहीं रह पाती। यदि कायम रहे तो बेड़ा पार हो जाए।

महाराज, मुझे कृष्णकथा सुननेकी इच्छा है। विस्तारपूर्वक आप सुनाइए। प्रभुकी बाललीला और अन्य सभी लीला मुझे सुनाइए। आपके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करके मैं प्रार्थना करता हूँ।

शुकदेवजी—राजन्, कई दिनोंसे आपने कुछ खाया-पिया नहीं है। पहले कुछ जलपान कर लीजिए। फिर कथा सुनेंगे।

परीक्षित—कुछ दिन पहले तो मैं भूख और प्यासके मारे व्याकुल हो जाता था । एक बार शिकार करने वनमें गया था तो भूख-प्यासकी व्याकुलताके कारण ही मैंने ऋषिका अपमान तक कर दिया था किंतु आपसे कथा सुननेके बाद न तो मुझे भूख सताती है और न प्यास । बस, आप कथा ही सुनाते रहिए ।

शुकदेवजी—कृष्णकथाके लिए तेरा प्रेम देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ । राजा, तेरे ही कारण मुझे भी कृष्णकथा-गंगाका अमृतपान करनेका लाभ मिला। जबसे कृष्णकथारूपी गङ्गाका प्राकट्य हुआ है, तबसे भागीरथी गङ्गाका महत्व कम हो गया है । भागीरथी गङ्गामें स्नान करनेसे शारीरिक मलीनता तो दूर होती है किंतु मानसिक मलीनता तो कृष्णकथा ही दूर कर सकती है । कृष्णकथा तो जहाँ चाहो, वहाँ प्रगट हो सकती है किंतु वह भागीरथी गङ्गा अन्य किसी स्थान पर प्रगट होती नहीं हैं ।

शुकदेवजी राजाका आभार मानते हैं कि उसके कारण कृष्ण-स्मरण और दर्शनका लाभ मिला ।

महात्मा तो कहते हैं कि नवम स्कंध तककी कथा शुकदेवजीने सुनायी और दशम स्कंधकी कथा स्वयं श्रीकृष्णने सुनायी है ।

वैयासकिः स भगवान् (भवतासह)

१०.१.४

शुकदेवजीने राधाकृष्णसे प्रार्थना की कि हृदयमें विराजमान होकर वे ही कथा करें ।

ज्ञानी पुरुष मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं । मृत्युको सुधारते हैं कृष्णकथा, कृष्णनाम, कृष्णभक्ति । जिसकी मृत्यु सुधरती है, उसे दुबारा जन्म लेना नहीं पड़ता।

वैर और वासना जीवनको बिगाड़ते हैं । उनके दूर होने पर ही जीवन और मृत्यु उजागर होते हैं । वैर और वासनाको मृत्युके पहले ही हटा दो, अन्यथा मृत्यु बिगड़ जाएगी । तुम वैरीको वंदन करो । फिर भी वह वैर बनाए रहे तो उसके पापका साझीदार तुम्हें बनना नहीं पड़ेगा ।

दशम स्कंधमें निरोधलीला है । ईश्वरमें मनको लय करना ही निरोध है ।

श्रीकृष्णको अपने हृदयमें रखोगे या श्रीकृष्णके हृदयमें बसोगे तो मनका निरोध होगा । मनका निरोध ही मुक्ति है ।

धरती पर दैत्योंका उपद्रव बढ़ गया, लोग दुःखी हो गए, पाप बढ़ गया । धरतीसे यह सब सहा न गया तो उसने ब्रह्माजीकी शरण ली । ब्रह्मादि देव ब्रह्मलोकमें नारायणके पास आए और पुरुषसूक्तसे प्रार्थना करने लगे—नाथ, अब तो कृपा कीजिए। आप अवतार लीजिए । भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—कुछ ही समयमें मैं वसुदेव-देवकीके घर प्रकट होऊँगा । मेरी सेवाके लिए तुम सब देव भी अवतार लेना । ब्रह्माने आकाशवाणी सुनी और सभी देवोंको आश्वस्त किया ।

इधर मथुरामें विवाह करनेके लिए वसुदेव आए । वसुदेव-देवकीका विवाह हुआ । स्वयं कंसने ही वरवधूका रथ चलाया ।

कंस वसुदेवको बहुत सताये तो भगवान्‌का प्राकट्य शीघ्र हो जाय। भक्तोंके दुःख भगवान्‌से सहे नहीं जाते। पापीका दुःख, भगवान् साक्षीके रूपमें देख लेते हैं और सह लेते हैं किंतु पुण्यशालीका दुःख उनसे सहा नहीं जाता।

आकाशवाणी सुनाई दी—हे कंस! देवकीकी आठवीं संतान तेरी हत्या करेगी।

कंसने आकाशवाणी सुनी तो वह तलवार लेकर देवकीकी हत्या करनेके लिए तैयार हो गया। तो वसुदेव उसे समझाने लगे—जो आया है, वह जाएगा। जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी होगी। इसीलिए तो महात्माजन मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। मृत्युका निवारण अशक्य है। "शीर्यते इति शरीरम्।" शरीरका नाश तो होगा ही। वैर न करो। वैर या सुखकी वासना मृत्यु भ्रष्ट करती है। वैर-वासनाका त्याग करके प्रभुस्मरण करता हुआ जो मरता है, उसकी मृत्यु उजागर होती है। देवकीकी हत्या करनेसे तो तुम अमर हो नहीं सकते और देवकी तो तुम्हारी मृत्यु का कारण है नहीं।

कंस—हाँ, यह तो है।

वसुदेव—तो मैं देवकीकी सभी संतान तुम्हारे हवाले करता रहूँगा।

कंसने भी सोचा कि यह भी ठीक है। स्त्री-हत्याके पापसे तो बच जाऊँगा। उसने कहा, अच्छा। मैं देवकीकी हत्या नहीं करूँगा।

वसुदेव, शुद्ध सत्त्व गुणका स्वरूप है। विशुद्ध चित्त ही वसुदेव है। देवकी निष्काम बुद्धि है। इन दोनोंके मिलन होने पर भगवान्‌का जन्म होता है।

वसुदेव-देवकी घर आए। प्रथम बालकका जन्म हुआ। वसुदेवने बालक कंसको दे दिया। कंसका हृदय पिघला। इस बालकको मारनेसे मुझे कोई लाभ नहीं होगा। आठवाँ बालक मुझे मारेगा। यह तो पहला है। मैं इसे मारूँगा नहीं। सातों बालकोंको अपने पास ही रखना। मेरा काल होने वाला आठवाँ बालक ही मुझे देना। वासुदेवजी बालकको लेकर वापस लौटे।

नारदजीने सोचा कि यदि कंस यह अच्छाई करने लगेगा तो पाप कैसे कर पाएगा और यह पाप नहीं करेगा तो भगवान् अवतार नहीं लेंगे। कंसका पाप नहीं बढ़ेगा तो वह शीघ्र मरेगा भी नहीं। पाप न करनेवालेको भगवान् जल्दी मारते नहीं हैं।

ईश्वर तो किसीको भी नहीं मारते। मनुष्यको उसका पाप ही मारता है। हमेशा दो वस्तुओंसे डरते रहो—पापसे और ईश्वरसे।

नारदजी कंसके पास आए और कहा—कंस, तू तो बहुत भोला है। देव तुम्हें मारनेकी सोच रहे हैं। वसुदेवके बालकको छोड़ कर तुमने अच्छा नहीं किया। कोई भी बालक आठवाँ हो सकता है। यदि आठवें बालकको पहला माना जाय तो वह पहला बालक आठवाँ माना जाएगा।

कंस—तो क्या मैं सभी बालकोंकी हत्या करता रहूँ?

नारदजीने सोचा कि यदि मैं सम्मति दूँगा तो मुझे भी बालहत्याका पाप लग ही जाएगा।

दूसरोंको पापकी प्रेरणा देनेवाला भी पापी है।

नारदजी—राजन्, मैं तो तुम्हें सावधान करनेके लिए आया हूँ। तुम्हें जो ठीक लगे, वह करते रहना।

और वे नारायण-नारायण बोलते हुए चले गए।

नारदजीने कंसके पापको बढ़ानेके हेतु ही उसे उल्टा-सीधा पढ़ा दिया।

कंसने वसुदेव-देवकीको कारागारमें बंद कर दिया। बिना अपराध ही बंधनमें बँध गए फिर भी उन्होंने मान लिया कि शायद ईश्वरको यही पसंद है। यह तो भगवान्की कृपा ही है कि उनका नामस्मरण करनेके लिए एकांतवास मिला है।

अतिशय दुःखको भी प्रभुकी कृपा ही समझनी चाहिए।

कंस अभिमान है। वह जीवमात्रको बंद किए रहता है। सभी जीव इस संसाररूपी कारागृहमें बंद हैं। हम सब बंदी हैं। जीव जब तक कामके अधीन है, तब तक वह स्वतंत्र नहीं है। सभी बंदी ही हैं।

वसुदेव-देवकी कारावासमें भी जागृत थे, जब कि हम तो सोए ही रहते हैं। हमारा जीव कारागृहके एकांतमें जागृत होनेकी अपेक्षा सोया ही रहता है। संसारमें जो जागृत रहता है, वही भगवान्को पा सकता है।

जो जागत है, वह पावत है।
जो सोवत है, वह खोवत है॥

जो भगवान्के लिए जागता है, उसे ही भगवान् मिलते हैं। कबीरजीने कहा है—

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है; जागै अरु रोवै॥

कबीर उनके लिए जागे और रोए सो उन्हें भगवान् मिले।

मीराबाई भी उनके लिए जागीं और रोईं सो उन्हें भी भगवान मिले।

कंसने देवकीकी छः संतानोंकी हत्या कर दी।

मायाका आश्रय लिए बिना भगवान् अवतार नहीं ले सकते। शुद्ध ब्रह्मका अवतार हो नहीं सकता। यदि ईश्वर शुद्ध स्वरूपसे आए तो जो भी उनका दर्शन पा सके, उसका उद्धार हो जाए। दुर्योधनने द्वारिकाधीशके दर्शन तो किए थे किंतु मायासे आवृत प्रभुके दर्शन किए थे। जो निरावृत ब्रह्मका साक्षात्कार पाता है, उसे मुक्ति मिलती है। मायावृत ब्रह्मके दर्शककी मुक्ति नहीं होती। संभव है, भगवान्के अवतारके समय हम कीड़े-मकोड़े होंगे। हमने भगवान्के दर्शन तो किए होंगे, फिर भी आज तक हमारा उद्धार नहीं हो पाया है।

योगमायाका आगमन हुआ। उन्होंने सातवें गर्भको रोहिणीके उदरमें स्थापना की। रोहिणी सगर्भा हुई और दाऊजी महाराज प्रकट हुए भाद्रपद शुक्ल एकादशीके दिन। बलदेव शब्द ब्रह्मका स्वरूप है। पहले शब्द ब्रह्म आता है और बादमें परब्रह्म। बलरामका आगमन होने पर ही परब्रह्म गोकुलमें आते हैं।

दाऊजीने आँखें खोलीं ही नहीं। जब तक मेरा कन्हैया नहीं आएगा, मैं आँखें नहीं खोलूंगा। यशोदाजी पूर्णमासीसे बलरामकी नजर उतारनेकी विनती करती है। पूर्णमासी कहती है कि यह तो किसीका ध्यान कर रहा है। इस बालकके कारण तेरे घर बालकृष्ण पधारेंगे।

यशोदाने सभीको प्रसन्न किया।

यश सभीको दोगे और अपयश अपने पास रखोगे तो कृष्ण प्रसन्न होंगे। जीव ऐसा तो दुष्ट है कि यश अपने पास रखता है और अपयश दूसरोंके सिर मढ़ देता है।

यशोदा—"यशः ददाति इति यशोदा।" जो दूसरोंको यश देती है, वह यशोदा है।

नंद—जो सभी को आनंद देता है, वही नंद है।

विचार, वाणी, वर्तन, सदाचारसे जो अन्यको आनंद देता है, उसीके घर भगवान् पधारते हैं। जो सभीको आनंद देता है, उसीको परमानंद मिलता है।

नंदबाबाने सभीको आनंद दिया सो उनके घर परमानंद प्रभु आ गये।

सभी गोपाल शांडिल्य ऋषिके पास आए। महाराज, कुछ ऐसा कीजिए कि नंदजीके घर पुत्रका जन्म हो। शांडिल्यके कहने पर सभी एकादशीका व्रत करने लगे।

एकादशी महाव्रत है। एकादशीके दिन पान-सुपारी खाना या सोना भी निषिद्ध है। थोड़ा-सा फलहार ही किया जा सकता है। कई लोग साबूदाना आदि भर पेट खाते हैं। आलू आदि खाने पर अन्न-दोष तो नहीं होता है किंतु एकादशीव्रतका पुण्य भी नहीं मिलता है। अगले दिन क्या खाएँगे, यह सोच-विचार एकदशीके दिन करनेसे व्रत-भंग होगा। एकादशीके दिन तो भगवत्-स्मरण ही करना चाहिए।

सभी ग्वालोंकी एक ही इच्छा थी कि परमात्मा प्रसन्न हो जायँ और नदबाबाके घर पुत्र-जन्म हो। भाद्रपद शुक्ल एकादशीसे सभी गोकुलवासी निर्जला एकादशी आदि व्रत करने लगे सो भगवान् गोकुलमें पधारे।

बालकोंने भी व्रत किया था सो वे कहते हैं कि हमारे व्रतके कारण ही कन्हैया आए। कन्हैया तो सबका है। नंद महोत्सवमें सारा गाँव आनंदसे नाच रहा था। सभीको लगता है कि कन्हैया उसीका है। सारे गाँवने व्रत जो किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

इधर देवकीने आठवाँ गर्भ धारण किया तो उधर कंसने सेवकोंको सावधान कर दिया। मेरा काल आ रहा है।

सेवकोंने कहा—हम तो सदा जागते ही रहते हैं। हम चौकन्ने ही रहते हैं। बालकका जन्म होते ही आपको समाचार दे देगें।

देवगण देवकी—गर्भवासी भगवान् नारायणकी प्रार्थना करता है। आप तो सत्यस्वरूप त्रिकालाबाधित हैं। अपने वचन सत्य करनेके हेतु आप पधार रहे हैं। अनेक विद्वानोंकी अधोगति हमने देखी है किंतु जो व्यक्ति आपकी लीलाओंका स्मरण और आपके नामका जप करता है, उसकी कभी अधोगति नहीं होती। नाथ, आप कृपा करें।

देवोंने देवकीको भी आश्वासन दिया। नव मास परिपूर्ण होनेको आए। मन, बुद्धि, पंचप्राण आदिकी शुद्धि हुई है। इन सबकी शुद्धि होने पर परमात्माके दर्शनकी आतुरता बढ़ती जाती है। ईश्वरके दर्शनके बिना चैन नहीं आता। अतः जीव तड़पता है और अतिशय आतुर होता जाता है और तभी भगवान् अवतार धारण करते हैं।

जब परम शोभायमान और सर्वगुण-संपन्न घड़ी आई, चंद्र रोहिणी नक्षत्रमें आया, दिशाएँ स्वच्छ हुईं, आकाश निर्मल हुआ, नदीका नीर निर्मल हुआ, वनमें पंछी और भँवरे गुनगुनाने लगे, शीतल, सुगंधित, पवित्र हवा बहने लगी, महात्माओंके मन प्रसन्न हुए, स्वर्गमें दुंदुभि बजने लगी, मुनि और देवगण आनंदसे पुष्पवृष्टि करने लगे और परम पवित्र समय आ पहुँचा। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीकी मध्यरात्रिका समय संपन्न हुआ और कमलनयन चतुर्भुज नारायण भगवान् बालकका रूप लेकर वसुदेव-देवकीके समक्ष प्रकट हुए।

भगवान्ने अपने श्रीहस्तोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हैं। चारों ओर प्रकाश बिखर गया। उनका चतुर्भुज स्वरूप यह बताता है कि उनके चरणोंकी शरण लेनेवालोंके चारों पुरुषार्थ वे सिद्ध करेंगे।

जो भक्त अनन्यतासे मेरी आराधना करता है, उसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ मैं सिद्ध करता हूँ और उसकी हर प्रकारसे मैं रक्षा करता हूँ।

संपत्ति और संततिका सर्वनाश हो गया था फिर भी वसुदेव-देवकी दीनतापूर्वक ईश्वरकी आराधना करते हैं। प्रभुने कहा, मेरे चतुर्भुज स्वरूपका दर्शन कर लीजिए और ग्यारह वर्ष तक मेरा ध्यान करते रहिए। मैं अवश्य आपके पास आऊँगा।

भगवान्का चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया और दो छोटे-छोटे हाथोंवाले बाल कन्हैया प्रकट हुए।

बाल कन्हैयालालकी जय।

प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट हो जाएँ फिर भी ध्यानकी तो आवश्यकता बनी ही रहती है।

ज्ञानदीप प्रकट होनेके बाद भी, एकाध इन्द्रिय-द्वार खुला रह जाने पर विषयरूपी पवन प्रविष्ट होकर, ज्ञानदीपको बुझा देता है। इस ज्ञानमार्गमें कई बाधाएँ आती रहती हैं।

भक्तिमार्ग बड़ा सरल है। प्रत्येक इन्द्रियको भक्तिरसमें भिगो दो। फिर विषयरूपी पवन सता नहीं पाएगा।

जब ग्यारह इन्द्रियाँ ध्यानमें एकाग्र हो जाती हैं, तब प्रभुका साक्षात्कार होता है। इसी कारणसे तो गीताजीमें भी ग्यारहवें अध्यायमें अर्जुनको विश्वरूपके दर्शन होते हैं।

प्रभुने कहा, मुझे गोकुलमें नंदबाबाके घर छोड़ आइए। वसुदेवने उन्हें टोकरीमें बिठलाया किंतु बाहर कैसे निकला जाय? कारागृहके द्वार बंद हैं और बंधन भी टूटते नहीं हैं किंतु ज्योंही टोकरी सिर पर उठाई, सारे बंधन टूट गए।

मस्तकमें बुद्धि है। जब बुद्धि ईश्वरका अनुभव करती है, तब संसारके सारे बंधन टूट जाते हैं। जो भगवान्को अपने मस्तक पर विराजमान करता है, उसके लिए कारागारके तो क्या मोक्षके द्वार भी खुल जाते हैं। हाथ पांवकी बेड़ियाँ टूट जाती हैं, नदीकी बाढ़ भी थम जाती है। जिसके सिर पर भगवान् हैं, उसे मार्गमें विघ्न-बाधा नहीं सता सकतीं।

मात्र घरमें आनेसे नहीं, मनमें भगवान्के आने पर ही बंधन टूट जाते हैं।

जो व्यक्ति वसुदेवकी भाँति श्रीकृष्णको अपने मस्तक पर विराजमान करता है, उसके सभी बंधन टूट जाते हैं। कारागृहके—सांसारिक मोहके बंधन टूट जाते हैं, द्वार खुल जाते हैं। अन्यथा यह सारा संसार मोह-रूप कारागृहमें ही सोया हुआ है।

वसुदेवजी कारागृहमें से बाहर आए। दाऊजी दौड़ते हुए आए। शेषनागके रूपमें बाल-कृष्ण पर छत्र धारण किया। यमुनाजीको अत्यंत आनंद हुआ। दर्शनकी तृप्ति हो पा रही थी। मेरे प्राणनाथसे मिलना है। यमुनामें जल बढ़ गया। प्रभुने लीला की, टोकरीमेंसे अपने पाँव बाहरकी ओर बढ़ा दिये। यमुनाजीने चरणस्पर्श किया और कमल भेंट किया। प्रथम दर्शन और मिलनका आनंद यमुनाजीको दिया। धीरे-धीरे पानी कम हो गया।

वसुदेव गोकुलमें आ पहुँचे। योगमायाके आवरणवश सारा गाँव गहरी नींदमें सूबा हुआ था। वसुदेवने श्रीकृष्णको यशोदाकी गोदमें रख दिया और बालिका-स्वरूपा योगमायाको उठा लिया। वसुदेवने सोचा कि अब भी उनका प्रारब्ध कर्म बाकी रह गया है, तभी तो भगवान्को छोड़ कर मायाको गले लगानेका अवसर आया है।

वसुदेव योगमायाको टोकरीमें बिठला कर वापस कारागृह आ पहुँचे।

ब्रह्मसंबंध होने पर सभी बंधन टूट गए थे। अब माया आई तो बंधन भी आ गए वसुदेव गोकुलसे मायाको अपने सिर पर बिठला कर लाए सो फिर बंधन आ पहुँचा और कारागृहके द्वार बंद हो गए। माया बंधनकर्ता है। भगवान्की आज्ञाके कारण ही तो वसुदेवने बंधनको स्वीकार किया है।

अब कारागृहमें देवकीकी गोदमें सोई हुई योगमाया रोने लगी ! सेवकोंने शीघ्र ही कंसको संतानके जन्मका समाचार दिया। कंस दौड़ता हुआ आया। कहाँ है मेरा काल ? मुझे सौंप दो उसे।

कंस योगमायाके पाँव पकड़ कर उन्हें पत्थर पर पीटने लगा किंतु माया कभी किसीके हाथमें आई भी है ? आदि मायाने तो कंसके ही सिर पर एक लात जमा दी और कंसके हाथोंसे छूट कर आकाशगामी हो गईं। आकाशमें उन्होंने अष्टभुजा जगदंबा भद्रकालीका रूप धारण किया। उन्होंने कंससे पुकार कर कहा—अरे पापी, तेरा काल तो अवतरित हो गया है और सुरक्षित है।

कंसने पश्चात्ताप करते हुए वसुदेव-देवकीसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी।

इधर जन्माष्टमीके दिन नंदजीने बारह बजे तक जागरण किया। शांडिल्यके कहने पर सभी सो गए थे और गहरी नींदमें डूब गये थे। बालकृष्ण जब नंदजीके घरमें आए तब नंदबाबा सोए हुए थे। नंदबाबाने स्वप्नमें देखा कि कई बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके आँगनमें पधारे हुए हैं, यशोदाजीने श्रृंगार किया है और गोदमें एक सुंदर बालक खेल रहा है। उस बालकको मैं निहार रहा हूँ। शिवजी भी उस बालकका दर्शन करनेके हेतु आए हैं।

नंदबाबा प्रातःकाल जागृत होने पर मनमें कई संकल्प-विकल्प करते हुए गौशालामें आए। वे स्वयं गौसेवा करते थे। गायोंकी जो प्रेमसे सेवा करता है, उसका वंश नष्ट नहीं होता।

नंदबाबाने प्रार्थना की—हे नारायण ! दया करो। मेरे घर गायोंके सेवक गोपाल कृष्णका जन्म हो।

उसी समय बालकृष्णने लीला की। पीला चोला पहने हुए, कपाल पर कस्तूरीके तिलकवाले बालकृष्ण घुटनोंके बल बढ़ते हुए गौशालामें आए। इस बालकको नंदजीने देखा तो उनके मनमें हुआ, अरे, यह तो वही बालक है जिसे मैंने स्वप्नमें आज ही देखा है। बालकृष्णने नंदबाबासे कहा—बाबा, मैं आपकी गायोंकी सेवा करनेके लिए आया हूँ।

गौशालामें आए हुए कन्हैयाको नंदजी प्रेमसे निहारते हुए स्तब्धसे हो गए। उन्हें देह-भान तक नहीं रहा। बालकृष्णके दर्शनसे वे समाधिस्थसे हो गए। उन्हें कुछ ज्ञात ही नहीं हो रहा था कि वे जाग रहे हैं या सो रहे हैं।

सुनंदाको यशोदाकी गोदमें बालकृष्णकी झाँकी हुई तो वह दौड़ती हुई गौशालामें भाईको खबर करने आई। भैया, भैया, लाला भयो है।

आनंद-ही-आनंद हो गया। श्रीकृष्ण हृदयमें आ गए।

नंदजीने यमुनाजीमें स्नान किया। आज जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें स्नान किया जाना था। उनको सुवर्णके आसन पर विठलाया गया। शांडिल्य मुनिने उनको दान करनेको कहा। नंदजीने कहा—जो चाहो सो ले जा सकते हो। नंदबाबाने बड़ी उदारताते दान दिया। दानसे धनकी शुद्धि होती है।

गायोंका दान दिया गया।

कई वर्षों तक तपश्चर्या करने पर भी महान् ऋषि-मुनियोंका काम नष्ट न हुआ, अभिमान निःशेष न हुआ तो वे सब गोकुलमें गायका अवतार ले कर आए। उन्होंने सोचा था कि ब्रह्म-संबंध होने पर वे निष्काम होंगे।

नंदबाबाने दो लाख गायोंका दान किया।

एक ब्राह्मणको दस हजार गाएँ दानस्वरूप मिलीं। वह घर ले आया। छोटा-सा था घर। उसने घरके कोने-कोनेमें गायें बाँध दीं फिर भी बहुत-सी बाकी रह गई। इस ब्राह्मणकी पत्नी बड़ी कर्कशा थी। वह अपने पतिसे कहने लगी—कोई चाहे जितनी गाय दे, किंतु तुम सबको ले क्यों आए? इतनी सारी गायें देनेवाला कौन निकल पड़ा?

ब्राह्मण—अरे, तू जानती ही नहीं है क्या? नंदबाबाके घर पुत्ररत्न जन्मा है। उन्होंने आज हजारों गायोंका दान दिया है।

नंदबाबाके घर पुत्रजन्मकी बात सुन कर ब्राह्मणी आनंदित हो गई। पति-पत्नी आनंदसे मानो, नाचने लगे।

नंद घर आनंद भयो,
जय कन्हैयालालकी ॥

गाँवके एक-एक व्यक्तिको लगता है कि कन्हैया उसीका है।

गाँवकी सभी गोपियोंमें कन्हैयाके जन्मकी बात फैल गई तो वे सब भी उसके दर्शनके लिए दौड़ चलीं। मानों नवधा भक्ति दौड़ती हुई ईश्वरसे मिलनेके लिए जा रही हो।

गोपियोंका एक-एक अङ्ग कृष्णमिलन और कृष्णस्पर्शके लिए आंदोलित हो रहा था। उनकी आँखें कहने लगीं—हम जैसा भाग्यवान कोई नहीं है, हमें ही कृष्णदर्शनका आनन्द मिलेगा। तो हाथोंने कहा—हम ही भाग्यशाली हैं, हम तो प्रभुको भेंट देंगे। तो गोपियोंके कान कहने लगे—हमारे ही कारण तुम सब भाग्यशाली हुए हो क्योंकि कृष्णप्राकटचके समाचार हमने सबसे पहले जाने हैं। हम तो कन्हैयाका बाँसुरीवादन भी सुनेंगे। तो हृदयने कहा—जबतक मैं पिघलता नहीं हूँ, आनन्द आता ही नहीं है। पाँव बोल पड़े—हजारों जन्मोंसे हम यौवनसुख और धनसम्पत्तिके पीछे भागते आये हैं और आज प्रभुदर्शनके लिए दौड़ पड़े हैं। अब जन्म-मृत्युके दुःखसे छुटकारा होगा। सभीको आनन्दानुभव हो रहा था।

गोपियोंकी वेणीसे फूल नीचे झर रहे हैं और कह रहे हैं—तुम कृष्णदर्शनके लिए आतुरतासे दौड़ रही हो। तुम भाग्यशाली हो। तुम्हारे सिर पर रहनेके लिए हम योग्य नहीं हैं। हम तो तुम्हारे चरणोंमें गिरकर तुम्हारी चरणरजके स्पर्शसे पावन हो जायेंगे।

यशोदाकी गोदमें खेलते हुए सर्वाङ्ग-सुन्दर बालकृष्णका गोपियाँ दहीसे अभिषेक करने लगीं। निर्धन गोपियाँ दूध और दही लेकर आई हैं। कृष्ण जैसे लालके दर्शन होनेपर आनंदावेशसे वे भान भूल गयीं और स्वयंको ही दूध-दहीसे नहलाने लगीं। सभी गोपियोंका मन कन्हैयाने आकर्षित कर लिया। हृदयमें आनन्दका पारावार उमड़ रहा है। गोपियाँ जितना लेकर आई हैं, उसका दसगुना बढ़ाकर वापस लौटाना है। किसीको चाँदीकी थाली दी गई तो किसीको चन्द्रहार। यशोदाजीने सोच लिया था कि घरका सर्वस्व क्यों न लुट जाय किंतु सभीका आशीर्वाद और शुभेच्छा पानी है। गोपियाँ जो कुछ भी माँगें, दिया जाय।

आनन्दमें पागल गोपियाँ कन्हैयाकी जयकार कर रही हैं। एकने तो कहा—यदि देना है तो मुझे कन्हैया ही दीजिए। यशोदाने उसे अपने पास बिठला कर उसकी गोदमें लालाको बिठलाया। आनन्द, आनन्द, आनन्द। हजारों जन्मोंसे बिछुड़ा हुआ, जीव आज प्रभुसे मिल पाया। ईश्वरसे मिलन होनेपर जीव आनन्दसे झूम उठता है।

पुरुष तो सभी बाहर रह गये किंतु गोपियाँ तो अन्दर पहुँच कर आनन्दसे नाच रही हैं।

पुरुष अहङ्कार, अभिमानका रूप है और स्त्री नम्रता, दीनताका। जो गोपीकी भाँति नम्र बनकर जाता है, उसे ही ईश्वरकी राजसभामें प्रवेश मिलता है। अहंकारीको वहाँ प्रवेश नहीं मिल सकता।

नन्दके घर—सभीको आनन्द देनेवालेके घर परमानन्द (कन्हैया) प्रकट हुआ। सभीके आशीर्वाद प्राप्त करोगे तो तुम्हारे घर सर्वेश्वर आएँगे। सभीका आशीर्वाद लेना वैसे तो बड़ा दुष्कर काम है किंतु किसीके निःश्वास तो कभी न लो। किसीकी भी बददुआ नहीं लोगे तो तुम भी नन्दके समान हो सकोगे।

नंदयति सर्वजनान् स नंदः।

वाणी, वर्तन, व्यवहार और विचारसे जो सभीको आनन्द देता है, वही नन्द है।

सभीका आदर करो। आदरदान उत्तमोत्तम दान है। सभी जीवको शिव-स्वरूप मान कर सभीका आदर करो।

ज्ञानीका लक्षण ही यह है कि उसके व्यवहारसे किसीको अशांति और उद्वेग न होने पाये।

औरोंके वर्तनसे अपने मनको कभी अशांत और विचलित न करना। नन्दबाबा सदा-सर्वदा आनन्दमें रहते थे और औरोंको आनन्द देते थे। ऐसे नन्दके घर ही परमानन्द पधारते हैं।

सभीको आनन्द न दिया जा सके तो कोई बात नहीं है किंतु दुःख तो किसीको भी न दो। कोई दुःखी हो जाय, ऐसा कभी मत करना।

आज-कल लोग वर्षमें एक ही बार नन्दमहोत्सव मनाते हैं किंतु प्रतिदिन नन्दमहोत्सव मनाना चाहिए। रोज प्रातःकाल चार बजेसे साढ़े पाँच बजे तक नन्दमहोत्सव मनाया जाय। 'उत्' का अर्थ है ईश्वर और 'सव' का अर्थ है प्राकट्य। ईश्वरका प्राकट्य ही उत्सव है। उत्सवमें धन या भोगादि नहीं, प्रेम ही मुख्य है।

मन्दिरमें नहीं, अपने घरमें ही नन्दमहोत्सव मनाया जाय। जीवात्माका घर हमारा शरीर ही तो है।

नन्दमहोत्सवका अर्थ मिठाई बांटना या दही-दूध उँडेलना नहीं है। ऐसा करने पर तो आनन्दका अतिरेक हो जायेगा। उत्सव तो हृदयमें होना चाहिये, हृदयमें मनाना चाहिये। ईश्वरका प्राकट्य होने पर, मनुष्यको देहमें रहते हुए भी देहका भान नहीं रह पाता।

देहधर्म भूलने पर ही उत्सव सफल होता है। परमात्माको हृदयमें पधराओ। हृदयमें परमात्माका प्राकट्य होनेपर भूख-प्यास नहीं सताती। जो हर रोज नन्दमहोत्सव मनाता है, उसका सारा दिन आनन्दमें बीत जाता है। निर्धन व्यक्ति भी यह महोत्सव मना सकता है। इस उत्सवमें धन नहीं, मन ही प्रधान है।

नन्दमहोत्सवकी तैयारी तो करनी ही पड़ती है। अपने शरीरको मथुरा और हृदयको गोकुल बनाओ और फिर नन्दमहोत्सव मनाओगे तभी हृदय-गोकुलमें परमात्मा प्रकट होंगे। 'गो' का अर्थ है इन्द्रियाँ और कुलका अर्थ है समूह। गोकुलका अर्थ है—इन्द्रियोंका समूह अर्थात् हृदय।

शरीर मथुरा है और हृदय गोकुल। नन्द जीव है। इस शरीरको मथुरा बनाना। हृदय-गोकुलमें बालकृष्णको पधराओ। मनको आसक्तिसे बचाओगे तो शरीर मथुरा बनेगा और हृदय, गोकुल। पवित्र काया ही मथुरा है।

महाप्रभुजीकी आज्ञा है। मथुरा और मधुरा एक है। कामसुख और संपत्ति मद हैं। इन दो मदोंसे जो अपनेको बचाता है, उसीका शरीर मथुरा बन सकता है। इन दो वस्तुओंमें फँसा हुआ है मन। इस मनको ही बचाना है। मनुष्य कई बार तनसे तो कामसुखका त्याग करता है किंतु मनसे नहीं करता है। तनसे तो त्याग करे किंतु मनसे न करे तो वह त्याग दम्भ मात्र है। इन दो वस्तुओंमें माया है। इन दोनोंसे मनको बचाना है।

दो वस्तुओंको प्रभुने आसक्तिपूर्ण बनाया है—स्त्री और धन। इन दो आसक्तियोंमें मद-सा आकर्षण है। इन दोनोंसे हमें बचना होगा।

संपत्ति, शक्ति और भोगकी उपस्थिति होनेपर भी मनको बचाए रखना ही सच्चा संयम है। अन्यथा—

धातुषु क्षीयमाणेषु शम कस्य न जायते।

अपनी जवानीमें जो मनको अंकुशित कर पाए, वही सयाना है। वृद्धावस्थामें आँखें तेजहीन होनेपर यदि कोई व्यक्ति सिनेमाका शौक छोड़ दे तो उसकी क्या बड़ाई है? भोग-विलाससे यौवनको भ्रष्ट न करो।

किसी महात्माने कहा है—कुछ लोगोंका धन पत्थरकी पूजामें चला जाता है, बनियेका धन प्रसादमें जाता है और जमींदारका धन विवाह आदिमें चला जाता है।

भक्ति आसान नहीं है। परस्त्री और परसम्पत्तिकी आसक्तिको छोड़े बिना भक्तिका आरम्भ नहीं हो सकता। प्रातःकालमें पूजा कर ली और सब कुछ हो गया, भक्ति हो गई, ऐसा मानना ठीक नहीं है। जबतक भोगबुद्धि है, तबतक ईश्वरकी भक्ति कैसे हो पाएगी? भक्तिमार्गमें भोग बाधक है। मनको धीरे-धीरे भक्तिमार्गकी ओर मोड़ दो।

द्रव्यका चिंतन करते रहनेसे तो द्रव्य मिलेगा नहीं। द्रव्य और कामसुखका विचार तक छोड़ दोगे, तभी तुम्हारी काया पवित्र होगी। यमुना, भक्तिका ही नाम है। शरीरको मथुरा बनाना है और हृदयको गोकुल तो भक्ति-यमुनाके किनारे पर बसना होगा। यमुनाका, भक्तिका किनारा कभी न छोड़ना। चौबीस घण्टे भक्ति-तटपर रहोगे, तभी तुम्हारा शरीर मथुरा और हृदय गोकुल बन पाएगा।

जब तक मनमें मत्सर होगा, शरीर मथुरा हो नहीं पाएगा। मत्सर तो विद्वान और धनिक दोनोंको सताता है।

परमात्माके राज्यमें अन्याय है ही नहीं। जो कुछ भी हो रहा है, ठीक ही हो रहा है। मनुष्यके शासनमें पाप है, ईश्वरके शासनमें नहीं।

आजकलके लोग शरीरकी अपेक्षा मनसे अधिक पाप करते हैं।

इस शरीरको मथुरा बनाओ। ऊपर कहे गए मदसे मनको दूर रखोगे तो शरीर मथुरा बनेगा। उस मदसे मनको बचानेका उपाय क्या है? मथुरा शब्दको उलटनेसे 'राथुम' शब्द बनेगा और बीचमें-से 'थु' अक्षर निकाल दोगे तो 'राम' रह जाएगा। जिसके मुखमें हमेशा राम शब्द बसा रहता है उसीका शरीर मथुरा बन पाता है। यदि परमात्मासे हमेशा सम्बन्ध बना रहेगा तो 'राम' रहेगा नहीं तो 'थु' ही रह जाएगा और सभी यमदूत 'थू-थू' करेंगे उस पर।

हम तीर्थयात्रा करें, वह तो ठीक है किंतु शरीरको ही तीर्थ-सा पवित्र बनाओ और हृदयको गोकुल बनाओ।

'गो' शब्दके कई अर्थ हैं। 'गो' का अर्थ है इन्द्रिय, भक्ति, गाय, उपनिषद् आदि। इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर बढ़ने देनेकी अपेक्षा प्रभुकी ओर मोड़ दो। क्योंकि उनके स्वामी प्रभु ही हैं। भक्ति आँखोंसे भी हो सकती है और कानोंसे भी। आँखोंसे भक्ति करनेका अर्थ है, आँखोंमें प्रभुको बसाकर जगत्‌को देखना। इस प्रकार देखनेसे जगत् कृष्ण-रूप दिखाई देगा। तुलसीदासजी और हनुमानजीको सीतारामके सिवाय और कोई भी दीखता नहीं था।

मनमें तो भगवद्-स्मरण हमेशा चलते रहने दो। हृदय, गोकुल बनते ही कन्हैया आ जाएगा। एक-एक इन्द्रियको भक्तिरसमें सराबोर कर दो। जिसको प्रत्येक इन्द्रिय भक्ति करती है, उसीका हृदय गोकुल बनता है। कई लोग कानोंसे तो भक्ति करते हैं या आँखोंसे भी भक्ति करते हैं किंतु मनसे नहीं करते हैं। प्रत्येक इन्द्रियसे श्रीकृष्ण-रसका पान करो। तभी तुम्हारा मन, तुम्हारा हृदय गोकुल बनेगा और अंतमें परमानंदका प्राकट्य होगा। जो भी इन्द्रिय भक्ति नहीं करती है, वह पापाचार करती है।

गोभिः पिबति इति गोपी।

जो अपनी प्रत्येक इन्द्रियसे श्रीकृष्ण-रसका पान करता है, वही गोपी है।

ज्ञानी अपनी इन्द्रियोंको निरुद्ध करके प्राणको ब्रह्मरंध्रमें स्थिर करके अपने ललाटमें ब्रह्मज्योतिका दर्शन करते हैं।

वैष्णवजन अपने हृदय-सिंहासन पर बालकृष्णको विराजित करते हैं। वैष्णव अपने हृदयमें प्रभुके दिव्य प्रकाशको निहारते हैं।

ठाकुरजीके दर्शन करनेके बाद आँखें मूँद कर उनके स्वरूपको अपने भीतर देखो। श्रीकृष्णका स्मरण करते समय देह और संसारका भान भूल जाने पर नंदमहोत्सव सफल होता है। परमात्मा हृषीकेश हैं। एक-एक इन्द्रियका श्रीकृष्णसे विवाह करो।

भागवतकी भक्तिमें दुराग्रह नहीं है। मात्र स्वरूपमें निष्ठा रखनेसे, एक ही स्वरूपका बार-बार सतत चिंतन करनेसे मन वहीं लग जाता है। ऐसा करनेसे मनकी शक्ति भी बढ़ती है।

शरीरसे नहीं तो तनसे हररोज गोकुल जाओ। मनसे मथुरा जाओ। शरीर जहाँ भी हो, मनको मथुरा और वृन्दावन भेजो। मनमें कल्पना और भावना करो कि यशोदाकी गोदमें बालकृष्ण खेल रहे हैं, लालाके दर्शनके लिए सारी गोपियाँ दौड़ रही हैं आदि। कन्हैयाकी एक-एक लीलाकी कल्पनामें दर्शन करते रहो। ठाकुरजीके दर्शनके बाद भी अपनी आँखें मूँद कर उनके स्वरूपका मन-ही-मन दर्शन करते रहो।

ज्ञानमार्गमें भेदका निषेध है। भक्त, भक्तिके द्वारा भगवान्‌के साथ एक हो जाता है। दोनोंका ध्येय एक ही है। भक्तिमें, आरंभमें भेद है और आगे चलकर प्रभुके साथ भक्त एक हो जाता है।

ध्यानमें, दर्शनमें तन्मयता होने पर नंदमहोत्सव संपन्न होता है। जब तक जगत्‌का भान है, तब तक सच्चा आनंद नहीं मिलता है। देहभान होने पर देवदर्शन नहीं हो पाता। देहभान भूले बिना दर्शनमें सच्चा आनंद नहीं मिल पाता। ध्यानके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो पाता।

वसुदेव और देवकीने ग्यारह वर्ष तक प्रभुका ध्यान किया था।

ध्यान करनेवालेको यह भी भूल जाना चाहिए कि वह ध्यान कर रहा है। अपने आपको और जगत्‌को भूल कर ईश्वरभाव ही शेष रहे, तभी अद्वैत संपन्न होता है। देह और जगत्‌का भान भूल कर जो ईश्वरभाव शेष रहता है, वही अद्वैत है।

संतोंका जीवन पढ़ेंगे तो ज्ञात होगा कि उन्होंने जीवनभर कष्ट सहन किया है। सांसारिक व्यवहारसे तो वे बड़े दुःखी रहे किंतु उनका मन अलिप्त रहता था। अपनी पत्नीकी मृत्यु पर नरसिंह मेहताने कहा—

भलुं थयुं भांगी जंजाल ।
सुखे भजीशुं श्रीगोपाल ।।

अर्थात् अच्छा ही हुआ कि जंजाल नष्ट हो गया। अब तो बड़े चैनसे मैं श्रीगोपालकी भक्ति करूँगा।

नरसिंह मेहताको एक ऐसा तत्त्व मिल गया था कि जिसके कारण दुःखद प्रसंग भी उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते थे। उनके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजमान थे।

वृन्दावनमें कई साधु प्रतिदिन नंदमहोत्सव मनाते हैं। तुम कल्पना और भावनासे वृन्दावन जाओ और इस महोत्सवको मनाओ। शरीर चाहे कहीं भी किंतु मनसे तो नंदबाबाके घरमें ही निवास करो। भावना करो कि तुम वहाँ सेवा करते हो और लालाके दर्शन कर रहे हो। यशोदाकी गोदमें कन्हैया खेल रहा है। गायें उछल-कूद कर रहीं हैं। गोपियाँ आनंद मना रही हैं। ऐसी कल्पना और स्मरण करते रहनेसे सारा दिन बड़े मजेमें गुजर जाएगा।

यदि एक ही स्वरूपका ध्यान न किया जा सके तो कृष्णलीलाका कीर्तन करो। कीर्तनमें ऐसे लीन हो जाओ कि देहभान और देश-कालका भान भी न रहे।

नंदबाबाका गोकुल शुद्ध प्रेमभूमि है। उसमें स्वयं सुख पानेकी नहीं, औरोंको सुखी करनेकी भावना है। स्वयं सुखी होनेकी और अन्यको सुखी न करनेकी भावना होगी तो सुख तुम्हारा ही त्याग करेगा। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता।

नंदमहोत्सवका आरंभ प्रातःकाल चार बजे हुआ था, अतः इसे ब्रह्ममुहुर्तमें ही मनाया जाय। ध्यान-धारणाका सर्वोत्तम समय ब्राह्ममुहूर्त (प्रातःकाल ४ से ५।।) का है। प्रातःकाल प्रभुभजनसे आनंद प्राप्त किए जाने पर, सारा दिवस भी बड़े आनंदसे व्यतीत हो जाता है। प्रातःकाल जल्दी उठ कर आधा घंटा ध्यान करो। ईश्वरके साथ एकत्व साधो। बारह वर्ष तक इस प्रकार नियमपूर्वक पूजा करनेसे ईश्वरका अनुभव होगा।

प्रातःकाल जप, ध्यान, प्रार्थना करनेसे परमात्मा तुम्हें सारा दिन पापकर्मोंसे बचायेंगे। प्रातःकालमें हृदय थोड़ा-सा पिघलने पर सारा दिन आनंदसे बीत जाएगा। यदि कुछ और न बन पाए तो आंखें बंद करके नंदमहोत्सवका ध्यान धरोगे तो भी मन शुद्ध होगा। वृन्दावनमें बहुत-से सन्त नंदमहोत्सवके अठारह श्लोकोंका नित्य पाठ करते हैं।

नवमीके दिन महोत्सव हुआ। श्रावण बदी द्वादशीके दिन भगवान् शंकर गोकुलमें पधारे।

शंकर योगीश्वर हैं और कृष्ण योगेश्वर। योगीश्वर और योगेश्वरका मिलन हुआ। भगवान् शंकर निवृत्तिधर्मका आदर्श दिखाते हैं तो श्रीकृष्ण प्रवृत्तिधर्मका। बाहरसे प्रवृत्त और भीतरसे निवृत्त। सभी प्रवृत्ति करते हैं किंतु किसी भी प्रवृत्तिमें आसक्ति नहीं है। प्रवृत्ति करते तो हैं किंतु निवृत्तिकी ही भाँति।

भगवान् शंकर कहते हैं कि जिसे ब्रह्मानन्दका आस्वाद लेना है, उसे थोड़ी-बहुत निवृत्ति तो लेनी ही पड़ेगी।

जो चाय-बीड़ी जैसी मामूली वस्तुका त्याग नहीं कर पाता है, वह मोह, माया, काम कैसे छोड़ पाएगा ? जिसे भजनानन्द चाहिए उसे विषयानन्दको छोड़ना ही होगा।

शिवजी किसी गाँवमें अधिक समय नहीं रहते। वे श्मशानमें ही वास करते हैं। वे कहते हैं कि ध्यानानन्द-भजनानन्द पाना है तो प्रवृत्ति कम करते जाओ।

एक गृहस्थने अपनी एक कन्या एक किसानको दी थी और एक कन्या एक कुम्हारको। एक बार उसने किसानके घर आकर अपनी पुत्रीसे कुशल-मङ्गल पूछा। कन्याने कहा, बारिश नहीं आ रही है। यदि बारिश आ जाए तो सब कुछ ठीक हो जाए। वह गृहस्थ वहाँसे उस कुम्हारके घर आया और अपनी वहाँ रहती हुई कन्यासे हाल-चाल पूछने लगा तो इस कन्याने कहा, मिट्टीके बहुत-से बर्तन बना लिए हैं और अब भट्ठीमें पकाना है। मैं चाहती हूँ कि बारिश आए ही नहीं।

यह कथा सभीकी है। जीव पिता है और प्रवृत्ति-निवृत्ति दो पुत्रियाँ। ये दो कन्यायें एक साथ नहीं रह सकती। साथ रहने जायेंगी तो दुःखी हो जायेंगी। निवृत्तिका आनन्द लेना है तो प्रवृत्तिका मानसिक त्याग करो। जब तक शारीरिक शक्ति है, प्रवृत्तिका विवेकपूर्वक त्याग करते जाओ। वैसे तो रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बढ़ जाने पर डाक्टरके कहने पर सेठ आराम करते हैं किंतु वह सच्ची निवृत्ति नहीं है।

सभी प्रवृत्तियाँ एक साथ छोड़ देना असम्भव है किंतु प्रवृत्तियोंका ऐसा आयोजन करो कि प्रभुसेवाके लिए पर्याप्त समय मिलता रहे।

वेदांतका अधिकार विरक्तको है, विलासीको नहीं। बातें तो ब्रह्मज्ञानकी करें किंतु प्रेम धन-सम्पत्ति, नारी, जड़ पदार्थोंसे करे तो वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी नहीं है। जगत् मिथ्या है, ऐसा बोलने मात्रमें नहीं, अनुभव करनेसे लाभ होता है। व्यवहार मिथ्या है, ऐसा मानकर व्यवहार करो। मानवको यह भान ही नहीं रहता है कि धन-सम्पत्तिकी दौड़में वह ईश्वरको भूल रहा है।

भगवान् शंकर श्रावणमासके कृष्णपक्षकी द्वादशीके दिन श्रीकृष्णके दर्शन करने आये। योगीश्वर और योगेश्वरका मिलन हुआ। शंकर अकेले ही आये।

भक्तिमें यदि सङ्ग अच्छा न होगा तो भक्ति-कार्यमें विक्षेप होगा। भजन और दर्शन तो अकेले ही किया जाय। औरोंको अपने साथ रखनेसे हम रजोगुणी हो जाते हैं।

कई लोग भजन या दर्शन करनेके लिए औरोंको भी बुलाने जाते हैं। सत्कर्मके लिए औरोंको प्रेरणा देना वैसे तो बड़ी अच्छी बात है किंतु साथ हो लेनेपर रास्तेमें भली-बुरी बातें भी हो जाती हैं जो ठीक नहीं है।

भजन और दर्शन एकचित्तसे करो। दर्शनके बाद मन्दिरके बरामदेमें थोड़ी देर बैठनेका यही प्रयोजन है कि हमने भगवान्के जिस स्वरूपका दर्शन किया है, उसे दिलमें उतार लें कि जिससे अगली सुबह तक वह मनमें बना रहे।

कई लोग ऐसे हैं, जिनसे दर्शनके बाद यदि पूछा जाय कि आज ठाकुरजीका शृङ्गार क्या था, वस्त्रपरिधान कौन-सा था तो वे सिर खुजलायेंगे। दर्शनके बाद यदि ठाकुरजीको मनमें बसाकर घर ले जाया जाय, तभी वह दर्शन सार्थक है। अधिकतर लोग भगवान्को मन्दिरमें ही छोड़कर अपने-अपने बँगले या दुकान पर चले जाते हैं।

ईश्वरके सिवाय अन्य किसीका भी संग न करो। जीव अभिमानी और विश्वासघाती है।

सन्तोंकी दृष्टि हमेशा प्रभुके किसी-न-किसी रूपमें अटकी रहती है। बाह्य दृष्टि तो हमेशा झुकी हुई ही होती है।

भगवान् शंकरकी दृष्टि भी ब्रह्ममें ही स्थिर थी।

शंकरके दो विशिष्ट गण थे—शृङ्गी और भृङ्गी। वे दोनों भी शंकरके साथ-साथ चलनेकी हठ करने लगे। वे कहने लगे कि यदि उन्हें साथ नहीं ले जाएँगे तो वे सभीको बता देंगे कि यह कोई साधु नहीं, भगवान् शंकर हैं।

शंकरने कहा, मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम्हें साथ ले चलूंगा तो दर्शन—ध्यानमें विक्षेप होगा।

आज आये सदाशिव गोकुलमें। कई महात्माओंने इस लीलाका बड़ा रसीला वर्णन किया है। जो आज तक निरञ्जन थे वे आज अपेक्षा वाले बन गए।

यदि प्रभुने तुम्हें सम्पत्ति दी हो तो संकल्प करो कि हर रोज सुपात्र साधु-सन्तों और गरीबोंको भोजन कराओगे। यशोदाजीका नियम था कि सुपात्रोंको रोज भिक्षा दी जाय।

शिवजीका आगमन हुआ। लोग कहने लगे कि यह साधु तो शिवजी-सा लगता है। शिवजी अपने तेजको आखिर कबतक छिपा सकते हैं?

शिवजीके पास दासी आई और कहने लगी, महाराज, यशोदाजीने यह भिक्षा भेजी है। आप इसे स्वीकार करें और लालाको आशीर्वाद दें।

शिवजी—मैं भिक्षा नहीं लूंगा। मुझे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। मुझे बालकृष्ण-का दर्शन करना है।

दासीने यशोदाको समाचार पहुंचाया कि साधु महाराज और कुछ लेना नहीं चाहते। वे तो केवल लालाके दर्शनके लिए ही इतनी दूर तक आये हैं।

सन्तकी परीक्षा वेशभूषा या जाति-पाँतिसे नहीं, उसकी आँखों और मनोवृत्तिसे की जाती है। ब्रह्मज्ञान सुलभ है किंतु ब्रह्मद्रष्टा, प्रत्येकमें ब्रह्मके दर्शन करनेवाला सन्त दुर्लभ है।

यशोदाने खिड़कीसे झाँककर महाराजको देखा और कहा—महाराज, यदि भिक्षा कम हो तो मैं कुछ और देनेको तैयार हूँ किंतु मैं लालाको बाहर नहीं लाऊँगी। तुम्हारे गलेमें सर्प है, जिसे देखकर मेरा लाला डर जाएगा।

शिवजी—माता, तेरा कन्हैया तो 'कालको काल, ब्रह्मको ब्रह्म' है। वह न तो किसीसे डर सकता है और न उसे किसीकी कुदृष्टि लग सकती है। वह तो मुझे पहचानता भी है।

यशोदाजी—कैसी बात कर रहे हैं आप? मेरा लाला तो नन्हा-सा है। आप हठ न करें?

शिवजी—मैं तेरे लालाके दर्शन किये बिना यहाँसे हट नहीं सकता।

नन्दबाबाके गाँवके पास आज भी आशेश्वर महादेवका मन्दिर है। आज भी शिवजी वहाँ लालाके दर्शनकी आशा लगाये बैठे हैं। व्रज चौरासीकी प्रदक्षिणा कमसे-कम एक बार तो करनी ही चाहिए। व्रज चौरासी परिक्रमा महापुण्यदायी है। इससे जीवनके सारे पाप जल जाते हैं। व्रज तो लीलाभूमि है। वहाँ बैठकर ध्यान करोगे तो परमात्मा स्वयं लीला-रहस्य समझायेंगे।

इधर बाल कन्हैयाने जाना कि बाहर शिवजी पधारे हैं और माता उसे वहाँ नहीं ले जायेगी तो जोरोंसे रुदन शुरू कर दिया।

दासी यशोदासे कहने लगी—माताजी, उस साधुके होंठ हिल रहे हैं। मानों न मानों उसीने कुछ मन्त्र-प्रयोग किया है कि जिससे लाला रो रहा है। ऐसा साधु कभी देखनेमें नहीं आया है। मैं बालकृष्णको बाहर ले आऊँ और साधुसे आशीर्वाद माँगूँ और फिर उसने कन्हैयाका श्रृङ्गार कर दिया।

यशोदाने दासीसे कहा—उस महाराजसे कहना कि लालाको देखना किंतु टकटकी लगाकर मत देखना।

वृन्दावनके बाँकेबिहारीका स्वरूप दिव्य है। श्रीनाथजीका स्वरूप भी अद्भुत है।

जबतक स्वरूपासक्ति नहीं हो पाती, भक्ति हो नहीं सकती। लौकिक नामरूपके प्रति जैसी आसक्ति है, वैसी ही आसक्ति प्रभुके नाम-रूपसे हो जाय, वही भक्ति है।

बाँकेबिहारीके मन्दिरमें पर्दा होता है। पर्दा ही तो माया है। जीव ईश्वरका दर्शन करता है, तब बीचमें मायाका पर्दा आ जाता है। मन्दिरमें राधाजीका सेव्यस्वरूप है। बाँकेबिहारी दो मिनट राधाजीको और फिर जगत्को दर्शन देते हैं। चार आँखें मिलने पर ही दर्शनमें आनन्द आता है।

कन्हैया हँसता है। इस साधुने जादू किया है। महाराजकी नजरमें जादू है। यह साधारण साधु नहीं है।

दासी लालाको शिवजीके पास लाई। शिवजीने दर्शन करके प्रणाम किया। दर्शन करके आनन्द तो हुआ किंतु तृप्ति नहीं हो पाई। मुझे कन्हैयासे मिलना है। आनन्द अद्वैतमें है, द्वैतमें नहीं। मुझे अपने प्रभुसे मिलना है। श्रीकृष्णके साथ एक होना है। जबतक ईश्वरसे जीव थोड़ा-सा भी दूर होगा, उसके लिए भय बना रहेगा।

शिवजीने सोचा कि यदि बालकन्हैया मेरी गोदमें आ जाय तो बड़ा आनन्द हो जाय। शिवजी कहने लगे—तुम इस बालकके भविष्यके बारेमें पूछती हो। यदि उसे मेरी गोदमें दिया जाय तो मैं उसके हाथोंकी रेखा अच्छी तरहसे देख लूँ।

यशोदाजीने बालकृष्णको शिवजीकी गोदमें रख दिया। शिवजी समाधिमें डूब गए।

बातें अद्वैतमें नहीं हो पातीं, द्वैतमें ही होती रहती हैं। जब हरि और हर एक हो गये हों, वहाँ कौन क्या बोलेगा ?

शिवजीने यशोदाजीसे कहा—माता, तेरा पुत्र तो सम्राट् होनेवाला है।

शिवजीने तांडवनृत्य किया। अतिआनन्दकी अवस्थामें जीव नाचने लगता है। हाथमें आम्रफल आनेपर लोग नाचने लगते हैं तो इधर तो शिवजीके हाथोंमें बालकन्हैया आ गया है।

शिवजी नृत्यमें तन्मय हैं। वहाँ नन्दबाबा आए। भगवान् शंकरकी जयकार हो गई।

बालकृष्णको हृदयमें बसाकर शिवजी कैलास वापस लौटे।

त्रयोदशीके दिन नन्दजी मथुरा आये। चतुर्दशीके दिन पूतना आई।

नन्दबाबा प्रतिवर्ष कंसको कर देते थे। इस बार भी कर देनेका समय आ गया। नन्दबाबाने कहा, कन्हैयाको सँभालना।

परमात्मासे हमेशा सम्बन्ध बनाये रहो। सभीके रक्षककी रक्षा तो कौन करेगा किंतु उन्हें हृदयमें बिठलानेके बाद हमेशा सावधान रहना कि कहीं लौकिक भोगकी एषणा मनमें न घुस जाय और कोई एषणा मनमे आई नहीं कि हृदयमें-से भगवान् भाग निकलते हैं।

कन्हैया यदि हमेशाके लिए हृदय-गोकुलमें बस जाए तो बेड़ा पार हो जाए। हृदय-गोकुलमें श्रीकृष्णको आगमन होनेके बाद नन्द (जीव) को बाहर भटकना नहीं चाहिए।

नन्दबाबा कंसको कर देनेके लिए मथुरा आये। वे कंसकी राजसभामें आये और उन्होंने कंसको कर, सुवर्ण-थाल तथा पंचरत्न भेंट किए और समाचार भी दिया कि उनकी इस ढलती आयुमें उनके घर पुत्रका जन्म हुआ है।

कंस क्या जाने कि वह कन्हैया ही उसका काल है। उसको तो साश्चर्य आनन्द हुआ। उसने सोचा कि इस भेंटके परिमाणके अनुसार उस बच्चेको आशीर्वाद भी तो देना पड़ेगा। उसने बालकको आशीर्वाद भेजा कि बड़ा होकर वह राजा बने, उसकी जयकार हो, उसके शत्रुओंका शीघ्र ही विनाश हो। कंसने अनजाने ही कृष्णको जयकार की और आशीष दी।

शत्रु भी जिसे आशीर्वाद दें और वन्दन करे, वह तो ईश्वर ही होगा न?

भेंटके परिमाणसे आशीर्वाद देनेवाला कंस ही है।

नन्दबाबाने कहा—सारे व्रजवासियोंने मेरे लिए एकादशी आदि व्रत किये, जिसके फलस्वरूप मुझे पुत्र मिला है। नन्दबाबा यश औरोंको दे देते हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

नन्दजी वसुदेवसे मिलने गए। वसुदेवको बड़ा आनन्द हुआ। दोनोंने एक दूसरेका कुशल-मङ्गल पूछा।

किसी मित्रसे मिलन होनेपर अपने सुखकी बात न करो किंतु उसके दुःखकी बात जान कर उसे आश्वासन दो।

नन्दजी वसुदेवसे सुख-दुःखकी बात पूछने लगे। सुना है, आपके घर पुत्रीका जन्म हुआ था और कंस उसकी हत्या करने आया था?

वसुदेव—हाँ, यह बात सच है किंतु इसमें कंसका नहीं, मेरे कर्म ही का दोष है किंतु आपके घर जो बालक है, वह मेरा ही है।

नन्दबाबाने भोलेपनसे कह दिया, हाँ, वह आपका ही है।

वसुदेव मनमें कह रहे थे, कन्हैया मेरा ही है। मैं ही उसे आपके घर उस रातको छोड़ गया था किंतु नंदजी इस गूढार्थ-भरी बातको समझ नहीं पाए।

नंद (जीव) गोकुल छोड़ कर कहीं दूर जाता है तो वहाँ काम, मद, लोभ, मोह, मत्सर आदि राक्षस आ धमकते हैं। नंद, कृष्णको छोड़ कर कंसके पास जाते हैं तो गोकुलमें विपत्ति आती है, ऊधम मच जाता है।

नंदबाबाने सोचा कि कुछ खिलौने लेता जाऊँगा तो लालाको आनंद होगा।

कहीं बाहर जाना पड़े तो वहाँसे ठाकुरजीके लिए कोई अच्छी-सी वस्तु लेते आना। तुम्हारा प्रयास भक्तिमय बन जाएगा।

अब पूतनावधकी बात आ रही है।

योगमायाने आकाशवाणी द्वारा कंससे कहा—तेरे कालका जन्म हो चुका है तो कंस घबड़ा गया। उसने तुरंत जन्मे हुए सभी बच्चोंकी हत्या करनेका आदेश दिया और इसी हेतुसे उसने पूतनाको गोकुलकी ओर भेज दिया। वह चतुर्दशीकी सुबह गोकुल आई।

पूतका अर्थ है पवित्र। जो पूत नहीं हैं वह है पूतना।

पवित्र क्या नहीं है ? अज्ञान। सो पूतनाका अर्थ है अज्ञान, अविद्या और पवित्र है केवल ज्ञान। गीताजीमें कहा है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

भ. गी. ४-३८

इस संसारमें ज्ञानके सिवाय पवित्रकर्ता और कुछ नहीं है। ज्ञान-सा पवित्र कुछ भी नहीं है। ज्ञान धनार्जनका साधन नहीं है। आत्मस्वरूपका ज्ञान ही ज्ञान है।

ज्ञान पवित्र है और अज्ञान अपवित्र। अज्ञानसे वासनाका जन्म होता है। पूतना वासनाका ही स्वरूप है।

पूतना चतुर्दशीके दिन क्यों आई ? क्योंकि उसने चौदह ठिकानों पर वास किया था।

अविद्या-वासना चौदह स्थानोंमें बसती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये चौदह स्थान हैं वासना-अविद्या-पूतनाके बसनेके। इसी कारणसे वह चतुर्दशीके दिन आई।

रामायणमें भी हमने देखा है कि कैकेयीने रामके लिए चौदह वर्षके वनवासकी माँग की थी। इसका भी यही कारण है कि उन चौदह स्थानोंमें बसे हुए रावणको मारनेके लिए चौदह वर्ष तककी तपश्चर्याकी आवश्यकता है।

नीति और धर्मके मना करने पर भी यदि आँखें परस्त्रीके पीछे भागें तो मान लो कि अपनी आँखोंमें पूतना आ बसी है। स्त्रीको स्त्रीरूपमें नहीं, ब्रह्मरूपमें देखो। आँखोंमेंसे होता हुआ पाप मनमें दाखिल हो जाता है। आँखोंमें पूतना होगी तो काम मनमें भी बसेगा।

जगत्‌के किसी भी व्यक्तिको भगवद्भावसे देखनेमें कोई बुराई नहीं है बल्कि अच्छाई ही है किंतु किसी भी व्यक्तिको सांसारिक काम-भावसे देखोगे तो समझ लेना कि मनमें पूतना आ बसी है।

धर्म और नीति, जिस खाद्य पदार्थका आहार करनेको मना करें, वही खानेकी इच्छा होने लगे तो मान लो कि तुम्हारी जीभमें पूतना आ बसी है।

बीभत्स और अतिशय कामुक बातोंको सुननेकी इच्छा हुई तो मान लो कि पूतना कानों पर सवार हो गई है!

पूतना हरेक इन्द्रियमें बसी हुई है, जो बहुत सताती रहती है। सभी इन्द्रियोंके द्वार बंद कर दो कि जिससे पूतना अंदर प्रविष्ट ही न हो सके।

पूतना सज-धज कर, सुंदरीका रूप लेकर गोकुल आई।

तीन वर्षकी आयु तक बालक शिशु कहा जाता है। इस शिशुको मारनेके लिए पूतना आई है।

प्रश्न यह है कि पूतना शिशुको ही क्यों मारती है और शिशुवयकी आगेकी अवस्थावाले बालकोंको क्यों नहीं मारती?

जीवनकी चार अवस्थाएँ हैं—(१) जागृति (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति (४) तुर्यगा।

जागृत अवस्थामें पूतना आँखों पर सवार हो जाती है। आँखोंकी चंचलता मनको चंचल करती है। इस प्रकार जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थामें अज्ञान सताता है अर्थात् पूतना तीन वर्ष तकके शिशुको मारती है। इन तीन अवस्थाओंको छोड़ कर तुर्यगा अवस्थामें जीवका संबंध ब्रह्मसे होता है और तब पूतना सता नहीं सकती।

जो व्यक्ति तुर्यगा अवस्थामें प्रभुके साथ एक हो जाता है, उसे पूतना-अज्ञान मार नहीं सकता।

पूतना तीन वर्षके अंदरके बालकको मारती है, इस बातका अर्थ यह भी है कि जो सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें फँसा हुआ है, उसे वह मारती है। माया त्रिगुणात्मक है। इस मायामें फँसे हुए व्यक्तिको पूतना मारती है।

संसारके मोह-जालमें फँसे हुए सभी जन बालक ही तो हैं, शिशु ही तो हैं। इनको पूतना-अज्ञान मारता है किंतु सांसारिक मोहका त्याग करके जो ईश्वरके निर्गुण स्वरूपमें लीन हो गया है, गुणातीत हो गया है उसे पूतना मार नहीं सकती। गुणातीत अर्थात् प्रकृतिसे परे रहनेवाले व्यक्तिका पूतना कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती।

जब पूतना आई, उस समय गोकुलकी गायें वनमें चरने गई थीं और नंदजी मथुरा गए हुए थे। इस घटनाका सूचितार्थ क्या है?

गायोंका वनगमन अर्थात् इन्द्रियोंका विषय-वनमें गमन। इन्द्रियाँ इस विषय-वनमें घूम रही होंगी तो पूतना-वासना मनमें आ धमकेगी, अज्ञान, मन पर सवार हो जाएगा। जब इन्द्रियाँ विषयोंमें खो जाती हैं, बहिर्मुख हो जाती है, तब वासना आ जाती है।

इन्द्रियोंको प्रभुसेवाकी ओर मोड़ कर निरुद्ध करोगे तो पूतना-वासना सता नहीं पाएगी।

नंद अर्थात् जीव। जीव जब हृदय-गोकुलको छोड़ कर मथुरा अर्थात् देहसुख, देहदृष्टिमें खो जाय, तब हृदय-गोकुलमें पूतना-अज्ञान बस जाते हैं।

नन्द अर्थात् जीव, श्रीकृष्णको छोड़कर मथुरा जाय अर्थात् देहसुखमें फँस जाय तभी वासना आ धमकती है।

नन्द अपने आवासमें नहीं होता है, तभी पूतना आती है।

पवित्र शरीर (मथुरा) में पुण्यशाली हृदय ही गोकुल है। नन्द जीवात्मा है।

नन्द (जीवात्मा) परमानन्द परमात्मा श्रीकृष्णसे विमुख होकर कंस (काम-कलह) से मिलने जाय और गायें (इन्द्रियां) वन (विषयों) की ओर दौड़ जाएँ, तभी पूतना (अविद्या) आ जाती है।

पूतना श्रृंगार करके आई है। अविद्या अपने साथ कई दोषोंको अपने साथ लेकर आती है।

अविद्या अपने साथ पांच दोषोंको ले आती है। वे पंचदोष इस प्रकार हैं—

(१) देहाध्यास (२) इन्द्रियाध्यास
(३) प्राणाध्यास (४) अन्तःकरणाध्यास
(५) स्वरूप-विस्मृति (विवेक-भार गवाँना)

पूतनाका स्वरूप देखकर यशोदाआदि धोखेमें आ गए। पूतनाकी वेणी देखकर देहाध्यास हुआ, रूप देखकर इन्द्रियाध्यास हुआ। अतः स्वरूपकी विस्मृति हो गई। फलतः उसको किसीने नहीं रोका। वह सीधी नन्दबाबाके घरमें घुस गई।

पूतनाको देखते ही कन्हैयाने आँखें मूंद लीं। पूतनाने उसको अपनी गोदमें ले लिया। पूतना ऊपर-ऊपरसे तो बड़ा अच्छा व्यवहार कर रही थी किंतु उसके हृदयमें कुटिलताका विष भरा हुआ था। पूतनाने अपने स्तनों पर भी विष लगाया था।

संसारसुखका उपभोग करनेके लिए मनुष्य भी अपनी आत्मा पर वासनाका विष लगा लेता है।

पूतनाने लालाको गोदमें बिठला कर उसके मुंहमें अपना विषसे सना हुआ स्तन दे दिया। कन्हैयाने तो दूध पीना शुरू कर दिया और उसने इस प्रकार दूध पीना शुरू किया कि पूतना वेदनासे भारी क्रन्दन करने लगी किंतु कन्हैया तो दूध पीता ही रहा और पूतना धीरे-धीरे निष्प्राण हो गई।

सौंदर्यको देखकर मनुष्य मात्र लुब्ध हो जाता है और भान भूल जाता है। सभी व्रजवासी भी पूतनाके बनाव-सिंगार पर मोहित हो गए थे और उसको किसीने रोका नहीं था।

श्रीमद् शंकराचार्यने शत श्लोकीमें कहा है—लोग त्वचाकी, रूपरङ्गकी तो बड़ी मीमांसा करते हैं किंतु आत्माकी मीमांसा तो करते ही नहीं हैं। जो व्यक्ति चमड़ीका चिंतन करता रहता है, वह अगले जन्ममें चमार बनता है। सो शरीरके श्रृङ्गारमें समय मत गवाँओ।

जिसका शरीर तो सुन्दर है किंतु हृदय विषसे भरा हुआ है, वही पूतना है। पूतना बाहरसे तो बड़ी सुन्दर थी किंतु उसका मन बहुत मैला था। जिसके वस्त्र तो सुन्दर हैं किंतु मन अस्वच्छ है, वह पूतना ही है।

जिसकी आकृति तो अच्छी है किंतु कृति बुरी है, वही पूतना है ,

चारित्र्यकी जाँच-पड़ताल किये बिना किसीका पानी तक न पिया जाए। चाहे बर्तन-प्याले चमचमाते क्यों न हों, किंतु उसका मन मैला हो सकता है। बड़े-बड़े तपस्वी भी सौन्दर्यके मोहजालमें फँस चुके हैं।

आमना-सामना हो जाने पर प्रशंसा करे किंतु उसकी अनुपस्थितिमें निंदा करे, वह भी पूतना है। जो भी अच्छा-बुरा कहना है, वह उसके सामने ही कह देना चाहिए।

जीवका स्वभाव उस पूतना जैसा ही है। अपनी आत्मा पर अज्ञान-अविद्याका आवरण लगाकर वह विषयानन्दमें डूब जाता है।

किसीके बाह्य रूपरङ्ग, बनाव-सिङ्गारसे मोहित होना नहीं चाहिए। जो बाहरसे सुन्दर हो, वह अन्दरसे भी सुन्दर ही होगा, ऐसा मान लेना मूर्खता है। पूतना दुष्ट थी, फिर भी व्रजवासी उसके रूपरङ्गके कारण धोखा खा गए थे।

वासना उभर आने पर जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। पूतना-अज्ञानके कारण ही स्वरूप-विस्मृति हो जाती है।

पूतनाको देखकर व्रजवासियोंको इन्द्रियाध्यास हुआ और स्वरूपकी विस्मृति भी हुई।

वासना-पूतनाका विनाश होने पर ही कृष्णमिलन हो पाता है। सो मानों, श्रीकृष्ण वासनारूप पूतनाको मारकर शकुन करते हैं।

मनुष्य वासनाका दास है, अतः उसका पतन होता है।

वासनारूपी पूतनासे कभी आँखें न मिलाना। आंखोंको ईश्वरसे ही लगाए रहोगे तो वासना तुम्हारे हृदयमें कभी आ न पायेगी।

पूतनाको किसीने न रोका। सो वह अन्दर आ गई। जब वह अन्दर आई तो कन्हैयाने आंखें मूंद लीं।

साधारणतः पूतना आँखोंके द्वारा ही मनमें घुस जाती है और फिर निकलनेका नाम ही नहीं लेती है। आँखें बिगड़ी नहीं कि मन भी बिगड़ जाएगा सो आँखोंको हमेशा बचाये रखना।

दर्शनमें तभी आनन्द मिलता है कि जब भगवान् दृष्टि देते हैं अर्थात् आँख मिलाते हैं। पूतना मलीन हृदय लेकर कन्हैयाके पास गई तो भगवान्ने आँखें मिलाई ही नहीं, मूंद लीं।

भगवान् हमें यह दिखाना चाहते हैं कि पापीसे वे आँखें नहीं मिलाते, उसके सामने देखते तक नहीं हैं। भगवान् वस्त्र या बनाव-सिङ्गार नहीं, मन देखते हैं। बाहरसे सजीले किंतु मनके मैले व्यक्तिसे वे आँखें नहीं मिलाते हैं।

भगवान्से तो हमें यही प्रार्थना करनी है, नाथ, हम आपकी शरणमें आए हैं। मुझ पापीको भवसागर पार करा दीजिए।

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिनु तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी॥

और

सूर कहैं श्याम सुनो, शरण हैं तिहारे,
अबकी बार पार करो, नन्दके दुलारे ॥

किंतु जीव बड़ा अभिमानी है। वह ऐसी प्रार्थना करता ही नहीं है। जीव है तो खाली हाथोंवाला फिर भी वह अकड़ कर ही चलता है।

नहिं विद्या बल वचन चातुरी। ईश्वरकी कृपाके बिना मनुष्यके पास आ ही क्या सकता है ?

जीव भगवान्‌की शरण ले तो उसके सभी पाप दूर हो सकते हैं क्योंकि भगवान् ही ने तो वचन दिया है—

सनमुख होय जीव मोहि जबहीं।
जन्मकोटि अघ नाशहुँ तबहीं ॥

गीतामें भी कहा गया है—

न मे भक्तः प्रणश्यति।

जो मेरा हुआ है, उसका कभी कोई विनाश नहीं कर सकता।

शुद्ध प्रेममें तो औरोंको सुखी करनेकी ही भावना होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद्‌में चार सूत्र हैं—

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव ।
आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

एक महात्माने इन सूत्रोंमें एक ओर सूत्र भी जोड़ दिया है—

परस्परदेवो भव।

काल नहीं, कलेजा (मन) बिगड़ गया है, जिसके कारण कलियुग आया हुआ है।

मनुष्य यदि एक-दूसरेको देवरूप मानने लगे तो कलियुग सत्‌युग बन सकता है।

× × ×

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं,
चराचरात्माऽस निमीलिते क्षणः ॥

पूतनाको देखते ही कन्हैयाने अपनी आँखें क्यों मूँद लीं ? महात्माओंने कई कारण बताये हैं इसके।

(१) पूतना नारी थी। नारी अवध्य मानी गई है। पूतनाको देखकर भगवान् सोचते हैं कि इसे मारना तो पड़ेगा ही। स्त्रीकी हत्या करते हुए उन्हें संकोच हो रहा था सो उन्होंने आँखें मूँद लीं। सामने कोई पुरुष हो और वीरता दिखानी हो तो और बात है किंतु किसी स्त्रीको मारनेमें कौनसी वीरता है ?

(२) तो एक महात्माको वह कारण जँचता नहीं है। वे कहते हैं कि पूतना नारी तो थी किंतु वह राक्षसी थी। उसने कई बच्चोंकी हत्या की थी और यहाँ भी कन्हैयाकी हत्याके हेतु ही आई थी।

भगवान्के आँखें मूँदनेका कारण कुछ और ही है। उनकी आँखोंमें वैराग्य है। उन्होंने सोचा कि यदि वे पूतनासे आँखें मिलायेंगे तो उसको ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, वह जान जाएगी कि यह तो ईश्वर हैं। मेरे ईश्वरत्वका उसे ज्ञान हो जाने पर मैं जो लीला करना चाहता हूँ, वह कर नहीं पाऊँगा।

ऐश्वर्यका ज्ञान लीलामें बाधा-रूप है।

यदि पूतना जान गई कि यह तो ईश्वर हैं तो वह दूध नहीं पिलाएगी।

कृपा करते हुए भगवान् यदि किसीसे आँखें मिला दें तो उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

खुदा नजर दे तो सब सूरत खुदाकी है ।।

भगवान्ने अर्जुनसे कहा था—अर्जुन, मैं जिस पर कृपा करता हूँ, उसे मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है।

यदि मैं पूतना पर दृष्टि करूँगा तो उसे ज्ञान हो जाएगा कि यह कोई सामान्य बालक नहीं, कालके भी काल हैं। उसे ऐसा ज्ञान हो जाने पर मैं लीला नहीं कर पाऊँगा। यह मुझे सामान्य बालक ही मान कर मारने आई है, सो उसे अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान कराना ठीक नहीं है।

इस तरह, पूतनाको अज्ञानी रहने देनेके लिए ही भगवान्ने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं।

(३) एक महात्मा कहते हैं कि यह कारण भी ठीक नहीं है। दृष्टिमिलन होते ही पूतनाको ज्ञान हो जानेवाली बात ठीक नहीं है। दुर्योधनको ज्ञान हो पाया था क्या ?

पूतना विष लेकर आई तो लाला आँखें मूँदकर सोचने लगा कि इसे गोलोकमें भेजा जाय या वैकुण्ठमें।

(४) तो एक और महात्मा दूसरा कारण बताते हैं। अपने किसी-न-किसी पुण्यके बिना कोई भी जीव ईश्वरके समीप जा नहीं सकता। भगवान् आँखें मूँद कर यह देखने लगे कि इस पूतनाने किसी भी जन्ममें कोई पुण्य किया भी है या नहीं।

जिसके साथ बहुत प्रेम किया जाय, वह, वह सम्भव है, किसी छोटेसे कारणसे वैर मोल ले ले।

(५) एक महात्मा बताते हैं—कन्हैया सोच रहा था कि उसने तो माना था कि गोकुलके लोग उसे माखन-मिसरी खिलाएँगे किंतु यहाँ तो लोग माखन-मिसरी खिलानेके बदले विष पिलाना चाहते हैं और डरके मारे उसने आँखें बंद कर लीं।

(६) तो दूसरे महात्मा पूछते हैं—परमात्मा भी कभी डर सकते हैं क्या ? कन्हैयाने सोचा कि विष पीनेकी शिवजीको आदत है, मुझे तो विष पसंद ही नहीं है । सो उसने आँखें बंद करके भगवान् शंकरकी प्रार्थना की। आप विष पीनेको पधारें, मैं तो दूध ही पिऊँगा। भगवान शिवका ध्यान धरनेके हेतु ही कन्हैयाने आँखें मूंद ली थीं।

कन्हैया आँखें बंद करके, शिवजीको याद करके, विष पीनेके लिए बुला रहा है। शिवतत्त्वका आवाहन कर रहा है।

जब किसी देवको याद करना या बुलाना होता है तो आँखें बंद करके ही उसका ध्यान धरना पड़ता है।

(७) एक अन्य महात्मा कहते हैं, मुझे यह कारण योग्य नहीं लगता । क्या कृष्ण विषको पचा नहीं सकते ? वे तो कालके भी काल हैं।

कृष्णकी आँखें बंद कर लेनेका कारण और हो है । उनकी आँखोंमें सूर्य और चंद्रका वास है। महायोगी सूर्यमंडलको पार करके ब्रह्मलोकमें जाते हैं।

कृष्ण पूतनाको ब्रह्मलोकमें भेजने जा रहे हैं, यह देखकर सूर्य-चंद्रको (अर्थात् भगवान्के नेत्रोंको) ठीक नहीं लगा। अपने कृष्णको वह तो विषपान कराने आई है तो फिर उसको ब्रह्मगति क्यों दी जाय ? ऐसा सोच कर आँखोंने पलकें बंद कर लीं।

जीवको लक्ष्मीका उपभोग करनेका कोई अधिकार नहीं है। जीव, लक्ष्मीका उपयोग चाहे कर ले, उपभोग नहीं कर सकता। यदि वह उपभोग करनेका प्रयास करेगा तो चाँटा मिल जाएगा।

अच्छाई तो इसीमें है कि भगवान्को सर्वोत्तम वस्तुएँ अर्पित की जाएँ । स्वयं खानेसे संतोष नहीं मिलता, औरोंको खिलाने पर ही संतोष मिलेगा।

सूर्य-चंद्र (दोनों नेत्र) सोच रहे हैं कि सर्वोत्तम वस्तु अर्पण करनेकी अपेक्षा यह पूतना तो विष लेकर आई है। यही अच्छा होगा कि उसे सद्‌गति न मिलने पाए । ऐसा सोच कर सूर्य-चंद्ररूपी नेत्रोंने अपने प्रवेश-द्वार (पलकें) बंद कर लिए।

(८) एक अन्य महात्मा दूसरा ही कारण बताते हैं।

भगवान् सोच रहे थे कि जब इस विषदायिनी पूतनाको मैं मुक्ति देने जा रहा हूँ तो मुझे माखन-मिसरी खिलानेवाले व्रजवासियोंको मैं कौनसी गति दूँगा क्योंकि मुक्तिसे बढ़-कर देने योग्य अन्य कोई वस्तु मेरे पास है ही नहीं और इस प्रकार सोचमें डूबे हुए भगवान्ने आँखें मूँद लीं।

इस प्रकार ये महात्मा, मानों दशम स्कंधमें भगवान्की लीलामें पागल-से हो गए हैं। जीव गोस्वामी, जो कभी किसी राजाके दीवान थे, कृष्ण-प्रेममें पागल होकर लँगोटी-भर पहिन, फिरने लगे। सनातन गोस्वामी बंगालके जमींदार थे। दशम स्कंधका श्रवण होने पर वे कृष्ण-

प्रेममें पागल हो गए और ताड़पत्रकी लँगोटी पहन कर लीला-निकुंजमें राधेकृष्ण-राधेकृष्ण करते हुए घूमने लगे।

हमने देखा कि भगवान् रामचंद्रनेभी सूर्पणखासे आँखें मिलाई नहीं थी। रामायणकी सूर्पणखा और भागवतकी पूतना एक ही हैं। दोनों वासना ही हैं।

कन्हैया अब तो छः दिनका ही हुआ है। राधाजी अभी आई नहीं हैं। रामजन्ममें तो सीताजी साथ ही थीं सो उनको देखा था। सूर्पणखाको उत्तर दिया था किंतु इधर राधाजी तो अब तक आई नहीं हैं सो किसको देखूं ?

पूतना आँखोंके द्वारा ही मनमें आती है। सुंदर विषयोंको देखकर आँखें उनके पीछे भाग निकलती हैं। मन जानता है कि यह मेरा नहीं है, मुझे मिलनेवाला नहीं है फिर भी पाप करता है। पूतना—कामवासना पहले आँखोंमें आती है और फिर मनमें उतर जाती है।

पूतनाने यशोदासे कहा, मैं तुम्हारे बालकको दूध पिलाऊंगी तो वह हृष्टपुष्ट हो जाएगा। यशोदाने लालाको पलनेसे बाहर निकाला और पूतनाकी गोदमें दे दिया। पूतना मासी उसे लाड़-प्यार करने लगी। कन्हैया तो जानता ही है कि यह लाड़ करने नहीं, मारनेके लिए आई हुई है।

पूतनाने यशोदाजीसे कहा, तुम्हें घरमें यदि कुछ कामकाज करना है तो जा सकती हो।

भोली यशोदा घरके काममें लग गई। इधर पूतनाने लालाको दूध पिलाना शुरू कर दिया। कन्हैया तो दोनों हाथोंसे स्तनको पकड़कर बलपूर्वक दूध पीने लगा। कन्हैयाको तो दूधके साथ-साथ प्राण भी मानों पीना था। पूतना व्याकुल हो गई। वह रो-रोके कहने लगी, मुझे छोड़ दे कन्हैया, मुझे छोड़ दे।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी।

कन्हैयाने कहा—पूतना मासी, मेरी माताने तो पकड़ना ही सिखाया है, छोड़ना नहीं।

मुझे पकड़ना ही आता है, छोड़ना नहीं। मैं आज तुम्हें छोड़नेवाला नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारा उद्धार ही करूँगा।

भगवान्की मारमें भी प्यार हो है।

परम आश्चर्य हुआ है।

पूतनाने दो बार 'मुझे छोड़ दे' कहा। मानों वह इह-लोक और परलोकमेंसे अपने-आपको छुड़ाकर गोलोक धाममें ले जानेकी प्रार्थना कर रही थी। वह अहंता और ममतामेंसे छुड़ाकर कृतार्थ करनेको कह रही थी।

पूतना व्याकुल हो गई, अतः स्वरूपानुसंधान नहीं रहा। उसने राक्षसी-रूप धारण किया। वह आकाशमार्गसे कृष्णको उड़ा ले चली। तो कंसके बगीचेके एक वृक्ष पर कन्हैयाने पूतनाको गिरा दिया।

वह वृक्ष पर गिरी तो और भी कई वृक्ष टूट पड़े। पूतना और वृक्षोंके गिरनेसे एक बड़ा धमाका हुआ।

अविद्याके कारण षड्‌विकार उत्पन्न होते हैं।

राक्षसीके वक्षःस्थल पर कन्हैया विराजमान था। धमाका सुन कर गोपियाँ दौड़ती हुई आईं। यशोदाको कोसने लगीं। हमने कितनी मिन्नतें मानी थीं, तब कहीं तुम्हें पुत्र हुआ और तुम्हें तो इसकी कोई कदर-कीमत ही नहीं है।

यशोदाने गोपियोंका उलाहना सुनकर आँखें नीची कर लीं। उन्होंने कहा, यह मेरा पहला ही बालक है। मुझे बालकके लालन-पालनका अनुभव नहीं है, सो भूल हो जाती है। अब आपका कहना मानूँगी।

गोपियोंने कहा, किसी अनजानी पराई स्त्रीको अपना बालक कभी न देना चाहिए। होना था, सो हो गया। अब हम घर लौटें और कन्हैया की नजर उतारें।

लालाको गायें बड़ी प्यारी हैं। एक गंगी नामकी गाय तो लालाकी झाँकी पाए बिना कभी पानी तक पीती नहीं थीं। घास भी नहीं खाती थी। जब गोपाल उसे मनाते हुए थक जाते तो यशोदाके पास आते थे और कहते थे, माताजी, गौशालामें कन्हैयाको ले जाना है। लालाके दर्शन होनेके बाद गंगी घास खा लेती और पानी पी लेती।

अनशन (उपवास) करनेसे शरीर हल्का-फुल्का हो जाता है और मनमें सात्त्विक भाव जगता है। विधिपूर्वक उपवास करनेसे पाप जल जाते हैं।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जब हजारों वर्ष तपश्चर्या करनेके बाद भी प्रभुके दर्शन पा नहीं सके तो गायोंका जन्म लेकर गोकुलमें आ बसे। उनकी हजारों वर्षकी तपश्चर्या भी उनका अभिमान और वासना जला नहीं पाई थी। सो उन्होंने सोचा कि गोकुलमें गायोंका अवतार लेकर, अपना काम, निष्काम कृष्णको अर्पित कर देंगे और हम निष्काम हो जाएँगे।

गोपियाँ लालाको लेकर गौशालामें आईं और गंगीकी पूँछ हाथमें लेकर लालाके शरीर पर, सिरसे पाँव तक, तीन बार फेर दी। मेरे लालाको यदि किसीकी नजर लगी हो तो इस गंगीकी पूँछमें चली जाय।

गोपियाँ तो मानो, प्रेमकी ध्वजा हैं। अपने कन्हैयाको यदि कुछ होना है, तो वह उसे नहीं, हमींको हो जाय। इनका प्रेम विशुद्ध है। लालाको राक्षसीका स्पर्श हुआ, वह ठीक नहीं हुआ। कहीं कुछ अनिष्ट हो गया होता तो? इस बार तो हमारा लाला बच गया।

अब लालाको स्नान करा लें। बालकृष्णको राक्षसीकी कुदृष्टिसे कुछ हो न जाय, ऐसा सोचकर गोपियोंने कन्हैयाको गोमूत्रसे स्नान कराया।

भागवतमें लिखा गया है—

गौमूत्रेण स्नान यत्वा।

बाजारी साबुनसे नहीं, गौमूत्रसे स्नान कराया गया।

जीवनको सादगीपूर्ण बनाओ।

गोमूत्रका पान करनेसे और उससे स्नान करनेसें शरीर निरोगी होता है। गौमूत्र बड़ा गुणकारी है। यह अनुभव-सिद्ध बात है।

गौमूत्रका पान करनेसे न केवल शरीर, बल्कि मन भी शुद्ध होता है। गौमूत्रको महीन कपड़ेसे १०८ वार छानकर पीनेसे मनका मैल दूर होता है, मनके पाप दूर होते हैं और मन शुद्ध होता है। यह प्रयोग छः मास तक किया जाय। गौमूत्रपानके इस प्रयोगसे स्वभावमें बड़ा परिवर्तन हो जाएगा। गौमूत्रमें दिव्य शक्ति है। वह स्वभावको सुधारता है। वह बुद्धिको भी निरोगी करता है।

गौका गोबर त्वचा पर मले जाने पर शरीरकी अनावश्यक गर्मीको खींच लेता है और त्वचाको मुलायम बनाता है।

जब तक मनुष्यका स्वभाव सुधर नहीं पाएगा, तब तक वह ज्ञान-मार्ग या भक्ति-मार्गमें प्रगति नहीं कर पाएगा।

आजकल तो जीवन ही ऐसा हो गया है कि मनुष्यका समय, संपत्ति और शक्ति, फैशन-व्यसनमें ही खर्च हो जाती हैं। व्यसन और फैशनमें ही जो अपनी सारी शक्तिका व्यय करता रहता है, वह ज्ञान और भक्ति मार्गमें आगे बढ़ नहीं पाता।

कन्हैयाको पहले गौमूत्रसे और फिर उष्ण जलसे नहलाया गया। वह तो बड़े मजेमें था। ऋषिरूपा गोपियाँ कन्हैयाको घेरकर बैठी हुई थीं।

एक गोपी कहती है, अहा, कितनी सुंदर हैं आँखें हमारे लालाकी! तो दूसरीने कहा, इसके केश भी बड़े सुंदर हैं। तीसरीने कहा, आली, इसके चरणकमल तो देख, कितने सुंदर हैं। सारी गोपियाँ बालकृष्णके एक-एक अंगके सौंदर्यका पान करने लगीं।

ये ऋषिरूपा गोपियाँ तो वेदशास्त्र-संपन्ना थीं। वे स्तुति करने लगीं।

कन्हैया! अज भगवान् तेरे मंगलमय चरणोंकी, यज्ञपुरुष तेरी जंघाकी, अच्युत भगवान् तेरी कटिकी, भगवान् हयग्रीव तेरे पेटकी, भगवान् केशव तेरे हृदयकी, ईश भगवान् तेरे वक्षःस्थलकी, सूर्य तेरे कंठकी, भगवान् विष्णु तेरी भुजाकी, भगवान् वामन तेरे मुखारविंदकी और ईश्वर तेरे मस्तककी रक्षा करें।

मेरा कन्हैया जब खेलता हो, तब भगवान् गोविंद, सोया हो तब भगवान् माधव, चलता-फिरता हो तब भगवान् वैकुंठ और बैठा हो तब लक्ष्मीपति रक्षा करें।

छठे अध्यायके २२ से २९ श्लोकोंमें बालरक्षा स्तोत्र है।

गोपियाँ वैसे तो जानती ही नहीं थीं जिस भगवान्‌को वे प्रार्थना कर रही हैं वह तो यह कन्हैया ही है।

गोपियाँ अंतमें कहती हैं—भगवान् नारायणका नाम मेरे बालकृष्णकी सदासर्वदा रक्षा करे।

गोपियाँ बालकृष्णको थपथपाती हुई प्रार्थना कर रही हैं। वे यशोदासे कहती हैं, इसे दूध पिलाओ। यदि यह ठीक तरहसे दूध पिएगा तो हम मानेंगी कि अब यह डर नहीं रहा है। बालकृष्ण स्तनपान करने लगे तो गोपियाँ आनंदित हो गईं।

चतुर्दशीके दिन शामको नंदबाबा मथुरासे गोकुल वापस आए। इसी दिन पूतनाका अग्नि-संस्कार भी किया गया।

जब योगीको श्रीकृष्णके स्वरूपकी कल्पना करते हुए प्राण-त्याग करनेसे मुक्ति मिलती है, तब उनके साक्षात् दर्शन करनेवालेको सद्गतिकी प्राप्ति होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं। विषदायिनी पूतनाको भी अपनी माताकी ही भाँति उन्होंने सद्गति दी। ऐसा दयालु और कौन हो सकता है ?

यह पूतना, कृष्ण-मिलनमें बाधा उपस्थित करती रहती है। ईश्वर छः गुणवाले हैं। उन्होंने षड्दोषोंवाली पूतनाको छठे दिन ही मारा। पूतनाके दोष हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर।

भगवान्‌के छः सद्गुण हैं—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। भगवान्‌के प्रत्येक सद्गुणको अपने हृदयमें उतारनेवाला व्यक्ति दोषरहित हो जाता है।

भगवान्‌का नाम तो चिन्मय-धाम है। चिन्मय धाममें प्रवेश करना है। इस चिन्मय धाममें प्रवेश कैसे किया जा सकता है ?

जब वासनाका नाश होता है तभी चिन्मय धाममें प्रवेश प्राप्त होता है। इन्द्रियोंको श्रीकृष्णकी लीलामें नहला दो। इन्द्रियोंको परमात्माके सम्मुख करो।

गोपियाँ इन्द्रियोंसे मुझे निहार सकें, सुन सकें, मनमें रख सकें इसी हेतुसे यह गोकुल-लीला रची है।

भागवतमें इस पूतना-चरित्रके सिवाय और कोई बाललीलाकी फलश्रुति बताई नहीं गई है। इसका अर्थ यह है कि मात्र इस एक अज्ञान—काम-वासनाको पहचाना जाय तो भी कुछ कम नहीं है। अज्ञान दूर होने पर श्रीगोविंदसे प्रीति हो जाती है।

गोविंदे लभते रतिम्।

यह पूतना-मोक्ष तो भगवान्‌की अद्भुत बाललीला है। इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन करनेवालेको श्रीकृष्णके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। इस चरित्रके चिंतनकी आज्ञा दी गई है।

यशोदा बुद्धि है और नंद जीव।

बुद्धि और जीव दोनों ही यदि कृष्णके साथ रहें तो कोई विपत्ति नहीं आएगी।

बाललीलाओंकी एक रहस्यमय बात यह है कि नंद और यशोदा (जीव और बुद्धि) जब-जब गोकुलसे दूर होते थे, कोई-न-कोई संकट आ ही जाता था। इसका अर्थ यही हुआ कि जब भी जीव ईश्वरसे दूर जाता है, दुःखी हो जाता है।

यशोदा अर्थात् बुद्धि जब भी श्रीकृष्णसे परे हो जाती है और नंद अर्थात् जीव जब भी श्रीकृष्णको भूल जाता है, राक्षस आ धमकते हैं।

शरीर और इन्द्रियोंको व्यवहारिक कार्य तो करना ही है किंतु बुद्धि (यशोदा) श्रीकृष्णसे दूर होनी नहीं चाहिए।

वह पूतना कौन थी ?

राजा बलि और रानी विंध्यावलीकी पुत्रीका नाम था रत्नमाला। जब वामनजी बलिराजाके यज्ञमें भिक्षा माँगने आए थे, तब उनके स्वरूपको देख कर रत्नमालाके हृदयमें स्नेह

उमड़ आया था और उसके मनमें आया था कि कितना अच्छा होता अगर इस बालकको मैं पुत्र रूपसे पा सकती। मैं उसे पयपान कराके उसका लालन-पालन करके धन्य हो जाती।

वामनके तेजस्वी स्वरूपको देख कर रत्नमालाके हृदयमें पुत्र-स्नेह उमड़ आया था किंतु उन्होंने उसके पिताकी जो अवदशा की उसे देख कर शत्रु-भाव भी उमड़ आया और उसके मनमें वामनजीको मारनेकी भी इच्छा हो गई।

अब ये वात्सल्यभाव और शत्रुभाव—दोनोंको लेकर रत्नमाला पुनर्जन्ममें पूतना बन कर आई।

श्रीकृष्णकी लीला निरोध लीला है। जिसके मनका निरोध होता है, उसे मुक्ति मिलती है। जब तक मनमें वासना और विरोध होगा तब तक निरोध हो नहीं पाएगा। जब तक किसी भी वस्तुमें सूक्ष्म वासना भी रह गई होगी, मनका निरोध नहीं होगा और फलतः मुक्ति भी नहीं मिलेगी।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, श्रीकृष्णने जब शकटासुरका वध किया तब उनकी आयु एक सौ आठ दिनकी थी।

कृष्णके दर्शन किए बिना गोपियोंको चैन नहीं आता था। वे प्रातःकाल ही कन्हैयाका दर्शन करने आ जाती थीं।

यशोदाजीके पास बड़े सवेरे गोपियाँ आ गईं तो उन्होंने कहा, अरी बावरी सखियो क्या मेरे लालाको देखे बिना तुम्हें चैन नहीं आता है? वह तो सोया हुआ है। इतनी जल्दी क्यों आ गईं तुम सब? उसे देखना हो तो देख लो। किंतु, हाँ, वहाँ जोरोंसे बातें मत करना, नहीं तो वह जग जाएगा।

गोपियां कन्हैयाको देख कर आनंदविभोर हो गईं। एकने कहा, सोया हुआ कन्हैया कितना सुंदर दिखाई देता है! एकने कहा, लालाके केश कैसे घने सांवले हैं। दूसरीने कहा, उसकी उँगलियाँ कैसी कोमल हैं! तो एक गोपीने कहा, लालाके चरण ऐसे कोमल हैं कि पखारनेका मन होता है। एक गोपी लालाकी आँखोंकी बात करने लगी तो दूसरी अधरोष्ठकी लालिमाकी।

ये बातें गोपियाँ नहीं, भक्ति कर रही थी। गोपियाँ तो भक्ति-मार्गकी आचार्या हैं। भक्ति किस तरह की जाय, वह गोपियोंने ही दिखाया है। यदि तुम्हें भक्ति करनी है तो परमात्माके अंग-अंगका चिंतन करो।

कृष्णके सभी अंगोंमें दृष्टिको स्थिर करना भी भक्ति ही है। स्वरूपासक्तिके बिना भक्ति फलवती नहीं हो पाती। भगवानका स्वरूपचित्त हृदयमें उतारो। भगवान्‌का आकार मनमें जम जाता है तो दर्शनमें बड़ा आनंद आता है।

जब तक भगवान्‌के स्वरूपसे आसक्ति नहीं हो पाती तब तक संसारकी आसक्तिसे छुटकारा नहीं मिल पाता।

श्रीकृष्णने अपने सौंदर्य-तेजसे गोपियोंकी दृष्टिको और बाँसुरीके मधुर वादनसे कानोंको आकर्षित कर लिया था। गोपियाँ कृष्णकी ही बातें करती थीं, कथा सुनती थीं।

कृष्णलीलामें, कृष्णकथामें जगत्‌की विस्मृति हो जाती है। भगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति उनका भजन और सेवा करता है, उसके प्रति उन्हें बड़ा स्नेह हो आता है।

जब यादवोंका विनाश हुआ था, तब कृष्णकी आंखोंसे आँसूकी एक बूंद तक नहीं टपकी थी।

लालाके करवट बदलने पर अङ्ग-परिवर्तन नामका उत्सव मनाया जाय।

परमात्माको घरमें पधरानेके बाद हमेशा उत्सव करते रहोगे तो वे हमेशा तुम्हारे घरमें रहेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण तो उत्सव-प्रिय हैं। उत्सवके दिन मन, शक्ति और वाणीका सदुपयोग करो। भगवान्का स्मरण भी सारे दिन करते रहो। उत्सवके दिन प्रभु-सेवामें देहभान तक भुला देना चाहिए। इस दिन अपनी आँखोंसे प्रभुप्रेमकी व्याकुलतामें अगर दो बूंद आंसू भी न गिर सकें तो उत्सव मनाना व्यर्थ ही होगा।

उत्सवके दिन विद्वान्, वेदज्ञाता, सच्चरित्र ब्राह्मणका सम्मान करो। केवल रिश्तेदारोंको ही नहीं, गरीबोंको भी भोजन दो। गरीबोंको सन्तुष्ट करनेसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। सच्चे साधु-संन्यासीको भी भोजन कराना।

स्वयं भी भोगोपभोग करते रहनेके बदले जरूरत वालोंको भी कुछ-न-कुछ देकर पुण्य प्राप्त करो।

'उत्' का अर्थ है ईश्वर और 'सव' का अर्थ है प्राकटच। तो उत्सवका अर्थ हुआ ईश्वरका प्राकटच। जब ईश्वरका हमारे हृदयमें प्राकटच होता है. उत्सव ही है।

उत्सव मात्र लूलो (जीभ) के लाड-प्यारके लिए नहीं, परमात्माके साथ एक होनेके लिए किया जाय। उत्सव तो प्रभुके साथ तल्लीन होनेके लिए मनाना है।

यशोदाने अङ्गपरिवर्त्तन-उत्सव मनाना चाहा। उन्होंने सोचा —यह तो ठीक है कि मैं हर रोज ब्राह्मणोंकी पूजा करती हूँ किन्तु जिन गोप-गोपियोंके आशीर्वादसे पुत्र मिला है, उन्हींकी मैं आज पूजा करूँगी।

यशोदा ऐसा नहीं कहती हैं कि गरीबोंको दान करना है। प्रत्येक जीव ईश्वरका ही अंश है, ईश्वरका ही पुत्र है। किसी जीवको गरीब कहनेसे ईश्वर बुरा नहीं मानेंगे क्या?

नम्रतापूर्वक, दीनतापूर्वक, आँखें झुका कर दान किया जाय। लेनेवाला भी एक जीव है, उसके हृदयमें भी परमात्मा ही का वास है, ऐसा समझ कर दान दो। इसी कारणसे तो यशोदा दान करनेकी नहीं, पूजा करनेकी, सम्मान करनेकी बात करती हैं।

सहायता करना एक बात है और पूजा करना दूसरी बात है। दोनोंमें भावात्मक अंतर है।

कन्हैयाके प्राकटचके दिन यशोदाजी गोपियोंको उपहार देने गई थीं। तो उस दिन गोपियोंने कहा था, आज तो हमें कुछ लेना नहीं, कन्हैयाको देना चाहिए। उन्होंने उस दिन कुछ भी नहीं लिया था।

जहाँ लेनेकी इच्छा होती है, वहाँ मोह होता है और जहाँ देनेकी इच्छा होती है वहाँ प्रेम।

यशोदा कहती हैं. आज मुझे सभी व्रजवासियोंकी पूजा करनी है। उन्होंने सारे गांवको आमन्त्रण दिया। नन्दजीने भी कहा, बिना संकोच दे दो। जबसे कन्हैया घरमें आया है, खबर तक नहीं होती है कि घरमें कौन लक्ष्मी रख जाता है।

लक्ष्मीजी तब चली जाती हैं, जब मनुष्य उनका दुरुपयोग करने लगता है।

जीवनमें एक अवसर ऐसा भी आता है जब भाग्य अनुकूल होता है. भाग्योदय होता है। ऐसे समय बड़े प्रेमसे दान करना। निःसंकोच देते रहो। जो भी दोगे वह दुगुना होकर वापस आएगा और जब भाग्य प्रतिकूल होगा, तब सम्पत्तिको सँजोये रखनेका लाख प्रयत्न करोगे तो भी सब कुछ चला जाएगा।

भाग्य प्रतिकूल हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर भी दरिद्र हो गये थे और उन्हें वनमें भटकना पड़ा था। तो साधारण मनुष्यकी तो चर्चा ही कैसे करें? नलराजाको भी कभी सब कुछ गवाँ देना पड़ा था।

जो भी मिले सत्कर्मोंमें खर्च करते रहो। सुपात्रको दान देते रहो।

आज भाग्य अनुकूल था सो यशोदाजी दिल लगाकर दान करने लगीं। पीताम्बर, साड़ी और आभूषणका ढेर लुटा दिया।

यशोदाने सोचा कि कन्हैयाके सो जानेपर मैं अच्छी तरह दान दे सकूँगी। अगर वह जाग रहा हो तो मुझे उसे गोदमे लेकर बैठे रहना पड़ेगा और सेवक सम्मान करते रहेंगे। सभी दानकी अपेक्षा मान-दान श्रेष्ठ है। वे सोच रही थीं कि यदि कन्हैया जागता ही हो तो मैं सभी-का आदर कैसे कर पाऊँगी?

जब गरीबों और पवित्र ब्राह्मणोंका सम्मान किया जाता है तो परमात्माको बड़ा आनन्द होता है। ईश्वर जब किसीको सम्पत्ति देते हैं तो ऐसी भी आशा करते हैं कि वह दूसरों-का पालन-पोषण करे।

लालाने आँखें तो बन्द कर लीं किंतु वह अन्दरसे तो जाग ही रहा था। यदि मेरे सो जानेसे माताको आनन्द मिलता है तो मैं सो जाऊँ। भगवान्‌को नाटक करनेकी बड़ी आदत है। इसी कारणसे तो उनका एक नाम नटवर भी है। माताको दिखा रहा है कि वह सो गया है।

कृष्णके जागने और सोनेके विषयमें शांकरभाष्यमें कहा गया है – वैसे तो ईश्वर निष्क्रिय है किंतु जीव मायाके कारण क्रियाका आरोप करता है। ईश्वर क्रिया करता तो नहीं है किंतु मायाके कारण क्रियाका आरोप किया जाता है।

जब हम गाड़ीमें बैठ कर कहीं जाते हैं तो कहते हैं कि अमुक शहर आ गया किंतु हम सोचेंगे तो समझमें आ जाएगा कि न तो कोई शहर आता और न कोई शहर जाता है। गाड़ी ही हमें एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाती है।

इसी प्रकार ईश्वर कोई क्रिया स्वयं नहीं करते। वे तो लीला ही करते हैं। लीला निःस्वार्थ होनेके कारण आनन्दरूप होती है।

क्रिया और लीलामें अन्तर है। जिसके साथ कर्तृत्वका अभिमान और सुखी होनेकी इच्छा है, वह क्रिया है और जिसके साथ कर्तृत्वका अभिमान नहीं है तथा अन्यको सुखी करनेकी इच्छा है वह लीला है। जीव जो कुछ करता है, वह क्रिया है और ईश्वर जो कुछ करते हैं, वह सब लीला है।

यशोदाजीने सोचा कि मेरे यहाँ आज सारा गाँव उमड़ेगा सो लालाका पलना यदि बाहर गाड़ीके नीचे रख लूं तो घरमें ठीक-ठीक जगह बढ़ेगी। सभी गोपियाँ आनेवाली थीं। सो स्थानाभावके कारण यशोदाजीने कन्हैयाका पलना गाड़ीके नीचे रख दिया। उस गाड़ीमें दही-दूध आदि था।

यशोदा एक-एक करके सभी गोपियोंका आदर करने लगीं। गोपबालकोंको भी सुंदर कंठी देती थीं जिससे सभी मातायें प्रसन्न होती जाती थीं। गोपियाँ कन्हैयाको हार्दिकतासे आशीर्वाद देती जाती थीं।

बाल कृष्णलालकी जय।

सभी आए हुए व्रजवासियोंका आदर-सम्मान करती हुईं यशोदाजी आनदमें लीन हो गईं।

इधर बालकन्हैयाकी नींद उड़ गई। कहाँ है मेरी माता? वह उत्सव तो मेरा ही मना रही है जब कि मुझे यहाँ आँगनमें गाड़ीके नीचे रख छोड़ा है।

उत्सवके दिन ही भगवान्‌को भुला देना ठीक नहीं है।

यशोदाजीने उत्सवके दिन ही श्रीकृष्णको भुला दिया सो विपत्ति आ गई।

व्यवहारसे छुटकारा नहीं मिल पाता। इसे तो निभाना पड़ेगा ही। जब तक कुछ-न-कुछ अपेक्षा है, व्यवहार भी चलता रहेगा। व्यवहारको छोड़ना तो है ही नहीं और व्यवहार-पालन कोई अपराध भी नहीं है किंतु मात्र व्यवहार ही निभाए रखना, व्यवहारमय बन जाना, व्यवहारमें भगवान्‌को भी भूल जाना अपराध ही है। धंधा-व्यापार अपराध नहीं है किंतु उसीमें लीन हो कर भगवान्‌को भुला देना अपराध है।

व्यापारी दुकानमें भगवान्‌की छविकी पूजा करता है किंतु ग्राहकके साथ बातचीतके समय भगवान्‌को भूल जाता है। वह ग्राहकको ईश्वरकी उपस्थिति ही में ठगता है। वह ग्राहकको पाँच रुपयेकी वस्तु पच्चीस रुपयेमें बेचता है और फिर कहता है, तुम मेरे जाने-पहचाने हो सो मैं बिना नफा कमाये ही बेच रहा हूँ। लेनेवाला सोचता है कि यह दुकानदार पहचाना हुआ है सो मूल कीमतमें ही माल दे रहा है। ग्राहक बेचारा क्या जाने कि असली भाव (मूल कीमत) का अर्थ व्यापारी तो दूसरा ही कर रहा है। दूकानदारका मतलब है—'तुं पडवानो अने हुं तरवानो' अर्थात् तुम गिरोगे और मैं तर जाऊँगा।

हम सबका लक्ष्य है श्रीकृष्णमिलन। इस लक्ष्यको हमेशा ध्यानमें रखकर ही सारा व्यवहार निभाते चलो।

ज्ञानी-महात्मा भी व्यवहार तो करते ही हैं किंतु ईश्वरको वे कभी नहीं भुलाते।

गोपियोंको सम्मानित करनेमें यशोदाजी श्रीकृष्णको भूल गईं।

कई लोग ऐसे हैं जो उत्सवके समय ठाकुरजी ही को भूल जाते हैं। अरे, ठाकुरजीके निमित्त ही तो उत्सव है फिर उन्हें ही क्यों भूल जाते हो? व्यवहारका कारोबार करते-करते भी ठाकुरजीको निहारना चाहिए। घरके कामकाज करते समय भी दृष्टि तो ठाकुरजीसे ही लगी रहनी चाहिए।

जब कोई मेहमान हमारे घर पर आयें तो उनको प्रसन्न करनेके लिये हम उनसे बार-बार बातचीत करते हैं. अन्य सभी कामकाज करते समय भी हमारा ध्यान तो मेहमानसे ही लगा रहता है। तब यह तो ठाकुरजी हैं। उनके आगमन पर हमारा मन और ध्यान उन्हींके साथ ही लगा रहना चाहिए।

प्रभुसेवाका कोई अंत ही नहीं है। देह-विलय होने पर ही सेवाकी समाप्ति होती है। सत्कर्म करनेमें तो हमेशा असंतुष्ट ही रहो। जीते-जी सेवाकी समाप्ति करनेवाला व्यक्ति सच्चा वैष्णव नहीं है।

गोपियोंका सम्मान करनेमें यशोदाजीने लालाको भुला दिया तो उसे बुरा लगा। लालाने मजाक करनेकी सोची। वह रोने लगा किंतु माताको सुनाई ही नहीं देता था। वह हाथ-पांव हिलाता हुवा रोने लगा। रोते-रोते उसने देखा कि गाड़ी पर पूतनाका भाई शकटासुर आ बैठा है।

शकटासुर अपनी बहन पूतनाकी मृत्युका बदला लेनेके लिए आया था। कृष्णने तो सोच लिया कि यह शकटासुर भी कंसकी कठपुतली ही है।

लालाने गाड़ीको जोरसे एक लात लगा दी तो गाड़ी उलट गई, दूध-दही आदि सब कुछ जमीन पर बिखर गया और शकटासुर भी गाड़ीके नीचे दबकर मर गया।

यह ऐसा भान्जा है जो कंस मामाके सभी खिलौनोंको तोड़ फेंकता है।

गाड़ी उलट गई तो बड़ा धमाका हुआ। सभी दौड़े हुए आए। बालकोंने बताया कि लालाकी लातने इस गाड़ीको उलट दिया है।

इस प्रसंगमें भी एक रहस्य है। यदि तुम भी प्रभुको अपनी संसार-गाड़ीके नीचे रखोगे तो तुम्हारी गाड़ी भी वे उलट देंगे। मुख्य वस्तुको गाड़ीके ऊपर रखो और गौणको गाड़ीके नीचे।

जिसके जीवनमें प्रभुका स्थान गौण है उसकी संसार-गाड़ी उलट ही जाती है।

गृहस्थाश्रमकी एक गाड़ी है और पति-पत्नी उसके पहिए। इस गाड़ी पर श्रीकृष्णको पधराओ। जीवनरथके सारथी हैं श्रीकृष्ण। इस जीवनरथके अश्व हैं हमारी इन्द्रियाँ।

प्रभुसे प्रार्थना करो नाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। जिस प्रकार आपने अर्जुनके रथका संचालन किया था, उसी प्रकार आप मेरे जीवनरथके सारथी बनें और सन्मार्ग पर ले जायँ।

जिसके शरीररथका संचालन प्रभुके हाथोंमें नहीं है, उसका संचालन मन करता है और मन एक ऐसा सारथी है जो जीवनरथको पतनके गर्त्तमें गिरा देता है। यदि तुम्हारी गाड़ी परमात्माके हाथमें नहीं है, तो इन्द्रियाँ रूपी अश्व उसे पतनके गड्ढेमें गिरा देंगे।

अर्जुनकी जीत इसी कारणसे हुई थी कि उसने परमात्माको सारथी पद दिया था, मनको नहीं।

कुछ लोग मानते हैं कि आज छुट्टी है तो बस सारा दिन अच्छा अच्छा खायेंगे-पियेंगे और सोए रहेंगे। वह तो कुंभकर्ण-सी बातें हुईं। ऐसा कभी न किया जाय। रविवार तो वीर

होनेका वार है। रविवारके दिन तेल मिर्च-चटनी आदि खानेके बदले दूध और चावल खाना। सारा सप्ताह बहुत कुछ खाया है। सो छुट्टीके दिन तो सात्त्विक आहार ही किया जाय और दिन भर जपमाला फिरायी जायी। रविवारके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करो।

रविवारके दिन एक गृहस्थ कथाश्रवण करने चला तो उसका पुत्र रोने लगा। पत्नीने कहा, यह बच्चा जब रो रहा है तो तुम्हारा कथामें जाना ठीक नहीं है। उसे रोता हुआ छोड़ कर कथामें जाओगे तो कौन-सा पुण्य कमाओगे? तो उस गृहस्थने, सोचा, मैंने सुना है कि किसीके दिलको व्यथित करना अच्छा नहीं है। मैं यदि कथामें जाऊंगा तो मेरी पत्नीको दुःख होगा। उसने ऐसा सोच कर कथामें जानेकी बात छोड़ दी।

अच्छा होता, अगर वे सब घरमें ही रह कर विष्णु सहस्र नामका पाठ करते किंतु उन्हें याद आया कि अमुक फिल्मका यह अंतिम सप्ताह है। कथा तो रोज-रोज होती रहेगी किंतु यह फिल्म तो चली जाएगी और वे सब कथामें जानेके बदले फिल्ममें जा बैठे।

पति-पत्नीका संबंध केवल विलासिताके लिए नहीं, प्रभु-भजनके लिए भी है। गृहस्थके जीवनमें कामसुख नहीं, भागवत-सेवा ही मुख्य है। मनुष्यके जीवनमें भोगकी नहीं, भगवान्‌की ही प्रधानता होनी चाहिए। गाड़ी किसी टेढ़ेमेढ़े रास्ते पर जाते ही उलट जाती है। भगवान्‌को गाड़ीके नीचे नहीं, ऊपर ही बिठलाओ।

यशोदाजीने भगवान्‌को तो गाड़ीके नीचे रख दिया और दूध-दही-माखन आदि सांसारिक भोग-पदार्थ गाड़ीमें रखा। उन्होंने भगवान्‌को गौण स्थान दिया और सांसारिक भौतिक पदार्थोंको मुख्य। सो सारी गाड़ी ही उलट गई।

तुम्हारे जीवनमें कामसुख प्रधान बनेगा और भगवान् गौण तो तुम्हारा जीवनरथ उलट ही जाएगा।

भगवान्‌को गाड़ीके नीचे रखोगे तो शकटासुर गाड़ी पर सवार हो जाएगा।

काम, लोभ आदि ही तो शकटासुर हैं। दूध, दही, माखन आदि भोग-पदार्थके प्रतीक है। जिसके जीवनमें भौतिक पदार्थोंकी प्रधानता है, उसकी जीवनगाड़ी पर शकटासुर सवार हो जाता है।

दांपत्य जीवनमें धर्मका ही प्राधान्य होना चाहिए। पत्नीको कामपत्नी नहीं, धर्मपत्नी कहा गया है। प्राथमिकता धन और कामसुखको नहीं, धर्मको दी जाए।

जबसे हमने धनको ही सब कुछ मान लिया है तबसे जीवनमेंसे शांति गायब हो गई है। धनको मुख्यता देनेसे सदाचार चला गया है। धनकी अपेक्षा संयम और सदाचार ही अधिक सुखदायी हैं। धन, यदि मर्यादासे बाधित होगा तो शांति आएगी।

जीवनके चार पुरुषार्थ बताए गए हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनके क्रममें भी एक विशिष्ट तारतम्य है। धर्म और मोक्षके बीच है अर्थ और काम। अर्थ और कामकी प्राप्ति धर्म और मोक्षकी मर्यादामें रह कर ही की जाय। अर्थ और काम गौण हैं, धर्म और मोक्ष प्रधान। यदि धर्म और मोक्ष गौण हो जायेंगे तो जीवनरथ अधोगतिके गर्तमें धंस जाएगा।

जीवनमें लौकिक सुखोंका प्राधान्य हो जाएगा तो शकटासुर सवार हो जाएगा।

एक संतके मतानुसार, शकटासुर-वधकी लीलाके समय श्रीकृष्णकी वय एक सौ आठ दिनोंकी थी। जब आपके शिर पर शकटासुर सवार हो जाय, तब एक सौ आठ मोतियोंवाली माला लेकर भगवान्‌के नामका जप करो।

लौकिक व्यवहारको प्रधानता तथा श्रीकृष्णको गौणता देते ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शकटासुर आ धमकते हैं। जीवन में श्रीकृष्णको प्रधानता देनेसे शकटासुरका भय निर्मूल हो जाएगा

कुछ लोग कहते हैं कि कथाश्रवणके बिना ही यौवन गवाँ दिया और अब यह शकटासुर नीचे उतरनेका नाम ही नहीं लेता है।

श्रीकृष्ण शकटासुरका वध अवश्य करते हैं। जब तुम्हारे हृदय पर काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी शकटासुर सवार हो जायँ, तब माला लेकर नारायणका नाम-जप करने लगो।

मालाके साथ मैत्री होने पर शकटासुरको निरुपद्रवी होना पड़ेगा। मालाके साथ संबंध नहीं हो पाएगा तो शकटासुर सवार हो जाएगा। काम, क्रोध आदिका सामना करना है तो परमात्माका आश्रय लेना होगा।

अब आता है तृणावर्तवधका प्रसंग।

किसी एक दिवस यशोदाजी श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बिठलाकर दुलरा रही थीं। उस समय तृणावर्तको मारनेके लिए भगवान्‌ने अपना वजन बढ़ा दिया। यशोदाजी भारको न सह सकीं तो कन्हैयाको जमीन पर बिठला दिया और घरकाममें जुट गईं।

तृणावर्त ववंडरका रूप लेकर आया और श्रीकृष्णका हरण करके आकाशमें उड़ चला। भगवान्‌ने अपना वजन बढ़ा दिया और उन्होंने तृणावर्तकोपकड़ा। तृणावर्तके प्राणपखेरू उड़ गए।

तृणावत् जीवं आवर्यति स तृणावर्तः।

रजोगुणका चक्कर ही तृणावर्त है। काम और क्रोध हैं रजोगुणके पुत्र। रजोगुण मनमें आया नहीं कि मन चंचल हो जाता है। तुणावर्तरूपी आँधी मनमें आते ही वह चंचल हो जाता है। बुद्धि जब ईश्वरसे विमुख हो जाती है, तब तृणावर्त-रजोगुण मनमें घुस जाता है और उसे चंचल बना देता है।

यशोदाकी आँखोंमें धूलि जा घुसी।

जब सांसारिक सौंदर्यको निहारनेमें सुख मिलने लगे, तब मान लेना कि आँखोंमें तृणावर्त आ बैठा है और फिर भगवान् दर्शन नहीं देते।

कन्हैया धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। घुटनोंके बल चलता हुआ वह गौशालामें भी पहुँच जाता था। सभी गायें भी उसे पहिचानती थीं।

कई महान् ऋषि भी गायोंका अवतार लेकर गोकुलमें आ बसे थे। एक छोटा-सा बछड़ा था। वह भी छोटा था और कन्हैया भी छोटा ही था। कृष्ण उसे अपना दोस्त मानते थे। वह बछड़ा "हम्मा हम्मा" करता था तो लाला बोलता था मैया-मैया।

कन्हैया उस बछड़ेसे अलग होता ही नहीं था। गाय भी आनंदावेशमें बछड़ेको भूल कर कन्हैयाको चाटने लगती थी।

यशोदाको विश्वास होने लगा कि गायोंकी सेवा की, जिसके फलस्वरूप उनकी आशीषसे हमें पुत्र मिला है, जो गायोंकी सेवा करेगा। कन्हैया तो उन गायों और बछड़ोंके साथ ही खेलता रहता था। वह गायोंकी पूँछ पकड़ कर खड़ा होनेकी कोशिश करने लगा।

माता कहती थी, अरे कान्हा, बड़ा शरारती है तू। ये गाएँ तो तुझे मारेंगी। कन्हैयाका एक और नाम कायम हो गया—'वत्सपुच्छावलंबनम्'।

एक बार यशोदाजी लालाको स्तनपान करा रही थीं। उसका सुंदर मुख निहार रही थीं। माताको प्रेम देख कर कन्हैया जोरोंसे दूध पीने लगा। बालक यदि दूध बहुत पी जाय तो माताको चिंता होने लगती है कि कहीं बीमार न हो जाय अपना लाड़ला।

जब तक वैष्णवके हृदयमें प्रेम उमड़ने नहीं लगता है, तब तक प्रभु भूखे नहीं होते। उनकी प्रार्थना करो, नाथ मैं आपको तो क्या भोजन कराऊँ? आप सारे जगत्के अन्नदाता हैं। फिर भी मैंने जो थोड़ी-बहुत सामग्री बनाई है, आप स्वीकार करें।

कन्हैयाके अत्यधिक दुग्धपानसे यशोदा चिंता करने लगीं। तो कन्हैयाने कहा, माता, तेरा दूध मैं अकेला नहीं पी रहा। मेरे मुखमें समाया हुआ सारा विश्व, तेरे दूधका पान कर रहा है।

कन्हैयाने जँभाई लेनेके लिए मुँह खोला और यशोदाजीको समग्र ब्रह्माण्डका दर्शन कराया। कन्हैया, मातासे कहता है, तू अकेले मुझे नहीं, अनंत जीवोंको दूध पिला रही है। समग्र ब्रह्मांडको तू दुग्धपान करा रही है।

भगवान्ने सुदामाको अपार संपत्ति दी तो यमराजको चिंता हुई। उन्होंने भगवान्से कहा, सुदामाके भाग्यमें दारिद्र्यका योग है। उसके भाग्यमें संपत्तिका क्षय लिखा हुआ है। आपने इतना सारा ऐश्वर्य उसे देकर ठीक नहीं किया है। कर्ममर्यादा भंग होगी। कर्मानुसार ही सुख-दुःख दिये जाते हैं।

प्रभुने यमराजसे कहा, मैं वेदोक्त कर्ममर्यादा तोड़ना नहीं चाहता। जो मुझे भोजन कराता है, वह समस्त ब्रह्मांडको भोजन कराता है। एक मुट्ठी-भर तंदुल मुझे खिला कर सुदामाने सारे विश्वको भोजन कराया है।

जो श्रीकृष्णको भोजन कराता है, वह सारे विश्वको अन्नदान करता है और उसके नाम पुण्य जमा हो जाता है। भगवान् कर्ममर्यादाको कभी भंग नहीं करते हैं।

लालाने यशोदाजीसे कहा, माता, तू केवल मुझे ही नहीं, समस्त ब्रह्मांडको तृप्त कर रही है।

गर्गाचार्य, नामकरणविधि, नामकरण-संस्कार संपन्न करनेके हेतु आए।

संस्कारसे मन शुद्ध होता है। संस्कारसे दोष नष्ट होते हैं।

शास्त्रने सोलह संस्कारोंका आयोजन किया है। आजकल तो प्रायः सभी संस्कार भुलाए जा चुके हैं। हाँ, दो संस्कार बाकी रह गए हैं—विवाह और अग्निसंस्कार।

बालकका जन्म होने पर जातकर्म संस्कार किया जाता है किंतु अब तो बालकका जन्म प्रसूतिगृहमें होता है सो जातकर्म विधि तो कैसे हो पाएगी ! वहाँ मधुप्राशन-विधि कैसे हो पाती होगी ? डाक्टर न जाने क्या पिलाते होंगे । इसी कारणसे संस्कारोंका लोप हो रहा है, फलतः देश दुःखी हो रहा है ।

अन्नप्राशन, नामकरण, यज्ञोपवीत आदि सोलह संस्कार बतलाए गए हैं । जीवकी शुद्धिके लिए संस्कार आवश्यक हैं । आजकल सभी धार्मिक विधियोंको गौण मान लिया गया है । केवल लौकिक आचारोंको ही महत्व दिया जाने लगा है : ब्राह्मणसे कहा जाता है, महाराज, पूजा जरा जल्दी करा देना, सारे गाँवमें बारातको घुमाना जो है ।

गर्गाचार्यने कहा, यदि नामकरण संस्कार ठीक तरहसे करना है तो आधा दिन लग जाएगा । बाबा, तुम तो सारे गाँवको बुलाओगे । वे सब यहाँ आकर मुझसे जल्दी करनेको कहेंगे । तो विधि ठीक ढंगसे नहीं हो पाएगी ।

नंदजी—धार्मिक विधि तो ठीकसे होनी ही चाहिए । यदि आप चाहें तो मैं किसीको भी नहीं बुलाऊँगा ।

एकांतमें नाम-जप हो सकता है । 'एकांत' का भावार्थ है, एकमात्र ईश्वरमें ही सभी प्रवृत्तियोंका लय होना । मनको पूर्णतः एकाग्र करके ही नाम-जप करो ।

गर्गाचार्यको ज्योतिष-विद्याकी जाँच करनेकी बात सोची गई ।

श्रीकृष्णको रोहिणीकी गोदमें बिठलाया गया और बलरामको यशोदाजीकी गोदमें ।

गर्गाचार्यने कहा—नंदजी, रोहिणीकी गोदमें बैठा हुआ पुत्र तुम्हारा है । वह हमेशा रंग (वर्ण) बदलता आया है । इस बार इसने श्याम वर्ण धारण किया है । वह सभीके मनको आकर्षित करेगा और सभीको आनंद देगा । उसका नाम कृष्ण रखा जाय । यह बालक महाज्ञानी होगा । इसके जन्माक्षर बड़े अच्छे हैं । इसके पाँच ग्रह उच्चक्षेत्रमें हैं । आठ ग्रह अच्छे हैं, मात्र एक राहु ही बुरे स्थानमें हैं ।

नंदबाबा घबड़ा गए । राहु बुरे स्थानमें है । क्या होगा मेरे पुत्रको ?

गर्गाचार्य—वैसे डरनेकी बात कोई नहीं है । जिसके सप्तम स्थानमें, नीच क्षेत्रमें राहु हो, वह पुरुष कई स्त्रियोंका पति होता है ।

नंदजी—आपकी बातें सच हो सकती हैं । एक ब्राह्मणने मुझे आशीर्वाद दिया कि तेरा पुत्र सोलह हजार रानियोंका स्वामी होगा ।

गर्गाचार्य—बाबा, और तो मैं क्या कहूँ ? यह कन्हैया, नारायण जैसा ही है । नारायण मेरे इष्टदेव हैं । प्रेमके कारण पक्षपात हो जानेका डर रहता है ।

किसी समय चार व्यक्ति भोजन कर रहे थे । किसी स्त्रीने पूछा कि इनमेंसे दामाद कौन-सा होगा । एकने कहा, कि जो शर्मीला है, वही दामाद हो सकता है । तो दूसरीने कहा, वह जो अकड़ कर बैठा है, वही दामाद होगा । तीसरीने कहा, जब सासजी परोसने आएँगी, तब मालूम हो जाएगा । सासजी जब घी परोसने आई तो उन तीनों व्यक्तियोंमेंसे एकको अधिक घी परोसा । वह दामाद जो था ।

सनातन गोस्वामी कहते हैं, कि नारायणके समान श्रीकृष्ण हैं, ऐसा कहने पर तो नारायण श्रेष्ठ माने जाएँगे। सो ऐसा कहना चाहिए कि नारायणके समान श्रीकृष्ण नहीं, श्रीकृष्णके समान नारायण हैं। वृंदावनके साधु कहते हैं कि नारायणके समान नहीं किंतु नारायण श्रीकृष्ण जैसे हैं।

नारायणके समान कृष्ण हैं। इसका अर्थ होगा नारायण वरिष्ठ हैं। श्रीकृष्णके समान नारायण हैं, ऐसा कहनेसे नारायण नहीं, श्रीकृष्ण वरिष्ठ हो जाएँगे।

वैसे तो श्रीकृण और नारायणमें कोई अंतर है ही नहीं। ये सब बातें तो मधुर आग्रह मात्र हैं। नारायणमें साठ और मुरली-मनोहर श्रीकृष्णमें चौंसठ गुण बताए गए हैं अर्थात् नारायणकी अपेक्षा श्रीकृष्णमें चार गुण अधिक हैं। वे गुण इस प्रकार हैं—(१) रूप-माधुरी (२) लीलामाधुरी (३) वेणुमाधुरी (४) प्रियामाधुरी। श्रीकृष्णके ये चार गुण नारायणमें नहीं हैं।

नारायणके चार हाथ होनेके कारण वे कुछ कुरूप-से लगते हैं, अतः दो हाथोंवाले श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं।

वैकुंठवासी नारायण राजाकी भाँति अकड़ कर खड़े रहते हैं सो वे कुछ अभिमानी-से लगते हैं। वे हमारे साथ बोलते भी नहीं हैं। कन्हैयामें कोई अकड़ नहीं है। वह हम सबके साथ बोलता, खेलता, घूमता है। अतः हमारा कन्हैया ही श्रेष्ठ है।

अतिशय आतुरता होने पर परमात्मा दौड़ते हुए आते हैं।

गोकुलमें एक नववधू आई थी जो कन्हैयाके दर्शन पानेके लिए बड़ी आतुर थी किंतु उसकी सास उसे वहाँ जाने ही नहीं देती थी। आज जब वह जल भरने गई तो रास्तेमें श्रीकृष्णका ही चिंतन कर रही थी। बाँकी जुल्फोंवाला मनमोहन, मस्तक पर मोर-पंख होठों पर बाँसुरी, कानोंमें मकराकृति कुंडल और कटि पर पीतांबर धारण किए हुए था। वह छुमक-छुमक करता हुआ उस गोपीके पीछे हो लिया। बाल कन्हैयाने पीछेसे गोपीका आँचल पकड़ लिया। गोपीने देखा कि कन्हैया उसका आँचल पकड़े हुए खड़ा है। तीन बरसके उस कन्हैयाको गोपीने प्यारसे अपनी छातीसे लगा लिया।

लालाने भी उस गोपीको अपनी छोटी-छोटी बाँहोंमें भर लिया और कहने लगा, तू कितनी सुंदर है। लगता है, मैं ही तेरा स्वामी हूँ। रातके समय रासमें आना।

कन्हैया बड़ा वाणी-चतुर है।

कोई सामान्य पुरुष कभी राह चलती किसी स्त्रीको ऐसा कहता है कि वे दोनों एक दूसरेके हैं।

कन्हैया तो सभीका पिता है, पति है और संतान भी है।

जरा सोचो तो। ऐसा कोई और देव है भी जो राह चलती हुई किसी नारीके गलेमें अपनी बाँहोंका हार पहना सके। परस्त्रीसे तो सभी देव डरते हैं किंतु वैकुंठके नारायण तो मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और कन्हैया पुष्टि-पुरुषोत्तम है।

कन्हैयाकी जैसी लीला मनुष्य तो क्या कोई अन्य देव भी नहीं कर पाता। श्रीकृष्ण तो देवाधिदेव हैं।

एक सखी दही, दूध और माखन बेचने निकली है। कृष्णप्रेममें उसकी सुधबुध बिसर गई है। वह बोलना तो चाहती है दही लो, माखन लो किंतु उसके अंतरमें माधव छिपा है सो वह बोलने लगी, माधव लो, कोई माधव।

भोली गोपी हरिको बेचने चली। चौदह भुवनके नायकको मटकीमें लेकर चली। कृष्ण-प्रेममें ऐसी तो तन्मय हो गई थी कि उसे भान तक नहीं था कि वह क्या बोल रही थी।

लालाने सुना, माधव लो, कोई माधव लो। तो उसने सोचा, अरे वाह, यह तो मुझे ही बेचने चली है।

रास्तेमें श्रीकृष्ण प्रकट हुए और सखीसे कहने लगे—अरी दूधवाली, मैं गोकुलका राजा हूँ, जरा माखन तो दे जा।

प्रेमका बाहुल्य होने पर सतानेमें बड़ा मजा आता है। गोपीके हृदयमें प्रेम है। वह कन्हैयाको सताने लगी। अरे तू कैसे हो गया गोकुलका राजा? गोकुलके राजा तो हैं बलराम भैया। मैं तुझे नहीं, उन्हींको माखन दूँगी। न जाने नंदबाबा इस काले-कलूटे कन्हैयाको कहाँसे उठा लाए हैं! नंदबाबा तो गोरे हैं और तू काला। कहाँसे लाए हैं वे तुझे?

कन्हैयाने गोपीकी साड़ीका आँचल पकड़ लिया। गोपी कहने लगी, अरे लाला, छोड़ दे मेरी साड़ी। मेरे दूध, दही, माखन, मिट्टीमें सन जाएँगे और मेरी सास मेरी चमड़ी उधेड़ देगी?

गोपीने बलपूर्वक अपना आँचल छुड़ा लिया और आगे बढ़ने लगी। पीछे मुड़ कर देखा तो कन्हैया मुँह फुला कर बैठा हुआ था। गोपी वापस आकर मनाने लगी। कान्हा, माखन ले, मिसरी भी ले। चाहे सो दूँ। मेरी बड़ी भूल हुई। अब मान भी जा।

किंतु कन्हैया अब क्यों मान जाय? उसने कहा, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। कन्हैया न माना तो गोपी आगे बढ़ने लगी। तो पीछेसे कन्हैयाने पत्थर उठा कर ऐसा निशाना लगा कर मारा कि गोपीकी मटकी चूर-चूर हो गई।

ऐसी लीला श्रीकृष्णके सिवाय अन्य कोई भी देव नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण सबके पति जो हैं।

श्रीकृष्ण अब घर आकर चुपचाप माताकी गोदमें छिप गया। वह ऐसा शांत सयाना बैठा हुआ था कि मानो कुछ हुआ ही नहीं है। उस गोपीने यशोदाके पास आकर कन्हैयाकी शरारतकी शिकायत की। माताजी, तुम लालाको मुँह लगा रही हो किंतु वह बड़ा शरारती हो गया है। इसने मेरी गगरी फोड़ दी, मेरे कपड़े बिगाड़ दिये।

लाला कहने लगा, मैया, मुझे इससे बड़ा डर लगता है। इसके चले जानेके बाद मैं सारी बात बताऊँगा।

कन्हैया मैयासे कहने लगा—यह गोपी बड़ी कंजूस है। वह तीन-चार दिन पहलेका दूध-दही बेच रही थी। मैंने सोचा कि बिगड़ा हुआ दूध-दही बेचना ठीक नहीं है। यदि कोई गरीब इसे खाकर बीमार हो जाए तो? और ऐसा सोचकर मैंने उसकी मटकी फोड़ डाली। मैं आरोग्य-प्रचारक मंडलका प्रधान जो हूँ।

यशोदाजी गोपीको लताड़ने लगीं। अरी गोपी, बिगड़ा हुआ दही-दूध क्यों बेचती है री तू ?

कन्हैया हँसने लगा और गोपी भी। कन्हैया बोलनेमें बड़ा चतुर है।

कन्हैया मटकी फोड़ता है, फिर भी प्यारा लगता है। वह राहमें चलती किसी भी गोपीकी मटकी फोड़ सकता है। ऐसा अन्य कोई देव है जो रास्ते पर चलती हुई किसी नारी-को छेड़ सके ? और सब तो डरते हैं कि यदि किसी नारीको हाथ भी लग जाय तो थप्पड़ खाना पड़ेगा। हमारी पूजा कोई नहीं करेगा।

श्रीकृष्णकी लीलामाधुरी दिव्य है। उनका अनुकरण कोई और देव नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण-सा आचरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान् नारायण हाथमें शंख रखते हैं। शंख फूँकनेवाला देव श्रेष्ठ है या बाँसुरी बजानेवाला ?

अन्य देव तो हाथमें शस्त्रास्त्र लिए हुए हैं। किसीके हाथमें सुदर्शन है तो किसीके हाथमें धनुष बाण। किसीके हाथमें त्रिशूल है। मानो इन सबको संसारका डर है। कन्हैया हाथोंमें शस्त्र नहीं रखता। लालाके एक हाथमें बाँसुरी है और दूसरेमें मिसरी। शस्त्रधारी देव श्रेष्ठ हैं या कन्हैया ? हम तो कन्हैया को ही श्रेष्ठ कहेंगे।

लाला रोज बाँसुरी बजाता है। लालाकी बाँसुरी जिसने भी सुनी हो, संसारके प्रति उदास हो जाता है। बाँसुरीकी धुन सुनते ही राधेकृष्ण-राधेकृष्ण करने लगता है। श्रीकृष्णकी वेणुमाधुरी दिव्य है।

गोपी कहती है—

मुरली बजाय मेरो मन हरि लीन्हों।

एक गोपी प्रेम-भरा उलाहना देती है—

मुरहर ! रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।

हे मुरारे ! भोजन बनाते समय, कृपा करके, बाँसुरीकी तान मत छेड़ो। तुम्हारी मुरलीकी धुन सुनकर चूल्हेमें रखी हुई सूखी लकड़ियाँ रसमयी होकर रस बहाने लगती हैं सो अग्नि बुझ जाती है। अग्नि बुझनेसे मैं रसोई कैसे बना सकूँगी ?

लालाकी वंशीकी धुन जिसके भी कानोंमें जाती है, वह उनका सेवक बन जाता है। सो मैंने मान लिया है कि कन्हैया ही सर्वश्रेष्ठ है।

कन्हैयाकी रूपमाधुरीने भी अनेकोंको आकर्षित किया है। निर्गुण ब्रह्मके उपासक स्वामी मधुसूदन भी श्रीकृष्णकी मनोहर रूपमाधुरीके पीछे पागल हो गए थे। उन्होंने कहा है—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वराज्यसिंहासन लब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

अद्वैत मार्गके अनुयायीके द्वारा पूजनीय तथा स्वराज्य-रूपी सिंहासन पर प्रतिष्ठित होनेके अधिकारसे युक्त हमको, गोपियोंके पीछे-पीछे फिरनेवाले किसी शठने अपनी इच्छा न होने पर भी चरणोंका दास बना लिया है।

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीके पीछे कवि रसखान भी पागल हो गए थे। उन्होंने कहा है—

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधिको सुख, नंदकी गाय चराइ बिसारौं॥

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी दिव्य है। वे तो वैकुंठ-निवासी नारायणसे भी श्रेष्ठ हैं।

यशोदा गर्गाचार्यसे कहती हैं—महाराज, भोजनका समय हो गया है। पहले आप भोजन कर लीजिए; फिर आगे बात होती रहेगी।

गर्गाचार्य—मैं दूसरोंके द्वारा बनाई हुई रसोई खा नहीं सकता। अपना भोजन मैं अपने हाथोंसे ही बनाऊँगा। पहले मै यमुनासे जल ले आऊँ।

गर्गाचार्य यमुनामें स्नान करके जल भी ले आए। उनके इष्टदेव थे चतुर्भुज द्वारिकानाथ। गर्गाचार्यने अपने ठाकुरजीके लिए खीर बनानी चाही। भगवान्‌को खीर भोग लगाऊँगा और फिर प्रसाद लूंगा।

मात्र अपने ही लिए बनाकर खानेवाला अन्न नहीं, पाप खाता है। सो रसोई बनानी ही है तो ठाकुरजोके लिए बनाओ।

जब सेवामें उपयोग होगा, तभी संपत्ति सार्थक होगी। अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम प्रभुसे करो।

यशोदाने सोचा कि ये गर्गाचार्य, भगवान्‌को खीर चढ़ाए बिना खायेंगे ही नहीं। सो खीरको ठंडी करनेके लिए उन्होंने गर्गाचार्यको सोनेकी थाली दी। खीर ठंडी हुई तो गर्गाचार्यने तुलसीदल बिखरा कर भगवान्‌की स्तुति आरंभ की—

सशंखचक्रं सकिरीट कुंडलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थल कौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

हे नारायण! हे लक्ष्मीपति! हे वैकुंठपति! खीर आरोगिए।

कन्हैया कहने लगा—मैं ही लक्ष्मीपति और वैकुंठनाथ हूँ। गुरुजी शायद मुझे ही पुकार रहे हैं। अतः खाने के लिए मुझे जाना ही पड़ेगा और सोच कर वह खीर खानेके लिए भागा हुआ आ पहुँचा और खीर खाने लगा।

बारह बार माला फेरनेमें जितना समय लगे, उतने समय तक ठाकुरजोके सम्मुख थाल रखा जाय। लालाको मनाना तो पड़ता ही है न।

गर्गाचार्य बोल रहे हैं—ॐ नमः नारायणाय।

कन्हैया कहता था, महाराज, आँखें बंद ही रखना।

गर्गाचार्यने बारह बार माला फिरा कर आँखें खोलीं तो देखा कि लाला खीर खानेमें मग्न है। अरे, इस वैश्यके लड़केने तो मेरी खीरको छू लिया। अरी यशोदा, देख तो। तेरा लड़का मेरी खीर खा रहा है।

भागी हुई यशोदा आई। देखा तो कन्हैयाने आधी खीर उड़ा दी है और उसका मुँह खीरसे सना हुआ है।

यशोदा कन्हैयाको डाँटने लगीं। घरमें तुझे खानेको मिलता नहीं है क्या? महाराजकी खीर क्यों खाई तूने?

कन्हैया—तू मुझे डाँट रही है, किंतु मैं करूँ भी तो क्या? महाराजने ही तो मुझे खीर खानेको बुलाया था।

यशोदाजीने गर्गाचार्यसे पूछा—महाराज, क्या आपने इस लड़केको खीर खानेके लिए बुलाया था?

गर्गाचार्य—ना रे ना। मैंने वैकुंठवासी नारायणको बुलाया था।

कन्हैया—मैं ही तो हूँ वह वैकुंठवासी नारायण।

यशोदाजी—छोटे मुँह बड़ी बात क्यों करता है रे? तू कहाँका नारायण हो गया? वैकुंठके नारायणके तो चार हाथ हैं। हैं तेरे चार हाथ?

कन्हैया—माँ, यदि तू कहे तो मैं चतुर्भुज हो जाऊँ?

यशोदाने सोचा कि यदि इसने चतुर्भुजका रूप धारण कर दिया तो लोग मानेंगे कि यह लड़का यशोदाका नहीं है। कोई जादूगर है। सो उन्होंने कहा—नहीं, नहीं। चार हाथों-वाले नारायणकी अपेक्षा मेरा दो हाथोंवाला मुरलीधर ही अच्छा है, श्रेष्ठ है। तू जो है वही रहना।

फिर यशोदाजीने गर्गाचार्यसे कहा—यह नादान लड़का है। इसकी बातोंमें न आना। कृपा करके आप फिरसे खीर बना लीजिए।

गर्गाचार्य फिर स्नानके लिए यमुनाकी ओर चल दिए।

लाला यशोदाकी गोदमें बैठ कर कहने लगा, माता, मैं कोयलकी वाणी बोल सकता हूँ। और वह कुहू, कुहू, करने लगा। सभीको बड़ा आनंद हुआ।

कन्हैया जब आँगनमें खेलता है तो उसे देख कर मोर भी आनंदसे नाचने लगता है। कन्हैया मातासे कहता है, मैं भी मोरकी भाँति नाच सकता हूँ और वह ठुमक-ठुमक कर नाचने लगता है।

यशोदा—बेटा, तूने यह नाचना किससे सीखा है?

कन्हैया—माँ, मैं तो तेरे पेटमेंसे ही सीख कर आया हूँ। माँ, उस मोरके पीछे जो है, वह कौन है?

माता—वह मोरनी है। तू जानता है कि मोरनी किसे कहते हैं? मोरनी तो है मोरकी बहू।

कन्हैया—माँ, मेरी बहू कहाँ है?

कन्हैया अपनी अद्‌भुत बाललीलासे सभीको आनंद दे रहा है।

गर्गाचार्यने फिर खीर बनाई। लालाने परिहास करनेकी सोची। वह माताकी गोदमें सो गया। यशोदाजीने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ। लाला सो गया है, अतः महाराज शांतिपूर्वक भोजन कर सकेंगे।

गर्गाचार्यने खीर पर तुलसीदल बिखेरा और प्रार्थना करने लगे—

त्वदीयं वस्तु गोविंद...।

नाथ, मैं आपका सेवक हूँ। हे नारायण, लक्ष्मीपति आप शीघ्र ही पधारिए और मेरी खीरका प्राशन कीजिए।

कन्हैयाने यह सुना तो वहाँ जानेके लिए अधीर हो गया। उसने योगमायाको यशोदा-की आँखोंमें जा बसनेकी आज्ञा दी। यशोदाकी आँखें नींदसे भरी नहीं कि कन्हैया दौड़ता हुआ गर्गाचार्यके पास आकर खीर खाने लगा।

गर्गाचार्यने देखा। अरे, इस वैश्य-बालकने तो मेरी खीर इस बार भी जूँठी कर दी।

कन्हैयाने सोचा कि बेचारे इस ब्राह्मणको कब तक भरमाता रहूँ। उन्होंने अपना चतुर्भुज स्वरूप प्रकट किया। महाराज, आप जिस नारायणकी आराधना कर रहे हैं, वह मैं ही हूँ और गोकुलमें कन्हैयाका रूप लेकर अवतरित हुआ हूँ। आपकी तपश्चर्या सफल हुई।

गर्गाचार्यने सानंद दर्शन किया और स्तब्धसे हो गए। वे सोचने लगे, कितना अच्छा हो, यदि प्रभु मेरी गोदमें आ बैठें।

कन्हैया गर्गाचार्यकी गोदमें बैठ गया और कहने लगा, महाराज, अब तो आप भोजन कीजिए।

गर्गाचार्य—जब मेरे इष्टदेव ही मेरे मुँहमें कौर रखेंगे, तभी मैं खाऊँगा।

कन्हैयाने गर्गाचार्यके मुँहमें एक कौर रख दिया। गर्गाचार्यने माना कि उनका जीवन सफल हो गया।

इधर यशोदाकी नींद टूटी तो उन्होंने देखा कि लाला गोद में नहीं है। अरे, कहाँ गया है वह ? उन्होंने देखा कि कन्हैया तो गर्गाचार्यकी गोदमें बैठा हुआ है।

गर्गाचार्य—यशोदा, तूने बड़ा पुण्य किया है। मेरे नारायण ही तेरे घरमें पुत्र-रूपसे पधारे हैं।

लालाने सोचा कि गर्गाचार्यने भंडा फोड़ दिया। यशोदाका भाव तो वात्सल्यभाव है। वात्सल्यभाव, ऐश्वर्य-विरोधी है। कन्हैयाने सोचा कि गर्गाचार्यकी बात यदि यशोदाके मनमें जम गई तो वह मुझे लाड़-प्यार नहीं करेंगी।

मैं तो प्रेमदान करने और प्रेमरसका पान करनेके हेतु ही गोकुलमें आया हूँ। उन्होंने मायाको आज्ञा दी, माताको मेरे वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होने न पाए। यशोदाको भुलावेमें रखनेके लिए कृष्णने मायाका आवरण ओढ़ लिया।

आदिमाया तो राधिकाजी ही का स्वरूप हैं। वह कृष्णका मोह उत्पन्न करती है।

वैष्णव मतानुसार मायाके तीन स्वरूप हैं—

(१) स्वमोहिका

(२) स्वजनमोहिका (ऐश्वर्यका ज्ञान न होने देनेके लिए)

(३) विमुखजनमोहिका—जो हम सबको फँसाती है, जो ईश्वरके स्वरूपको भुला देती है, वही विमुखजनमोहिका माया है।

अब माखनचोरी लीलाका वर्णन भी कर लें।

बालकृष्ण दिनोंदिन बड़े होते जा रहे थे। गाँवके अन्य गोपबालक भी खेलनेके लिए आते रहते थे। उनमेंसे कुछ दुर्बल थे। कन्हैयाने वैसे दुर्बल एक बालकसे कहा—मधुमंगल, तू बहुत दुबला-पतला है। खा-पीकर मेरे जैसा तगड़ा बन जा।

मधुमंगल—कन्हैया, हम तो बहुत गरीब हैं। हम दूध-माखन कैसे खा सकते हैं?

कंसकी आज्ञा थी कि सारा माखन करके रूपमें उसीको दिया जाय। व्रजवासी बेचारे भोले थे। वे अपने बालकोंको माखन खिलानेके बदले कंसको दे देते थे। कंस अपने पहलवानोंको सारा माखन खिला देता था।

कन्हैयाने अपने बाल मित्रोंसे कहा—व्रजवासी जो सारा माखन कंसको भेज देते हैं, वह अब मैं होने नहीं दूँगा। गाँवका माखन गाँवके लोगोंके लिए होना चाहिए। हम माखनको मथुरा भेजने नहीं देंगे। मधुमंगल, तू रो मत। मैं ही तुझे माखन खिलाऊँगा।

ईश्वरकी हमेशा अपेक्षा रहती है कि जीव अपने समान ही हो। जीव ईश्वर से प्रेम करे तो ईश्वर उसे अपने जैसा बनानेका प्रयत्न करता है।

मित्र—हमें तू रोज-रोज माखन देगा तो तेरी माता तुझे पीटेगी।

कन्हैया—नहीं, नहीं। मैं अपने घरका नहीं, बाहरसे कमा कर तुम सबको माखन खिलाऊँगा।

मित्र—क्या तू माखनकी चोरी करेगा?

कन्हैया—हाँ, चोरी ही करनी पड़ेगी। हम एक मंडली बनायेंगे। उसका नाम होगा बालगोपाल चौर्यविद्या प्रचार मंडल।

मित्र—यदि चोरी करते हुए हम पकड़े जायेंगे तो?

कन्हैया—मेरे गुरुने मुझे एक मंत्र सिखाया है। उसका पाठ करने से हमें कोई देख ही नहीं पाएगा और यदि पकड़े भी गए तो छूट जायेंगे।

मित्र—कन्हैया, कौन-सा है वह मंत्र?

कन्हैया—चोरी करते समय 'कफल्लम् कफल्लम्' बोलते रहना। कफल ऋषिने चौर्यविद्याका प्रचार किया था। यह मंत्र उन्हीं ऋषिका है।

याद रखो कि वह मंत्र कन्हैयाने अपने मित्रोंको दिया था, हमें नहीं। हमें कहीं भी चोरी करनी नहीं है। चोरी करना पाप है।

अभीसे भगवान् की सेवा-पूजा, भजन-कीर्तन करो और उनसे प्रार्थना करो—जब आप अगले द्वापरयुगमें जन्म लें तो मुझे गोपबालक बनाना।

इस प्रकार गोपबालकका जन्म मिलने पर कृष्णके साथ खेलना और कृष्णके ही आवेश मिलने पर चोरी करना पाप नहीं होगा।

अपने ही शरीरसे खेलते रहनेवाला पाप-कर्म कर रहा है। आत्माके साथ खेलनेवाला पाप नहीं कर सकता। जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है, वह ईश्वरके साथ ही खेलता है। उसके हाथोंसे पाप हो ही नहीं पाता।

ईश्वरकी उपस्थितिमें मनुष्य पाप कर नहीं सकता और अगर पाप हो भी जाए तो उसका उत्तरदायित्व ईश्वर पर ही होता है।

शंकराचार्यने शांकरभाष्यमें कहा है—परमात्माका साक्षात्कार पानेवाले ज्ञानीके हाथों पाप हो नहीं सकता और अगर हो भी जाय तो दोष उसका नहीं माना जाता। शास्त्र तो जिसे प्रभुका साक्षात्कार नहीं हुआ है, उसीके लिए है। शास्त्रकी आज्ञा और मर्यादा अज्ञानी जीवके लिए है। शास्त्रने चोरीको निषिद्ध बताया है।

परमात्मा जिसे अपनाते हैं, उसके लिए तो सारा जगत् ही अपना है। वह चोरी कर ही नहीं सकता। अपरोक्षानुभूतिके बाद शास्त्रका अस्तित्व ही नहीं रह पाता।

ब्रह्म-साक्षात्कारके बाद तो क्या शास्त्र और क्या विधि ? सब कुछ निरर्थक है।

तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो ईश्वर ही सर्वस्वके स्वामी हैं। अतः वे चोरी कर ही नहीं सकते। यह तो दिव्य लीला है। गोपियोंको परमानंदका दान करनेके लिए इस लीलाका प्रभुने आयोजन किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं—

आज मंडलकी स्थापना हो गई। अब मैं इस मंडलका अध्यक्ष बनूँगा। तुम सबको तो इतना ही देखते रहना है कि ये गोपियाँ दूध-दही-माखन लेकर घरसे कब बाहर जाती हैं, कौन-से रास्ते जाती हैं और वापस कब लौटती हैं। बाकी सब मैं सँभाल लूँगा।

गोपियाँ चाहती हैं कि कन्हैया उनके घर रोज-रोज आता रहे। लालाकी झलक पानेके लिए गोपियाँ किसी-न-किसी बहाने प्रातःकाल यशोदाके घर पहुँच ही जाती थीं।

गोपियाँ यशोदासे शिकायत करती थीं—यशोदा, गायोंको दुहनेका समय होनेसे पहले ही तुम्हारा कन्हैया बछड़ोंको छोड़ देता है। दही-दूध-माखन चुरा जाता है और अपने मित्रोंमें तथा वानरोंमें बाँट देता है। यदि हमारे घरमेंसे उसे कुछ मिल नहीं पाता है तो गुस्सेसे हमारे बालकोंको रुला देता है। हम दूध-दही-माखन चाहें जहाँ रख दें, छीके पर चढ़ा दें तो भी वह चुरा ही जाता है। माखन अँधेरेमें छिपाना चाहें तो अँधेरा भी उसे रोक नहीं पाता है।

कृष्ण जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ प्रकाश फैल जाता है।

हम यदि कन्हैयाको चोर कह देती हैं तो वह हमें कहता है, तू चोर है, तेरा बाप चोर है, तेरी माँ चोर है। इस घरका मैं ही स्वामी हूँ।

गोपियोंकी शिकायत और यशोदाके उत्तर इस गुजराती गीतमें बड़े ही सरस ढंगसे वर्णित है। नरसिंह मेहताका है यह गीत—

जशोदा तारा कानकुंवरने साद करीने वार रे;
आवडी धूम मचावे व्रजमां, नहीं कोई पूछणहार रे...जशोदा.
शीकुं तोड्युं गोरस ढोळ्युं, उघाडीने बार रे;
माखण खाधुं, ढोली नाख्युं, जान कीधुं आ वार रे...जशोदा.
खांखां खोळां करतो हींडे, बीहे नहीं लगार रे;
यही मथवानी गोली फोडी, आ शां कहीए लाड रे...जशोदा.
मारो कानजी घर हुतो, क्यारे दीठो बहार रे;
दहीं दूधना माट भर्या छे, बीजे चाखे न लगार रे...जशोदा.
शाने काजे मलीने आवी, टोली बली दशबार रे;
नरसैंयानो स्वामी साचो, झूठी व्रजनी नार रे...जशोदा.

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये।
क्वचिद् असमये वत्सान् जीवान् मुञ्चन् ॥

भा. १०-८-२८

माता, क्या बताऊं तुम्हें ? गायोंके दुहनेके समयके पहले ही कन्हैया बछड़ोंको छोड़ देता है।

समय पर बछड़ोंको छोड़नेवाला तो सामान्य गोपाल है। यह तो श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण तो समयके पहले ही बछड़ोंको अर्थात् जीवको मुक्त करनेमें समर्थ हैं।

बछड़ोंका अर्थ है विषयासक्त जीव। वत्स अर्थात् विषयासक्त जीव । 'वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये।'

शास्त्रने मुक्तिके दो प्रकार बताए हैं—क्रममुक्ति और सद्यःमुक्ति।

समय होने पर जीवको जो मुक्त करते हैं वह हैं मर्यादा पुरुषोत्तम राम किंतु कन्हैया तो है पुष्टि पुरुषोत्तम। कन्हैया क्रमशः मुक्ति देनेकी अपेक्षा, जीव यदि पात्र हो तो, समयके पहले भी मुक्ति देता है। जिस जीव पर कन्हैयाका अनुग्रह होता है, उसे मुक्ति पानेके लिए क्रमकी प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ती। यह तो पुष्टिमार्ग—कृपामार्ग है।

क्रममुक्ति इस प्रकार होती है। जीव शूद्रवर्णमें जन्मा हुआ है । अब यदि इस जन्ममें वह चोरी, व्यभिचार आदि न करे, उच्च वर्णोंकी भली भाँति सेवा करे तो अगले जन्ममें उसे वैश्य जातिमें अवतार मिलता है। वैश्य यदि नीतिपूर्वक जीवन जिएगा तो अगले जन्ममें क्षत्रिय होगा और अगर क्षत्रिय जन्ममें वह क्षत्रिय धर्मका पूरा-पूरा पालन करता है तो अगले जन्ममें वह ब्राह्मण होगा।

अब ब्राह्मण सदाचारी होगा तो वह अगले जन्ममें अग्निहोत्री ब्राह्मण बनेगा। फिर अगले जन्ममें वह होगा ब्रह्मनिष्ठ योगी। ऐसा योगी सदवर्त्तन, योगाभ्यास और ब्रह्मचिंतन उत्तरोत्तर बढ़ाता जाए तो भी उसे दो-तीन जन्म और लेने पड़ते हैं और इस प्रकार उसके क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध कर्म निःशेष हो जाने पर जीव शुद्ध होगा और शुद्ध होने पर ही जीवको मुक्ति प्राप्त होगी। तो यह है क्रम-मुक्तिका मार्ग।

अब सद्यःमुक्तिकी बात करें। इस प्रकारका मुक्तिमें जन्मोंका कोई क्रम नहीं होता है। ठाकुरजी जिस किसी जीव पर विशिष्ट अनुग्रह करते हैं, उसकी मुक्ति हो जाती है, फिर चाहे वह किसी भी वर्णका क्यों न हो। यदि कोई वैश्य हार्दिकतासे भगवद्भक्ति करे तो कृष्ण प्रसन्न हो कर, उसे गोलोक धाममें ले जाते हैं।

श्रीकृष्ण दुहनेका समय होनेके पहले भी बछड़ोंको छोड़ देते हैं अर्थात् वे निश्चित समयके पूर्व भी जीवको मुक्त कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण तो अनुग्रह अर्थात् पुष्टि पुरुषोत्तम हैं। जिस किसी जीव पर वे अनुग्रह करते हैं, वह तत्काल मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार कोई राजा जब चाहें तब किसी व्यक्तिको राजा बना सकता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण जब चाहें. किसी भी सुपात्र जीवको बंधनमुक्त कर सकते हैं। परमात्मा प्रमेयबलसे किसी भी वैष्णवको तत्काल मुक्त कर सकते हैं। श्रीकृष्ण सद्यःमुक्तिके दाता हैं।

श्रीकृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम हैं, अतः वे सद्योमुक्ति देते हैं। अन्यथा वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, अग्निहोत्री, ब्रह्मनिष्ठ योगी आदि उत्तरोत्तर क्रमिक वर्णोंसे गुजरे बिना मुक्ति नहीं मिल पाती। यदि कन्हैया किसी जीवके प्रति दयालु हो जाय और कृपा कर दे तो वह जीव सीधा वैकुंठमें जा सकता है।

वैसे भगवान्‌को साधारण कृपा तो सभी जीवों पर होती ही है किंतु किसी जीव पर वे विशिष्ट कृपा पर भी कर देते हैं। जब कोई जीव परमात्माकी प्रार्थना, धारणा, चिंतन, साधना करते-करते थक-हार कर रोने लगता है, दीन हो जाता है, उस जीव पर प्रभुकी विशिष्ट कृपा-दृष्टि होती है और उस जीवकी उसी जन्ममें मुक्ति हो जाती है। कृष्ण तो ब्रह्मांडके स्वामी हैं। वे चाहे सो कर सकते हैं।

जीव जब अतिशय साधना करता हुआ नम्र बनता है, तो वह प्रभुका प्रिय पात्र बन कर कृपा पाता है। निःसाधन होकर जो साधन करता है वह श्रेष्ठ है। निःसाधनका अर्थ है कि सब कुछ साधन करते हुए भी माना जाय कि कुछ भी नहीं किया गया है। निरभिमानी बनो। कई बार ऐसा होता है कि साधना करते-करते जीव अभिमानी होने लगता है। ऐसा होनेसे उसका पतन होता है।

यशोदाने गोपियोंसे कहा, यदि मेरा लाला तुम्हारे घर आकर कुछ भी शरारत करे तो उसे डाँटती रहना।

गोपी—माता, अरे हम उसे क्या डाँटेंगे? वह हमें डाँटता रहता है। कल वह मेरे घर आया था। मैं उसे पकड़ने गई तो वह ऐसे भागा कि उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई थक गई और जब मैं उसे पकड़ न सकी तो दूरसे अंगूठा दिखा कर मुझे चिढ़ाने लगा।

एक और सखीने कहा, माता, तुम्हारा कन्हैया माखन-चोरी करता है।

यशोदाने उससे कानमें कहा, अरे, जरा आहिस्ता बोल। यह बात किसीको न बताना। यह बात अगर फैल गई तो लालाको कन्या कौन देगा?

गोपी—कन्हैया जो माँगे सो उसे देंगे किन्तु वह चोरी क्यों करता है?

यशोदाने कन्हैयाको डाँटना चाहा किन्तु फिर सोचने लगी, यदि उसे डाँटूंगी तो शायद वह डर जाएगा।

गोपियोंकी सभी इन्द्रियाँ अपनी ओर आकर्षित करके, परमानंदमें सराबोर करके, उन्हें वैकुण्ठमोक्षका दान करनेके लिए श्रीकृष्णकी यह लीला है।

यशोदा मैया कन्हैयाको समझाने लगी कि उसे अपने घर ही का माखन खाना चाहिए।

कन्हैया—मुझे घरका माखन भाता नहीं है और घरका माखन खाऊँगा तो कम हो जाएगा। सो मैं बाहर कमा कर खाता हूँ। गोपीका माखन बहुत मीठा लगता है।

सखियोंने कहा—माता, इस माखनचोरको बहुत लाड़-प्यार मत करना।

शुकदेवजी बड़े विवेकसे कथा करते हैं। श्रीकृष्ण चोर हैं, ऐसा कहा नहीं गया है। किंतु इति होचुः व्रजकी गोपियाँ इस प्रकार यशोदासे माखन चोरी लीला कहती थीं, ऐसा कहा गया है।

माताने पूछा—कन्हैयाका आगमन और माखनचोरीकी तुम्हें खबर हो जाती है क्या?

गोपियाँ—हाँ, कभी-कभी तो उसके आनेकी बात सपनेमें भी आ जाती है। जब हम सोनेको जाती हैं तो वहाँ भी कन्हैयाको दिखाई देता है। वह सपनेमें भी आता रहता है।

वैष्णव जब सोते हैं तो कन्हैयाको भी अपने साथ रखकर सोते हैं। ठाकुरजीको साथ रखनेका अर्थ है, जब तक नींद न आए तब तक हरे कृष्ण, हरे कृष्णका जप किया जाता रहे।

बिस्तर पर जाने पर यदि कोई वस्तु याद आए तो मान लेना कि तुम्हारा मन उसी वस्तुमें फंसा हुआ है। कई लोग बिस्तर पर सोते-सोते अगले दिनके कारोबार, लेन-देन हिसाब-किताब आदिके बारेमें सोचते रहते हैं। लोभीका मन द्रव्यमें, कामीका मन नारीमें, दुष्ट व्यक्तिका मन लड़ाई-झगड़ेमें फंसा रहता है। बिस्तरमें तो वह सब कुछ भूल कर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' ही का जप करना चाहिए।

एक गोपीने कहा, बिस्तरमें भी मुझे कन्हैया याद आता रहा। वह घरमें नहीं होने पर भी उसकी छबि आँखोंमेंसे दूर नहीं होती है।

लालाका नाम तो अमृतसे भी अधिक मीठा है।

मुझे तो कृष्ण-कृष्ण बोलनेकी आदत-सी हो गई है।

यह तो मनुष्यका स्वभाव ही है कि दिनचर्यासे निवृत्त होनेके बाद बिस्तर पर सोने पर प्रिय विषय-वस्तुकी याद उसे आती रहती है।

मुझे तो कुछ और याद आता ही नहीं है। कृष्ण-कृष्ण बोलते हुए और उसका ही दर्शन करते हुए सो जाने पर सपनेमें भी वही आता रहा। सपनेमें मैंने देखा कि कन्हैया अपने मित्रोंके साथ मेरे घर पर आया, उसने माखन चुराया और मित्रोंके बीच लुटा दिया।

जिस किसी वस्तुमें मन फँसा होगा, सपनेमें वही याद आएगी। मनकी परीक्षा सपनोंसे ही होती है।

सच्चे वैष्णवका मन कृष्णसे ही बँधा रहता है अतः सपनेमें वही आता है। सपनेमें जब कन्हैया दिखाई दे तभी मानो कि तुम सच्चे वैष्णव हो। अधिकारीको प्रभुकी पहली झाँकी सपनेमें ही होती है।

गोपीका मन श्रीकृष्णमें जा फसा है। माँ, मुझे लगा कि कन्हैया मेरे घर अवश्य आएगा। सुबहसे मैं तो पागल-सी हो गई थी। आनंदसे मैं ऐसी बावली हो गई थी कि चूल्हेमें लकड़ीके साथ बेलन भी जला दिया।

एक और गोपीने बताया, घरमें कन्हैया सभीका चहेता है। अपने जेठजीको मैं भोजन परोस रही थी। मन कन्हैयाकी मीठी यादोंमें खोया हुआ था। जेठजीने मुझसे मुरब्बा माँगा। छीके परसे मुरब्बेकी हांडी उतार कर परोसने लगी। मुरब्बा बहुत सरस था और फिर हर किसी अच्छी वस्तुको कन्हैयाको देनेकी मेरी इच्छा हो आती है। कन्हैयाको कितना भाएगा मुरब्बा! यदि कन्हैया इस समय आ जाए तो मेरे जेठजी उसे भी खाने पर बिठा देंगे। मैं उसे मुरब्बा दूंगी।

माता, कन्हैया आए, इस इच्छामें मैं तो ऐसी बह गई कि पागल-सी हो गई और मुरब्बेकी हाँडीको छीके पर चढ़ानेके बदले अपने मुन्नेको ही ऊपर रख दिया।

मेरे पति भी कन्हैयाके प्रेममें ऐसे पागल हो गए हैं कि सारा कामकाज छोड़ कर उसीकी रट लगाए रहते हैं।

ईश्वरके साथ यदि प्रेम करोगे तो वह कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

एक अन्य सखीने कहा, माँ, कन्हैयाने तो आज मेरी लाज रख ली।

यशोदा क्या बात हुई थी, सखी?

सखी—मेरा स्वभाव हो गया है कि रसोई बनाते समय भी मैं 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण जपती रहती हूँ। अब आज मेरे घर मेहमान आए हुए थे। मेरे ससुरजी बड़े क्रोधी स्वभावके हैं। उन्होंने मुझसे कहा, आज मेहमान भोजन करेंगे सो सावधान रहकर भोजन बनाना, हम वाटिका जा रहे हैं। दो बजे लौट कर भोजन करेंगे। कृष्ण-जपमें कहीं रसोई बिगड़ न जाए।

मैं भोजन बनाती हुई सोच रही थी कि भोक्ता तो परमात्मा ही हैं। भोजन तो उस रसरूप प्रभुके लिए बनाया जाय और मैं हरे कृष्णका जप करती हुई रसोई बनाने लगी।

रसोई तैयार करते समय ऐसी उच्च भावना ही मनमें होनी चाहिए। यदि उस समय फ़िल्मकी बातें सोची जायेंगी तो कामके परमाणुसे भोजन दूषित होगा। भोजन बनाते समय मनके अच्छे-बुरे विचारके परमाणु भोजनमें जा मिलते हैं। भोजन बनाते समय, रोटी बेलते समय हरे कृष्ण हरे कृष्ण का जप करते रहोगे तो भोजन सात्त्विक बनेगा। पवित्रतासे रसोई बनाओगे तो भोजन करनेवालेका कल्याण होगा।

आजकी नारी तो शामको देखी हुई फिल्मके गीत ही गुनगुनाती रहती है। भोजन बनाते समय वह फिल्मके गीत गाती रहती है। ऐसा करनेसे भोजन अपवित्र हो जाता है। भोजन बनाते समय फिल्मके अमंगल, शृंगारी, वासना-सने गीत गाते रहनेसे भोजन दूषित हो जाता है, उसमें संस्कारहीनता उतर आती है। यदि गीत गाना ही है तो कृष्ण-भक्तिके गीत गाओ।

प्रेमकी लगन लगी है उसको,
क्या मथुरा क्या काशी रे।
गोविंदके गुन गाते फिरते,
वृंदावनके वासी रे॥

मैंने सारी रसोई तो सावधान रह कर बनाई। अंतमें मोहनभोग बनाने लगी तो विचार आया कि कन्हैयाको यह बड़ा पसंद आता है। हृदयमें कन्हैयाको मोहनभोग खिलानेकी इच्छा हो आई। मेरा दिल मानों हाथसे जाने लगा। मुझे भास होने लगा, कन्हैया आँगनमें आया है, घरमें आ रहा है, रसोईघरमें आ पहुँचा है।

इस प्रकार मन कन्हैयाकी कल्पनामें डूबा हुआ था सो मोहनभोगमें चीनीके बदले नमक डाल दिया। भगवान्‌को भोग लगाया। ससुरजी और मेहमान आए तो उन्हें परोसा। वैसे तो मोहनभोग नमकीन हो गया था किंतु उसमें भक्तिका पुट लगा हुआ था, अतः मेहमानने तो उसकी प्रशंसा करते हुए खाया। यह भोजन नहीं, अमृत है, ऐसा कहा। भगवान्‌के नामामृतके पुटसे नमकका स्वाद मीठा हो गया था। मेरे क्रोधी ससुरजीने भी मेरी रसोईकी और मेरी भी प्रशंसा की। यह मेरी पुत्रवधू नहीं, अन्नपूर्णा है, लक्ष्मी है, ऐसा कहा।

अंतमें जब मैंने खाना खाया तो पाया कि मोहनभोग मीठा नहीं, नमकीन था। माता, मेरी तो इस कन्हैया ही ने लाज रख ली।

दूसरी एक गोपी कहने लगी — माता, क्या बताऊँ मैं ? मैं दूध-दही बेचने निकली। न जाने कैसे मुझे लगा कि मेरी मटुकीमें कन्हैया छिपा हुआ है। सिरसे मैंने मटुकी उतार कर देखा तो उसमें लालाका दर्शन हुआ। अब कन्हैयाको भी कहीं बेचा जा सकता है ? मैं कुछ भी बेचे बिना वापस घर लौटी तो घर पर मेरी बड़ी फजीहत हुई।

अपनी बुद्धिरूपी मटुकीमें जो कन्हैया समाया होगा तो हर कहीं उसके दर्शन होते रहेंगे। गोपियाँ अपनी बुद्धिमें, मनमें ठाकुरजीको विराजमान रखती थीं।

यदि अपने मस्तक, हृदय, मन, बुद्धिमें जड़ पदार्थ होंगे तो हर कहीं वही दिखाई देंगे और श्रीकृष्ण होंगे तो कण-कणमें उनका दर्शन होता रहेगा।

माता, हम जहाँ भी जाते हैं, हमें कन्हैयाका ही दर्शन होता रहता है।

ये गोपियां घरका काम करते-करते और निवृत्त होनेके बाद भी श्रीकृष्णको याद करती रहती हैं।

बड़े-बड़े योगी-महात्माओंको तो परमात्माका नित्य स्मरण करते रहनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है किन्तु व्रजकी गोपियाँ कन्हैयाको भूलनेका प्रयत्न करने पर भी भूल नहीं पाती थीं। शायद कन्हैया भी इन्हें न भूल पाता होगा।

गोपियां गेरुए वस्त्र पहनती नहीं है फिर भी उनका मन कृष्णप्रेममें रँगा रहता है। यह तो गोपियोंके प्रेमसंन्यासकी कथा है।

यही है गोपियोंके मनकी तन्मयता और निरोध ।

बालकृष्णकी विविध लीलाएँ देखती हुईं गोपियाँ घरकाज भूलकर पागल-सी हो जाती थीं । 'प्रेक्ष्य त्य इज्झत गृहाः ।' घरके काम छोड़ कर लीलाएँ देखती रहती थीं । 'मनसोऽनवस्थाम् ।' कन्हैकी लीलाओंको देखकर उनका मन अस्थिर हो कर लीलाओंमें ही तन्मय हो जाता था । यह तो गोपियोंकी तन्मयता है ।

कृष्णमें ही तन्मयता हो जानेके कारण गोपियाँ संसार-व्यवहारके कार्य भली भाँति कर नहीं पाती थीं । कृष्णप्रेममें सुधबुध खो कर न करने योग्य काम कर बैठती थीं । प्रभुके लिए तो ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए ।

कृष्णकथामें—कृष्णलीलामें जो व्यक्ति गोपियोंकी भाँति तन्मय हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है । भागवत मृत्युके पूर्व मुक्ति देती है । हाँ, तन्मयता गोपी जैसी होनी चाहिए । गोपियाँ घरके कामकाजके समय भी कान्हाको भूलती नहीं थीं ।

भक्ति-मार्गमें व्यवहार और परमार्थ अलग नहीं, एक ही हैं ।

प्रत्येक कार्यमें प्रभुका संधान ही पुष्टिभक्ति है ।

प्रत्येक कार्यको, व्यवहारको प्रभुमय मानना ही भक्ति है । गोपियाँ ही इसी भक्तिमार्गकी आद्य आचार्या हैं । इसी सिद्धांतको आचार्य महाप्रभुजीने आगे बढ़ाया ।

सभी कामकाजसे निवृत्त होनेके बाद भक्ति करना तो मर्यादा भक्ति है ।

सुबोधिनीमें महाप्रभुने गोपियोंको प्रेमसंन्यासिनी कहा है । गोपियोंके पास तो था केवल निःस्वार्थ प्रेम । उनका तो प्रेम ही संन्यास था ।

वस्त्र-संन्यासकी अपेक्षा प्रेम-संन्यास उत्तम है । कृष्णप्रेममें हृदय पिघलने पर संन्यास हो पाता है और तभी वह उजागर होता है । सभी कर्मोंका न्यास—त्याग संन्यास है । ईश्वरके लिए ही जो जीता है, वही संन्यासी है । गोपियाँ ईश्वरके लिए ही जीती थीं अतः उन्हें प्रेम-संन्यासिनी कहा गया है ।

ज्ञान और योग पर भक्तिकी विजय बतायी गयी है । भक्ति भगवान्को आबद्ध करती है, वशीभूत करती है ।

माखनचोरी लीलाका यही रहस्य है । मन माखन-सा मृदु है । मनकी चोरी ही तो माखनचोरी है । कृष्ण औरोंके चित्त चोर लेते हैं, फिर भी वे पकड़े नहीं जाते । पकड़ा जाने-वाला चोर तो सामान्य चोर होता है किंतु कन्हैया तो अनूठा चोर है । उन्हें तो गोपियोंके मनका निरोध करना था । किसी भी अन्य विषयोंमें जानेसे बचाना था ।

गोपी अर्थात् इन्द्रिय । सभी इन्द्रियाँ हमेशा ईश्वर ही का चिंतन करती रहें, इसी हेतुसे इन सब लीलाओंकी रचना की गई है ।

यशोदाजीने गोपियोंसे कहा—अच्छा हो यदि तुम माखन छिपा कर रखो ।

एक गोपी—माता, तुम हमें क्या सीख दोगी ? मैं वैसे तो बड़ी हूँ, फिर भी कैसे बताऊं कि क्या हुआ था । एक बार कन्हैया मार्गमें मिला तो उसने हँसते हुए मुझसे कहा, अगले दिन तेरे घर आऊँगा । मैंने सारा माखन अपने मायके पहुँचा दिया । कन्हैयाने दूसरे दिन आकर देखा तो माखनका नामोनिशान नहीं था । वह आगबबूला हो गया । पलनेमें सोए हुए मेरे लालको चुटकी भरते हुए कहने लगा कि तेरी माता बड़ी कंजूस है । घरमें कुछ रखती ही नहीं है ।

माता, घरमेंसे यदि कुछ मिलता नहीं है तो कृष्ण गुस्सेसे लालपीला हो जाता है और हमारे सोए हुए बच्चोंको चुटकी देकर रुलाता है।

भगवान्‌का आगमन होने पर यदि तुम सोए हुए पाए जाओगे तो वे तुम्हें रुला देंगे। वे तो किसी भी रूपमें आ पहुँचते हैं और सत्कार न मिलने पर रुला देते हैं।

ईश्वर अपने आगमनके समय सोए हुओंको जगा देता है।

ईश्वर कौनसे रूपमें आयेंगे यह कोई बता नहीं सकता। वे तो बालक-वृद्ध, ब्राह्मण-चमार किसी भी रूपमें आ सकते हैं। सो घर पर आए हुए सभीका सम्मान किया जाय।

वेदांतके अनुसार ईश्वर अरूप है और वैष्णवानुसार अनंतरूप।

ईश्वरका कोई एक रूप तो है नहीं। वे अनेक रूप धारण करते रहते हैं। अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे। वे तो आकाररहित भी हैं और अनेक आकारवाले भी। वे अरूप भी हैं और अनेक रूपधारी भी। वे तो किसी भी स्वरूपमें आते हैं। जीव प्रमादवश सोया रहता है, सो उसे खबर नहीं हो पाती है।

यशोदा—सखियाँ, क्यों न तुम सब अपने बच्चोंको नेहर पहुँचा दो?

एक गोपी—मैं माखन और बच्चोंको नेहर रख आई थी। कन्हैयाने मेरे घरमें कुछ नहीं पाया तो कहा, जिस घरमें मेरे लिए कुछ भी न हो वह श्मशानके जैसा ही है।

जिस घरमें भगवान्‌के लिए कुछ भी न हो वह घर उजड़ कर श्मशान हो जाता है।

मौजमजेमें संपत्तिका अपव्यय करनेवाले राक्षस ही तो हैं।

जब कन्हैयाको घरमें कुछ नहीं मिला तो उसने मित्रोंसे कहा, यह घर श्मशान जैसा ही है सो चूल्हा, कमरे, आँगन सब बिगाड़ दो और उन्होंने मेरा सारा घर गंदा कर दिया था।

माता, कन्हैया ऐसा शरारती है।

यशोदाने कहा—तुम कह रही हो कि लाला शरारती है किंतु वह तो मुझसे कहता है कि उसने तो कुछ भी किया नहीं है। तुम उसे रंगे हाथ पकड़ लाओगी, तभी मैं मानूंगी कि वह चोरी करता है और तभी मैं उसे सजा दूंगी।

प्रभावती नामकी एक गोपीने कहा, इसमें क्या बड़ी बात है! मैं ही इसे रंगे [illegible]थ पकड लाऊँगी। वह गोपी कुछ अभिमानी थी।

कन्हैयाने तय किया कि आज हम प्रभावतीके घर जाएँगे। प्रभावती छिप कर बैठी थी। धीरे-धीरे सभी बालक घरमें दाखिल हो गए और 'कफलम् कफलम्' बोलने लगे। कन्हैयाने छींकेसे माखन उतार कर स्वयं खाया, मित्रोंको खिलाया और वानरोंको भी दावत दी।

उपकार चाहे कितना भी हो,—भगवान् कभी नहीं भूलते। रामावतारमें वानरोंने वृक्षोंके पत्ते खा कर मेरी सेवा की थी। उस अवतारमें तो मैं तपस्वी था, अतः इन्हें कुछ दे नहीं पाया था। सो इस अवतारमें मैं उन्हें दही-माखन खिलाऊँगा।

मनुष्य कई बार वानर जितना भी संयम नहीं रख सकता है। वानर राम और सीताके सेवक हैं सो वे रामफल और सीताफलका आहार कभी नहीं करते। यदि मानव, वानर जितनी मर्यादाका भी पालन न कर पाए तो वह उससे भी गया बीता है।

सभीने भरपेट माखन खाया। इतनेमें धीरेसे प्रभावती बाहर निकली। मित्रोंने देखा तो कहने लगे, अरे कन्हैया, भाग, वह आ गई है किंतु कन्हैयाने कहा, आने भी दो। क्या कर लेगी वह ?

प्रभावतीने कन्हैयाको पकड़ लिया। वह उससे कहने लगा, अरे छोड़ दे मुझे, नहीं तो मेरी माँ तुम्हें पीटेगी। मुझे न छोड़ेगी तो तुम्हें अपने ससुरकी कसम, अपने पतिकी कसम।

प्रभावती—आज मैं क्यों छोड़ दूँ तुझे ? रँगे हाथ पकड़ा है। मैं तुझे यशोदाके पास ले जाऊँगी।

कन्हैया—छोड़ दे मुझे।

प्रभावतीका लड़का भी इस माखनचोर मंडलीका सभ्य था। उसने सोचा कि यशोदा लालाको पीटेगी। वह अपनी माता प्रभावतीसे कहने लगा, माता कन्हैयाने चोरी की ही नहीं है। मैंने ही सबको बुलाया था। मुझे चाहे सो सजा दे किंतु लालाको छोड़ दे तू। अब मैं चार महीनों तक माखन नहीं खाऊँगा।

प्रभावतीने सोचा, यशोदा हमारी बात कभी सच्ची नहीं मानती है। सो मैं उसे सच्ची बात दिखलाना चाहती हूँ। यशोदा लालाको डाँटेगी तो कोई बात नहीं है। मैं पीटने दूँगी। लाला मेरा भी तो है।

अभिमानके साथ-साथ दुर्गुण भी आ जाते हैं।

प्रभावती मान रही थी कि उसके सिवाय लालाको कोई पकड़ नहीं सका। सो उसने लालाको नहीं छोड़ा। सभी बालक रोने लगे। कन्हैयाने कहा, अजी डरते क्यों हो ? मैं बड़ा अच्छा मजाक करूँगा।

साधना करनेसे प्रभु हाथमें आ तो जाते हैं कि साधनमेंसे यदि श्रद्धा उठ जाए तो प्रभु भी चले जाते हैं।

प्रभावती लालाको पकड़ कर चली जा रही थी तो मार्गमें एक वृद्ध आ रहे थे। उसको देखकर प्रभावतीने घूँघट खींच लिया। कन्हैयाने प्रभावतीसे कहा कि उसके इस हाथमें दर्द हो रहा है सो दूसरा हाथ पकड़ेगी तो अच्छा होगा। प्रभावती हाथ बदलने गई तो कन्हैयाने इशारेसे अपने मित्रको पास बुला कर उसका हाथ पकड़वा दिया।

इस प्रकार कन्हैया मुक्त हुआ। वह भागता हुआ माताके पास आया और कहने लगा, माता, एक गोपी मुझे मारने आ रही है। मैंने उसका कुछ भी बिगाड़ा नहीं है। माताने उसे कमरेमें बैठनेको कहा।

प्रभावती तो बड़ी उमंगसे चोरको पकड़ कर चली आ रही थी। उसने बाहरसे ही चिल्लाते हुए कहा—अरी यशोदाजी, सुनती हो ! देखो, आपके कन्हैयाको मैं आज रँगे हाथ पकड़ लाई हूँ। इस चोरको सजा देनी ही होगी।

यशोदाने बाहर आकर कहा—अरी पागल है क्या तू ? मेरा बेटा तो घरमें ही है। यह किसको पकड़ लाई है तू ?

ईश्वरको खोजना है तो अपने अंदर ही खोजो। उसे जो बाहर खोजता है, वह दुःखी होता है। इन्द्रिय रूपी गोपी कहती है कि ईश्वर बाहर है, परमानंद बाहर ही है। तो यशोदा—निष्काम बुद्धि ईश्वरानंदको घर रूपी हृदयमें ही निहारती है। इन्द्रियाँ ईश्वर-आनंदको बाहर ढूँढती हैं, अतः पा नहीं सकती। निष्काम बुद्धि ईश्वरको हृदयके भीतर ढूँढती है, अतः शीघ्र ही पा जाती है।

जो जीव आनंदको सांसारिक विषयोंमें खोजता रहता है, उसकी दशा उस प्रभावतीकी जैसी होती है। सब उसकी खिल्ली उड़ाते हैं।

यशोदा—आली, तू देख तो सही कि तेरे हाथमें कौन आया हुआ है ?

प्रभावतीने देखा तो उसके हाथोंमें उसीका पुत्र था। वह असमंजसमें पड़ गई। मैंने तो कन्हैया ही को पकड़ा था। रास्तेमें ही कुछ गड़बड़ हो गई होगी।

प्रभावती अभिमानी है। घमंड, अहंकारवाली बुद्धि ही प्रभावती है। ऐसी बुद्धि ईश्वरको कभी पा नहीं सकती। निष्काम बुद्धि ही ईश्वरको पा सकती है। ईश्वरको सकाम नहीं, निष्काम बुद्धि ढूँढ़ पाती है।

ईश्वरकी प्राप्ति होने पर प्राप्तिका अहंकार होगा तो ईश्वर हाथोंसे भाग निकलेंगे। परमात्मा मिल तो सकते हैं किंतु अहंकार आते ही अदृश्य भी हो जाते हैं।

परमात्मा मिलते ही साधकके मनमें अकड़ पैदा होती है। ऐसी अकड़ हो जाने पर, अभिमान होते ही साधना उपेक्षित होने लगती है। साधनाकी उपेक्षाके कारण भगवान् अप्रसन्न हो कर वापस चले जाते हैं। साधना करो किंतु साधनाका अभिमान कभी न होना चाहिए। निष्काम बुद्धिमें गर्व उत्पन्न होते ही भगवान् भाग निकलते हैं।

गोपियोंने यशोदासे कहा—माँ, गणपतिका व्रत करो और मिन्नत मानो। वे बुद्धि-सिद्धिके स्वामी हैं सो कन्हैयाकी बुद्धिको सुधारेंगे।

यशोदाने गोपियोंकी बात मान ली।

कन्हैया गणपतिकी महिमा बढ़ाना चाहता था। सो उसने अपनी मित्र-मंडलीसे कहा, हम कुछ दिनके लिए बड़े शांत रहेंगे। सारी प्रवृत्ति अब हम बंद कर दें।

लाला घरमें बैठा रहता था। यशोदाने सोचा कि गणपतिने मेरे लालाकी बुद्धिको ठीक कर दिया है।

एक बार कुछ गोपालोंने यशोदासे शिकायत की कि कन्हैयाने मिट्टी खाई है।

कृष्ण—माँ, ये सब झूठ बोलते हैं। मैंने मिट्टी खाई ही नहीं है।

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः।

लालाने तो मिट्टी नहीं, व्रजरज खाई है। मैंने मिट्टी नहीं, व्रजरज खाई है। व्रजरज मिट्टी नहीं है।

तुलसीजी सामान्य वृक्ष-वनस्पति नहीं है, गंगाजी सामान्य नदी नहीं है, व्रजरज साधारण मिट्टी नहीं है।

श्रीवल्लभाचार्यने कहा—ज्ञान मार्गके अनुसार कृष्ण कुछ भी नहीं खाते। वैष्णव मार्गके अनुसार भगवान्‌ने व्रजरज खाई है। भक्त मानते हैं कि भगवान् भोजन भी करते हैं।

यशोदाने कन्हैयासे कहा, अपना मुँह खोल, मैं देखूँ तो सही कि तूने मिट्टी खाई है या नहीं।

कन्हैयाने मुँह खोला और यशोदाने बेटेके मुँहमें देखा तो पाया कि उसमें तो सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है ।

मुखदर्शनके बहाने कन्हैयाने माताको अपना विश्वरूप दिखलाया ।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे है ।

ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान लीलामें बाधक है ।

वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ।

पुत्रस्नेहा वैष्णवी माताके हृदयमें कन्हैयाने योगमायाका संचार कर दिया सो यशोदा कन्हैयाका वास्तविक स्वरूप भूल गई और फिरसे उसे अपना पुत्र ही मानने लगी ।

पूतनाने बहुतसे बालकोंका वध किया था । वे सब बालक पूतनाके स्तन द्वारा प्रभुके पेटमें जा पहुँचे ।

अविद्याके संसर्गमें आए हुए जीवोंका उद्धार सच्चे संतोंकी चरण-रजके सिवाय हो नहीं पाता ।

गोकुलमें बहुतसे ऋषि-मुनि गायाका अवतार ले कर आए हुए हैं । उनके चरणोंकी रज मेरे पेटमें जानेसे वे सभी जीव मुक्त हो जाएँगे जो मेरे पेटमें हैं अर्थात् अपने पेटमें बसे हुए उन जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही कृष्णने मिट्टी—व्रजरज खाई थी ।

प्रभुके हृदयमें रहना अथवा परमात्माको अपने हृदयमें रखना यह तो कृष्णकी लीला है, निरोधलीला है । आत्मा वैसे तो निराकार और स्वतंत्र-बंधनमुक्त ही है किंतु मनके कारण वह आबद्ध हो जाती है ।

भगवान् तो मृत्युके पूर्व ही मुक्ति देते हैं । प्रभुप्रेममें हृदयका द्रवित होना ही तो मुक्ति है । प्रभुप्रेममें संसारको भूलना ही तो मुक्ति है । मन मरा कि मुक्ति मिल गई । मनकी मृत्यु होनेसे निरोध होता है और निरोध होने पर मुक्ति मिलती है ।

मृत्युके बाद ही नहीं, मृत्युके पूर्व भी मुक्ति मिल सकती है ।

जो मृत्युके पहले ही मुक्ति नहीं पा सकता है उसे मृत्युके बाद मुक्ति मिलना बड़ा कठिन है । शरीर और इन्द्रियोंकी उपस्थितिमें जिसे भजनानंद प्राप्त होता है, उसे शरीरत्यागके बाद परमानंदका अनुभव होता है ।

भागवत, मृत्युके बाद मुक्ति दिलानेवाला शास्त्र नहीं है । वह तो जीते-जी मुक्ति दिलाती है । मृत्यु के बाद मुक्ति मिले या न मिले, वह कौन जान पाता है । इसी कारणसे तो महात्मा जीवनमुक्तिके गुण गाते हैं ।

वैसे तो देह और इन्द्रियोंसे संबंध है ही । सो उनकी उपस्थितिमें ही हमें मुक्ति मिलनी चाहिए ।

मुक्तिके दो प्रकार है—विदेहमुक्ति और कैवल्यमुक्ति ।

पानीमें रह कर भी कमल, पानीसे अलिप्त रहता है । ज्ञानी पुरुष भी संसारमें रहते तो हैं किंतु अलिप्तभावसे ही ।

जगत् देखा न जाय, इस हेतुसे ज्ञानी पुरुष आँखें बंद करके बैठे रहते हैं किंतु जगत् ऐसा तो शरारती है कि आंखें बंद कर लेनेके बाद भी दिखाई देता है। बाह्य संसारकी अपेक्षा आंतरिक संसार अधिक बाधक है। मनमेंसे उसे मिटा देने पर ही भक्ति ठीक तरहसे की जा सकती है।

नौकाको रहना तो जल ही में है किंतु यदि जल नौका पर सवार हो जाए तो नौका डूब जाती है।

बाह्य संसारको मनमें न आने देनेके हेतु ज्ञानी जन बड़े सतर्क रहते हैं।

वैसे संसार स्वयं तो बाधक नहीं है किंतु उसका चिंतन, उसकी आसक्ति बड़ी ही बाधक है। संसार तो सुखदाता है ऐसी कल्पना भी भक्तिमार्गमें बाधा रूप है।

ज्ञानी पुरुष शरीरको एक आवश्यकताके रूपमें स्वीकार करते हैं किंतु वे यह भी स्पष्टतः जानते हैं कि सांसारिक सुख भ्रामक है। वह केवल आभासित सुख है।

दृश्य पदार्थमेंसे हट कर द्रष्टामें जब दृष्टि स्थिर होती है, तभी आनंद मिलता है। दृश्य दुःखरूप ही है। दृश्यके द्रष्टाको साक्षी कहते हैं। दृश्य दुःखरूप है। द्रष्टा मात्र आनंदरूप ही है। दृष्टिको दृश्यमेंसे हटा कर द्रष्टामें स्थिर करोगे तो आनंद मिलेगा।

जगत्में रहना है और विषय भी रहेंगे ही। शरीर, मन और जगत्से भागा तो जा नहीं सकता किंतु आसक्ति छोड़नी है।

अज्ञानी जीव जगत्को भोगदृष्टिसे और ज्ञानी भगवद्-दृष्टिसे देखता है।

मायाका अर्थ है लौकिक नामरूपमें आसक्ति।

भक्तिका अर्थ है अलौकिक नामरूपमें आसक्ति।

भक्तिमार्गमें भावना और श्रद्धाके बिना सिद्धि मिल नहीं पाती।

आत्माको क्या मुक्त करोगे ? वह तो मुक्त ही है। प्रभुके हृदयमें निवास करना ही निरोध है। विरोध और वासना निरोधको प्रतिबंधित करते हैं। जब तक हृदयमें विरोध है, तब तक निरोध नहीं हो पाएगा। जीवनमेंसे विरोध और वासनाके जाते ही अपने आप निरोध हो जाता है।

मुक्ति कब मिलती है ? शरीरके मरने से मुक्ति नहीं मिलती, मनके मरनेसे मुक्ति मिलती है। मनका निरोध ही मुक्ति है।

दशम स्कंधमें निरोध लीला है। सभी सांसारिक विषयोंमेंसे मन हट कर जब ईश्वरसे मिल जाता है तब मुक्ति ही आ जाती है।

परमात्मा आनंदस्वरूप हैं। मन अर्धचेतन है। मन सांसारिक विषयोंके साथ एक नहीं हो सकता क्योंकि संसार जड़ है और मन अर्धचेतन है। सजातीय वस्तु ही एक हो पाती है। मन ईश्वरके सिवाय अन्य किसी भी वस्तुसे एक नहीं हो सकता, अभिन्न नहीं हो पाता।

मनुष्य चाहे जितना कामी क्यों न हो, कामसुखके उपभोगके बाद उसका मन नारी-देहसे दूर हो जाता है। कामैषणा दूसरी बार जाग सकती है, किंतु तत्काल तो नारीदेहसे हट ही जाएगी।

अब वह उदासीनता यदि हमेशाके लिए मनमें जम जाय तो बेड़ा पार है। वैराग्य क्षणिक नहीं, स्थायी होना चाहिए।

विषयभोगके बाद शीघ्र ही उत्पन्न होनेवाला वैराग्य, वैराग्य नहीं, उसका आभास मात्र होता है।

कई बार वैराग्य उत्पन्न तो होता है किंतु माया उसे रहने नहीं देती।

मन संसारके जड़ पदार्थोंके साथ नहीं, ईश्वरके साथ ही एकाकार हो सकता है।

कृष्णलीला मनका निरोध (हृदयमें प्रभुका निवास) करनेके लिए है।

पूर्वजन्मका शरीर तो मर गया है किंतु मन नया शरीर लेकर आया हुआ है। जीवात्मा मनके साथ जाता है। सो शरीरको अपेक्षा मनकी चिंता अधिक करनी है।

मृत्युके बाद भी मन साथ ही आता है। पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-परिवार तुम्हारे मरनेके बाद यहीं रह जाएँगे, किंतु मन तो संग ही चलेगा। सो अन्य सभीकी ओरसे आसक्ति कम करके मनकी चिंता अधिक करो।

यदि कोई सांसारिक वस्तु बिगड़ गई या खो गई तो और मिलेगी, मन यदि बिगड़ गया तो दूसरा मन किसी भी बाजारसे मिल नहीं पाएगा। जीवात्मा तनको छोड़ता है किंतु मनको साथ ले चलता है। अतः मनको हमेशा सँभालते रहना।

गीतामें कहा है—

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ गीता १५-७-९

जीवोंमें बसा हुआ मेरा अंश त्रिगुणमयी मायामें स्थिर हो कर मन-सहित पाँचों इन्द्रियोंका आकर्षण करता है। मनका आश्रय करके जीवात्मा ही इन विषयोंका उपभोग करता है। सो मनुष्यके मरनेके बाद भी मन तो साथ ही रहता है।

शरीर तो मरता है किंतु मन नहीं मरता। मन तभी मरता है जबकि वह मनमोहनके साथ एकरूप हो जाता है अर्थात् मुक्ति मिले तभी मन मरता है।

विषयोंकी ओर दौड़ता हुआ मन मरता नहीं है।

मन यदि ईश्वरका चिंतन, ध्यान, मनन करे तो उन्हें पा भी सकता है।

किसीके गुरु होनेकी इच्छा कभी न करना। पहले अपने मन ही के गुरु बनो। रामदास स्वामीने कहा है—

मना सज्जना भक्तिपंथेचि जावे,
तरी श्रीहरि पाविजेतो स्वभावे।
जनी निंद्य ते कर्म सोडोनी द्यावे,
जनी वंद्य ते सर्व भावे करावे ॥

हे मन! जिस भक्ति-मार्गसे सज्जन लोग जाते हैं उसीका तू अनुसरण कर। तभी तुम्हें साहजिकतासे श्रीहरि मिलेंगे। संसारके निंदनीय कर्मोंका त्याग किया जाय। संसारके वंदनीय कार्यमें एकाग्र हुआ जाय।

अरे मन, तू पाप क्यों करता है ? तू सज्जन होते हुए भी दुर्जन-सा काम क्यों करता है ? यदि कोई बताए कि इस लड्डूमें जहर है तो उसे तुम खाओगे क्या ? तो इसी तरह मनको भी समझाओ कि ये सारे विषय विषैले हैं, उसका कभी उपभोग न करना।

संसारके विषयोंको हमेशा शंकाशील दृष्टिसे देखो। स्वामी शंकराचार्यने कहा है—

भवसुखे दोषानुसंधीयताम्।

गुरु बननेकी अपेक्षा किसीका शिष्य होना बड़ा अच्छा है। यदि तुम किसी व्यक्तिके गुरु हो और वह शिष्य कुछ पाप करे तो उसके लिए तुम्हीं जिम्मेवार माने जाओगे।

आत्मा मनका गुरु है, स्वामी है, मुक्त है। मुक्ति मनको मिलती है। आत्मा तो मुक्त है, स्वतंत्र है।

निद्रा और समाधिमें अंतर है। फिर भी बहुत कुछ साम्य भी है। समाधिमें मन सभी विषयोंसे निवृत्त हो जाता है और चित्तवृत्तिका निरोध होता है। निद्रामें भी मन संसारको भूल जाता है। संसार भूलने पर ही निद्रा आती है। नींदके समय भी मन संसारके विषयोंसे परे हो जाता है किंतु निद्रावस्थामें मन पूर्णतः निर्विषय नहीं हो पाता। निद्राका सुख तामसी है। उसमें अहम्‌भाव शेष रह जाता है। अहम् भावका लय नहीं होता है।

समाधिकी अवस्थामें मन पूर्णतः निर्विषय हो जाता है, अहम् भाव भी लुप्त हो जाता है।

श्रीमद् शंकराचार्य शिवमानसपूजा स्तोत्रमें कहते हैं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधि स्थितिः॥
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्॥

हे शंभु, तुम मेरी आत्मा हो। बुद्धि पार्वती है। प्राण आपके गण हैं। शरीर आपका मंदिर है। सभी विषय-भोगोंकी रचना आपकी पूजा है। निद्रा समाधि है। मेरा हलन-चलन आपकी परिक्रमा है। मेरे सभी शब्द आपके स्तोत्र हैं। इस भाँति मेरी सभी क्रियायें आपकी आराधनारूप बनें।

योगीजन आत्मस्वरूपमें मनका लय करते हैं। मनको यदि कोई विषय नहीं दोगे तो वह आत्मस्वरूपमें जा मिलेगा और वैसा लय ही मुक्ति है।

विषयोंके चिंतनसे मन जीता है और उनके त्यागसे वह मर जाता है। सांसारिक विषयोंमेंसे हट जाने पर मन शांत हो जाता है। दिएमें जब तेल बाकी नहीं रहता तब वह बुझ जाता है। इसी प्रकार मनमेंसे सांसारिक विषयोंका निष्कासन होने पर वह शांत हो जाता है। मनको हमेशा किसी आधारकी आवश्यकता रहती है। सो उसे प्रतिकूल विषयोंसे अलग करके अनुकूल विषयोंकी ओर मोड़ देना चाहिए।

निद्राके समय भी समाधि-सा ही आनंद मिलता है किंतु वह आनंद तामस है। निद्रामें सब कुछ मिट-सा जाता है किंतु अहंकार बना रहता है। जब कि समाधिकी अवस्थामें नाम, रूप और अहंभाव निःशेष हो जाते हैं।

समाधिके दो प्रकार हैं—जड़ और चेतन।

योगी मनको बलपूर्वक वश करके प्राणको ब्रह्मरंध्रमें स्थापित करता है। यह हुई जड़ समाधि किंतु बलात्कारके बदले मनको प्रेमसे समझा-बुझाकर विषयोंसे हटा लेना अधिक श्रेयस्कर है। और यही तो है चेतन समाधि।

विश्वामित्रने ६० हजार वर्षों तक तप किया फिर भी वे मेनकाके सौंदर्यको देख कर लोलुप हो गए। इसका कारण यही है कि उनकी समाधि जड़ थी।

समाधि तो साहजिक होनी चाहिए। साधो सहज समाधि भली।

साहजिक समाधि श्रीकृष्णलीला ही में है। कृष्णकथा और बाँसुरीके श्रवण करते समय, चाहे आँखें खुली ही क्यों न हो, समाधि लग ही जाती है। गोपियोंने आंखें मूंद कर नाक पकड़ कर समाधि लगानेका प्रयत्न कभी नहीं किया।

गोपियोंकी समाधि स्वाभाविक, साहजिक समाधि थी।

यह भोगी शरीर योगाभ्यास कर नहीं सकता। भोगी यदि योगी बननेका प्रयत्न करेगा तो रोगी बन जाएगा।

योगका सर्वप्रथम साधन है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्यके पालनके बिना योगसिद्धिकी प्राप्तिका प्रयत्न करनेवाला अधोगतिके गर्तमें गिरता है।

कृष्णकथा है ही ऐसी कि वह जगत्को अनायास ही भुला देती है। जगत्में बस कर, रह कर भी उसको भूल जाना है।

यह भागवत ग्रंथ ऐसा दिव्य है कि सात ही दिनोंमें मुक्ति दिलाता है। राजा परीक्षित इस ग्रंथका श्रवण करके सात ही दिनोंमें जगत्को भूल कर कृष्णमें तन्मय हो गए थे।

बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंको भी यह आशंका थी कि राजा परीक्षित मात्र सात दिनोंमें मुक्ति कैसे पाएगा।

मात्र सात ही दिनोंमें राजाके ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी अभिवृद्धि करनेके हेतु ही इस कृष्णकथाका आयोजन किया गया था क्योंकि कृष्णकथामें तन्मयता होने पर ही तो उसे इच्छित मुक्ति मिल पानी थी।

इस जगत्को भूलनेके लिए ही तो योगी आँखें मूंद कर प्राणायाम करते हैं किंतु इस जगत्को भूल जाना सरल नहीं है। योगीके लिए जगत्को भूलना आसान नहीं है तो गोपियोंके लिए जगत्को याद करना आसान नहीं है।

कृष्णकथा आँखें मूंदने, नाक पकड़ने या प्राणायाम करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह जगत्को अनायास ही भुला सकती है।

मनका निरोध तब होता है कि जब किसीका उसके द्वारा विरोध नहीं होता है। मनमें विरोध और वासना न रखो। विरोध और वासना निरोधमें बाधक है। जगत्के किसी भी जीवके लिए विरोध न रखो। जगत्के भोग्यपदार्थोंकी वासना न करो। निरोध होने पर अनायास ही मुक्ति मिल जाती है।

श्रीकृष्णलीलासे अनायास ही मनका निरोध हो जाता है। जगत्की विस्मृति और भगवान्की अखंड स्मृति ही तो निरोध है।

पूतना-वासना आँखोंमें आ बसती है। सो आँखोंको कृष्णकी रूपमाधुरीमें स्थिर करो और कानको कृष्ण-कथासे जोड दो।

यदि यह संसार सुन्दर है तो इस सुन्दर संसारका निर्माता तो न जाने कितना सुन्दर होगा ! क्या ऐसा विचार तुम्हारे मनमें कभी आया भी है ?

मनुष्य सौंदर्यदर्शनके लिए काश्मीर जैसे दूर-दूरके स्थानोंमें घूमता रहता है। अजी, वहाँ क्यों जाते हो ? सच्चा सौंदर्य तो अन्तरमें है, ईश्वरमें है, उसे देखनेका प्रयत्न करो।

परमात्माके किसी भी स्वरूपसे तन्मय होने पर मुक्ति मिल सकती है। भागवतका कहना ऐसा है ही नहीं कि मात्र श्रीकृष्ण-स्वरूपमें ही लीन हो जाओ। तुम चाहो जिस रूपमें तन्मय हो जाओ। ईश्वरके जिस रूपमें तुम्हें श्रद्धा हो, उसीको अपनाओ। श्रीपरमात्माका कोई भी रूप मुक्तिदाता है।

श्रीशंकराचार्य भी कहते हैं—भगवान्‌के किसी भी रूपमें श्रद्धापूर्वक तन्मय हो जाओ। उसकी अनन्य रूपसे भक्ति करो। जिस किसी रूपमें संपूर्ण श्रद्धा हो, उसकी अनन्य भक्ति करो और अन्य रूपोंको उसीका अंश मान कर वंदन करो। इस प्रकार अन्य रूपोंमें अंशात्मक प्रेम रखनेसे भक्तिमें राग-द्वेष नहीं आएगा और वही अनन्य भक्ति होगी।

नारी अपने पतिके प्रति अनन्य प्रेम रखती है फिर भी अपने अन्य सभी कुटुम्बीजनोंकी भी सेवा प्रेमसे करती है अर्थात् स्त्रीका पतिप्रेम अनन्य है और अपने अनन्य रिश्तेदारोंके प्रति अंशात्मक प्रेम रखती है। ऐसे अंशात्मक प्रेमसे पतिप्रेममें कुछ न्यूनता तो होती ही नहीं है।

हमें अपने मनपसन्द प्रभुरूपसे उस नारीकी भाँति ही अनन्य रूपसे भक्ति करनी है और साथ-ही-साथ ईश्वरके अन्य रूपोंको भी आदर देना है।

श्रीकृष्ण अनायास मुक्तिदाता हैं। मुक्ति आत्माको नहीं, मनको मिलती है। आत्मा तो नित्य मुक्त है। बन्धन-मुक्त तो मनको करना है। मनको मुक्ति मिलनेके बाद आत्मा मुक्तपनेका अनुभव करता है।

आत्माको जब कोई बन्धन ही नहीं है तो फिर मुक्तिका तो प्रश्न ही कैसे पैदा हो सकता है ? विषयोंका बार-बार चिंतन करते रहनेके कारण मन उनमें फँस जाता है और बँध जाता है।

आत्मा तो परमात्माका ही अंश है, अतः उसका बंधन तो एक कल्पना मात्र ही है।

कोई आत्माको परमात्माका अंश मानता है तो कोई इन दोनोंको एक मानता है। कुछ लोग आत्मा-परमात्मामें अंश-अंशीका भाव मानते हैं।

जीव ईश्वरका अंश है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ममैवांशो जीवलोके।

इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमद् शंकराचार्यने कहा है—"अंश इव जीव।" आत्मा ईश्वरका अंश जैसा है, अंश नहीं। जीव ईश्वरका अंश हो नहीं सकता। ईश्वरके टुकड़े नहीं हो सकते। हाँ, परमात्मा और आत्मा एक हैं। शंकर स्वामीने भी कहा है, ईश्वरत्वमेंसे कोई अंश विभक्त नहीं हो सकता।

घड़ेमें समाया हुआ आकाश और बाहरका व्यापक आकाश एक ही तो हैं। फिर भी घटकी उपाधिके कारण अंश-अंशी भावका आभास होता है। इसी तरह परमात्मा और जीव एक होते हुए भी अलग-अलग दिखाई देते हैं।

यदि गुलाबके फूलकी एक पंखुरी हम काट दें तो वह फूल अखण्ड नहीं रहेगा। फूलका स्वरूप भंग हो जाएगा किंतु ईश्वर नित्य होनेके कारण वे तो अखण्ड ही रहेंगे।

उपासनाके हेतु अंशी और अंशके भेद किए गए हैं, किंतु तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। व्यवहारमें अंश-अंशी भिन्न हो सकते हैं, तत्त्वतः नहीं।

सागर बिंदुओंसे बनता है, सागरसे बिंदु नहीं। बिंदु सागर नहीं है।

जीव ईश्वररूप है।

रामानुजाचार्य आदि संतोंके अनुसार परमात्मा अंशी हैं और आत्मा अंश।

कुछ आचार्योंके अनुसार जीव मुक्तावस्थामें अंशी है और आबद्धावस्थामें अंश। अंशी-अंशके भेदको मानते हुए भी वे दोनोंको एक ही मानते हैं।

वल्लभाचार्य आदि वैष्णव आचार्योंका कहना है, जीव अंश जैसा नहीं, अंश ही है और ईश्वर अंशी है। ईश्वर सागर हैं और जीव जलबिंदु। सिंधुकी विशाल जलराशिमेंसे कुछ बिंदु निकाल लेने पर भी उसके स्वरूपमें कोई भंग नहीं होता। इसी प्रकार जीवके अलग हो जाने पर ईश्वरके स्वरूपमें कोई विकृति नहीं होती।

भक्त पहले द्वैतका नाश करके अद्वैतकी साधना करता है और फिर ईश्वरकी सेवा करनेके हेतु काल्पनिक द्वैतभाव रखता है।

ये दोनों सिद्धांत सच्चे कहे जा सकते हैं। साधकको चाहिए कि इन सिद्धांतोंके खंडन-मंडनके पचड़ेमें न फँसे।

मनको चाहे सो मान कर आगे बढ़ते चलो।

यदि जीव ईश्वरका अंश है तो माया उसे कैसे बाँध पाती है ?

माया न तो सत् है और न असत्।

जब तक हम स्वप्नसे जगे नहीं है तब तक वह सत्य ही होता है। जगनेके बाद स्वप्न असत्य हो जाता है। इस प्रकार जब तक हम मायासे आवृत हैं, तब तक माया सत्य होती है और माया छिन्न-भिन्न होते ही वह असत्य सिद्ध हो जाती है।

माया जीवको भरमा सकती है, रुला नहीं सकती। जीवात्माको कोई भी बंधन नहीं होता है। वह तो मुक्त ही है। मनको ही बन्धन है। मनके बन्धन, अज्ञानके कारण आत्मा मान लेती है कि वह भी बँधी हुई है। अज्ञानके कारण जीव मान लेता है कि उसे किसीने बाँध लिया है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी॥
सो माया बस भयउ गुसाईं।
बँध्यो कीट मर्कटकी नाईं॥

लोग कहते हैं कि मेरा मन बिगड़ा, मेरा मन फँस गया। कोई ऐसा नहीं कहता कि मैं बिगड़ गया हूँ, मेरी आत्मा भ्रष्ट हो गई है।

आत्मा तो मनका द्रष्टा है, साक्षी है। मनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, आत्माके आदेशानुसार उसे काम करना पड़ता है। मन नपुंसक है। वह विषयोंमें फँस कर सुखी-दुःखी होता है किंतु आत्मा आरोप अपने पर करता है।

तुलसीदासजीने एक दृष्टांत दिया है। वानरोंको पकड़नेके लिए शिकारीने एक युक्ति की। वनमें जिस वृक्ष पर वानर हो, उसके नीचे एक छोटेसे मुँहवाले घड़ेमें वह चने भरके रख देता था। वानर अपने दोनों हाथोंसे चने निकालनेका प्रयत्न करते थे किन्तु मुट्ठीमें चने होनेके कारण हाथ घड़ेसे बाहर निकाल नहीं पाते थे। वे मान लेते थे कि किसी भूतने घड़ेमें छिप कर उनके हाथ पकड़ लिए हैं। वास्तवमें तो किसी भी भूतने हाथ पकडे ही नहीं थे। यदि मुट्ठी खोल देते तो हाथ बाहर निकल सकते थे।

संसार भी एक वैसा ही घड़ा है। संसारिक विषय हैं चने और मन है वानर। मन अहंतावश विषयोंको अपनी मुट्ठीमें बंद किए रहता है फिर भी मानता है, किसीने बांध लिया है। विषयोंको ममता-अहम् की मुट्ठीसे मनने पकड़ रक्खा है और स्वयं ही छोड़ नहीं रहा है।

जीवका बंधन वानरके बंधन जैसा ही है। इन दोनोंका बंधन अज्ञानमूलक है। अज्ञानका नाश होने पर बंधन नहीं रहता। अज्ञानकी उपाधि दूर होते ही परमात्मा और आत्मा एक हो जाते हैं। मायाने सांसारिक घड़ेमें विषयोंके चने भर दिए हैं। समझ-बूझ कर यदि इन विषयरूपी चनोंको छोड़ दिया जाय तो फिर मुक्ति ही है।

अपने पुत्रके घर भी पुत्रका जन्म हुआ फिर बूढ़ा घर छोड़ कर वृन्दावन या काशीवास करना नहीं चाहता। पहले तो वह कहता था कि अपने पुत्रके विवाह हो जाने पर मैं गृहत्याग करूँगा। अब वह कहता है कि मेरा छोटा पुत्र मुझे जाने नहीं देता। काशी-वृन्दावनमें सेवा-चाकरी भी कौन करेगा ?

इधर बूढ़ेके पुत्र सोचते हैं कि यदि यह बूढ़ा वृन्दावन चला गया तो उसकी पेंशनकी रकमसे हाथ धोना पड़ेगा क्योंकि वह वहीं मँगा लेगा। वहां वह सारी रकम साधु-संतोंमें लुटा देगा। यदि वहां घरमें ही वह रहे तो रकम घरमें ही खर्च होती रहेगी, बाजारसे साग-सब्जी भी लाएगा, हमारे बच्चोंकी देख-भाल करेगा और यदि हम रातको सिनेमा देखने जायेंगे तो घर भी सँभालेगा।

इस तरह बूढ़ा और उसके बच्चे एकदूजेको छोड़ते नहीं हैं। दोनोंकी अपनी-अपनी वासना है, अपने-अपने स्वार्थ हैं।

मन यदि विषयोंमेंसे हट कर ईश्वरका चिंतन करने लगे तो मुक्ति मिलती ही है। देहाध्यास छूटा और वृत्ति ब्रह्माकार हुई तो मुक्ति ही है।

विषयोंका ही चिंतन करनेवाला मन अशुद्ध है। विषयोंका चिंतन त्यागनेवाला मन शुद्ध है। अनादि कालसे विषयोंका चिंतन करते रहनेकी मनको आदत-सी हो गई है। यदि यही मन श्रीकृष्णकथाका चिंतन, श्रवण, मनन करने लगे तो विषयोंका विचार करनेकी आदत छूट सकती है।

इन्द्रियोंके स्वामी हैं श्रीकृष्ण। आँखोंका श्रीकृष्णसे संबंध जोड़ो। सर्वत्र और सभीमें ईश्वरके दर्शन करो। इन्द्रियरूपी गोपीका आत्माके साथ मिलन करना है। पाँच इन्द्रियोंके विषय भी पाँच हैं। यदि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंसे अलग हो जायँ तो आत्माके साथ उनका मिलन होगा। इन्द्रिय-गोपीको प्रभुके साथ विवाहित कर दो।

गोकुल-लीलाका तात्पर्य है गोपियोंकी जीते-जी मुक्ति। श्रीकृष्णने गोपियोंको मुक्त करनेके लिए ही गोकुल-लीला की थी। गोपियोंको वे जीते-जी मुक्त करना चाहते थे। गोपियाँ चाहे अपने-अपने घरमें रहें, उनका मन विचलित न हो, ऐसा उन्होंने किया।

किसी भी प्रकारकी साधना, धारणा किए बिना ही गोपियोंके मनका श्रीकृष्णमें निरोध हो गया। गोपियोंने भक्ति-मार्गका आचरण किया था।

महाप्रभु कहते हैं, मुझे नया कुछ भी कहना नहीं है। मैं तो गोपियोंका मार्ग ही बतलाता हूँ।

लौकिक रूपके प्रति जितनी आसक्ति है उतनी यदि भगवान्में हो जाय तो संसारके बंधन छूट जायेंगे।

श्रीकृष्णका सौंदर्य ही ऐसा है कि उसे देखनेके बाद जगत्का सौंदर्य सुहाता ही नहीं है। श्रीकृष्ण अति सुंदर है। जगत् सुन्दर है, ऐसा माननेसे कामदृष्टि पैदा होती है।

श्रीकृष्ण-कथामें तन्मयता अनायास ही हो जाती है। परमात्मा हमारी सभी इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे हटा कर अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। जिसका मन मधुर है, उसीके घरका माखन कन्हैया ग्रहण करता है।

भगवान्से हमेशा प्रार्थना करते रहो—नाथ, मेरे मनको जड पदार्थोंमेंसे हटा कर अपनी ओर आकर्षित कर लीजिए।

मनको तभी शांति मिलती है जब कि वह ईश्वरमें स्थिर होता है।

वेदांती मनको अर्धचेतन और अर्धजड़ मानते हैं। संकल्प करनेसे मन हजारों मील दूर पहुँच जाएगा। मनका जब भी लय होगा, जड़ पदार्थमें नहीं, ईश्वर ही में लय होगा।

वस्तु सजातीय वस्तुमें ही घुलमिल सकती है। दूधमें मिसरी मिल जाती है, पत्थर नहीं।

संसारके सभी पदार्थ नाशवान् हैं। जो क्षण-क्षण सर रहा है (क्षीण होता जा रहा है) वही संसार है। यह मन ईश्वरमें ही जा कर विलीन हो सकता है, अन्य किसी पदार्थमें नहीं।

हे नाथ, मेरा मन सदा तुम्हींमें लगा रहे।

ईश्वरसे मनका दूर होना ही बंधन है। ईश्वरके चरणोंमें मनका रहना मुक्ति है। मन ईश्वरसे दूर हो जाएगा तो बिगड़ जाएगा। भगवान्की लीलाका यही तात्पर्य है।

गोपियाँ अपने मनमें श्रीकृष्णको हमेशा बसाए रख कर ही घर-गृहस्थी निभाती रहती थीं।

मनको मुक्त करना है, उसीका निरोध करना है, ईश्वरके साथ उसे ही एकाकार करना है।

निवृत्तिके समय यदि मनमें किसी भी वस्तुका विचार आए तो मान लो कि मन उसीमें फँसा हुआ है। गोपियाँ तो निवृत्तिके समय श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण, कीर्तन, ध्यान करती थीं। संकटके समयमें जीव विश्वासघात करता है किंतु भगवान् तो दौड़ते हुए आते हैं।

सभी विषयोंको छोड़ कर मनका ईश्वरमें लगना मुक्ति है। मनके अनायास प्रभु-स्मरणके लिए यह निरोध लीला है।

दशम स्कंधकी कृष्ण-लीला, जगत्का विस्मरण और प्रभुका अखंड स्मरण कराती है ।

गोपियाँ सारे जगत्को भूल कर मात्र कृष्णको याद करती रहें, इसी हेतु यह कृष्ण-लीला है ।

कृष्ण-लीलामें मनको लगा देनेसे जगत् भुलाया जा सकेगा। शरीर चाहे कहीं भी हो, मनको गोकुल-वृन्दावनमें ही बसाए रहो ।

जो मर कर जिए और जी कर मरे, वही सच्चा शूर है : जो मर कर जीता है, वह मुक्ति पाता है। मृत्युकी मृत्यु ही तो मुक्ति है ।

गोपियाँ घरका कामकाज करते हुए भी कृष्णमें ऐसी लीन हो जाती थीं कि न करने जैसा काम भी कर बैठती थीं। चूल्हेमें लकड़ीके साथ-साथ बेलन जला देती थीं वे ।

काल धक्के देकर निकाले और हमें रोते हुए संसार छोड़ना पड़े, इसकी अपेक्षा समय-पर सावधान होकर समझबूझ कर जंजालसे मुक्त होना श्रेष्ठ है ।

बुद्धि परमात्माको पकड़ नहीं पाती ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।

परमात्मा न तो वेदाध्ययनसे मिलते हैं और न शास्त्रश्रवण या बुद्धि-चातुर्यसे। आत्मा जिस पुरुष पर कृपा करता है, उसीको उसकी प्राप्ति होती है अथवा जो उसे प्राप्त करना चाहता है, उसे वह मिलता है ।

परमात्मा जिसे अपना मान कर अपनाते हैं, उसीको वे मिलते हैं ।

अब आगे दामोदर लीलाकी बात भी आएगी ।

परमात्मा श्रीकृष्ण परम प्रेमके स्वरूप हैं। सामान्य प्रेम और परम प्रेममें अंतर है। पुत्र, पत्नी, माता पिता आदिके साथ जो प्रेम है, वह सामान्य है । जगत्के सभी पदार्थ और जीवोंके प्रति जो निःस्वार्थ प्रेम होता है, वह है परम प्रेम ।

जीव बड़ा अयोग्य है, अपात्र है। वह मनसे, आँखोंसे हमेशा पाप करता रहता है। फिर भी ईश्वर तो उससे प्रेम ही करते हैं। ईश्वर जीवसे प्रेम करते हैं, उस पर प्रेम बरसाते हैं और उससे प्रेम ही की अपेक्षा करते हैं। वे प्रेमसे ही वशमें हो सकते हैं । वे धनसे वश नहीं होंगे क्योंकि वे स्वयं लक्ष्मीपति हैं ।

जब शारीरिकबल, द्रव्यबल, ज्ञानबल आदि सब हार जाते हैं, तब प्रेमबल ही जीतता है। प्रेमबल सर्वश्रेष्ठ है। प्रेमबल परमात्माको वशमें करनेका साधन है। कुछ लोग पूछते हैं, भई परमात्मासे प्रेम किस प्रकार किया जा सकता है ? घरके लोग हमें सुख-सुविधा देते हैं, अतः हम उनसे प्रेम करते हैं। उसी प्रकार मान लो कि परमात्माकी कृपासे ही हम सुखी हैं। उनके नामका बार-बार जप-स्मरण करोगे तो उनसे प्रेम हो जाएगा ।

यदि भगवान्की इच्छासे तुम्हारी इच्छा भिन्न होगी तो प्रभुके साथ प्रेम हो नहीं पाएगा। अपनी इच्छाका त्याग करो और भगवान्की इच्छाको ही अपनी इच्छा बना लो।

वैष्णव अपनी इच्छाको भगवान्की इच्छाके साथ एकरूप करके उनमें लीन हो जाता है। महात्मा प्रभुको प्रेमसे जीत लेते हैं। जीव पूर्णतः प्रेम करने लगे तो भगवान् वशमें हो जाते हैं। ऐसी प्रेम-कथाका ही इस दामोदर लीलामें वर्णन है।

भागवतमें जहाँ-जहाँ 'एकदा' शब्दका प्रयोग किया गया है वहाँ कोई-न-कोई विशिष्ट प्रसङ्ग है। नवें अध्यायके आरम्भमें भी 'एकदा' शब्द था।

परीक्षित कृष्णकथासे अभी तृप्त हुए नहीं है। वे अब भी बड़े विस्तारसे सुनानेकी प्रार्थना कर रहे हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं। राजन्, अब आगे सुनिए।

गोपियोंने कन्हैयाका नाम माखन-चोर रख लिया तो यशोदाको यह बात अखरने लगी। वह अपने लालासे आग्रह करने लगी कि बाहरका नहीं, घरका माखन खाना ही अच्छा है। कन्हैया कहता है, मैं यदि घरका ही खाने लगूँ तो घरमें माखन घट जाएगा, मैं तो बाहरसे कमा कर ही खाना चाहता हूँ।

अजी, स्वाद गोपियोंके माखनमें नहीं, प्रेममें था। मिठास प्रेममें होती है, वस्तुमें नहीं।

यशोदाजीने सोचा, घरका काम-काज नौकर सँभालते हैं, इसीलिए शायद लालाको घरका माखन पसन्द नहीं है और माखनकी चोरी करता रहता है। आज मैं स्वयं दधिमंथन करके माखन बनाकर उसे खिलाऊँगी और तृप्त करूँगी।

रामायणमें कहा गया है कि राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे और सेवकोंकी उनके यहाँ कोई कमी नहीं थी फिर भी महारानी कौशल्या अपने हाथों ही भोजन बनाती थीं।

रसोई ठाकुरजीके लिए है। पानी बिगड़ा तो वाणी बिगड़ेगी। वाणी बिगड़ने पर वीर्य बिगड़ता है। वीर्य अर्थात् जीवन। अन्न मनको बनाता है। आपको जिसके चारित्र्यमें पूर्णतः विश्वास न हो उसे अपने रसोईघरमें कभी न आने दीजिए और यदि वह रसोईघरमें आ भी जाय तो अन्न-जल दूषित होने न देना।

एक दिन सभी नौकर घरके अन्य कामोंमें जुटे हुए थे तो यशोदाने अपने ही हाथों दधिमंथन करके माखन बनाकर लालाको खिलानेकी बात सोची। मेरा लाला फिर कभी बाहरका माखन खानेकी इच्छा नहीं करे, ऐसी उनकी चेष्टा थी।

प्रातःकालमें स्नानादि कार्योंसे निवृत्त होकर, पीला वस्त्र पहन कर यशोदाजी दधि-मंथनके काममें लग गयीं। यशोदाजी कन्हैयाके लिए यह कर रही थीं। सो इस काममें भक्ति भी मिली हुई थी।

हमें प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाना है। घरमें झाड़ू-बुहारी करना भी भक्ति है क्योंकि हमारा घर ठाकुरजी ही का तो है। यदि घरमें कहीं कूड़ा-करकट होगा तो ठाकुरजी अप्रसन्न हो जाएँगे। भोजन बनाते समय भी सोचा जाय कि ठाकुरजी खाने जा रहे हैं। भोजन बनाना भी भक्ति ही तो है।

कई बार बहनें पूछती हैं, हमारा कुटुम्ब बहुत बड़ा है सो सारा समय रसोईघरमें ही बीत जाता है। प्रभुसेवाके लिए समय बचता ही नहीं है। अरे, बड़ा कुटुम्ब तो अच्छे भाग्यवालेको ही मिलता है। घरके सभी लोगोंको भगवान् ही का रूप मान कर उनकी सेवा करते रहो।

संसार सागर है और सांसारिक विषय दही। आरंभमें विषय मधुर होते हैं, अन्तमें कटु। सांसारिक विषयोंका विवेकसे मन्थन करनेवाला भक्तिरूपी माखन पाता है। ऐसा प्रेमरूप, भक्तिरूप माखन परमात्माको अर्पण करो। परमात्मा प्रेमके सिवाय और कुछ नहीं माँगते।

माता यशोदा पुष्टिभक्तिका स्वरूप हैं। उनके दर्शन पाओगे तो कृष्णके दर्शन पा सकोगे। यशोदाका दर्शन अर्थात् मुक्तिकी आराधना। यशोदाजी शुद्ध भक्तिका स्वरूप हैं और ऐसी शुद्ध भक्ति ही प्रभुको बाँध सकती है।

दधिमन्थनके समय माताजीकी शोभा कैसी थी? शुकदेवजी वर्णन नहीं, माताजीके उस शोभायमान स्वरूपका दर्शन कर रहे हैं—

क्षौमं वसः पृथुकटितटे बिभ्रति सूत्रनद्धं।
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूतः।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ कुंडले च।
स्विन्नं वस्त्रं कपरविगलन्मालती निर्ममन्थ॥

सुन्दर भृकुटिवाली यशोदाजी दधिमंथन कर रही थीं। रेशमी घाघरा उन्होंने पहना था। सूतकी डोरीसे उसे बाँधा हुआ था। पुत्रस्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बह रही थी। उनका सारा शरीर डोल रहा था। रस्सी खींचनेके कारण हाथ थके हुए थे। हाथमें पहने हुए कंगन और कानोंके कुण्डल डोलायमान थे। मुख पर पसीनेकी बूंदें झलक रही थीं और बालोंमें लगाई हुई वेणीमेंसे चमेलीके पुष्पोंकी पंखुरियाँ झर रही थीं।

आज माता यशोदाके होठों पर, आँखोंमें, मनमें, हृदयमें कन्हैयाके सिवाय और कोई भी नहीं था।

श्रीकृष्णकी सेवाके समय मुखसे उनका नाम-उच्चारण होता रहे, मनसे उनका स्मरण होता रहे और सेवाके श्रमके पसीनेसे सारा शरीर, सभी वस्त्र भीग जायें।

यह तो भक्तिकी कथा है। धन-संपत्तिके लिए पसीना बहानेवाले तो बहुतेरे मिल जाएँगे किंतु प्रभुसेवाके लिए पसीना बहानेवाले कितने हैं? ठाकुरजीकी सेवामें पसीना बहाओ। उनकी सेवा स्वयं करो। आजकल तो लोग रुपये-पैसेके लिए अपनी कमर तोड़ते हैं किंतु ठाकुरजीका चंदन घिसनेके लिए नौकर रखते हैं।

ऊपरके श्लोकोंमें भक्तिका निरूपण है। शरीर द्वारा दधिमंथनरूप सेवाकर्म हो रहा है। हृदयमें कृष्णस्मरणकी सरिता बह चली है, वाणी बालचरित्रके गानका गुंजन कर रही है। भक्ति, तन, मन, वचनसे अपने प्यारे लालाकी सेवामें संलग्न है।

रेशमी वस्त्र पवित्रताका प्रतीक है। उसकी डोर कसकर बाँधी हुई है अर्थात् आलस्य, प्रमादका अंश तक नहीं है।

वैसे तो वस्त्र वासनाका प्रतीक है। सूतके वस्त्रकी अपेक्षा रेशमी वस्त्र अधिक मुलायम, महीन होता है। तो यह रेशमी वस्त्र है सूक्ष्म वासना। शरीरकी उत्पत्ति और आधार रजोगुण है। सूक्ष्म वासना नहीं होगी तो शरीर भी नहीं रहेगा। वासना निःशेष हो जाने पर जीव ईश्वरसे एकरूप हो जाता है।

सामान्य व्यक्तिकी तुलनामें वैष्णवकी वासना दिव्य होती है। मन पूर्णतः वासनाहीन होने पर ईश्वरके साथ जा मिलता है। स्वयं ही सुख भोगनेकी इच्छा बाधक है। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा बाधक नहीं है। पराएकी सेवा करनेकी इच्छा, सूक्ष्म वासना है।

भक्तिमार्ग अपनानेके बाद सुखोपभोगकी इच्छा न करो। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा करो। सुखका स्वयं उपभोग करनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्रियोंका दास ही होगा।

भगवत्सेवामें शरीर खपा दो। शरीर पसीनेसे तर हो जाय, तब तक ठाकुरजीकी सेवा करो। ठाकुरजीके उपयोगमें न आनेवाला शरीर वृथा है। तुलसीदलके बिना ठाकुरजीकी सेवा हो नहीं पाती।

यह शरीर श्रीकृष्णका है, श्रीकृष्णके लिए है। यह शरीर धर्मक्षेत्र है। धर्मक्षेत्र अर्थात् विष्णुक्षेत्ररूपी यह देह भोगोपभोगके लिए नहीं है।

यशोदाने शारीरिक सेवा की। शारीरिक सेवा तो करनी ही है किंतु यदि मनसे सेवा नहीं की गई तो आनंदलाभ नहीं होगा। सेवा करते-करते आँखें गीली हो जानी चाहिए और हृदय पिघल जाना चाहिए। सेवा आनंदसे करनी चाहिए। ऐसे सद्भावपूर्वक सेवा करनेवाले आजकल बहुत कम हैं।

सेवारत यशोदाजीकी आँखोंमें श्रीकृष्ण हैं और हृदयमें भी। दधिमंथनके समय उनकी दृष्टि तो कन्हैयाकी ओर ही स्थिर है।

कामकाज करते समय हमारी दृष्टि, यशोदाजीकी भाँति, कृष्णकी ओर ही रहनी चाहिए। सभी गोपियाँ भी खान-पान, काम-काजके समय भी गोपाल कन्हैयाकी ओर ही टकटकी लगाये रहती थीं।

व्यवहार छूटता नहीं है और उसे छोड़ना भी तो नहीं है किंतु व्यवहारके साथ-साथ परमार्थको याद रखो, अपना लक्ष्य कभी न भूलो। सभी संतमहात्माओंको कुछ-न-कुछ कामकाज करना ही पड़ता था। कामकाज करना नहीं, कामकाजके समय भगवानको भूल जाना अपराध है।

इस संसारमें कोई केवल धनके लिए जीता है तो कोई स्त्रीके लिए, कोई संपत्तिके लिए जीता है तो कोई पुत्रपरिवारके लिए। ऐसा व्यवहार इष्ट नहीं है। पैसा नहीं, परमात्माको देखना है।

आदर्शको, लक्ष्यका ध्यानमें रख कर किया गया व्यवहार ही भक्ति है। व्यवहार शुद्ध होगा तो भक्ति आएगी। लक्ष्यको भूल कर किया गया व्यवहार बाधक होगा। लक्ष्यको भूल जाओगे तो लखचौरासीके फेरेमें फँस जाओगे।

व्यवहार निभाते समय दृष्टि भगवान्की ओर स्थिर रखोगे तो वह व्यवहार ही भक्ति बन जाएगा।

यशोदा है पुष्टिभक्ति। पीला वस्त्र वैष्णवी भक्तिका प्रतीक है। संसार है गागर। मंथन करके प्रेम-रूप नवनीत पाना है। परमात्माकी माँग है प्रेम।

घरका कारोबार करते समय, यशोदाजीकी भाँति, मुखमें प्रभुनाम और दृष्टिमें प्रभुका स्वरूप होना चाहिए।

पुष्टिभक्तिमें भक्ति और व्यवहार भिन्न नहीं हैं। भक्तका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय होना चाहिए। जो कुछ काम करो, भगवान्‌की आज्ञा समझ कर करो। कामकाज करते-करते हर पाँच-दस मिनटके बाद भगवान्‌को निहारते रहना।

जब तक व्यवहार पूर्णतः शुद्ध न होगा, तब तक भक्ति भली भाँति हो नहीं पाएगी। व्यवहार छल, कपट, असत्य न होने चाहिए।

यशोदाकी दृष्टि हमेशा श्रीकृष्णकी ओर लगी रहती है। भगवान्‌का स्मरण करते-करते माताका हृदय द्रवित हो गया, वक्षःस्थलका वस्त्र भीग गया है।

बारहवें अध्यायमें कहा गया कि भगवान्‌के कुण्डलमें सांख्य योग है। यह यशोदाका नहीं, भक्तिका शृङ्गार है। सांख्य योगकी सहायताके बिना भक्ति की नहीं जा सकती। महाप्रभुजी ने कहा है, यशोदाके कुण्डल सांख्य योग हैं। सांख्य योगकी सहायतासे भक्ति स्थिर होती है। दुःखका प्रसङ्ग आने पर मनुष्य भक्ति करने लगता है किन्तु उसमें स्थिरता नहीं आ पाती। सो सांख्य योगके बिना भक्ति अपूर्ण है।

योगशास्त्र मनको एकाग्र बनाता है। योग मनको एकाग्र बनानेके लिए उपयोगी है। सांख्यशास्त्रका अभ्यास किए बिना चेतन आत्मा जड़ शरीरसे पृथक् नहीं हो पाता। सांख्यशास्त्र मनको शुद्ध करता है। इन दोनोंकी आवश्यकता है।

यदि भक्ति करनी ही है तो आत्माको शरीरसे पृथक् कर लो और मनको एकाग्र करो। शारीरिक आनन्द अपना नहीं है। बार-बार सोचो कि चेतन आत्मा और जड़ शरीर दोनों एक नहीं, भिन्न हैं।

रोज तो मङ्गलगीत गाने पर लाला जागता था। आज इच्छा थी कि माखन तैयार होने पर उसे जगाया जाय।

बुद्धिको ईश्वरसे दूर न होने दो। बुद्धि-यशोदा विषयोंकी ओर बढ़ेगी तो वहाँ फँस जाएगी। इसीलिए तो कन्हैया माताको दूर नहीं जाने देता। बुद्धि यदि ईश्वरसे दूर होकर विषयोंकी ओर जाएगी तो विपत्तिमें फँसेगी। ईश्वर यह नहीं चाहते सो वे यशोदाको कोई और काम करने ही नहीं देते थे।

आज यशोदाजी दधिमंथनमें तन्मय हुई थीं। उनकी वाणीमें, मनमें, हृदयमें श्रीकृष्ण हैं। यह यशोदाकी नहीं, भक्तिकी कथा है।

यशोदाका तन, मन, वचन एक हो गये थे। वे मनसा, वाचा, कर्मणा ईश्वरकी सेवा कर रही थीं। अतः कृष्ण स्वयं जग गए। रोज तो श्रीकृष्णको जगानेके लिए मङ्गलगान करना पड़ता था, आज उन्हें जगानेका उपचार करना नहीं पड़ा।

अनन्य भक्ति कन्हैयाको जगाती है। श्रीकृष्ण आज अपने आप जग गए।

कन्हैयाको जगाना है। यशोदाके हृदयमें बसा हुआ कन्हैया जागा किंतु हमारे हृदयका कन्हैया तो अभी सोया हुआ है। इसे जगाना है।

ईश्वरको जगाना है। वैसे तो श्रीकृष्ण सर्वव्यापी ब्रह्म हैं। सभीके हृदयमें उनका वास है किंतु सुषुप्तावस्थामें है। उनको जगाना है। यशोदा जैसी भक्ति करोगे तो सुषुप्त कन्हैया अवश्य जागेगा।

श्रीकृष्ण अर्थात् आनन्द। हृदयमें आनन्द तो है ही। उसे जगाना है। जीव संसारके जड़ पदार्थोंमें आनन्दकी खोज करता रहता है, सो वह मिल नहीं पाता। ईश्वरके साथ जीवको तन्मय करना है। ईश्वरको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। अन्दर सोए हुए भगवान्‌को जगाना है। भगवान् जागे नहीं कि आनन्द ही आनन्द हो जाएगा।

सच्चे वैष्णवके शरीरका पसीना बहता है, तब ठाकुरजी जागते हैं। वैष्णव दुःखी होता हो तो लाला चैनसे सो नहीं सकेगा।

शुद्ध प्रेमीको परिश्रम सता नहीं सकता। यदि यशोदाकी भाँति सेवा करोगे तो तुम्हारी भक्तिको देखकर, तुम्हारे हृदयमें सोया हुआ कन्हैया अवश्य जागेगा।

यशोदाजीकी निष्काम भक्तिको देखकर भगवान् सकाम बने। भक्ति उमड़ने लगती है तो भगवान् सकाम स्तन्यकाम बनते हैं।

उपनिषद् भगवान्‌को निष्काम बताती है। शुकदेवजी भगवान्‌को सकाम कहते हैं—

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः।

उस समय भगवान् श्रीकृष्ण स्तनपान करनेकी इच्छासे माताके पास आये जो दधिमंथन कर रही थीं।

वैसे तो ईश्वर निराहारी हैं किंतु यह तो भक्तके हृदयकी भावना है। भक्तका हृदय जब प्रेमार्द्र होता है, तब भगवान् भूखे होते हैं।

कन्हैया जागा तो माताको ढूंढ़ता हुआ इधर आ पहुँचा। उसने पीछेसे माताका आँचल खींचा। यशोदा तो अपने काममें ऐसी लीन थीं कि उन्हें खबर तक न हुई। कन्हैया मातासे कहने लगा, माँ, मुझे भूख लगी है, पहले मुझे दूध पिला।

यशोदा साधक हैं, दधिमंथन साधन है, श्रीकृष्ण साध्य है। साधना ऐसी करो कि साध्य अपने-आप आ मिले। साधनातन्मय साधकको साध्य स्वयं जगाता है।

मनुष्य, साधारणतः, सच्चे हृदयसे साधना करता नहीं है, अतः वह भगवान्‌को देख नहीं पाता है। यदि तुम कन्हैयाके पीछे लग जाओ तो वह अवश्य मिलता है। कन्हैया तो जीवसे मिलनेके लिए स्वयं आतुर है किंतु जीव ही उसकी उपेक्षा करता रहता है। साधना ऐसी तन्मयतासे करो कि देहभान तक शेष न रहे और साध्य स्वयं तुम्हारे पीछे दौड़ने लगे।

यशोदाकी भक्ति देखकर कृष्णने पीछेसे आकर आँचल पकड़ लिया। तुम भी सेवा-साधनामें ऐसे डूब जाओ कि साध्य स्वयं तुम्हारे द्वारपर आ जाए। यही तो है पुष्टि भक्ति।

शरीरसे भक्ति करते समय आँखोंमें और मनमें श्रीकृष्णको बसाये रखो। यशोदा सर्वांग भक्ति करती हुई श्रीकृष्णका नाम जप रही हैं।

शरीरसे सेवा करोगे, वाणीसे कीर्त्तन करोगे और मनको श्रीकृष्णमें रमाए रहोगे तो तुम्हारे हृदयमें भी कन्हैया जाग जाएगा।

घरका सारा कामकाज कृष्ण-कीर्त्तन करते हुए ही करो। उनका कीर्त्तन करनेसे, आँखें खुली होनेपर भी जगत् भुलाया जा सकेगा।

योगीजन आँखें मूंद कर, ब्रह्मचिंतन करते हुए जगत्को भूलनेका प्रयास करते हैं फिर भी वे उसे भुला नहीं पाते।

वाणीसे कीर्तन, आँखोंसे दर्शन, शरीरसे सेवा करनेके कारण यशोदाके ह्रदयमें श्रीकृष्ण जाग गए।

प्रेमसे स्मरण करने पर हृदय द्रवित होता है और आनंद प्राप्त होता है। आनंद ब्रह्मका स्वरूप है। निद्रावस्थाके आनंदकी भांति जागृत अवस्थामें मुक्ति पाई जाती है।

कन्हैया घुटनोंके बल माताके पास आया और आँचल पकड़ कर कहने लगा, मुझे भूख लगी है, मुझे खानेको दो। अब यशोदा कामको अधूरा छोड़ना नहीं चाहती।

यह जीव बड़ा दुष्ट है। फिर भी भगवान् उसे धन-संपत्ति, प्रतिष्ठा देते हैं। जीव अधम है फिर भी भगवान् आशा रखते हैं कि वह कभी तो सुधरेगा।

भूखा कन्हैया रोने लगा। माताने काम छोड़ दिया और अपने पुत्रको गोदमें बिठलाकर दूध पिलाने लगी। दूधकी धारा बह चली। भक्तिमें हृदय द्रवित हो जाय तो आनंद अवश्य मिलता है और यह आनंद ही तो ईश्वर है।

क्या शुकदेवजी स्तनपानकी कथा कह रहे थे? श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यह कथा बालकको दूध पिलाने जैसी सामान्य नहीं है। यह तो ब्रह्मसंबंधकी कथा है। यशोदा जीव है और कन्हैया परमात्मा। माता-पुत्रका मिलन कैसा है, वह और कौन जान सकता है? यशोदा बालकको दूध पिला रही हैं, इतनी बात नहीं है। यह तो ब्रह्मसबन्ध स्थापित हुआ है। यह तो अद्वैतकी कथा है। माता यशोदा बालकृष्णको गोदमें लेकर परमात्माके साथ एक हो गई हैं।

यह तो जीव और ब्रह्मका मिलन है। ऐसे मिलनके समय बाहरके संसारको मनमें घुसने न देना। ब्रह्ममिलनके समय, ईश्वरमिलनके समय सांसारिक विषयोंसे दूर ही रहना। यशोदाका ब्रह्मसंबंध हुआ तब अलौकिक आनंदकी वृष्टि हो रही थी।

स्तनपान करते-करते कन्हैयाने सोचा, आज जरा माताकी कसौटी भी तो करूँ कि उसे मैं अधिक प्यारा हूं या यह संसार। उसे मुझसे ज्यादा लगाव है या सांसारिक व्यवहार से।

परमात्मा कसौटी किए बिना किसी भी जीवको अपना नहीं बनाते!

क्षुद्र मनुष्य दो-चार पैसोंके लिए भी पाप करता रहता है। छोटे-छोटे पाप मिल कर महापाप होता है। पाप न करना ही सबसे बड़ा पुण्य है।

कसौटीमेंसे पार उतरने पर परमात्मा कृपा भी करते हैं। वे सभी जीवको कसौटी करनेके बाद ही अपनाते हैं। वे चाहते हैं कि जीव उनसे सबसे अधिक प्रेम करे।

ईश्वरकी माला पहन लेनेके बाद यदि जीव दूसरोंसे प्रेम करने लगे तो ईश्वर अप्रसन्न हो जाते हैं। ईश्वर चाहते हैं कि जीव एकमात्र उन्हींसे प्रेम करे। प्रेम करने योग्य तो ईश्वर ही हैं क्योंकि जगत्के पदार्थोंका प्रेम कभी-न-कभी रुलाता ही है।

कन्हैयाने माताकी परीक्षा लेनेकी सोची। मैं अग्निको हवा दूंगा। वह प्रज्वलित होगी तो चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफन कर चूल्हेमें बहने लगेगा। अब यदि माता मुझे छोड़ कर दूधको बचाने दौड़ेगी तो मैं मान लूंगा कि उसे मैं नहीं, सांसारिक संपत्ति ही अधिक प्यारी है।

कई लोग सोचते हैं कि संसारव्यवहारके सभी काम अच्छी तरहसे पूरे होने पर भक्ति करेंगे। अरे, संसारका व्यवहार न तो कभी अच्छी तरहसे समाप्त हुआ है और न कभी होगा।

महापुरुषोंने कहा है, इस जगत्में हर तरहसे सुखी न तो कोई हुआ है और न कोई होगा और यदि सुखी होगा भी तो वह अपना गौरव गवाँ देगा।

संसारमें कठिनाइयाँ तो आती ही रहेंगी किंतु एक भी क्षण परमात्माका स्मरण न छोड़नेकी प्रतिज्ञा करनी होगी। ऐसा करने पर ही पापसे पुण्य बढ़ जाएगा। जब मनुष्यजन्म मिलता है तो पाप और पुण्य दोनों झेलने पड़ते हैं। दुःखद प्रसंग आने पर मनको समझाया जाय कि पाप घट रहा है।

कन्हैयाकी आज्ञासे अग्नि प्रज्वलित हुई और दूध उफनता हुआ बाहर बहने लगा।

इन साधु लोगोंको और कोई काम तो है नहीं। दिवसमें स्वादरहित अन्न एक बार खा कर सारा दिन राधेकृष्णका चिंतन करते रहते हैं। इस दूधके उफननेके प्रसंगके वे कुछ कारण इस प्रकार बताते हैं।

(१) वह दूध ऋषिरूपा गायका था। ऋषि तप और साधना करते-करते थक गए, फिर भी उनके मनमें बसे हुए कामका नाश नहीं हो पाया। उस बुद्धिवासी कामका नाश करनेके लिए ऋषि गायोंका रूप लेकर गोकुलमें आ बसे थे। दूध कन्हैयाके उदरमें जाना चाहता था। यदि श्रीकृष्ण मेरा आहार करेंगे तो मेरा कल्याण होगा। जड़ पदार्थ भी भगवान्की इच्छा रखते हैं। कामीके उपयोगमें आने पर भोगविलाससे पदार्थका विनाश होता है।

तुम स्वयं यदि कृष्णके उदरमें—हृदयमें बस पाओगे या उनको तुम अपने हृदयमें बसा पाओगे तभी तुम्हें शांति मिलेगी। योगीजन परमात्माके स्वरूपमें मिल जाते हैं। वैष्णव श्रीकृष्णको अपने स्वरूपमें उतार देते हैं। दोनों मार्ग एक ही हैं।

यदि यशोदाजी कृष्णको बहुत स्तनपान कराएँगी तो उसे भूख नहीं रहेगी और वे मेरा आहार नहीं करेंगे। यदि भगवानकी सेवा मैं नहीं कर पाऊँगा तो मेरा अस्तित्व वृथा ही रहेगा। अतः मुझे तो अग्निमें कूद कर अपने-आपको समाप्त कर देना है।

जीना है उसका भला जो इन्सानके लिए जिये,
मरना है उसका भला जो अपने लिए जिये।

अपने लिए जीना कोई जीना नहीं है। ऐसे तो कौआ भी अच्छा है जो अपने कुटुम्बके लिए ही जीता है, अपने भाइयोंको भी बुलाता है, पर नहीं, परोपकारके लिए जीना ही जीना है।

स्वयं सुखोपभोग करनेकी वासना भक्तिके लिए बाधक है, औरोंको सुखी करनेकी भावना भक्तिसाधक है।

समयका नाश, सर्वस्वका नाश है।

दूधने मान लिया कि कन्हैया मुझे नहीं पियेगा सो वह अग्निमें कूदने लगा।

(२) दूध चाहता था और मानता था कि यशोदा थोड़ा-सा अपना दूध पिलाएगी और भूख बाकी रह जाएगी तो कृष्ण उसे पियेगा किंतु लाला तो माताका दूध ही पिये जा रहा था। दूधने सोचा कि लाला मुझे नहीं पियेगा। तो वह 'मुझे भी पी, मुझे भी पी' ऐसी विनती करता हुआ बर्तनसे बाहर दौड़ पड़ा।

(३) तो एक महात्मा कहते हैं—दूध यशोदाजीके घरका था, अतः उसे कृष्णकीर्तन, कृष्णकथाश्रवण, सत्संगका लाभ मिला था। एक करोड़ जपमाला दिव्यताका संचार करती है तो दूध स्वयं कन्हैयाके घरका वासी था और वह दूध तो ऋषिरूपा गायका था। दूधने बाल-कृष्णका दर्शन पाया तो वह उनसे मिलनेके लिए आतुर होकर, अधीर होकर दौड़ पड़ा।

ऐसी लीला तो सभीके घरमें रोज-रोज होती रहती है। विषय-सुखका छलकना ही तो दूधका छलकना है। दूधका उफान विषयसुखोंकी याद है। संसारके सुखोंका उपभोग इस प्रकार करो कि मन उनसे चिपक न जाय, याद बाकी न रह जाय। ठाकुरजीकी सेवा करनेके समय विषय-सुखोंकी याद आना दूधके छलकने जैसा ही है और ऐसा होने पर भक्ति मिट जाती है।

आज लोगोंको घरका कामकाज करते समय कुछ भी याद नहीं आता है, किंतु माला हाथमें लेते ही घर-गृहस्थीके सभी झंझट मनमें उभर आते हैं। कुछ प्राप्त करनेका समय निकट आते ही साधकके मनमें संसार आ खड़ा होता है। परीक्षा लेनेके हेतु ही कन्हैया ऐसी माया रचता रहता है। ब्रह्मसंबन्ध होनेके समय वासनाकी याद, दूधके छलकनेकी भाँति, आनी नहीं चाहिए। प्रभुस्मरण करते-करते विषयसुखोंका स्मरण हो आने पर भगवान् विस्मृति-के अँधेरेमें छिप जाते हैं।

सेवा करते-करते जगत्की याद आना या करना इष्ट नहीं है। लोग डाकोरके रणछोड़-रायजीको याद नहीं करते किंतु वहाँका गोटा (एक खाद्य विशेष) याद करते रहते हैं। डाकोरजीकी सुन्दरताकी नहीं, गोटाके स्वादकी याद सताती रहती है।

ईश्वरकी सेवा करते-करते यदि विषयसुख याद आ जाए तो मान लेना कि दूध छलकने लगा है। सेवाके समय आँखें, कान और मन किसी औरको न दो, किसीसे बातचीत न करो। आँखें झुकाकर 'जय श्रीकृष्ण' कह कर अपनी सेवामें लगे रहो। यदि इस समय किसीसे नजर मिलाओगे तो मन चंचल हो जाएगा, सेवाका काम अधूरा छूट जाएगा।

(४) एक अन्य महात्माने कुछ इस प्रकार कहा है। यशोदाजीको वैसे तो कन्हैया ही अधिक प्यारा था किंतु चूल्हे पर जो दूध था वह गंगी नामकी गायका था। कन्हैयाको इस गायका दूध बड़ा पसंद था और वही पीता था। सो यशोदाने सोचा कि यदि यह दूध छलक जाएगा और कन्हैया गंगी गायका ही दूध माँगेगा तो मैं उसे क्या पिलाऊँगी। इस प्रकार यशोदा दूधको बचानेके लिए नहीं, किंतु कन्हैयाके प्यारे भोजनको बचानेके लिए दौड़ी थी।

प्रियजनकी अपेक्षा प्रियजनकी वस्तु अधिक प्रिय लगती है।

(५) एक और महात्मा कुछ इस प्रकार कहते है—दूधने, परमात्माको यशोदाकी गोदमें देखा। ईश्वरदर्शनके बाद भी मुझे अग्निकी आँच सहनी पड़ती है। मेरा दुःख, ताप अभी तक कम नहीं हो पाया है। मेरे पाप बहुत हैं। मैं जीने योग्य नहीं हूँ। मुझे अग्निमें कूद कर मर ही जाना चाहिए। ऐसा सोच कर दूध छलकने लगा।

यशोदाजी लालाको एक ओर लिटा कर चूल्हे पर दूधका बर्तन उतारने दौड़ी।

जीव भी बड़ा विचित्र है। अपना व्यावहारिक कार्य करते समय ईश्वरको याद करता रहता है किंतु जब ईश्वर उसकी गोदमें आ बैठते हैं, ईश्वरसे संबंध जुड़ जाता है, तब वह ईश्वरको एक ओर रख कर, छोड़ कर, उस सांसारिक कार्यके पीछे दौड़ लगाता है। ब्रह्मसंबन्ध होने पर संसारका स्मरण हो आना तो उस दूधका छलकना ही है। कई लोग माला तो फेरते हैं किंतु उनका मन तो साग-सब्जीकी खरीदमें, घर-गृहस्थीकी चिंतामें लगा होता है। ऐसे जपमें प्रभुका नहीं, उन वस्तुओंका जप होता रहता है।

वियोगमें अपेक्षाका जागना गुणदर्शन है। संयोगमें उपेक्षाका भाव दोषदर्शन है। कन्हैया दूर था तो यशोदा उसे गोदमें उठानेके लिए लालायित थी और अब गोदमें आया तो उसकी उपेक्षा करके दूधके पीछे भागने लगी।

सुलभ वस्तुकी उपेक्षा करना तो जीवका स्वभाव ही है। भगवान्ने सोचा कि यशोदाने कई व्रत-जप किए तो मैं उसे मिला। किंतु अब सेर, दो सेर दूधके लिए मुझे छोड़ चली है।

लालाको छोड़कर यशोदाजी सांसारिक काम करने गई। लालाने सोचा कि माताको वह नहीं, संसार ही अधिक प्यारा है। तो माताको सीख देनेके हेतु लालाने पत्थर मार कर एक मन दहीका घड़ा फोड़ दिया।

श्रीमहाप्रभुने आज्ञा की है कि श्रीकृष्णकी सेवा लौकिक भावसे कभी न करना। अलौकिक सेवा छोड़ कर लौकिक कार्य सुधारने जाओगे तो भगवान् उसे और बिगाड़ेंगे।

प्रभुको अलौकिक और लौकिक दोनोंकी चिंता है। उनको हमारी बड़ी चिंता रहती है। यदि मनुष्य चिंता करके अपने हृदयको जलाता रहेगा तो मेरा क्या होगा, ऐसा वे सोचते हैं।

मैं समर्थ हूँ और मेरा स्वामी तो सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान है, ऐसा मान कर, निश्चिंत होकर भगवान्का स्मरण, मनन, चिंतन करते रहो।

भगवत्-स्मरण, सेवा करते समय घरमें यदि कुछ नुकसान हो रहा हो तो होने दो। तन ठाकुरजीके पास हो और मन रसोईघरमें, तो वह सेवा, सेवा कैसे कही जाएगी?

भगवत्-सेवाको अधूरी छोड़ कर लौकिक काम सुधारने जाओगे तो वह और भी बिगड़ेगा। इसीलिए तो श्रीकृष्णने दहीका घड़ा फोड़ दिया।

श्रीकृष्णने विषयासक्ति रूपी घड़ा फोड़ दिया। यशोदाकी विषयासक्ति नष्ट करनेके हेतु दहीका बर्तन फोड़ दिया।

संसारासक्तिके नाशके बिना भगवद्-प्रेम नहीं उत्पन्न होता।

हरि पर विश्वास रख कर ईश्वरसेवा, श्रीकृष्णभक्ति करनी चाहिए। श्रीकृष्णभक्ति, प्रभुसेवा करनेवालेकी लाज प्रभु हमेशा रखते हैं।

> हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे,
> जेनी सुरता शामलिया साथ वदे वेद वाणी रे।...हरिने.
> वहाले उगार्यो प्रह्लाद, हिरणा, कंस मार्यो रे,
> विभीशणने आप्युं राज, रावण संहार्यो रे।..,हरिने.

वहाले नरसिंह मेहताने हार हाथो हाथ आप्यो रे,
ध्रुवने आप्युं अविचल राज, पोतानो करी स्थाप्यो रे।...हरिने.
वहाले मीरां ते बाईनां झेर हलाहल पीधां रे,
पांचालीनां पूर्या चीर, पांडव काम कीधां रे।...हरिने.
आवो हरि भजवानो लहावो, भजन कोई करशे रे,
कर जोड़ी कहे प्रेमलदास, भक्तोनां दुःख हरशे रे।...हरिने.

जब तक संसारासक्ति नहीं जाती तब तक भगवद्भक्ति सिद्ध नहीं होती।

संसारके विषयभोगोंसे कभी तृप्ति नहीं मिलेगी । लोग साग-सब्जी और चटनी-अचारमें तेलकी धार करते हैं। तेलसे सराबोर होने पर ही वे चावसे खाते हैं । अब जरा सोचो, आज तक हमारे पेटमें तेलके न जाने कितने डिब्बे पहुँच गए और अनाजकी भी अनगिनत बोरियाँ हमारे उदरने स्वाहा कर लीं, फिर भी हम तृप्त हुए हैं क्या ?

ईश्वरको ताक पर रख कर लौकिक कार्योंमें लगे रहना बिलकुल अच्छा नहीं है । सांसारिक कार्योंके पीछे यदि इसी प्रकार लगे रहोगे तो वे और भी बिगड़ते जाएंगे।

इतनेमें कुछ बालमित्रोंने आकर कन्हैयासे पूछा, लाला, आज कौनसे घरको निशाना बनाना है हमें ? कन्हैयाने कहा, आज तो अपने ही घरका माखन हमें उड़ाना है। आज भगवान् अपने ही घरका दही-माखन खिला रहे हैं।

किए हुए उपकारोंको भगवान् कभी नहीं भुलाते । रामावतार बानरोंने उनकी बड़ी सेवा की थी सो श्रीकृष्ण आज उनको भी दही-माखन खिला रहे हैं।

यशोदाने वापस आ कर देखा तो मटकी फूटी हुई थी, दही इधर-उधर बिखरा हुआ था और कन्हैया गायब था। कन्हैयाने रूठ कर यह पराक्रम किया था। लाला छींकेपरसे माखन उतारकर बालमित्रोंको और वानरोंको खिला रहा था।

वानर अर्थात् मन। मन वानर-सा चंचल है किंतु श्रीराम और श्रीकृष्णके सामने तो वह हाथ जोड़ कर सिर नवा कर खड़ा रह जाता है। उनके बिना चंचल मन-वानर शांत नहीं होता। वानर फलाहार करते हैं और निर्वस्त्र रहते हैं। वे तो साधु जैसे हैं । कन्हैया उन्हें माखन खिला रहा है।

यशोदाने लालाको चोरी करते हुए देखा तो मान लिया कि गोपियोंकी बात सच्ची थी। लालाको चोरी करनेकी आदत है। लालाको पकड़ कर बाँधना होगा। जिस ओखली पर वह खड़ा है, उसके साथ ही मैं उसे बाँध दूंगी। यशोदा लकड़ी लेकर कृष्णके पीछे दौड़ीं।

मित्रोंने लालासे कहा, माँ आई, भागो। आगे लाला दौड़ रहा है और उसके पीछे यशोदा। जिस ईश्वरको योगी पकड़ नहीं पा रहे हैं, उन्हींको पकड़नेके लिए यशोदा दौड़ रही हैं। यशोदा दौड़ते-दौड़ते थक कर चूर हो गईं फिर भी कन्हैया हाथ नहीं आया । ऐसा क्यों हुआ ?

श्रीधर स्वामी कहते हैं—अपनी एक भूलके कारण यशोदा उस कन्हैयाको पकड़ नहीं पाती थीं। कृष्णके पीछे दौड़नेके समय यशोदाकी दृष्टिमें कृष्णका मुखारविंद और चरणकमल नहीं, पीठ थी। तृतीय स्कंधमें कहा गया है, लालाकी पीठमें अधर्म है। अधर्म वहींसे उत्पन्न हुआ है। अधर्मको दृष्टिमें रख कर दौड़नेवाला ईश्वरको कैसे पकड़ पाएगा ?

भक्ति, धर्मकी मर्यादामें रह कर करो। भक्ति धर्मानुकूल होनी चाहिए। भक्तिमें अधर्म आया नहीं कि वह भ्रष्ट हो गई। कर्ताने जिसे जो कर्तव्य दिया है, उसको बराबर निभाया जाय। जो अपना कर्तव्य, अपना धर्म छोड़ देता है उसकी भक्ति सफल नहीं हो पाती। संध्याकर्म किए बिना सेवा करनेवाले ब्राह्मणकी सेवा ईश्वर कभी नहीं स्वीकारते। यदि घरमें पतिदेव बीमार हैं और उनकी उपेक्षा करके स्त्री मंदिर जाए तो उसकी भक्ति, पूजा भगवान् क्यों स्वीकार लेंगे ? अपने पति और संतानकी उपेक्षा करके कथा-कीर्तन करनेवाली या मंदिर जानेवाली स्त्रीकी सेवा कभी सफल नहीं होती।

प्रभु कहते हैं, मुझे कर्तव्यकी, धर्मकी मर्यादा बड़ी प्रिय है। उनकी भक्ति करते समय कर्तव्य और धर्मकी सभी मर्यादाओंका पालन करना ही चाहिए।

यशोदा लालाको पकड़ नहीं पा रही है क्योंकि वह (भक्ति) अधर्मके पीछे दौड़ रही है।

एक महात्मा दूसरा ही कारण बताते हैं। यशोदाके हाथमें लकड़ी थी। लकड़ी लिए पकड़ने वह दौड़े, यह लालाको पसंद नहीं है, उसे डर लगता है। लकड़ी अभिमानका प्रतीक है। पुष्टि संप्रदाय तो लालाकी सेवा करनेको कहता है। लकड़ी लेकर दौड़नेका अर्थ है, अभिमानको साथ लेकर दौड़ना। अभिमानी सेवा नहीं कर सकता। कृष्ण कहते हैं, अपना अभिमान छोड़ कर ही मेरे पास आना।

तो वल्लभाचार्यजी कहते हैं, भक्ति यदि अभिमानको अपने साथ ही ले कर भगवान्को पाने चलेगी तो सफल नहीं होगी। यशोदाजी बुद्धि-भक्ति-लकड़ी-अभिमानको लिए हुए कन्हैयाको पकड़ने चली हैं सो पकड़ नहीं पा रहीं।

सत्कर्म किए जानेके बाद भी यदि आंतरिक अभिमान बढ़ता जाता हो तो वह सत्कर्म किस कामका ? भगवान् सभी दोषोंको क्षमा करते हैं किंतु अभिमानको नहीं। अभिमान होनेसे भगवान्की उपेक्षा होती है। अभिमान करने जैसा जब कुछ है ही नहीं फिर हम अभिमान करें ही क्यों ? राजाको रंक बनते, रंकको राजा बनते, लाखको खाक होते कुछ देर नहीं होती। अभी तो बहुत-सा वैभव है और कुछ ही क्षणोंमें 'अच्युतम् केशवम्' भी हो जाता है। फिर भी हम अभिमान क्यों करते हैं ?

यशोदा दौड़ते-दौड़ते थक गईं फिर भी कन्हैया हाथ न लगा। अब लकड़ी भी बोझ-सी लगने लगी। उन्होंने लकड़ी फेंक दी। कन्हैया भी तो यही चाहता था कि माता लकड़ी-अभिमान छोड़ दे। माताने लकड़ी फेंक दी तो कन्हैया न केवल रुक गया अपितु वापस आने लगा। यशोदाने श्रीकृष्णका मुख देखा। मुख-दर्शन हुआ और लाला पकड़ा गया। लालाके मुखमें धर्म निहित है।

त्यक्त्वा यष्टिं।

माता यशोदाने लकड़ी-अभिमानका त्याग किया, साधनरहिता हुयीं तो कन्हैया पकड़ा गया। व्यवहारमें, भक्तिमें दैन्यभावकी आवश्यकता है। जब तक जीव अहंता-ममताको नहीं छोड़ता तब तक भगवान् मिल नहीं पाते। जब तक 'मैं' कायम हैं तब तक भगवत्-दर्शन हो नहीं पाता। जहां 'मैं' है वहाँ हरि नहीं है।

कन्हैया रोने लगा तो माताने कहा, हाँ, मुझे खबर है कि झूठ-मूठ रो रहा है।

बाल-मण्डलीको दुःख हुआ कि उसका अध्यक्ष पकड़ा गया। सभी बालक यशोदाके पास आए और कहने लगे, माताजी, लालाको बांधना मत। उसने कुछ भी नहीं खाया है। सारा माखन हमींको खिला दिया है। उसका दिल तो बड़ा कोमल है। यशोदाने सोचा, सभीके चहेते कन्हैयाको बांधना ठीक तो नहीं है फिर भी मैं करूं तो क्या करूं? लालाकी चोरीकी आदत छुड़ानी जो है। कुछ समय उसे बाँधकर रखूँ, फिर छोड़ दूंगी। यशादाने सभी बालकोंको भी डाँटा। बालकोंने सोचा कि यशोदा लालाको पीटेगी। सो वे न बाँधने और न मारनेकी विनती करने लगे।

यशोदा कन्हैयाको मूसलके साथ बांधने लगी।

उधर सभी बालक दौड़ते हुए अपने-अपने घर पहुँचे और अपनी-अपनी मातासे कहने लगे, माँ, यशोदा कन्हैयाको बाँधकर मारने जा रही है।

सभी गोपियां दौड़ती हुयीं यशोदाके घर आयीं और कहने लगीं, माताजी, जब तुम्हारा पुत्र नहीं था तब पुत्रके लिए तरस रही थीं और आज उसे बांधकर मारने चली हो। हम गरीब हैं। लाला हमारे यहाँ आकर रोज मटकी फोड़ता है, दधि-माखन लुटाता है फिर भी हमने कभी उसको बाँधनेकी सोची तक नहीं है। हम तुम्हें पांच मटकी भरकर दही देंगी। तुम उसे छोड़ दो। उसने एकाध मटकी फोड़ भी दी तो क्या हुआ? उसे छोड़ दो।

किंतु आज यशोदा आपेसे बाहर हो गयी थी। उसने गोपियोंसे कहा, लड़का मेरा है, मैं चाहे सो करूँगी। तुम कौन होती हो बीचमें बोलनेवाली?

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—राजन्! कालके भी काल श्रीकृष्ण आज माताका क्रोध देखकर काँप रहे हैं।

यशोदाजी बालकृष्णको मूसलसे बांधने लगीं। अब अचरजकी बात यह हुई कि उन्होंने डोरियाँ आजमायीं किंतु सबकी सब दो अंगुलीभर छोटी निकलीं। एक-दूसरेके साथ जोड़ती गयीं तो भी दो अंगुल भर छोटी ही रहती थीं।

तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद् यदादत्त बन्धनम्॥ भा. १०-९-१६

एकके साथ दूसरी, दूसरीके साथ तीसरी इस प्रकार बहुत-सी डोरियाँ जोड़ी गयीं किंतु दो अंगुल भर छोटी ही रहती थीं।

श्रीकृष्णके स्पर्श होनेके कारण मानों, डोरीका स्वभाव बदल जाता था।

यज्ञ करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे स्वभाव सुधरता नहीं है किंतु जो हृदयपूर्वक भगवान्का ध्यान करता है, जो मनसे परमात्माको मिलता है उसीका स्वभाव बदलता है। भगवत्-स्पर्शके बिना स्वभाव नहीं बदलता। ब्रह्मसम्बन्धके बाद और कोई बन्धन हो भी सकता है क्या?

डोरीने बाँधनेका स्वभाव छोड़ दिया। डोरियोंको श्रीकृष्ण पर दया आयी। वैष्णव कहते हैं कि डोरीमें ऐश्वर्यशक्तिने प्रवेश किया था। जहाँ ईश्वर है, वहाँ ऐश्वर्य भी है। ऐश्वर्य-शक्तिको दुःख हो रहा है कि एक साधारण ग्वालिन प्रभुको बाँध रही है।

गोपियाँ यशोदासे कहने लगीं, माँ, चाहे कुछ भी कहे तू, किंतु इस लालाके भाग्यमें बंधन लिखा ही नहीं है। वह तो हम सबको सांसारिक बंधनोंसे छुड़ानेके लिए ही आया है।

ऐश्वर्यशक्ति परमात्माको स्वामी मानती है। वात्सल्यभक्ति परमात्माको बाँधने चली है। ऐश्वर्यशक्ति अपने पतिको बंधनमें देख नहीं सकती। ऐश्वर्य और वात्सल्य शक्तिका यह मीठा झगड़ा है। प्रभुने ऐश्वर्यशक्तिसे कहा, मैं यहाँ गोकुलमें ईश्वर नहीं, यशोदाका बालक मात्र हूं। मैं द्वारिका तेरा पति होकर आऊँगा। तू चली जा। माताको बाँधनेकी इच्छा है तो बाँधने दे। गोकुलमें प्रेमका प्राधान्य है और द्वारिकामें ऐश्वर्यका। अबमें तेरी आवश्यकता नहीं है।

गोकुल लीलामें वात्सल्य भाव और पौगंड़ लीलामें सख्य भाव प्रधान है। गोपी-लीलामें माधुर्य भाव मुख्य है।

तो ऐश्वर्यशक्तिने डोरीसे बिदाई ली। घरमें जितनी भी डोरियाँ थीं, सभी समाप्त हो गयीं। फिर भी कन्हैया बँध नहीं पाया। यशोदाजी आश्चर्यमें डूब गयीं और गोपियाँ हास्यमें। गोपियाँ, मानों कह रही थीं, भगवान् इस तरह कभी बँधते भी हैं?

भगवान् सभीसे कह रहे हैं—हमारे बीच मात्र दो अंगुल भरका अन्तर है। ये दो अँगुलियाँ हैं अहम् और ममता। जिसके मनमें अहम् और ममता शेष है, वह मुझे कभी बाँध नहीं सकता।

परमात्माको त्रिगुणात्मक माया-डोरी बाँध नहीं सकती। भगवान् तो केवल प्रेम-डोरीसे बँधते हैं और वह भी उनकी इच्छा होने पर ही।

श्रीकृष्णने देखा कि माता थककर पसीना-पसीना हो रही है तो दयावश होकर बंधनमें बँध गए। भगवान् कहते हैं, जब मैं कृपा करता हूँ तभी बँधता हूँ।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽसीत् स्वबंधने।

भगवान् लौकिक डोरीसे नहीं, प्रेमकी डोरीसे ही बाँधे जा सकते हैं।
भक्तोंके प्रेमके सिवाय और कुछ भी मुझे बाँध नहीं सकता।
जबतक ईश्वर कृपा नहीं करते, तबतक उसे कोई भी जीव बाँध नहीं पाता।
कृष्ण स्वेच्छासे बँध गए।

जीव अपने स्वार्थके हेतु विविध बंधनोंमें फँसता रहता है। परमात्माने निःस्पृह होनेपर भी आज बंधनको स्वीकार किया।

जब भगवान् बँधते हैं तब जीव बंधनमुक्त हो जाता है, उसका उद्धार हो जाता है।
ज्ञान और योग नहीं, शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति ही ईश्वरको बाँध पाती है।
ईश्वर जबतक प्रेमडोरसे बँध नहीं पाते, तबतक जीवका मायाका बंधन छूट नहीं पाता।
ईश्वरको उनके पेटपरसे बाँधा गया सो उनका नाम दामोदर पड़ गया।
दामोदर भगवान्की जय।

जब तक परमात्माको प्रेमसे बाँधा न जाय, तब तक संसारका बंधन बना रहता है।

जो ईश्वरको बाँध सकोगे तो जन्ममृत्युके बन्धनसे छुटकारा होगा। जो ईश्वरको बांध सकता है, वह स्वयं छुट जाता है।

ईश्वर सर्वश्रेष्ठ क्यों हैं? कारण यह है कि वे अपना कोई आग्रह या ममता नहीं रखते। जीव आग्रही होता है, ईश्वर अनाग्रही। जीव दुराग्रही है, अपनी जिद छोड़ता ही नहीं है। जीव यदि अनाग्रही बन सके तो वह ईश्वर बन सकता है।

भगवान् भक्तोंके आग्रहके आगे झुक जाते हैं। भक्तोंके आग्रहका वे आदर करते हैं। जीव अपना आग्रह गलेसे चिपकाए रखता है।

माताके परिश्रमको देखकर कन्हैया बंध गया। इस प्रकार उन्होंने बताया है कि वे भक्ताधीन हैं। ईश्वरने अपना आग्रह छोड़ दिया।

भीष्म पितामहकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके हेतु, श्रीकृष्णने अपनी प्रतिज्ञा भंग करके शस्त्र धारण किए थे। वे हाथमें चक्र लेकर भीष्म पितामहको मारने दौड़े। इस दृश्यको देखकर भीष्मने भावविभोर होकर धनुष-बाण फेंक दिए और बोले, वाह, मेरे प्रभु! धन्य है! मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए आपने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी।

पूर्ण प्रेमके बिना परमात्मा बंध नहीं पाते। मनुष्यका प्रेम कई हिस्सोंमें बँटा हुआ होता है। वह पत्नी, संतान, धन, संपत्ति, बनावसिंगार सभीसे प्रेम करता है। यदि वह अपना सारा प्रेम भगवान्को ही दे तो भगवान् बंध सकते हैं।

दामोदर लीलाके द्वारा भगवान् बतलाते हैं कि जब तक जीव ममता और अहम् छोड़ता नहीं है तब तक दो अंगुल भर अन्तर बना ही रहता है। इस प्रकार वे जीवको मिल नहीं पाएंगे।

बालकृष्णने दयावश सोचा कि यदि मुझे बाँधनेसे माता प्रसन्न हो रही हो तो भले मुझे बाँध ले। बालकृष्ण बंध गए और यशोदाकी इच्छा पूरी हुई।

परमात्माको ज्ञानी पुरुष बाँध सकता है और भक्त प्रेमसे बाँध सकता है। बिल्वमंगल जैसे भक्त भगवान्को हृदयमें बंद कर देते हैं।

अंधे बिल्वमंगल चलते-चलते मार्गमें एक गड्ढेमें फिसल पड़े। श्रीकृष्णने गोप-बालकका रूप धारण कर उनको हाथ पकड़कर बाहर निकाला। श्रीकृष्णके कोमल हस्त-स्पर्शसे बिल्वमंगलको लगा कि यह साक्षात् भगवान् हैं। उसने परिचय पूछा तो अपनेको एक गोप-बालक बताकर कृष्ण भागने लगे।

बिल्वमंगलने कहा, मेरा हाथ छोड़कर तो तुम जा रहे हो किंतु मेरे हृदयसे भी भाग निकलो तो जानूं। मैंने तुम्हें अपने हृदयमें बंद कर लिया है—

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानिके मोहि।
जब हृदयसे जाहुगे, सबल कहौंगो तोहि॥

दामोदर लीलाके वर्णनमें महाप्रभुजी पागलसे हो गए हैं। वे कहते हैं कि ज्ञान और तप पर भक्तिकी विजयकी कथा है यह।

श्रीकृष्णके मथुरागमनके समय यशोदाजीने उनसे बिनती की कि उस डोरीसे बांधनेका प्रसंग भूल जाना। मनमें न रखना। श्रीकृष्णने कहा, मैं तो कबका भूल चुका हूँ, किंतु तुम भी भूल जाना। मैं तो यही याद रखूंगा कि तुमने कभी मुझे प्यारकी डोरसे बाँधा था। मैं द्वारिकाधीश बनूंगा, छप्पन कोटि यादवोंका सम्राट् बनूंगा, सोलह हजार रानियोंका पति बनूंगा, फिर भी मैं तो तेरे प्यारके बंधनमें बँधा रहूँगा। तेरे सिवा मुझे और कौन बाँध सकता है ? मुझे और कोई भी बाँध नहीं पाएगा। मैं किसी औरका नहीं, सोलह हजार रानियोंका नहीं, केवल तेरा हूँ। तेरे प्रेमके बंधनको मैं सदा याद रखूंगा। तेरा प्रेम मैं कभी भूल नहीं सकता।

इस चरित्रमें यशोदाकी विजय है। ज्ञान-तपश्चर्या नहीं, भक्तिकी विजय है। अपने तपके प्रभावसे ज्ञानीजन परमात्माका दर्शन तो पा लेते हैं किंतु उन्हें बाँध नहीं पाते। तपस्वी भगवान्‌को पहचान सकते हैं, बाँध नहीं सकते। मात्र विशुद्ध भक्ति ही उनको बाँध सकती है। इसीलिए तो भगवान् कहते हैं—मैं मुक्ति तो देता हूँ किंतु भक्ति नहीं देता। यदि भक्ति दान करूँ तो मुझे ही बँधना पड़ेगा।

एक बार भक्त दामाजी कर न चुका सके तो यवन सैनिक उनको बाँध कर राज दरबारमें ले जाने लगे। दामाजीने सैनिकोंसे प्रार्थना की कि मार्गमें मुझे पंढरपुरके विट्ठलनाथजीका दर्शन कर लेने दो। सैनिक उन्हें मंदिरमें ले गए। अपने भक्तकी ऐसी दयनीय दशाको देख कर विट्ठलनाथजी द्रवित हो गए। अरे, मेरा दामा बंधनोंमें जकड़ा हुआ है।

तो विट्ठलनाथजी एक हरिजनका रूप लेकर राज दरबारमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपना नाम विठ्ठू चमार बतलाया और दामाजीकी सभी बाकी भर देनेकी इच्छा व्यक्त की।

इस प्रकार विट्ठलनाथजीने अपने भक्त दामाजीको बंधनमुक्त किया।

भगवान्‌ने दामाजीको भक्ति दी थी सो उनको चमारका रूप लेना पड़ा। भक्ति भगवान्‌को बाँधती है।

लालाको बाँधकर यशोदाजी रसोईघरमें तो गईं किंतु उनका मन तो लालामें ही लगा था। कन्हैयाको बाँध कर अच्छा तो नहीं किया है किंतु मैं करूँ भी तो क्या करूँ ? उसकी चोरीकी आदत भी तो छुड़ानी है।

लाला बंधनमें है सो सभी बालक भी वहीं बैठे हुए हैं। लाला, हमारे कारण तुम्हें बँधना पड़ा। तुम्हें कहीं पीड़ा तो नहीं हो रही है ? लालाने सोचा कि यदि हाँ कहूँगा तो सभीको दुःख होगा। सो उसने कहा, नहीं रे, मैं तो परिहास कर रहा हूँ।

जिस प्रकार वैष्णव प्रभुको दुःख न होने देनेके लिए सावधान रहते हैं, उसी प्रकार प्रभु भी वैष्णवको दुःखी न होने देनेके लिए सावधान रहते हैं।

श्रीकृष्णने सोचा कि आज बैलगाड़ीकी लीला करनी है। मैं बैल बनूँ और मूसल गाड़ी। इस मूसलको मैं बैलगाड़ीकी भाँति खींचूँगा और लाला वैसा ही करने लगा।

भगवान् दामोदर चाहते हैं कि उनको चाहे बंधनमें बँधना पड़े, अन्य कई जीवोंको तो वे बंधन-मुक्त कर ही देंगे।

यशोदा पुष्टि भक्ति है। पुष्टि भक्ति भगवान्‌को बाँधती है। जब वे बँध जाते हैं तब जीव मुक्त हो जाता है। जब तक उनको प्रेम-डोरसे बाँधा नहीं जाय, मायाका बंधन नहीं टूटेगा। ईश्वरको प्रेमसे बाँधो।

नवें अध्यायमें बंधन लीला है, दशवें अध्यायमें मोक्ष लीला—यमलार्जुन मोक्ष कथा है।

लाला मूसलको खींचता हुआ उन दो यमलार्जुन वृक्षोंके बीचसे आगे बढ़ा। मूसल दो वृक्षोंके बीचमें टेढ़ा हो गया। लालाने डोरको इतने जोरसे खींचा कि मूसलने उन दोनों वृक्षोंको उखाड़कर गिरा दिया।

यमलार्जुन वृक्ष गिरते ही दो तेजस्वी पुरुष प्रकट हुए। ये पुरुष अपने पूर्वजन्मोंमें राजा कुबेरके पुत्र थे—नलकुबेर और मणिग्रीव। इन दो लक्ष्मीनंदन यक्षोंको नारदजीके शापके कारण वृक्षोंका अवतार लेना पड़ा था।

परीक्षितने पूछा—नारदजीने उनको शाप क्यों दिया था?

शुकदेवजी वर्णन करने लगे—राजन्! सुनिए, नारदजीने क्रोधवश नहीं, कृपापूर्वक उन्हें शाप दिया था।

नलकुबेर और मणिग्रीव कुबेरके पुत्र थे। पिताकी अपार संपत्ति उन्हें मिल गई। संपत्तिका अतिरेक अच्छा नहीं है।

संपत्तिका अतिरेक द्यूत (जुआ), व्यभिचार, मांसमदिरा आदि दुर्गुणोंका जन्मदाता है। संपत्तिकी अतिशयता और सन्मति प्रायः साथ-साथ रह नहीं सकते। संपत्तिका अतिरेक होने पर लोग तामस आहार, मदिरापान, व्यभिचार आदि दुर्गुणोंमें फँस जाते हैं और सद्‌वर्तनका उच्छेद-सा हो जाता है।

पति-पत्नीका संबंध केवल काम-सुखके लिए नहीं, धर्माचरणके लिए है। सुशीला पत्नी अपने पतिको पापाचार करनेसे रोकती है।

ये दोनों कुबेर-पुत्र धनके मदमें सुधबुध खो बैठे थे। मदिरापान करके गंगा-किनारे आए और गंगाके पवित्र जलमें युवती स्त्रियोंके साथ नग्नावस्थामें जल-क्रीड़ा करने लगे।

विलासी तो तीर्थकी मर्यादाका भी पालन नहीं करता है। महाप्रभुने बड़े दुःखसे कहा है, जबसे विलासी लोग तीर्थमें बसने लगे हैं, तबसे देवगण तीर्थमेंसे विदा हो गए हैं।

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह ।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥

अब देवर्षि नारदजी वहींसे जा रहे थे तो उनको ऐसा दृश्य देखकर दुःख हुआ। नारदजीको देखकर भी उन्होंने अपने शरीरको नहीं ढँका। नारदजीने सोचा, इतना सुंदर शरीर मिला है, फिर ये उसका दुरुपयोग ही कर रहे हैं।

यह शरीर भगवान्‌का है, भगवान् ही की सेवा करनेके लिए जीवको दिया गया है।

नारदजी कहते हैं, इस शरीरकी अंतमें क्या दशा होगी? या तो इसे पशु-पक्षी खा जायेंगे या फिर यह खाकका ढेर बन जाएगा।

संपत्तिके मदमें लोग अपने शरीरको अजरामर मानने लगते हैं और अन्य लोगों तथा प्राणियोंको सताने लगते हैं ?

यह शरीर है किसका ? इस पर किसका अधिकार है ? क्या यह माताका है ? क्या पिताका है ? क्या यह शरीर अपना है ?

पिता—मेरे वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण यह शरीर मेरा है।

माता—मेरे गर्भमें जन्मा था, अतः मेरा है।

पत्नी—इस शरीरको अपना बनानेके लिये तो अपने माता-पिताको छोड़ कर यहाँ आई हूँ। इसके साथ मेरा विवाह हुआ है। वह मेरा अर्धांग बना है। अतः यह शरीर मेरा ही है।

अग्नि—यदि इस शरीर पर माता-पिता-पत्नीका अधिकार है तो प्राण-निर्गमनके पश्चात् वे इसे अपने ही पास रखनेके बदले बाहर क्यों निकाल देते हैं ? इस शरीर पर मेरा ही अधिकार होनेके कारण तो इसे श्मशानमें लाकर मुझे सौंप दिया जाता है।

शृगाल-कुत्ता—अग्नि-संस्कार न किए जाने पर यह शरीर हमें खानेको मिल जाता है, अतः उस पर हमारा भी तो अधिकार है।

इस प्रकार इस शरीर पर हर कोई अपना अधिकार जमाता है। कुछ समझमें नहीं आता कि इस पर वस्तुतः किसका अधिकार है।

प्रभु कहते हैं—यह शरीर किसीका भी नहीं है। मैंने जीवको दिया है। यह शरीर मेरा है क्योंकि मैंने कृपा करके दिया है।

देवदत्तमियं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः॥

भा. १०-६३-३१

यह मानव-शरीर आपने अत्यंत कृपा करके संसारके मानवोंको दिया है। जो मनुष्य इसे प्राप्त करनेके बाद अपनी इन्द्रियोंको नियंत्रणमें नहीं रखता है तथा आपके चरणोंकी शरण नहीं लेता है, उसका जीवन अत्यंत शोचनीय है। वह स्वयं अपने आपको धोखा दे रहा है। यह शरीर सांसारिक सुखोपभोगके लिए नहीं दिया गया है।

श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है—

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।

सौ रुपयेका नोट यदि फट भी गया और तेलके दाग वाला हो गया हो, किंतु उसका नम्बर ठीक हो तो उसे कोई फेंक नहीं देता है। इसी प्रकार यह शरीर मैला होनेपर भी उसका नम्बर तो ठीक ही रहता है। इसी शरीरसे तो भगवान्का जाप किया जाता है। भगवान्के जापका आनंद मात्र मनुष्य ही को तो मिल सकता है, कुत्ता-बिल्ली भजन नहीं कर सकते। पशुओंको अपने ही शरीरका, अपने ही स्वरूपका तो भान नहीं है तो भगवान्के स्वरूपकी जानकारी तो कैसे पा सकते हैं। केवल मनुष्य ही भगवान्के स्वरूपको जान सकता है।

इस अनित्य शरीरसे भी नित्य परमेश्वरको प्राप्त किया जा सकता है।

यह शरीर परमात्माके कार्यके लिए है, प्रभुकी कृपा ही से मिला है। मदान्ध लोग इस बातको या तो जानते ही नहीं हैं या भूल जाते हैं।

उन कुबेर-पुत्रोंकी हीन दशा देखकर नारदजीको दया आयी। उनको सन्मार्ग पर ले आनेके लिए उन्होंने शाप दिया।

इस शरीरका उपयोग मात्र भोगविलासके लिए करनेवाला व्यक्ति अगले जन्ममें वृक्ष बनता है। भोग ऐसे तो न किये जायें कि शरीर रोगी हो जाय। भोग इन्द्रियोंको रोगी बनानेके लिए नहीं, उनको प्रसन्न करनेके लिए है।

समय और सम्पत्तिका उपयोग मात्र भोगविलासमें करनेवाला व्यक्ति अगले अवतारमें वृक्ष बनता है। पापीको वृक्षका जन्म मिलता है। वृक्ष जड़ नहीं है। यह तो पाप योनि है। वृक्षको छः ऋतुओंके भाँति-भाँतिके प्रहार सहने पड़ते हैं।

नारदजीने शाप दिया—ये दोनों यक्ष सम्पत्तिके कारण मदान्ध, स्त्री-भोगी, विलासी हो गए हैं सो स्थावरपन प्राप्त करने योग्य हुए हैं। तो ऐसे भोगियोंको वृक्षका जन्म मिले।

शाप सुनते ही नलकुबेर और मणिग्रीव पछताने लगे। वे नारदजीकी शरणमें आए। क्षमा करो, मुनिवर, क्षमा करो।

नारदजीने कृपा करके उन दोनोंको गोकुलमें वृक्षावतार दिया। नन्दबाबाके आँगनमें तुम दोनोंका जन्म होगा और कन्हैयाका चरणस्पर्श तुम्हारा उद्धार करेगा।

यह शाप था या आशीर्वाद? उद्धव जैसे साधुजन तो वृन्दावनमें वृक्षके रूपमें जन्म लेना चाहते हैं।

विषय-भोगमें रममाण रहनेवालेको अगले जन्ममें वृक्षका अवतार लेना पड़ता है।

नारदजीने शाप तो दिया किंतु सन्तोंका क्रोध, सन्तोंका शाप भी हमेशा आशीर्वाद-सा होता है। गोकुलमें वृक्षोंका अवतार लेनेकी अभिलाषा तो महान् ऋषियोंकी भी होती है। उद्धवजी कहते हैं—

> आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
> या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

अहो! अत्याज्य स्वजन और आर्यमार्गका त्याग करके, वेदोंके लिए भी खोजने योग्य श्रीकृष्णकी पदवी इन गोपियोंने पायी है। ऐसी गोपियोंकी चरणरज से लाभान्वित वृक्ष-राशि, लता, औषधि आदि किसी भी रूपमें वृन्दावनमें मेरा जन्म हो, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

कृष्णका चरण-स्पर्श पाते ही नलकुबेर और मणिग्रीवने अपना मूल स्वरूप प्राप्त किया। दोनों वृक्षोंका उद्धार हुआ। अब नलकुबेर और मणिग्रीव प्रभुकी स्तुति करने लगे—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

भा० १०-१०-३८

हे प्रभु! आपसे हम कुछ और तो माँगते नहीं हैं। अपनी वाणी आपके गुण-गानमें रत रहे। अपने कान आपकी कथाके श्रवणमें लीन रहें। अपने हाथ आपके सेवाकर्ममें, अपना मन आपने चरण-स्मरणमें, अपना मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करनेमें और अपनी दृष्टि आपकी मूर्तिरूप सन्त पुरुषोंके दर्शन करनेमें तत्पर रहे। हे नाथ! बस यही कृपा आप हम पर करें।

यह प्रार्थना हम सबको भी करनी चाहिए।

हमारी वाणी श्रीकृष्णका कीर्त्तन करती रहे, आँखें श्रीकृष्णका दर्शन करती रहें और मन श्रीकृष्णका ध्यान करता रहे। हमें अपनी प्रत्येक इन्द्रियको भक्ति-रसका दान करना चाहिए।

नलकुबेर और मणिग्रीवने अपनी हरेक इन्द्रियके लिए भक्तिरसकी माँग की और स्तुति करते हुए गोलोकवासी हो गए।

गोलोक धाममें श्रीकृष्णलीला नित्य होती रहती है। वे दोनों स्निग्ध और मधुकण्ठ बने। वे दोनों वहाँ रोज कीर्त्तन करते हैं। स्निग्ध मधुकण्ठने कहा, अक्रूर श्रीकृष्णको मथुरा ले जा रहे हैं। यशोदा यह सुन कर व्यग्र हो गयीं। तो स्निग्ध मधुकण्ठने कहा, माता, यह तो पृथ्वी पर रची गई लीला है। लाला तो तुम्हारी गोदमें ही है।

योगमायाने दोनों वृक्षोंको गिरने नहीं दिया था। नलकुबेर और मणिग्रीवके गोलोकधाम-पहुँचते ही दोनों वृक्ष धमाकेके साथ जा गिरे। धमाका सुन कर गोपियाँ दौड़ती हुई आयीं। भगवान्की दयासे कन्हैया बच गया है—ऐसा जानकर उन्हें आनन्दका अनुभव हुआ।

नन्दबाबा भी दौड़ते हुए आ पहुँचे। उन्होंने देखा तो कन्हैया मूसलके साथ बँधा हुआ था। किसने बाँधा है? कोई उसे छोड़ता क्यों नहीं है? उन्होंने लालाको बन्धनमुक्त किया।

नन्दबाबा लालासे कहने लगे, बेटे, तुझे तेरी माँने बाँधा था न? देख तो, मैंने तुझे छोड़ दिया। तू किसका बेटा है?

लाला—आज तक मैं अपनी माताका बेटा था, अब मैं आजसे तुम्हारा बेटा हूँ।

नन्दबाबाकी इच्छा थी कि कन्हैया एकबार कह दे कि वह उनका बेटा है। आज उनकी इच्छा पूरी हुई।

नन्दबाबा यशोदाको डाँटने लगे। लालाको तूने बाँधा ही क्यों? तुझे दया भी न आई? यशोदाने सोचा कि आज सभी उसी पर गुस्सा करते रहेंगे। मेरी वैसे तो कोई इच्छा नहीं थी उसे बाँधनेकी किंतु इसे चोरी करनेकी आदत हो गई है। ऐसी बुरी आदतसे छुड़ानेके लिए ही मैंने उसे बाँधा था। मैंने उसे स्नेहवश ही तो बाँधा था।

यशोदा बेटेको अपने पास बुलाने लगी तो उसने आनेसे इनकार कर दिया। मैं तेरा नहीं, नन्दबाबाका बेटा हूँ।

यशोदा विचार करने लगी, गोपियों और बालकोंने रो-रोकर मना किया था, फिर भी मैंने निष्ठुर होकर पुत्रको बाँध दिया। कन्हैया रूठ गया है। वह रोने लगी कि बेटा कब मेरी गोदमें आएगा।

ग्वालाने देखा कि माता रो रही है।

वैष्णवका रोना भगवान्‌से देखा नहीं जा सकता। श्रीकृष्ण-सा प्रेम और कोई नहीं कर सकता। श्रीकृष्णके लिए जो एकांत रुदन करता है, उसे वे आ मिलते हैं।

माताका रोना लालासे देखा नहीं गया। वह दौड़ता हुआ माताकी गोदमें आया और पीताम्बरसे माताके आँसू पोंछने लगा। मेरा बेटा कितना सयाना है। मैंने तुझे बाँधकर अच्छा नहीं किया था। तू अपने मनमें यह बात न रखना। बेटे, इस प्रसङ्गको तू मनसे भुला देना।

कन्हैया—माता, मैं सब कुछ भूल जाऊँगा किंतु तेरा प्यार नहीं भूल पाऊँगा। मैं कुछ ही समयमें द्वारिका नगरीका राजा बनूंगा। वहाँ भी मैं तेरा यह प्यारका बंधन याद रखूंगा। रुक्मिणी आदि किसीके भी बंधनमें मैं नहीं रहूँगा किंतु तेरे प्यारके बंधनको भुला नहीं सकूंगा।

यह तो गोकुलकी एक मुख्य लीला है। ज्ञानी ईश्वरका साक्षात्कार तो कर सकता है किंतु उनको बाँधनेकी शक्ति ज्ञानमें नहीं है। भगवान्‌को तो केवल भक्ति ही बाँध पाती है। ज्ञानी ब्रह्मका चिंतन करता हुआ ब्रह्ममय तो हो पाता है किंतु भगवान्‌को वशमें तो भक्ति ही कर पाती है। तप और ज्ञानकी अपेक्षा भक्ति ही श्रेष्ठ है।

परमात्मा जीव मात्रको अपने प्रेमसे सराबोर करते हैं किंतु जीव वैसा दुष्ट है कि प्रभुके साथ ही प्रेम नहीं करता है। प्रभुके प्रति प्रेमको जगानेके लिए प्रभुके उपकारोंका बार-बार स्मरण करो। मैं परमात्माका ऋणी हूँ। उन्हींकी कृपासे ही यह थोड़ा-बहुत सुख पा सका हूँ। ऐसा विचार बार-बार करोगे तो प्रभुसे प्रेम हो सकेगा।

प्राप्त स्थितिमें सन्तोष मानोगे तो प्रभुप्रेमका उदय होगा! परमात्मासे कुछ न माँगो। परमात्मा भी किसीसे प्रेमके सिवाय और कुछ भी नहीं माँगते हैं। जीव मुझे प्रेम दे तो बस।

प्रभुसे कुछ भी न माँगो। उनके उपकारोंको हमेशा याद रखो। मनुष्यका प्रेम, धन, सम्पत्ति, घर-गृहस्थी, कुटुम्ब आदिमें विभक्त होता है, अतः परमात्मा प्रसन्न नहीं होते। लोग भगवान्‌को प्रणाम करते समय भगवान्‌का नहीं, अपने वस्त्रोंका ही विशेष ध्यान रखते हैं। अरे, वस्त्र बिगड़ जाएँगे तो बाजारसे दूसरे लाये जा सकेंगे किंतु हृदय तो बाजारमें मिलता नहीं है।

ज्ञानी भक्त प्रेम-डोरसे प्रभुको बाँधते हैं। भगवान् केवल प्रेमके ही वश हो पाते हैं, अन्य किसी भी वशके नहीं।

भागवतमें हास्य, करुण, शृङ्गार, वीर आदि सभी रस तो हैं ही। इतना ही नहीं, दसवाँ रस भी लबालब भरा हुआ है—भक्ति रस।

भक्ति-रस अन्य सभी रसोंसे उत्तम है। रामचरितमें रामचन्द्रजी कहते हैं, मात्र भक्ति ही मुझे आर्द्र कर पाती है। भक्तिको अन्य किसी भी आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है, वह तो स्वतन्त्र ही है। ज्ञान-विज्ञान आदि सभी कुछ इस भक्तिके अधीन हैं।

जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान-बिग्याना॥

—रामचरितमानस

ऐसी है भक्तिकी महिमा। ज्ञानी मायाके आवरणयुक्त ब्रह्मका दर्शन करते हैं। ज्ञानीको कीर्त्ति आदिकी चाह होती है।

निरावृत, आवरणरहित ब्रह्मका साक्षात्कार तो केवल गोपियों ही ने किया है। जब तक जीव निर्दोष नहीं हो पाता, तबतक ईश्वरका दर्शन पा नहीं सकता।

साधु बननेकी नहीं, सरल होनेकी आवश्यकता है। अन्दरके विकारोंको दूर करना ही होगा।

दोनों वृक्षोंका तो उद्धार हुआ किंतु उस मूसलका उद्धार क्यों न हुआ?

श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें-से उस पार निकल गए थे जब कि मूसल तो टेढ़ा होकर इस ओर ही रह गया था। प्रभुने वृक्षोंके अंदर प्रवेश किया सो उनका उद्धार हो गया। जिसके अन्तर्देशमें भगवान्‌का प्रवेश होता है, उसका उद्धार हो जाता है। यदि वे हमारे अन्तरमें आयेंगे तो हमारा भी उद्धार हो जाएगा।

दामोदर लीला द्वारा भगवान् जगत्‌से कहते हैं, जब जीव मुझे बाँधता है तब मैं उसको बंधनसे छुड़ाता हूँ।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

कई बार गोपियाँ यशोदाके घर आकर कन्हैयाको अपने घर ले जानेको कहती थीं। कन्हैया, तू मेरे घर आएगा? तो कन्हैया पूछता, तुम्हारे घर तो आऊँ किंतु तुम मुझे क्या दोगी? गोपियाँ पूछतीं, क्या चाहिये तुझे? कन्हैया कहता, माखन। कितना दोगी? गोपियाँ पूछतीं, कितना चाहिए तुझे? तो कन्हैया अपनी दोनों बाँहें फैला कर कहता, इतना। तो गोपी पूछती, इतना सारा माखन तू कैसे खा सकेगा।

कन्हैया—मैं तो कुछ भी नहीं खाऊँगा। मुझे तो अपने मित्रोंमें माखन बाँटना है। अपने मित्रोंको खिलाना है।

ईश्वर औरोंको देकर प्रसन्न होते हैं। खानेवालेकी अपेक्षा औरोंको प्रेमसे खिलानेवाले-को अधिक आनन्द मिलता है।

मन माखन-सा कोमल हो पाए और जीवन मिश्री-सा मधुर, तो कन्हैया अवश्य आएगा।

गोपीने सोचा, इसे माखन दूँगी तो वह उसे लेकर तुरन्त चला जाएगा। उसे कुछ देर रोकना चाहिए। उसने कहा, लाला, माखन मुफ्तमें नहीं मिलेगा। तुझे मेरे घरका कुछ-न-कुछ काम भी करना होगा। कन्हैयाने पूछा, कौन-सा काम करना होगा मुझे? गोपीने कहा, जा वह पाट ले आ। वैसे वह था तो बड़ा वजनदार, किंतु कन्हैयाने सोचा कि उसे उठा लाऊँगा तो सभी बालकोंको माखन खिला सकूँगा। वह पाट वजनदार था सो हाथसे छूट गया और कन्हैयाका पीताम्बर भी खिसक गया।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेके बाद भी अविद्याका अंश बाकी रह जाता है क्योंकि प्रारब्ध कर्म तो भुगतना ही पड़ता है। अज्ञानका पूर्ण नाश हो जाय तो प्रारब्ध कौन भोगेगा? ब्रह्मज्ञानसे प्रारब्ध कर्मका नाश नहीं हो पाता। ब्रह्मज्ञानसे क्रियमाण और संचित कर्मोंका नाश होता है। जब तक इस देहका प्रारब्ध है, तब तक अविद्या शेष रहती है। प्रारब्ध कर्मके भुगतानके बाद उसका नाश होता है। ज्ञानीको ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर अविद्याका अंश बाकी रह जाता है और कुछ आवरणके साथ साक्षात्कार होता है किंतु इन व्रजभक्तोंको तो अनावृत श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं

वैसे तो दुर्योधनको भी श्रीकृष्ण भगवान्के दर्शन हुए थे किंतु बीचमें मायाका आवरण था सो उसका उद्धार नहीं हो पाया।

कन्हैया पाट लाया और उसने माँगा तो गोपीने कहा, लाला, तू नाच तो सही जरा। माखनके लोभसे कन्हैया अब नाचने लगा। जगत्को नचानेवाला नटवर, गोपीके प्रेमके वशीभूत होकर स्वयं नाच रहा है।

कवि रसखान कहते हैं—

शेष, महेश, गणेश, दिनेश, सुरेशहु जाहिं निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारदसे शुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

गोपियोंके प्रेमसे बँधे हुए श्रीकृष्ण उनके घरोंका काम रहे हैं। गोपियोंके सिर पर पानीकी गगरिया चढ़ाते हैं, सामान इधर-उधर करनेमें मदद करते हैं, उनके मनोरंजनके लिए नाचते भी हैं।

व्रजकी इस लीलामें ज्ञान-वैराग्य नहीं, प्रेमभाव ही मुख्य है।

एक मालिनका प्रसंग भी है इन लीलाओंमें। व्रजमें एक सुखिया नामकी मालिन थी जो रोज-रोज कृष्ण-कथा सुनती थी। भक्ति उसके लिए एक व्यसन-सी हो गई थी।

तुकारामको भी व्यसनरूपा भक्ति सिद्ध हुई थी। उन्होंने कहा है—

पडले इन्द्रिया सकला वलण।

सभी इन्द्रियोंको ऐसी आदत-सी हो गई है कि ईश्वरके भजन किए बिना वे रह नहीं सकतीं।

मालिनका प्रेम धीरे-धीरे बढ़ने लगा। श्रवण भक्ति व्यसन-सी हो गई।

भक्तिका व्यसन सिद्ध करो। अन्य सभी व्यसन, भक्ति-मार्गमें बाधा रूप हैं, अतः भक्तिको ही व्यसन बना दो। 'विद्या व्यसनम्' अथवा 'हरिपादसेवनम् व्यसनम्।' जिसको सेवा और स्मरणका व्यसन हो, वही सच्चा वैष्णव है। कन्हैया कानमेंसे, आँखोंसे हृदयमें उतर जाता है। बार-बार सुनने पर ही कृष्णके दर्शनकी उत्कंठा होती है।

लालाके दर्शनके लिए सुखिया आती है ।

अधिकारके बिना भगवान्‌के दर्शन नहीं हो पाते । यदि सुख-सुविधाकी इच्छा बनी रही है तो भगवान्‌के दर्शन नहीं होंगे । जीव जब पूर्णतः निष्काम और वासनाहीन बनता है, तभी वे दर्शन देते हैं । ईश्वरदर्शनके सिवाय अन्य कोई भी वासना सूक्ष्म रूपसे भी शेष रह गई होगी तो ईश्वर दर्शन नहीं देंगे ।

सुखिया मालिन हर रोज नंदबाबाके आँगनमें आती-जाती थी किंतु कन्हैया बाहर निकलता ही नहीं था । तो उसने एक भूदेवसे कृष्णदर्शनका उपाय पूछा । भूदेव यह जानकर प्रसन्न हुए कि यह एक जिज्ञासु और सुपात्र जीव है । तो उन्होंने सुखियासे कहा, अपने घरमें बालकृष्णकी सेवा, साधना, स्मरण करती रहोगी तो वह प्रसन्न होगा ।

ईश्वरको वशमें करनेका एक अच्छा साधन है—सेवास्मरण । आग्रह सेवास्मरणका रखो, ईश्वरदर्शनका नहीं । जीवको पात्रता मिलते ही ईश्वर उसे दर्शन देते हैं । लंबी-लंबी दाढ़ी-वाले साधु भी दर्शनके लिए आते रहते थे । कन्हैया सोचता था कि इन साधुओंकी दाढ़ी जितनी बाहर, उतनी ही अंदर भी हो सकती है । अंदरके कामविकार शायद अब भी बाकी ही होंगे । यशोदाजी कभी उसे जबरन बाहर खींच लातीं तो वह अपना मुँह फेर कर माताकी साड़ीमें छिपा लेता था । वे साधु अभी मुखदर्शन पानेके योग्य नहीं हो पाए थे ।

भगवान् तो तनकी बात भी जानते हैं और मनकी । पात्रता पाए बिना जीव ईश्वरका दर्शन पा नहीं सकता ।

मालिनने कहा, मैं सेवा कैसे करूँ ? मैं तो बड़ी गरीब हूँ ।

भूदेव—तू रोज २१००० बार माला फेरना । कुछ साधन तो करना ही होगा । साधन करते-करते जीव जब नम्र होकर आँसू बहाने लगता है, तब ईश्वर कृपा करते हैं ।

कथा-श्रवणके बाद कुछ व्रत-नियम लिया जाय । कथा मार्गदर्शिका है । कथाश्रवण करने पर कुछ तो व्रत करो ।

मालिनको भाँति-भाँतिके साधन बताए गये किंतु वे सब उसके अनुकूल नहीं थे । तो भूदेवने कहा, यदि तू कुछ भी नहीं कर सके तो कम-से-कम नंदबाबाके घरकी हररोज १०८ बार प्रदक्षिणा कर ।

प्रणाम साष्टांग किए जाते हैं और प्रदक्षिणा चतुरंग । प्रदक्षिणा करते समय हाथ जोड़, वंदन करते हुए प्रभुका नाम जपते रहना । कीर्तन करते-करते धीरे-धीरे प्रदक्षिणा की जाय । कुछ लोग इस तरह दौड़ते हुए प्रदक्षिणा करते हैं मानो, उनके पीछे कोई भूत दौड़ा हुआ आ रहा हो । प्रदक्षिणामें ऐसी भाग-दौड़ अच्छी नहीं है ।

तीन वर्षों तक प्रदक्षिणाका यह नियम बनाए रखना । कन्हैया अवश्य दया करेगा । तो मालिन इस प्रकार रोज प्रदक्षिणा करने लगी ।

मनुष्य प्रायः अपने दैनिक कार्य तो नियमपर करता है । निद्रा और भोजनमें तो वह बड़ा नियम रखता है किंतु भजनमें उसकी नियमितता न जाने कहाँ हवा हो जाती है ।

भजन किए बिना खानेवाला पाप खाता है । मनुष्य जितनी देखभाल अपने कपड़ोंकी करता है, यदि उतनी ही देखभाल अपने मनकी भी करे तो वह मलिन नहीं हो पाए ।

सत्कर्ममें नियमितता होनी चाहिए। नियमित सत्कर्म करनेवाला ही संत है। नियम रखनेवालेकी ठाकुरजी परीक्षा भी लेते हैं।

मालिन रोज परमात्माको मानती रहती थी, नाथ, दर्शन दीजिए।

तीन वर्ष पूरे हो गए। अब तो कृष्णविरह असह्य हो गया है। उसका मन भी शुद्ध हो गया है। आज उसने निश्चय किया है, जब तक कन्हैयाका दर्शन न कर पाऊँ, तब तक मैं नंदबाबाके आँगनसे नहीं हटूँगी।

जीव जब प्रभुको वियोगाग्निमें छटपटाने लगता है, भगवान् आ मिलते हैं।

अपने शिर पर फूल-फलकी टोकरी उठाए सुखिया मालिन प्रदक्षिणा करने लगी। परमात्माको शबरीके बेर याद आ गए। दर्शनातुर मालिनको मुझे दर्शन देना होगा। कटि पर सोनेकी करधनी, हाथमें बाजूबंद, गलेमें कंठी, पगमें पैंजनियाँ और मस्तक पर मोरपंखसे विभूषित बालकन्हैया छुमक-छुमक करता हुआ आँगनमें आया।

दर्शनातुर मालिनके सामने आकर, हाथ फैला कर लाला फल माँगने लगा। बालकन्हैयासे मालिन भी बातें करनेके लिए आतुर थी।

अपने सुख-दुःखकी बातें कन्हैयासे एकांतमें कहना। अपने दुःखकी कथा कृष्णके सिवाय किसी औरसे न कहना। वह तुम्हें सुख देगा।

मालिनने सोचा कि यदि लालाके हाथमें फल रख देगी तो तुरंत ही वह भीतर लौट जाएगा। सो वह उसको बातोंसे रोकने लगी। मैं फल देने नहीं, बेचने आई हूँ। फल ले और मुझे अनाज दे। फिर उसे दुःख भी हुआ कि अनाज माँगा ही क्यों। उसे कोई संतान न थी। यदि मेरे घर पुत्र हुआ तो ? मैं बड़ी पापिनी हूँ। कन्हैया बड़ा दयालु और प्रेमी है। वह मेरी गोदमें आएगा तो मैं उसे प्यार करूँगी।

बालकृष्ण दौड़ता हुआ दो मुट्ठी-भर चावल ले आया और मालिनकी टोकरीमें रख दिये। अब तो फल दो। मालिनने कहा, मेरी गोदमें तो बैठ बेटा। मैं तुमसे सुख-दुःखकी बातें करना चाहती हूँ। तो कन्हैया उछल कर उसकी गोदमें जा बैठा। मालिनकी इच्छा परिपूर्ण हुई। ब्रह्मसंबंध संपन्न हुआ। हजारों वर्षोंका विरही जीव आज ईश्वरसे जा मिला।

प्रेममें कभी तृप्ति होती भी है क्या ?

कन्हैया कहने लगा—मैं तो सभीका बालक हूँ, पिता हूँ और माता भी हूँ। मेरे साथ जो जैसा प्रेम करेगा, वह वैसा ही पाएगा।

मालिनने लालाको बड़े अच्छे मीठे फल दिए। दोनों आनंदित हो गए। फल मिलते ही लाला भागा हुआ घरमें चला गया।

मालिनने प्रभुसे प्रार्थना की कि कहीं अपने कन्हैयाको अपनी ही नजर न लग जाय।

अपनी टोकरी लेकर सुखिया घर वापस आई। टोकरी सिरसे उतारी तो देखा कि वह तो रत्नोंसे भरी हुई है। उसे सुखद आश्चर्य हुआ, सोचने लगी कि मेरे जन्मजन्मांतरका दारिद्रय दूर हो गया।

ईश्वरको फल दोगे तो वे तुम्हें रत्न देंगे। परमात्मा जब देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं। मनुष्य देते समय कुछ संकोच रखता है किंतु प्रभु तो कई गुना बढ़ाकर देते हैं।

जो व्यक्ति अपने सत्कर्म-रूपी फल भगवान्‌को अर्पित करता है, उसकी जीवन-टोकरीको भगवान् सुख-सुविधाके रत्नोंसे भर देते हैं। भगवान् उसे ब्रह्मविद्यारूपी दिव्य रत्न भी देते हैं। सुखिया मालिन जीवका प्रतीक है। जीवसे परमात्मा सत्कर्म, पुण्यके फल माँगते हैं। जो तुम सत्कर्मरूपी फल भगवान्‌को दोगे तो वे तुम्हें कई गुना करके देंगे।

भगवान् किसीके भी ऋणका बोझ अपने सिर पर नहीं रखते। वे तो व्याज-सहित अदा कर देते हैं।

यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म, भोजन, हवन, दान, तप आदि करे, वह सब मुझे अर्पण कर दे। तभी तू मुझे पा सकेगा—'माम उपैष्यसि।'

सभी कर्म भगवान्‌को अर्पण कर दो। किए हुए कर्मोंका पुण्य-फल कृष्णार्पण करो। फल स्वयं भोगनेकी इच्छा न करो। जो अपना कर्मफल भगवान्‌को अर्पण करता है, उसकी बुद्धि-रूपी टोकरी ब्रह्मज्ञानके रत्नोंसे छलक जाती है। कन्हैया सभीको फल देता है।

भगवान्‌की गोकुल-लीला यहाँ परिपूर्ण हुई है।

बाललीलाका श्रवण श्रद्धा उत्पन्न करता है और किशोरलीलाका श्रवण, भक्ति।

अब वृंदावन लीलाका आरंभ हो रहा है।

भारतभूमि कर्मभूमि है। अन्य देश भोगभूमि। हमारे यहाँ कर्मानुसार फल मिलते हैं। प्रत्येक कर्मको परमात्माकी आज्ञा मान कर पूर्ण करो।

भक्ति और कर्ममें वैसे कोई अंतर नहीं है। प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए किया गया कर्म ही भक्ति है। कर्ममें फलेच्छा कपट है। फल-इच्छा किए बिना किया गया कर्म ही भक्ति है। जो कोई प्रत्येक कर्म ईश्वरके हेतु करता है, उसके वे सारे कर्म भगवान्‌की भक्ति बन जाते हैं। कर्म करते समय भगवान्‌के लिए ही करनेकी निष्ठा रखनी चाहिए। कर्म करते समय मन ईश्वरसे संलग्न रहे तो प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाएगी। व्यवहारोंको अतिशय शुद्ध रखोगे तो वे सब भक्ति ही बन जाएँगे।

पाप करते समय मनुष्य ईश्वरको भूल जाता है। ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वत्र हैं, ऐसा मानोगे तो पाप नहीं कर पाओगे। व्यवहार और भक्तिमें अधिक अन्तर नहीं है। ईश्वरकी भावना रख कर किया गया व्यवहार भक्ति है। जब तक शरीर है, तब तक व्यवहार अनिवार्य है। प्रत्येक कर्मको भक्तिमय बना दो। भोजन करते समय भी मान लो कि नारायण ही आहार कर रहे हैं। ऐसा सन्धान होने पर भोजन भी भक्ति ही है।

व्यवहारको भक्ति और ज्ञानमय बनाओ। ईश्वरसे कभी दूर मत जाओ। कभी निठल्ले मत रहना। निठल्ला हाथ पाप कर बैठता है। कामकाज करनेकी आदतका यकायक त्याग कर दोगे तो शरीर पापाचार करने लगेगा। सो प्रवृत्तिरत रहो और सभी प्रवृत्तियोंको ईश्वरमय बना दो।

निठल्ले व्यक्तिके मनमें पाप और विकार जागते हैं सो इसलिये सतत सत्कार्य करो। घर-गृहस्थी चलानेके लिए कामकाज-नौकरी-धन्धा तो करना ही पड़ता है किंतु उन प्रवृत्तियोंके समय ईश्वरको मत भुला देना। प्रत्येक घण्टेके आरम्भमें कुछ क्षणोंके लिए ईश्वरका ध्यान करते रहोगे तो पापसे दूर रह सकोगे।

ईश्वर द्वारा दी गई स्थितिमें आनन्द और संतोष मानो। अपनी सभी प्रवृत्तियोंका ईश्वरसे संधान बनाए रखो। सभी कार्योंको ईश्वरकी आज्ञा समझ कर करते रहो। कर्मके फलकी इच्छा न रखो। कर्मका कैसा, कितना, कब फल दिया जाय, वह भगवान्‌के सोचनेकी बात है।

कर्म सद्भावसे करो। जैसी ध्वनि वैसी प्रतिध्वनि। जो वर्तन तुम्हें अपने लिए प्रतिकूल लगता हो, वैसा वर्तन किसी औरके प्रति भी न किया जाय। यदि तुम किसी जीवके प्रति कुभाव, द्वेष, असूया रखोगे तो वह तुम्हें भी बदलेमें वही कुछ देगा।

शरीर थककर चूर-चूर हो जाय, तबतक काममें लगे रहो। यदि शरीर अच्छी तरह नहीं थक जाएगा तो नींद नहीं आएगी और बिस्तर पर करवटें बदलते समय मनमें बुरे विचार आते रहेंगे। सत्कर्म करते हुए थक जानेसे निद्रा भी बड़ी अच्छी आएगी और ऐसी नींद भी भक्ति बन जाएगी।

यदि कर्मफल ईश्वरको देते रहोगे तो ईश्वर उसे अनन्त गुना बनाकर वापस देंगे। इस बातका अनुभव न होने पाए तो मान लेना कि तुम्हारे ही कर्ममें कुछ कमी है। पूर्वजन्मके संस्कार और वासना जल जाने पर कर्ममें-से आनन्दकी प्राप्ति होगी। कर्मका फल कब मिलेगा, यह कहा नहीं जाता। उस सुखिया मालिनकी तरह अपने सभी कर्म ईश्वरको अर्पण करते रहो। वे तुम्हारी टोकरी (बुद्धि) में सद्भाव और ज्ञानके रत्न भर देंगे।

ठाकुरजी मन्दिरमें नहीं, अपने हृदयमें विराजमान करने चाहिए। उनको मन्दिरमें स्थापित किए जानेसे हमारा मन शांत नहीं हो पाएगा। बुद्धिमें-से विषयादिका कूड़ा-करकट साफ करके हमें ठाकुरजीको बिठलाना है। हम जिस प्रकार सांसारिक विषयोंको मनमें जमाए रहते हैं, उसी प्रकार प्रभुको भी वहीं स्थान देंगे तो शांति मिलेगी और तभी जीवन कृतार्थ होगा।

बालकृष्ण पाँच बरसके हुए और उन्हें वृन्दावन जानेकी इच्छा हुई।

गोकुलमें जो उत्पात हो रहे थे, उनसे व्यथित होकर चाचा उपनन्दने सोचा कि बालकोंके साथ दूसरे गाँवमें चले जाना चाहिए। यहाँसे कुछ ही दूरी पर आया हुआ गाँव वृन्दावन रहने योग्य है। वनं वृन्दावनं नाम। सभीने इस प्रस्तावको स्वीकार किया। बलराम और कन्हैया भी राजी हो गये। वहाँ खेलकूदका मजा आयेगा। तो सब वृन्दावन जा बसे।

वृन्दाका अर्थ है भक्ति। सो भक्तिका वन वृन्दावन है। बालकके पाँच वर्षके होने पर उसे गोकुलमें-से वृन्दावन ले जाया जाय। अर्थात् लाड़-प्यारकी अवस्था, प्राथमिक अवस्थामें-से अब उसे भक्तिके वनमें ले जाया जाय। पाँच वर्ष समाप्त होने पर लाड़-प्यारमें कुछ कमी की जाय।

बालकको धर्मभीरु, संस्कारी बनानेके लिए बचपनसे ही धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। एकादशीके दिन उसे अन्नाहार न दिया जाय। अपने बालकको अच्छे संस्कार न देनेवाले माता-पिता उसके बैरी हैं। भक्ति और धर्मकी शिक्षा न देनेवाले माता-पिता उस बालकके शत्रु ही हैं।

बालकका हृदय, मन बड़ा कोमल होता है, अतः उसे दिए गए संस्कार उसके मनमें अच्छी तरह जम जाते हैं। उसे बचपनमें अच्छे संस्कार दोगे तो उसका यौवन भ्रष्ट नहीं होगा और जीवनभर वह संस्कारी बना रहेगा।

चाचा उपनन्द श्रीकृष्णको वृन्दावन ले गए।

जिसे ज्ञानवृद्ध संतका सहारा हो, वह पतनके गर्तमें गिर नहीं सकता। किसका हाथ पकड़ कर चलनेसे गिरनेका डर नहीं रहता। ईश्वरका ही हाथ पकड़ कर चलो।

वृन्दावनमें अकेले नहीं, वृन्द लेकर जाओ। औरोंको भी सत्कार्यकी प्रेरणा देते रहो।

गोप-गोपियाँ सब वृन्दावन गए। वृन्दावनमें यमुनाके किनारे और गोवर्धन पर्वतको देखकर राम-कृष्ण और सभी बालकोंको बड़ा आनन्द हुआ। वहाँ आकर भगवान् वत्सपाल हुए। बालमित्रोंके साथ बछड़े चराने जाने लगे। यमुना किनारे वे सब भाँति-भाँतिके खेल खेलते रहते थे।

कृष्ण ग्यारहवें अध्यायमें वत्सपाल हैं और आगे गोपाल।

कृष्ण कभी-कभी बंसी बजाकर तथा भाँति-भाँतिके खेल रचाकर गोपबालकोंको आनन्द देते थे।

जीव मात्रको कृष्णकी बाँसुरीको मधुर तान पुकारती रहती है किंतु मोहक विषयोंमें फँसा हुआ जीव बंसीकी पुकार सुन नहीं पाता है।

यमुना (भक्ति) के किनारे दो बाधाएँ उपस्थित होती हैं। एक है वत्सासुर (अज्ञान, अंध श्रद्धा) और दूसरी है बकासुर (दम्भ)।

बगुला दम्भका प्रतीक है। बगभगत अर्थात् दम्भी।

भक्तिके किनारे दम्भ आ बसता है। उसकी घातमें मत फँसना। दम्भके समान कोई पाप नहीं है। अन्य पापोंके लिए प्रायश्चित्त किया जा सकता है, दम्भके लिए नहीं। जिसका बाहरी चोला तो अच्छा हो किंतु अन्तर तथा करनी मैले हों, वह बकासुर ही है।

बगुलेकी चोंच है लोभ। कीर्त्ति और धनका लोभ अपने साथ दम्भ भी ले आता है।

यमुना-भक्तिके किनारे बगुलादम्भके आते ही सारा खेल बिगड़ जाता है।

भगवान्ने वत्सासुर और बकासुरका वध किया।

एक बार श्रीकृष्ण अपने बालमित्रोंके साथ वनमें बछड़े चराते हुए खेल रहे थे।

उन बालकोंके सद्भाग्यका वर्णन किन शब्दोंमें करें कि जिनको श्रीहरिके साथ खेलनेका सुअवसर मिला है। जिसके दर्शनके लिए योगी और ऋषि-मुनि तरस रहे हों, उसी परब्रह्मके साथ वे गोपबालक खेल रहे हैं।

सभी बालक खेल-कूदमें लगे हुए थे। इतनेमें वहाँ अघासुर आया। उसे कंसने भेजा था। वह बकासुर और पूतनाका छोटा भाई था।

जहाँ अज्ञान और दम्भ हो वहाँ पाप आ धमकता है।

अघासुर अजगरका रूप लेकर आया और सभी गोपबालकोंको निगल जानेकी इच्छासे मार्गमें सो गया। उसके खुले हुए विशाल मुखको उन बच्चोंने पर्वतकी गुफा मान लिया और उसमें प्रवेश करनेकी सोची। उन्होंने कन्हैयासे कहा, यदि तू भी हमारे साथ आए तो हमें डर नहीं लगेगा।

आजकलके लोग धनको तो अपने सीनेसे चिपकाए रहते हैं किंतु प्रभुको दूर ही रखते हैं। अकेले कहीं भी न जाओ। ठाकुरजीको हमेशा अपने साथ रखो। ठाकुरजीको अपने साथ रखनेका यह अर्थ नहीं है कि उनकी मूर्ति या छविको जेबमें रख लिया जाय किंतु उन्हें अपने हृदयमें बसाए रहो। उनका सतत स्मरण करो। उनके ही सांनिध्यका अनुभव करते रहो।

बालक जानते हैं कि कन्हैया उनके साथ होगा तो कोई डरनेकी बात नहीं है। कृष्णको साथ लेकर वे सभी गोपबालक नाचते-कूदते अन्दर चले गए। उनकी रक्षाके हेतु कृष्ण भी अघासुरके मुँहमें, उदरमें गए।

भागवतमें समाधिभाषाका प्रयोग भी बहुत किया गया है। लौकिक और परमत भाषा गौण है। समाधिभाषाका अभ्यासी भागवतका अर्थ समझ पाएगा। विलासीके लिए भागवत समझना बड़ा कठिन है। जब नादब्रह्म और नामब्रह्म एक होता है, तब परब्रह्मका प्रागट्य होता है।

पेटमें जाकर भगवान्‌ने विशाल रूप धारण किया तो अजगरका शरीर फट गया। अघासुरके प्राण ब्रह्मरन्ध्रसे बाहर निकल गए। सभी बालक भी लालाके साथ बाहर आ गए।

अघ शब्दका अर्थ है पाप। अघासुर पापका ही स्वरूप है। जो पापमें रममाण रहता है, वही अघासुर है। पाप करनेमें सुख माननेवाला व्यक्ति अघासुर है। कई बार पापी व्यक्ति सुखमें जीता हुआ दिखाई देता है किंतु पापके कारण नहीं, उसके किसी पूर्वजन्मके पुण्यके कारण ही उसे वह सुख मिल रहा होता है। अन्यथा पापका परिणाम तो दुःख ही है।

पापी न तो कभी सुखी हुआ है और न कभी होगा।

कोई पुण्यशाली दुःखी होता हुआ दिखाई दे तो मान लेना कि उसके किसी पूर्वजन्मके पापका फल उसे मिल रहा है। पुण्यका फल दुःख नहीं है।

पापके जालसे छूटना आसान नहीं है। पापका भान होने पर भी मनुष्य पाप-कर्म छोड़ नहीं पाता है। जब तक पुण्यका बल बढ़ता नहीं है तब तक पापकी आदत छुटती नहीं। पापकी आदत बड़ी बुरी है। पापको मनमें कभी न बसने देना। मनुष्य शरीरकी अपेक्षा जीभसे, जीभकी अपेक्षा आँखोंसे और आंखोंकी अपेक्षा मनसे अधिक पाप करता है। जब तक इन्द्रियां पाप करनेकी आदी हैं, तब तक भक्तिरस मिल नहीं पाता। इन्द्रियोंकी गगरीमें भक्ति-रस भरना है तो पहले उसे निष्पाप करो। यदि पानीसे भरे हुए घड़ेमें दूध भरना है तो पानीको पहले निकाल देना होगा।

आत्मा और इन्द्रियां इतनी एकाकार हो जाती हैं कि इन्द्रियोंका पाप आत्मा देख ही नहीं पाता।

मनमें पापका विचार आते ही उसे निकाल बाहर करो। यदि पाप हो भी जाय तो बड़ी ही नम्रतासे भगवान्‌से माफी माँगो।

अघासुर अजगरका रूप लेकर आता है और असावधान व्यक्तिको निगल जाता है।

औरोंकी निंदा, कानाफूंसी जैसा कोई पाप नहीं है। मनुष्य अपनेको ही सुधारनेमें लगा रहता है फिर चाहे औरोंकी कितनी भी हानि होती हो। यह पाप और हिंसा ही है।

यदि पाप तुम्हारे शरीर और मनमें एक बार घुस गया तो तुम्हें छोड़ेगा ही नहीं। जिसके घरमें, मनमें पाप आ बसता है, उसके घरमें, मनमें परमात्मा कभी नहीं आते।

अजगरके मुँहमें घुसे हुए गोपबालक अपने-आप बाहर निकल नहीं पाते। श्रीकृष्ण ही उनको बाहर निकालते हैं।

पापके अघासुरके उदरमें पहुँचा हुआ व्यक्ति अपने-आप बाहर नहीं आ सकता। कोई बाहरका पुण्यशाली सन्त या प्रभु ही उसे बाहर खींच सकते हैं।

पाप और साँप एक समान हैं। साँप द्वारा काटे जाने पर यदि उस अङ्गको हम शीघ्र ही काट दें तो उसका विष सारे शरीरमें फैल नहीं पाएगा। इसी प्रकार पापका विचार आते ही उसे उसी क्षण नष्ट कर दोगे तो बच पाओगे। साँपके विषकी भाँति यदि पाप कुछ समयके लिए भी अंदर रह जाएगा तो फिर बचना मुश्किल हो जाएगा।

पापका चिंतन करनेसे वह जम जाएगा। पाप धरतीसे आकाश तक व्याप्त है। अघासुर-का एक होंठ धरती पर था और दूसरा आकाश तक पहुँचा हुआ था।

मन सङ्ग-सङ्ग चलता है, अतः पाप तो तुम्हारे साथ वन-पर्वत या जहाँ भी जाओगे, वहाँ साथ ही आएगा।

वासनाके प्रवाहमें बहा जा रहा जीव अंतरात्माके मना करने पर भी पाप करता रहता है। वासनाके वेगमें ज्ञान बह जाता है और पाप हो जाता है। जो पापके अजगरके उदरमें चला जाता है, वह बाहर आ नहीं सकता। पाप बड़ा आकर्षक होता है। पाप करनेका प्रसङ्ग आए और पापाचार किए बिना कोई चारा ही न रहे तो भगवान्‌को साक्षीभूत रख कर ही पाप करना। इसका अर्थ यह नहीं है कि पापाचार करते रहो किंतु ऐसे समय भगवान्‌का स्मरण अवश्य करते रहना।

जबतक पाप हृदयमें होगा उसका नाश नहीं होगा। उसकी तो जड़ ही काटनी होगी।

सभी क्रिया प्रकट-अप्रकट शब्दोच्चारणके साथ ही होती है। पापाचारके पहले, मनमें उसका उच्चारण होते ही उसका नाश करो। पहले विचार भ्रष्ट होता है, फिर वाणी भ्रष्ट होती है और फिर आचारमें भ्रष्टता आ जाती है। मनमें पाप आते ही मनको डांटो, उसे सजा दो। पाप मनमें आते ही शीतल जलसे स्नान करके कीर्त्तन करो, प्रार्थना करो। हे प्रभु, यह काम, यह वासना, यह लोभ मुझे सता रहा है, मुझे छोड़ता नहीं है। कृपा करो। मेरी सहायता करो। सच्चे हृदयकी प्रार्थना वे अवश्य सुनेंगे।

संत, प्रभु-नामका उच्चारण सतत करते रहते हैं, अतः उनसे पाप नहीं किया जा सकता।

अघासुरके उदरमें जाते समय ताली बजाते हुए अर्थात् मनको जागृत करते हुए जाओ।

सभी जानते-समझते हैं कि असत्य बोलना, किसीको सताना, हिंसा करना आदि पाप है फिर भी पाप करते ही रहते हैं। पापको मूलसे ही उखाड़ फेंको। जब भी ऐसा लगे कि अपना शरीर या मन पाप करने जा रहा है, तब तुरंत ही भगवान्‌के नामका कीर्त्तन करने लगो। परमात्माको याद करते हुए पापकी वासना छूट जाएगी। पापकी आदत छुड़ानेका उपाय है प्रभु-प्रार्थना।

प्रभु, मेरी पापवासनाका नाश करो। मैंने जब पाप किया था तब आप भी वहाँ उपस्थित थे। मुझे सजा भी दीजिए और क्षमा भी।

मनुष्य स्वयं जानता तो है कि वह क्रोधी है, कामी है।

जानबूझ कर पाप करनेवाला, पापमें सुख माननेवाला, पाप ही में रममाण रहनेवाला अघासुर ही है।

पाप किए बिना रहा हो न जाय तो भगवान्को साक्षीमें रखना। वे तुम्हें बचायेंगे। यद्यपि यह नियम कनिष्ट है।

उत्तम बात तो यही है कि पापका विचार तक न किया जाय।

बिना भोगे हुए जिसका नाश नहीं हो सकता है वह पाप है। पुण्य तो बिना भोगे भी नष्ट हो सकता है। पुण्य भोगनेके लिए तो जन्म लेना पड़ता है। साधु-सन्तोंको भी पुण्य तो अन्तमें कृष्णार्पण ही करना पड़ता है।

पुण्य कृष्णार्पण किया जा सकता है, पाप नहीं। पापका दण्ड तो स्वयं ही भुगतना पड़ता है।

प्रारब्धकर्मणाम् भोगादेव क्षयः।

किसी महापुरुष, सुपात्र साधु-सन्तकी कृपा होने पर ही पापकी वासना नष्ट हो सकती है।

कई बार तो अन्तरात्माकी अनिच्छा होने पर भी पाप हो जाता है।

गीतामें अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे एक सनातन प्रश्न पूछा है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

अनिच्छा होते हुए भी जीव पापमें क्यों प्रवृत्त होता है? वह पाप क्यों करता है? इच्छा न होनेपर भी उसे पाप क्यों करने पड़ते हैं?

भगवान् कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

रजोगुणमें-से उत्पन्न हुए काम और क्रोध मनुष्यके प्रमुख शत्रु हैं। वे ही उसे पापकी ओर घसीटते रहते हैं।

रजोगुणको कम करो और सत्वगुण बढ़ाते जाओ।

ताली बजाते हुए बालक पहले नादब्रह्ममें लीन हुए और बादमें उनका मन परब्रह्मसे जा मिला।

वैसे तो सभी बालक सारे दिनकी लीला अपनी माताओंको उसी दिन सुनाते रहते थे। किंतु इस अघासुर-वधका प्रसङ्ग एक वर्षके बाद सुनाया। अर्थात् कृष्णने अपने पांचवें वर्षमें अघासुरका वध किया था किंतु बात छठे वर्षमें बतलायी।

परीक्षित राजाने पूछा—उन बालकोंने ऐसा क्यों किया? एक बरस तक छुपाये रखनेका क्या कारण था?

परीक्षितके इस प्रश्नसे शुकदेवजीको उस प्रसङ्गका, उस रहस्यमयी लीलाका स्मरण हो आया। वे समाधिमें लीन हो गए। कुछ देरके बाद धीरे-धीरे जब बाह्यदृष्टि प्राप्त हुई तो कहने लगे—सुनो राजन्! ब्रह्माने उन गोपबालकोंका अपहरण किया था। वहाँसे वे एक वर्षके बाद लौटे सो एक वर्षके बाद ही वे अपनी सारी बात कह पाये।

शुकदेवजीने तेरहवें और चौदहवें अध्यायमें विस्तारसे समझाया है।

भगवान् चारों प्रकारसे रास खेलते हैं। उनका नाम ही रस है। 'रसो वै सः।' परमात्मा दिव्य रस स्वरूप हैं। उनके साथ मिलना रास है। रासका अर्थ है ब्रह्मसे मिलन। रासका अर्थ है कृष्णसम्बन्ध, ब्रह्मसे सम्बन्ध।

जीव जब ईश्वरके साथ एक हो पाता है तभी कृतार्थ होता है।

गोकुलकी गायोंकी इच्छा थी कि वे प्रभुके साथ एक बनें। अब यह कैसे हो पाएगा? तो उन्होंने इच्छा की कि जिस प्रकार बछड़े उनका दूध पीते हैं उसी प्रकार कृष्ण भी पीये। प्रभुने उनकी इच्छा पूरी की। इस अध्यायमें गायरास वर्णित है।

गोकुलकी वृद्धाओंकी इच्छा थी कि कन्हैयाको वे लाड़-प्यार करें, दुलरा पायें। वे सब लालासे मनसे मिलतीं थीं। मानसिक मिलन भी आनन्ददायी है फिर भी प्रत्यक्ष मिलनकी उत्कण्ठा बनी रहती थी। इस अध्यायमें वृद्धा गोपियोंका रास वर्णित है।

अघासुरके उदरमें सभी गोपबालक और बछड़े बाहर आए। बालकोंने कन्हैयासे भोजन करनेकी इच्छा प्रकट की। तो कन्हैयाने कहा, हाँ, चलो यमुनाके इस सुन्दर किनारे पर हम पंक्ति लगाकर भोजन करें। और ये बछड़े भी हरा घास चरते रहेंगे।

कन्हैया और सभी बालक एक साथ मिलकर पद्मव्यूह-चक्रव्यूह रचकर भोजन करने बैठ गये। यह समाधि भाषा है। कमलकी पँखुरिया बिलकुल पास-पास होती हैं, एक-दूसरीसे लगकर होती है। कमलके मध्यमें कोमल पदार्थ होता है और छोटी-सी पँखुरियाँ वहाँ होती हैं। बड़ी पँखुरियाँ उन छोटी-सी पँखुरियोंसे लगकर होती हैं। सभी बालकोंकी इच्छा श्रीकृष्णसे लगकर बैठनेकी है। सभी अपने-अपने घरकी सामग्री कन्हैयाको खिलाना चाहते हैं। सभी कन्हैयाके मुँहमें कौर रखना चाहते हैं। दूर बैठकर तो वैसा किया नहीं जाता। श्रीकृष्णने बीचोंबीच बैठकर सभी बालकोंके मनकी इच्छा पूरी की।

रासलीलामें भी प्रत्येक गोपीको वैसा अनुभव कराया कि वे उसीके साथ हैं। प्रत्येक गोपबालक और गोपीको कृष्णने सान्निध्य और स्पर्शका अनुभव कराया।

ईश्वरके सामीप्यके बिना चैन नहीं आता। ब्रह्मस्पर्शके बिना आनन्द नहीं मिल पाता।

प्रेम इतना शक्तिशाली है कि निराकारको भी साकारता दे देता है। निष्काम ईश्वर भी प्रेमके कारण सकाम बन जाते हैं।

कन्हैया अपने मित्रोंको समझाता है, कभी अकेले न खाना। अकेले खानेवाला बिल्ली बनता है। चोरी-छिपे अकेलेमें खाना पशुधर्म है। अकेले कभी न खाया जाय।

ईश्वर सभीको समान आनन्द देते हैं। मनुष्य विषमता देता है, विषमता बनाए रखता है। ईश्वर सुपात्र जीवको इतना तो देते हैं कि लेनेवाला लेते-लेते थक जाय।

यज्ञ भुग । ईश्वर यज्ञका भोक्ता है । यज्ञमें आवाहन करने पर भी कई बार जो ईश्वर भोजन नहीं करते हैं वही आज गोपबालकोंके हाथों भोजन कर रहे हैं ।

परमात्माको वशमें करनेका सर्वोत्तम साधन है प्रेम । भगवान्को उत्तमोत्तम वस्तु दी जाय और वैसी वस्तु है भक्ति । भक्ति ही शुद्ध प्रेमभाव है ।

कोई बालक जलेबी लाया था तो कोई बरफी तो कोई दही बड़ा । सभी बालक मिलकर खा रहे हैं ।

भोजनके समय विनोद करना चाहिए, आनन्द करना चाहिए ।

कन्हैयाने कहा, भ्रजी, इसकी माँ वही बड़े-सी गोलमटोल और बाप दुबला-पतला । सभी हँस पड़े । इस प्रकार कन्हैया और सभी बालक आनन्द-प्रमोद करते हुए खाने और खिलाने लगे ।

जीव जब अपमापन, जीवत्व, अभिमान छोड़कर परमात्मासे प्रेम करने लगता है तब ईश्वर भी अपना ईश्वरत्व छोड़कर जीवके साथ खेलने चले आते हैं । अभिमानी जीव अपनेको शास्त्री, पण्डित, ज्ञानी मानता है । वह भगवान्को भी ललकारने लगता है । भगवान् कहते हैं— यदि इस जीवको मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है तो मैं भी क्यों उसका ध्यान रखूं ?

यदि परमात्माको प्रसन्न करना है तो बालक बनकर उनके पास जाओ ।

गोपबालकोंके साथ भोजन करते हुए भगवान्की शोभा तो देखिए—

बिभ्रद् वेणुं जठरगटयोः भृंगवेत्रे च कक्षे ।
व मे पाणौ मसृणकवलं तत्फलायन्यंगलीषु ॥
तिष्ठन् मध्ये स्वपारसुहृदो हासयन् नर्मभिस्वैः ।
स्वर्गलोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग बालकोलः ॥

भा० १०-१३-११

उस समय श्रीकृष्णकी छटा सबसे निराली थी । उनकी कमरमें बाँसुरी बँधी हुई थी, बगलमें सिंग और लकड़ी थीं, बाँए हाथमें घीयुक्त दही मिले हुए चावलका ग्रास था । अँगुलियोंमें फलोंका अचार था । चारों ओर गोपबालक बैठे हुए थे । वे सभीके मध्यमें बैठकर, सभी बालकोंके साथ विनोद करते हुए भोजन कर रहे थे । स्वर्गके देवता भी इस अद्भुत लीलाको आश्चर्यसे देख रहे थे ।

इस लीलाको मनमें देखकर आनन्द करो । वृन्दावन, यमुनाका किनारा, फलोंसे झूके हुए वृक्षोंकी घटा, नीचे बैठे हुए कृष्ण और गोपबालक आदिकी मनमें कल्पना करोगे तो आनन्द मिलेगा ।

सच्चा वैष्णव मनसे तो हमेशा वृन्दावनमें ही रहता है । तन चाहे जहाँ हो, मन तो वृन्दावनमें ही होना चाहिए ।

भावना भक्तिको सफल करती है ।

खाना कोई पाप नहीं है। खानेके लिए ही तो भगवान्ने ये सारे खाद्य पदार्थ उत्पन्न किए हैं। किंतु भगवान्को भुलाकर, भगवान्को अर्पण किए बिना ही खाना पाप है। कई लोग कहते हैं कि आज तो उनको एकादशीका उपवास है। किंतु अकेलेमें ढेर सारा खा लेते हैं। खाना नहीं, किसीसे छुपाकर, चोरी-छीपे खाना पाप है।

अघासुरको जब कन्हैयाने मोक्ष दिया तब ब्रह्माको आश्चर्य हुआ। वे इधर देखनेके लिए आये कि यह कन्हैया कौन है। यहाँ आकर देखा तो कन्हैयाको गोपबालकोंके साथ भोजन करते हुए पाया।

इन व्रजबालकोंमें-से एक था ऋषि शाण्डिल्यका पुत्र मधुमङ्गल। उससे कन्हैयाने कहा, तू हमारे घरका तो खाता रहता है किंतु अपने घरका तो हमें कभी नहीं खिलाता। पवित्र ब्राह्मणोंके घरका भोजन खानेसे बुद्धि पवित्र होती है। इसी कारणसे कन्हैयाने मधुमङ्गलके घरका भोजन खाना चाहा।

यशोदाजीने शाण्डिल्य ऋषिसे कहा था कि मधुमङ्गलको रोज भोजन करने भेजना। यशोदाजी उसका बड़ा आदर करती थीं।

सो आज कन्हैया उस ऋषि पुत्रसे कह रहा था, रोज तू मेरे घर खाता है, आज मुझे तू अपने घरका खिला।

मधुमङ्गलने दौड़ते हुए अपने घर आकर अपनी माता पूर्णमासीसे बात की। माताको बड़ा आनन्द हुआ। किंतु अभी तक रसोई बनाई ही नहीं थी।

शांडिल्य ऋषि ब्राह्ममुहूर्तमें शय्यात्याग करते थे किंतु उनका नित्य कर्म रात्रिके आठ बजे समाप्त होता था। प्रातःकालमें वे गायत्री मन्त्रकी चौबीस माला फेरते, पंचायत देवोंकी पूजा, पञ्च देवोंका अभिषेक, विश्वदेव, यज्ञ-होम, मध्याह्न सन्ध्या, विष्णुसहस्रनाम पाठ, भागवत पाठ, और अन्तमें भगवान्के नामोंका इक्कीस जप। इतना सब करते-करते साँझ ढल जाती थी। इस तपस्वी ब्राह्मणको खाने तकका समय मिलता नहीं था। सो वे रात्रिके समय फलाहार करते थे।

एक बार भजनानन्द मिला नहीं कि फिर भोजनानन्द, सांसारिक सुख नीरस लगते हैं। हमारे जीवको भजनमें आनन्द नहीं मिलता है सो अन्य विषयोंमें आनन्द ढूंढ़ता रहता है।

ब्राह्मणका अवतार तप करनेके लिए है, विलासके लिए नहीं। भगवान् नहीं चाहते हैं कि ब्राह्मण विलासी हो जाय। वैश्य और क्षत्रियका विलास तो कुछ अंशोंमें क्षम्य है किंतु ब्राह्मणका विलास अक्षम्य है। यदि अन्तकाल तक ब्राह्मण पवित्र रहे, विलासकी कामना तक न करे तो भगवान् उसे दिव्य आनन्द देते हैं।

पतिव्रताका धर्म है कि जब तक पतिने भोजन न किया हो तब तक वह भी भोजन न करे।

शाण्डिल्य और पूर्णमासी अत्यन्त पवित्र थे। पूर्णमासी भी पतिके साथ-साथ फलाहार ही करती थी। उनका एक मात्र पुत्र मधुमङ्गल तो यशोदाके घर भोजन कर लेता था। अतः पूर्णमासी कभी रसोई बनाती ही नहीं।

यदि स्त्री अपने पतिके प्रति ईश्वरत्वका अनुभव नहीं करती है, ईश्वरका भाव नहीं करती है तो उसे पत्थरकी मूर्तिमें-से कभी भगवान् नहीं मिलेंगे।

जीवनकी आवश्यकताओंके घटने-बढ़नेके साथ-साथ पाप-पुण्य घटते-बढ़ते जाते हैं। 'चाहिए' का तो कभी अन्त नहीं आता। सो अपनी आदत और जरूरत कम करते रहो। निश्चय करो कि मुझे भगवान्‌के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहिए।

पवित्र ब्राह्मण अपने घरमें किसी भी वस्तुका संग्रह नहीं करता।

अब पूर्णमासीके घरमें तो कुछ भी नहीं था। घरमें देखा तो बस थोड़ी-सी छाछ थी। खट्टी होगी तो कन्हैयाको पसन्द नहीं आएगी, ऐसा सोच कर उसकी कढ़ी बनाई। मधुमङ्गलसे कहा, मुझ गरीब ब्राह्मणोके घर और तो कुछ है नहीं। बस यही दे देना।

परमात्मा कभी यह नहीं देखते कि जीव उनके लिए क्या लाया है। वे तो मात्र यह देखते हैं कि वह कौन-से भावसे लाया है। ईश्वर केवल भाव देखते हैं। वस्तुको देखनेवाला जीव है और केवल भावको देखनेवाले हैं भगवान्।

भगवान्‌को हमेशा सर्वोत्तम वस्तुका भोग लगाओ।

तो मधुमङ्गल वह छाछ लेकर आया। अन्य सभी बालक तो भाँति-भाँतिकी मिठाई लाए थे इसलिए मधुमंगल ऐसी छाछ देते हुए शर्माने लगा। उसने सोचा कि यदि मैं ऐसी छाछ कन्हैयाको दूंगा तो मुझे सारा जन्म ऐसी खट्टी छाछ ही पीनी पड़ेगी। कान्हा उपहास भी करेगा कि उसकी माँ खट्टी है सो छाछ खट्टी है। ऐसा सोच कर मधुमंगल स्वयं ही छाछ पीने लगा।

भगवान्‌की दृष्टि उसपर पड़ी। अरे मधुमंगल, तेरी माँने यह छाछ मेरे लिए भेजी है और मुझे देनेके बदले तू ही पिये जा रहा है। मेरी मौसी पूर्णमासीने यह मेरे लिए बड़े प्यारसे भेजी है। मुझे भी तो पीने दो। मधुमङ्गल जल्दी-जल्दी पीने लगा। कन्हैया झपटकर उसके पास आया और मटकी अपने हाथमें ले ली किंतु वह तो खाली हो गई थी। जब कन्हैयाने देखा कि मधुमङ्गलके मुँह पर थोड़ी-सी छाछ लगी है तो उसका मुँह चाटने लगा। यह सब चल रहा था, उसी समय वहाँ ब्रह्माजीका आगमन हुआ।

कन्हैया कह रहा था, मधुमङ्गल, तेरे पिता तपस्वी ब्राह्मण हैं। सो तेरी झूठी छाछ मेरी बुद्धि सुधारेगी।

श्रीकृष्ण बालकके साथ बालक, भोगीके साथ भोगी, योगीके साथ योगी और ज्ञानीके साथ ज्ञानी हैं। बालक-ब्रह्मज्ञानकी बातें समझ नहीं सकते हैं अतः वे उनका मन, खाने-पीनेकी बातों, माखनचोरी लीला आदिसे हरते हैं। वे बालकोंके मित्र बनकर अनायास ही ब्रह्मानुभव कराते हैं।

कन्हैयाको मधुमङ्गलका मुंह चाटते हुए पाया तो ब्रह्माजीको आश्चर्य हुआ। यह कैसा भगवान् है? लोग श्रीकृष्णको ईश्वर मानते हैं और यह तो इधर गोपबालकोंका मुँह चाटता फिरता है। ईश्वर कभी ऐसा भी हो सकता है क्या? ब्रह्मा पशोपेशमें डूब गए हैं। यह वही ब्रह्मा हैं जिन्होंने क्षीरसागरमें जाकर शेषशायी भगवान्‌से अवतार लेनेकी प्रार्थना की थी और उनके देवकीजीके गर्भमें आने पर गर्भस्तुति की थी। आज ये ब्रह्माजी श्रीकृष्णकी सगुण लीलाको देखकर चकरा गए हैं।

सगुण ब्रह्मकी चित्र-विचित्र लीलाको देखकर ब्रह्माजी सरीखे भी असमंजसमें पड़ जाते हैं तो सामान्य जीवकी तो बात ही क्या?

निर्गुण ब्रह्मको समझना कुछ आसान है किंतु सगुण ब्रह्मकी लीलाओंका पार पाना बड़ा कठिन है।

तुलसीदासजीने भी कहा है—

निरगुन रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोइ।

ब्रह्माजीने परीक्षा लेनेकी सोची कि यह कृष्ण ईश्वर है या कोई साधारण देव। यह मुझ जैसी सृष्टि बना पाएगा तो मैं मानूंगा कि यह कृष्ण ईश्वर है। यदि मेरी कसौटी पर यह पार उतरेगा तो मैं इसे ईश्वर मानूंगा।

ब्रह्माजी मायाके बलसे सभी बछड़ोंको ब्रह्मलोकमें उठा ले गए।

भोजन करते-करते बालकोंको अपने बछड़ोंकी याद आई। देखा तो बछड़े वहाँ थे ही नहीं। कन्हैयासे उन्होंने बात की।

कन्हैयाने मित्रोंसे कहा, तुम भोजन करो, मैं बछड़ोंको ले आऊँ।

कृष्ण बछड़ोंको ढूंढ़ने चले।

इस प्रसङ्गमें एक और भी रहस्य है।

जब तक बच्चे भगवान्‌को ही दृष्टिमें रखकर भोजन कर रहे थे तब तक उन्हें आनन्द मिला किंतु बछड़ोंकी चिंता होते ही विषयोंमें उनका मन जा लगा तो ब्रह्मा बछड़ोंको उठा ले गए और ईश्वर ही दूर हो गए। कन्हैयाको ढूंढ़नेके लिए दूर जाना पड़ा। गोपबालक ब्रह्माके अधीन हो गए, ब्रह्माकी मायाके अधीन हो गए।

ब्रह्मा भी कालका एक रूप हैं। सांसारिक विषयोंकी ओर मन गया नहीं कि जीवको ब्रह्मा-काल पकड़ लेते हैं।

भोजन करते समय यदि दृष्टि भगवान्‌की ओर रहेगी तो भोजन भी भजन हो जाएगा।

भोजन अतिशय स्वादिष्ट न होना चाहिए। स्वादिष्ट अधिक होगा तो भरपेट खाया जाएगा। बहुत खानेसे मन आलसी हो जाता है। स्वादरहित भोजन होगा तो मात्र भूखके लिए ही खाया जा सकेगा। जिसे परमात्माका भजन करना है, उसे आलसी न बनना चाहिए। भोजन एक अनिवार्य शरीरधर्म है, वह पाप नहीं है किंतु भोजन ही के साथ तन्मय होना पाप है।

श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूंढ़ न पाये तो वापस लौटे। इधर आकर देखा तो गोपबालक गायब थे। श्रीकृष्ण समझ गये कि यह सब ब्रह्माजी ही की करतूत है। ब्रह्माजी शायद भूल गये हैं कि मैं भी उनका दादा हूँ।

कहीं पर विष्णुको ब्रह्माका पिता कहा गया है तो कहीं पर पितामह।

देवी भागवतके नौवें स्कन्धमें सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा है। सृष्टिकी उत्पत्तिके बारेमें सभी शास्त्र एकमत नहीं हैं। जगत्‌की उत्पत्तिके विषयमें की गई विचारणा भिन्न-भिन्न है। महात्माओंने तो ईश्वरके स्वरूपके बारेमें ही अधिक विचार किया है। उनमें ईश्वरके स्वरूपके विषयमें अधिक मतभेद भी नहीं है।

वैकुण्ठधाममें विराजमान लक्ष्मीनारायणकी नाभिमें-से कमल उत्पन्न हुआ और उस कमलमें-से ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

भगवान् तो 'कर्तुम् अकर्तुम्' और 'अन्यथाकर्तुम्' समर्थ हैं। कृष्णकी यह इच्छासृष्टि है। कन्हैयाने ही उन सभी बालकों और बछड़ोंका रूप धारण किया। वे अपने ही स्वरूपसे खेलते हैं, यह निश्चित है।

ज्ञानी अपने शरीरसे नहीं, आत्मासे खेलते हैं। एक है भोगार्थ सृष्टि, जिसे जीव-सृष्टि कहते हैं। ईश-सृष्टि तो पंचभूत-रहित है, भगवान्की लीलासृष्टि है। मात्र अन्यको आनन्द देनेकी दृष्टिसे की गई सृष्टि लीला-सृष्टि है। ब्रह्मा पंचमहाभूतकी सहायतासे जगत्की सृष्टि करते हैं।

भगवान् कहते हैं, मैं पंचमहाभूतकी मददके बिना सृष्टि उत्पन्न करता हूँ।

परमात्मा जब भी सङ्कल्प करते हैं, सृष्टि उत्पन्न होती है। जब ईश्वर पंचमहाभूतको उत्पन्न करते हैं, तब उनके आधारसे ब्रह्मा जगत् उत्पन्न करते हैं।

द्रौपदीकी साड़ी कौन-सी मिलकी थी? स्वयं कृष्ण ही ने वस्त्रका रूप लिया था। भगवान्के सङ्कल्पने साड़ी उत्पन्न की थी। जिसे ईश्वर ढंकते हैं, उसे कौन निर्वस्त्र कर सकता है? यह तो श्रीकृष्णका संकल्प था, लीला थी।

श्रीकृष्णने गोपबालकोंकी कमली, लकड़ी आदिके अनेक रूप धारण किए।

वैष्णव ब्रह्मके परिणामवादमें विश्वास रखते हैं और वेदान्ती विवर्तवादमें। जगद्गुरु शंकराचार्यका वाद, विवर्तवाद है। यह जगत् मिथ्या है, असत्य है। इसके अधिष्ठाता सत्य होनेके कारण यह जगत् सत्यरूप भासमान होता है। वस्तुतः ईश्वर तो एक ही है। एक ही परमात्मा अनेक रूप धारण करते हैं किंतु उनके वे स्वरूप सत्य नहीं हैं। अविद्याके कारण असत्य जगत् सत्य आभासित होता है।

फिल्ममें तो हम देखते हैं कि हनुमानजी लङ्काको जला रहे हैं किंतु परदेका तो एक धागा भी जल नहीं पाता क्योंकि यह आभासी सृष्टि है। चित्र नहीं, पर्दा सत्य है।

अधिष्ठान सत्य है, ब्रह्मस्वरूप फलक-सा है और जगत् चित्र-सा। मायाके कारण यह सब दिखाई दे रहा है।

श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं, ब्रह्म निर्विकार है, फिर भी ब्रह्मका परिणाम होता है। दोनों सिद्धांत सत्य हैं। श्रीकृष्ण ही लाठी हैं। श्रीकृष्ण सत्य हैं और उनके कारण ही लाठीका भास होता है। ब्रह्म निर्विकार रहते हुए भी विकारी होते हैं।

परमात्मासे मिलनेकी गायोंकी इच्छा थी। सो कृष्णने बछड़ेका रूप धारण किया। असली बछड़े तो ब्रह्मलोकमें थे। जिन बछड़ोंने स्तनपान छोड़ दिया था, वे भी आज स्तनपान कर रहे हैं। गायें भी बड़े-बड़े बछड़ोंको स्तनपान कराने लगीं। यह दृश्य देखकर बलरामको पहले आश्चर्य हुआ किंतु उन्होंने अंतर्मुख होकर देखा तो पाया कि ये सब बछड़े तो कृष्णके ही रूप हैं।

जिन वृद्धा गोपियोंको श्रीकृष्णसे मिलनेकी इच्छा थी उनके साथ आज श्रीकृष्णने गोपबाल-लीला की। गोपियां अपने बालकरूपी कन्हैयाको उठाकर गले लगाने लगीं।

गोपियोंको परकीया नहीं माना गया। परकीया भाव माना गया है। श्रीकृष्ण सभीके पति हैं। सो गोपियोंके भी पति हैं। इस दृष्टिसे रासलीलामें कोई भी गोपी परकीया नहीं थी।

किसी सन्तने कहा है कि व्रज और गोकुलमें कोई परकीया थी ही नहीं। कारण यह है कि प्रभु जब वत्सलीला कर रहे थे तब ऋषि शांडिल्यने आज्ञा की थी कि इस वर्ष भगवान् श्रीकृष्णने गोपबालकोंका रूप धारण किया है। अतः यह समय बड़ा उत्तम है। सब अपनी-अपनी कन्याओंका विवाह कर दें। तो सभीने अपनी कन्याओंका विवाह उन गोपबालकोंके साथ कर दिया अर्थात् सभी गोपियोंका विवाह श्रीकृष्णके साथ ही हुआ। सो रासलीलामें परकीया नारीका प्रश्न ही नहीं उठता। श्रीकृष्णके लिए कोई भी स्त्री परस्त्री नहीं थी। वे तो सभीके स्वामी हैं, सर्वेश्वर हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ों और बालकोंका रूप धारण करके गायों और वृद्धा गोपियोंको ब्रह्मसम्बन्धसे लाभान्वित किया। सभीको ब्रह्मसम्बन्धरूपी ब्रह्मानन्दका अनुभव कराया।

भगवान् श्रीकृष्णने प्रसिद्ध वेद वाक्य 'सर्वं विष्णुमयं जगत्'को आज इस प्रकार चरितार्थ किया।

नरसिंह मेहताने भी गाया है—

'ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।'

सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वं स्वरूपो बभौ।

भा० १०-१३-१९

उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है' यह वेद-वाक्य मानों मूर्त्तिमन्त हुआ।

निज इच्छानिर्मित तनु ईश्वर है और कर्मनिर्मित तनु जीव।

भगवान्ने इस प्रकार पूरे एक वर्ष तक लीला की।

भागवतने व्रजवासियोंकी लीलाके चार प्रकार बताये हैं। रासलीला चार हैं।

(१) वेणुगीत प्रसङ्ग — कुमारिका गोपियोंके साथ रास।
(२) यज्ञ-पत्नी प्रसङ्ग — विवाहिता गोपियोंके साथ रास।
(३) गोवर्धन लीला — वृद्धा गोपियोंके साथ रास।
(४) संन्यासी प्रसङ्ग — संन्यासिनी गोपियोंके साथ रास।

मुख्य रासलीलाएँ इस प्रकार हैं।

(१) गोप-बालकोंके साथ।
(२) गायोंके साथ।
(३) गोप-युवतियोंके साथ।

अब रासका अर्थ भी देख लें। परमात्मा रसस्वरूप हैं। 'रसो वै सः।' इस रसरूप ईश्वरके साथ तादात्म्य होना ही रास है। परमात्मासे जीवका मिलन रास है। रसात्मक ईश्वरके साथ अभिन्न भाव होना, सम्बन्ध होना ही रास है।

ऐसा कौन-सा जीव होगा जो ईश्वरसे मिलनेकी इच्छा न करता हो?

इन लीलाओंसे प्रभुने सभीको मुग्ध करके रस बांटा, आनन्दका आविर्भाव किया।

भागवतके टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती तेरहवें-चौदहवें अध्यायमें लीलामें तन्मय हो गए हैं। उनका कहना है कि यह तो सर्वोदय लीला है, प्रभुने सबको समान रूपमें आनन्द दिया है।

श्रीकृष्णने आज जब बालकों और बछड़ोंका रूप धारण किया तो वे गोपियाँ और गायें पहलेसे भी अधिक प्यार करने लगीं। अपनी-अपनी सन्तानोंको प्यारसे नहलाने लगीं। गायें अपने बछड़ोंको दूध पिला रही हैं, चाट रही हैं किंतु तृप्त ही नहीं होतीं। ब्रह्मानन्दमें तृप्ति मिलती ही कब है?

ब्रह्माजी पृथ्वी पर यह देखनेके लिए दूसरी बार आये कि बालकों और बछड़ोंके बिना इधर क्या हो रहा है। उन्होंने देखा तो पाया कि सब कुछ पूर्ववत् चल रहा है। वही बालक और वही बछड़े और श्रीकृष्ण उन सबके साथ खेल-कूदमें मग्न। ब्रह्माजी सोचमें डूब गए। ये बालक-बछड़े सच्चे हैं या वे सच्चे हैं जिन्हें मैं ब्रह्मलोक ले गया हूँ? 'इत एतेऽत्रसत्याः के।'

अन्यके साथ खेलनेवाला दुःखी होता है। ज्ञानी पुरुष अपने आत्मस्वरूपमें ही रममाण रहते हैं। भगवान् अपने ही स्वरूपके साथ खेल रहे हैं। श्रीकृष्ण तो योगेश्वर हैं।

कृष्णने एक और लीला करनेकी सोची। उन्होंने ब्रह्माका रूप धारण किया और सेवकोंसे कहा, एक नकली ब्रह्मा आजकल इधर-उधर घूमता रहता है। वह यदि यहाँ आ जाय तो उसकी भलीभाँति मरम्मत कर देना।

सोचमें डूबे हुए ब्रह्माजी जब ब्रह्मलोकमें पहुँचे तो सेवकोंने उनकी मरम्मत करनी शुरू कर दी। तू तो नकली है। सच्चे ब्रह्माजी तो राजप्रासादमें बैठे हुए हैं।

ब्रह्माजीने आँखें बन्द करके ध्यानावस्थित होकर देखा तो अपने सिंहासनपर श्रीकृष्णको बैठा हुआ पाया। सभी बालक और बछड़ोंमें भी उन्हींको पाया। परब्रह्मका उन्हें दर्शन हुआ।

ब्रह्माजी बालकृष्णकी परीक्षा लेने चले थे, किंतु स्वयं उन्हींकी परीक्षा हो गई। कृष्णमें नारायणस्वरूपका दर्शन हुआ। मेरे नारायण ही श्रीकृष्णका रूप लेकर आये हैं। ब्रह्माजी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माकी वह स्तुति बड़ी अद्भुत है। व्यासजीने इसमें चारों वेद एकत्र कर दिये हैं।

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

आपका स्वरूप वर्षाकालीन मेघके समान श्याम है। उस पर पीताम्बर बिजलीकी भाँति दमक रहा है। कानोंमें गुञ्जाके कुण्डल और शिरपर मोर-पङ्खका मुकुट है। आपके मुखकी शोभा अनोखी है। वक्षःस्थल पर वनमाला झूल रही है। हाथमें दही-भातका ग्रास, बगलमें लकड़ी और सींग तथा कमर पर बाँसुरी बँधी हुई है। कमलसे भी कोमल चरणों वाले और मधुर गोपबालवेशी आप परमात्माको मैं वंदन करता हूँ।

श्रीकृष्ण मेघ-समान श्याम हैं। परमात्माने मेघ-समान वर्ण धारण किया है क्योंकि मेघ सन्त है। मेघ नमकीन पानी पीकर लोगोंको मधुर जल देता है। नमकीन पानी दुःखका

और मीठा पानी सुखका प्रतीक है। अतिशय दुःख सहकर भी दूसरोंको जो सुख देता है वह संत है। स्वयं सुख भोग कर दूसरोंको सुखी करनेवाला सज्जन तो है किंतु सन्त नहीं।

कृष्णके गलेमें गुंजामाला है। माता यशोदा द्वारा पहनाई गई मोतीकी माला कन्हैयाने दूसरे गोपबालकको दे दी थी। घर आकर मातासे उन्होंने कहा, माँ, मैं यह कण्ठी लाया हूँ। मोतीकी माला तो मैंने अपने एक मित्रको दे दी। लालाको तो गुंजाकी माला ही बड़ी प्यारी लगती है। इसी कारणसे तो शृङ्गारकी समाप्ति गुंजामालासे की जाती है।

थोड़ा-सा देने पर भी उसे अधिक मान ले, वह ईश्वर है। बहुत-सा मिलने पर भी कम माने, असन्तुष्ट रहे, वह जीव है। प्रभुको जो कुछ भी दो, प्रेमसे दो।

कन्हैयाके मस्तक पर मोरपङ्ख है। प्रभुको कामसुखत्यागी बड़ा प्रिय है। उसे परमात्मा अपने सिर पर रखते हैं। लौकिक कामसुखोंका त्याग करोगे तो प्रभु तुम्हें अपने मस्तक पर बिठलायेंगे। मोर शारीरिक सम्बन्धसे प्रजोत्पत्ति नहीं करता है सो उसे भगवान्ने यह सम्मान दिया है।

ब्रह्माजी परमात्माकी स्तुति कर रहे हैं। आपका स्वरूप पंचमहाभूतोंका नहीं किंतु स्वयंसर्जित है। परमात्माका स्वरूप अप्राकृत अलौकिक है। जीवको तो उसके पूर्वजन्मके प्रारब्धकर्मानुसार शरीर मिलता है। परमात्मा स्वेच्छासे शरीर धारण करते हैं। मनुष्यको उसके कर्मानुसार शरीर मिलता है।

परमात्मा स्वेच्छासे शरीर धारण करते हैं या फिर भक्तोंकी इच्छाके कारण। निराकार निजानन्दने आज श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लिया है। परमात्माके अङ्ग-अङ्ग आनन्दरूप हैं। उनका स्वरूप अलौकिक अप्राकृत है।

परीक्षा लेनेके किए गए प्रयत्नके कारण ब्रह्माजीने प्रभुसे क्षमा-प्रार्थना की।

गर्भमें रही सन्तानका प्रहार माताको क्रोधित कर नहीं पाता। माताको तो क्रोधकी अपेक्षा आनन्द ही होता है। इसी भाँति मेरे अपराधको क्षमा कर दीजिए।

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।

ब्रह्माजी कहते हैं, मेरा शरीर पंचतत्त्वोंसे बना हुआ है, किंतु आपका शरीर तो केवल आनन्दमय है।

मिसरीके खिलौने मिसरी ही हैं, हाथी-घोड़े नहीं। उनकी टाँग तोड़कर दूधमें डालोगे तो दूध मीठा हो जाएगा। इसी तरह निर्गुणमें-से सगुण बने हुए परमात्मा भी आनन्द रूप हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका शरीर पूर्ण आनन्दमय है। उनसे आनन्द अभिन्न है।

निराकार, आकार धारण कर भी ले फिर भी तत्त्व तो वही रहता है।

व्रजकी गायों और स्त्रियोंको धन्य है, जिनके दूध-रूपी अमृतको पीनेके लिए आपने बछड़े और गोपबालकोंका रूप धारण किया। आप वह हैं, जिनको सन्तुष्ट करनेके लिए कई यज्ञयागादि कार्य असमर्थ रहे।

गोकुल-वृन्दावनमें जन्म पानेवाले सभी महाभाग्यशाली हैं।

जब तक मनुष्य प्रभुके भक्त नहीं होते हैं तब तक उनके लिए राग-द्वेष आदि चोर समान हैं, घर कारागृह है और मोह पांवोंमें पड़ी हुई जंजीरके समान है। भक्त बननेके बाद ये सब मोक्षदाता बन जाते हैं।

सभी प्राणियोंका आत्मा है श्रीकृष्ण। समग्र जगत् श्रीकृष्णसे व्याप्त है।

जो मनुष्य मुरारी भगवान्‌के चरणपल्लवरूप नौकाका आश्रय लेते हैं उनके लिए यह संसारसमुद्र केवल बछड़ेके कदमोंके निशान जितना ही गहरा है अर्थात् गहरा नहीं है। वे इसे अनायास ही पार कर जाते हैं।

भक्तिके बिना मात्र ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न तो छालको ओखलीमें रख कर कूटने जैसा है जो निष्फल ही रहता है। मात्र भक्ति ही मोक्षदायिनी है।

ब्रह्माजीने वंदन और स्तुति करके क्षमायाचना की। ब्रह्माजीने भोजनमें विक्षेप किया था, अतः स्तुति समाप्त होने पर भी कृष्ण मौन रहे।

किसीके भोजन और नींदमें बाधा डालना पाप है।

ब्रह्मलोकमें नींदमें सोए हुए बालक एक वर्षके बाद जागे। उन्होंने सोचा कि आज ही लीला हुई है।

यह लीला एक वर्ष तक चली सो वे अघासुरवधकी कथा अपनी माताओंको जल्दी कह न पाए।

कुछ महात्मा इसे ब्रह्ममोह-निवारण-लीला कहते हैं। श्रीधर स्वामीने इसे सर्वोदयलीला कहा है। जैसा आनन्द यशोदाको दिया वैसा ही आनन्द गोपियोंको, गोपबालकोंको, गायोंको और बछड़ोंको श्रीकृष्णने दिया। अतः यह सर्वोदय लीला है।

साधना करनेसे चित्त-शुद्धि होती है और बादमें ईश्वरकी प्राप्ति।

श्रीकृष्ण परमात्माका पूर्ण स्वरूप है अतः सभी शक्तियोंका प्राकटय हुआ है।

अन्य सभी अवतार अंशावतार हैं किंतु राम और कृष्णका अवतार पूर्ण है।

नृसिंहावतारमें क्रियाशक्ति प्रकट हुई और ज्ञानशक्ति गुप्त रही थी। अन्य अवतारोंमें मात्र एक-एक शक्ति प्रकट हुई थी और अन्य शक्तियाँ गुप्त रही थीं।

श्रीकृष्णने प्रत्येक लीलामें एक-एक देवका पराभव किया। वत्सलीलामें ब्रह्माका अभिमान उतार दिया। गोवर्धन लीलामें इन्द्रका और रासलीलामें कामदेवका पराभव किया।

एक दिन कन्हैया कहने लगा—माँ, अब मैं बड़ा हो गया हूँ। गायोंको चरानेके लिए जाऊँ?

यशोदा—अभी तो तू छोटा ही है। जरा और बड़ा हो जा। फिर अच्छा-सा मुहूर्त देख कर मैं तुझे गोपाल बनाऊँगी।

इतनेमें वहाँ शाण्डिल्य ऋषिका आगमन हुआ तो यशोदाने कन्हैयाका जन्माक्षर देते हुए उसे गोपाल बनानेका मुहूर्त पूछा। तो ऋषिने कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीका मुहूर्त दिया। कन्हैया उस दिन गोपाल बननेवाला था। उसे इतनी तो उतावली थी कि उसकी नींद भी गायब हो गई।

माता, मुझे गायोंसे बड़ा प्यार है। मैं इनकी पूजा करूँगा।

प्रातःकालमें स्नानादिसे कन्हैया निवृत्त हुआ ही था कि शाण्डिल्य ऋषि आ गए। कन्हैयाने गायोंकी पूजा की तो उनको बड़ा आनन्द हुआ क्योंकि उनका स्वामी पूजा कर रहा था। गायोंको फूलमाला पहना कर मिठाई खिलाई। गायोंने आशीर्वाद दिया, हमारे लालाकी जय-जयकार हो।

यदि प्रभुने संपत्ति दी हो तो गायोंका पालन करो। आजके धनवान् तो घरमें कुत्तेको पालते हैं और उन्हें अपने साथ मोटरमें बिठाकर घुमाने भी ले जाते हैं। ऐसे लोगोंके लिए यही कहेंगे कि वे अगले जन्मकी तैयारी कर रहे हैं। कुत्तेसे अति स्नेह किया जाएगा तो मृत्युके समय उसमें वासना रह जायेगी और अगले जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ेगा। कुत्तेका तिरस्कार न किया जाय, उसे रोटी भी दी जाय, किंतु उसके पीछे पागल मत बनो।

गायमें सभी देवोंका वास है। गायकी सेवा करनेसे अपमृत्यु टल जाती है। उसकी पूजा करनेका अर्थ है उसे भरपेट खिलाना-पिलाना। तिलक भर कर देनेसे उसका पेट कैसे भरेगा ? गाय तो व्रजभक्त है।

एकनाथ महाराजने एकनाथी भागवतमें एक विनोद किया है। रामजीने क्या-क्या नहीं किया था ? कई राक्षसोंका वध किया, अनेक यज्ञ-याग किए, प्रजाका भली भाँति लालन-पालन किया किंतु वे राजाधिराज थे सो गायोंकी सेवा न कर पाए। उनके मनमें गोसेवाकी वासना रह गई। अतः वे कृष्णका अवतार लेकर गायोंकी सेवा करने आए। अर्थात् राम और कृष्ण एक ही हैं।

प्रातःकालमें ब्राह्मणोंने आकर गणपतिकी पूजा करवायी। कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम हैं अतः धर्मकी सभी मर्यादाओंका वे पालन करते हैं। गायोंकी पूजा करके उन्होंने प्रदक्षिणा की। यह तो श्रीकृष्णकी पौगण्डावस्था है। शांडिल्य ऋषिकी आज्ञा होने पर कन्हैयाने माताको प्रणाम किया। यशोदाकी आँखोंसे हर्षाश्रु टपक पड़े। कन्हैयाने मातासे रोनेका कारण पूछा। तो यशोदाने कहा—तू सुबहसे गायोंको लेकर वनमें जाएगा और शामको लौटेगा। तेरे मनोहर चेहरेको देखे बिना मेरा सारा दिन कैसे बीतेगा ?

जब जीव ईश्वरके बिना एक भी क्षण जी न सके और ऐसी स्थिति पर पहुँचे तब ईश्वर शीघ्र ही उसकी गोदीमें आ जाते हैं।

यशोदाने कन्हैयाको उपानह पहनाने चाहे तो उसने इनकार करते हुए कहा—मैं गोपाल हूँ, गायोंका सेवक हूँ और सेवक कभी जूते पहन सकता है क्या ?

यशोदा—बेटा, गाय तो पशु है।

कन्हैया—माँ, ऐसा कभी नहीं बोलो। गाय पशु नहीं, हम सबकी माता है। उसमें सभी देवोंका वास है। मैं तो गायोंका सेवक हूँ।

जबतक कृष्ण गोकुलमें रहे थे, उन्होंने चार प्रकारके संयमोंका पालन किया था।

(१) गोकुलमें उन्होंने सिले हुए कपड़े कभी नहीं पहने क्योंकि उनके साथी गोपबालक बड़े गरीब थे।

(२) जबतक गोकुलमें रहे उन्होंने कोई शस्त्रास्त्र धारण नहीं किया। एक हाथमें माखन-मिसरी थी और दूसरेमें बाँसुरी। बाँसुरीकी मधुर तानसे ही वह सारे गोकुलको घायल कर देता था।

(३) अपने शिरकेश कभी नहीं उतारे। गोकुलका कन्हैया प्रेम-मूर्त्ति है।

(४) कन्हैयाने कभी जूते नहीं पहने।

श्रीकृष्णने गायोंकी जैसी सेवा की वैसी न तो कोई कर सका है और न कोई कर सकेगा। गायोंको खिलाने-पिलानेके समय तक उसने कभी कुछ खाया-पिया तक नहीं था। ऐसा कन्हैया जब गोकुल छोड़कर चला जाए और गायें आँसू बहाने लगें, इसमें आश्चर्य ही क्या है? पशु होनेपर भी सभी गायें श्रीकृष्णके पास ही रहना चाहती थीं।

कन्हैया अपने पीताम्बरसे ही गायोंको पोंछता था और अपनी मिठाई भी उन्हें खिला देता था। माता कभी पूछती तो कहता, मुझे गाय बड़ी प्यारी हैं। उनके खानेसे मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।

अब हम धेनुकासुर-वधकी लीला देखेंगे। तालवनमें एक राक्षस गधेके रूपमें रहता था।

एक बार श्रीदामा और अन्य गोपबालकोंने शिकायत की कि तालवनमें फल तो बहुत हैं किंतु धेनुकासुर किसीको लेने नहीं देता।

भगवान्ने प्रह्लादको वचन दिया था कि उसके किसी भी वंशजको वे नहीं मारेंगे। सो बलभद्रने धेनुकासुरका वध किया था।

वनमें फल सड़ जाय फिर भी किसीको न दे वही धेनुकासुर है। अपने पास बहुत-सा होने पर भी किसीको कुछ न दे वह धेनुकासुर है, गधा है। देहको ही सर्वस्व माननेवाला, अतिशय संग्रह करनेवाला धेनुकासुर ही है।

धेनुकासुर तालवनका मालिक तो नहीं था किंतु बरसोंसे वह वहाँ रहता था और जबरन उसने कब्जा जमा लिया था। कई लोग सार्वजनिक संस्थाओंका बहीखाता करते-करते उसपर कब्जा जमा लेते हैं। कुछ ऐसी संस्थामें गोलमाल करते हैं रुपये-पैसे डकार जाते हैं। इस तरह समाजका धन उड़ानेवाला अगले जन्ममें गधा बनेगा।

धेनुकासुर देहाध्यास है, अविद्याके कारण होता है। अविद्या जीवको संसारके बन्धनोंमें फँसाती है। ऐसा होने पर सांसारिक पदार्थोंके लिए जीवके मनमें ममता, राग-द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं। जब तक अविद्या नष्ट नहीं हो पाती तब तक संसार छूट नहीं पाता।

अविद्या जीवको पाँच प्रकारसे बांधती है—(१) स्वरूप-विस्मृति (२) देहाध्यास (३) इन्द्रियाध्यास (४) प्राणाध्यास (५) अन्तःकरणाध्यास।

देहाध्यासमें जीव अपनेको बड़ा, स्वरूपवान्, विद्यावान्, सम्पत्तिवान् मानने लगता है, देहाभिमानी हो जाता है। ऐसे लोग दूसरोंका अपमान करने लगते हैं, दूसरोंको सताते हैं। ऐसे देहाध्यासको बलभद्रने मारा। भगवान्की आधिदैविक शक्तिसे ही देहाध्यासका नाश हो सकता है।

अब आती है कालीयनाग-दमनकी बात।

प्रभुने कालीयनागका उद्धार करनेका विचार किया। सो वे सभी बालकोंके साथ उस जलाशयके किनारे गेंद खेलने लगे कि जिसमें कालीयनाग रहता था। खेल-खेलमें गेंद उस जलाशयमें जा गिरी। बाल मित्रोंने कहा, लाला, इसमें नाग रहता है सो कोई भी उसका पानी नहीं पीता है।

भगवान् जलाशयमें कूद पड़े। कालीयनाग उन्हें डँसने लगा। ज्यों-ज्यों वह डँसता जाता था, विष अमृत बनता जा रहा था। कन्हैयाने एक हाथमें फन पकड़ा, दूसरेमें पूँछ। फिर फन पर आरुढ़ हो गए।

सभी बालक भयभीत हो गए किंतु कन्हैयाने ढाढस बँधाया और फन पर नृत्य करने लगा। कन्हैया अपना वजन बढ़ाता जाता था, अतः कालीयनाग व्याकुल हो गया। नाग-पत्नियाँ शरणमें आकर प्रार्थना करने लगीं। आपने हमारे पतिको जो दण्ड दिया है वह उचित ही है क्योंकि इससे दुर्जनके पापका नाश होगा। आप तो कर्मानुसार सभीको दण्ड देते हैं।

रावणवधके समय मन्दोदरीने भी ऐसा ही कहा था। उसने रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा था, मेरे पतिके कुकर्म ही उनकी इस हीन दशाके लिए कारणभूत हैं। इनको मारनेमें आपका कोई दोष नहीं है।

नाग-पत्नियाँ कहती हैं, वैसे तो हमारा पति दुष्ट नहीं है क्योंकि उसके मस्तक पर आपने चरण रखे हैं।

श्रीकृष्णने कालीयनागसे कहा, तेरे कारण यह सारा जलाशय विषैला हो गया है, सो तू यहाँसे कहीं दूर चला जा।

नाग—प्रभु, मैं जानेसे इनकार नहीं करता हूँ किंतु मुझे गरुड़जीका डर लगता है।

भगवान्—मेरे मङ्गलमय चरणोंके स्पर्शके कारण गरुड़जी तुझे कभी नहीं सतायेंगे।

कालीयनाग गरुड़जीके भयके कारण ही पानीमें छिपा हुआ था।

कालीयनागका फन तो मर्यादित था, हमारे तो हजारों हैं। हमारे सङ्कल्प-विकल्प फन ही हैं। भगवान्से प्रार्थना करो, मेरे मनके कालीयनागका दमन करो। उस पर अपने चरण पधराओ।

कालीयनागके तो मुखमें ही विष था, हमारी एक-एक इन्द्रियमें और मनमें भी विष भरा पड़ा है। एक व्यक्ति हमें आँखोंका काँटा लगता है तो दूसरा रतन। ऐसे रागद्वेष, विषय, विकार आदि विष ही तो हैं। जबतक इन्द्रियाँ वासनारूप विषसे भरी हुई हैं तब तक भक्ति नहीं हो पायेगी। इन्द्रियोंको नहीं, इन्द्रियोंमें समाहित विषको नष्ट करना है। इस विषको सत्सङ्गसे कम करते रहो।

कालीयनाग इन्द्रियाध्यास है।

यमुना-भक्तिमें इन्द्रियाध्यास आये तो शुद्ध भक्ति की नहीं जायेगी।

भोग और भक्ति पारस्परिक शत्रु हैं।

भक्तिके बहाने इन्द्रियोंको बहलानेवाला कालीयनाग है।

न केवल इन्द्रियोंसे, किंतु मनसे भी विषयोंका त्याग करोगे तो भक्ति सिद्ध होगी।

भक्तिमें विलासिता-विषधर घुस जाने पर भक्ति नष्ट हो जाती है। भक्ति मार्गके आचार्य वल्लभाचार्यजी, रामानुजाचार्यजी, चैतन्य महाप्रभुजी आदि सब परिपूर्ण वैरागी थे। पूर्ण वैराग्यके बिना भक्ति हो नहीं पाती। भक्ति ज्ञान-वैराग्यकी जननी है।

भक्ति मार्गके वे आचार्य तो केवल एक ही वस्त्र धारण करके सारे जगत्में विचरण करते थे किंतु आगे चल कर इस मार्गमें बहुतसे कालीयनाग (विलासी लोग) घुस गए और भक्ति मार्गको उन्होंने विषाक्त कर दिया, अपमानित कर दिया।

सेवा करना आसान नहीं है। संसार-सुखका मनसे भी त्याग करनेवाला ही देवसेवा और देशसेवा कर सकता है। महाप्रभुजीने कहा है, ईश्वरमें प्रभु-सेवासे अनुराग और शारीरिक सुख-विलाससे विराग रखोगे तभी भक्ति-मार्गमें आगे बढ़ सकोगे। देवसेवा और देश-सेवामें इन्द्रियोंके लालन-पालनका कोई स्थान नहीं है। इन्द्रियोंका सेवक देशसेवा कभी कर नहीं पाएगा।

सभी इन्द्रियाँ वासनाविषसे भरी हुई है। भगवान्ने सभी दैत्योंका नाश किया था किंतु कालीयनागका केवल दमन किया था, उसे नियन्त्रित किया था।

इन्द्रियोंका नाश नहीं, दमन करना है। उन्हें विवेकसे वशमें करना है। इन्द्रियोंको सत्सङ्ग कराओ। वहाँ उन्हें भक्ति-रसकी प्राप्ति होगी और वे शुद्ध होंगी।

इन्द्रियोंमें-से विषको निचोड़ दो और उन्हें सत्संग-मण्डलीमें भेज दो। कालीयनागको भगवान्ने विषरहित करके रमणक द्वीप पर भेज दिया था। इन्द्रियोंको शुद्ध कर लोगे तो वे भक्ति-रसमें लीन हो सकेंगी।

भोगसे इन्द्रियोंका क्षय होता है और भक्तिसे पोषण।

जो आनन्द योगी समाधिमें पाते हैं वही आनन्द वैष्णवोंको कृष्ण-कीर्त्तनमें मिलता है। कीर्त्तन करते समय दृष्टि हमेशा कन्हैयासे लगाये रहो।

वाणी कीर्त्तन करेगी, मन स्मरण करेगा और आँखें दर्शन करेंगी तभी जप सफल हो पायेंगे।

जब तक इन्द्रियोंमें वासना-विष भरा हुआ होगा, भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो पाएगी।
इन्द्रियाध्यास आने पर भक्ति अशुद्ध हो जाती है।

विषरहित करके इन्द्रियोंको रमणक द्वीपरूपी सत्संगमें भेज दो। वहाँ उन्हें भक्ति-रस मिलेगा।

इन्द्रियोंको भोगसे नहीं, भक्ति-रससे सींचना-पोसना है। भक्ति द्वारा इन्द्रियोंको रमणक द्वीप-सत्संगमें रमण कराओ।

भक्तिमार्ग अत्युत्तम है। इसमें इन्द्रियपुष्पको भगवान्के चरणोंमें रखना है। ज्ञान मार्गमें इन्द्रियोंसे संघर्ष करना पड़ता है, उन्हें मारना पड़ता है। ऐसा न करो। समझा-बुझाकर इन्हें प्रभु-मार्गकी ओर मोड़ दो।

श्रीकृष्णने दो बार दावाग्नि-पान भी किया था।

यमुनाके जलमें-से कन्हैया सकुशल बाहर निकला तो सबको हर्ष हुआ। उन्होंने यमुना किनारे ही रात्रि वास किया। उस समय दावाग्नि फैली और व्रजवासी घिर गए तो भगवान्ने दावाग्निका पान करके सबको बचा लिया।

एक बार सभी गोप-बालक खेल-कूदमें मशगूल हो गए तो गायें चरती-चरती दूर निकल गयीं। सभी उन्हें ढूंढ़ने लगे। इतनेमें वहाँ दावाग्निने सबको घेर लिया। सभी बालक बचावके लिए कन्हैयाको पुकारने लगे। लालाने उनसे कहा, सब अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लीजिए। मैं मन्त्र-जाप कर रहा हूँ। कन्हैयाने विराट् रूप धारण किया और दावाग्नि पान किया।

जब भी तुम प्रतिकूल अवस्थाकी दावाग्निसे घिर जाओ, आँखें बन्द करके प्रभुका ध्यान धरो। प्रतिकूल परिस्थितिमें जीका जलाना ही दावाग्नि है। ईश्वर ऐसे व्यक्तिको सांत्वना देते हैं कि वे भी साथ ही हैं।

संसार-रूपी दावाग्नि चारों ओरसे धधक कर जीवको घेर लेती है। कचहरीमें ऊपरवालोंसे झगड़ा हो जाता है और घर पर आकर मनुष्य देखता है कि अपनी माता और पत्नी हाथा-पाईमें जुटी हुई हैं। पक्ष किसका लिया जाय, माताका या पत्नीका? यह सांसारिक दावाग्नि सभीको घेरे हुए है। ऐसे समय तो उन गोप-बालकोंकी भाँति, आँखें बन्द करके भगवान्की शरण लो। वे सब दुःखोंको पी जायेंगे, दूर कर देंगे। प्रभुका नाम-जप सांसारिक दावाग्निको बुझा देगा।

भगवान्ने प्रलम्बासुरका भी वध किया था। प्रलम्बासुर अर्थात् बड़ी-बड़ी वासना। इन वासनाओंके कारण जीव ईश्वरसे मिल नहीं पाता। शब्द-ब्रह्मका चिंतन करोगे तो अन्तः-करणकी वासनाओंका धीरे-धीरे क्षय होगा।

रासलीलामें जाना है सो सभी दुर्गुणोंका नाश करो। दुर्गुणरहित होकर शुद्ध होने पर ही जीव रासलीलामें स्थान पा सकता है।

कन्हैयाकी बाँसुरी सुनकर, उसकी मधुर तानका गोपियोंने जो वर्णन किया, वही वेणुगीत है।

सुहावनी शरद ऋतु आई। वृन्दावनका शोभा अनोखी हुई है। मन्द-मन्द सुगन्धित पवन वह रही थी। भगवान्ने गायों और गोपालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश किया। गायोंको चराते हुए कृष्ण वंशी बजाने लगे। गोपियाँ वंशीके संगीतमें लीन हो गयीं।

बाँसुरीवादन तो नादब्रह्मकी उपासना है। बाँसुरी जब तक नहीं बजती, कृष्णके दर्शन भी हो नहीं पाते।

वेणुनाद—व=विषयानन्द, इ=ब्रह्मानन्द।

वेणुश्रवणका आनन्द वह आनन्द है, जिसके सामने विषयानन्द और ब्रह्मानन्द भी तुच्छ हैं। इस नादब्रह्मके समक्ष सभी आनन्द निकृष्ट हैं।

गोपियाँ घरमें रहकर बाँसुरी सुन सकती थीं और भगवान्की लीला भी देख सकती थीं। गोपियोंको दूरदर्शन और दूरश्रवणकी सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं।

वेणुगीतके श्लोक भिन्न-भिन्न गोपियोंके हैं। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि श्लोकको वक्ता भिन्न-भिन्न गोपियाँ होनेके कारण सभी श्लोक एक-दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

गोपियाँ कहती हैं—हमारे नयन तथा नयनयुक्त जीवनकी यही सफलता है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम गोपबालकोंके साथ वनमें गायें चरानेके लिए आते-जाते हों, अपने ओष्ठद्वयपर मुरली धारण किए हों, और हमारी ओर प्रेम-भरी तिरछी चितवनसे देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान कर सकती हैं।

बलराम—श्रीकृष्ण उत्तम नटोंकी भाँति अत्यन्त शोभायमान हैं।

ऐसे श्रीकृष्णके दर्शन करनेवाली आँखें ही सार्थक हुई हैं। ऐसे दर्शनके बिना नेत्रोंकी और कोई सार्थकता नहीं है। जिस प्रकार नेत्रोंकी सफलता श्रीकृष्णके दर्शन पानेमें है, वैसे ही देहकी सफलता सभी इन्द्रियोंके कृष्ण-सेवामें जुटनेमें है।

अरी सखी! कन्हैया वंशी बजा रहा है। जरा सुन तो! यह वंशी नहीं, कृष्णकी पटरानी है। मैंने सुना है कि जब वह भोजन करने बैठता है, तब बाँसुरीको कमरकी फेंटमें ही रखता है और जब सोता है तब उसे अपने साथ सेज पर ही रखता है। बाँसुरी उसकी पटरानी जो है!

प्रभुके अधर बाँसुरीका तकिया हैं, हाथ गादी है, आँखें दासियाँ हैं, पलकें पंखे हैं, नथनी छत्र है। इस बाँसुरीका परमात्माके साथ विवाह हुआ है, अतः उसे नित्य संयोग प्राप्त हुआ है।

इस वेणुने अपने पूर्वजन्ममें न जाने कौन-सी तपश्चर्या की है कि उसे कृष्णके अधरामृतका नित्य पान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक गोपीने बाँसुरीसे पूछा—अरी सखी, तूने ऐसा कौन-सा पुण्य कमाया था कि प्रभुने तुझे अपनाया है?

बाँसुरी—मैंने बड़ी तपश्चर्या की थी। मेरा पेट खाली है। मैं अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती।

बाँसुरी—अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती है सो वह भगवानकी प्यारी है। डण्डा सारा वैर, द्वेष, कटुता अपने पेट ही में रखता है। यह सब पेटमें सँजोए रखनेकी वस्तु नहीं हैं। जो बाँसुरी जैसा बन पाता है, वह भगवान्को भाता है।

बाँसुरीने कहा कि मुझमें कई गुण हैं। मैंने कई कष्ट झेले हैं। छः ऋतुओंकी मार भी मैंने सही है। किसीने मेरा पेट कुरेद कर पोला कर दिया फिर भी मैं चुप रही। मैंने कई कष्ट झेले सो भगवान्ने मुझे पसन्द किया।

चाहे जितने दुःखद प्रसङ्ग आते रहें, धीरज न गवाँना। कम खानेवालेका शरीर निरोगी रहता है तो गम खानेवालेका मन।

बाँसुरी अपने स्वामीकी इच्छानुसार ही बोलती है। इसी तरह भगवान्की जो इच्छा हो वही बोलो। गप लड़ानेवाला अविवेकी हो जाता है। वह स्वयं ही अपना विनाश करता है और दूसरोंको भी हानि पहुँचाता है। हम सबके स्वामी हैं ईश्वर। उनकी इच्छाको ही बाणी दी जानी चाहिये।

मैं अपने स्वामीकी इच्छाको ही सुरोंमें ढालती हूँ सो सज्जन, दुर्जन, छोटे-बड़े नाग, कस्तूरीमृग, गाय सभी डोलने लगते हैं। सभीको आनन्द हो, वैसी मधुर तान छेड़ती हूँ।

बाँसुरीने बहुत कुछ सहन किया, तभी प्रभुके सम्मुख हो पायी है। जो सोच-विचार कर दुःख सह लेता है, उसके पाप जल जाते हैं। मधुर बोलनेका निश्चय करो। किसीके दिलको चोट लगे, ऐसा कभी न बोलो। लकड़ीकी मार तो भुलाई जा सकती है किंतु शब्दोंकी मार हमेशा याद रह जाती है। कुछ कठोर भी बोलना पड़े तो प्रेमसे बोलो।

बाँसुरीका एक गुण यह भी है कि जब वह अकेली होती है तब मौन ही रहती है। तुम भी ईश्वरके ध्यानके समय मौन-पालन करो। कई लोग शरीरसे तो सावधान रहते हैं, मुँह बन्द रखते हैं किंतु मनसे चलते-फिरते और बोलते रहते हैं। मौनका अर्थ है मनसे भी कुछ न बोला जाय। मनका मौन ही सर्वोत्तम मौन है।

महारानी बाँसुरी बोल देनेके बाद अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती।

अरी सखी, देख तो सही, बाँसुरीके स्वरको सुनकर ये वृक्ष भी मदकी धारा बहा रहे हैं।

कन्हैयाके बाँसुरीवादनसे वृक्षोंको आनन्द होता है। उनकी बेटी परमात्मासे विवाहित हुई है।

श्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽर्याः।

एक महात्मा कहते हैं कि ये तो तरुओंके हर्षाश्रु हैं। उनकी कन्या श्रीकृष्णकी पटरानी जो हुई है।

एक सन्त कहते हैं कि ये वृक्ष दुःखसे रो रहे हैं। वे सोचते हैं कि बाँसका मुख्य काम घरोंका खपरैल बनकर परोपकार करनेका है जब कि यह तो बाँसुरी बनकर घरोंको उजाड़ रही है। लालाकी वंशीकी धुन जो भी सुनता है उसका घरमें रहनेमें मन ही नहीं लगता है। वह राधेश्याम-राधेश्याम रटता हुआ कृष्ण-मिलनकी धुनमें घरसे बाहर निकल पड़ता है। हमारी इस कन्याने घरोंकी रक्षा करनेके बदले उजाड़नेका काम शुरू कर दिया है। इस विचारसे सभी वृक्ष शोकातुर होकर आंसू बहाने लगते हैं।

एक और सन्त कहते हैं कि ये वृक्ष ऐसा सोच रहे हैं कि पानीमें डूबते हुए लोगोंका अपना जातिगत काम छोड़कर यह बाँसुरी सभीको (आनन्द रसमें) डुबोनेमें लगी हुई है।

धन्याः हरिण्य आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः।

अरी सखी, देख तो सही। कन्हैयाका बाँसुरी-वादन सुनकर हिरनियाँ पागल होकर दौड़ी आयी हैं और अपलक दृष्टिसे कन्हैयाको निहार रही हैं। गोपियोंकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण है कि अपने घरमें-से ही हिरनियोंकी स्थिर पलकें देख सकती है।

हिरनी अपने पतिको भी प्रभुके समक्ष ले जाती है। उसका पति उसे सहकार देता है। इनके पति अनुकूल हैं जब कि मेरे पति देवसेवामें प्रतिकूल हैं। और तो मैं क्या कहूँ? मेरी अपेक्षा ये हिरनियाँ धन्य ही हैं, भाग्यशाली भी हैं कि कृष्णकी पूजा नयनकमल चढ़ाकर करती है। और कुछ तो उनके पास है नहीं। यदि पति-पत्नी एक होकर पूजा करें तो भगवान् जल्दी प्रसन्न होते हैं।

'सहकृष्णसाराः' अर्थात् पतिको सत्संगमें, परमात्माके निकट ले जानेवाली हिरनी-पत्नी सही अर्थमें पत्नी है।

पतिको परमात्माके सांनिध्यमें ले जानेवाली, पतिसे सत्कर्म करानेवाली पत्नी पतिकी मित्र है। पतिको केवल भोगविलासमें डुबाए रखनेवाली पत्नी पतिकी शत्रु है।

कृष्णसेवामें हिरनियोंको उनके पति सहयोग देते हैं और इधर हमारे पति सहयोग तो देते ही नहीं है किंतु बाधा भी डालते हैं। सो ये हिरनियाँ बड़ी भाग्यवान् हैं।

हमसे तो वृन्दावनकी हिरनियाँ भी श्रेष्ठ हैं कि कृष्णसेवामें अपने पतिका सहयोग पा सकती हैं।

सखी, मैं तुम्हें क्या-क्या बताऊँ? वंशीनाद सुनते ही गौमाताएँ घास खाना छोड़कर अपने कानरूपी दोनेके द्वारा, वंशीके नादमृतका बड़े ध्यानसे पान करने लग जाती हैं। भगवान्‌की प्रेमरसी वंशीकी धुन सुनकर गायें घास चबाना भूलकर आनन्दके अश्रु बहाने लग जाती हैं। बछड़े भी दूध पीना भूल जाते हैं। कन्हैयाका बाँसुरीवादन मनुष्य, पशु, पंछी, वृक्ष सभी शांतिसे सुनते हैं। वृन्दाबनकी वन्यसृष्टि दिव्य है।

जब कन्हैया बाँसुरी बजाने लगता है तो पंछी भी शांत हो जाते हैं कई ऋषि भी पंछीका रूप लेकर वृन्दावनकी लीला-निकुञ्जमें राधेश्याम-राधेश्याम करते-करते इधर-उधर उड़ते फिरते हैं। ये पक्षी प्यास लगने पर भी राधेश्यामका जप करते-करते पानी पीने जाते हैं। उनको गंगाके किनारे मौन रखनेकी आदत है सो यहाँ भी मौन रहकर लालाकी बाँसुरी सुनते हैं। कुछ पंछी ऐसे भी हैं जो जमुनाजीका जलपान करनेके लिए भी वृक्षसे नीचे नहीं उतरते। जलपान करने जानेसे कृष्णसे विरह जो होगा। वृन्दावनके पंछी सामान्य पंछी नहीं, पूर्वके मुनि हैं। अतः वे वृक्षोंपर मौन रहकर भगवान्‌की वंशी सुनकर आत्माको आनन्द देते हैं। धन्य है इन पंछियोंको।

यशोदा आकर कहने लगीं, रोज-रोज कहती हूँ, फिर भी कन्हैया जूता पहनता ही नहीं है।

सखी—चिंता न करो। उसका एक मित्र उसके सिरपर छाता रखकर चलता है।

माता—कौन है वह?

गोपियाँ—वह मेघराज कन्हैयाका मित्र है। अतः जहाँ-जहाँ कन्हैया जाता है, वह छाया करता है। कन्हैयाकी लीला ही अनोखी है। ताप लगते ही झर-झर वर्षा आ पहुँचती है।

धरतीपर नंगे पाँव चलनेमें उसको कष्ट होता होगा। नहीं, गिरिराज कन्हैयाके लिए माखनसे कोमल हुए हैं। कन्हैयाके चरणस्पर्शसे गिरिराजकी कठोरता चली जाती है। गिरिराज सर्वश्रेष्ठ हरिदास है। गायोंको घास देता है। गिरिराज, कन्हैयाके साथ उसकी प्रिय गायोंकी भी सेवा करता है। अतः वह कन्हैयाको प्रिय है।

ठाकुरजीकी सेवा करनेवाला वैष्णव है किंतु गायोंकी, गरीबोंकी सेवा करनेवाला तो महावैष्णव है।

परमात्माके चरणस्पर्शसे गिरिराजको रोमाञ्च हो आता है। सो कहीं-कहीं पर गड्ढे पड़ जाते हैं किंतु उन्हें पाट देनेका उपाय कन्हैयाके पास है। वह बाँसुरी बजाने लगता है तो गिरिराज आनन्दसे फूलने लगता है और गड्ढे पट जाते हैं।

अरी सखी, कन्हैया तो कदमके वृक्षपर चढ़कर वहाँसे गायोंको पुकार रहा है। वंशीमें-से गायोंको नाम लेकर पुकार रहा है, गङ्गा, गोदावरी, यमुना। गायें आनन्दसे दौड़ने लगी हैं। देख तो, गायें उस वृक्षको घेरकर आनन्दध्वनि कर रही हैं। मेरे लालाको निहार रही हैं। कैसा मनोहर दृश्य है यह! एक अपनी बात भी मैं बता दूं? यहाँसे लालाको निहार रही हूँ, तब मुझे लगता है, मानो मैं भी पागल होकर लालासे मिलनेके लिए दौड़ रही हूँ। जब लोकलज्जाका खयाल आता है तब रास्तेमें रुककर सोचती हूँ, हाय, मैं कहाँसे कहाँ दौड़ आई?

ये गोपियाँ स्त्री और पुरुषका भेद भूल जाएंगी तब उन्हें रासलीलामें प्रवेश मिलेगा। अभी लोकलज्जाका—देहाध्यासका क्षीण भान है। देहाध्यास मिट जानेपर रासलीलामें प्रविष्ट हो जाएँगी। देहाध्यासके नष्ट होनेपर गोपीभाव प्राप्त होता है।

जब श्रीकृष्ण गायोंको बुलाते हैं, उस समय नदियोंको भ्रांति हो रही है कि उन्हींको बुलाया जा रहा है। वे बेचारी स्वयं तो जा नहीं सकती हैं सो तरंगरूपी हाथोंमें कमल-पुष्प लेकर वेणुनादकी दिशामें फेंककर भगवान्‌का अभिवादन करती हैं।

जड़-चेतन सभी वंशीनादसे मोहित हैं। मुरलीकी मधुर ध्वनिसे आज समस्त सृष्टि आनन्दमग्न हो गई है। श्यामकी उस मधुर वंशीके सितमकी बात कहें तो क्या कहें? ब्रह्मानंदसे ही सुनिए—

ऐ श्याम तेरी वंसरीने क्या सितम किया?
तनका रहा न होश, मेरे मनको हर लिया—ऐ श्याम···

वंसरीकी मधुर टेर सुनी प्रेम रस भरी,
व्रजनारी लोकलाज कामकाज तज दिया—ऐ श्याम···

नभमें चढ़े विमान, खड़े देवगण सुनें,
मुनियोंका छूटा ध्यान, प्रेम भक्तिरस पिया—ऐ श्याम···

पशुओंने तजी घास, पक्षी मौन हो रहे,
यमुनाका रुका नीर, पवन थिर हो गया—ऐ श्याम···

ऐसी बजाई वंसरी, सब लोक वश किया,
ब्रह्मानन्द दरश दीजिए, अभी देर क्यों किया—ऐ श्याम···

नादब्रह्म और नामब्रह्मका ऐक्य होनेपर रासलीला होती है।

वेणुगीत नादब्रह्मकी उपासना है। नाममें नामका लय हुए विना नादब्रह्म नहीं हो पाता।

गोपियाँ कितनी तन्मय हो गई थीं ! वनमें हो रहा वेणुनाद वे घरमें रहते हुए भी सुन सकती थीं।

जब दृश्य, दर्शन और द्रष्टा एक हो जाते हैं, तब दर्शनमें एकाग्रता, तन्मयता हो पाती है।

ईश्वर तो रोज-रोज वंशी बजाकर जीवको अपनी ओर बुलाते रहते हैं किंतु यह बधिर जीव सुनता ही नहीं है।

वृन्दावनकी बातें और कृष्णकी कथा करते-करते गोपियाँ अनायास समाधिस्थ हो गयीं।

वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः।

भा० १७-२१-२०

कृष्णक्रीड़ाओंके वर्णन करती हुई गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं। उनके हृदयमें लीलाओंकी स्फुरणा होती रहती। उन्हें ध्यान धारणा आदिकी जरूरत ही नहीं थी।

योगीजन नाक पकड़ कर प्राणायाम करके ब्रह्मदर्शन करनेका प्रयत्न करते हैं, फिर भी वे सफल नहीं होते हैं किंतु वही ब्रह्मदर्शन गोपियोंको अनायास हो जाता है। गोपियाँ योगियोंसे भी श्रेष्ठ हैं।

प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणासे जो आनन्द योगीको मिलता है, वही आनन्द गोपियाँ अनायास पाती हैं। योगियों-सा कष्ट भी इन्हें सहना नहीं पड़ता है। सभी इन्द्रियोंको भक्तिरसका दान करती हुई गोपियाँ श्रीकृष्णमें तन्मय हो गईं। इस लीलामें अनायास ही उनका निरोध हो पाता है। योगियों द्वारा कष्टसाध्य ब्रह्मानन्द गोपियोंको अनायास ही मिल जाता है।

गोपियोंकी समाधि दिव्य है। वह तो प्रेम-संन्यासिनी हैं। उन्होंने श्रीकृष्णके लिए सांसारिक सुखोंका त्याग किया है। शुकदेवजी जैसे योगी भी इनकी कथा करते हैं। उन्हें लगता है कि वे संसार और वस्त्रोंका त्याग करके संन्यासी बने हैं, जब कि वे तो संसारमें रहकर और साड़ियाँ पहन कर भी संन्यासिनी बनी हैं। शुकदेव इनकी लीलाका वर्णन करते हुए पागल हो गए हैं। यह गोपियोंकी नहीं, ज्ञानीकी, योगीकी कथा है।

ज्ञान और भक्ति बढ़ाओगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा। ज्ञान और भक्ति बढ़ानेसे क्या ? व्रजवासी गोवर्धन पर्वतपर गये थे। तुम भी वर्षमें एकाध महानेकी छुट्टी लेकर पवित्र तीर्थमें वास करो। प्रवृत्तिको कम करके निवृत्ति लो। ग्यारह महीने नौकरी-धन्धा किया अब एक मास ताप्ती-नर्मदा जैसी किसी भी पवित्र नदीके किनारे बसकर जप-ध्यान-कीर्त्तन करो। हर बरसमें एक महीना ठाकुरजीके लिए निवृत्त होकर तीर्थवास करो। सारा वर्ष घर ही में रहना अच्छा नहीं। गृहस्थका घर भोगभूमि है, वहाँ छोटे-बड़े पाप हो ही जाते हैं। ममता विषमता लाती है और विषमता पाप।

पन्द्रह सौ विष्णुसहस्र नामका पाठ करनेसे एक विष्णुयागका फल मिलता है। पवित्र तीर्थमें बसकर वही पाठ करो। सांसारिक प्रवृत्तियोंमें लगे रहनेपर ठीक तरहसे भक्ति कर पाना आसान नहीं है। घरमें तो भगवान्के साथ-साथ स्त्री-सन्तान, धन-सम्पत्तिकी भी पूजा होती रहती है। सो भक्ति पूर्णतः सफल नहीं हो पाती।

रासलीला भागवतका फल है। रासलीलामें पुरुष और नारीका नहीं, पूर्ण पुरुषोत्तम और शुद्ध जीवका मिलन है।

सभी इन्द्रियोंसे भक्तिरसका पान करता हुआ जो जीव, अपना स्त्रीत्व या पुरुषत्व भुला दे, वही गोपी है। अपना पुरुषत्व या नारीत्व याद आता रहेगा तो गोपीभाव नहीं जागेगा। इस सर्वोच्च गोपीभावमें तो अपना देहभान, अपना नारीत्व या पुरुषत्वका विस्मरण करना है। यदि देहभान शेष होगा तो काम नष्ट नहीं होगा। काम भुलाये जानेपर ही गोपीभाव जागता है। परमात्माका इस प्रकार स्मरण करो कि अपना देहभान ही न रहे।

ज्ञानमार्गके अनुसार, अज्ञानके कारण उस भेदका आभास होता है जिसका नाश करना है। भक्तिमार्ग भेदका नाश करके अभेद सिद्ध करनेको कहता है। भक्त, भक्तिके सहारे भेदका नाश करके श्रीकृष्णके साथ एक हो जाता है।

वासनाका क्षय होनेपर जीवन सुधरता है। पूतना-वासना और तृणावर्त-रजोगुणका नाश होनेपर जीवन सात्त्विक होगा।

भक्तिरस सभी इन्द्रियोंको पुष्ट करता है। दावाग्नि शांत होनेपर वेणुगीत सुना जा सकेगा। यह सब तैयारी रासमें जानेके लिए है।

ईश्वरका प्रत्यक्ष स्वरूप है नादब्रह्म। इसमें तन्मयता होनेपर परब्रह्मकी प्राप्ति होगी।

वेणुगीतमें ब्रह्मचारिणी गोपियोंका रास है। यज्ञ-पत्नियोंके प्रसंगमें विवाहिता और गोवर्धन लीलामें वानप्रस्थी गोपियोंके साथ रास है।

वेणुनादमें नादब्रह्मकी उपासना करती हुई गोपियाँ तन्मय हो गयीं। गोपियोंने कात्यायनी व्रत किया सो श्रीकृष्णने उन्हें दिव्य वस्त्रोंका दान दिया।

एक बार गोप-बालकोंको भूख लगी तो उन्होंने कन्हैयासे बात की। कन्हैयाने उनको यज्ञ कर रहे ब्राह्मणोंके पास भेजा। ब्राह्मणोंने कुछ भी नहीं दिया किंतु ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने उन्हें भोजन कराया। यही है यज्ञ-पत्नियोंके उद्धारकी संक्षिप्त कथा।

अन्नदान सर्वोत्तम दान है। भगवान् गरीबों और परम पवित्र ब्राह्मणोंके मुखसे भोजन करते हैं। सभीको यथाशक्ति भोजन कराओ।

अब आती है गोवर्धन लीला। गोवर्धन लीलाके पश्चात् आयेगी रासलीला।

गोका अर्थ है ज्ञान और भक्ति। ज्ञान और भक्तिको वृद्धिगत करनेवाली लीला ही गोवर्धन लीला है। ज्ञान और भक्तिके बढ़नेसे देहाध्यास नष्ट होता है और जीवको रासलीलामें प्रवेश मिल सकता है।

ज्ञान और भक्तिको बढ़ानेके लिए क्या किया जाय? घर छोड़ना पड़ेगा। गोप-गोपियोंने घर छोड़कर गिरिराज पर वास किया था। हमारा घर भोगभूमि होनेके कारण राग-द्वेष, अहो-भाव-तिरस्कार, वासना आदि हमें घेरे रहते हैं। घरमें विषमता होती है और पाप भी। भोग-भूमिमें भक्ति कैसे बढ़ पायेगी? सात्त्विक भूमिमें ही भक्ति बढ़ सकती है।

साधारण गृहस्थका घर विविध वासनाओंके सूक्ष्म परमाणुसे भरा हुआ होता है। ऐसा वातावरण भक्तिमें बाधक है। ऐसे वातावरणमें सारा वर्ष रहकर न तो भक्ति बढ़ाई जा सकती है और न ज्ञान। सो एकाध मास किसी नीरव-पवित्र स्थलपर जाकर, किसी पवित्र नदीके किनारे वास करके भक्ति और ज्ञानकी आराधना करना श्रेयस्कर है।

वैसा न हो सके तो घरको ही तीर्थ बनाओ। प्रवृत्ति छोड़ना तो अशक्य है किंतु उसमें कुछ कम करके निवृत्ति बढ़ाओ। प्रभुने जो भी दिया हो, उससे सन्तुष्ट रहो। प्रवृत्तिकी अतिशयता न होनी चाहिए। प्रवृत्तिमें निवृत्तिका आनन्द तो होना ही चाहिये। निवृत्तिका आनन्द जीवको प्रवृत्तिके चिंतनकी ओर खिसका ले जाता है सो निश्चय करो कि निवृत्तिका आनन्द न भी मिले तो भी प्रवृत्तिके विषयानन्दको भोगना नहीं है। निवृत्तिके समय भजनानन्द पाना है तो लौकिक सुखोंका विषयानन्द छोड़ना ही होगा।

कूड़ेमें-से इत्रकी सुगन्ध कैसे मिलेगी? प्रवृत्तिमें नीरव और सात्त्विक आनन्द कहाँ? प्रवृत्तिमयता छोड़े बिना भक्तिका उदय कैसे होगा?

गोका अर्थ इन्द्रिय भी है। इन्द्रियोंका संवर्धन त्यागसे होता है, भोगसे नहीं। भोगसे इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। भोगमार्गसे हटाकर उनको भक्तिमार्गमें ले जाना है। हाँ, उस समय इन्द्रादि देव वासनाकी बरसात कर देते हैं। मनुष्यकी भक्ति उनसे देखी नहीं जाती। प्रवृत्तिमार्ग छोड़कर निवृत्तिकी ओर बढ़ते समय विषय-वासनाकी बरसात बाधा करने आ जाती है। सो निवृत्ति लेनेपर भी निवृत्तिका सात्त्विक आनन्द दुर्लभ-सा हो जाता है। इन्द्रियोंका देव इन्द्र, प्रभुभजन करने जा रहे जीवको सताता है। उपनिषद्में भी कहा गया है कि निवृत्ति लेकर, प्रभुभक्ति करते हुए जीवको इन्द्र सताता रहता है। वह सोचता है कि उसके सिरपर पाँव रख कर, उसको कुचल कर यह जीव आगे बढ़ जायेगा। सो ध्यान, सत्कर्म, भक्ति आदिमें जीवकी अपेक्षा देव अधिक बाधक हैं। जीव सतत ध्यान करे तो स्वर्गके देवोंसे भी श्रेष्ठ हो जाता है। सो जब भी इन्द्र—इन्द्रियोंका अधिपति भक्तिमार्गमें विघ्न करने आये, गोवर्धननाथका आश्रय लेना।

गोवर्धनलीलाका बड़ा आनन्द है। गोवर्धनलीला, रासलीलाका उपोद्घात है। इसमें पूज्य और पूजक एक हो जाते हैं। पूज्य और पूजक जबतक एक न हो पाएँ, तब तक आनन्द नहीं आता। पूजा करनेवाले श्रीकृष्णने गिरिराज पर आरोहण किया। वह तो अद्वैतका प्रथम सोपान है, रासलीलाका फल है।

गोवर्धनलीला ज्ञान और भक्तिको बढ़ाती है। उनके बढ़नेसे रासलीलामें प्रवेश मिलता है किंतु उस अवस्थामें इन्द्रिय-वासनाकी बरसातसे बचना बहुत जरूरी है।

पूज्य और पूजक, सेव्य और सेवक एक हो जाते हैं, तब सेवा भलीभाँति हो पाती है। परमात्माके समान पवित्र बने बिना प्रभुपूजाका अधिकार नहीं मिलता। शास्त्रोंमें अंगन्यास, करन्यास आदि विधियाँ बताई गई हैं। दीपावलीके दिन गोवर्धनपूजा की जाती है क्योंकि पिछले सभी दुःखोंको भुलाकर वैरको मिटाना है। विरोध जब तक नहीं जाता, पूजा नहीं हो पाती।

गोवर्धन-पूजाके समय कन्हैया सात बरसका था।

पूज्य और पूजक जब एक होते हैं, तब रासफल मिलता है। इसी कारणसे तो रासलीला गोवर्धनलीलाके बाद आती है।

हर बरस नन्दबाबा इन्द्रयाग करते थे। यज्ञकी तैयारी होने लगी तो कन्हैयाने पूछा, बाबा, यह सब क्यों हो रहा है? कौन-से देवके लिए और किस उद्देश्यसे यह यज्ञ किया जा रहा है?

नन्दबाबा समझाने लगे—वर्षाका देव है इन्द्र। इन्द्र बरसात बरसाये, धान्य और घास उग सके और सभी जीव चैनसे जी सकें। इन्द्र हमारे ईश्वर हैं। उनको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ कर रहे हैं हम।

कन्हैया किसी भी देवका न तो अपमान करते हैं और न उपेक्षा।

कन्हैयाने कहा—इन्द्रका यज्ञ करना तो ठीक है, किन्तु उसे ईश्वर क्यों माना जाय ? कोई भी व्यक्ति सौ यज्ञ करके इन्द्रपद पा सकता है। इन्द्रके इन्द्रको जानते हो ?

नन्दबाबा—बेटा, कौन है वह ?

कन्हैया—यह मेरा गोवर्धननाथ इन्द्रका इन्द्र है। वह चारों दिशाओंका देव है। पूर्वमें जगन्नाथजी, दक्षिणमें रामेश्वर, पश्चिममें द्वारिकानाथ और उत्तरमें बद्रीनाथ हैं और इन चारोंके मध्यमें है गोवर्धननाथ। वह सबका स्वामी है, अतः मध्यमें बैठा हुआ है। बाबा, उसीकी पूजा करो। कई बरसोंसे तुम इन्द्रकी पूजा करते आये हो किंतु उसका कभी दर्शन भी हुआ है क्या ?

नंदबाबा—नहीं तो।

कन्हैया - इतने बरसोंकी पूजाके बाद भी वह दर्शन नहीं देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अभिमानी है। जिस देवको कभी देखा तक नहीं है, उसकी पूजा क्यों करते हो ? यह गोवर्धन तो हमारा प्रत्यक्ष देव है। जो पर्वत दिखाई दे रहा है, वह तो उसका आधिभौतिक स्वरूप है। उसका आधिदैविक स्वरूप तो और ही है, सूक्ष्म है। गोवर्धननाथ इस पर्वतमें सूक्ष्म रूपसे बसे हुए हैं। वह हम सभीके रक्षक हैं। मुझे कई बार उनका दर्शन हुआ है। गोवर्धननाथ दीपककी जीवन्त ज्योति हैं। तुम सब उन्हींकी पूजा करो। तुम सबको उनका दर्शन होगा।

इन्द्रके अभिमानको मिटानेका श्रीकृष्णने निश्चय किया है सो सबको समझा रहे हैं कि इन्द्रदेवके बदले गोवर्धननाथकी पूजा की जाय।

नंदबाबा—गोवर्धननाथकी पूजाविधि हम जानते ही नहीं है सो पूजा करेंगे कैसे ?

कन्हैया—बाबा, मैं जानता हूँ। तुम चिंता न करो। गोवर्धननाथकी पूजाकी तैयारी करो। गरीबोंके लिए अन्नकूट करना है। गरीबों. गायों और सदाचारी ब्राह्मणोंकी पूजा ईश्वरकी पूजा है।

सभी घरोंसे खाने-पीनेकी वस्तु मँगाई गई। गायोंका जुलूस निकाला गया। जिसके घरसे खाद्यसामग्री नहीं आयेगी उसके घरमें अन्नपूर्णा नहीं आयेगी।

नंदबाबा—तेरा ठाकुर भोजन करता हुआ मुझे दिखाई देगा क्या ?

कन्हैया—हम सब देख सकेंगे।

व्रजवासियोंको अत्यंत आनंद हुआ। कन्हैयाने गोवर्धनपूजाके लिए दिवालीके दिन तप किया था। वे सब गाड़ियाँ भर-भरके खाद्य-सामग्री लेकर गोवर्धनके पास आये। सभी ब्राह्मणोंको भी आमंत्रण दिया गया था। ब्राह्मण वेदोच्चार करने लगे और कन्हैया अभिषेक। आज भगवान् कृष्ण पूजा कर रहे हैं। गोप-बालकोंसे यमुनाजल मँगाया गया।

बालक थक गए पानी लाते-लाते तो कहने लगे—कन्हैया, यमुनाजी बड़ी दूर है और तेरा देव है बड़ा लम्बा-चौड़ा। अभिषेकके लिए इतना सारा पानी हम कैसे ला सकेंगे ?

कन्हैया—अरे मित्रो, मेरा यह गोवर्धननाथ तो बड़ा दयालु है। तुम चिंता न करो।

अब कन्हैया प्रार्थना करने लगा—हे गोवर्धननाथ, मेरे मित्र थक गए हैं। गङ्गा-यमुना तो आपके चरण ही में है। कृपा करके किसीको प्रकट करो।

उसी समय गोवर्धनसे गङ्गाजी प्रकट हुई । इसे मानसी गङ्गा कहते हैं ।

सभी बालक आनन्दसे उछलने लगे, नदी आई, नदी आई । कन्हैयाने समझाया कि कोई सामान्य नदी नहीं, गंगाजी हैं । गोवर्धनका अभिषेक पूर्ण हुआ तो शृंगार किया गया । व्रजवासी कहते हैं, अभिषेक-दर्शनमें हमें बड़ा मजा आता है । यह ठाकुर तो हमें देखकर हँस रहा है ।

व्रजवासी चन्दन लाए तो कन्हैयाने कहा, ठंडकी ऋतु है सो चन्दनसे तो मेरे भगवान्‌को कष्ट होगा । बालकोंने कुंकुमका तिलक करनेको सोची ।

कन्हैया—कुंकुमका तिलक कर सकते हैं, किंतु वह कहीं नाकमें न चला जाय । नहीं तो छींक आएगी ।

सेवा-पूजा करते समय मूर्तिको चेतन मानो, जड़ नहीं । मूर्तिमें साक्षात् परमात्मा हैं, ऐसा मानो । अपनी देहके प्रति जो प्रेम रखते हो, वैसा ही प्रेम भगवान्‌के प्रति भी रखो ।

प्रभु भी बड़े आनन्द-प्रिय हैं । कन्हैयाने अपना एक स्वरूप नन्दबाबाके पास रखा और दूसरेसे गिरिराजमें प्रवेश किया ।

सब कहने लगे—कन्हैया, यह पर्वत तो साँस ले रहा है ।

भगवान्‌के तीन स्वरूप हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और भौतिक ।

ठाकुरजीने दहीका तिलक किया । दही नाक या मुँहमें चला जाय तो भी कुछ हर्ज नहीं होगा ।

कन्हैया, अब हम ठाकुरजीका चावलसे अभिवादन करें ।

कन्हैया—नहीं, नहीं, चावल कहीं ठाकुरजीको लग गए तो ?

तो फिर हम क्या करें ?

कन्हैया—मोतीसे पूजा करो । यदि प्रेमसे मोतीसे अभिवादन करोगे तो तुम्हारा घर मोतियोंसे भर जाएगा ।

भगवान्‌का एक स्वरूप चतुर्भुज भी है । वह आधिभौतिक स्वरूप है ।

कन्हैया आज अपनेको ही प्रणाम कर रहा है ।

बाबा, यह हैं साक्षात् परमात्मा ।

सब पूछने लगे, कन्हैया, अब हमें क्या करना है ? तो कन्हैयाने कहा, मेरे प्रभुको भूख लगी है, भोग लगाओ ।

भगवान्‌को भोग लगाए बिना कभी न खाना । भोग न लगानेसे वे तो भूखे नहीं रह जायेंगे किंतु कभी तुम्हें भूखे रहना भी पड़े, इस जन्ममें या किसी भी जन्ममें ।

व्रजवासी—क्या गोवर्धननाथ भी भूखे होते हैं ? क्या वे सचमुच खायेंगे ?

कन्हैया—हाँ, मेरा नाथ तो दीपककी ज्योति-सा जीवन्त है, प्रत्यक्ष है । वह हमारे सामने ही खायेगा ।

सभी खाद्य-सामग्री प्रकोष्ठके आकारमें रखी गयीं । ऊपर तुलसीदल भी अर्पण किया गया ।

हे गोवर्धननाथ, आपको तो कौन खिला सकता है ? आप तो समग्र जगत्‌के अन्नदाता हैं। हमारी भावना है, प्रार्थना है कि आपको भोजन करते हुए निहारें।

ठाकुरजी थाली उठाकर खाने लगे। गोपबालक आनन्दसे नाचने लगे—लाला, यह ठाकुरजी तो सचमुच खा रहे हैं।

सभी बोल उठे—कन्हैयाके ठाकुरजी तो सचमुच दीपककी ज्योतिके समान जीवन्त और प्रत्यक्ष हैं।

गोवर्धननाथने भोजन जारी रखा तो गोपबालक चिंतित होने लगे—लाला, ये तो लगता है, सब कुछ खा जायेंगे। लम्बे अरसेसे भूखे लगते हैं। हमारे लिये भी कुछ रख छोड़ेंगे या नहीं ? तू तो कभी अकेले नहीं खाता है और ये तो अकेले ही खाए जा रहे हैं। प्रसाद भी नहीं मिलेगा क्या ?

कन्हैया—मेरे ठाकुरजी जितना खायेंगे उतना ही हमें भी देंगे। देखो, गोवर्धननाथके पास लक्ष्मीजी आ गयीं हैं। वे जिसके घरका भोजन करते हैं, उसके घरपर महालक्ष्मीजीकी कृपा होती है।

गोवर्धननाथकी पूजा और आरतीके बाद सभी व्रजवासी भोजन करने बैठ गए। छोटा कन्हैया परोस रहा है और सभीको आग्रह कर-करके खिला रहा है।

गोपबालक कहते हैं—आज तो इतना अच्छा भोजन है कि एककी जगह तीन-चार पेट हो जायँ तो मजा आ जाये।

कन्हैया—चाहे जितना खाओ, किंतु बिगाड़ मत करना। अन्न तो ब्रह्म है। जो उच्छिष्ट खायेगा, वह तुम्हारा पुण्य भी खा जायेगा। प्रसादका अपमान करोगे तो गोवर्धननाथ क्रोधित हो जायेंगे।

अन्नका कभी अनादर न करो। भिखमंगोंको भी जूंठा अन्न न दिया जाय। भिखमङ्गा है तो क्या ? वह भी ईश्वर ही का तो अंश है।

सभीको प्रसाद दिया गया। सभीने रात्रिके समय तलहटीमें विश्राम किया।

इधर नारदजी इन्द्रके पास आये—नारायण, नारायण ! उस गोपालके बच्चेने तेरा अपमान किया है। उसने तेरी पूजा करानेके बदले गोवर्धननाथकी पूजा करवाई।

इन्द्रने कोपायमान होकर बारहों मेघोंको आज्ञा दी—उस गोपालके बच्चेने मेरा अपमान किया है। व्रजपर टूट पड़ो और सभीका नाश कर दो।

मेघोंने व्रजमें हाहाकार मचा दिया। कार्त्तिक मासमें इतनी भारी वर्षा कभी नहीं होती। सभी भयभीत हो गए। नन्दजी भी व्याकुल हो गए।

कन्हैया कहने लगा—मेरे प्रभु गोवर्धननाथ सभीकी रक्षा करेंगे। उनमें विश्वास रखो। उन्होंने मुझसे स्वप्नमें कहा है कि वे मेरी पूजासे प्रसन्न हुए हैं। सात दिनों तक वर्षा होती रहेगी। उसके बाद उनकी शरणमें जानेसे वे हमारी रक्षा करेंगे।

मैं भाररहित होकर तेरी उँगलीपर खड़ा रहकर सभीकी रक्षा करूँगा, ऐसा भी उन्होंने कहा है।

लाला, ऐसी बात है ? तब तो जल्दी उठा गोवर्धनको।

कन्हैया—मैं अकेला कैसे उठा पाऊँगा ? तुम सब भी मेरी सहायता करना।

गोवर्धननाथ फूलसे हल्के हो गए और कन्हैयाकी उँगलीपर खड़े हो गए।

श्रीगिरिधारीकी जय।

परम आश्चर्य हुआ है। व्रजवासी दर्शनसे तृप्ति ही नहीं पा रहे हैं।

सात दिनों तक मूसलाधार वर्षा होती रही। गोपालोंने सोचा कि कन्हैया अकेला थक जाएगा। उन्होंने अपनी लकड़ीका आधार दिया। कन्हैया, हमने अपनी लकड़ीपर गोवर्धनको उठा लिया है। तू थक गया होगा, हटा ले अपनी उँगली।

कन्हैया—तुम्हारी लकड़ियों पर खड़ा है ? अच्छा, तो मैं उँगली हटा लेता हूँ।

ज्यों ही कन्हैयाने उँगली हटाई, पर्वतका भार असह्य हो गया। गोपाल पुकार उठे—अरे कान्हा, यह तो नीचेकी ओर धँस रहा है। जल्दी आधार दे।

आधार लेना ही पड़े तो केवल ईश्वरका लो, किसी औरका नहीं।

जिसे जो चाहिए, गोवर्धननाथ उसे वही देते हैं।

कन्हैया अलौकिक शक्तिका दर्शन करा रहा है। वह वंशी बजाने लगा तो गोवर्धननाथ डोलने लगे। सभीको अतिशय आनंद हुआ।

गिरिधारीका स्वरूप ऐसा तो दिव्य था कि व्रजवासी सात दिनों तक देहधर्म भूल गए, भूख-प्यास भी भूल गए।

इस प्रकार सात दिनों तक भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतके तले सभी व्रजवासियों और गायों आदिकी रक्षा की।

अब इन्द्रको कन्हैयाके वास्तविक स्वरूपका भान हुआ। यह तो हैं साक्षात् परमात्मा। उसका अभिमान हवा हो गया। वह प्रार्थना करने लगा, मेरी भूल हो गई। नाथ, मुझे क्षमा करें। उसने मेघोंको भी रुक जानेकी आज्ञा दी।

सभी व्रजवासी बाहर आए और व्रजमें गए। इन्द्रने श्रीकृष्णका दूधसे अभिषेक किया। उस दूधको जहाँ इकट्ठा किया था, उसे सुरभिकुण्ड कहते हैं।

कुछ लोगोंको आशङ्का हुई कि यह कन्हैया शायद ईश्वर है। एक सभा-सी हुई और चर्चा चल पड़ी। कहाँ यह सात बरसका लड़का और कहाँ वह भारी भरकम गोवर्धन पर्वत ? यह नंदजीका ही पुत्र है या किसीका उठा लाया गया है ? हम नंदजीको बुलाकर उन्हींसे पूछें।

नंद बाबा आये तो पूछा गया—यह लड़का किसका है ?

नन्दबाबा—यह मेरा ही पुत्र है। गर्गाचार्यने बताया था कि कन्हैयामें नारायण जैसे गुण हैं।

यशोदाने वह चर्चा सुनी तो कन्हैयासे पूछा—तू किसका है रे ?

कन्हैया—तेरा ही तो हूँ मैं।

यशोदा—लोगोंका कहना है कि मैं और तेरे पिताजी गोरे हैं फिर भी तू काला क्यों है ?

कन्हैया—माँ, जन्मके समय तो मैं गोरा ही था किंतु तेरी भूलके कारण मैं काला हो गया। मेरा जब जन्म हुआ था, तब बड़ा अँधेरा छाया हुआ था और सभी नींदमें डूबे हुए थे। मैं अँधेरेमें सारी रात करवटें बदलता रहा सो अँधेरा मुझसे चिपक गया और मैं काला बन गया।

भोली यशोदाने कन्हैयाकी बात सच्ची मानी। बारह बजे तक मैं जाग रही थी और उसके बाद न जाने क्या हुआ था। मेरी ही भूलके कारण कन्हैया क़ाला हो गया।

एकनाथ महाराज और ही कारण बताते हैं। मनुष्यका कलेजा काला है क्योंकि उसमें काला काम रहता है। श्रीकृष्णकीर्त्तन, ध्यान, धारणा, स्मरण, चिंतन करनेवालेकी कालिमा कन्हैया खींच लेता है। वैष्णवोंके हृदयोंको उज्ज्वल करते-करते कन्हैया काला हो गया है।

विषयोंके बारेमें ही जो सोचता रहता है, उसका अंतर काला हो जाता है। कन्हैया उसे उज्ज्वल करनेमें लगा है।

गोपियोंका कहना है, हम आँखोंमें काजल लगाती हैं। कन्हैया हमारी आँखोंमें बसा रहता है सो काजलसे काला हो गया है।

महाभारतके उद्योग पर्वमें एक प्रसङ्ग है। विष्टिके हेतु आए हुए कृष्णसे दुर्योधनने कहा—तेरे माता-पिता कौन हैं, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। नंद-यशोदा तेरे माता-पिता हैं तो तू काला क्यों है?

श्रीकृष्ण—मैं कौरवोंका काल बनकर आया हूँ सो काला हूँ।

किंतु दुर्योधनसे ऐसी बात करनेवाले कृष्ण राधासे कुछ और ही कहते हैं। लीला-निकुञ्जमें दोनों विराजमान थे। राधाने प्यारसे पूछा—नाथ, वैसे तो तुम सुन्दर हो, किंतु श्याम क्यों हो?

श्रीकृष्ण—वैसे तो मैं गौर ही था किंतु आपकी शोभाको वृद्धिगत करनेके लिए श्याम हुआ हूँ। आपका सौंदर्य बढ़ेगा तो लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। यदि हम दोनों ही गोरे होते तो आपकी प्रशंसा कौन करता?

इन्द्रादि देव श्रीकृष्णकी पूजा करने आये। आपके वास्तविक स्वरूपको हम जान न सके, पहचान न सके। हमें क्षमा करें। सुरभिने कन्हैयाका अभिषेक किया।

गोवर्धनलीला रहस्यमयी है। इस लीलाके बाद रासलीला आती है। गोवर्धनलीला ज्ञान और भक्ति बढ़ाती है। जब ईश्वरके व्यापक स्वरूपका अनुभव हो पाता है, तभी ज्ञान और भक्ति बढ़ती हैं।

गोवर्धनलीलामें पशु-पंछी सहित सभीको प्रसाद दिया गया।

ईश्वर जगत्‌में व्याप्त है और सारा जगत् ईश्वरमें समाहित।

'शिवः केवलोऽहम्।' यह तो वेदान्तकी चरमसीमा है किंतु आरम्भमें तो सभीमें ईश्वरको निहारो।

उपासनाके दो भेद हैं—व्यक्त और अव्यक्त।

प्रत्येकमें ईश्वरको देखोगे तो वासना नहीं जागेगी। सुन्दरीको मातृदृष्टिसे देखनेसे कामना कैसे जाग सकती है? इसी प्रकार सभीके प्रति ईश्वरभाव धारण करो।

जड़-चेतन सभीमें कृष्णका अंश है, ऐसा अनुभव करानेके हेतु भी यह गोवर्धन लीला रची गई थी।

इन्द्रियाँ जब ज्ञान और भक्तिकी ओर बढ़ने लगती हैं, वासना बाधक बन कर आ खड़ी होती हैं। दूध उबलने लगता है तो उस पर पानीके छींटे डालनेसे शांत हो जाता है। वासनाके वेगको हटानेके लिए श्रीकृष्णका आश्रय लो। भगवदाश्रय कामवासनाके भारको सहनेकी शक्ति देता है।

भगवान्ने हाथकी सबसे छोटी उँगलीपर गोवर्धन धारण किया था। यह उँगली सत्त्वगुणका प्रतीक है। इन्द्रियोंकी वासना-वर्षाके समय सत्त्वगुणका आश्रय लो, सद्ग्रन्थका सेवन करो। सद्ग्रन्थ और सन्तोंका संग वासनासे लड़नेकी शक्ति देगा।

जीव लकड़ीका आधार लेता है किंतु प्रभुका आधार ही जीवन सफल बनाता है। संसार-गोवर्धन प्रभुके सहारे है। भगवान्का आधार होनेके कारण आनन्द ही आनन्द है। उनका सहारा न हो तो क्षण-मात्रमें लाख, खाक हो जाते हैं।

दुःखमें, विपत्तिमें, मात्र प्रभुका ही आश्रय लो, सहारा लो। गोपालोंने भी गोवर्धनाथका ही आसरा लिया था।

शरणमें जाने पर प्रभु दुःखसे बचाकर रक्षा करते हैं। सभी व्रजभक्त अन्य देवोंका आसरा छोड़कर श्रीकृष्णकी शरणमें गए तो उनके सारे सुख-दुःख भगवान्ने उठा लिए। गिरिराजधरनकी लीलामें यही भाव है।

गीतामें भी भगवान्ने कहा है—हे अर्जुन, जो अनन्य प्रेमसे मेरा भजन करता है, सर्वस्व समर्पित करके मेरी भक्ति करता है, उन सभी जीवोंको सांसारिक और भौतिक दुःखोंमें-से मुक्त करनेका दायित्व मैं स्वीकारता हूँ। उनके योगक्षेमका मैं वहन करता हूँ।

ज्ञान और भक्ति बढ़ने पर रासलीलामें प्रवेश मिलता है। उस समय इन्द्रियाँ, वासनाकी बरसात बरसाने चली आयेंगी।

सभी प्रयत्नोंके अन्तमें तो ईश्वरकी कृपा माँगनी ही पड़ती है। गोवर्धनलीलामें अद्भुत तत्त्व है। उसमें पूज्य और पूजक एक बनते हैं, सेव्य और सेवक एक हो जाते हैं।

कहा भी तो है—'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।' शिव बनकर शिवको पूजा करो।

ईश्वर जैसे बननेका, ईश्वरके साथ एक होनेका अर्थ है अपनी इच्छाको उनकी इच्छामें मिला देना। जब जीव अपनी इच्छाको भगवान्की इच्छामें मिला देता है, तब वह भक्तिमार्गमें आगे बढ़ता है। सतत ब्रह्मसम्बन्ध बनाए रखोगे तो तुम ब्रह्मरूप हो सकोगे।

गोवर्धनलीलामें पूजा करनेवाले भी कृष्ण हैं और जिसकी पूजा हो रही है, उस गोवर्धन-में भी वही हैं।

गोवर्धनलीलामें सेवक-सेव्य, भक्त-भगवान्की तद्रूपता बताई गई है। कन्हैया गोवर्धनकी अर्थात् स्वयंकी पूजा कर रहा है। जीव और ईश्वर यहाँ एक हुए हैं। यही 'सः अहम्-सोऽहम्' भाव है।

हम भी गिरिराजधारीको वंदन करके स्तुति करें—

भक्ताभिलाषी चरितानुसारी दुग्धादि चौर्येण यशोविसारी ।
कुमारतानन्दित घोषनारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ॥

भक्त-इच्छानुसारी, बाललीलामें दुग्धादि चोरकर यश विस्तारनेवाले, व्रजवनितारंजक ऐसे गिरिराजधारी श्रीकृष्ण मेरे प्रभु हैं।

वृन्दावने गोधनवृन्दचारी, मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।

गोवर्धनलीलासे गोपियोंको विश्वास हो गया कि कन्हैया तो ईश्वर है। तो उनसे एकाकार होनेकी भावना जागी और रासलीला हुई।

भक्तिरसमें इन्द्रियोंको सराबोर करोगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा।

श्रीकृष्णका देवाधिदेवत्व सिद्ध करनेके हेतु ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदिका पराभव किया गया। ब्रह्माजीको सृष्टिके सर्जक होनेका अभिमान था। भगवान्‌ने अनेक स्वरूप धारण करके, अपने उन स्वरूपोंसे स्वयं क्रीडालीला करके ब्रह्माजीके अभिमानको दूर कर दिया। इन्द्रका स्वर्गके राजा होनेका अभिमान गोवर्धनलीलासे उन्होंने दूर किया। इन्द्रने मान लिया कि उसे स्वर्गके सिंहासनपर कृष्ण ही ने बिठलाया है।

श्रीकृष्ण अवतार नहीं, अवतारी पूर्णपुरुषोत्तम हैं।

२८वें अध्यायमें वरुणदेवके पराभवकी कथा रास पंचाध्यायीसे शुरू होती है। रासलीला-के पहले आई हुई इस कथाकी महिमा विशिष्ट है।

ये व्रजवासी गौसेवा, एकादशी व्रत, कृष्णकीर्त्तन आदि करते थे सो श्रीकृष्ण मथुरासे गोकुल आए। व्रजवासी तो भोले थे और बहुत पढ़े-लिखे भी नहीं थे। वे योगविद्यासे भी अज्ञात थे। फिर भी उनके भोलेपनके कारण उनको भगवान् मिले।

व्रजवासी एकादशी व्रत विधिपूर्वक करते थे अर्थात् उन्होंने कृष्णकी सच्ची सेवा की और उन्हें आनंद दिया।

शास्त्रने एकादशी व्रत विधिपूर्वक करनेको कहा है। उस दिन सारा दिन प्रभुसेवामें बिताओ और सारी रात जागते रहकर कृष्णकीर्त्तन करते रहो। कमसे कम रातके बारह बजे तक तो कृष्णकीर्त्तन अवश्य किया जाय। परमात्माके चरणोंमें रहना ही तो एकादशी है।

परमात्माके चरणोंमें शरीरसे नहीं, मनसे रहना है।

एकादशीके दिन मन श्रीकृष्णके सिवाय अन्य किसी भी विषयकी ओर नहीं जाना चाहिये।

व्रजवासी एकादशीके दिन रात्रिको जागरण करते थे। नंदजी मध्यरात्रिके समय यमुना-स्नान करने गये।

रात्रिके ग्यारहसे साढ़े तीन बजे तकका समय भोजन, स्नान आदिके लिए निषिद्ध माना गया है। आजकल तो लोग रसोई बनाकर फिल्म देखने जाते हैं और रातके बारह बजे खाने बैठते हैं। यह तो अगले जन्ममें राक्षस योनिमें जानेकी तैयारी है। रात्रिके ग्यारह बजे राक्षस तीर्थोंमें प्रवेश करते हैं सो स्नानादिकी मनाही की गई है।

नंदजीने सोचा था कि मध्यरात्रि पूरी हो चुकी है और प्रातःकाल हो गया है। सो उन्होंने तो स्नान करनेके लिए जलमें गोता लगाया। आसुरी समयमें स्नान करते हुए देखकर वरुणदेवके सेवक नंदजीको पकड़कर वरुणलोकमें ले गए। वहाँसे उन्हें श्रीकृष्ण छुड़ा लाए।

अब इस कथाका रहस्य भी देखें। रासलीलाके पहले आई है यह वरुणदेव-पराजयकी कथा।

वरुणदेव जीभके स्वामी हैं और उनके सेवक—दूत हैं षड्रस। जबतक रसनापर काबू नहीं हो पाएगा, तबतक रासलीलामें प्रवेश नहीं मिल पाता। विषयीको रासरस नहीं मिलता है।

नंद है जीव। जीव जब चित्तनदीमें स्नानके लिए गोता लगाता है तब वरुणसेवक—षड्रस उसे सतानेको उपस्थित हो जाते हैं।

जबतक जीव लौकिक रसके अधीन है, तबतक वह अलौकिक रस पा नहीं सकता। वैसा जीव भक्तिरस, प्रेमरस पा नहीं सकता।

आनंद किसी वस्तुमें नहीं, मनकी एकाग्रतामें है। आनंद ईश्वरसे तदाकार होनेमें है। षड्रस पर विजय पानेके लिए भक्तिरसकी साधना करो। भक्ति करना सरल नहीं है। जिसे भक्ति करनी हो उसे मन और जीभको वशमें करना होगा। जीभका दास, भक्ति कैसे कर पाएगा? महाप्रभुजीने सुबोधिनीमें कहा है, ठाकुरजीकी सेवासे अनुराग करो और शरीरभोगके प्रति विराग। जीभको नहीं, जीवको समझाना है। मनुष्यका बहुत-सा समय इस जीभके लालन-पालनमें बीत जाता है। काल निकट आ रहा है, उसका भी तो विचार करो।

अब चीरहरण और रासलीला आ रही है।

गोपियोंके दो भेद हैं—नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। साधनसिद्धा गोपीके कई भेद हैं—श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, संकीर्णरूपा, अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा आदि।

श्रुतियाँ ईश्वरका वर्णन करती-करती थक गयीं, फिर भी उनका अनुभव नहीं हो पाया। ईश्वर केवल वाणीका विषय नहीं है। जो वेदाभिमानी देव ब्रह्मसंबंध सिद्ध करके, ब्रह्मसाक्षात्कारके हेतु गोकुलमें प्रकट हुए, वही हैं श्रुतिरूपा गोपियाँ।

तपस्वी होनेपर भी ऋषियोंका काम बना रहा और ईश्वरका अनुभव न हो पाया।

दर्शन और अनुभवमें अंतर है। दर्शनमें दृश्य और द्रष्टाका भेद है। अनुभवमें वे दोनों एक हो जाते हैं। उसमें पूर्णतः अद्वैत है। सो बुद्धिगत कामका नाश करके ब्रह्मसंबध सिद्ध करके, ब्रह्मात्मक रूप मुक्तिका अनुभव करनेके लिए जो ऋषि गोपी बनकर आये थे, उन्हें ऋषिरूपा कहते हैं।

संकीर्ण मण्डलमें प्रभुके मनोहर रूपको देखकर, मनमें कामभाव जागृत होनेसे जिन स्त्रियोंने गोपीका रूप लिया, वे कामरूपा हैं। उदाहरण—सूर्पणखा।

विवाहके बाद संसार-सुखोंका उपभोग करते हुए अरुचि होने और प्रभुके प्रति प्रेमभाव हो जानेपर जिन पुरुषों या स्त्रियोंने गोपीका रूप लिया उन्हें अन्यपूर्वा कहा जाता है। तुलसीदासके वैराग्यकी कथा बड़ी प्रसिद्ध है।

वस्तुगत आसक्तिको प्रभुगत आसक्तिका रूप दिया जाय तो वस्तुकी आसक्ति छूट जाती है। अनेक वस्तुओंके प्रति आसक्तिका होना व्यावहारिक दृष्टिसे अशक्य है।

तुलसीदास केवल पत्नीकी ओर ही आसक्त थे। संसारकी अन्य सभी नारियाँ उनके लिए माताके समान थीं। पत्नी रत्नावलीकी एक ही चेतावनीने उनकी आसक्तिको प्रभुभक्तिमें बदल दिया। कामासक्ति ईश्वरासक्तिमें परिवर्तित हो गई। बहुतोंको तो रोज थप्पड़ पड़ते हैं फिर भी सुधर नहीं पाते हैं।

अनन्यपूर्वा—जन्मसिद्ध पूर्ण वैरागी। शुकदेव, मीरा आदि।

एक बार व्रजकी कुमारिकाएँ यमुना-किनारे नग्नावस्थामें स्नान कर रही थीं तो उनके वस्त्र उठाकर श्रीकृष्ण कदम्बके वृक्ष पर चढ़ गए और कुमारिकाओंसे कहने लगे, जिसे वस्त्र लेने हैं, वह यहाँ आकर ले जा सकती है।

कृष्णने कहा—नग्नावस्थामें स्नान करके तुमने जलदेवका अपराध किया है। सो दोनों हाथ जोड़कर, वंदन करके वस्त्र ले जाओ।

उन कुमारिकाओंने वैसा किया तो उनके वस्त्र कृष्णने लौटा दिए।

इस चीरहरण लीलामें भी एक रहस्य है। कुमारियोंके मनमें ऐसी भावना थी कि वे नारी हैं। ऐसा भाव अहङ्कारका द्योतक है। उनका वह अहम्-भाव दूर करनेके लिए श्रीकृष्णने वैसा व्यवहार किया। इस लीलामें अहङ्कारका पर्दा हटाकर प्रभुको सर्वस्व अर्पण करनेका उद्देश्य है।

भगवान् कहते हैं—तुम 'अपनापन' स्वत्व भुलाकर मेरे पास आओ। संसार-शून्य और सांसारिक संस्कार-शून्य होकर, निरावृत होकर मेरे पास आओ।

द्वैतका आवरण दूर करोगे तो भगवान् मिलेंगे।

शरीरको वस्त्र छिपाता है और आत्माको वासना। भगवान् तुम्हारे पास ही हैं किंतु तुम देख नहीं पाते हो। वासनाका पर्दा फटते ही भगवान् दिखाई देंगे।

आत्मा और परमात्माके बीच वासनाका पर्दा है सो भगवान्‌का अनुभव नहीं हो पाता है। आत्मा अंदर है और ऊपर है अज्ञान और वासनाका पर्दा। अज्ञान और वासनाके उस आवरणको चीरकर भगवान्‌से मिलने जाना है। सिद्ध सद्गुरुकी या परमात्माकी कृपासे बुद्धिगत वासना दूर होती है। बुद्धिमें रहा हुआ काम, कृष्ण-मिलनमें बाधक है।

अज्ञान—वासना-वृत्तियोंके आवरणका नष्ट होना ही चीरहरण लीला है और आवरण-नाशके पश्चात् जीवके आत्माका प्रभुसे मिलन है रासलीला। इसी कारणसे रासलीला चीरहरण-के बाद आती है।

कामवासनाके नष्ट होने पर ईश्वरके साथ अद्वैत हो जाता है।

भगवान् कभी लौकिक वस्त्रोंकी चोरी नहीं करते हैं। वे तो बुद्धिगत अज्ञान, काम-वासनाकी चोरी करते हैं?

कन्हैया क्या गोपियोंको नग्नावस्थामें देखना चाहता था? सोचो तो। श्रीकृष्ण तो सर्वव्यापी हैं सो जलमें हैं। वे तो गोपियोंसे मिले हुए ही थे किंतु गोपियाँ अज्ञान और वासनासे आवृत होनेके कारण श्रीकृष्णका अनुभव कर नहीं पाती थीं। सो उस बुद्धिगत अज्ञान और वासनारूप वस्त्रोंको भगवान् उठा ले गए। वैसा प्रभु तब करते हैं जब कि जीव उनका हो जाता है।

भगवान् कहते हैं—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ॥

जिसने अपनी बुद्धि मुझमें स्थापित की है उनके भोगसंकल्प, सांसारिक विषयभोगके लिए नहीं होते। वे सङ्कल्प मोक्षदायी होते हैं। भुने हुए धान्यका बीजतत्त्व नष्ट हो जाता है और कभी अंकुरित नहीं हो पाता। इसी प्रकार जिसकी बुद्धिमें-से काम-वासनाका अंकुर उजड़ गया है, वहाँ वह फिरसे अंकुरित नहीं हो पाएगा।

प्रभुने गोपियोंसे कहा—हे व्रजकुमारिकाओ ! मैं जानता हूँ, तुम्हारी कामवासना नष्ट हो जानेके कारण तुम्हारे हृदय शुद्ध हो गये हैं। फिर तुम्हें मेरा ध्यान अब भी धरते रहना है। ऐसा करनेसे तुम्हारे मनमें समाया हुआ सूक्ष्म मल नष्ट होगा और मुझसे मिलन होगा। शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ तुम रमण कर पाओगी।

शरद् ऋतुकी रात्रि निर्मल होती है। तुम भी हर तरहसे शुद्ध, निर्मल, शुभ्र हो पाओगे तो ईश्वरके साथ क्रीड़ा कर पाओगे, जीव ईश्वरसे मिल सकेगा। तभी रासलीला होगी।

जीव-ईश्वरके मिलनके लिए पहले तो पूतना-वासनाका नाश किया जाय।

अविद्या नष्ट होनेसे जीवनकी गाड़ी राह पर आने लगती है और शकटासुरका नाश होता है।

जीवन सही रास्ते पर चलने लगा तो तृणावर्त-रजोगुण नष्ट हो गया और सत्त्वगुण बढ़ने लगा।

रजोगुण मिट चुका तो कन्हैयाने माखन-मनकी चोरी की और जीवन सात्त्विक बना।

जीवन सात्त्विक होने पर आसक्तिकी मटकी फूट जाती है। दहीकी मटकी—संसारासक्तिकी मटकी कन्हैयाने फोड़ दी।

संसारासक्ति नष्ट हुई तो प्रभु जीवके पाशसे बँध गए। यही है दामोदर लीला।

प्रभु बँध चुके तो दम्भ-बकासुर और पापताप-अघासुरका वध हुआ।

सांसारिक ताप नष्ट हुआ तो दावाग्नि नष्ट हुई, शांत हो गई। अतः इन्द्रियाँ शुद्ध हुईं, अंतःकरणकी वासनाका क्षय हुआ। यही है नागदमन लीला और प्रलम्बासुरवधकी कथा।

जीव ईश्वरसे मिलने योग्य हो पाया तो कृष्णकी मधुर मुरलीकी मधुरिम तान सुन सका।

वेणुगीत गाया गया अर्थात् नाद ब्रह्मकी उपासना हुई।

फिर आई गोवर्धन लीला। गो—इन्द्रियोंका संवर्धन हुआ, पुष्टि हुई तो भक्ति-रस उत्पन्न हुआ। इन्द्रियोंकी पुष्टि होने पर षड्रसका और वरुणदेवका पराभव हुआ।

षड्रसका पराभव होनेसे जीव शुद्ध होनेको आया। तो चीर-हरण लीला आई, अज्ञान और वासनाके आच्छादन भगवान्ने मिटा दिए।

चीरहरणलीला—बाह्यावरण, उपाधि नष्ट हुई तो रासलीला हुई, जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देहको ढँकता है, उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्माको ढँक देते हैं और परमात्माको दूर रखते हैं। जब तक अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर नहीं हो पाता, तब तक जीव शिवसे मिल नहीं पाता।

वस्त्र-हरणलीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उड़ा ले जानेकी लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु-मिलनमें बाधक हैं। इन्द्रियोंके कामको हटाना सरल है किंतु बुद्धिगत कामको निकाल बाहर करना बड़ा कठिन है।

प्राण और प्रकृति एक साथ जाते हैं। इस प्रकृति पर विजय पाना टेढ़ी खीर है।

योगियोंका शारीरिक काम तो भाग जाता है किंतु बौद्धिक काम कई बार ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

वृद्धावस्थामें इन्द्रियाँ शिथिल हो जाने पर शरीरिक काम तो चला जाता है किंतु बौद्धिक बना रहता है।

ऋषि भी कामके आगे हार मान गए थे। सो उन्होंने कामभावको श्रीकृष्णार्पण करके निष्काम होनेका विचार किया और गोपी बनकर गोकुलमें आ पहुंचे।

अब आ रही है रासलीला।

महाप्रभुजीने दशम स्कन्धको गोवर्धननाथका हृदय कहा है और रासलीलाको प्राण। हृदयमें पंच प्राण होते हैं। रासपंचाध्यायी श्रीमद्भागवतके पंचप्राण हैं। इसे फल-प्रकरण भी कहते हैं। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि रासपञ्चाध्यायी निवृत्ति धर्मका परम फल है।

शुकदेवजी सोचने लगे कि समाजमें रासलीला-श्रवणके अधिकारी कितने होंगे। जो अधिकारी नहीं होगा, वह इस लीलामें काम ही देखेगा।

श्रीराधाजी शुकदेवजीकी गुरु हैं। उन्हींने शुकदेवको ब्रह्मसंबंध कराया था। श्रीराधाजीकी कृपाके बिना रासलीलाका गूढ तत्त्व, रहस्य समझ पाना आसान नहीं है।

शुकदेवजी अपने पूर्वजन्ममें तोता थे और लीलानिकुञ्जमें राधाका नाम रटते हुए उड़ते फिरते थे। उसके राधा नामके अखण्ड कीर्त्तनको सुनकर दयामूर्त्ति राधाजी वहाँ पधारीं। उन्होंने देखा तो एक तोता उनके नामका जप कर रहा था। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और हथेली पर रखकर सहलाते हुए कहा—'वत्स, कृष्णं वद, कृष्णं वद, राधेति मा वद।' कृष्ण ही तेरे सच्चे जनक हैं, उन्हींके नामका कीर्त्तन कर।

राधाजी इस प्रकार तोतेको मंत्रदीक्षा दे रही थीं कि श्रीकृष्ण वहाँ पधारे।

श्रीराधाजी आद्य संयोजिका और आह्लादिका शक्ति हैं। बिछुड़े हुए जीवोंको वह श्रीकृष्णसे मिला देती हैं। व्रजकी अधीश्वरी देवी श्रीराधाजी ही हैं। तभी महात्मा वृन्दावनमें राधे-राधे करते रहते हैं। राधाजीकी कृपा होने पर जीव भगवान्के दर्शन पा सकता है। उनकी कृपा ही जीवको प्रभुसे मिलाती है।

शुकदेवजी पूर्वजन्ममें तोता थे सो भागवतमें ' शुकदेव उवाच' लिखनेके बदले 'श्रीशुक उवाच' लिखा है। श्रीका अर्थ है राधा। 'श्रीशुक'में गुरु-शिष्य दोनोंका नाम समाया हुआ है।

भागवतमें अन्य किसी भी व्यक्तिके नामके आगे 'श्री' शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है। ब्रह्मा उवाच, सनतकुमार उवाच, व्यास उवाच ऐसा ही लिखा गया है। व्यासजीके नामके आगे भी ' श्री ' विशेषण नहीं है।

केवल कृष्ण और शुकदेवके नामके आगे ही ' श्री ' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भगवान् कृष्ण राधाजीके हृदयेश्वर हैं और शुकदेवजी कृपापात्र शिष्य। अतः इन दोनोंके नामके आगे 'श्री' विशेषण प्रयुक्त हुआ है।

राधाजीने श्रीकृष्णको तोता देते हुए कहा, यह तोता मुझे बड़ा प्यारा लगता है।

अन्तरङ्गमें राधाजी शुकदेवजीकी गुरु हैं। जो परमात्माके साथ संबंध जोड़कर आता है, वह है महाप्रभु। उसका नाम प्रकट रूपसे कैसे लिया जाय ? भागवतमें शुकदेवजीने राधाजीका प्रकट रूपसे नाम लिया नहीं है। राधाजीके नामकी भाँति किसी गोपीका भी नाम नहीं बताया गया है। शुकदेवजीने सारी रासलीला की कथा बड़े विवेकसे की है। गोपी-प्रेमकी बातें अधिकतर अप्रकट ही रखी हैं।

राजा परीक्षितको सात ही दिनोंमें मोक्ष देना है। राधे-राधे करने लग जायें तो शुकदेवजी समाधिस्थ हो जायेंगे तो राजाका क्या होगा ?

बातें, कथा, विवरण वियोगावस्थामें ही अधिक हो सकते हैं, पूर्ण संयोगावस्थामें नहीं।

यह तो कामरहित अंतरङ्ग लीला है। ग्यारह वर्षके बालकके प्रति काम भाव कैसे जाग सकता है। सपत्नी-मत्सर गोपियोंमें नहीं था। यह साधारण स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं था। यदि होता तो शुकदेवजी जैसे महायोगी इसका वर्णन ही नहीं करते।

ऐसी कल्पना ही न करो कि गोपी ग्रामकी कोई स्त्री है। गोपी तो शुद्ध जीवका ही नाम है। शुद्ध हृदयका भाव, प्रेमभाव ही गोपी है। देहभान भूलकर, प्रत्येक इन्द्रियसे भक्तिरसका पान करनेवाला विशुद्ध जीव ही गोपी है।

साधारण जीव गोपीकी कथा करने या सुननेका अधिकारी नहीं है।

ऊपर नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा गोपियोंकी चर्चा की गई है।

कुछ ज्ञानी ब्रह्मरूप होना चाहते हैं। कुछ गोपियाँ ईश्वरके साथ एक होना नहीं चाहतीं। एक होंगी तो ईश्वरके रसास्वादका अनुभव नहीं कर पायेंगी। जीव ईश्वरके साथ एक हो जाय तो उनके रसात्मक स्वरूपका अनुभव नहीं किया जा सकता।

ईश्वरके रसस्वरूप होनेके कारण ज्ञानी पुरुष उसमें डूब जाते हैं। फिर भी वे रसात्मकताका अनुभव नहीं कर पाते हैं क्योंकि वे ईश्वरसे कुछ भिन्न नहीं रहते हैं। ईश्वरसे पृथक रहनेसे ही उनका रसानुभव किया जा सकता है।

नित्यसिद्धा गोपियाँ वे हैं जो कन्हैयाके साथ आई हुई हैं।

साधनसिद्धा गोपियोंके कई भेद हैं—

(१) श्रुतिरूपा—वेदके मंत्र गोपी बनकर आये हैं। वेदोंने ईश्वरका वर्णन तो अतिशय किया है फिर भी उन्हें अनुभव नहीं हो पाया है। ईश्वर केवल वाणीका नहीं, ध्यानका विषय है। संसारका विस्मरण हुए बिना ईश्वरसे साक्षात्कार नहीं हो पाता। तभी तो वेदाभिमानी देव गोकुलमें गोपी बनकर आए हैं।

(२) ऋषिरूपा—जीवका सबसे बड़ा शत्रु है काम। ऋषियोंने बहुतेरा प्रयत्न किया फिर भी वह मर नहीं पाया।

तप करनेसे शरीर और इन्द्रियोंका काम तो चला जाता है किंतु मनमें बसा हुआ काम, बुद्धिगत काम जाता नहीं है। ब्रह्मसंबंध स्थापित किए बिना बुद्धिगत काम बना रहता है। उस कामको कृष्णार्पण करना है।

विश्वामित्र और पराशर जैसे शक्तिशाली ऋषि भी कामके आगे झुक गए। सूर्यको तिरोहित करनेवाले मुनि कामको दूर न कर सके। काम मर न पाया तो ऋषि थक-हारकर गोपी बनकर गोकुलमें आये। हम श्रीकृष्णको काम अर्पण करके निष्कामी बनेंगे।

जो कामको मार सकता है, उसके लिए कृष्ण दूर नहीं है। काम तो अनङ्ग है, वह जीवको, आत्मशक्तिको धीरे-धीरे मारता है। सात्त्विक भोजनके बिना वह नहीं मर पायेगा।

काम श्रीकृष्णको दूषित नहीं कर सकता। श्रीकृष्णकी चिंता करनेवालेका काम कुछ नहीं कर सकता तो स्वयं कृष्णका तो वह क्या बिगाड़ सकता है?

गर्भसंहितामें एक कथा है। एक बार श्रावण मासमें रासके समय भगवान् श्रीकृष्ण बड़े विलम्बसे आये तो गोपियोंने उनसे कारण पूछा। कृष्णने कहा—मेरे गुरु मुनि दुर्वासा आए हैं। मैं उनके दर्शनार्थ गया था। गोपियोंको आश्चर्य हुआ—आपके गुरु? तो कृष्णने कहा—हाँ, दुर्वासा मुनि मेरी ब्रह्मविद्याके गुरु हैं।

गोपियोंने सोचा, भगवान्के गुरु कितने महान् होंगे! हम उन्हें भोजन करायेंगी। श्रीकृष्णने कहा, मेरे गुरु भूख लगनेपर दिनमें एक ही बार दूर्वारस पीते हैं, भोजन नहीं करते हैं। तुम्हारा प्रेम शुद्ध होगा तो वे आहार करेंगे।

गोपियोंने भाँति-भाँतिके मिष्टान्न बनाये। सोचने लगीं कि अब दुर्वासाको बुला लायें। मुनिका आश्रम तो यमुनाके सामनेके किनारे पर था। बाढ़ आई हुई थी। करें तो क्या करें? उन्होंने श्रीकृष्णसे पूछा तो उन्होंने कहा—यमुनाजीसे कहना कि यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और बालउपवासी हों तो हमें मार्ग दीजिए।

गोपियाँ तो जानती ही थीं कि कृष्ण दूसरोंको परमानंद देनेके लिए ही क्रीड़ा करते हैं। गोपियाँ अधिकारी थीं।

यमुनाजीने मार्ग दिया। गोपियाँ आश्रममें आईं और दुर्वासासे भोजन करनेका आग्रह किया। दुर्वासाने कहा—वैसे तो खानेकी कोई इच्छा ही नहीं है। फिर तुम्हारी इच्छा ही है तो मेरे मुँहमें ग्रास रखती जाओ। गोपियोंने जो कुछ खिलाया वह सब कुछ उनके पेटमें चला गया। गोपियोंने सोचा कि ऋषिकी संतान होंगी ही नहीं सो खाते समय याद न आई। उन्होंने दुर्वासाजीसे पूछा—आपने भोजन तो भलीभाँति किया है न?

दुर्वासा—नहीं तो, मैं नित्य उपवासी हूँ। यदि मेरी बात जंचती नहीं है तो यमुनाजीसे कहना कि यदि दुर्वासा नित्य उपवासी हों तो वह मुझे मार्ग दें। बिलकुल वैसा ही हुआ। गोपियोंने श्रीकृष्णको भी सब कुछ बताया।

गुरु-शिष्य दोनों बराबरके हैं। इतनी सारी रानियाँ होते हुए भी कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं और मिष्टान्नका ढेर डकार जानेवाले ऋषि दुर्वासा नित्य उपवासी। यह कैसे ब्रह्मचारी है और यह कैसा उपवासी?

दुर्वासाको किसी भी प्रकारकी वासना नहीं है। उन्होंने खाया तो बहुत किंतु बिलकुल स्वाद लिए बिना ही। खानेवाला और खिलानेवाला नारायण है। दुर्वासाकी यह ब्रह्मोपासना है। खानेवाला और खिलानेवाला ब्रह्म ही है सो उन दुर्वासाकी बात सच है कि वे नित्य उपवासी हैं।

कृष्ण और दुर्वासाको किसी भी वस्तुके प्रति कोई आसक्ति या वासना थी ही नहीं। सब कुछ भोगकर भी वे निष्कामी थे। श्रीकृष्णने गृहस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रमका समन्वय कर दिखाया। वे निष्काम ही हैं।

निष्काम श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाला व्यक्ति स्वयं भी निष्काम हो जाता है। चीरहरण लीलाकी ऋषिरूपा गोपियाँ पाँच-छः वर्षकी कुमारी थीं। उन कुमारिकाओंकी इच्छा है कि श्रीकृष्ण उनको पतिके रूपमें मिलें। इसमें भाषा तो लौकिक है किंतु रहस्य अलौकिक है। जब तक जीव आवरणके अन्दर होता है, तब तक वह ईश्वरसे मिल नहीं पाता।

श्रीकृष्णने सखियोंको उपयुक्त समयमें मिलनेका वचन दिया था। ध्यान रहे कि रासमें गोपियोंकी देहसे मिलन नहीं है। गोपियोंने पांचभौतिक शरीरका त्याग कर दिया है। इन गोपियोंका स्वरूप अप्राकृत चिन्मय आनन्द रूप है। पंच महाभूतके शरीरको परमात्मा स्पर्श नहीं करते। भागवतमें स्पष्टतः कहा है कि रासलीला पांचभौतिक शरीरके त्यागके बाद ही हुई थी।

किसीको शङ्का होगी, गोपियोंका पांचभौतिक शरीर कैसे छूट गया? श्रीकृष्णका वियोग तो अग्नि है। पतिके विरहमें जिस प्रकार पतिव्रता पत्नी जलती है उसी प्रकार परमात्माका विरह जीवको जलाता है। प्रभुके विरहके समय जीवका संसारमें रममाण रहना पाप है। श्रीकृष्णकी विरहाग्निने गोपियोंके पांचभौतिक शरीरोंको जला दिया और उनको श्रीकृष्णकी भाँति अप्राकृत रसात्मक शरीर प्राप्त हुआ। पांचभौतिक शरीर साथ होगा तो परमात्मासे मिलन नहीं हो पाएगा।

गोपियाँ कृष्ण-विरहमें जलती हैं। हमारी यह करुणता ही है कि यह जीव भगवान्के वियोगके समय सांसारिक वासनाओंसे खिलवाड़ करता रहता है। संसारके भोग, रोग समान ही हैं। गोपियाँ तो परमानन्द रूप परमात्मासे मिलना चाहती हैं। श्रीकृष्णके दर्शन मात्रसे अब उनको तृप्ति नहीं हो पाती। दर्शनमें द्वैत है। गोपियाँ परमात्मासे एक रूप होना चाहती हैं।

गोपियोंको जबसे गोवर्धनलीलामें श्रीकृष्णके परमात्मास्वरूपका दर्शन हुआ था, तबसे उनमें प्रेमभावका बीजारोपण हुआ था। उन्होंने कन्हैयाकी बांसुरी भी सुनी।

प्रेमका आरम्भ द्वैतसे होता है। प्रेयसी और प्रियतम अलग-अलग होते हैं। समयके साथ प्रेम बढ़ता जाता है तो दोनोंको एक हो जानेकी इच्छा होती है। 'मैं' अब 'तू' होनेकी इच्छा रखता है। अद्वैतकी इच्छा जाग उठती है।

'मैं' का मिटकर 'तू' होना, स्वयंको प्रिय पात्रसे मिला देना, प्रिय पात्रसे सायुज्य सिद्ध करना ही प्रेम है।

कई बार गोपियोंको उनकी सास बाहर नहीं निकलने देती थीं। उनकी व्याकुलताको देखकर कन्हैया उनके रसोईघरमें प्रकट हो जाता था। जीव जब अति आतुर होता है, तब ईश्वर उसे मिलनेके लिए आते हैं। गोपियोंका प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। श्रीकृष्णसे मिलना है, एक होना है। अब पल भरका भी विरह सहा नहीं जाता। कृष्ण-विरहसे वे मूर्छित हो जाती थीं। अब उनकी और कोई वासना नहीं है। जीव शुद्ध होकर ईश्वरसे मिलनेके लिए आतुर हो गया है। अब रासलीला होगी।

कृष्णने अपने बाल मित्रोंसे कहा था कि जब भी किसीको मूर्छा आए, उन्हें बुलाया जाय। गोपियोंकी मूर्छा उतारनेका उपाय वे जानते हैं। गोपियोंके मन और प्राण उन्हींमें हैं। गोपी मूर्छित हुई तो कन्हैयाको बुलाया गया। वे समझ गए कि गोपियोंका प्रेमभाव बढ़ता जा रहा है। कन्हैयाने गोपीको सहलाते हुए, कानमें कहा, शरद्पूर्णिमाकी रात्रिको तुझसे मिलूंगा। तबतक धीरज रखकर मेरा सतत ध्यान करती रहना।

वैष्णव तो प्रेमीसे मिलनेकी आशामें ही जीते हैं। कन्हैया अवश्य मिलेगा।

गोकुलकी सभी गोपियां रासमें नहीं गई थीं। जिन गोपियोंको अधिकार प्राप्त हुआ था, वे ही जा सकी थीं।

युवावस्थासे ही भक्तिका रङ्ग लगना चाहिए। वृद्धावस्थामें भक्तिका रङ्ग चढ़े, वह ठीक तो है किंतु उत्तम नहीं है। जो केवल वृद्धावस्थामें ही भक्तिका आरम्भ करता है, उसे युवावस्थाके कामसुखोंका स्मरण सताता रहता है। वृद्धावस्थामें यदि अंदरसे भक्ति उत्पन्न न होने पाये तो दूसरोंकी टीका-टिप्पणी करनेका जी हो आता है।

परायोंकी, दूसरोंके रहन-सहन, घर-गृहस्थी, व्यवहार आदिकी चूं-चपड़ करते रहना सबसे बड़ा पाप है। जब भी स्त्रियाँ एक-दूसरेसे मिलती हैं तो पति, सन्तान, बहू, कपड़े-लत्ते आदिकी बातोंमें लगी रहती हैं। जो भक्तिके रङ्गमें रँग जाते हैं, वे ऐसी फालतू बातोंमें भाग नहीं लेते। बाल पक जानेके बाद माला न फेरे तो उसका कलेजा और काला हो जाता है। बालके साथ कलेजा उजला न हो सके, यह बड़ी दुःखद बात है।

कन्हैया उस गोपीके कानोंमें कुछ कह रहा था और गोपीकी मूर्छा दूर हो रही थी। एक वृद्धाने यह देखा तो उसको दालमें कुछ काला नजर आया। मुझे यह मंत्र जानना ही होगा। उस बूढ़ीने ढोंग किया। घरका काम करते-करते जानबूझ कर जमीन पर लेट गई। बहूको दुःख हुआ। उसने श्रीकृष्णके पास जाकर कहा, नाथ, पधारिए। मेरी सासजी मूर्छित हो गई हैं। बेचारी भोली बहूको क्या खबर थी कि उसकी सास कपट कर रही है।

कन्हैयाने कहा, जिसके बाल पक गए हों, उसको मेरे मन्त्रसे कोई लाभ नहीं हो पाता। सो मैं नहीं आऊँगा किंतु गोपीने बड़े प्रेमसे आग्रह किया तो वे इनकार न कर सके। कन्हैयाने वृद्धाका निदान किया कि इस बूढ़ीके सिर पर भूत सवार हो गया है किंतु चिंता न करना। मैं भूत उतारनेकी विद्या जानता हूं। एक लकड़ी तो ला दो कोई। बूढ़ीने मन-ही-मन कहा, अरे, बाप रे! इतनेमें तो लकड़ी आ गई और कन्हैयाने उस बूढ़ीको दो फटके मार दिए। बूढ़ी तुरन्त बोल पड़ी, मुझे मूर्छा नहीं आई थी मैं ढोंग कर रही थी। कन्हैयाने कहा, हाँ, देखो भूत बोल रहा है। दो फटके और जड़ दिये।

जरा सोचो तो। मनुष्यका बाह्य वेश तो वैष्णवका होता है और मनमें काम, क्रोध, कंचन, कामिनीको रमाता रहता है। बाहरसे भक्त होनेका ढोंग करता है। यह ढोंग, यह अभिमान ही तो वह भूत है जो जीवकी पिटाईके लिए कारणभूत है।

ऐसे भी बहुतेरे लोग हैं, जिनकी आकृति तो बड़ी आकर्षक, सुन्दर, लुभावनी होती है किंतु कृति भयङ्कर, घृणाजनक।

उस बुढ़ियाकी भाँति कभी ढोंग न करना। दम्भ, ढोंग ही भूत है। भक्ति औरोंको दिखानेके लिए नहीं, प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए करनी है। कई लोग ज्ञान और भक्तिका जितना ढोंग करते हैं, उतने ही वे अन्दरसे खोखले होते हैं। श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं। उनसे कोई बात छिपी नहीं है।

रासलीलाके तीन सिद्धांत हैं—

(१) इसमें गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है।

(२) इसमें लौकिक काम नहीं है।

(३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ईश्वरका मिलन है।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शुद्ध जीवका अर्थ है मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐसे जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है।

शुकदेवजी कहते हैं, इस लीलाका चिंतन करना है, अनुकरण नहीं। शृङ्गार और करुण रसका ऐक्य सिद्ध करना प्रधानरूपसे आवश्यक है। पतिके वियोगमें छटपटाती पत्नीकी भाँति ईश्वरके वियोगमें जीव छटपटाता है, ऐसा बताना ही रासलीलाका हेतु हैं। ठाकुरजीके विरहमें जिसकी काया तप्त नहीं हुई है, उसे वे मिल नहीं पाते। उस आतुरताका यथार्थ वर्णन करनेके लिए ही शृङ्गार-रसका आश्रय लिया गया है।

रासमें आत्मा और परमात्माका निर्लेप, निर्विकार मिलन है। श्रीकृष्णकी यह काम-विजय लीला है।

शरदृऋतुकी पूर्णिमाकी रात्रि आ गई।

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्लमल्लिका।

रासलीला, कामलीला नहीं है। यह तो कामविजयलीला है। श्रीकृष्णके पास काम जा ही नहीं सकता। लौकिकका आभास होने पर भी यह क्रिया कामविकाररहित है। श्रीधर स्वामी इसे कामविजयलीला कहते हैं।

ब्रह्मादि जय संरूढ दर्प कन्दर्प दर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमण्डलमंडितः॥

श्रीकृष्ण कोई सामान्य देव नहीं, साक्षात् परमात्मा हैं। उन्होंने अपनी लीलाओंके द्वारा सभी देवोंका पराभव किया। वत्सलीलामें ब्रह्माका गर्व उतार दिया। ब्रह्मासे उन्होंने कहा, आप पञ्चमहाभूतके सहारे जगत्का निर्माण करते हैं, मैं सङ्कल्प मात्रसे जगत्का सर्जन करता हूँ। भगवान्को सृष्टिकी रचना करनेके लिए किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। सङ्कल्प मात्रसे

उन्होंने गोपबालकों और बछड़ोंका निर्माण किया था। वह रूप उन्होंने स्वयं ही लिया था। अग्निका भी गर्व नष्ट किया। इन्द्रका अभिमान भी गोवर्धनलीलामें उतारा गया। वरुण देवका पराभव किया।

ब्रह्मादि देवोंकी पराजय हुई तो कंदर्प—कामदेवका अभिमान जाग उठा कि अब तो मैं ही सबसे बड़ा देव हूँ। उसने कृष्णके पास आकर मल्लयुद्धका प्रस्ताव रखा। कामका एक नाम मार भी है। उसे सभी मारते हैं। कृष्णने कामदेवसे पूछा—शिवजीने तुझे भस्मीभूत कर दिया था, वह क्या भूल गया है तू ?

कामदेव—हाँ, वह तो ठीक है। मुझसे जरा गड़बड़ हो गई थी। शिवजी समाधिस्थ थे और तेजोमय ब्रह्मका चिंतन कर रहे थे। उस समय मैं उनसे लड़ने गया तो मैं जल गया। यह कोई विशेष बात नहीं है।

श्रीकृष्ण—रामावतारमें भी तो तू हार गया था !

कामदेव—आपने उस अवतारमें मर्यादाका अतिशय पालन करके मुझे हराया था। उस अवतारमें आप एकपत्नी-व्रतका पालन करते थे सो मैं हार गया था।

जीव यदि मर्यादाका पालन करे तो कामको साधारण जीव भी मार सकता है।

मर्यादापुरुषोत्तम राम किसी पराई स्त्रीकी ओर कभी दृष्टि तक नहीं करते थे। वे हमेशा धनुषबाणसे सज्जित रहते थे। फिर चाहे वे दण्डकारण्यमें हों, चाहे सीताजीके पास हों, चाहे सुवर्ण-सिंहासन पर। धनुष ज्ञानका स्वरूप है और बाण विवेकका। ज्ञान और विवेकसे हमेशा सज्जित रहना, अन्यथा काम-रावण सिरपर चढ़ जाएगा।

श्रीकृष्ण—तो अब तेरी इच्छा क्या है ?

कामदेव—आप इस कृष्णावतारमें तो किसी भी मर्यादाका पालन करते नहीं हैं और वृन्दावनकी युवतियोंके साथ विहार किया करते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप पर तीर चलाऊँ। यदि आप निर्विकारी रहेंगे तो विजय आपकी रहेगी और कामाधीन होंगे तो मेरी। आप निर्विकारी रहेंगे तो आपको ईश्वर मानूंगा और कामाधीन हो गए तो मैं ईश्वर बन जाऊँगा।

कृष्णावतारमें श्रीकृष्ण पुष्टिपुरुषोत्तम हैं। भगवान्ने रामावतारमें शरीरसे तो क्या मनसे भी किसीका स्पर्श नहीं किया था। मानसिक स्पर्श भी वे नहीं करते थे।

कामदेवने श्रीकृष्णसे कहा—मर्यादाका पालन तो साधारण जीवके लिए है, ईश्वरके लिए नहीं। शरद्पूर्णिमाकी रात्रिमें आप युवतियोंके साथ विहार कीजिएगा। उस समय मैं बाण चलाऊँगा। जो जीतेगा वह ईश्वर कहलाएगा।

कामने तो सोचा था कि कृष्णको हराना बड़ा आसान है क्योंकि वे सारा दिन गोपियोंके साथ मुक्त सहचार करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण—तेरी यही इच्छा है तो वैसा ही होगा।

रासलीलाके मङ्गलाचरणमें श्रीधर स्वामीने कहा—ब्रह्मादि देवोंका पराभव हुआ तो कामदेवको गर्व हुआ और वह भगवान्से युद्ध करने आया। भगवान्ने उसको हरा दिया। यह रासलीला कामके पराभवके हेतु ही है। श्रीकृष्ण विहार तो गोपियोंके साथ ही कर रहे थे किंतु उनका मन तो निर्विकारी ही था।

वनमें किसी वृक्षके नीचे एकांतमें समाधिस्थ होना, संयमका पालन करना, कामको हराना कोई विशिष्ट बात नहीं है किंतु श्रीकृष्णने तो अनगिनत सुन्दरियोंके साथ रहकर कामका पराभव किया। कामने धनुष-बाण फेंक दिए और श्रीकृष्णकी शरण ली। इसीसे श्रीकृष्णका एक नाम मदनमोहन है। श्रीकृष्ण तो योग योगेश्वर हैं।

कामने प्रायः सभीको हरा दिया था सो उसका गर्विष्ठ होना साहजिक था। रासलीलामें भगवान्ने उसके गर्वका भी नाश कर दिया।

देवी भागवत्में व्यासजी कहते हैं कि एक बार वे भी कामाधीन हुए थे।

पराशरने ६०,००० वर्ष तक तपश्चर्या की। वे एक बार यमुना पार कर रहे थे, तब नाव खेती हुई मल्लाहकन्या मत्स्यगंधाका सौंदर्य देखकर वे मोहित हो गए। उन्होंने उस कन्याका हाथ थामा। उस कन्याने कहा, कहाँ आप जैसे पवित्र ब्राह्मण और कहाँ मैं शूद्र मल्लाहकन्या? किंतु काम कभी जाति देखता भी है? ऋषिने कामेच्छा व्यक्त की। मत्स्यगंधाने कहा, यह दिवसका समय है सो हमें सब लोग देख लेंगे। दिवसमें ऐसा कर्म निषिद्ध है। तो पराशरने अपने तपोबलसे अन्धकारका बादल रचके सूर्यको आवृत्त करके चारों ओर अंधकार फैला दिया।

पराशर ऋषि सूर्यको तो ढँक सकते थे किंतु अपने कामको न रोक सके।

कामको जीतना बड़ा दुष्कर कार्य है। जो कामके अधीन होकर उसकी मार खाता है, वह साधारण जीव है। जो कामको मारकर उसको स्व-अधीन करता है, वह ईश्वर है।

इस रासलीलाका चिंतन करनेसे कामवासना नष्ट होती है। इस लीलामें जीव और ईश्वरके मिलनका निरूपण है। यह मिलन उच्च कक्षाका है।

प्रेमका प्रारम्भ द्वैतसे होता है और अन्त अद्वैतसे।

श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं—रासलीला तो भागवतका फल है। जीव और ईश्वरका मिलन ही वह फल है।

भागवतका उद्देश्य है ईश्वरका जीवन दिखाना तथा उनकी प्राप्ति कराना।

रासलीलामें शुकदेवजीने किसी भी गोपीका नाम न बताकर काश्चित्, अन्या, अपरा आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। इसी कारणसे तो श्रीधर स्वामी कहते हैं—जीवमात्रको प्रभुका आवाहन है। वे सभीको वंशी बजाकर पुकारते हैं, बुलाते हैं। वे ही सबके सच्चे स्वामी हैं।

श्रीधर स्वामी कहते हैं—रासलीलाके पाँच अध्याय पंचप्राणोंके सूचक प्रतीक हैं। पंचप्राणोंका ईश्वरके साथ रमण ही रास है।

रासपंचाध्यायी कामविजयके लिए है। जो शस्त्रसे घायल नहीं हो पाता, वैसा योद्धा भी कामके पुष्प-बाणसे घायल हो जाता है। जो कामको मार सकता है, वह कालको भी मार सकता है।

कामविजयके हेतु बहुतसे महात्मा केवल चावल और दूधका आहार करके रात्रिके दूसरे प्रहरमें रासलीलाका पाठ और चिंतन करते हैं। वे मन-ही-मन कल्पना करते हैं कि वे वृन्दावनमें हैं। रासमण्डलीके मध्यमें राधाकृष्ण हैं। कृष्णने एक हाथमें बाँसुरी पकड़ी है और दूसरा हाथ राधाजीके कन्धेपर रखा हुआ है। एक-एक राधाके साथ एक-एक कृष्ण है। इस रासलीलाके चिंतनसे कामवासना नष्ट होगी।

काम विशेषतः रात्रिके दूसरे प्रहरमें अधिक सताता है। सो उस समय स्नानादि करके पवित्र होकर रासलीलाका चिंतन करोगे तो काम नहीं सताएगा।

रासलीला अनुकरणीय नहीं, चिंतनीय है। उसका चिंतन कामनाशी है।

वेणुगीतकी बाँसुरी तो पशु, पंछी, नदी सबको सुनाई देती है किंतु रासलीलाकी बाँसुरी तो ईश्वरमिलनातुर अधिकारी जीव-गोपीको ही सुनाई देती है।

निशम्य गीतं वदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णग्रहीतमानसः।

जिनका चित्त श्रीकृष्णने हर लिया था वे व्रजनारियाँ बाँसुरी सुनकर आतुरतापूर्वक श्रीकृष्णसे मिलने दौड़ चलीं। गोपियाँ अपने सांसारिक कार्योंको एक ओर छोड़कर भगवान्से मिलने दौड़ती हैं। वे तो अपनी सखियोंको भी बुलानेके लिए रुकती नहीं है।

जिस गोपीका नाम लेकर बाँसुरी बजायी जाय, वह गोपी सुन लेती है।

गोपियोंकी आतुरता तो देखो—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।

जो गोपियाँ गायोंको दुह रही थीं, वे भी बाँसुरीकी तान सुनते ही काम छोड़कर उत्सुकतासे दौड़ चलीं।

उनकी तन्मयता तो देखो—

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।

कुछ गोपियाँ बेढंगे वस्त्रालङ्कार पहनकर कृष्णसे मिलने निकल पड़ीं। जब देहाध्यास छूट जाता है, तब ऐसी ही दशा होती है।

शृङ्गार करती हुई एक गोपीने कन्हैयाकी बाँसुरी सुनी तो व्याकुलताके कारण चंद्रहार गलेके बदले हाथमें पहिन लिया।

घरकी लिपाई-पुताई करती हुई एक गोपी गोबरसे गन्दे हुए हाथों-सहित दौड़ पड़ी।

रासलीलामें अगर लौकिक कामकी बात होती तो उसमें गोपियाँ कुछ और ही होतीं। इस प्रकार दौड़ निकलनेके बदले वे दो घण्टों तक शृङ्गार करके, दर्पणमें अपना निखार देखकर, बनठनकर निकलतीं, किंतु ऐसा नहीं है। शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्याः।

कुछ गोपियाँ घर लीप रही थीं। वे गोबरसे गंदे हाथोंको धोए बिना ही कृष्णसे मिलने दौड़ीं। यही बताता है कि यह लौकिक कामकी बात नहीं है।

ईश्वरसे मिलनेके लिए वैसी ही आतुरता होनी चाहिए।

रामकृष्ण परमहंस हमेशा सदृष्टांत बातें करते थे।

एक शिष्यने अपने गुरुसे पूछा—ईश्वरप्राप्तिके लिए जिज्ञासा और व्याकुलता कैसी होनी चाहिए?

गुरुजी—यह विषय वर्णनका नहीं, शब्दातीत अनुभवका है। रामबाण जिसे लगा हो, वही उसकी वेदना जान सकता है। किसी प्रसङ्गके समय में सब कुछ समझाऊँगा।

एक बार वे दोनों स्नान करने गए। ज्यों ही शिष्यने जलमें गोता लगाया कि गुरुने उसका मस्तक भी बलसे पानीमें धँसा दिया। सांस लेनेमें तकलीफ हो गई तो वह शिष्य छटपटाने लगा, बाहर निकलनेके लिए व्याकुल हो गया। गुरुने हाथ उठा लिया तो शिष्यने पानीसे ऊपर उठकर चैनकी सांस ली। गुरुने पूछा—कैसा रहा अनुभव ? शिष्यने कहा—अरे, मेरे तो प्राण ही निकले जा रहे थे। लगता था प्राणवायुके बिना मैं मरने ही जा रहा था।

गुरुजी—हां, तो ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए भी वैसी ही छटपटाहट, तड़प, व्याकुलता, आतुरताकी आवश्यकता है। ऐसा होगा, तभी ईश्वर मिलेंगे।

मीराबाईने कहा है—

तुम देख्या बिन कल न परत है, तड़प-तड़प जिव जासी।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देहभान भूली हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होनेपर प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है।

गोपियोंको रिश्तेदारोंने रोका किंतु वे कब रुकनेवाली थीं ? उनका मन मनमोहनने मोह जो लिया था।

सूरदास कहते हैं—

मोहन मन मोहि लियो ललित बेनु बजाई री।
मुरली धुनि श्रवन सुनत बिवस भई माई री॥
लोक लाज, कुलकी मरजादा बिसराई री।
घर - घर उपहास सुनत नेकु ना लजाई री॥
जप तप वेद अरु पुरान, कछु ना सुहाई री।
सूरदास प्रभुकी लीला निगम नेति गाई री॥

गोपीके हृदयका यह शुद्ध भाव है।

गोभिः इन्द्रियैः भक्तिरसम् पिबति इति गोपी।

इन्द्रियों द्वारा जो भक्तिरसका पान करे, वही गोपी है।

घरमें रहकर भक्ति करना आसान नहीं है। अपनी पत्नीके प्रति भी मातृभाव रखा जा सके, तभी घरमें रहकर भक्ति की जा सकती है। भक्तिकी तन्मयतामें स्त्री-पुरुषका देहभान मिटना ही चाहिए।

दर्शनके समय अपना स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान भूल जाय, वही गोपी है। जबतक देहका भान है, मनमें-से काम निकलता ही नहीं है।

ये गोपियाँ कौन थीं ? जब ऋषि-मुनि हजारों वर्ष तक तपश्चर्या और ब्रह्मचिंतन करते रहनेपर भी मनमें बसे कामको मार न सके तो उस कामको श्रीकृष्णार्पण करनेकी इच्छासे गोपियोंका अवतार लेकर गोकुलमें आ बसे। इनमें साधनसिद्धा, ऋषिरूपा, श्रुतिरूपा, स्वयं-सिद्धा, अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा आदि कई प्रकारकी गोपियाँ थीं। सांसारिक भोगोंका उपभोग करनेके पहिले ही जिसे वैराग्य आ जाता है, वह अनन्यपूर्वा गोपी है।

केवल वृक्षोंके पत्ते खानेवाले तपस्वी ऋषिको भी काम सताता है तो जीभके लाड़ करनेमें ही लगे रहने वाले हम जैसे साधारण मानवकी तो चर्चा ही क्या है ?

तपश्चर्या और योगसाधना करनेवाले ऋषि थक-हार कर, अपना काम कृष्णार्पण करनेके लिए गोपी बनकर आए। ईश्वरको काम अर्पण करके निष्कामी बनो। पराशर मुनि सूर्यको वशमें कर सके किंतु अपने कामको नहीं।

मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु काम ही है। इसमें-से अन्य बहुतसे दुर्गुण उत्पन्न होते हैं।

कामात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधात् भवति संमोहः ॥

और अन्तमें होता है बुद्धिनाश। यदि काम ईश्वरको अर्पित किया जाय तो वह कभी अंकुरित नहीं होगा।

संसारके सभी सांसारिक सुखोंका मनसे त्याग करके, ईश्वरको मिलनेके लिए, गोपीकी भाँति, निकल पड़नेवालेको धन्य है। इसी कारणसे तो भगवान् गोपियोंका स्वागत करते हैं— महाभाग्यशाली नारियो, आओ !

स्वागतं वो महाभागाः।

भागवतकार गोपियोंको महाभाग्यशाली कहते हैं। नारदजी भी अपने भक्तिसूत्रमें गोपियोंका दृष्टान्त देते हैं—

यथा व्रजगोपिकानाम्।

यही बताता है कि ये गोपियाँ कोई सामान्य स्त्रियाँ नहीं, भगवान्‌की भक्त थीं।

भगवान्‌ने प्रत्येक गोपीको महाभाग्यशाली कहा है। 'महाभागाः।' मोटर-विमानमें घूमनेवाला, बँगलोंमें रहनेवाला भाग्यशाली नहीं है। जिसके सिरपर कालका साया हो, वह भाग्यशाली कैसे माना जाएगा ?

भाग्यशाली तो वह है जो सांसारिक सुखोंको और कालके डरको छोड़ कर भगवान्‌की ओर दौड़ पड़ता है। ईश्वरसे मिलनेके लिए अतिशय व्याकुल हुआ हो, वह जीव महाभाग्यशाली है। इसी कारणसे वंशीनाद, अधिकारी गोपी-जीवको सुनाई दिया था। वंशीका मधुर नाद तो सभीने सुना था।

सांसारिक विषयोंके उपभोगसे कभी तृप्ति नहीं होती। ईश्वरके मिलनेके लिए दृढ़ निश्चय करो। संसारसुख तो सबसे बड़ा महादुःख है और इस बातको सच मान कर जिसने संसारसुखोंका त्याग किया हो उसे भगवान् अपनाते हैं।

प्रभुप्रेममें जो पागल बना है, वह भाग्यशाली है। परमात्मा ऐसे जीवका ही स्वागत करते हैं।

श्रीकृष्णने गोपियोंसे पूछा—ऐसे दौड़ी-दौड़ी क्यों आई हो तुम सब ? क्या व्रज पर कोई संकट आ गया है ? वहाँ सब कुशल-मङ्गल तो है न ? तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए मैं क्या करूँ ? रात्रिके समय ऐसे घोर वनमें स्त्रीका रहना अच्छा नहीं है । क्या वृन्दावनकी शोभा निहारने आई हो ? क्या इस सुन्दर रात्रिका सौंदर्य निहारने आई हो ? शोभा निहारकर घर शीघ्र ही लौट पड़ो । वहाँ तुम्हारे पति, सन्तान आदि प्रतीक्षा करते होंगे । अपने पतिकी सेवा और सन्तानका लालन-पालन करो ।

अन्तर्मुख दृष्टि करके जीव जब भगवान्‌के पास पहुँचता है तो वे उससे पूछते हैं—मेरे पास क्यों आया है । संसारमें रत रह, वहाँ तुम्हें सुख मिलेगा । मैं सुख नहीं, केवल आनन्द ही दे सकता हूँ । तुम सब वापस जाओ । वहाँ सब तुम्हारी प्रतीक्षा करते होंगे ।

एक अर्थ है, घर जाओ । दूसरा अर्थ ऐसा भी निकल सकता है कि जो जीव भगवान्‌के स्वरूपसे जा मिलता है, वह कभी घर लौट नहीं सकता । जीवको परमात्मा सहसा नहीं मिलते । जीवको भ्रांति होती है कि भगवान् उसे संसारमें लौटनेको कह रहे हैं ।

वैसे तो भगवान् चाहते नहीं हैं कि गोपी—शुद्ध जीव संसारमें वापस जाय किंतु वे उसके प्रेमकी परिपूर्णताकी कसौटी करना चाहते हैं । सो वे कह रहे हैं कि सुख संसारमें है ।

भगवान् तो आदर्श बतलाते हैं कि पतिकी सेवा करना पत्नीका धर्म है । पतिमें ईश्वर-भाव न रखनेवाली नारीके इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं ।

कलियुगमें स्त्रियोंको और शूद्रोंको मुक्ति जल्दी मिलती है । शूद्र आचारविचारका पालन न करे और केवल राम-नाम लेता रहे तो भी चलेगा किंतु ब्राह्मणको तो आचार-विचारका पालन करना ही पड़ेगा । अन्यथा उसका पतन होगा । यदि स्त्री घरका काम और कुटुम्बके सभी लोगोंकी सेवा करते-करते रामनाम लेती रहे तो मन्दिरमें जानेकी जरूरत नहीं रहेगी । जो मुक्ति योगियोंको मिलती है, वही मुक्ति उन स्त्रियोंको अनायास मिलेगी । पतिव्रता नारी तो अनसूयाकी भाँति भगवान्‌को भी बालक बना सकती है ।

प्रभुने अपने सम्मुख आई हुई गोपियोंको धर्मोपदेश दिया । स्त्रीको बाहर जानेकी जरूरत नहीं है । बाहर भटकनेवाली स्त्री स्वेच्छाचारिणी होकर पतित होगी ।

जो स्त्री घर ही में रहकर भलीभाँति गृहिणीधर्मका पालन करती है, उसे पवित्र रहनेकी अनुकूलता रहती है । अपने पति, पतिके सम्बन्धी तथा अपने पुत्र-पुत्रियोंमें ईश्वरकी भावना रखकर उनकी सेवामें अपना तन-मन-धन न्योछावर कर दे और परमात्माका स्मरण करती रहे तो मन्दिरमें न जाने पर भी अनायास ही उसे वही सद्गति प्राप्त होती है, जो योगियों और संन्यासियोंको मिलती है ।

पतिमें और पुत्र-पुत्रियोंमें ईश्वरका अंश देखो और उनकी जी-जानसे सेवा करो । उनके साथ-साथ रहकर ही ईश्वरका चिंतन करो । पतिमें ही ईश्वरकी भावना करके, वियोगावस्थाका अनुभव करके स्मरण और ध्यानसे चित्त एकाग्र करो ।

तुम सब अपने-अपने घर जाओ । माता अनसूयाने पतिसेवाके बलसे ही तो ब्रह्मा, विष्णु, महेशको बालक बना दिया था । पतिव्रता-धर्म सबसे बड़ा है ।

एक पतिव्रता नारी अपने पतिकी जी-जानसे सेवा करती थी। एक दिवस उसके पति काम-धन्धेसे निवृत्त होकर बड़ी रात बीते आये। बहुत थक गये थे तो पत्नीने अपनी गोदमें उनका सिर रखकर उन्हें सुला दिया। पति तुरन्त ही गहरी नींदमें डूब गए। एक खाट पर इसका दो सालका लड़का सोया हुआ था, खाटके नीचे अंगारे रखे हुए थे कि जिससे लड़केको सर्दी न लगे। लड़का नींदमें करवट बदलने लगा। इधर माता सोचने लगी कि कहीं लड़का अङ्गारों पर जा पड़ा तो क्या होगा। मैं उसे उठा लूं? किंतु वैसा करनेसे तो नींदमें बाधा होगी। मैं पतिको कैसे तकलीफ दे सकती हूँ? मैं नहीं उठाऊँगी बेटेको। पति-सेवा करते हुए वह ईश्वर-स्मरण करने लगी। बेटा अग्निमें गिर पड़ा किंतु वह सच्ची पतिव्रता नारीका पुत्र था। अग्नि उसका कुछ न कर सकी। अग्नि तो चन्दन-सी शीतल हो गयी। अग्निकी ज्वाला सारे विश्वको जला सकती हैं किंतु पतिव्रता नारी अग्निको भी जला सकती है। महापतिव्रता नारीसे तो अग्नि भी डरती है।

श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहते हैं—अपने घर जाओ। उस महान् पतिव्रत धर्मको छोड़कर यहाँ क्यों आई हो? अपने पति और सन्तानको भगवान्‌का अंश मानकर उनकी प्राणपणसे सेवा करोगी तो घरमें रहने पर भी तुम्हारा कल्याण ही होगा।

कृष्ण कहते हैं—मेरे संयोगकी अपेक्षा मेरे वियोगमें तुम्हें कई गुना अधिक सुख मिलेगा। वियोगावस्थामें मेरा भली भाँति ध्यान, स्मरण होता रहेगा और प्रेम भी अधिक पुष्ट होगा। संयोगावस्थामें दोष-दर्शन शुरू हो जाता है, वियोगावस्थामें गुणोंका ही स्मरण, चिंतन होता रहता है। तुम्हारा प्रेम शुद्ध होगा तो तुम मेरे स्वरूपको प्राप्त कर सकोगी। अपने पति और संतानोंको छोड़कर यहाँ दौड़ आना ठीक नहीं है, उचित नहीं है।

ध्यानकी आरम्भावस्थामें साधकका चित्त चंचल होनेके कारण उसे चारों ओर अँधेरेका ही दर्शन होता है, ईश्वर-रूपी प्रकाशका नहीं। यदि यह निराश न होकर प्रयत्न करता रहे तो अन्धकार चीरकर प्रकाश अवश्य आएगा।

भगवान्‌ने गोपियोंको घर लौटनेकी आज्ञा दी तो उन्हें दुःख हुआ। आज भगवान् ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हैं? उन्होंने भगवान्‌से पूछा कि आज आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। भगवान्‌ने उनसे कहा—देहका स्वामी पति है। इस शरीरका कोई पिता होगा, पति होगा किंतु आत्माका पिता-पति कोई नहीं होता। आत्माका धर्म है प्रभुसे मिलन। इस प्रकार भगवान्‌ने उनको देहधर्मका उपदेश किया।

तो गोपियाँ प्रभुको आत्मधर्मका उपदेश देने लगीं। आप आज ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हैं? आप ही ने तो गीतामें कहा है कि जो भी भावसे आपकी सेवा-पूजा करता है, उसे आप मिलेंगे। तो फिर अब हमें घर क्यों लौटाया जा रहा है? आप तो पतितपावन और दयासागर हैं। ऐसी श्रद्धावश हम आपके चरणोंमें आई थीं। आप ऐसे कठोर क्यों हो गए हैं? हमने संसारके सभी विषयोंका मनसे त्याग करके आपके चरणोंकी शरण लेनेका अटल निश्चय किया है।

सभी विषयोंका मनसे भी त्याग करके भगवान्‌के चरणमें जानेवाला जीव ही गोपी है।

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तवपादमूलम्।

'त्यक्त्वा' शब्द विषयोंका शारीरिक त्याग दरसाता है और 'सन्त्यज्य' शब्द विषयोंका मानसिक त्याग, असाधारण त्याग दरसाता है।

हम सभी विषयोंका शारीरिक और मानसिक त्याग करके आपके चरणमें आई हैं। आपके लिए हमने सर्वस्वका त्याग किया है। सांसारिक विषयोंका विवेकपूर्वक त्याग करके, केवल आपसे मिलनेके लिए ही हम आई हैं। हमारी उपेक्षा न करें। हमारे मनमें आपके सिवाय और कुछ भी शेष नहीं है।

जिसके मनमें ईश्वरके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, वही गोपी है। इस संसारके विषयोंका जब तक मनसे त्याग न किया जाय, भक्ति नहीं हो सकती।

सच्चा त्याग कबीरका, मनसे दिया उतार।

शारीरिक त्याग तो जीव तुरन्त कर सकता है किंतु मानसिक त्याग करना बड़ा कठिन है। मानसिक त्याग न करे और केवल शारीरिक त्याग ही करे तो दम्भी हो जाएगा। मानसिक त्याग ही मुख्य है। तन चाहे जहाँ हो किंतु मनको ईश्वरसे दूर कभी न होने देना।

वृत्त-अवृत्त नामके दो साधुओंका दृष्टान्त देखें। वे दोनों यात्रा कर रहे थे। प्रयागराजकी दिशामें जा रहे थे। जन्माष्टमीके दिन वेणीमाधवका दर्शन करना चाहते थे। चलते-चलते रात हो गई। थक भी गए थे। एक वेश्यागृह देखा तो अवृत्तने कहा, जोरोंकी बरसात हो रही है, अँधेरा भी है, रास्ता दीखता नहीं है और मैं थक भी गया हूँ सो मैं तो आज यहीं रहूँगा। तुझे आगे जाना है तो जा।

वृत्तने माना कि इसका मन शायद बिगड़ गया है। वह बोला कि मैं यहाँ नहीं रुक सकता। वह चलता रहा और प्रयागराजके मन्दिरमें ठहरा।

अवृत्त वेश्यागृहमें ठहरा तो था किंतु अब उसे पछतावा होने लगा। वह अपने आपको कोसने लगा। धिक्कार है मुझे। मैं कैसा शूद्र, हतभाग्य हूँ कि जन्माष्टमीके दिन कृष्णके मंदिर-में ठहरनेके बदले यहाँ पड़ा रहा। मेरा मित्र वृत्त कितना भाग्यशाली है कि इस समय वह प्रभुके मुखारविंदका दर्शन कर रहा होगा। मन्दिरमें उत्सव हो रहा होगा, वैष्णव लोग प्रभुका दर्शन कर रहे होंगे, वहाँ भजन-कीर्त्तन-आरती-वंदन हो रहा होगा। कितना भव्य और पवित्र होगा वह दृश्य! इस प्रकार अवृत्त वेश्यागृहमें था किंतु उसका मन तो वेणीमाधवके पास था। बड़ी तन्मयतासे वह मन-ही-मन जन्माष्टमीका पवित्र प्रसङ्ग निहार रहा था।

उधर मन्दिरमें बैठा हुआ वृत्त भी पछता रहा था। क्यों? वह सोच रहा था कि वह इतने सारे कष्टोंको झेलकर यहाँ क्यों झख मारनेके लिए आया। वहाँ मेरा मित्र सौंदर्यवती वेश्याके साथ क्रीड़ा कर रहा होगा और मैं यहाँ भीड़में पिसा जा रहा हूँ। कितना भाग्यशाली है मेरा मित्र। उसका जीव उत्सवमें लगता ही नहीं था। उसे उस वेश्याके सौंदर्यकी ही झाँकी हो रही थी। उसका शरीर तो था माधवके मन्दिरमें किंतु मन वेश्याके पास।

अवृत्तको मोक्ष मिला और वृत्तको नरक। अवृत्तको लेनेके लिए भगवान्ने विमान भेजा क्योंकि तनसे चाहे वह वेश्यागृहमें था किंतु मनसे तो वेणीमाधवके पास था। वृत्त था तो मंदिरमें किंतु वासना, सुखकी सोच रहा था सो उसे नरकमें जाना पड़ा।

केवल देहशुद्धि नहीं, मनःशुद्धि भी आवश्यक है। केवल देहशुद्धि तो दम्भ ही है।

गोपियाँ भगवान्से कहती हैं—पतिके पास तो वह स्त्री जाएगी, जिसके मनमें विकार-वासना अभी शेष है। विकार-वासना त्यागेगी तभी प्रभुके निकट ही आएगी। हम निर्विकारी हैं सो आपके पास आई हैं।

भगवान्—क्या प्रमाण है तुम्हारी निर्विकारिताका ?

गोपियाँ—आप ही तो हैं प्रमाण, क्योंकि हमारे हृदयमें आप ही तो विराज रहे हैं।

को देवो यः मनः साक्षी।

जो मनको साक्षीरूप निहारता है, वह ईश्वर है। वे मनके भाव-कुभाव तो परख लेता है। यदि हममें कोई विकार है भी तो वह आपसे छिपा तो होगा ही नहीं। आप 'किल बंधुरात्मा' हैं। हम निर्विकारी हैं। अब तो एक ही इच्छा, एक ही वासना बाकी है आपसे मिलनेकी।

ईश्वर परिपूर्ण वैराग्य, प्रेम-भक्ति और ज्ञान माँगते हैं। उनको कुछ भी ओछा-अधूरा स्वीकार्य नहीं है।

पतिसेवाकी जो आज्ञा आपने हमें दी है, वह शिरोधार्य है। हमारे शरीरके पति घरमें हैं किंतु आत्माके पति तो आप हैं। आप पतिमें ईश्वरकी भावना रखकर उसकी सेवा करनेको कहते हैं किंतु पतिमें ईश्वरकी भावना तो उस स्त्रीके लिए आवश्यक है जो आपको देख नहीं पाती हो। हमने आपके प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं सो अन्य किसी व्यक्तिमें ईश्वरका आरोप करनेका प्रश्न ही नहीं उठता है।

भावना, कल्पना, आरोपण तो वियोगावस्थामें करना पड़ता है, संयोगावस्थामें नहीं। परमात्माके या किसी व्यक्तिके प्रत्यक्ष दर्शनका अवसर न मिलता हो तभी उससे सम्बन्धित मूर्ति, छवि या अन्य किसी वस्तुमें उसका दर्शन हम करते रहते हैं।

हमने तो आपके प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं, तो फिर आपको छोड़कर अन्यमें भावना क्यों करें ? और पति कौन है ? पाति इति पतिः। मत्युके भयसे जो रक्षा करे वही पति है। मृत्युके जालसे मुक्त कराए, वही पति है। ऐसे तो एकमात्र आप ही हैं। जीवमात्रके सच्चे पति तो ईश्वर ही हैं। आप सबके अनन्य स्वामी हैं। अतः हमने सोच-समझकर ही आपके चरणोंका आश्रय लिया है।

नाथ ! एक प्रश्न पूछें ? प्रभुने अनुमति दी।

गोपियाँ—पतिव्रता नारीका जो धर्म आपने बतलाया, उसका फल क्या है ?

कृष्ण—मन शुद्ध होता है।

गोपियाँ—मन शुद्ध होनेपर क्या मिलता है ?

कृष्ण—उस शुद्धमना जीवको परमात्मा मिलते हैं।

धर्मका पालन चित्त-शुद्धिके लिए है और चित्त-शुद्धिका फल है प्रभु-मिलन।

गोपियाँ—आप तो हमको मिल ही गए हैं तो फिर हम उस चक्करमें क्यों फँसे ? आप ही हमारे सच्चे पति हैं। हमारा त्याग न कीजिए।

कृष्ण—मैंने पतिव्रता नारीका दृष्टान्त सुनाया। तुम भी घरमें रह कर, कुटुंबीजनोंकी सेवा करते-करते वही सिद्धि प्राप्त कर सकती हो।

पुरुषकी अपेक्षा नारीके लिए सिद्धिप्राप्ति अधिक सुलभ है। घरमें ही रह कर, घरके प्रत्येक जीवको ईश्वररूप मानकर अपना तन-मन-धन न्योछावर कर देना चाहिए। शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं कि पतिके धनार्जनके लिए किए गए पापमें स्त्रीका कोई भाग नहीं है किंतु पतिके पुण्यमें-से उसे आधा हिस्सा मिल जाता है किंतु नारीको पतिके पुण्यमें-से हिस्सा कब मिलता है ? यदि स्त्री अपने पति और सन्तानोंको परमात्माका ही स्वरूप मानकर उनकी सेवा करे तो उसे पतिके पुण्यका आधा हिस्सा प्राप्त होता है।

स्त्री-धर्म सर्वश्रेष्ठ है। वह अपने पति और सन्तानोंकी सेवा करे, सन्तानोंको धर्मकी शिक्षा दे, यही उसकी सबसे बड़ी सेवा है, कथा-आख्यानोंमें बैठे रहना ही नहीं। पति-सेवासे चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धिसे परमात्माकी प्राप्ति।

गोपियाँ—नाथ, ऐसा मत मान लें कि आप ही कथा कर सकते हैं। हम भी कर सकती हैं। विगत जन्मोंमें हमने वह सब कुछ किया है। कथा-आख्यान कीर्त्तन-भजन सुनते-सुनते हम थक-हार गयीं फिर भी आपकी एक झाँकी तक न मिली। सो हमने ऋषियोंका चोला उतार गोपियोंका रूप धारण किया है। आपने तो बहुत-कुछ सुनाया। अब आप हमारी भी तो सुनिए।

एक पतिव्रता नारीके लिए अपने पतिका वियोग असह्य था। वह पतिसे हमेशा साथ रहनेका ही आग्रह किया करती थी। संयोगवश पतिको परदेश जानेका अवसर आया। वह भी पतिके साथ जानेके लिए तैयार हो गयी। मुझे छोड़कर न जाओ। नाथ, मुझे अपने सङ्ग ही ले चलिए।

पति उसे समझाने लगा—देवी, मैं कामकाजके लिए बाहर जा रहा हूँ, वहाँ तुझे कैसे ले जाऊँ? मेरे वियोगमें जलना न पड़े, ऐसा एक उपाय है। घरमें मेरा वह जो चित्र है न, उसकी दृढ़ भावसे सेवा-पूजा करती रहना और मानना कि मैं घरमें ही हूँ। जब भी मेरी याद सताने लगे, उस चित्रका दर्शन-पूजन करना। वह पतिव्रता नारी बड़ी तन्मयतासे पतिकी छबिकी पूजा करने लगी। दो महीने बीत गए। एक दिन पति लौट आये। उस समय वह नारी पतिके चित्रकी सेवामें लीन थी।

अब प्रभु, हमारा प्रश्न यह है कि पतिकी आवाज सुनने पर भी वह स्त्री चित्रकी सेवा करती रहेगी या पतिके स्वागतके लिए दौड़ती हुई द्वार पर पहुँचेगी।

श्रीकृष्ण—अरे, यह भी कोई पूछनेकी बात है? वह दौड़ती हुई द्वारपर ही पहुँचेगी।

गोपियाँ—क्यों?

श्रीकृष्ण—चित्र तो कागजका एक टुकड़ा ही है जब कि द्वारपर तो साक्षात् पतिदेव पधारे हुए हैं।

गोपियाँ—नाथ, हम जीत गयीं। आपने बराबर न्याय किया। हमारा भी यही कहना है कि जब परमात्मा मिल गए हैं तो फिर लौकिक पतिसे हमें क्या लेना-देना है। लौकिक पति तो उस चित्रमें आलेखित पति-सा ही तो है। प्रत्येक जीवके प्रति निःस्वार्थतासे समान प्रेम करने वाले सच्चे पति जब हमको मिल गए हैं तो उस लौकिक पतिको हम क्यों अपनायें? लौकिक व्यक्तिके प्रेममें तो हमेशा कपट और स्वार्थ ही होता है।

किंतु यह बात आजकलकी साधारण नारीके लिए अनुसरणीय नहीं है। जब तक परमात्मासे साक्षात्कार न हो पाये तब तक तो पतिमें ही परमेश्वरकी भावना करनी होगी। परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन होनेके बाद पतिमें प्रभुकी भावना न की

जाय तो कोई विशेष बाधा नहीं है। भावना वियोगमें ही करनी पड़ती है, संयोगमें नहीं।

गोपियाँ– नाथ, हमने स्त्रीत्व-सहित सर्वस्वका त्याग किया है और आपकी शरण ली है। जो न तो स्त्री है और न पुरुष, ऐसे शुद्ध चेतन आत्माका विशेष कौन-सा धर्म हो सकता है? उसका न तो कोई नारी-धर्म होता है और न कोई पुरुष-धर्म।

नाथ, जो जीव स्त्री हो, उसके लिए नारीधर्मका पालन आवश्यक है, हम तो शुद्ध चेतन आत्मा हैं। आत्माका धर्म है प्रभुसे मिलन। जबतक प्रभु न मिल पाएँ, तबतक अपने-अपने धर्म-का पालन करना चाहिए। धर्मके पालनसे मन शुद्ध होता है। धर्मपालनसे पाप जल जाते हैं। पाप जल जाने पर मन शुद्ध होता है और मन शुद्ध होने पर परमात्मासे साक्षात्कार हो पाता है।

आप तो प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। आप तो हमको मिले हुए ही हैं। हमें अपना सच्चा पति प्राप्त हो गया है। अब हमारे लिए स्त्रीधर्म-पालनको कोई आवश्यकता ही नहीं है। अब हमें अन्तरमें आपकी भावना करनी नहीं है। जबतक आपके दर्शन नहीं हुए थे, हम अन्यमें आपकी भावना करती रहती थीं। अब हम आपको छोड़कर कहाँ जाएँ, क्यों जाएँ? अब आपको छोड़ कर जड़ धर्मका सहारा क्यों ढूंढ़ें?

धर्म तो साधन है। साध्य तो आप स्वयं ही हैं। हमने आज तक स्वधर्मका पालन किया, तभी तो आपसे साक्षात्कार हो पाया है। हम तो आपके चरणोंकी दासी हैं। नाथ, अब निष्ठुर होकर हमारा त्याग न करें। हमें अपना लीजिए।

भगवान कहते हैं—यदि मुझे ही तुम अपना सच्चा पति मानती हो तो मेरा कहा तुम्हें मानना होगा। जाओ, घर जाकर पति-सन्तानकी सेवा करो। यदि लौकिक पति स्वार्थी हो, फिर भी मेरी आज्ञा है कि उसीकी सेवा करो।

गोपियाँ—हजारों जन्मों तक यह सब कुछ झेलकर हम थक गई हैं। बादमें जब आप ईश्वर मिले हैं तो हम वापस क्यों लौटें? फिर भी आपकी आज्ञा है सो जाना तो पड़ेगा ही किंतु अपने लौकिक पतिकी सेवा करनेके लिए मन तो चाहिए ही। अब मनकी तो आपने चोरी कर ली है। आप हमारा मन लौटा दें तो घरपर जाकर लौकिक पतिकी सेवा करेंगी। हमारा चित्त लौटा दीजिए।

जो अपना मन ईश्वरको दे देता है, वह तो ईश्वरसे तदाकार हो जाता है। ईश्वर स्वयं भी उस मनको वापस कर नहीं सकते।

श्रीकृष्ण—जिसके चित्तकी मैं चोरी करता हूँ, उसका वह चित्त तो मुझमें एकाकार हो जाता है। उसे मैं वापस नहीं कर सकता। तुम्हारे मनकी भी यही दशा है।

दूधमें मिली हुई मिसरी कभी अलग हो सकती है क्या? किसी प्रकार उसे अलग नहीं किया जा सकता।

श्रीकृष्ण—तुम्हारा मन मुझसे कब और कैसे मिल गया, वह मैं नहीं जानता हूँ। सो कैसे लौटाऊँ ?

गोपियाँ—तो फिर हम मनके बिना अपने घर कैसे लौट सकती हैं ? आप मन दे नहीं सकते हैं सो हम भी घर जा नहीं सकतीं।

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद् ।
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

हमारे पाँव आपके चरणकमलोंको छोड़कर एक कदम भी हटनेको तैयार नहीं हैं तो हम व्रज तो लौटें ही कैसे ? और यदि हम लौटें भी तो मनके बिना वहाँ हम क्या करें ?

प्रभु—मैं योगशक्तिसे तुम सबको उठाकर वहाँ पहुंचा दूं तो ?

गोपियाँ—हमारे शरीरको घर पहुंचा देंगे किंतु मन तो साथ आएगा नहीं। हम वहाँ क्या करेंगी ?

हमारा मन तुम्हींसे मिल गया है। हम भी आपके स्वरूपसे तदाकार होना चाहती हैं।

जहाँ मन होगा वहीं जीवात्मा भी होगी। मन तो ईश्वरसे ही जा मिलेगा। संसारके जड़ पदार्थोंमें मनका लय नहीं हो सकता। मन और संसार विजातीय हैं, मन और ईश्वर सजातीय। सजातीयसे तो सजातीय ही मिल पायेगा। मन जड़ नहीं, चेतन है सो वह चेतन परमात्मासे ही जा मिलेगा। मन ईश्वरमें ही स्थिर हो सकता है। इसी कारणसे तो ज्ञानी लोग अपना मन ईश्वरको देते हैं। मन किसी स्त्री या पुरुषको नहीं, केवल श्रीकृष्णको ही दिया जाय। मन जहाँ मिल जाएगा वहाँ आत्मा भी मिल जायेगी।

नाथ, हमारा मन आपसे जा मिला है। हम आपके लिये ही जी रही हैं। आपको छोड़कर जानेकी हमें इच्छा ही नहीं है।

प्रभु—मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ फिर भी आज तो अपने-अपने घर लौट जाओ।

गोपियाँ—अब तो हम कभी नहीं जा सकतीं, चाहे प्राण क्यों न चले जायँ।

अब प्रभु निरुत्तर-से हो गये। उन्होंने पूछा, क्या इच्छा है तुम्हारी ? क्या स्वागत करूँ तुम्हारा ?

गोपियाँ—नाथ, बस, केवल अपने अधरामृतका दान दीजिये कि जिससे आपका कभी वियोग ही न हो सके। हमें नित्य संयोगका दान चाहिये।

गोपियोंने अधरामृतकी माँग की।

आरंभमें ही कहा गया है कि भागवतमें समाधिभाषा प्रधान है, लौकिक नहीं।

अधरामृतका भी विशिष्ट अर्थ है।

पृथ्वीका एक नाम है धरा ।
धरति इति धरा ।
धरायाः अमृतं धरामृतं ।
धरामृतं न भवति इति अधरामृतं ।

पृथ्वीको धरा कहते हैं क्योंकि वह सभीका धारण और पोषण करती है। पृथ्वीका अमृत, धरामृत है। जो इस पृथ्वीका नहीं है, वैसा अमृत अधरामृत है। अधरामृतका अर्थ हुआ प्रेमामृत, ज्ञानामृत। जिस अमृतका कभी नाश नहीं हो पाता है, वह प्रेमामृत और ज्ञानामृत ही है ।

हे नाथ ! हे प्रभु, हमें उस ज्ञानामृतका दान करें कि जिसे पाकर ईश्वरसे-आपसे पृथकता-द्वैतका भाव ही न रहे । ऐसा ज्ञान दीजिये कि आपसे हमें कभी बिछुड़ना न पड़े ।

जब तक अ-धरामृत—प्रेमामृत-ज्ञानामृत न मिला हो तब तक हृदयमें अग्नि धधकती रहती है सो ऐसा ज्ञान दीजिये कि सभीमें हम आपका ही दर्शन करती रहें।

प्रत्येकमें ईश्वरका अस्तित्व है, ऐसा मानकर व्यवहार करोगे, तभी सारा जगत् गोकुल बन जायेगा, वैकुंठ बन जायेगा ।

परस्पर देवो भव ।

गोपियोंको सांसारिक सुखोंकी कोई अपेक्षा नहीं थी। ये तो सभी लौकिक सुखोंका त्याग करके आयीं थी । उनकी माँग लौकिक अमृत-धरामृतकी नहीं, अधरामृत—अलौकिक अमृतकी है ।

नाथ, मैं ऐसा ज्ञानामृत चाहती हूँ कि जिससे हम दोनोंका कभी वियोग न हो सके, नित्य संयोग रहे । आपसे दूर होंगी तो माया फिर सिर पर सवार हो जायेगी।

आप ऐसा ज्ञानामृत द कि आपके स्वरूपसे नित्य संयोगका ही अनुभव होता रहे। आपका वियोग ही करुणतम दुःख है और आपका संयोग चरम सुख ।

प्रभुने कहा—नित्य संयोगरूप अधरामृत देना या न देना मेरी इच्छा पर निर्भर है। ऐसा दान मैं तुम्हें देना नहीं चाहता । तुम्हें अधरामृत न दूं तो ?

सखियाँ—अधिक अकड़ मत दिखाइये । अंतिम उपाय हमारे हाथोंमें ही है । हम आपको अपने लिये नहीं, किंतु आपकी कीर्ति कलंकित न हो जाय, इसलिये मना रही हैं । आपकी कीर्तिकी वृद्धिके लिये ही हम आपसे प्रार्थना कर रही हैं । यदि हमें नित्यसंयोगरूप अधरामृत देंगे तो आपकी ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी । अन्यथा हम विरहाग्निसे शरीरको भस्मीभूत कर देंगी।

हमने सुना है कि मृत्युके अंतिम पलोंमें जिसका चिंतन किया जाय, वह उसे मिलता है । शास्त्रानुसार, अंतकालमें जिसका स्मरण करते हुए देह-त्याग किया जाय, उसीमें जीव लीन हो जाता है । हमारे मनमें अन्य कोई भी नहीं है । हम अपनी अंतिम साँस तक आपका ही स्मरण, ध्यान, चिंतन करेंगी और आपका नाम जपते

हुए प्राणत्याग करेंगी। सो आप तो हमें मिलेंगे ही। हम जीते-जी चाहे आपको न पा सकें, मरनेके बाद तो पायेंगी ही किंतु लोग क्या कहेंगे ? वे कहेंगे कि यह कृष्ण कितने निष्ठुर हैं कि गोपियोंने विरहाग्निमें जलते हुए प्राण त्याग दिये, फिर भी उन्होंने कृपा न की। उन गोपियोंका प्रेम तो हार्दिक था किंतु कृष्ण पाषाणहृदयी, कठोर था।

नाथ, प्राणत्याग करनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है किंतु हम चाहती हैं कि आपकी अपकीर्त्ति न हो। इसीलिए हम आपको मना रही हैं।

प्रभु, आप तो सर्वत्र, सर्वव्यापी हैं अतः आपसे मिलन तो होना ही है। ज्ञानमार्गमें प्राप्तकी प्राप्ति है और भक्तिमार्गमें भक्तिकी किंतु हम यह नहीं चाहतीं कि आपकी जगहँसाई हो।

गोपियोंके ये वचन सुनकर श्रीकृष्णने पराजय मान ली। इसी कारणसे तो गोपियोंके उन वचनोंकी महाप्रभुजीने जयकार की है।

तासां वाचो जयन्ति हि।

वैसे तो भगवानकी पराजय न तो कभी हुई और न कभी होगी किंतु गोपियोंके साथ बातचीतमें गोपियोंकी विजय हुई है।

यह तो जीव और ईश्वरका वार्तालाप है। जीवकी कसौटी कर लेनेके बाद ही वे उसे अपनाते हैं। गोपियोंकी हर प्रकारसे परीक्षा कर लेने पर ही श्रीकृष्णने उनको अधरामृत-दिव्य-रस—अद्वैतरसका दान दिया।

प्रभुने सोचा कि इन गोपियोंका प्रेम सच्चा है। यदि मैं आज इन्हें दूर हटाऊँगा तो वे प्राणत्याग करेंगी। प्रभुको विश्वास हो गया कि जीव शुद्ध भावसे मुझे मिलने आया है तो उसे अपना लिया।

प्रभुने एक साथ अनेक स्वरूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं, उतने स्वरूप बना लिए और प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासका आरम्भ किया। अष्ट सखियाँ सेवामें उपस्थित थीं। हजारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है। प्रभुने हरेक गोपीको छातीसे लगाकर प्रगाढ़ आलिंगन दिया। गोपियोंको—शुद्ध जीवोंको परमानन्द प्राप्त हुआ।

जीव आज ईश्वरमग्न हो गया। वे दोनों एक हो गए। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनोंको आनन्द हुआ।

गोपियाँ कृष्णमय, भगवान्मय हो गयीं। सभी हाथोंसे हाथ मिलाकर नाचने लगे।

यह तो ब्रह्मसे जीवका मिलन हुआ है। इस प्रकार अद्वैत सिद्धांतके आचार्य शुकदेवजीने रासलीलामें अद्वैतका वर्णन किया है।

रासमें साहित्य, संगीत और नृत्यका समन्वय होता है। इस रासलीलामें कामका अंश मात्र भी नहीं है। देव, गन्धर्व, नारदजी आदिने भी आकाशसे इस लीलाको निहारा। निहारते-निहारते ब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ

निष्काम तो हैं फिर भी देहभान भूलकर इस प्रकार पराई नारीसे लीला करना शास्त्रमर्यादाका भंग ही है। कृष्णावतार धर्ममर्यादाके पालनके लिए है, स्वेच्छाचार करनेके लिए नहीं। ब्रह्माजी रजोगुणके अधिष्ठाता देव हैं। जिसकी आँखोंमें रजोगुण है, वह हर कहीं वैसा ही देखता रहता है। ब्रह्मा सशंकित हुए।

श्रीकृष्ण इधर सोच रहे हैं कि इस बूढ़ेको धर्म मैंने ही तो सिखाया था और अब आज वह मुझे सिखाने जा रहा है। ब्रह्मा यह नहीं जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं, धर्मका फल है।

प्रभुने एक और खेल रचा। सभी गोपियोंको भी अपना स्वरूप दे दिया। अब कृष्ण ही कृष्ण दिखाई दे रहे थे। गोपी यों ही नहीं। सभी पीताम्बरधारी कृष्ण हैं और एकदूजेसे रास खेल रहे हैं। रमा रमेशी।

ब्रह्माजीने अब मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं है। श्रीकृष्ण गोपीरूप हो गए हैं। ब्रह्माजीने कृष्णको प्रणाम किया।

रासविहारीलालकी जय।

वह विजातीय तत्त्वका, स्त्रीत्व और पुरुषत्वका नहीं, अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्रीकृष्णमय, प्रभुरूप बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानेके बाद जीवका स्वतन्त्र कहाँ रहा? ब्रह्माजीने क्षमायाचना की।

फिर जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही स्वरूप प्रभुने धारण किये और सभी गोपियोंको दिव्यानन्दका दान उन्होंने दिया।

यदि इस लीलामें कामका हेतु होता तो वह बन्द कमरेमें की जाती किन्तु यह तो खुले मैदानमें हुई थी।

यदि इस लीलामें लौकिक कामाचार होता तो देवगण इसे निहारनेके लिए न आते।

व्रजमें रासलीलामें ग्यारह वर्षसे कम अवस्थाके लड़के-लड़कियाँ भाग लेते हैं क्योंकि इस उम्रसे ऊपरके लड़के-लड़कियोंमें काम-विकारका आरम्भ होने लगता है।

शक्तिके साथ-साथ कामवृत्ति भी बढ़ती जाती है। मनमें काम जागते ही रासविहारी श्रीकृष्णका ध्यान करोगे तो काम नष्ट होगा। कामको मारनेका और कोई भी उपाय नहीं है।

गोपियाँ चाहती हैं कि श्रीकृष्ण उनके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दें कि जिससे कामका नाश हो जाय।

ईश्वरकी कृपा होने पर लौकिक काम, रतिपतिका नाश होता है।

तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो शिरस्सु च किंकरीणाम्।

पुरुषत्व तो अभिमान और अहम्का सूचक है। ईश्वरके घरमें पुरुष अर्थात् अभिमानका कोई स्थान नहीं है। जो जीव गोपीभाव—नम्रतासे जाता है, उसे वहाँ प्रवेश मिल जाता है।

नारदजी अफसोस करने लगे कि वे पुरुष-रूपमें आनेके बदले स्त्रीरूपसे आये होते तो उन्हें रासरसकी प्राप्ति हो जाती। नारदजी क्या जानें कि—

पुरुष तो एक पुरुषोत्तम,
और सब व्रजनारी हैं।

इतनेमें राधाजीने नारदजीके म्लान वदनको देखा। वृन्दावनकी अधीश्वरी राधिका यह नहीं चाहतीं कि वृन्दावनके किसी भी अतिथिको किसी प्रकारका भी कष्ट या दुःख हो। उन्होंने नारदजीसे कारण पूछा।

नारदजी—मुझे श्रीकृष्णसे रास खेलकर गोपियों-सा आनन्द पाना है।

राधाजी—आप राधाकुण्डमें स्नान करेंगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा।

राधाकुण्डमें स्नान करनेसे नारद नारदी बन गए। उन्होंने सोच लिया था कि यदि परमात्मा मिलते हों तो नारी बननेमें क्या आपत्ति है। आज तक पुरुषत्वके अभिमानने ही तो मुझे प्रभुसे इतना दूर रखा है। आज तक मैं इसी अभिमानमें डूबा रहा कि मैं पुरुष हूँ, बड़ा कीर्त्तनकार हूँ।

गोपियोंने अपना स्त्रीत्व छोड़ दिया और नारदजीने अपना पुरुषत्व।

सांसारिक धर्मोंका त्याग करके प्रभुकी ओर जाना ही तो जीवका धर्म है। देहभान, पुरुषत्व-स्त्रीत्वकी भावना प्रभुमिलनमें बाधक है। ऐसा देहभान छोड़े विना जीव ईश्वरके निकट जा नहीं पाता। अभिमानी जीव रासलीलामें प्रवेश पा नहीं सकता। गाय-समान नम्र, गोपी बनकर जाओ। वैसे तो पुरुषत्व, अहंभावका प्रतीक है और स्त्रीत्व नम्रताका। फिर भी प्रभुसे मिलनेके लिए तो इन दोनों आवरणोंका त्याग करके शुद्ध जीव बनना आवश्यक है।

अपनी विद्या, ज्ञान, कीर्त्तनकारत्वका अभिमान नष्ट हुआ तो नारदजीको रासलीलामें प्रवेश मिला। वे गोपी बनकर रासलीलामें गये।

गोपी—नम्रताको प्रभु रासलीलामें प्रवेश देकर आनन्द देते हैं। गोपी (नम्र जीव) को ही प्रभु अपनाते हैं।

गोपियोंको श्रीकृष्णसे प्रेम था, मोह नहीं।

आत्माका चिंतन, प्रेम उत्पन्न करता है और शरीरका चिंतन मोह। अपने प्रिय पात्रके आत्माका स्मरण, चिंतन, ध्यान करो, शरीरका नहीं।

प्रेममें अतिशय धीरज आवश्यक है। धीरज भी कैसा? रुक्मिणीने अपने एक पत्रमें श्रीकृष्णको लिखा था, चाहे कितने भी जन्म मुझे लेने पड़ें, किंतु वरूँगी तो आपको ही।

यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्।

भा० १०-५२-४३

भागवत तो गोवर्धननाथजीका वाङ्मय स्वरूप है।

जब तक नामके साथ सम्बन्ध नहीं हो पाये, तब तक नामी प्रभुके साथ सम्बन्ध कैसे हो पाये ?

भागवत, परमात्माका प्रत्यक्ष नामस्वरूप है जो भगवानसे सम्बन्ध जोड़ देती है।

दशम स्कन्ध तो भागवतका हृदय है। मानवजीवनका अन्तिम लक्ष्य है रासलीला। ईश्वरको प्राप्त किये बिना जीवको शांति मिल नहीं पायेगी। जीव ईश्वरके साथ एक हुआ नहीं कि मुक्त हो गया।

यदि तुम भगवानसे मैत्री करोगे तो वे तुम्हें भी सुदामाकी भाँति भगवान् बनायेंगे।

यह जीव कुछ साधन करता नहीं है, फिर उसे अनुभव कैसे हो पाये ?

केवल चित्तशुद्धिके लिए सत्कर्म करना है। सत्कर्म करनेके लिए कोई विशेष मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं है। इसी क्षणसे आरम्भ करो सत्कर्मोंका।

बातोंमें, चर्चा-विचारणामें समयका व्यय न करो। विचारमें समय गवाँओगे तो आचारके लिए समय कहांसे लाओगे ?

आज तक रुपये-पैसेके पीछे भागते रहे। अब जरा भगवानके पीछे भी तो दौड़ो।

आजकी अशांतिका यही कारण है कि जीवने ईश्वरको भुला दिया है। मनुष्य राजा बने या स्वर्गका देव, राय हो या रङ्क, विद्वान हो या मूर्ख, उसके लिए शांति नहीं है। जीव ईश्वरसे जा मिलेगा तभी शांति प्राप्त होगी।

भगवान तो स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। उन्होंने अपने आनन्दके लिए नहीं, गोपियोंको आनन्ददान करनेके लिए रासलीलाका आयोजन किया था। गोपियोंको परमानन्द मिला। जीव और ईश्वरका मिलन हुआ।

परमात्माके साथ मिलन हो जानेके बाद भी साधना तो करते ही रहना होगा। साधन करनेसे कई सिद्धियां मिलेंगी और परमात्मा भी किंतु साधन न छोड़ा जाय।

मनका तो अन्तिम साँस तक कभी विश्वास न करना। यदि भगवान सेवा और जप बन्द कराना चाहें तो उनसे भी कह देना, नाथ, मैं आपकी सभी आज्ञाओंका पालन करूंगा किंतु जप-सेवा नहीं छोडूंगा।

सेवाकी जीते-जी तो कोई समाप्ति ही नहीं है। सेवा तो अन्तिम साँस तक करनी ही पड़ेगी। अन्ततक नियमित रूपसे जप, सेवा, कीर्त्तन करते रहो।

थोड़ी-सी साधना कर लेने पर मनुष्यको सिद्धि मिलती है, उसके वचन सच होने लगते हैं। सिद्धिके साथ प्रसिद्धि और लोगोंकी भीड़ आती है। ऐसा होने पर गर्व—अभिमान आ जाता है और अभिमान लाता है पतन। साधुओंको कई बार उनके शिष्य चापलूसी करके बिगाड़ते हैं। मेरापन आते ही साधना उपेक्षित होती है। साधु सोचता

है, हां सेवा तो होती रहेगी फुरसतके समय। अभी तो मैं सेवकोंकी सेवाका लाभ ले लूं। मैं सिद्ध हूँ सो मनसे सेवा कर लूगा। यह बात ठीक नहीं है।

तुकाराम महाराजने कहा है—

आधी केला सत्सङ्ग,
तुका झाला पांडुरङ्ग।
त्यांचे भजन राही ना,
मूल स्वभाव जाई ना।

मेरे प्रभुने मुझे अपना लिया है। प्रेम बढ़ता जा रहा है। हम दोनों एक ही तो हैं किंतु भजन करनेकी आदत छूटती ही नहीं है।

ईश्वरके दर्शन हो जानेके बाद भी जपसेवा-ध्यान आदि साधनोंका त्याग न करना। अन्यथा माया आ घेरेगी।

कुछ लोग साध्यकी प्राप्ति हो जाने पर साधनकी उपेक्षा करने लगते हैं। यह ठीक नहीं है। साधनमें शिथिलता आयेगी तो मन गड़बड़ करेगा।

बलवान हाथीके लिए भी अंकुश जरूरी है। मनका भी वैसा ही है। उसे अंकुशमें रखने-का साधन है भजन।

भक्तिमें दैन्यभाव आवश्यक है।

चमत्कार होने पर नमस्कार करनेवाले तो बहुतेरे हैं। तुम्हें तो बिना चमत्कारके ही नमस्कार करना है। वही तो भक्ति है। भक्तिमें श्रद्धा होगी तो अनुभव भी मिलेगा और ज्ञान भी और वैसा होने पर भक्ति दृढ़ होगी।

गोपियोंको अभिमान हो आया। उन्होंने कहा, सभी विषयोंका त्याग करके हम आपके पास आई हैं। गोपियोंमें अभिमान कहाँसे आया? अरे, वह तो उनके मन ही में सूक्ष्म रूपसे छिपा हुआ था।

मनुष्य मानता है कि वह शुद्ध हो गया किंतु हर तरहसे शुद्ध हो पाना बड़ा दुष्कर काम है।

साधकको तो बड़ा सावधान रहना पड़ता है। जिसका बहुमान किया जाता है, उसके अभिमानी बन जानेकी सम्भावना है।

श्रीकृष्णने गोपियोंको मान दिया तो उनको अभिमानने घेर लिया। गोपियाँ मानने लगीं कि वैसे तो श्रीकृष्ण हमारे प्रति आसक्त थे ही किंतु आसक्त न होनेका दिखावा कर रहे थे। गोपियोंमें अभिमानवश ऐसा लौकिक भाव जागा कि तुरन्त ही श्रीकृष्ण अदृश्य हो गये।

भगवानके अन्तर्धान होनेका अर्थ क्या है। वैसे तो भगवान सर्वत्र सर्वव्यापी हैं, वे अदृश्य तो हो नहीं सकते। तो अन्तर्धान होनेका अर्थ है कि जीवकी आँखोंपर अभिमानका पर्दा छा जानेसे प्रभुका दिखाई न देना।

गोपी-जीव अभिमानसे फूल गया तो श्रीकृष्ण अदृश्य हो गए।

व्रजवासी मानते हैं कि उस समय श्रीकृष्णने पीताम्बरका घूंघट खींच लिया था सो सखियाँ भ्रममें फँस गयीं कि वे भी एक सखी ही हैं।

परमात्मा तो सर्वव्यापक हैं। गोपियाँ उनको बाहर ढूंढ़ रही हैं किंतु रासमण्डलीमें नहीं। भगवानको तो अपने हृदयमें ही ढूंढ़ना है। जीवको अज्ञानवश कुछ सूझता ही नहीं है।

एक बार विद्याभ्यासके हेतु निकले हुए दस पण्डितोंको एक नदी पार करनी पड़ी। सामने पहुँचकर किसी एक पण्डितने सोचा कि उनमें-से एक या तो उस पार रह गया है या तो डूब गया है। उसने गिनती की तो नौ ही निकले। सभीने बारी-बारीसे गिना। वही परिणाम आया। अब ऐसा होनेका कारण यह था कि गिनने वाला अपनेको ही गिनना भूल जाता था।

अब तो बात पक्की हो गई कि एक बह गया है। सब रोने लगे।

वहाँसे एक महात्मा जा रहे थे। उन्होंने पण्डितोंसे रोनेका कारण पूछा। पण्डितोंने बताया तो महात्माने गिनकर बताया कि वे तो दसके दस ही हैं।

अज्ञानके कारण जीव अपने आपको भूला जा रहा था। ज्ञानीने सही स्थिति बताई। अज्ञानके कारण जो नहीं हो, वह दिखाई देता है और जो है वह नहीं दीखता है।

परमात्मासे साक्षात्कार होने पर भी सावधान रहना। कई बार ज्ञानी भी साक्षात्कार हो जाने पर अपने आप पर काबू नहीं रख पाता है क्योंकि सिद्धि, प्रसिद्धि देती है और प्रसिद्धि अभिमान। ऐसा होने पर साधन छूट जाता है और परिणामतः जीव ईश्वरसे विमुख हो जाता है।

परमात्माकी अनुभूति होनेके पश्चात् भी यदि जीव साधन छोड़ दे तो उसका पतन ही होता है।

अब पुण्डलीक-चरित्र देखें।

पुण्डलीककी माता-पिताके प्रति अविराम, अतिशय भक्तिको देखकर द्वारिकाधीश उसका दर्शन करनेके लिए पण्ढरपुर पधारे।

पिता और माता कुष्ठरोगसे पीड़ित थे और चिड़चिड़े स्वभावके हो गये थे। पुत्र बड़ी लगनसे सेवा करता था फिर भी वे उसका अपमान करते रहते थे। फिर भी पुण्डलीक बड़ी नम्रतासे सेवा करता रहता था।

भगवानने आँगनमें आकर पुण्डलीकको पुकारा—पुण्डलीक, तेरी मातृ-पितृसेवासे मैं प्रसन्न होकर तुझे दर्शन देने आया हूँ।

पुण्डलीक—भगवान, इस समय तो मैं उनकी सेवामें लगा हुआ हूँ। सो कुछ देरके लिए आप बाहर ही प्रतीक्षा कीजिये। मैं सेवासे निवृत्त होकर आपसे मिलने बाहर आऊँगा।

पुंडलीक मानता है कि माता-पिता तो भगवान्से भी बढ़कर हैं। उनकी सेवा की, तभी तो भगवान उससे मिलने आये हैं। जब साधन हाथमें है तो साध्य कहाँ भाग जाएगा ?

सुख-संपत्ति मिलनेपर भी भगवानका भजन मत छोड़ो।

यह तो भक्त ही है जो भगवानसे भी प्रतीक्षा करा सकता है।

भगवानको विश्राम करनेके हेतु पुंडलीकने एक ईंट दी और उस पर खड़े रहनेको कहा। पुंडलीकको बाहर आनेमें देर लगी। भगवान प्रतीक्षा करते हुए थक गये तो कमरपर हाथका सहारा लेकर खड़े रहे।

भगवानकी उस मुद्राका अर्थ यह है कि उनके चरणोंका आश्रय लेनेवालेके लिये संसारसागर कटि तक ही गहरा है। अन्यथा आज तक इसमें न जाने कितने जीव डूब गये हैं।

मातापिताकी सेवा पूरी कर लेनेके बाद पुंडलीक बाहर आकर भगवानसे मिला। उसे प्रत्यक्ष परमात्मा मिले, फिर भी उसने साधन नहीं छोड़ा।

यदि साधन छूट जायेगा तो प्रभु अंतर्धान हो जायेंगे।

रासके समय गोपियोंके मनमें अभिमान आया सो श्रीकृष्ण अदृश्य हो गये।

अभिमान जागते ही साधन उपेक्षित हो जाता है।

गोपियोंने सोचा कि वैसे तो कृष्ण हमारे सौंदर्यमें लुब्ध थे ही किंतु अनासक्त होनेका दिखावा कर रहे थे।

भगवान अंतर्धान हुए। वे वहीं थे, किंतु गोपियाँ उन्हें देख नहीं पाती थीं। भगवान तो उनके हृदयमें समा गये किंतु गोपियाँ उन्हें बाहर ढूंढ़ रही थीं, सो मिल न पाये।

ईश्वरको जाने और आनेकी क्रियाका बंधन नहीं है क्योंकि वे तो सर्वव्यापी हैं।

वैसे ईश्वर तो आपके निकट आते हैं किंतु वासनाके आच्छादनके कारण वे दिखाई नहीं देते हैं।

ईश्वर सभीके हृदयमें हैं फिर भी सब उन्हें देख क्यों नहीं पाते ?

जीव जब तक भगवानकी ओर देखता नहीं है, तब तक उसकी वे भी सुध नहीं लेते हैं। भगवान सभी जीवोंसे कहते हैं, मैं तो तुम्हें अपनानेके लिये तैयार हूँ किंतु तुम भी तो मेरे पास आओ।

जीव भी गोपियोंकी भाँति बाहर आनंद ढूंढता है, अंदर नहीं। तभी तो भगवान उसे मिल नहीं पाते हैं।

यदि स्त्री, वस्त्र, धन आदि तुम्हें आनंद देते हैं तो उनके वियोगके समय तुम्हें दुःख भी तो होगा। तुम्हारा आनंद स्वाधीन होना चाहिये, पराधीन नहीं। पराधीन आनंद दुःखदायी होता है।

दृष्टिको अंतर्मुख करो और परमात्माको अपने हृदय ही में निहारो।

मात्र भगवान ही आनंदरूप हैं। यह सारा विश्व तो दुःखरूप ही है। गीताने भी इस संसारको 'अनित्यम् असुखम्' कहा है।

वियोगका अर्थ है विशिष्ट योग। बहिरंगमें वियोग और अंतरंगमें संयोग।

गोपीका मन श्रीकृष्णमें है। वृत्ति कृष्णाकार होनेके कारण अंतरंगमें संयोग और बहिरंगमें वियोग है। सखियाँ वनके पत्ते-पत्ते और फूल-फूलसे कृष्णका पता पूछ रही हैं। कहीं मेरे श्यामसुन्दरको तो नहीं देखा? कोई तो बताओ।

वियोगके कारण गोपियाँ ऐसी तो बावली हो गई हैं कि उन्हें यह भी याद नहीं है कि फूल-पत्ते-वृक्ष तो जड़ हैं, बोल नहीं पाते। व्याकुल गोपियाँ श्रीकृष्णकी लीलाओंका अनुकरण कर रही हैं।

विरह-व्याकुल गोपियोंकी दशा भी तो देखिये। वह कहती हैं—

लाली मेरे लालकी जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

अरे सखी, मैं ही तो हूँ कन्हैया।

जीवका प्रभुमय हो जाना ही तो ध्यान और भक्तिकी पराकाष्ठा है और फल भी। ध्यान करते-करते संसारका विस्मरण हो जाता है। ध्यानमें तन्मयता हो जाने पर 'मेरापन' मिट जाता है और ध्याता, ध्यान तथा ध्येय एक बन जाते हैं। यही तो है मुक्ति।

गोपियाँ श्रीकृष्णका चिंतन करते हुए कह रही हैं, अरी सखी, मैं ही कृष्ण हूँ।

कृष्णोऽहम् पश्यत गति।

—मैं ही तो कृष्ण हूँ।

पहले गोपियाँ अपने आपको कृष्णकी दासी कहती थीं। पहले दासोऽहम् था, अब कृष्णोऽहम् हो गया।

ध्यानमें तन्मयता होने पर गोपियाँ सभी कुछमें श्रीकृष्णका दर्शन करने लगीं।

सभी देवोंने वाहनके हेतु पशुओंको ही क्यों चुना है? पशु-पक्षीके प्रति भी मनुष्य ईश्वरत्वका अनुभव करे इसीलिये।

पहले तो सभीमें ईश्वरकी भावना की जाय।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।

सभीमें ईश्वरका अनुभव करनेवाला स्वयं भी ईश्वरमय बन जाता है।

उस गोपीका मुख भी श्रीकृष्णके मुख-सा तेजस्वी हो गया।

जीव जिस व्यक्तिका सतत ध्यान करता है उसकी छायाकृति उस व्यक्तिके मुख पर झलकने लगती है।

एक गोपीने बालकृष्णका रूप लेकर कालीयनागका दमन करना चाहा।

दूसरी गोपी नाग बनी।

तो पहली गोपी नाग बनी हुई उस गोपीके सिर पर चढ़ गई और कहने लगी, दुष्ट कालीय, चला जा यहाँसे। मैंने दुष्टोंका दमन करनेके लिए ही जन्म लिया है।

यह तो रासकी कथा है। साधारण वक्ता या श्रोता इसका अधिकारी नहीं है।

शुकदेवजीके दर्शन मात्रसे स्वर्गकी अप्सराओंका काम नष्ट हो गया था। शुकदेवजीने अप्सराओंमें स्त्रीत्वका नहीं, ब्रह्मका ही दर्शन किया था। ब्रह्मज्ञानी तो सुलभ हो सकता है किंतु ब्रह्मदृष्टि रखनेवाला महात्मा मिलना तो अशक्य-सा ही है। जिसको दृष्टिमें-से काम नष्ट हो चुका है और जिसको देहभान भूल चुका है, लँगोटी तक छूट गई है, ऐसे महायोगी शुकदेवजी इस कथाके वक्ता हैं।

गोपियाँ भागवतरूप बन गयीं। राधा और कृष्ण एक ही हैं। वे दोनों अभिन्न हैं। सूर्य और उसकी प्रभाकी भाँति कृष्ण और राधा एक ही हैं। वे दोनों कभी विभक्त हो ही नहीं सकते। यह विरह तो लीला मात्र थी।

अन्तर्धान होनेके समय श्रीकृष्णने राधाजीको भी साथमें लिया। चलते-चलते राधाजी थक गयीं। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, मुझसे अब चला नहीं जायेगा। यदि आपको गरज हो तो मुझे अपने कन्धों पर उठा लीजिए। कृष्णने उनको कन्धों पर बिठा दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गए। राधाजी एक वृक्षकी डाली पकड़कर लटक रही थीं। राधाजीके अभिमानको उतारनेके लिए ऐसा किया गया।

वैसे तो राधाजी अभिमानी हो नहीं सकतीं। यह तो लीला है। वैसे अभिमानी तो जीव ही हुआ है।

अभिमान आते ही जीव उस राधाकी भाँति बीचमें ही लटक जाता है। मनुष्यका शत्रु अभिमान अपने साथ कई और दुर्गुणोंको भी ले आता है। अभिमानके कारण जीव दुःखी होता है। दैन्य आना सरल नहीं है। जब मनुष्य गुमानमें होता है, तब कर्कश शब्द उसे भड़का देता है। ईश्वरके ही चरणोंमें बसे रहो कि जिससे मनमें कोई भी विकार उत्पन्न न होने पाये।

राधाजीका श्रीकृष्णने बड़ा आदर किया, अपने साथ ले गये तो राधाजीको अभिमान हुआ।

बहुमान होने पर जीव बहुत अभिमानी होने लगता है। मान, धन मिलनेपर तो और भी नम्र बनना चाहिए।

कृष्ण अन्तर्धान हो गये तो राधाजी पछताने और रोने लगीं। हे नाथ! हे प्यारे! दर्शन दीजिये।

प्यारे दर्शन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जलबिन कमल, चन्दबिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिना सजनी
आकुल व्याकुल फिरूँ रैंनदिन विरह कलेजो खाय

दिवस न भूख, नींद नहीं रैना, मुख सूँ कहत न आवै बैना ,
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, मिलकर तपन बुझाय ।
क्यूँ तरसाओ अन्तरयामी, आय मिलो किरपाकर स्वामी ,
मीरां दासी जनम जनमकी, पड़ी तुम्हारे पाय ।

राधाजी कृष्णको पुकारती हुईं, पछताती हुईं, रोती हुईं अचेतन-सी हो गईं। कृष्णको ढूंढ़ती हुई कुछ गोपियाँ इधर आ गयीं तो राधाजीको अचेत पाया।

ज्ञानमार्गमें ध्यान प्रधान है। भक्तिमार्गमें भगवानके गुणगान, भजन-कीर्त्तन प्रधान हैं। अपने दोषोंका निवेदन करते हुए प्रभुके गुणोंका गान करोगे तो उनको तुम पर दया आयेगी।

माधव तो गानप्रिय हैं।

एक बार वैष्णवोंने देखा कि जगन्नाथजीके नये-नये वस्त्र रोज-रोज फट जाते हैं। भक्तोंने भगवानसे कारण पूछा। जगन्नाथजीने बताया, गीतगोविंदका गान करती हुई एक कन्या वनमें घूम रही है। उसको सुननेके लिए मैं उसके पीछे मारा-मारा फिरता रहता हूँ सो वनकी झाड़ियोंमें उलझ जानेसे मेरे वस्त्र फट जाते हैं।

भगवानने भागवतमें कहा है, मैं अपने निष्काम भक्तोंके पीछे-पीछे चलता रहता हूँ कि जिससे उनकी चरणरज उड़ती हुई मेरे ऊपर आती रहे।

विरहव्याकुला गोपियाँ श्रीकृष्णके गुणगान करने लगीं। यही है गोपीगीत।

गोपियोंने सोचा, यदि यमुना किनारे जाकर स्तुति की जाय तो श्रीकृष्ण अवश्य प्रकट होंगे।

गोपीगीतका पाठ तो बहुतेरे लोग करते हैं किंतु यह पाठ गोपीभावसे करना चाहिए।

ईश्वरसे मिलनेके लिए व्याकुल हुआ जीव इस जगत्में कहीं भी चैन पा नहीं सकता। यदि अत्यन्त आर्त स्वरसे भगवानको पुकारोगे तो वे आ मिलेंगे। अतिशय आर्द्रतासे गोपीगीत गाया जाय।

दिवसमें हमेशा तीन बार स्तुति करो। गोविंद दामोदर स्तोत्रमें कहा गया है, सुखावसाने, दुःखावसाने और देहावसाने स्तुति करो।

दुःखके प्रसङ्गोंमें सोचो कि दुःख पहाड़ जितने होते हैं, फिर भी भगवानने तो तुम्हारे पापके प्रमाणमें अपेक्षाकृत कम ही सजा दी है।

गोपीगीतका छन्द है इन्दिरा। इन्दिरा अर्थात् लक्ष्मी। गोपियाँ लक्ष्मी हैं सो गोपीगीत इन्दिरा छन्दमें निबद्ध है।

सखियाँ परमात्माकी स्तुति कर रही हैं। कन्हैया, तेरे ही कारण तो अपनी ओर वृन्दावनकी शोभा बढ़ गई है। पहले यहाँ सौंदर्य नहीं था। नाथ, तेरे ही आगमनसे व्रज-भूमि शोभायमान हो गई।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः।

मानव-शरीर ही तो व्रज है। यदि इस शरीरव्रजमें प्रभु प्रकट होंगे तो उसकी शोभा

और बढ़ जायेगी, उसकी कीमत बढ़ जायेगी, उसकी जयकार होगी।

'व्रज' शब्दके अर्थ इस प्रकार हैं—

व्रजति भगवत् समीपं स व्रजः।
ते जन्मना व्रजः अधिकं जयति॥

भगवानके पास ले जानेमें हमें जो सहायक होता है, वैसा यह शरीर भी तो व्रज ही है।

इस शरीरकी शोभा वस्त्राभूषणोंसे नहीं, भगवत्-भक्तिसे ही बढ़ती है।

नाथ, आपके ही कारण मेरे व्रजशरीरकी शोभा है। आपका प्राकट्य होने पर ही हमारी शोभा बढ़ पाई है।

शरीरका सिंहासन जब काम क्रोध, मद, मोह, लोभ मत्सरसे मुक्त होगा, तभी परमात्मा दौड़ते हुए आयेंगे। तुकाराम और मीराबाईकी आज भी जयकार होती है। कारण, उनके शरीर-व्रजमें विकारोंने पाँव तक नहीं रखा था। उन्होंने अपने शरीर और हृदयको ही व्रज बना लिया था।

बड़े सम्राटोंको जगत भूल जायेगा किंतु शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मीराबाई, तुकाराम, नरसिंह मेहताको कौन भूल सकता है? इन महापुरुषोंने अपने हृदयगोकुलमें श्रीकृष्णको पधराया था। जगद्गुरु शंकराचार्य-सा ज्ञानी आज तक कोई और हुआ नहीं है। फिर भी वे अपने हृदयमें श्रीकृष्णको हमेशा बसाये रखते थे।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरदनिघ्नतो नेह किं वधः॥

कन्हैया, हम तो केवल तेरे लिये ही जी रही हैं। तेरे बिना काल हमें सताता है।

नाथ, वैसे तो हमें कोई गरज नहीं है, फिर भी शरणागतकी रक्षा करना क्या तेरा कर्त्तव्य नहीं है?

शरणागत जीवकी उपेक्षा न करें। हर कहीं, हर किसीमें हम आपको ही ढूंढ़ती हैं।

त्वां विचिन्वते।

भक्त तो सर्वमें एक ईश्वरको ही ढूंढ़ता है।

त्वाम् श्रीकृष्ण सर्वत्र विचिन्वते।

सभीमें जो ईश्वरको ढूंढ़े वह गोपी है।

हे नाथ! हम आपकी दासी हैं। हम आपकी हैं। दिक्षु तावकाः। हमें दर्शन देनेकी कृपा कीजिये।

पहला श्लोक प्रभुके गुणगानका, कीर्त्तनभक्तिका है। प्रभुके दर्शनकी अपेक्षा है सो उसमें दर्शनभक्ति भी है। प्रभुके हेतु ही प्राण धारण किये हैं, अतः आत्मनिवेदन भी है इसमें। 'दयित'से सख्य, 'आपकी' शब्दसे दास्य आदि साधनरूपा भक्तिके भेद सूचित हैं।

हे नाथ ! आपने अजामिलसे पापी पर भी कृपा की थी, तो क्या हम पर नहीं करेंगे ? क्या हमें दर्शन नहीं देंगे ?

हे नाथ ! आपका चिंतन करती हुई हम अँधेरी रातमें वनमें मारी-मारी भटक रही हैं। हमारी उपेक्षा करना आपको शोभा नहीं देता।

हे नाथ ! हम और तो कुछ माँगती नहीं हैं। हम तो आपकी अशुल्कदासी (बिना मोल-की चेरी) हैं। अपनी भक्ति निष्काम भक्ति है। तेऽशुल्क दासिका।

इन गोपियोंकी बातोंमें आत्मतिरस्कार नहीं, दैन्य है।

आपके नेत्रोंसे हम बिंध गयीं हैं। नेत्रबाण द्वारा किया गया बध ही तो है।

हम समझ गयीं। आप दयालु नहीं हैं। आप निष्ठुर हैं। यशोदाजी भोली हैं। उनका एक भी सद्गुण आपमें नहीं आया है। सो आप हमें तड़पाते रहें, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

लाला, तू माखनचोर है। हमारे मनको भी तूने चोर लिया है और अब हमें यहाँसे दूर करना चाहता है।

कन्हैया—मैं तो चोर हूँ, फिर मुझे क्यों पुकारा जा रहा है ? चोरकी मैत्री भी कोई करता है क्या ?

गोपियाँ—चोरी करनेके लिए ही तो हम तुझे पुकार रही हैं। तू तो चोरी करता ही है, तेरी आँखें भी चोर ही हैं।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥

विषमय यमुनाजलसे, अजगर-रूपा अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षासे, बिजलीसे, बवण्डरसे, दावानलसे, वृषभासुरसे, व्योमासुरसे, सभी प्रकारोंके भयसे आपने हमारी बार-बार रक्षा की है।

तो फिर हे कन्हैया। आज तू क्यों निष्ठुर बन गया है ? यदि हमें मारना ही था तो उन आपत्तियोंसे हमारी रक्षा ही क्यों की ?

कन्हैया—क्या हमारी रक्षा करनेका उपकार नहीं करेगा ?

तूने कालियनाग, अघासुर, बकासुर आदि राक्षसोंसे हमारी रक्षा की और आज विरहा-सुरसे हमें मारने चला है। उस कालियनागके विषसे भी यह विरह-विष अधिक दाहक है। अब तो सहा नहीं जाता। दर्शन दे कान्हा, दर्शन दे।

यदि हमें मारना ही था तो पहले प्रेमदान क्यों दिया ?

यदि मुझे दर्शन नहीं देगा तो मैं लोगोंसे कह दूंगी कि कन्हैया नन्दयशोदाका पुत्र नहीं है। मैं जानती हूँ कि तू कौन है।

कन्हैया—जरा मुझे भी तो बता कि मैं कौन हूँ।

सखियाँ ज्ञानभक्त हैं, ज्ञानी हैं सो परमात्माके स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं। वे तो कहने लगीं, हम आपको जानती हैं और जानकर ही प्रेम करती हैं।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्त्वतांकुले ॥

आप सभीके हृदयोंमें अन्तर्यामी रूपसे विराजमान नारायण हैं। समस्त शरीरधारियोंके हृदयमें बसे हुए साक्षीभूत हैं।

कन्हैया—क्या इच्छा है तुम सबकी ?

गोपी—हे कांत ! हे प्यारे ! आपके वरद हस्त ऐसे शक्तिमान हैं कि हमारे अभिमानको दूर कर सकते हैं। आप अपना मङ्गलमय हस्त हम सबके मस्तक पर रखिए।

इस पांचवें श्लोकका तात्पर्य शरणभक्ति है। इसके पहलेके श्लोकमें प्रभुके माहात्म्यका वर्णन था। भगवान महान्, समर्थ, अप्रतिम प्रभावी हैं ऐसी प्रतीति होने पर हृदय उनकी शरण-याचना करे, यह स्वाभाविक है। जीव शरणभावसे उनको अधिक पहचान सकता है। प्रभुप्रेमके मार्ग पर गोपीजन आगे बढ़ती हुई शरणयाचना करती हैं कि जिससे सभी प्रकारके भयोंसे मुक्ति मिल पाए।

श्रीकृष्ण—इतनी सारी सखियोंमें-से मैं किस-किसके मस्तक पर हाथ रखूं ? समय भी बहुत लगेगा। सो मैं पहले मेरे दूसरे भक्तोंके काम निपटा लूं, फिर तुम सबको स्पर्शलाभ दूंगा।

गोपी—नहीं, कान्हा ! उनका काम बादमें कर लेना। पहले हमीं पर कृपा कर। हम तेरी हैं, तू हमारा है। तुझ पर सबसे पहला अधिकार हमारा ही है। तू व्रजजनार्तिहन् है। व्रजवासीके दुःखोंका नाशकर्त्ता है। अन्य भक्त तो व्रजवासी हैं नहीं। कन्हैया, हम एक ही गाँवके वासी हैं। सो तुझ पर पहला अधिकार हमारा है। तेरा अवतार ही तो हम व्रजवासियोंके उद्धारके लिए हुआ है।

व्रजभक्त किसे मानेंगे ? क्या गोकुल-मथुरा-वृन्दावनमें रहनेवालोंको ही ? नहीं। ऐसा नहीं माना जा सकता। जो निःसाधन भक्त है वही व्रजभक्त है। साधन करते हुए, साधनसे कभी तृप्त न होना ही निःसाधनता है। ऐसी भक्ति करनेवाला हर कोई व्रजवासी है। अपने पाप पर्वत जितने हैं और साधन अल्प। सभी पाप कैसे जल पाएँगे ? भगवत्-कृपासे ही पाप जल सकते हैं। ऐसी नम्रता आनी चाहिए। सभी प्रकारके साधन करते-हुए भी अपनेको निःसाधन माननेवाला जीव ही व्रजभक्त है। दीनहृदयी ही व्रजभक्त है।

कन्हैया, तेरे और भक्त तो कुछ-न-कुछ साधन करते ही होंगे। वे तो योगी, ज्ञानी या कर्मनिष्ठ होंगे। उनको तो किसी-न-किसी साधनका अवलम्बन है और हम तो निरावलम्बा हैं। हम तो तेरे ही सहारे हैं। हम तो गाँवकी अनपढ़ गोपियाँ हैं। तू ही हमारा आधार है।

जीव निराधार बन नहीं पाता है, अतः वह भगवानको पा नहीं सकता है। गोपियाँ तो ध्यानादि सब कुछ करते रहने पर भी मानती हैं कि वे कुछ भी नहीं कर

पाती हैं। ऐसी भावना रखनेवाला ही व्रजभक्त है। साधनकी अकड़ रखनेवाला भक्त व्रजवासी हो नहीं सकता।

कन्हैया, हम तो यह भी नहीं जानती हैं कि तेरा ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है।

हम गांवकी अनपढ़ अबला तेरी शरणमें आयी हैं। हम निःसाधन हैं, तुम पर पहला अधिकार हमारा है।

सभी साधन करने पर भी जिसे साधनका अभिमान न हो, वही निःसाधन भक्त है।

सत्कर्म और साधन अभिमान बढ़ा देता है सो सत्कर्म और साधनकी पूर्णाहुतिमें मन्त्र बोला जाता है।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं।

साधन करो किंतु हृदयसे नम्र बनो। उद्धत जीव कृष्णको पसन्द नहीं है।

मैं तो निरभिमानी हूँ ऐसा मानना और कहना भी अभिमान है। जब हृदय नम्र बनता है तब हर कहीं भगवान्के दर्शन हो पाते हैं।

तेरा अवतार व्रजभक्तोंके लिये ही है। सो तेरा परम सुन्दर सांवला मुखकमल हमें दीखा।

जलरुहाननं चारु दर्शय।

मेरे दर्शनके बाद तुम्हारी क्या इच्छा बाकी रहेगी ?

अन्तरङ्गके संयोग और बहिरङ्गके वियोगकी यह बात है। अतः श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष बातचीत कर रहे हों, ऐसा भास होता है।

गोपियाँ—हे कामविनाशक ! अपनी सभी कामनाएँ तू नष्ट कर सकता है।

न कृन्धि हृच्छयम्।

अपने कामका नाश करो। गोपियाँ कामसुखकी नहीं, कामनाशकी इच्छा करती हैं।

सन्त-गुरुके हाथोंमें कामनाशकी शक्ति है।

आपका हाथ अपने मस्तकपर फिरते ही अपनी बुद्धिमें-से कामवासना नष्ट हो जायेगी। अपने चरण हमारे हृदय और मस्तकपर पधराइये।

कृष्ण—क्या मेरे चरण इतने सुलभ हैं कि हर किसी हृदयपर पधराता फिरूँ ?

गोपियाँ—तेरे चरण गायोंके लिए सुलभ हैं तो क्या हमें ही उनका लाभ न मिल पायेगा ? हम तो गायोंसे भी अधिक दीन बन कर आई हैं। तेरे चरण तो तृणचरानुग हैं। गायोंके लिये तुम्हारे चरण सुलभ हैं क्योंकि तुम दोनों एक-दूसरेके आगे-पीछे चलते रहते हो। क्या गायोंके लिए सुलभ और हमारे लिए ही तेरे चरण दुर्लभ ?

भगवान्—क्या मुझे गोपाल मानते हो तुम ?

गोपियाँ—नहीं, नहीं। तुम तो श्रीनिकेतनम् हो। तुम्हारे चरण तो लक्ष्मीजीके निवासस्थान रूप हैं। तुम्हारे चरण तो लक्ष्मीजी नित्य अपनी गोदमें रखकर सेवा करती हैं।

श्रीकृष्ण—मैं अपने चरण तुम्हारे हृदय पर पधरानेके लिए तैयार तो हूँ किंतु एक डर भी है मुझे। तुम्हारे अभिमानसे विषैले हृदय पर मैं चरण पधराऊँ तो उसका असर मेरे चरणों पर भी हो जाय तो ?

गोपियाँ—आप तो हमारी भावनाकी हँसी उड़ाते हैं। आप तो फणि' फणार्पितं, विषैले कालियनागके मस्तक पर आरूढ़ होकर नर्तन करनेवाले हैं। कालियनागका विष कुछ असर न कर पाया तो हमारे हृदयका विष आपको क्या कर पायेगा ? और अगर हमारे हृदय विषैले हों भी, फिर भी तुम्हारे चरण उसे अमृत बना देंगे।

तुम्हारे चरण तो सभी प्रणाम करनेवालोंके पापको मिटा देनेवाले हैं।

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं।

गोपियाँ विनती करती हैं—हे नाथ! अपने अधरामृतका पान करा कर हमें जीवनदान दो।

ऽधरसीधुना ऽऽप्याययस्व

श्रीकृष्ण—तुम जी रही हो फिर भी कैसा जीवनदान माँग रही हो ? तुम्हारे प्रेममें कुछ कपटभाव है। हमने तो सुना है कि दशरथजीने रामजीके वियोगके कारण प्राणत्याग किया था।

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरहँ, राउ गयउ सुरधाम॥

दशरथजीका रामप्रेम हार्दिक था सो रामका विरह होते ही उन्होंने प्राण त्याग दिया। यही है सच्चा प्रेम।

मेरे वियोगमें तुम जी रही हो, मुझसे बातें भी कर रही हो। तुम्हारे प्राण चले नहीं गए हैं सो मुझे लगता है कि तुम्हारा प्रेम सच्चा नहीं है। यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा होता तो तुमने दशरथकी भाँति प्राणोंका त्याग किया होता।

कृष्णके ऐसे वचन सुनकर गोपियाँ आर्तस्वरसे गाने लगीं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥
भा० १०-३१-९

गोपी—क्या कह रहे हो तुम ? हमारे प्राण तो जा ही रहे थे किंतु तुम्हारे कथामृतपानके लोभसे अब तक रुके हुए हैं। तुम्हारा कथामृत और नामामृत इन्हें रोके हुए है। तुमने हमसे मिलनेका वचन दिया था। उस वचनके पूरे होनेकी आशामें

हम जो रही हैं। वैष्णव तो जीवनकी अन्तिम साँस तक परमात्मासे मिलनेकी आशामें जीता रहता है।

प्रभु ! तुम्हारी लीलाकथा तो अमृतस्वरूपा है जो श्रवण मात्रसे पापोंका नाश करती है। उसका श्रवण, मङ्गल, आनन्ददायी है। यज्ञकथा सुननेसे आनन्द नहीं होता है। विरहाकुल जीवके लिए रासलीला जीवनरूप है, जीवनसर्वस्व है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंने, भक्त कवियोंने इसका गान और श्रवण किया है। यह कथा सभी पाप-ताप तो मिटाती ही है और सुनने मात्रसे परम कल्याण भी करती है। वह अतिसुन्दर, मधुर और शांतिदायक है। स्वर्गका अमृत तो पुण्योंको जलाता है जब कि यह कथा तो पापोंको जलाती है। जो व्यक्ति इस लीला-कथाका गान करता है वही इस जगतमें सबसे बड़ा दानी है।

रामजीने हनुमानजीसे पूछा था कि जानकी उनके विरहमें अपने प्राणोंकी रक्षा किस प्रकार कर रही है। तब हनुमानजीने उत्तर दिया—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित जाहिं प्रान केहि बाट ॥

आपका नाम रात-दिन उनकी रक्षा कर रहा है। आपका ध्यान द्वार है। नेत्र अपने चरणों ही में लगाये रहती हैं। तो फिर प्राण बाहर निकले भी तो कैसे ? वैसे तो विरहके कारण प्राण निकल ही जाते किंतु बाहर निकलनेका कोई मार्ग भी तो नहीं है। यदि आपका ध्यान और नाम छूट गया तो प्राण भी निकल जायेंगे किंतु उनको आपसे इतना तो प्रेम है कि आपका नाम और ध्यान छूट नहीं पाएगा और नाम-ध्यान गये बिना प्राण जा नहीं सकते। जानकीके मन, वचन और कर्म तीनों आपसे ही सम्बद्ध हैं सो उनके प्राण जा नहीं सक हैं।

कृष्णका कथामृत प्राणको विरहावस्थामें भी रोके रखता है। भगवानकी कथा भी उनके छः गुणोंसे युक्त है। वह मोक्षदा है, परमानन्द है, अमृत है, तप्तोंका जीवन है। संसारतापसे पीड़ितोंकी पीड़ाका निवारण करती है। ज्ञानी भी कथामृतकी स्तुति करते हैं। पापको दूर करनेवाली है। इसमें वीर्यधर्मका सूचन है। श्रवणके लिये कल्याणकारी है। कथामृतमें यश धर्म है, लक्ष्मीयुक्त है। सर्वत्र व्याप्त है। भगवानके छः गुण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, वैराग्य और श्री इस कथामृतमें भी हैं।

वस्त्रदानसे अन्नदान बढ़कर है किंतु कथादान सर्वश्रेष्ठ है। निरपेक्षतः कथा करनेवाला ही सच्चा भक्त है। ज्ञानदानसे जीवन सुधरता है। जीवको हमेशाकी शान्ति मिलती है।

कन्हैया, तेरे लिये हमने सर्वस्वका त्याग किया है। नाथ, तेरे लिये तो हमने लोकलाज तक छोड़ दी है और आज तू निष्ठुर हो गया है।

भाई छोड़ा, बन्धु छोड़ा, छोड़ा सगा सोई।
मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ॥

पति सुतान्वय भ्रातृबांधवान ति विलघय
तेऽन्त्यच्युता गताः। गतिविदस्तवोद्गीत मोहिताः

इस श्लोकमें गोपियोंका संन्यास प्रकट हुआ है।

अपना चित्त अब एकक्षण भी किसी अन्य वस्तुमें नहीं लगता है।

कोई वस्तुमें क्षण चित्त नव चोंटे,
अलबेलो आवी बेठो हैये जी रे;
दयाना प्रीतमजीने एटलुं जइ कहेजो,
क्यां सुधी आवां दुःख सहीये जी रे ॥

सो हमें शीघ्र ही दर्शन देनेकी कृपा करें।

मुझे दो दर्शन गिरिधारी,
तोरी साँवरी सुरत पर वारी रे।

यह विरहवेदना असह्य है, जिसे मीराबाईने इन शब्दोंमें प्रकट किया है—

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी,
कहाँ तू जासी ऐसो लगन लगाय।
तुम देखे बिन कल न परत है,
तड़प तड़प जिव जासी ॥

गोपियोंकी कृष्णदर्शन-लालसा भी कैसी है?

गोपियाँ आँखोंकी पलकें बनानेवाले ब्रह्माको भी कोसती हैं क्योंकि वे पलकें हिलतीं रहनेके कारण दर्शनमें बाधा हो जाती है। पलकें झपकनेसे एक क्षण तक हम आपके दर्शनसे वञ्चित हो जाती हैं। एक क्षणका विरह भी हमारे लिए तो असह्य है। आँखोंकी पलकें बनानेवाला ब्रह्मा जड़ है। यदि उसने पलकें बनाई ही न होतीं तो हम आपके दर्शन निरंतर कर सकी होतीं।

कुटिल कुंतलं श्रीमुख च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम।

नाथ, अपने दर्शनके लिए प्रतीक्षा ही कराते रहेंगे आप?

तुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते तो मेरी आंखें भी थक-हार गयी हैं। जबसे तू गया है, हम बड़ी बेचैन हैं, हमें शांति नहीं है।

दरस बिन दूखन लागे नैन ॥
जब ते तुम बिछुड़े पिव प्यारे, कबहूँ न पायो चैन ॥
शब्द सुनत मेरी छतियाँ काँपे, मीठे लागें बैन।
एकटक ठाड़ो पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥
विरह विथा कासों कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन।
मीरांके प्रभु कब रे मिलोगे, दुःख मेटन सुख दैन ॥

दुःखहर्त्ता और सुखकर्त्ता तुम हमें कब मिलोगे, दर्शन कब दोगे?

असह्य विरहवेदनाके कारण गोपियाँ रोने लगीं। अकेले गीतसे तो कुछ भी बन नहीं पाया। केवल गुणगान नहीं, रुदन भी आवश्यक है। गोपियाँ रोने लगीं तो परमात्मा प्रकट हुए।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः।

कृष्णदर्शनकी इच्छुक गोपियाँ थक-हारकर बड़े जोरसे रोने लगीं। प्रभुके लिए साधन करके थका हुआ जीव रोने लगता है तो प्रभु दयावश प्रकट होते हैं।

गोपियोंकी भाँति रो-रो कर तुम भी प्रभुको प्राप्त कर सकते हो।

रामकृष्ण परमहंसने कहा है—पत्नी, पुत्र आदिकी मृत्युके समय या धनसंपत्तिको पानेके लिये लोग आँसूकी सरिता बहा देते हैं किंतु ईश्वरके दर्शन न हो पानेके दुःखसे भगवान्के लिये आँसूकी एक बूँद तक गिराने वाले कितने हैं?

अपने अनुभवका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है—संध्या समय भी मुझे माँके दर्शन नहीं हो पाते तो मैं रो उठता, माँ! आजका दिन भी तेरे दर्शनके बिना ही चला गया। मैं रोता हुआ धरतीपर गिर जाता। तो अन्तमें उनका दर्शन हुआ। दर्शनप्राप्तिके लिये अतिशय व्याकुलतासे आँखोंसे आँसूधारा बहाओ। वे अवश्य दर्शन देंगे।

गोपियोंका क्रन्दन कृष्णसे देखा न गया। गोपियाँ अभिमान-रहित होकर, नम्र बन कर, रो रही थीं सो कृष्ण प्रकट हुए। भक्त जब भगवानके लिए क्रन्दन करता है तो वे प्रकट होते हैं।

तुम दीनतासे, रो-रोके पुकारोगे तो भगवान प्रकट होंगे और अभयदान देंगे।

भगवानने गोपियोंको वचन दिया— मैं तुम्हें छोड़कर कहीं भी न जाऊँगा।

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

दशम स्कन्धके इकतीसवें अध्यायको गोपीगीत कहा जाता है। इसमें भिन्न-भिन्न उन्नीस गोपियोंने गीत गाये हैं। इन गोपियोंके प्रकार वल्लभाचार्य महाप्रभुजीने बताये हैं। पहला श्लोक बोलनेवाली गोपी सात्त्विक-राजसी थीं सो उसने प्रभुकी प्रशंसा की। दूसरा श्लोक गानेवाली गोपी सात्त्विक-तामसी थी सो उसने श्रीकृष्णको उलाहना दिया। एक श्लोक तामस गोपी बोली, उसने कृष्णको निष्ठुर कहा। सात्त्विक गोपीने भगवान्के उपकार याद किये।

चौथी गोपी श्रुतिरूपा निर्गुण थी सो उसने कहा—आप तो समस्त देह-धारियोंके हृदयमें बसनेवाने साक्षी हैं, अन्तर्यामी हैं।

पाँचवे श्लोकमें अनन्यपूर्वा सात्त्विक गोपीने भगवान्की कृपा माँगी। अपना हाथ हमारे मस्तकपर पधराइये।

छठे श्लोककी अनन्यपूर्वा सात्त्विक तामसी गोपीने कृष्णपर अपना अधिकार बताते हुये धृष्टतापूर्वक प्रार्थना की।

गोपीगीतका उपसंहार करते हुए महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने सुबोधिनीमें कहा है—

नहि साधनसम्पत्त्या हरिस्तुष्यति कस्यचित्।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्॥

भगवान् साधन-संपत्तिसे संतुष्ट और प्रसन्न नहीं होते। भक्तोंकी दीनता ही एकमात्र साधन है जो उन्हें प्रसन्न कर सकती है।

गान और प्रलाप निष्फल रहे तो गोपियोंमें दैन्यभाव जागा और वे रोने लगीं।

गोपीगीत सुनकर श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष उपस्थित हुए थे। सो वैष्णव लोग इस गोपीगीतका पाठ करते हैं किंतु कुछ सम्प्रदायोंके अनुसार भगवानका प्रत्यक्ष दर्शन होने पर गोपीगीतका गान निषिद्ध है। गोपीगीत विरहगीत है, मिलनगीत नहीं।

गोपियोंने कृष्णको कपटी कहा था। हमें ऐसा नहीं कहना चाहिए।

भगवानको दया न आई और प्रकट न हुए तो भगवत्-विरहमें प्राण छटपटाने लगा। लोकलाजका त्याग करके गोपियाँ रुदन करती हुई पुकारने लगीं, हे गोविंद! हे दामोदर! हे माधव!

परमात्मा पूरा प्रेम चाहते हैं। पागल बने बिना परमात्मा नहीं मिल पाते। कामान्ध कामके पीछे, लोभी धनके पीछे और भक्त भगवानके पीछे पागल बनता है। जब तक जीव संसारके जड़ पदार्थोंके साथ प्रेम करता रहता है, तब तक ईश्वरको दया नहीं आती। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन यही है कि जीव विरहव्याकुलतासे भगवानके लिए एकांतमें आंसू बहाता रहे।

कृष्ण प्रकट हुए तो सबको आनन्द हुआ।

कुछ लोग प्रेम करनेवालेसे प्रेम करते हैं, कुछ प्रेम न करनेवालेके साथ भी प्रेम करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो किसीसे भी प्रेम नहीं करते।

प्रेमदाताके साथ प्रेम करनेवाला स्वार्थी है। बालक प्रेम न भी करे, फिर भी माता-पिता तो उससे प्रेम करते ही हैं।

अवधूत कोटिके महात्मा सतत ब्रह्माकारवृत्ति रखते हैं। अतः वे ईश्वरके सिवाय अन्य किसीसे भी प्रेम नहीं करते।

गोपियोंने कृष्णसे पूछा—आप इन तीनोंमें-से किस प्रकारके प्रेमी हैं?

कृष्ण—सखी, मैं तो इन सभी प्रकारोंसे परे हूँ। तुम्हारा प्रेम मैं जानता हूँ। मेरे वियोगसे तुम्हें दुःख तो हुआ किंतु विशिष्ट योगका दान करनेके लिए ही मैंने वियोग दिया था।

संयोगावस्थाकी अपेक्षा विरहावस्थामें प्रेमपात्रके साथ तादात्म्य अधिक होता है सो वियोगको एक विशेष प्रकारका योग कहा गया है। इस योगका दान करनेके लिए ही श्रीकृष्ण अदृश्य हो गये थे और इस प्रकार गोपियोंको अधिक निकट लाया गया। गोपियां ऐसी तल्लीन हो गयीं कि विरह होने पर भी अन्तरङ्गमें उन्हें संयोगकी अनुभूति हुई।

इस वियोगमें तुम्हारी अपेक्षा मुझे ही अधिक व्यथित होना पड़ा। तुम सब तो एक-दूसरेको सान्त्वना देती थीं। व्याकुल ललिताको विशाखा सान्त्वना देती थी तो विशाखाको चन्द्रावली किंतु इधर मैं तो अकेला ही रोता रहता था। मुझे सान्त्वना देनेवाला तो कोई भी न था।

सखी, तुम सब मेरी ही हो किंतु तुम्हें अभिमान हो आया था। उस अभिमानको मिटाकर तुम्हारा मन अपनेमें केन्द्रित करनेके हेतु ही तुमको विरहाग्निमें जलाना पड़ा। मेरे प्रति कुभाव न रखो। देवोंकी आयु लेकर भी तुम्हारी सेवा करूँ तो भी तुम्हारे प्रेमका ऋण चुका नहीं पाऊँगा। अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं भी न जाऊँगा।

जीव मात्र गोपी है। वह विशुद्ध होकर नम्रतासे प्रभुके पास जाये तो वे अवश्य दर्शन देंगे।

मैं तो तुम सबका जन्म-जन्मान्तरका ऋणी हूँ। मैं तुम सबके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो पाऊँगा।

मेरी सखियो, तुमने मेरे लिए घरगृहस्थीकी वे जंजीरें तोड़ डाली हैं जिन्हें योगीजन भी आसानीसे नहीं तोड़ पाते। हमारा यह मिलना सर्वथा निर्मल और निर्दोष है। यदि मैं अमर जीवन और अक्षर देहसे अनन्तकाल तक तुम्हारी सेवा-प्रेम-त्यागके ऋणको मिटाना चाहूँ तो भी नहीं मिट पायेगा। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥
भा० १०-३२-२२

भगवान रामावतारमें हनुमानजीके ऋणी रहे और कृष्णावतारमें गोपियोंके। श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीसे कहा था—

प्रति उपकार करउँ का तोरा।
सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ॥

भगवानको अपना ऋणी बना लो। उनसे कुछ भी न माँगोगे तो वे तुम्हारे ऋणी हो जायेंगे।

श्रीकृष्ण गोपियोंके ऋणी हैं तभी तो वृन्दावन छोड़कर जा नहीं सकते हैं।

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकम् न गच्छति।

द्वारिकालीलामें मर्यादा है, गोकुललीलामें प्रेम।

श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं। यह मिलन पांचभौतिक शरीरका नहीं था, क्योंकि वह तो वियोगाग्निमें जल गया था। यह तो आत्माका रसात्मासे मिलन था। गोपियाँ ईश्वरसे मिलनेके लिए छटपटाती थीं। वियोगमें प्राण छटपटाते हैं, तब जीव ईश्वरसे मिल पाता है। परमात्मासे वियोग ही सबसे बड़ा रोग है। श्रीकृष्णका विरह ही कठिनतम दुःख है। प्रभुके विरहमें संसारसे खिलवाड़ करने जैसा महापाप और कौन होगा? विष्ठाका कीड़ा विष्ठामें ही आनन्दका अनुभव करता है। जीवकी भी यही दशा है। उसे विषयमें ही सुख दिखाई देता रहता है। जीव भोगी है सो दुःखी होता रहता है।

जीव जब तक मिलनेके लिये व्याकुल नहीं होता, तब तक ईश्वर मिल नहीं पाते हैं।

रासलीलामें अद्वैत है।

योगका अर्थ है जीव और ईश्वरका अर्थ है संयोग। रासलीला महायोग है।

वियोगाग्निमें गोपियोंके पांचभौतिक शरीर जल गये। वे रसस्वरूप प्रभुका चिंतन करती थीं। ऐसा होनेपर ही प्रभुसे मिलन हो पाता है। शरीर मलिन है सो जले बिना उसका प्रभुसे मिलन नहीं होता। सतत भजन करते रहनेके कारण भक्तोंका शरीर दिव्य बनता है और वे ईश्वरको प्राप्त कर सकते हैं।

इस लीलामें प्रेम है, मोह नहीं। प्रेम अन्तरङ्गमें होता है, मोह बहिरङ्गमें। प्रेमको त्यागकी अपेक्षा है, मोहको उपभोगकी। प्रेम विरहसे पुष्ट होता है, मोह संयोगसे। वियोगमें प्रियपात्रका सतत स्मरण होता रहता है। वियोग तो विशिष्ट प्रकारका योग है। श्रीकृष्णने इसी विशिष्ट योगका दान गोपियोंको दिया।

रासलीलामें लौकिक कामाचार नहीं था। सभीकी अवस्था ग्यारह बरससे नीचेकी थी। ऐसे छोटे बालकोंके मनमें कामवासना कैसे हो सकती है?

भागवतके कथाकार श्रीशुकदेवजी ब्रह्मनिष्ठ महापरमहंस मुनि हैं जो लौकिक कामकी बात कर ही नहीं सकते। भागवतका श्रोता था परीक्षित जो मृत्युके किनारे बैठकर कथाश्रवण कर रहा था। उसके लिए भी कामाचारकी बातें सुननेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं हो सकता था। आसन्नमृत्यु व्यक्ति कामाचारकी बातें क्यों सुने?

रासलीलामें श्रीकृष्ण और गोपियोंका दैहिक मिलन नहीं था। गोपियोंका पांचभौतिक शरीर तो उनके अपने-अपने घरमें था। यहाँ तो उनका सूक्ष्म देहसे मिलन था, आत्ममिलन था।

व्रजौकसः स्वान् स्वान् दारान्

स्वपार्श्वस्थान् मन्यमानाः कृष्णाय न असूयन।

भा० १०-३३-३८

हे राजन्! भगवानकी मायासे मोहित व्रजवासी गोपाल अपनी पत्नियोंको अपने पास ही मानकर श्रीकृष्णकी ओर दोष-दृष्टिसे देखते नहीं थे। उनको भी आज श्रीकृष्णके प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ।

इस लीलामें गोपियोंके सूक्ष्म, आध्यात्मिक शरीरोंका ईश्वरसे मिलन था।

सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्वोंसे बना हुआ है। प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच-पाँच कर्मेन्द्रियाँ तब मन और बुद्धि, ये सब मिलकर सत्रह तत्व हुये। जब मन मरता है, तब सूक्ष्म शरीर भी मरता है और भक्तिरस मिलता है। शुकदेवजीने स्पष्टतः कहा है कि भौतिक देहविलयके पश्चात् ही गोपियोंको रासलीलाका लाभ मिला था। यह तो जीवका मनसे परमात्माके साथ मिलन था।

गोपियोंके लिये प्रयुक्त विशेषण देखिये—व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।

यहाँ मन शब्दका प्रयोग है, शरीर शब्दका नहीं। श्रीकृष्णने जिनका मन हर लिया है, वे हैं गोपियाँ।

इस लीलाका चिंतन करनेसे कामविकार नष्ट होता है। भागवतके दसवें स्कन्धके तेंतीसवें अध्यायका चालीसवाँ श्लोक देखिये—

भक्तिं परां भागवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

व्रजवासी नारियोंकी भगवान्‌के साथकी क्रीड़ाको जो धीर मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्रवण और वर्णन करता है, वह भगवान्‌की परमभक्ति पाकर हृदयके रोगरूप कामदेवसे मुक्त हो जाता है।

आरम्भमें गोपियोंने कहा है, हम सभी विषयोंका त्याग करके आई हैं, यहाँ तक कि अपने स्त्रीत्वका भी हमने त्याग किया है। उन्होंने अन्तमें कहा है, हमारे हृदयमें यदि कुछ मालिन्य, काम हो तो उसे मिटा देना। गोपियोंके काम-संबन्धी वचन कुछ लोगोंको अखरते हैं किंतु उनके आरम्भ और अन्तके वचन भी ध्यानमें रखने चाहिये

रासलीलाका श्रद्धापूर्वक श्रवण और वर्णन करनेसे भगवान्‌के चरणोंमें पराभक्ति प्राप्त होती है और शीघ्र ही वह हृदयरोग—कामविकारसे मुक्ति दिलाती है। उनका कामभाव हमेशाके लिये नष्ट हो जाता है।

रासलीलाके पहले अध्यायमें परमात्माका आत्माके साथ रमण है। जिस प्रकार प्रभुका सर्वांगोंके साथ रमण है।

भागवतकार जानते थे कि लोग कई आशङ्काएँ करेंगे। सो उन्होंने स्पष्टता भी की है। राजा परीक्षितने भी कुछ प्रश्न किये थे।

परीक्षितने शुकदेवजीसे पूछा—गोपियाँ तो श्रीकृष्णको अपना परम प्रियतम मानती थीं। उनमें ब्रह्मभाव नहीं था अर्थात् वे प्राकृत गुणोंमें आसक्त थीं। तो गुणोंके प्रभावरूप इस संसारसे उनकी निवृत्ति कैसे हो पाई?

शुकदेवजी—ईश्वरका चिंतन करते-करते जीव स्वयं ईश्वर बन जाता है।

शिशुपाल द्वेषभावसे प्रभुका चिंतन करता हुआ प्राकृत शरीरका त्याग करके उनका पार्षद बन गया था। तो गोपियोंका कृष्णमय बन जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

राजन्! रासमें श्रीकृष्णका रमण गोपियोंके शरीरोंके साथ नहीं था। उनके पांचभौतिक शरीर तो अपने-अपने घरमें थे। यहाँ तो परमात्माके साथ गोपियोंके आधिदैविक, आध्यात्मिक स्वरूपका मिलन है।

शरीर चाहे जहाँ रहे. मिलन तो मनसे होना है।

शरीर जहाँ भी हो, गति तो मनकी भावनाकी है। हमने इस विषयमें वृत्त और अवृत्त नामक दो ब्राह्मणोंका दृष्टान्त दिया है।

तेंतीसवें अध्यायमें राजा परीक्षितने एक और प्रश्न पूछा है—पूर्णकाम होते हुए भी श्रीकृष्णने ऐसा निंदनीय कृत्य क्यों किया?

शुकदेवजी—तेरे मनमें ऐसी अमङ्गलमयी बात कैसे आई ? यह कोई स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं था, जीव और ईश्वरका मिलन था।

यह रासलीला छः मास तक चली थी। क्या छः-छः मास तक व्रजनारियाँ अपने घरसे बाहर रह सकती थीं ? इसी बातसे सिद्ध होता है कि यह तो जीवका प्रभुसे मिलन था। परमात्माकी लीला अगम्य है।

ब्रह्मका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है।

कृष्ण तो गोपियोंमें ही नहीं, गोपियोंके पतिमें और सभी देहधारियोंमें आत्मारूपसे विराजित हैं। वे तो ईश्वर हैं, सभीके साक्षी और परम पति हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा हैं। राधाजी आत्माकार वृत्ति हैं। गोपियाँ आत्माभिमुख वृत्तियाँ हैं।

छोटा बालक निर्विकार भावसे दर्पणमें दिखाई देते हुए अपने प्रतिबिम्बसे खेलता है। इसी प्रकार इस लीलामें आत्माका आत्माके साथ रमण है।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥

इस रासलीलाका चिंतन-मनन करनेसे बुद्धि स्थिर होती है। बुद्धि तो चञ्चल है। पाँच विषय उसपर अधिकार जमाना चाहते हैं किंतु बुद्धि तो एक ईश्वरको ही अर्पण की जानी चाहिए। जीवका सच्चा पति ईश्वर ही है।

गीतामें अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा है--अपनी बुद्धि तू मुझे दे दे।

काम अदृश्य है। इस अदृश्य कामको मारना है। वह सबको मारता रहता है।

क्रोध-लोभ आदि चले जाते हैं किंतु अनेक अनर्थोंके मूल कामका जाना बड़ा कठिन है। जिसका काम मरा, उसका संसार भी मर जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

अगर कामको जीतना है तो केवल दूध और चावलका ही भोजन करो। रात्रिके समय गोपालजीकी पूजा और रासलीलाका पठन करो।

रात्रिके दूसरे प्रहरके समय अधिक सताता है सो उस समय बारह बजे श्रीकृष्णका स्मरण और पूजा करोगे तो काम नष्ट हो जायेगा।

किसी भक्तने पूछा—श्रीकृष्णने रातको बारह बजे ही क्यों जन्म लिया था ?

भगवानने स्वयं उत्तर दिया—यदि मेरा कोई भक्त उस समय मेरी सेवा-पूजा करेगा तो वह कामके अधीन नहीं हो पायेगा। जीवको कामसे बचानेके लिए ही मैंने रातके बारह बजे जन्म लिया है।

भागवत तो भवरोगकी औषधि है किंतु सभी व्रत-नियमोंका विधिपूर्वक पालन करना चाहिए। महापुरुष वेदशास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लंघन कभी नहीं करते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण भी ब्राह्म मुहूर्तके समय (प्रातः चार बजे) शैयाका त्याग कर देते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी त्रिकाल सन्ध्या हमेशा करते थे। एक बार वे जगन्नाथजीके मन्दिर गये। एकादशीका व्रत था। प्रसाद मिला सुखड़ी (लड्डू विशेष) का। अब करें तो क्या करें ?

समस्या आ पड़ी। प्रसादके प्राशनसे एकादशीका व्रत खण्डित हो रहा है और प्राशन न करने पर प्रभुके प्रसादका अपमान होने जा रहा है।

उन्होंने सारी रात प्रसादको हाथोंमें ही रखा और उसका गुणानुवाद करते रहे। द्वादशीका प्रभात प्रकट हुआ तो प्रसाद ग्रहण किया।

महाप्रभुजी वल्लभाचार्य कहते हैं—विषयसुखमें फँसे हुए विलासीके लिए यह पुष्टि मार्ग निषिद्ध है।

विषयाक्रांतचित्तानाम् नावेशः सर्वथा हरेः।

श्रीकृष्ण कैसे संयमी थे, उसका वर्णन हमने ऊपर बड़े विस्तारसे पढ़ा है। वे गोकुलमें जूतों, सिले हुए कपड़ों, अस्त्र-शस्त्रोंका उपयोग नहीं करते थे और मुण्डन भी नहीं कराते थे।

प्रभुकी गोकुल-वृन्दावनलीला इस प्रकार शुद्ध प्रेमकी लीला है। वृन्दावनमें वे केवल बाँसुरी बजाते हैं। यह वंशी शुद्ध प्रेमकी ही है।

कुछ महात्मा केवल रासलीला तककी ही भागवतकथा सुनना चाहते हैं। क्योंकि इससे आगे तो मथुराकी राजलीला है जिसमें युद्ध, वध, विवाह आदिकी बातें हैं। मथुरा और द्वारिका-में श्रीकृष्ण मधुर बाँसुरी नहीं बजाते, शङ्ख फूँकते हैं।

वेदोंके मन्त्र भोगपरक होते हुए भी उनका तात्पर्य त्यागपरक है, प्रभुके साथ तादात्म्य पानेसे है।

वेदांत अनुभवका विषय है, केवल वाणीविलासका नहीं।

यदि जेबमें-से पाँच रुपयेका नोट गुम हो जायेगा तो परीक्षा हो जायेगी कि वेदान्तके मन्त्रोंको तोतेकी भाँति बोल लेनेवाला वह वास्तवमें वेदांती है भी या नहीं। पाँच रुपयेके नोटकी कोई कीमत ही नहीं है, ऐसा नहीं है किंतु उस नोटके लिए अतिशय आसक्तिका होना बुरा होता है।

वेदांतके सिद्धांतोंका अनुभव सरल नहीं है। गोपियोंने तो भक्तिका सरलमार्ग बतलाया है। लोगोंको प्रेमलक्षणा भक्तिका मार्ग दिखानेके लिए ही कृष्णावतार है।

प्रतिदिन रात्रिको इस रासलीलाका चिंतन करो। बड़े-बड़े महात्मा भी कामनाशके हेतु रात्रिको स्नान करके इस रासपंचाध्यायीका पाठ करते हैं। यह लीला चिंतनीय है, अनुकरणीय नहीं। इस लीला द्वारा ही भगवानने कामका पराभव किया है। काम सबसे बड़ा हृदयरोग है। काम, क्रोधको जन्म देता है। कामका विनाश होनेपर कृष्ण निकट आ जायेंगे।

रात्रिको सोनेसे पहले स्नान करो। गृहस्थकी शैया शुद्ध नहीं होती है। पवित्र कमली पर शयन करके, रासलीलाका पाठ किया जाय तो काम मरता है।

जो वक्ता-श्रोता इस लीलाका मनन करेगा उसके कामका नाश होगा।

रासलीलाके बाद विद्याधर सुदर्शनकी कथा आती है। ऐसा क्यों है?

अपने सौंदर्यका अभिमान कभी न करो। सत्कर्म दीनता लानेके लिए है। प्रभुको दीनता प्यारी है। उद्धत व्यक्ति प्रभुको पसन्द नहीं है। किसी भी जीवको

क्षुद्र माननेवाले व्यक्तिकी भक्ति कभी फलवती नहीं होती। जहाँ-जहाँ दृष्टि दौड़े, वहाँ ईश्वरका दर्शन करना ही दीनता है। दीनता तो प्रभुको प्रसन्न करनेका साधन है।

रावणकी तपश्चर्या भी कुछ कम न थी, किंतु उसमें भोगलालसा थी, दीनता नहीं।

अपनेको निरभिमानी बतलानेवाला भी सूक्ष्म रीतिसे अभिमानी ही हैं।

३४ वें अध्यायमें सुदर्शन विद्याधरकी कथा है।

शिवरात्रिका पर्व था। नन्दबाबा अम्बिकावनकी यात्रापर गये हुये थे। ब्राह्मणोंको पुष्कल दान दिया गया। रात्रिके समय सबने सरस्वतीके किनारे मुकाम किया। वहाँ रहनेवाला अजगर नन्दबाबाको निगलने लगा—श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे वह मर गया। और उसमें-से एक देवपुरुष प्रकट हुआ।

भगवान्‌ने अनजाने बनकर उससे पूछा—कौन हो तुम?

उस देवपुरुषने कहा—मैं अगले जन्ममें सुदर्शन नामक विद्याधर था। मुझे अपनी सुन्दरतापर अभिमान था। कुरूपोंको देखकर मुझे हँसी आती थी। मैंने एक बार काले-कुबड़े ऋषि अङ्गिराको देखा तो मैं अपनी हँसी रोक न सका।

ऋषि क्रोधसे भड़क उठे—रे उद्धत? मेरा शरीर भले ही काला-कुबड़ा है किंतु मन, हृदय तो उज्ज्वल है किंतु तेरी बात तो ठीक उल्टी है। मैंने तो सत्सङ्गसे अपनी कृति सुधार ली है। तेरा तन तो उजला है किंतु मन काला-कलूटा है। मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू अजगर बनेगा।

शरीरमें कौन-सी सुन्दरता है? यह रुधिर, मांस, हाड़, चामसे बना हुआ है। यदि रास्तेमें हड्डी पड़ी हो तो लोग कतराकर निकल जायेंगे। सो शरीरको सुन्दर मत मानो।

किसीकी आकृति और त्वचाका रङ्ग मत देखो। त्वचाका चिंतन करना पाप है। महात्मा रङ्ग-रूप-आकृति नहीं, कृति देखते है। आकार तो मनमें विकार उत्पन्न करता है।

संसारके, शरीरके सौन्दर्यका चिन्तन करनेसे मन चंचल हो जाता है। परमात्माके सौन्दर्यका विचार करनेसे मन शान्त होता है।

शरीर और संसारको सुन्दर माना नहीं कि पाप शुरू हो जाता है। ईश्वरके सौन्दर्यकी कल्पनासे भक्ति शुरू होती है। ज्ञानकी दृष्टिसे सौन्दर्य किसीकी देह या संसारमें नहीं है। सौन्दर्य तो अन्दर है।

सौन्दर्य तो मनमें होता है, हृदयमें होता है, रूप-रङ्ग-आकृतिमें नहीं व्यक्तिके हृदयका सौन्दर्य देखो, शरीरका नहीं।

सत्कर्म करनेके बाद नन्दबाबा सो गये तो अजगर उन्हें निगलने लगा। इसका अर्थ यह है कि सत्कर्म करनेके बाद जागृत रहना चाहिये। सत्कर्म कर लेनेके बाद

लोग आत्मप्रशंसा, प्रमाद, निष्क्रियतामें डूब जाते हैं सो अभिमानरूपी अजगर उन्हें निगलने लगता है। रात्रिके समय जागनेका अर्थ है—स्वयं कुछ भी नहीं किया है ऐसा मानना और अनुभव करना। सत्कर्म हो जाय तो मान लो कि प्रभुकी कृपाके कारण ही वह सब कुछ हो सका है। प्रभुने मुझे निमित्त बनाकर वह सत्कर्म किया है।

आगे शङ्खचूडके वधकी कथा आती है।

गोपियाँ रात्रिके समय श्रीकृष्णके साथ रासलीला करती थीं और दिवसके समय भी श्रीकृष्णलीलामें लीन रहती थीं। युगलगीत और वेणुगीतके भाव समान हैं।

मनुष्य जब निठल्ला, बेकार बैठा होता है तब उसके मनमें पाप आता है। रातको जप करो। निवृत्तिके समय मनको कामसुख, द्रव्य आदिकी ओर न जाने देना।

यह मन तो चंचल वानर जैसा है। अकेला और निठल्ला हुआ नहीं कि कूदाकूदी करने लग जाता है। उसे हमेशा सत्कर्म, शुभ चिंतनमें लगाये रहो। कुछ काम न होगा तो वह बुरे विचारोंमें उलझ जाएगा। सो हमेशा भगवानका स्मरण और सत्कार्य करते रहो। आँख, नाक, कान, जीभ, मन सभीको भक्तिमें लगाए रहो।

एक ब्राह्मणकी पत्नीकी मृत्यु हो गयी तो वह बेचारा दुःखी हो गया। घरमें छोटे बच्चे थे और देखभाल करनेवाला कोई न था। उसने थक-हारकर अपने मित्रसे अपनी राम-कहानी सुनाई। तो मित्रने भूत प्रसन्न करनेका मंत्र दिया। ब्राह्मणने मंत्रजाप करके भूतको प्रसन्न कर लिया।

भूतने प्रसन्न होकर कहा, मैं तुम्हारे सभी कामकाज करूँगा किंतु मैं बेकार नहीं बैठ सकूँगा। यदि मुझे कुछ काम न दिया गया तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। भूत तो सभी काम कुछ ही मिनटोंमें खत्म कर देता था। ब्राह्मण चिंतित हुआ कि यह बेकार हो गया तो मुझे खा जाएगा। उसने मित्रसे बात की। मित्रने उत्तर दिया, अपने आँगनमें एक बड़ा-सा बाँस गाड़ दो और भूतसे कहो कि कामकाजसे निवृत्त होनेपर इस बाँसपर चढ़ते-उतरते रहना। ब्राह्मणने वैसा ही किया। भूत समझ गया कि यह तो मेरा भी गुरु है। वह शांत हो गया।

मन भी उस भूत जैसा ही है। इसे काम न दोगे तो वह तुम्हें खा जाएगा। जबतक नींद न आने लगे, बिस्तरके पास तक न जाना और काममें लगे रहना चाहिए।

जिसे मनकी चंचलताका भान हो जाय, उसे आत्मदर्शन हुआ है, ऐसा माना जाय तो कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि—

एको देवो मनः साक्षी।

गोपियाँ सारा दिन घरका कामकाज करती थीं और रातको इकट्ठी होकर कृष्णलीलाका चिंतन करती थीं, कीर्त्तन करती थीं।

ध्यान अकेले किया जाय किंतु कीर्त्तन तो सारे घरके लोग मिलकर करें। लोग घरको तो स्वच्छ रखते हैं किंतु मनको स्वच्छताकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। रातको सोनेसे पहले घरके सभी छोटे-बड़े एक साथ बैठकर भजन-कीर्त्तन करें तो बड़ा अच्छा है। घर पवित्र हो जाएगा।

कथा कीर्त्तनभक्ति है। कीर्त्तनके तीन प्रकार हैं—नामसंकीर्त्तन, गुणसंकीर्त्तन और लीला-संकीर्त्तन। घरमें हर दिन संकीर्त्तन होना चाहिए।

अरी सखी, मेरा कन्हैया भी कई तरहसे बाँसुरी बजाता है। जब वह दाहिने गालकी ओर रखकर बाँसुरी बजाता है, तब गोपियां तन्मय हो जाती हैं, आकाशकी ओर दृष्टि करके बजाता है, तब पातालकी नागकन्याएं डोल उठती हैं।

दिवसमें कृष्णलीलाका वर्णन और कीर्त्तन करके गोपियाँ ब्रह्मसम्बन्ध बनाये रखती हैं।

ब्रह्मसम्बन्धको सतत बनाये रखनेके लिये सतत प्रयत्न किया जाय। एक क्षणमात्र भी जड़ वस्तुकी ओर ध्यान न जाना चाहिये।

अब अक्रूरागमनका प्रसङ्ग आता है।

एक बार नारदजीने कंसके पास जाकर कहा, तू तो बड़ा भोला है। इस वसुदेवने तुझे उल्लू बनाया है। वह अपने आठवें पुत्रको नन्दजीके पास छोड़ आया और नन्दजीकी पुत्रीको यहां ले आया है। श्रीकृष्ण देवकीका पुत्र है और बलराम रोहिणीका। उन दोनोंने मिलकर तेरे कई सेवकोंको मार डाला है। कंसने यह सब सुना तो वह आगबबूला हो गया और वसुदेवको मारनेके लिए तैयार हो गया।

जो वैरभाव बढ़ाता है, वह वैष्णव नहीं है।

नारदजी सुलगाना भी जानते हैं और बुझाना भी। जब कि हम जैसे तो मात्र सुलगाते ही रहते हैं। नारदजी कंसको समझाने लगे—वसुदेवको मारनेसे क्या लाभ होगा? तेरा काल तो श्रीकृष्ण है। यदि तू वसुदेवको मारने जायेगा तो कृष्ण समाचार पाते ही भाग निकलेगा। सो तू उस कृष्णको ही मारनेकी सोच।

कंस सोचने लगा कि अब कृष्णको किस उपायसे मौतके घाट उतारा जाय। ब्राह्मणने राजासे कहा, तुम धनुष-यज्ञ करो। इस यज्ञसे यजमानकी आयु बढ़ती है और शत्रु मर जाते हैं किंतु यदि यज्ञके आरम्भके पांच दिनोंमें विघ्न आयें तो यजमान मरता है। उस समय कंसके कुछ मल्ल आये। उन्होंने कहा, अरे वह छोकरा क्या करेगा? तुम्हारे कालके भी काल हैं हम तो।

कंसने यज्ञके बहाने नन्दको पुत्र-सहित आमन्त्रण भेजनेकी बात सोची और मल्लोंसे कहा, वे इधर आते हों तब काम तमाम कर देना। वे मेरे शत्रु हैं।

विनाशकाले विपरीत बुद्धि। कालके समीप आने पर पुण्यशाली, पुण्यकार्योंमें जुट जाता है और पापी क्रोधी हो जाता है।

राम-कृष्णको बुलानेके लिए किसे भेजूं ? हाँ, अक्रूरको ही भेजूं। अक्रूर विश्वासघात नहीं कर सकते।

जो क्रूर है, वह तो श्रीकृष्णको कैसे ला सकता है ? कामसुखका चिंतन करनेवाला मन क्रूर है। अक्रूर बनकर जाय, वही श्रीकृष्णको अपने साथ ले आ सकता है। जो क्रूर नहीं है वह है अक्रूर।

कंसने अक्रूरजीको बुलाया और कहा—चाचाजी, एक काम करना है तुम्हें। नारदजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही देवकीका वह आठवाँ पुत्र है जो मुझे मारनेवाला है। मैं अपने इस कालको मारना चाहता हूँ। तुम नन्दबाबाको धनुष-यज्ञमें पधारनेका आमन्त्रण दो और कृष्ण-बलरामको अपने साथ लेते आओ। हाँ, किसीको कहीं इस बातका पता न लग जाय कि मैं उसे मारना चाहता हूँ। बस, मेरा यह छोटा-सा काम कर दो।

कंस साक्षात् मृत्युको ही आमन्त्रण भेज रहा है। मनुष्यके बुलानेपर मृत्यु अवश्य आती है। कंस मरनेके लिए अधीर हो गया है सो कालको बुला रहा है। अधिक जीने या जल्दी मरनेकी इच्छा न करो। कब मरूँगा, ऐसा कभी नहीं सोचो। जीवन कैसा रहेगा, यही सोचो।

व्यासके शिष्य दासकी कथा सुनिए।

व्यासका शिष्य दास गुरुजीकी बड़ी सेवा करता था। उसने एक बार गुरुजीसे पूछा, मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं कब मरूँगा ? व्यासने उससे कहा, क्या करेगा जानकर ? जाने भी दे किंतु दास कब माननेवाला था ? तो वे दोनों यमराजके पास पहुँचे। यमराजने भी अपना अज्ञान बताया। मेरे मंत्री मृत्युदेव ही बता सकते हैं। चलो, उसीके पास चलें। तीनों मृत्युदेवके पास आये। मृत्युने कहा, यह तो प्रारब्ध ही बता सकता है। अब वे चारों विधाताके पास आये।

विधाताने कहा, दासके प्रारब्धमें लिखा है कि जब वह व्यास, यमराज और मृत्युदेवको लेकर मेरे पास आयेगा, तब उसकी मृत्यु होगी। व्यासजी, यह आपका शिष्य है। वह मर न पाये, इसीलिए मैंने ऐसा लिखा था। अब तो कोई उपाय नहीं है। बस, अब तो कुछ ही क्षण बाकी रह गए हैं उसके मरनेमें।

मृत्यु कब होगी, ऐसा सोचना व्यर्थ है। यह शरीर तो हर क्षण मरता जा रहा है। मरने-जीनेका विचार अधिक न करो। ये दोनों विचार बाधक हैं। सो इतना ही सोचो कि अपने हाथ कुछ पाप न हो, परोपकार और पुण्यकार्यमें ही जीवन व्यतीत हो जाय।

कंस—अक्रूरजी, तुम कल गोकुल जाओ और कृष्ण-बलरामको ले आओ। यह बात गुप्त ही रखनी होगी।

अक्रूरजी—तेरी आज्ञा है तो मैं कल गोकुल चला जाऊँगा।

कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी सो उसने श्रीकृष्णको आमन्त्रण भेजा।

अक्रूर राजसभासे निवृत्त होकर घर लौटे। सारी रात नींद न आई। वे कृष्णका दर्शन करनेके लिए अधीर हो गए।

मुझे लागी लगन, मुझे लागी लगन ;
मुझे लागी लगन तेरे दर्शनकी ॥
जैसे बनमें पपीहा मनमें,
आश करे नित बरसनकी ॥···मुझे···
गले बनमाला मुकुट विशाला,
पीतबसन सुन्दर तनकी ॥···मुझे···
मणिकटि ऊपर चरणन नुपूर,
करमें गदा सुदर्शनकी ॥···मुझे···
ब्रह्मानन्द ध्यास मनमाँही,
चरणकमल युग परसनकी ॥···मुझे···

प्रातःकालमें अक्रूरजी शीघ्रतासे सन्ध्यादि कर्मोंसे निवृत्त हो गये। कंसका सुवर्णरथ आया तो अक्रूरजी सवार होकर गोकुलकी दिशामें चल निकले। रास्तेमें वे श्रीकृष्णके ही विचार करते जा रहे हैं। मेरा भाग्य उदित हुआ कि आज भगवानके दर्शन होने जा रहे हैं। मैं अधम, पापी, अपात्र आपकी शरणमें आ रहा हूँ। मुझे अपनाकर मेरा जन्म सफल कीजिए।

अक्रूरजीकी भाँति मार्गमें प्रभुका ही चिंतन करते रहना चाहिए। हर कदम पर कृष्णको याद करो। आजकल तो लोग चलते-चलते दूसरे लोगोंके चेहरे, कपड़े, मोटर, दुकान आदि देखते चलते हैं और उन्हींके बारेमें सोचते रहते हैं। ऐसा करनेसे कौन-सा लाभ होगा? मन और बिगड़ता जाएगा। मन बिगड़ता तो जल्दी है किंतु सुधरते बड़ी देर लगती है। सो भगवानका ही स्मरण करते हुए ही हर कदम पर प्रदक्षिणाका पुण्य मिलेगा।

अक्रूरजी मार्गमें प्रभुको मनाते आ रहे हैं। तुम भी वैसा ही करो। जो व्यक्ति मार्गमें भजन नहीं करता है, वह आँखोंसे और मनसे पाप कर रहा है।

पापी चलते-चलते भी पाप करता चलता है और पुण्यशाली पुण्य। आते-जाते लोग, उनके चिकने-चुपड़े चेहरे, रङ्गबिरंगे कपड़ोंकी तड़क-भड़क, मोटर, गाड़ी, दुकान आदि तो रोजके हैं। उनकी ओर दृष्टि कभी न करो।

जो भागवतकी कथा सुनता है, उनका भगवानसे सम्बन्ध जुड़ता है।

मार्गमें अक्रूरजी परमात्माका स्मरण करते हुए अपने भाग्योदयके बारेमें सोचते जा रहे हैं। मुझसे कामीको भगवानके दर्शन कैसे हो सकते हैं? किंतु कृष्णने मुझे अपनाया है इसीलिए कंसने मुझे भेजा है। लगता है कि साँझके समय गौशालामें कन्हैयाका दर्शन होगा। वे वहाँ गोपालोंके साथ होंगे। मैं पहले बलरामको वन्दन करूँगा और श्रीकृष्णसे कहूँगा, हजारों वर्षोंसे बिछुड़ा हुआ मेरा जीव आज आपसे मिल पाया है।

हे नाथ, इस जीवको अपना लो। एक बार इस अधम जीव पर कृपा करो। एक बार कह दीजिए कि तू मेरा है। मेरे भगवानकी दृष्टि तो प्रेमसे भीगी हुई है। उनके स्नेहभरे नयन मुझे पवित्र कर देंगे। जब मैं वन्दन करूँगा, वे मुझे कृपादृष्टिसे देखेंगे। मेरी ओर देखकर मेरे मस्तक पर अपना वरद हस्त पधरायेंगे।

अक्रूरजी तो ऐसी कल्पनामें डूब गये कि मन-ही-मन उन्होंने मान लिया कि वे गोकुल पहुँच गए हैं और श्रीकृष्ण उनके मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं। ऐसा सोचकर स्वयं अपना हाथ अपने सिरपर रख दिया। प्रभुस्मरणमें ऐसी एकाग्रता होगी तभी प्रभु प्रसन्न होंगे।

पवित्र विचार करते रहनेसे ही जीवन सफल होता है। मेरे पास इतना धन है, अब इतना और इकट्ठा हो जाय तो मोटर दौड़ाने लगूं। दो वर्ष धूमधामसे धन्धा चलेगा तो मोटर आ जायेगी। इस प्रकारके सुखोपभोगके विचार करनेवालेकी आत्मशक्ति नष्ट होती जाती है। पवित्र विचार ही जीवनको सुधार सकते हैं। सभी अपने मनकी नहीं, ईश्वरके मनकी होती है। पवित्र विचार करनेसे, प्रभुसे प्रेम करनेसे हृदय पवित्र बनता है।

आत्मामें जो शक्ति है, वह तो परमात्माकी है। आत्मा और परमात्मा एक ही हैं। पवित्र विचारोंसे हृदय पवित्र और शुद्ध बनता है। इसीलिए तो कहा गया है—

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

मेरा मन हमेशा शुभ संकल्प करे। किसीका भी बुरा न चाहो, सभीका ही भला चाहो।

भगवानने अक्रूरके सभी शुभ संकल्प पूर्ण किये थे। भगवान शुभ विचारों और संकल्पों-को पूर्ण करते हैं।

वेदांत संकल्पका निषेध करता है। संकल्परहित बन पाना बड़ा कठिन है। इसीलिए तो वैष्णवाचार्य भगवानके लिए सङ्कल्प करनेको कहते हैं।

अक्रूरजी सोचते हैं कि कन्हैया उन्हें नाम लेकर पुकारेगा भी या नहीं। वैसे तो मैं पापी हूँ, अधम हूँ किंतु वयोवृद्ध हूँ। वसुदेवका चचेरा भाई भी हूँ और मित्र भी। सो कन्हैया मुझे शायद चाचा कहके पुकारेगा। यदि वह मुझे चाचा कहकर उठने-बैठनेको कहेगा तभी मैं उठूंगा-बैठूंगा। वह मुझे चाचा कहेगा तो मेरा जन्म सफल हो जायेगा।

भगवान जिसका आदर नहीं करें, उसका जीवन वृथा है। जीवमात्र मानका भूखा है। जगतकी बातों पर ध्यान न दो। कोई प्रशंसा करेगा तो सद्भाव जागेगा और कटु बोलेगा तो कुभाव। सो लोगोंके कहनेकी चिंता छोड़कर, भगवान क्या कहेंगे, ऐसी चिंता करते रहो। भगवान हमसे सद्भावकी अपेक्षा करते हैं। वे सोचते हैं कि इस जीवने पन्द्रह दिनों तक कथा सुनी है सो कुछ तो सुधार हुआ होगा उसके मनका।

ईश्वरके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध जोड़ना ही पड़ेगा ।

गोस्वामी तुलसीदासजी स्वयंको रामजीका सेवक मानते थे—

ब्रह्म तू हौं जीव हौं, तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा तू, सब विधि हितू मेरो ।।
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै ।।

वृन्दावनके वासी एक निःसंतान महात्माने सोचा, जब तक योगाभ्यास किया जाता है, मन स्थिर रहता है । प्राणायामकी समाप्ति होते ही मन चंचल होकर कूदाकूदी करना शुरू कर देता है । उसने संसारको भूलनेकी युक्ति की । उसने कन्हैयाको अपना बालक मान लिया । मैं नन्द हूँ और वह मेरा पुत्र है । वह मेरी गोदमें बैठा है, मेरी दाढ़ी खींच रहा है । इस प्रकार इस महात्माने वात्सल्य भावसे भक्ति करना आरम्भ कर दिया ।

संसारका विषयावेश उतरनेपर भगवान्‌के लिए भाव जागता है । पुत्र दुःख भी देता है और सुख भी ।

यह साधु परमात्मासे पिता-पुत्रका सम्बन्ध जोड़कर संसारको भुलाकर प्रभुमय हो गया । माँकी भाँति पुत्र-कन्हैयाको लाड़-लड़ाने लगा । वह मन-ही-मन कल्पना करता था कि कान्हा आम माँग रहा है । इस प्रकार वह मन-ही-मन कन्हैयाकी सेवा करने लगा । कन्हैया तो ऐसा भोला है कि मनसे देनेवालेपर भी प्रसन्न होता है ।

साधु गङ्गास्नान करनेको तैयार होता है तो उसे लगता है कि कन्हैया उससे कह रहा है, बाबा, मुझे छोड़कर कहीं न जाना । मानसी सेवामें लीन साधु यात्रा करनेके लिए भी नहीं जा सकता क्योंकि उसका बेटा कन्हैया अभी छोटा-सा बच्चा ही है । उसकी देखभाल कौन करे ?

इस प्रकार वह साधु मानसी सेवा करता हुआ मर गया । शिष्य शवको श्मशानमें ले गये । अग्निसंस्कारकी तैयारी चल रही थी । इतनेमें एक सात वर्षका बालक गङ्गाजल लेकर आया और लोगोंसे कहने लगा, मैं इनका पुत्र हूँ सो इनके अग्निसंस्कारका अधिकार मेरा है । मेरे पिता गङ्गास्नान करना चाहते थे । सो मैं गङ्गाजल ले आया हूँ । उसने साधुको स्नान कराके पुष्पमाला पहनाकर प्रणाम किया और अग्निसंस्कार किया । वहाँ सब शिष्य और साधु खड़ेके खड़े रह गये ।

अग्निसंस्कार संपन्न होते ही वह बालक अन्तर्धान हो गया । अब सभीको होश आया कि साधु तो निःसंतान था । स्वयं भगवान ही बालकका रूप धारणकर आये थे और महात्माकी अन्त्येष्टि कर गये । महात्माकी इच्छा सन्तुष्ट हुई ।

कई बार ऐसा होता है कि लाखोंकी सम्पत्तिका वारिस पुत्र धन बटोरकर चला जाता है । जब कि प्रभु ऐसा नहीं करते । वे कभी विश्वासघात नहीं करते । वे तो मानवके अन्तकालमें दौड़ते हुए आते हैं । जीव तो जीवके विश्वासका घात करता है, प्रभु ऐसा कभी नहीं करते ।

जीव जिस भावसे श्रीकृष्णका स्मरण करता है, उसी भावसे वे आ मिलते हैं।

ये यथा माम् प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

जैसी जिसकी भावना होगी, वैसी सिद्धि होगी।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।

भगवान् कहते हैं—तू चाहे जिस भावसे भजे किंतु मुझे भजता रह । स्त्री-पुत्रादिका भजन कोई काम नहीं आयेगा ।

यह क्षुद्र जीव परमात्मासे क्या प्रेम कर पायेगा ? परमात्मा जैसा प्रेम जीवसे करते हैं, वैसा प्रेम वह कभी प्रभुसे कर पाता है क्या ? भगवान कहते हैं, अरे जीव ! तू कभी मुझसे प्रेम करता भी है ? मैं तो सारा दिन तेरी झांकी करता रहता हूं जब कि तू तो दिनमें दो बार भी मेरे दर्शन नहीं करता है ।

अपने-अपने कुटुम्बके लिये तो कौआ और कुत्ता भी जीता है । जो ईश्वरके लिये जीता है, उसीका जीवन सार्थक माना जाएगा ।

अक्रूरजी मनमें भाँति-भाँतिकी कल्पना करते जा रहे हैं। हाँ, कन्हैया मुझे चाचा ही कहेगा किंतु मैं तो कामी और विलासी हूँ। वह मुझे दर्शन भी नहीं देगा तो ?

जिसका जीवन भोगविलासमें बीता जा रहा है, उसे प्रभु शीघ्र दर्शन नहीं देते ।

मैं यौवनके नशेमें चूर था। उस समय मैंने बहुत पाप किये थे। यदि इस कारणसे कन्हैया मुझे न अपनायेगा तो ? मेरे पहुँचनेका समाचार पाते ही वह कहीं छिप जायेगा तो ?

अपनी युवावस्थाके समयके पापाचारको याद करके अक्रूरजी धीरज खो रहे हैं। फिर भी वे सोचते हैं कि श्रीकृष्ण तो पतितपावन हैं, वे अवश्य मुझे अपनायेंगे। यदि मुझ जैसे पापीको नहीं अपनायेंगे तो फिर उन्हें पतितपावन कौन कहेगा ?

हे नाथ, मैं पतित हूँ और आप पतितपावन ! मुझे अपना लीजिएगा।

विचार करना ही है तो पवित्र विचार करो । बुरे विचार मनको विकृत करते हैं।

मार्गमें शुभ शकुन हुए तो अक्रूरजीने सोचा, भगवान मुझे अवश्य अपनायेंगे।

अक्रूरजीने मार्गमें श्रीकृष्णके चरणचिह्न देखे। कमल, ध्वजा और अंकुशयुक्त चरण तो मेरे श्रीकृष्णके ही हो सकते हैं। इसी मार्गसे कन्हैया गया होगा। वह खुले पाँव ही गायोंको चराता फिरता है।

आदिनारायणका चिंतन हो रहा है। यदि वे खुले पाँव पैदल घूमते हैं तो मैं तो उनका सेवक हूँ, मैं रथमें कैसे बैठ सकता हूँ ? मैं सेवा करने योग्य नहीं हूँ, अधम हूँ, पापी हूँ । मैं तो वैष्णवका दास हूँ। मैं तो श्रीकृष्णकी शरणमें जा रहा हूँ। मुझे रथपर सवार होनेका क्या अधिकार है ? ऐसा सोचकर वे पैदल चलने लगे।

गोकुल पहुँचकर वहाँकी रज सारे शरीर पर उन्होंने अर्चित कर ली। व्रजरजकी बड़ी महिमा है क्योंकि वह प्रभुके चरणोंसे पवित्र जो हुई है।

अक्रूरजी परमात्माके लिए पागलसे हो गये हैं। जैसे पैसोंके लिए पागल हुए बिना पैसा नहीं मिलता है, उसी तरह प्रभुको पानेके लिए उनके पीछे पागल बनना पड़ता है। पागल किसी वस्तुके लिए नहीं, प्रभुके लिए बनो। कामांध व्यक्ति शरीरके लिए पागल होता है और लोभी धनके लिए। कामान्ध व्यक्तिको स्थल-कालका भी भान नहीं रहता है।

भगवानको पानेके लिए भी देहभान और स्थल-कालको भूलकर पागल बनना जरूरी है।

भगवान पैदल चलते हैं तो मुझे भी दण्डवत् करते-करते चलना चाहिए। तभी मेरे पाप जलेंगे और अक्रूरजी दण्डवत्-प्रणाम करते हुए आगे बढ़ने लगे।

अक्रूरजी वन्दनाभक्तिके आचार्य हैं।

बद्रीनाथ जाते हुए मार्गमें हनुमानचट्टी नामक स्थान आता है। वहाँ पहुँचने पर यात्रीका हृदय भर-भर आता है। मैं परमात्मासे मिलने जा रहा हूँ। कल उनके दर्शन होंगे। मुझ पापीको वे अपनायेंगे क्या ? मुझसे जाने-अनजाने बहुतसे पाप हुए होंगे। मुझे दण्डवत् करते हुए जाना चाहिए। तभी मेरे पाप नष्ट होंगे। मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करते-करते आगे बढ़ूँगा। ऐसा सोचते हुए कई यात्री दण्डवत्-प्रणाम करते-करते आगे बढ़ते हैं और हनुमानचट्टीसे बद्रीनाथका मार्ग इसी प्रकार तयकर देते हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

राजन् ! अक्रूरजी आदिनारायणके दर्शनके लिए दण्डवत्-प्रणाम करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

परमात्माको प्रसन्न करनेका एक अच्छा-सा साधन है दण्डवत्-वन्दन।

मथुरासे निकले हुए अक्रूरजीको गोकुल पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई, क्योंकि वे मार्गमें बड़े भक्तिभावसे दण्डवत्-प्रणाम करते हुए आगे बढ़ते थे।

भगवानने अक्रूरजीके मनोरथ पूर्ण किये।

भगवानके लिए किये गए शुभ संकल्प वे अवश्य पूर्ण करते हैं।

रोज भावना करो कि मृत्युके समय भगवान तुम्हें लेने आयें।

जब बुरे संकल्प सिद्ध होते हैं तो शुभ सङ्कल्प सिद्ध क्यों न होंगे ?

दण्डवत्-प्रणाम करते-करते अक्रूरजी गोशालामें आये। उन्होंने सोचा था कि श्रीकृष्णके वहीं दर्शन होंगे। दर्शन हुए। वे तो कहना चाहते थे कि वे पापी हैं और श्रीकृष्णकी शरणमें आये हैं किंतु उनका गला भर आया, वे एक शब्द भी बोल न सके और भावावेशसे अचेत-से होकर भगवानके चरणोंमें जा गिरे। श्रीकृष्णको उन्होंने प्रणाम किया।

परमात्माकी आँखें तो सदा-सर्वदा प्रेमभीगी ही होती हैं। उन्होंने देखा कि अक्रूरजी अपनी शरणमें आये हैं।

अक्रूरजी चाहते थे कि जब वे प्रणाम करें, उसी समय ठाकुरजीकी दृष्टि उन पर पड़े

कि जिससे उनका हृदय शुद्ध हो जाय और पाप करनेकी इच्छा ही न जागे। उनकी यह भी इच्छा थी कि प्रभु उनके सिरपर हाथ रक्खें।

प्रभुने अक्रूरजीके मस्तकपर अपना वरद हस्त पधराते हुये उनको खड़ा किया। अक्रूरजीने तो सोचा था कि जब कन्हैया उन्हें चाचा कहकर पुकारेगा, तभी वे खड़े होंगे किंतु मुझसे पापीको भला वे चाचा क्यों कहेंगे? वे मुझे नहीं अपनायेंगे तो ब्रह्मसम्बन्ध पक्का नहीं होगा।

भगवान किसीको भी जल्दी नहीं अपना लेते हैं। जीव मन्दिरमें जाकर भगवानसे कहता है कि वह उन्होंका है किंतु घर आकर वह अपनी पत्नीसे कहता है कि वह उसीका है किंतु जीव बड़ा मूर्ख है। वह यह नहीं जानता है कि 'प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समायं।'

भगवानने अक्रूरजीका मनोभाव जान लिया। उन्होंने सोचा कि यदि चाचा कहनेसे अक्रूरजीको सुख मिलता हो तो ऐसा कहनेमें कौन-सी आपत्ति है। जीव जिस भावसे मुझे भजता है, उसी भाव और सम्बन्धसे मैं भी उसको भजता हूँ। मैं जीवका पिता हूँ और पुत्र भी।

ईश्वरको महान क्यों माना जाता है? इसका कारण यह है कि वे दुराग्रही नहीं, अनाग्रही हैं। जीव ही दुराग्रही है। जीवको कुछ सम्मान या सम्पत्ति मिलते ही वह दुराग्रही बन जाता है।

ईश्वरके साथ चाहे जिस प्रकारका सम्बन्ध जोड़ लो। वे कभी विश्वासघात नहीं करेंगे। उनके साथ पिता-पुत्र-पति-सखा-बन्धु-सेवक या अन्य जो चाहो सो सम्बन्ध कायम कर लो। किसी भी प्रकारका सम्बन्ध कायम किये बिना जीवन सफल नहीं होगा।

अक्रूरजी चाहते थे कि श्रीकृष्ण चाचा कहकर पुकारें। श्रीकृष्णने उनके मस्तकपर हाथ पसारते हुए कहा, चाचाजी, अब उठिये भी। उनको उठाकर आलिंगन दिया। जीव जब शरणमें आता है तो भगवान उसको अपनी बाँहोंमें भर लेते हैं।

आज जीव भगवानकी शरणमें आया है। भगवानने अक्रूरजीकी सभी मनोकामना सन्तुष्ट की।

प्रभु शुभ संकल्पको हमेशा साकार करते हैं। उस लकड़ी काटकर बेचनेवालेने सत्यनारायणकी कथा करनेका संकल्प किया तो प्रभुने उसकी भी सहायता की थी। शुभ विचार हमेशा साकार होते हैं। अक्रूरजीकी इच्छाएँ पूर्ण हुईं। जिस जीवको अक्रूरजीकी भाँति आदर मिले, वही धन्य है, अन्यथा जगतके मानपत्र तो सब बेकार हैं।

जगतके मान-अपमानसे प्रसन्न-अप्रसन्न होना निरर्थक है। मृत्युके समय जगतके मानापमान कुछ काम नहीं आयेंगे। भगवान जिसका आदर करते हैं, उसीका मान चिरस्थायी रहता है।

गोशालासे सब नन्दजीके घरपर आये। नन्दजीने अक्रूरजीका स्वागत किया। भोजनादिसे निवृत्त होनेपर नन्दजीने अक्रूरजीसे आगमनका कारण पूछा।

अक्रूरजी—नन्दजी, मैं तो आप सबको राजा कंसकी ओरसे आमन्त्रण देने आया हूँ। मथुरामें धनुष-यज्ञ किया जा रहा है। आप सबको दर्शनार्थ बुलाया गया है। आप चाहे गाड़ीसे आएँ किंतु बलराम-श्रीकृष्णके लिए तो सुवर्णरथ भेजा गया है।

नन्दजी बहुत भोले थे। वे आमन्त्रण पाकर प्रसन्न हो गये। मैं कंसको कर देता हूँ सो मेरे बेटोंके लिए सुवर्णका रथ भेजा होगा। मेरे पुत्रोंसे कंस कितना प्यार करता है।

नन्दबाबा क्या जानें कि विश्वास उत्पन्न करनेके हेतु ही कंसने सोनेका रथ भेजा था।

नन्दबाबा कहते हैं, मैं भी चाहता था कि अपने पुत्रोंको कभी मथुरा भी दिखाऊँ।

गाँवके बालकोंने यह बात जानी तो वे भी साथ चलनेको तैयार हो गये। हम नहीं होंगे तो कन्हैयाकी देखभाल कौन करेगा? वे मानते थे कि बेचारे कन्हैयाको वे ही सँभाल सकते हैं। जगतकी देखभाल करनेवालेकी आज बालक देखभाल करने चले हैं। नंदबाबाने सभी बच्चोंको साथ चलनेकी अनुमति दे दी।

यह सारी बात जब यशोदा तक पहुँची तो उनका तो दिल ही बैठ गया। यह अक्रूर अक्रूर नहीं, क्रूर ही है। मेरे लालाको मत जाने दो। वह चला जायेगा तो गोकुल उजड़ जायेगा। वह नहीं होगा तो गायें भी खाना-पीना छोड़ देंगी। यदि ले जाना ही है तो बलरामको ले जाओ, कन्हैयाको नहीं। सुना है कि मथुराकी नारियाँ जादूगरनी होती हैं। कुछ ऐसा टोना कर देंगी कि मेरा कन्हैया वापस नहीं आ सकेगा।

यशोदा नन्दजीसे भी विनती करने लगी—यदि तुम्हें मथुरा जाना हो तो जाओ, किंतु लालाको न ले जाओ। वहाँ उसकी देखभाल कौन करेगा? वह बड़ा शर्मीला है। भूखा होने पर भी कुछ माँगता नहीं है। उसे मनाकर कौन खिलायेगा?

दो-तीन दिन पहले ही मैंने बुरा सपना देखा था। मेरा लाला मुझे छोड़कर हमेशाके लिए मथुरा जा रहा है। यह अक्रूर मुझे काल जैसा लगता है। मैं लालाको अपनी दृष्टिसे दूर नहीं होने दूंगी।

नन्दबाबा यशोदाको ढाढ़स बँधाते हुए समझाने लगे—कन्हैया ग्यारह बरसका तो हुआ। अब कितने दिनों तक तू उसे अपने घरमें रखेगी? उसे बाहरका जगत भी देखना चाहिए। मैं अब उसे गोकुलके राजा बनने योग्य बनाना चाहता हूँ। हम दो-चार दिन मथुरामें घूमघामकर वापस आ जायेंगे। तू चिंता न कर।

फिर भी यशोदाका दिल नहीं मानता है। अपने लालको अपनी आँखोंसे मैं कैसे दूर करूँ? मैं इस वृद्धावस्थामें कन्हैयाके लिए ही तो जी रही हूँ। यही तो है आधार मेरा।

रात आई। सब सो गए किंतु यशोदाकी आँखोंसे नींद आज दूर-दूर चली गयी थी। न जाने कल क्या होगा। कन्हैया चला जाएगा तो मैं अकेले कैसे जी पाऊँगी? वह बाहर आँगनमें आकर सिसकियाँ भरने लगी।

कन्हैयाकी आँखें अचानक खुल गयीं तो सेज पर माता नहीं थी। वह उसे इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। उसने माताको बाहर आँगनमें रोते हुए पाया। वह माताके पास बैठ गया और माताके गलेमें हाथ डालकर, उसके आँसू पोंछते हुए रोनेका कारण पूछने लगा। तू क्यों रोती है ? तू रोती है तो मुझे बड़ा दुःख होता है।

कन्हैयाकी बात सुनकर माताको कुछ तसल्ली हुई। वह कहने लगी, वैसी तो कोई खास बात नहीं है। तू कल जा रहा है सो मेरी आँखें बरस रही हैं। मुझे छोड़कर तू कहीं भी न जाना। तेरे ही सहारे तो मैं जी रही हूँ।

कन्हैया माताको आश्वासन देने लगा। क्यों चिंता करती है तू ? मैं जरूर वापस आऊँगा। यद्यपि लालाने यह नहीं बताया कि वह वापस कब लौटेगा। माताने भी नहीं पूछा। वह तो लालाके वापस आनेकी बात सुनकर प्रसन्न हो गई। मेरे बेटेकी हर बात सच होती है। वह अवश्य लौटेगा। वापस आनेकी बात सुनकर वह आनन्दमें इतनी तो मग्न हो गई कि यह पूछना भी भूल गई कि वह लौटेगा तो कब लौटेगा।

यशोदाने लालासे कहा, चल, अब हम सो जायें। दोनों एक ही सेज पर सो गये। आज श्रीकृष्णने यशोदाके हृदयमें प्रवेश किया। अब कन्हैया बाहर नहीं, भीतर ही दिखाई देगा।

वसुदेव-देवकी कारागृहमें ग्यारह वर्षोंसे तप कर रहे हैं। अब यदि कृष्ण वहाँ न जाएँगे तो उन दोनोंके प्राण चले जायेंगे।

प्रातःकाल हुआ। मङ्गल स्नान समाप्त हुआ तो माता कन्हैयाका शृंगार सजाने लगी। तेरा मनोहर रूप अब मैं कब देख पाऊँगी ? कन्हैयाने वापस आनेका वचन दिया।

यशोदाका मन आज अधीर हो उठा है। उसने स्वयं भोजन बनाया और कन्हैयाको खिलाया।

अक्रूरजी रथ लेकर आँगनमें आ गये।

जब गोपियोंको समाचार मिला तो वे दौड़ती हुई आ पहुँचीं। उनमें राधिकाजी भी थीं। उनके मुखपर दिव्य तेज फैला हुआ था और सादगी-भरा उनका शृङ्गार था। आज तक कभी वियोग हुआ ही नहीं था सो आज वियोगका प्रसङ्ग उपस्थित हुआ तो राधिकाजी अचेत-सी हो गयीं। वे अचेतावस्थामें ही कहने लगीं—हे प्यारे, हे कृष्ण, मेरा त्याग न करो। हमें छोड़कर मत जाओ।

गोपियाँ अक्रूरजीसे भिड़ गयीं। हमारे कन्हैयाको क्यों ले जा रहे हो ? श्यामसुन्दरके दर्शनके बिना हम जियेंगी ही कैसे ? कन्हैयाको मत ले जाओ। तुम्हारा नाम अक्रूर किसने रखा है ? तुम तो क्रूर हो। हमें रुलानेके लिए आये हो। हम तुम्हारे घरका हरकोई काम करनेको तैयार हैं किंतु कृष्णविरहमें हमें मत मारो। कृष्णविरहसे बड़ा और कौन दुःख होगा ?

अक्रूर ! कन्हैयाके बिना गोकुल श्मशान-सा हो जाएगा। चाहे बलरामको तुम

ले जाओ किंतु कन्हैयाको हमसे मत छीनो। मथुराकी पढ़ी-लिखी नारियाँ कृष्णकी ऐसी सेवा करेंगी कि वह हमें भूल जाएगा। वे तो चतुरा हैं और हम अनपढ़। वे न जाने कन्हैयाको क्या-क्या उल्टा-सीधा पढ़ाकर वहीं रोक लेंगी। हमारे भाग्य ही फूटे हुए हैं।

गोपियाँ विलाप कर रही हैं। हे विधाता! तू भी कैसा निर्दय है! जीवोंसे परस्पर स्नेह कराता है और तुरंत अलग करके विरहाग्निमें जलाता है। अपने कन्हैयाके बिना हमसे कैसे जिया जायेगा?

अक्रूरजी सूझ ही नहीं रहा है कि इन गोपियोंको कैसे समझाया जाये।

कृष्णने गोपियोंसे कहा—मैं तुम सबको प्रसन्न रखनेके लिये बाँसुरी बजाता था और खेल रचाता था। अब मुझे जाना ही होगा।

कृष्णने मूर्छित राधाजीको देखा तो उनके पास जाकर कानमें कहने लगे—राधे, पृथ्वी पर असुर बहुत बढ़ गये हैं। उन पापी राक्षसोंका नाश करके पृथ्वीका बोझ हल्का करना है। आज तक तेरे साथ प्रेमसे नाचता-खेलता रहा। अब जगत्को नचाने जा रहा हूँ। मैं तुम सबके साथ ही नाच सकता हूँ, औरोंके साथ नहीं।

सखियों, मैं तो जा रहा हूँ किंतु मेरे प्राण तो यहाँ तुम्हारे पास ही रहेंगे। मैं अपने प्राण तुम्हारे हृदयमें रखकर जा रहा हूँ। मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिये तुम अपने प्राणकी रक्षा करना।

राधे, मैं आज तक तो तेरे समीप ही था। अब कुछ दूर जा रहा हूँ किंतु हम तो अभिन्न हैं। लीलाके हेतु ही हमने अलग-अलग शरीर धारण किये हैं। मुझे अपने प्राणोंसे भी यह बाँसुरी अधिक प्यारी है। तू जब भी यह बाँसुरी बजायेगी, मैं दौड़ा हुआ चला आऊँगा।

गोपी—कन्हैया, विरहाग्निमें हमें मत जलाना। हमें कहीं भूल न जाना।

बाहरके पानीसे नहीं, आँखोंसे बरसते प्रेमाश्रुसे ही मन धोया जा सकता है।

गोपियाँ रो रही हैं। कृष्ण उन्हें धीरज बँधा रहे हैं। मेरे मङ्गलमय प्रयाणके समय रोनेसे अपशकुन होंगे। मैं अवश्य लौटूँगा।

गोपियोंका रुदन कुछ कम हुआ तो कृष्ण और बलराम नन्दजीके साथ रथारूढ़ हुए। रथ चलने लगा तो गोपियाँ भी पीछे-पीछे चलने लगीं। कन्हैयाके मना करने पर आँसू रुक गये थे किंतु फिर वह निकले। न जाने कन्हैया अब कब लौटेगा? न जाने कब दर्शन होंगे फिर उसके? वे बड़े जोरोंसे रोने लगीं।

विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति।

भा० १०-३९-३१

कैसी थीं वे गोपियाँ? कृष्ण विश्क्त मानसाः। श्रीकृष्णसे ही मन लगा हुआ था।

हे गोविंद! हे माधव! इस गोकुलको मत उजाड़ो। नाथ, इस गोकुलको अनाथ न करो। हमको भूल न जाना।

एक गोपी कह रही है, नाथ, तुम्हारे दर्शन किए बिना पानी तक न पीनेका मेरा नियम था। मेरे यहाँ कुछ क्षणोंके लिए ही आते रहना।

सारा गाँव रो रहा था। अक्रूरजी भी द्रवित हो गए। ग्रामजनोंका कृष्णप्रेम और कृष्णविरहका दुःख देखकर अक्रूरकी आँखें भी आँसू बहाने लगीं। गायें भी रो रही थीं। कोई गोपी रथके पीछे दौड़ रही है तो कोई मूर्छित होकर गिर रही है।

श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे कहा, ये प्रेमसे छलकते हुए हृदयवाले ग्रामजन मुझे आगे बढ़ने ही नहीं देंगे। सो रथ जरा जल्दी चलाओ।

अधीरतासे यशोदा रथके पीछे दौड़ने लगीं। प्रभुने दौड़ती हुई माताको देखा तो रथ रुकवाया। माताने पुत्रकी नजर उतारी, आरती की। बेटे, तेरे जानेसे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं तो चाहती थी कि मेरी आँखोंसे तू कभी दूर न होने पाये किंतु मैंने केवल अपने लिए ही तुझसे प्यार नहीं किया है। मैं प्रार्थना करती हूँ कि जहाँ भी रहे, सुखी रहे।

कान्हा, मैं आज एक रहस्य खोल रही हूँ। तू मुझे माँ कहता है, मैं तुझे बेटा कहती हूँ किंतु तू मेरा पुत्र नहीं है। तू तो देवकीका पुत्र है। मैं तो तेरी पालक माता हूँ, तेरा लालन-पालन करनेवाली दासी हूँ।

कृष्ण—अरी माँ, क्या कह रही है तू? लोग चाहे सो कहें मैं तो सारे जगतसे यही कहूँगा कि मैं यशोदाका ही बेटा हूँ।

यशोदा—बेटे, मथुरामें तू यह भूल जाना कि तुझे मैंने कभी मूसलसे बाँधा था।

कन्हैया—मैं सब कुछ भूल सकता हूँ किंतु तेरे बन्धनोंको कैसे भूल जाऊँ? मैं मात्र तुझसे ही बँध पाया हूँ।

यशोदा—तू कहीं मुझे भूल तो नहीं जायेगा? मुझसे मिलनेके लिए आएगा न?

कन्हैया—अवश्य आऊँगा। तू अपने शरीर और हमारी गायोंकी पूरी-पूरी देखभाल करना।

माता—तू जहाँ भी रहे, सुखी रहे यही मेरे आशीर्वाद हैं।

रथ आगे बढ़ने लगा। गोपियाँ पीछे दौड़ने लगीं। उन्होंने कन्हैयाकी आरती उतारनी चाही तो रथ फिरसे रोका गया।

श्रीकृष्ण गोपियोंसे कहने लगे—दुष्टोंकी हत्या, दैत्योंका संहार तो मेरे जन्मका गौण प्रयोजन है। मेरे अवतारका मुख्य प्रयोजन तो है गोकुलमें प्रेमलीला करना। मेरा एक स्वरूप यहाँ तुम्हारे पास रहेगा और दूसरा स्वरूप मथुरामें।

पहले मात्र यशोदाके घर ही एक कन्हैया था। अब हर गोपीके घरमें एक-एक कृष्ण हैं। कृष्णने सभी गोपियोंके हृदयमें प्रवेश किया है।

महाप्रभुजी कहते हैं कि यह अन्तरङ्गका संयोग है और बहिरङ्गका वियोग। प्रत्येक गोपी अनुभव कर रही है कि श्रीकृष्ण उसके पास ही बसे हुए हैं और मथुरा नहीं गए हैं।

श्रीकृष्णको लेकर रथ चला गया और गोपियां चित्र-लिखित-सी खड़ीकी खड़ी रह गयीं।

कन्हैयाने गोकुलका त्याग नहीं किया है। वह तो हरएक गोपीके हृदयमें बसा हुआ है। भगवानने वचन दिया था—

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

वियोगके बिना तन्मयता आ नहीं सकती। बिना वियोगके ध्यानमें एकाग्रता नहीं आ पाती और साक्षात्कार नहीं होता। व्रजवासीको अपने विरहके सहारे तन्मय बनानेके हेतुसे ही भगवान मथुरा गये।

वियोगसे, विरहसे प्रेम पुष्ट बनता है। इसीलिये श्रीकृष्णने गोपियोंको इस वियोगरूपी विशिष्ट योगका दान किया।

गोपियोंकी दशा भी देखिये—

श्याम बिनु व्रज सूनो लागै।
सूनी कुञ्ज, तीर जमुनाकी सब सूनो लागै॥
श्याम बिनु चैन नहीं आवै॥

रथ बढ़ता हुआ यमुना किनारे आया। अक्रूरजी स्नानार्थ जलमें उतरे तो जलमें श्रीकृष्ण और बलरामके दर्शन हुये। बाहर आकर देखा तो दोनोंको रथमें बैठा हुआ पाया। बार-बार ऐसा अनुभव हुआ। अक्रूरको भगवान नारायणके दर्शन हुये।

कुछ वैष्णवोंका मानना है कि मथुराकी ओर जाते समय श्रीकृष्णने यमुनाजीमें स्नान किया और नारायणके रूप लेकर प्रकट हुये अर्थात् श्रीकृष्ण स्वयं वृन्दावन वापस आये और उनका नारायण-स्वरूप लीला करनेके लिये मथुरा गया। वैसे तो श्रीकृष्ण और नारायण दोनों एक ही हैं। जो भेद है, वह तो उपासनाके हेतु है।

अक्रूरजीने यमुनामें स्नान करके स्तुति की।

रथ मथुराकी सीमापर आया तो श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे कहा, चाचाजी, आप आगे बढ़िये, हम यहीं उद्यानमें विश्राम करेंगे।

जिस नगरीमें कंस हो, वहाँ श्रीकृष्ण कैसे रह सकते हैं? यदि वे अन्दर जायें तो कंसका नाश हो जाय। प्रकाश और अन्धकार एक साथ कैसे रह सकते हैं?

विषयानन्द और ब्रह्मानन्द एक साथ नहीं रह सकते।

मथुरा—मानवकायामें श्रीकृष्ण-ब्रह्म और कंस-काम एक साथ कैसे रह सकते हैं?

जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम, नहि काम।
तुलसी कबहुँ न रहि सकैं, रवि-रजनी एक ठाम॥

यशोदाजीने दही-दूध तथा अन्य खाद्य-सामग्री इनको दी थी। जब भोजन करने बैठे तो व्रजवासी, गोपियाँ, गायें और यशोदा आदि याद आ गये। हाथ रुक गया। नन्दजीने यह देखा

तो कारण पूछा। कन्हैयाने कहा, मेरी सखियाँ, सखा और माताजी मेरे वियोगके कारण भूखे होंगे। मैं खाऊँ तो कैसे खाऊँ?

प्रभुके साथ ऐसा तो प्रेम करो कि वे तुम्हें याद करें। जब तक प्रभुकी यादोंमें तुम बस नहीं पाओगे, तुम्हारी भक्ति अधूरी ही रहेगी। जब तक वे याद नहीं करते, जीवका बन्धन बना रहता है। भक्ति ऐसी करो कि भगवानको तुम्हारे बिना चैन न आये।

यशोदाजी और गायोंका प्रेम ऐसा तो गाढ़ा था कि कृष्णवियोगमें वे खा-पी भी न सकीं।

सन्ध्या आई तो दोनों भाई मथुरा देखने चले। महाद्वारमें-से प्रवेश किया। आदतके कारण गोकुलके बालक कन्हैयाके साथ चलते हुए उसकी जय पुकारने लगे। मथुराकी नारियोंने भी सुना।

शुकदेवजी वर्णन नहीं करते, मानों प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

जिस लीलाकी कथाका प्रसङ्ग चल रहा हो उसका यदि प्रत्यक्ष अनुभव करनेकी कल्पना की जाय तो वक्ता और श्रोताको बड़ा आनन्द आयेगा।

स्तनपान करती हुई एक माता बालकको वहीं छोड़कर कृष्णके दर्शनार्थ दौड़ निकली। अपना बालक तो घरमें ही रहनेवाला है किंतु कृष्णके दर्शन फिर शायद न हो सके तो? इसी प्रकार नगरके छोटे-बड़े सभी अपना-अपना कामकाज छोड़कर श्रीकृष्णके दर्शनके लिये दौड़ चले।

भगवानके दर्शनके लिये वैसी ही लगन होनी चाहिये। आतुरताके बिना दर्शन हो नहीं पाते। दर्शनमें लीन हो जानेसे बड़ा आनन्द आता है। ऐसी व्याकुलता, आतुरता, लगन होगी तो ईश्वर दर्शन देनेकी कृपा करेंगे।

मथुराकी स्त्रियाँ श्रीकृष्णके दर्शन करती हुयीं आपसमें बातें करने लगीं।

रास्तेमें राजा कंसका धोबी मिला जो राजाके कपड़े लेकर जा रहा था। यह वही धोबी था जिसने रामावतारमें जानकी माताकी निन्दा की थी।

निन्दा और नरक एक-से हैं। किसीकी निन्दा कभी न करो।

श्रीकृष्णने उस धोबीसे कुछ वस्त्र माँगे। वह मूर्ख धोबी अकड़से कहने लगा, यह तेरा गवाँर ग्राम नहीं, नगर है नगर। ये वस्त्र तो राजाके हैं। तूने तो क्या तेरे बापदादोंने भी ऐसे कीमती कपड़े कभी देखे भी हैं? ज्यादा गड़बड़ करेगा तो राजाके सिपाहियोंके हवाले कर दूंगा। बचना है तो भाग जाओ इधरसे।

धोबीकी धृष्टता बलरामसे सही न गयी। कन्हैया, लगता है, इस धोबीके सिरपर मृत्यु मँडरा रही है। लगा दे एक झापड़ इसे। कन्हैयाने पल भरमें उसका मस्तक उड़ा दिया। धोबीकी ऐसी दशा देखी तो धोबीके साथी कपड़ोंकी गठरियाँ वहीं छोड़कर भाग निकले।

ईश्वर, पापी इन्द्रियोंको दण्ड देते हैं। अन्तकालमें वह पापी इन्द्रिय बड़ी दुःखी हो जाती है। वाणीसे पाप करनेपर वाग्देवी अन्तकालमें रूठ जाती हैं। ऐसे पापीका बोलना बन्द हो जाता है।

धोबीने मुखसे निंदा की तो भगवानने उसके मुखपर चांटा जड़ दिया।

ईश्वर सरल जीवके साथ सरल हैं और कुटिलके साथ कुटिल। जिसका मन पवित्र नहीं होता है, उसे अन्तकालमें बड़ी मनोव्यथा होती है।

कन्हैया तो चोरीका आदी था। उसने अपने गोपमित्रोंसे उन गठरियोंके कपड़े ले लेनेको कहा। बालक कुछ डर रहे थे सो कन्हैयाने स्वयं कपड़े बांट दिये। जिसे जो कपड़ा दिया, वह उसीके नापका निकला। बालक तो आनन्दसे नाच उठे। उन्होंने माना कि इन कपड़ोंके सीनेवाला कितना कुशल कारीगर होगा। वैसे तो ऐसा दर्जी कभी हुआ ही नहीं है। यह तो अपने मित्रोंको बड़े सुन्दर वस्त्र पहनानेकी कृष्णकी प्रतिज्ञा थी जो आज उन्होंने पूरी की।

गरीब बालक तो अच्छे-अच्छे कपड़े पाकर खुश हो गए। वे कन्हैयासे कहने लगे, ऐसे अच्छे वस्त्रोंके कारण हमारा चटपट ब्याह हो जायेगा। हमारे ब्याहमें तू भी आयेगा न? कन्हैयाने कहा, हाँ, जरूर आऊँगा।

ऐसी भावना करो कि तुम कृष्णके हो और वे तुम्हारे हैं।

श्रीकृष्णने अपने गरीब मित्रोंको वस्त्र पहनाये और बादमें स्वयं पहने। उनकी प्रतिज्ञा आज पूरी हुई। पहले वे बिना सिले हुये कपड़े-पीताम्बर और कमली पहनते थे।

राम और कृष्णने आदर्श मित्र-प्रेमके दृष्टान्त जगतके समक्ष रखे हैं।

मार्गमें सुदामा मिला जिसने इनको माला पहनाई। कृष्णके साथियोंको भी उसने माला पहिनाई।

आगे बढ़े तो कंसकी दासी कुब्जा मिली। उसके तीन अङ्ग बेढंगे थे। वह चन्दनपात्र लेकर जा रही थी। उसने प्रभुको चन्दन दिया तो वे प्रसन्न हुये। प्रभुने सोचा, इस कुब्जाने मुझे चन्दन देकर मेरी शोभा बढ़ायी है तो मैं भी उसकी शोभा बढ़ा दूं। उसके सभी अङ्ग अच्छे हो गये और वह सुन्दर बन गयी।

चन्दन और वन्दन मनुष्यको नम्र बनाते हैं।

इस कुब्जा-प्रसंगमें एक रहस्य है। हमारी बुद्धि ही कुब्जा है जो काम, क्रोध और लोभसे वक्र हो गई है। प्रभुकी पूजा, इन तीनों दोषोंको नष्ट करके बुद्धिको शुद्ध करती है। बुद्धि यदि कंस-कामकी सेवा करेगी तो विकृत हो जायेगी। बुद्धि ईश्वरके सम्मुख आकर सरल बन सकती है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पाँचों विषय जीवको सताते रहते हैं।

कंसकी सेवा करनेवाली बुद्धि भ्रष्ट, वक्र होगी और कृष्णकी सेवा करनेवाली सरल विषयोंका चिंतन करनेसे बुद्धि वक्र होगी। जिसकी बुद्धि वक्र हो उसका मन भी वैसा ही हो जायेगा। विकृत मन वालेकी आँखें भी दूषित हो जाएंगी। जिसकी आँखें दूषित हों, उसका जीवन भी तो दूषित होगा।

मथुराके बनियोंने सुना कि इन दो लड़कोंने धोबीको मारा और कुब्जाकी कायापलट कर दी तो उन्होंने सोचा कि ये दोनों पराक्रमी हैं। हो सकता है कि ये मथुराके राजा बन जायें।

सो उनका आदर-सत्कार करना चाहिये। समय आनेपर उनसे कुछ काम करवाना भी पड़े। अगम बुद्धि बनिया। थोड़ा-सा देकर ज्यादा लेनेकी आशा रखे और प्रयत्न करे वही बनिया है। कम लेकर अधिक दे वह संत। संत और ब्राह्मण थोड़ी-सी दक्षिणा मिलनेपर भी आशीर्वाद देते हैं कि आयुष्मान् भव, लक्ष्मीवान् भव।

तो उन बनियोंने आज सेवा करके कल लाभ पानेकी बात सोच ली। उन्होंने कृष्णको कुछ पान-सुपारी देते हुए कहा, ये सब आपका ही है। दुकान आपकी ही है। बनिया बोलनेमें बड़ा मीठा होता है किंतु बिल बनाते समय, धन बटोरते समय कुछ और ही हो जाता है। वह अपनेको बुद्धिमान मानता है। धन कमानेमें ही बुद्धिका उपयोग करनेवाला बुद्धिमान कैसे कहा जायेगा।

अपनी बुद्धिका उपयोग जो व्यक्ति प्रभुकी प्राप्तिके लिये करे, वही बुद्धिमान है।

उन बनियोंने भगवानको और कुछ भी नहीं दिया। भागवतमें लिखा है—व्रजानुमार्गे वणिक् पंथे·······ताम्बूल स्रग गन्धैः। उन्होंने केवल पान और फूलमाला ही प्रभुको दी।

फिर भी कृष्ण तो भगवान थे। वे ऐसे स्वागतसे भी प्रसन्न हुए। उन्होंने मेरा ऐसा भी स्वागत तो किया ही है ? तो उन्होंने बनियोंसे वर माँगनेको कहा।

बनिये—प्रभु, हम चाहते हैं कि लक्ष्मीजी हमेशा हमारे घरोंमें ही वास करें, किसी औरके घर न जायँ।

श्रीकृष्ण—क्या तुम लोगोंको ज्ञान, भक्ति, सदाचार, वैराग्यकी कोई आवश्यकता नहीं है ?

बनिये—अजी, उन चीजोंसे हमें क्या लेना-देना है। हमें तो बस धन चाहिए, फिर वह कैसे भी मिले और कहींसे भी मिले।

भगवान मथुरा पधारे तो बनियोंने पान-सुपाड़ीसे स्वागत किया किंतु ब्राह्मण अकड़कर स्वागत करने नहीं गए। तो लक्ष्मीजीने सोचा कि कैसे भी हो किंतु बनियोंने मेरे पतिकी सेवा की है और ब्राह्मणोंने तो कुछ नहीं किया है, अतः लक्ष्मीजी बनियोंके घर गयीं किंतु ब्राह्मणोंके घर न गयीं।

लोग मानते हैं कि सम्पत्ति आई तो सारे सुख आ गए किंतु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। संस्कारी बननेका प्रयत्न करो।

भगवान बनियोंकी दुकान पर ही थे कि इतनेमें कुछ खरीददार आये। तो बनिये उनसे मोल-तोलमें लग गए। भगवानने उनसे धनुषयागका मार्ग पूछा तो कहने लगे, अजी, हम इन ग्राहकोंसे कारोबार करें या तुमसे ही बातें करते रहें ? जाओ, आगे किसीसे रास्ता पूछ लेना। कितने स्वार्थी हैं ये बनिये। लक्ष्मी मिली नहीं कि लक्ष्मीपतिको ही भूल गए।

भागवत मृत्यु सुधारती है। ऐसा न मानो कि तक्षक नाग केवल परीक्षितको ही काटने आया था। तक्षक नाग-काल सभीको किसी-न-किसी दिन काटेगा।

तक्षक नाग-काल नोटिस देकर आता है। शिरकेश सफेद होने लगे, दाँत गिरने लगे

तो मान लो कि तक्षकका नोटिस आ पहुँचा है। कालकी सूचना ध्यानमें लेनी चाहिये और सब कुछ छोड़कर भगवानकी भक्तिमें लग जाना चाहिये।

यज्ञका आरम्भ हुए चार दिन समाप्त होकर आज पाँचवाँ दिन आया है। यदि आजका दिन निर्विघ्न समाप्त हो जाये तो कंसका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा।

इधर धनुष-यागका स्थान ढूंढ़ते-पूछते कृष्ण-बलराम आ पहुँचे। कृष्णने धनुष उठाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन्होंने कंसके सेवकोंकी भी भलीभाँति मरम्मत कर दी।

तो कुछ सेवकोंने भागकर राजाके पास आकर यज्ञभङ्गका समाचार दिया। वे राजासे कहने लगे, अब तो तुम्हारा यज्ञ अपूर्ण ही रह गया। उन प्रतापी बालकोंको राज्य दे दो और ईश्वरका भजन शुरू कर दो। तुमने कृष्णके माता-पिताको बन्दी बनाकर पाप किया है। तुम दुष्ट हो।

कंस आगबबूला हो गया। अरे मूर्खों, तुम्हें भान है कि तुम क्या बक रहे हो? राजा मैं हूँ, अपना राज्य मैं कभी किसीको नहीं दूंगा। समझे?

सूर्यास्त हुआ तो दोनों भाई अपने मित्रोंके साथ नन्दबाबाके पास लौट आये।

नन्दजीने बालकोंसे सुबह कहा था, देखो, यह हमारा गोकुल नहीं, मथुरा है। शांतिसे, सयाने होकर घूमना-फिरना, कहीं ऊधम न मचाना।

अब वे वापस आए तो नन्दजीने उनसे पूछा, क्या नगर देख आये? कहीं कुछ ऊधम तो नहीं मचाया था?

कृष्ण—जी नहीं, हमने तो कुछ भी नहीं किया है। लोग मेरा परिचय पूछते थे तो बता देता था कि मैं नन्द-यशोदाका पुत्र हूँ। बाबा, मेरा परिचय पाते ही लोगोंने हमें ये अच्छे-अच्छे कपड़े दिये और फूलमाला पहनायीं।

बेचारे भोले नन्दबाबा! उन्होंने पुत्रोंकी बात सच मान ली। मैं इस नगरीके यादवोंके साथ शुभ-अशुभ प्रसङ्गों पर योग्य व्यवहार करता आया हूँ, वे मेरे मित्र-से ही हैं। सो वे मेरे बच्चोंको कुछ दें, यह अस्वाभाविक नहीं है।

कन्हैयाने बार-बार कहा, बाबाजी, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ इसीलिए ये सब कुछ हमें मिला है। श्रीकृष्णने नन्दजीकी पुत्र-भावना बनाये रखी है।

रात्रिके समय भोजन करने बैठे। व्रजवासी अपने साथ खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री लाये थे। कृष्णको यशोदा और अपनी गङ्गी गाय याद आ रही हैं। मेरे बिना मेरी माता और गङ्गीकी क्या दशा हुई होगी? कृष्णका भोजनमें दिल नहीं लगता है।

दूसरे दिन प्रातःकालमें राजसभाका आरम्भ हुआ। कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी। उसने अपने मल्ल चाणूर-मुष्टिकको कृष्ण-बलरामको मार डालनेकी आज्ञा दी।

किसी भी तरह उनसे कुश्ती करना और पछाड़ देना।

नन्दबाबा भी कृष्ण-बलराम और अन्य गोपबालकोंके साथ राजसभामें पधारे। कुवलयापीड हाथीके उद्धारसे ही कृष्णका प्रवेश हुआ।

रङ्गभूमि पर श्रीकृष्ण पधारे। मल्लोंको वे वज्रसे, सामान्य पुरुषोंको रत्नसे, स्त्रियोंको मूर्त्तिमन्त कामदेवसे, गोपालकोंको स्वजनसे, राजाओंको शासकसे, वृद्धोंको बालकसे, कंसको कालसे, अज्ञानीको विराटसे, योगियोंको परमतत्त्वसे और यादवोंको परम-देवसे लगे।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराटविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परमदेवेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

कृष्णका दर्शन करके सभी लोगोंने अपने-अपने भावानुसार रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शांत तथा प्रेमभक्ति रसका अनुभव किया। जिस व्यक्तिकी जैसी भावना थी उसीको उसी रूपमें भगवान दिखाई दिये।

जब रामचन्द्रजी राजा जनककी राजसभामें पधारे थे तब भी वैसा ही हुआ था।

जिन्हकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी॥

चाणूर और मुष्टिक तो मदिरापान करके लड़नेके लिए तैयार ही बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण और बलराम राजसभामें पधारे तो उन मल्लोंने ललकारते हुए कहा—अरे बालको, आओ हम कुश्ती करें। महाराज कुश्तीके बड़े शौकीन हैं। जो जीतेगा उसे महाराज इनाम देंगे।

कृष्ण—अच्छा, राजाको प्रसन्न करना हमारा कर्त्तव्य है किंतु हम तो ठहरे बालक। हम कुश्ती कैसे करेंगे?

मदिरापानसे उन्मत्त चाणूर बोला—अरे तू बालक है ही नहीं। तू तो बड़ा हो गया है। तूने तो बड़े-बड़े राक्षसोंको मार डाला है और उसने कृष्णका हाथ पकड़कर घसीटनेका प्रयत्न किया।

कृष्ण—यह तो अधर्मका युद्ध होगा।

चाणूर—लड़नेमें धर्म क्या और अधर्म क्या?

कृष्ण—यदि तुझे लड़ना ही है तो मैं कुछ डरनेवाला नहीं हूँ। मेरी माताने दूध-माखन खिलाकर मुझे भी हृष्ट-पुष्ट बनाया है।

तो चाणूरके साथ कृष्णकी और मुष्टिकके साथ बलरामकी कुश्ती शुरू हो गयी। कंसके सेवक मल्लोंको प्रोत्साहित करनेके लिए नगाड़े बजाने लगे।

संसार अखाड़ा है, काम चाणूर है और क्रोध मुष्टिक। संसाररूपी अखाड़ेमें काम-क्रोध रूपी मल्लोंसे हमें लड़ना है। वे अनादिकालसे जीवोंको पछाड़ते आये हैं। यदि सावधानीसे काम लोगे तो काम-क्रोधको मार सकोगे, अन्यथा वे ही तुम्हें पछाड़ देंगे। मनुष्यका अवतार ही काम-क्रोध पर विजय पानेके लिए है।

कुश्ती शुरू हुई तो नन्दबाबा घबड़ाने लगे। ये मल्ल मेरे छोटे-से बच्चोंको मार डालेंगे। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं किंतु नन्दजीके लिए तो वे बालक ही थे

नन्दबाबाने आँखें मूंदकर नन्देश्वर महादेवकी मिन्नत मानी, यदि आप मेरे कन्हैया-बलरामकी रक्षा करेंगे तो ग्यारह मन लड्डू चढ़ाऊँगा। फिर उनको ध्यान आया कि कुश्तीके स्वामी तो हनुमानजी हैं। तो उन्होंने हनुमानजीकी वैसी ही मिन्नत मानी। मेरे बालकोंकी रक्षा करो।

जय जय जय हनुमान गुसाईं।
कृपा करो गुरुदेवकी नाईं॥

कन्हैयाने देखा कि पिताजी भयभीत होकर देवोंकी मिन्नत मान रहे हैं तो उन्होंने शीघ्रतासे काम पूरा करना चाहा। इधर चाणूर भी जान गया कि कन्हैया कोई सामान्य बालक नहीं, उसका काल ही है। यदि वह भागनेकी कोशिश करेगा तो कंसको मार डालेगा। सो बेहतर है कि कृष्ण ही के हाथों अपनी जान जाये। असावधानको काम मार सकता है, सावधानको नहीं। श्रीकृष्णने चाणूरको मार डाला और बलरामने मुष्टिकको।

उधर कंसके सेवक तो आँखें मूँदकर नगाड़े बजाते जा रहे थे। तो कंसने गुर्राकर कहा, अरे मूर्खो, मेरे मल्ल मर गये फिर भी तुम नगाड़े बजा रहे हो? बन्द करो यह हङ्गामा। नगाड़ोंका शोर बन्द हो गया।

कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी। उसे सन्निपात हो गया। वह ऊलजुलूल बकने लगा, इन लड़कोंको मार डालो, नन्दजीको बन्दी बना दो, वसुदेवका वध करो।

भगवान्‌ने अनुग्रह-शक्तिसे कुब्जाका और निग्रह-शक्तिसे चाणूरका उद्धार किया।

श्रीकृष्णने कंसके बालोंको पकड़कर कहा, कंस, मैं ही हूँ देवकीका आठवाँ पुत्र, तेरा काल। कृष्णने उसे इस तरह झंझोड़कर भूमिपर पटक दिया कि उसके प्राण निकल गये।

कंसवधसे सभीको प्रसन्नता हुई किंतु उसकी रानियोंको दुःख हुआ। तो कन्हैया मामियोंके पास आकर रोनेका नाटक करने लगा। मैं ग्यारह बरसोंमें पहली बार मिलने आया तो मामाजी हमें छोड़कर चल बसे। ओ मामा रे~।

मामी—कन्हैया, तू मत रो। जो होना था सो हो गया। वे बालहत्याओंके पापके कारण ही मर गये। तेरा कोई दोष नहीं है।

श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। परमात्मा निर्दोष हैं। वे किसीको मारते नहीं, तारते (मुक्त करते) हैं। वे सभीको आनन्द देते हैं।

रामायणमें मन्दोदरीने भी श्रीरामको निर्दोष बताकर रावणको ही दोषी ठहराया है। रावण उसके अपने पापोंके कारण ही मरा था।

ऊपरकी कथाका रहस्य भी देख लीजिये।

कुवलयापीड हाथी अर्थात् दर्प, मद, मोहको श्रीकृष्णने मारा।

चाणूर अर्थात् काम। कामको परब्रह्म कृष्णने मारा।

मुष्टिक अर्थात् क्रोध। उसको बलराम-शब्दब्रह्म—नादब्रह्मने मारा।

कंसके उन तीनों मित्रोंसे हमेशा बचकर रहो।

कंस अभिमानका ही रूप है। उसकी रानियोंके नाम भी सूचक हैं, अस्ति और प्राप्ति। सारा दिन अस्ति और प्राप्तिके सोचमें डूबा रहनेवाला जीव ही कंस है। नीति-अनीतिसे धनोपार्जन करके मौज उड़ानेकी इच्छा करनेवाला, संसार-सुखोंका उपभोग करनेवाला कंस ही तो है। कंस उग्रसेनको बन्दी बनाकर राजा बन बैठा था। उस समय एक कंस था, आज तो जहाँ देखो वहाँ कंस ही कंस मिलेंगे

जीव हमेशा काम-क्रोधसे पिटता आया है। उनको मारना है। शब्दब्रह्मकी उपासनासे क्रोध मरता है और परब्रह्मकी उपासनासे काम।

कंसका उद्धार हो गया क्योंकि भगवानका नाम लेकर मरनेवाला चाहे दुष्टात्मा क्यों न हो, उसका उद्धार हो ही जाता है।

सम्बन्धके बिना स्नेह उत्पन्न नहीं हो पाता सो परमात्मासे सम्बन्ध जोड़ लो। उनसे जो चाहो सो सम्बन्ध स्थापित कर लो। परमात्माके किसी भी स्वरूपको इष्टदेवके रूपमें अपनाकर उनसे सम्बन्ध जोड़ लो। लौकिक स्नेहमें भी सम्बन्धकी जरूरत रहती है। कोई बीमार होगा तो उसका जान-पहचानवाला ही उसे देखने आयेगा। सम्बन्ध ही स्नेहको जन्म देता है।

लोग धनिकों, अफसरों, मन्त्रियोंके साथ तो तुरन्त ही सम्बन्ध जोड़ लेते हैं किंतु परमात्मासे सम्बन्ध जोड़नेमें अलसाते हैं। सच्चा सम्बन्धी ईश्वर ही है। ईश्वरसे सम्बन्ध कायम करनेवालेको सब कुछ मिलता है। श्रुतिके अनुसार, एक ही परमात्माके अनेक स्वरूप हैं।

वन्दन और पूजन तो सभी देवोंका करना है किंतु ध्यान तो मात्र ईश्वरका ही करना है। एक ही स्वरूपमें मन लगाये रखनेसे ध्यान शक्ति बढ़ती है और मन उसमें स्थिर होता है। कंस वैरभावसे कृष्णका विचार करता था। फिर भी उसके मनमें शत्रुरूपसे भी वास तो कृष्णका ही था सो उसका उद्धार हो गया।

ईश्वरकी मारमें भी प्यार होता है। ईश्वर जिसे मारते हैं, उसे तारते (उद्धार करते) भी हैं। कंसका श्रीकृष्णने वध नहीं किया, उद्धार किया।

भगवान जब अपने शत्रुको मुक्ति देते हैं तो प्रेमसे पूजा-स्मरण करनेवालेको मुक्ति क्यों नहीं देंगे?

श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकीको प्रणाम करनेके लिये कारागृहमें आये। दोनोंको बन्धन-मुक्त किया। सेवक जंजीर शीघ्र तोड़ न सके तो कृष्णने अपने दाँतोंसे तोड़ डाली। वसुदेव-देवकीकी सन्तति लुट गयी किंतु वे भगवानका ध्यान धरते रहे सो उनको मुक्ति मिली।

तन्मयता, तल्लीनताके बिना सिद्धि नहीं मिल पाती। ध्यानके बिना साक्षात्कार नहीं हो पाता। वसुदेव-देवकीने ग्यारह वर्षों तक कठोर तपश्चर्या की तो कन्हैया मिला।

आज इतने बरसों बाद पुत्रको देखा तो वसुदेव-देवकीका दिल भर आया। वे बोलना तो बहुत कुछ चाहते थे किंतु प्रेम और भावावेशसे निहारते ही रह गये। सभी परस्परको प्रेमसे, संतोषसे देख रहे हैं।

तब कन्हैयाने कहा—पिताजी और माताजी, चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला यह मानवशरीर आपने ही मुझे दिया है। मेरे अपराधको क्षमा करें। अब मैं कभी आपसे दूर नहीं जाऊँगा। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

कन्हैयाको हाथी पर बिठलाकर सारे नगरमें फिराया गया। नन्दबाबा सोचते हैं कि कन्हैयाका इतनी धूमधामसे सम्मान तो किया गया किंतु किसीने यह नहीं पूछा कि वह भूखा है या नहीं। वे माखन-मिसरी ले आये और कन्हैयाको हाथीपर-से नीचे उतारकर भी डटकर खिलाया। रास्तेमें इस प्रकार जहाँ भी विश्राम किया, वहाँ विश्रामघाट हो गया।

कंसका वध होनेपर श्रीकृष्णके हाथोंमें मथुराका राज्य आ गया किंतु उन्हें तो कोई आसक्ति थी ही नहीं। सो उन्होंने राज्य उग्रसेनको सौंप दिया।

वाणी और वर्तन एक हुए बिना वाणी शक्तिशाली नहीं हो पाती। ज्ञानको क्रियात्मक स्वरूप देना है। बँगलेमें रहकर विलासी जीवन जीनेवाला व्यक्ति वेदांतकी चर्चा किस अधिकारसे कर सकता है? अधिक पढ़नेकी अपेक्षा जीवनमें सिद्धांतको उतारनेकी आवश्यकता अधिक है। श्रीकृष्णने अपना उपदेश जीवनमें उतारा भी था। उन्होंने गीतामें निष्काम कर्मका उपदेश दिया है तो उन्होंने मथुराका राज्य उग्रसेनको देकर आदर्शको चरितार्थ भी कर दिखाया है।

युद्धभूमिमें कृष्णने अर्जुनको अनासक्तिका उपदेश दिया था। वह अनासक्ति जीवनकी परिपूर्णताके लिए आवश्यक है और संसारके लिए बाधक नहीं है। संसार नहीं, उसकी आसक्ति बाधक है।

लोगोंने श्रीकृष्णसे मथुराका राज्य स्वीकारनेका आग्रह किया तो उन्होंने कहा, मैंने राज्यके लोभसे नहीं किंतु लोगोंकी पीड़ा दूर करनेके लिए कंसका वध किया है। कंसके पिता उग्रसेनको ही राजा बनाना होगा। मैं तो आप सबका सेवक हूँ।

गर्गाचार्यजीने नन्दजीसे कहा, श्रीकृष्ण तो वसुदेवका पुत्र है, आपका नहीं। यशोदाने तो पुत्रीको जन्म दिया था। अब कन्हैया गोकुलमें नहीं, मथुरामें ही रहेगा। नन्दबाबा व्याकुल हो गए।

बलराम और श्रीकृष्ण भी नन्दजी मिलने आये और कहने लगे—बाबा, जब हम उन मल्लोंसे लड़ रहे थे तब हमें हनुमानजीके दर्शन हुए थे।

नन्दजीने मान लिया कि उन्होंने हनुमानजीको मिन्नत मानी थी सो उन्होंने बालकोंकी रक्षा की। अगर ऐसा नहीं होता तो मेरे ये बालक उन मल्लोंको कैसे पछाड़ सकते थे? नंदबाबा बड़े भोले हैं।

श्रीकृष्ण नन्दजीसे कहने लगे—लोग चाहे जो कहें, हम तो आपके ही हैं। आप ही मेरे पिता हैं। मैंने कंसका वध किया है सो जरासंध, दन्तवक्त्र आदि राजा मेरे शत्रु हो गए हैं। यदि मैं गोकुल जाऊँगा तो वे सब वहाँ मुझसे लड़नेके लिए आयेंगे और सभी गोकुलवासियोंको भी सतायेंगे। सो मैं कुछ समयके लिए यहीं रहकर उन राजाओंका पराभव करके गोकुल आऊँगा। आपके आशीर्वादसे सब कुछ ठीक हो

जायेगा। मैं यहाँका अपना काम पूरा करके आपके पास चला आऊँगा। आप गोकुल पधारें और मेरी माता, सखियाँ और गायोंकी देखभाल करें। मेरी मातासे कहना कि उसका कन्हैया अवश्य लौटेगा।

प्रेमसें आग्रह हो सकता है, दुराग्रह नहीं।

नन्दबाबा कहने लगे—बेटे, मैं दुराग्रह तो कैसे करूँ? मैंने तेरी नहीं, तेरे सुखकी ही कामना की है। हमने अपने सुखके लिये नहीं, तेरे सुखके लिये ही प्रेम किया है। मैं नारायणसे हमेशा प्रार्थना करता रहूँगा कि वे तुझे सुखी रखें। कभी व्रजमें अवश्य आना।

कन्हैया—हाँ, हाँ, अपना काम पूरा करके मैं अवश्य लौटूँगा। मेरी मातासे भी यही कहना। मेरी गायोंकी भी देखभाल करना। यह प्रसङ्ग भागवतमें नहीं है किंतु अन्य ग्रन्थोंमें है।

गोकुलके कृष्ण अनुपम है। उनका स्वरूप दिव्य है और आनन्द अलौकिक किंतु तत्त्वतः गोकुल और मथुराके कृष्ण एक ही है।

सद्‌गुरुकी सेवा तो ईश्वरको भी करनी पड़ती है। गुरुसेवाका आदर्श स्थापित करनेके हेतु श्रीकृष्ण क्षिप्रा नदीके किनारे उज्जैन क्षेत्रमें सांदिपनि ऋषिके आश्रममें विद्या प्राप्त करने गये।

सुपात्र सन्तकी सेवा किये विना ईश्वरकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। किसी तपस्वी पवित्र सन्तकी धन, तन, मनसे सेवा करोगे तो उनके अन्तरके आशीर्वाद मिलेंगे। मनुष्यके लिये ऐसी सन्तसेवा आवश्यक है। सेवा द्वारा प्राप्त विद्या सफल होती है। पुस्तकें पढ़कर प्राप्त किया गया ज्ञान धन और प्रतिष्ठा दिला सकता है किंतु मनकी शांति नहीं। संत न केवल बोलकर किंतु मौन रहकर भी उपदेश देते हैं। सन्तका प्रत्येक व्यवहार ज्ञान और भक्तिसे भरा हुआ होता है। केवल स्व-प्रयत्नसे प्राप्त विद्या अभिमान भी लाती है। पवित्र संतकी सेवा करके प्राप्त की गयी विद्या, विनय और विवेक लाती है।

श्रीकृष्ण गुरुके लिये वनमें-से लकड़ी लाते थे और पानी भी भरते थे।

प्राचीन कालके गुरु विरक्त थे सो उनके शिष्य भी वैसे ही बन पाते थे। वैराग्यके बिना विद्या शोभा नहीं देती। यदि विद्याभ्यासके समय विद्यार्थी विलासी जीवन जिये तो विद्या नष्ट हो जाती है। भगवानका विद्यार्थी-जीवन बड़ा संयमी था।

गुरुके अच्छे-बुरे विचार, संस्कार आदि सब कुछ विद्यार्थीके जीवनमें उतर आते हैं। आजकलके तो प्रोफेसर ही विलासी होते हैं सो विद्यार्थीका विलासी बन जाना स्वाभाविक है। विलासी शिक्षकका शांकरभाष्य पढ़ाना निरर्थक है। प्राचीन गुरु तो स्वयं संयमी थे सो शिष्य भी संयमी बन जाते थे। संयम ही सुखदायी है। विद्यार्थी-अवस्थामें संयम बड़ा आवश्यक है।

आजकल पैसा कमानेकी विद्या पढ़ाई जाती है, सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त करानेवाली विद्या नहीं। गाँवमें पढ़ाईकी योग्य व्यवस्था नहीं है और शहरमें तो मात्र रुपया कमाना ही सिखाया जाता है। आज आत्मविद्या, अध्यात्मविद्याका तो नामोनिशान तक मिटा दिया गया है। आत्मा, परमात्मा उन दोनोंका सम्बन्ध, जीवनका सच्चा लक्ष्य आदि कुछ भी समझाया-

पढ़ाया नहीं जाता है। ज्ञान तो बढ़ता जा रहा है किंतु विद्या घटती जा रही है। ज्ञानका उपयोग छल-कपटके लिए ही किया जाता है।

सा विद्या या विमुक्तये। विद्या वही है जो प्रभुके चरणोंमें ले जाय, मुक्ति दिलाये।

गुरुकुलमें पढ़ने आये हुए एक गरीब ब्राह्मणपुत्रके साथ श्रीकृष्णकी मैत्री हो गयी। वह सौराष्ट्रका था और उसका नाम सुदामा था। श्रीकृष्णके अन्य किसी भी मित्रका भागवतमें उल्लेख नहीं है।

सुदामाका अर्थ है इन्द्रियोंका दमन, निग्रह करनेवाला। इन्द्रियोंके निग्रहके बिना न तो विद्या मिलती है और न फलती है। विद्यार्थीके लिये इन्द्रियदमन बड़ा आवश्यक है। ऐसी सूचना देनेके लिए ही शायद सुदामाके सिवाय अन्य किसी सहपाठीका निर्देश भागवतमें नहीं है।

सुदामाके साथ मैत्री करनेवाला ही सरस्वतीकी उपासना कर सकता है। सुदामा उस संयमी व्यक्तिका प्रतीक है, जो परमात्माको प्राप्त करना चाहता है।

परमात्माके दर्शन करनेके लिए संयमके बिना विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। संयमके बिना जीवन दिव्य नहीं बन पाता। संयम और वैराग्यको बढ़ाते चलो। जिस सुखका त्याग किया गया हो उसीका फिरसे उपभोग करनेकी इच्छा हो आये, वह तो थूकको चाटने जैसा है। त्याग किये हुये विषयकी इच्छा कभी न की जाय।

शास्त्र और ईश्वर, जीव और पशुके लिये नहीं, मनुष्यके लिये हैं।

सुदामाके साथ मैत्री करोगे तो द्वारिकानाथ मिलेंगे। सुदामा सर्वोत्तम संयमका साक्षात् रूप है। मनको अंकुशमें रखो।

जो आत्मतत्त्वका संदीपन करा सके, वही सांदीपनि है, वही गुरु है। सद्गुरु बाहरसे कुछ नहीं ला देते। वे तो जो भीतर है उसीको जाग्रत करते हैं। ज्ञानमार्ग तो प्राप्तकी ही प्राप्ति कराता है।

श्रीकृष्णको भी पृथ्वीपर गुरुजीकी आवश्यकता रहती है। भगवानने सुदामा—सयमके साथ मैत्री करके सदाचारपूर्ण जीवन जिया। आजका विद्यार्थी भी यदि सुदामासे मैत्री करके विद्याभ्यास करे तो उसकी विद्या सफल हो सकती है किंतु वह बात आज कहाँ ?

संसारमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना बड़ा दुष्कर है। सात्त्विक वातावरण हृदयको सुधारता है और दूषित वातावरण बिगाड़ता है।

स्वयं ईश्वर होकर भी कन्हैयाने गुरुसेवा करके जगतके सामने एक आदर्श स्थापित किया।

पिता-पुत्रके वंशको बिंदुवंश और गुरु-शिष्यके वंशको नादवंश कहते हैं। नादवंश, बिंदुवंशकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

विद्याभ्यासकी समाप्ति हुई तो कन्हैयाने गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की। सांदीपनिने कहा, क्षिप्रा नदीके किनारे बसे हुए मेरे इस आश्रममें फल और जलकी कुछ कमी नहीं है और दूसरी किसी वस्तुकी तो मुझे आवश्यकता ही क्या है ?

कन्हैया—गुरुजी, यह तो ठीक है, किंतु गुरुदक्षिणा दिये बिना मेरी विद्या असफल रह जायेगी, सो आपको कुछ-न-कुछ माँगना ही होगा।

सांदीपनि—यदि कोई सुपात्र विद्यार्थी मिल जाये तो कुछ भी पानेकी आशा न करके विद्यादान करके विद्यावंश बढ़ाते रहना। ज्ञानदानमें कृपणता न करना। शिष्य-परम्परा बढ़ाते हुये विद्यादान करते रहना। बस, यही मेरी इच्छा है।

कृष्णने गुरुको दिये वचनका पूर्णतः पालन किया। उन्होंने अर्जुनको युद्धक्षेत्रमें गीताका दिव्य ज्ञान तो दिया किंतु उससे लिया तो कुछ भी नहीं। उन्होंने न केवल अर्जुनको ज्ञान दिया अपितु उसकी और उसके अश्वोंकी सेवा भी की। महाभारतमें लिखा गया है कि रात्रिके समय श्रान्त अर्जुन सो जाता था तो श्रीकृष्ण उसकी सेवा करते थे और घोड़ोंकी देखभाल करते थे। घोड़ोंके घावोंकी मरहमपट्टी भी करते थे।

अर्जुन श्रीकृष्णको अपना गुरु मानता था किंतु श्रीकृष्णने उसे कभी शिष्य नहीं माना, सखा ही माना। ज्ञानोपदेश तो किया किंतु गुरुदक्षिणा या और कोई बदला नहीं माँगा।

गुरु निरपेक्ष होना चाहिये और शिष्य निष्काम किंतु आजकल तो छोटे-बड़े सभी लोग दो-दो हाथोंसे सब कुछ बटोरना चाहते हैं। लोग चाहते हैं कि किसी सन्त-महात्माके आशीर्वादसे सम्पत्ति, सन्तति मिल जाये तो कितना अच्छा हो किंतु जो सच्चा सन्त होता है, वह कभी सांसारिक झंझटका आशीर्वाद नहीं देता। सच्चा संत तो विकारवासना नष्ट करनेवाले अलौकिक भजनानन्दका ही दान करता है।

कन्हैयाने गुरुपत्नीसे कहा—गुरुजी कुछ माँगना ही नहीं चाहते हैं किंतु आपकी कोई इच्छा हो तो माँग सकती हैं।

गुरुपत्नी—मेरा एक पुत्र था सो प्रभासयात्राके समय समुद्रमें बह गया था। यदि तुझे गुरुदक्षिणा देनी ही है तो वह मेरा खोया पुत्र ला दे।

श्रीकृष्णने समुद्रमें गोता लगाया। वहाँसे उनको पांचजन्य शङ्ख भी प्राप्त हुआ और गुरुपुत्र भी। वे मुरलीधर थे, अब शङ्खधारी भी बन गये।

पुत्र मिलनेसे गुरुदम्पती प्रसन्न हो गये। उन्होंने आशीर्वाद दिया—बेटे, तेरे मुखमें सरस्वतीका और चरणोंमें लक्ष्मीका वास होगा और तेरी कीर्ति विश्वव्यापी हो जायेगी। मेरी विद्याके वंशको बढ़ाते रहना।

गोपियोंने भी भगवानसे कुछ भी नहीं माँगा था। सो वे स्वयं उनके ऋणी रहे। भगवानसे कुछ भी न माँगो।

भगवानकी गोकुललीला ग्यारह वर्षोंकी, मथुरालीला चौदह वर्षोंकी और द्वारिकालीला सौ वर्षोंकी थी। वे पृथ्वीपर एक सौ पच्चीस वर्ष तक सशरीर रहे थे।

विद्याभ्यास समाप्त करके श्रीकृष्ण मथुरा आये। यादवोंको परम आनन्द हुआ। मथुराके राजप्रासादमें भगवानने निवास किया।

अब उद्धवागमनका प्रसङ्ग आ रहा है।

उद्धवागमनकी कथा वक्ताके लिए एक आवाहन है, ऐसा दक्षिणके महात्माओंका मत है। इस प्रसङ्गमें ज्ञान और भक्तिका मधुर कलह है। इसमें ज्ञान और भक्तिका समन्वय भी है। उद्धवजी निर्गुण ज्ञानके पक्षधर हैं तो गोपियाँ शुद्ध प्रेमलक्षणा सगुण भक्तिकी। वैसे तो भक्ति और ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं है। भक्तिकी ही परिणति है ज्ञान।

ज्ञानके अभावमें भक्ति अन्धी है और भक्तिके अभावमें ज्ञान पंगु। भक्तिके लिए ज्ञान और वैराग्य दोनोंकी आवश्यकता है। ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति वन्ध्या रह जाती है।

आरम्भमें यदि स्वयंको प्रभुका दास मानकर—दासोहम्‌की भावनासे ईश्वरकी आराधना की जाय तो भगवानसे लगाव हो सकता है। मान लो कि तुम भगवानके हो और वे तुम्हारे हैं। ऐसी अनुभूति होने पर ही देहभान भूलता है और तब 'मैं' का अस्तित्व मिट जाता है तथा मात्र भगवानका ही अस्तित्व अनुभूत होने लगता है और आगे चलकर भगवानसे तादात्म्य बढ़ता जाता है, दासोहम्‌की अवस्थासे सोहम्‌की अवस्थाकी ओर प्रगति होती है।

भक्ति ज्ञान है और ज्ञान भक्ति। वे जब एक हो पाते हैं तभी जीवन सार्थक हो जाता है।

कुछ ज्ञानी मानते हैं कि उनको भक्तिकी आवश्यकता नहीं है। वे भक्तिका तिरस्कार करते हैं। इसी प्रकार कुछ भक्तजन ज्ञान और वैराग्यकी उपेक्षा करते हैं। इन दोनोंके दृष्टिकोण गलत हैं। भक्ति और ज्ञान परस्परके पूरक हैं। एकके अभावमें दूसरा पंगु बन जाता है। भक्ति और ज्ञान, उभयकी आवश्यकता है।

ज्ञान-वैराग्यके सहित भक्ति होनी चाहिए। वैराग्यके बिना भक्ति कच्ची रह जाती है। दोनोंको एक-दूसरेकी अपेक्षा है।

उद्धव ज्ञानी तो थे किंतु उनके ज्ञानको भक्तिका साथ नहीं था। भक्तिरहित ज्ञान, अभिमानी बनाता है। भक्ति ज्ञानको नम्र बनाती है। भक्तिका साथ न हो तो ज्ञान अभिमानके द्वारा जीवको उद्धत बना देगा। ब्रह्मज्ञान होने पर भी यदि स्वरूपप्रीति न होगी तो ब्रह्मानुभव नहीं होगा। सच्चा ज्ञानी वह है जो परमात्मासे प्रेम करता है। ज्ञानी होनेके बाद धन, प्रतिष्ठा, आश्रम आदि आ गए तो पतन ही होगा। ज्ञानीको भी भक्तिकी आवश्यकता है।

जीव ईश्वरसे जब प्रगाढ़ प्रेम करने लगे तभी वे उसको अपने मूल रूपका दर्शन कराते हैं।

मनुष्य अपनी सारी धनसम्पत्ति केवल निजी व्यक्तिको ही बताता है। भगवानका भी वैसा ही है। वे भी अपने सच्चे भक्तको ही अपना सच्चा स्वरूप दिखलाते हैं। जब साधारण व्यक्ति भी अपने प्रेमीके बिना किसीको अपना अंतर नहीं दिखलाता है तो भगवान भी अपने भक्तके बिना किसी दूसरेको अपना कुछ दिखलायें ?

भक्तिके बिना ज्ञान और ज्ञानके बिना भक्ति अपूर्ण हैं। भक्तिको यदि ज्ञानका साथ न न होगा तो ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव नहीं हो पायेगा। एक ही स्थानपर, एक ही वस्तुमें ईश्वरका अस्तित्व माननेवाला वैष्णव अधम है। हर कहीं ईश्वरको ही देखनेवाला महान् वैष्णव है।

वैराग्यका साथ न होगा तो भक्ति घरके किसी एकाध झरोखेसे ही ठाकुरजीको देखती रहेगी। यदि भक्तिको ज्ञानका साथ होगा तो कण-कणमें भगवानके दर्शन होंगे।

उद्धवजीका तत्त्वज्ञान और गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति दोनों अपने आपमें महत्त्वपूर्ण हैं किंतु उभयका समन्वय आवश्यक है। उद्धवजीकी निष्ठा ज्ञानमें है और गोपियोंकी प्रेममें। ज्ञान, प्रेमके बिना शुष्क है, निरर्थक है। परमात्माका ज्ञान होनेपर भी यदि उनके साथ प्रेम न हो पाएगा तो परमात्माका अनुभव नहीं हो पाएगा। ज्ञानप्राप्ति होनेपर भी प्रेमकी प्राप्ति तो करनी ही होगी।

गोपियाँ प्रेमकी ध्वजा हैं तो उद्धवजी ज्ञानकी मूर्त्ति।

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनोंका समन्वय होनेपर ही परमात्मासे साक्षात्कार होगा।

उद्धव ज्ञानी तो थे पर उनका हृदय प्रेमशून्य था, शुष्क था। अतः उन्हें अलौकिक आनन्द नहीं मिलता था।

ज्ञान, चर्चाका नहीं, अनुभवका विषय है। ज्ञानी कभी-कभी अभिमानी बन जाता है।

भक्त हमेशा नम्र बना रहता है। नम्रता ही भक्तिका आसन है।

भक्त स्वयंको जगतका सेवक मानता है।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।

यह जगत वासुदेवमय है, भगवानका ही एक स्वरूप है।

वासुदेवः सर्वमिति।

गोपियोंकी भक्ति ज्ञानोत्तर थी। जब कि उद्धवजी तो यह भी नहीं जानते थे कि ज्ञानोत्तर भक्ति भी हो सकती है।

उद्धवजी ज्ञानको ही सब कुछ मानते थे। सो उनको प्रेमलक्षणा भक्तिका पाठ पढ़ानेके लिए भगवानने उन्हें व्रजमें भेजा।

श्रीकृष्णने सोचा कि यदि गोपियोंको ज्ञानका अनुभव हो पायेगा तो उनको दुःख आदि नहीं सतायेंगे और उद्धवको भक्तिका अनुभव हो जायेगा तो उनका ज्ञान सफल हो जाएगा। उद्धवके ज्ञानमें अभिमानका अंश था। गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्तिके पुटसे ज्ञान सवँर जाएगा और उद्धवजीका कल्याण भी हो जाएगा। उनका ज्ञानाभिमान नष्ट करके उनका कल्याण करना है।

गोपियोंको उद्धवजीसे ज्ञानार्जन हो जाय तो मेरा विरह उन्हें नहीं सताएगा। उनको अनुभव होगा कि मैं उनके समीप ही हूँ। मुझे गोपियोंका भी कल्याण करना हैं और उद्धवजीका भी।

उद्धवागमनका पाठ करते हुये एकनाथ महाराज तीन दिनों तक समाधिस्थ हो गये थे।

गुरुकुलमें विद्याभ्यास पूर्ण करके श्रीकृष्ण मथुरा आये। राजा उग्रसेन बड़ा विवेकी था। उसने भगवान्से कहा, यह सारा राज्य आपका ही है। मैं आपका सेवक हूँ। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य होगी।

श्रीकृष्णकी गोकुललीला समाप्त होकर मथुरालीला आरम्भ हो गयी। अब वे मथुरानाथ हैं। यहाँ ऐश्वर्यका प्राधान्य है। गोकुलके गोपाल अब मथुराके अधिपति हैं। गायें चरानेवाले कन्हैयाकी अब कई दास-दासियाँ सेवा कर रही हैं। उद्धवजी भी श्रीअङ्गकी सेवा करते हैं। सभी प्रकारका सुख और ऐश्वर्य चरणोंमें उपस्थित है।

जीवन ऐश्वर्यमय हो गया किंतु भगवानने व्रजवासियोंके प्रेमको भुलाया नहीं है। राजप्रासादकी अटारीमें बैठकर वे गोकुलकी झाँकी करते रहते हैं। वे बार-बार यशोदाजीको याद करते हैं। वह मेरी प्रतीक्षामें रोती रहती होगी। भोली माता मेरे वचनको याद करके राह निहारती होगी।

मेरी प्यारी गायें और उनके बछड़े क्या करते होंगे? मथुराकी ओर मुंह करके मुझे पुकारती होंगी।

मेरे बाबा भी तो मुझे याद करते होंगे।

इस प्रकार वे बार-बार सभीको याद करते थे और आंसू भी बहा लेते थे।

मथुरामें ऐश्वर्य तो था किंतु प्रेम नहीं था। प्रभुको तो उनसे प्रेम करनेवाले जीवकी आवश्यकता है, उनके ऐश्वर्यके प्रेमीकी नहीं।

श्रीकृष्ण बार-बार व्रजवासियोंको याद करके रोते रहते थे। माता, पिता, गोपियाँ, गायें याद आ जातीं और वे रो लेते।

प्रेमीके विरहमें बहनेवाले अश्रु सुखदायी-से लगते हैं। विरहमें आंसू ही तो साथ देते हैं।

जीवका ईश्वरस्मरण तो साधारण भक्ति है किंतु जिस जीवका स्वयं भगवान स्मरण करे वह तो असाधरण भक्त है। ऐसा भक्त ही श्रेष्ठ है। भक्ति करो तो ऐसी करो कि स्वयं भगवान भी तुम्हारा स्मरण करे।

सायंकाल होनेपर अटारीमें बैठकर व्रजवासियोंकी यादमें आँसू बहानेका श्रीकृष्णका नियम-सा हो गया था। वे गोपियोंको याद करते, गायोंको भी याद करते और माताको भी याद करते थे। रोती हुई माताको कौन धीरज बँधाता होगा? व्याकुल गायोंको कौन खिलाता होगा? सभीको याद करके उनका हृदय भर आता था।

प्रेमीके विरहमें, स्मरणमें तल्लीन होकर आंसू बहानेसे दुःख कुछ कम होता है, जी हल्का होता है।

उद्धवजीने यह जाना तो वे सोचमें डूब गये। सुवर्णका राजप्रासाद, सेवामें उपस्थित अनेक दासदासियाँ, छप्पन भोगकी सामग्री, इतना ऐश्वर्य, फिर भी उन्हें कौन-सा दुःख रुलाता होगा ? क्या हमारी सेवामें कुछ कमी रह जाती होगी।

सेवक यदि स्वयं सुख भोगनेकी इच्छा करे तो वह ठीकसे सेवा नहीं कर पायेगा। सेवा वही कर सकता है जो आत्मसुखका बलिदान कर देता है।

अपने सुखके हेतु मैं प्रभुको कभी कष्ट नहीं दूंगा। यदि कुछ दुःखद प्रसङ्ग आयेंगे तो मैं मानूंगा कि यह तो मेरे ही कर्मोंका फल है। अपना दुःख दूर करनेके लिये मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।

उद्धवजीने सोचा कि प्रभुसे उनके दुःखका कारण पूछना ही चाहिये। वे अटारीमें आये। उस समय भगवान गोकुलको याद करके रो रहे थे। उद्धवजीको आते हुए देखा तो उन्होंने अपने दुःखके आवेगको वश करके स्वस्थ होनेका प्रयत्न किया और आगे बढ़कर उद्धवजीका स्वागत किया। उद्धवजी वन्दन करके बैठे।

प्रेम प्रदर्शनकी अपेक्षा नहीं रखता। वह तो हृदयमें ही समाये रहना चाहता है। प्रेम केवल अपने प्रियपात्रके समक्ष ही प्रकट होना चाहता है, अन्य किसीके आगे नहीं।

सो प्रभुने शांत होकर उद्धवजीका स्वागत किया।

उद्धवजी—प्रभुजी एक, विशेष बात पूछनेकी इच्छासे आया हूँ।

कृष्ण—तुम तो मेरे अन्तरङ्ग मित्र हो। जो चाहो सो पूछ सकते हो।

उद्धवजी—मैं और अन्य सभी सेवक-सेविकायें यथामति और यथाशक्ति आपकी सेवा कर रहे हैं फिर भी आप प्रसन्न नहीं रहते हैं। भोजनके समय भी आपका हृदय भर आता है। कल आप सोये हुये थे और मैं चरणसेवा कर रहा था। तो उस समय स्वप्नावस्थामें आप 'राधे-राधे' पुकार रहे थे। कौन है वह राधा जो आपके हृदयसिंहासनपर आसन जमाकर आपको सताती रहती है ? आपका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता।

श्रीकृष्ण—उद्धव, सारी मथुरामें मेरा दुःख पूछनेवाले एक तुम ही निकले। क्या-क्या बताऊँ मैं तुम्हें ? मेरे सच्चे माता-पिता तो देवकी-वसुदेव हैं किन्तु गोकुलमें रहनेवाले यशोदा-नन्दजी भी तो मेरे माता-पिता हैं। मेरी माता मुझे कितने दुलारसे खिलाती-पिलाती थी ! मुझे अपनी सखियाँ, अपने मित्र और अपनी गायें भी याद आती रहती हैं। सभी ग्वालबाल मुझे अपने-अपने घरोंसे लायी गई खाद्य-सामग्री खिलाते थे, कोमल पत्तोंकी सेज बनाकर सुलाते थे और मेरी गायोंकी रखवाली करते थे। मैं अपने माता-पिता, मित्रों, सखियोंको कैसे भुला दूं ?

जब मैं कालियनागके दमनके लिये यमुनामें कूद पड़ा था तो सभी गायें रोने लग गयीं थीं और जब मैं सकुशल बाहर निकला तो आनन्दसे बावली हो गयी थीं। उद्धव, वे गायें मुझे बार-बार याद आती हैं।

उद्धव, वृन्दावनकी प्रेमभूमि छोड़ते हुये मुझे बड़ा दुःख हुआ है। यहाँ मुझे मथुराधिपति बनाया गया, सब मेरी वन्दना करते हैं, सेवाके लिये मारे-मारे

फिरते हैं किंतु यहाँ मुझसे प्रेम करनेवाला कोई नहीं है। मैं व्रजको भूल नहीं सकता। मेरी माता, सखियाँ आदिके जैसा प्रेम करनेवाला यहाँ है ही कौन? मुझे मान, ऐश्वर्यकी नहीं, प्रेमकी, स्नेहकी अपेक्षा है।

जीव अपात्र है फिर भी प्रभु उसे धन, प्रतिष्ठा और प्रेम देते हैं। जीव दुष्ट है किंतु प्रभु दयालु हैं। हमारे पापके प्रमाणमें तो भगवान हमें बहुत ही कम सजा देते हैं। मनुष्य आँख और मनसे इतना तो पाप करता रहता है कि यदि उन सारे पापोंकी सजा भगवान हमें दें तो हमको पीनेका पानी तक न मिले। फिर भी दुःख और आश्चर्यकी तो यह बात है कि लोग दिनोंदिन नास्तिक होते जा रहे हैं।

उद्धव! यशोदाका-सा प्रेम मेरे लिए यहाँ दुर्लभ है। जबतक मैं न खाता था, वह भी भूखी ही रहती थी। यहाँ पर भोजन-सामग्रीका तो ढेर है किंतु कोई प्रेमसे खिलानेवाला नहीं है। यहाँ तो मेरी भूख ही मर गई है। जब कोई हजार बार मनाये तब मैं खाता था। यहाँ तो ऐसा मनानेवाला कोई है ही नहीं। भोजन करने बैठता हूँ तो अपनी माता याद आ जाती है। मैं भोगका नहीं, प्रेमका भूखा हूँ। जो आनन्द गोकुलमें था वह यहाँ नहीं है। वहाँ सखा, सखियाँ, गायें सभी मुझे याद करके रोते रहते होंगे। मैं व्रजको नहीं भुला पाता।

ऊधो मोहि व्रज बिसरत नाहीं ॥
वृन्दावन गोकुल वन-उपवन, सघन कुञ्जकी छाँहीं ॥
प्रात समय माता जसुमती अरु नन्द देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत ॥
गो ग्वाल बाल सङ्ग खेलत, सब दिन हँसत सिरात।
सूरदास धनि-धनि व्रजवासी, जिन सौ हित जदुतात ॥

उद्धव ज्ञानी तो हैं किंतु प्रेमलक्षणा भक्तिकी महिमासे अज्ञात हैं। बिना गुरुकृपाके प्राप्त ज्ञान विवेकयुक्त नहीं होता है। जिसने गुरुकृपाके बिना प्रत्यक्ष ज्ञान पाया है उसे अभिमान घेर लेता है। उद्धवकी भी यही दशा थी। सो भगवान उन्हें उपदेश देना चाहते थे।

उद्धव कहते हैं—बचपनमें गोपबालकोंके साथ खेलते रहनेकी बात तो ठीक है किंतु अब तो आप मथुराके राजा हैं और राजाको गोपबालकोंके साथ खेलनेका विचार शोभा नहीं देता। आप व्रजको और सभी व्रजवासियोंको भुला दोगे तो मथुराका ऐश्वर्य आनन्ददायी बन जायेगा।

ज्ञानाभिमानी उद्धवजी यह नहीं जानता है कि वह किसको उपदेश दे रहे हैं।

श्रीकृष्ण—अरे उद्धवजी, तुम मुझे व्रजको भूलनेको कह रहे हो? मैं सब कुछ भूल सकता हूँ किंतु व्रजको नहीं भूल सकता। व्रजवासी भी तो मुझे बहुत याद करते होंगे। प्रेम अन्योन्य होता है। हाँ, व्रज भूलनेका एक उपाय है। यदि वे मुझे भूल जायँ तो मैं उन्हें भूल सकता हूँ।

उद्धवजी! तुम व्रज जाओ। वहाँ उनको वेदांतका उपदेश दो और उनसे कहो कि वे मुझे भुला दें। यदि वे मुझे भुला नहीं पायेंगे तो मैं भी उन्हें भुला नहीं

पाऊँगा। संसारके सभी सुखोंका त्याग करके वे सब मेरे ही लिये जी रहे हैं। मैंने वापस जानेका वायदा किया था सो वे मेरी प्रतीक्षामें प्राण टिकाये रहे हैं। तुम उनको उपदेश देकर निराकार ब्रह्मके उपासक बना दो। वैसा होने पर वे मुझे भूल जायेंगे और मैं उनको।

मोह एकपक्षीय होता है किंतु प्रेम पारस्परिक होता है, अन्योन्य होता है।

भक्तिहीन ज्ञानी वाचाल होता है। भक्तियुक्त ज्ञानी मौन रहकर अध्ययन करता है।

उद्धवजीके पास ज्ञान तो था किंतु भक्ति नहीं थी। वे कहने लगे—मुझे वहाँ भेजनेके बदले प्रति सप्ताह एक-एक पत्र भेजते रहिये। वे आपको पत्र लिखेंगे। इस तरह पत्र-व्यवहारसे प्रत्यक्ष मिलन-सा आनन्द होगा।

प्रेमका सन्देश पत्रसे पूर्णत: तो कैसे पहुँचाया जा सकता है? प्रेम तो प्रत्यक्ष मिलनपर ही पूर्णत: व्यक्त किया जा सकता है।

प्रेमको सन्देसो ऊधो पाति ना पठाय।

पत्रमें इच्छानुसार सब कुछ कैसे लिखा जा सके? पत्रमें लिखते समय बहुत-सी मर्यादाएँ बाधक हो जाती हैं।

प्रेमतत्त्वसे उद्धवजी परिचित नहीं हैं। पत्रमें लिखा जाता है 'हमेशा याद करनेवाली।' अरे, ऐसा कभी हो सकता है? विचार और व्यवहारमें अंतर होता है। सो पत्रमें सब कुछ खुल कर और सच्चा लिखा नहीं जा सकता।

उद्धवजी क्या जानें कि श्रीकृष्ण और गोपी तो एक ही हैं। वे पत्र लिखनेका आग्रह करते हैं। ज्ञानी पुरुष भक्तहृदयकी बातें नहीं जानते। उद्धवजी प्रेमका रहस्य जानते ही नहीं थे।

श्रीकृष्ण—उद्धवजी, पत्र लिखनेका तो मैंने कई बार प्रयत्न किया किंतु लिख ही नहीं पाया। लिखूं तो क्या लिखूं? मैं अपनी माताको पत्रके टुकड़ेसे कैसे धीरज बँधाऊँ? वह तो मुझे निहारकर, गले लगाकर, खिला-पिलाकर ही शांत और सन्तुष्ट हो सकती है।

श्रीकृष्णने कई बार यशोदाको पत्र लिखना चाहा किंतु वे ऐसा सोचकर रुक जाते कि पत्र पढ़कर माता और अधिक याद करके दुःखी होगी। एक तो वह इधर आता नहीं है और पत्र भेजकर और दुःखी करता है। कृष्ण पत्रमें यशोदा शब्द लिखते ही रुक जाते। आगे कुछ लिखने जाते कि आँखोंमें आँसू आ जाते।

प्रेमकी भाषा ही न्यारी है। प्रेम, भाषा और शब्दकी सीमासे परे है। सच्चा प्रेम तो हृदय ही हृदयको सुना सकता है, पत्र द्वारा वह व्यक्त नहीं किया जा सकता।

उद्धवजी, मेरी समझमें हो नहीं आता कि मैं क्या और कैसे लिखूं। सो तुम वृन्दावन जाकर गोपियोंको ब्रह्मज्ञान देकर समझा-बुझाकर मुझे भुलवा दो। मेरे माता-पिताको भी सांत्वना देना। व्रजमें जाकर सभीसे कहना—

उधो इतनो कहियो जाइ।
हम आवहिंगे दोऊ भैया मैया जनि अकुलाइ॥

वाको विलग बहुत हम मान्यो जो कहि पठयों धाइ ।
वह गुन हमको कहा बिसरिहैं बड़े किये पय प्याइ ।।
और जु मिलो नन्द बाबा सों तो कहियो समुझाइ ।
तोलों दुःखी होन नहिं पावें धवरी घूमरि गाइ ।।
जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख तदपि रह्यो नहिं जाइ ।
सूरदास देखों व्रजवासिन तबहिं हियो हरखाइ ।।

उद्धवजी ! यहाँ संसारके सभी वैभव तो हैं किंतु हृदयका शुद्ध प्रेम यहाँ कहाँ हैं ? मुझे यहाँ कोई आनन्द नहीं है ।

उद्धवने माना कि वे ज्ञानी हैं सो उनको व्रज भेजा जा रहा है । वे ज्ञानी तो थे, साथ-साथ अभिमानी भी थे । वे कहते हैं—महाराज, वहाँ जानेमें मुझे काई आपत्ति तो नहीं है किंतु गाँवके अनपढ़ गवाँर लोग मेरे वेदांतका ज्ञान समझ कैसे पायेंगे ? मेरी वेदांतकी चर्चा वे अनपढ़ गोपियाँ कैसे समझेंगी ? मेरे तत्त्व-ज्ञानका उपदेश बड़ा गहन है सो मेरा वहाँ जाना निरर्थक ही है ।

ये वचन उद्धवजीके नहीं, उद्धवजीके ज्ञानके अभिमानके हैं । उन्हें अभिमान था कि वे बृहस्पतिके शिष्य हैं और वेदांतके आचार्य हैं ।

श्रीकृष्ण गोपियोंकी बुराई सह न सके । उन्होंने उद्धवसे कहा—उद्धवजी ! मेरी गोपियाँ अनपढ़ नहीं, ज्ञानसे परे हैं । वे पढ़ी-लिखी तो अधिक नहीं है किंतु शुद्ध प्रेमकी ज्ञाता हैं । इसी कारणसे तो वे मुझे प्राप्त कर सकी हैं । और क्या कहूँ ? वे तो हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।

भा. १०-४६-४

गोपियोंका मन निरन्तर मुझीसे लगा हुआ है । उनका प्राण और जीवन मैं ही हूँ । मेरे लिये उन्होंने अपने पति-संतान, रिश्तेदारोंका त्याग कर दिया है । वे मुझे अपनी आत्मा मानती हैं ।

उद्धव, मेरी गोपियाँ अनपढ़ होते हुये भी प्रेमकी मूर्ति हैं, स्नेहकी ज्योति हैं । प्रेमकी रीति वे भली भाँति जानती हैं ।

उद्धव, मेरी गोपियोंको ज्ञानकी आवश्यकता है और तुम्हें प्रेमकी, भक्तिकी । सो तुम्हें वहाँ जाना ही होगा ।

मात्र अकेले ज्ञानसे या अकेली भक्तिसे मनुष्य पूर्ण नहीं होता । जीवनमें ज्ञान और भक्ति दोनोंका समन्वय करके प्रेममय जीवन जीकर प्रभुकी प्राप्ति करनी है ।

शब्दज्ञानीको नम्र बननेमें कुछ समय लगता है । उसके दिलमें ज्ञानकी अकड़ होती है । अभिमान उसे नम्र बननेसे रोकता है । विनय अपने साथ सद्गुण लाती है और अभिमान दुर्गुण ।

भगवान जानते थे कि अभिमानी उद्धव गोपियोंको वन्दन तक नहीं करेंगे । वन्दन किये बिना कल्याण कैसे होगा ? सो उन्होने आदेश दिया कि गोपियोंको वन्दन करना ।

उद्धवजीकी तो इच्छा नहीं थी फिर भी भगवानके आग्रहके कारण व्रज जानेको वे तैयार हुए। आपका आदेश ही है तो मैं वहाँ नन्दजी, यशोदाजी, गोपियों और गोपालकोंको उपदेश दे आऊँ।

प्रभु—उन सबसे कहना कि उनका कन्हैया उन सबको याद करता है। मातासे कहना कि वह मेरे बिछोहमें रोये नहीं।

प्रभुने इस प्रकार सारी रात उद्धवको समझाया। प्रातःकालमें उद्धवजी जाने लगे तो श्रीकृष्णने अपना पीताम्बर और वैजयन्तीमाला प्रसादके रूपमें देते हुए कहा—उद्धवजी! तुम मेरी इन प्रसादियोंको धारण करके ही गोपियोंसे मिलने जाना। मेरी गोपियाँ न तो किसी परपुरुषको देखती हैं और न परपुरुषसे बोलती हैं। वे मेरा यह पीताम्बर देखकर तुम्हें मेरा दूत मानेंगी। उन्हें विश्वास हो जायेगा कि तुम मेरे हो। वे मान लेंगी कि यह तो अपने श्यामसुन्दर-का अंतरङ्ग सखा है। ऐसा विश्वास हो आनेपर ही वे तुमसे बातें करेंगी। सो इन दोनों वस्तुओंको धारण करके ही उनके पास जाना।

उद्धव! तुम भाग्यशाली हो कि व्रजभूमिमें जा रहे हो। व्रज प्रेमभूमि है जो सभीका कल्याण करती है। तुम्हारे कल्याणके हेतु ही मैं तुम्हें वहाँ भेज रहा हूँ।

उद्धवजीका रथ चलने लगा तो श्रीकृष्णने उद्धवजीसे कहा—मेरे मात-पिताको मेरा प्रणाम कहना और उन्हें आश्वासन देना कि उनका कन्हैया अवश्य वहाँ आयेगा। इतना कहते-कहते तो श्रीकृष्णको रोना आ गया।

उद्धवजीकी समझमें ही नहीं आ रहा है कि व्रजको याद करते ही प्रभुकी आँखें क्यों बह निकलती हैं।

जीव जब अपना जीवत्व छोड़कर ईश्वरके साथ प्रेमसे तन्मय हो जाता है, तब ईश्वर भी अपना ईश्वरत्व, ऐश्वर्य भूल जाते हैं।

श्रीकृष्ण, मथुराके अधिपति, अपना पद, ऐश्वर्य भूलकर प्रेममें पागल होकर उस रथके पीछे दौड़ रहे हैं और उद्धवजीको संदेश देते जा रहे हैं। उद्धवजीने कहा—मैं रथमें बैठा हूँ। आप राजा हैं और मैं सेवक। आपका इस प्रकार रथके पीछे दौड़ना शोभास्पद नहीं है। आप चिंता न करें। मैं सबको भली भाँति उपदेश दूंगा।

अब प्रभु रुक गये। मेरा उद्धव भाग्यशाली है, जो प्रेमभूमि पहुँच रहा है। वे रथको देखते ही रहे।

इस ओर जबसे कन्हैया गोकुल छोड़ गया है, वनकी सघन कुंजें वीरान सी गयी हैं। यमुनाका जल गोपियोंके आँसुओंकी धारा-सा लग रहा हैं। गायोंने घास खाना छोड़ दिया है और मथुराकी दिशा निहारती रही हैं। श्यामविरहमें हर कोई व्यथित है, व्याकुल है।

एक सखीने व्यथाको इन शब्दोंमें वाणी दी है—

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें ।।
तब वे लता लगति अति शीतल
अब भईं विषम ज्वालकी पुंजें ।।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत,
बृथा कमल फूलै अलि गुंजें ।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि,
दधि - सुत - किरन भानु भईं भुंजें ।।
ये ऊधो कहियो माधवसों,
विरह करद कर मारत लुंजें ।
सूरदास प्रभुको मग जोवत,
अंखियाँ भई बरन ज्यों गुंजें ।।

जबसे कन्हैया मथुरा गया है, नन्दयशोदाने अन्नका एक दाना भी मुँहमें नहीं रखा है। जबतक वह नहीं लौटेगा, हम नहीं खायेंगे। न रातको नींद आती है और न दिनको चैन।

कृष्णविरहमें जीव अकुलायेगा, छटपटायेगा और आँखें बरसने लगेंगी तो मनकी मलिनता धुल जायेगी। बाहरका जल शरीरको धोता है।

विरहाश्रु हृदयकी मलिनताको धोते हैं। विरहाश्रु हृदयको शुद्ध, पवित्र करते हैं।

यशोदाजी सोचती रहती थीं कि अपना कन्हैया जब लौटेगा तो मैं उसे अपने गले लगा लूंगी और गोदमें बिठलाकर भोजन कराऊँगी। उसे खिलाकर ही मैं खाऊँगी। घरकी हर वस्तु कन्हैयाकी याद दिलाती थी। इस पात्रमें लाला माखन-मिसरी खाता था, उस सेजपर आराम करता था। नन्द-यशोदा इस प्रकार लालाकी यादमें डूबे रहते, आंसू बहाते रहते और परस्पर आश्वासन देते-लेते रहते थे।

यशोदाजी आँगनमें बैठे हुये नन्दको उलाहना दे रही रही हैं। आप ही के कारण लाला व्रज छोड़ गया है। आप उन्हें गायोंको चरानेके लिये भेजते थे तो वह कहता था कि उसे अन्य गोपबालक नचाते और दौड़ाते थे। व्रजवासी उसे रूखी-सूखी रोटी खिलाते थे। सो वह परेशान होकर रूठ गया और गोकुल छोड़कर चला गया। वह गायोंके पीछे दौड़-दौड़कर थक-हार गया सो यहाँसे चला गया है।

व्रजसे जाते समय उसने वापस आनेका वचन दिया था। मेरे आंसू वह देख नहीं पाता था। जब भी मैं रोती वह बड़े प्यारसे मुझे मनाने लगता था। आज वह ऐसा निष्ठुर क्यों हो गया है? मथुराके लोगोंने कुछ जादू-टोना कर दिया होगा। मैंने सुना है कि मेरा लाला मथुराका राजा बन गया है। इस समाचारसे मुझे बड़ा आनन्द हुआ। किंतु तुम उसे गायोंके पीछे दौड़ाते रहते थे, उसी कारणसे वह मुझे मिलने तक नहीं आ रहा है और यशोदा रोने लगीं।

नन्दजी—मैंने कल भेजा था उसे गायें चरानेके लिये ? वही कहता था कि वह गायोंकी सेवाके लिये ही जन्मा है। उसे गायोंके बिना चैन ही नहीं आता था। वह जब यहाँ था, तब गायें खा-पीकर कैसी हृष्ट-पुष्ट रहती थीं। किंतु अब तो लालाके विरहमें गायोंने खाना-पीना भी छोड़ दिया है। हाथीके बच्चों-सी हृष्ट-पुष्ट मेरी गायें आज दुबली-पतली हो गयी हैं। मुझसे तो यह दशा देखी नहीं जाती। मैं दुःखके मारे गौशालामें पाँव तक नहीं रख सकता हूँ।

लगता है अब तो लाला भी मथुराका राजा बनते ही अपनी गायोंको भूल गया है। यदि वह एक बार भी इधर आये तो व्रज सनाथ हो जाये। मुझे क्या खबर थी कि वह मथुरा जाते ही ऐसा निष्ठुर हो जायेगा। कन्हैयाकी गाय गङ्गी तो भूखी-प्यासी वृन्दावनमें ही मारी-मारी घूमती-फिरती है, घर आती ही नहीं है।

कन्हैया, अपने माता-पिताके लिए नहीं तो कम-से-कम अपनी गायोंके लिए तो एक बार इधर आ। तेरे बिना ये गायें मरियल-सी हो गई हैं।

तुझे गायें प्यारी थीं सो तू उन्हें चराने ले जाता था। मुझे लगता है कि एक बार मैंने तुझे मूसलसे बाँधा था इसीलिए तू रूठ गया है और यहाँ नहीं आता है।

इसी प्रकार नन्द-यशोदा सारा समय कन्हैयाकी यादमें व्याकुल होकर, आँसू बहाकर बिताते थे। किसीके आग्रह पर कभी-कभार कन्दमूल खा लेते थे।

एक दिन वे दोनों आँगनमें बैठकर कृष्णकी बाललीलाओंकी यादमें खोये हुए थे कि एक कौआ आकर काँव-काँव करने लगा। कौएकी बोली शकुनमयी मानी जाती है। कौएको सुना तो यशोदाने सोचा कि आज मथुरासे शायद कोई आयेगा। वह कृष्णके वचनको याद करते हुए कौएसे कहने लगी, मेरा कन्हैया यदि आ जाये तो तेरी चोंच मैं सोनेसे मढ़वाऊँगी। तुझे मिष्टान्न खिलाऊँगी। कन्हैयाके आगमनके समाचार देनेवालेकी मैं जन्म-जन्म सेवा करूँगी। कौए, मेरा लाला कब आ रहा है ?

इधर उद्धवजीके रथने मथुराकी सीमा पार करके व्रजभूमिमें प्रवेश किया। व्रजभूमि तो दिव्य है, सात्त्विक है, प्रेमभूमि है। यहाँके पशु, पंछी, वृक्ष सब कुछ दिव्य हैं। वे सब भी राधाकृष्णका कीर्तन करते हैं। वृन्दावनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ?

कृष्णके जानेके बाद मथुराके ग्वालबाल भी रोज प्रतीक्षा करते रहते थे। लालाने शाम-को लौटनेका वायदा किया था। वह आता नहीं था सो सब बच्चे रोते हुए घर लौट जाते थे। रोजका यही क्रम था।

एक दिन श्रीदाम, मधुमङ्गल आदि सब ग्वालबाल रास्ते पर बैठे हुए लालाकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूरसे एक रथ आता हुआ दिखाई दिया। बालकोंने सोचा कि लाला ही आया होगा। वे दौड़ते हुए रथके पास पहुँचे किंतु रथमें जो बैठा था वह नीचे नहीं उतरा। यदि कन्हैया होता तो कूदकर नीचे आकर गले लग जाता।

उद्धवजी बालकोंको देखकर भी रथमें ही बैठे रहे और बच्चोंसे कहने लगे, मैं श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर आया हूँ। वह आनेवाला है। मैं उद्धव हूँ।

बालक कहने लगे—उद्धवजी, हम कन्हैयाको सुखी करनेके लिये उसकी सेवा करते थे। कभी हमने ऐसा तो नहीं सोचा था कि वह ऐसा निष्ठुर हो जायेगा। कन्हैयाके बिना यहाँ सब सूना-सूना लगता है। वंशीवट, यमुनाका किनारा, वृन्दावन सब कुछ सूना और उदास है। यहाँ था, तब तो वह हमसे बड़ा प्यार करता था किंतु लगता है वहाँ जाकर वह हमें भूल गया है। उद्धवजी, उससे कहना कि गोवर्धननाथ, व्रजमें सभी उसे याद करते हैं। उसके बिना व्रज उजड़ गया है। वह कब आयेगा इधर ?

बालक उद्धवजीको नन्दबाबाके घरका रास्ता दिखलाते हुए कहने लगे, अच्छा हुआ कि तुम आ गये। हमें भी कन्हैयाको संदेशा भेजना है किंतु तुम पहले नन्द-यशोदाके पास जाकर उनको सांत्वना दो। वे रात-दिन लालाकी प्रतीक्षामें रोते आये हैं। हम फिर मिलने आयेंगे।

इधर यशोदा कौएके साथ बात कर रही थी कि यह रथ आँगनमें आ पहुँचा। नन्द-यशोदाने माना कि कन्हैया ही आ रहा है। दोनोंकी जानमें जान आ गयी। दोनों रथकी ओर दौड़ पड़े। दोनों पुकार उठे, कन्हैया आया, लाला आया। वे दोनों दौड़ते हुए रथके पास पहुँचे किंतु उसमें कन्हैया नहीं, कोई और ही था। कृष्णको न देखा तो कृष्णको पुकारते हुए नन्दजी मूर्छित हो गये। उद्धवजीकी तो समझमें ही नहीं आ रहा था कि ये लोग कृष्णका नाम लेकर क्यों रो रहे हैं।

यशोदाजी धीरज धरकर एक दासीसे कहने लगीं—यह कोई बड़े व्यक्ति लगते हैं। इनका स्वागत करो।

उद्धवजी स्नान और भोजन आदिसे निवृत्त होकर आराम करने लगे। दासीने नन्दजीसे कृष्णके मित्रके आनेका समाचार कहा तो उनकी मूर्छा दूर हो गयी। नन्दबाबाने आँखें खोलीं।

नन्दजीको प्रणाम करते हुये उद्धवजीने कहा—मैं आपके कन्हैयाका मित्र उद्धव हूँ और उसका सन्देश लेकर आया हूँ।

नन्दजीने भी कुशलमङ्गल पूछा। उन्होंने सोचा कि कन्हैया स्वयं नहीं आ सका होगा सो अपने मित्रको भेजा होगा। उद्धवजी, अच्छा हुआ कि आप आये। कंसकी मृत्युसे सब यादव सुखी हुये होंगे।

उद्धवजी, सच-सच बतलाना, क्या कन्हैया कभी हमको याद भी करता है क्या ?

अपि स्मरति नः कृष्ण मातरं सुहृदः सखीन्।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावन गिरिम्॥

भा. १०-४६-१८

उद्धवजी, यहाँके गोप-गोपियाँ, तरुवर, गिरि, गायें, वन सभी कन्हैयाको ही अपना सर्वस्व मानते हैं। क्या कन्हैया कभी हम सबका स्मरण करता भी है ?

उद्धवजी, कन्हैयासे कहना कि यह गिरिराज, यह यमुना उसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसकी गङ्गी गाय तो वनमें घूमती रहती है।

यह वही यमुना है जिसमें कृष्ण जलक्रीड़ा करता था। यह वही गिरिराज है जिसको उसने अपनी अँगुलीपर उठा लिया था। यह वही वनप्रदेश है जहाँ श्रीकृष्ण गायोंको चराता हुआ वंशी बजाता था। वह मैदान देखो, जहाँ कन्हैया अपने मित्रोंके साथ खेलता रहता था। उद्धवजी, इन सबको देखकर मेरा मन श्रीकृष्णमय हो जाता है और मैं पागल-सा हो जाता हूँ।

मुझे लगता है कि कन्हैया मथुरामें नहीं, यहीं है। मैं देख रहा हूँ कि वह पलनेमें सोया हुआ है। कल सारी रात मैं उसे पलनेमें झुलाता रहा और उससे बातें करता रहा। सुबह हुयी तो मैंने सोचा कि उसे जगा दूं नहीं तो गायें चराने जानेमें देरी हो जायेगी। ज्यों ही मैंने पलनेमें झांककर देखा तो वहां कुछ भी नहीं पाया। मैं उसे कैसे भूलूं ?

मुझे रोज-रोज उसकी बाँसुरीकी मधुर तान सुनाई देती रहती है। कल मैंने देखा कि वह कदम्बकी डालीपर बैठा हुआ वंशी बजा रहा था। मुझे लगा कि वह कई घण्टोंसे वंशी बजा रहा है सो उसे भूख लगी होगी। मैं माखन-मिसरी लेकर उस कदम्बपर चढ़ा तो वहाँ तो कोई था ही नहीं।

उद्धवजी, कई बार मुझे लगता है कि वह मेरी गोदमें बैठा हुआ खेल रहा है, मेरी दाढ़ी खींच रहा है। यमुनामें स्नान करनेके लिये जाता हूँ तो लगता है कि वह मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा है।

उद्धवजी, मैं उसे अपने कन्धोंपर बिठलाकर घुमाता था सो मुझे कई बार आभास होता है कि वह मेरे कन्धोंपर बैठ गया है। वह समय अब कब वापस आयेगा ?

उद्धवजी, मेरा कन्हैया कब लौटेगा ?

उसने कंस जैसे राक्षसोंका वध किया सो लोग उसे ईश्वर मानते हैं। उन्हें जो ठीक लगे वह माने किंतु मेरा तो वह पुत्र है। कन्हैया मेरा है, मेरा ही है। नन्दजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

मुझे तो पलनेमें, घरके कोने-कोनेमें, आँगनमें, यमुनाके किनारे हर कहीं कन्हैया ही दिखाई देता है। उद्धवजी, वह कब लौटेगा ? मैंने उसका कौन-सा अपराध किया है जो वह रूठ गया है।

उद्धवजी, वसुदेवजीसे कहना कि कन्हैया उन्हींका पुत्र है। मैं तो उनका दास हूँ। लाला-से कहना कि उसकी माता सारा दिन रोती रहती है। वह जब यहां था तो माताको मना लेता था। अब उसे कौन मनाये ? नन्दजी इतना बोलते-बोलते तो व्याकुल हो गये।

उद्धवजी उलझनमें पड़ गये। मैं इन्हें क्या उपदेश दूं ? इन्हें तो हर कहीं कृष्ण ही दिखाई देते हैं। पलनेमें, घरमें, आँगनमें, वनमें, यमुना किनारे, कदम्बकी डालीपर कृष्णके ही दर्शन करते हैं यह नन्दजी ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका उपदेशक होकर भी मैं वैसा अनुभव आज

तक नहीं कर पाया हूँ। मैं ऐसी ब्रह्मदृष्टिवाले नन्दजीको क्या उपदेश दूं ? उन्होंने नन्दजीसे कहा, बाबा, धन्य हैं आप। आपका जीवन सफल हो गया। आप कृष्णमय हो चुके हैं।

इतनेमें वहाँ यशोदाजी आ पहुँची। उद्धवजी, सच-सच बताओ कि मेरा लाला कुशल तो है न। वह खानेके समय बड़ी जिद करता था। वह कहीं दुबला तो नहीं हो गया है न ? क्या वह आनन्दमें तो है ? कभी वह मुझे भी याद करता है क्या ? वहाँ उसे कोन मनाता होगा ? गोकुलमें था तब तो वह मेरे आंसू देख नहीं सकता था। वह मुझे मना लेता था।

जब मैं यमुनाजी जाती हूँ तो उसका श्याम रङ्ग कन्हैयाकी याद दिला देता है। मुझे लगता है कि अभी वह यमुनाजीके जलमें-से बाहर निकल कर मेरी गोदमें आ बैठा है। उससे पूछना कि उसकी माताने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि वह यहाँ आनेका नाम तक नहीं ले रहा है। मैंने उसे एक बार मूसलके साथ बांधा था, इसीलिए तो वह नहीं रूठा है ?

वह कभी मुझे याद भी करता है क्या ? मैं उसकी माता तो हूँ नहीं। उसकी माता तो देवकी है। देवकीसे कहना कि सेविकाकी आवश्यकता हो तो मुझे बुला ले। कृष्णविरहमें हम मरे जा रहे हैं। वह जहाँ हो, वहाँ हमें ले चलो। हमें वहाँ ले चलोगे तो भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मैं नारायणसे प्रार्थना करती हूँ कि कन्हैया चाहे यहाँ न आये किंतु जहाँ भी रहे, सुखी रहे।

उद्धवजी—माताजी, श्रीकृष्ण तुम सबको बार-बार याद करते हैं। वे स्वय यहाँ आनेवाले थे किंतु मथुराका शासन उन्होंने सँभाला है सो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता है। मुझसे कहा, मैं मथुरामें आकर इस कारोबारमें डूब गया हूँ, तू माताको मेरा कुशलमङ्गल दे आ।

नन्द-यशोदाका कृष्णप्रेम देखकर उद्धवजीका आधा अभिमान तो हवा हो गया। जो व्यक्ति पलनेमें, घरमें, आँगनमें, वृक्षोंपर, वनमें हर कहीं कृष्णको ही देख रहा हो, उसे ब्रह्मकी व्यापकताका कोरा उपदेश कैसे दूं ? ये दोनों तो हर कहीं बुद्धि और मनसे ब्रह्मके सर्वव्यापी रूपका अनुभव कर रहे हैं।

बातों ही बातोंमें प्रभात हो गया।

ब्राह्ममुहूर्तमें गोपियाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर कृष्णकीर्त्तन करती हुइ दधिमंथन करने लगीं। उनकी आंखें भीग जाती थीं।

उद्धवजी यशोदाजीसे अनुज्ञा लेकर यमुनास्नान करने चले। सखियोंको भी कन्हैयाका सन्देशा देना था। गोपियोंका कृष्णकीर्त्तन सुना तो उन्होंने सोचा कि जिनके कण्ठ इतने मधुर हैं वे कैसी अद्भुत-स्वरूपा होंगी। उन्होंने अब तक किसी भी गोपीका दर्शन पाया नहीं था। ब्राह्ममुहूर्तमें कृष्णकीर्त्तन करनेवाले इन व्रजवासियोंको धन्य है। कृष्णके स्मरण मात्रसे इनके हृदय द्रवित होते हैं।

उद्धवका ज्ञानगर्व अब धीरे-धीरे मिट रहा था। ऊधो भयो सूधो। उद्धवका ज्ञान भक्तिरहित था सो कृष्णने उनको व्रज भेजा था। उद्धवजी नन्द-यशोदा-सी प्रेममूर्त्तिको देखकर आनन्दित हो गये।

दधिमंथनके बाद नन्दजीके आवासकी ओर देखकर प्रणाम करनेका गोपियोंका नियम था। आज नन्दके आँगनमें वे सब प्रणाम करने आयीं तो वहाँ रथ देखा। रथको देखा तो उनको अक्रूरप्रसङ्ग याद आ गया। हमारे कन्हैयाको ले जानेवाला अक्रूर लगता है, फिर आया है। क्यों आया होगा वह ?

विरहव्याकुला ललिता कृष्णका नाम रटती जा रही थी तो विशाखाने कहा—अरी, कृष्ण तो स्वार्थी और कपटी था, राजा बनते ही हम सबको भूल गया। अब मन लगाकर घरके कामकाज करने हैं।

ललिता—मैं कृष्णको ज्यों-ज्यों भूलनेका प्रयत्न करती हूँ, वे उतने ही याद आ जाते हैं। कल मैं कुएँ पर जल भरने गई थी तो बाँसुरीका सुर सुनाई दिया। मैंने इधर-उधर देखा तो पाया कि लाला वृक्षकी डाली पर बैठा हुआ बाँसुरी बजा रहा है। मैं लालाके दर्शनसे ऐसी बावरी हो गयी कि घड़ेको रस्सीसे बाँधनेके बदले मैंने अपने बच्चेको बाँधकर कुएँमें उतार दिया। लालाने यह देखा तो वह कूदकर आया, बच्चेको बाहर निकाला और मुझे उलाहना देने लगा। वह मुझे घर तक पहुँचा गया। मैं उसे कैसे भूल सकती हूँ ?

एक अन्य गोपी कहने लगी—लोग चाहे कुछ भी कहें, किंतु मुझे तो कृष्ण यहीं दिखाई देता है। वह मथुरा गया ही नहीं है। कल सायङ्कालको जल भरने यमुनाजी जाना पड़ा। अँधेरा होनेको आया था और म डर रही थी कि घड़ा उसने मेरे सिरपर रख दिया और बातें करता हुआ घर तक छोड़ गया। वह कहता था कि वह यहां व्रजमें ही रहता है। मुझे उसकी बातें बार-बार याद आती हैं। मैं उसका स्वरूप भूल नहीं सकती। उसके साथ बातें किये बिना चैन ही नहीं आता है मुझे।

बड़े-बड़े साधु और योगीजन समाधि लगाकर संसारको भूलनेका भगीरथ प्रयास करते हैं फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिलती। उनकी वृत्ति प्रभुमय नहीं हो पाती है। तो इधर ये गोपियाँ प्रयत्न करने पर भी संसारको याद नहीं रख सकती हैं। एक पल भी कन्हैयाको भुला नहीं पातीं। प्रभुको भूलनेके प्रयत्नमें निष्फल रहती हैं।

हर किसी वस्तुका अभाव अनुभव किया जा सकता है किंतु आत्माका नहीं। श्रीकृष्ण गोपियोंकी आत्मा है सो उन्हें कैसे भुला सकती हैं ?

गोपियाँ इस प्रकार कृष्णके विषयमें बातें कर रही थीं कि उद्धव स्नानादिसे निवृत्त होकर, भगवान द्वारा दिये गये पीताम्बर और वैजयन्तीमाला धारण करके आये। गोपियोंने उनको प्रणाम किया तो उद्धवजीने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं तुम्हारे मथुरावासी श्रीकृष्णका अंतरङ्ग सखा उद्धव हूँ और तुम्हारे लिए उनका संदेश लेकर आया हूँ।

गोपियाँ—तुम थोथे पण्डित ही हो। क्या श्रीकृष्ण केवल मथुरा ही में बसते हैं ? वे तो सर्वत्र हैं। तुम्हें मात्र मथुरामें ही भगवान दिखाई देते हैं और हमको तो यहांके कण-कणमें उनका दर्शन हो रहा है।

वहाँ देखो। कदम्बके वृक्षपर बैठा हुआ कन्हैया बांसुरी बजा रहा है। क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता ?

उद्धवजी ! यदि तुम्हें श्रीकृष्णसे साक्षात्कार हुआ होता तो तुम उन्हें वहाँ छोड़ यहाँ आये ही नहीं होते अथवा तुम्हें यहाँ भी कृष्णके दर्शन हुये होते।

दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि तथा कल्याणके अन्य सभी साधनोंसे ईश्वरसे साक्षात्कार करनेका ही प्रयत्न करना चाहिये। वे सब साधन भगवानकी प्राप्तिके ही हैं।

इन गोपियोंने तो जपतप आदि किये बिना ही केवल प्रेमभक्तिसे भगवानको पा लिया है। उन्होंने अनायास ही सब कुछ पा लिया है।

दान, जप, तप, व्रत आदि तो मनको ईश्वरमें एकाग्र करनेके हेतु ही हैं। यदि इन साधनोंके प्रयोगके बाद भी मन ईश्वरसे न जा लगे तो सब कुछ व्यर्थ ही रहेगा।

उद्धवने गोपियोंको व्यापक निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देनेका विचार किया। वे कहने लगे— निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करो।

गोपियाँ—उद्धवजी, जो आनन्द प्रभुने दिया है वह आनन्द तुम्हारा कोरा ज्ञान नहीं दे सकता। हम कृष्णके जापके सिवाय और कुछ भी करना नहीं जानतीं। हम तो गाँवकी अनपढ़ गोपियां हैं। अपना सगुण-निर्गुण ब्रह्मका विवेक तुम्हें मुबारक हो। हम तो कृष्ण प्रेममें ही तन्मय रहती हैं सो वह हमें प्रत्यक्ष दर्शन देता रहता है। तुम्हारे उस निर्गुण ब्रह्मकी आराधनाके हेतु हम मन, चित्त कहाँसे लायें ? अपना जो चित्त था वह तो कान्हाने चुरा लिया है।

चितवैन नहीं, चितचोर चुरायो है।

उद्धवजी, भगवानने कोई दस-बीस मन तो बनाये नहीं हैं और जो एक था, वह तो श्यामसुन्दर उड़ा ले गया है। अब तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मको उपासना कौन मनसे करें ?

ऊधो मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधे ईश॥
इन्द्रिय शिथिल भईं केशव बिनु, ज्यों देही बिनु शीश।
आसा लागि रहित तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तो सखा श्याम सुन्दरके, सकल जोगके ईश।
सूर हमारे नन्द नन्दन बिनु और नहीं जगदीश॥

उद्धवजी, उस नन्दनन्दनके सिवाय अपना अन्य कोई ईश्वर नहीं है। वही हमारा सर्वस्व है।

उद्धवजी, उस कृष्णकी बातें ही जाने दीजिये। उस कपटी काले कन्हैयाकी मित्रता हमें नहीं चाहिये। उसने तो हमारा कलेजा कुरेद दिया है।

भक्त कवि दयाराम कहते हैं—

कालजुं कोर्युं ते कोने कहिये जी रे···
वेरी जो होय तो वढतां रे फावीये, प्राणथी प्यारो येने लहीये
सोडनो धाव मार्यो स्नेही शामलिये, किया राजाने रावे जइये जी रे···
कल न पड़े, कांई पेर न सूझे, रात-दिवस बेलां रहीये जी रे···
कोई वस्तुमां क्षण चित्त न चोंटे, अलबेलो आवी बेठो हैये जी रे···
दयाना प्रीतमजीने जई येटलु तो कहेजो, क्यां सुधी दुःख सहीये जी रे···

श्यामने अपने हृदयमें ही घाव किया है फिर भी उसको भुलाना, उसकी उपेक्षा करना हमारे लिए अशक्य है।

दुस्त्यजस्तत्कथार्थः।

उद्धव, और तो हम क्या कहें? सबसे पहले श्रीकृष्णका दर्शन हमने नन्दमहोत्सवके दिन किया था और तबसे उन्होंने ऐसा जादू डाला है कि हम उनकी हो गयी हैं।

उद्धवजी, अब इस हृदयमें किसी औरके लिये स्थान है ही नहीं। चलते-फिरते, जागते-सोते, विचारमें सपनेमें उस श्यामकी ही मूर्ति हृदयमें समायी रहती है।

नाहिंन रह्यो हियमें ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत रात।
हृदयतें वह श्याम मूरति, छिन न इत उत जात॥
श्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

उद्धवजी, कृष्णने हमें रासलीलाके महानन्दका अनुभव कराया और अब बिसार दिया। ऐसे निष्ठुर क्यों हो गये हैं वे?

उद्धवजी—नहीं नहीं। ऐसा नहीं है। मेरे स्वामी तुम सभीको बहुत याद करते रहते हैं।

गोपियाँ—उद्धवजी, तुम्हें यदि श्रीकृष्णके मूल स्वरूपका ज्ञान होता तो तुम यहाँ आये ही नहीं होते। तुम्हें ब्रह्मज्ञानकी बातोंने भरमा दिया है। जो उनके असली रूपका दर्शन कर पाया है, वह उनको कभी छोड़ नहीं सकता है। तुम उन्हें छोड़कर आये हो सो लगता है कि तुमने उन्हे पहचाना ही नहीं है।

हे उद्धव, तुम किसका संदेशा लेकर आये हो? इस अनाथ व्रजको वे कब सनाथ करेंगे?

गोपियाँ पागल-सी होकर प्रलाप करने लगीं। वृक्षोंमें श्रीकृष्णका रूप निहारकर वृक्षोंको आलिङ्गन देने लगीं। ये रहे मेरे श्रीकृष्ण।

अब उद्धवजी गहरे सोचमें डूबे जा रहे हैं। ये गोपियाँ, ये नन्द-यशोदा पलनेमें, घरमें, आँगनमें, वृक्षोंमें, जलमें, धरतीके कण-कणमें श्रीकृष्ण-ब्रह्मके अस्तित्वका अनुभव कर रहे हैं। ये अनपढ़ गवाँर होकर भी ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका अनुभव कर रहे हैं। इधर

एक मैं हूँ जो बरसोंसे व्यापक ब्रह्मके वेदांतका रटन-चिंतन करता आया हूँ, फिर भी उसका दर्शन और अनुभव पा नहीं रहा। मेरा शुष्क ज्ञान निष्फल ही रहा। मेरा ज्ञान, पण्डिताई निरर्थक ही रही।

मैं बुद्धि लड़ाता रहा, वेदांतके सिद्धांतोंमें उलझता रहा किंतु ब्रह्मका अनुभव नहीं कर पाया।

ज्ञानार्जन एक बात है और ज्ञानानुभव दूसरी। ज्ञानार्जनका महत्त्व होते हुए भी ज्ञानानुभवका महत्त्व अधिक है।

सखियाँ उद्धवजीको राधिकाजीका दर्शन कराने ले गयीं। सखियोंकी मण्डलीमें विराजमान श्रीराधिकाजीकी शोभा अवर्णनीय है। नव वर्षकी निर्दोष, वय, सादगीभरा शृङ्गार, मुखपर दिव्य तेजकी आभा, सात्त्विकता और प्रेमकी मूर्त्ति, जगतके आनन्ददाता श्रीकृष्णकी आनन्ददायिनी श्रीराधिकाजीको उद्धवजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

किंतु राधिकाजीका शरीर श्रीकृष्णके विरहके कारण सूखे काँटे जैसा हो गया था। मन व्याकुल और व्यथित था। केश रूखे-सूखे और बिखरे हुए थे। चन्द्रमुख शुष्क-सा हो गया था। मुखसे वेदनाभरी आहें निकल रही थीं और आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। इस प्रकार वे दुखवल्लरी-सी दिखाई दे रही थीं।

> सूखकर काँटा हुआ तन, था विकल बेहाल मन।
> बाल बिखरे शुष्क थे मुरझा हुआ था विधु-वदन॥
> वह निकलती आह थी, थीं आँख आँसूसे भरीं।
> वसन अस्तव्यस्त थे, थी दुःखलता पूरी हरी॥

श्रीराधाजी उद्धवजीसे पूछने लगीं—तुम कौन-से श्रीकृष्णका सन्देशा लाये हो? मेरे श्रीकृष्ण तो यही हैं। मैं वियोगिनी नहीं हूँ। अंतरकी संयोगिता राधा श्रीकृष्णके चिंतनमें लीन हो गयीं।

उद्धवजीने फिर वर्णन किया और कहा—मैं मथुरासे आया हूँ। श्रीकृष्ण यहाँ आनेवाले हैं।

श्रीराधाजी—क्या तुम मेरे स्वामीका संदेश लेकर आये हो? किंतु उस संदेशसे मुझे कोई शांति नहीं मिलेगी। विरहिणीके दुःखको कौन समझ पाएगा? 'रामबाण वाग्यां होय ते जाणे।' मुझे शांति दे सके ऐसा कोई शास्त्र, मंत्र या ज्ञान जगतमें नहीं है। मैं तो प्रतिक्षण श्रीकृष्णका भजन, ध्यान और दर्शन कर रही हूँ।

राधाजीकी कातर दशा देखकर सभी गोपियाँ, वृक्ष-वेलियाँ, फूल-कलियाँ, पशु-पंछी रोने लगे। राधाजीके दिव्य प्रेमने उद्धवजीको भी रुला दिया। मैं इस राधिकाको क्या उपदेश दूंगा?

श्रीराधाजीके मुखकमलकी सुवाससे एक भ्रमर आकर्षित होकर मँडराने लगा। राधिकाजी उसे दूर करने लगीं। तू तो कपटी है, काले कृष्णका कपटी बंधु है, मेरे पास मत आ। उद्धवजीने फिर राधिकाजीको प्रणाम किया।

संतालीसवें अध्यायके बारहसे इक्कीसवें श्लोक भ्रमरगीतके नामसे जाने जाते हैं। भ्रमरगीतमें वैसे तो राधिकाजी भ्रमरको उलाहना देती हैं किंतु उसका लक्ष्य तो है उद्धवजी और साथ-साथ कुछ कृष्णको भी सुनाया है। भ्रमरगीत एकवचनमें है और वेणुगीत, युगलगीत आदि बहुवचनमें।

उद्धवजी कहते हैं—श्रीकृष्णको कपटी मत कहो। वे तो दया और प्रेमके सागर हैं। वे तुममें-से किसीको भी नहीं भूल पाये। वे तुम सभीको बार-बार याद करते हैं।

राधाजी—उद्धव, तुम उन्हें अच्छी तरह पहचान ही नहीं पाए हो। यदि उनके मूल स्वरूपका ज्ञान और अनुभव तुम्हें हुआ होता तो तुमने उनको छोड़ा ही नहीं होता। तुम्हें ज्ञान और शास्त्रकी बड़ी-बड़ी बातें करके उन्होंने छला है। तुम्हारे शुद्ध ज्ञानसे इस शुद्ध प्रेमकी भूमिको क्या लेना-देना है ? ज्ञान और योगकी चर्चा यहाँ अप्रस्तुत हैं। प्रेमराज्यमें एक ही प्रियतमका शासन होता है। अपना तो ज्ञान, शास्त्र, कर्म, धर्म सब कुछ श्रीकृष्ण ही है। अपनी साँस तक श्रीकृष्णमय है। तो फिर तुम्हारे ज्ञानको हम कहाँ स्थान देंगे ? इस प्रेमकी भूमिमें तुम प्रेमकी बात कर सकते हो, शुष्क ज्ञानकी नहीं।

उद्धवजी—मैं तो मथुरावासी श्रीकृष्णका सन्देशा लेकर आया हूँ कि वे तुम्हें भूले नहीं हैं। तुम्हें और तुम्हारे प्रेमको बार-बार याद करते हैं।

श्रीराधाजी—उद्धवजी, तुम यह क्या कह रहे हो ? भगवान सर्वव्यापी हैं, फिर भी तुम उन्हें केवल मथुरावासी ही बता रहे हो। षड्शास्त्रोंका तुमने अभ्यास तो किया किंतु कोरे ही रहे तुम। शास्त्रोंमें डूब गए किंतु मोती पा न सके।

उद्धवजी, मेरे कृष्ण केवल मथुरामें नहीं, हर कहीं बसते हैं। मुझे तो चारों ओर वही दिखाई दे रहे हैं। श्रीकृष्ण यहाँके कण-कणमें हैं, हमारे मनमें हैं, हमारे हृदयमें हैं। हमारे रोम-रोममें वे बसे हुए हैं। वह कपटी कभी सामने आ जाता है तो कभी छिप जाता है। तुम तो उसकी दो-चार महीनोंसे सेवा कर रहे हो। मैं तो उनकी जन्मजन्मान्तरकी दासी हूँ। तुम उनके विषयमें क्या जानते होगे ? कृष्ण स्वार्थी था तभी तो सुग्रीवका पक्ष लिया था उसने अपने रामावतारमें। वह कपटी है तभी तो हमें छोड़ गया है।

तुम मुझे बार-बार वन्दन क्यों कर रहे हो ? यहाँ क्यों आये हो ? तुम्हें अपने कन्हैयाने भेजा है सो हम तुम्हारा स्वागत तो करती हैं किंतु हम अनपढ़ोंको तुम्हारे शास्त्रज्ञानसे क्या वास्ता ?

उद्धवजीने मान लिया कि उनके अपने ही शब्द गोपियाँ वापस दे रही हैं। उन्होंने कृष्णसे गोपियोंको अनपढ़ कहा था।

उद्धवजी—मुझे क्षमा करो राधिकाजी ! मैंने तुम्हारा अपमान करके अपराध किया था। तब मैं ही अज्ञानी था। राधाकृष्ण अभिन्न हैं, यह आज मैंने प्रत्यक्ष देखा।

बिना राधे कृष्ण आधे।

राधाजी—उद्धवजी, मैं और कृष्ण अभिन्न हैं। तुम क्या चाहते हो ? हमारे अतिथि होनेके नाते तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना हमारा कर्त्तव्य है।

उद्धवजी—मेरी बुद्धि ज्ञानके अभिमानसे कुण्ठित और कठोर हो गई है। ज्ञानने मुझे जड़, शुष्क बना दिया है। मुझे तुम प्रेमलक्षणा भक्तिका दान करो।

राधाजीने उद्धवजीकी इच्छा पूर्ण की। उनको प्रेमलक्षणा भक्तिका ज्ञान मिला।

गोपियाँ बाहर और भीतर कृष्णके अस्तित्वका अनुभव कर रही हैं। राधाजीने बंसरी बजाई तो 'राधेगोविंद राधेगोविंद' की सुरीली तान बह चली। गोपियाँ भी कृष्णकीर्त्तनमें लीन हो गयीं।

गोपियोंकी भावविह्वलताको देखकर कृष्ण भी मथुरासे दौड़ते हुए आ पहुँचे। सखियोंकी मण्डलीमें राधिकाजीके साथ विराजमान हुए। गोपियों और उद्धवजीने राधाकृष्णके मनोहर स्वरूपका दर्शन किया। उन्हें अब यह भी ज्ञात नहीं है कि वे कौन हैं, कहाँ है, कहाँसे क्यों आये हैं।

उद्धवजीका ज्ञानाभिमान निर्मूल हो गया। वे दो-चार दिनोंके लिये गोकुल गये थे किंतु वहाँ छः महीने बीत गये। उनको विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण गोपियोंसे दूर भी नहीं हैं और भिन्न भी नहीं। जब भी गोपियाँ कृष्णकीर्त्तन करती हैं, वे मथुरासे आ जाते हैं।

उद्धवजी, एक प्रसङ्ग सुनाऊँ? एक बार कन्हैया अपने मित्रोंके साथ आँख-मिचौनी खेल रहा था। श्रीदामा ढूंढ़ रहा था। पहले कन्हैया इस कुण्डमें छिप गया और फिर भागता हुआ मेरे घर आकर कहने लगा, मुझे कहीं छिपा दे नहीं तो श्रीदामा मुझे घोड़ा बनायेगा। मैंने उसे अपनी गोदमें छिपाकर आँचल ओढ़ा दिया। अब जब भी मैं सोने जाती हूँ तो लगता है कि कन्हैया मेरी गोदमें छिपा हुआ है और मैं पागल-सी हो जाती हूँ।

भगवानकी लीलाकथा सुनते-सुनते उद्धवजीकी आँखोंसे आँसू छलक आते हैं। ये गोपियाँ धन्य हैं जो प्रतिक्षण ब्रह्मका अनुभव कर पाती हैं।

कृष्ण गोपियोंसे कहते हैं—गोलोकधाममें हमारा नित्य सम्बन्ध है। हम वियोगी हो नहीं सकते। ज्ञानदृष्टिसे देखें तो मैं यहाँ हूँ, सर्वत्र हूँ, तुम्हारे साथ ही हूँ। मैंने विरहका दान इसलिए तुम्हें दिया है कि तुम हमेशा मेरे स्वरूपका ध्यान और स्मरण करती रहो। मेरा दूरत्व ही तुम्हें मेरा ध्यान करा रहा है।

विरहावस्थामें चित्त प्रियपात्रमें एकाग्र हो जाता है और उसीका ध्यान, स्मरण करता रहता है। विरहावस्थामें प्रियपात्रका सतत सान्निध्य अनुभूत होता है।

मेरा तुम अविरत ध्यान करती रहो, इसलिये मैंने तुम्हें विरह दिया है।

संयोगावस्थामें चक्षुदर्शन होता है, वियोगावस्थामें मनोदर्शन। वियोग तो एक विशिष्ट प्रकारका योग ही है। पति कहीं बाहर गया हुआ हो तो पत्नी बड़ी लगनसे उसीका ध्यान धरती रहती है।

गोपियोंको विशिष्ट योगका दान करनेके लिये ही भगवानने वियोग दिया।

हम विभक्त हो ही नहीं सकते। मैं तुम्हारे समीप हूँ। तुम मेरे स्वरूपको याद करते रहना। तुम तो गोलोककी नित्यसिद्धा गोपियाँ हो।

गोपियोंको भी उद्धवजीके साथ रहनेसे ज्ञान-लाभ हुआ। उनकी भक्ति ज्ञानके कारण दिव्य बन गई। विरहावस्थामें वे मानने लगीं कि श्रीकृष्ण तत्त्वतः उनके निकट ही हैं।

प्रेमलक्षणा भक्ति पाँचवा पुरुषार्थ है। भक्ति अभेद सिद्ध करती है। ज्ञान भी अभेद सिद्ध करता है किंतु ज्ञानकी तुलनामें भक्तिमार्ग अधिक सरल है।

प्रभुसे कहा, तुम मेरे नहीं, मैं तुम्हारा हूँ। समुद्रकी तरङ्ग हो सकती हैं, तरङ्गका समुद्र नहीं।

नन्दबाबा, यशोदाजी, राधाजी तथा अन्य गोपियोंके तीव्र कृष्णप्रेमको प्रत्यक्ष देखकर उद्धवजीका ज्ञानभिमान जलकर खाक हो गया। उन्हें स्पष्टतः ज्ञान हो गया कि प्रेमभक्तिके बिना ज्ञान निरर्थक है, प्रेम ज्ञानसे श्रेष्ठ है।

गोकुल छोड़नेकी इच्छा ही नहीं हो रही थी उद्धवजीकी। वे आये थे गोपियोंके गुरु बनने किंतु उन्हींके शिष्य बन गये। अब तो वे भगवानसे मात्र प्रेमलक्षणा भक्ति ही माँगनेकी सोचने लगे।

जिन्हें महान मुनि भी पा सकते हैं, ऐसे भगवानको इन गोपियोंने सहज ही पा लिया है। मैं उनकी चरणरजसे स्नान कर लूं कि जिससे अगले जन्ममें चाहे मनुष्य न होऊँ किंतु वृन्दावनके वृक्ष, लता, पशु, पक्षी कुछ भी बननेका लाभ मिल सके। ऐसा होनेपर भी मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

गोपियोंके सत्सङ्गसे उद्धवजीको ज्ञानोत्तर प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। उन्होंने सभी गोपियोंकी चरणरज अपने मस्तक पर चढ़ाई। सभीको वन्दन किया।

कृष्णविरही जीवका वर्तन और व्यवहार कैसा होना चाहिए, उसका आदर्श इन गोपियोंने जगतके समक्ष रखा है। धन्य है उन व्रजवासी नरनारियोंको!

उद्धवजीने अब मथुरा जानेकी अनुज्ञा माँगी। राधाजीने कहा, उद्धवजी, कृष्णसे कहना कि वे शीघ्र ही यहाँ आकर गोकुलको सनाथ करें। कृष्णके लिए कुछ भेंट भी उन्होंने दी।

इस समय यशोदा और नन्दजी भी आ गए। उन्होंने संदेशा भेजा—

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां नायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥
कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गलाचरितैर्दानैरतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥

भा० १०-४७-६६-६७

उद्धवजी, हम तो यही चाहते हैं कि अपनी सभी वृत्तियाँ और सङ्कल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आश्रित रहें और उनकी सेवामें ही लगे रहें। अपनी वाणी उन्हींका नामोच्चार करती रहे। अपना शरीर उन्हींकी सेवा करता रहे। हमें मोक्षकी इच्छा नहीं है। अपने कर्म और प्रभुकी इच्छाके अनुसार हमें जिस किसी योनिमें

जन्म मिले, हम शुभाचरण, दानधर्म करते रहें, ईश्वरके प्रति हमारी प्रीति उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रहे।

सन्देश सुनाते-सुनाते नन्द, यशोदा और गोप-गोपियोंका हृदय भर आया।

इन दो श्लोकोंमें समग्र भागवतका हृदय समाहित है। विषयोंके प्रति वैराग्य और कृष्णके प्रति प्रीति उत्पन्न करनेवाले ये दो श्लोक भागवतकी आत्मा है।

उद्धवजी, कृष्णसे कहना कि मेरा मन सदासर्वदा उन्हींमें रमता रहे। मेरा मन संसारके किसी पदार्थकी ओर न चला जाय। मेरी वाणी कृष्णका जप करती रहे और दृष्टि उसका दर्शन।

यदि प्रारब्धकर्मानुसार जन्म देना ही हो तो किसी पवित्र वैष्णवके घरमें देना कि जिससे कृष्णकीर्त्तन सुननेका लाभ सदा मिलता रहे। कृष्णकीर्त्तन सुनकर मैं कृतार्थ होता रहूँ और सेवामें तन्मय होनेका अवसर मिले।

यशोदाजी कहने लगीं—उद्धवजी, कन्हैयासे कहना कि उसे इच्छा हो तो यहाँ आये, केवल हमारे लिए आनेका कष्ट न करे। यदि उसे वहीं सुख-आनन्द मिलता हो तो वहीं रहे। हमारे वियोगसे यदि उसे सुख होता हो तो वह मथुरासे यहाँ आनेका कष्ट न करे। हम तो यहाँ उसके विरहमें जलने और आँसू बहानेमें भी सुख ही मानेंगे। हमारे सुखके लिए उसे श्रम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह जहाँ भी रहे, सुखी रहे। इतना कहते यशोदाजीको भी रोना आ गया।

यशोदाजीकी भक्ति पुष्टि भक्ति है। पुष्टिभक्त अपने सुखका नहीं, अपने आराध्यके सुख-का ही विचार करता है।

राधाजीने कहा—उद्धवजी, कृष्णकी यह बाँसुरी और कमली भी लेते जाओ। इन्हें मैं यहाँ रखकर क्या करूँगी? तुम कृष्णको ही दे देना।

उद्धव, कृष्ण तो अब तो बड़ा राजा बन गया है। उसके लिए मैं क्या भेजूं? मैंने माखन-मिसरी तैयार रखी हैं सो तुम उसे मेरी ओरसे खिलाना किंतु मेरा नाम मत लेना।

उद्धवजीने सबको धीरज देते हुए कहा कहा, आप सब चिंता न करें। मैं कृष्णको शीघ्र ही यहाँ ले आऊँगा।

उद्धवजीका रथ मथुराकी दिशामें बढ़ने लगा। उनका मन भी विचारोंकी गहराइयोंमें गोता लगाने लगा। मैं आज तक मानता था कि कृष्ण करुणानिधि, कृपासागर हैं किंतु लगता है कि वे तो बड़े कठोर हैं। इन भोले व्रजवासियोंको विरहाग्निमें जला रहे हैं। मैं उनको उपालंभ दूंगा।

उद्धवजी मथुरा आ पहुँचे। कृष्णके पास आये। अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जानते हैं कि उद्धव क्या कहने जा रहे हैं। सो वे कहने लगे—उद्धव, जब तुम इधर थे तो मेरी प्रशंसा करते थे। अब गोकुल हो आये तो गोपियोंकी प्रशंसा करने लगे हो। मैं निष्ठुर नहीं हूँ।

भगवानने उद्धवजीके मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराया। उद्धवजी समाधिस्थ होकर देखने लगे कि वह तो सब कृष्णकी लीला मात्र है। वे तो मथुरामें भी हैं और गोकुलमें भी। भगवानने अपनी सभी गोकुललीलाओंका दर्शन कराया। एक स्वरूप मथुरामें दिखाई दिया तो दूसरा गोकुलमें। एक स्वरूप यशोदाकी गोदीमें था तो दूसरा राधाजीके साथ रास रचा रहा था। उद्धव, मेरी यशोदा माताने प्रेमबन्धनसे मुझे इस प्रकार बाँध दिया है कि मैं वृन्दावन छोड़ ही नहीं सकता। चाहे मैं मथुरामें दिखाई दूं किंतु मैं होता तो हूँ गोपियोंके पास ही। मैं गोपियोंसे अभिन्न हूँ। राधा-कृष्ण एक ही हैं।

उद्धवका गोकुलागमन-प्रसङ्ग ज्ञान और भक्तिके मधुर कलहका चित्रण है। उद्धवके ज्ञान और गोपियोंकी भक्ति—निर्गुण और सगुण—का यहाँ संघर्ष और समन्वय है।

भगवानकी गोपी-प्रेमलीलाकी कथा दशम स्कन्धके अड़तालीसवें अध्याय पर समाप्त होती है। अब भगवानकी राजसलीलाका आरम्भ होने जा रहा है।

राजस भक्तोंके मनके निरोधके लिए राजसलीलाकी कथा है।

कृष्णकथा सभी प्रकारके जीवोंको आनन्द देती है। कृष्ण सभी जीवोंको अपनी ओर आकर्षित करके परमानन्दका दान करते हैं। कुब्जाको भी उन्होंने कृतार्थ किया।

भगवानने अक्रूरजीके घर आकर उनको आज्ञा दी—धृतराष्ट्र पाण्डवोंको लाक्षागृहमें भस्मीभूत करना चाहता है सो तुम धृतराष्ट्रके घर दो-चार दिन ठहरकर यह देख आओ कि वह पाण्डवोंके लिए कैसी भावना रखता है। तुम वहां प्रत्यक्ष जाकर परीक्षा कर आओ।

अक्रूरजी हस्तिनापुर आकर धृतराष्ट्रके पास दो मास तक रहे और उसको उपदेश भी दिया—हे धृतराष्ट्र, जीव अकेला जन्म लेता है और मरता भी अकेला ही है। सो कुटुम्बके लिए पाप करना अत्यन्त अनुचित है।

आँखोंका अन्धा अन्धा नहीं है किंतु जिसकी आँखें होते हुए भी जो लोभ, मोह, मद, कामकी पट्टीके कारण नहीं देख सकता हो वही अन्धा है। धृतराष्ट्रकी आँखें मोह और लोभसे अन्धी हो गई थीं। जिसकी आँखोंको रुपये-पैसोंने घेर लिया है, वही धृतराष्ट्र है। धृतराष्ट्र-सा लोभी अक्रूर जैसोंके सत्सङ्गसे भी सुधर नहीं पाता।

मृत्युके समय धन नहीं, धर्म और सत्कर्म ही साथ जाते हैं। फिर भी विचित्रता तो देखो कि मनुष्य विषय-सुखोंके पीछे ही भागता रहता है। वह संसारके सिवाय अन्य कहीं आनन्द ढूंढ़नेका प्रयत्न ही नहीं करता है।

अक्रूरजीने धृतराष्ट्रसे पूछा—तुम जान-बूझकर यह पाप, यह कपट क्यों कर रहे हो?

धृतराष्ट्र—आपकी बात तो पतेकी है किंतु दुर्योधनके मेरे पास आते ही मेरा सारा ज्ञान, विचार, विवेक हवा हो जाता है।

जो सच्ची और योग्य बात समझकर भी पाप करता है, जान-बूझकर पाप करता है, वह धृतराष्ट्र है।

भगवानकी भी अब तो इच्छा है कि कौरवोंका विनाश हो जाय।

बीज शुद्ध होनेपर भी कुसङ्गके कारण जो बिगड़ता है, वह शठ है। जिसका बीज ही दुष्ट है, वह खल है। शठ सत्सङ्गसे सुधर सकता है किंतु खल सुधर नहीं पाता।

मंदारमूले वदनाभिरामं बिम्बाधरे पूरितवेणुनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविंद दामोदर माधवेति ॥

जिनका मुखारविन्द अतिशय मनोहर है, जो बिम्ब-समान लाल अधरोंपर बांसुरी रखकर मधुर तान छोड़ रहे हैं, जो कदम्ब वृक्षके नीचे गायों, गोपों और गोपियोंके मध्य विराजमान हैं ऐसे भगवानका 'हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव' ऐसे सम्बोधनोंसे सदासर्वदा स्मरण करना चाहिये।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध)

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

प्रणाम करनेवालोंके दुखहर्ता, श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, गोविन्दको बार-बार नमस्कार हो ।

सभी साधनोंका फल है मनशुद्धि । इसके लिये मनुष्य भाँति-भाँतिके साधन करता है । जगत विकृत नहीं हुआ, मनकी अशुद्धिके कारण ही जगत भी विकृत लगता है । इस जगमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । ज्ञानीके लिये यह जगत आनन्ददायी है और अज्ञानीके लिये दुःखदायी । ज्ञानीका मन अति शुद्ध होता है और अज्ञानीका मन पशु-सा जड़ ।

कामक्रोधादि विकार मनको अशुद्ध करते हैं । मन निर्विकारी, निर्वासनामय बनेगा तभी शुद्ध होगा । शुद्ध हुआ मन निष्काम बनेगा और तभी ज्ञानका उदय होगा । मनशुद्धिके लिये योगीजन ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, प्राणायाम आदि करते हैं किंतु कई बार ऐसा करनेपर भी मन पूर्णतः शुद्ध नहीं हो पाता ।

जब श्रीकृष्णविरहसे व्याकुल होकर कृष्णदर्शनके लिये प्राण छटपटाने लगते हैं, तब मन शुद्ध होता है । विरहाग्निमें मनकी मलिनता जल जाती है । साधारण जन तो प्रभुविरह सह लेता है किंतु सन्तोंके लिये तो प्रभुविरह असह्य है । उनकी दर्शनातुरता शरीरको जलाकर मनको तन्मय कर देती है । तब वे ईश्वरका अनुभव करते हैं ।

वैसे तो ईश्वर सर्वत्र हैं । कृष्णविरहमें जलते हुये व्रजवासी आँसू बहाने लगते हैं । उन्हें वृन्दावन श्मशान-सा लगता है ।

विरहमें जब जीव बेचैन हो जाता है, तब अपने प्रियपात्रकी मधुर छवि उसकी दृष्टिमें तैरने लगती है । संयोगकी अवस्थामें तो वह प्रिय एक ही दिखाई देता है जब कि विरहावस्थामें स्थान-स्थानपर कई रूपोंमें वह दिखाई देता है । वियोगावस्थामें तो जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ अपना प्रियपात्र दृष्टिगोचर होता है ।

गोपीप्रेमकी कथा उद्धवजीके प्रसङ्गके साथ समाप्त हुई । गोपियाँ प्रेमलक्षणा भक्तिकी आचार्या हैं । संसारव्यवहार निभाते हुये भी किस प्रकार प्रभुभक्तिकी जा सके, वह उन्होंने बतलाया है ।

भागवतमें हर चरित्रके अन्तमें उसका रहस्य भी निर्दिष्ट है । कंस और कंसकी रानियां अस्ति और प्राप्तिकी बातें हमने देख लीं । नीति-अनीतिसे, किसी भी प्रकारके हथकण्डे अपनाकर धन कमानेवाला व्यक्ति कंस है । जबसे लोगोंने धनको ही सभी सुखोंका आधार माना है और बैंकबेलेंसकी चितामें खोयेसे रहने लगे हैं, तभीसे पाप बढ़ता ही जा रहा है, कंस बढ़ते ही जा रहे हैं । पैसा चाहे कोई सुख दे सकता हो, शांति नहीं दे सकता ।

दशम स्कंधके उत्तरार्धमें पचासवें अध्यायमें जरासंधके आक्रमणकी कथा है।

जब तुम पचास वर्षके हो जाओगे जरासंध-काल तुम्हारी मथुरानगरी-शरीर पर आक्रमण करेगा। जरासंध वृद्धावस्था है। हमारी उत्तरावस्था ही जरासंध है जो शरीरके कई अंगों पर धावा बोल देती है।

पचास वर्ष पूरे होने पर जरासंध आता है। जीवनका पूर्वार्ध समाप्त हुआ और अब उत्तरार्ध आया है। वृद्धावस्था शुरु हो रही है। जरासंधके आने पर मथुराका गढ़ टूटने लगता है। आँखोंकी, कानोंकी, हाथ-पांवकी शक्ति क्षीण होती जाती है।

चालीसवाँ वर्ष शुरु होते ही प्रवृत्तिमें कटौती करनी शुरु करनी चाहिये। प्रभुकी सेवाका समय बढ़ाते जाना चाहिये।

श्रीकृष्णने जरासंघको सत्रह बार पराजित किया तो वह अठारहवीं बार कालयवनको साथ ले कर आया। उसने कालको पहले भेजा।

जब जरासंध-वृद्धावस्था अपने साथ कालयवन-कालको भी ले आता है तब बचना आसान नहीं है। जरासंध और कालयवन एक साथ आ धमके तो श्रीकृष्णको मथुरा छोड़ कर द्वारिका जाना पड़ा।

द्वारिका अर्थात् ब्रह्मविद्या। द्वारिका ब्रह्म धस्या सा ब्रह्मविद्या। अर्थात् श्रीकृष्णने ब्रह्मविद्याका आश्रय लिया।

मथुरा-मनवकाया छोड़ कर ब्रह्मविद्याका आश्रय भगवानको भी लेना पड़ा।

जब वृद्धावस्था अपने साथ कालको भी ले आये तब द्वारिका-ब्रह्मविद्याका आश्रय ले लो। ब्रह्मविद्या-द्वारिकाके द्वार काल और जरासंधके लिये खुल नहीं सकते।

ब्रह्मनिष्ठको कामभोग, काल या वृद्धावस्था सता नहीं सकते।

वृद्धावस्थामें बूढ़ा सत्रह बार बीमार होकर बच जाता है किन्तु अठारहवीं बार तो काल उसे नहीं छोड़ता।

जरासंधका त्रास अर्थात् जन्ममृत्युका त्रास। जन्म लिया है तो जरा और मृत्युकी व्यथा सहनी ही पड़ेगी।

नरक क्या है?

शंकर स्वामी कहते हैं: यह शरीर ही नरकवास है। जन्म धारण करना ही नरकवास है। किसी भी समय गर्भवास न करना पड़े ऐसा प्रयत्न करो।

भगवानकी प्रेरणाके कारण कुछ महापुरुष भगवानके कार्योंके लिये जन्म लेते हैं वह उत्तम है।। किंतु वासनाके बंधनोंके कारण जन्म लेना नरकबास है।

जरासंध और कालयवनके धक्के खाते हुये मथुरा-शरीर छोड़नेकी अपेक्षा समझ-बूझ कर छोड़ना अधिक अच्छा है। प्रवृत्ति हमें छोड़ दे इससे पहले ही हम ही उसे क्यों न छोड़ दें?

अपने पति कंसकी मृत्यु हो गई तो अस्ति और प्राप्ति अपने पिता जरासंधके घर आ गईं। जरासंधने कंसहत्याकी सारी बात जानी तो उसने मथुरा पर आक्रमण किया। उसके सत्रह आक्रमण श्रीकृष्ण और बलरामने मार हटाये। जब वह अठारहवीं

बार लड़नेके लिये आया और अपने साथ कालयवनको भी ले आया तो श्रीकृष्णने मथुरात्यागका निश्चय किया। अब तो मैं आनर्तदेश (वर्तमान ओखा प्रदेश)में समुद्र किनारे शांतिसे रहूँगा।

भगवानने विश्वकर्माको द्वारिकानगरीके निर्माणका आदेश दिया। बड़े-बड़े भव्य राजप्रासादोंका निर्माण किया गया। कहते हैं कि ये महल इतने तो विशाल थे कि लोगोंको द्वार ढूँढ़ने पड़ते थे। द्वार कहाँ हैं ऐसा बार बार पूछा जानेके कारण ही इस नगरीका नाम द्वारिका पड़ा। 'का' अर्थात् ब्रह्म। उपनिषद्के अनुसार 'क' अक्षर ब्रह्मसूचक है। जहाँ प्रत्येक द्वार पर परमात्माका वास है, वह नगरी द्वारिका है।

जिस शरीररूपी नगरीके इन्द्रियों-रुपी द्वारों पर परमात्माको स्थान दोगे तो जरासंध और कालयवन तुम्हें सता नहीं सकेंगे। द्वारिकामें ये दोनों घुस ही नहीं सकते। प्रत्येक इन्द्रियसे भक्ति करनेवाला जीव कालयवन पर विजय पाता है।

यदि जरासंध तुम्हारा पीछा कर रहा है तो प्रवर्षण पर निवास करो। प्रवर्षण पर्वत अर्थात् जहाँ ज्ञान और भक्तिकी मूसलाधार वर्षा हो रही है वह स्थान। जहाँ कथाश्रवणका लाभ मिले, भक्ति-रसकी धारा बहती रहे, वहाँ जाओ। इक्यावनवें वर्षमें प्रवर्षण पर्वत पर निवास करो। वहाँ जरासंध सता नहीं पायेगा। श्रीकृष्ण भी जरासंधके त्राससे छूटनेके लिये प्रवर्षण पर्वत पर चले गये थे।

इक्यावन-बावन वर्षकी वय होते ही गृहस्थाश्रमके लिये तुम पात्र नहीं रहते। तुमने वनमें प्रवेश पा लिया अर्थात् घरकी आसक्ति अब छोड़नी है। विलासी लोगोंके बीचमें रह कर विरक्त जीवन जीना आसान नहीं है। जहाँ भक्ति और ज्ञानकी सतत वर्षा हो रही हो, वैसी पवित्र भूमिमें बस कर ही तुम जरासंधसे पीछा छुड़ा सकोगे। भोगभूमिमें भक्ति ठीकसे नहीं हो पाती। शहरको छोड़ कर गया-सी पवित्र नदीके किनारे बस कर भक्ति करो।

आज नगरोंमें बड़ी भीड़ हो गयी है। पगड़ी ब्राह्मणोंके मस्तकसे उड़ कर मकानोंके ऊपर बैठ गई है। यदि ये बूढ़े लोग शहर छोड़ कर नदियोंके किनारे जा बसे तो शहरमें भीड़ कुछ कम होगी और वे लोग वहाँ भक्ति भी अच्छी तरह कर सकेंगे।

जन्ममृत्युकी व्यथा ही तो जरासंध है। संकल्प करो कि अब मुझे न तो पुरुष बनना है और न तो स्त्री। मुझे पुनर्जन्म ही नहीं लेना है। जरासंध-जन्म, जरा, मृत्युके त्राससे छूटनेके लिये प्रतिदिन इक्कीस हजार जप नियमित करते रहो जपके बिना पाप और वासना छूट नहीं पायेंगे।

कथाश्रवण पापको जला कर मार्गदर्शन देता है। कथा सुन कर जपका, भगवानकी भक्ति करनेका, सत्कर्म करनेका संकल्प करो। कथाश्रवण करनेसे भगवानसे सम्बन्ध जुड़ जायेगा सो ब्रह्मचर्यपालनका, ध्यान-जपका, सेवा-स्मरणका व्रत लो।

एक बनिया कथाश्रवण करने जाता था। कथाकार महाराजने उससे कहा, तुम कथा तो सुनते हो सो कुछ अच्छा-सा सङ्कल्प करो। सत्य बोलनेका सङ्कल्प करो। तो बनियेने कहा कि वह तो व्यापारी है, सत्य ही बोलेगा तो सारा कारोबार चौपट हो जाएगा। इस पर महाराजने कहा कि किसीकी निंदा न करनेका व्रत लो। बनिया कहने लगा, महाराज, जबतक रातको मैं दो-तीन घण्टे बातोंमें न गुजारूँ, मुझे नींद ही नहीं आती। सो मैं यह व्रत भी नहीं ले सकता। महाराज, मैं संकल्प करता हूँ कि रोज सुबह अपने सामने रहनेवाले कुम्हारका मुंह देखूंगा।

देखा इस बनियेका सङ्कल्प! वह हर सुबह कुम्हारका मुंह देख लेता था। एक दिन सुबह वह कुम्हार कुछ जल्दी उठकर गाँवके बाहर मिट्टी लेने चला गया तो बनिया उसका मुंह देख न पाया। वह बनिया अपना नियम निभानेके लिए उस कुम्हारको ढूंढ़ने निकला।

अब भाग्यकी बात तो देखो कि उस दिन कुम्हार मिट्टी खोद रहा था तो सोनेसे भरा हुआ एक घड़ा उसके हाथ लग गया। वह उस घड़ेको बाहर निकाल रहा था कि उसी समय वह बनिया आ पहुँचा। बनियेने कुम्हारका मुंह देखकर कहा, चलो मैंने देख लिया।

उधर कुम्हारने समझा कि बनियेने सोनेसे भरा घड़ा देख लिया है। यदि वह राजासे कह देगा तो सब कुछ जब्त हो जायेगा। सो उसने बनियेसे कहा, तूने देखा तो है लेकिन किसीसे कहना मत। मैं तुम्हें आधा भाग देता हूँ। बनियेको सोना मिल गया।

अब बनिया सोचने लगा, मैंने इस कुम्हारके मुखदर्शनका व्रत लिया तो लक्ष्मीजीका आगमन हुआ। यदि मैंने स्वयं प्रभुके दर्शनका व्रत लिया होता तो कितना अच्छा होता! ऐसे क्षुल्लक और मजाकिया सङ्कल्पसे ऐसा लाभ हुआ तो शुभ सङ्कल्प किया होता तो कितना अच्छा होता।

दो सङ्कल्प तो सभीको करना चाहिये। एक, पापकर्मोंसे बचनेका और दूसरा सत्कर्मोंमें ही लगे रहनेका।

इक्कीस हजार जप करनेको इसलिए कहा गया है कि मनुष्य सामान्यतः दिनमें २१,६०० बार सांस लेता है अर्थात् प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके साथ भगवानका नाम जपते रहना है। ऐसा होने पर ही जरासन्धके त्राससे बच पाओगे।

कालयवनका नाश तो करना था किंतु श्रीकृष्ण उसे स्वयं मार नहीं सकते थे। कालयवनको ब्रह्माजीने वर दिया था कि यदुवंशका कोई भी व्यक्ति उसे मार नहीं पाएगा। तो कालयवनने जब श्रीकृष्णका पीछा किया तो वे भागते-छिपते प्रवर्षण पर्वतकी उस गुफामें जा पहुँचे, जहाँ राजा मुचुकुन्द तपश्चर्या कर रहे थे। कालयवनने गुस्सेसे मुचुकुन्दको ठोकर मारी। मुचुकुन्दकी आँखें खुलीं और उनकी दृष्टि कालयवन पर पड़ते ही वह जलकर भस्म हो गया।

परमात्माके ध्यानमें लगे हुए व्यक्तिको काल मार नहीं सकता। उसके सामने तो उल्टे काल स्वयं मर जाता है।

जब मुचुकुन्दने जाना कि श्रीकृष्ण आये हैं तो वे प्रार्थना करने लगे।

जीवको मनुष्यकी देह मिली है किंतु विषयासक्त होनेके कारण वह भगवानके चरणारविंदकी सेवा करता ही नहीं है। मनुष्य कितना प्रमादी है? जीवकी स्थिति तो सर्पके मुंहमें फंसे हुए मेंढक-सी है। सर्पके मुंहमें फंसा हुआ मेंढक अपनी मृत्युकी तो सोचता ही नहीं है, उल्टे यदि कोई जन्तु निकट आया तो उसे निगल जानेके लिए जीभ लम्बी करता है। मनुष्य भी कालके मुँहमें फँसा है, फिर भी उसकी विषयासक्ति मिटती नहीं है।

पचास वर्षकी वय पूरी होते ही समझ लो कि तुम कालके मुँहमें आये तो जा चुके हो। काल तो हमेशा सावधान ही रहता है, जीव ही असावधान रहता है। सत्सङ्गके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

मुचुकुन्द प्रार्थना कर रहे हैं। नाथ, कृपा कीजिये कि मेरा मन सांसारिक जड़ पदार्थोंकी ओर न जाय। मुझे अनन्य भक्ति दीजिये।

भगवान कहते हैं, मुचुकुन्द, इस जन्ममें तो मुझे अनन्य भक्ति नहीं मिल पायेगी। तू युवावस्थामें बड़ा कामी और विलासी था। जो कामके हाथों पिटता है, उसे कालके हाथों भी पिटना पड़ता है। तुझे एक जन्म ओर लेना पड़ेगा। तेरा वह जन्म ब्राह्मण योनिमें होगा और उस जन्ममें तुझे अनन्य भक्ति प्राप्त होगी।

मुचुकुन्दने कठोर तपश्चर्या की और क्षत्रिय शरीर छूट गया। अगले जन्ममें वे ब्राह्मण बने। द्वापर युगके क्षत्रिय राजा मुचुकुन्द कलियुगमें नरसिंह मेहताका रूप लेकर अवतरित हुये। वे द्वारिकाधीशके बड़े प्यारे थे। भगवानने उनके बावन कार्य परिपूर्ण किये थे।

मुचुकुन्द राजाकी कथा इस तथ्यकी द्योतक है कि अपनी युवावस्थाको विलासितामें बिता देनेवालेको मुक्ति मिलना बड़ा दुष्कर है। ऐसोंको अनन्य भक्ति भी नहीं मिल पाती। सो धीरे-धीरे संयमको बढ़ाते जाना चाहिये और भगवद्मय जीवन जीना चाहिये। प्रभुसे अनन्य भक्तिकी माँग करो। जवानीमें भी सतत ईश्वरस्मरण करो। युवावस्था भी प्रभुभजनमें बिताओ। ऐसा करनेपर ही इस जीवनमें अनन्य भक्ति प्राप्ति होगी।

मात्र वृद्धावस्था ही में ईश्वरकी सेवा-स्मरण-भजन करनेसे तो अगला जन्म ही सुधर पायेगा, वर्त्तमान जन्म नहीं।

अब आगे रुक्मिणी-हरणका प्रसङ्ग आयेगा।

परमात्मा लक्ष्मीके स्वामी हैं। लक्ष्मीजी जीवमात्रकी माता हैं। अतः जीवको तो लक्ष्मीके विवेकपूर्ण उपयोग मात्रका अधिकार हैं, उपभोगका नहीं। लक्ष्मीके उपभोगका अधिकार तो मात्र नारायणको ही है। उपयोग और उपभोगमें अन्तर है। इन्द्रियोंको अनिवार्य वस्तु-विषयोंका देना उपयोग हुआ किंतु इन्द्रियोंकी बिना आवश्यकताके भी उन्हें विषय देते रहना उन्हें बहलाते रहना उपभोग है, स्वेच्छाचार है। इन्द्रियोंके अधीन होकर विषयोंको देते रहना उपभोग है। धनके दुरुपयोगसे इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं।

सम्पत्ति और शक्तिका सदुपयोग करनेवाला देव है और दुरुपयोग करनेवाला दैत्य।

भागवतकी कथा मानवको देव बनानेके लिये है।

समय, शक्ति और सम्पत्तिका सदुपयोग करो। मनुष्य अपना बहुत-सा समय संपत्ति और संततिके पीछे गवाँ देता है। जीव बहुत-सा समय फैशन और व्यसनमें नष्ट कर देता है। शरीर और संततिको अतिशय व्यथा देना या अतिशय दुलारना अच्छा नहीं है। यदि परमात्माने तुम्हें अधिक दिया है तो सदुपयोग करनेका अधिकतर उत्तरदायित्व तुमपर है। यदि भगवान अप्रसन्न होंगे तो जीवमात्रकी दुर्गति होगी।

शास्त्रोंने लक्ष्मीके तीन भेद बताये हैं—लक्ष्मी, महालक्ष्मी और अलक्ष्मी।

(१) लक्ष्मी—नीति और अनीति दोनों तरहसे प्राप्त धन, साधारण लक्ष्मी है, जिसका कुछ सदुपयोग भी होगा और कुछ दुरुपयोग भी।

(२) महालक्ष्मी—धर्मानुसार प्राप्त धन महालक्ष्मी है। श्रमकी मात्रासे अधिक लाभ उठाना, मुनाफा लेना पाप और चोरी है। जीवमें धन नहीं, धर्म मुख्य है। धर्म ही मृत्युके पश्चात् भी साथ आता है।

धर्मानुसार, श्रमपूर्वक, नीतिसे प्राप्त धन महालक्ष्मी है। ऐसा धन हमेशा शुभ कार्योंमें ही खर्च होगा।

(३) अलक्ष्मी—पापाचरण, अनीतिसे प्राप्त धन अलक्ष्मी है। ऐसा धन विलासितामें ही बह जायेगा और जीवको शांति देनेके बदले रुलाता जायेगा।

मृतात्माके साथ धर्मके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं जाता। नीति, धर्म, सदाचारसे प्राप्त धन ही महालक्ष्मी है, जो शांतिदायी भी है।

महालक्ष्मी नारायणको ही प्राप्त हो सकती है, शिशुपालको नहीं। रुक्मिणी-हरणकी कथाका यही तात्पर्य है। रुक्मिणी महालक्ष्मी ही है जो शिशुपालको नहीं, नारायणको ही वरण करती है।

शिशुके ही लालन-पालनमें जिसका धन और समय लगा रहता है, वह कामी पुरुष ही शिशुपाल है। जो हमेशा सांसारिक और भौतिक सुखोंके पीछे ही भागता रहता है, वही शिशुपाल है।

भगवानने मथुरामें एक भी विवाह नहीं किया था। उनके सभी विवाह द्वारिकामें सम्पन्न हुये।

प्रत्येक इन्द्रियको वशमें करके, ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति कर लेनेके बाद ही विवाह करो। बिना योगका भोग अपने साथ रोग ले आयेगा। तप न होगा तो भोग शरीरको रोगी बना देगा। सभी इन्द्रियाँ शरीरके द्वार हैं और कृष्ण सभी इन्द्रियोंके स्वामी हैं। जितेन्द्रिय बनकर विवाह करो, इन्द्रियोंका सेवक बनकर नहीं। इसी कारणसे तो गृहस्थाश्रमके पूर्व ही ब्रह्मचर्याश्रमका आयोजन किया गया है।

राजा परीक्षित—महाराज, मैं रुक्मिणी-विवाहका प्रसङ्ग विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

शुकदेवजी—राजन्, सुनो।

विदर्भ देशके राजा भीष्मकके पाँच पुत्र और एक कन्या थी। ज्येष्ठ पुत्रका नाम रुक्मी था और कन्याका नाम रुक्मिणी। भागवतने उनकी माताका नाम नहीं बताया है किंतु अन्य ग्रन्थोंके अनुसार उनकी माताका नाम शुद्धमति था। जहाँ मति शुद्ध होती है, वहीं महालक्ष्मीका आगमन होता है। रुक्मिणी लक्ष्मीका अवतार थी।

भीष्मक राजाकी इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णसे किया जाय किंतु राजाका पुत्र रुक्मी अपनी बहिनका विवाह गोपालके साथ नहीं, राजा शिशुपालके साथ करना चाहता था। रुक्मिणीने भाईकी इच्छा जानी तो उसे बड़ा दुःख हुआ।

रुक्मीने शिशुपालको बारात लेकर आनेका आमन्त्रण दिया। कामी शिशुपाल बारात सहित आ पहुँचा। गणपतिपूजाके समय भी इस कामीका ध्यान तो रुक्मिणीकी ओर ही लगा हुआ था। उसका ध्यान कन्याके दैहिक सौंदर्यकी ओर था।

जब साधारण जीव विवाह करने जाता है तो कामाधीन होकर जाता है। प्रभु तो गोपाल अर्थात् गो (इन्द्रियों) को नियंत्रणमें रखनेवाले हैं। भगवान जितेन्द्रय बनकर विवाह करने जाते हैं।

शुद्धमतिके अंतःपुरमें एक सुदेव नामक ब्राह्मण आता-जाता था। रुक्मिणीने उस ब्राह्मणसे कहा, मैं श्रीकृष्णसे विवाह करना चाहती हूँ। सात श्लोकोंमें लिखा हुआ मेरा यह पत्र तुम श्रीकृष्ण तक पहुँचा दो।

एकनाथ महाराजने रुक्मिणी-स्वयंवरपर भाष्य लिखा है। वे कहते हैं कि रुक्मिणी-श्रीकृष्णका विवाह शुद्ध जीव और ईश्वरका बिवाह है। भागवतकथाके अन्तिम दिनको इस विवाहकी कथा आती है। जिसे तक्षक नागके दंशसे मरना है, क्या वह लौकिक विवाहकी बातें सुनेगा? योगीश्रेष्ठ परमहंस शुकदेवजी यह कथा कह रहे हैं। भाषा विवाहकी है जब कि तात्पर्य तो जीवके ईश्वरसे मिलनका है।

श्रीकृष्ण कहते हैं, मुझे सांसारिक सुखोपभोगकी इच्छा नहीं है। मुझे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। मैं निरपेक्ष हूँ, मैं निष्काम हूँ। रुक्मिणी भी तो कहती है कि उसे भी विषय-सुखकी इच्छा और अपेक्षा नहीं है।

रुक्मिणीने अपने पत्रमें लिखा था कि वह निष्काम है और उसके मनमें कोई विकार-वासना नहीं है। सामान्य कन्या ऐसी बात कैसे कह पायेगी? श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनों निष्काम, निर्विकार हैं।

अर्थात् यह प्रसङ्ग लौकिक विवाहका नहीं, आध्यात्मिक मिलनका है। अलौकिक सिद्धांतको समझानेके लिए लौकिक शब्दावलीका प्रयोग किया गया है। भागवतके श्लोक यही अर्थ बताते हैं। लग्नके पूर्व भी रुक्मिणीने निर्विकारिताकी बात कही थी। लग्नके पश्चात् भगवान उससे कहते हैं, मुझे स्त्रीकी और वंशवृद्धिकी इच्छा नहीं है। क्या कोई साधारण पुरुष विवाहके बाद ऐसी बात करेगा?

जो व्यक्ति ईश्वरके साथ विवाह करना चाहता है, उसे उसके रिश्तेदार बहुत सताते हैं। रुक्मी भी अपनी बहिनका विवाह भगवानसे होने देनेके विरुद्ध था किंतु यदि जीव सद्गुरुकी शरण ले तो बेड़ा पार हो जाता है। रुक्मिणीने भी सुदेवकी सहायता ली थी।

जो ईश्वरसे मिलना चाहता है, उसे अपना जीवन सादा रखना चाहिए। राजकन्या होते हुए भी रुक्मिणी पार्वतीके दर्शनके लिए पैदल ही गई। शुकदेवजी यह कथा कह रहे हैं। परीक्षितकी इस अलौकिक विवाहकथामें तन्मयता ही बताती है कि यह विवाह साधारण मनुष्यों-का नहीं था।

यदि रुक्मिणी लौकिक सुख चाहती होती तो वहाँ उपस्थित अन्य किसी भी राजाके साथ ब्याह कर सकती थी किंतु उसने बड़े विवेकसे श्रीकृष्णका वरण किया। जीव जब ईश्वरके साथ विवाहित होता है, तब कृतार्थ होता है। रुक्मिणी-श्रीकृष्णका विवाह जीव और ईश्वरका मिलन है जो सुदेव-से सद्गुरुकी कृपासे हुआ है।

रुक्मिणी भगवानकी आद्याशक्ति है। संत ही ब्रह्मसम्बन्ध करा सकता है। किसी सुयोग्य सद्गुरुकी मध्यस्थताके बिना जीव ईश्वरसे मिल नहीं पाता।

रुक्मिणीका पत्र लेकर सुदेव द्वारिका आया। भोजनादिसे निवृत्त होकर द्वारिकानाथने सुदेवसे कुशलमङ्गल पूछा। आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हुआ। क्या सेवा करूँ मैं आपकी ?

सुदेवने भगवानको रुक्मिणीका पत्र दिया और कहा—प्रभु, यह रुक्मिणी एक सुपात्र कन्या है। वह सुन्दरी तो है ही, सद्गुणी, चतुरा और सुशीला भी है। इसके साथ यदि आपका विवाह होगा तो आपका जीवन सुख-सन्तोषसे बीतेगा।

श्रीकृष्णने रुक्मिणीका पत्र पढ़ा। अक्षर और भाषासे ही मनुष्यकी परीक्षा हो जाती है। पत्र चाहे विस्तृत न हो, भावार्थ तो पूरा-पूरा होना ही चाहिये उसमें। रुक्मिणीने भी उस छोटेसे पत्रमें, मात्र सात श्लोकोंमें मानों गागरमें सागर भर दिया था। दोनोंका सप्तपदी सम्बन्ध शीघ्र ही जुड़ जाना चाहिये, ऐसा सूचित करनेके लिए ही सात श्लोक लिखे थे। छः श्लोकोंमें रुक्मिणीने श्रीकृष्णके छः सद्गुणोंका वर्णन किया। उन श्लोकोंमें ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य कूट-कूट कर भरा है। जीव यदि दीन बनकर भगवानकी शरणमें जाता है तो वे उसकी उपेक्षा नहीं करते, उसे अपना लेते हैं। जीवका धर्म भी शरणागति लेना है।

पत्रमें कृष्णको सुन्दर-सा सम्बोधन दिया गया था। यह जगत् नहीं, जगत्का सर्जनहार सुन्दर है। संसारमें जो कुछ सुन्दरता है, वह श्रीकृष्णके सौंदर्यका अंश मात्र है। संसार कार्य है और कृष्ण कारण। सौन्दर्यकी कल्पनामें-से विकारका भी जन्म हो सकता है।

हमेशा यही सोचो कि मनुष्यकी सुन्दरता ईश्वरकी सुन्दरताके कारण ही है। भागवत सुन्दर दृष्टि देता है। 'अहम्' की दृष्टिको बदलना है। जगत् जैसा है वैसा ही रहेगा। प्रश्न दृष्टिका है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

नाथ, आप अतिशय सुन्दर हैं। आपके सौन्दर्यके साथ-साथ आपके सद्गुणोंकी कथा भी मैंने महात्माओंसे सुनी है और इसी कारणसे आपसे विवाह करनेका मैंने निश्चय किया है।

आपके सद्गुणोंने मेरा मन मोह लिया है, मेरा चित्त चोर लिया है। आपके सौन्दर्य और सद्गुणोंका वर्णन सुनकर मेरा मन निर्लज्ज हो गया है।

बार-बार श्रीकृष्ण-कथा सुननेवालेका मन श्रीकृष्ण हर लेते हैं। शुकदेवजी जैसे निरपेक्ष वक्ता भी कृष्ण-कथा कहनेकी इच्छा रखते हैं। यदि कोई श्रोता नहीं मिल पाता था तो वे वृक्षोंको ही रासपंचाध्यायी सुनाते थे।

नाथ, मैं किसी कामी पुरुषके साथ विवाह करना नहीं चाहती। मैंने अपनी आत्मा आपके चरणोंमें समर्पित कर दी है।

परमात्मा सोचेंगे कि ऐसी निर्लज्ज कन्यासे कैसे विवाह किया जाय। सो रुक्मिणीने आगेके श्लोकमें लिखा, नाथ, इसमें मेरा अपना कोई दोष नहीं है कि मैं निर्लज्ज हो गई हूँ। मैं वैसे तो लज्जायुक्त ही थी किंतु आपके सद्गुणोंने ही मुझे निर्लज्ज बना दिया है। मेरी निर्लज्जता-के दोषी आप ही के सद्गुण हैं। आप तो सभीके अन्तर्यामी हैं। मैं और लिखूं तो क्या लिखूं? मेरी मनोभावनासे आप सुपरिचित हैं।

रुक्मिणी शिशुपालका नामोल्लेख करना चाहती नहीं थी किंतु उसने सोचा कि सम्भव है कि कृष्ण ऐसा सोचेंगे कि यदि हरण करके मुझसे विवाह करेंगे तो उन्हें और तो कुछ मिलेगा ही नहीं। जो कन्या अपने साथ कुछ सम्पत्ति न लाये, उससे विवाह करनेसे क्या लाभ होगा? सो रुक्मिणीने आगेके श्लोकमें लिखा कि वह अपनी निजी सम्पत्ति श्रीकृष्णको दे देगी। कौन-सी है वह सम्पत्ति? मैंने हमेशा नियमित सत्कर्म किया है। तुलसीकी पूजा किये बिना मैं पानी तक नहीं पीती।

आज तो नारी तुलसीकी पूजा करती ही नहीं है और यदि कोई नारी करती भी होगी तो चाय-पानके बाद। संयम और सदाचारके बिना जीवन कैसे सुधरेगा? सदाचारका अर्थ है शास्त्र-सम्मत, धर्म द्वारा निर्दिष्ट आचार, स्वेच्छाचार नहीं।

मैंने कई व्रत-नियम आदि किये हैं। मैंने गरीबोंको वस्त्र और अन्नदान भी दिये हैं। मैं अपनी पुण्यसम्पत्ति साथ ले आऊँगी। मैं अपनी अलौकिक सम्पत्ति साथ ले आऊँगी। आप मुझे स्वीकार करें।

पतिव्रता, पुण्यशाली नारीका पति कभी दुःखी नहीं होता, सुखी ही होता है।

अपनी सम्पत्तिकी चर्चा करनेके बाद रुक्मिणीने स्वयंको प्राप्त करनेका उपाय भी बताया। मैं प्रतिदिन पार्वतीकी पूजा करनेके लिए मन्दिर जाती हूँ। आप मुझे वहाँसे हर ले जाना। मुझे विश्वास है कि आप इस दासीको स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं आपको प्राप्त करनेके लिए हजारों जन्म लेती रहूँगी। मैं आप निष्काम प्रभुसे ही विवाह करूँगी, अन्य किसी भी पुरुष-के साथ नहीं।

यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसाद
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभि स्यात् ॥

चाहे सौ जन्म क्यों न लेने पड़ें किंतु मैं वरूँगी तो आपको ही।

रुक्मिणी जैसे अटल निश्चयीको ही परमात्मा मिलते हैं।

यदि आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं इस शरीरका त्याग करूंगी। आपके सिवाय अन्य कोई भी व्यक्ति मेरा पति नहीं हो सकता।

रुक्मिणीका पत्र पढ़कर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुये। सुना है कि उसने मेरे लिये अन्न और निद्राका भी त्याग किया है। सो मैं उससे अवश्य विवाह करूंगा।

मन और क्रियाको, मन और वचनको एक बनाओ। वैसा व्यक्ति ही भगवानको पसन्द आता है। वे कहते हैं।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

रुक्मिणी श्रीकृष्णकी आद्याशक्ति हैं। वह श्रीकृष्णके सिवाय किसीसे भी विवाह नहीं कर सकतीं।

भगवानने अपने सारथी दारुकसे रथ तैयार करवाया और ब्राह्मण सुदेवको वन्दन करके गणपतिका स्मरण किया और रथारूढ हुये।

घरसे बाहर निकलते समय गणपतिकी इन शब्दोंमें स्तुति करोगे तो कोई भी बाधा उपस्थित नहीं होगी।

सुमुखश्चैकदंतश्च कपिलो गजकर्णकः।
लंबोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥

भगवान जगत्को यह बताते हैं कि वे स्वयं भगवान होते हुये भी मर्यादाका पालन करते हैं। मर्यादाका अनुचित भङ्ग करनेवाला दुःखी होता है। यदि तुम्हें अधिक सुख-सुविधा मिली है तो मर्यादाका पालन भी अधिक किया जाना चाहिये।

भगवानने पहले सुदेवको रथमें बिठलाया। सुपात्र ब्राह्मणका सम्मान करो। साधु-सन्तों-का सम्मान करनेसे लक्ष्मीजी आपके घरमें पधारेंगी।

एक ही रातमें श्रीकृष्णका रथ विदर्भ नगरीमें आ पहुँचा। लोगोंको प्रभुके दर्शनसे बड़ा आनन्द हुआ। सभी कहने लगे कि रुक्मिणीके योग्य तो यही वर है। दोनों लक्ष्मीनारायण-से शोभायमान होंगे।

उधर ब्राह्मण सुदेव हँसता हुआ रुक्मिणीके पास पहुँचा। मैं भगवानको ले आया हूँ, उन्होंने तुझे स्वीकार किया है। रुक्मिणीने प्रणाम करते हुये पूछा, क्या सेवा करूं मैं आपकी? सुदेवने कहा कि उनको किसी भी वस्तुको अपेक्षा नहीं है। तेरी जय हो।

रुक्मिणी भगवानसे मिलानेवाले उस सुदेवकी जन्मजन्मांतरकी ऋणी हो गयी।

इधर शिशुपाल भी जरासंध आदि राजाओंके साथ आ पहुँचा। उसने श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुना तो वह कुछ डर-सा गया। उसने जरासंधसे कहा, वह चोर कहीं मेरी होनेवाली पत्नीकी चोरी कर गया तो? जरासंधने उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा, हम यहाँ केवल खाने-पीने नहीं आये हैं। समय आया तो तेरे लिये लड़ेंगे भी। रुक्मीने भी कहा, मैंने ऐसी

व्यवस्था की है कि मेरी बहिनके निकट कोई मानव तो क्या, पक्षी तक नहीं जा सकता। जब वह पार्वतीके मन्दिर जाएगी तो उसके आगे-पीछे सोलह कन्या और मेरे कई पहलवान भी साथ होंगे। यह सब सुनकर शिशुपालको कुछ शांति हुई।

उधर रुक्मिणीने स्नान-शृङ्गारसे निवृत्त होकर तुलसी और माता-पिताकी पूजा की। माताने कहा, तेरा विवाह होने जा रहा है सो यही उचित है कि तू पैदल ही पार्वतीके मन्दिर पहुँचे। रुक्मिणीने दूसरी बार प्रणाम किया तो माताने वैसा करनेका कारण पूछा। पुत्रीने आशीर्वाद माँगे। पुत्री जानती थी कि वह तो पार्वतीके मन्दिरसे सीधे द्वारिका जानेवाली है, उसे घर लौटना नहीं है।

कई राजाओंकी रुक्मिणीके दर्शनकी, माताजीके सौंदर्यको निहारनेकी इच्छा थी किंतु उन्हें कुछ नहीं दीख पाया।

रुक्मिणी मन्दिरमें पूजा तो पार्वतीकी मूर्त्तिकी कर रही थी किंतु उस मूर्त्तिमें उसे द्वारिकानाथके ही दर्शन हो रहे थे क्योंकि उसकी भक्ति अनन्य थी। रुक्मिणीने गणपति और पार्वतीकी पूजा की और प्रार्थना की, मैं हमेशा आपकी पूजा करूँगी। मेरा श्रीकृष्णसे विवाह हो जाय, ऐसा कीजिए। पार्वतीजीने उसे आशीर्वाद दिया।

रुक्मिणी पूजा समाप्त करके मन्दिरसे धीरे-धीरे नीचे आ रही थी तो कामांध राजागण उसके सौंदर्यकी प्रशंसा करने लगे।

माताजीको तो वंदन करने चाहिए। रुक्मिणीने सोचा कि वह तो जीव मात्रकी माता है, ये अपने ही बालक उसको कामभावसे निहार रहे हैं। रुक्मिणीने अपनी दृष्टिसे वह तेज प्रकट किया कि सभी कामान्ध राजा मूर्छित हो गए। माताजीको जो कामभावसे देखेगा, उसका पतन ही होगा।

प्रभुने दारुकको रथ आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी। दूरसे गरुडध्वजको देखकर रुक्मिणी प्रसन्न हो गयी। प्रभुने उसका हाथ पकड़कर अपने रथमें उसको बिठला लिया और रथ द्वारिकाकी दिशामें दौड़ चला।

धराशायी राजाओंको जब सुध आई तो अपने कपड़ोंको झाड़ते हुये वे खड़े हुये। एक कहता था, उसे चक्कर आये थे तो दूसरा कहता था कि तेजके मारे गिर गया था। उन्होंने जब माना कि श्रीकृष्ण रुक्मिणीका हरण कर ले गये हैं तो उन्हें आश्चर्य आघात लगा। क्या इतने क्षणोंमें वह सुन्दरीको ले भागा? हम उससे युद्ध करेंगे।

माता लक्ष्मीको भोगेच्छाकी दृष्टिसे देखनेवालेका पतन ही होता है।

शिशुपालको तो रोना-सा आ गया। मेरी नाक कट गयी। जरासंध आदिने कहा, नारी-की भाँति विलाप करनेकी यह घड़ी नहीं है। हम सबकी नाक कट गयी है। हमें उस गोपालसे युद्ध करना होगा। शिशुपाल, जरासंध, दन्तवक्र आदि अपनी सेनाको लेकर श्रीकृष्णका पीछा करने दौड़े।

उधर शाम तक कन्हैया वापस घर न पहुँचा तो बलरामको चिंता हुई। पूछताछ करने पर उन्हें सारी बातका पता चला। वह भी कैसा शर्मीला है कि मुझसे बात तक न की ? वे तुरंत सेनाको लेकर विदर्भ आ पहुँचे और शिशुपाल, जरासंध आदिकी सेनको तितर-बितर कर दिया। साथ निभानेका वादा करनेवाले राजा भी भाग निकले। शिशुपाल अकेला अपनी किस्मतको रोता रह गया।

शिशुपाल रोता तो रहा किंतु लड़ने नहीं गया। कामी व्यक्ति भीरु ही होता है। उसके पास जरासंध आया और कहने लगा, यदि श्रीकृष्ण अकेला होता तो मैं उसे हरा देता किंतु बलरामको हराना आसान नहीं है। समय ही हमारे विपरीत है। यदि तू जीवित रहेगा तो हजारों कन्यायें मिल जायेंगी। इस बार तो हम भाग चलें।

रुक्मी श्रीकृष्णसे लड़ने आया तो उन्होंने उसे एक खंभेसे बांध दिया। रुक्मिणीने प्रार्थना की, मेरे भाईको मत मारो। बलरामने भी कहा, जो भी हो, अब तो यह तेरा साला है, उसे नहीं मारा जा सकता। उन्होंने रुक्मीको बंधनमुक्त किया। रुक्मी वैसे तो उद्धत था किंतु बहनको प्रसन्न करनेके लिये उसने बलरामको प्रणाम किया। रुक्मिणी आनंदसे सोचने लगी, मेरे जेठजी कितने दयावान हैं। उन्होंने मेरे पापी भाईको क्षमा कर दिया।

आज तो विवाहके बाद भाई-भाई एक साथ रह नहीं पाते। यदि मन विशाल रखोगे तो झगड़े नहीं होंगे। हमारे देशका आदर्श तो सयुंक्त कुटुंबका ही है। राम लक्ष्मणादि तथा पांडव भी एक ही घरमें रहते थे।

कृष्णने उद्धवके साथ गोकुल पत्र भेजा कि जब नंदबाबा पधारेंगे, तभी वह विवाह करेगा। नंदबाबाको आनंद तो हुआ किंतु उन्होंने सोचा कि वह तो यहाँ आता नहीं है और ऊपरसे मुझे वहाँ बुला रहा है। मैं द्वारिका नहीं जाऊँगा। उसके विवाहके दिन मैं यहाँ ब्रह्मभोज करा दूंगा।

श्रीकृष्णने यह बात जानी तो वे स्वयं गोकुल पधारे। मैया, मैं आ गया। मेरे साथ द्वारिका चल। नहीं तो तेरा कन्हैया अविवाहित ही रह जायेगा। नंद—यशोदा, गोपियाँ तथा अन्य सभी व्रजवासी द्वारिका पधारे।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके दर्शन करके, भगवानका स्मरण करते हुये गोपियोंने वहाँ देहोत्सर्ग कर दिया। गोपियोंके श्रीअंगकी मिट्टीसे ही गोपीचन्दन बना। वहाँ गोपीसरोवर भी है। गोपीचंदनकी महिमा न्यारी है। वहाँ महाप्रभुजीकी बैठक है। वहाँ उन्होंने भागवत-पाठ किया था।

फिर वहाँ राजा भीष्मक भी आये। दुर्वासाके शापके कारण कृष्ण रुक्मिणीके साथ द्वारिकामें तो रह नहीं सकते थे सो माधवपुरमें विवाह-विधि संपन्न हुई। ब्रह्माने विवाह-विधिका मुहूर्त दिया मार्गशीर्ष मासकी पंचमी। रुक्मिणीको मंडपमें लाया गया। ब्राह्मण समुदाय स्वस्ति- वचनोंका उच्चार कर रहे थे।

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्,
नासग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणं ।

सर्वाङ्गे हरिचंदनं सुललितं कंठे च मुक्तावली,
गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते कुर्यात् सदा मंगलम् ।।

मेरे प्रभुके भाल पर कस्तूरीका तिलक है, वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि है। नाकके अग्रभागमें सुन्दर मोतीको बाली है, हथेलीमें बाँसुरी है, हाथोंमें कंगन हैं, समग्र शरीर पर हरिचंदनका लेप है, गलमें मनोहर मोतीमाला है और गोपियोंसे घिरे हुए हैं। ऐसे प्रभु हमेशा सभीका कल्याण करें।

लक्ष्मीनारायणके दर्शनसे यादवोंको परमानंद हुआ। रुक्मिणी महालक्ष्मी हैं और कृष्ण नारायण।

जीव यदि लक्ष्मीका लाल बनकर उन्हें नमन करेगा तो वे उसे भगवानकी गोदमें बिठलायेंगी। यदि लक्ष्मीको माताका स्थान दोगे तो सुखी होगे किंतु स्वामी बननेका प्रयत्न करोगे तो पतनके गर्तमें गिरना पड़ेगा। लक्ष्मीका स्वामी जीव नहीं, ईश्वर है। लक्ष्मीको माता-स्वरुप मानने हो में कल्याण है।

रुक्मिणीके यहां प्रद्युम्नका प्राकट्य हुआ। उसने शंबरासुरका वध किया और रतिके साथ द्वारिका आया। शम्बरासुर कल्याणको ढंकनेवाला लौकिक काम है। प्रद्युम्न अलौकिक काम है। लौकिक कामको अलौकिक कामसे ही नष्ट किया जा सकता है।

जगतके किसी जीवसे नहीं केवल परमात्मा ही से मिलनेकी आशा और इच्छा करो। नारायणधाममें जानेकी इच्छा करो। प्रभुसे मिलन होने पर जीवको अलौकिक आनंद मिलता है। भगवानसे मिलनकी आतुरता जागृत होगी तो लौकिक कामका नाश होगा।

वह रति कौन है? भगवानको कथाके प्रति रुचि ही रति है। इस रतिके साथ भी विवाहित होनेसे जीव प्रभुमिलनके लिये आतुर हो जाता है।

भगवानने फिर सत्यभामा, जांबवती, यमुनाजीके अंशसे उत्पन्न कालिंदी आदिके साथ भी विवाह किया। भगवानकी आठ पटरानियाँ थीं।

अष्टधा प्रकृति ही आठ पटरानियाँ हैं। ईश्वर इन सभी प्रकृतियोंके स्वामी हैं। ये प्रकृतियाँ परमात्माकी सेवा करती हैं। गीतामें प्रकृतियोंका वर्णन इस प्रकार है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकारे इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा ।।

जीव प्रकृतिके अधीन है। ईश्वर प्रकृतिके अधीन नहीं हैं। जीव अष्टधा प्रकृतियोंके वशमें आ जाता है, जब कि ईश्वर उनको अपने वशमें करते हैं। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। तुम स्वभावके अधीन होनेके बदले स्वभावको ही अपने अधीन कर लो।

मनुष्य अपने स्वभावके आगे हार जाता है। अपने स्वभावको, प्रकृतिको वशीभूत करनेवाला जीव सुखी हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

वैसे तो प्रकृति और प्राण साथ-साथ ही जाते हैं। फिर भी यदि जपध्यान, सेवा—स्मरण, सत्संग, सत्कर्म किया जाय, सद्ग्रन्थोंका अध्ययन किया जाय तो स्वभाव सुधर सकता है। सत्संगका अर्थ है कृष्णभक्तोंका, साधु-संतोंका और सद्ग्रन्थोंका संग।

अक्रूरजी वन्दन-भक्तिके आचार्य थे फिर भी कुसङ्गने उनकी बुद्धि विकृत कर दी सो उन्होंने सत्राजितकी हत्या करनेके लिए शतधन्वाको उकसाया।

सत्सङ्ग और भक्ति दोनोंको एक-दूसरेकी आवश्यकता है। सत्सङ्ग करनेवाला यदि परमात्माका भजन न करेगा तो उसका सत्सङ्ग निरर्थक ही रहेगा। पत्थर नर्मदाजीमें हमेशा स्नान करता रहता है फिर भी वह पत्थर ही बना रहता है। इसी प्रकार कई मनुष्य कथाश्रवण तो करते हैं किंतु भक्तिमय न हो पानेके कारण उनका जीवन सुधर नहीं पाता है।

पहले अपने मनको सुधारो और फिर जगतको सुधारने निकलो।

अपने चारित्र्यसे यदि अपनी आत्माको सन्तोष मिले, तभी मानो कि तुम्हारा स्वभाव सुधरा है।

कथाश्रवण करने पर श्रीकृष्णके प्रति प्रेम न जागे, पापकी ओर घृणा न जागे, धर्मकी ओर अभिमुखता न हो पाये तो मान लो कि तुमने कथा सुनी ही नहीं है।

कथा कहती है, पापकर्मोंका त्याग करो और प्रभुसे प्रेम बढ़ाओ। कथा सुनकर भगवान-से विवाह कर लो। अपनी वृद्धावस्थामें, उत्तरावस्थामें एकमात्र भगवानसे ही सम्बन्ध बनाये रखो। तुलसीविवाहका यही रहस्य है।

एक अध्यायमें कहा गया है कि प्रभुने सोलह हजार युवतियोंके साथ विवाह किया। भौमासुरने सोलह हजार कन्याओंको बन्दी बना रखा था। ये सोलह हजार कन्याएँ तो वेदोंकी ऋचाएँ हैं। वेदके तीन कांड और लाख मन्त्र है।

१. कर्मकाण्ड—इसके अस्सी हजार मन्त्र हैं जो ब्रह्मचारीके लिये हैं।

२. उपासनाकाण्ड—इसके सोलह हजार मन्त्र हैं जो गृहस्थके लिये हैं।

३. ज्ञानकाण्ड—इसके चार हजार मन्त्र हैं जो वानप्रस्थके लिये हैं।

वेदांतका ज्ञान विरक्तके लिए है, विलासीके लिए नहीं। विलासी उपनिषद्का तत्वज्ञान समझ नहीं पाता।

भागवत तो सभीके लिए है।

वेदोंने ईश्वरके स्वरूपका वर्णन तो अधिक किया किंतु उनको पा न सके। सो वेदोंकी ऋचा कन्या बनकर श्रीकृष्णसे विवाह करने आयीं। वेदोंके मन्त्र केवल शब्द-रूप नहीं हैं। प्रत्येक मंत्र ऋषि है, देव है। वेदमन्त्रके देव, तपश्चर्या करके थक-हार गए फिर भी ब्रह्मसम्बन्ध नहीं हो पाया। सो वे कन्याका रूप लेकर आये। वेदकी ऋचाएँ कन्या बनकर प्रभु-सेवा करने आयीं। गृहस्थाश्रमधर्मका वर्णन वेदके सोलह हजार मन्त्रोंमें किया गया है सो श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ कही गई हैं।

सोलह हजार कन्याओंको मुक्त तो किया किंतु वे सब भौमासुरके कारागृहमें बन्द थीं सो जगतका कोई पुरुष उनसे विवाह करनेके लिए तैयार नहीं हुआ। वे सभी कन्या श्रीकृष्ण-शरणमें आयीं। भगवानने सोचा कि रामावतारमें मर्यादाका अत्यधिक पालन किया था, अब इस कृष्णावतारमें वैसा नहीं करना है। सो उन्होंने उन सभी कन्याओंके साथ विवाह कर लिया।

वेदमंत्रोंको भौमासुरने कारागृहमें रखा था। भौमका अर्थ है शरीर। शारीरिक सुखमें ही रमा रहे, वह है भौमासुर। विलासी जीव ही भौमासुर है।

विलासी भौमासुरने उन राजकन्याओंको बन्दी बनाया था। अर्थात् अनधिकारी कामी व्यक्तिने मंत्रोंका अनर्थ किया था। कामी व्यक्ति मंत्रका अपने विलासी मतकी पुष्टिके लिए विकृत अर्थ करता है। ऐसे व्यक्ति मंत्रोंका दुरुपयोग करते हैं।

विलासी कहता है कि भगवानने गीतामें मौज उड़ानेको कहा है। सो हम मौज क्यों न उड़ायें? ऐसे लोग 'सिद्धिर्भवति कर्मणा' वाले श्लोकका हवाला देते हैं। इस श्लोकका सही अर्थ यह है कि कर्मोंसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। जब कि विलासी लोग और ही अर्थ करते हैं। वास्तवमें तो यह श्लोक अनासक्तिका उपदेश देता है।

'सर्वस्य चाहम्' का कुछ लोग अर्थ करते हैं कि मैं सभीमें चायके रूपमें हूँ। चाय मिले तो स्मृति, अन्यथा अपोहन अर्थात् विस्मृति। गीताके श्लोकोंका ऐसा विकृत अर्थ करनेवाले भी हैं।

वेदका तात्पर्य भोगमें नहीं, त्यागमें है। वेदको भोग नहीं, त्याग ही इष्ट है। वेदोंका तात्पर्य भोगपरक नहीं, निवृत्तिपरक है। प्रवृत्तियोंको एक साथ और हमेशाके लिए छोड़ा तो नहीं जा सकता किंतु जो कुछ भी करो, धर्मकी मर्यादामें रहकर करो। धर्मकी मर्यादामें रहकर ही अर्थोपार्जन और कामोपभोग करो।

वेदका कहना है कि भोगोंको धीरे-धीरे कम करते जाओ, संयमको बढ़ाते चलो।

वेदोंने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंकी चर्चा की है किंतु उसका निर्देश निवृत्तिका ही है।

भोगोपभोगकी आदत जीवके अनेक जन्मोंके संस्कारोंके कारण है। ऐसे संस्कार जल्दी छूट नहीं पाते। इसीलिए वेदोंने धीरे-धीरे निवृत्ति बढ़ानेका आदेश दिया है। वैसे तो वेदोंमें सुरापानकी भी चर्चा है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वेद सुरापानका आदेश देते हैं। यह मनुष्य ही है, जो मनगढ़न्त अर्थ उपजा लेता है।

गीतामें प्रधानतः अनासक्तिका ही उपदेश है, फिर भी लोग अपना-अपना अर्थ बताते रहते हैं। कोई गीताको कर्मप्रधान बताता है, कोई भक्तिप्रधान बताता है तो कोई ज्ञानप्रधान। वैसे तो गीतामें तीनोंका प्राधान्य है।

शङ्कराचार्यने कहा है कि चित्तशुद्धिके लिए कर्म आवश्यक है। चित्तकी एकाग्रताके लिए उपासना आवश्यक है। भक्तिपूर्वक कर्म करनेसे चित्त एकाग्र होगा। भक्ति, उपासना मनको एकाग्र करती है। ईश्वरमें मन एकाग्र होगा तो ज्ञान अवश्य मिलेगा। ज्ञान, परमात्माका अनुभव कराता है।

गीतामें कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनोंका समन्वय है।

गीताके प्रथम छः अध्याय भक्तियोगके हैं तथा तेरहवेंसे अठारहवें अध्याय तक ज्ञानयोग है।

भक्ति, कर्म और वैराग्यमें-से कौन प्रधान है और कौन गौण? सभी तो प्रधान हैं। जीवनमें तीनोंकी समान आवश्यकता है। गीता केवल कर्मपरक नहीं है।

विलासी तो वेद और गीता सभीमेंसे विलासी कर्मपरक अर्थ निकालेगा।

भगवानके विवाहोंके वर्णनके बाद भगवानकी अनासक्ति भी बतायी गयी है।

स्नेह सभीसे करो किंतु किसीमें भी आसक्त न बनो, वासनाके अधीन न हो जाओ।

एक बार ग्रीष्म ऋतुमें रुक्मिणी श्रीकृष्णकी सेवा कर रही थी। वह सोच रही थी कि वह सबसे अधिक सुन्दर है अतः श्रीकृष्ण उसीमें आसक्त हैं, उसीके आधीन हैं। सेवाके समय मन सेव्य (श्रीकृष्ण) में ही लगा रहना चाहिये। रुक्मिणी सेवा तो कृष्णकी कर रही थी किंतु उसका मन अपने सौंदर्यके विचारमें फंला हुआ था। अपने सौन्दर्यके लिये उसके मनमें अभिमान आया सो सेवामें क्षति हो गई।

भगवान जान गये कि रुक्मिणीके मनमें अपने सौंदर्य और शृंगारके लिये आसक्ति और अभिमान है। तो उन्होंने उसके अभिमानको नष्ट करना चाहा। वे रुक्मिणीसे कहने लगे, देवी! तुझ जैसी सौंदर्यवतीकी योग्य प्रशंसा और कद्र तो कोई सम्राट ही कर सकता है, मुझ जैसा गोपाल नहीं। किन्हीं साधुसंतोने मेरे विषयमें तुझे चकमा दिया। तू राजकन्या है और मैं गोपाल। तू गोरी है, मैं श्याम। हमारा युगल बेमेल है। राजाओंको छोड़ कर तुमने मुझसे क्यों विवाह किया? मैं तुझे कौन-सा सुख दूंगा? मैं तो निरपेक्ष और उदासीन हूं। मुझे नारीके सौन्दर्य या सुवर्णकी द्वारिकासे कोई लगाव नहीं है। मुझे तो एकांत ही बड़ा प्रिय है। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। मुझे छोड़कर किसी सम्राटसे विवाह करके सुख प्राप्त कर ले।

रुक्मिणीने भगवानके ये वचन सुने तो वह घबड़ा गई। मेरा त्याग न करो, मेरे नाथ। उसे मूर्छा आ गई। श्रीकृष्णने उसे पलंग पर सुलाते हुये कहा, देवी, मैं तो मजाक कर रहा था। तू तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है।

रुक्मिणी जान गई कि उसके अभिमानको नष्ट करनेके हेतु ही प्रभुने वह सब कुछ कहा था। मैं मानती थी कि वे मुझमें आसक्त होंगे किंतु ये तो उदासीन हैं। भगवान, यह सच है कि हमारा युगल बेमेल है। कहाँ आप हैं और कहाँ मैं? ज्ञानीजन आपका भजन करते हैं और मूर्ख मेरा। ज्ञानीजन आपको ढूंढते हैं और मूर्ख मुझे।

मेरे स्वामी, आजसे मैं घरमें महारानी नहीं, दासी बन कर रहूँगी आपकी यह बड़ी कृपा है कि मुझे आपने अपनी दासी बनाया है। संसारके जीव तो कालके अधीन हैं। उनके साथ क्यों विवाह किया जाय? मैं तो आपके चरणोंकी सेवा करनेका अवसर पाकर धन्य हो गई हूं। मैंने लौकिक और भौतिक सुखकी इच्छासे विवाह नहीं किया है। आजसे मैं आपकी महारानी नहीं, दासी हूं।

रुक्मिणीमें नम्रता आई। जब वह मानिनी थी, तब भगवानने कहा था, मैं तेरे योग्य नहीं हूँ। अब अभिमान निर्मूल हो गया तो रुक्मिणी भगवानसे कहने लगी, मैं आपके योग्य नहीं हूँ। मैं रानी नहीं, दासी हूँ। जब वह नम्र हो गई तो प्रभु उसका सम्मान करने लगे।

जीव जब हर प्रकारसे नम्र बनकर भगवानकी शरणमें जाता है, तब भगवान् उसे आदरसे अपना लेते हैं।

इस अध्यायका भाव दिव्य है। स्त्री नहीं, स्त्रीकी आसक्ति बाधक है। पतिपत्नीको एक साथ रहकर परस्पर प्रेम तो करना ही चाहिये किंतु आसक्ति नहीं होनी चाहिये। शुद्ध प्रेममें विकार-वासनाका अभाव होता है। सेवा करते समय आँख और मनको सेव्य ही में पिरोये रखो। जो आत्माके सिवाय अन्य किसी स्थान पर या अन्य किसी वस्तुमें आनंद ढूंढ़ता है, वह सुखी नहीं हो सकता।

भगवानने जिस अनासक्तिका गीतामें उपदेश दिया है, उसे उन्होंने अपने जीवनमें भी पूर्णतः चरितार्थ किया था। श्रीकृष्ण भोगी होने पर भी त्यागी हैं। अनासक्तिपूर्वक किया गया उपभोग बाधक नहीं है। भगवानको किसीमें भी आसक्ति नहीं है। जब उनकी १६,१०८ रानियाँ थीं और सुवर्ण-द्वारिका भी थी, उस समय उनकी जो मनःस्थिति थी वही मनःस्थिति द्वारिकाके नष्ट होने पर भी बनी रही। उस समय भी वे उद्धवसे कहते हैं, उद्धव! यह जगत असत्य है। सत्य तो केवल ब्रह्म ही है। यही अनासक्ति योग है।

केवल कृष्ण ही सत्य है।

राजा परीक्षितने उषा और अनिरुद्धके विवाहकी बात सुननेकी इच्छा प्रकट की।

शुकदेवजी वर्णन करने लगे।

महान शिवभक्त राजा बाणासुरकी उषा नामकी एक सुन्दरी पुत्री थी। उषाको स्वप्नमें अनिरुद्धके दर्शन हुए और उसने स्वप्नमें विवाह भी कर लिया। जब वह जागृत हुई तो नाथको पुकारने लगी। उसकी सखी चित्रलेखाने सारी बात जान कर कहा, सखी, तू चिंता न करना। हम उस पुरुषको कहीं से भी ले आएँगे, चित्रलेखाने कई पुरुषोंके चित्र बना-बना कर उषाको दिखाये किंतु उसका प्रेमी नहीं निकला किंतु जब चित्रलेखाने अनिरुद्धका चित्र बनाया तो उषा लजा गई। अब चित्रलेखाने जान लिया कि अनिरुद्ध ही अपनी सखीका प्रियतम है।

चित्रलेखा अनिरुद्धका हरण करनेके लिए द्वारिका आई किंतु वहाँ तो सुदर्शन चक्र चौकसी कर रहा था। वह सोचने लगी कि क्या किया जाय। इतनेमें वहाँ नारदजी आ पहुंचे। तो चित्रलेखाने उनसे कहा, महाराज, आप तो साधु हैं। दूसरोंकी साधना पूर्ण करे वही साधु हैं। मैं चोरी करने जा रहा हूँ, आप भी मेरे साथ चलिये।

नारदजी के पूछने पर चित्रलेखाने बताया कि वह अनिरुद्धकी चोरी करने जा रही है।

चोरी करो किंतु चोरी अनिरुद्धकी करो। अनिरुद्ध मनके स्वामी हैं। चित्रलेखा है चित्रविचित्र संकल्प करनेवाली बुद्धि। अनिरुद्ध मनका स्वरूप है। बुद्धि—चित्रलेखा मन—अनिरुद्धको हरने जा रही है किंतु उसे सफलता तभी मिलती है, जब नारद अर्थात् ब्रह्मचर्यसे सहायता मिले। बुद्धि मनसे परे है। यदि ब्रह्मचर्यका साथ हो तो वह मनको नियंत्रित कर सकती है। यदि ब्रह्मचर्य—संयमका पालन करोगे तो मन वशमें हो पायेगा।

नारदजीने सुदर्शनसे बातें करनी चाहीं तो उसने कहा कि उसे समय नहीं है, सारे नगरकी चौकसी जो करनी है। नारदजीने कहा, यह तो ठीक है किंतु तुझे सत्सङ्ग भी तो करना चाहिये। तू किसकी रक्षा करेगा ? रक्षक तो हैं श्रीकृष्ण। तू अज्ञानी है। सत्सङ्गसे ही तेरा अज्ञान मिट सकता है।

इस प्रकार नारदजीने सुदर्शनको बातोंमें उलझाया तो उधर चित्रलेखाने अवसर पाकर अनिरुद्धके आवासमें प्रवेश किया। अपनी योगविद्याके बलसे वह अनिरुद्धको पलङ्ग सहित उड़ा ले चली किंतु उसकी एक पुष्पमाला नीचे गिरी जो सीधी सुदर्शनपर ही जा पड़ी। सुदर्शनने ऊपर देखा तो विमान जा रहा था। उसने नारदजीसे पूछा, अरे यह क्या ? कुछ चोरी तो नहीं चला गया ?

नारदजी—तुझे तो ऐसे निरर्थक विचार ही आते रहते हैं। मुझे कथा करनेमें कोई आपत्ति नहीं है किंतु अपने स्वामीकी आज्ञाके बिना सत्सङ्ग करना ठीक नहीं है। हो सकता है, कुछ चोरी हुई भी हो। तू जाकर देख। हाँ, मेरा नाम मत लेना। नारायण, नारायण और इस प्रकार नारदजी वहाँसे चल पड़े।

प्रातःकालमें जब अनिरुद्धकी आँखें खुलीं तो उसने अपरिचित आवास देखा।

इधर द्वारिकामें भी गड़बड़ मच गई। श्रीकृष्णने सुदर्शनको बुलाकर आड़े हाथों लिया। उसने कहा, मैं नारदजीके साथ सत्सङ्ग कर रहा था, उसी समय अनिरुद्धको कोई उड़ा ले गया होगा। भगवानने कहा, तेरा काम चौकसी करनेका था या सत्सङ्ग करनेका ?

जब तक नारदजी-ब्रह्मचर्यका साथ न हो, बुद्धि-चित्रलेखा अनिरुद्ध-मनका हरण नहीं कर सकती।

चित्रलेखा अनिरुद्धको उषाके आवासमें ले आई। बाणासुरने सारी बात जानी तो उसने अनिरुद्धको कारागृहमें बन्द कर दिया। कृष्णने सारी बात जानी तो वे सेना लेकर शोणितपुर आ पहुँचे।

बाणासुर शिवजीका सेवक था सो श्रीकृष्णने उसका वध तो नहीं किया किंतु उसे सहस्रबाहुके स्थानपर चतुर्भुज बना दियां।

उषा-अनिरुद्धका विवाह हो गया।

सकाम कर्म पापोंका नाथ नहीं करता—केवल प्रभुके हेतु किया गया सत्कर्म ही पापोंका नाश कर सकता है।

नृग राजाने सत्कर्म तो किये थे किंतु सकाम किये थे सो उसके पापोंका नाश नहीं हो पाया। ब्राह्मणको दान की गई गायका उसने फिर दान किया सो उसे कांचीडाका अवतार लेना पड़ा। प्रभुने उसका उद्धार किया।

दान की गई वस्तु वापस नहीं ली जा सकती। देवधनका उपयोग विलासके हेतु नहीं किया जाय।

आनन्द रामायणमें एक प्रसङ्ग है। रामचन्द्रने सुना कि एक कुत्ता रो रहा है। तो उन्होंने लक्ष्मणको कारण जाननेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणने कुत्तेको बुलाकर रोनेका कारण

पूछा। उसने कहा कि उसे एक संन्यासीने पत्थर मारा है। उस संन्यासीको बुलाकर कुत्तेको मारनेका कारण पूछा गया।

संन्यासी—मैं भिक्षा लेकर जा रहा था सो इस कुत्तेने मेरा पीछा किया। मैंने सोचा कि वह मुझे छू लेगा तो मैं दूषित हो जाऊँगा। सो मैंने उसे दूर भगानेके लिए पत्थर मारा।

रामचन्द्र जी—तुमने संन्यास लेनेमें कुछ अधिक शीघ्रता कर दी है। कुत्ता तो पशु है। तुम मनसे संन्यासी नहीं हो पाये हो। यह कुत्ता जो भी दण्ड देगा, वह तुम्हें भुगतना पड़ेगा।

कुत्तेसे दण्ड देनेको कहा गया तो उसने कहा—प्रभु, इस संन्यासीको लाखोंकी आयवाले मन्दिरका महन्त बनाया जाय।

सभी सोचने लगे कि कुत्ता दण्ड दे रहा है या पुरस्कार।

कुत्तेने स्पष्टता की—गत जन्ममें मैं एक बड़े मन्दिरका महन्त था। मैंने देवधनका उपयोग विलासके लिये किया सो मुझे इस अवतारमें कुत्ता बनना पड़ा और पत्थरकी मार भी खानी पड़ी है।

देवधन, मनीषी ब्राह्मणोंका, सन्तोंका धन हड़पनेका प्रयत्न कभी न करना। सच्चा ब्राह्मण प्रभुको प्रिय होता है, उसका अपमान न किया जाय। आज तो यदुवंशी ही संतोंका अपमान करता है।

बलरामने वनमें द्विविद वानर, पौंड्रक तथा काशीराजका वध किया।

शुकदेवजीने दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाका शांबसे विवाहका प्रसङ्ग भी कह सुनाया।

नारदजीके परिहासका प्रसङ्ग भी सुनाया

ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह गृहस्थका संसार देखनेकी इच्छा न करे किंतु नारदजीको श्रीकृष्णका संसार देखनेकी इच्छा हुई। श्रीकृष्ण १६,१०८ रानियोंके साथ किस प्रकार व्यवहार निभाते होंगे? वे किसके साथ कब भोजन करते होंगे, बातें करते होंगे, विहार करते होंगे? वे द्वारिका आकर कृष्णके आवासमें प्रविष्ट हुये। उस समय श्रीकृष्ण रुक्मिणीके पास थे। उन्होंने नारदजीका स्वागत किया।

श्रीकृष्ण नारदजीके आगमनका कारण तो जान गये, फिर भी पूछा—कहिये महाराज, क्यों आगमन हुआ है आपका?

स्वयं प्रभु होते हुये भी संन्यासी नारदके उन्होंने पाँव पखारे। श्रीकृष्ण-सा गृहस्थ और संन्यासी आज तक दूसरा कोई नहीं हुआ है। उन्होंने अपना गृहस्थधर्म निभानेके हेतु नारदजीकी पूजा की।

वहांसे नारदजी भगवानके दूसरे आवासमें गये। वहां उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण उद्धवजी-के साथ शतरंज खेल रहे हैं। वहाँ भी श्रीकृष्णने उनका भलीभाँति स्वागत किया।

इस प्रकार नारदजी एकके बाद एक आवासमें गए। तो उन्होंने पाया कि कहीं पर कृष्ण बालकोंसे खेल रहे हैं तो कहीं पर भोजन कर रहे हैं, कहीं पर सोये हुए हैं तो कहीं पर जप कर रहे हैं। एक आवासमें वे कथा सुनते हुए पाये गये।

जिस प्रकार घरको प्रतिदिन झाड़-बुहारकर साफ करनेकी जरूरत है, उसी प्रकार प्रतिदिन सत्सङ्गसे मनको शुद्ध करनेकी भी आवश्यकता है।

नारदजी जहाँ भी जाते थे, श्रीकृष्णको घर-गृहस्थीके काममें लगे हुए पाते थे। अब तो वे चलते-चलते थक गए। वे सोचने लगे कि अब तो किसी आवासमें जलपान् करनेको मिले तो अच्छा हो।

जिस किसी आवासमें वे जाते थे, कृष्ण उनसे पूछते थे कि कब आये हैं। कई घण्टोंसे वे घूम रहे थे, फिर भी कहना पड़ता था, बस अभी आया हूँ।

यह तो महायोगेश्वरकी माया थी। भगवानने कहा, नारदजी, मैं तेरी पूजा करता हूँ, इसका अर्थ यह नहीं है कि तू मुझसे बढ़कर है। मैं तो गृहस्थधर्मके पालनके लिए ही तेरी पूजा कर रहा हूँ। वैसे तो तू मेरा पौत्र है क्योंकि तेरा पिता ब्रह्मा, मेरा पुत्र है। मेरा वैभव देखकर तुझे तो आनन्द होना चाहिए था।

नारदजीने भगवानसे क्षमा-प्रार्थना की।

भगवान गृहस्थके सामने आदर्श रखते हैं कि सच्चे सन्तोंका, पवित्र ब्राह्मणोंका आदर करो।

इस प्रसङ्गसे एक उपदेश यह भी मिलता है कि ब्रह्मचारीको गृहस्थके जीवनमें चञ्चुपात न करना चाहिए। शरीरसे ब्रह्मचर्यका पालन सरल है किंतु दृष्टि और मनसे ब्रह्मचर्यका पालन करना बड़ा कठिन है। गृहस्थके जीवन-व्यापारका विचार करनेसे ब्रह्मचर्यभङ्गकी संभावना है।

सत्रहवें अध्यायमें भगवानकी दिनचर्याका वर्णन है। वे ब्राह्ममुहूर्तमें ही शय्यात्याग करते थे। स्नानादिसे निवृत्त होकर त्रिकाल सन्ध्या, गायत्रीजप, दान आदि करते थे और फिर व्यावहारिक कामकाज करते थे।

द्वारिकामें आज भी ठाकुरजी दो बार सन्ध्या करते हैं। वे सन्ध्योपासना, माता-पिताकी पूजा, गरीबों और पवित्र ब्राह्मणोंको दान आदि भी करते थे। गायकी सेवा भी करते थे।

गृहस्थको चाहिये कि वह प्रतिदिन सन्ध्या-पूजा, गाय और गरीबोंकी सेवा आदि करे।

एक बार नारदजीने भगवानसे विनती की कि जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं-को मुक्त करो। उसी समय युधिष्ठिरकी ओरसे आमन्त्रण आया कि राजसूय यज्ञमें पधारिये। भगवान सोचने लगे कि पहले कौन-सा काम किया जाय। नारदजीने कहा कि वे प्रथम यज्ञमें ही जायँ।

राजसूय यज्ञके समय भीमने दुर्योधनका अपमान किया कि अन्धेके पुत्र अन्धे ही होते हैं। इस कर्कश वाणीने कलहका प्रारम्भ किया जिसकी अन्तिम परिणति महाभारतके दारुण युद्धमें हुई।

पांडवोंने वनवासका समय गुजरातमें बिताया था। संखेडाके निकट पंचेश्वर महादेवके पास वे रहे थे। वर्तमान धोलका शहर ही प्राचीन विराट नगरी थी।

राजसूय यज्ञके निमित्त योद्धाओंका नाश हो गया किंतु एक जरासंध शेष रह गया। वह महान शिवभक्त था सो उसे जीतना आसान नहीं था। तो भगवानने युक्ति की। वे स्वयं अर्जुन और भीमके साथ ब्राह्मणका वेश धारण करके जरासंधके पास गए।

जरासंध ब्राह्मणोंको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन नहीं करता था। सो उसने इन ब्राह्मणोंसे दान मांगनेको कहा। श्रीकृष्णने भीमको बताते हुए कहा कि मेरे इस शिष्यसे द्वंद्वयुद्ध करो।

सत्ताईस दिन हो गए लड़ते-लड़ते, किंतु जरासंध मरता ही नहीं था। भीम श्रीकृष्णसे कहने लगा—आप दोनों तो खा-पीकर मौज मना रहे हैं और इधर लड़ते-लड़ते मेरा शरीर चूर चूर हो रहा है।

श्रीकृष्ण—जरासंध मर नहीं पाता है क्योंकि लड़ते समय तू मेरी ओर दृष्टि ही नहीं करता है। लड़ते समय मेरी ओर देखना, मैं जो युक्ति बताऊंगा, वैसा करनेसे वह मर जाएगा।

अर्जुन जीवात्मा है।

भीम प्राण है।

श्रीकृष्ण परमात्मा हैं।

वृद्धावस्थामें प्राण व्याकुल हो जाता है। जरावस्थामें प्राण यदि श्रीकृष्णकी ओर दृष्टि करे तो वह भी भीमकी भांति जराको मार सकता है।

प्राण यदि परमात्माके सम्मुख हो पाये, प्रतिश्वास उन्हींका स्मरण करे तो जरासंध मर सकता है। जन्म-मृत्युकी पीड़ा ही जरासंध है।

जरासंधका वध कराके प्रभुने सभी राजाओंको मुक्त किया।

राजसूय यज्ञके आरम्भमें श्रीकृष्णकी पूजा सर्वप्रथम की गई तो शिशुपाल ईर्ष्यासे जल उठा। वह श्रीकृष्णके लिए अपशब्द बोलने लगा तो भगवानने सुदर्शन चक्रसे उसका मस्तकछेदन करके उसका उद्धार किया। सभीको आनन्द हुआ किंतु दुर्योधन अकड़ गया। ऐसे व्यक्तिका भी नाश शीघ्र हो जाता है।

शिशुपाल अर्थात् क्रोध। भगवानने शिशुपाल-क्रोधका सुदर्शनचक्र-ज्ञानसे नाश किया। क्रोधको मिटानेका उपाय ज्ञान ही है।

दुर्योधनने कपटसे पांडवोंको द्यूतमें हराया। पांडवोंने विराट नगरीमें अज्ञातवास किया। वनवास समाप्त होने पर पांडव-कौरवोंके युद्धका प्रसङ्ग आया।

बलरामने सोचा कि उन्हें भी किसी एकके पक्षमें रहकर लड़ना पड़ेगा। सो वे तीर्थयात्रा करने निकल पड़े।

घरमें जब भी मतभेद, मनःदुःखका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाय, तीर्थयात्रा करने चले जाओ।

शुकदेवजीने बलरामकी तीर्थयात्राका भी बड़ा अच्छा वर्णन किया है।

शुकदेवजीने सुदामाचरित्र भी सुनाया। यह चरित्र भागवतका एक महत्त्वपूर्ण अंश है।

भागवतकी कथा करते हुए शुकदेवजी दो बार समाधिस्थ हो गये थे। उस समय अन्य ऋषियोंने वेदमन्त्रोच्चारसे उनको सचेत किया था।

शुकदेवजीकी समाधिके वे दो प्रसङ्ग इस प्रकार थे।

(१) श्रीकृष्णने गोपबालक गाय, बछड़ों आदिका रूप लेकर ब्रह्माको अपनी मायाका दर्शन कराया था, उस प्रसंगके वर्णनके समय।

(२) सुदामाचरित्रके कथनके समय।

राजा परीक्षित सुदामाचरित्रके आरम्भके समय शुकदेवजीसे कहते हैं—इस कृष्णकथाको सुनते हुए तृप्ति ही नहीं हो पा रही है।

वही वाणी धन्य है, जो भगवानका गुणवर्णन करती है। वही हाथ सच्चा हाथ है, जो भगवानकी सेवा करता है। वही मन सच्चा मन है, जो स्थावर-जंगम सभीमें व्याप्त प्रभुका स्मरण करता है। वही कान सच्चे कान हैं, जो भगवानकी पवित्र कथाका श्रवण करते हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

पोरबन्दरवासी महाज्ञानी, जितेन्द्रिय, निष्किंचन और पवित्र ब्राह्मण सुदामा श्रीकृष्णके परम मित्र हैं। वे सारा दिन प्रभुसेवामें बिताते थे और अयाचक व्रतका पालन करते थे।

ज्ञानका फल धन या प्रतिष्ठा नहीं, परमात्मासे मिलन है। विद्याका उपयोग केवल अर्थोपार्जनके लिए करना ठीक नहीं है।

सुदामा अपनी विद्याका उपयोग भोगके लिए नहीं, भगवानके लिए करते थे।

सुदामाके घरमें दरिद्रताका राज्य था। उनकी पत्नीका नाम था सुशीला।

आज तो नामके विपरीत गुण देखे जाते हैं। शांति बहिन कर्कशा होती है, गंगा बहिन पीनेका पानी तक नहीं देती।

सुशीलाके पास एक ही वस्त्र था। वह महापतिव्रता थी।

धनसम्पत्तियुक्त पतिसे प्रेम करनेवाली पत्नीकी कोई बराबरी नहीं है। पहिननेके लिए वस्त्र और खानेके लिए अन्न न हो, फिर भी पतिसे प्रेम करती रहे, वही पत्नी सच्ची पतिव्रता है।

सुशीलाको कई दिनों तक भूखा रहना पड़ता था, फिर भी वह क्लेश नहीं मानती थी। वह कभी सुदामासे ऐसा नहीं कहती थी कि विद्वान होकर भी कमाते क्यों नहीं हो। यदि कोई साधारण स्त्री होती तो सुदामासे कहती, यदि कुछ कामकाज नहीं करना था तो मेरे साथ विवाह करके मेरा जीवन क्यों बिगाड़ दिया ?

पति यदि धन-सम्पत्ति, सुख-सुविधा दे और पत्नी ऐसे पतिकी सेवा करे तो उसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसी पत्नीको धन्य है जो दरिद्र पतिको भी परमेश्वर माने और सेवा करती रहे। पति-पत्नी यदि साथ-साथ रहकर भी कृष्णकीर्त्तन, प्रभुसेवा करते रहें तो वैसा गृहस्थाश्रम संन्यस्ताश्रमसे भी श्रेष्ठ है।

सुशीला पतिसे प्रभुकथा सुनती रहती थी। कई बार बालकोंको भी खानेको नहीं मिलता था। सुशीलासे अपनी सन्तानोंकी दुर्दशा नहीं देखी गई। एक दिन

व्याकुलतासे वह अपने पतिसे कहने लगी—एक प्रार्थना करनी है आपसे। आप कथामें कहते हैं कि कन्हैयाको अपने मित्रोंसे बड़ा प्रेम है। वह मित्रोंके लिये चोरी भी करता था।

सुदामा—हाँ, सच है यह बात। वह अपने मित्रोंको खिलानेके बाद ही खाता था।

सुशीला—तो फिर क्यों न उससे मिलकर अपना यह दुःख दूर किया जाय ?

सुदामा—मैं दरिद्र हूँ। सो वहाँ जाऊँगा तो लोग कहेंगे कि यह ब्राह्मण भीख माँगने आया है। मेरा नियम है कि परमात्मासे कुछ भी माँगने नहीं जाऊँगा।

सुशीला—मैं तुम्हें माँगनेके लिये नहीं भेज रही हूँ। वे तो हजार आँखवाले हैं। अपने आप ही सब कुछ समझ जायेंगे। केवल उनके दर्शन तो कर आओ।

सुदामा—मेरे पास वहाँ जानेका समय नहीं है।

सुशीला—वहाँ जाकर भगवानके दर्शन तो कर आओ।

सुदामा—मैं यहीं बैठकर भी मनसे हमेशा उनका दर्शन करता रहता हूँ। शारीरिक मिलनकी अपेक्षा मानसिक मिलन बड़ा सुखदायी है।

सुशीला—दर्शन कभी प्रत्यक्ष भी तो करने चाहिये। आपकी प्रतिज्ञा तो है किसी जीवके द्वारपर न जानेको। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। उनके द्वार सभीके लिये खुले हैं। वहाँ जानेमें सङ्कोच कैसा ? मित्रसे मिलना ही चाहिये।

ज्ञानी और तपस्वी सुदामा तो घर बैठे ही कृष्णका दर्शन कर लेते थे किंतु पत्नीके अत्याग्रहके कारण द्वारिका जानेको तैयार हुये। उन्होंने सोचा कि पत्नी हर बात मान लेती है तो मुझे भी उसकी यह बात माननी चाहिये। वे पत्नीसे कहने लगे—कल्याणी, मित्रसे मिलने जा तो रहा हूँ किंतु खाली हाथों जानेमें हमारी कोई शोभा नहीं है।

घरमें तो कुछ भी नहीं था। सो सुशीला पड़ोसीके घरसे दो मुट्ठी भर तंदुल माँग लाई। धन्य है सुशीलाको कि तंदुलका एक दाना भी घरमें न रखा और सारेके सारे एक चिथड़ेमें बाँधकर भगवानके लिये दे दिये ऐसी भेंट देनेमें तुम्हें सङ्कोच तो होगा किंतु कहना कि भाभीने यही भेजा है।

पत्नीके आग्रह और प्रभुके दर्शनकी इच्छासे सुदामा द्वारिकाकी दिशामें चल दिये। फटी हुई धोती, एक हाथमें लकड़ी और बगलमें तंदुलकी पोटली थी।

सुशीला सोच रही है कि कई दिनोंके भूखे मेरे पति वहाँ तक कैसे पहुँच पायेंगे। मैंने ही उनको जानेके लिये विवश किया। किंतु और कोई उपाय भी तो नहीं था। अपने बालकोंकी दुर्दशा भी तो देखी नहीं जाती। वह भगवान सूर्यनारायणसे प्रार्थना करने लगी—मेरे पतिकी रक्षा करना।

सुदामा पौष शुक्ल सप्तमीके दिन द्वारिका गये। अतिशय ठण्डीके कारण उनका शरीर काँप रहा था। सात दिनोंके भूखे दुर्बल सुदामा दो मील चलते ही थक गये वे सोचते जाते हैं कि द्वारिकानाथके दर्शन होंगे भी या नहीं। रास्तेमें दुर्बलता और चिंताके कारण उनको मूर्छा भी आ जाती थी।

उधर द्वारिकाधीशको समाचार मिला कि सुदामा आ रहा है। उन्होंने सोचा कि ऐसे निष्ठावान, सदाचारी अयाचक तपस्वीको पैदल चलाना मुझे शोभा नहीं देता है। उन्होंने गरुडजीको भेजकर सुदामाको आकाशमार्गसे द्वारिका नगर तक पहुँचा दिया। सुदामाने लोगोंसे पूछकर जाना कि वे द्वारिकामें आ पहुँचे हैं। उन्होंने सोचा कि द्वारिका वैसे कुछ दूर नहीं है। सुबहमें निकला था और शामको तो मैं यहाँ आ भी पहुँचा। वे जानते ही नहीं थे कि उन्हें गरुड-जी उठाकर ले आये हैं।

भगवानके लिए यदि तुम दस कदम आगे बढ़ोगे तो वे बीस कोस चलकर तुमसे मिलनेके लिए आयेंगे।

सुदामा लोगोंसे द्वारिकाधीशके प्रासादका मार्ग पूछते हैं। वे मेरे मित्र हैं। लोग हँस देते हैं कि ऐसा भिखारी भी कभी द्वारिकाधीशका मित्र हो सकता है।

सुदामा प्रभुस्मरण करते हुए भगवानके द्वारपर आ पहुँचे। द्वारपाल उन्हें भिखमङ्गा मानकर रोकते हुए कहने लगे, जो चाहे सो हमींसे माँग ले। तू अन्दर नहीं जा सकता।

सुदामा—मैं द्वारिकाधीशसे कुछ माँगने नहीं, मिलने आया हूँ। वे मेरे मित्र हैं।

विशुद्ध प्रेम बस देता ही है, कुछ भी माँगनेकी इच्छा नहीं करता।

द्वारपाल हँसने लगे—क्या ऐसा भिखमङ्गा कुछ पानेकी इच्छा किये बिना ही यहाँ आया होगा?

सुदामा—तुम श्रीकृष्णसे जाकर कहो कि उनका मित्र सुदामा उनसे मिलने आया है।

सेवक अन्दर गया और प्रणाम करके प्रभुसे कहने लगा—प्रभु, द्वारपर एक भिखमङ्गा-सा दुर्बल ब्राह्मण आया है। आँखें अन्दर धँसी हुई हैं, हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं, फटेहाल है। मुखपर दिव्य तेज है। वह हमसे कुछ भी लेना नहीं चाहता। यह कहता है कि वह आपका मित्र सुदामा है और आपसे मिलने आया है।

सुदामा शब्द सुनते ही भगवान द्वारकी ओर दौड़े।

द्वार पर खड़े हुए सुदामा सोच रहे थे कि आज तक उनके मनमें अपने ज्ञान और तपका तथा किसीके द्वारपर न जानेका अभिमान था। सुशीलाने वह अभिमान दूर कर दिया।

सुदामा वैसे तो फटेहाल थे, कपड़े धूलिधूसर थे किंतु उनका हृदय अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र था।

भगवान मानवके वस्त्र नहीं, हृदय देखते हैं। जीव यदि अपना जीवत्व, अहम् भुला दे तो ईश्वर भी अपना ईश्वरत्व एक ओर रख देते हैं।

भगवान सुदामाको पुकारते हुए दौड़कर द्वारपर आये। उनकी रानियोंको आश्चर्य हुआ कि आज तक न जाने कितने लोग इनसे मिलने आ गये किंतु वे कभी ऐसे विह्वल नहीं हुए थे।

श्रीकृष्णने सुदामाको अपने हृदयसे लगा लिया। अपने मित्रकी ऐसी विषम दशा देखकर उनको अत्यन्त दुःख हुआ। मुझे ही उससे मिलनेके लिए, उसकी दशा जाननेके लिए जाना चाहिये था। मित्र, अच्छा हुआ कि तू इधर आ गया।

सुदामाने सोचा कि वैभव प्राप्त होनेपर भी कन्हैया उसे भूला नहीं है। सम्पत्तिके नशेमें अपना भान भूलनेवालेको कभी ईश्वर कहा जा सकता है क्या ?

रुक्मिणी चरण धोनेके लिए जल ला रही थी कि श्रीकृष्णने अपने अश्रुजलसे सुदामाके चरण धो दिये। नरोत्तम कवि लिखते हैं—

देखि सुदामाकी दीन दसा, करुना करिकें करुनानिधि रोये।
पानी परातको हाथ छुयो नहिं, नैननके जलसों पग धोये॥

तपस्वी सुदामाके पांवोंमें जूते तो थे नहीं सो बहुतसे काँटे चुभे हुए थे। श्रीकृष्ण काँटे निकालने लगे। एक काँटा निकल नहीं रहा था तो प्रभुने रुक्मिणीसे सुई लानेको कहा। रुक्मिणीको देर हो गई तो प्रभु अपने दाँतोंसे वह काँटा निकालने लगे। सुदामा कहने लगे, अरे प्रभु, यह क्या कर रहे हैं आप ? कहीं रानियोंने देख लिया तो ? राजाधिराज होकर इस प्रकार काँटा निकालना आपको शोभा नहीं देता।

कृष्ण—तू भी कैसी बातें कर रहा है ? मैं तो तेरा सेवक हूँ। तेरा कन्हैया संपत्तिवान होने पर भी विवेकभ्रष्ट नहीं हुआ है।

श्रीकृष्ण आज भूल गए हैं कि वे परमात्मा हैं, राजाधिराज हैं। उन्होंने काँटा निकाल दिया। सुदामा गरीब थे किंतु निष्पाप थे, पवित्र थे सो भगवानने उनकी वैसी सेवा की।

दरिद्र होना अपराध नहीं है, दरिद्रतामें भगवानको भूल जाना अपराध है।

सुदामा स्नानादिसे निवृत्त हुए तो उन्हें पहिननेके लिए पीताम्बर दिया गया। भोजन-विधि भी हो गई। सुदामाको पलङ्ग पर बिठलाकर श्रीकृष्ण उनकी चरणसेवा करने लगे।

श्रीकृष्ण—मित्र, मार्गमें तुम्हें बहुत कष्ट हुआ होगा। सच कहता हूँ, मैं इस सांसारिक जंजालसे उकता गया हूँ। अपने गुरुकुलके दिनों जैसा आनन्द अब कहाँ ?

प्रवृत्तिधर्म अपने साथ वासना-विकार भी ले आता है सो भगवान निवृत्त होनेकी इच्छा कर रहे हैं।

मित्र सुदामा, बचपनमें तुम्हें खेलनेकी आदत तो थी नहीं, मैं तुम्हें खेलनेके लिए बरबस ले जाता था। वह दिन भी तुझे याद है कि जब हम समिधा लेने गए थे और मूसलाधार वर्षा हुई थी और हमें एक वृक्ष पर आसरा लेना पड़ा था ?

उस दिन सुदामाके पास कुछ चने थे जो वे अकेले खाने लगे। आवाज सुनकर कृष्णने पूछा कि वे क्या खा रहे हैं। सुदामाने सोचा कि यदि सचसच कह दूंगा तो कृष्णको भी कुछ चने देने पड़ेंगे। सो उन्होंने कहा, खाता नहीं हूँ यह तो ठण्डके मारे दाँत बज रहे हैं। अकेले खानेवाला दरिद्र हो जाता है। सुदामाको इसी कारणसे दरिद्र होना पड़ा।

श्रीकृष्णको सुदामाकी चरणसेवा करते देखकर रानियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक पतिने ऐसा प्रेम किसीकी भी ओर नहीं दिखाया है। यह ब्राह्मण बड़ा भाग्यशाली है।

कृष्ण—विवाह किया है या नहीं ? कैसी है मेरी भाभी ?

सुदामा—पत्नी तो सुशीला है, संतान भी हैं।

सुदामाने सब कुछ बताया किंतु अपनी दरिद्रताके बारेमें कुछ भी नहीं बताया।

तेरी भाभीकी इच्छा और अनुरोधसे ही मैं तुझसे मिलने आया हूँ।

श्रीकृष्ण—भाभी इतनी सुपात्र हैं तो उन्होंने मेरे लिये भी कुछ भेजा तो होगा ही।

लक्ष्मीने बीचमें कहा—यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके इस मित्रके घर कुछ भेज दूं।

कृष्ण—मैं देना नहीं, इससे लेना चाहता हूँ।

लक्ष्मीजी—यह दरिद्र ब्राह्मण आपको क्या दे पायेगा ?

श्रीकृष्णको बुरा लगा। मेरे मित्रको दरिद्र कहनेवाली तू कौन होती है ? लक्ष्मीजीने सोचा कि श्रीकृष्णके तेवर आज कुछ और ही हैं। उन्होंने प्रभुसे क्षमा माँगी।

सुदामा तंदुलकी पोटली संकोचवश छिपा रहे थे। भगवान मनमें हँसते हैं कि इसने उस दिन चने छिपाये थे और आज तंदुल छिपा रहा है। जो मुझे कुछ देता नहीं है, उसे मैं भी कुछ नहीं देता। सो मुझे छीनना ही पड़ेगा। भगवानने तंदुलकी पोटली छीन ली।

स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान्।

भा. १०-८१-८

लौकिक दृष्टिसे तो दो मुट्ठीभर तन्दुल ही थे किंतु सुदामाका तो वह सर्वस्व था। सुदामा प्रारब्धकर्मानुसार दरिद्र थे। विधाताने उनके भाल पर लिखा था—श्रीक्षयः। जब श्रीकृष्ण उनके भाल पर तिलक करने लगे तो उन्होंने वह विधाताका लेख पढ़ा और उसे उल्टा भी दिया—यक्ष श्रीः। जो सम्पत्ति कुबेरके पास भी नहीं है वह मैं सुदामाको दूंगा। भगवानने सुदामाके प्रारब्धकर्मोंको क्षीण करनेके हेतु तन्दुलभक्षण किया। उन्होंने तन्दुल-आहार किया तो उनके द्वारा सारे विश्वने आहार किया। क्योंकि वे तो सर्वात्मा हैं न ? श्रीकृष्णने सारे विश्वको अन्नदान करनेका पुण्य सुदामाको दे दिया।

श्रीकृष्ण सुदामासे कहते हैं, गोकुलमें मेरी माता इसी प्रकार मुझे तन्दुल खिलाती थी। यशोदाके स्मरणने भगवानकी आँखोंको गीला कर दिया। सुदामाके तन्दुल प्रेमरससे भीगे हुए थे। एक मुट्ठीभर तन्दुलके बदलेमें प्रभुने समग्र द्वारिकाका ऐश्वर्य सुदामाके घर भेज दिया।

सुदामाने अपने दारिद्र्यकी बात भगवानसे न बताई सो भगवानने भी ऐश्वर्यदानकी बात सुदामाको न बताई।

सुदामा अगले दिन अपने गाँव लौटनेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने सोचा था कि कृष्ण दो-चार दिन और ठहर जानेका आग्रह करेंगे।

किंतु भगवानने वैसा आग्रह नहीं किया। कारण उधर सुशीला सारा वैभव पाकर भी व्रत लिए बैठी थी कि पतिके मुख-दर्शन किये बिना भोजन नहीं करेगी। भगवानने सोचा कि यदि सुदामाको जाने न दूंगा तो भाभीको उतने दिन भूखों मरना पड़ेगा। सो उन्होंने सुदामासे आग्रह नहीं किया।

निरपेक्ष पवित्र सुदामा अपनी पुरानी धोती पहिनकर जानेके लिए तैयार हो गये। जाते-जाते भी उन्होंने कुछ नहीं माँगा। श्रीकृष्ण द्वार तक उन्हें छोड़ने गए और कहने लगे, मित्र, अबकी बार भाभीको भी साथ ले आना। उनको मेरी याद कहना, मेरे वन्दन कहना।

सारा विश्व श्रीकृष्णको वन्दन करता है और वे एक दरिद्र ब्राह्मणकी पत्नीको वन्दन करते हैं। जैसी वस्तु माता कभी मुझे देती थी, वैसी ही वस्तु भाभीने भेजी है। सुदामाको गले लगाकर विदाई दी। दोनोंकी आँखोंमें आँसू झलक आये।

सुदामा, सुदामापुरी पहुँचकर अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी ढूंढ़ने लगे। वहाँ झोंपड़ीका तो नामोनिशान नहीं था, बड़ा प्रासाद खड़ा था। सुदामा सोच रहे हैं कि मेरी झोंपड़ीको कौन उठा ले गया।

उधर सुदामाके आगमनके समाचार सुशीलाको मिले तो वह दौड़ती हुई बाहर आई और पतिका स्वागत करती हुई कहने लगी, आपके मित्रकी कृपासे यह सब हुआ है।

सुदामाका मन कृतज्ञतासे भर गया। वे प्रार्थना करने लगे, मुझे धनकी अपेक्षा नहीं है। मैं तो यही चाहता हूँ कि जन्मजन्मातर मुझे श्रीकृष्णकी भक्ति करनेका अवसर मिलता रहे, उसके चरणोंमें मुझे स्थान मिले।

सुदामाके चरित्रमें भी एक सार है। परमात्मा जीवमात्रके निःस्वार्थ मित्र हैं। जगतमें परमात्माको छोड़कर ऐसा अन्य कोई नहीं है जो अपना सर्वस्व किसीको दे दे। यदि सेवा और स्तुति करनी ही है तो भगवानकी करो। जीव जब ईश्वरसे प्रेम करता है तब ईश्वर जीवको भी ईश्वर बना देते हैं। जीवका सच्चा मित्र, परमपिता ईश्वर ही है।

सुदामाने ईश्वरसे निरपेक्ष प्रेम किया तो उन्होंने सुदामाको अपना लिया और अपने जैसा वैभवशाली भी बना दिया। सुदामापुरी भी द्वारिका-सी समृद्ध बना दी।

भगवान तो उनके चरणकमलका स्मरण करनेवालेको अपना स्वरूप दे देते हैं तो तुच्छ धनके दानका तो आश्चर्य ही क्या है?

स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति किंन्वर्थकामान्।

भा० १०-८०-११

शारीरिक मिलन तुच्छ है, मनका मिलन दिव्य है। यदि धनी व्यक्ति दरिद्रोंको हृदयसे सम्मान दे तो आज भी सभी नगर द्वारिकासे समृद्ध हो सकते हैं।

सूर्यग्रहणका प्रसङ्ग आया। वसुदेव-देवकी तथा अन्य सभी यादव कुरुक्षेत्र गये।

सकाम भावसे किया गया काम स्वर्ग तो दिलाता है किंतु मुक्ति नहीं दिलाता। निष्काम कर्म पापको भगा देता है। मनुष्यका शरीर ही वह कुरुक्षेत्र है, जहां निवृत्ति और प्रवृत्तिका युद्ध होता रहता है। इस शरीररथको जो श्रीकृष्णके हाथोंमें दे देता है, उसीकी जीत होती है।

कृष्ण-कथा हमें अपने दोषोंसे भली भाँति अवगत कराती है। कृष्णकथाके श्रवणसे हमें भजन करनेकी प्रेरणा मिलती है और वैसा होने पर हमारी इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं। गंगास्नान शरीरको शुद्ध करता है, अतः गंगास्नानकी अपेक्षा कृष्ण-कथास्नान अधिक श्रेष्ठ है।

वासना ही पुनर्जन्मका कारण है, अतः मृत्युके पहले ही वासनाका त्याग करो। वैर और सुखकी एषणा वासनाको जन्म देती है। उनका त्याग करना ही चाहिये।

कुरुक्षेत्रमें आए हुए माता-पितासे श्रीकृष्णने एक दिन पूछा—आपके मनमें कुछ इच्छा है? यदि है तो मैं पूर्ण करूँ।

वसुदेव—वैसे तो मेरी और कोई इच्छा या वासना नहीं है। मेरी एक यही इच्छा है कि मैं अंतकालमें तेरा ही स्मरण करता रहूँ और तेरा नाम लेता हुआ ही देहत्याग करूँ।

शरीरत्यागके समय बड़ी वेदना होती है। सो मनको ऐसी शिक्षा दो कि मृत्युके समय, उस वेदनाके बीच भी भगवान ही की याद आए। मृत्युके समय भगवानका स्मरण करनेवाले व्यक्तिको धन्य है। वैसे ही व्यक्तिका जीवन सार्थक है। मृत्युकी चिंता करनेसे पापसे बचा जाएगा।

एक बार एकनाथ महाराजसे किसीने पूछा—आप तो हमेशा ईश्वरमग्न और आनंदित रहते हैं। मेरा मन तो ईश्वरसे लग ही नहीं पाता है। ऐसा क्यों है?

एकनाथ महाराजने स्वगत कहा कि मन संसारसे हटेगा तो प्रभुमें लगेगा। किंतु प्रकट कहा—आज तो मैं कुछ नहीं कह सकता। आजसे सातवें दिन तेरी मृत्यु होगी। उसी दिन तू मेरे पास आना, मैं तुझे सब कुछ बताऊँगा।

मृत्युको निकट देखा तो वह मनुष्य घबड़ा गया। अपने पुत्रोंको अपनी सारी धन-संपत्ति तथा कारोबार सौंप दिया और प्रभुभजनमें लग गया। मृत्युकी तैयारी करने लगा।

सातवें दिन वह एकनाथ महाराजके पास आया तो उन्होंने उससे पूछा—क्यों कैसी रही? इन दिनों कौन-सी मौज उड़ायी?

वह गृहस्थ कहने लगा—मस्तक पर मृत्युको मंडराते देखा तो भोगविलासको भूल गया और ईश्वरका भजन करता रहा।

एकनाथजी—अब तो मेरी ईश्वरमग्नताका रहस्य तूने जान लिया न? मैं हमेशा मृत्युको दृष्टि-समक्ष रखता हूँ अतः मन ईश्वरभजनमें लगा रहता है।

भगवानने देवकीकी इच्छा जाननेकी इच्छा की। देवकीने कहा—मुझे कहते हुए संकोच तो हो रहा है किंतु मेरी इच्छा है कि कंस द्वारा मृत्युप्राप्त अपनी सभी संतानोंको मैं देखना चाहती हूँ।

भगवानने एक बार यशोदासे भी उनकी इच्छा पूछी थी। तो यशोदाने कहा था—मेरी तो यही इच्छा है कि मैं निरंतर तेरे दर्शन करती रहूँ। एक भी क्षण तू मेरी दृष्टिसे दूर नहीं हो पाए।

कहाँ यशोदाकी इच्छा और कहाँ देवकीकी ?

इच्छा भक्तिमें विघ्नकर्ता है। इच्छा ही पुनर्जन्मका कारण है।

कृष्ण सुतलपातालमें अपने सभी बंधुओंको ले जाये। देवकीने उनको देख लिया और कहा, बस, अब मेरी यही इच्छा है कि मेरी मृत्यु सुधरे।

ज्ञानी महात्मा ही नहीं, ईश्वरके मातापिता तकको आशंका रहती है कि उनकी मृत्यु कहीं बिगड़ न जाय।

उसी व्यक्तिकी मृत्यु उजागर होती है, जो अपना प्रतिक्षण सुधारता है।

प्रभुने वसुदेव-देवकीको दिव्य तत्त्वज्ञान समझाया।

दशमस्कंधके अंतमें सुभद्राहरणका वर्णन है।

भद्र अर्थात् कल्याण। कल्याण करनेवाली ब्रह्मविद्या ही सुभद्रा है। अद्वैतदर्शी ब्रह्मविद्या ही सुभद्रा है। जिसके घरमें सुभद्रा हो, उसका जीवन कल्याणमय, सुखी होता है।

अर्जुनकी भाँति संन्यास लेकर तप करनेवालेको ही सुभद्राकी प्राप्ति होती है। अर्जुनने त्रिदंडी संन्यास लेकर चार मास तक कठिन तपश्चर्या की और प्रतिदिन अठारह घंटे ॐकारका जप किया, तभी प्रभुने उसे सुभद्रा-ब्रह्मविद्या दी।

चंचल आँखोंवालेका मन भी चंचल ही होगा और सुस्वादु भोजन करनेवाला भलीभाँति भजन नहीं कर पायेगा। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये त्रिदंडी संन्यासी बनना पड़ता है।

प्रभुके लिये सर्वस्वका त्याग करना ही संन्यास है। सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुए भक्ति करनेवाले पर भगवान जल्दी कृपा नहीं करते। संसार-सुखके त्यागी पर भगवान जल्दी प्रसन्न होते हैं।

परीक्षितने पूछा—शब्दरूप वेद, निराकार वेदका प्रतिपादन किस प्रकार करता है ?

शुकदेवजीने वेदस्तुतिकी कथा सुनायी।

सृष्टिके आरंभमें शेषशय्याशायी नारायणकी वेदोंने स्तुति की। परमात्माको वेदोंने मंगलगान करके जगाया। नाम ! तेरी जय हो। वेद प्रभुकी जयकार करते हैं, तब लगता है कि जीवकी हार हुई है। जीवको मायाने पकड़ रखा है सो मेरी भी जय हो, मैं भी मायाके बंधनसे मुक्त हो पाऊँ। परमात्माकी जयकार करके वेद मायाबंधनसे मुक्तिकी प्रार्थना करते हैं।

अनादि कालसे जीव और मायाका संग्राम चल रहा है। माया उसे जगतके विषयोंमें फँसाए रहती है सो वेद परमात्माकी स्तुति करते हैं कि मायाके बंधनोंको काट दीजिये।

माया जीवको स्त्री, धन आदिमें फँसाकर परमात्माकी ओर जाने ही नहीं देती है। नाथ, हम आपकी शरणमें आए हैं। इस मायाके बंधनोंको काट दीजिये।

प्रभुने पवित्र विचार करनेके लिये ही बुद्धि और मन दिये हैं। पवित्र विचार करनेसे ही मन शुद्ध होता है।

वेद सगुण और निर्गुण ब्रह्मका वर्णन करते हैं। ईश्वर साकार और निराकार दोनों रूपोंसे लीला करते हैं। ईश्वरकी निराकारताका यही अर्थ है कि उनका हम जैसा कोई आकार नहीं है।

निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं। निर्गुण, भक्तिवश होकर सगुण बनते हैं। सगुण बनें प्रभु भक्ति-प्रेमवश।

नाथ, इस जगतमें जो कुछ दिखाई देता है और अनुभूत होता है, वह वस्तुतः आपका ही स्वरूप है। लौकिक नामरूप सत्य नहीं हैं।

मिट्टीके पात्रमें भी मिट्टी ही होती है और बर्फमें भी जल ही होता है। इसी प्रकार प्रभु सभीमें व्याप्त हैं।

ज्ञानकी अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है सो ईश्वरके किसी भी स्वरूपका बार-बार चिंतन, ध्यान, स्मरण और दर्शन करो। वैसा करनेपर मनकी शक्ति बढ़ेगी। मनको परमात्माके किसी भी स्वरूपमें विवेकपूर्वक स्थिर कर दो।

आगे शिवतत्त्व और विष्णुतत्त्वका रहस्य भी समझाया गया।

वेदस्तुतिके कई विद्वान अपने-अपने अर्थ बताते हैं। आरम्भवाद, परिणामवाद, आदि कई मत विद्वानोंने प्रकट किये हैं और अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार वे अर्थ करते हैं।

वेद ईश्वरका निषेधात्मक वर्णन करते हैं। ज्ञानमार्गी 'नेति नेति' कहकर ईश्वरका वर्णन करते हैं। भक्तिमार्ग 'इति इति' कहकर भगवानका वर्णन करता है। वैसे दोनोंका लक्ष्य एक ही है।

अर्जुनको अपने वीरत्वका अभिमान था सो प्रभुने उसे नष्ट कर दिया।

प्रभुके अनन्त गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है?

प्रभुने ग्यारह वर्षों तक गोकुलमें लीला की। फिर वे मथुरा गये। वहाँसे द्वारिका जाकर उन्होंने कई बार विवाह किया। उद्धवको ज्ञानोपदेश देकर वे स्वधाम पधारे।

भगवानकी लीलाएँ अनन्त हैं और गुण भी अनन्त। उनकी लीलाओंका चिंतन करनेसे मन उनमें लीन हो जाता है, तद्रूप हो जाता है।

सुन्दरं गोपालं उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरं।
वृन्दावनचंद्रं आनंदकंद परमानंदं धरणिधरम्॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामं अत्यभिरामं प्रीतिकरं।
भज नंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥
सुंदर वारिजवदनं निर्जितमदनं आनंदसदनं मुकुटधरं।
गुंजाकृतिहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम्॥
वल्लभ पटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरं।
भज नंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥
शोभित मुखधूलं यमुनाकूलं पीतदुकूलं सुखदकरं।
मुखमण्डितं रेणु चारित धेनुं वादितवेणुं मधुरसुरम्॥
वल्लभ अतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचिकमलं तिमिरहरं।
भज नंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

एकादश स्कन्ध

श्रीकृष्णाय नमः।

इस ग्यारहवें स्कन्धमें पहले दस स्कन्धोंका उपसंहार है। इसमें कपिलगीता, पुरंजन-आख्यान, भवाटवी-वर्णन आदि भी है। एकादश स्कन्ध भगवानका मुख है।

नवें स्कन्धमें ईशानुकथालीला थी और दसवें स्कन्धमें निरोधलीला। श्रीकृष्णकी कथा और लीला अनन्त हैं। इस कथाके प्राकट्यके साथ ही गङ्गास्नानकी महिमा कम हो गयी है। भागीरथीमें स्नान करने जानेके लिये रुपये-पैसोंकी जरूरत रहती है, वहाँ तक जाना भी पड़ता है। जब कि कृष्णकथामें स्नान करनेके लिये न तो कहीं दूर जाना पड़ता है और न रुपयोंकी जरूरत होती है। गङ्गास्नानसे केवल शरीरकी शुद्धि होती है जब कि कृष्णकथास्नानसे तो मनकी, हृदयकी शुद्धि हो जाती है। एकादश स्कन्धमें मुक्तिलीला है क्योंकि साधकका मन भगवानसे जा मिला है।

जिसके मनका निरोध होता है, उसे शीघ्र ही मुक्ति मिलती है। दसवें स्कन्धमें निरोध होनेके कारण इस स्कन्धमें मुक्ति हुई।

मुक्त तो मनको करना है क्योंकि आत्मा तो मुक्त ही है। विषयोंका चिंतन छोड़कर ईश्वरका चिंतन शुरू कर दे तो जीव मुक्त हो जाये। जीव अज्ञानके कारण बन्धनका अनुभव करता है। वस्तुतः उसे किसीने बाँधा है ही नहीं। विवेक, तत्त्वज्ञान और वैराग्यसे मोहको नष्ट किया जाय तो मुक्ति ही है।

मनको वैर और वासनासे मुक्त रखोगे तो निरोध जल्दी होगा। जिसका वैराग्य दृढ़ हुआ हो, उसे ही मुक्ति मिलती है।

ग्यारहवें स्कन्धका प्रथम अध्याय वैराग्यसे सम्बन्धित है। वैराग्यके बिना भक्ति नहीं हो पाती। मनको समझाओ कि सुखका, धन-सम्पत्तिका, भोगका चिंतन, विषमय है। उससे कभी तृप्ति और शांतिका अनुभव नहीं हो पाता। ईश्वरके चिंतनके बिना, पवित्र विचार-आचारके बिना वैराग्य नहीं आ पाता। जब तक संसारके प्रत्येक विषयके प्रति वैराग्य न आये, शुद्ध भक्तिका आरम्भ नहीं हो पाता।

सद्-असद्का विचार करनेसे विवेक उत्पन्न होगा और वैराग्य भी। संसारके सभी जड़ पदार्थ दुःखरूप और असत् हैं। मात्र चेतन परमात्मा ही आनन्दरूप और सत् हैं। निश्चय कर लो कि जगतके पदार्थ भ्रममात्र हैं, दुःखदायी हैं, क्षणिक हैं। विषयोंका संयोग वैसे तो सुख देता है किंतु उनका वियोग बड़ा दुःखदायी है।

भगवानको अब वैराग्य आने लगा है। जीवको जब वैराग्य होता है तभी वस्तुस्थितिकी कटुताका भान होता है। जीवनमें जब कोई झटका-सा लगता है तो वैराग्य आता है।

तुलसीदास अपनी जवानीमें पत्नीकी ओर बड़े ही आसक्त थे। एक बार पत्नी अपने मायके गई हुई थी। तुलसीदाससे विरह सहा न गया तो ससुरालकी ओर चल दिये। रात्रिका समय था, मूसलाधार वर्षा हो रही थी। नदीमें जोरोंकी बाढ़ आई हुयी थी।

एक शवको लकड़ीका टुकड़ा मानकर उसी पर सवार होकर उन्होंने नदी पार कर ली। ससुरालके द्वार बन्द थे तो उन्होंने खिड़कीमें-से अन्दर जाना चाहा। एक सर्प लटक रहा था। उसको रस्सी मानकर ऊपर चढ़ गए और पत्नीके कमरेमें पहुँचे। पत्नीने पतिके पराक्रमकी बात सुनी तो वह उलाहना देने लगी। जैसा प्रेम मेरी इस हाड़चामकी देहसे करते हो, उतना प्रेम यदि प्रभुके लिए करते और उनके लिए इतने कष्ट झेलते तो आपका उद्धार हो जाता।

हाड़ मांसकी देह मम, ता पर इतनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति, अवसि मिटिहि भवभीति ।।

पत्नीके वचन सुनते ही तुलसीको जैसे एक धक्का-सा लगा। उनके ज्ञान-चक्षु खुल गए और उसी क्षण उन्होंने संसार त्याग दिया। सारा जीवन रामचन्द्रजीकी सेवामें व्यतीत किया।

भगवानको लग रहा था कि ये सब सांसारिक प्रवृत्तियाँ अब बाधारूप बनती जा रही हैं।

एक बार पिंडारक तीर्थमें विश्राम कर रहे साधुओंका मजाक उड़ानेकी युक्ति यादव-कुमारोंने की। उन्होंने सांबको नारीका वेश पहिनाया और ऋषियोंके पास ले जाकर उनसे पूछा—महाराज, इस गर्भिणी नारीको पुत्र होगा या पुत्री ?

ऋषि जान गए कि सच्ची बात क्या है। भगवानकी प्रेरणासे उन्होंने कहा—सांबके गर्भसे मूसल उत्पन्न होगा जो तुम्हारे समग्र यदुवंशका नाश करेगा।

अब यादवकुमार भयभीत हो गए। उन्होंने उस मूसलका रजकण बनाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया और जो एक टुकड़ा बचा था, वह भी फेंक दिया। उन रजकणोंसे उत्पन्न लकड़ियोंसे यादव आपसमें लड़कर मर गए और उस टुकड़ेसे पारधिने तीर बनाया जो कृष्णके लिए प्राणघातक सिद्ध हुआ।

भगवानने सोचा था कि ये यादवकुमार भविष्यमें जनताको सतायेंगे, अतः इस प्रकार उनका नाश कर दिया। वह मूसल काल ही तो था।

ऋषियों, पवित्र संतोंका अपमान करनेवालेका अहित ही होता है।

बुद्धि विकृत होते ही काल आ धमकता है।

जीवको उत्पत्ति और स्थितिमें आनन्द आता है, लयमें नहीं। भगवानको लयमें भी आनन्द आता है क्योंकि वे स्वयं आनन्दरूप हैं।

एक बार नारदजी वसुदेवके यहाँ पधारे तो उन्होंने नारदजीकी विधिवत् पूजा करके कहा—कृपया मुझे वह उपदेश दीजिए कि जिससे मैं इस जन्म-मृत्युरूप भयानक संसारको अनायास ही पार कर सकूं।

नारदजीने वसुदेवको नवयोगेश्वर और निमिराजाका संवाद सुनाया।

एक बार विदेहराज निमिकी राजसभामें नवयोगेश्वर पधारे। तो राजाने उनसे पूछा—परमकल्याणका स्वरूप कैसा है ? उसका साधन क्या है ? क्या आप मुझे भागवतधर्मका उपदेश करेंगे ?

आधे क्षणका सत्सङ्ग भी मनुष्यके लिए परम निधि बन सकता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

भगवानमें आसक्त संतोंका क्षणभरका सङ्ग भी स्वर्ग और मोक्षको तुलनामें अधिक महत्त्वपूर्ण है। तो अन्य पदार्थोंकी तो चर्चा ही क्या ?

योगेश्वर कहने लगे—राजन्, ध्यानसे सुनो।

श्रीकृष्ण अंशी हैं और जीव अंश। कोई पूछेगा कि वे दोनों कब और कैसे विभक्त हुए। अज्ञानका आरम्भ कब हुआ, यह कैसे कहा जा सकता है ? अज्ञानका तो नाश करना है।

जीव-अंश ईश्वर-अंशीमें मिलनेपर ही सुख और शांति पा सकता है। वह विरह ही महादुःखका कारण है। जबसे जीव परमात्मासे विभक्त हुआ है, दुःखी हो रहा है। निर्भय होना हो तो परमात्माकी शरणमें जाओ।

जीव ईश्वरसे किंचित् भी विभक्त होगा, दुःखी ही होगा। जीव मात्र रोगी है, क्योंकि वह वियोगी है। इस वियोगदुःखको मिटानेका उपाय क्या है ? निश्चय करो कि तुम्हें ईश्वरसे मिलना है। यह शरीर तो मलिन है। इस शरीरके द्वारा ब्रह्मसम्बन्ध नहीं हो पाएगा। शरीर तो दुर्गन्धयुक्त है अतः देव इससे दूर भागते हैं। मनको ईश्वरसे जोड़ लो।

काल सभीके सिरपर मँडराता रहता है। यदि उससे बचना है तो श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ। सभी कार्य प्रभुकी आज्ञा मानकर, प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए और प्रभुकी ओर उन्मुख रहकर ही करो। सभी व्यवहार प्रभुसे आंतरिक सन्धान रखकर ही करो। वैसा करनेपर सभी क्रियाएँ भक्ति बन जायेंगी।

कर्कश वाणीका प्रयोग कभी न करना।

सभीमें प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करनेसे वह व्यवहार भक्तिमय बन जायेगा। जड़-चेतन एक है, सभी जड़-चेतन ईश्वरमय है, ऐसा माननेसे पापोंसे बचा जायेगा और मनको शांति भी मिलेगी।

सभी सन्त भी जीवन निभानेके हेतु कोई-न-कोई कामकाज तो करते ही थे। सेना नाईने सोचा कि वह लोगोंके सिरसे तो मैल (बाल) उतारता है किंतु अपने ही मनका मैल दूर नहीं करता है। वह सोचमें डूब गया। धीरे-धीरे उसका जीवन ही पलट गया और वह सन्त बन गया।

कारोबार करते समय प्रभुको हमेशा याद करते रहो। सांसारिक व्यवहार और भक्तिको एक कर दो।

ज्ञान प्राप्त करनेके लिए सत्सङ्ग भी आवश्यक है सो प्रतिदिन सत्सङ्ग भी करना चाहिए। सत्सङ्गसे मनकी अशुद्धि दूर हो जाती है। जीव जन्मके समय तो शुद्ध होता है किंतु सङ्गका रङ्ग उस पर चढ़ता जाता है। सो हमेशा श्रेष्ठ सन्तोंके सङ्गमें रहो।

संत वह है, जो हर कहीं सौंदर्य देखता तो है किंतु उसमें मनको रमने नहीं देता। संत हमेशा प्रभु ही का स्मरण-चिंतन करता है। त्रैलोक्यका राज्य मिलनेपर भी जो भगवानको न भूले, वही व्यक्ति सच्चा संत है। संत वह है, जो प्रेमडोरसे हृदयके साथ परमात्माको बाँध रखता है। ऐसे संतोंका ही सङ्ग करो।

जब तक सांसारिक विषय प्रिय लगते हों, तब तक तुम वैष्णव नहीं बन सकते हो और मुक्तिके लिये पात्र भी नहीं।

सुन्दर विषयोंका उपभोग करनेकी शक्ति और सुविधा होनेपर भी मन उनमें न जाने दे, वही सच्चा वैष्णव है।

दो मार्ग हैं—त्यागका और समर्पणका। जो त्याग न कर सके, वह समर्पण करे। सभी-के साथ प्रेम करो। सब कुछ कृष्णार्पण करनेका भाव करो अथवा न तो मैं किसीका हूँ और न कोई मेरा है, ऐसा मानकर सर्वस्वका त्याग करके प्रभुसे प्रेम करो।

शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियाँ बुद्धि तथा स्वभावसे किये जानेवाले सभी कर्मोंको नारायण-को समर्पित करना ही सीधा सरल भागवत धर्म है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽत्मना वा नुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायाणायेति समर्पयेत्तत्॥ भा. ११-२-३६

इस प्रकार प्रतिक्षण प्रत्येक वृत्ति द्वारा भगवानके चरणकमलोंका भजन करनेवाला व्यक्ति, प्रभुकी प्रीति, प्रेममयी भक्ति तथा संसारके प्रति वैराग्य और भागवत-स्वरूपका अनुभव—ये सब एक साथ प्राप्त करता है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तम॥

आत्मस्वरूप भगवान समस्त प्राणियोंमें आत्मरूप—नियंतारूपसे स्थित हैं। जो व्यक्ति कहीं भी अधिकता या न्यूनता न देखकर सर्वत्र भागवत-सत्ताको ही देखता है, समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरूप भगवानके कारण स्थिर हैं, भगवत-स्वरूप हैं, ऐसा अनुभव करता है, उसे भगवानका परमप्रेमी भक्त मानो।

जो मनसे एकमात्र भगवानमें निवास करता है, वह उत्तम भागवत भक्त है।

तीसरे योगेश्वर अन्तरिक्षने मायाके लक्षण बताये तो योगेश्वर प्रबुद्धने मायाको पार करनेके उपाय बताये।

जो मायाको पार करना चाहता है, उसे स्वतन्त्र रहनेके बदले किसी सच्चे संतको गुरु बनाना चाहिये और उसे सद्‌गुरुकी आज्ञामें रहना चाहिये। विलासी और पाखंडी गुरु, शिष्यका कल्याण करनेके बदले अहित ही करेगा। सो पहले तो ब्रह्मनिष्ठ गुरुको ढूंढ़ना चाहिये।

जिसे मात्र ब्रह्म शब्दके प्रति ही लगाव है किंतु स्वयं ब्रह्मनिष्ठ है, वह गुरुपदके लिये अपात्र हैं। संत ऐसा ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये कि जिसकी स्मृति मात्र भी शिष्यको पापकर्मकी और बढ़नेसे रोक दे।

जवानी अन्धी और उच्छृंखल होती है। सो इस अवस्थामें संतोंकी, सद्गुरुकी आज्ञामें रहना चाहिये।

जो मायासे छूटना चाहता है, वह ब्रह्मचर्यका पालन करे—आँखोंसे भी और मनसे भी। रोज एकान्तमें एक ही बैठकमें तीन घंटे तक प्रभुनामका जप करो।

वाणींसंयम भी आवश्यक है। प्रतिदिन कमसे-कम तीन घंटे तक मौन रखो। मौन, मनको एकाग्र करके चित्तकी शक्तिको बढ़ाता है।

वाणी और पानीका दुरुपयोग करनेवाला ईश्वरका अपराधी है।

मन-वचन-कर्मसे किसीको भी न सताओ।

स्वधर्ममें, भगवतधर्ममें निष्ठा रखो किंतु अन्य धर्मोंके प्रति कुभाव नहीं, आदर रखो।

रोज प्रार्थना करो। जीव और ईश्वरका पहला सम्बन्ध वाग्दानसे होता है। रोज प्रार्थना करो, नाथ, मैं आपका ही हूँ, मेरे अपराधोंको क्षमा करना।

विवेकपूर्वक विचार करनेसे मायाका मोह कम होता है, अन्यथा मनुय अपना बहुत-सा समय और धन, व्यसन और फैशनमें गवांता रहता है।

मायाको पार करनेके यों तो कई साधन हैं किंतु भक्ति अनायास और सहजप्राप्त साधन है।

मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरन्ति ते।

जो मेरी शरणमें आता है, वह मायासागर तर जाता है।

कलियुगमें श्रीकृष्णका नाम जपनेसे सद्गति मिलती है। सेवा केवल क्रियात्मक नहीं, भावात्मक भी होनी चाहिये।

कलियुगका मनुष्य विलासी है। शरीरकी उत्पत्ति ही काम द्वारा होती है। सो इस युगमें योग और ज्ञानमार्गसे ईश्वरको प्राप्त करनेकी अपेक्षा हरिकीर्त्तनसे उनको पाना सरल है।

वैसे तो सिद्धान्त और यमनियम जानते तो सभी हैं किंतु पुण्यशाली व्यक्ति ही उन्हें अपने जीवनमें उतार सकता है।

नामजप सरल है क्योंकि जीभ तुम्हारे अधीन है। भगवानका नाम सर्वसुलभ होनेपर भी अधिकांश जीव नरकगामी होते हैं, वह बड़े आश्चर्यकी बात है।

नारायणेति मंत्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम्॥

महाभारतके वनपर्वमें यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद आता है। यक्ष, युधिष्ठिरसे पूछते हैं—इस जगतका सबसे बड़ा आश्चर्य कौन-सा है?

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममंदिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

मनुष्य प्रतिदिन हजारों जीवोंको यमसदन जाते हुए देखता है, फिर भी वह स्वयं तो इस प्रकार व्यवहार करता है कि वह अमर हो। मनुष्य यहां हमेशाके लिए रहना चाहते हैं। इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा ?

दूसरोंके मरते देखकर भी स्वयंको अमर मानकर भोग-विलासमें डूबा रहना सबसे बड़ा आश्चर्य है।

पाँचवें योगेश्वरने नारायणका स्वरूप दरसाया।

निमि राजाने कहा—अब कुछ कर्मयोगके विषयमें भी बताइये। इन कर्म, अकर्म और विकर्ममें मेरा मन उलझ-सा गया है।

छठे योगेश्वर आविर्होत्रने कहा—सत्य है तेरी बात। बहुतसे विद्वान भी इसमें उलझ जाते हैं।

किं कर्म किमकर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

वेद कर्मकी आज्ञा देते हैं और स्वर्गादिका लालच भी देते हैं किंतु उनका उद्देश्य तो कर्म छुड़ानेका ही है।

कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मका दर्शन करे अर्थात् अनासक्त भावसे कर्म करे वही श्रेष्ठ है।

कर्म करो किंतु अनासक्त भावसे—मा फलेषु कदाचन। सभी कर्म ईश्वरार्पण करो।

सातवें योगेश्वर द्रुमिने प्रभुकी लीलाओंका वर्णन किया। उन्होंने सभी अवतारोंकी कथा सुनाई।

आठवें योगेश्वर चमसने भक्तिहीन पुरुषकी अधोगतिका वर्णन किया।

करभारजन नामके योगेश्वरने परमेश्वरकी पूजाविधि बताई।

अन्तमें नारदजीने वसुदेवजीसे कहा—अब अधिक समय नहीं है। श्रीकृष्णको अपना पुत्र न मानो। वह तो साक्षात् परमात्मा हैं।

उधर देवगण भी प्रभुसे स्वधाम लौटनेके लिए प्रार्थना करने लगे। प्रभुने भी पृथ्वीलोकसे जानेका निश्चय किया।

द्वारिकामें अपशकुन होने लगे। वृद्ध यादवोंने भगवानके पास आकर कहा—प्रभु, यहाँ रहना इष्ट नहीं है क्योंकि ऋषियोंने शाप दिया है। प्रभासक्षेत्रमें बसना ठीक रहेगा और सब वहाँ जानेकी तैयारी करने लगे।

उद्धवजीने सुना तो वे समझ गये कि भगवान यादवोंका संहार करके इस लोकका त्याग करनेकी तैयारी कर रहे हैं। वे प्रभुके पास आए और कहने लगे—मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आपके विरहमें मैं कैसे जी सकूंगा ? जहां आप जायेंगे, मैं भी वहीं चल दूंगा।

भगवान—अरे उद्धवजी, जब तुम मेरे साथ आये ही नहीं थे तो फिर साथ चलनेका प्रश्न ही कैसा ? यह संसार तो सपनोंका खेल है, माया है, भ्रम है, असत्य है। सत्य तो केवल आत्मा ही है।

भगवानने उद्धवजीको त्याग और संन्यासका उपदेश दिया।

उद्धवजी—त्याग और संन्यासका मार्ग बड़ा ही कठिन है। कोई सरल मार्ग दिखाइए। मुझे कृपा करके ज्ञान दीजिए।

भगवान—मैंने तुम्हें मनुष्य-जन्म देकर क्या कम कृपा की है? अब तो तुम्हें स्वयं ही अपने पर कृपा करनी होगी। स्वयं अपना गुरु बनकर अपना उद्धार करना।

आत्मा हि गुरुरात्मैव।

आत्मा ही आत्माका गुरु है।

ईश्वरने तो कृपा की ही है। अब तो स्वयं जीवको ही अपने पर कृपा करनी है। जीवनका लक्ष्य निर्धारित करके लगनसे उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। अधिकतर जीवोंको अपने लक्ष्यका ज्ञान ही नहीं है। जीवनका लक्ष्य है प्रभुकी प्राप्ति।

कृष्णकथाके श्रवणसे पाप जल जाते हैं और चित्त शुद्ध होता है। नियमित भजन करोगे तो ईश्वर अवश्य कृपा करेंगे।

उद्धवजी, मैंने तो तुमपर कृपा की ही है। अब तुम स्वयं अपने पर कृपा करो।

अजामिल जैसे वेश्यागामी और पापी पर भी प्रभुने कृपा की थी। फिर तुमपर क्यों न कृपा करेंगे?

सङ्कल्प करो कि इसी जन्ममें भगवानके दर्शन करने हैं।

अब भयङ्कर कलिकाल आएगा। विधिपूर्वक कर्म नहीं होंगे। मनुष्यका जन्म तो मिलेगा किंतु सङ्गका दोष लगेगा।

उद्धवजी! तुम ही तुम्हारे गुरु हो। अपने लिए भावपूर्वक प्रयत्न करो। जब तक अंदरसे प्ररणा नहीं होगी, उद्धार भी नहीं होगा। स्वयं अपना गुरु बनकर अपने उद्धारका प्रयत्न करो। मेरे सिवाय जो कुछ भी दिखाई देता है, वह मिथ्या है।

उद्धव, मैं तुम्हारा धन नहीं, मन माँगता हूँ। सभीमें एक ईश्वरका दर्शन करना। अपना मन मुझे दे दो।

उद्धव भगवानसे कहते हैं—मुझे आपके सिवाय आत्मतत्त्वका ज्ञान और कौन देगा?

भगवान—मैंने कई प्रकारोंके शरीरोंका निर्माण किया है किंतु मनुष्य-शरीर मुझे अधिक प्रिय है। इस मनुष्य-शरीरमें जीव तीक्ष्ण और एकाग्र बुद्धियुक्त होकर ईश्वरका साक्षात् अनुभव कर सकता है। इस सम्बन्धमें अवधूत दत्तात्रेय और यदुराजाका संवाद सुनने योग्य है।

उद्धवजी, यदुराजाने श्रीदत्तात्रेयसे ऐसे ही प्रश्न पूछे थे। यदुराजाने देखा कि त्रिकालदर्शी अवधूत ब्राह्मण निर्भयतासे विचर रहे हैं। सो उन्होंने पूछा—दत्तात्रेयजी, आपकी भाँति मेरा शरीर पुष्ट नहीं है। जिस काम और लोभकी अग्निमें संसारके अधिकांश लोग जल रहे हैं, उससे आप बिल्कुल प्रभावित नहीं होते हैं। आप अपने ही स्वरूपमें स्थित रहते हैं। आप अपनी आत्मामें अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव किस प्रकार कर पाते हैं?

दत्तात्रेयजी—राजन्, मैंने जान लिया है कि सांसारिक जड़ वस्तुओंमें आनन्द नहीं है। जड़ वस्तुओंमें-से मैं मनको हटाकर सभीके द्रष्टा आत्मस्वरूपमें दृष्टिको स्थिर करके द्रष्टाका

दर्शन करता हूँ। दृश्यमें-से दृष्टिको हटाकर जो द्रष्टामें स्थिर करता है, उसीको आनन्द मिलता है।

राजन्, आनन्द बाहरके विषयोंमें नहीं, भीतर है। मैंने अपनत्वको भुलाकर दृष्टिको अन्तर्मुख कर लिया है। मैं अपने ही स्वरूपमें स्थित हूँ। प्रारब्ध जो भी देता है, उसको आनंदसे स्वीकार करता हूँ। तुम भी अपने मनको स्वयं सुधार लो।

दीक्षा-गुरु एक होता है किंतु शिक्षा-गुरु अनेक हो सकते हैं। मैंने एक नहीं, चौबीस गुरुओंसे ज्ञान पाया है। मेरे गुरुके नामादि इस प्रकार हैं।

(१) धरती मेरा पहला गुरु है। मैं प्रभातमें उसे वन्दन करता हूँ। हाथ क्रियात्मक शक्तिके प्रतीक हैं। निश्चय करो कि परमात्माको पसन्द आयें, वैसे ही काम करूँगा। माताकी भाँति मेरी रक्षा करना।

धरती बहुत कुछ सहकर भी सबको सुख ही देती है। मैंने धरतीसे सबके प्रति सद्भाव और सहनशक्ति सीखी हैं।

(२) वायुसे मैंने सन्तोष और निःसङ्गता सीखी है।

(३) आकाशने मुझे सिखाया है कि आत्मा आकाशकी भाँति अनादि और अविनाशी है। ईश्वर उसीकी भाँति सर्वव्यापी हैं।

(४) जलसे मैंने शीतलता और मधुरताका उपदेश पाया है। जलकी भाँति साधकको भी शुद्ध रहना चाहिए। मधुरभाषी और शीतल स्वभावयुक्त होना चाहिए।

(५) अग्निसे मैंने पवित्रता सीखी है। हृदयमें यदि विवेकरूपी अग्नि होगी तो पाप नहीं आएगा। विवेक ही अग्नि है। किसी भी व्यक्तिके दुर्व्यवहारको मनमें न रखना। दूसरोंके पापोंके बारेमें सोचना भी पाप ही है। दूसरोंके पापोंकी बात मनमें-से निकाल दो, विवेकाग्निसे उन्हें जला दो।

(६) चन्द्रने मुझे क्षमता सिखाई है। वृद्धि और ह्रास तो शरीरके होते हैं, आत्माके नहीं। सम्पत्तिमें अपना भान न भुलाना और विपत्तिमें दुःखी मत होना।

(७) सूर्यकी भाँति परोपकारी होना है किंतु अभिमानी नहीं। एक ही सूर्यके प्रतिबिंब कई जल-पात्रोंमें कई दिखाई देते हैं। आत्मा भी एक है किंतु विविध देहादि उपाधियोंके कारण अनेक स्वरूपोंवाला दीखता है। वास्तवमें आत्मा उपाधिरहित है।

(८) कबूतरके प्रसङ्गसे मैंने सीखा है कि किसी भी वस्तु या व्यक्तिके प्रति अतिशय आसक्ति नहीं होनी चाहिए। वह पत्नी और पुत्रकी आसक्तिके कारण मर गया। किसीकी भी मृत्युपर विलाप न करो। रोनेवाला स्वयं भी एक दिन जाने वाला ही है। तो फिर दूसरोंके लिए क्यों रोते हो, अपने लिए ही रोओ।

(९) अजगरकी भाँति प्रारब्धकर्मानुसार जो कुछ मिले, उससे सन्तुष्ट रहो।

(१०) समुद्र, वर्षाऋतुमें बहुत-सा जल मिलनेपर भी छलकता नहीं है और ग्रीष्मऋतुमें जल न मिलनेपर सूखा नहीं हो जाता। सुख-दुःखमें हमें भी समुद्रकी भाँति ही रहना चाहिए।

(११) पतङ्गा भी गुरु है। वह अग्निसे मोहित होकर उसके पास जाता है और जल-कर मर जाता है। मनुष्य भी मायासे मोहित होकर उसमें फँसकर अपना सर्वनाश मोल लेता है।

पतङ्गकी भाँति सौन्दर्यके पीछे पागल होनेसे अपना अहित ही होता है। जगतके विषय बाहरसे सुन्दर हैं, भीतरसे नहीं, सुन्दरता तो कल्पना मात्र है।

एकमात्र श्रीकृष्ण ही सुन्दर हैं। उन्हींसे प्रेम करो।

(१२) भ्रमरकी भाँति सार ग्रहण करो किंतु आसक्त न बनो। भ्रमरने कमलमें आसक्त होकर अपने प्राणोंसे हाथ धो लिए। वह लकड़ी तो छेद सकता है किंतु कमलकी कोमल पंखुड़ीको नहीं क्योंकि उसे कमलके प्रति आसक्ति है।

यह संसार भी कमल जैसा है जो अपनी विषयगंधमें जीवभ्रमरको फँसा देता है। भ्रमर कमलकी पखुड़ियोंके खुलनेकी सोचता है किंतु हाथीने उसके सारे सपने उजाड़ दिए। मनुष्य भी सांसारिक विषयोंमें फँसकर अपनेको लुटा देता है। सो विषय-सुखमें मत फँसो।

हाथी-रूपी काल कुचलकर नष्ट कर दे, उससे पहिले ही सर्वस्वका मोह छोड़कर प्रभुसे मनको जोड़ लेनेवाला जीव कालको हरा सकता है।

जिस प्रकार भ्रमरमें लकड़ीको कुरेदनेकी शक्ति है, उसी प्रकार मनुष्य भी बड़ा शक्तिशाली है। मनुष्य यदि चाहे, तो नारायण बन सकता है किंतु उसे पहले आसक्तिका त्याग करना होगा।

मधुकृतके दो अर्थ हैं भ्रमर और मधुमक्षिका। भ्रमरसे जो सीखा, वह मैंने ऊपर बता दिया। मधुमक्षिकासे मैंने सीखा कि किसी भी वस्तुका अतिशय संग्रह न किया जाय। मधुमक्षिका मधुका संग्रह करती है, तभी तो लोग उसे मारकर मधु छीन लेते हैं।

(१३) हाथी भी मेरा गुरु है। स्पर्शसुखकी लालसाके कारण हाथी जान गवाँता है। लोग एक बड़ा-सा गड्ढा खोदकर ऊपर घास-पात रखकर नकली हथिनी रख देते हैं। हाथी उसे असली हथिनी मानकर स्पर्शसुखकी इच्छासे वहाँ जाता है और तुरन्त उस गड्ढेमें फँस जाता है।

साधक पुरुषको चाहिए कि वह नारीका संग न करे और स्त्री-साधिकाको चाहिए कि वह पुरुषका संग न करे, मूर्ति तक स्पर्श न किया जाय।

पदापि युवतीभिक्षुर्मास्पृशेद् दारवीमपि।

(१४) मधुमक्षी द्वारा एकत्रित मधु शिकारी छीन ले जाता है। योगी भी बिना उद्यम किये ही भोग पा सकता है। धनका संग्रह करनेके बदले दान करो।

(१५) जिस प्रकार स्पर्शसुखकी लालसासे हाथीका नाश होता है उसी प्रकार संगीत-श्रवणकी लालसासे हिरनका नाश होता है। सो योगीको गीत, नृत्य, संगीत आदि विषयोंका त्याग करना चाहिये।

(१६) रससुखकी, जिह्वा-स्वादकी लालसा मछलीको मारती है। काँटेसे लगाया गया मांस मछली खाने जाती है और मर जाती है। मनुष्यको भी यह जिह्वा बड़ी परेशान करती है। सभी इन्द्रियोंको जीतकर भी यदि जिह्वाको जीता नहीं होगा तो नाश ही होगा। जो रसनाको जीतता है, वह सर्वस्वको जीत लेता है।

जितं सर्वं जिते रसे।

दत्तात्रेयजीने इस प्रकार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध, इन पाँचों विषयोंकी चर्चा की। एक ही विषयका सेवन करने पर भी हाथी, भ्रमर आदिका नाश होता है तो सभी विषयोंका सेवन करनेवाले मनुष्यकी तो कैसी दुर्गति होती होगी?

मृत्युके पश्चात् सुनाये जानेवाला गरुड पुराण मनुष्यको मृत्युके पूर्व ही सुनना चाहिए—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हता पंचभिरेवपञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेवपञ्च ॥

पतङ्ग, हाथी, हिरन, भ्रमर और मछली, मात्र एक विषयकी आसक्तिके कारण मर जाते हैं तो पाँचों विषयोंका उपभोग करनेवाला प्रमादी मनुष्य क्यों न मरे ?

(१७) राजन्, मैंने एक वेश्याको भी गुरु माना है।

पिंगला नामकी एक वेश्या धनवान ग्राहककी प्रतीक्षामें सारी रात जागा करती थी। एक बार उसने सोचा कि कामी पुरुषके लिए जागनेकी अपेक्षा प्रभुके लिए जागकर उनको ही क्यों न पा लूं और उसने विषयोंका त्याग किया। उसने कामी पुरुषकी प्रतीक्षामें जागते रहना छोड़ दिया। अब मैं केवल प्रभुको ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगी।

कालसर्पके ग्रास जीवात्माकी रक्षा प्रभुके सिवाय और कौन कर सकता है ?

ग्रस्तं कालाहिनाऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ।

इस जगतमें आशा परम दुःख है और निराशा परम सुख। सो सुखकी आशा न करो।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं ।

आशाकी जंजीर मनुष्यको किस हदतक जकड़ रखती है, उसका बर्णन स्वामी शंकराचार्यके शब्दोंमें सुनिये—

अङ्गं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहित्वा दण्डं तदपि न मुंचत्याशापिंडम् ॥

शरीर गला जा रहा है, केश श्वेत हो गये हैं, दाँत जा चुके हैं, दुर्बलताके कारण लकड़ी-के सहारे चलना पड़ता है, फिर भी बूढ़ा आशाका पिंड छोड़ता ही नहीं है !

ऐसे बूढ़ेकी भाँति आचरण करनेके बदले भगवानका भजन करो।

भज गोविंदं, भज गोविंदं, गोविंदं भज मूढमते ॥

कामकी भोगैषणा सबसे बड़ा दुःख है।

(१८) कुररी पक्षीकी भाँति संग्रह करनेके बदले त्याग करते रहो।

(१९) बालकसे भोलापन, निर्दोषिता ग्रहण करो।

(२०) एक गरीब कुमारीकी मँगनीके लिए कुछ मेहमान आये। घरमें चावल तैयार न थे तो वह मूसल लेकर बैठ गई किंतु उसने सभी चूड़ियाँ उतार दीं क्योंकि यदि चूड़ियाँ रहने देती तो मूसलके शब्द करते समय खनक होती रहती और मेहमान जान जाते कि इस घरमें तो चावल तक नहीं है।

इसी प्रकार बस्तीमें रहनेसे कलह-क्लेश होनेकी सम्भावना है सो साधुको एकांतवास करना चाहिए।

(२१) बाण बनानेवाला लुहार भी मेरा गुरु है। वह अपने काममें इस प्रकार मग्न रहता था कि रास्तेपर-से धूमधामसे जानेवाली राजाकी सवारीकी ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता था।

लौकिक कार्यमें तन्मयताके बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। तो फिर पारलौकिक कार्यमें, ईश्वरकी आराधनामें तो तन्मयताके बिना सिद्धि मिल ही कैसे पायेगी ? ध्याता, ध्यान और ध्येय जब एकरूप हो जाते हैं, तभी जीव कृतार्थ हो सकता है।

(२२) सर्पकी भाँति मुनिको भी अकेले ही विचरण करना चाहिये।

(२३) मकड़ी अपने मुँहसे लार टपकाती है, उससे खेलती भी है और उसे निगल भी जाती है। ईश्वर भी अपनी मायासे सृष्टिका सर्जन करते हैं और अन्तमें संहार भी।

(२४) कीटक भी मेरा गुरु है। भँवरी उसको पकड़कर अपने बिलमें कैद कर देती है। कीटक भँवरीके भयसे उसीका चिंतन करता रहता है और अन्तमें स्वयं भँवरी बन जाता है।

मनुष्य भी ईश्वरका चिंतन करते-करते ईश्वर बन सकता है। विषयोंका चिंतन करनेसे उसका मन विषयी हो जाता है और प्रभुका चिंतन करनेसे प्रभुमय।

यदुराजाने गुरु दत्तात्रेयको साष्टाङ्ग दण्डवत-प्रणाम किया।

आगे चलकर श्रीकृष्णने उद्धवजीको बंधन और मोक्षका स्वरूप समझाया।

बंधन और मोक्ष शरीरके नहीं, मनके धर्म हैं।

हे उद्धव, यह जीव मेरा ही अंश है, फिर भी अविद्याके कारण बन्धनोंमें फँसता है। नाम ही उसे मुक्त कर सकता है। ईश्वर बन्धन और मोक्षसे परे हैं।

जीव कर्मोंसे बँधा हुआ है, ईश्वर नित्यमुक्त हैं। इस संसारमें आत्मज्ञानवाला मुक्त है और अन्य सब बँधे हुए हैं।

जिस व्यक्तिके प्राण, इन्द्रियाँ, मन, वृत्तियाँ तथा बुद्धि संकल्परहित हैं, वह देहधारी होते हुए भी देह-गुणोंसे मुक्त है।

साधुपुरुषों और भक्तिके लक्षणोंका भी वर्णन किया।

उन्होंने सत्सङ्गकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलिराजा, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ आदि सत्सङ्गके द्वारा ही मुझे प्राप्त कर सके थे। वे वेदोंसे भी अज्ञात थे और उन्होंने तप भी तो नहीं किया था। फिर भी सत्सङ्ग-प्रेरित भक्तिके कारण मुझे पा सके।

सत्सङ्गसे पशु-पक्षी तकका जीवन भी सुधरता है। कामीके साथ रहकर ध्यानादि नहीं हो पायेगा।

उद्धव, मनुष्योंके संगमें बसकर मनुष्य बन पाना सरल है किंतु ब्रह्मनिष्ठ हो पाना बड़ा कठिन है। सो हमेशा सत्संगमें रहनेका ही प्रयत्न करना।

फिर भगवानने संसारवृक्षका वर्णन किया। संसारवृक्षके बीज हैं पाप और पुण्य, वासनाएँ मूल हैं, सत्त्व, रज और तमोगुण तने हैं, इन्द्रियाँ और मन डालियाँ हैं, विषय रस हैं, सुख और दुःख फल हैं।

विषयोंमें फँसा रहनेवाला भोगी, दुःखी होता है। विवेकी परमहंसको योगी कहते हैं, जो सुख भोगते हैं।

उद्धवजीने पूछा—मनुष्य जानता है कि विषय दुःखदायी हैं फिर उन्हें भोगनेकी इच्छा, वह क्यों करता है ? विषय मनकी ओर जाते हैं या मन विषयकी ओर ?

भगवान—यह रजोगुणी मन मनुष्यको विषयोंमें फँसाता है। पहले मन विषयोंकी ओर जाता है और फिर मन उन विषयोंका आकार धारण करके विषयोंको अपनेमें बसा लेता है। मन विषयाकार हो जाता है। मन स्वयं विषययुक्त बनकर जीवको सताता है।

विषयोंका चिंतन प्रभुभक्तिमें बाधक है। ईश्वरस्मरण चाहे न हो पाये, सांसारिक विषयोंका चिंतन तो कभी न करो।

मनको विषयोंकी ओर जाने न दो, उसे वशमें करके मुझीमें एकाग्र कर दो।

ईश्वरमें मनका लय करना ही महान योग है।

उद्धव, वैसे तो कर्म, यश, सत्य, दम, शम, ऐश्वर्य, यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम, यम आदि कल्याणके कई साधन हैं किंतु सर्वश्रेष्ठ साधन तो मेरी भक्ति ही है। भक्ति सभी पापोंको जलाकर भस्म कर देती है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ भा० ११-१४-२०

मुझे प्राप्त करनेके लिए अनन्य भक्तिमें जितनी सामर्थ्य है, उतनी सामर्थ्य योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग आदिमें नहीं है।

भक्तियोगकी महत्ताके बाद प्रभुने ध्यानयोगकी विधि बताई।

ध्यानके दो प्रकार हैं। एक ही अङ्गके चिंतनको ध्यान कहते हैं और सर्वाङ्गोंके चिंतनको धारणा। ध्यान करते-करते वह ध्येयसे एकरूप हो जाता है। रोज ईश्वरका ध्यान करोगे तो घर, शरीर, संसारका विस्मरण हो सकेगा। जो प्रभुसे तन्मय हो गया है, उसे देहभान नहीं रहता।

उद्धव, व्यर्थ भाषण भी पाप ही है सो सोच-समझके ही बोलना चाहिये।

भक्तिसे सिद्धि प्राप्त होती है किंतु वे मेरी प्राप्तिमें बाधक हैं सो उनसे दूर ही रहना। सिद्धि, प्रसिद्धि लाती है और प्रसिद्धि प्रमाद। परिणामतः मेरे भजनमें विक्षेप होने लगता है। सो सिद्धियोंसे दूर ही रहना।

आगे भगवानने अपनी विभूतियोंका वर्णन किया। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रमके धर्म भी समझाये।

भक्ति, ज्ञान, यमनियमादि साधनोंका भी उन्होंने वर्णन किया।

जगतमें किसी भी जीवको हीन मत समझना।

फिर उद्धवजीने कुछ शब्दोंका अर्थ और व्याख्या पूछी, जो भगवानने इस प्रकार बताई।

मुझीमें बुद्धिकी स्थापना करना शम है। इन्द्रियोंको वशमें करना दम है। किसी भी प्राणीका द्रोह न करना दान है।

जगतमें किसी भी जीवके प्रति कुभाव न रखना और सद्भाव रखना सबसे बड़ा दान है। भूतद्रोहका त्याग दान है। चेतन और जड़, किसीसे भी द्रोह न करो, सबको समान भावसे देखो।

सभी कामनाओंका त्याग तप है। कामसुखका विचार तक न रखनेवाला सबसे बड़ा तपस्वी है। वासना और स्वभावको जीतना शौर्य है।

ब्रह्मका ही विचार करना श्रेष्ठ सत्य है और धर्म ही सर्वोत्तम धन है।

धर्म इष्टं धनं नृणां।

मेरी भक्ति प्राप्त करना ही सर्वोत्तम लाभ है।

बन्धन और मोक्षके तत्त्वका ज्ञाता ही पंडित है और ग्रन्थोंमें लिखे हुए सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारकर भक्तिमय जीवन जीनेवाला उत्तम ज्ञानी है।

देहको ही आत्मा मानकर देहमें अहम् बुद्धि रखनेवाला महामूर्ख है।

सद्गुणोंसे सम्पन्न धनवान है और असन्तुष्ट व्यक्ति दरिद्र।

मायाके अधीन होकर सांसारिक विषयोंमें फँसकर इन्द्रियोंका दास बननेवाला जीव है।

जो इन्द्रियोंको अपने अधीन करके सांसारिक विषयोंमें अनासक्त रहता है, वह ईश्वर है।

न केवल बाहरके किंतु भीतरके शत्रुओंका भी नाश करनेवाला, जितेन्द्रिय ही सच्चा वीर है।

जो निंदासे लेश मात्र भी प्रभावित नहीं होता है, वही सच्चा भक्त है।

उद्धवजी! मनुष्यके कल्याणके हेतु मैंने तीन उपाय बताये हैं—

१. ज्ञानयोग

२. निष्काम कर्मयोग

३. भक्तियोग

मनुष्य-शरीर, ज्ञान और भक्ति प्राप्त करनेका साधन है, अतः श्रेष्ठ है। यह मनुष्य-शरीर उत्तम नौकाके समान है, सभी फलोंका मूल है, करोड़ों उपायोंसे भी अलभ्य है। फिर भी दैवयोगसे मिल पाया है। गुरु-रूपी माँझीके द्वारा तथा मुझ वायुसे बढ़ रहा है, फिर भी यदि इस अमूल्य देहनौकाका सदुपयोग न कर, भवसागर पार करनेका प्रयत्न न करे तो वह मनुष्य स्वयं अपना ही नाश करता है, आत्मघाती है।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥ भा० ११-२०-१७

उद्धव, यदि सत्सङ्ग न किया जा सके तो कोई बात नहीं किंतु कामी-विषयीका सङ्ग तो कभी न करना।

सत्सङ्गकी प्राप्ति ईश्वरकी कृपापर आधारित है, कामीका सङ्गत्याग मनुष्यके अपने बसकी बात है।

मन केवल प्रभुको ही दो, किसी स्त्री-पुरुष या रिश्तेदारोंको नहीं।

हे उद्धव, तुम अपना मन मुझे ही देना। मैं तुम्हारा धन नहीं, मन ही माँगता हूँ।

हे उद्धव, इस अखिल विश्वमें मैं ही व्याप्त हूँ, ऐसी भावना करना।

भक्तिके द्वारा सभीके आत्मारूप मेरे दर्शन करके मनुष्यके हृदयके अहंकारकी गाँठ छूट जाती है, सभी संशय नष्ट होते हैं और सभी कर्म भी नष्ट होते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ भा. ११-२०-३०

उद्धव, किसीकी प्रशंसासे प्रसन्न न होना और किसीकी निंदासे अप्रसन्न भी न होना। स्तुति और निंदाको एक समान मानना।

उद्धवजी कहने लगे—निराधार निंदाको कैसे सहा जाय ?

भगवान—जो निंदा सह न सके, वह कच्चा है। निंदक तो मित्र है, वह हमें दोषदर्शन कराता है। इसी कारणसे तो साधुजन हमेशा निंदकको अपने साथ ही रखते हैं। निंदाके शब्द तो आकाशमें विलीन हो जाते हैं।

निंदक मित्र समान, साधो ! निंदक मित्र समान ॥

फिर भगवानने उद्धवजीको भिक्षुगीताका उपदेश दिया।

सुख-दुःख तो मनकी कल्पना है। मनकी निद्राकी-सी स्थति यदि जागृतिमें भी हो जाय तो मुक्ति है। लोग भिक्षुकी निंदा करते हैं किंतु वह मनपर असर होने ही नहीं देता। भिक्षु कहता है—

अर्थस्य साधने सिद्धेत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम् ॥

धनार्जनमें, धनके उपभोगमें, उसे बढ़ाने और रक्षा करनेमें, उसका नाश होनेपर परिश्रम चिंता, त्रास होते हैं, फिर भी मनुष्य वैसे ही धनके पीछे भागता फिरता है। धन हर प्रकारसे, हर स्थितिमें मनुष्यको सताता है, फिर भी उसे विवेक नहीं आ पाता।

पुरुरवा-उर्वशीके दृष्टान्तके द्वारा यह भी बताया कि स्त्रीके सतत संगसे पुरुषकी दशा कैसी होती है।

दुष्टोंकी सङ्गति मनुष्यकी अधोगति करती है और सज्जनोंकी सङ्गति ऊर्ध्वगति।

सत्संग तो ईश्वर-कृपासे ही मिल पाता है। 'राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।' किंतु कुसंग न करना तो तुम्हारे बसकी बात है।

ऐलगीतामें देहकी चर्चा की गई जो हमने ऊपर देख ली है। यह शरीर मांस, हड्डी, चमड़ीवाला और दुर्गन्धयुक्त है। इसी देहमें रत व्यक्ति पशु और कीड़ेसे भी हीन है।

अन्तमें उद्धवजी भगवानसे पूछते हैं—प्रभुजी, आपने योग, ज्ञान और भक्ति मार्ग आदिका उपदेश तो दिया किंतु जो व्यक्ति अपने मनको वशमें कर सकता है, उसीको योगमार्ग सिद्ध होता है किंतु इस मनको वशमें करना टेढ़ी खीर है। वायोरिव दुष्करम्। तो हे प्रभु, जो व्यक्ति मनको जल्दी वशमें न कर सके, वह भी सिद्धि कैसे प्राप्त करे यह बतलाइये।

श्रीकृष्ण—उद्धवजी, अर्जुनने भी मुझसे यही पूछा था। मनको अभ्यास और वैराग्यसे वशमें किया जा सकता है किंतु सरल मार्ग तो है मेरी अव्यभिचारी भक्ति।

भक्तजन अनायास ही ज्ञानी, बुद्धिमान, विवेकी और चतुर हो जाता है तथा मुझे प्राप्त

भक्तिके साधन कहौं बखानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥

इस सरलतम भक्तिमार्गकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम ही है।

भक्ति स्वतन्त्र है। उसे किसी क्रियाकांड आदिका सहारा नहीं लेना पड़ता है। वह सबको अपने अधीन कर लेती है। ज्ञानी और कर्मयोगीको भी इस भक्ति-उपासनाकी आवश्यकता रहती है। उन दोनोंमें भक्तिका मिश्रण हो पाये, तभी वे मुक्तिदायी बन सकते हैं।

सो स्वतन्त्र अवलम्ब न आना।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

हे उद्धवजी,

भगतिहीन विरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

सो मनुष्य जब सब कर्मोंका त्याग करके अपनी आत्मा मुझे समर्पित कर देता है, तब उसे सर्वोत्कृष्ट बनानेकी मुझे इच्छा हो आती है। वे मुझसे तद्रूप होनेके योग्य बनकर मोक्ष पाते हैं।

औरोंकी निंदा न करना। जगतको सुधारनेका व्यर्थ प्रयत्न भी न करना। अपने आपको ही सुधारना।

समाजको तो स्वयं प्रभु भी सुधार नहीं पाये थे, तो साधारण मनुष्य क्या कर पायेगा? कृष्णके समयमें भी दुर्योधन, शिशुपाल आदि बहुत-से दुष्ट मानवोंका अस्तित्व था।

जगतको प्रसन्न कर पाना बड़ा कठिन है जब कि परमात्माको प्रसन्न कर पाना उतना कठिन नहीं है।

हे उद्धव, मैं तुम्हारा धन नहीं, मन माँगता हूँ। मन देने योग्य तो केवल मैं (परमात्मा) ही हूँ। मैं तुम्हारे मनकी बड़ी लगनसे रक्षा करूँगा। मैं सर्वव्यापी हूँ। तुम मेरी ही शरण लो।

उद्धव, मैंने तुम्हें समग्र ब्रह्मज्ञानका दान दिया है। इस ब्रह्मज्ञानके दाताको मैं अपना सर्वस्व देता हूँ।

अब तो तुम्हारा मोह, शोक आदि दूर हो गये न? उद्धवने भगवानको प्रणाम किया और कहा, अब मैं और कुछ भी सुनना नहीं चाहता। जितना सुना है उसपर मनन करना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण—उद्धव, अब तुम अलकनंदाके किनारे बदरिकाश्रममें रहकर इन्द्रियोंको संयमित करके ब्रह्मज्ञानका चिंतन करो। अपना मन मुझीमें स्थिर करना। वैसा करनेपर तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे।

बदरिकाश्रम योगभूमि है, वहाँ प्रभुकी प्राप्ति शीघ्र होती है।

उद्धवजी—प्रभु, आप भी मेरे साथ चलिये।

भगवान—उद्धव मैं इस शरीरके साथ तो अब वहाँ आ नहीं सकता। मैं चैतन्य स्वरूपसे तुम्हारे हृदयमे ही हूँ तुम्हारा साक्षी हूँ। सो चिंता न करना। तुम जब आतुरता और एकाग्रतासे मेरा स्मरण करोगे, मैं उपस्थित हो जाऊँगा। अन्यथा वैसे तो अकेले ही आना-जाना है।

जगतमें सभी जानते हैं कि अकेले ही जाना है, फिर स्त्री-पुरुष एक दूसरेमें आसक्ति रखते हैं। इस संसारके सभी सम्बन्ध मिथ्या हैं, असत्य हैं।

एक श्रीमंत नगरसेठका जवान पुत्र रोज एक महात्माकी कथा सुननेको जाता था किंतु समयसे पहले उठकर चला जाता था। तो महात्माने एक दिन उससे ऐसा करनेका कारण पूछा।

युवक—महाराज, मैं अपने माता-पिताका एकमात्र पुत्र हूं। यदि घर लौटनेमें कुछ देरी हो जाय तो वे मुझे ढूंढ़ने निकलते हैं और मेरी पत्नी भी मेरे लिए अपने प्राण बिछाती है। आप संसारियोंके सम्बन्धको मिथ्या बतलाते हैं किंतु आपको कोई अनुभव तो है नहीं।

महात्मा—यदि ऐसा ही है तो हम उनके प्रेमकी परीक्षा क्यों न कर देखें ? यह जड़ीबूटी तू खा ले। तेरा शरीर गर्म हो जायेगा। मैं उपचार करने आऊँगा, फिर वहाँ जो होता रहे वह तू देखते रहना।

उस युवकने महात्माके आदेशका पालन किया। उसका शरीर एकदम गर्म हो गया। माता-पिताने घबड़ाकर कई डाक्टरोंको और वैद्योंको बुलाया किंतु उनके उपाय कारगर न रहे। युवककी पत्नी भी कलप रही थी।

इतनेमें वह महात्मा आ पहुँचे। सभीने उनसे पुत्रका इलाज करनेकी प्रार्थना की। महाराजने चिकित्सा करते हुए कहा, किसीने जादू-टोना कर दिया है। मैं उपाय कर सकता हूँ। उन्होंने एक बर्तनमें पानी मँगवाया और उस पुत्रके मस्तकपर-से उतार कर कहा, मैंने मंत्रशक्तिसे उस जादू-टोनेको इस पानीमें उतार लिया है। अब यदि इस युवकको बचाना है तो यह पानी किसीको पीना होगा।

सभीने एक साथ पूछा—महाराज, किंतु इस पानी पीनेवालेकी क्या दशा होगी ?

महात्मा—वह शायद मर भी जाय किंतु यह युवक बच जायेगा। सो तुममें-से कोई यह पानी पी जाओ।

युवककी माताने कहा, मैं अपने लाड़लेके प्राण बचानेके लिए यह पानी पीनेको तैयार हूँ किंतु मैं पतिव्रता हूँ। मेरी मृत्युके बाद मेरे वृद्ध पतिकी सेवा कौन करेगा ?

युवकके पिताने कहा—मैं यह पानी पी तो लूं किंतु मेरी मृत्युके बाद इस बेचारी मेरी पत्नीकी क्या दशा होगी ? वह मेरे बिना जियेगी ही कैसे ?

महात्माने विनोद किया—तुम दोनों आधा-आधा पानी पी लो, दोनोंके सभी क्रियाकर्म एकसाथ हो जायेंगे।

युवककी पत्नीसे अनुरोध किया गया तो उसने कहा—मेरी वृद्धा सासने तो संसारके सभी सुख भोग लिए हैं। मैं तो अभी जवान हूँ। मैंने तो अभी संसारके सुख देखे तक नहीं हैं। मैं क्यों मरूँ ?

इस प्रकार युवकके सभी रिश्तेदारोंने पानी पीनेसे इनकार कर दिया। उल्टे वे सब महात्मासे कहने लगे—महाराज, आप ही पी जाइये। आपके पीछे रोनेवाला तो कोई है नहीं। आप हमेशा कहते हैं कि परोपकार सबसे बड़ा धर्म है सो आप स्वयं परोपकार कर दीजिये। हम आपके पीछे हर साल श्राद्ध और ब्रह्मभोजन करेंगे।

महात्माने पानी पी लिया। पुत्रको अपने रिश्तेदारोंके व्यवहार और प्रेमका अनुभव ठीकसे हो चुका। उसने उठकर महात्माके साथ ही घर छोड़ दिया। महाराज, मैंने संसारकी असारता देख ली। कोई किसीका नहीं है। सभी सम्बन्ध स्वार्थपरक ही हैं।

वास्तविक सम्बन्ध तो एक ईश्वरका ही है। महात्मा कबीर भी कहते हैं—

मन फूला फूला फिरे जगतमें कैसा नाता रे ॥
पेट पकड़ कर माता रोवे, बाँह पकड़कर भाई,
लपटझपट कर तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई…मन…
जब तक जीवे माता रोवे, बहन रोवे दस मासा,
तेरह दिन तक तिरिया रोवे, फेर किये घर बासा…मन…

हे उद्धव, मैं हमेशा तुम्हारे साथ ही हूँ। हमेशा मेरा स्मरण करते रहना भी सिद्धि ही है। सिद्धि स्मरण संसिद्धिः।

किंतु उद्धवका उद्वेग मिटता नहीं है। सो भगवानने उनको अपनी चरणपादुका दी। अब उद्धवको लगा कि भगवान उनके साथ हैं।

श्रीकृष्णको हमेशा अपने साथ रखो। परमात्माके सान्निध्यका सतत अनुभव करो।

तुकारामने कहा था—चाहे मेरा वंश न रहे, चाहे मुझे भूखों मरना पड़े किंतु प्रभु सदा मेरे साथ रहें।

उद्धव बदरिकाश्रम आये। उनको सद्गति मिल गयी और वे कृतार्थ हो गये।

फिर यादवोंके विनाशकी कथा भी सुनाई।

द्वारिकालीलाकी समाप्तिके समय पंढरपुरमें पुण्डलिक भक्त हुआ जिसे कृतार्थ करनेके लिये द्वारिकानाथ विठ्ठलनाथ बने। पुण्डलिक घरमेंसे जल्दी बाहर नहीं आया, भगवानकी कमर-में वेदना होने लगी सो वे कमर पर हाथ रखकर खड़े रहे।

भगवान कहते हैं—कभी निराश न होना। मेरी शरणमें आओ। मैं तुम्हारे लिए हमेशा खड़ा ही हूँ। वे कटिपर हाथ रखकर यही सूचित करते हैं कि उनकी शरणमें जानेवालेके लिए संसार केवल कटिभर ही गहरा है। उतने जलमें कोई डूब नहीं सकता।

अपने पापोंका प्रायश्चित्त करके मेरी शरणमें आओगे तो संसारसागरसे तर जाओगे।

श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। वे पुण्डलिकके लिये द्वारिकासे पण्ढरपुर तक गये थे। वे अब भी पण्ढरपुरमें विद्यमान हैं। विठ्ठलनाथके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है?

नेति नेति कह वेद पुकारे।
सो अधरन पर मुरली धारे ॥
शिव सनकादिक अन्त न पावै। सो सखियन सँग रास रचावै ॥
सकल लोकमें आप पुजावै। सो मोहन व्रजराज कहावै ॥
महिमा अगम-निगम जिहि गावै। सो जशोदा लिये गोद खिलावै ॥
जपतप संयम-ध्यान न आवै। सोइ नन्दके आँगन धावै ॥
शिव-सनकादिक अन्त न पावै। सो गोपनकी गाय चरावै ॥
अगम अगोचर लीलाधारी। सो राधावश कुञ्जविहारी ॥
जो रस ब्रह्मादिक नहिं पायौ। सो रस गोकुल-गलिन बहायौ ॥
सूर सुयश कहि कहा बखानै। गोविंदकी गति गोविंद जानै ॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

द्वादश स्कन्ध

श्रीकृष्णाय नमः।

बारहवें स्कन्धमें आश्रयलीला है। भागवतका प्रतिपाद्य तत्त्व आश्रय ही है।

राजा परीक्षितने पूछा—अब इस पृथ्वीपर किसका राज्य होगा?

शुकदेवजी—जरासंधके पिता बृहद्रथके वंशका अन्तिम राजा होगा पुरंजय और उसके मन्त्रीका नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामीको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको राजसिंहासनपर बिठलायेगा। बादमें इस भरतखण्डमें नन्द, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि राजा होंगे। उसके बाद आठ यवन तथा दस गोरे राजा राज्य करेंगे।

कलियुगके छलिया राजनीतिज्ञ भारतके टुकड़े-टुकड़े करके देशको छिन्न-भिन्न कर देंगे। कलियुगके दुष्ट शासक गायोंकी हत्या करेंगे, प्रजाका धन हड़पकर स्वयं बिलास-वैभवमें लीन रहेंगे।

कलियुगके ब्राह्मण वेद तथा संध्यासे विहीन हो जायेंगे।

अपने कुटुम्ब मात्रका पालन-पोषण करना ही चतुराई मानी जाएगी और धर्मका सेवन, मात्र कीर्तिके हेतु ही किया जाएगा।—'दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम्।'

भागवतमें बताये गये कलियुगके लक्षण आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं।

हे राजन्! कलियुगके अन्तमें धर्मकी रक्षाके हेतु भगवान कल्कि अवतार धारण करेंगे।

पृथ्वीपर आज तक न जाने कितने सम्राट आये और चले भी गये।

कलियुगके पुरुष नारीके अधीन रहेंगे—स्त्रैणाः कलौ नराः।

मनुष्यको चाहिये कि अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये किसीका द्रोह न करे।

इस स्कन्धमें कलियुगके लक्षण, दोष तथा उनसे बचनेके उपाय बताये गये हैं। सबसे श्रेष्ठ उपाय है भगवानके नामका संकीर्त्तन।

कलियुगके कई दोष होनेपर भी एक लाभ भी है। कलियुगमें जो भी कृष्णकीर्त्तन करेगा उसके घर कलि कभी नहीं जायेगा। कलिसे बचनेका एकमात्र उपाय है कृष्णकीर्त्तन।

शुकदेवजी कहते हैं—

हे राजन्! कलियुगके अपलक्षण अनेक हैं किंतु श्रीकृष्णका कीर्त्तन करनेसे सभी दोषोंसे, पापोंसे छूटकर प्रभुको पाया जा सकता है।

कलेर्दोषनिधेः राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

और

कृते यद् ध्यायतो विष्णु त्रेतायाम् यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायाम् कलौ तद् हरिकीर्त्तनात् ।।

सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंसे, द्वापरमें विधिपूर्वक विष्णुपूजासे जो फल मिलता था, वही फल कलियुगमें भगवानके नामकीर्त्तनसे मिलता है।

मृत्युके समय परमेश्वरका ध्यान करनेसे वे जीवको अपने स्वरूपमें समाहित कर देते हैं।

हे राजन् ! तुम आसन्नमृत्यु हो, अतः अपने हृदयमें भगवान केशवकी स्थापना करो। वे तुम्हें परमगति देंगे।

हे राजन्, जन्म, जरा और मृत्यु शरीरके धर्म हैं, आत्माके नहीं। आत्मा तो अजर और अमर है। सो मैं मर जाऊँगा, ऐसी पशुबुद्धिका त्याग करो।

घट फूट जानेपर उसमें समाया हुआ आकाश महाकाशसे जा मिलता है। इसी प्रकार देहोत्सर्ग होनेपर जीव ब्रह्ममय हो जाता है।

राजन् ! आज तक्षक तुम्हें डसेगा। वह तेरे शरीरको मार सकेगा, आत्माको नहीं। तुम्हारी आत्मा तो परमात्मासे जा मिलेगी। तुम शरीरसे भिन्न हो। आत्मा परमात्माका अंश है।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।

राजन् ! मैं ही परमात्मारूप ब्रह्म हूँ और परमपदरूप ब्रह्म भी मैं ही हूँ, ऐसा सोचकर अपनी आत्माको ब्रह्मसे जोड़ लो।

तक्षक-काल भी श्रीकृष्णका ही अंश है। शरीर नाशवान् हैं, आत्मा तो अमर है।

जब तक मैं यहाँ हूँ, तक्षक नहीं आ पायेगा। सो यदि कुछ और सुननेकी इच्छा हो तो बताओ।

परीक्षित—महाराज, आपने मुझे व्यापक ब्रह्मके दर्शन कराये हैं सो मैं निर्भय हो गया हूँ।

श्रीमद्भागवत-श्रवणके पाँच फल हैं—

१. निर्भयता २. निःसन्देहता

३. हृदयमें प्रभुका साक्षात् प्रवेश

४. सभीमें भगवद्दर्शन

५. परमप्रेम

गुरुजी ! मैंने पाँचों फल प्राप्त कर लिए हैं।

प्रभु ! भागवतका प्रथम स्कन्ध सुनकर परमात्माके दक्षिण चरणके, द्वितीय स्कन्ध सुननेसे वामचरणके, तीसरे और चौथे स्कन्धोंको सुनकर दोनों हस्तकमलके, पञ्चम और छठे स्कंधको सुनकर दोनों जङ्घाके, सातवें स्कंधके श्रवणसे कटिभाग, अष्टम और नवम स्कंध सुनकर प्रभुके विशाल वक्षस्थलके दर्शन हुए। दशम स्कन्धके श्रवणसे प्रभुके मुखारविंद और नयनोंके दर्शन हुए। एकादश स्कन्धको सुनकर श्रीनाथजीका ऊपर उठा हुआ हस्त दिखाई दिया। बारहवें स्कन्धके श्रवणसे मुझे लग रहा है कि श्रीकृष्ण दोनों हाथोंसे मुझे बुला रहे हैं।

अब तो मैं प्रभुका ही ध्यान धर रहा हूँ। मैं उनकी ही शरणमें हूँ। मुझे सर्वत्र वे ही दिखाई दे रहे हैं। मैं उनके पास जा रहा हूँ। वे मुझे बुला रहे हैं। मैं कृतार्थ हो गया।

महाराज, आपने न केवल कथाश्रवण कराया, प्रभुके दर्शन भी मुझे करा दिए। आपने बतलाया कि सारा जगत ब्रह्मरूप है। तक्षक जगतसे पृथक नहीं है, वह भी ब्रह्मरूप ही है। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। आपने मुझपर बड़ा उपकार किया है।

शुकदेवजी—राजन्, तुम्हारे साथ-साथ मैं भी कृतार्थ हो गया क्योंकि मुझे भी कथा-श्रवणका लाभ मिला है। तुम्हारे कारण मैं भी प्रभुमें लीन हो सका। वे मेरे हृदयमें विराजमान हुए। राजन्, मैं अब आगेका कोई प्रसङ्ग देखना नहीं चाहता। यदि कोई शङ्का हो तो पूछ सकते हो। ब्रह्मनिष्ठ होनेके कारण मेरी दृष्टि तक्षकके विषको अमृत बना देगी।

परीक्षितने गुरुदेवको वन्दन किया और कहा—अब मेरे मनमें कोई शङ्का शेष नहीं है। आपकी कृपासे मैं निर्लेप और निर्भय हो गया हूँ।

शुकदेवजीने जानेकी अनुमति चाही तो राजाने उनकी पूजा करनेकी इच्छा व्यक्त की।

राजाने शुकदेवजीकी पूजा की तो उन्होंने राजाके मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराया। उसी क्षण राजाको परमात्माके दर्शन हुए। जीव और ब्रह्म एक हो गए।

सत्रमें भाग ले रहे सभी महर्षियोंको परम आश्चर्य हुआ।

व्यासजी सोचते हैं, मैंने अपने पुत्रको भागवतका अभ्यास कराया किन्तु जो तत्त्व शुकदेवजी जान सके, वह तो मैं भी जान नहीं पाया हूँ। व्यासजीने शुकदेवजीको प्रणाम किया।

गुरुदेव शुकदेवजी अन्तर्धान हो गए।

राजा परीक्षितके शरीरमें-से एक ज्योति प्रकट हुई और महाज्योतिके साथ मिल गई।

तक्षकने आकर राजाको दंश दिया किंतु वे तो कबके भगवानके धाममें सिधार चुके थे।

परीक्षितकी भाँति, कालके आगमनके पूर्व ही परमधाममें जानेवालेको धन्य है।

सूतजी कहते हैं—परीक्षितका मोक्ष मैंने स्वयं देखा था।

इस प्रकार, सभी पापोंके नाशकर्त्ता और इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान श्रीहरिका भागवत-में वर्णन है।

कथा सुनकर जीवनमें उतारोगे तो कथाश्रवण सार्थक होगा।

सत्कर्मका कोई अन्त नहीं होता। जीवनके अन्त तक सत्कर्म करते रहो।

कथाश्रवणके समय वक्ता और श्रोतासे जाने-अनजाने कुछ दोष हो जानेकी सम्भावना है। अतः तीन बार श्रीहरये नमः इस प्रकार बोलो। ऐसा जप करनेसे सभी दोष जल जायेंगे।

मनुष्य ठोकर लगते समय, छींकते समय, दुःखद अवस्थामें, विपदामें यदि श्रीहरये नमः का सस्वर पाठ करे तो उसके दोष और दुःख दूर हो जाते हैं तथा उसके पाप नष्ट होते हैं।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नमः इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥ भा० १२-१२-४६

अन्तमें, जिनका नामसंकीर्त्तन सभी पापोंका नाश करता है और जिनको किये गये प्रणाम सभी दुःखोंको शांत करते हैं उन परमात्माको, श्रीहरिको हम प्रणाम करें।

नामसंकीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ भा० १२-१३-२३

आरती

जयदेव जयदेव वन्दे गोपालं वन्दे भूपालं।
मृगमदशोभितभालं भुवनत्रयपालं॥
निर्गुणसगुणाकारं संभृतभूभारं।
मुरहर नन्दकुमारं स्मरहरं सुखकारं।
वृन्दावन संचारं कौस्तुभमणिहारं।
कृपया पारावारं गोवर्धनधारं॥ जयदेव जयदेव⋯
मुरलीवाहनलोलं सप्तस्वरगीतं।
स्थलचर वनचर गोचर जलचर सहगीतं।
स्तंभित यमुनातोयं अगणित तव चरितं।
गोपीजन मनमोहन दातुं श्रीकान्तं॥ जयदेव जयदेव⋯
रासक्रीडामण्डित विष्टित व्रज ललनं
मध्ये तांडवमण्डितं कुवलय दलनयनं।
कुसुमितकाननरंजित मन्दस्मित वदनं।
फणिवरकालियदमनं यक्षेश्वरगमनं॥ जयदेव जयदेव⋯
अभिनवनीतं चोरं करघृतदधिगोलं।
लीला नटवरखेलं धृतकाञ्चनचेलं।
निर्जर लक्ष स्वरूपं विहलितरिपुकुलं।
भगवत परिपालय जय जय जय गोपालम्॥ जयदेव जयदेव⋯

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥